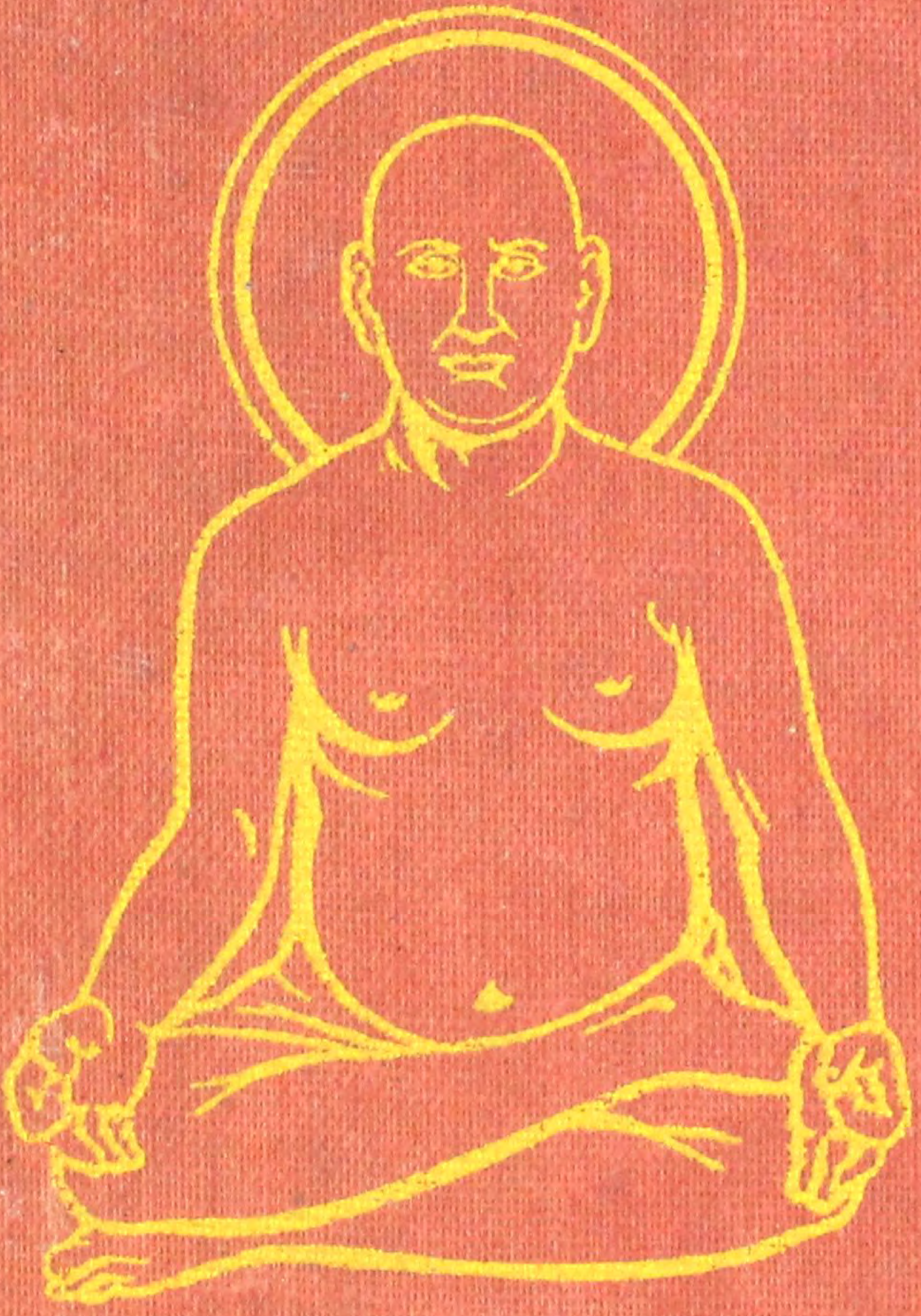
ओ३म्

दयानन्द-यजुर्वेद भाष्य-भास्कर



महर्षि दयानन्द का वेद-भाष्य

व्याख्या सहित

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्कर

(महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की अनुपम व्याख्या)

द्वितीय भाग ११-२० अध्याय

व्याख्याता

श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य, एम० ए०

स्नातक—गुरुकुल झज्जर (रोहतक) एवं
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरद्वार (उ० प्र०)

प्रकाशक

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

४५५ खारी बावली, दिल्ली-६

फोन : २६८३६०, २२६५४७

संवत् २०३० वि०

सन् १९७३ ई०

सृष्टिसंवत् १९६०८५३०७४

प्रथम वार ११००

मूल्य ४०)

मुद्रक—सतसाहित्य केन्द्र १७३ डी, कमला नगर, दिल्ली-७

प्रकाशकीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों के स्वाध्याय से तथा महर्षि के मन्तव्यों को समझने से मेरी आर्ष ग्रन्थों के प्रति प्रारम्भ से ही श्रद्धा है। मैं ऋषि-कृत ग्रन्थों को प्रामाणिक चक्षु से पढ़ता हूँ और मनुष्यकृत पुस्तकों को सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखता हूँ, उन्हें प्रामाणिक नहीं मानता। साधारण पुस्तकों की तो बात क्या है आजकल मनुष्यकृत अनेक वेदभाष्य तथा मन्त्र व्याख्यान प्रकाशित हो रहे हैं उनमें अपना विश्वास नहीं। कारण यह है कि मनुष्यकृत मन्त्रार्थ और ऋषिकृत मन्त्रार्थ की तुलना करने पर मनुष्यकृत मन्त्रार्थ दोषपूर्ण सिद्ध होते हैं। अतः ऋषियों की रचना में श्रद्धा और मनुष्यों की कृति में अश्रद्धा स्वतः उत्पन्न हो जाती है।

महर्षि दयानन्दकृत वेदभाष्य में भी बहुत दिन से उक्त श्रद्धा रही। और प्रबल इच्छा रही कि महर्षिकृत वेदभाष्य का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार हो, जिससे मनुष्यकृत वेदभाष्यों की दोषपूर्णता और अप्रामाणिता सर्वसाधारण को ज्ञात हो। स्वयं महर्षि का वेदभाष्य पढ़ते हुए और विद्वानों से चर्चा करने पर विदित हुआ कि महर्षिकृत वेदभाष्य में कुछ एक कठिनाइयाँ हैं, जिनके कारण से महर्षि का अत्युत्तम वेदभाष्य प्रचार को प्राप्त नहीं हो रहा। मुख्य कठिनाइयाँ ये हैं--मन्त्र का पदार्थ और अन्वय पृथक् पृथक् हैं। अतः अन्वय और पदार्थ में एक-वाक्यता नहीं। एक-वाक्यता के विना महर्षि के भाष्य का तात्पर्य ठीक-ठीक समझ में नहीं आता। दूसरी कठिनाई यह है कि पण्डितों ने जो भाषार्थ किया है वह धारावाही नहीं। पण्डित लोग पदार्थ को मुख्य मानकर भाषार्थ करते रहे, वाक्य-रचना का पूर्ण ध्यान नहीं रक्खा अतः भाषार्थ भी ठीक नहीं बना। इन कठिनाइयों के कारण महर्षि का वेदभाष्य विद्वानों और स्वाध्यायशील आर्यों में प्रचार को प्राप्त नहीं हुआ। अतः मैंने निश्चय किया कि महर्षिकृत वेदभाष्य की इन कठिनाइयों का निराकरण किया जाये। इसी दृढ़ निश्चय के परिणामस्वरूप दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर का द्वितीय भाग (११ से २० अध्याय) पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

महर्षिकृत वेदभाष्य की इस 'भास्कर' नामक व्याख्या के लेखक श्री पण्डित सुदर्शनदेव आचार्य हैं। जो वेद आदि शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित हैं और महर्षि दयानन्द सरस्वती में अगाध श्रद्धावान् हैं। श्री आचार्य जी ने बड़ी योग्यता और पुरुषार्थ के साथ यह व्याख्या लिखी है। अतः श्री आचार्य जी का मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। श्री पण्डित राजवीर जी शास्त्री तथा ब्र० वेदपाल जी शास्त्री ने इस कार्य में सहयोग प्रदान किया है तदर्थ उनका भी धन्यवाद है।

सर्वश्री प्रो० रामसिंह जी, पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी, जगदेवसिंह सिद्धान्ती, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, रघुवीरसिंह शास्त्री, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति इन विद्वानों ने 'भास्कर' पर अपनी सम्मतियाँ सहर्ष प्रदान की हैं, जो प्रथम भाग में छप चुकी हैं; तदर्थ उक्त विद्वान् भी धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री रामहौसला जी मिश्र तथा उनके सहयोगी मुद्रण-कार्य में पूर्ण मनोयोग से सेवा कर रहे हैं तदर्थ वे भी धन्यवादार्ह हैं।

आजकल कागज की बड़ी कमी हो गई है। कागज का मूल्य भी बहुत बढ़ गया है। अनेक विघ्नों का सामना करते हुए इस पवित्र कार्य को पूरा करने का दृढ़ संकल्प है। प्रभु मुझे इस कार्य को पूरा करने की शक्ति प्रदान करें, यही कामना है।

यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर के शेष दो भाग तथा ऋग्वेद-भाष्य-भास्कर (सम्पूर्ण) भी प्रकाशित किया जा रहा है। स्वाध्यायशील वेद-प्रेमी आर्य सज्जनों से निवेदन है कि इस यजुर्वेदभाष्य-भास्कर का अध्ययन करके सम्पूर्ण ग्रन्थ के ग्राहक बनें।

ऋषि-चरणों का अनुचर—

दीपचन्द आर्य,

प्रधान—**आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट,**

२ एफ, कमलानगर, दिल्ली - ७

आवश्यक वक्तव्य

परमात्मा की अपार कृपा से महर्षि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य की अनुपम व्याख्या दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर का द्वितीय भाग (११ से २० अध्याय) पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। पाठकों की सेवा में इस भाग के विषय में कुछ आवश्यक वक्तव्य इस प्रकार है—

१—दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर का प्रथम भाग (१ से १० अध्याय) प्रकाशित हो चुका है। उसमें 'अन्वय' नामक सन्दर्भ नहीं रखा गया था क्योंकि सपदार्थान्वय में काले टाइप में 'अन्वय' स्पष्ट हो जाता है। पाठकों की और अधिक सुविधा के लिए इस द्वितीय भाग में मन्त्र का 'अन्वय' पृथक् भी प्रकाशित किया है और सपदार्थान्वय में भी पूर्ववत् काले टाइप में स्पष्ट विद्यमान है।

२—प्रथम भाग (१ से १० अध्याय) में, भावार्थ को मन्त्रानुसारी समझाने के लिए भावार्थ पर मन्त्रांश के टुकड़े रखे गये हैं। इसका अधिक उपयोग विद्वानों के लिए है, सर्वसाधारण के लिए नहीं। 'विद्वानों को इशारा काफी है' अतः द्वितीय भाग के अन्त में इसे छोड़ दिया है। महर्षि के भावार्थ की शैली को विद्वान् लोग हमारे इस प्रयास से भली-भाँति समझ सकते हैं। इससे विद्वानों की इस कल्पना का भी निराकरण किया गया है कि 'भावार्थ' महर्षि के स्वतन्त्र विचार हैं; मन्त्र का तात्पर्य नहीं।" वास्तविकता यह है कि 'भावार्थ' मन्त्रार्थ का सार है। महर्षि मन्त्र के देवता (प्रतिपाद्य विषय) को लेकर मन्त्रार्थ का सार भावार्थ में लिखते हैं। भावार्थ में मन्त्रार्थ का सार कहीं संक्षेप में होता है और कहीं विस्तार से भी। भावार्थ मन्त्रार्थ के बोध में अत्यन्त सहायक है। अनेक स्थानों में पदार्थ को भी स्पष्ट करता है इस तथ्य को हमने भावार्थ पदार्थ नामक संदर्भ में स्फुट किया है। पाठक इन सब तथ्यों का साक्षात् स्वयं स्वाध्याय से कर सकते हैं।

यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर के इस द्वितीय भाग में यजुर्वेद के ११ से २० तक दस अध्यायों का समावेश है। इन दस अध्यायों में ईश्वर ने मनुष्य के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का उपदेश किया है।

चार दशक—यजुर्वेद में ४० चालीस अध्याय हैं। यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर में हमने इन्हें चार दशक के रूप में विभक्त किया है। प्रथम भाग (१-१० अध्याय) पहला दशक प्रकाशित हो चुका है। उसमें ४३० मन्त्र हैं। द्वितीय भाग (११-२० अध्याय) दूसरा दशक आपके हाथ में है। इसमें ७८१ मन्त्र हैं। यह सबसे बड़ा दशक है। तृतीय भाग (२१-३० अध्याय) तीसरा दशक है, इसमें ४४६ मन्त्र हैं। चतुर्थ भाग (३१-४० अध्याय) चौथा दशक है, इसमें ३१८ मन्त्र हैं। इस प्रकार से यह दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर चार विभागों में प्रकाशित किया जा रहा है। दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। शेष दो भाग भी शीघ्र ही ग्राहकों एवं पाठकों की सेवा में पहुँच जायेंगे।

भास्कर की आवश्यकता—प्रथम भाग (१-१० अध्याय) की भूमिका में महर्षि दयानन्द के इस मन्तव्य को विस्तार से समझाया है कि वेदभाष्य करने का अधिकार पक्षपात आदि दोषों से रहित तथा शुद्ध विद्या और बुद्धि वाले साक्षात्कृतधर्मा महर्षि महाशयों को ही है; क्षुद्राशय मनुष्यों को नहीं। मनुष्य जाति के सौभाग्य से महर्षि दयानन्द ने वेद का अनुपम भाष्य किया। महर्षि का भाष्य पदार्थ, अन्वय और भावार्थ आत्मक है। लोगों ने महर्षि की भाष्य शैली को ठीक-ठीक नहीं समझा। शैली को न समझने के कारण महर्षि का वेदभाष्य पठन-पाठन व्यवहार में कम आया। अतः महर्षि की भाष्य-शैली को

अधिक स्पष्ट करने के लिए इस भास्कर नामक व्याख्या की आवश्यकता अनुभव हुई। इसमें देवता का अर्थ, मन्त्रार्थ भूमिका, पदार्थ और अन्वय को मिलाकर सपदार्थान्वय, (संस्कृत) उसका भाषार्थ, भावार्थ (संस्कृत) और उसका भाषार्थ, मन्त्रार्थ भूमिका के आधार पर भाष्यसार, उपमा आदि अलंकारों की व्याख्या, सत्यार्थप्रकाश आदि महर्षि के ग्रन्थों में व्याख्यात मन्त्र का तत्सम्बन्धी मन्त्र में उल्लेख, मन्त्र और मन्त्रांश का कर्मकाण्ड में विनियोग, महीधर आदि के मन्त्रार्थों की यथास्थान की गई समीक्षा की व्याख्या, अध्याय के अन्त में विषय-वर्णन में मन्त्र संख्या का निर्देश किया गया है। महर्षि के वेदभाष्य को समझाने के लिए यह सब कार्य इस भास्कर नामक व्याख्या में किये गये हैं।

भास्कर नामक इस व्याख्या में एक यह भी विशेषता है कि महर्षि का संस्कृत भाष्य मूल रूप में दिया गया है, मूल में कोई परिवर्तन नहीं किया है। मूल संस्कृत-भाष्य के सामने ही सरल भाषार्थ दिया गया है। मूल संस्कृत भाष्य के अनुरूप भाव ही हिन्दी पाठकों को इसमें उपलब्ध होंगे। व्याख्याकार के अपने काल्पनिक विचारों का इसमें सर्वथा अभाव है। यदि किसी विद्वान् पाठक को भाषार्थ में आपत्ति है तो महर्षि का मूल संस्कृत-भाष्य समक्ष है। वह उससे पूर्ण लाभ उठा सकता है।

महीधर आदि का वेदभाष्य—यजुर्वेद-संहिता पर महीधर और उवट का वेदभाष्य उपलब्ध है। यह वेदभाष्य संस्कृत में ही है; हिन्दी में नहीं। अनेक विद्वान् इस भाष्य को बड़ी श्रद्धा से पढ़ते हैं। वास्तविकता यह है कि ये वेदभाष्य काल्पनिक हैं; सत्य-अर्थ से कोसों दूर हैं। इन्द्र आदि कल्पित देवता स्वीकार किये गये हैं। मन्त्र के देवता (प्रतिपाद्य-विषय) का कोई महत्त्व नहीं समझा गया है। महर्षि ने इन अनार्ष वेदभाष्यों को त्याज्य बतलाया है। महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं—

"महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से अत्यन्त विरुद्ध व्याख्यान किया है। उसमें से सत्यासत्य की परीक्षा के लिए उनके कुछ दोष यहाँ भी दिखलाते हैं—'गणानां त्वा गणपति०'॥ यजुर्वेद। २३। १६॥ भाषार्थ—(गणानां त्वा०) इस मन्त्र में महीधर ने कहा है कि—गणपति शब्द से घोड़े का ग्रहण है। सो देखो महीधर का उलटा अर्थ कि सब ऋत्विजों के सामने यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे; और सोती हुई घोड़े से कहे कि, हे अश्व! जिससे गर्भ धारण होता है, जो तेरा ऐसा वीर्य है, उसको मैं खेंच के अपनी योनि में डालूँ, तथा तू उस वीर्य को मुझ में स्थापन करने वाला है।" (ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका) भाष्य-करण शंकासमाधानादिविषयः)।

महीधर आदि के इस प्रकार के वेदभाष्यों ने पवित्र वेद-वाणी के साथ बड़ा अनर्थ किया है। ऐसे ही वेदभाष्यों को पढ़कर लोगों में वेदों के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। अतः महर्षि ने महीधर आदि के दूषित वेदभाष्यों का निराकरण करने के लिए अनुपम वेदभाष्य रचा। आशा है पाठक महर्षि के वेदभाष्य का स्वयं स्वाध्याय करेंगे तथा उसका सर्वत्र प्रचार और प्रसार करेंगे। महर्षि के वेदभाष्य के प्रचार में इस भास्कर नामक व्याख्या से पूर्ण लाभ उठावें।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका—चारों वेदों का भाष्य करने से पूर्व महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नामक ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ ऋग्वेद आदि चारों वेदों के भाष्य की भूमिका रूप में लिखा गया है। महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य को समझने के लिए इस ग्रन्थ का गम्भीर अध्ययन अनिवार्य है। इसमें वेद के अनेक महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषयों पर वेद-मन्त्रों के आधार पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला गया है। वेद के सत्यार्थ को समझने की यह अनुपम कुंजी है। वेद के मिथ्या अर्थ का निराकरण किया गया है। जैसे महीधर आदि कृत वेद के मिथ्या अर्थ का एक उदाहरण ऊपर प्रस्तुत किया गया है। पाठक इस ग्रन्थ की महिमा को अध्ययन के उपरान्त स्वयं अनुभव करेंगे।

चारों वेदों का भाष्य—महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद का सप्तम मण्डल के ६१वें सूक्त तक भाष्य किया है। मानव जाति के दौर्भाग्य से महर्षि चारों वेदों का भाष्य पूरा न कर सके किन्तु आज जितना महर्षि का वेदभाष्य उपलब्ध है उसके भी गम्भीर अध्ययन की उत्कण्ठा पाठकों में दृष्टिगोचर नहीं होती। कुछ एक आर्य विद्वानों में चारों वेदों का भाष्य करने की धुन अवश्य दृष्टिगोचर होती है। मैं यह समझता हूँ कि जितना महर्षि का भाष्य विद्यमान है उस पर अन्य किसी आर्य विद्वान् के भाष्य की आवश्यकता नहीं है। शेष पर यदि कोई आर्य विद्वान् महर्षि की शैली से (मन्त्रार्थ) भूमिका, पदार्थ, अन्वय, भावार्थ, अलंकार, समीक्षा, पूर्वापर संगति, प्रामाणिक भाष्य लिखे तो वह समाज के लिए श्रद्धा का पात्र होगा। किन्तु आज आर्य विद्वान् महर्षि की शैली का तिरस्कार करके वेद-भाष्य कर रहे हैं; यह सर्वथा अनुचित है। आर्य विद्वानों का सम्मान इसी में है कि वे महर्षि-कृत वेदभाष्य का प्रचार करें तथा उनकी शैली को पूर्ण रूप से वेद-भाष्य आदि में स्वीकार करें।

महर्षि का जितना वेद-भाष्य उपलब्ध होता है उसमें चारों वेदों के थोड़े ही मन्त्रों का भाष्य शेष रहा है। सामवेद के कुछ मन्त्रों को छोड़कर सब का समावेश ऋग्वेद में है। अथर्ववेद के भी बहुत से मन्त्र ऋग्वेद में आ जाते हैं। अपना विचार है कि पूरा हिसाब लगाने पर थोड़े मन्त्र ऐसे शेष रहेंगे जिन पर महर्षि का भाष्य उपलब्ध नहीं। जो शेष रहेंगे उन पर भी महर्षि की बुद्धि से विचार करने के लिए वैदिक यन्त्रालय अजमेर से प्रकाशित चतुर्वेद मन्त्र विषय-सूची पूर्ण सहायक हो सकती है।

वेदों के चार विभाग—वेदों के चार विभाग क्यों किये गये? इस प्रश्न के उत्तर में महर्षि लिखते हैं—

'भिन्न भिन्न विद्या जनाने के लिए अर्थात् जो तीन प्रकार की गान-विद्या है, एक तो यह कि—उदात्त और षड्जादि स्वरों का उच्चारण ऐसा शीघ्रता से करना जैसा कि ऋग्वेद के स्वरों का उच्चारण द्रुत अर्थात् शीघ्रवृत्ति में होता है। दूसरी मध्यमवृत्ति—जैसा कि यजुर्वेद के स्वरों का उच्चारण ऋग्वेद के मन्त्रों से दूने काल में होता है। तीसरी विलम्बित वृत्ति है जिसमें प्रथम वृत्ति से तिगुना काल लगता है, जैसे कि सामवेद के स्वरों के उच्चारण वा गान में। फिर उन्हीं तीनों वृत्तियों के मिलाने से अथर्ववेद का भी उच्चारण होता है, इसलिए वेदों के चार विभाग हुए हैं।'

तथा—कहीं-कहीं एक मन्त्र का चार वेदों में पाठ करने का यही प्रयोजन है कि **वह पूर्वोक्त प्रकार की गान-विद्या में गाया जावे**। तथा प्रकरण-भेद से कुछ कुछ अर्थभेद भी होता है, इसीलिए कितने ही मन्त्रों का पाठ चारों वेदों में किया जाता है।

कुछ एक विद्वानों का यह मत है कि वेद-भेद से मन्त्रों के अर्थों में बड़ा भेद हो जाता है। अतः महर्षि कृत ऋग्वेद के मन्त्रों का अर्थ सामवेद में व्यवहृत नहीं किया जा सकता। विद्वानों की यह धारणा मिथ्या है। महर्षि विशेष रूप से उक्त गान-विद्या की दृष्टि से वेदों के विभाग मानते हैं और प्रकरण भेद से साधारण अर्थ-भेद स्वीकार करते हैं। अतः महर्षिकृत मन्त्रार्थों का सर्वत्र व्यवहार किया जा सकता है।

आर्य विद्वानों और स्वाध्यायशील पाठकों से निवेदन है कि महर्षिकृत वेदभाष्य का स्वयं सर्वत्र उपयोग करें तथा इस अनुपम वेदभाष्य का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार करें।

सुदर्शनदेव आचार्य

२०. १२. १९७३ ई०

कर्त्तव्य । अग्नि आदि पदार्थों के गुण । किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश । बल-वृद्धि का उपाय । वैश्य का कर्त्तव्य । विद्वान् का कर्त्तव्य । राजा का कर्त्तव्य । धर्मात्मा के तुल्य अन्य मनुष्यों का व्यवहार । विवाह । शिशिर ऋतु का वर्णन । स्त्री का कर्त्तव्य । राजा और प्रजा का धर्म । विदुषी स्त्री का कर्त्तव्य ।

१६. षोडश अध्याय—राजधर्म । शिक्षक और शिष्य का व्यवहार । राजपुरुषों का कर्त्तव्य । वैद्य का कर्त्तव्य । सेनापति आदि का उपदेश । राजा और प्रजा का व्यवहार । विद्वानों के सत्कर्त्तव्य । कुत्तों आदि से उपकार-ग्रहण । कौन सत्कर्त्तव्य नहीं । उद्योग का प्रकार । योद्धाओं की रक्षा का उपाय । जल से उपकार ग्रहण । सन्तोष । विद्वानों का कर्त्तव्य । सभाध्यक्ष आदि का कर्त्तव्य । सर्प आदि दुष्ट प्राणियों का निवारण ।

१७. सप्तदश अध्याय—वर्षा-विद्या । गणित-विद्या । स्त्री का पति के साथ व्यवहार । सभापति का कर्त्तव्य । गृहस्थ का कर्त्तव्य । आप्त विद्वानों का कर्त्तव्य । सेनापति का कर्त्तव्य । न्यायाधीश का कर्त्तव्य । संन्यासियों का कर्त्तव्य । ईश्वर का स्वरूप । राज्य का अधिकारी । पुरोहित, ऋत्विक् और यजमान का कर्त्तव्य । यज्ञ की विधि । सूर्य लोक का स्वरूप । ईश्वर ने सूर्य को क्यों बनाया । ईश्वर के गुण । राजधर्म । योगियों के गुण । विद्वान् का व्यवहार । योगी के कर्मों का फल । ईश्वर-प्राप्ति । अग्नि की खोज । यज्ञ और शब्दशास्त्र के गुण । वाणी का प्रयोग । विवाहित स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य ।

१८. अष्टादश अध्याय—ईश्वर-उपासना और धर्मानुष्ठान के लाभ । गणित-विद्या के मूल का उपदेश । पशुपालन स्वीकार योग्य वाणी । यज्ञ-सिद्धि के साधन । विद्वान् और प्रजा का व्यवहार । सब का रक्षक अन्न । जल-रस का ज्ञान । राजा किसे मानें । राजा का कर्त्तव्य । चन्द्र आदि लोकों से उपकार-ग्रहण । वायु आदि से उपकार-ग्रहण । यज्ञ का अनुष्ठान । विद्वान् का कर्त्तव्य । विद्वान् के तुल्य अन्य मनुष्यों का आचरण । पदार्थों की शुद्धि । सुखी नर । दीर्घजीवी मनुष्य । सत्य का निर्णय । क्रिया यज्ञ की सिद्धि । यज्ञ से लाभ । ऋग्वेद आदि का अध्ययन । सेनाध्यक्ष का विजय । सेनापति का कर्त्तव्य । पुरुषार्थ से सिद्धि । सभापति और सेनापति का कर्त्तव्य ।

१९. एकोनविंश अध्याय—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि । राजपुरुषों का कर्त्तव्य । राजा और प्रजा का कर्त्तव्य । स्त्री-पुरुष का वर्त्ताव । माता-पिता और सन्तान का वर्त्ताव । सुख की प्राप्ति । कीर्ति की प्राप्ति । कुमारी कन्याओं का कर्त्तव्य । कार्य-सिद्धि का उपाय । होम के योग्य पदार्थ । नीरोगता प्राप्ति । अध्यापकों का कर्त्तव्य । सत्पुरुषों का कर्त्तव्य । वेदाभ्यास का उपदेश । गृहस्थों का का कर्त्तव्य । सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग । धन्यवाद के योग्य मनुष्य । आनन्द-प्राप्ति । माता-पिता और पुत्र आदि का वर्त्ताव । मनुष्यों की शुद्धि का उपाय । अधर्म से भय । राज्य की वृद्धि । सुख-पूर्वक निवास । जीवों की दो गति । सन्तानों का कर्त्तव्य । ईश्वर-प्रार्थना । सेनापति का कर्त्तव्य । मुक्ति की प्राप्ति । विज्ञान की प्राप्ति । राज्य की उन्नति । शरीर से वीर्य की उत्पत्ति । धर्म-अधर्म । वेद के ज्ञाता । बल की वृद्धि । विद्वानों के तुल्य अन्यों का आचरण । यज्ञ के अधिकारी । विदुषी स्त्रियों का कर्त्तव्य । अपने कुल को श्रेष्ठ बनाना । रोग से पृथक् रहना । योगी का कर्त्तव्य ।

२० विंश अध्याय—राज्यधर्म । सर्वोपकारक उपदेशक । ईश्वर की उपासना । अध्यापक और उपदेशक का कर्त्तव्य । शरीर विषयक उपदेश । स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य । विद्वानों का कर्त्तव्य । वैद्यक विद्या । वैद्यों का व्यवहार । भैषज्य आदि का उपदेश । पशु-पालन । स्त्री-शिक्षा ।

लेखक का संक्षिप्त परिचय

"दयानन्द-यजुर्वेद-भाष्य-भास्कर" के लेखक श्री पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य ने माघ शुक्ला पञ्चमी सं० १९९१ वि० को ग्राम बालन्द, जिला रोहतक निवासी महाशय शिवदत्त जी आर्य एवं श्रीमती रजकांदेवी के घर को सुशोभित किया।

ऋषिभक्त पिता ने इस होनहार पुत्र को प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त आर्ष प्रणाली से वेदादि शास्त्रों के अध्ययनार्थ ७ फरवरी, १९४७ ई० को गुरुकुल झज्जर में भेज दिया। वहां पर आपने पूज्य गुरुदेव श्री आचार्य भगवान्देव जी के संरक्षण में महावैयाकरण पण्डित श्री विश्वप्रिय जी शास्त्री, श्री देवराज जी मुनि, श्री आचार्य मेधाव्रत जी, श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, श्री स्वामी ब्रह्ममुनि जी, श्री पं० महामुनि जी आदि विद्वानों से शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, छन्द-शास्त्र, काव्यालङ्कार, दर्शन, उपनिषद्, गीता, रामायण, मनुस्मृति आदि का अध्ययन किया।

तत्पश्चात् गुरुकुल झज्जर में ही आप प्रधानाध्यापक के रूप में अध्यापन-कार्य करते रहे। सन् १९५७ में पंजाब विश्वविद्यालय से शास्त्री तथा १९६२ में व्याकरणाचार्य परीक्षा विशेष योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण की है। सन् १९६७ में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा में आप सर्व-प्रथम रहे हैं। वेद व्याकरण तथा संस्कृत साहित्य में प्रारम्भ से ही आपकी विशेष रुचि और गति है।

आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा संचालित उपदेशक महाविद्यालय (यमुनानगर, भटिण्डा) में आप ७ वर्ष तक प्रधान-अध्यापक रहे।

आपने व्याकरण-कारिका-प्रकाश, लिंगानुशासनवृत्ति, फिट्सूत्रप्रदीप, वर्णोच्चारणशिक्षा, अष्टाध्यायी तथा काशिका के वार्तिकसूत्रों पर भी सुबोध व्याख्या लिखी है। आप प्राचीन व्याकरण के मर्मज्ञ, उदीयमान नवयुवक लेखक हैं। आशा है विद्वत्समाज आपकी रचनाओं का समुचित आदर करेगा।

राजवीर शास्त्री, एम० ए०
सम्पादक—'दयानन्द सन्देश'
कमलानगर, दिल्ली - ७

॥ ओ३म् ॥

❋ अथैकादशाऽध्यायारम्भः ❋

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

प्रजापतिः । **सविता**=ऐश्वर्यमिच्छुर्मनुष्यः । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ योगाभ्यासभूगर्भविद्योपदेशमाह ॥

अब ग्यारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है। इसके प्रथम मन्त्र में योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का उपदेश किया है ॥

यु॒ञ्जा॒नः प्र॑थ॒मं मन॑स्त॒त्त्वाय॑ सवि॒ता धियः॑ । अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑रत् ॥ १ ॥

पदार्थः—(**युञ्जानः**) योगाभ्यासं भूगर्भविद्यां च कुर्वाणः (**प्रथमम्**) आदौ (**मनः**) मननात्मिकान्तःकरणवृत्तिः (**तत्त्वाय**) तेषां परमेश्वरादीनां पदार्थानां भावाय (**सविता**) ऐश्वर्यमिच्छुः (**धियः**) धारणात्मिका अन्तःकरणवृत्तीः (**अग्नेः**) पृथिव्यादिस्थाया विद्युतः (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**निचाय्य**) निश्चित्य (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अधि**) उपरि (**आ**) समन्तात् (**अभरत्**) धरेत् ॥ १ ॥

अन्वयः—यः सविता मनुष्यस्तत्त्वाय प्रथमं मनोधियश्च युञ्जानोऽग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्स पदार्थविद्याविच्च जायेत ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः सविता** ऐश्वर्यमिच्छुः **मनुष्यस्तत्त्वाय** तेषां परमेश्वरादीनां पदार्थानां भावाय **प्रथमम्** आदौ **मनः** मननाऽऽत्मिकाऽन्तःकरणवृत्तिः [तां] **धियः** धारणाऽऽत्मिका अन्तःकरणवृत्तीः **च युञ्जानः** योगाऽभ्यासं भूगर्भविद्यां च कुर्वाणः, **अग्नेः** पृथिव्यादिस्थाया विद्युतः **ज्योतिः** प्रकाशं **निचाय्य** निश्चित्य, **पृथिव्याः** भूमेः **अधि+आ+अभरत्** उपरि समन्तात् धरेत्; **स पदार्थविद्याविच्च जायेत** ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो (सविता) ऐश्वर्य की कामना करने वाला मनुष्य (तत्त्वाय) परमेश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान के लिये (प्रथमम्) आदि में (मनः) मनन आत्मक अन्तःकरण की वृत्ति को और (धियः) धारणात्मक अन्तःकरण की वृत्तियों को (युञ्जानः) योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में युक्त करता हुआ, (अग्नेः) पृथिवी आदि में विद्यमान विद्युत् के (ज्योतिः) प्रकाश को (निचाय्य) निश्चित जानकर (पृथिव्याः) भूमि को (अधि+आ+अभरत्) सब ओर से धारण करे,

वह पदार्थविद्या और योगविद्या का ज्ञाता होवे।

[यः सविता मनुष्यस्तत्त्वाय प्रथमं मनो धियश्च युञ्जानः]

भावार्थः—यो जनो योगं भूगर्भविद्यां च चिकीर्षेत् स यमादिभिः क्रियाकौशलैश्चाऽन्तःकरणं पवित्रीकृत्य, तत्त्वानां विज्ञानाय प्रज्ञां समज्य, एतानि गुणकर्मस्वभावतो विदित्वोपयुञ्जीत।

भावार्थ—जो पुरुष योगविद्या और भूगर्भ विद्या को प्राप्त करना चाहे, वह यम आदि और क्रियाकौशलों से अन्तःकरण को पवित्र करके, तत्त्वों के विज्ञान के लिये बुद्धि को लगाकर, और इन्हें गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर इनका उपयोग करे।

[अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्]

पुनः—यत् प्रकाशमानानां सूर्यादीनां प्रकाशकं ब्रह्मास्ति, तद् विज्ञाय स्वात्मनि निश्चित्य स्वप्रयोजनानि साध्नुयात्॥ ११। १॥

फिर—जो प्रकाशमान सूर्य आदि पदार्थों का प्रकाशक ब्रह्म है, उसे जानकर, उसका अपनी आत्मा में निश्चय करके अपने प्रयोजनों को सिद्ध करे॥ ११। १॥

भा० पदार्थः—मनः=अन्तःकरणम्। धियः=प्रज्ञाम्। अग्नेः=प्रकाशमानानां सूर्यादीनां प्रकाशकस्य ब्रह्मणः। ज्योतिः=प्रकाशकं ब्रह्म॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**युञ्जानः**) योग को करने वाले मनुष्य (**तत्त्वाय**) तत्त्व अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के लिये (**प्रथमं मनः**) जब अपने मन को पहिले परमेश्वर में युक्त करते हैं, तब (**सविता**) परमेश्वर उन की (**धियम्**) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त कर लेता है। (**अग्नेर्ज्यो०**) फिर वे परमेश्वर के प्रकाश को निश्चय कर के (**अध्याभरत्**) यथावत् धारण करते हैं, (**पृथिव्याः**) पृथिवी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय**)॥

भाष्यसार—**योगाभ्यास और भूगर्भविद्या**—ऐश्वर्य की कामना करने वाला मनुष्य परमेश्वर आदि पदार्थों के तत्त्व ज्ञान के लिये आदि में मन और बुद्धि को योगाभ्यास और भूगर्भविद्या में लगावे। यम आदि के पालन से मन को और क्रियाकौशल से बुद्धि को शुद्ध करे। परमेश्वर आदि पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव को जान कर इनका जीवन-व्यवहार में उपयोग करे। और जो सूर्य आदि प्रकाशमान पदार्थों का भी प्रकाशक ब्रह्म है, उसे जान कर अपनी आत्मा में निश्चय करके अपने उद्देश्यों को सिद्ध करे। और जो पृथिवी आदि में विद्यमान विद्युत् है, उसे जानकर पृथिवी को सब ओर से धारण करे अर्थात् भूगर्भविद्या को जानकर पृथिवी आदि से उपयोग ग्रहण करे॥ ११। १॥

प्रजापतिः। **सविता**=**योगं तत्त्वविद्यां च जिज्ञासुः**॥ शंकुमती गायत्री। षड्जः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का फिर उपदेश किया है॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या॥ २॥

पदार्थः—(**युक्तेन**) कृतयोगाभ्यासेन (**मनसा**) विज्ञानेन (**वयम्**) योगिनः (**देवस्य**) सर्वद्योतकस्य (**सवितुः**) अखिलजगदुत्पादकस्य जगदीश्वरस्य (**सवे**) जगदाख्येऽस्मिन्नैश्वर्ये (**स्वर्ग्याय**) स्वः=सुखं गच्छति येन तद्भावाय (**शक्त्या**) सामर्थ्येन॥ २॥

अन्वयः—हे योगं तत्त्वविद्यां च जिज्ञासवो मनुष्या यथा वयं युक्तेन मनसा शक्त्या च देवस्य सवितुः सवे स्वर्ग्याय ज्योतिराभरेम तथा यूयमप्याभरत ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे योगं तत्त्वविद्यां च जिज्ञासवो मनुष्याः ! यथा वयं** योगिनः **युक्तेन** कृतयोगाऽभ्यासेन **मनसा** विज्ञानेन **शक्त्या** सामर्थ्येन **च देवस्य** सर्वद्योतकस्य **सवितुः** अखिलजगदुत्पादकस्य जगदीश्वरस्य **सवे** जगदाख्येऽस्मिन्नैश्वर्य्ये **स्वर्ग्याय** स्वः=सुखं गच्छति येन तद्भावाय **ज्योतिराभरेम, तथा यूयमप्याभरत** ॥ २ ॥

भाषार्थ—हे योग और पदार्थ विद्या के जिज्ञासु मनुष्यो ! जैसे (वयम्) हम योगी लोग (युक्तेन) योगाभ्यास से युक्त (मनसा) विज्ञानमय मनसे और (शक्त्या) अपने सामर्थ्य से (देवस्य) सबके प्रकाशक (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर के (सवे) जगत् में (स्वर्ग्याय) सुख के साधनों की प्राप्ति के लिये (ज्योतिः) आत्मप्रकाश को (आभरेम) धारण करते हैं, वैसे तुम लोग भी धारण करो ॥ ११ । २ ॥

[युक्तनेन मनसा शक्त्या च देवस्य सवितुः सवे]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यदि मनुष्याः परमेश्वरस्य सृष्टौ समाहिताः सन्तो योगं तत्त्वविद्यां च यथाशक्ति सेवेरन्,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ यदि मनुष्य—परमेश्वर की सृष्टि में समाधिस्थ होकर योग और तत्त्वविद्या का यथाशक्ति सेवन करें, और—

[स्वर्ग्याय ज्योतिराभरेम]

ते प्रकाशितात्मनः सन्तः योगं पदार्थविज्ञानं चाभ्यस्येयुस्तर्हि—सिद्धीः कथं न प्राप्नुयुः ॥ ११ । २ ॥

वे आत्मप्रकाश से युक्त होकर योग और पदार्थ विज्ञान का अभ्यास करें, तो सिद्धियों को कैसे न प्राप्त हों ॥ ११ । २ ॥

भा० पदार्थः—युक्तेन=योगेन । मनसा=तत्त्वविद्यया । शक्त्या=यथाशक्ति । सवितुः=परमेश्वरस्य । सवे=सृष्टौ ।

अन्यत्र व्याख्यात—सब मनुष्य इस प्रकार की इच्छा करें कि (**वयम्**) हम लोग (**स्वर्ग्याय**) मोक्ष-सुख के लिए (**शक्त्या**) यथायोग्य सामर्थ्य के बल से (**देवस्य**) परमेश्वर की सृष्टि में उपासना योग करके अपने आत्मा को शुद्ध करें कि जिससे (**युक्तेन मनसा**) अपने शुद्ध मन से परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द को प्राप्त हों (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय**) ॥

भाष्यसार—**१. योग और तत्त्वविद्या**—सबके प्रकाशक, सकल जगत् के उत्पादक जगदीश्वर की सृष्टि में जैसे योगी लोग योगाभ्यास से युक्त मन से समाधिस्थ होकर योग का और पदार्थविद्या का सेवन करते हैं और सब सुखों के साधनभूत आत्मज्योति को धारण करते हैं, वैसे योग और तत्त्वविद्या के जिज्ञासु लोग भी आचरण करें तो सिद्धि को क्यों न प्राप्त होवें ॥ ११ । २ ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त हैं, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि योगी जनों के समान योग जिज्ञासु भी योगाभ्यास और पदार्थविद्या को प्राप्त करें ॥ ११ । २ ॥

प्रजापतिः । **सविता**=योगपदार्थज्ञानस्य प्रसविता (उपदेशकः) । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगाभ्यास और भूगर्भविद्या का फिर उपदेश किया है ॥

युक्त्वाय॑ सवि॒ता दे॒वान्त्स्व॑र्य॒तो धि॒या दिव॑म् । बृ॒हज्ज्यो॑तिः करिष्य॒तः स॑वि॒ता प्रसु॑वाति॒ तान् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**युक्त्वाय**) युक्तं कृत्वा (**सविता**) योगपदार्थज्ञानस्य प्रसविता (**देवान्**) दिव्यान् गुणान् (**स्वः**) सुखस्य (**यतः**) प्रापकान् (**धिया**) प्रज्ञया (**दिवम्**) विद्याप्रकाशम् (**बृहत्**) महत् (**ज्योतिः**) विज्ञानम् (**करिष्यतः**) ये करिष्यन्ति तान् (**सविता**) प्रेरकः (**प्र**) (**सुवाति**) उत्पादयेत् (**तान्**) ॥ ३ ॥

अन्वयः—यान् सविता परमात्मनि मनो युक्त्वाय धिया दिवं स्वर्यतो बृहज्ज्योतिः करिष्यतो देवान् प्रसुवाति तानन्योऽपि सविता प्रसुवेत् ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**यान् सविता** योगपदार्थज्ञानस्य प्रसविता **परमात्मनि मनो युक्त्वाय** युक्तं कृत्वा **धिया** प्रज्ञया **दिवं** विद्याप्रकाशं **स्वः** सुखस्य **यतः** प्रापकान् **बृहत्** महत् **ज्योतिः** विज्ञानं **करिष्यतः** ये करिष्यन्ति तान् **देवान्** दिव्यान् गुणान् **प्र+सुवाति** उत्पादयेत्, **तान् अन्योऽपि सविता** प्रेरकः **प्रसुवेत्** ॥ ३ ॥

भाषार्थ—(सविता) योग और पदार्थज्ञान को उत्पन्न करने वाला पुरुष परमात्मा में मन को (युक्त्वाय) युक्त करके (धिया) बुद्धि से (दिवम्) विद्या-प्रकाश को तथा (स्वः) सुख के (यतः) प्राप्त कराने हारे, (बृहत्) महान् (ज्योतिः) विज्ञान को (करिष्यतः) उत्पन्न करने वाले (देवान्) जिन दिव्य गुणों को (प्र+सुवाति) उत्पन्न करता है; उन दिव्य गुणों को अन्य जन भी (सविता) प्रेरणावान् होकर (प्रसुवेत्) उत्पन्न करे ॥ ११ । ३ ॥

[यान् परमात्मनि मनो युक्त्वाय धिया······देवान् प्रसुवाति]

भावार्थः—ये योगपदार्थविद्ये अभ्यस्यन्ति तेऽविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् जनितुं शक्नुवन्ति ।

भावार्थ—जो लोग योग और पदार्थविद्या का अभ्यास करते हैं वे अविद्या आदि क्लेशों के निवारक शुद्ध गुणों को उत्पन्न कर सकते हैं ।

[अन्योऽपिसविता प्रसुवेत्]

य उपदेशकाद् योगं तत्त्वज्ञानं न प्राप्यैवमभ्यस्येत् सोऽप्येतान् प्राप्नुयात् ॥ ३ ॥

जो पुरुष उपदेशक से योग और तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके इस प्रकार अभ्यास करे वह भी इन दिव्य गुणों को प्राप्त कर सकता है ॥ ११ । ३ ॥

भा० पदार्थः—देवान्=अविद्यादिक्लेशानां निवारकान् शुद्धान् गुणान् । प्रसुवाति=जनितुं शक्नोति ।

अन्यत्र व्याख्यात—इसी प्रकार वह परमेश्वर देव भी (**देवान्**) उपासकों को (**स्वर्यतो धिया दिवम्**) अत्यन्त सुख को दे के (**सविता**) उनकी बुद्धि के साथ अपने आनन्दस्वरूप प्रकाश को करता है, तथा (**युक्त्वाय**) वही अन्तर्यामी परमात्मा अपनी कृपा से उनको युक्त करके उनके आत्माओं में (**बृहज्ज्योतिः**) बड़े प्रकाश को प्रकट करता है, और (**सविता**) जो सब जगत् का पिता है, वही (**प्रसुवा०**) उन उपासकों को ज्ञान और आनन्द आदि से परिपूर्ण कर देता है, परन्तु (**करिष्यतः**) जो मनुष्य सत्य प्रेम भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष-

सुख देके सदा के लिये आनन्द-युक्त कर देगा ॥(**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय**) ॥

भाष्यसार—१. योग और पदार्थविद्या—योग और पदार्थज्ञान को अपनी आत्मा में उत्पन्न करने का अभिलाषी व्यक्ति परमात्मा में अपने मनको लगाकर, बुद्धि के द्वारा विद्या के प्रकाश को, सुख को प्राप्त कराने हारे महान् पदार्थ विज्ञान के उत्पादक एवं अविद्या आदि क्लेशों के निवारक दिव्य (**शुद्ध**) गुणों को अपनी आत्मा में स्वयं उत्पन्न कर सकता है। और जो कोई विद्वान् उपदेशक से योग और पदार्थज्ञान को प्राप्त करके इसका अभ्यास करता रहे वह भी इन दिव्य गुणों को प्राप्त कर सकता है ॥

२. **पाँच क्लेश**—अविद्या। अस्मिता। राग। द्वेष। अभिनिवेश। इनकी व्याख्या योगदर्शन में देख लेवें ॥ ११ । ३ ॥

प्रजापतिः। **सविता**=ईश्वरः॥ जगती। निषादः॥

योगाभ्यासं कृत्वा मनुष्याः किं कुर्य्युरित्याह॥

योगाभ्यास करके मनुष्य क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है॥

युञ्जते मनऽ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ ४॥

पदार्थः—(**युञ्जते**) परमात्मनि तत्त्वविज्ञाने वा समादधते (**मनः**) चित्तम् (**उत**) अपि (**युञ्जते**) (**धियः**) बुद्धीः (**विप्राः**) मेधाविनः (**विप्रस्य**) सर्वशास्त्रविदो मेधाविनः (**बृहतः**) महतो गुणान् प्राप्तस्य (**विपश्चितः**) अखिलविद्यायुक्तस्याप्तस्येव वर्त्तमानस्य (**वि**) (**होत्राः**) दातुं ग्रहीतुं शीलाः (**दधे**) (**वयुनावित्**) यो वयुनानि=प्रज्ञानानि वेत्ति सः। **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** (**एकः**) असहायः (**इत्**) एव (**मही**) महती (**देवस्य**) सर्वप्रकाशस्य (**सवितुः**) सर्वस्य जगतः प्रसवितुरीश्वरस्य (**परिष्टुतिः**) परितः=सर्वतः स्तुवन्ति यया सा॥ ४॥

प्रमाणार्थ—(**वयुनावित्**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' [अ० ६। ४। १३५] इस से दीर्घ है॥ ११। ४॥

अन्वयः—ये होत्रा विप्रा यस्य बृहतो विपश्चित इव वर्तमानस्य विप्रस्य सकाशात्प्राप्तविद्याः सन्तो या सवितुर्देवस्य जगदीश्वरस्य मही परिष्टुतिरस्ति तत्र यथा मनो युञ्जते धियो युञ्जते तथा वयुनाविदेकोऽहं विदधे॥ ४॥

सपदार्थान्वयः—**ये होत्राः** दातुं ग्रहीतुं शीला **विप्राः** मेधाविनः, **यस्य बृहतः** महतो गुणान् प्राप्तस्य **विपश्चित** अखिलविद्यायुक्तस्याऽऽप्तस्य **इव वर्तमानस्य विप्रस्य** सर्वशास्त्रविदो मेधाविनः **सकाशात् प्राप्तविद्याः सन्तो, या सवितुः** सर्वस्य जगतः प्रसवितुरीश्वरस्य **देवस्य=जगदीश्वरस्य** सर्वप्रकाशस्य **मही** महती **परिष्टुतिः** परितः=सर्वतः स्तुवन्ति यया सा, **अस्ति, तत्र यथा मनः** चित्तं **युञ्जते** परमात्मनि तत्त्वज्ञाने वा समादधते, [**उत**]

भाषार्थ—जो (होत्राः) दान देने वाले और लेने वाले (विप्राः) मेधावी लोग—जिस (बृहतः) महान् गुणों को प्राप्त (विपश्चितः) सकल विद्याओं से युक्त आप्त विद्वान् के समान, (विप्रस्य) सब शास्त्रों के वेत्ता मेधावी विद्वान् से विद्या को प्राप्त करके—जो (सवितुः) सब जगत् के उत्पादक (देवस्य) सबके प्रकाशक जगदीश्वर की (मही) महान् (परिष्टुतिः) स्तुति एवं उपासना है, वहाँ जैसे (मनः) चित्त को (युञ्जते) परमात्मा वा

अपि **धियः** बुद्धीः **युञ्जते, तथा वयुनावित्** यो वयुनानि=प्रज्ञानानि वेत्ति सः, **एकः** असहायः [**इत्**] एव **अहं वि+दधे** ॥ ४ ॥

तत्त्वज्ञान में समाधिस्थ करते हैं, [उत] और (धियः) बुद्धियों को (युञ्जते) युक्त करते हैं, वैसे—(वयुनावित्) तत्त्वज्ञान का अभिलाषी (एकः) अकेला [इत्] ही मैं (वि+दधे) मन और बुद्धि को युक्त करता हूँ ॥ ११ । ४ ॥

[ये होत्रा...... या...... देवस्य परिष्टुतिरस्ति तत्र...... मनो युञ्जते, उत धियो युञ्जते]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये युक्ताहारविहारा एकान्ते देशे परमात्मानं युञ्जते, ते तत्त्व विज्ञानं प्राप्य, नित्यं सुखं यान्ति ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो युक्त आहार-विहार वाले योगी एकान्त देश में परमात्मा में समाधिस्थ होते हैं, वे तत्त्वज्ञान को प्राप्त करके नित्य-सुख को प्राप्त करते हैं ॥ ११ । ४ ॥

भा० पदार्थः—होत्राः=युक्ताहारविहाराः ।

भाष्यसार—१. मनुष्य योगाभ्यास करके क्या करें—युक्त आहार-विहार वाले एवं विद्या आदि का दान देने और लेने वाले मेधावी विद्वान् लोग, महान् गुणों को प्राप्त, अखिल विद्याओं से युक्त, सब शास्त्रों के वेत्ता, आप्त, मेधावी विद्वान् से विद्या को प्राप्त करते हैं । और सकल जगत् के उत्पादक, सबके प्रकाशक जगदीश्वर की महान् स्तुति एवं उपासना में तथा पदार्थ विज्ञान में मन और बुद्धि को लगाते हैं । वैसे पदार्थ विज्ञान की कामना करने वाले मनुष्य युक्त आहार-विहार वाले होकर एकान्त देश में परमात्मा में समाधिस्थ होकर अर्थात् योगाभ्यास करके पदार्थ विज्ञान और नित्य-सुख को प्राप्त करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त हैं, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि मेधावी विद्वानों के समान पदार्थ-विज्ञान की कामना करने वाला एक व्यक्ति योगाभ्यास करके तत्त्वज्ञान और नित्य सुख को प्राप्त करे ॥ ११ । ४ ॥

प्रजापतिः । **सविता=ईश्वरः** ॥ भुरिक्पङ्क्तिः । धैवतः ॥

मनुष्याः परब्रह्मप्राप्तिं कथं कुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति कैसे करें, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**युजे**) आत्मनि समादधे (**वाम्**) युवयोर्योगानुष्ठात्रुपदेशकयोः सकाशाच्छ्रुतवन्तौ (**ब्रह्म**) बृहद्व्यापकम् (**पूर्व्यम्**) पूर्वैर्योगिभिः प्रत्यक्षीकृतम् (**नमोभिः**) सत्कारैः (**वि**) विविधेऽर्थे (**श्लोकः**) सत्यवाक्संयुक्तः (**एतु**) प्राप्नोतु (**पथ्येव**) यथा पथि साध्वी गतिः (**सूरेः**) विदुषः (**शृण्वन्तु**) (**विश्वे**) सर्वे (**अमृतस्य**) अविनाशिनो जगदीश्वरस्य (**पुत्राः**) सुसन्ताना आज्ञापालका इव (**आ**) (**ये**) (**धामानि**) स्थानानि (**दिव्यानि**) दिवि=सुखप्रकाशे भवानि (**तस्थुः**) आस्थितवन्तः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे योगजिज्ञासवो जनाः ! भवन्तो यथा श्लोकोऽहं नमोभिर्यत्पूर्व्यं ब्रह्म युजे तद्वां सूरेः पथ्येव व्येतु । यथा ये विश्वे पुत्राः प्राप्तमोक्षा विद्वांसोऽमृतस्य योगेन दिव्यानि धामान्यातस्थुस्तेभ्यः एतां योगविद्यां शृण्वन्तु ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **योगजिज्ञासवो जनाः ! भवन्तोयथा श्लोकः** सत्यवाक्संयुक्तः **ग्रहं नमोभिः** सत्कारैः **यत् पूर्व्यं** पूर्वैर्योगिभिः प्रत्यक्षीकृतं **ब्रह्म** बृहद् व्यापकं **युजे** आत्मनि समादधे, **तद् वां** युवयोर्योगाऽनुष्ठातृपदेशकयोः सकाशाच्छ्रुतवन्तौ **सूरेः** विदुषः **पथ्येव** यथा पथि साध्वी गतिः, **वि+एतु** विविधं प्राप्नोतु ।

भाषार्थ—हे योग के जिज्ञासु मनुष्यो ! जैसे (श्लोकः) सत्यभाषण युक्त मैं योगी (नमोभिः) स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप सत्कार से जिस (पूर्व्यम्) पूर्व योगी जनों से प्रत्यक्ष किये हुये (ब्रह्म) सर्वव्यापक ब्रह्म को (युजे) आत्मा में साक्षात् करता हूँ; उसे वह (वाम्) योगी और योग-उपदेशकों से योग विद्या के श्रोताओं को तथा (सूरेः) विद्वानों को (पथ्येव) पथ में उत्तम गति के समान (वि+एतु) प्राप्त होवे ।

यथा [ये] विश्वे सर्वे **पुत्राः**=**प्राप्तमोक्षा विद्वांसः** सुसन्ताना आज्ञापालका वा **अमृतस्य** अविनाशिनो जगदीश्वरस्य **योगेन दिव्यानि** दिवि=सुप्रकाशे भवानि **धामानि** स्थानानि **आ+तस्थुः** आस्थितवन्तः **तेभ्य एतां योगविद्यां शृण्वन्तु** ॥५॥

जैसे—जो ये विश्वे) सब (पुत्राः) मोक्ष को प्राप्त किये हुये आज्ञापालक उत्तम सन्तान (अमृतस्य) अविनाशी जगदीश्वर के योग से (दिव्यानि) प्रकाशमान (धामानि) स्थानों में (आ+तस्थुः) विराजमान हैं ; उनसे आप लोग इस योगविद्या का (शृण्वन्तु) श्रवण करो ॥ ११ । ५ ॥

[(ये) विश्वे **पुत्राः=प्राप्तमोक्षा विद्वांसोऽमृतस्य योगेन दिव्यानि धामानि आतस्थुस्तेभ्य एतां योगविद्यां शृण्वन्तु**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । योगं जिज्ञासुभिराप्ता योगारूढा विद्वांसः संगन्तव्याः । तत्संगेन योगविधिं विज्ञाय ब्रह्माभ्यसनीयम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ योग-जिज्ञासु लोग, योगारूढ आप्त-विद्वानों का संग करें । उनके संग से योग की विधि को जान कर ब्रह्म का साक्षात्कार करें ।

[सूरेः पथ्येव वि+एतु]

यथा विद्वत्प्रकाशितो धर्ममार्गः सर्वान् सुखेन प्राप्नोति, तथैव कृतयोगाभ्यासानां सकाशाद् योगविधिः सहजतया प्राप्नोति ।

जैसे—विद्वानों के द्वारा प्रकाशित धर्म का मार्ग सबको सुख से प्राप्त हो जाता है, वैसे ही योगी जनों से योग की विधि सरलता से प्राप्त हो जाती है ।

[अहं···पूर्व्यं ब्रह्म युजे]

नहि कश्चिदेतत्संगमकृत्वा ब्रह्माभ्यासेन विनाऽऽत्मा पवित्रो भूत्वा सर्वं सुखमश्नुते ।

कोई आत्मा विद्वानों का संग तथा योगाभ्यास के विना पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं करता ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—योगविधिना सहैव सर्वे परं ब्रह्मोपासताम् ॥ ११ । ५ ॥

इसलिये—सब योगविधि से पर-ब्रह्म की उपासना करें ॥ ११ । ५ ॥

भा० पदार्थः—पुत्राः=आप्ता योगारूढा विद्वांसः । पथ्येय=यथा धर्ममार्गः । वि+एतु=सुखेन प्राप्नोति ।

अन्यत्र व्याख्यात--उपासना का उपदेश देने वाले और ग्रहण करने वाले दोनों के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि—जब तुम (**पूर्व्यम्**) सनातन ब्रह्म को (**नमोभिः**) सत्य प्रेम-भाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कारादि रीति से उपासना करोगे, तब मैं तुमको आशीर्वाद देऊँगा कि (**श्लोकः**) सत्यकीर्त्ति (**वाम्**) तुम दोनों को (**एतु**) प्राप्त हो, किस के समान ? (**पथ्येव सूरेः**) जैसे परम विद्वान् को धर्म-मार्ग यथावत् प्राप्त होता है, इसी प्रकार तुमको सत्य सेवा से सत्यकीर्ति प्राप्त हो, फिर भी मैं सबको उपदेश करता हूँ कि (**अमृतस्य पुत्राः**) हे मोक्ष-मार्ग के पालन करने वाले मनुष्यो ! (**शृण्वन्तु विश्वे**) तुम सब लोग सुनो, कि (**आये धामानि०**) जो दिव्य लोकों अर्थात् मोक्ष-सुखों को (**आतस्थुः**) पूर्व प्राप्त हो चुके हैं, उसी उपासना-योग से तुम लोग भी उन सुखों को प्राप्त होओ; इसमें सन्देह मत करो, इस लिए (**युजे**) मैं तुम को उपासना-योग में युक्त करता हूँ। (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय**) ।।

भाष्यसार—१. **मनुष्य ब्रह्म की प्राप्ति कैसे करें**—जैसे सत्यभाषण से युक्त, योगी स्तुति, प्रार्थना, उपासना रूप सत्कारों से पूर्व योगी-जनों से प्रत्यक्ष किये हुये सर्वव्यापक ब्रह्म को आत्मा में साक्षात् करता है, वैसे योग-जिज्ञासु लोग योगी तथा-योग-उपदेशकों से तथा योगारूढ आप्त विद्वानों से योग विधि को जान कर योग का अभ्यास करें। जैसे विद्वानों के प्रकाशित धर्म का मार्ग सबको सुख से प्राप्त हो जाता है वैसे योगाभ्यास करने वाले योगी-जनों से योग की विधि सरलता से प्राप्त हो सकती है। उनसे योग की विधि सीख कर ब्रह्म को प्राप्त करें।

जीवनकाल में ही जिन्होंने मोक्ष को प्राप्त कर लिया है और जो अमृत=अविनाशी जगदीश्वर के योग से प्रकाशमय स्थानों में विराजमान रहते हैं उन जीवन्मुक्त विद्वानों से योग विद्या का श्रवण किया करें। इन विद्वानों का संग किये विना तथा ब्रह्माभ्यास=योगाभ्यास के बिना कोई भी आत्मा पवित्र होकर सब सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये सब मनुष्य योगविधि से पर-ब्रह्म की उपासना करें ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'इव' शब्द उपमावाचक है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे विद्वानों से प्रकाशित धर्म के मार्ग से सबको सुख प्राप्त हो जाता है वैसे योगियों से योग की विधि सरलता से प्राप्त हो जाती है ।। ११ । ५ ।।

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः ।। निचृदार्षी जगती । निषादः ।।

मनुष्याः कस्योपासनं कुर्य्युरित्याह ।।

मनुष्य किस की उपासना करें, इस विषय का उपदेश किया है ।।

यस्य॑ प्र॒याण॒मन्व॒न्य ऽ इ॒द्य॒युर्दे॒वा दे॒वस्य॑ म॑हि॒मान॒मोज॑सा ।
यः पार्थि॑वानि विम॒मे स ऽ एत॑शो॒ रजा॑ᳬसि दे॒वः स॑वि॒ता म॑हित्व॒ना ।। ६ ।।

पदार्थः—(**यस्य**) परमेश्वरस्य (**प्रयाणम्**) प्रयान्ति सर्वाणि सुखानि येन तत्प्रकृष्टं प्रागम् (**अनु**) पश्चात् (**अन्ये**) जीवादयः (**इत्**) एव (**ययुः**) प्राप्नुयुः (**देवाः**) विद्वांसः (**देवस्य**) सर्वसुखप्रदातुः (**महिमानम्**) स्तुतिविषयम् (**ओजसा**) पराक्रमेण (**यः**) परमेश्वरः (**पार्थिवानि**) पृथिव्यां विदितानि (**विममे**) विमानयानवन्निर्मिमीते (**सः**) (**एतशः**) सर्वं जगदितः=स्वव्याप्त्या प्राप्तः । इणस्तशन्तसुनौ ।। उ० ३ । १४७ ।। (**रजांसि**) सर्वान् लोकान् (**देवः**) दिव्यस्वरूपः (**सविता**) सर्वस्य जगतो निर्माता (**महित्वना**) स्वमहिम्ना । अत्र बाहुलकादौणादिक इत्वनिः प्रत्ययः ।। ६ ।।

प्रमाणार्थ—(एतशः) यह पद 'इणस्तशसुनौ' उणा० (३ । १४७) इस सूत्र से 'इण्' धातु से 'तश' प्रत्यय करने पर सिद्ध है। (**महित्वना**) यहां बहुल करके उणादि का 'इत्वनि' प्रत्यय है ॥ ११ । ६ ॥

अन्वयः—हे योगिनः ! युष्माभिर्यस्य देवस्य महिमानं प्रयाणमन्वन्ये देवा ययुः । य एतशः सविता देवो भगवान् महित्वनौजसापार्थिवानी रजांसि विमम स इदेव सततमुपास्यो मन्तव्यः ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे योगिनः ! युष्माभिर्यस्य परमेश्वरस्य **देवस्य** सर्वसुखप्रदातुः **महिमानं** स्तुतिविषयं **प्रयाणं** प्रयान्ति सर्वाणि सुखानि येन तत्प्रकृष्टं प्राणम् **अनु** पश्चाद् **अन्ये** जीवादयः **देवाः** विद्वांसः **ययुः** प्राप्नुयुः, [**यः**] परमेश्वरः **एतशः** सर्वं जगदितः=स्वव्याप्त्या प्राप्तः **सविता** सर्वस्य जगतो निर्माता **देवः=भगवान्** दिव्यस्वरूपः **महित्वना** स्वमहिम्ना **ओजसा** पराक्रमेण **पार्थिवानि** पृथिव्यां विदितानि **रजांसि** सर्वान् लोकान् [**वि+ममे**] विमानयानवन्निर्मिमीते **सः इत्=एव सततमुपास्यो मन्तव्यः** ॥ ६ ॥

भाषार्थ—हे योगी जनो ! तुम लोग—(यस्य) जिस (देवस्य) सब सुखों के दाता परमेश्वर की (महिमानम्) स्तुति को, (प्रयाणम्) सब सुखों के प्राप्ति के साधन श्रेष्ठ प्राण को (अनु) कर्म के पश्चात् (अन्ये) जीव आदि (देवाः) विद्वान् लोग (ययुः) प्राप्त करते हैं। और [यः] जो परमेश्वर (एतशः) अपनी व्याप्ति से सब जगत् में प्राप्त, (सविता) सब जगत् का निर्माता, (देवः) दिव्यस्वरूप भगवान् है, वह (महित्वना) अपनी महिमा से, (ओजसा) पराक्रम से (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) सब लोकों का [वि + ममे] विमान आदि यानों के समान निर्माण करता है, वह (इत्) ही सदा उपासनीय है ॥ ११ । ६ ॥

[(**यः**) **एतशः सविता देवो भगवान् महित्वनौजसा पार्थिवानि रजांसि [वि+ममे] स इत्=एव सततमुपास्यो मन्तव्यः**]

भावार्थः—ये विद्वांसः सर्वस्य जगतोऽन्तरिक्षेऽनन्तबलेन धर्त्तारं, निर्मातारं, सुखप्रदं, शुद्धं, सर्वशक्तिमन्तं, सर्वान्तर्यामिणमीश्वरमुपासते; त एव सुखयन्ति, नेतरे ॥ ११ । ६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान्—सब जगत् को अन्तरिक्ष में अनन्त-बल से धारण करने वाले, जगत् के निर्माता, सुखों के दाता, शुद्धस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी ईश्वर की उपासना करते हैं— वे ही सुख पाते हैं; दूसरे नहीं ॥ ११ । ६ ॥

भा० पदार्थः—ओजसा=अनन्तबलेन । एतशः=सर्वान्तर्यामी । देवः=सुखप्रदः, शुद्धः ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्य किसकी उपासना करें**—विद्वान् लोग शुभ कर्मों के अनुष्ठान के पश्चात् सब सुखों के दाता परमेश्वर की कृपा से स्तुति को तथा सब सुखों के साधन श्रेष्ठ प्राण को प्राप्त करते हैं। जो परमेश्वर अपनी व्याप्ति से सब जगत् में प्राप्त है अर्थात् सर्वान्तर्यामी है; सब जगत् का निर्माता है, शुद्धस्वरूप है, सर्वशक्तिमान् है, अपनी अनन्त महिमा और पराक्रम से विमान आदि यानों के समान सब लोकों का रचयिता है। योगी जन उसी परमेश्वर की सदा उपासना करें। जो विद्वान् लोग परमेश्वर की ही उपासना करते हैं, वे ही सुखी रहते हैं; दूसरे नहीं ॥

२. **ईश्वर के नाम**—एतशः । सविता । देव ॥ ११ । ६ ॥

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः ॥ आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ किमर्थं परमेश्वर उपास्यः प्रार्थनीयश्चास्तीत्याह ॥

अब किसलिये परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना करनी चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य ।
दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः कै॑त॒पूः केत॑न्नः पुनातु वा॒चस्प॑ति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**देव**) दिव्य विज्ञानप्रद (**सवितः**) सर्वसिद्ध्युत्पादक (**प्र**) (**सुव**) उत्पादय (**यज्ञम्**) सुखानां संगमकं व्यवहारम् (**प्र**) (**सुव**) (**यज्ञपतिम्**) एतस्य यज्ञस्य पालकम् (**भगाय**) अखिलैश्वर्य्याय (**दिव्यः**) दिवि=शुद्धगुणकर्मसु साधुः (**गन्धर्वः**) यो गां=पृथिवीं धरति सः (**केतपूः**) यः केतेन=विज्ञानेन पुनाति (**केतम्**) विज्ञानम् (**नः**) अस्माकम् (**पुनातु**) पवित्रीकरोतु (**वाचः**) सत्यविद्यान्वितायाः वेदवाण्याः (**पतिः**) प्रचारेण रक्षकः (**वाचम्**) वाणीम् (**नः**) अस्माकम् (**स्वदतु**) स्वदतां=स्वादिष्ठां करोतु **अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् ॥ ७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**स्वदतु**) यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥ ११ । ७ ॥

अन्वयः—हे देव सत्ययोगविद्ययोपासनीय सवितर्भगवन् ! त्वं नो भगाय यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं प्रसुव । गन्धर्वो दिव्यः केतपूर्भवान्नोस्माकं केतं पुनातु वाचस्पतिर्भवान्नो वाचं स्वदतु ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देव**=**सत्ययोगविद्ययोपासनीय** दिव्य विज्ञानप्रद ! **सवितः**=**भगवन्** ! सर्वसिद्ध्युत्पादक ! **त्वं नः** अस्माकं **भगाय** अखिलैश्वर्य्याय **यज्ञं** सुखानां संगमकं व्यवहारं **प्र**+**सुव** उत्पादय, **यज्ञपतिम्** एतस्य यज्ञस्य पालकं **प्र**+**सुव** उत्पादय ।

गन्धर्वः यो गां=पृथिवीं धरति सः, **दिव्यः** दिवि=शुद्धगुणकर्मसु साधुः, **केतपूः** यः केतेन=विज्ञानेन पुनाति, **भवान् नः**=**अस्माकं केतं** विज्ञानं **पुनातु** पवित्रीकरोतु ।

वाचः सत्यविद्याऽन्वितायाः वेदवाण्याः **पतिः** प्रचारेण रक्षकः **भवान् नः** अस्माकं **वाचं** वाणीं **स्वदतु** स्वदतां=स्वादिष्ठां करोतु ॥ ७ ॥

भाषार्थ—हे (देव) सत्य योगविद्या के द्वारा उपासना के योग्य, दिव्य विज्ञान के दाता (सवितः) सब सिद्धियों के उत्पादक भगवन् ! आप (नः) हमारे (भगाय) अखिल ऐश्वर्य के लिये (यज्ञम्) सुखदायक व्यवहार को (प्र+सुव) उत्पन्न कीजिये, (यज्ञपतिम्) इस यज्ञ के पालक को (प्र+सुव) उत्पन्न कीजिये ।

आप—(गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाले, (दिव्यः) शुद्ध गुण, कर्मों में सर्वश्रेष्ठ, (केतपूः) विज्ञान से पवित्र करने वाले हो, सो (नः) हमारे (केतम्) विज्ञान को (पुनातु) पवित्र कीजिये ।

आप—(वाचः) सत्यविद्या से युक्त वेदवाणी के (पतिः) प्रचार से रक्षक हो । सो (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) स्वादिष्ठ=मधुर कीजिये ।

[हे देव !······सवितः ! भगवन् ! त्वं नो भगाय यज्ञं प्रसुव]

भावार्थः—ये सकलैश्वर्य्योपपन्नं शुद्धं ब्रह्मोपासते, योगप्राप्तये प्रार्थयन्ते, तेऽखिलैश्वर्य्यं

भावार्थ—जो सकल ऐश्वर्य से युक्त, शुद्ध ब्रह्म की उपासना करते हैं, योग की प्राप्ति के

शुद्धात्मानं कर्त्तुं योगं च प्राप्तुं शक्नुवन्ति । लिये प्रार्थना करते हैं वे अखिल ऐश्वर्य, आत्मा शुद्धि, और योग को प्राप्त कर सकते हैं ।

[वाचस्पतिर्भवान् नो वाचं स्वदतु]

ये जगदीश्वरवाग्वत् स्ववाचं शुन्धन्ति ते सत्यवाचः सन्तः सर्वक्रियाफलान्याप्नुवन्ति ॥ ७ ॥

जो जगदीश्वर की वेदवाणी के समान अपनी वाणी को शुद्ध कर लेते हैं वे सत्यवादी होकर सब क्रियाओं के फलों को प्राप्त करते हैं ॥ ११ । ७ ॥

भाष्यसार—१. ईश्वरप्रार्थना—हे सत्य योगविद्या से उपासना करने योग्य, दिव्य विज्ञान के दाता, सकल सिद्धियों के उत्पादक, **भगवन् !** आप हमारे अखिल ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये सुखद व्यवहार को उत्पन्न कीजिये, इस यज्ञ के पति=पालक को उत्पन्न कीजिये ।

आप पृथिवी को धारण करने वाले हो । शुद्ध गुण, कर्मों में सर्वश्रेष्ठ हो । अपने विज्ञान से पवित्र करने वाले हो । सो हमारे विज्ञान को पवित्र कीजिये । हमें अखिल ऐश्वर्य प्रदान कीजिये । आत्मा को शुद्ध कीजिये । योग को प्राप्त कराइये ।

आप सत्यविद्या से युक्त वेदवाणी के प्रचार से हमारे रक्षक हो । सो हमारी वाणी को अपनी वेदवाणी के समान शुद्ध कीजिये । हमारी वाणी को स्वादिष्ठ=मधुर बनाइये ।

२. परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना किस लिये करें—जो लोग सकल ऐश्वर्य से सम्पन्न, शुद्ध ब्रह्म की उपासना और योग आदि की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते हैं, वे ऐश्वर्यवान् शुद्धात्मा योगी बन जाते हैं । जगदीश्वर की वेदवाणी के समान उनकी वाणी शुद्ध हो जाती है । उनके सब कर्म फलवान् होते हैं ॥

३. ईश्वर के नाम—देव । सविता । गन्धर्व । दिव्य । केतपू । वाचस्पति ॥ ११ । ७ ॥

विनियोग—'ओं देव सवितः प्रसुव०' इस मन्त्र से कुण्ड के चारों ओर जल सेचन करे (**संस्कार-विधि सीमान्तोन्नयन**) ॥ ●

प्रजापतिः । **सविता**=ईश्वरः । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना किस लिये करनी चाहिये, इसका फिर उपदेश किया है ॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् ।
ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) उक्तं वक्ष्यमाणं च (**नः**) अस्माकम् (**देव**) सत्यकामनाप्रद (**सवितः**) अन्तर्यामिरूपेण प्रेरक (**यज्ञम्**) विद्याधर्मसंगमयितारम् (**प्र**) (**नय**) प्रापय (**देवाव्यम्**) देवान्=दिव्यान् विदुषो गुणान् वाऽवन्ति येन स देवावीस्तम् । अत्रौणादिक ईप्रत्ययः (**सखिविदम्**) सखीन्=सुहृदो विदन्ति येन तम् (**सत्राजितम्**) सत्रा=सत्यं जयत्युत्कर्षति येन तम् (**धनजितम्**) धनं जयत्युत्कर्षति येन तम् (**स्वर्जितम्**) स्वः=सुखं जयत्युत्कर्षति येन तत् (**ऋचा**) ऋग्वेदेन (**स्तोमम्**) स्तूयते यस्तम् (**सम्**) (**अर्धय**) वर्धय (**गायत्रेण**) गायत्रीप्रभृति छन्दसैव (**रथन्तरम्**) रथैरमणीयैर्यानैस्तरन्ति येन तत् (**गायत्रवर्त्तनि**) गायत्रस्य वर्त्तनिर्मार्गो वर्त्तनं यस्मिन् तत् (**बृहत्**) महत् (**स्वाहा**) सत्यक्रियया वाचा वा ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(देवाव्यम्) यहाँ उणादि का 'ई' प्रत्यय है ॥ ११ । ८ ॥

अन्वयः—हे देव सवितर्जगदीश ! त्वं न इमं देवाव्यं सखिविदं सत्राजितं धनजितं स्वर्जितमृचा स्तोमं यज्ञं स्वाहा प्रणय गायत्रेण गायत्रवर्त्तनि बृहद्रथन्तरं च समर्धय ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव** सत्यकामनाप्रद ! **सवितः**=**जगदीश** ! अन्तर्यामिरूपेण प्रेरक ! **त्वं नः** अस्माकम् **इमम्** उक्तं वक्ष्यमाणं च **देवाव्यं** देवान्=दिव्यान् विदुषो गुणान् वाऽवन्ति येन स देवावीस्तम्, **सखिविदं** सखीन्=सुहृदो विदन्ति येन तम्, **सत्राजितं** सत्रा=सत्यं जयत्युत्कर्षति येन तम्, **धनजितं** धनं जयत्युत्कर्षति येन तम्, **स्वर्जितं** स्वः=सुखं जयत्युत्कर्षति येन तम्, **ऋचा** ऋग्वेदेन **स्तोमं** स्तूयते यस्तं **यज्ञं** विद्याधर्मसंगमयितारं **स्वाहा** सत्यक्रियया वाचा वा **प्र**+**णय** प्रापय । **गायत्रेण** गायत्रीप्रभृति छन्दसैव **गायत्रवर्त्तनि** गायत्रस्य वर्त्तनिः=मार्गो वर्त्तनं यस्मिन् तद् **बृहत्** महद् **रथन्तरं** रथैः=रमणीयैर्यानैस्तरन्ति येन तत् **च** **सम्**+**अर्धय** वर्धय ॥ ८ ॥

भाषार्थ—हे (देव) सत्यकामनाओं को पूर्ण करने वाले (सवितः) अन्तर्यामी रूप से आत्मा में प्रेरणा करने वाले जगदीश ! आप—(नः) हमारे (इमम्) इस (देवाव्यम्) विद्वानों वा दिव्यगुणों के रक्षक, (सखिविदम्) मित्रों को जानने वाले, (सत्राजितम्) सत्य को विजय कराने हारे, (धनजितम्) धन को उन्नत करने वाले, (स्वर्जितम्) सुख को बढ़ाने वाले, (ऋचा) ऋग्वेद से (स्तोमम्) स्तुति करने योग्य, (यज्ञम्) विद्या और धर्म से मेल कराने वाले यज्ञ को (स्वाहा) सत्याचरण और सत्य-भाषण से (प्रणय) प्रदान कीजिये । और—(गायत्रेण) गायत्री आदि छन्द के दृष्टान्त से (गायत्र-वर्त्तनि) गायत्री के समान मार्ग का अनुसरण करने वाले (बृहत्) महान् (रथन्तरम्) रमणीय यानों से प्राप्त करने योग्य इस यज्ञ को (सम्+अर्धय) बढ़ाइये ॥ ११ । ८ ॥

[हे देव ! सवितः ! त्वं······सखिविदं प्रणय, संवर्धय]

भावार्थः—ये जना ईर्ष्या द्वेषादिदोषान् विहायेश्वर इव सर्वैः सह सुहृद्भावमाचरन्ति ते संवर्धितुं शक्नुवन्ति ॥ ११ । ८ ॥

भावार्थ—जो लोग ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों को छोड़कर ईश्वर के समान सबके साथ मित्रता करते हैं, वे बढ़ सकते हैं ॥ ११ । ८ ॥

भा० पदार्थः—सखिविदम्=सुहृद्भावम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर-प्रार्थना**—हे सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले, अन्तर्यामी रूप से आत्मा में शुभ कर्मों की प्रेरणा करने वाले जगदीश ! आप हमें सत्याचरण और सत्य भाषण से यज्ञ को प्राप्त कराइये, और इस महान् यज्ञ को बढ़ाइये । जो यज्ञ विद्वानों और दिव्यगुणों का रक्षक है, मित्रों को जनाने वाला है अर्थात् सबके साथ मित्रता का आचरण सिखलाता है । सत्य को बढ़ाता है, धन को बढ़ाता है, सुख को बढ़ाता है, ऋग्वेद जिसकी स्तुति गाता है । यह यज्ञ, विद्या और धर्म से संयुक्त करने वाला है । गायत्री आदि छन्द इसी की महिमा को गा रहे हैं । इसी के मार्ग का निर्देश कर रहे हैं । यह यज्ञ महान् है । जहाँ यज्ञ हो वहाँ सब लोग रथों=रमणीय यानों में बैठ कर जायें और यज्ञ को बढ़ावें ।

२. **परमेश्वर की उपासना और प्रार्थना किसलिये करें**—जो लोग ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों को छोड़कर ईश्वर के समान यज्ञ आदि शुभ कार्यों में सबके साथ मित्रता का व्यवहार करते हैं वे वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥

३. यज्ञ के नाम—देवावी। सखिविद्। सत्राजित्। धनजित्। स्वर्जित्। स्तोम। बृहत्। रथन्तरम् ॥ ११। ८॥

प्रजापतिः। **सविता**=ईश्वरः ॥ भुरिगतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

मनुष्या भूमितत्त्वादिभ्यो विद्युतं स्वीकुर्य्युरित्याह ॥

मनुष्य भूमि आदि पदार्थों से बिजुली को ग्रहण करें, इस का उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सूर्यादिजगते प्रदीपकस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सर्वेषामैश्वर्य्यव्यवस्थां प्रति प्रेरकस्य (**प्रसवे**) निष्पन्नैश्वर्ये (**अश्विनोः**) प्राणोदानयोः (**बाहुभ्याम्**) बलाकर्षणाभ्याम् (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्र्या (**हस्ताभ्याम्**) धारणाकर्षणाभ्याम् (**आ**) (**ददे**) स्वीकरोमि (**गायत्रेण**) गायत्रीनिर्मितेनार्थेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिरङ्गारैस्तुल्यम् (**पृथिव्याः**) (**सधस्थात्**) सहस्थानात्तलात् (**अग्निम्**) विद्युदादिस्वरूपम् (**पुरीष्यम्**) पुरीषे=उदके साधुम्। **अत्र पृधातोरौणादिक ईषन् किच्च। पुरीषमित्युदकना० ॥ निघं० १। १२ ॥** (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिः=प्राणैस्तुल्यम् (**आ**) (**भर**) धर (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुभा निर्मितेनार्थेन (**छन्दसा**) स्वच्छन्देन (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरोभिरङ्गैस्तुल्यम् ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(**पुरीष्यम्**) 'पॄ' धातु से औणादिक 'ईषन्' प्रत्यय करने पर और इसके 'कित्' होने पर 'पुरीष' शब्द सिद्ध होता है। 'पुरीष' शब्द निघं० (१। १२) में जल-नामों में पढ़ा है ॥ ११। ९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! अहं यं त्वा देवस्य सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामंगिरस्वदाददे स त्वं गायत्रेण छन्दसा पृथिव्याः सधस्थादङ्गिरस्वत् त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वत्पुरीष्यमग्निमाभर ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्**। **अहं यं त्वा** त्वां **देवस्य** सूर्यादिजगतेः प्रदीपकस्य **सवितुः** सर्वेषामैश्वर्य्यव्यवस्थां प्रति प्रेरकस्य **प्रसवे** निष्पन्नैश्वर्ये **अश्विनोः** प्राणोदानयोः **बाहुभ्यां** बलाऽऽकर्षणाभ्यां **पूष्णः** पुष्टिकर्त्र्या **हस्ताभ्यां** धारणाऽऽकर्षणाभ्याम् **अङ्गिरस्वत्** अङ्गिरोभिरङ्गारैस्तुल्यम् **आ+ददे** स्वीकरोमि, स **त्वं गायत्रेण** गायत्रीनिर्मितेनार्थेन **छन्दसा पृथिव्याः सधस्थात्** सहस्थानात्तलात् **अङ्गिरस्वत्** अङ्गिरोभिः=प्राणैस्तुल्यं **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुभा निर्मितेनाऽर्थेन **छन्दसा** स्वच्छन्देन **अङ्गिरस्वत्** अङ्गिरोभिरङ्गैस्तुल्यं **पुरीष्यं** पुरीषे=उदके साधुम् **अग्निं** विद्युदादिस्वरूपम् **आ+भर** धर ॥ ९ ॥

भावार्थ—हे विद्वान्! मैं जिस (त्वा) तुझे—(देवस्य) सूर्य आदि जगत् के लिये प्रकाश देने वाले (सवितुः) ऐश्वर्य के प्रति सबको प्रेरणा करने वाले ईश्वर के (प्रसवे) रचे इस ऐश्वर्यसम्पन्न जगत् में (अश्विनोः) प्राण और उदान के (बाहुभ्याम्) बल और आकर्षण से, (पूष्णः) पुष्टिकारक वायुके (हस्ताभ्याम्) धारण और आकर्षण से (अङ्गिरस्वत्) अङ्गारों के तुल्य=अग्नि को (आ+ददे) स्वीकार करता हूँ, सो तू (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री छन्द से प्रतिपादित अर्थ से (पृथिव्याः) पृथिवी तल से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य अग्नि को, (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुभछन्द से प्रतिपादित अर्थ से (अङ्गिरस्वत्) अङ्गारों के तुल्य देदीप्यमान (पुरीष्यम्) जल में विद्यमान (अग्निम्) विद्युत् आदि रूप अग्नि को (आ+भर) पकड़ ॥ ९। ११ ॥

[हे विद्वन् ! अहं यं त्वा देवस्य सवितुः प्रसवे,'''अङ्गिरस्वदाददे, स त्वं'''पृथिव्या'''अग्निमाभर]

भावार्थः--अत्रोपमालङ्कारः । मनुष्यैरीश्वरसृष्टिगुणविदं विद्वांसं संसेव्य, पृथिव्यादिस्थोऽग्निः स्वीकार्यः ।। ११ । ६ ।।

भावार्थ--इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ।। मनुष्य—ईश्वर की सृष्टि के गुणों के वेत्ता विद्वान् की सेवा करके पृथिवी आदि में विद्यमान अग्नि को ग्रहण करें ।। ११ । ६ ।।

भाष्यसार—**१. मनुष्य भूमि आदि से विद्युत् को ग्रहण करें**--ईश्वर सूर्य आदि जगत् का प्रदीपक है । ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सबको प्रेरणा करने वाला है । उसका रचा यह जगत् ऐश्वर्य से सम्पन्न है । ईश्वर प्राण और उदान के बल और आकर्षण से, पुष्टिकारक वायु के धारण और आकर्षण गुणों से अग्नि आदि पदार्थों के तुल्य विद्वानों को धारण कर रहा है । इसी प्रकार विद्वान् लोग गायत्री आदि छन्दों से प्रतिपादित अर्थों की सहायता से पृथिवीतल में विद्यमान अग्नि=विद्युत् को तथा जल में वर्तमान विद्युत् आदि रूप अग्नि को पकड़ें, ग्रहण करें ।

ईश्वर की सृष्टि के गुणों को जानने वाले विद्वानों की सेवा करके मनुष्य पृथिवी और जल में विद्यमान अग्नि=विद्युत् को ग्रहण करें ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि पृथिवी और जल में विद्यमान विद्युत् अग्नि के अङ्गारों के समान देदीप्यमान है ।। ११ । ६ ।।

प्रजापतिः । **सविता**=**शिल्पी** ।। भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ।।

मनुष्यैः कथं भूम्यादेः सुवर्णादीनि प्राप्तव्यानीत्याह ।।

मनुष्य भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त करें, यह उपदेश किया है ।।

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳशकेम खनितुꣳसधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।।१०।।

पदार्थः—(**अभ्रिः**) अयोमयं खननसाधनम् (**असि**) अस्ति (**नारी**) नरस्य स्त्रीव साध्यसाधिका (**असि**) अस्ति (**त्वया**) यया (**वयम्**) (**अग्निम्**) विद्युदादिम् (**शकेम**) शक्नुयाम (**खनितुम**) (**सधस्थे**) समानस्थाने (**आ**) (**जागतेन**) जगत्या विहितेन साधनेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणैस्तुल्यम् ।। १० ।।

अन्वयः—हे शिल्पिन् ! त्वया सह सधस्थे वर्त्तमाना वयं याऽभ्रिरसि नार्य्यसि यां गृहीत्वा जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वदग्निं खनितुं शकेम=शक्नुयाम तां त्वं निर्मिमीष्व ।। १० ।।

सपदार्थान्वयः—**हे शिल्पिन् ! त्वया** यया सह **सधस्थे** समानस्थाने **वर्त्तमाना वयं या अभ्रिः** अयोमयं खननसाधनम् **असि** अस्ति, **नारी** नरस्य स्त्रीव साध्यसाधिका **असि** अस्ति, **यां गृहीत्वा जागतेन** जगत्या विहितेन साधनेन **छन्दसा अङ्गिरस्वत्** प्राणैस्तुल्यम् **अग्निं** विद्युदादिं **खनितुम्** [**आ**+**शकेम**]=**शक्नुयाम, तां त्वं निर्मिमीष्व** ।

भाषार्थ---हे शिल्पी ! (त्वया) जिस साधन से युक्त (सधस्थे) एक स्थान पर विद्यमान (वयम्) हम लोग जो (अभ्रिः) लोहे का बना हुआ भूमि खोदने का साधन है, जो (नारी) नर के लिये नारी के तुल्य साध्य को सिद्ध करने वाला (असि) है, जिसे ग्रहण करके (जागतेन छन्दसा) जगती छन्द से प्रतिपादित साधन से (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के तुल्य बलवान् (अग्निम्) विद्युत् आदि, अग्नि को (खनितुम्) खोद [आ+शकेम) सकें उस अभ्रि को तू बना ।। ११ । १० ।।

[याऽभ्रिरसि, नार्यसि यां गृहीत्वा······अग्निं खनितुं (शकेम) शक्नुयाम]

भावार्थः—मनुष्यैः सुसाधनैः पृथिवीं खनित्वाऽग्निना संयोज्य सुवर्णादीनि निर्मातव्यानि, परन्तु—पूर्वं भूगर्भतत्त्व विद्यां प्राप्यैवं कर्तुं शक्यमिति वेदितव्यम् ॥ ११ । १० ॥

भावार्थ—मनुष्य-अभ्रि आदि उत्तम साधनों से पृथिवी को खोद कर, अग्नि से संयुक्त करके सुवर्ण आदि का निर्माण करें, किन्तु पहले भूगर्भ सम्बन्धी पदार्थ विद्या को प्राप्त कर के ऐसा कर सकते हैं, ऐसा निश्चित जानना चाहिये ॥

भाष्यसार—**भूमि आदि से सुवर्ण आदि कैसे प्राप्त करें**—मनुष्य शिल्पी से एक अभ्रि **(लोहमय भूमि खोदने का साधन=कस्सी)** बनवावें। जैसे नर के लिये नारी साध्य की साधिका है वैसे अभ्रि भी भूमि खोदने का उत्तम साधन है। शिल्पी जनों के साथ रह कर अभ्रि आदि उत्तम साधनों से भूमि को खोदकर द्रव्यों को निकालें और उन्हें अग्नि से संयुक्त करके उनसे सुवर्ण आदि का निर्माण करें। लोहमय साधन ऐसे हों जो अग्नि का खनन कर सकें, अग्नि में काम दे सकें। भूमि आदि से सुवर्ण आदि को प्राप्त करने के लिये भूगर्भविद्या को भी अवश्य सीखें। भूगर्भविद्या के बिना ऐसा करना सम्भव नहीं ॥ ११ । १० ॥

प्रजापतिः । **सविता**=**ऐश्वर्यप्रसाधकः शिल्पी** ॥ भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः स एव विषय उच्यते ॥

मनुष्य भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

हस्त॑ऽ आ॒धाय॑ सवि॒ता बिभ्र॒दभ्रि॑ꣳ हिर॒ण्ययी॑म् ।
अ॒ग्नेर्ज्योति॑र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्या ऽ अध्याभ॑र॒दानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**हस्ते**) करे (**आधाय**) (**सविता**) ऐश्वर्यवान् (**बिभ्रत्**) धरन् (**अभ्रिम्**) खननसाधकं शस्त्रम् (**हिरण्ययीम्**) तेजोमयीम् (**अग्नेः**) विद्युदादेः (**ज्योतिः**) द्योतमानम् (**निचाय्य**) (**पृथिव्याः**) (**अधि**) (**आ**) (**अभरत्**) धरेत् (**अनुष्टुभेन**) अनुष्टुब्विहितार्थयुक्तेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरसा=प्राणेन तुल्यस्य ॥ ११ ॥

अन्वयः—सविता ऐश्वर्य्यप्रसाधकः शिल्प्यानुष्टुभेन छन्दसा हिरण्ययीमभ्रिं हस्ते आधाय बिभ्रत्सन्नङ्गिरस्वदग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**सविता**=**ऐश्वर्य्यप्रसाधकः शिल्पी** ऐश्वर्य्यवान् **आनुष्टुभेन** अनुष्टुब्विहिताऽर्थयुक्तेन **छन्दसा हिरण्ययीं** तेजेमयीम् **अभ्रिं** खननसाधकं शस्त्रं **हस्ते** करे **आधाय बिभ्रत्** धरन् **सन् अङ्गिरस्वत्** अङ्गिरसा=प्राणेन तुल्यस्य **अग्नेः** विद्युदादेः **ज्योतिः** द्योतमानं **निचाय्य पृथिव्याः अधि+आ+अभरत्** धरेत् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—(सविता) ऐश्वर्य को सिद्ध करने वाला ऐश्वर्यवान् शिल्पी (आनुष्टुभेन छन्दसा) अनुष्टुप् छन्द से प्रतिपादित अर्थ के योग से (हिरण्ययीम्) तेजोमय (अभ्रिम्) खोदने के साधन विशेष शस्त्र को (हस्ते) हाथ में (बिभ्रत्) धारण करके (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (अग्नेः) विद्युत्-आदि की (ज्योतिः) ज्योति को (निचाय्य) निश्चित करके उसे (पृथिव्याः) पृथिवी से (आधि+आ+भरत्) ग्रहण करे, पकड़े ॥ ११ । ११ ॥

[अङ्गिरस्वदग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्]

भावार्थः—मनुष्यैर्यथाऽयसि पाषाणे च विद्युद् वर्त्तते तथैव सर्वत्र पदार्थेषु प्रविष्टाऽस्ति, तद्विद्यां विज्ञाय कार्येषूपयुज्य भूमावाग्नेयादीन्यस्त्राणि विमानादीनि यानानि वा साधनीयानि ॥ ११ । ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जैसे लोहे वा पत्थर में विद्युत् विद्यमान है, वैसे ही सब पदार्थों में प्रविष्ट है; उस विद्युत् विद्या को जानकर, उसका कार्यों में उपयोग करके, भूमि पर अग्नेय आदि अस्त्रों अथवा विमान आदि यानों को सिद्ध करें ॥ ११ । ११ ॥

भाष्यसार—**भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों की प्राप्ति**—ऐश्वर्य को सिद्ध करने वाला एवं ऐश्वर्यवान् शिल्पी वेद-विद्या के द्वारा तेजोमय अभ्रि (**खनित्र विशेष**) को हाथ में लेकर पृथिवी और अग्नि ज्योतिर्मय सुवर्ण आदि को ग्रहण करे। लोहा और पाषाण के समान सब पदार्थों में विद्युत् विद्यमान है। विद्युत्-विद्या को जानकर उसका कार्यों में उपयोग करे। इस भूमि पर आग्नेय आदि अस्त्र और विमान आदि यानों को बनावें ॥ ११ । ११ ॥

नाभानेदिष्ठः । **वाजी**=विद्वान् ॥ आस्तारपङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य भूमि आदि से सुवर्ण आदि पदार्थों को कैसे प्राप्त करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् ।
दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**प्रतूर्त्तम्**) अतितूर्णम् (**वाजिन्**) प्रशस्तज्ञानयुक्त विद्वन् (**आ**) (**द्रव**) आगच्छ (**वरिष्ठाम्**) अतिशयेन वरां गतिम् (**अनु**) (**सम्वतम्**) सम्यग्विभक्ताम् (**दिवि**) सूर्य्यप्रकाशे (**ते**) तव (**जन्म**) प्रादुर्भावः (**परमम्**) (**अन्तरिक्षे**) अवकाशे (**तव**) (**नाभिः**) (**पृथिव्याम्**) (**अधि**) उपरि (**योनिः**) निमित्तं=प्रयोजनम् (**इत्**) एव ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे वाजिन् ! यस्य ते तव शिल्पविद्यया दिवि परमं जन्म तवाऽन्तरिक्षे नाभिः पृथिव्यां योनिरस्ति स त्वं विमानान्यधिष्ठाय वरिष्ठां सम्वतं गतिं प्रतूर्त्तमिदन्वाद्रव ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वाजिन् !** प्रशस्तज्ञानयुक्त विद्वन् ! **यस्य ते**=**तव शिल्पविद्यया दिवि** सूर्य्यप्रकाशे **परमं जन्म** प्रादुर्भावः, **तव अन्तरिक्षे** अवकाशे **नाभिः**, **पृथिव्यां योनिः** निमित्तं=प्रयोजनम् **अस्ति, स त्वं विमानानि [अधि]**=**अधिष्ठाय** उपरि स्थित्वा **वरिष्ठाम्** अतिशयेन वरां गतिं **सम्वतं** सम्यग्विभक्तां **गतिं प्रतूर्त्तम्** अतितूर्णम् **इत्** एव **अनु+आ+द्रव** आगच्छ ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे (वाजिन्) प्रशंसनीय ज्ञान वाले विद्वान् ! जिस (ते) आपका शिल्पविद्या के द्वारा (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (परमं जन्म) अत्यन्त प्रादुर्भाव है, आपकी (अन्तरिक्षे) आकाश में (नाभिः) नाभि है, (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (योनिः) प्रयोजन है, सो आप विमानों में [अधि] बैठकर (वरिष्ठाम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (संवतम्) उत्तम रीति से विभक्त (प्रतूर्त्तम् तीव्र) गति से (इत्) ही (अनु+आ+द्रव) आइये ॥ ११ । १२ ॥

[हे वाजिन् ! यस्य ते शिल्पविद्यया दिवि परमं जन्म]

भावार्थः—यदा मनुष्या विद्या-हस्तक्रिययोर्मध्ये परम प्रयत्नेन प्रादुर्भूत्वा,

भावार्थ—जब मनुष्य विद्या और हस्तक्रिया में परम प्रयत्न से प्रवृत्त होकर—

[स त्वं विमानान्यधिष्ठाय वरिष्ठां'''र्गति प्रतूर्तमिदन्त्राद्रव]

विमानादीनि यानानि विधाय गतानुगतं शीघ्रं कुर्वन्ति, तदा तेषां श्रीः सुलभा भवति ॥ ११ । १२ ॥

विमान आदि यानों को बनाकर शीघ्र यातायात करते हैं तब उन्हें धन सुलभ होता है ॥ ११ । १२ ॥

भा० पदार्थः—प्रतूर्तम्=शीघ्रम् ॥

भाष्यसार—पृथिवी आदि से सुवर्ण आदि की प्राप्ति—प्रशस्त ज्ञानवान् विद्वान् शिल्प-विद्या के द्वारा सूर्य के प्रकाश में (**द्युलोक में**) प्रकट हो सकता है, अन्तरिक्ष में नाभि के तुल्य अपना केन्द्र बना सकता है, पृथिवी पर अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध कर सकता है। अतः शिल्प-विद्या का वेत्ता विद्वान् विद्या और हस्त-कर्म के द्वारा बड़े पुरुषार्थ से शिल्प-विद्या में प्रवृत्त होकर विमान आदि यानों की रचना करे और उनमें बैठकर अत्यन्त श्रेष्ठ, संविभक्त और अति तीव्र गति से देशान्तर में गमन-आगमन करके सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करे ॥ ११ । १२ ॥ ●

कुश्रिः । **वाजी=विद्वान्** ॥ गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं क्व योजनीयमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या कहाँ जोड़ना चाहिये, इसका उपदेश किया है ॥

युञ्जाथाᳬ रासभं युवमस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्निं भरन्तमस्मयुम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**युंजाथाम्**) (**रासभम्**) जलाग्न्योर्वेगगुणाख्यमश्वम् (**युवम्**) युवां शिल्पतत्स्वामिनौ (**अस्मिन्**) (**यामे**) यान्ति येन यानेन तस्मिन् (**वृषण्वसू**) वर्षकौ वसन्तौ च (**अग्निम्**) प्रसिद्धं विद्युतं वा (**भरन्तम्**) धरन्तम् (**अस्मयुम्**) अस्मान् याययितारम् । **अत्रास्मदुपपदाद्याधातोरौणादिकः कुः । छान्दसो वर्णलोपो वेति दलोपः ॥ १३ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अस्मयुम्**) यहाँ अस्मत् शब्द के उपपद रहते 'या' धातु से उणादि का 'कु' प्रत्यय है तथा 'छान्दसो वर्ण लोपो वा' इस नियम से दकार का लोप है ॥ ११ । १३ ॥

अन्वयः—हे वृषण्वसू सूर्य्यवायूइव शिल्पिनौ ! युवमस्मिन् यामे रासभमस्मयुं भरन्तमग्निं युंजाथाम् ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वृषण्वसू=**सूर्य्यवायू इव शिल्पनौ** [वर्षकौ वसन्तौ च] **युवं** युवां शिल्पितत्स्वामिनौ **अस्मिन् यामे** यान्ति येन यानेन तस्मिन् **रासभं** जलाऽग्न्योर्वेगगुणाऽऽख्यमश्वम् **अस्मयुम्** अस्मान् याययितारं **भरन्तं** धरन्तम् **अग्निं** प्रसिद्धं विद्युतं वा **युञ्जाथाम्** ॥ १३ ॥

भाषार्थ—हे (वृषण्वसू) सूर्य और वायु के समान शिल्पी जनो ! (युवम्) तुम दोनों [शिल्पी और उसका स्वामी] इस (यामे) यान में (रासभम्) जल और अग्नि के वेग-गुण रूप घोड़े को, तथा (अस्मयुम्) हमें ले चलने वाले, (भरन्तम्) धारण करने वाले, (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि वा विद्युत् को (युञ्जाथाम्) युक्त करो ।

[हे वृषण्वसू !······युवमस्मिन् यामे रासभं······अग्निं युञ्जाथाम्]

भावार्थः—यैर्मनुष्यैर्यस्मिन् याने यन्त्र-कलाजलाग्निप्रयोगाः क्रियन्ते, ते सुखेन देशान्तरं गन्तुं शक्नुवन्ति ॥ ११ । १३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य जिस यान में यन्त्र, कला, जल और अग्नि का प्रयोग करते हैं वे सुख से देशान्तर में जा सकते हैं ॥ ११ । १३ ॥

भाष्यसार—मनुष्य कहाँ किस को युक्त करें—सूर्य और वायु के समान शिल्पी और स्वामी परस्पर सहयोगी होकर यानों में रासभ=जल और अग्नि के वेग-गुण को स्थापित करें। हम लोगों को एक देश से दूसरे देश में ले जाने वाले वेग आदि गुणों को धारण करने वाले अग्नि अथवा विद्युत को यानों में युक्त करें। क्योंकि जो शिल्पी और स्वामी लोग जिस यान में यन्त्र, कला, जल और अग्नि का प्रयोग करते हैं, वे सुख से देशान्तर में जा सकते हैं॥ ११। १३॥

शुनःशेपः। **क्षत्रपतिः=राजा**। गायत्री। षड्जः॥

प्रजाजनाः कीदृशं राजानमङ्गीकुर्य्युरित्याह॥

प्रजाजन कैसे पुरुष को राजा मानें, इस विषय का उपदेश किया है॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय ऽ इन्द्रमूतये॥ १४॥

पदार्थः—(**योगेयोगे**) युञ्जते यस्मिन् यस्मिन् (**तवस्तरम्**) अत्यन्तं बलयुक्तम्। तव इति बलना०॥ निघं० २। ६॥ ततस्तरप् (**वाजेवाजे**) सङ्ग्रामे सङ्ग्रामे (**हवामहे**) आह्वयामहे (**सखायः**) परस्परं सुहृदः सन्तः (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्युयुक्तं राजानम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय॥ १४॥

प्रमाणार्थ—(**तवस्तरम्**) 'तवः' शब्द निघं० (२। ६) में बलनामों में पढ़ा है। 'तवः' शब्द से 'तरप्' प्रत्यय करने पर 'तवस्तर' शब्द सिद्ध है।

अन्वयः—हे सखायः! यथावयमूतये योगेयोगे वाजेवाजे तवस्तरमिन्द्रं हवामहे तथा यूयमप्येतमाह्वयत॥ १४॥

सपदार्थान्वयः—**हे सखायः!** परस्परं सुहृदः सन्तः! **यथा वयम् ऊतये** रक्षणाद्याय **योगेयोगे** युञ्जते यस्मिन् यस्मिन् **वाजेवाजे** सङ्ग्रामे सङ्ग्रामे **तवस्तरम्** अत्यन्तं बलयुक्तम् **इन्द्रं** परमैश्वर्य्ययुक्तं राजानं **हवामहे** आह्वयामहे **तथा यूयमप्येतमाह्वयत**॥ १४॥

भाषार्थ—हे (सखायः) मित्रो! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (योगे योगे) प्रत्येक कार्य में, (वाजे वाजे) प्रत्येक संग्राम में (तवस्तरम्) अत्यन्त बलवान् (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् राजा को (हवामहे) बुलाते हैं, स्वीकार करते हैं, वैसे तुम भी उसे बुलावो, स्वीकार करो॥११॥

[हे सखायः!......ऊतये......तवस्तरम् इन्द्रं हवामहे]

भावार्थः—ये परस्परं मित्रा भूत्वाऽन्योऽन्यस्य रक्षार्थं बलिष्ठं धार्मिकं राजानं स्वीकुर्वन्ति, ते निर्विघ्नाःसन्तः सुखमेधन्ते॥ ११। १४॥

भावार्थ—जो लोग परस्पर मित्र होकर एक-दूसरे की रक्षा के लिये बलिष्ठ, धार्मिक राजा को स्वीकार करते हैं, वे निर्विघ्न होकर सुख से वृद्धि को प्राप्त होते हैं॥ ११। १४॥

भा० पदार्थः—सखायः=परस्परं मित्रा भूत्वा। ऊतये=अन्योऽन्यस्य रक्षार्थम्। तवस्तरम्=बलिष्ठम्। इन्द्रम्=धार्मिकं राजानम्। हवामहे=स्वीकुर्महे॥

भाष्यसार—प्रजा कैसे राजा को स्वीकार करे—प्रजा जन परस्पर मित्र होकर एक-दूसरे की रक्षा के लिये प्रत्येक व्यवहार में तथा प्रत्येक सङ्ग्राम में अत्यन्त बलवान्, और परम ऐश्वर्यवान् राजा को स्वीकार करें, क्योंकि जो ऐसा करते हैं वे निर्भय होकर सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त करते हैं॥ ११। १४॥

शुनःशेपः । **गणपतिः**=राजा ॥ आर्षी जगती । निषादः ॥

पुना राजा किं कृत्वा किं प्राप्नुयादित्याह ॥

फिर राजा क्या करके किस को प्राप्त करे, यह उपदेश किया है ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि ।
उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**प्रतूर्वन्**) हिंसन् (**आ**) (**इहि**) आगच्छ (**अवक्रामन्**) देशदेशान्तरानुल्लङ्घयन् (**अशस्तीः**) अप्रशस्ताः शत्रुसेनाः (**रुद्रस्य**) शत्रुरोदकस्य स्वसेनापतेः (**गाणपत्यम्**) गणानां=सेनासमूहानां पतित्वम् (**मयोभूः**) मयः=सुखं भावयन् (**आ**) (**इहि**) (**उरु**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**वि**) (**इहि**) विविधतया गच्छ (**स्वस्तिगव्यूतिः**) स्वस्ति=सुखेन सह गव्यूतिर्मार्गो यस्य सः (**अभयानि**) स्वराज्ये सेनायां चाविद्यमानं भयं येषु तानि (**कृण्वन्**) सम्पादयन् (**पूष्णा**) पुष्टेन स्वकीयेन सैन्येन (**सयुजा**) यत्समानं युनक्ति तेन सहितः (**सह**) साकम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! स्वस्तिगव्यूतिस्त्वं पूष्णा सयुजा सहाशस्तीः प्रतूर्वन्नेहि शत्रुदेशानवक्रामन्नेहि मयोभूस्त्वं रुद्रस्य गाणपत्यमेहि । अभयानि कृण्वन् सन्नन्तरिक्षमुरु वीहि ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजन् ! स्वस्तिगव्यूतिः** स्वस्ति=सुखेन सह गव्यूतिर्मार्गो यस्य सः, **त्वं पूष्णा** पुष्टेन स्वकीयेन सैन्येन **सयुजा** यत्समानं युनक्ति तेन सहितः, **सह** साकम् **अशस्तीः** अप्रशस्ताः शत्रुसेनाः **प्रतूर्वन्** हिंसन् **आ+इहि** आगच्छ ।

शत्रुदेशान् अवक्रामन् देशदेशान्तरानुल्लङ्घयन् **आ+इहि** आगच्छ ।

मयोभूः मयः=सुखं भावयन् **त्वं रुद्रस्य** शत्रुरोदकस्य स्वसेनापतेः **गाणपत्यं** गणानां=सेनासमूहानां पतित्वम् **आ+इहि** आगच्छ ।

अभयानि स्वराज्ये सेनायां चाऽविद्यमानं भयं येषु तानि **कृण्वन्** सम्पादयन् **सन्नन्तरिक्षम्** आकाशम् **उरु वि+इहि** विविधतया गच्छ ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! (स्वस्तिगव्यूतिः) सुख से युक्त मार्ग वाले आप—(सयुजा) एक साथ संयुक्त होने वाले (पूष्णा) अपने बलवान् सेनावृन्द (सह) के सहाय से (अशस्तीः) निन्दित शत्रुसेनाओं को (प्रतूर्वन्) मारते हुये (आ+इहि) आइये ।

शत्रु के देश—देशान्तरों को (अवक्रामन्) लांघते हुये (आ+इहि) आइये ।

(मयोभूः) सुखको उत्पन्न करने वाले आप—(रुद्रस्य) शत्रु को रुलाने वाले (गाणपत्यम्) सेनापतित्व को (आ+इहि) प्राप्त कीजिये ।

(अभयानि) अपने राज्य में और सेना में निर्भयता को (कृण्वन्) उत्पन्न करके (अन्तरिक्षम्) आकाश में (उरु) बहुत (वि+इहि) नाना गति कीजिये ॥ ११ । १५ ॥

[**हे राजन् !···त्वं पूष्णा सयुजा सहाशस्तीः प्रतूर्वन्नेहि**]

भावार्थः—राजा सदैव स्वसेनां सुशिक्षितां हृष्टां पुष्टां रक्षेत् । यदारिभिः सह योद्धुमिच्छेत् तदा स्वराज्यमनुपद्रवं संरक्ष्य युक्त्या बलेन च शत्रून् हिंसेत्,

भावार्थ—राजा सदा अपनी सेना को सुशिक्षित और हृष्ट-पुष्ट रखे । जब शत्रुओं से युद्ध करना चाहे तब अपने राज्य को उपद्रवों से रहित करके युक्ति और बल से शत्रुओं का हिंसन करे,

[अभयानि कृण्वन् सन्नन्तरिक्षं वीहि]

वा—श्रेष्ठान् पालयित्वा सर्वत्र सत्कीर्तिं प्रसारयेत् ॥ ११ । १५ ॥

अथवा—श्रेष्ठों का पालन करके सर्वत्र सत्कीर्ति को फैलावे ॥ ११ । १५ ॥

भाष्यसार—**राजा क्या करे**—राजा का मार्ग सुख से युक्त हो अर्थात् वह सुख के मार्ग पर चले । वह अपनी सेना को सदा सुशिक्षित तथा हृष्ट-पुष्ट रखे । और सेना के साथ स्वयं भी समानरूप से संयुक्त रहे । जब शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा करे तब अपने राज्य को उपद्रव-रहित करके युक्ति और बल (**सेना**) से निन्दनीय शत्रुसेना का हिंसन करे । शत्रु के देश-देशान्तरों को लांघकर उनको अपने वश में करे । सुख-दाता होकर रुद्र अर्थात् शत्रु को रुलाने वाले अपने सेनापतियों का गणपति बने । अपने राज्य और सेना को निर्भय रखे । श्रेष्ठों का पालन करके सर्वत्र अपनी सत्कीर्ति का प्रसार करे । विमान आदि से अन्तरिक्ष में गमन करे ॥ ११ । १५ ॥

शुनःशेपः । **अग्निः**=**विद्युत्** ॥ भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः कस्माद्विद्युत्स्वीकार्य्येत्याह ॥

मनुष्य किस पदार्थ से बिजुली को ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वदाभ॑रा॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वद॑च्छे॑मो॒ऽग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वद्भ॑रिष्यामः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(पृथिव्याः) भूमेरन्तरिक्षस्य वा (**सधस्थात्**) सहस्थानात् (**अग्निम्**) भूमिस्थं विद्युतं वा (**पुरीष्यम्**) यः सुखं पृणाति स पुरीषस्तत्र साधुम् (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गिरसा=सूर्येण तुल्यम् (**आ**) (भर) धर (**अग्निम्**) अन्तरिक्षे वाय्वादिस्थम् (**पुरीष्यम्**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**अच्छ**) उत्तमरीत्या (**इमः**) प्राप्नुमः (**अग्निम्**) (**पुरीष्यम्**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**भरिष्यामः**) धरिष्यामः ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा वयं पृथिव्याः सधस्थादङ्गिरस्वत्पुरीष्यमग्निमच्छेमः । यथा चाऽङ्गिरस्वत्पुरीष्यमग्निं भरिष्यामस्तथा त्वमप्यङ्गिरस्वत्पुरीष्यमग्निमाभर ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यथा वयं पृथिव्याः** भूमेरन्तरिक्षस्य वा **सधस्थात्** सहस्थानाद् **अङ्गिरस्वत्** अङ्गिरसा=सूर्य्येण तुल्यं **पुरीष्यं** यः सुखं पृणाति स पुरीषस्तत्र साधुम्, **अग्निं** भूमिस्थं विद्युतं वा **अच्छ** उत्तमरीत्या **इमः** प्राप्नुमः, **यथा च अङ्गिरस्वत् पुरीष्यम् अग्निं भरिष्यामः** धरिष्यामः, **तथा त्वमपि अङ्गिरस्वत् पुरीष्यम् अग्निम्** अन्तरिक्षे वाय्वादिस्थम् **आ+भर** धर ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे हम लोग (पृथिव्याः) भूमि वा आकाश के (सधस्थात्) स्थान से (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान, (पुरीष्यम्) सुख से परिपूर्ण करने वाली, (अग्निम्) स्थूल वा विद्युत् रूप अग्नि को (अच्छ) उत्तम रीति से (इमः) प्राप्त करते हैं, और जैसे (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के तुल्य, (पुरीष्यम्) सुख से परिपूर्ण करने वाली, (अग्निम्) स्थूल वा विद्युत् रूप अग्नि को (भरिष्यामः) ग्रहण करेंगे, वैसे आप भी (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के तुल्य, (पुरीष्यम्) सुख से परिपूर्ण करने वाली, (अग्निम्) अन्तरिक्ष वा वायु आदि में विद्यमान विद्युत् को (आ+भर) धारण करो, पकड़ो ॥११॥ १६ ॥

[हे विद्वन् ! यथा वयं पृथिव्याः सधस्थात्'''अग्निं'''इमः, तथात्वमपि'''अग्निमाभर]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ मनुष्यैर्विदुषामेवाऽनुकरणं कर्त्तव्यं नाऽविदुषाम् । सर्वदोत्साहेनाग्न्यादि पदार्थविद्यां गृहीत्वा सुखं वर्द्धनीयम् ॥ ११ । १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ मनुष्य—विद्वानों का ही अनुकरण करें; अविद्वानों का नहीं । और सर्वदा उत्साह से अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण करके सुख को बढ़ावें ॥ ११ । १६ ॥

भा० पदार्थः—अग्निम्=अग्न्यादिपदार्थविद्याम् ।

भाष्यसार—१. **मनुष्य किस पदार्थ से विद्युत् को ग्रहण करें**—मनुष्य भूमि वा अन्तरिक्ष से सूर्य के समान देदीप्यमान, सुख से परिपूर्ण करने वाली अग्नि=विद्युत् को अच्छी प्रकार से प्राप्त करें । मनुष्य सदा विद्वानों का ही अनुकरण करें, मूर्खों का नहीं । वे सदा उत्साह से अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण करके सुख को बढ़ावें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'अङ्गिरस्वत्' पद में उपमावाचक 'वत्' पद होने से उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि अग्नि=विद्युत् सूर्य के समान देदीप्यमान है । यहाँ उपमावाचक पद लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार भी है । उपमा यह है कि मनुष्य श्रेष्ठ विद्वानों के समान अग्नि (विद्युत्) आदि पदार्थ विद्या को ग्रहण करें ॥ ११ । १६ ॥

पुरोधाः । **अग्निः=विद्युत्** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वांसः किंवत्किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

विद्वान् लोग किस के समान क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी ऽ आततन्थ ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**अनु**) (**अग्निः**) पावकः (**उषसाम्**) (**अग्रम्**) पूर्वम् (**अख्यत्**) प्रख्यातो भवति (**अनु**) (**अहानि**) दिनानि (**प्रथमः**) (**जातवेदाः**) यो जातेषु विद्यते स सूर्य्यः (**अनु**) (**सूर्यस्य**) (**पुरुत्रा**) बहून् (**च**) (**रश्मीन्**) (**अनु**) (**द्यावा**) (**पृथिवी**) (**आ**) (**ततन्थ**) तनोति ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! त्वं यथा प्रथमो **जातवेदः** अग्निरुषसामग्रमहान्यन्वख्यत् । सूर्य्यस्याग्रं पुरुत्रा रश्मीनन्वाततन्थ । द्यावापृथिवी च तथा विद्याव्यवहारानन्वातनुहि ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! त्वं**—**यथा प्रथमो जातवेदाः** यो जातेषु विद्यते स सूर्य्यः **अग्निः** पावकः **उषसामग्रं** पूर्वम् **अहानि** दिनानि **अनु+अख्यत्** प्रख्यातो भवति, **सूर्य्यस्याऽग्रं** पूर्वं **पुरुत्रा** बहून् **रश्मीन् अनु+आ+ततन्थ** तनोति, **द्यावापृथिवी च तथा विद्याव्यवहारान् अनु+आ+तनुहि** ॥ १७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे (प्रथमः) कारण रूप अग्नि=विद्युत्, (जातवेदाः) सूर्य रूप (अग्निः) अग्नि, (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) अनुक्रम से (अहानि) दिनों को (अनु+अख्यत्) प्रसिद्ध करता है, (सूर्यस्य) सूर्य के (अग्रम्) अनुक्रम से (पुरुत्रा) बहुत (रश्मीन्) रश्मियों को (अनु+आ+ततन्थ) फैलाता है, और (द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोक को प्रकाशित करता है, वैसे

आप विद्या-व्यवहार का (अनु+आ+तनुहि) प्रसार कीजिये ॥ ११ । १७ ॥

[हे विद्वन् ! त्वं यथा प्रथमो जातवेदा अग्निरुषसामग्रमहान्यन्वख्यत्……द्यावापृथिवी च]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा कारण कार्याख्यो विद्युदग्निरनुपूर्वं सवितृ—उषः—दिनानि कृत्वा पृथिव्यादीनि प्रकाशयति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—कारण कार्यरूप विद्युत्=अग्नि अनुक्रम से सूर्य, उषा और दिनों को बना कर पृथिवी आदि को प्रकाशित करता है ।

[तथा विद्याव्यवहारान्वातनुहि]

तथा विद्वद्भिः सुशिक्षां कृत्वा ब्रह्मचर्य—विद्या—धर्मानुष्ठान—सुशीलानि सर्वत्र प्रचार्य सर्वे ज्ञानानन्दाभ्यां प्रकाशनीयाः ॥ ११ । १७ ॥

वैसे विद्वान् लोग सुशिक्षा करके ब्रह्मचर्य, विद्या, धर्माचरण और सुशीलता का सर्वत्र प्रचार करके सब लोगों को ज्ञान और आनन्द से प्रकाशित करें ॥ ११ । १७ ॥

भा० पदार्थः—प्रथमः=कारणकार्याख्यः । अग्निः=विद्युदग्निः । अग्रम्=अनुपूर्वम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् क्या करें**—जैसे प्रथम, सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान, कारण-कार्य रूप अग्नि=विद्युत् क्रमशः सूर्य, उषा और दिन को बनाकर पृथिवी आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है, वैसे विद्वान् लोग भी विद्या-व्यवहारों का प्रसार करें अर्थात् सुशिक्षा करके ब्रह्मचर्य, विद्या, धर्मानुष्ठान, सुशीलता आदि का सर्वत्र प्रचार करके सब ज्ञान और आनन्द से भरपूर करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे अग्नि (**विद्युत्**) पृथिवी आदि को प्रकाशित करता है, वैसे विद्वान लोग विद्या-व्यवहारों को प्रकाशित करें ॥ ११ । १७ ॥

मयोभूः । **अग्निः**=सभेशः ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ सभेशः किंवत्किंकुर्य्यादित्याह ॥

अब सभापति राजा किस के समान क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

आगत्यं वाज्यध्वानंꣳ सर्वा मृधो विधूनुते ।
अग्निꣳ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**आगत्य**) (**वाजी**) वेगवानश्वः (**अध्वानम्**) मार्गम् (**सर्वाः**) (**मृधः**) संग्रामान् (**वि**) (**धूनुते**) कम्पयति (**अग्निम्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**महति**) विशाले (**चक्षुषा**) नेत्रेण (**नि**) (**चिकीषते**) चेतुमिच्छति ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्राजन् ! भवान् यथा वाज्यश्वोऽध्वानमागत्य सर्वा मृधो विधूनुते । यथा गृहस्थश्चक्षुषा महति सधस्थेऽग्निं निचिकीषते तथा सर्वान्संग्रामान् विधूनोतु । गृहे गृहे विद्यानिचयं च करोतु ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् राजन् ! भवान् यथा वाजी=अश्वः वेगवानश्वः अध्वानं

भाषार्थ—हे विद्वान् राजन् ! जैसे—(वाजी) वेगवान् घोड़ा (अध्वानम्) मार्ग को प्राप्त

मार्गम् **आगत्य सर्वा मृधः** सङ्ग्रामान् **वि+धूनुते** कम्पयति, **यथा गृहस्थश्चक्षुषा** नेत्रेण **महति** विशाले **सधस्थे** सहस्थाने **अग्निं नि+चिकीषते** चेतुमिच्छति **तथा सर्वान् सङ्ग्रामान्** विधूनोतु, **गृहे गृहे विद्यानिचयं च करोतु** ॥ १८ ॥

करके (सर्वाः) सब (मृधः) संग्रामों को (विधूनुते) कंपाता है, और जैसे गृहस्थ पुरुष (चक्षुषा) नेत्र से (महति) विशाल (सधस्थे) निवास-स्थान में (अग्निम्)अग्नि का (नि+चिकीषते) चयन करना चाहता है, वैसे आप सब संग्रामों को कंपाइये और घर घर में विद्या का चयन कीजिये ॥ ११ । १८ ॥

[हे विद्वन् राजन् ! भवान् यथा वाजी···अध्वानमागत्य सर्वा मृधो विधूनुते···तथा सर्वान् संग्रामान् विधूनोतु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । गृहस्था अश्ववद् गत्वा, आगत्य, शत्रून् जित्वा, आग्नेयास्त्रविद्यां संपाद्य, बलाबलं पर्यालोच्य, राग-द्वेषादीन् शमित्वा, अधार्मिकान् शत्रून् जयेयुः ॥ ११ । १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। गृहस्थ लोग अश्व के समान गमन–आगमन करके, शत्रुओं को जीतकर, आग्नेयास्त्र-विद्या को सिद्ध करके, अपने बल और निर्बलता को देखकर, राग-द्वेष आदि को शान्त करके, अधर्मी शत्रुओं को जीतें ॥ ११ । १८ ॥

भाष्यसार—**१. सभापति राजा क्या करे**—जैसे वेगवान् घोड़ा मार्ग को प्राप्त करके सङ्ग्रामों को कम्पित करता है, वैसे सभापति राजा आग्नेयास्त्र-विद्या को सिद्ध करके, अपने बल-अबल को भली-भाँति देखकर, राग द्वेष आदि दोषों को शान्त करके, अधार्मिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे।

जैसे गृहस्थ लोग अपने विशाल-घर में चक्षु की सहायता से अग्नि का चयन करते हैं, वैसे सभापति विद्वान् राजा घर-घर में विद्या का चयन करे, विद्या का प्रचार करे॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सभापति राजा अश्व के समान वेगवान् होकर सङ्ग्रामों को कम्पित करे एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। घर में गृहस्थों के अग्नि-चयन के समान घर-घर में विद्या का प्रचार करे॥ ११ । १८ ॥

मयोभूः । **अग्निः=अग्निविद्या** ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यजन्म प्राप्य विद्या अधीत्यातः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

मनुष्यजन्म प्राप्त करके, विद्या पढ़ के पश्चात् क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

आक्रम्यं वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् ।
भूम्यां वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

पदार्थः—**(आक्रम्य)** **(वाजिन्)** प्रशस्तविज्ञानवन् **(पृथिवीम्)** भूमिराज्यम् **(अग्निम्)** अग्निविद्याम् **(इच्छ)** **(रुचा)** प्रीत्या **(त्वम्)** **(भूम्याः)** क्षितेर्मध्ये **(वृत्वाय)** स्वीकृत्य। **अत्र क्त्वोयगति यगागमः** **(नः)** अस्मान् **(ब्रूहि)** भूगर्भाग्निविद्यामुपदिश **(यतः)** **(खनेम)** **(तम्)** भूगोलम् **(वयम्)** ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(वृत्वाय) यहां 'क्त्वोयक्' [अ० ७ । १ ।४७] इस सूत्र से क्त्वा को 'यक्' का आगम है ॥ ११ । १९ ॥

अन्वयः—हे वाजिन् विद्वन्सभेश राजँस्त्वं रुचा शत्रूनाक्रम्य पृथिवीमग्निं चेच्छ भूम्या नो वृत्वाय ब्रूहि यतो वयं तं खनेम ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वाजिन्**=**विद्वन् सभेश राजन्** प्रशस्तविज्ञानवन् ! **त्वं रुचा** प्रीत्या **शत्रून् आक्रम्य पृथिवीं** भूमिराज्यम् **अग्निम्** अग्निविद्यां **चेच्छ** ।

भाषार्थ—हे (वाजिन् !) प्रशस्त विज्ञान वाले, विद्वान् सभापति राजन् ! आप (रुचा) प्रीति से शत्रुओं पर आक्रमण करके (पृथिवीम्) पृथिवी के राज्य और (अग्निम) अग्नि विद्या की (इच्छ) कामना करो। और—

भूम्याः क्षितेर्मध्ये **नः** अस्मान् **वृत्वाय** स्वीकृत्य **ब्रूहि** भूगर्भाऽग्निविद्यामुपदिश । **यतो वयं तं** भूगोलं **खनेम** ॥ १९ ॥

(भूम्याः) पृथिवी पर (नः) हमें (वृत्वाय) स्वीकार करके (ब्रूहि) भूगर्भविद्या और अग्नि विद्या का उपदेश कीजिये, जिससे हम लोग (तम्) उस पृथिवी को (खनेम) खोदें ॥ ११ । १९ ॥

[हे वाजिन्···राजन् ! त्वं रुचा···पृथिवीमग्निं चेच्छ]

भावार्थः—मनुष्यैर्भूगर्भाऽग्निविद्यया पार्थिवान् पदार्थान् सुपरीक्ष्य सुवर्णादीनि रत्नान्युत्साहेन प्राप्तव्यानि ।

भावार्थ—मनुष्य—भूगर्भविद्या और अग्नि विद्या के द्वारा पार्थिव पदार्थों की सुपरीक्षा करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह से प्राप्त करें ।

[नो वृत्वाय ब्रूहि, यतो वयं तं खनेम]

ये खनितारो भृत्याः सन्ति तान् प्रति तद्विद्योपदेष्टव्या ॥ १९ ॥

और—जो खोदने वाले भृत्य लोग हैं, उन्हें भूगर्भविद्या और अग्निविद्या का उपदेश करें ॥

भा० पदार्थः—रुचा=उत्साहेन । पृथिवीम्=पार्थिवान् पदार्थान् । अग्निम्=सुवर्णादीनि रत्नानि ॥

भाष्यसार—**मनुष्य का कर्त्तव्य**—प्रशस्त विज्ञान वाला सभापति राजा रुचि से शत्रुओं पर आक्रमण करके पृथिवी का राज्य प्राप्त करें । तत्पश्चात् भूगर्भविद्या और अग्नि विद्या के द्वारा पार्थिव पदार्थों का परीक्षण करके सुवर्ण आदि रत्नों को उत्साह से प्राप्त करें । जो उसके राज्य में भूमि को खोदने वाले भृत्य लोग हों, उन्हें भी भूगर्भ-विद्या का उपदेश करें ॥ ११ । १९ ॥

मयोभूः । **क्षत्रपतिः**=**राजा** ॥ निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

मनुष्याः किं साध्नुयुरित्याह ॥

मनुष्य क्या सिद्ध करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

द्यौस्ते॑ पृ॒ष्ठं पृ॑थि॒वी स॒धस्थ॑मा॒त्मान्तरि॑क्ष॒ꣳ स॑मु॒द्रो योनिः॑ ।
वि॒ख्याय॒ चक्षु॑षा॒ त्वम॒भि ति॑ष्ठ पृतन्य॒तः ॥ २० ॥

पदार्थः—(**द्यौः**) प्रकाश इव विनयः (**ते**) तव (**पृष्ठम्**) अर्वाग्व्यवहारः (**पृथिवी**) भूमिरिव (**सधस्थम्**) सहस्थानम् (**आत्मा**) स्वस्वरूपम् (**अन्तरिक्षम्**) आकाशइवाक्षयोऽक्षोभः (**समुद्रः**) सागर इव

(**योनिः**) निमित्तम् (**विख्याय**) प्रसिद्धीकृत्य (**चक्षुषा**) लोचनेन (**त्वम्**) (**अभि**) आभिमुख्ये (**तिष्ठ**) (**पृतन्यतः**) आत्मनः पृतनामिच्छतो जनस्य ॥ २० ॥

अन्वयः—हे विद्वन् राजन् ! यस्य ते तव द्यौ पृष्ठं पृथिवी सधस्थमन्तरिक्षमात्मा समुद्रो योनिरस्ति स त्वं चक्षुषा विख्याय पृतन्यतोऽभितिष्ठ ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् राजन् ! **यस्य ते**=**तव द्यौः** प्रकाश इव विनयः **पृष्ठम्** अर्वाग्व्यहारः, **पृथिवी** भूमिरिव **सधस्थं** सहस्थानम्, **अन्तरिक्षम्** आकाश इवाऽक्षयोऽक्षोभः **आत्मा** स्वस्वरूपं, **समुद्रः** सागर इव **योनिः** निमित्तम् **अस्ति, स त्वं चक्षुषा** लोचनेन **वि+ख्याय** प्रसिद्धीकृत्य **पृतन्यतः** आत्मनः पृतनामिच्छतो जनस्य **अभि+तिष्ठ** अभिमुखं तिष्ठ ॥ २० ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् राजन् ! जिस (ते) आपका (द्यौः) प्रकाश के समान विनय से युक्त (पृष्ठम्) पिछला व्यवहार है, (पृथिवी) पृथिवी के समान (सधस्थम्) विशाल स्थान है, (अन्तरिक्षम्) आकाश के समान क्षोभरहित (आत्मा) आत्मा है, (समुद्र) सागर के समान गम्भीर (योनिः) प्रयोजन है, सो आप (चक्षुषा) विवेक से (वि+ख्याय) प्रसिद्धि को प्राप्त करके (पृतन्यतः) अपनी सेना के इच्छुक शत्रु-जन का (अभितिष्ठ) सामना कीजिये ॥ ११ । २० ॥

[**हे...... राजन् ! यस्य ते=तव द्यौः पृष्ठं पृथिवी सधस्थम् अन्तरिक्षमात्मा**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यो न्यायपथानुगामी, दृढोत्साहस्थानात्मा,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य न्याय-पथ पर चलने वाला, दृढ़ोत्साही, दृढ़-स्थान और दृढात्मा वाला है, और—

[**स त्वं चक्षुषा विख्याय पृतन्यतोऽभितिष्ठ**]

यस्य प्रयोजनानि विवेकसाध्यानि सन्ति, तस्य वीरसेना जायते । स ध्रुवं विजयं कर्त्तुं शक्नुयात् ॥ ११ । २० ॥

जिसके प्रयोजन विवेकसाध्य हैं, उसकी वीर-सेना होती है । वह निश्चित विजय करने में समर्थ होता है ॥ ११ । २० ॥

भा० पदार्थः—चक्षुषा=विवेकेन । पृतन्यतः=वीरसेनस्य । अभितिष्ठ=ध्रुवं विजयस्व ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य क्या सिद्ध करे**—विद्वान् राजा प्रकाश के समान विनय एवं नम्र व्यवहार वाला हो । दृढ़ उत्साही हो । पृथिवी के समान विशाल स्थान वाला हो । आकाश के समान क्षोभरहित आत्मा वाला हो । समुद्र के समान सबका निमित्त हो । न्याय-पथ का अनुगामी हो । वह अपने प्रयोजन (**कार्य**) को विवेक-लोचन से सिद्ध करे । जो ऐसा होता है, उसकी सेना वीर होती है । वह शत्रुओं का साम्मुख्य करके ध्रुव विजय को प्राप्त करता है ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं, अतः वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि राजा द्युलोक (**प्रकाश**) आदि के गुणों के समान गुणों से विभूषित हो ॥ ११ । २०॥

मयोभूः । **द्रविणोदाः**=**धनप्रदो जनः** ॥ आर्षी पङ्क्ति । पञ्चमः ॥

मनुष्यैरिह परमपुरुषार्थेनैश्वर्य्यं जनितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को योग्य है कि इस संसार में परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को उत्पन्न करें, यह उपदेश किया है ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयꣳ स्याम सुमतौ पृथिव्या ऽ अग्निं खनन्त ऽ उपस्थे ऽ अस्याः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(उत्) (क्राम) (महते) (सौभगाय) शोभनैश्वर्य्याय (अस्मात्) (आस्थानात्) निवास्थानस्य सकाशात् (द्रविणोदाः) धनप्रदः (वाजिन्) प्राप्तैश्वर्य्य (वयम्) (स्याम) (सुमतौ) शोभनप्रज्ञायाम् (पृथिव्याः) भूमेः (अग्निम्) (खनन्तः) (उपस्थे) सामीप्ये (अस्याः) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे वाजिन् विद्वन् ! यथा द्रविणोदा अस्याः प्रथिव्याः अस्मादास्थाना दुपस्थेग्निं खनन्तो वयं महते सौभगाय सुमतौ प्रवृत्ताः स्याम तथा त्वमुत्क्राम ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वाजिन्=विद्वन् प्राप्तैश्वर्य्य ! **यथा द्रविणोदाः** धनप्रदाः **अस्याः पृथिव्याः** भूमेः **अस्माद् आस्थानात्** निवासस्थानस्य सकाशात् **उपस्थे** सामीप्ये **अग्निं खनन्तो वयं महते सौभगाय** शोभनैश्वर्य्याय **सुमतौ** शोभनप्रज्ञायां **प्रवृत्ताः स्याम, तथा त्वम् उत्+क्राम** ॥ २१ ॥

भाषार्थ—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य को प्राप्त विद्वान् ! जैसे—(द्रविणोदाः) धन के दाता हम लोग, इस (पृथिव्याः) भूमि से, इस (आस्थानात्) निवास स्थान के (उपस्थे) पास में (अग्निम्) अग्नि=रत्नों को खोदते हुए (महते) महान् (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुमतौ) श्रेष्ठ-बुद्धि में प्रवृत्त होते हैं, वैसे आप भी (उत्+क्राम) प्रयत्न कीजिये ॥ ११ । २१ ॥

[हे विद्वन् ! यथा···वयं महते सौभगाय सुमतौ प्रवृत्ताः स्याम तथा त्वमुत्क्राम]

भावार्थः—मनुष्या इहैश्वर्यप्राप्तये सततमुत्तिष्ठेरन् ।

भावार्थ—मनुष्य इस संसार में ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये निरन्तर प्रयत्न करें ।

[अस्याः पृथिव्याः···उपस्थे अग्निंखनन्तः]

परस्परं सम्मत्या पृथिव्यादेः सकाशाद् रत्नानि प्राप्नुयुः ॥ ११ । २१ ॥

परस्पर सम्मति करके पृथिवी आदि से रत्नों को प्राप्त करें ॥ ११ । २१ ॥

भा० पदार्थः—सौभगाय=ऐश्वर्यप्राप्तये । उत्क्राम=उत्तिष्ठस्व [प्रयत्न कर] । उपस्थे=सकाशे । अग्निम्=रत्नम् ॥

भाष्यसार—**परम पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उत्पत्ति**—जैसे धन के दाता पुरुष इस भूमि से एवं निवास-स्थान से अग्नि=रत्नों को खोदकर महान् उत्तम ऐश्वर्य की तथा उत्तम प्रज्ञा (बुद्धि) की प्राप्ति में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले विद्वान् भी प्रयत्न करें । परस्पर सम्मति करके पृथिवी आदि से रत्नों को प्राप्त करें ॥ ११ । २१ ॥

मयोभूः । **द्रविणोदाः**=धनदाता जनः ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्या इह किवद्भूत्वा किं प्राप्नुयुरित्याह ॥

मनुष्य इस संसार में किस के समान हो के किस को प्राप्त करें, यह उपदेश किया है ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा ऽ अधि नाकमुत्तमम् ॥ २२ ॥

पदार्थः--(**उत्**) (**अक्रमीत्**) उत्तमतया क्रमणं कुर्यात् (**द्रविणोदाः**) धनदाता (**वाजी**) वेगवान् (**अर्वा**) अश्व इव (**अकः**) कुर्यात् (**सु**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**सुकृतम्**) धर्माचरणेन प्राप्यम् (**पृथिव्याम्**) (**ततः**) (**खनेम**) (**सुप्रतीकम्**) शोभना प्रीतिर्यस्य तम् (**अग्निम्**) व्यापकं विद्युदाख्यम् (**स्वः**) सुखम् (**रुहाणाः**) प्रादुर्भवन्तः (**अधि**) (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखम् (**उत्तमम्**) अतिश्रेष्ठम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे भूगर्भविद्याविद्विद्वन् ! द्रविणोदा भवान् यथा वाज्यर्वा तथा पृथिव्यामध्युदक्रमीत् सुलोकं सुकृतमुत्तमं नाकमकः सिद्धं कुर्य्यात् । ततः स्वो रुहाणा वयमप्यस्यां सुप्रतीकमग्निं खनेम ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **भूगर्भविद्याविद्विद्वन्** ! **द्रविणोदाः** धनदाता **भवान् यथा वाजी** वेगवान् **अर्वा** अश्व इव **तथा पृथिव्याम् अधि+उत् अक्रमीत्** उत्तमतया क्रमणं कुर्य्यात् ।

भाषार्थ—हे भूगर्भविद्या को जानने वाले विद्वान् ! आप (द्रविणोदाः) धन के दाता हो । जैसे—(वाजी) वेगवान् (अर्वा) घोड़ा चलता है, वैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी में (अधि+उत्+अक्रमीत्) गति कीजिये, भूगर्भविद्या को प्राप्त कीजिये ।

सुलोकं द्रष्टव्यं **सुकृतं** धर्माऽऽचरणेन प्राप्यम् **उत्तमम्** अतिश्रेष्ठं **नाकम्** अविद्यमानदुःखम् **अकः**= **सिद्धं कुर्यात्** ।

और (सुलोकम्) दर्शनीय, (सुकृतम्) धर्माचरण से प्राप्त करने योग्य, (उत्तमम्) अतिश्रेष्ठ, (नाकम्) दुःखरहित स्वर्ग को (अकः) सिद्ध कीजिये, प्राप्त कीजिये ।

ततः स्वः सुखं **रुहाणाः** प्रादुर्भवन्तः **वयमपि अस्यां सुप्रतीकं** शोभना प्रीतिर्यस्य तम् **अग्निं** व्यापकं विद्युदाख्यं **खनेम** ॥ २२ ॥

तत्पश्चात्—(स्वः) सुख को (रुहाणाः) प्राप्त करते हुए हम लोग भी (अस्याम्) इस पृथिवी में (सुप्रतीकम्) सुन्दर (अग्निम्) व्यापक विद्युत् को (खनेम) खोजें, प्राप्त करें ॥ ११ । २२ ॥

[हे भूगर्भविद्याविद्विद्वन् ! द्रविणोदा भवान् यथा वाजी अर्वा तथा पृथिव्यामध्युत्क्रामीत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! सर्वे वयं मिलित्वा यथा पृथिव्यामश्वो विक्रमते तथा पुरुषार्थिनो भूत्वा पृथिव्यादिविद्यां प्राप्य, दुःखान्युत्क्रम्य,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! हम सब मिल कर, जैसे पृथिवी पर घोड़ा चलता है वैसे पुरुषार्थी होकर पृथिवी आदि की विद्या को प्राप्त करके, दुःखों को लाँघकर—

[उत्तमं नाकमकः]

सर्वोत्तमं सुखं प्राप्नुयामः ॥ ११ । २२ ॥

सर्वोत्तम सुख को प्राप्त करें ॥ ११ । २२ ॥

भा० पदार्थः—उत्तमम्=सर्वोत्तमम् । नाकम्=सुखम् । अकः=प्राप्नुयात् ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य क्या प्राप्त करें**—भूगर्भ-विद्या का वेत्ता विद्वान् धन का दाता होता है । जैसे वेगवान् घोड़ा गति करता है, वैसे उक्त विद्वान् पृथिवी में उत्तम रीति से गति करे ।

जैसे घोड़ा पृथिवी पर गति करता है, वैसे सब लोग मिल कर, पुरुषार्थी होकर पृथिवी आदि की विद्या को प्राप्त करें। धर्माचरण से प्राप्त करने योग्य, अतिश्रेष्ठ, दुःखरहित, उत्तम लोक स्वर्ग को सिद्ध करें अर्थात् दुःखों का उत्क्रमण करके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त करें। तत्पश्चात् प्रीतिकारक व्यापक विद्युत् को खोजें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे वेगवान् अश्व पृथिवी पर गति करता है, वैसे विद्वान् भूगर्भ में विद्या के द्वारा गतिमान् हो ॥ ११ । २२ ॥

गृत्समदः। **प्रजापतिः**=वायुः ॥ आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

मनुष्या व्यापिनं वायुं केन जानीयुरित्याह ॥

मनुष्य व्यापक वायु को किस साधन से जानें, यह उपदेश किया है ॥

आ त्वा॑ जिघर्मि॒ मन॑सा घृ॒तेन॑ प्रतिक्षि॒यन्तं॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
पृ॒थुं ति॑र॒श्चा वय॑सा बृ॒हन्तं॒ व्यचि॑ष्ठ॒मन्नै॑ र॒भ॒सं दृशा॑नम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**त्वा**) त्वाम् (**जिघर्मि**) (**मनसा**) (**घृतेन**) आज्येन (**प्रतिक्षियन्तम्**) प्रत्यक्षं निवसन्तम् (**भुवनानि**) भवन्ति येषु तानि वस्तूनि (**विश्वा**) सर्वाणि (**पृथुम्**) विस्तीर्णम् (**तिरश्चा**) येन तिरोऽश्चति तेन (**वयसा**) जीवनेन (**बृहन्तम्**) महान्तम् (**व्यचिष्ठम्**) अतिशयेन विचितारं=प्रक्षेप्तारम् (**अन्नैः**) यवादिभिः (**रभसम्**) वेगवन्तम् (**दृशानम्**) संप्रेक्षणीयम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे जिज्ञासो! यथाऽहं मनसा घृतेन सह विश्वा भुवनानि प्रतिक्षियन्तं तिरश्चा वयसा पृथुं बृहन्तमन्नैः सह रभसं व्यचिष्ठं दृशानं वायुमाजिघर्मि तथा त्वामप्येनं धारयामि ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जिज्ञासो! यथाऽहं **मनसा घृतेन** आज्येन **सह विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** भवन्ति येषु तानि वस्तूनि=**प्रतिक्षियन्तं** प्रत्यक्षं निवसन्तं, **तिरश्चा** येन तिरोऽञ्चति तेन, **वयसा** जीवनेन **पृथुं** विस्तीर्णं **बृहन्तं** महान्तम्, **अन्नैः** यवादिभिः **सह रभसं** वेगवन्तं **व्यचिष्ठम्** अतिशयेन विचितारं=प्रक्षेप्तारं, **दृशानं** संप्रेक्षणीयं **वायुम् आ+जिघर्मि तथा** [**त्वा**]=**त्वामप्येनं धारयामि** ॥ २३ ॥

भाषार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष! जैसे मैं—(मनसा) विचारपूर्वक (घृतेन) घृत से युक्त (विश्वा) सब (भुवनानि) सब वस्तुओं में (प्रतिक्षियन्तम्) प्रत्यक्ष रहने वाले, (तिरश्चा) टेढ़ी गति वाले (वयसा) जीवन के कारण (पृथुम्) विशाल एवं (बृहन्तम्) महान्, (अन्नैः) यव आदि अन्नों के साथ (रभसम्) वेगवान् एवं उन्हें (व्यचिष्ठम्) वेग से इधर-उधर फेंकने वाले (दृशानम्) दर्शनीय वायु को (आ+जिघर्मि) धारण करता हूँ, पकड़ता हूँ, वैसे [त्वा] तुझे भी इसे धारण कराता हूँ ॥ ११ । २३ ॥

[आज्येन सह···वयसा पृथुं बृहन्तं···वायुं जिघर्मि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्या अग्निद्वारा सुगन्ध्यादीनि द्रव्याणि वायौ प्रक्षिप्य तेन युक्तसुगन्धनारोगीकृत्य दीर्घं जीवनं प्राप्नुवन्तु ॥ ११ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—अग्नि के द्वारा सुगन्धि आदि द्रव्यों को वायु में डालकर=पहुँचाकर, उस सुगन्धयुक्त वायु से नीरोग होकर दीर्घ आयु को प्राप्त करें ॥

भाष्यसार—१. **व्यापक वायु को किससे जानें**—मनुष्य-अग्नि के द्वारा घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से सब लोकों में निवास करने वाले, टेढ़ी-मेढ़ी गति वाले जीवन के हेतु एवं विस्तृत तथा महान्, यव आदि अन्नों के साथ वेगवान्, अत्यन्त वेग से पदार्थों को इधर-उधर फैंकने वाले, दर्शनीय वायु को नासिका से सूंघ कर जानें। अग्नि के द्वारा घृत आदि सुगन्धित पदार्थों को वायु में पहुँचा कर, और उस सुगन्धित वायु से नीरोग होकर दीर्घ-जीवन को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष के समान जिज्ञासु शिष्य भी व्यापक वायु के गुणों को जाने ॥ ११। २४॥

गृत्समदः। **अग्निः**=अग्निपदार्थः ॥ आर्षीपङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

पुनः कीदृशौ वाय्वग्नी स्त इत्याह ॥

फिर वायु और अग्नि कैसे गुण वाले हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत।
मर्य्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो ऽ अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**विश्वतः**) सर्वतः (**प्रत्यञ्चम्**) प्रत्यगञ्चतीति शरीरस्थं वायुम् (**जिघर्मि**) (**अरक्षसा**) रक्षोवद्दुष्टतारहितेन (**मनसा**) चित्तेन (**तत्**) तेजः (**जुषेत**) (**मर्य्यश्रीः**) मर्य्याणां=मनुष्याणां श्रीरिव (**स्पृहयद्वर्णः**) यः स्पृहयद्भिर्वर्ण्यते=स्वीक्रियते स इव (**अग्निः**) शरीरस्था विद्युत् (**न**) इव (**अभिमृशे**) आभिमुख्येन मृशन्ति=सहन्ते येन तस्मै (**तन्वा**) शरीरेण (**जर्भुराणः**) भृशं गात्राणि विनामयत्। **अत्र जृभीधातोरौणादिक उरानन् प्रत्ययः ॥ २४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**जर्भुराणः**) यहाँ 'जृभी' धातु से उणादि का 'उरानन्' प्रत्यय है ॥ ११। २४॥

अन्वयः—मनुष्यो न यथा विश्वतोऽग्निर्वायुश्चाभिमृशेऽस्ति यथा तन्वा जर्भुराणः स्पृहयद्वर्णो मर्यश्रीरहं यं प्रत्यञ्चमरक्षसा मनसाऽऽजिघर्मि तथा तज्जुषेत ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—**मनुष्यो न**=**यथा** इव **विश्वतः** सर्वतो **अग्निः** शरीरस्था विद्युद् **वायुश्च अभि**+**मृशे** आभिमुख्येन मृशन्ति=सहन्ते येन तस्मै **अस्ति, यथा तन्वा** शरीरेण **जर्भुराणः** भृशं गात्राणि विनामयत् **स्पृहयद्वर्णः** यः स्पृहयद्भिर्वर्ण्यते=स्वीक्रियते स इव **मर्यश्रीः** मर्य्याणां=मनुष्याणां श्रीरिव **अहं,** यं **प्रत्यञ्चं** प्रत्यगञ्चतीति शरीरस्थं वायुम् **अरक्षसा** रक्षोवद्दुष्टतारहितेन **मनसा** चित्तेन **आ**+**जिघर्मि तथा तत्** तेजः **जुषेत** ॥ ११। २४॥

भाषार्थ—(न) जैसे (विश्वतः) सब ओर से (अग्निः) शरीरस्थ विद्युत् और वायु (अभिमृशे) मुख्य रूप से सहनशक्ति के लिये हैं, और जैसे—(तन्वा) शरीरस्थ वायु से (जर्भुराणः) शरीर के अङ्गों को मरोड़ता हुआ, (स्पृहयद्वर्णः) इच्छुक-जनों से स्वीकार किया जाता हुआ, (मर्यश्रीः) मनुष्यों की लक्ष्मी के तुल्य मैं वायु का विज्ञाता, जिस (प्रत्यञ्चम्) शरीरस्थ वायु को (अरक्षसा) राक्षसों की दुष्टता से रहित (मनसा) मनसे (आ+जिघर्मि) ग्रहण करता हूँ, वैसे (तत्) अग्नि को (जुषेत) मनुष्य सेवन करे ॥ ११। २४॥

[अग्निर्वायुश्चाभिमृशेऽस्ति······मर्यश्रीः]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्का-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमावाचक और

रौ ॥ हे मनुष्याः ! यूयं लक्ष्मी प्रापकैरग्न्यादिपदार्थैर्विदितैः कार्येषु संयुक्तैः श्रीमन्तो भवत ॥

लुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ हे मनुष्यो ! तुम लक्ष्मी को प्राप्त कराने वाले अग्नि आदि पदार्थों को जान कर उनका कार्यों में उपयोग करके श्रीमान्=धनवान् बनो ॥ ११ । २४ ॥

भा० पदार्थः—मर्यश्रीः=श्रीमान् ।

भाष्यसार—१. **वायु कैसा है**—वायु शरीर के प्रत्येक अवयव में विद्यमान है। मनुष्य शरीरस्थ वायु से ही शरीर के अङ्गों को मरोड़ता है। जो वायु का ज्ञाता है उसे वायु-विद्या के अभिलाषी वरण करते हैं, उसे अपना गुरु स्वीकार करते हैं। वायु के गुणों को जानकर और उसे कार्यों में प्रयुक्त करके मनुष्य लक्ष्मी को प्राप्त करता है, अन्य विद्वान् मनुष्यों के समान श्रीमान् हो जाता है। अतः मनुष्य दुष्टता-रहित चित्त से वायु को जाने ।

२. **अग्नि कैसा है**—अग्नि अर्थात् शरीरस्थ विद्युत् और वायु सब ओर से कष्टों को सहन करने की शक्ति प्रदान करते हैं, और अग्नि आदि पदार्थ लक्ष्मी के प्रापक हैं। इनके गुणों को जानकर और इनको कार्यों में संयुक्त करके मनुष्य श्रीमान बनें ॥

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'न' पद उपमावाचक है अतः उपमा अलङ्कार है। और आगे 'यथा—मर्यश्रीरहं' में वाचक लुप्तोपमा का भी प्रयोग किया गया है। अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि मनुष्य अग्नि और वायु के समान सहनशील हो। वाचक-लुप्तोपमा में उपमा यह है कि अग्नि और वायु के विज्ञाता विद्वान् के समान अन्य मनुष्य भी अग्नि तथा वायु के गुणों को जानें ॥ ११ । २४ ॥ ❁

सोमकः । **अग्निः=अग्निपदार्थः** ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्गृहस्थः कीदृशो भवेदित्याह ॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें, यह उपदेश किया है ॥

परि॒ वाज॑पतिः क॒विर॒ग्निर्ह॒व्यान्य॑क्रमीत् । दध॒द्रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**वाजपतिः**) अन्नादिरक्षको गृहस्थ इव (**कविः**) क्रान्तदर्शनः (**अग्निः**) प्रकाशमानः (**हव्यानि**) होतुं=ग्रहीतुं योग्यानि वस्तूनि (**अक्रमीत्**) क्रामति (**दधत्**) धरन् (**रत्नानि**) सुवर्णादीनि (**दाशुषे**) दातुं योग्याय विदुषे ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यो वाजपतिः कविर्दाता गृहस्थो दाशुषे रत्नानि दधदिवाग्निर्हव्यानि पर्य्यक्रामीत्तं त्वं जानीहि ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यो **वाजपतिः** अन्नादिरक्षको गृहस्थ **कविः** क्रान्तदर्शनः **दाता गृहस्थो दाशुषे** दातुं योग्याय विदुषे **रत्नानि** सुवर्णादीनि **दधत्** धरन् **इव अग्निः** प्रकाशमानः **हव्यानि** होतुं=ग्रहीतुं योग्यानि वस्तूनि **परि+अक्रमीत्** सर्वतः क्रामति **तं त्वं जानीहि** ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (वाजपतिः) अन्न आदि का रक्षक, (कविः) क्रान्तदर्शी, दानी गृहस्थ पुरुष है वह (दाशुषे) सत्पात्र विद्वान् के लिये (रत्नानि) सुवर्ण आदि द्रव्यों को (दधत्) धारण करता है, वैसे (अग्निः) प्रकाशमान अग्नि (हव्यानि) होम की हुई वस्तुओं को (परि+अक्र-

मीत्) सर्वत्र पहुँचा देता है, उसे तू जान ॥

[हे विद्वन् ! यो'''दाता गृहस्थो दाशुषे रत्नानि दधदिवाग्निर्हव्यानि पर्यक्रमीत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वानग्निना पृथिवीस्थ पदार्थेभ्यो धनं प्राप्य सुमार्गे सत्पात्रेभ्यो दत्त्वा विद्या प्रचारेण सर्वान् सुखयेत् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ विद्वान् पुरुष अग्नि के द्वारा पृथिवी-स्थ पदार्थों से धन को प्राप्त करके, श्रेष्ठ-मार्ग पर चलने वाले सत्पात्रों में दान करके, विद्या के प्रचार से सबको सुख प्रदान करे ॥ ११ । २५ ॥

भा० पदार्थः—दाशुषे=सत्पात्राय । रत्नानि=धनानि ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थ कैसा हो**—गृहस्थ पुरुष अन्न आदि का रक्षक, क्रान्तदर्शी, दाता, दान के पात्र विद्वानों के लिये सुवर्ण आदि रत्नों को धारण करने वाला हो।

२. **अग्नि**—अग्नि उक्त गृहस्थ पुरुष के तुल्य गुणों वाला है । वह हव्य-पदार्थ को सब ओर पहुँचा देता है । विद्वान् पुरुष उस अग्नि के द्वारा पृथिवीस्थ पदार्थों से धन को प्राप्त करके, धर्म-मार्ग में सत्पात्रों को दान करके विद्या के प्रचार से सबको सुखी रखे ॥

३. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि अग्नि गृहस्थ पुरुष के समान अन्न आदि का रक्षक है । इत्यादि ॥ ११ । २५ ॥

पायुः । **अग्निः**=सेनापतिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशः सेनापतिः कार्य्य इत्याह ॥

कैसा सेनापति करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्र॑ꣳ सहस्य धीमहि । धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**परि**) (**त्वा**) त्वाम् (**अग्ने**) विद्यया प्रकाशमान (**पुरम्**) येन सर्वान् पिपर्त्ति तत् (**वयम्**) (**विप्रम्**) विद्वांसम् (**सहस्य**) य आत्मनः सहो=बलमिच्छति तत्सम्बुद्धौ (**धीमहि**) धरेम । अत्र डुधाञ् धातोर्लिङ्आर्धधातुकत्वाच्छबभावः (**धृषद्वर्णम्**) धृषत्प्रगल्भो दृढो वर्णो यस्य तम् (**दिवेदिवे**) प्रतिदिनम् (**हन्तारम्**) (**भङ्गुरावताम्**) कुत्सिता भङ्गुराः=प्रहताः प्रकृतयो विद्यन्ते येषां तेषाम् ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**धीमहि**) यहां 'डुधाञ्' धातु के लिङ् लकार में आर्धधातुक संज्ञा होने से 'शप्' का अभाव है ॥ ११ । २६ ॥

अन्वयः—हे सहस्याऽग्ने ! यथा वयं दिवेदिवे भङ्गुरावतां पुरमग्निमिव हन्तारं धृषद्वर्णं विप्रं त्वा परिधीमहि तथा त्वमस्मान्धर ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सहस्य** य आत्मनः सहः=बलमिच्छति तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** ! विद्यया प्रकाशमान ! **यथा वयं दिवेदिवे** प्रतिदिनं **भङ्गुरावतां** कुत्सिता भङ्गुराः=प्रहताः प्रकृतयो विद्यन्ते येषां तेषां **पुरम्** येन सर्वान् पिपर्त्ति तद् **अग्निमिव**

भाषार्थ—हे (सहस्य) अपनी बल=सेना की कामना करने वाले (अग्ने) विद्या से प्रकाशमान सेनापते ! जैसे—हम लोग (दिवे दिवे) प्रतिदिन (भङ्गुरावताम्) कुत्सित स्वभाव को भङ्ग=नष्ट करने वाले पुरुषों के (पुरम्) पालक, अग्नि के

हन्तारं धृषद्वर्णं धृषत्=प्रगल्भो=दृढो वर्णो यस्य तं **विप्रं** विद्वांसं **त्वा** त्वां **परि+धीमहि** धरेम **तथा त्वमस्मान् धर** ।। २६ ।।

समान (हन्तारम्) शत्रुओं का हनन करने वाले, (धृषद्वर्णम्) उत्तम वर्ण वाले=रूपवान् (विप्रं त्वाम्) आप विद्वान् पुरुष को (परि+धीमहि) धारण करते हैं, वैसे—आप हमें धारण करो ।

[हे सहस्य अग्ने ! ···वयं···पुरमग्निमिव हन्तारं···विप्रं त्वा परिधीमहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। राजप्रजाजनैर्न्यायेन प्रजारक्षको, ऽग्निवच्छत्रुहन्ता, सर्वदा सुखप्रदः सेनेशो विधेयः ।। ११ । २६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। राजा और प्रजा के लोग न्याय से प्रजा के रक्षक, अग्नि के समान शत्रुओं के घातक और सर्वदा सुख देने वाले पुरुष को सेनापति बनावें ।। ११ । २६ ।।

भा० पदार्थः—पुरम्=न्यायेन प्रजारक्षकम् । हन्तारम्=शत्रुहन्तारम् ।

भाष्यसार—१. **सेनापति कैसा बनावें**—जो अपने बल=सेना का इच्छुक, विद्या से प्रकाशमान, जिन्होंने अपनी दुष्ट प्रकृति को नष्ट कर दिया है, उन श्रेष्ठ पुरुषों के पालक, अग्नि के समान दुष्टों का दहन करने वाला, रूपवान् और विद्वान् हो, उसे सेनापति बनावें । वह न्याय से प्रजा का रक्षक, अग्नि के समान शत्रुओं का घातक और सर्वदा सुखदायक हो ।।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे राजपुरुष और प्रजा-जन सेनापति को बनाते हैं, वैसे सेनापति भी उनको धारण करे ।। ११ । २६ ।।

गृत्समदः । **अग्निः=सभेशः** ।। आर्षी । पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनः सभेशः कीदृशो भवेदित्याह ।।

फिर सभाध्यक्ष कैसा होना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ।। २७ ।।

पदार्थः—(**त्वम्**) (**अग्ने**) अग्निवत्प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! (**द्युभिः**) दिनैरिव प्रकाशमानैर्न्यायादिगुणैः (**त्वम्**) (**आशुशुक्षणिः**) शीघ्रं २ दुष्टान् क्षिणोति=हिनस्तीव (**त्वम्**) (**अद्भ्यः**) वायुभ्यो जलेभ्यो वा (**त्वम्**) (**अश्मनः**) मेघात्पाषाणाद्वा । **अश्मेति मेघना० ।। निघण्टु १ । १० ।।** (**परि**) सर्वतोभावे (**त्वम्**) (**वनेभ्यः**) जङ्गलेभ्यो रश्मिभ्यो वा (**त्वम्**) (**ओषधीभ्यः**) सोमलतादिभ्यः (**त्वम्**) (**नृणाम्**) मनुष्याणाम् (**नृपते**) नृणां पालक (**जायसे**) प्रादुर्भवसि (**शुचिः**) पवित्रः ।। २७ ।।

इमं मन्त्रं यास्कमुनिरेवं व्याचष्टे—त्वमग्ने द्युभिरहोभिस्त्वमाशुशुक्षणिराशु इति च शु इति च क्षिप्रनामनी भवतः क्षणिरुत्तरः क्षणोतेराशु शुचा क्षणोतीति वा सनोती वा शुक् शोचतेः पञ्चम्यर्थे वा प्रथमा तथाहि वाक्यसंयोग आ इत्याकार उपसर्गः पुरस्ताच्चिकीर्षितेऽनुत्तर आशुशोचयिषुरिति शुचिः शोचतेर्ज्वलतिकर्मणोऽयमपीतरः शुचिरेतस्मादेव निष्षिक्तमस्मात्पापकर्मिति नैरुक्ताः ।। निरु० ६ । १ ।।

प्रमाणार्थ—(**अश्मनः**) 'अश्म' शब्द निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पढ़ा है । निरु० (६ । १) में यास्कमुनि ने इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार की है:—

अन्वयः—हे नृपते अग्ने सभाध्यक्ष राजन् ! यस्त्वं द्युभिः सूर्य्य इव त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां मध्ये शुचिः परिजायसे तस्मात्त्वामाश्रित्य वयमप्येवंभूता भवेम ॥ २७ ॥

द्युभिः=अहोभिः । यहां द्यु शब्द दिवसवाची है । 'आशुशुक्षणिः' शब्द के महर्षि यास्क ने चार निर्वचन किये हैं:—

(१) शीघ्रवाची 'आशु' तथा 'शु' पूर्वक हिंसार्थक 'क्षणु' धातु से औणादिक 'इन्' प्रत्यय लगाने से (**आशु शु+क्षणु+इन्**) आशुशुक्षणि शब्द सिद्ध हुआ है । जिसका अर्थ है—अतिशीघ्र नाश करने वाला अग्नि । क्योंकि अग्नि प्रत्येक पदार्थ को जला कर नष्ट कर देता है ।

(२) शीघ्रवाची आशु तथा ज्वलानार्थक शुच् शब्द से परे हिंसार्थक क्षणु धातु से इन् प्रत्यय रखने से (**आशु-शुच्-क्षणु+इन्**) 'आशुशुक्षणिः' शब्द बना है । जिसका अर्थ है—अग्नि । क्योंकि अग्नि शीघ्र ही प्रज्वलित होकर वस्तुओं का नाश कर देता है ।

(३) शीघ्रवाची आशु तथा ज्वलानार्थक शुच् उपपद से परे 'सन् (**षण**) सम्भक्तौ' धातु से **इन् प्र**त्यय रखने से (**आशुशुच्+सन्+इन्**) यह शब्द बना है । जिसका अर्थ भी अग्नि है क्योंकि यह शीघ्र प्रज्वलित होकर अपने प्रकाश से पृथक् पृथक् वस्तुओं को प्रकाशित करता है ।

(४) अथवा आङ् उपसर्ग पूर्वक इच्छार्थक सन् प्रत्ययान्त 'शुच्' धातु से औणादिकअनि प्रत्यय रखने से (**आ-शुशुक्ष+अनि**) यह शब्द बना है । जिसका अर्थ है—अग्नि को सब प्रकार से प्रदीप्त करने की इच्छा वाला यजमान ।

'शुचिः' शब्द ज्वलानार्थक शुच् धातु से कित् इन् प्रत्यय करने से बना है । शुद्ध्यर्थक शुचि शब्द भी ज्वलानार्थक शुच् धातु से बना है । क्योंकि शुद्धि से पाप अथवा मलीनता नष्ट हो जाती है ।

सपदार्थान्वयः—**हे नृपते** नृणां पालक **अग्ने=सभाध्यक्ष राजन्** अग्निवत् प्रकाशमान न्यायाऽधीश राजन् ! **यस्त्वं द्युभिः** दिनैरिव प्रकाशमानैर्न्यायाऽऽदिगुणैः **सूर्य्य इव, त्वम् आशुशुक्षणिः** शीघ्रं शीघ्रं दुष्टान् क्षिणोति=हिनस्तीव **त्वम् अद्भ्यः** वायुभ्यो जलेभ्यो वा **त्वम् अश्मनः** मेघात् पाषाणाद्वा **त्वं वनेभ्यः** जङ्गलेभ्यो रश्मिभ्यो वा **त्वम् ओषधिभ्यः** सोमलतादिभ्यः **त्वं नृणां** मनुष्याणां **मध्ये शुचिः** पवित्रः **परि+जायसे** सर्वतोभावेन प्रादुर्भवसि ! **तस्मात्त्वामाश्रित्य वयमपि एवम्भूता भवेम** ॥ ११॥ २७ ॥

भाषार्थ—हे (नृपते) नरों के पालक (अग्ने) विद्या से अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश राजन् ! (त्वम्) आप (द्युभिः) सूर्य के समान प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से युक्त हो/(त्वम्) आप (आशुशुक्षणिः) शीघ्र दुष्टों का हिंसन करने वाले हो । (त्वम्) आप (अद्भ्यः) वायु वा जलों से, (अश्मनः) मेघ वा पाषाण से, (त्वम्) आप (वनेभ्यः) जंगलों वा किरणों से, (त्वम्) आप (ओषधिभ्यः) सोमलता आदि ओषधियों से उपकार लेने वाले हो । (नृणाम्) मनुष्यों में (शुचिः) पवित्र (परि+जायसे) प्रसिद्ध हो । इसलिये आपका आश्रय लेकर हम लोग भी ऐसे ही बनें ॥

[हे नृपते ! अग्ने ! यस्त्वं द्युभिः सूर्य इव त्वमाशुशुक्षणिः ···शुचिः परिजायसे]

भावार्थः—यो राजा, सभ्यः प्रजाजनो वा सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यो गुणग्रहणविद्याक्रियाकौशला-

भावार्थ—जो राजा वा सभ्य पुरुष सब पदार्थों से गुणों का ग्रहण, विद्या और क्रिया-

भ्यामुपकारान् ग्रहीतुं शक्नोति, धर्माचरणेन पवित्रः शीघ्रकारी च भवति, स सर्वाणि सुखानि प्राप्नोति; नेतरोऽलसः ॥ ११ । २७ ॥

कौशल से उपकारों को ग्रहण कर सकता है, और जो धर्माचरण से पवित्र तथा शीघ्रकारी होता है वह सब सुखों को प्राप्त करता है; दूसरा आलसी पुरुष नहीं ॥ ११ । २७ ॥

भा० पदार्थः—नृपते=राजन् !॥ अग्ने=सभ्य प्रजाजन ! ॥ आशुशुक्षणि=शीघ्रकारी । शुचिः=धर्माचरणेन पवित्रः ॥

भाष्यसार—**सभापति कैसा हो**—सभापति नरों का पालक, अग्नि के समान प्रकाशमान न्यायाधीश, दिनों के तुल्य प्रकाशमान न्याय आदि गुणों से प्रकाशित सूर्य के समान, दुष्टों का शीघ्र हनन करने वाला हो। वायु, जल, मेघ, पाषाण=पत्थर, जङ्गल, रश्मि=किरण सोमलता आदि ओष-धियों से गुणों का तथा विद्या और क्रियाकौशल से उपकार ग्रहण करने वाला, धर्माचरण से सब मनुष्यों में पवित्र, कार्यों को शीघ्र करने वाला हो ॥ ११ । २७ ॥

गृत्समदः । **अग्निः**=**विद्युत्** ॥ भुरिक् प्रकृतिः । धैवतः ॥

मनुष्याः किं कृत्वा कस्माद्विद्युतं गृह्णीयुरित्याह ॥

मनुष्य क्या करके किस पदार्थ से विद्युत् को ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॒ पूष्णो॒ हस्ता॑भ्याम् ।
पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामि ।
ज्योति॑ष्मन्तं त्वाग्ने सु॒प्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम् ।
शि॒वं प्र॒जाभ्योऽहि॑ꣳसन्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नामः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) प्रकाशमानस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सर्वस्योत्पादकस्येश्वरस्य (**प्रसवे**) प्रसूतेऽस्मिन् संसारे (**अश्विनोः**) द्यावापृथिव्योराकर्षणधारणाभ्यामिव (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) प्राणस्य बलपराक्रमाभ्यामिव (**हस्ताभ्याम्**) (**पृथिव्याः**) (**सधस्थात्**) सहस्थानात् (**अग्निम्**) विद्युतम् (**पुरीष्यम्**) सुखैः पूरकेषु भवम् (**अङ्गिरस्वत्**) वायुवद्वर्त्तमानम् (**खनामि**) निष्पादयामि (**ज्योतिषमन्तम्**) बहूनि ज्योतींषि विद्यन्ते यस्मिंस्तम् (**त्वा**) त्वाम् (**अग्ने**) भूगर्भादिविद्याविद्विद्वन् (**सुप्रतीकम्**) सुष्ठु प्रतियन्ति सुखानि यस्मात्तम् (**अजस्रेण**) निरन्तरेण (**भानुना**) दीप्त्या (**दीद्यतम्**) देदीप्यमानम् (**शिवम्**) मङ्गलमयम् (**प्रजाभ्यः**) प्रसूताभ्यः (**अहिंसन्तम्**) अताडयन्तम् (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षात् (**सधस्थात्**) सहस्थानात् (**अग्निम्**) वायुस्थं विद्युतम् (**पुरीष्यम्**) पालकेषु साधनेषु साधुम् (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मवायुवद्वर्त्तमानम् (**खनामः**) विलिखामः ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे अग्ने शिल्पविद्याविद्विद्वन् ! यथाऽहं सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां त्वा पुरस्कृत्य पृथिव्याः सधस्थात्पुरीष्यं ज्योतिष्मन्तमजस्रेण भानुना दीद्यतं पुरीष्यमग्निमङ्गि-रस्वत्खनामि तथा त्वामाश्रिता वयं पृथिव्याः सधस्थादङ्गिरस्वदहिंसन्तं पुरीष्यं प्रजाभ्यः शिवमग्निं खनामस्तथा सर्व आचरन्तु ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=शिल्प-**विद्याविद्विद्वन्** भूगर्भादिविद्याविद्विद्वन् ! **यथाऽहं सवितुः** सर्वस्योत्पादकस्येश्वरस्य **देवस्य** प्रकाश-

भाषार्थ—हे (अग्ने) शिल्पविद्या एवं भूगर्भ आदि विद्या के जानने वाले विद्वान् ! जैसे मैं (सवितुः) सबके उत्पादक (देवस्य) प्रकाशमान

मानस्य **प्रसवे** प्रसूतेऽस्मिन् संसारे, **अश्विनोः** द्यावापृथिव्योराकर्षणधारणाभ्यामिव **बाहुभ्यां, पूष्णः** प्राणस्य बलपराक्रमाभ्यामिव **हस्ताभ्यां, त्वा** त्वां **पुरस्कृत्य पृथिव्याः सधस्थात्** सहस्थानात् **पुरीष्यं** सुखैः पूरकेषु भवं, **ज्योतिष्मन्तं** बहूनि ज्योतींषि विद्यन्ते यस्मिँस्तम्, **सुप्रतीकं** सुष्ठु प्रतीयन्ति सुखानि यस्मात्तम्, **अजस्रेण** निरन्तरेण **भानुना** दीप्त्या **दीद्यतं** देदीप्यमानं, **पुरीष्यं** पालकेषु साधनेषु साधुम्, **अग्निं** विद्युतम्, **अङ्गिरस्वत्** वायुवद्वर्त्तमानं **खनामि** निष्पादयामि; **तथा [त्वा]=त्वामश्रिता वयं पृथिव्याः** अन्तरिक्षात् **सधस्थात्** सहस्थानाद् **अङ्गिरस्वत्** सूत्रात्मवायुवद्वर्तमानम्, **अहिंसन्तम्** अताडयन्तं, **पुरीष्यं** पालकेषु साधनेषु भवं, **प्रजाभ्यः** प्रसूताभ्यः **शिवं** मङ्गलमयम्, **अग्निं** वायुस्थं विद्युतं **खनामः** विलिखामः ; **तथा सर्वं आचरन्तु** ॥ २८ ॥

ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस संसार में (अश्विनोः) द्युलोक और पृथिवी के आकर्षण और धारण शक्ति के समान (बाहुभ्याम्) अपनी भुजाओं से, (पूष्णः) प्राण के बल और पराक्रम के तुल्य (हस्ताभ्याम्) अपने हाथों से (त्वा) आपको आगे करके (पृथिव्याः) पृथिवी के (सधस्थात्) स्थान से (पुरीष्यम्) सुखों से पूर्ण करने वाले पदार्थों में विद्यमान, (ज्योतिष्मन्तम्) नाना ज्योतियों से (युक्त), (सुप्रतीकम्) उत्तम सुखदायक (अजस्रेण) निरन्तर (भानुना) दीप्ति से दीद्यतम् देदीप्यमान, (पुरीष्यम्) पालक साधनों में श्रेष्ठ (अग्निम्) विद्युत् को जो (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान सर्वत्र व्यापक है उसे (खनामि) सिद्ध करता हूँ; वैसे [त्वा] आपके आश्रित होकर हम लोग (पृथिव्याः) आकाश के (सधस्थात्) स्थान से (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म रूप वायु के समान सर्वत्र विद्यमान, (अहिंसन्तम्) दुःख रहित, (पुरीष्यम्) पालक साधनों में विद्यमान, (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवम्) मङ्गलमय, (अग्निम्) वायु में स्थित विद्युत् को (खनामः) सिद्ध करते हैं, वैसे सब सिद्ध करें ॥ ११ । २८ ॥

[अहं···पुरीष्यमग्निं···खनामि]

भावार्थः—ये राजप्रजाजनाः सर्वत्र स्थितं विद्युद्रूपमग्निं सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः साधनोपसाधनैः प्रसिद्धीकृत्य कार्येषु प्रयुञ्जते,

भावार्थ—जो राजपुरुष और प्रजा जन सर्वत्र विद्यमान विद्युत् रूप अग्नि को सब पदार्थों से साधन-उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके उसका कार्यों में प्रयोग करते हैं—

[शिवम्]

ते शंकरमैश्वर्यं लभन्ते ।

वे मङ्गलमय ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ।

[तात्पर्यमाह—]

न हि किञ्चिदपि प्रजातं वस्तु विद्युद्व्याप्तया विना वर्त्तत इति विजानन्तु ॥ ११ । २८ ॥

कोई भी उत्पन्न वस्तु विद्युत् की व्याप्ति से रहित नहीं है, ऐसा सब लोग जानें ॥ ११ । २८ ॥

भा० पदार्थः—अग्निम्=सर्वत्र स्थितं विद्युद्रूपमग्निम् । शिवम्=शंकरमैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्य किससे विद्युत् को ग्रहण करें**—सकल जगत् के उत्पादक, प्रकाशमान ईश्वर के उत्पन्न किये इस संसार में द्युलोक और भूलोक के आकर्षण और धारण रूप भुजाओं से, वायु के बल और पराक्रम रूप हाथों से विद्वान् लोग शिल्पविद्या तथा भूगर्भविद्या के वेत्ता पुरुष को अग्रणी बनाकर पृथिवी से अग्नि=विद्युत् को ग्रहण करते हैं ।

२. **विद्युत्**—अग्नि अर्थात् विद्युत् सुखों से पूर्ण करने वाले पदार्थों में विद्यमान है, नाना ज्योतियों वाला है, उत्तम सुखों का दाता है, निरन्तर दीप्ति से देदीप्यमान है, आकाश में सूक्ष्म वायु के समान विद्यमान है, हिंसा रहित है, प्रजा के लिये मङ्गलमय है, वायु में स्थित है। यह विद्युत् रूप अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान है। उनसे साधन-उपसाधनों के द्वारा प्रसिद्ध करके उसका कार्यों में प्रयोग करें और उससे मङ्गलमय ऐश्वर्य को प्राप्त करें। कोई भी वस्तु विद्युत् की व्याप्ति से रहित नहीं है॥ ११। २८॥ ●

गृत्समदः। **अग्निः**=**विद्युत्**॥ स्वराट्पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशं गृह्णीयुरित्याह॥

फिर मनुष्य कैसी विद्युत् को ग्रहण करें, यह उपदेश किया है॥

अपां पृष्ठम॑सि योनि॑र॒ग्नेः स॑मु॒द्रम॒भित॒ः पिन्व॑मानम्।
वर्धमानो म॒हाँ२ऽ आ च॒ पुष्क॑रे दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थस्व॥ २९॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानाम् (**पृष्ठम्**) आधारः (**असि**) (**योनिः**) संयोगविभागवित् (**अग्नेः**) सर्वतोऽभिव्याप्तस्य विद्युद्रूपस्य सकाशात् प्रचलन्तम् (**समुद्रम्**) सम्यगूर्ध्वं द्रवन्त्यापो यस्मात्सागरात्तम् (**अभितः**) सर्वतः (**पिन्वमानम्**) सिञ्चन्तम् (**वर्धमानः**) यो विद्यया क्रियाकौशलेन नित्यं वर्धते (**महान्**) पूज्यः (**आ**) (**च**) सर्वमूर्त्तद्रव्यसमुच्चये (**पुष्करे**) अन्तरिक्षे वर्त्तमानायाः। **पुष्करमित्यन्तरिक्षना०॥ निघं० १। ३॥** (**दिवः**) दीप्तेः (**मात्रया**) विभागेन (**वरिम्णा**) उरोर्बहोर्भावेन (**प्रथस्व**) विस्तृतसुखो भव॥ २९॥

प्रमाणार्थ—(**पुष्करे**) 'पुष्कर' शब्द निघं० (१। ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पढ़ा है॥ ११। २९॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यतोऽग्नेर्योनिर्महान् वर्धमानस्त्वमसि तस्मादभितः पिन्वमानमपां पृष्ठं पुष्करे दिवो मात्रया वर्धमानं समुद्रं तत्स्थान् पदार्थांश्च विदित्वा वरिम्णाऽऽप्रथस्व॥ २९॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! यतो अग्नेः** सर्वतोऽभिव्याप्तस्य विद्युद्रूपस्य सकाशात् प्रचलन् **योनिः** संयोगविभागविन् **महान्** पूज्यः **वर्धमानः** यो विद्यया क्रियाकौशलेन नित्यं वर्धते, **त्वमसि, तस्माद् अभितः** सर्वतः **पिन्वमानं** सिञ्चन्तम्, **अपां** जलानां पृष्ठम् आधारः, **पुष्करे** अन्तरिक्षे वर्त्तमानायाः **दिवः** दीप्तेः **मात्रया** विभागेन **वर्धमानं समुद्रं** सम्यगूर्ध्वं द्रवन्त्यापो यस्मात्सागरात्तं **तत्स्थान् पदार्थान् च** सर्वमूर्त्तद्रव्याणि **विदित्वा वरिम्णा** उरोर्बहोर्भावेन **आ+प्रथस्व** विस्तृतसुखो भव॥ २९॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! क्योंकि आप (अग्नेः) सर्वत्र व्यापक विद्युत् रूप अग्नि से गति करने वाले, (योनिः) संयोग-विभाग को जानने वाले, (महान्) पूज्य और (वर्धमानः) विद्या के द्वारा क्रिया-कौशल से नित्य वृद्धि को प्राप्त करने वाले (असि) हो, अतः (अभितः) सब ओर (पिन्वमानम्) जल बरसाने वाले, (अपाम्) जलों के (पृष्ठम्) आधार, (पुष्करे) अन्तरिक्ष=आकाश में विद्यमान (दिवः) दीप्ति की (मात्रया) मात्रा से बढ़ने वाले, (समुद्रम्) जिससे जल ऊपर को जाते हैं उस सागर को तथा (च) उसमें विद्यमान सब मूर्त्त पदार्थों को जानकर (वरिम्णा) आधिक्य से (आ+प्रथस्व) विस्तृत सुख वाले बनो॥ ११। २९॥

[अभितः पिन्वमानमर्वां पृष्ठं···वरिम्णाऽऽप्रथस्व]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं यथा मूर्त्तेषु पृथिव्यादिषु पदार्थेषु विद्युद्वर्त्तते तथाऽप्स्वपि मत्वा, तामुपकृत्य विस्तृतानि सुखानि सम्पादयत ॥ ११ । २९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जैसे पृथिवी आदि मूर्त्त पदार्थों में विद्युत् विद्यमान है वैसे जल में भी है ऐसा मानकर उससे उपकार ग्रहण करके विस्तृत सुखों को सिद्ध करो ॥ ११ । २९ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान्**—सर्वत्र व्याप्त विद्युत् रूप अग्नि से गति करने वाला—चलने वाला, संयोग और विभाग का वेत्ता, पूज्य, विद्या के द्वारा क्रियाकौशल से नित्य वृद्धि को प्राप्त करने वाला हो ।

२. **विद्युत्**—मनुष्य उक्त विद्वान् से सागर और उसमें स्थित पदार्थों को जानें । जो सागर सब ओर से सेचन करने वाला, जलों का आधार, अन्तरिक्ष में विद्यमान दीप्ति की मात्रा (**चन्द्र**) से बढ़ने वाला है ।

जैसे पृथिवी आदि मूर्त्त पदार्थों में विद्युत् विद्यमान है वैसे जल (**समुद्र**) में भी है । उससे मनुष्य उपकार ग्रहण करके सुखों को सिद्ध करें ॥ ११ । २९ ॥

गृत्समदः । **दम्पती**=**स्त्रीपुरुषौ** ॥ विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ स्त्रीपुरुषाभ्यां गृहे स्थित्वा किं साधनीयमित्याह ॥

अब स्त्री और पुरुष घर में रह के क्या सिद्ध करें, यह उपदेश किया है ॥

शर्म॑ च॒ स्थो वर्म॑ च॒ स्थोऽछि॑द्रे बहु॒लेऽउ॒भे । व्यच॑स्वती॒ सं व॑साथां भृतम॒ग्निं पुरी॒ष्य॒म् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**शर्म्म**) गृहम् (**च**) तत्सामग्रीम् (**स्थः**) भवतः (**वर्म्म**) सर्वतो रक्षणम् (**च**) तत्सहायान् (**स्थः**) (**अच्छिद्रे**) अदोषे (**बहुले**) बहूनर्थान् लान्ति याभ्यां ते (**उभे**) द्वे (**व्यचस्वती**) सुखव्याप्तियुक्ते (**सन्**) (**वसाथाम्**) आच्छादयतम् (**भृतम्**) धृतं (**अग्निम्**) (**पुरीष्यम्**) पालनेषु साधुम् ॥ ११ । ३० ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां शर्म्म च प्राप्तौ स्थः वर्म्म चोभे बहुले व्यचस्वती अच्छिद्रे विद्युदन्तरिक्ष इव स्थः । तत्र गृहे भृतं पुरीष्यमग्निं गृहीत्वा संवसाथाम् ॥ ११ । ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! **युवां**—**शर्म्म** गृहं **च** तत्सामग्रीं **प्राप्तौ स्थः** भवतः, **वर्म्म** सर्वतो रक्षणं **च** तत्सहायान् **उभे** द्वे **बहुले** बहूनर्थान् लान्ति याभ्यां ते **व्यचस्वती** सुखव्याप्तियुक्ते **अच्छिद्रे**=**विद्युदन्तरिक्षे** अदोषे **इव स्थः** भवतः। **तत्र गृहे भृतं** धृतं **पुरीष्यं** पालनेषु साधुम् **अग्निं गृहीत्वा सम्**+**वसाथाम्** आच्छादयतम् ॥ ३० ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—(शर्म्म) घर (च) और घर की सामग्री को प्राप्त हुये (स्थः) हो, तथा (वर्म्म) सब ओर से सुरक्षा (च) और सुरक्षा में सहायक पदार्थों को प्राप्त हो, और (उभे) दोनों (बहुले) बहुत पदार्थों को प्राप्त कराने वाले, (व्यचस्वती) सुख से व्याप्त (अच्छिद्रे) दोष-रहित विद्युत् और अन्तरिक्ष के समान (स्थः) हो । सो उस घर में (भृतम्) विद्यमान (पुरीष्यम्) पालकों में श्रेष्ठ (अग्निम्) विद्युत् को ग्रहण करके (सम्+वसाथाम्) उसे आच्छादित करो ॥११।३०॥

[हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां शर्म च प्राप्तौ स्थः, वर्म च]

भावार्थः—गृहस्थैर्ब्रह्मचर्येण सत्करणोपकरणक्रिया कुशलां विद्यां संगृह्य बहुद्वाराणि, सर्वर्तुसुखप्रदानि, सर्वतोरक्षान्वितानि, अग्न्यादिसाधनोपेतानि गृहाणि निर्माय—

भावार्थ—गृहस्थ लोग ब्रह्मचर्य से सत्कार, उपकार और क्रिया-कौशल की विद्या को ग्रहण करके बहुत द्वारों वाले, सब ऋतुओं में सुखदायक, सब ओर से सुरक्षित, अग्नि=विद्युत् आदि साधनों से युक्त घरों को बनाकर—

[संवसाथातम्]

तत्र सुखेन वसितव्यम् ॥ ११ । ३० ॥

उनमें सुख से निवास करें ॥ ११ । ३० ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-पुरुष घर में क्या सिद्ध करें**—स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य के द्वारा सत्कार, उपकार और क्रियाकौशल की विद्या को प्राप्त करके घर और उसकी सामग्री को प्राप्त करें। सब ओर से रक्षा और उसमें सहायक घर आदि का निर्माण करें। घर ऐसे बनावें जो बहुत द्वारों वाले, सब ऋतुओं में सुखदायक, सब ओर से सुरक्षित तथा पालक अग्नि आदि साधनों से युक्त हों।

२. **स्त्री-पुरुष**—घर और तत्सम्बन्धी सामग्री से युक्त, सब ओर से रक्षित तथा रक्षा में सहायक सामग्री से सम्पन्न, विद्युत् और अन्तरिक्ष के समान निर्दोष हों। विद्युत् और अन्तरिक्ष बहुत अर्थों के प्रापक और सुख से व्याप्त हैं, वैसे स्त्री-पुरुष भी होवें ॥ ११ । ३० ॥

गृत्समदः । **जायापती**=स्त्रीपुरुषौ ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री और पुरुष घर में रहकर क्या क्या सिद्ध करें, इसका फिर उपदेश किया है ॥

संवसाथाᳪ स्वर्विदा समीची ऽ उरसा त्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥३१॥

पदार्थः—(सम्) सम्यक् (**वसाथाम्**) आच्छादयतम् (**स्वर्विदा**) यौ सुखं विन्दतस्तौ (**समीची**) यौ सम्यगञ्चतो=विजानीतस्तौ (**उरसा**) अन्तःकरणेन (**त्मना**) आत्मना (**अग्निम्**) विद्युतम् (**अन्तः**) सर्वेषां मध्ये वर्त्तमानम् (**भरिष्यन्ती**) सर्वान् पालयन्तौ (**ज्योतिष्मन्तम्**) प्रशस्तज्योतिर्युक्तम् (**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**इत्**) एव ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे स्त्री पुरुषौ ! युवां यदि समीची भरिष्यन्ती स्वर्विदा सन्तौ ज्योतिष्मन्तमन्तरग्निमित् त्मनोरसाऽजस्त्रं संवसाथां तर्हि श्रियमश्नुवाताम् ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! **युवां यदि समीची** यौ सम्यगञ्चतो=विजानीतस्तौ, **भरिष्यन्ती** सर्वान् पालयन्तौ **स्वर्विदा** यौ सुखं विन्दतस्तौ **सन्तौ; ज्योतिष्मन्तं** प्रशस्तज्योतिर्युक्तम्, **अन्तः** सर्वेषां मध्ये वर्त्तमानम्, **अग्निं** विद्युतम् **इत् एव त्मना** आत्मना **उरसा** अन्तःकरणेन **अजस्रं** निरन्तरं **सम्+वसाथां** सम्यग् आच्छादयतं **तर्हि श्रियमश्नुवाताम्** ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम यदि (समीची) अच्छी तरह से जानने वाले (भरिष्यन्ती) सबका पालन करने वाले और (स्वर्विदा) सुख को प्राप्त करने वाले होकर, (ज्योतिष्मन्तम्) प्रशंसनीय ज्योति से युक्त, (अन्तः) सबके अन्दर विद्यमान (अग्निम्) विद्युत् को (इत्) ही (त्मना) आत्मा और (उरसा) अन्तःकरण से (सम्+वसाथाम्) उत्तम रीति से आच्छादित करो, तो धन को

प्राप्त होओ ॥ ११ । ३१ ॥

[हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां'''अग्निमित् त्वमनोरसाऽ जस्त्रं संवसाथां तर्हि श्रियमश्नुवाताम्]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्युतमुत्पाद्य स्वीकर्त्तुं शक्नुवन्ति, न च ते व्यवहारे दरिद्रा भवन्ति ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्युत् को उत्पन्न करके स्वीकार कर सकते हैं; वे व्यवहार में दरिद्र नहीं होते ॥ ११ । ३१ ॥

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुष घर में क्या सिद्ध करें**—स्त्री और पुरुष उत्तम विज्ञान वाले, सबका पालन करने वाले, सुख को प्राप्त करने वाले हों। वे प्रशंसनीय ज्योति वाली, सब पदार्थों में विद्यमान, अग्नि=विद्युत् को आत्मा और अन्तःकरण से सिद्ध करें। जो मनुष्य विद्युत् को उत्पन्न करके स्वीकार करते हैं वे लोक-व्यवहार में दरिद्र नहीं होते ॥ ११ । ३१ ॥

भारद्वाजः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ आर्षी-त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वान्विद्युतं कथमुत्पादयेदित्याह ॥

विद्वान् पुरुष बिजली को कैसे उत्पन्न करे, यह उपदेश किया है ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा ऽ अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**पुरीष्यः**) पुरीषेषु=पशुषु साधुः (**असि**) (**विश्वभरा**) यो विश्वं बिभर्त्ति सः (**अथर्वा**) अहिंसको विद्वान् (**त्वा**) त्वाम् (**प्रथमः**) आद्यः (**निः**) नितराम् (**अमन्थत्**) (**अग्ने**) संपादितक्रियाकौशल (**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन् ! (**पुष्करात्**) अन्तरिक्षात् (**अधि**) (**अथर्वा**) हिंसादिदोषरहितः (**निः**) (**अमन्थत**) (**मूर्ध्नः**) मूर्धेव वर्त्तमानस्य (**विश्वस्य**) समग्रस्य संसारस्य (**वाघतः**) मेधावी ॥ **वाघ इति मेधाविना० ॥ निघं० ३ । १५ ॥ ३२ ॥**

प्रमाणार्थ—(**वाघतः**) 'वाघ' शब्द निघं० (३ । १५) में मेधावी-नामों में पढ़ा है ॥ ११ । ३२ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यो वाघतो भवान् पुरीष्योसि तं त्वाऽथर्वा प्रथमो विश्वभरा विश्वस्य मूर्धो वर्त्तमानात्पुष्करादध्यग्निं निरमन्थत्स ऐश्वर्य्यमाप्नोति ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः— हे **अग्ने**=**विद्वन्** सम्पादितक्रियाकौशल ! **यो वाघतः** मेधावी **भवान् पुरीष्यः** पुरीषेषु=पशुषु साधुः **असि**, **तं त्वा** त्वाम् **अथर्वा** अहिंसको विद्वान् **प्रथमः** आद्यः **विश्वभराः** यो विश्वं बिभर्त्ति सः, **विश्वस्य** समग्रस्य संसारस्य **मूर्ध्नः** मूर्धेव वर्त्तमानस्य **वर्त्तमानात् पुष्करात्** अन्तरिक्षाद् **अधि अग्निं निः+अमन्थत्** नितराम् अमन्थत्, **स ऐश्वर्य्यमाप्नोति** ॥ ३२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) क्रिया-कौशल को सिद्ध करने वाले विद्वान् ! आप (वाघतः) मेधावी तथा (पुरीष्यः) पशुओं को सुख देने वाले (असि) हो, सो (त्वा) आपको (अथर्वा) अहिंसक विद्वान् जो (प्रथमः) आदिम (विश्वभराः) विश्व का धारण-पोषण करने वाला है वह (विश्वस्य) समग्र संसार के (मूर्ध्नः) शिर के समान (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से अग्नि=विद्युत् का (निः+अमन्थत्) मन्थन करता है, वह ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ॥ ११ । ३२ ॥

[हे अग्ने=विद्वन्...वाघतो भवान्...अग्निं निरमन्थत्]

भावार्थः—येऽस्मिन् जगति विद्वांसो भवेयुस्ते सुविचार-पुरुषार्थाभ्यामग्न्यादिविद्यां प्रसिद्धीकृत्य सर्वेभ्यः शिक्षेरन् ॥ ११ । ३२ ॥

भावार्थ—जो इस जगत् में विद्वान् हों वे सुविचार और पुरुषार्थ से अग्नि-आदि विद्या को सिद्ध करके सबको सिखलावें ॥ ११ । ३२ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् विद्युत् को कैसे उत्पन्न करें**—विद्वान् पुरुष क्रियाकौशल को सिद्ध करने वाला, मेधावी, गौ, आदि पशुओं को सुख देने वाला, अहिंसक शुभ कर्मों में प्रथम, विश्व का धारण-पोषण करने वाला हो। वह समग्र संसार के शिर के तुल्य अन्तरिक्ष से अग्नि=विद्युत् को उत्पन्न करे। विद्वान् पुरुष सुविचार और पुरुषार्थ के द्वारा अग्नि=विद्युत्-विद्या को सिद्ध करके सबको सिखलावें ॥ ११ । ३२ ॥ ●

भारद्वाजः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृदगायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् पुरुष विद्युत् को कैसे उत्पन्न करे, इसका फिर उपदेश किया है ॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे ऽ अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**तम्**) (**उ**) वितर्के (**त्वा**) त्वाम् (**दध्यङ्**) यो दधीन्=सुखधारकानग्न्यादिपदार्थानञ्चति सः (**ऋषिः**) वेदार्थवित् (**पुत्रः**) पवित्रः शिष्यः (**ईधे**) प्रदीपयेत्। **अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तकारलोपः** (**अथर्वणः**) अहिंसकस्य विदुषः (**वृत्रहणम्**) यथा सूर्य्यो वृत्रं हन्ति तथा शत्रुहन्तारम् (**पुरन्दरम्**) यः शत्रूणां पुराणि दृणाति तम् ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(इधे) यहाँ 'लोपस्त' आत्मनेपदेषु [७ । १ । ४१] से तकार का लोप है ॥

अन्वयः—हे राजन् ! यथाऽथर्वणः पुत्रो दध्यङ्ङृषिरु सकलविद्याविद्वृत्रहणं पुरन्दरमीधे तथैतं सर्वे विद्वांसो विद्याविनयाभ्यां वर्द्धयन्तु ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यथा **अथर्वणः** अहिंसकस्य विदुषः **पुत्रः** पवित्रः शिष्यः **दध्यङ्** यो दधीन्=सुखधारकानग्न्यादिपदार्थानञ्चति सः, **ऋषिः** वेदार्थविद् **उ** सवितर्कं **सकलविद्याविद्**, **वृत्रहणं** यथा सूर्य्यो वृत्रं हन्ति तथा शत्रुहन्तारं, **पुरन्दरं** यः शत्रूणां पुराणि दृणाति तम्, **ईधे** प्रदीपयेत्, **तथैतं** [**तम्**] [**त्वा**] त्वां **सर्वे विद्वांसो विद्याविनयाभ्यां वर्द्धयन्तु** ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे (अथर्वणः) अहिंसक विद्वान् का (पुत्रः) पवित्र शिष्य जो (दध्यङ्) सुखों को धारण करने वाले अग्नि आदि पदार्थों का ज्ञाता है वह (ऋषिः) वेदार्थ का वेत्ता एवं (उ) विचारपूर्वक सकल विद्याओं का ज्ञाता होकर (वृत्रहणम्) जैसे सूर्य वृत्र का हनन करता है वैसे शत्रुओं के हन्ता (पुरन्दरम्) शत्रुओं के पुरों का विदारण करने वाले इन्द्र=राजा को (ईधे) प्रकाशित करे, वैसे इस [तम्] उस (त्वा) आप राजा को सब विद्वान् विद्या और विनय से बढ़ावें।

[अथर्वणः पुत्रो दध्यङ् ऋषिरुसकलविद्याविद् वृत्रहणं पुरन्दरमीधे]

भावार्थः—ये याश्च साङ्गोपाङ्गान् वेदा-

भावार्थ—जो साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़

नधीत्य विद्वांसो विदुष्यश्च भवेयुस्ते ताश्च राजपुत्रादीन् राजकन्यादीँश्च विदुषो विदुषीश्च संपाद्य, ताभिर्धर्मेण राजप्रजाव्यवहारान् कारयेयुः ॥

कर विद्वान् और विदुषियाँ हों वे राजपुत्र आदि और राजकन्या आदिकों को विद्वान् और विदुषी बनाकर उनसे धर्मपूर्वक राज-व्यवहार और प्रजाव्यवहार करावें ॥ ११ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—ऋषिः=यः साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्य विद्वान् भवेत् सः ।

भाष्यसार—विद्वान् विद्युत् को कैसे उत्पन्न करे—अहिंसक विद्वान् का पवित्र शिष्य, सुखदायक अग्नि आदि पदार्थों का वेत्ता, वेदार्थ का ज्ञाता, सकल विद्याओं का वेत्ता विद्वान् पुरुष अग्नि= विद्युत् को उत्पन्न करे । जो विद्युत्—जैसे सूर्य वृत्र=मेघ का हनन करता है, वैसे शत्रुओं का हनन करने वाला, शत्रुओं के पुर=नगरों का विदारण करने वाला है ।

साङ्गोपाङ्ग वेदों का अध्ययन करने वाले विद्वानों और विदुषियों का कर्त्तव्य है कि वे राजा के पुत्र और कन्याओं को विद्वान् और विदुषी बनावें । उन्हें राजव्यवहार और प्रजाव्यवहार में धर्मपूर्वक प्रवृत्त रखें ॥ ११ । ३३ ॥

भारद्वाजः । **अग्निः=विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् पुरुष विद्युत् को कैसे उत्पन्न करे, इसका फिर उपदेश किया है ॥

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्युह॒न्त॑मम् । ध॒न॒ञ्ज॒यꣳ रणे॑रणे ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**तम्**) पूर्वोक्तं पदार्थविद्याविदम् (**उ**) (**त्वा**) त्वाम् (**पाथ्यः**) पाथस्सु= जलान्नादिपदार्थेषु साधुः (**वृषा**) वीर्य्यवान् (**सम्**) (**ईधे**) राजधर्मशिक्षया प्रदीप्यताम् (**दस्युहन्तमम्**) अतिशयेन दस्यूनां हन्तारम् (**धनञ्जयम्**) यः शत्रुभ्यो धनं जयति तम् (**रणेरणे**) युद्धेयुद्धे ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे वीर ! यस्त्वं पाथ्यो वृषा रणेरणे विद्वान् शौर्य्यादिगुणयुक्तोऽसि तं धनञ्जयमु दस्युहन्तमं त्वा त्वां वीरसेनया समीधे ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वीर ! यस्त्वं पाथ्यः** पाथस्सु=जलाऽन्नादिपदार्थेषु साधुः **वृषा** वीर्य्यवान् **रणेरणे** युद्धेयुद्धे **विद्वान् शौर्य्यादिगुणयुक्तोऽसि, तं** पूर्वोक्तं पदार्थविद्याविदं **धनञ्जयं** यः शत्रुभ्यो धनं जयति तम् **उ दस्युहन्तमम्** अतिशयेन दस्यूनां हन्तारं **त्वा=त्वां वीरसेनया सम्+ईधे** राजधर्मशिक्षया प्रदीप्यताम् ॥ ३४ ॥

भाषार्थ—हे वीर ! जो तू (पाथ्यः) जल, अन्न आदि पदार्थों का उत्तम रीति से उपयोग करने वाला, तथा (वृषा) वीर्यवान्=बलवान्, (रणे रणे) प्रत्येक युद्ध में विद्वान् तथा शौर्य आदि गुणों से युक्त है, सो (तम्) पूर्वोक्त पदार्थविद्या के वेत्ता, (धनञ्जयम्) शत्रुओं से धन को जीतने वाले, (उ) विचारपूर्वक (दस्युहन्तमम्) दस्युजनों का अत्यन्त हनन करने वाले (त्वा) आपको वीरसेना के द्वारा विद्वान् (सम्+ईधे) राजधर्म की शिक्षा से प्रकाशित करे ॥

[हे वीर ! यस्त्वं······विद्वान् शौर्यादिगुणयुक्तोऽसि, तं धनंजयमु दस्युहन्तमं त्वा······समीधे]

भावार्थः—राजादयो राजपुरुषा आप्तेभ्यो

भावार्थ—राजा आदि राजपुरुष आप्त

विद्वद्भ्यो विनयं, शुद्धविद्यां प्राप्य, प्रजारक्षायै चोरान् हत्वा, शत्रून् विजित्य, परमैश्वर्यमुन्नयेयुः ।। ११ । ३४ ।।

विद्वानों से विनय, और शुद्ध-विद्या को प्राप्त करके, प्रजा की रक्षा के लिये चोरों का हनन करके, शत्रुओं को जीतकर परम ऐश्वर्य को उन्नत करें ।। ११ । ३४ ।।

भाष्यसार—**विद्वान् विद्युत् को कैसे उत्पन्न करे**—वीर पुरुष—जल, अन्न आदि पदार्थों का उत्तम रीति से उपयोग करने वाला, बलवान्, विद्वान् होकर प्रत्येक युद्ध में शौर्य आदि गुणों से युक्त हो। वह पूर्वोक्त अग्नि आदि पदार्थ-विद्या के वेत्ता, शत्रुओं से धन को जीतने वाले, दस्युओं का अत्यन्त हनन करने वाले राजा आदि वीर राजपुरुषों को आप्त विद्वान् लोग राजधर्म की शिक्षा से प्रदीप्त करें। राजा आदि वीर पुरुष आप्त विद्वानों से विनय, आदि गुणों तथा शुद्ध विद्या को प्राप्त करके प्रजा की रक्षा के लिये चोरों का हनन तथा शत्रुओं को जीतकर परम ऐश्वर्य को बढ़ावें ।। ११ । ३४ ।।

देवश्रवोदेववातौ ।। **होता**=**विद्वान्** ।। निचृदार्षीत्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनर्विदुषः किं कृत्यमस्तीत्याह ।।

फिर विद्वान् का क्या काम है, यह उपदेश किया है ।।

सीदं होतः स्व ऽ उं लोके चिंकित्वान्त्सादयां यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौं ।
देवावीर्देवान हविषां यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयों धाः ।। ३५ ।।

पदार्थः—(**सीद**) अवस्थितो भव (**होतः**) दातर्ग्रहीतः (**स्वे**) सुखे (**उ**) (**लोके**) लोकनीये (**चिकित्वान्**) विज्ञानयुक्तः (**सादय**) गमय । **अत्र अन्येषामपीति दीर्घः** (**यज्ञम्**) धर्म्यं राजप्रजाव्यवहारम् (**सुकृतस्य**) सुष्ठुकृतस्य धार्मिकस्य (**योनौ**) कारणे (**देवावीः**) देवै रक्षितः शिक्षितश्च (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान्वा (**हविषा**) दानग्रहणयोग्येन न्यायेन (**यजासि**) याजयेः (**अग्ने**) विद्वन् (**बृहत्**) महत् (**यजमाने**) राजादौ जने चिरञ्जीविनम् (**वयः**) दीर्घं जीवनम् (**धाः**) धेहि ।। ३५ ।।

प्रमाणार्थ—(**सादया**) सादय । यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' [**अ०** ६ । ३ । १३५] इस सूत्र से दीर्घ है ।। ११ । ३५ ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! होतश्चिकित्वाँस्त्वं स्वे लोके सीद । सुकृतस्य योनौ यज्ञं सादय । देवावीः सँस्त्वं हविषा देवान् यजासि यजमाने वयोधाः ।। ३५ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** विद्वन् ! **होतः** दातर्ग्रहीतः ! **चिकित्वान्** विज्ञानयुक्तः **त्वं स्वे** सुखे **लोके** लोकनीये [उ] **सीद** अवस्थितो भव ।

सुकृतस्य सुष्ठुकृतस्य धार्मिकस्य **योनौ** कारणे [**बृहत्**] महद् **यज्ञं** धर्म्यं राजप्रजाव्यवहारं **सादय** गमय ।

देवावीः देवै रक्षितः शिक्षितश्च **सँस्त्वं हविषा**

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (होतः) देने और लेने वाले तथा (चिकित्वान्) विज्ञान से युक्त हो, सो (स्वे) सुखयुक्त (लोके) लोक में [उ] विचारपूर्वक (सीद) विराजमान रहो ।

(सुकृतस्य) उत्तम कर्म करने वाले धार्मिक पुरुष के (योनौ) निमित्त [बृहत्] महान् (यज्ञम्) धर्म-युक्त राजा और प्रजा के व्यवहार को (सादय) प्राप्त कराइये ।

आप (देवावीः) देवों=विद्वानों से रक्षित और

दानग्रहणयोग्येन न्यायेन **देवान्** विदुषो दिव्यगुणान्वा **यजासि** याजयेः, **यजमाने** राजादौ जने चिरञ्जीविनं **वयः** दीर्घं जीवनं **धाः** धेहि ॥ ३५ ॥

शिक्षित होकर (हविषा) ग्रहण करने-कराने योग्य न्याय से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों का (यजासि) संग कराइये, तथा (यजमाने) राजा आदि को चिरंजीवी एवं उनमें (वयः) दीर्घ आयु को (धाः) स्थापित कीजिये ॥ ११ । ३५ ॥

[हे अग्ने ! देवावीः सँस्त्वं हविषा देवान् यजासि, यजमाने वयो धाः]

भावार्थः—विद्वद्भिरस्मिन् जगति द्वे कर्मणी सततं कार्ये। आद्यं—ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादि शिक्षया शरीरारोग्यबलादियुक्तं चिरंजीवनम्,

भावार्थ—विद्वान् इस जगत् में दो कर्म सदा करें। पहिला—ब्रह्मचारी और जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर के आरोग्य तथा बल आदि से युक्त दीर्घ आयु को,

[चिकित्वान् त्वं स्वे लोके सीद, सुकृतस्य योनौ यज्ञं सादय]

उत्तरं—विद्याक्रियाकौशलग्रहणेनात्मबलं च संसाध्यम्।

दूसरा—विद्या और क्रियाकौशल को ग्रहण करके आत्मिक बल को सिद्ध करें।

[फलमाह—]

यतः सर्वे मनुष्याः शरीरात्मबलयुक्ताः सन्तः सर्वदानन्देयुः ॥ ११ । ३५ ॥

जिससे सब मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल से युक्त होकर सदा आनन्द में रहें ॥११।३५॥

भा० पदार्थः—वयः=शरीरारोग्यबलादियुक्तं चिरंजीवनम्।

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुष विद्या और क्रियाकौशल का ग्रहण करने कराने वाले, तथा विज्ञानवान् हों। वह सुखमय लोक में स्थित रहें। धार्मिकता के निमित्त बृहद् यज्ञ अर्थात् धर्मयुक्त राजव्यवहार और प्रजा व्यवहार को प्राप्त करावें। देव अर्थात् विद्वानों से रक्षित और शिक्षित होकर ग्रहण करने-कराने योग्य न्याय से विद्वानों तथा दिव्य गुणों का संग करें। अर्थात् ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता आदि की शिक्षा से शरीर को नीरोग और बल आदि गुणों से युक्त करके चिरंजीव (दीर्घायु) बनें। विद्या और क्रियाकौशल को ग्रहण करके आत्मबल को बढ़ावें। जिससे सब मनुष्य शारीरिक और आत्मिक बल से युक्त होकर सदा आनन्द में रहें ॥ ११ । ३५ ॥

गृत्समदः। **अग्निः=विद्वान्** ॥ आर्षीत्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यकृत्यमाह ॥

फिर मनुष्यों के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ ऽ असदत्सुदक्षः।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो ऽ अग्निः ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**नि**) नितराम् (**होता**) शुभगुणग्रहीता (**होतृषदने**) दातॄणां विदुषां स्थाने (**विदानः**) विविदुषः सन् (**त्वेषः**) शुभगुणैर्दीप्यमानः (**दीदिवान्**) धर्म्यं व्यवहारं चिकीर्षुः (**असदत्**) सीदेत् (**सुदक्षः**) सुष्ठु दक्षो=बलं यस्य सः (**अदब्धव्रतप्रमतिः**) अदब्धैरहिंसनीयैर्व्रतैर्धर्माचरणैः प्रकृष्टामतिर्मेधा यस्य सः (**वसिष्ठः**) अतिशयेन वसिता (**सहस्रम्भरः**) सहस्रमसंख्यं शुभगुणसमूहं बिभर्ति सः (**शुचिजिह्वः**) शुचिः=पवित्रा सत्यभाषणेन जिह्वा=वाग् यस्य सः (**अग्निः**) पावक इव वर्त्तमानः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यदि नरो मनुष्यजन्म प्राप्य होतृषदने दीदिवान् त्वेषो विदानः शुचिजिह्वः सुदक्षोऽदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरो होता सततं न्यसदत्तर्हि समग्रं सुखं प्राप्नुयात् ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यदि नरो मनुष्यजन्म प्राप्य होतृषदने** दातॄणां विदुषां स्थाने **दीदिवान्** धर्म्यं व्यवहारं चिकीर्षुः **त्वेषः** शुभगुणैर्दीप्यमानः, **विदानः** विविदुषुः सन्, **शुचीजिह्वः** शुचिः=पवित्रा सत्यभाषणेन जिह्वा=वाग् यस्य सः, [**अग्निः**] पावक इव वर्त्तमानः **सुदक्षः** सुष्ठु दक्षो=बलं यस्य सः, **अदब्धव्रतप्रमतिः** अदब्धैरहिंसनीयैर्व्रतैर्धर्माचरणैः प्रकृष्टा मतिर्मेधा यस्य सः, **वसिष्ठः** अतिशयेन वसिता **सहस्रम्भरः** सहस्रमसङ्ख्यं शुभगुणसमूहं बिभर्त्ति सः, **होता** शुभगुणग्रहीता, **सततं नि+असदत्** नितरां सीदेत्—**र्तह समग्रं सुखं प्राप्नुयात्** ॥ ११ । ३६ ॥

भाषार्थ—यदि नर, मनुष्य-जन्म को प्राप्त करके (होतृषदने) विद्या के दाता विद्वानों के घर में, (दीदिवान्) धर्मयुक्त व्यवहार को करने का इच्छुक, (त्वेषः) शुभ-गुणों से देदीप्यमान, (विदानः) जिज्ञासु, (शुचिजिह्वः) सत्यभाषण से पवित्र वाणी वाला [अग्निः] अग्नि के समान तेजस्वी (सुदक्षः) उत्तम बल वाला, (अदब्धव्रतप्रमतिः) हिंसा के अयोग्य=ग्रहण करने योग्य व्रत अर्थात् धर्माचरण से उत्तम मेधा वाला, (वसिष्ठः) अत्यन्त समीप रहने वाला=अन्तेवासी, (सहस्रम्भरः) सहस्र=असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाला, (होता) शुभ गुणों को ग्रहण करने वाला, होकर नित्य (नि+असदत्) विद्यमान रहे तो सकल सुख को प्राप्त करें ॥ ११ । ३६ ॥

[नरो मनुष्यजन्म प्राप्य होतृषदने दीदिवान्...अदब्धव्रतप्रमतिः...सततं न्यसीदत्]

भावार्थः—यदा मातापितरः स्वपुत्रान् कन्याश्च सुशिक्ष्य, पुनर्विदुषो विदुष्यश्च समीपे चिरं संस्थाप्याध्यापयेयुः,

भावार्थ—जब माता-पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को सुशिक्षा-करके फिर विद्वानों और विदुषियों के समीप चिरकाल तक रखकर पढ़ावें,

[त्वेषः]

तदा ते सूर्य इव कुलदेशोद्दीपकाः स्युः ॥

तब—वे सूर्य के समान कुल और देश को चमकाने वाले हों ॥ ११ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—होतृषदने=विदुषो विदुष्यश्च समीपे । त्वेषः=सूर्य इव कुलदेशोद्दीपकः ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों का कर्तव्य**—माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने पुत्रों और कन्याओं को विद्या देने वाले विद्वानों और विदुषियों के पास में चिरकाल तक रखें; जिससे वे धर्मयुक्त व्यवहार की कामना करने वाले, शुभ गुणों से देदीप्यमान होकर अपने कुल और देश को चमकाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी, सत्यभाषण से पवित्र जिह्वा वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, उत्तम बल वाले, धर्माचरण के अनुष्ठान से उत्तम मेधा वाले, अन्तेवासी, असंख्य शुभगुणों को धारण करने वाले, शुभगुणों को ग्रहण करने वाले होकर सुख को प्राप्त करें ॥ ११ । ३६ ॥

प्रस्कण्वः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

अथेहाध्यापकः कीदृशः स्यादित्याह ॥

अब यहाँ अध्यापक कैसा होवे, यह उपदेश किया जाता है ॥

सᳬंसीदस्व महाँ२ ऽ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने ऽ अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**सम्**) (**सीदस्व**) अध्यापने आस्व (**महान्**) महागुणविशिष्टः (**असि**) (**शोचस्व**) पवित्रो भव (**देववीतमः**) देवैर्विद्वद्भिः कमनीयतमः (**विधूमम्**) विगतमलम् (**अग्ने**) विद्वत्तम (**अरुषम्**) शोभनस्वरूपम् । अरुषमिति रूपना० ॥ निघं० ३ । ७ ॥ (**मियेध्य**) मिनोति=प्रक्षिपति दुष्टान् तत्सम्बुद्धौ । अत्र बहुलकादौणादिक एध्य प्रत्ययः किच्च (**सृज**) निष्पद्यस्व (**प्रशस्त**) श्लाघ्य (**दर्शतम्**) द्रष्टव्यम् ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**अरुषम्**) 'अरुष' शब्द निघं० (३ । ७) में रूप-नामों में पढ़ा है । (मियेध्य) यहां बहुल करके उणादि का 'एध्य' प्रत्यय और वह कित् है ॥ ११ । ३७ ॥

अन्वयः—हे प्रशस्त मियेध्याग्ने ! देववीतमस्त्वं विधूमं दर्शतमरुषं सृज शोचस्व च यतस्त्वं महान् विद्वानसि तस्मादध्यापने संसीदस्व ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे प्रशस्त** श्लाघ्य ! **मियेध्य** मिनोति=प्रक्षिपति दुष्टान् तत्सम्बुद्धौ ! **अग्ने** विद्वत्तम ! **देववीतमः** देवैर्विद्वद्भिः कमनीयतमः **त्वं विधूमं** विगतमलं **दर्शतं** द्रष्टव्यम् **अरुषं** शोभन-स्वरूपं **सृज** निष्पद्यस्व, **शोचस्व** पवित्रो भव **च** । **यतस्त्वं महान्=विद्वान्** महागुणविशिष्टो **असि** । **तस्मादध्यापने सम्+सीदस्व** अध्यापने आस्व ॥

भाषार्थ—हे (प्रशस्त) प्रशंसनीय, (मियेध्य) दुष्टों को दूर हटाने वाले (अग्ने) परम विद्वान् (देववीतमः) आप विद्वानों से अत्यन्त कमनीय हो, सो आप (विधूमम्) निर्मल, दर्शतम् दर्शनीय, (अरुषम्) सुन्दर स्वरूप को (सृज) सिद्ध करो, और (शोचस्व) पवित्र बनो ! क्योंकि–आप (महान्) महान् गुणों से युक्त विद्वान् (असि) हो । इसलिये—अध्यापन कार्य में (सम्+सीदस्व) विराजमान रहो ॥ ११ । ३७ ॥

[अग्ने ! देववीतमस्त्वं ... दर्शतं सृज शोचस्व च, यतस्त्वं महान्=विद्वानसि, तस्मादध्यापने संसीदस्व]

भावार्थः—यो मनुष्यो विदुषां प्रियतमः, सुरूपगुणलावण्यसंपन्नः, पवित्रोपचितो, महानाप्तो विद्वान् भवेत्, स एव शास्त्राण्यध्यापयितुं शक्नोति ॥ ११ । ३७ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों का प्रियतम, सुन्दर रूप, गुण और लावण्य से युक्त, पवित्र, महान् आप्त विद्वान् हो, वही शास्त्रों को पढ़ा सकता है ॥

भा० पदार्थः—देववीतमः=विदुषां प्रियतमः । दर्शतम्=सुरूपगुणलावण्यसम्पन्नम् । महान्=आप्तो विद्वान् ।

भाष्यसार—**अध्यापक कैसा हो**—विद्वान् अध्यापक-प्रशंसा के योग्य, दुष्टों को दूर करने वाला, आप्त विद्वान्, विद्वानों के द्वारा अत्यन्त कमनीय अर्थात् उनका प्रियतम हो । निर्मल, दर्शनीय एवं सुन्दर रूपवान् और पवित्र हो । वही वेदादि शास्त्रों को पढ़ा सकता है ॥ ११ । ३७ ॥

सिन्धुद्वीपः । **आपः=जलानि** । न्यङ्कुसारिणी बृहती । मध्यमः ॥

अथ जलादिपदार्थशोधनेन प्रजासु किं जायत इत्याह ॥

अब जल आदि पदार्थों के शोधने से प्रजा में क्या होता है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥३८॥

पदार्थः—(**अपः**) जलानि (**देवीः**) दिव्यानि पवित्राणि (**उप**) (**सृज**) निष्पादय (**मधुमतीः**) प्रशस्ता मधवो=मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यासु ताः (**अयक्ष्माय**) यक्ष्मादिरोगनिवारणाय (**प्रजाभ्यः**) पालनीयाभ्यः (**तासाम्**) अपाम् (**आस्थानात्**) आस्थायाः (**उत्**) (**जिहताम्**) प्राप्नुवन्तु (**ओषधयः**) सोमादयः (**सुपिप्पलाः**) शोभनानि पिप्पलानि फलानि यासां ताः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे सद्वैद्य ! त्वं मधुवतीर्देवीरप उपसृज यतस्तासामास्थानात्सुपिप्पला ओषधयः प्रजाभ्योऽयक्ष्मायोज्जिहताम् ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सद्वैद्य ! त्वं **मधुमतीः** प्रशस्ता मधवः=मधुरादयो गुणा विद्यन्ते यासु ताः, **देवीः** दिव्यानि=पवित्राणि **अपः** जलानि **उप+सृज** निष्पादय। **यतस्तासाम्** अपाम् **आस्थानात्** आस्थायाः **सुपिप्पलाः** शोभनानि पिप्पलानि=फलानि यासां ताः, **ओषधयः** सोमाऽऽदयः **प्रजाभ्यः** पालनीयाभ्यः **अयक्ष्माय** यक्ष्मादिरोगनिवारणाय **उत्+जिहतां** प्राप्नुवन्तु ॥ ११ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे श्रेष्ठ वैद्य ! आप (मधुमतीः) प्रशंसनीय मधुर आदि गुणों वाले (देवीः) पवित्र (अपः) जलों को (उप+सृज) सिद्ध करो। जिससे (तासाम्) उन जलों के (आस्थानात्) सर्वत्र विद्यमान होने से (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलवाली (ओषधयः) सोम आदि ओषधियाँ (प्रजाभ्यः) पालन करने योग्य प्रजा को (अयक्ष्माय) यक्ष्मा आदि रोगों के निवारण के लिये (उत्+जिहताम्) प्राप्त होवे ॥ ११ । ३८ ॥

[हे **सद्वैद्य ! त्वं मधुमतीर्देवीरप उपसृज**]

भावार्थः—राज्ञा द्विविधा वैद्याः संरक्षणीयाः। एके सुगन्धादिहोमेन वायुवृष्टि-ओषधीः शुद्धाः संपादयेयुः।

भावार्थ—राजा दो प्रकार के वैद्यों का संरक्षण करे। पहले—सुगन्धित पदार्थों के होम से वायु, वृष्टि और ओषधियों को शुद्ध करें।

[**सुपिप्पला ओषधयः प्रजाभ्योऽयक्ष्मायोज्जिहताम्**]

अपरे सन्तो भिषजो विद्वांसो निदानादिद्वारा सर्वान् प्राणिनोऽरोगान् सततं रक्षयेयुः।

दूसरे—सज्जन वैद्य विद्वान् लोग निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को सदा नीरोग रखें।

[**हेतुमाह**—]

नैतत्कर्मणा विना समष्टिसुखं कदाचित् संपद्यते ॥ ११ । ३८ ॥

क्योंकि—इस कर्म के विना समाज को कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ११ । ३८ ॥

भाष्यसार—**जलादि पदार्थों की शुद्धि से प्रजा में क्या होता है**—राजा का कर्त्तव्य है कि वह दो प्रकार के वैद्यों का संरक्षण करे। एक वैद्य ऐसे हों जो प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त, जलों को सुगन्धित पदार्थों के होम से जल, वायु और ओषधियों को शुद्ध करें। दूसरे श्रेष्ठ वैद्य ऐसे विद्वान् हों जो निदान आदि के द्वारा सब प्राणियों को सदा नीरोग रखें। शुद्ध-जल से उत्पन्न, सुन्दर फल वाली सोम आदि ओषधियों का प्रजा के यक्ष्मा आदि रोगों के निवारण में प्रयोग करें। इस प्रकार जल आदि पदार्थों की शुद्धि से प्रजा में सुख उत्पन्न होता है। इस कर्म के विना समाज को कभी सुख प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ११ । ३८ ॥

सिन्धुद्वीपः। **वायुः=स्पष्टम्** ॥ विराट्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ स्त्रीपुरुषयोः कर्त्तव्यकर्माह ॥

अब स्त्री पुरुष के कर्त्तव्यकर्म का उपदेश किया जाता है ॥

सं तें वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(सम्) (ते) तव (**वायुः**) पवनः (**मातरिश्वा**) यो मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति सः (**दधातु**) धरतु पुष्णातु वा (**उत्तनायाः**)उत्कृष्टस्तानः=शुभलक्षणविस्तारो यस्या राज्यास्तस्याः (हृदयम्) अन्तःकरणम् (**यत्**) (**विकस्तम्**) विविधतया कस्यते=शिष्यते यत् तत् (**यः**) विद्वान् (**देवानाम्**) धार्मिकाणां विदुषाम् (**चरसि**) गच्छसि=प्राप्तोषि (**प्राणथेन**) येन प्राणन्ति=सुखयन्ति तेन (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय (**देव**) दिव्यसुखप्रद (**वषट्**) क्रियाकौशलम् (**अस्तु**) (**तुभ्यम्**) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे पत्नि ! उत्तानायास्ते यद्विकस्तं हृदयं तद्यज्ञशोधितो मातरिश्वा वायुः संदधातु । हे देवँपते स्वामिन् ! यस्त्वं प्राणथेन देवानां यद्विकस्तं हृदयं चरसि तस्मै कस्मै तुभ्यं मत्तो वषडस्तु ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पत्नि ! **उत्तानायाः** उत्कृष्टस्तानः=शुभलक्षणविस्तारो यस्या राज्यास्तस्याः **ते** तव **यत् विकस्तं** विविधतया कस्यते=शिष्यते यत्तद् **हृदयम्** अन्तःकरणं **तद्यज्ञशोधितो मातरिश्वा** यो मातर्य्यन्तरिक्षे श्वसिति सः **वायुः** पवनः **सम्**+**दधातु** धरतु पुष्णातु वा ।

हे **देव** !=**पते**=**स्वामिन्** दिव्यसुखप्रद ! **यः** विद्वान् **त्वं** **प्राणथेन** येन प्राणन्ति=सुखयन्ति तेन **देवानां** धार्मिकाणां विदुषां **यद् विकस्तं** विविधतया कस्यते=शिष्यते यत्तद् **हृदयम्** अन्तःकरणं **चरसि** गच्छसि=प्राप्नोषि, **तस्मै कस्मै** सुख-स्वरूपाय **तुभ्यं मत्तो वषट्** क्रिया-कौशलम् **अस्तु** ॥ ११ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे पत्नी ! (उत्तानायाः) शुभ लक्षणों के विस्तार वाली तुझ रानी का (ते) अपना जो (विकस्तम्) विविध प्रकार से शिक्षा करने के योग्य (हृदयम्) अन्तःकरण है, उसे यज्ञ से पवित्र (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला (वायुः) पवन (सम्+दधातु) धारण करे, कष्ट करे ।

हे (देव) स्वामिन्, दिव्य सुखों के दाता पतिदेव ! (यः) जो आप विद्वान् हो, अतः (प्राणथेन) सुख-साधनों से (देवानाम्) धार्मिक-विद्वानों का जो (विकस्तम्) विविध प्रकार से शिक्षित (हृदयम्) अन्तःकरण है उसे (चरसि) प्राप्त करते हो, सो (कस्मै) आप सुख-स्वरूप के लिये ही मेरा (वषट्) सब क्रियाकौशल (अस्तु) हो ॥ ११ । ३९ ॥

[हे पत्नि ! उत्तानायास्ते यद् विकस्तं हृदयं……]

भावार्थः—पूर्ण युवा पुरुषो ब्रह्मचारिण्या सह विवाहं कुर्यात्, तस्या अप्रियं कदाचिन्नाचरेत् ।

भावार्थ—पूर्ण युवा पुरुष ब्रह्मचारिणी के साथ विवाह करे। उसके प्रति अप्रिय आचरण कभी न करे ।

[हे देव=पते ! स्वामिन् ! यस्त्वंप्राणथेन देवानां यद् विकस्तंहृदयं चरसि]

या स्त्री कन्या ब्रह्मचारिणा सहोपयमं कुर्यात् तस्यानिष्टं मनसाऽपि न चिन्तयेत् ।

जो स्त्री=कन्या जिस ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे उसका अनिष्ट कभी मन से भी न सोचे ।

[तस्मै कस्मै तुभ्यं मत्तो वषडस्तु]

एवं प्रमुदितौ सन्तौ परस्परं संप्रीत्या गृह-कृत्यानि संसाधयेताम् ॥ ११ । ३९ ॥

इस प्रकार स्त्री-पुरुष प्रमुदित होकर परस्पर प्रीतिपूर्वक घर के कार्यों को सिद्ध करें ॥ ११ । ३९ ॥

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य**—पूर्ण युवा पुरुष ब्रह्मचारिणी कन्या के साथ विवाह करे। वह ब्रह्मचारिणी शुभ लक्षणों वाली रानी हो। जिसका अन्तःकरण विविध प्रकार की उत्तम शिक्षा से विभूषित हो। जैसे अन्तरिक्ष में विचरण करने वाला वायु यज्ञ से शुद्ध=पवित्र होता है, वैसे उसका हृदय पवित्र हो। पुरुष ऐसी पत्नी के प्रति अप्रिय आचरण कभी न करे।

ब्रह्मचारिणी कन्या पूर्ण युवा पुरुष के साथ विवाह करे। जो उसका स्वामी=पति हो, वह दिव्य सुखों का दाता, विद्वान्, सुख साधनों से धार्मिक विद्वानों के सुशिक्षित अन्तःकरण को प्राप्त करने वाला हो। ऐसे पति के प्रति पत्नी मन से भी अनिष्ट-चिन्तन न करे। अपितु अपने सब क्रियाकौशल को पति के लिये अर्पित करे। इस प्रकार परस्पर प्रसन्न होकर स्त्री-पुरुष प्रीतिपूर्वक गृह-कार्यों को सिद्ध करें॥ ११। ३९॥

सिन्धुद्वीपः। **अग्निः**=**गृहस्थ पुरुषः**। भुरिगनुष्टुप्। गांधारः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य कर्म का फिर उपदेश किया है॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः। वासोऽअग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो॥४०॥

पदार्थः—(**सुजातः**) सुष्ठुप्रसिद्धः (**ज्योतिषा**) विद्याप्रकाशेन (**सह**) (**शर्म**) गृहम् (**वरूथम्**) वरम् (**आ**) (**असदत्**) सीद (**स्वः**) सुखम् (**वासः**) वस्त्रम् (**अग्ने**) अग्निरिव प्रकाशमान (**विश्वरूपम्**) विविधस्वरूपम् (**सम्**) (**व्ययस्व**) धरस्व (**विभावसो**) विविधया भया=दीप्त्या सहितं वसु=धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ॥ ४०॥

अन्वयः—हे विभावसोऽग्ने! ज्योतिषा सह सुजातस्त्वं स्वर्वरूथं शर्मासदत्सीद विश्वरूपं वासो संव्ययस्व॥ ४०॥

सपदार्थान्वयः—हे **विभावसो** विविधया भया=दीप्त्या सहितं वसु=धनं यस्य तत्सम्बुद्धौ! **अग्ने** अग्निरिव प्रकाशमान! **ज्योतिषा** विद्याप्रकाशेन **सह सुजातः** सुष्ठुप्रसिद्धः **त्वं स्वः** सुखं **वरूथं** वरं **शर्म** गृहम् **आ+असदत्=सीद; विश्वरूपं** विविधस्वरूपं **वासः** वस्त्रं **सम्+व्ययस्व** धरस्व॥ ४०॥

भाषार्थ—हे (विभावसो) विविध प्रकार की दीप्ति वाले वसु=धन से युक्त, (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान, (ज्योतिषा) विद्याप्रकाश से युक्त, तथा (सुजातः) सुप्रसिद्ध गृहस्थ पुरुष! तू (स्वः) सुख युक्त, (वरूथम्) श्रेष्ठ (शर्म) घर में (आ+असदत्) रहे। और (विश्वरूपम्) विविध स्वरूप वाले (वासः) वस्त्र को (सम्+व्ययस्व) धारण कर॥ ११। ४०॥

[हे विभावसो! अग्ने! ज्योतिषा सह···शर्म आसदत्, विश्वरूपं वासः संव्ययस्व]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ यथा सूर्यो भास्वरतया सर्वं प्रकाशते, तथा सुवस्त्रालङ्कारैरुज्ज्वलौ भूत्वा गृहादीनि वस्तूनि सदा पवित्राणि रक्षेताम्॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ विवाहित स्त्री-पुरुषों को चाहिये कि वे जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित करता है, वैसे सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से उज्ज्वल होकर घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रखें॥ ११। ४०॥

भा० पदार्थः—विभावसो=यथा सूर्यो भास्वरतया सर्वं प्रकाशते तथा । वासः=सुवस्त्रालङ्कारम् । शर्म=गृहादि वस्तु ॥

भाष्यसार—१. स्त्री-पुरुष का कर्त्तव्य—विवाहित स्त्री और पुरुष को चाहिये कि वे विविध दीप्त वाले धन से सम्पन्न हों। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित करता है, वैसे वे, उत्तम वस्त्र और अलङ्कारों (**भूषणों**) से प्रकानमान रहे। सुखदायक, श्रेष्ठ घर में विराजमान रहें। घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रखें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विवाहित स्त्री-पुरुष अग्नि=सूर्य के समान सुवस्त्र और अलङ्कार (**भूषण**) से उज्ज्वल रहें ॥ ११ । ४० ॥

विश्वमनाः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह ॥

विद्वानों के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

उदु॑ तिष्ठ स्वध्वरावा॑ नो दे॒व्या धि॒या । दृ॒शे च॑ भा॒सा बृ॑ह॒ता सु॑शु॒क्वनि॒राग्ने॑ याहि सुश॒स्तिभिः॑ ॥४१॥

पदार्थः—(**उत्**) (**उ**) (**तिष्ठ**) (**स्वध्वर**) शोभना अध्वरा=अहिंसनीया माननीया व्यवहारा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**अव**) रक्ष । **अत्र द्व्यचोतस्तिङ इति दीर्घः** (**नः**) अस्मान् (**देव्या**) शुद्धविद्याशिक्षापन्नया (**धिया**) प्रज्ञया क्रियया वा (**दृशे**) द्रष्टुम् (**च**) (**भासा**) प्रकाशेन (**बृहता**) महता (**सुशुक्वनिः**) सुष्ठु शुचां=पवित्राणां वनिः=संभक्ता (**आ**) (**अग्ने**) विद्वन् (**याहि**) प्राप्नुहि (**सुशस्तिभिः**) शोभनैः प्रशंसितैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अवा**) अव । यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' [**अ०** ६ । ३ । १३३] इस सूत्र से दीर्घ है ॥ ११ । ४१ ॥

अन्वयः—हे स्वध्वर सज्जन विद्वन् गृहस्थ ! त्वं सततमुत्तिष्ठ सर्वदा प्रयतस्व । देव्या धिया नोऽव । हे अग्ने अग्निवत्प्रकाशमान ! सुशुक्वनिस्त्वमु दृशे बृहता भासा सूर्य्य इव सुशस्तिभिः सर्वा विद्या-याहि । अस्माँश्च प्रापय ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्वध्वर !=सज्जन विद्वन् गृहस्थ**, शोभना अध्वराः=अहिंसनीया=माननीया व्यवहारा यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं सततम् उत्+तिष्ठ=सर्वदा प्रयतस्व । देव्या** शुद्धविद्याशिक्षापन्नया **धिया** प्रज्ञया क्रियया वा **नः** अस्मान् **अव** रक्ष ।

हे अग्ने !=अग्निवत्प्रकाशमान विद्वन् ! **सुशुक्वनिः** सुष्ठु शुचां=पवित्राणां वनिः=सम्भक्ता **त्वम् उ दृशे** द्रष्टुं **बृहता** महता **भासा** प्रकाशेन **सूर्य इव सुशस्तिभिः** शोभनैः प्रशंसितैर्गुणैः **सर्वा विद्या आ+**

भाषार्थ—हे (स्वध्वर) सज्जन, विद्वान्, माननीय व्यवहारों वाले गृहस्थ पुरुष ! तू सदा (उत्+तिष्ठ) प्रयत्न कर। और—(देव्या) शुद्ध विद्या तथा शिक्षा को प्राप्त (धिया) बुद्धि वा कर्म से (नः) हमारी (अव) रक्षा कर।

हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! आप (सुशुक्वनिः) उत्तम, पवित्र कर्मों का सेवन करने वाले हो, सो (उ) विचारपूर्वक (दृशे) सुख को देखने के लिये (बृहता) महान् (भासा)

याहि प्राप्नुहि, अस्माँश्च प्रापय ॥ ४१ ॥

विद्या के प्रकाश से सूर्य के समान (सुशस्तिभिः) उत्तम, प्रशंसनीय गुणों से सब विद्याओं को (आ+याहि) प्राप्त कीजिये, और हमें भी प्राप्त कराइये॥ ११ । ४१ ॥

[हे स्वधर !...त्वं...देव्या धिया नो ऽ व]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विद्वद्भिः शुद्धविद्या प्रज्ञादानेन सर्वे सततं संरक्ष्याः। न हि सुशिक्षामन्तरा मनुष्याणां सुखायान्यत् किंचिच्छरणमस्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ विद्वान् लोग पवित्र विद्या और बुद्धि के दान से सबकी सदा-रक्षा करें। क्योंकि सुशिक्षा के विना मनुष्यों के सुख के लिये और कोई शरण नहीं है।

[त्वं सततमुत्तिष्ठ=सर्वदा प्रयतस्व]

तस्मादालस्यकपटादीनि कुकर्माणि विहाय विद्याप्रचाराय सदा प्रयतितव्यम् ॥ ११ । ४१ ॥

इसलिये--आलस्य और कपट आदि कुकर्मों को छोड़ कर विद्या प्रचार के लिये सदा प्रयत्न करें ॥ ११ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—देव्या=शुद्धविद्यादानेन। धिया=शुद्धप्रज्ञादानेन ।

भाष्यसार—१. **विद्वानों का कर्त्तव्य**—जिसका व्यवहार माननीय है वह सज्जन गृहस्थ विद्वान् सदा आलस्य, कपट आदि कुकर्मों को छोड़कर विद्या प्रचार में सदा प्रयत्नशील रहे। वह अपनी शुद्ध विद्या और शिक्षा से सम्पन्न बुद्धि के द्वारा सबकी रक्षा करे अर्थात् शुद्ध विद्या और बुद्धि का दान करे। क्योंकि सुशिक्षा के विना मनुष्यों के लिये सुख-प्राप्ति की और कोई शरण नहीं है।

अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् यज्ञ आदि पवित्र कर्मों का सेवन करने वाला है। सुखों के दर्शन के लिए सूर्य प्रकाश के तुल्य उत्तम प्रशंसित गुणों से सब विद्याओं को प्राप्त करे तथा सबको विद्या का दान करे ।

२. **अलङ्कार**--इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक-लुप्तोपमा है। उपमा यह है कि विद्वान् विद्या से सूर्य के समान प्रकाशमान हो ॥ ११ । ४१ ॥

कण्वः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ उपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्विद्वत्कृत्यमाह ॥

विद्वानों के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

ऊर्ध्व ऽ ऊ षु णं ऽ ऊतये तिष्ठां देवो न संविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदुञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयांमहे ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वः) उपरिस्थः (उ) (सु) (नः) अस्माकम् (ऊतये) रक्षणाद्याय (तिष्ठ) द्वचचोऽस्तस्तिङ इति दीर्घः (देवः) द्योतकः (न) इव (सविता) भास्करः (ऊर्ध्वः) उत्कृष्टः (वाजस्य) विज्ञानस्य (सनिता) संभाजकः (यत्) यः (अञ्जिभिः) व्यक्तिकारकैः किरणैः (वाघद्भिः) युद्धविद्या-कुशलैर्मेधाविभिः (विह्वयामहे) विशेषेण स्पर्द्धामहे ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—(तिष्ठा) तिष्ठ । 'द्वयचोऽतस्तिङः' [अ० ६ । ३ । १३३] इस सूत्र से दीर्घ है ॥ ११ । ४२ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नध्यापक ! त्वमूर्ध्वः सविता देवो न न ऊतये सुतिष्ठ सुस्थिरो भव। यद्यस्त्वमञ्जिभिर्वाघद्भिः सह वाजस्य सनिता भव तमु वयं विह्वयामहे ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्नध्यापक ! त्वम् ऊर्ध्वः** उपरिस्थः **सविता** भास्करः **देवः** द्योतकः **न** इव **नः** अस्माकम् **ऊतये** रक्षणाद्याय **सु+तिष्ठ=सुस्थिरो भव।**

यत्=यस्त्वम् [**ऊर्ध्वः**] उत्कृष्ट **अञ्जिभिः** व्यक्तिकारकैः किरणैः **वाघद्भिः** युद्धविद्याकुशलैर्मेधाविभिः **सह वाजस्य** विज्ञानस्य **सनिता** संभाजकः **भव, तम् उ वयं वि+ह्वयामहे** विशेषेण स्पर्द्धामहे ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् अध्यापक ! आप (ऊर्ध्वः) ऊपर विद्यमान (सविता, देवः) प्रकाशमान सूर्य के (न) समान (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (सु+तिष्ठ) सुस्थिर रहो।

(यत्) जो आप [ऊर्ध्वः] उत्कृष्ट हो, सो (अञ्जिभिः) पदार्थों को व्यक्त करने वाले किरण रूप (वाघद्भिः) युद्धविद्या में कुशल मेधावी जनों के साथ (वाजस्य) विज्ञान का (सनिता) सेवन करने वाले बनो, सो आपकी (उ) विचारपूर्वक हम (वि+ह्वयामहे) विशेष कामना करते हैं ॥

[**हे विद्वन्नध्यापक ! त्वमूर्ध्वः सविता देवो न, न ऊतये सुतिष्ठ=सुस्थिरो भव**]

भावार्थः—अत्र उपमालङ्कारः। अध्यापकोपदेशकाजना यथा सविता भूमिचन्द्रादिभ्य उपरिस्थः सन् स्वज्योतिषा सर्वं संरक्ष्य प्रकाशयति, तथोत्कृष्टगुणैर्विद्या न्यायं प्रकाश्य सर्वाः प्रजा सदाः सुशोभयेयुः ॥ ११। ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ अध्यापक और उपदेशक लोग—जैसे सूर्य भूमि और चन्द्र आदि से ऊपर स्थित होकर अपनी ज्योति से सबकी रक्षा करके प्रकाश करता है, वैसे उत्कृष्ट गुणों से विद्या और न्याय को प्रकाशित करके सब प्रजा को सदा सुशोभित करें॥

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—जैसे सूर्य भूमि और चन्द्र आदि से ऊपर स्थित होकर अपनी ज्योति से सबकी रक्षा करता है, सबको प्रकाशित करता है; वैसे विद्वान् अध्यापक सबकी रक्षा करे, विद्यादि से सबको प्रकाशित करे। इन कार्यों के लिये स्थिर रहे। उत्कृष्ट गुणों से युक्त विद्वान् पदार्थों को अभिव्यक्त करने वाली किरणों के समान युद्ध-विद्या में कुशल मेधावी विद्वानों के साथ विज्ञान का सेवन करें। विद्या और न्याय को प्रकाशित करके सब प्रजा को सदा सुशोभित करें। प्रजाजन ऐसे विद्वानों की विशेष कामना करें॥ ११। ४२ ॥

त्रितः। **अग्निः=विद्वान्** ॥ विराट्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ जनकापत्यव्यवहारमाह ॥

अब पिता पुत्र के व्यवहार का उपदेश किया जाता है॥

स जातो गर्भो॑ऽअसि॒ रोद॑स्यो॒रग्ने॒ चारु॒र्विभृ॑त॒ऽओष॑धीषु।
चि॒त्रः शिशु॒ः परि॒ तमा॑ᳬस्य॒क्तून् प्र मा॒तृभ्यो॒ऽअधि॒ कनि॑क्रदद् गाः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**सः**) (**जातः**) प्रसिद्धः (**गर्भः**) यो गीर्यते=स्वीक्रियते सः (**असि**) (**रोदस्योः**) द्यावापृथिव्योः (**अग्ने**) विद्वन् (**चारुः**) सुन्दरः (**विभृतः**) विशेषेण धृतः पोषितो वा (**ओषधीषु**)

सोमादिषु (**चित्रः**) अद्भुतः (**शिशुः**) बालकः (**परि**) (**तमांसि**) रात्रीः (**अक्तून्**) अन्धकारान् (**प्र**) (**मातृभ्यः**) मान्यकर्त्रीभ्यः (**अधि**) (**कनिक्रदत्**) गच्छन् (**गाः**) गच्छति। **अत्राऽडभावः ॥ ४३ ॥**

प्रमाणार्थ—(गाः) यहां 'अट्' का अभाव है ॥ ११ । ४३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यस्त्वं यथा रोदस्योर्जातश्चारुरोषधीषु विभृतश्चित्रो गर्भोऽर्को मातृभ्यस्तमांस्यक्तून् पर्य्यधिकनिक्रदत्सन् गा गच्छति तथाभूतः शिशुर्गा विद्याः प्राप्नुहि ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने ! विद्वन् ! **यस्त्वं यथा रोदस्योः** द्यावापृथिव्योः **जातः** प्रसिद्धः **चारुः** सुन्दरः **ओषधीषु** सोमादिषु **विभृतः** विशेषेण धृतः पोषितो वा **चित्रः** अद्भुतः **गर्भः=अर्को** यो गीर्यते=स्वीक्रियते सः, **मातृभ्यः** मान्यकर्त्रीभ्यः **तमांसि** रात्रीः **अक्तून्** अन्धकारान् **परि+अधि+कनिक्रदत्** गच्छन् **सन् गाः=गच्छति, तथाभूतः शिशुः** बालकः **गाः=विद्याः प्राप्नुहि** ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् !—जैसे (रोदस्योः) द्युलोक और पृथिवी लोक में (जातः) प्रसिद्ध, (चारुः) सुन्दर, (ओषधीषु) सोम आदि ओषधियों में (विभृतः) विशेष रूप से स्थित वा पोषित (चित्रः) अद्भुत (गर्भः) स्वीकार करने योग्य सूर्य है, वह (मातृभ्यः) माताओं से (तमांसि) रात्रि रूप (अक्तून्) अन्धकार को (परि+अधि+कनिक्रदत्) प्राप्त होकर (गाः) किरणों को (गच्छति) प्राप्त करता है, वैसे—(शिशुः) बाल्यावस्था में (गाः) विद्याओं को प्राप्त कर ॥

[हे अग्ने !⋯जातः⋯गर्भः **मातृभ्यस्तमांसि अक्तून् पर्यधिकनिक्रदत् सन् गा गच्छति**]

भावार्थः—यथा ब्रह्मचर्यादिसुनियमैर्जनितः पुत्रो विद्या अधीत्य पितरौ सुखयति, तथैव जनकौ प्रजाः सुखयेताम् ॥ ११ । ४३ ॥

भावार्थ—जैसे ब्रह्मचर्य आदि उत्तम नियमों से उत्पन्न पुत्र विद्याओं को पढ़कर माता-पिता को सुख देता है, वैसे माता-पिता प्रजा को सुख देवें ॥ ११ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—जातः=ब्रह्मचर्यादिसुनियमैर्जनितः। गर्भः=पुत्रः।

भाष्यसार—**पिता-पुत्र का व्यवहार**—जैसे द्युलोक और पृथिवी-लोक में प्रसिद्ध, सुन्दर, सोम आदि ओषधियों में विशेष रूप से विद्यमान अथवा उनका विशेष पोषण करने वाला, अद्भुत सूर्य रात्रि रूप अन्धकार को प्राप्त होकर किरणों को प्राप्त करता है; वैसे बालक माता आदि गुरु-जनों से विद्याओं को प्राप्त करे। जैसे ब्रह्मचर्य आदि उत्तम नियमों के आचरण से उत्पन्न हुआ पुत्र सब विद्याओं को पढ़कर माता-पिता को सुख देवे, वैसे माता-पिता भी अपनी प्रजा=सन्तान को सुखी रखें ॥ ११ । ४३ ॥

त्रितः। **अग्निः=भौतिकः** ॥ विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

अथ पितरौ स्वापत्यानि कथं शिक्षेयातामित्युपदिश्यते ॥

अब माता पिता अपने सन्तानों को किस प्रकार शिक्षा करें, यह उपदेश किया जाता है ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽ आशुर्भव वाज्यर्वन्। पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**स्थिरः**) निश्चलः (**भव**) (**वीड्वङ्गः**) वीडूनि=दृढानि बलिष्ठान्यङ्गानि यस्य सः (**आशुः**) शीघ्रकारी (**भव**) (**वाजी**) प्राप्तनीतिः (**अर्वन्**) विज्ञानयुक्त (**पृथुः**) विस्तृतसुखः (**भव**)

(**सुषदः**) यः शोभनेषु व्यवहारेषु सीदति सः (**त्वम्**) (**अग्नेः**) पावकस्य (**पुरीषवाहणः**) यः पुरीषाणि= पालनादीनि कर्माणि वाहयति=प्रापयति सः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे अर्वन् पुत्र ! त्वं विद्याग्रहणाय स्थिरो भव वाजी वीड्वङ्ग आशुर्भव। त्वमग्नेः सुषदः पुरीषवाहणः पृथुर्भव ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अर्वन् !**=पुत्र विज्ञानयुक्त ! **त्वं विद्याग्रहणाय स्थिरः** निश्चलः **भव**।

वाजी प्राप्तनीतिः **वीड्वङ्गः** वीडूनि=दृढानि बलिष्ठान्यङ्गानि यस्य सः, **आशुः** शीघ्रकारी **भव**।

त्वम् अग्नेः पावकस्य **सुषदः** यः शोभनेषु व्यवहारेषु सीदति सः, **पुरीषवाहणः** यः पुरीषाणि= पालनादीनि कर्माणि वाहयति प्रापयति सः, **पृथुः** विस्तृतसुखः **भव** ॥ ११ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (अर्वन्) विज्ञानवान् पुत्र ! तू विद्या को ग्रहण करने के लिये (स्थिरः) निश्चल (भव) हो। और—

(वाजी) नीतिमान्, (वीड्वङ्गः) दृढ़ एवं बलिष्ठ अंगों वाला तथा (आशुः) शीघ्रकारी (भव) हो। और—

तू (अग्नेः) पावक के समान (सुषदः) उत्तम व्यवहारों में विद्यमान, (पुरीषवाहणः) पालन आदि कर्मों को प्राप्त करने वाला तथा (पृथुः) विस्तृत सुखवाला (भव) हो ॥ ११ । ४४ ॥

[हे अर्वन् ! ··· त्वं विद्याग्रहणाय स्थिरो भव, वाजी वाड्वङ्ग आशुर्भव]

भावार्थः—हे सुसन्तानाः ! युष्माभिर्ब्रह्मचर्येण शरीरबलं, विद्यासुशिक्षाभ्यामात्मबलं पूर्णं दृढं कृत्वा स्थिरतया रक्षा विधेया,

भावार्थ—हे उत्तम सन्तानो ! तुम ब्रह्मचर्य से शरीर-बल को तथा विद्या और सुशिक्षा से आत्म-बल को पूर्ण दृढ़ करके स्थिरता से उसकी रक्षा करो, और—

[त्वमग्नेः सुषदः पुरीषवाहणः पृथुर्भव]

आग्नेयाऽस्त्रादिना शत्रुविनाशश्चेति मातापितरः स्वसन्तानान् सुशिक्षेयुः ॥ ११ । ४४ ॥

आग्नेयास्त्र आदि से शत्रुओं का विनाश करो। इस प्रकार माता-पिता अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा करें ॥ ११ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—अर्वन्=सुसन्तान ! ॥

भाष्यसार—**माता-पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें**—हे विज्ञान से युक्त पुत्र! तू विद्या को ग्रहण करने लिये स्थिर हो, चंचल मत हो। नीतिमान्, दृढ़ एवं बलिष्ठ अंगों वाला तथा शीघ्रकारी बन अर्थात् ब्रह्मचर्य से शरीर-बल, विद्या और सुशिक्षा से आत्म-बल को पूर्णतया दृढ़ करके स्थिरता से उसकी रक्षा कर। जैसे अग्नि के बने आग्नेय अस्त्र आदि शत्रु-विनाश रूप उत्तम-व्यवहारों में सफल होते हैं, वैसे तू यज्ञ आदि उत्तम-व्यवहारों में विराजमान रह। शत्रुओं को विनाश और श्रेष्ठ जनों का पालन आदि कर्मों का प्राप्त करने वाला होकर विस्तृत सुखवाला बन। इस प्रकार माता-पिता अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा करें ॥ ११ । ४४ ॥

चित्रः। **अग्निः**=**विद्वान्** ॥ विराट् पथ्या बृहती। मध्यमः ॥

पुनस्तैः प्रजासु कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर उन को प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवीऽअभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**शिवः**) कल्याणकरी मङ्गलमयः (**भव**) (**प्रजाभ्यः**) प्रसिद्धाभ्यः (**मानुषीभ्यः**) मनुष्यादिभ्यः (**त्वम्**) (**अङ्गिरः**) प्राण इव प्रिय (**मा**) निषेधे (**द्यावापृथिवी**) विद्युद्भूमी (**अभि**) आभ्यन्तरे (**शोचीः**) शोकं कुर्य्याः (**मा**) (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**मा**) (**वनस्पतीन्**) वटादीन् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे अङ्गिरः ! त्वं मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः शिवो भव द्यावापृथिवी माभिशोचीरन्तरिक्षं माभिशोचिर्वनस्पतीन्माभिशोचीः ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अङ्गिरः** प्राण इव प्रिय ! **त्वं मानुषीभ्यः** मनुष्यादिभ्यः **प्रजाभ्यः** प्रसिद्धाभ्यः **शिवः** कल्याणकरो मङ्गलमयः **भव**। **द्यावापृथिवी** विद्युद्भूमी **मा** न **अभि**+**शोचिः** आभ्यन्तरे शोकं कुर्य्याः। **अन्तरिक्षम्** अवकाशं **मा** न **अभि**+**शोचिः** आभ्यन्तरे शोकं कुर्य्याः, **वनस्पतीन्** वटादीन् **मा** न **अभि**+**शोचिः** आभ्यन्तरे शोकं कुर्य्याः ॥ ११ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राण के समान प्रिय पुत्र ! तू (मानुषीभ्यः) मनुष्य आदि (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिये (शिवः) कल्याणकारी एवं मङ्गलमय (भव) बन। और—(द्यावापृथिवी) द्युलोक और भूलोक के अन्दर (मा अभि+शोचिः) शोक मत कर। और—(अन्तरिक्षम्) आकाश के अन्दर (मा अभि+शोचिः) शोक मत कर। (वनस्पतीन्) वट आदि वनस्पतियों के अन्दर (मा अभि+शोचिः) शोक मत कर ॥ ११ । ४५ ॥

[**हे अङ्गिरः ! त्वं मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः शिवो भव**]

भावार्थः—सन्तानैः प्रजाः प्रति मङ्गलाचरणेन भूत्वा,

भावार्थ—उत्तम सन्तान, प्रजा के प्रति मङ्गलाचरण से रहकर—

[**द्यावा पृथिवी माऽभिशोचिः**]

पृथिव्यादीनां मध्ये निश्शोकैः स्थातव्यम्। किन्तु—एतेषां रक्षां विधायोपकारायोत्साहतया प्रयतितव्यम् ॥ ११ । ४५ ॥

पृथिवी आदि लोकों में शोक-रहित रहें। किन्तु—इन पृथिवी आदि की रक्षा करके उपकार के लिये उत्साह से प्रयत्न करें ॥ ११ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—अङ्गिरः=सन्तान ! ॥ शिवः=मङ्गलाचरणः ।

भाष्यसार—**सुसन्तान का प्रजा में कैसा वर्त्ताव हो**—प्राणों के समान प्रिय उत्तम सन्तान मनुष्य आदि प्रजा के लिये कल्याणकारी एवं मङ्गलमय हो। द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक और वनों में सर्वथा शोक रहित रहे। द्युलोक आदि की यज्ञ आदि शुभ-कर्मों से रक्षा करके इनसे उपकार ग्रहण करने के लिए उत्साह-पूर्वक प्रयत्न किया करे ॥ ११ । ४५ ॥ ●

त्रितः । **अग्निः**=सन्तानः । ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनः स एवं विषय उपदिश्यते ॥

उन सन्तानों को प्रजा में कैसे वर्त्तना चाहिये, इसका फिर उपदेश किया है ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ।
वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भं समुद्रियम् । अग्न ऽ आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**प्र**) (**एतु**) गच्छतु (**वाजी**) अश्वः (**कनिक्रदत्**) गच्छन् (**नानदत्**) भृशं शब्दं कुर्वन् (**रासभः**) दातुं योग्यः (**पत्वा**) पतति=गच्छतीति (**भरन्**) धरन् (**अग्निम्**) विद्युतम् (**पुरीष्यम्**) पुरीषेषु=पालनेषु साधुम् (**मा**) (**पादि**) गच्छ (**आयुषः**) नियतवर्षाज्जीवनात् (**पुरा**) पूर्वम् (**वृषा**) बलिष्ठः (**अग्निम्**) सूर्य्याख्यम् (**वृषणम्**) वर्षयितारम् (**भरन्**) (**अपाम्**) जलानाम् (**गर्भम्**) (**समुद्रियम्**) समुद्रे भवम् (**अग्ने**) विद्वन् (**आ**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**वीतये**) विविधसुखानां व्याप्तये ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे अग्ने सुसन्तान ! भवान् कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा वाजीवायुषः पुरा मा प्रैतु । पुरीष्यमग्निं भरन्मा पादि इतस्ततो मागच्छ । वृषापां गर्भं समुद्रियं वृषणमग्निं भरन् सन् वीतय आयाहि ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=सुसन्तान विद्वन् ! **भवान् कनिक्रदत्** गच्छन् **नानदत्** भृशं शब्दं कुर्वन् **रासभः** दातुं योग्यः **पत्वा** पतति=गच्छतीति **वाजी** अश्वः **इव आयुषः** नियतवर्षाज्जीवनात् **पुरा** पूर्वं **मा प्र+एतु** गच्छतु ।

पुरीष्यं पुरीषेषु=पालनेषु साधुम् **अग्निं** विद्युतं **भरन्** धरन् **मा पादि=इतस्ततो मा गच्छ** ।

वृषा बलिष्ठः **अपां** जलानां **गर्भं समुद्रियं** समुद्रे भवं **वृषणं** वर्षयितारम् **अग्निं** सूर्य्याख्यं **भरन्** धरन् **सन् वीतये** विविधसुखानां व्याप्तये **आ+याहि** प्राप्नुहि ॥ ११ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) उत्तम सन्तान विद्वान् ! आप (कनिक्रदत्) गति करने वाले, (नानदत्) बहुत शब्द करने वाले, (रासभः) दान करने योग्य, (पत्वा) गतिशील (वाजी) अश्व के समान (आयुषः) नियत वर्ष वाले जीवन से (पुरा) पहले (मा) मत (प्र+एतु) जाओ । और -

(पुरीष्यम्) पालक-साधनों में श्रेष्ठ (अग्निम्) विद्युत् को (भरन्) धारण करके (मा पादि) इधर उधर मत जाओ । और—

आप (वृषा) बलिष्ठ हो, सो (अपाम्) जलों को (गर्भम्) उत्पत्ति-स्थान, (समुद्रियम्) समुद्र=आकाश में विद्यमान, (वृषणम्) वर्षा करने वाले, (अग्निम्) सूर्य नामक अग्नि को (भरन्) धारण करके (वीतये) विविध सुखों के लिये (आ+याहि) उसे प्राप्त करो ॥ ११ । ४६ ॥

[हे अग्ने ! भवान् ··· आयुषः पुरा मा प्रैतुः, ··· अग्निं भरन् मा पादि]

भावार्थः—मनुष्या विषयलोलुपता त्यागेन ब्रह्मचर्येण पूर्णजीवनं धृत्वाऽग्न्यादिपदार्थविज्ञानाद् धर्म्यं व्यवहारमुन्नयेयुः ॥ ११ । ४६ ॥

भावार्थ—मनुष्य-विषय-लोलुपता के परित्याग से तथा ब्रह्मचर्य-सेवन से पूर्णायु को धारण करके अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान से धर्मयुक्त व्यवहार को उन्नत करें ॥ ११ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—अग्निम्=अग्न्यादिपदार्थविज्ञानम् ।

भाष्यसार—**सुसन्तान का प्रजा में कैसा वर्ताव हो**—जैसे गति करने वाला, अत्यन्त शब्द करने वाला, दान करने योग्य, गतिशील घोड़ा पूर्ण आयु को प्राप्त करता है, वैसे उत्तम सन्तान विद्वान् होकर विषय-लोलुपता के परित्याग से तथा ब्रह्मचर्य के सेवन से पूर्ण-जीवन को धारण करे । पूर्ण आयु से पहिले प्रजा से न जावे । पालक-साधनों में श्रेष्ठ अग्नि=विद्युत् आदि पदार्थों के विज्ञान के द्वारा धर्मयुक्त व्यवहार से विचलित न हो अपितु धर्म-युक्त व्यवहार को प्रजा में उन्नत करे ।

ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान से बलिष्ठ होकर जलों के उत्पादक, समुद्र=आकाश में विद्यमान, वर्षा करने वाले, सूर्य को विविध-सुखों की प्राप्ति के लिये यज्ञ आदि से धारण करे ।। ११ । ४६ ।।

त्रितः । **अग्निः**=सन्तानः ।। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

मनुष्यैः किं किमाचरणीयं किं किं च त्यक्तव्यमित्याह ।।

मनुष्यों को क्या क्या आचरण करना और क्या क्या छोड़ना चाहिये,
यह उपदेश किया है ।।

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः ।
ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः ।
व्यस्यन् विश्वा ऽ अनिरा ऽ अमीवा निषीदन्नो ऽ अप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**ऋतम्**) यथार्थम् (**सत्यम्**) अविनश्वरम् (**ऋतम्**) अव्यभिचारी (**सत्यम्**) सत्सु=पुरुषेषु साधु सत्यं मानं भाषणं कर्म च (**अग्निम्**) विद्युतम् (**पुरीष्यम्**) पालनसाधनेषु भवम् (**अङ्गिरस्वत्**) वायुवत् (**भरामः**) धरामः (**ओषधयः**) यवादयः (**प्रति**) (**मोदध्वम्**) सुखयत (**अग्निम्**) (**एतम्**) पूर्वोक्तम् (**शिवम्**) मङ्गलकारिणम् (**आयन्तम्**) प्राप्नुवन्तम् (**अभि**) आभिमुख्ये (**अत्र**) (**युष्माः**) युष्मान् । अत्र वाच्छन्दसीति शसो नादेशाभावः (**व्यस्यन्**) विविधतया प्रक्षिपन् (**विश्वाः**) सर्वाः (**अनिराः**) नितरां दातुमयोग्याः (**अमीवाः**) रोगपीडाः (**निषीदन्**) अवस्थितः सन् (**नः**) अस्माकम् (**अप**) दूरीकरणे (**दुर्मतिम्**) दुष्टां मतिम् (**जहि**) नाशय ।। ४७ ।।

अन्वयः—हे सन्तानाः ! यथा वयमृतं सत्यमृतं सत्यं पुरीष्यमग्निमङ्गिरस्वद्भरामः । एतमायन्तं शिवमग्निं भूत्वा यूयमप्यभिमोदध्वम् । या ओषधयो युष्माः प्रति प्राप्नुवन्ति ता वयं भरामः । हे वैद्य ! त्वं विश्वा अनिरा अमीवा व्यस्यन्नत्र निषीदन्नो दुर्मतिमपजहि दूरीकुर्वित्येनं प्रार्थयत ।। ४७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे सन्तानाः ! **यथा वयम् ऋतं** यथार्थं, सत्यम् अविनश्वरम्, **ऋतं** अव्यभिचारी, **सत्यं** सत्सु=सत्पुरुषेषु साधु सत्यं मानं भाषणं कर्म च, **पुरीष्यं** पालनसाधनेषु भवम्, **अग्निं** विद्युतम् **अङ्गिरस्वत्** वायुवद् **भरामः** धरामः, **एतं** पूर्वोक्तम् **आयन्तं** प्राप्नुवन्तं **शिवं** मङ्गलकारिणम् **अग्निं** विद्युतं भूत्वा **यूयमपि अभि+मोदध्वम्** अभिमुखं सुखयत । **या ओषधयः** यवादयः **युष्माः** युष्मान् **प्रति प्राप्नुवन्ति ता वयं भरामः** धरामः ।

हे वैद्य ! त्वं विश्वाः सर्वाः **अनिराः** नितरां दातुमयोग्याः **अमीवाः** रोगपीडाः **वि+अस्यन्**

भावार्थ—हे सन्तानो ! जैसे हम लोग (ऋतम्) यथार्थ, (सत्यम्) अविनाशी, (ऋतम्) अव्यभिचारी, (सत्यम्) सत्पुरुषों में श्रेष्ठ-सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना है उसे, तथा (पुरीष्यम्) पालक-साधनों में विद्यमान (अग्निम्) विद्युत् को (अङ्गिरस्वत्) वायु के समान (भरामः) धारण करते हैं, और—(एतम्) इस पूर्वोक्त (आयन्तम्) प्राप्त, (शिवम्) मंगलकारी (अग्निम्) विद्युत् को धारण करके तुम भी (अभि=मोदध्वम्) हमारे सामने सुखी रहो । जो (ओषधयः) यव=जौ आदि ओषधियाँ (युष्माः) तुम्हें प्राप्त होती हैं उन्हें हम (भरामः) धारण करें ।

हे वैद्य ! आप—(विश्वाः) जो सब, (अनिराः) सर्वथा देने के अयोग्य, (अमीवाः) रोगजन्य पीड़ायें

विविधतया प्रक्षिपन् **अत्र निषीदन्** अवस्थितः सन् **नः** अस्माकं **दुर्मतिं** दुष्टां मतिम् **अप+जहि=दूरी-कुरु** दूरं नाशय **इत्येनं प्रार्थयत** ॥ ४७ ॥

हैं, उन्हें, (वि+अस्यन्) विविध प्रकार से दूर हटा-कर, यहाँ (निषीदन) विराजमान होकर, (नः) हमारी (दुर्मतिम्) दुष्ट-बुद्धि को (अप+जहि) नष्ट कीजिये। इस प्रकार वैद्य से प्रार्थना करो ॥

[ऋतं सत्यमृतं सत्यं पुरीष्यमग्निं······भरामः]

भावार्थः—मनुष्या ऋतं सत्यं=परं सत्यं कारणं ब्रह्म, अपरमृतं सत्यम्अव्यक्तं जीवाख्यं, सत्यभाषणादिकं, प्रकृतिजमग्न्योषधिसमूहं च विज्ञाय,

भावार्थ—मनुष्य—प्रथम ऋत सत्य अर्थात् सूक्ष्म, सत्य कारण ब्रह्म को, द्वितीय ऋत सत्य अर्थात् अव्यक्त जीव को, सत्यभाषण आदि को तथा प्रकृति से उत्पन्न ओषधियों को जानकर,

[हे वैद्य त्वं विश्वा अनिरा अमीवा व्यस्यन्···नो दुर्मतिमपजहि]

शरीरस्य ज्वरादिरोगान्, आत्मनो ऽविद्यादींश्च निरस्य मादकद्रव्यत्यागेन सुमतिं संपाद्य, सुखं प्राप्य नित्यं मोदन्ताम् ।

शरीर के ज्वर आदि रोगों तथा आत्मा के अविद्या आदि रोगों को दूर हटाकर, मादक द्रव्यों के त्याग से सुमति को सिद्ध करके, सुख को प्राप्त करके नित्य प्रसन्न रहें।

[तात्पर्यमाह—]

मा कदाचिदेतद्विपरीताचरणेन सुखं हित्वा दुःखसागरे पतन्तु ॥ ११ । ४७ ॥

कभी भी इससे विपरीत आचरण करके सुख को छोड़कर दुःखसागर में न गिरें ॥

भा० पदार्थः—सत्यम्=परं सत्यं कारणं ब्रह्म । सत्यम्=अव्यक्तं जीवाख्यं, सत्यभाषणादिकम् । अमीवाः=शरीरस्य ज्वरादिरोगा, आत्मनोऽविद्यादयः ।

भाष्यसार—१. मनुष्य क्या क्या करें—एक-ऋत सत्य अर्थात् यथार्थ अविनाशी, कारण ब्रह्म को, दूसरा ऋत सत्य अर्थात् अव्यभिचारी, सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य-कर्म करना, सत्य= अव्यक्त जीव को, पालक विद्युत् को वायु=प्राण के समान सब मनुष्य धारण करें। मंगलकारी विद्युत् को धारण करके सुखी रहें । प्रकृति से उत्पन्न यव=जौ आदि ओषधियों को जान कर उन्हें धारण करें।

२. मनुष्य क्या क्या छोड़ें—सब मनुष्य वैद्य से प्रार्थना करें कि हे वैद्य ! आप हमारे रोग-जन्य सब पीड़ाओं को यहाँ विराजमान होकर दूर कीजिये। और हमारी दुष्ट-मति को भी नष्ट कीजिये। इस विधि से सब मनुष्य शरीर के ज्वर आदि रोगों को और आत्मा के अविद्या आदि रोगों को दूर हटावें। मादक-द्रव्यों का सेवन छोड़ कर सुमति को सिद्ध करें। इस प्रकार सुख को प्राप्त करके नित्य प्रसन्न रहें। इसके विपरीत आचरण करके सुख को छोड़ कर दुःखसागर में कभी न गिरें ॥ ११ । ४७ ॥

त्रितः । **अग्निः**=सन्तानः ॥ भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

स्त्रियोऽपि किं किमाचरेयुरित्याह ॥

स्त्रियों को क्या क्या आचरण करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः । अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्नꣳसधस्थमासदत् ॥४८॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) सोमादयः (**प्रति**) (**गृभ्णीत**) गृह्णीत (**पुष्पवतीः**) श्रेष्ठानि पुष्पाणि यासां ताः (**सुपिप्पलाः**) शोभनफलाः (**अयम्**) (**वः**) युष्माकम् (**गर्भः**) (**ऋत्वियः**) ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः (**प्रत्नम्**) पुरातनम् (**सधस्थम्**) सहस्थानम् (**आ**) (**असदत्**) प्राप्नुयात् ॥४८॥

अन्वयः—हे स्त्रियः ! यूयं या ओषधयः सन्ति याभ्योऽयमृत्वियो गर्भो वः प्रत्नं सधस्थं गर्भाशयमासदत्ताः पुष्पवतीः सुपिप्पला ओषधीः प्रति गृभ्णीत ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रियः ! यूयं या **ओषधयः** सोमादयः **सन्ति, याभ्यो अयम् ऋत्वियः** ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः, **गर्भः वः** युष्माकं **प्रत्नं** पुरातनं **सधस्थं=गर्भाशयं** सहस्थानम् **आ+असदत्** प्राप्नुयात्, **ताः पुष्पवतीः** श्रेष्ठानि पुष्पाणि यासां ताः, **सुपिप्पलाः** शोभनफला **ओषधीः प्रति+गृभ्णीत** गृह्णीत ॥ ४८ ॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! तुम—जो (ओषधयः) सोम आदि ओषधियाँ हैं, जिनसे यह (ऋत्वियः) ऋतु को प्राप्त (गर्भः) सन्तान (वः) तुम्हारे (प्रत्नम्) पुराने (सधस्थम्) गर्भाशय को (आ+असदत्) प्राप्त होवे। उन (पुष्पवतीः) श्रेष्ठ पुष्पों वाली (सुपिप्पलाः) उत्तम फलों वाली ओषधियों को (प्रति+गृभ्णीत) ग्रहण करो॥

[हे स्त्रियः ! यूयं या ओषधयः सन्ति, याभ्योऽयमृत्वियो गर्भो वः प्रत्नं सधस्थं ··· आसदत्]

भावार्थः—मातापितृभ्यां कन्याभ्यो व्याकरणादिकमध्याप्य वैद्यकशास्त्रमप्यध्यापनीयम्। यत इमा आरोग्यकारिका गर्भसंपादनीरोषधीर्विज्ञाय सुसन्तानान्युत्पाद्य सततं प्रमोदेरन् ॥ ४८ ॥

भावार्थ—माता-पिता कन्याओं को व्याकरण आदि पढ़ाकर, वैद्यक-शास्त्र को भी पढ़ावें। जिससे ये आरोग्य-कारक, गर्भ को सिद्ध करने वाली ओषधियों को जान कर, उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करके सदा प्रसन्न रहें ॥ ११ । ४८ ॥

भाष्यसार—**स्त्रियाँ क्या क्या करें**—माता-पिता कन्याओं को व्याकरण आदि पढ़ाकर वैद्यक-शास्त्र भी पढ़ावें। जिससे जो आरोग्य-कारक, गर्भ को सिद्ध करने वाली सोम (**गिलोय**) आदि ओषधियाँ हैं, उन्हें जानकर उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करके सदा प्रसन्न रहें। श्रेष्ठ पुष्प और सुन्दर फलों वाली ओषधियों का उपयोग कर सकें ॥ ११ । ४८ ॥

उत्कीलः । **अग्निः=पतिः** ॥ त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विवाहसमये स्त्रीपुरुषौ किं किं प्रतिजानीयातामित्युपदिश्यते ॥

विवाह के समय स्त्री और पुरुष क्या क्या प्रतिज्ञा करें, यह उपदेश किया है॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**वि**) विविधेन (**पाजसा**) बलेन । पातेर्बले जुट् च ॥ उ० ४ । २०३ ॥ इत्यसुन् । पाज इति बलना० ॥ निघं० २ । ६ ॥ (**पृथुना**) विस्तीर्णेन (**शोशुचानः**) भृशं शुचिः सन् (**बाधस्व**) (**द्विषः**) शत्रुभूता व्यभिचारिणीर्वृषलीः (**रक्षसः**) दुष्टाः (**अमीवाः**) रोगइव प्राणिनां पीडकाः (**सुशर्मणः**) सुशोभितगृहस्य (**बृहतः**) महतः (**शर्मणि**) सुखकारके गृहे (**स्याम्**) वर्त्तेय (**अग्नेः**) अग्निवद्देदीप्यमानस्य (**अहम्**) पत्नी (**सुहवस्य**) शोभनो हवो=ग्रहणं दानं वा यस्य तस्य (**प्रणीतौ**) प्रकृष्टायां धर्म्यायां नीतौ ॥ ४९ ॥

प्रमाणार्थ—(पाजसा) 'पाजस्' शब्द 'पातेर्बले जुट् च' उणा० (४ । २०३) इस सूत्र से 'पा' धातु से बल अर्थ में 'असुन्' प्रत्यय और 'जुट्' का आगम पर सिद्ध है । 'पाजस्' शब्द निघं० (२ । ९) में बल-नामों में पढ़ा है ॥ ११ । ४९ ॥

अन्वयः—हे पते ! यदि त्वं पृथुना विपाजसा बलेन सह शोशुचानः सदा वर्त्तेथा अमीवा रक्षसो द्विषो बाधस्व तर्हि बृहतः सुशर्मणः सुहवस्याग्नेस्ते शर्मणि प्रणीतौ चाहं पत्नी स्याम् ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पते ! यदि त्वं पृथुना विस्तीर्णेन वि+पाजसा=बलेन विविधेन बलेन सह शोशुचानः भृशं शुचिः सन् सदा वर्त्तेथाः, अमीवाः रोग इव प्राणिनां पीडकाः रक्षसः दुष्टाः द्विषः शत्रुभूता व्यभिचारिणीर्वृषलीः बाधस्व, तर्हि बृहतः महतः सुशर्मणः सुशोभितगृहस्य सुहवस्य शोभनो हवः=ग्रहणं दानं वा यस्य तस्य अग्नेः अग्निवद्देदीप्यमानस्य ते शर्मणि सुखकारके गृहे प्रणीतौ प्रकृष्टायां धर्म्यायां नीतौ चाऽहं पत्नी स्याम् वर्त्तेय ॥ ४९ ॥

भाषार्थ—हे पते ! यदि आप (पृथुना) विस्तृत एवं (वि+पाजसा) विविध बल के साथ (शोशुचानः) अतिपवित्र होकर सदा वर्ताव करो, (अमीवाः) रोग के तुल्य प्राणियों को पीड़ा देने वाली (रक्षसः) दुष्ट (द्विषः) शत्रु रूप व्यभिचारिणी=वृषली स्त्रियों को (बाधस्व) दूर हटाते हो तो (बृहतः) महान्, (सुशर्मणः) सुन्दर घर वाले, (सुहवस्य) उत्तम रीति से लेन-देन करने वाले, (अग्नेः) अग्नि के समान देदीप्यमान आपके (शर्मणि) सुखकारक घर में और (प्रणीतौ) उत्तम धर्मयुक्त नीति में मैं आपकी पत्नी (स्याम्) विद्यमान रहूँ ॥ ११ । ४९ ॥

[हे पते ! त्वं ··· अमीवा रक्षसे द्विषो बाधस्व तर्हि···सुशर्मणः···अग्नेस्ते शर्मणि प्रणीतौ चाहं पत्नी स्याम्]

भावार्थः—विवाह समये पुरुषेण स्त्रिया च व्यभिचारत्यागस्य प्रतिज्ञां कृत्वा व्यभिचारिणीनां स्त्रीणां लम्पटानां पुरुषाणां च सर्वथा संगं त्यक्त्वा, परस्परमप्यतिविषयासक्तिं विहाय, ऋतुगामिनौ भूत्वाऽन्योऽन्यं प्रीत्या वीर्यवन्त्यपत्यान्युत्पादयेताम् ।

भावार्थ—विवाह के समय पुरुष और स्त्री व्यभिचार-त्याग की प्रतिज्ञा करके, व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सर्वथा संग छोड़कर, परस्पर भी अति विषयासक्ति का परित्याग करके, ऋतुगामी होकर परस्पर प्रीतिपूर्वक बलवान् सन्तानों को उत्पन्न करें ।

[व्यभिचारनिन्दामाह—]

न हिव्यभिचारेण तुल्यं स्त्रियाः पुरुषस्य चाप्रियम्, अनायुष्यम् अकीर्तिकरं कर्म विद्यते । तास्मादेतत् सर्वथा त्यक्त्वा धर्माचारिणौ भूत्वा दीर्घायुषौ स्याताम् ॥ ११ । ४९ ॥

व्यभिचार के समान स्त्री और पुरुष के लिये अनिष्टकारी, आयु-नाशक और अपयशकारक कर्म नहीं है, अतः इसे सर्वथा छोड़कर धर्माचारी होकर दीर्घायु होवें ॥ ११ । ४९ ॥

भाष्यसार—**विवाह के समय स्त्री-पुरुष क्या क्या प्रतिज्ञा करें**—स्त्री कहती है कि हे पति ! यदि आप विस्तृत एवं विविध बल से युक्त, अत्यन्त पवित्र होकर वर्ताव करो, रोग के समान प्राणियों को पीडा देने वाली, दुष्ट, शत्रु-रूप व्यभिचारिणी (**वृषली**) स्त्रियाँ हैं, उनसे दूर रहो, तो मैं सुन्दर घर वाले, उत्ताम लेन-देन वाले, विद्यादि गुणों से अग्नि के समान देदीप्यमान आपके सुखकारक घर में और धर्मपुक्त नीति में रहकर पत्नी बनना स्वीकार करती हूँ ।

तात्पर्य यह है कि स्त्री और पुरुष विवाह के समय व्यभिचार के परित्याग की प्रतिज्ञा

करके व्यभिचारी स्त्रियों और लम्पट पुरुषों के संग को सर्वथा छोड़कर, परस्पर भी अत्यन्त विषयासक्ति का परित्याग करके, ऋतुगामी होकर परस्पर प्रीति से बलवान् सन्तानों को उत्पन्न करें। व्यभिचार-कर्म स्त्री और पुरुष का अनिष्टकारी, आयु को नष्ट करने वाला, अपयश को बढ़ाने वाला है। इसका सर्वथा त्याग करके धर्मात्मा होकर दीर्घायु को प्राप्त करें ॥ ११ । ४६ ॥

सिन्धुद्वीपः । **आपः=स्त्रियः** ॥ गायत्री । षड्जः ॥

अथ कृतविवाहाः स्त्रीपुरुषा अन्योन्यं कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

अब विवाह किये स्त्री और पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऽ ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**आपः**) आप इव शुभगुणव्यापिकाः (**हि**) खलु (**स्थ**) भवत। **अत्रान्येषामपीति** दीर्घः (**मयोभुवः**) सुखं भावुकाः (**ताः**) (**नः**) अस्माकम् (**ऊर्जे**) बलयुक्ताय (**दधातन**) धरत (**महे**) महते (**रणाय**) संग्रामाय (**चक्षसे**) ख्यातुं योग्याय ॥ ५० ॥

प्रमाणार्थ—(**स्था**) स्थ। यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' [**अ०** ६ । ३ । १३५] इस सूत्र से दीर्घ है ॥ ११ । ५० ॥

अन्वयः—हे जलवद्वर्त्तमाना आप इव याः स्त्रियः ! यूयं मयोभुवःस्थ ता ऊर्जे महे रणाय चक्षसे नो दधातन ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जलवद्वर्त्तमाना आपः** आप इव शुभगुणव्यापिकाः इव **याः स्त्रियः** ! **यूयं मयोभुवः** सुखं भावुकाः [हि] खलु **स्थ** भवत, **ताः ऊर्जे** बलयुक्ताय **महे** महते **रणाय** सङ्ग्रामाय **चक्षसे** ख्यातुं योग्याय **नः** अस्माकं **दधातन** धरत ॥

भाषार्थ—हे जल के समान वर्ताव वाली, (आपः) जल के समान शुभ गुणों में व्यापक स्त्रियो ! तुम-(मयोभुवः) सुख को उत्पन्न करने वाली (हि) ही (स्थ) बनो, और तुम-(ऊर्जे) बल से युक्त, (महे) महान्, (रणाय) संग्राम जो(चक्षसे) ख्याति के योग्य है, उसके लिये (नः) हमें (दधातन) धारण करो ॥ ११ । ५० ॥

[**हे···आप···स्त्रियः । यूयं मयोभुवः स्थ**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा स्त्रियः स्वपतीन् प्रीणयेयुस्तथैव पतयः स्वाः स्त्रियः सदा सुखयन्तु ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे स्त्रियाँ अपने पतियों को प्रसन्न करती हैं, वैसे ही पति अपनी स्त्रियों को सदा सुखी रखें ।

[**ता ऊर्जे महे रणाय चक्षसे नो दधातन**]

एते युद्धकर्मण्यपि पृथङ् न वसेयुरर्थात् सहैव सदा वर्त्तेरन् ॥ ५० ॥

ये पति लोग युद्ध-कर्म में भी उनसे अलग न रहें अर्थात् सदा साथ ही रहें ॥ ११ । ५० ॥

भाष्यसार—१. **विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें**—विवाहित स्त्रियाँ जल के समान शुभ गुणों को धारण करने वाली तथा सुखों को उत्पन्न करने वाली हों । जैसे स्त्रियाँ अपने पतियों को प्रसन्न करें, वैसे पति भी अपनी स्त्रियों को सदा सुखी रखें । स्त्रियाँ बलयुक्त, महान्, संग्राम की ख्याति

के लिये पुरुषों को धारण करें अर्थात् पुरुष स्त्रियों को युद्ध-कर्म में भी पृथक् न रखें अपितु सदा साथ ही रहें ॥ ११ । ५० ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि स्त्रियाँ जल के समान शुभ गुणों से व्याप्त=भरपूर हों ॥ ११ । ५० ॥

सिन्धुद्वीपः । **आपः=स्त्रियः** ॥ गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विवाहित स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

यो वः॑ शि॒वत॑मो॒ रस॒स्तस्य॑ भाजयते॒ह नः॑ । उ॒श॒तीरि॑व मा॒तरः॑ ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**यः**) (**वः**) युष्माकम् (**शिवतमः**) अतिशयेनसुखकारी (**रसः**) आनन्दः (**तस्य**) (**भाजयत**) सेवयत (**इह**) अस्मिन् गृहाश्रमे (**नः**) अस्माकमस्मान् वा (**उशतीरिव**) यथा कामयमानाः (**मातरः**) जनन्यः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियः । वो न इह यः शिवतमो रसोऽस्ति तस्य मातरः पुत्रानुशतीरिव भाजयत ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रियः ! वः युष्माकं **नः** अस्माकम् **इह** अस्मिन् गृहाऽऽश्रमे **यः शिवतमः** अतिशयेन सुखकारी **रसः** आनन्दः **अस्ति**, **तस्य मातरः** जनन्यः **पुत्रान् उशतीरिव** यथा कामयमानाः [**नः**] अस्मान् **भाजयत** सेवयत ॥५१॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! (वः) तुम्हारा और (नः) हमारा (इह) इस गृहाश्रम में (यः) जो (शिवतमः) अत्यन्त सुखकारी (रसः) आनन्द है तुम उसकी (मातरः) उत्पन्न करने वाली होकर (पुत्रान्) पुत्रों की (उशतीरिव) कामना करती हुई [नः] हमारी (भाजयत) सेवा करो ॥

[हे स्त्रियो ! वो न इह यः शिवतमो रसोऽस्ति, तस्यमातरः पुत्रानुशतीरिव भाजयत]

भावार्थः—स्त्री मातापितरौ पुत्रानिव स्वं स्वं पतिं, प्रीत्या सेवताम्, एवमेव स्वां स्वां स्त्रियं पतिश्च ।

यथा जलानि तृषातुरान् प्राणिनस्तृप्यन्ति तथैव सुशीलतयाऽऽनन्देन तृप्ताः सन्तु ॥ ११ । ५१ ॥

भावार्थ—स्त्रियों को चाहिये कि जैसे माता-पिता अपने पुत्रों की सेवा करते हैं वैसे अपने अपने पति की प्रीतिपूर्वक सेवा करें । इसी प्रकार अपनी अपनी स्त्री की पति भी सेवा करे ।

जैसे जल पिपासा से व्याकुल प्राणियों को तृप्त करते हैं वैसे ही सुशीलतापूर्वक आनन्द से स्त्री और पुरुष तृप्त रहें ॥ ११ । ५१ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें**—विवाहित स्त्रियाँ गृहाश्रम में जो अत्यन्त सुखकारी रस=आनन्द है, उसे उत्पन्न करने वाली हों । पुत्रों की कामना करने वाली होकर पति की सेवा करें । जैसे माता-पिता पुत्रों की सेवा करते हैं, वैसे स्त्री अपने पति की प्रीतिपूर्वक सेवा करे । जैसे जल तृषातुर प्राणियों को तृप्त करता है, वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष सुशीलता से वर्ताव करके आनन्द से तृप्त रहें ॥ ११ । ५१ ॥

सिन्धुद्वीपः । **आपः=स्त्रियः** ॥ गायत्री । षडजः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विवाहित स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

तस्मा॒ ऽ अरं॑ गमाम वो॒ यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**तस्मै**) वक्ष्यमाणाय (**अरम्**) अलम् । **अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वम्** (**गमाम**) गच्छेम (**वः**) युष्मान् (**यस्य**) जनस्य (**क्षयाय**) निवासार्थाय गृहाय (**जिन्वथ**) प्रीणयत (**आपः**) जलानीव (**जनयथ**) उत्पादयत । **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** (**च**) सुखादीनां समुच्चये (**नः**) अस्माकम् ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—(**अरम्**) अलम् । यहाँ 'कपिलकादीनां संज्ञाछन्दसो र्वा रो लत्वमापद्यत इति वक्तव्यम्' [अ० ८ । २ । १८] इस वार्त्तिक से विकल्प करके लकार है । (**जनयथा**) जनयथ । यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' [६ । ३ । १३५] इस सूत्र से दीर्घ है ॥ ११ । ५२ ॥

अन्वयः—हे आपः ! जलवद्वर्त्तमानाः या यूयं नः तस्मै क्षयाय जिन्वथ जनयथ च ता वो युष्मान्वयमरं गमाम यस्य प्रतिज्ञातस्य धर्म्यव्यवहारस्य पालिका भवत तस्यैव वयमपि भवेम ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे आपः=जलवद्वर्त्तमानाः** ! जलानीव ! **या यूयं नः** अस्माकं [**तस्मै**] वक्ष्यमाणाय **क्षयाय** निवासार्थाय गृहाय **जिन्वथ** प्रीणयत, **जनयथ** उत्पादयत **च** सुखादीनां समुच्चये, **ता वः=युष्मान् वयम् अरम्** अलं **गमाम** गच्छेम ।

यस्य=प्रतिज्ञातस्य धर्म्यव्यवहारस्य जनस्य **पालिका भवत तस्यैव वयमपि भवेम** ॥ ५२ ॥

भाषार्थ—हे (आपः) जल के समान वर्त्ताव करने वाली स्त्रियो ! जो तुम—(नः) हमारे [तस्मै] वक्ष्यमाण (क्षयाय) निवास के योग्य घर के लिये (जिन्वथ) प्रसन्न रहती हो, (जिन्वथ च) और सुख आदि को उत्पन्न करती हो, सो (वः) तुम्हें हम (अरम्) सर्वथा (गमाम) प्राप्त करें । और—

(यस्य) जिस प्रतिज्ञात धर्मयुक्त व्यवहार की एवं पुरुष की तुम पालिका हो उसी के हम भी पालक बनें ॥ ११ । ५२ ॥

[हे आप ! **या यूयं नः** [**तस्मै**] **क्षयाय जिन्वथ, जनयथ च**]

भावार्थः—पुरुषो यस्याः स्त्रियः पतिः, यस्य पुरुषस्य या स्त्री पत्नी भवेत् स सा च परस्परस्यानिष्टं कदापि न कुर्यात् ।

भावार्थ—पुरुष जिस स्त्री का पति हो, तथा जिस पुरुष की जो स्त्री पत्नी हो, वह पुरुष और स्त्री परस्पर अनिष्ट कभी न करें ।

[**ता वो युष्मान् वयमरङ्गमाम**]

एवं सुखसन्तानैरलंकृतौ भूत्वा धर्मेण गृहकृत्यानि कुर्याताम् ॥ ११ । ५२ ॥

इस प्रकार सुख-विस्तार से अलंकृत होकर धर्मपूर्वक गृहकार्यों को करें ॥ ११ । ५२ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें**—विवाहित स्त्रियाँ जल के समान शुभ-गुणों से युक्त होकर गृह-कार्यों के लिये सदा प्रसन्न रहें और सुख को उत्पन्न करें । पुरुष ऐसी ही स्त्रियों को सर्वथा प्राप्त करें । स्त्रियाँ प्रतिज्ञात धर्मयुक्त व्यवहार का पालन करें । पुरुष अपनी स्त्री (**पत्नी**) का और स्त्री अपने पुरुष (**पति**) का कभी अनिष्ट न करे । अपितु सुख के विस्तार से अलंकृत होकर दोनों धर्मपूर्वक गृह-कार्यों का अनुष्ठान करें ॥ ११ । ५२ ॥ ●

सिन्धुद्वीपः । **मित्रः**=पतिः ।। उपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

विवाहित स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ।।

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह ।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ।। ५३ ।।

पदार्थः—(**मित्रः**) सर्वेषां सुहृत्सन् (**संसृज्य**) संसर्गी भूत्वा (**पृथिवीम्**) अन्तरिक्षम् (**भूमिम्**) क्षितिम् (**च**) (**ज्योतिषा**) विद्यान्यायसुशिक्षाप्रकाशेन (**सह**) (**सुजातम्**) सुष्ठुप्रसिद्धम् (**जातवेदसम्**) उत्पन्नं वेदविज्ञानम् (**अयक्ष्माय**) आरोग्याय (**त्वा**) त्वाम् (**सम्**) (**सृजामि**) निष्पादयामि (**प्रजाभ्यः**) पालनीयाभ्यः ।। ५३ ।।

अन्वयः—हे पते ! यस्त्वं मित्रः प्रजाभ्योऽयक्ष्मायं ज्योतिषा सह पृथिवीं भूमिं च संसृज्य मां सुखयसि तं सुजातं जातवेदसं त्वाऽहमप्येतदर्थं संसृजामि ।। ५३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे पते ! यस्त्वं **मित्रः** सर्वेषां सुहृत् सन् **प्रजाभ्यः** पालनीयाभ्यः **अयक्ष्माय** आरोग्याय **ज्योतिषा** विद्यान्यायसुशिक्षा-प्रकाशेन **सह पृथिवीम्** अन्तरिक्षं **भूमिं** क्षितिं **च सम्+सृज्य** संसर्गी भूत्वा **मां सुखयसि, तं सुजातं** सुष्ठुप्रसिद्धं **जातवेदसम्** उत्पन्नं वेदविज्ञानं **त्वा अहमप्येतदर्थं सम्+सृजामि** निष्पादयामि ।। ५३ ।।

भाषार्थ—हे पते ! जो आप (**मित्रः**) सबके मित्र होकर (प्रजाभ्यः) पालन के योग्य प्रजा के (अयक्ष्माय) आरोग्य के लिये (ज्योतिषा) विद्या, न्याय और सुशिक्षा के प्रकाश से (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष और (भूमिम्) भूमि के (सम्+सृज्य) संगी होकर मुझे सुख देते हो, सो (सुजातम्) अति प्रसिद्ध (जातवेदसम्) वेद-विज्ञान के वेत्ता (त्वा) आपको मैं, इसी कार्य के लिये (सम्+सृजामि) तैयार करती हूँ ।। ११ । ५३ ।।

[हे पते ! **यतस्त्वं मित्रः प्रजाभ्योऽयक्ष्माय···मां सुखयसि तं···त्वामहप्येतदर्थं संसृजामि**]

भावार्थः—स्त्री पुरुषाभ्यां सद्गुणविद्वदा-संगाच्छ्रेष्ठाचारं कृत्वा शरीरात्मनोरारोग्यं संपाद्य सुप्रजा उत्पादनीयाः ।। ११ । ५३ ।।

भावार्थ—स्त्री-पुरुष उत्तम गुणों वाले विद्वानों के संग से श्रेष्ठ आचार बनाकर, शरीर और आत्मा के आरोग्य को सिद्ध करके उत्तम प्रजा को उत्पन्न करें ।। ११ । ५३ ।।

भा० पदार्थः—अयक्ष्माय=शरीरात्मनोरारोग्याय । प्रजाभ्यः=सुप्रजाभ्यः ।

भाष्यसार—विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें—विवाहित पुरुष सबका मित्र होकर उत्तम सन्तान तथा शरीर और आत्मा के आरोग्य के लिये श्रेष्ठ गुणों वाले विद्वानों के संग से विद्या, न्याय और सुशिक्षा के प्रकाश से आकाश और पृथिवी को परिपूर्ण करे । अपनी पत्नी को सुखी रखे । अपने आचार को श्रेष्ठ बनावे । स्त्री भी ऐसे सुप्रसिद्ध वेद-विज्ञान को उत्पन्न करने वाले पुरुष को पति बनावे ।। ११ । ५३ ।।

सिन्धुद्वीपः । **रुद्राः**=वायवः ।। अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

विवाहित स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ।।

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र॒ऽइच्छुक्रो दे॒वेषु॑ रोचते ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**रुद्राः**) यथा प्राणरूपा वायवः (**संसृज्य**) सूर्य्यमुत्पाद्य (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**बृहत्**) महत् (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**सम्**) (**ईधिरे**) दीपयन्ति (**तेषाम्**) वायूनां सकाशादुत्पाद्य (**भानुः**) सूर्य्यः (**अजस्रः**) बहुरजस्रं प्रकाशो निरन्तरं विद्यते यस्मिन् सः । **अत्र अर्शआदित्वादच्** (**इत्**) इव (**शुक्रः**) भास्वरः (**देवेषु**) दिव्येषु पृथिव्यादिषु (**रोचते**) प्रकाशते ॥ ५४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अजस्रः**) यहां 'अर्शआदिभ्योऽच्' [**अ० ५ । २ । १२७**] इस सूत्र से 'अच्' प्रत्यय है ॥ ११ । ५४ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! यथा रुद्राः सूर्य्यं संसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे तेषां सकाशादुत्पन्नः शुक्रो भानुर्देवेष्वजस्रो रोचत इदिव विद्यान्यायार्कमुत्पाद्य प्रजाजनान् प्रकाशयते तेभ्यः प्रजासु दिव्यानि सुखानि प्रचारयत ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्री पुरुषाः** ! **यथा रुद्राः** प्राणरूपा वायवः **सूर्य्यं सम्+सृज्य** सूर्य्यमुत्पाद्य **पृथिवीं** भूमिं, **बृहत्** महद् **ज्योतिः** प्रकाशं **सम्+ईधिरे** दीपयन्ति, **तेषां** वायूनां **सकाशादुत्पन्नः शुक्रः** भास्वरः **भानुः** सूर्य्यः **देवेषु** दिव्येषु पृथिव्यादिषु **अजस्रः** बहुरजस्रं प्रकाशो निरन्तरं विद्यते यस्मिन् सः, **रोचते** प्रकाशते, **इत्**=इव **विद्यान्यायार्कमुत्पाद्य प्रजाजनान् प्रकाशयन्ते, तेभ्यः प्रजासु दिव्यानि सुखानि प्रचारयत** ॥ ५४ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे—(रुद्राः) प्राणरूप वायु (संसृज्य) सूर्य को उत्पन्न करके (पृथिवीम्) भूमि और (बृहत्) महान् (ज्योतिः) प्रकाश को (सम्+ईधिरे) प्रदीप्त करती हैं, (तेषाम्) उन वायुओं से उत्पन्न (शुक्रः) दीप्तिमान् (भानुः) सूर्य (देवेषु) दिव्य पृथिवी आदि पर (अजस्रः) अधिक एवं निरन्तर प्रकाश वाला होकर (रोचते) प्रकाश करता है, (इत्) वैसे जो विद्या और न्याय सूर्य को उत्पन्न करके प्रजा-जनों को प्रकाश देते हैं उनके लिये प्रजा में दिव्य सुखों का प्रचार करो ॥ ५४ ॥

[**हे स्त्री पुरुषाः ! यथा रुद्राः सूर्यं संसृज्य बृहज्ज्योतिः समीधिरे**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा वायुः सूर्यस्य, सूर्यः प्रकाशस्य, प्रकाशश्चाक्षुष व्यवहारस्य च कारणमस्ति, तथैव स्त्रीपुरुषाः परस्परस्य सुखस्य साधनोपसाधनकारिणो भूत्वा सुखानि साधयेयुः ॥ ११ । ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे वायु सूर्य का, सूर्य प्रकाश का, प्रकाश नेत्र-व्यवहार का कारण है, वैसे ही स्त्री-पुरुष पारस्परिक सुख के साधन-उपसाधन बन कर सुखों को सिद्ध करें ॥ ११ । ५४ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें**—जैसे वायु सूर्य को उत्पन्न करके भूमि और महान् प्रकाश को प्रदीप्त करते हैं और उन वायुओं से उत्पन्न हुआ भास्वान् सूर्य पृथिवी आदि में निरन्तर अत्यन्त प्रकाश करता है, वैसे जो विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियाँ विद्या और न्याय के सूर्य को उत्पन्न करके प्रजा-जनों को प्रकाश देते हैं । विवाहित स्त्री-पुरुष उनके लिये प्रजा में दिव्य-सुखों का विस्तार करें ।

जैसे वायु सूर्य का, सूर्य प्रकाश का, प्रकाश नेत्र-व्यवहार का कारण है वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष पारस्परिक सुख के साधन उपसाधनों को बनाकर सुखों को सिद्ध करें ॥ ११ । ५४ ॥

सिन्धुद्वीपः । **सिनीवाली**=हृद्या कन्या ॥ विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

स्त्रीभिः किं भूताः सेविका रक्षणीया इत्याह ॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**संसृष्टाम्**) सम्यक् सुशिक्षया निष्पादिताम् (**वसुभिः**) कृतेन चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्येण प्राप्तविद्यैः (**रुद्रैः**) सेवितेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येण विद्याबलयुक्तैः (**धीरैः**) सुसंयमैः (**कर्मण्याम्**) या कर्मभिः संपद्यते ताम् । **अत्र कर्मवेषाद्यत् ॥ अ० ५ । १ । १०० ॥ इति कर्मशब्दात् संपादिन्यर्थे यत्** (**मृदम्**) कोमलाङ्गीम् (**हस्ताभ्याम्**) (**मृद्वीम्**) मृदुगुणस्वभावाम् (**कृत्वा**) (**सिनीवाली**) या सिनीः=प्रेमबद्धाः कन्या वलयति सा (**कृणोतु**) करोतु (**ताम्**) ॥ ५५ ॥

प्रमाणार्थ—(**कर्मण्याम्**) यहां 'कर्मवेषाद्यत्' (अ० ५ । १ । १००) इस सूत्र से संपादि-अर्थ में कर्म शब्द से 'यत्' प्रत्यय है ॥ ११ । ५५ ॥

अन्वयः—हे पते ! भवान् शिल्पिहस्ताभ्यां कर्मण्यां मृदमिव धीरैर्वसुभी रुद्रैर्या शिक्षया संसृष्टां मृद्वीं कृणोतु या सिनीवाली वर्त्तते तां स्त्रियं कृत्वा सुखयतु ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे पते ! भवान् शिल्पिहस्ताभ्यां कर्मण्यां** या कर्मभिः सम्पद्यते तां **मृदं** कोमलाङ्गीम् **इव, धीरैः** सुसंयमैः **वसुभिः** कृतेन चतुर्विंशतिवर्षब्रह्मचर्य्येण प्राप्तविद्यैः **रुद्रैः** सेवितेन चतुश्चत्वारिंशद्वर्षब्रह्मचर्य्येण विद्याबलयुक्तैः **शिक्षया संसृष्टां** सम्यक् सुशिक्षया निष्पादितां **मृद्वीं** मृदुगुणस्वभावां **कृणोतु** करोतु, **या सिनीवाली** या सिनीः=प्रेमबद्धाः कन्या वलयति सा **वर्त्तते, तां स्त्रियं कृत्वा सुखयतु** ॥ ५५ ॥

भाषार्थ—हे पते ! आप-शिल्पी-जनों के हाथों से (कर्मण्याम्) सुखयुक्त कार्यों के निमित्त बनी हुई (मृदम्) कोमल मिट्टी के समान—(धीरैः) अति संयमी, (वसुभिः) चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन करके विद्या प्राप्त करने वाले, (रुद्रैः) चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन से विद्या और बल से युक्त विद्वानों की सुशिक्षा से (संसृष्टाम्) सुशिक्षित की हुई कन्या को (मृद्वीम्) मृदु गुण और स्वभाव वाली (कृणोतु) बनाओ। जो (सिनीवाली) प्रेमबद्ध कन्याओं को धारण करने वाली है, उसे स्त्री बनाकर सुखी करो ॥

[हे पते ! भवान् शिल्पिहस्ताभ्यां कर्मण्यां मृदिमिव···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा कुलालादयः शिल्पिनो जलेन मृत्तिकां कोमलां कृत्वा तत्संभूतान् घटादीन् रचयित्वा सुखकार्याणि साध्नुवन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे-कुम्हार आदि शिल्पी जल से मिट्टी को कोमल करके, उनसे उत्पन्न घड़े आदि बनाकर सुख के कार्यों को सिद्ध करते हैं,

[**धीरैर्वसुभीरुद्रैर्या शिक्षया संसृष्टां मृद्वीं कृणोतु, वा सिनीवाली वर्त्तते तां स्त्रियं कृत्वा सुखयतु**]

तथैव विद्वद्भिर्मातापितृभिः शिक्षिता हृद्याः कन्याः ब्रह्मचारिणो विवाहाय संगृह्य गृहकृत्यानि साध्नुवन्तु ॥ ११ । ५५ ॥

वैसे विद्वान् माता-पिता के द्वारा शिक्षित, प्रिय कन्याओं को ब्रह्मचारी लोग विवाह के लिये ग्रहण करके गृह-कार्यों को सिद्ध करें ॥ ११ । ५५ ॥

भा० पदार्थः—मृदम्=मृत्तिकाम् । धीरैः=विद्वद्भिः । सिनीवाली=हृद्या कन्या ।

भाष्यसार—**स्त्रियाँ कैसी सेविका रखें**—जैसे कुम्हार आदि शिल्पी लोग जल से सिद्ध की हुई मिट्टी को कोमल करके उससे घट=घड़ा आदि बना कर कार्यों को सिद्ध करते हैं, वैसे स्त्रियाँ उक्त मिट्टी के समान कोमल स्वभाव वाली सेविकाओं को रखकर गृह-कार्यों को सिद्ध करें। अत्यन्त संयमी २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन करके विद्या को प्राप्त करने वाले 'वसु' नामक विद्वान्, ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन करके विद्या और बल से युक्त 'रुद्र' नामक विद्वान् जो माता-पिता हैं, उनसे सुशिक्षित मृदु-स्वभाव वाली, कुम्हार आदि शिल्पी के हाथों से सिद्ध की हुई मिट्टी के समान कोमल अङ्गों वाली कन्याओं को तथा ब्रह्मचारियों को विवाह के लिये स्वीकार करके स्त्री-पुरुष गृह-कार्यों को सिद्ध करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं, अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि कुम्हार आदि शिल्पी जनों से सिद्ध की हुई मिट्टी के समान कोमल अङ्ग वाली कन्याओं को विवाह के लिये स्वीकार करें ॥ ११ । ५५ ॥ ●

सिन्धुद्वीपः । **अदितिः=अखण्डितानन्दा स्त्री** ॥ विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

स्त्रियों को कैसी दासी रखनी चाहिये, यह फिर उपदेश किया है ॥

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**सिनीवाली**) प्रेमास्पदाढ्या (**सुकपर्दा**) सुकेशी (**सुकुरीरा**) शोभनानि कुरीराण्यलंकृतान्याभूषणानि यया सा । **कृञ उच्च** ॥ उ० ४ । ३३ ॥ **इति ईरन् प्रत्ययः** (**स्वौपशा**) उपसमीपे श्यति=तनूकरोति यया पाकक्रियया सोपशा तस्या इदं कर्म औपशं तच्छोभनं विद्यते यस्याः सा (**सा**) (**तुभ्यम्**) (**अदिते**) अखण्डितानन्दे (**महि**) पूज्ये (**आ**) (**उखाम्**) सूपादिसाधनीं स्थालीम् (**दधातु**) (**हस्तयोः**) ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुकुरीरा**) यहाँ 'कृञ उच्च' उणा० (४ । ३३) इस सूत्र से 'कृ' धातु से 'ईरन्' प्रत्यय है ॥ ११ । ५६ ॥

अन्वयः—हे मह्यदिते ! या सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा यस्यै तुभ्यं हस्तयोरुखां दधातु सा त्वया संसेव्या ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **महि** पूज्ये ! **अदिते** अखण्डितानन्दे ! **या सिनीवाली** प्रेमास्पदाढ्या **सुकपर्दा** सुकेशी **सुकुरीरा** शोभनानि कुरीराण्यलंकृतान्याभूषणानि यया सा, **स्वौपशा** उप=समीपे श्यति=तनूकरोति यया पाकक्रियया सोपशा, तस्या इदं कर्म औपशं, तच्छोभनं विद्यते यस्याः सा, **यस्यै तुभ्यं हस्तयोः उखां** सूपादिसाधनीं स्थालीम् **[आ] दधातु सा त्वया संसेव्या** ॥ ११ । ५६ ॥

भावार्थ—हे (महि) पूज्या (अदिते) अखण्डित आनन्द वाली स्त्री ! जो तू (सिनीवाली) प्रेम प्रतिष्ठा से परिपूर्ण, (सुकपर्दा) उत्तम केशों वाली, (सुकुरीरा) सुन्दर आभूषणों से अलंकृत, (स्वौपशा) उत्तम पाक विद्या में कुशल है, सो तेरे लिये जो परिचारिका हाथों में (उखाम्) सूप=दाल आदि बनाने का साधन स्थाली को ([आ] दधातु) धारण करे उसका तू उत्तम रीति से सेवन कर ॥ ११ । ५६ ॥

[हे···अदिते ! या सिनीवाली···सुकुरीरा, स्वौपशा यस्यै तुभ्यं हस्तयोरुखां दधातु]

भावार्थः—सतीभिः स्त्रीभिः सुशिक्षिताऽचतुराः परिचारिका रक्षणीयाः। यतः सर्वाः पाचकादिसेवा यथा-कालं स्युः ॥ ११ । ५६ ॥

भावार्थ—श्रेष्ठ स्त्रियाँ सुशिक्षित, चतुर सेविकाओं को रखें। जिससे सब पाचक आदि सम्बन्धी कार्य यथासमय हों ॥ ११ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—अदिते=सतीस्त्रि ॥ सुकुरीरा=सुशिक्षिता चतुरा ॥

भाष्यसार—**स्त्रियाँ कैसी सेविका रखें**—श्रेष्ठ स्त्रियाँ प्रेम भावना से भरपूर, उत्तम केशों वाली, सुन्दर आभूषणों से अलङ्कृत, पाक-क्रिया में कुशल, सुशिक्षित सेविकाएं रखें। जो स्त्रियों के लिये सूप-स्थाली आदि पात्रों को अपने हाथों में धारण करें, जिससे पाचक आदि से सम्बन्धित सब सेवाएँ यथा समय सिद्ध होवें ॥ ११ । ५६ ॥ ●

सिन्धुद्वीपः। **अदितिः**=**जननी** ॥ भुरिग्बृहती। मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री विषय का फिर उपदेश किया है ॥

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया।
माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भ ऽ आ। मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**उखाम्**) पाकस्थालीम् (**कृणोतु**) (**शक्त्या**) पाकविद्यासामर्थ्येन (**बाहुभ्याम्**) (**अदितिः**) जननी (**धिया**) प्रज्ञया कर्मणा वा (**माता**) (**पुत्रम्**) (**यथा**) (**उपस्थे**) स्वाङ्के (**सा**) पत्नी (**अग्निम्**) अग्निमिव वर्त्तमानं वीर्य्यम् (**बिभर्तु**) (**गर्भे**) कुक्षौ (**आ**) (**मखस्य**) यज्ञस्य (**शिरः**) उत्तमाङ्गवद्वर्त्तमानः (**असि**) ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे गृहस्थ ! यतस्त्वं मखस्य शिरोऽसि तस्माद्भवान् धिया शक्त्या बाहुभ्यामुखां कृणोतु। याऽदितिस्ते स्त्री वर्त्तते सा गर्भे यथा मातोपस्थे पुत्रं धरति तथाऽग्निमाबिभर्तु ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थः ! **यतस्त्वं मखस्य** यज्ञस्य **शिरः** उत्तमाङ्गवद्वर्त्तमानः **असि, तस्माश्दवान् धिया** प्रज्ञया कर्मणा वा **शक्त्या** पाकविद्यासामर्थ्येन **बाहुभ्याम् उखां** पाकस्थालीं **कृणोतु**।

या अदितिः जननी **ते स्त्री वर्त्तते, सा** पत्नी **गर्भे** कुक्षौ **यथा माता उपस्थे** स्वाङ्के **पुत्रं धरति, तथा अग्निम्** अग्निमिव वर्त्तमानं वीर्य्यम् **आ+बिभर्त्तु** ॥ ११ । ५७ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! क्योंकि आप (मखस्य) यज्ञ के (शिरः) शिर के समान (असि) हो, अतः आप (धिया) ज्ञान वा कर्म से (शक्त्या) पाक-विद्या के निमित्त (बाहुभ्याम्) अपनी भुजाओं से (उखाम्) पाकस्थाली का (कृणोतु) निर्माण करो।

जो (अदितिः) पुत्र उत्पन्न करने वाली तेरी स्त्री है (सा) वह पत्नी (गर्भे) गर्भ में, जैसे माता अपनी (उपस्थे) गोदी में पुत्र को धारण करती है वैसे (अग्निम्) अग्नि के समान वीर्य को (आ+बिभर्त्तु) धारण करे ॥ ११ । ५७ ॥

[हे गृहस्थ ! ··· भवान् धिया शक्त्या बाहुभ्यामुखां कृणोतु]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ कुमारौ

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार

कन्यावरौ ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षे पूर्णे कृत्वा बल-बुद्धिपराक्रमयुक्तसन्तानोत्पादनाय विवाहं कृत्वा वैद्यकशास्त्ररीत्या महौषधिजं पाकं विधाय—

है। कुमारी कन्या और कुमार वर ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को पूर्ण करके; बल, बुद्धि तथा पराक्रम से युक्त सन्तानों को उत्पन्न करने के लिये विवाह करके, वैद्यक शास्त्र की रीति से, महौषधियों से पाक बनाकर,

[याऽदितिस्ते स्त्री वर्त्तते सा गर्भे, यथा मातोपस्थे पुत्रं धरति तथाऽग्निमाबिभर्तु]

विधिवद्गर्भाधानं कृत्वोत्तरपथ्यं विदध्याताम्, परस्परं सुहृत्तया वर्त्तित्वाऽपत्यस्य गर्भाधानादि-कर्माणि कुर्याताम् ॥ ११ । ५७ ॥

विधिपूर्वक गर्भाधान करके, उत्तरवर्त्ती पथ्य का आचरण करें, परस्पर मित्रता से रहकर, बालक के गर्भाधान आदि कर्म किया करें ॥ ११ । ५७ ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-विषयक उपदेश**—गृहस्थ यज्ञ का शिर है, यज्ञ आदि शुभ कर्मों का पालक है। वह बुद्धि से, कर्म से, पाक-विद्या के निमित्त अपने हाथों से पाकस्थाली का निर्माण करे।

जैसे माता अपनी गोदी में पुत्र को धारण करती है वैसे पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्री पत्नी बनकर गर्भ में वीर्य को धारण करे। तात्पर्य यह है कि कुमारी कन्या और कुमार वर ब्रह्मचर्य-पूर्वक विद्या और सुशिक्षा को पूर्ण करके बल, बुद्धि, पराक्रम से युक्त सन्तानों की उत्पत्ति के लिये विवाह करें। वैद्यक-शास्त्र की रीति से महान् ओषधियों से पाक का निर्माण करें। विधिपूर्वक गर्भाधान करके उत्तरवर्त्ती पथ्य अर्थात् संयम से रहें तथा युक्त आहार-विहार करें। परस्पर मित्र होकर बालकों के गर्भाधान आदि संस्कार करें॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में 'यथा' पद उपमा-वाचक है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे माता पुत्र को गोदी में धारण करती है वैसे पत्नी गर्भ में वीर्य को धारण करे ॥ ११ । ५७ ॥

सिन्धुद्वीपः। **वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवाः**=विद्वदादयः। पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य चोत्कृती छन्दसी। षड्जः॥

पुनर्दम्पती किङ्कृत्वा किङ्कुर्य्यातामित्युपदिश्यते ॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करके क्या करें, यह उपदेश किया है॥

वस॑वस्त्वा कृण्वन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वासि॑ पृथि॒व्य॒सि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य्यꣳ॑ सजा॒तान्यज॑मानाय रु॒द्रास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वास्य॒न्तरि॑क्षमसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य्यꣳ॑ सजा॒तान्यज॑मानाया॒ऽऽदि॒त्यास्त्वा॑ कृण्वन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साऽङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वासि॒ द्यौर॑सि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य्यꣳ॑ सजा॒तान्यज॑माना॒य विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒राः कृ॒ण्व॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद्ध्रु॒वासि॒ दिशो॑ऽसि धा॒रया॒ मयि॑ प्र॒जाꣳ रा॒यस्पोषं॑ गौप॒त्यꣳ सु॒वीर्य्यꣳ॑ सजा॒तान्यज॑मानाय ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**वसवः**) वसुसंज्ञका विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**कृण्वन्तु**) (**गायत्रेण**) वेदविहितेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) धनञ्जयप्राणवत् (**ध्रुवा**) निश्चला (**असि**) (**पृथिवी**) पृथुसुखकारिणी (**असि**) (**धारय**) (**स्थापय**) अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**मयि**) त्वत्प्रीतायां पत्नचाम् (**प्रजाम्**) सुसन्तानम् (**रायः**)

धनस्य (**पोषम्**) पुष्टिम् (**गौपत्यम्**) गोर्धेनोः पृथिव्या वाचो वा पतिस्तस्य भावम् (**सुवीर्य्यम्**) शोभनं च तद्वीर्य्यं च तत् (**सजातान्**) समानात्प्रादुर्भावादुत्पन्नान् (**यजमानाय**)विद्यासंगमयित्र आचार्य्याय (**रुद्राः**) रुद्र-संज्ञका विद्वांसः (**त्वा**) (**कृण्वन्तु**) (**त्रैष्टुभेन**) (**छन्दसा**)(**अङ्गिरस्वत्**) आकाशवत्(**ध्रुवा**) अक्षुब्धा (**असि**) (**अन्तरिक्षम्**) अक्षयप्रेमयुक्ता (**असि**) (**धारय**) (**मयि**) (**प्रजाम्**) सत्यबलधर्मयुक्ताम् (**रायः**) राजश्रियः (**पोषम्**) (**गौपत्यम्**) अध्यापकत्वम् (**सुवीर्य्यम्**) सुष्ठुपराक्रमम् (**सजातान्**) (**यजमानाय**) साङ्गोपाङ्ग-वेदाध्यापकाय (**आदित्याः**) पूर्णविद्याबलप्राप्त्या विपश्चितः (**त्वा**) (**कृण्वन्तु**) (**जागतेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवा**) निष्कम्पा (**असि**) (**द्यौः**) सूर्य्यइव वर्त्तमानः (**असि**) (**धारय**) (**मयि**) (**प्रजाम्**) सुप्रजाताम् (**रायः**) चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्म्याः (**पोषम्**) (**गौपत्यम्**) सकलविद्याधिस्वामित्वम् (**सुवीर्य्यम्**) (**सजातान्**) (**यजमानाय**) क्रियाकौशलसहितानां सर्वासां विद्यानां प्रवक्त्रे (**विश्वे**) सर्वे (**त्वा**) (**देवाः**) उपदेशका विद्वांसः (**वैश्वानराः**) ये विश्वेषु नायकेषु राजन्ते (**कृण्वन्तु**) (**आनुष्टुभेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिर-स्वत्**) सूत्रात्मप्राणवत् (**ध्रुवा**) सुस्थिरा (**असि**) (**दिशः**) सर्वासु दिक्षु व्याप्तकीर्त्तिः (**असि**) (**धारय**) (**मयि**) (**प्रजाम्**) (**रायः**) समग्रैश्वर्य्यस्य (**पोषम्**) (**गौपत्यम्**) वाक्चातुर्य्यम् (**सुवीर्य्यम्**) (**सजातान्**) (**यजमानाय**) सत्योपदेशकाय ।। ५८ ।।

अन्वयः—हे ब्रह्मचारिणि कुमारिके ! या त्वमङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि तां त्वा गायत्रेण छन्दसा वसवो मम स्त्रियं कृण्वन्तु। हे कुमार ब्रह्मचारिन् ! यस्त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवोऽसि भूमिवत् क्षमावानसि यं त्वा वसवो गायत्रेण छन्दसा मम पतिं कृण्वन्तु स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् संतानान् सर्वान्यजमानाय विद्याग्रहणार्थं समर्पयेव। हे स्त्रि ! या त्वमङ्गिर-स्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि तां त्वा रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा मम पत्नीं कृण्वन्तु। हे वीर ! यस्त्वमङ्गिरस्वद्-ध्रुवोऽस्यन्तरिक्षमसि यं त्वा रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा मम स्वामिनं कृण्वन्तु। स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् सुशिक्ष्य वेदशिक्षाध्ययनाय यजमानाय प्रदद्याव। हे विदुषि ! या त्वमङ्गिरस्वद्ध्रुवाऽसि द्यौरसि तां त्वादित्या जागतेन छन्दसा मम भार्य्यां कृण्वन्तु। हे विद्वन् ! यस्त्व-मङ्गिरस्वद्ध्रुवोऽसि द्यौरसि यं त्वादित्या जागतेन छन्दसा ममाधिष्ठातारं कृण्वन्तु। स त्वं मयि प्रजां रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् जन्मतः सूपदिश्य सर्वविद्याग्रहणार्थं यजमानाय समर्प्पयेव। हे सुभगे ! या त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि तां त्वा वैश्वानरा विश्वे देवा आनुष्टुभेन छन्दसा मदधीनां कृण्वन्तु। हे पुरुष ! यस्त्वमङ्गिरस्वद्ध्रुवोऽसि दिशोऽसि यं त्वा वैश्वानरा विश्वेदेवा मदधीनं कृण्वन्तु स त्वं मयि प्रजां रास्पोषं गौपत्यं सुवीर्य्यं च धारय। आवां सूपदेशार्थं सजातान् यजमा-नाय समर्प्पयेव ।। ५८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **ब्रह्मचारिणि कुमारिके** ! **या त्वम् अङ्गिरस्वत्** धनञ्जयप्राण-वद् **ध्रुवा** निश्चला **असि**, **पृथिवी** पृथुसुखकारिणी **असि**, **तां त्वा** त्वां **गायत्रेण** वेदविहितेन **छन्दसा** **वसवः** वसुसंज्ञका विद्वांसः **मम स्त्रियं कृण्वन्तु** ।

हे **कुमार ब्रह्मचारिन्** ! **यस्त्वम् अङ्गिरस्वत्** धनञ्जयप्राणवद् **ध्रुवः** निश्चलः **असि**, **भूमिवत् क्षमावान् असि**, **यं त्वा** त्वां **वसवः** वसुसंज्ञका

भावार्थ—हे ब्रह्मचारिणी कुमारी ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण के समान (ध्रुवा) निश्चल (असि) हो। तू (पृथिवी) विस्तृत सुखका-रिणी (असि) है । सो (त्वा) तुझे (गायत्रेण) छन्दसा वेदोक्त २४ अक्षर वाले छन्द से (वसवः) 'वसु' नामक विद्वान् मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) बनावें।

हे कुमार ब्रह्मचारी ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण के समान (ध्रुवः) निश्चल (असि) है, [पृथिवी] भूमि के समान क्षमाशील (असि) है,

विद्वांसः **गायत्रेण** वेदविहितेन **छन्दसा मम पतिं कृण्वन्तु, स त्वं मयि** त्वत्प्रीतायां पत्न्यां **प्रजां** सुसन्तानं **रायः** धनस्य **पोषं** पुष्टिं **गौपत्यं** गोर्धेनोः पृथिव्या वाचो वा पतिस्तस्य भावं, **सुवीर्य्यं** शोभनं च तद्वीर्य्यं च तत् **च धारय** स्थापय। **आवां सजातान्**=सन्तानान् समानात् प्रादुर्भावादुत्पन्नान् **सर्वान् यजमानाय** विद्यासंगमयित्र आचार्य्याय विद्याग्रहणार्थं **समर्पयेव।**

सो (त्वा) तुझे (वसवः) 'वसु' नामक विद्वान् (गायत्रेण छन्दसा) वेदोक्त गायत्री छन्द से मेरा पति (कृण्वन्तु) बनावें। सो तू (मयि) तुझ से प्रसन्न मुझ पत्नी में (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को, (गौपत्यम्) गौ अर्थात् धेनु, पृथिवी वा वाणी के पतिभाव को, (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य को (धारय) स्थापित कर। हम दोनों—(सजातान्) सब उत्पन्न सन्तानों को (यजमानाय) विद्या से संगम कराने वाले आचार्य को विद्या-ग्रहण करने के लिये समर्पित करें।

हे स्त्रि! **या त्वम् अङ्गिरस्वत्** आकाशवद् **ध्रुवा** अक्षुब्धा **असि, अन्तरिक्षम्** अक्षयप्रेमयुक्ता **असि,** तां **त्वा रुद्राः** रुद्रसंज्ञका विद्वांसः **त्रैष्टुभेन छन्दसा मम पत्नीं कृण्वन्तु।**

हे स्त्री! जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवा) क्षोभ-रहित (असि) है, (अन्तरिक्षम्) अक्षय प्रेम से युक्त (असि) है, सो तुझे (रुद्राः) 'रुद्र' नामक विद्वान् (त्रैष्टुभेन छन्दसा) ३६ अक्षर वाले त्रिष्टुप्-छन्द से मेरी पत्नी बनावें।

हे वीर! **यस्त्वम् अङ्गिरस्वत्** आकाशवद् **ध्रुवः** अक्षुब्धः **असि, अन्तरिक्षम्** अक्षयप्रेमयुक्तः **असि** यं **त्वा रुद्राः** रुद्रसंज्ञका विद्वांसः **त्रैष्टुभेन छन्दसा मम स्वामिनं कृण्वन्तु, स त्वं मयि प्रजां** सत्यबल-धर्मयुक्तां **रायः** राजश्रियः **पोषं गौपत्यम्** अध्यापकत्वं **सुवीर्य्यं** सुष्ठुपराक्रमं **च धारय। आवां सजातान्**=सन्तानान् **सुशिक्ष्य वेदशिक्षाऽध्ययनाय यजमानाय** साङ्गोपाङ्गवेदाऽध्यापकाय **प्रदद्याव।**

हे वीर! जो तू (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवः) निश्चल (असि) है, (अन्तरिक्षम्) अक्षय प्रेम से युक्त (असि) है, सो (त्वा) तुझे (रुद्राः) 'रुद्र' नामक विद्वान् (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से मेरा स्वामी (कृण्वन्तु) बनावें। सो तू (मयि) मुझ पत्नी में (प्रजाम्) सत्य, बल और धर्म से युक्त प्रजा को, (रायः) राज-लक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि को, (गौपत्यम्) अध्यापक-भाव को, और (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को (धारय) धारण कर। हम दोनों—(सजातान्) उत्पन्न सन्तानों को सुशिक्षित करके वेद-शिक्षा के अध्ययनार्थ (यजमानाय) साङ्गोपाङ्ग वेद के अध्यापक को प्रदान करें।

हे विदुषि! **या त्वम् अङ्गिरस्वत् ध्रुवा** निष्कम्पा **असि, द्यौः** सूर्य इव वर्त्तमाना **असि, तां त्वा आदित्याः** पूर्णविद्याबलप्राप्त्या विपश्चितः **जागतेन छन्दसा मम भार्य्यां कृण्वन्तु।**

हे विदुषी! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण के समान (ध्रुवा) निष्कम्प (असि) है, (द्यौः) सूर्य से समान वर्त्ताव वाली (असि) है, सो तुझे (आदित्याः) पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से युक्त 'आदित्य' नामक विद्वान् (जागतेन छन्दसा) ४८ अक्षर वाले जगती छन्द से मेरी स्त्री (कृण्वन्तु) बनावें।

हे विद्वन्! **यस्त्वम् अङ्गिरस्वत् ध्रुवः** निष्कम्पः **असि, द्यौः** सूर्य्यइव वर्त्तमानः **असि, यं**

हे विद्वान्! जो तू (अङ्गिरस्वत्) धनंजय प्राण के समान (ध्रुवः) निष्कम्प (असि) है, (द्यौः)

त्वा आदित्याः पूर्णविद्याबलप्राप्त्या विपश्चितः **जागतेन छन्दसा ममाऽधिष्ठातारं कृण्वन्तु, स त्वं मयि प्रजां** सुप्रजातां **रायः** चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्म्याः **पोषं गौपत्यं** सकलविद्याधिस्वामित्वं **सुवीर्य्यं च धारय। आवां सजातान् जन्मतः सूपदिश्य सर्व-विद्याग्रहणार्थं यजमानाय** क्रियाकौशलसहितानां सर्वासां विद्यानां प्रवक्त्रे **समर्पयेव।**

सूर्य के समान वर्त्ताव वाला (असि) है, सो तुझे (आदित्याः) पूर्ण विद्या और बल की प्राप्ति से युक्त 'आदित्य' नामक विद्वान् (जागतेन छन्दसा) ४८ अक्षर वाले जगती छन्द से मेरा अधिष्ठाता=पति (कृण्वन्तु) बनावें। सो तू (मयि) मुझ पत्नी में (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (रायः) चक्रवर्ती-राज्य-लक्ष्मी की (पोषम्) पुष्टि को, (गौपत्यम्) सकल विद्याओं के अधिपति-भाव को और (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य को (धारय) स्थापित कर। हम दोनों—(सजातान्) उत्पन्न सन्तानों को जन्म से उत्तम उपदेश करके सब विद्याओं को ग्रहण करने के लिए (यजमानाय) क्रिया-कौशल सहित सब विद्याओं के प्रवक्ता=आचार्य को सौंपे।

हे सुभगे ! या त्वम् अङ्गिरस्वत् सूत्रात्मप्राण-वद् **ध्रुवा** सुस्थिरा **असि, दिशः** सर्वासु दिक्षु व्याप्त-कीर्त्तिः **असि, तां त्वा वैश्वानराः** ये विश्वेषु नायकेषु राजन्ते **विश्वे** सर्वे **देवाः** उपदेशका विद्वांसः **आनुष्टु-भेन छन्दसा मदधीनां कृण्वन्तु।**

हे सौभाग्यशालिनी ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म प्राण के समान (ध्रुवा) स्थिर (असि) है, (दिशः) सब दिशाओं में कीर्ति मती (असि) है, सो तुझे (वैश्वानराः) सब नेताओं में विराजमान, (विश्वे देवाः) सब उपदेशक विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन छन्दसा) ३२ अक्षर वाले अनुष्टुप् छन्द से मेरे अधीन (कृण्वन्तु) करें।

हे पुरुष ! यस्त्वम् अङ्गिरस्वत् सूत्रात्मप्राणवद् **ध्रुवः** सुस्थिरः **असि, दिशः** सर्वासु दिक्षु व्याप्त-कीर्त्तिः **असि, यं त्वा वैश्वानराः** ये विश्वेषु नायकेषु राजन्ते **विश्वे** सर्वे **देवाः** उपदेशका विद्वांसः **मदधीनं कृण्वन्तु, स त्वं मयि प्रजां रायः** समग्रैश्वर्य्यस्य **पोषं गौपत्यं** वाक्चातुर्य्यं **सुवीर्य्यं च धारय। आवां सूपदेशार्थं सजातान्**=सन्तानान् **यजमानाय** सत्यो-पदेशकाय **समर्प्पयेव** ॥ ५८ ॥

हे पुरुष ! जो तू (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म प्राण के समान (ध्रुव) स्थिर (असि) है। सो (त्वा) तुझे (वैश्वानराः) सब नेताओं में राजमान (विश्वे देवाः) सब उपदेशक विद्वान् लोग मेरे अधीन (कृण्वन्तु) करे। सो तू (मयि) मुझ पत्नी में (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (रायः) समग्र ऐश्वर्य की (पोषम्) पुष्टि को, (गौपत्यम्) वाणी की चतुराई को और (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य को (धारय) स्थापित कर। हम दोनों—उत्तम उपदेश के लिए (सजातान्) उत्पन्न सन्तानों को (यजमानाय) सत्य उपदेशक को सौंपें ॥ ११। ५८ ॥

[**हे ब्रह्मचारिणि कुमारिके···त्वां···वसवः···मम स्त्रियं कृण्वन्तु, हे कुमार ! ब्रह्मचारिन् !··· त्वा वसवः···मम पतिं कृण्वन्तु**]

भावार्थः—यदा स्त्रीपुरुषौ परस्परं परीक्षां कृत्वाऽन्योऽन्यं दृढप्रीतौ स्याताम् तदा वेदविधिना यज्ञं प्रतत्य वेदोक्तनियमान् स्वीकृत्य विवाहं विधाय—

भावार्थ—जब स्त्री-पुरुष परस्पर परीक्षा करके आपस में दृढ़-प्रीति वाले हों तब वेद-विधि से यज्ञ करके, वेदोक्त नियमों को स्वीकार करके, विवाह कर—

[स त्वं मयि प्रजां'''धारय, आवां सजातान्'''विद्याग्रहणार्थं समर्पयेव]

सन्तानानुत्पाद्य, यावदष्ट वार्षिकाः पुत्राः पुत्र्यश्च भवेयुस्तावन्मातापितरौ तान् सुशिक्षयाताम्, अत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं ग्राहयित्वा विद्याध्ययनाय स्वगृहादतिदूरे आप्तानां विदुषां विदुषीणां च पाठशालासु प्रेषयेताम् ।

सन्तानों को उत्पन्न कर, जब तक आठ वर्ष के पुत्र और पुत्रियाँ होवें तब तक माता-पिता उन्हें उत्तम शिक्षा देवें । इससे आगे ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कराके, विद्या-अध्ययन के लिये अपने घर से अति दूर आप्त विद्वानों और विदुषियों की पाठशाला में भेज देवें ।

[विद्यादानगौरवमाह—]

अत्र यावतो धनस्य व्ययः कर्त्तुं योग्योऽस्ति तावन्तं कुर्याताम्, न हि सन्तानानां विद्यादानमन्तरा कश्चिदुपकारो धर्मश्चास्ति । तस्मादेतत् सततं समाचरेताम् ॥ ११ । ५८ ॥

इस कार्य में जितना धन व्यय करना उचित है उतना करें । सन्तानों को विद्यादान से बढ़कर दूसरा कोई उपकार और धर्म नहीं है । अतः इसे सदा किया करें ॥ ११ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—प्रजाम्=सन्तानम् । सजातान्=पुत्रान् पुत्र्यश्च ।

भाष्यसार—**दम्पती क्या करें**—ब्रह्मचारिणी कुमारी धनंजय प्राण के समान निश्चल हो, अत्यन्त सुखकारिणी हो, २४ वर्ष ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले 'वसु' नामक विद्वान् उसका विवाह करें ।

कुमार ब्रह्मचारी धनंजय प्राण के समान निश्चल हो, भूमि के समान क्षमाशील हो, उसे २४ वर्ष ब्रह्मचर्य का सेवन करने वाले 'वसु' नामक विद्वान् उसको ब्रह्मचारिणी कुमारी का पति बनावें और वह उससे प्रसन्न पत्नी में उत्तम सन्तान को; धन की पुष्टि को; गौ, पृथिवी और वाणी के पति भाव को और उत्तम वीर्य को स्थापित करे । तात्पर्य यह है कि जब स्त्री-पुरुष परस्पर परीक्षा करके परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हों तब वेदविधि से यज्ञ करके, वेदोक्त विधि से स्वीकार करके विवाह करके सन्तानों को उत्पन्न करें ।

स्त्री-पुरुष सब उत्पन्न सन्तानों को यजमान=विद्या प्राप्त कराने वाले आचार्य को विद्या को ग्रहण करने के लिये सौंप देवें । जब तक आठ वर्ष के पुत्र और पुत्रियाँ होवें तब तक उन्हें माता-पिता सुशिक्षित करें । इससे आगे ब्रह्मचर्य-व्रत को ग्रहण कराकर विद्याध्ययन के लिये अपने घर से अति दूर पुत्रों को आप्त विद्वानों की और पुत्रियों को आप्त विदुषियों की पाठशाला में भेज देवें । इस कार्य में जितना धन खर्च करना योग्य है उतना करें क्योंकि विद्यादान से बढ़कर सन्तानों का उपकार तथा धर्म कोई नहीं है । अतः सन्तानों को निरन्तर विद्या-दान करें ॥ ११ । ५८ ॥

सिन्धुद्वीपः । **अदितिः=विद्याप्रकाशः** ॥ आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री पुरुष क्या करके, क्या करे, इसका फिर उपदेश किया है ॥

आदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**अदित्यै**) दिवे=विद्याप्रकाशाय (**रास्ना**) दात्री (**असि**) (**अदितिः**) पुत्रः पुत्री च (**ते**) तव सकाशात् (**बिलम्**) भरणं धारणम् । **बिलं भरं भवति बिभर्तेः ॥ निरु० २ । १७ ॥** (**गृभ्णातु**) गृह्णातु (**कृत्वाय**) (**सा**) (**महीम्**) महतीम् (**उखाम्**) पाकस्थालीम् (**मृन्मयीम्**) मृद्विकाराम् (**योनिम्**) मिश्रिताम् (**अग्नये**) अग्निसम्बन्धे स्थापनाय (**पुत्रेभ्यः**) सन्तानेभ्यः (**प्र**) (**अयच्छत्**) दद्यात् (**अदितिः**) माता (**श्रपयान्**) श्रपयन्तु=परिपाचयन्तु (**इति**) अनेन प्रकारेण ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(**बिलम्**) निरु० (२ । १७) के अनुसार 'बिल' शब्द का अर्थ 'भर' (**भरण**) है । क्योंकि 'भर' शब्द 'भृ' धातु से निष्पन्न है ॥ ११ । ५६ ॥

अन्वयः—हे अध्यापिके विदुषि ! यतस्त्वमदित्यै रास्नासि तस्मात्ते तव सकाशाद् बिलं ब्रह्मचर्य्यधारणं कृत्वायादितिर्विद्या गृभ्णातु साऽदितिर्भवती मृन्मयीं योनिं महीमुखामग्नये पुत्रेभ्यश्च प्रायच्छत् । विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ता भूत्वोखामिति श्रपयानन्नादिपाकं कुर्वन्तु ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अध्यापिके विदुषि! यतस्त्वम् अदित्यै** दिवे=विद्याप्रकाशाय **रास्ना** दात्री **असि, तस्मात् ते=तव सकाशाद् बिलं=ब्रह्मचर्य्यधारणं** भरणं धारणं **कृत्वाय अदितिः=विद्या** पुत्रः पुत्री च **गृभ्णातु** गृह्णातु, **सा अदितिः** माता **भवती मृन्मयीं** मृद्विकारां **योनिं** मिश्रितां **महीं** महतीम् **उखां** पाकस्थालीम् **अग्नये** अग्नि-सम्बन्धे स्थापनाय **पुत्रेभ्यः** सन्तानेभ्यः **च प्र+अयच्छत्** दद्यात् । **विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ता भूत्वा उखां** पाकस्थालीम् **इति** अनेन प्रकारेण **श्रपयान्=अन्नादिपाकं कुर्वन्तु** श्रपयन्तु=परिपाचयन्तु ॥

भाषार्थ—हे अध्यापिका विदुषी ! क्योंकि तू (अदित्यै) विद्याप्रकाश को (रास्ना) देनेवाली (असि) है, अतः (ते) आपके पास से (बिलम्) ब्रह्मचर्य को धारण (कृत्वाय) करके (अदितिः) पुत्र और पुत्री विद्याओं को (गृभ्णातु) ग्रहण करें और वह (अदितिः) माता (मृन्मयीम्) मिट्टी की बनी हुई (योनिम्) पदार्थों को मिश्रित करने वाली (महतीम्) बड़ी (उखाम्) पाक-स्थाली को (अग्नये) अग्नि पर स्थापित करने के लिये (पुत्रेभ्यः) सन्तानों को (प्र+अयच्छत्) प्रदान करे । वे विद्या और सुशिक्षा से युक्त होकर (उखाम्) पाक-स्थाली में (इति) इस प्रकार (श्रपयान्) अन्न आदि को पकावें ॥ ११ । ५६ ॥

[हे अध्यापिके विदुषि ! यतस्त्वमदित्यै रास्नाऽसि, तस्मात्ते तव सकाशाद् बिलं···कृत्वायादितिर्गृह्णातु, उखामिति श्रपयान्]

भावार्थः—कुमाराः पुरुषशालां कुमार्यश्च स्त्रीशालां गत्वा ब्रह्मचर्यं विधाय सुशीलतया विद्याः पाकविधिं च गृह्णीयुः । आहार-विहारानपि सुनियमेन सेवयेयुः ।

भावार्थ—कुमार पुरुषों की पाठशाला में और कुमारियाँ स्त्रियों की पाठशाला में जा कर ब्रह्मचर्य का सेवन करके सुशीलता से विद्याओं को और पाक विधि को सीखें । आहार विहारों को भी उत्तम नियम से सेवन करें ।

[ब्रह्मचारिकर्त्तव्यमाह—]

न कदाचिद् विषयकथां शृणुयुः, मद्यमांसालस्यातिनिद्रां विहायाध्यापकसेवानुकूलताभ्यां वर्त्तित्वा सुव्रतानि धरेयुः ॥ ११ । ५६ ॥

विषय-कथा कभी न सुनें । मद्य, मांस, आलस्य और अतिनिद्रा को छोड़कर, अध्यापकों की सेवा और अनुकूलता से वर्ताव करके उत्तम-व्रतों को धारण करें ॥ ११ । ५६ ॥

भाष्यसार—दम्पती क्या करें—विदुषी अध्यापिका कुमारियों को विद्या-प्रकाश को प्रदान करने वाली हो। कुमारियाँ ब्रह्मचर्य को धारण करके विद्या और पाक-रीति को ग्रहण करें। वह विदुषी माता मिट्टी की बनी हुई, पदार्थों का जिसमें भली-भाँति मिश्रण हो सके ऐसी, बड़ी पाकस्थाली को अग्नि पर स्थापित करने के लिये दे अर्थात् पाक-विद्या सिखलावे। कुमारियाँ विद्या और सुशिक्षा से युक्त होकर पाक-स्थाली में विधिपूर्वक अन्न आदि का पाक करें।

तात्पर्य यह कि स्त्री-पुरुष कुमारों को पुरुषों की पाठशाला में और कुमारियों को स्त्रियों की पाठशाला में भेज देवें। वहाँ वे ब्रह्मचर्य को धारण करके सुशीलता से कुमार विद्याओं को ग्रहण करें और कुमारियाँ विद्या और पाकविधि को सीखें। नियमपूर्वक आहार-विहार का सेवन करें। विषय-कथा कभी न सुनें। मद्य, मांस और अतिनिद्रा का परित्याग करें। अध्यापकों की सेवा और अनुकूलता में रहकर उत्तम-व्रतों को धारण करें॥ ११। ५९॥

सिन्धुद्वीपः। **वस्वादयो मन्त्रोक्ताः=आदिम विद्वदादयः**॥
स्वराट्संकृतिः। गान्धारः॥

पुनर्विद्वांसोऽध्येतॄनुपदेश्यान्मनुष्यान् कथं कथं शोधयेयुरित्याह॥

फिर विद्वान् लोग पढ़ने हारे और उपदेश के योग्य मनुष्यों को कैसे शुद्ध करें, यह उपदेश किया है॥

वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद् रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु॥६०॥

पदार्थः—(**वसवः**) आदिमा विद्वांसः (**त्वा**) त्वाम् (**धूपयन्तु**) सुगन्धान्नादिभिः संस्कुर्वन्तु (**गायत्रेण**) वेदस्थेन (**छन्दसा**) **अङ्गिरस्वत्**) प्राणैस्तुल्यम् (**रुद्राः**) मध्यमा विपश्चितः (**त्वा**) (**धूपयन्तु**), विद्यासुशिक्षाभ्यां संस्कुर्वन्तु (**त्रैष्टुभेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) विज्ञानवत् (**आदित्याः**) उत्तमा विद्वांसोऽध्यापकाः (**त्वा**) (**धूपयन्तु**)सत्यव्यवहारग्रहणेन संस्कुर्वन्तु (**जागतेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) ब्रह्माण्डस्थशुद्धवायुवत् (**विश्वे**) सर्वे (**त्वा**) (**देवाः**) सत्योपदेशका विद्वांसः (**वैश्वानराः**) सर्वेषु मनुष्येष्विमे सत्यधर्मविद्याप्रकाशकाः (**धूपयन्तु**) सत्योपदेशेन संस्कुर्वन्तु (**आनुष्टुभेन**) (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) विद्युद्वत् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यवान् राजा (**त्वा**) (**धूपयतु**) राजविद्यया संस्करोतु (**वरुणः**) वरो न्यायाधीशः (**त्वा**) (**धूपयतु**) राजनीत्या संस्करोतु (**विष्णुः**) सकलविद्यायोगाङ्गव्यापी योगिराजः (**त्वा**) (**धूपयतु**) योगविद्याङ्गैः संस्करोतु॥ ६०॥

अन्वयः—हे ब्रह्मचारिन् ब्रह्मचारिणि वा! ये वसवो गायत्रेण छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। आदित्या जागतेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। वैश्वानरा विश्वेदेवा आनुष्टुभेन छन्दसा त्वाङ्गिरस्वद् धूपयन्तु। इन्द्रस्त्वा धूपयतु। वरुणस्त्वा धूपयतु। विष्णुस्त्वा धूपयत्वेतांस्त्वं सततं सेवस्व॥ ६०॥

सपदार्थान्वयः—हे ब्रह्मचारिन् ब्रह्मचारिणि वा! ये वसवः आदिमा विद्वांसः

भावार्थ—हे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी! जो (वसवः) 'वसु' नामक प्रथम कोटि के विद्वान् हैं

गायत्रेण वेदस्थेन **छन्दसा त्वा** त्वाम् **अङ्गिरस्वत्** प्राणैस्तुल्यं **धूपयन्तु** सुगन्धाऽन्नादिभिः संस्कुर्वन्तु; **रुद्राः** मध्यमा विपश्चितः **त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा** त्वाम् **अङ्गिरस्वत्** विज्ञानवद् **धूपयन्तु** विद्यासुशिक्षाभ्यां संस्कुर्वन्तु, **आदित्याः** उत्तमा विद्वांसोऽध्यापकाः **जागतेन छन्दसा त्वा** त्वाम् **अङ्गिरस्वत्** ब्रह्माण्डस्थशुद्धवायुवद् **धूपयन्तु** सत्यव्यवहारग्रहणेन संस्कुर्वन्तु, **वैश्वानराः** सर्वेषु मनुष्येष्विमे सत्यधर्मविद्याप्रकाशकाः **विश्वे** सर्वे **देवाः** सत्योपदेशका विद्वांसः **आनुष्टुभेन छन्दसा त्वा** त्वाम् **अङ्गिरस्वत्** विद्युद्वद् **धूपयन्तु** सत्योपदेशेन संस्कुर्वन्तु, **इन्द्रः** परमैश्वर्य्यवान् राजा **त्वा** त्वां **धूपयतु** राजविद्यया संस्करोतु, **वरुणः** वरो न्यायधीशः **त्वा** त्वां **धूपयतु** राजनीत्या संस्करोतु, **विष्णुः** सकलविद्यायोगाङ्गव्यापी योगिराजः **त्वा** त्वां **धूपयतु** योगविद्याऽङ्गैः संस्करोतु, **एताँस्त्वं सततं सेवस्व** ॥ ६० ॥

वे (गायत्रेण छन्दसा) २४ अक्षर वाले गायत्री छन्द से (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (धूपयन्तु) सुगन्ध, अन्न आदि से शुद्ध करें, और—(रुद्राः) जो मध्यम कोटि के 'रुद्र' नामक विद्वान् हैं वे (त्रैष्टुभेन छन्दसा) ३६ अक्षर वाले त्रिष्टुप् छन्द से (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) विज्ञान के समान (धूपयन्तु) विद्या और सुशिक्षा से शुद्ध करें । और–(आदित्या.) 'आदित्य' नामक उत्तम विद्वान् अध्यापक (जागतेन छन्दसा) ४८ अक्षर वाले जगती छन्द से (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) ब्रह्माण्ड की शुद्ध वायु के समान (धूपयन्तु) सत्यव्यवहार के ग्रहण से शुद्ध करें । (वैश्वानराः) सब मनुष्यों में ये सत्य, धर्म और विद्या का प्रकाश करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) सत्य के उपदेशक विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन छन्दसा) ३२ अक्षर वाले अनुष्टुप् छन्द से (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) विद्युत् के समान (धूपयन्तु) सत्य उपदेश से शुद्ध करें । और—(इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (त्वा) तुझे (धूपयतु) राज-विद्या से शुद्ध करे, और–(वरुणः) श्रेष्ठ न्यायाधीश (त्वा) तुझे (धूपयतु) राजनीति से शुद्ध करें, और (विष्णुः) सकल विद्या और योगाङ्गों का आचरण करने वाला योगिराज (त्वा) तुझे (धूपयतु) योग-विद्या के अङ्गों से शुद्ध करे । इनकी तू [ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी] सदा सेवा कर ॥ ११ । ६० ॥

[हे ब्रह्मचारिन् ब्रह्मचारिणि वा ये वसवः···त्वा···धूपयन्तु···]

भावार्थ—सर्वेऽध्यापका अखिला अध्यापिकाश्च सर्वाभिः सत्क्रियाभिर्ब्रह्मचारिणो ब्रह्मचारिणीश्च विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ताः सद्यः संपादयेयुः ।

भावार्थ—सब अध्यापक और सब अध्यापिकाएँ सब सत्क्रियाओं से ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को विद्या और सुशिक्षा से शीघ्र युक्त करें ।

[हेतुमाह—]

यत एते कृतपूर्णब्रह्मचर्या गृहाश्रमादीन् यथाकालमाचरेयुः ॥ ११ । ६० ॥

जिससे ये ब्रह्मचर्य को पूर्ण करके गृहाश्रम आदि का यथासमय अनुष्ठान करें ॥ ११ । ६० ॥

भा० पदार्थः—वसवः=सर्वे ऽध्यापका अखिला अध्यापिकाश्च ! छन्दसा=सत्क्रियाभिः । धूपयन्तु=विद्यासुशिक्षाभ्यां युक्ताः संपादयन्तु ॥

भाष्यसार—विद्वान्, मनुष्यों को **कैसे शुद्ध करें**—प्रथम कोटि के 'वसु' नामक विद्वान्

विद्या पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों वा ब्रह्मचारिणियों को प्राणों के समान सुगन्धित अन्न आदि से शुद्ध करें। मध्यम कोटि के 'रुद्र' नामक विद्वान् विज्ञान के समान विद्या और सुशिक्षा से उन्हें शुद्ध करें। उत्तम कोटि के 'आदित्य' नामक विद्वान् अध्यापक ब्रह्माण्ड में स्थित शुद्ध वायु के समान सत्य-व्यवहार के ग्रहण से उन्हें शुद्ध करें। सब मनुष्यों में सत्य, धर्म और विद्या का प्रकाश करने वाले विद्वान् विद्युत् के समान सत्य-उपदेश से उन्हें शुद्ध करें। परम ऐश्वर्यवान् राजा (**इन्द्र**) राज-विद्या से उन्हें शुद्ध करे। श्रेष्ठ न्यायाधीश (**वरुण**) राजनीति से उन्हें शुद्ध करे। सकल विद्या और योगाङ्गों का अनुष्ठाता योगी (**विष्णु**) योग-विद्या के अङ्गों से उन्हें शुद्ध करे।

तात्पर्य यह है कि सब अध्यापक आदि शुभक्रियाओं के उपदेश से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें जिससे ये ब्रह्मचर्य को पूर्ण करके गृहाश्रम आदि का यथाकाल सेवन करें ॥ ११ । ६० ॥

सिन्धुद्वीपः । **अदित्याद्यो लिङ्गोक्ता:=अध्यापिकादया** ॥ भुरिक्कृतिः ।
निषादः । उखेवरुत्रीत्युत्तरस्य प्रकृतिः । धैवतः ॥

विदुष्यः स्त्रियः कन्याः सुशिक्ष्य धार्मिकीर्विदुषीः कृत्वैहिकपारलोकिकसुखे प्रापयेयुरित्याह ॥

विदुषी स्त्रियाँ कन्याओं को उत्तम शिक्षा से धार्मिक विदुषी बनाकर इस लोक और परलोक के सुखों को प्राप्त करावें, यह उपदेश किया है ॥

अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वत् ख॑नत्ववट दे॒वानां॑ त्वा॒ पत्नी॑र्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वद्द॑धतूखे धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वद॒भी॑न्धताम् उखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वच्छ्र॑पयन्तूखे॒ ग्नास्त्वा॑ दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वत्प॑चन्तूखे॒ जन॑य॒स्त्वाऽच्छि॑न्नपत्रा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ ऽ अङ्गि॒र॒स्वत्प॑चन्तूखे ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**अदितिः**) अध्यापिका (**त्वा**) त्वाम् (**देवी**) विदुषी (**विश्वदेव्यावती**) विश्वेषु देवेषु=विद्वत्सु भवं विज्ञानं प्रशस्तं विद्यते यस्यां सा। **अत्र सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ ॥ अ० ६ । ३ । १३१ ॥** इति दीर्घत्वम् (**पृथिव्याः**) भूमेः (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अङ्गिरस्वत्**) अग्निवत् (**खनतु**) भूमिं खनित्वा कूपजलवद्विद्यायुक्तान्निष्पादयतु (**अवट**) अपरिभाषितानिन्दित (**देवानाम्**) विदुषाम् (**त्वा**) (**पत्नीः**) स्त्रीः (**देवीः**) विदुषीः (**विश्वदेव्यावतीः**) (**पृथिव्याः**) (**सधस्थे**) (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत् (**दधतु**) (**उखे**) ज्ञानयुक्ते (**धिषणाः**) प्रशंसितवाग्युक्ता धियः (**त्वा**) (**देवीः**) विद्यायुक्ताः (**विश्वदेव्यावतीः**) (**पृथिव्याः**) (**सधस्थे**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**अभि**) आभिमुख्ये (**इन्धताम्**) प्रदीपयन्तु (**उखे**) विज्ञानमिच्छुके, (**वरूत्रीः**) वराः (**त्वा**) (**देवीः**) कमनीयाः (**विश्वदेव्यावतीः**) (**पृथिव्याः**) (**सधस्थे**) (**अङ्गिरस्वत्**) आदित्यवत् (**श्रपयन्तु**) पाचयन्तु (**उखे**) अन्नाधारा स्थालीव विद्याधारे, (**ग्नाः**) वेदवाचः । **ग्ना इति वाङ्नामसु ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**त्वा**) (**देवीः**) दिव्यविद्यासम्पन्नाः (**विश्वदेव्यावतीः**) (**पृथिव्याः**) अन्तरिक्षस्य (**सधस्थे**) (**अङ्गिरस्वत्**) विद्युद्वत् (**पचन्तु**) परिपक्वां कुर्वन्तु (**उखे**) ज्ञानयुक्ते, (**जनयः**) शुभगुणैः प्रसिद्धाः (**त्वा**) (**अच्छिन्नपत्राः**) अखण्डितानि पत्राणि=वस्त्राणि यानानि वा यासां ताः (**देवीः**) दिव्यगुणप्रदाः (**विश्वदेव्यावतीः**) (**पृथिव्याः**) (**सधस्थे**) (**अङ्गिरस्वत्**) ओषधिरसवत् (**पचन्तु**) (**उखे**) जिज्ञासो ॥ ६१ ॥

प्रमाणार्थ—(**विश्वदेव्यावती**) इस पद में 'सोमाश्वेन्द्रियविश्वदेव्यस्य मतौ' (अ० ६।३।१।३१) सूत्र से दीर्घ हुआ है।

(**ग्नाः**) 'ग्ना' शब्द निघण्टु में (**नि० १।११**) वाणी के नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे अवट शिशो ! विश्वदेव्यावत्यदितिर्देवी पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत्खनतु। हे उखे कन्ये ! देवानां पत्नीर्विश्वदेव्यावतीर्देवीः पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वद्दधतु। हे उखे ! विश्वदेव्यावतीर्धिषणा देवीः पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वदभीन्धताम्। हे उखे ! विश्वदेव्यावतीर्वरूत्रीर्देवीः पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वच्छ्रपयन्तु। हे उखे ! विश्वदेव्यावतीर्देवीर्ग्नाः पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत् पचन्तु। हे उखे ! विश्वदेव्यावतीरच्छिन्नपत्रा जनयो देवीः पृथिव्याः सधस्थे त्वाङ्गिरस्वत् पचन्तु। हे उखे ! त्वमेताभ्यः सर्वाभ्यो ब्रह्मचर्येण विद्यां गृहाण ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अवट**=**शिशो** अपरिभाषिताऽनिन्दित ! **विश्वदेव्यावतीः** विश्वेषु देवेषु=विद्वत्सु भवं विज्ञानं प्रशस्तं विद्यते यस्यां सा, **अदितिः** अध्यापिका **देवी** विदुषी **पृथिव्याः** भूमेः **सधस्थे** सहस्थाने **त्वा** त्वाम् **अङ्गिरस्वत्** अग्निवत् **खनतु** भूमिं खनित्वा कूपजलवद्विद्या-युक्तान्निष्पादयतु।

हे **उखे**=**कन्ये** ज्ञानयुक्ते ! **देवानां** विदुषां **पत्नीः** स्त्रीः **विश्वदेव्यावतीः** **देवीः** विदुषीः **पृथिव्याः** **सधस्थे** **त्वा** **अङ्गिरस्वत्** प्राणवद् **दधतु**।

हे **उखे** विज्ञानमिच्छुके ! **विश्वदेव्यावतीः** **धिषणाः** प्रशंसितवाग्युक्ता धियः **देवीः** विद्यायुक्ताः **पृथिव्याः** **सधस्थे** **त्वा** **अङ्गिरस्वद्** **अभि+इन्धताम्** अभिमुखं प्रदीपयन्तु।

हे **उखे** अन्नाधारा स्थालीव विद्याधारे ! **विश्वदेव्यावतीः** **वरूत्रीः** वरा **देवीः** कमनीयाः **पृथिव्याः** **सधस्थे** **त्वा** **अङ्गिरस्वत्** आदित्यवत् **श्रपयन्तु** पाचयन्तु।

भाषार्थ—हे (अवट) अकथनीय आनन्द से युक्त शिशु ! (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में विद्यमान प्रशस्त विज्ञान वाली (अदितिः) अध्यापिका (देवी) विदुषी, (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (खनतु) भूमि को खोदकर कूप-जल के समान विद्या-युक्त करे।

हे (उखे) ज्ञानयुक्त कन्या ! (देवानाम्) विद्वानों की (पत्नीः) स्त्रियाँ (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में विद्यमान प्रशस्त विज्ञान वाली (देवीः) विदुषियों को (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (दधतु) धारण करें।

हे (उखे) विज्ञान की इच्छुक कन्या ! (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में विद्यमान प्रशस्त विज्ञान वाली (धिषणाः) प्रशंसित वाणी एवं बुद्धि से युक्त (देवीः) विदुषियाँ (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (अभि+इन्धताम्) प्रदीप्त करें।

हे (उखे) अन्न का आधार स्थाली के समान विद्या को धारण करने वाली कन्या ! (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में विद्यमान प्रशस्त विज्ञान वाली, (वरूत्रीः) श्रेष्ठ (देवीः) कमनीय देवियाँ (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) आदित्य=सूर्य के समान (श्रपयन्तु) पकावें।

हे उखे ज्ञानयुक्ते ! **विश्वदेव्यावतीः देवीः** दिव्य-विद्यासम्पन्नाः **ग्नाः** वेदवाचः **पृथिव्याः** अन्तरिक्षस्य **सधस्थे त्वा अङ्गिरस्वत्** विद्युद्वत् **पचन्तु** परिपक्वां कुर्वन्तु ।

हे (उखे) ज्ञान से युक्त कन्या ! (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में विद्यमान प्रशस्त विज्ञान वाली (देवीः) दिव्य विद्या से युक्त (ग्नाः) वेद-वाणी को (पृथिव्याः) आकाश के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) विद्युत् के समान (पचन्तु) परिपक्व करें।

हे उखे जिज्ञासो ! **विश्वदेव्यावतीः अच्छिन्नपत्राः** अखण्डितानि पत्राणि=वस्त्राणि यानानि वा यासां ताः, **जनयः** शुभगुणैः प्रसिद्धाः **देवीः** दिव्यगुणप्रदाः **पृथिव्याः सधस्थेत वा अङ्गिरस्वत्** ओषधिरसवत् **पचन्तु** परिपक्वां कुर्वन्तु ।

हे (उखे) जिज्ञासु कन्या ! (विश्वदेव्यावतीः) सब विद्वानों में प्रशस्त विज्ञान वाली (अच्छिन्न-पत्राः) अखण्डित वस्त्रों वा यानों वाली, (जनयः) शुभ गुणों से प्रसिद्ध, (देवीः) दिव्य गुणों को प्रदान करने वाली देवियाँ (पृथिव्याः) भूमि के (सधस्थे) स्थान में (त्वा) तुझे (अङ्गिरस्वत्) ओषधि-रस के समान (पचन्तु) परिपक्व करें।

हे उखे जिज्ञासो ! **त्वमेताभ्यः सर्वाभ्यो ब्रह्मचर्य्येण विद्यां गृहाण** ॥ ६१ ॥

हे (उखे) जिज्ञासु कन्या ! तू इन सबसे ब्रह्मचर्य से विद्या को ग्रहण कर ॥ ११ । ६१ ॥

[हे अवट ! = शिशो ! विश्वदेव्यावतीरदितिदेवी ... त्वा ... खनतु, हे उखे ! देवानां पत्नीर्विश्वदेव्यावतीर्देवी ... त्वा ... दधतु श्रपयन्तु]

भावार्थः—माता-पितृ-आचार्य-अतिथियो यथा चतुराः पाचकाः स्थाल्यादिष्वन्नादीनि संस्कृत्योत्तमानि संपादयन्ति, तथैव बाल्यावस्थामारभ्यः विवाहात् पूर्वं कुमाराः कुमार्यश्चात्युत्तमा भावयन्तु ॥ ११ । ६१ ॥

भावार्थ—माता, पिता, आचार्य, अतिथि लोग—जैसे चतुर पाचक पाकस्थाली=आदि में अन्न आदि का संस्कार करके उन्हें उत्तम बनाते हैं वैसे ही बाल्यावस्था से लेकर विवाह से पूर्व कुमार और कुमारियों को उत्तम बनावें ॥ ११ । ६१ ॥

भाष्यसार—**१. माता पिता का कर्त्तव्य**—जैसे पाचक बटलोई आदि में अन्नादि संस्कृत करते हैं वैसे ही माता पिता तथा आचार्य का यह परम कर्त्तव्य है कि वे अपने पुत्र तथा शिष्यों को पूर्ण विद्वान सभ्य तथा सुसंस्कृत बनाने का भरसक प्रयत्न करें। उनका शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक सर्वाङ्गीण विकास कराने का यत्न करते रहें। जिससे बालक तथा बालिकायें सुयोग्य बनकर सब प्रकार की शक्तियों का संचय कर सकें।

२. विद्या का स्थान—अच्छी विद्या सीखने के लिये ग्राम तथा नगर से दूर पवित्र आश्रम बनाये जायें, जहाँ रहकर बालक तथा बालिकायें स्वयं को समिधा तुल्य बनाकर विद्याग्नि से अच्छी प्रकार प्रदीप्त हो सकें। विद्या के साथ साथ बुद्धि का विकास तथा प्राणविद्या की शिक्षा भी दी जाये, जिससे प्राणाग्नि को प्रदीप्त कर सकें और इन्द्रियों के मलों को भली-भाँति दग्ध कर सकें। जिस प्रकार शाकादि पकाने की बटलोई पकाने के योग्य पदार्थों का धारण करती हैं इसी प्रकार विद्या ग्रहण करने के लिये शुद्ध पवित्र होना परमावश्यक है। वेद विद्या से प्रदीप्त होकर ही स्त्री तथा पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी होते हैं और सांसारिक अज्ञान को दूर कर सकते हैं ॥ ११ । ६१ ॥

विश्वामित्रः । **स्त्रिः=पतिः** ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

या यस्य स्त्री भवेत्सा तस्यैश्वर्यं सततं रक्षेदित्याह ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे,
यह उपदेश किया है ॥

मि॒त्रस्य॑ चर्षणी॒धृतोऽवो॑ दे॒वस्य॑ सान॒सि । द्यु॒म्नं चि॒त्रश्र॑वस्तमम् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**मित्रस्य**) सुहृदः (**चर्षणीधृतः**) सुशिक्षया मनुष्याणां धर्त्तुः (**अवः**) रक्ष (**देवस्य**) कमनीयस्य पत्युः (**सानसि**) संभक्तव्यं पुराणम् (**द्युम्नम्**) धनम् (**चित्रश्रवस्तमम्**) चित्राण्याश्चर्य्यभूतानि श्रवांस्यन्नादीनि यस्मात् तम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! त्वं चर्षणीधृतो मित्रस्य देवस्य पत्युश्चित्रश्रवस्तमं सानसि द्युम्नमवः ।। ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! त्वं **चर्षणीधृतः** सुशिक्षया मनुष्याणां धर्त्तुः **मित्रस्य** सुहृदः **देवस्य**=**पत्युः** कमनीयस्य पत्युः **चित्रश्रवस्तमं** चित्राण्याश्चर्य्यभूतानि श्रवांस्यन्नादीनि यस्मात् तं **सानसि** संभक्तव्यं पुराणं **द्युम्नं धनम् अवः** रक्ष ॥ ६२ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! तू (चर्षणीधृतः) सुशिक्षा से मनुष्यों को धारण करने वाले, (मित्रस्य) मित्र, (देवस्य) कामना करने योग्य पति के (चित्रश्रवस्तमम्) चित्र=आश्चर्य से युक्त अन्न आदि के हेतु (सानसि) सेवन करने योग्य, पुराने (द्युम्नम्) धन की (अवः) रक्षा करें।

[हे स्त्रि ! त्वं देवस्य=पत्युः द्युम्नमवः]

भावार्थः—गृहकृत्यकुशलया स्त्रिया सर्वाण्यन्तर्गृहकृत्यानि स्वाधीनानि रक्षित्वा यथावदुन्नेयानि ॥ ११ । ६२ ॥

भावार्थ—गृह-कार्यों में कुशल स्त्री सब आन्तरिक गृह-कार्यों को स्वाधीन रखकर उन्हें यथावत् उन्नत करें ॥ ११ । ६२ ॥

भाष्यसार—**पति और पत्नी का धर्म**—घर के कार्यों में कुशल स्त्रियों का यह परम धर्म है कि वे अपने पति के धन की निरन्तर वृद्धि किया करें और उसका सदा सदुपयोग करें। पुरुषों को भी योग्य है कि वे चर्षणीधृतः अच्छी सुशिक्षा से युक्त, सहृदयता से पूर्ण, दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये यत्नशील सदा रहें। तथा दुर्गुणों का परित्याग कर सांसारिक सुखों की वृद्धि के लिये अन्नादि पदार्थों का सदा संग्रह करते रहें। ●

विश्वामित्रः। **सविता=पतिः** ॥ भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

जो जिस पुरुष की स्त्री होवे वह उसके ऐश्वर्य की निरन्तर रक्षा करे,
यह उपदेश किया है ॥

दे॒वस्त्वा॑ सवि॒तोद्व॑पतु सु॒पा॒णिः स्व॑ङ्गुरिः सु॒बा॒हुरु॒त शक्त्या॑ ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**देवः**) दिव्यगुणकर्मस्वभावः पतिः (**त्वा**) त्वाम् (**सविता**) सूर्यइवैश्वर्य्यप्रदः (**उत्**) उत्कृष्टतया (**वपतु**) बीजवत् संतनोतु (**सुपाणिः**) प्रशस्तहस्तः (**स्वङ्गुरिः**) शोभना अङ्गुलयो यस्य

सः । (**सुबाहुः**) शोभनभुजः (उत) अपि (**शक्त्या**) सामर्थ्येन सह वर्त्तमानो वर्त्तमाना वा (**अव्यथमाना**) अभीताऽचलिता सती (**पृथिव्याम्**) पृथिवीस्थायाम् (**आशाः**) इच्छाः (**दिशः**) काष्ठाः (**आ**) (**पृणः**) पिपूर्द्धि ॥ ६३ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! सुबाहुः सुपाणिः स्वङ्गुरिः सवितेव देवः पतिः शक्त्या पृथिव्यां त्वोद्वपतु शक्त्याऽव्यथमाना सती त्वं पत्युः सेवनेन स्वकीया आशा यशसा दिशश्च आपृण ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **सुबाहुः** शोभनभुजः **सुपाणिः** प्रशस्तहस्तः **स्वङ्गुरिः** शोभना अङ्गुलयो यस्य सः, **सविता** सूर्य्य इवैश्वर्य्यप्रदः **इव देवः**=**पतिः** दिव्यगुणकर्मस्वभावः पतिः **शक्त्या** सामर्थ्येन सह वर्त्तमानो **पृथिव्यां** पृथिवीस्थायां **त्वा** त्वाम् **उत्**+**वपतु** उत्कृष्टतया बीजवत् संतनोतु [उत] अपि **शक्त्या** सामर्थ्येन सह वर्त्तमाना **अव्यथमाना** अभीताऽचलिता **सती त्वं पत्युः सेवनेन स्वकीया आशाः** इच्छाः, **यशसा दिशः** काष्ठाः **च आ**+**पृण** पिपूर्द्धि ॥ ६३ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो (सुबाहुः) सुन्दर भुजाओं वाला, (सुपाणिः) प्रशस्त हाथों वाला, (स्वङ्गुरिः) सुन्दर अंगुलियों वाला, (सविता) सूर्य के समान ऐश्वर्य प्रदान करने वाला (देवः) दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाला पति है वह-(शक्त्या) सामर्थ्य से युक्त रहकर (पृथिव्याम्) पृथिवी पर स्थिर करके (त्वाम्) तुझे (उत्+वपतु) उत्तम-रीति से बीज के समान वपन करे। [उत्] और-(शक्त्या) सामर्थ्य से युक्त रहकर (अव्यथमाना) निर्भय एवं स्थिर होकर तू पति की सेवा से अपनी (आशाः) इच्छाओं को और यश से (दिशः) दिशाओं को (आ+पृण) पूर्ण कर ॥ ११ । ६३ ॥

[हे स्त्रि !···देवः=पतिः शक्त्या पृथिव्यां त्वा मुद्वपतु]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीतौ हृद्यौ सुपरीक्षितौ स्वेच्छया स्वयंवरं विवाहं कृत्वा ऽति-विषयासक्तिं विहाय ऋतुगामिनौ सन्तौ सामर्थ्य-हानिं कदाचिन्न कुर्याताम् ।

भावार्थ—स्त्री-पुरुष परस्पर प्रसन्न मित्र और सुपरीक्षित होकर अपनी इच्छा से स्वयंवर विवाह करके, अति विषयासक्ति को छोड़ कर ऋतु-गामी होकर सामर्थ्य=शक्ति की हानि कभी न करें ।

[जितेन्द्रियस्तुतिमाह—]

नहि जितेन्द्रिययोः स्त्रीपुरुषयो रोगप्रादुर्भावो बलहानिश्च जायते, तस्मादेतदनुतिष्ठेताम् ॥

क्योंकि-जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों में रोग का प्रादु-र्भाव और बल की हानि नहीं होती। अतः इसका अनुष्ठान करें ॥ ११ । ६३ ॥

भाष्यसार—**१. पति के गुण**—पति बनने से पूर्व आवश्यक है कि वह देव=दिव्यगुण-कर्मस्वभाव वाला हो। सूर्य=सूर्य के समान तेजस्वी तथा ऐश्वर्यप्रद होना चाहिये। सुपाणि=प्रशस्त हाथों वाला अर्थात् प्रशंसनीय कार्यों से जो सर्वत्र प्रशंसित हो। सुबाहु=प्रशंसित बलयुक्त भुजाओं वाला हो।

२. **पत्नी के गुण**—पत्नी के लिये आवश्यक है कि स्वसामर्थ्ययुक्त हो। अव्यथमाना=निर्भय और स्थिर होकर पति की सेवा करने वाली हो और सभी इच्छाओं की पति से ही इच्छा करती हुई सब दिशाओं में कीर्त्ति वाली हो।

विश्वामित्रः । उखा=कन्या । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

पुनः सा कीदृशीत्युपदिश्यते ॥

फिर वह स्त्री कैसी है, इसका उपदेश किया है ॥

अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश ऽ आपृण ॥
उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् । मित्रैतां तऽउखां परिददाम्यभित्याऽएषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**उत्थाय**) आलस्यं विहाय (**बृहती**) महापुरुषार्थयुक्ता (**भव**) (**उत्**) (**उ**) (**तिष्ठ**) (**ध्रुवा**) मङ्गलकार्येषु कृतनिश्चया (**त्वम्**) (**मित्र**) सुहृद् (**एताम्**) (**ते**) तुभ्यम् (**उखाम्**) प्राप्तव्यां कन्याम् (**परि**) सर्वतः (**ददामि**) (**अभित्यै**) भयराहित्याय (**एषा**) प्रत्यक्षप्राप्ता पत्नी (**मा**) निषेधे (**भेदि**) भिद्यताम् ।। ६४ ।।

अन्वयः—हे विदुषि कन्ये ! त्वं ध्रुवा बृहती भव विवाहायोत्तिष्ठ । उत्थायैतं पतिं स्वीकुरु । हे मित्र ! त एतामुखामभित्यै परिददामि । उत्वयैषा मा भेदि ।। ६४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **विदुषि कन्ये** ! **त्वं ध्रुवा** मङ्गलकार्य्येषु कृतनिश्चया **बृहती** महापुरुषार्थयुक्ता **भव**, **विवाहाय उत्+तिष्ठ** । **उत्थाय** आलस्यं विहाय **एतं पतिं स्वीकुरु** ।

हे मित्र सुहृद् । **ते** तुभ्यम् **एताम् उखां** प्राप्तव्यां कन्याम् **अभित्यै** भयराहित्याय **परि+ददामि** सर्वतो ददामि । **उ त्वया एषा** प्रत्यक्षप्राप्ता पत्नी **मा न भेदि** भिद्यताम् ।। ६४ ।।

भाषार्थ—हे विदुषी कन्या ! तू (ध्रुवा) मङ्गल कार्यों में दृढ़ निश्चय वाली, (बृहती) और महान् पुरुषार्थ वाली (भव) बन तथा विवाह के लिये (उत्+तिष्ठ) प्रयत्न कर। (उत्थाय) आलस्य को छोड़ कर इस पति को स्वीकार कर ।

हे (मित्र) सुहृद् पति ! (ते) तेरे लिये (एताम्) इसे (उखाम्) प्राप्त करने योग्य कन्या को (अभित्यै) निर्भयता के लिये (परि+ददामि) प्रदान करता हूँ । (उ) विचारपूर्वक तू (एषा) इस पत्नी से (मा भेदि) भेदभाव एवं व्यभिचार मत कर ।।

[हे विदुषि कन्ये ! त्वं···विवाहायो त्तिष्ठ, उत्थायैतं पतिं स्वीकुरु । हे मित्र ! त एतामुखां···
परिददामि, त्वयैषा मा भेदि]

भावार्थः—कन्या वरश्च स्वप्रियं पुरुषं, स्वकान्तां कन्यां च स्वयं परीक्ष्य स्वीकर्तुमिच्छेत् ।

यदा द्वयोर्विवाहकरणे निश्चयः स्यात् तदैव माता-पितृ-आचार्यादय एतयोर्विवाहं कुर्युः ।

एतौ परस्परं भेदभावं व्यभिचारं च कदाचिन्न कुर्याताम् । किन्तु—स्वस्त्रीव्रतः पुमान्, स्वपतिव्रता स्त्री च संगतौ स्याताम् ।। ११ । ६४ ।।

भावार्थ—कन्या अपने प्रिय पुरुष को, और वर अपनी कमनीय कन्या को स्वयं परीक्षा करके स्वीकार करने की इच्छा करे ।

जब दोनों का विवाह करने का निश्चय होवे तभी माता, पिता, आचार्य आदि इनका विवाह करें ।

ये दोनों परस्पर भेदभाव और व्यभिचार कभी न करें। किन्तु—पुरुष स्त्री-व्रती और स्त्री पतिव्रता होकर संग करें ॥ ११ । ६४ ॥

भाष्यसार—१. **स्वयंवर विवाह**—वर और कन्या दोनों को ही पूर्ण विद्वान् होना चाहिये और वे दोनों स्वेच्छा से एक दूसरे की परीक्षा करके स्वयंवर विवाह करें । मांगलिक कार्यों में

दोनों ही सदा आलस्य त्याग कर परम पुरुषार्थी बने रहें। उन्नति के मार्ग से कदापि पृथक् न हों। शारीरिक, बौद्धिक तथा आत्मिक शक्तियों का विकास करते हुए पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि में निरन्तर लगे रहें। शुभ कार्यों में दोनों एकमत तथा निश्चित बुद्धि रखें। कभी भी वैमत्य पैदा न होने देवें।

२. **दाम्पत्य धर्म**—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके वर और वधू सदा मित्रभाव से रहें। दोनों ही समता का व्यवहार रखें, तभी मित्रता चिरस्थायी रह सकती है। जो पुरुष स्त्री को अथवा स्त्री पुरुष को अपने से किसी प्रकार से भी हीन समझने लग जाते हैं वे दोनों ही दुःखसागर में गोते खाते रहते हैं। पुरुष सदा स्वस्त्रीव्रत तथा स्त्री स्वपतिव्रता बन कर रहें और कभी भी कलहादि में पड़कर एक दूसरे से पृथक् न रहें। ●

विश्वामित्रः। **वस्वादयो लिङ्गोक्ताः**=**आदिमविद्वदादयः**॥ धृतिः। षड्जः॥

पुनस्तौ स्त्रीपुरुषौ प्रति विद्वांसः किं कुर्युरित्याह॥

फिर उन स्त्री पुरुषों के प्रति विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है॥

वस॑व॒स्त्वाछृ॑न्दन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद्रु॒द्रास्त्वाछृ॑न्दन्तु त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वाछृ॑न्दन्तु जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद्विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा ऽ आछृ॑न्द॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत्॥ ६५॥

पदार्थः—(वसवः) आदिमा विद्वांसः (त्वा) त्वां पुमांसं स्त्रियं च (**आ**) समन्तात् (**छृन्दन्तु**) प्रदीप्यन्ताम् (**गायत्रेण**) गायन्ति सद्विद्या येन तेन वेदस्थविभक्तेन स्तोत्रेण (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) अग्निवत्, (**रुद्राः**) मध्यमा विद्वांसः (**त्वा**) (**आ**) (**छृन्दन्तु**) (**त्रैष्टुभेन**) त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तोभन्ते=स्थिरीकुर्वन्ति येन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत्, (**आदित्याः**) उत्तमा विपश्चितः (**त्वा**) (**आ**) छृन्दन्तु) (**जागतेन**) जगद्विद्याप्रकाशकेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) सूर्यवत् (**विश्वे**) सर्वे (**त्वा**) (**देवाः**) सदुपदेशप्रदातारः (**वैश्वानराः**) सर्वेषु नरेषु राजन्तः (**आ**) (**छृन्दन्तु**) (**आनुष्टुभेन**) विद्यां गृहीत्वा पश्चात् दुःखंविस्तभ्नुवन्ति येन तेन (**छन्दसा**) (**अङ्गिरस्वत्**) समस्तौषधिरसवत्॥ ६५॥

अन्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा! वसवो गायत्रेण छन्दसा यां यं त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु रुद्रास्त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु। आदित्या जागतेन छन्दसा त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु। वैश्वानरा विश्वेदेवा आनुष्टुभेन छन्दसा त्वाऽङ्गिरस्वदाछृन्दन्तु॥ ६५॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्त्रि पुरुष वा! वसवः** आदिमा विद्वांसः **गायत्रेण** गायन्ति सद्विद्या येन तेन वेदस्थविभक्तेन स्तोत्रेण, **छन्दसा यां यं त्वा** त्वां पुमांसं स्त्रियं च **अङ्गिरस्वत्** अग्निवद् **आ+छृन्दन्तु** समन्तात् प्रदीप्यन्ताम्। **रुद्राः** मध्यमा विद्वांसः **त्रैष्टुभेन** त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तोभन्ते=स्थिरीकुर्वन्ति येन **छन्दसा त्वा अङ्गिरस्वत्** प्राणवद् **आ+छृन्दन्तु** समन्तात् प्रदीप्यन्ताम्। **आदित्याः** उत्तमा विपश्चितः **जागतेन** जगद्विद्या-

भाषार्थ—हे स्त्री वा पुरुष! (वसवः) 'वसु' नामक प्रथम कोटि के विद्वान् (गायत्रेण छन्दसा) सद्विद्या का गान करने वाले वेदस्थ स्तोत्र रूप २४ अक्षरी छन्द से (त्वा) तुझ पुरुष और स्त्री को (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान (आ+छन्दन्तु) सब ओर से सुशोभित करें। (रुद्राः) मध्यम कोटि के 'रुद्र' नामक विद्वान् (त्रैष्टुभेन छन्दसा) तीन—ज्ञान, कर्म, उपासना को स्थिर करने वाले ३६ अक्षरी छन्द से (त्वा) तुझ

प्रकाशकेन **छन्दसा त्वा अङ्गिरस्वत्** सूर्य्यवद् **आ+छृन्दन्तु** समन्तात् प्रदीप्यन्ताम्। **वैश्वानराः** सर्वेषु नरेषु राजन्तः **विश्वे** सर्वे **देवाः** सदुपदेशप्रदातारः **आनुष्टुभेन** विद्यां गृहीत्वा पश्चाद् दुःखं विस्तम्भुवन्ति येन तेन, **छन्दसा त्वा अङ्गिरस्वत्** समस्तौषधिरसवद् **आ+छृन्दन्तु** समन्तात् प्रदीप्यन्ताम्॥ ६५॥

पुरुष वा स्त्री को (अङ्गिरस्वत्) प्राण के समान (आ+छृन्दन्तु) सब ओर से सुशोभित करें। (आदित्याः) उत्तम कोटि के 'आदित्य' नामक विद्वान् (जागतेन छन्दसा) जगत्विद्या के प्रकाशक ४८ अक्षरी छन्द से (त्वा) तुझ पुरुष व स्त्री को (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (आ+छृन्दन्तु) सब ओर से सुशोभित करें। (वैश्वानराः) सब नरों में प्रकाशमान (विश्वे देवाः) सब सदुपदेश देने वाले विद्वान् (आनुष्टुभेन छन्दसा) विद्या ग्रहण करने के पश्चात् दुःख का निवारण करने वाले ३२ अक्षरी छन्द से (त्वा) तुझ पुरुष वा स्त्री को (अङ्गिरस्वत्) समस्त ओषधियों के रस के समान (आ+छृन्दन्तु) सब ओर से सुशोभित करें॥ ११। ६५॥

[हे पुरुष ! स्त्रि ! वा वसवः ··· त्वा ··· आछृन्दन्तु]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां ये याश्च विद्वांसो विदुष्यश्च शरीरात्मबलकारोपदेशेन सुशोभेयुस्तेषामेव सेवासङ्गौ सततं कुर्यातां; नेतरेषां क्षुद्राणाम्॥ ११। ६५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों–जो विद्वान् और विदुषियाँ शरीर और आत्म के बलकारक उपदेश से सुशोभित करें उनकी ही सेवा और सङ्ग सदा किया करो; दूसरे क्षुद्र जनों का नहीं॥ ११। ६५॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् पुरुषों की संगति से लाभ**—स्त्री तथा पुरुषों को सदा विद्वानों का संग तथा अविद्वानों से अलग ही रहना चाहिये। जो वसुसंज्ञक प्रथम कोटि के विद्वान् हैं उनसे विद्यादि सद्‌गुणों को प्राप्त करके अग्नि के समान प्रकाशमान रहें। और जो मध्यम कोटि के रुद्रसंज्ञक विद्वान हैं उनकी संगति से प्राण के समान जीवन-शक्ति प्रदान करने वाले वेद-ज्ञान का अच्छी प्रकार परिशीलन करते रहें। और जो आदित्य संज्ञक उत्तम विद्वान् हों उनके साहचर्य से ज्ञानार्जन करके सूर्य के समान संसार में विद्या का प्रकाश फैलाते रहें। इसी प्रकार जो दिव्यगुण युक्त पूर्णविद्वान् सत्योपदेष्टा हों, उनकी संगति से, उनके सदुपदेशों से अपने दुर्गुणों को छोड़कर सदा पवित्र रहें। जिस प्रकार ओषधियों के रस से शारीरिक रोग दूर हो जाते हैं उसी प्रकार आन्तरिक शुद्धि करते रहें।

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमावाचक इवादि पदों के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है जैसे विद्वान् पुरुष सुशिक्षित होकर दूसरों को उपदेश देते हैं वैसे ही सभी मनुष्य प्रयत्न किया करें।

विश्वामित्रः। **अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः=पावकादयः** ॥

विराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्ते स्त्रीपुरुषाः किं कुर्य्युरित्याह ॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है॥

आकूतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजꣳ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(**आकूतिम्**) उत्साहकारिकां क्रियाम् (**अग्निम्**) प्रसिद्धं पावकम् (**प्रयुजम्**) यः सर्वान् युनक्ति तम् (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**मनः**) इच्छासाधनम् (**मेधाम्**) प्रज्ञाम् (**अग्निम्**) विद्युतम् (**प्रयुजम्**) (**स्वाहा**) सत्यया वाचा (**चित्तम्**) चेतति येन तत् (**विज्ञातम्**) (**अग्निम्**) अग्निमिव भास्वरम् (**प्रयुजम्**) व्यवहारेषु प्रयुक्तम् (**स्वाहा**) सत्येन व्यवहारेण (**वाचः**) वाण्याः (**विधृतिम्**) विविधं धारणम् (**अग्निम्**) योगाभ्यासजनितां विद्युतम् (**प्रयुजम्**) संप्रयुक्तम् (**स्वाहा**) क्रियायोगरीत्या (**प्रजापतये**) प्रजास्वामिने (**मनवे**) मननशीलाय (**स्वाहा**) सत्यां वाणीम् (**अग्नये**) विज्ञानस्वरूपाय (**वैश्वानराय**) विश्वेषु नरेषु राजमानाय जगदीश्वराय (**स्वाहा**) धर्म्यां क्रियाम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! भवन्तो वेदस्थैर्गायत्र्यादिभिश्छन्दोभिः स्वाहा आकूतिं प्रयुजमग्निं स्वाहा मनो मेधां प्रयुजमग्निं स्वाहा, चित्तं विज्ञातं प्रयुजमग्निं, मनवे प्रजापतये स्वाहा, ऽग्नये वैश्वानराय स्वाहा च प्रापय्य सततमाछृन्दन्तु ॥ ६६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! भवन्तो वेदस्थैर्गायत्र्यादिभिश्छन्दोभिः **स्वाहा** सत्यया क्रियया, **आकूतिम्** उत्साह-कारिकां क्रियां **प्रयुजं** यः सर्वान् युनक्ति तम् **अग्निं** प्रसिद्धं पावकं **स्वाहा** सत्यया वाचा, मनः इच्छा-साधनं **मेधां** प्रज्ञां **प्रयुजं** यः सर्वान् युनक्ति तम् **अग्निं** विद्युतं **स्वाहा** सत्येन व्यवहारेण, **चित्तं** चेतति येन तत् **विज्ञातं** **प्रयुजं** व्यवहारेषु प्रयुक्तम् **अग्निम्** अग्निमिव भास्वरं [**स्वाहा**] सत्येन व्यवहारेण, **वाचः** वाण्याः **विधृतिं** विविधं धारणं **प्रयुजं** संप्रयुक्तम् **अग्निं** योगाभ्यासजनितां विद्युतं **स्वाहा** क्रिया-योगरीत्या] **मनवे** मननशीलाय **प्रजापतये** प्रजास्वामिने **स्वाहा** क्रियायोगरीत्या, **अग्नये** विज्ञानस्वरूपाय **वैश्वानराय** विश्वेषु नरेषु राजमानाय जगदीश्वराय **स्वाहा** सत्यां वाणीं **च प्रापय्य सततम् आ+छृन्दन्तु** समन्तात् प्रदीप्यायन्ताम् ॥ ११ । ६६ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! आप लोग वेद के गायत्री आदि छन्दों से (स्वाहा) सत्यक्रिया से (आकूतिम्) उत्साह देने वाली क्रिया के (प्रयुजम्) प्रेरणा करने हारे (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (स्वाहा) सत्य वाणी से (मनः) इच्छा के साधन को (मेधाम्) बुद्धि और (प्रयुजम्) जो सब को प्रेरणा करता है उस (अग्निम्) विद्युदग्नि को (स्वाहा) सत्य व्यवहार से (चित्तम्) जिससे ज्ञान किया जाता है उस (विज्ञातम् प्रयुजम्) जाने हुए व्यवहारों में प्रयोग किये (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशमान (स्वाहा) सत्य व्यवहार से (वाचः) वाणियों को (विधृतिम्) विविध प्रकार की धारणा को (प्रयुजम्) प्रयोग किये गये (अग्निम्) योगाभ्यास से उत्पन्न विद्युत् को (मनवे) मननशील (प्रजापतये) प्रजा के स्वामी के लिये (स्वाहा) क्रियात्मक योग की रीति से (अग्नये) विज्ञान स्वरूप (वैश्वानराय) सब मनुष्यों में प्रकाशमान जगदीश्वर प्राप्ति के लिये (स्वाहा) सत्यवाणी को प्राप्त कराकर लगातार (आछन्दन्तु) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करें ।

[हे स्त्रीपुरुषाः !···आकूतिं प्रयुजमग्निं स्वाहा]

भावार्थः—अत्राऽऽछृदन्त्विति पदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते । मनुष्याः पुरुषार्थेन वेदादिशास्त्रा-

भावार्थ—इस मन्त्र में 'आछृन्दन्तु' पद पहले मन्त्र से आता है । सभी मनुष्य पुरुषार्थ से

ण्यधीत्योत्साहादीनुन्नीय व्यवहारपरमार्थ क्रिया-प्रयोगेणाभ्युदयिकनिःश्रेयसे समाप्नुवन्तु ।।

वेदादि शास्त्रों को पढ़ कर और उत्साहादि को बढ़ाकर व्यवहार तथा परमार्थ की क्रियाओं के सम्बन्ध से इस लोक के और पारलौकिक सुखों को प्राप्त करें ।

भाष्यसार—मानव-धर्म—सभी मनुष्यों को वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्ययन करके पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि का यत्न निरन्तर करना चाहिये । उसके लिये सर्वप्रथम शरीर को स्वस्थ रखने के लिये जठराग्नि को प्रदीप्त रखें । जिससे शरीर स्वस्थ तथा शुभ कार्यों के प्रति सदा उत्साही बना रहे ।

तत्पश्चात् विद्युद्रूप प्राणाग्नि को प्रदीप्त करे, जिससे सत्यव्यवहारादि के द्वारा मन और बुद्धि को सुसंयत किया जा सके । तत्पश्चात् योगाभ्यासादि के द्वारा मननशील सबके पालक परमात्मा को प्राप्त करने के लिये सतत प्रयत्न करते रहें । जिससे ऐहिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के साथ मोक्षानन्द को प्राप्त कर सकते हैं । ●

आत्रेयः । **सविता=विद्वान्** ।। अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनर्गृहस्थैः किं कार्य्यमित्याह ।।

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

विश्वो॑ दे॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् । विश्वो॑ रा॒य ऽ इ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ।। ६७ ।।

पदार्थः—(**विश्वः**) सर्वः (**देवस्य**) सर्वजगत्प्रकाशकस्य परमेश्वरस्य (**नेतुः**) सर्वनायकस्य (**मर्त्तः**) मनुष्यः (**वुरीत**) स्वीकुर्यात् (**सख्यम्**) सख्युर्भावं कर्म वा (**विश्वः**) अखिलः (**राये**) श्रियै (**इषुध्यति**) शरादीनि शास्त्राणि धरेत् । **लेट्प्रयोगोऽयम्** (**द्युम्नम्**) प्रकाशयुक्तं यशोऽन्नं वा । **द्युम्नं द्योततेर्यशोऽन्नं वा ।। निरु० ५ । ५ ।।** (**वृणीत**) स्वीकुर्य्यात् (**पुष्यसे**) पुष्टो भवेः (**स्वाहा**) सत्यां वाचम् ।। ६७ ।।

प्रमाणार्थ—'द्युम्नम्' शब्द निघण्टु में (**निरु० ५ । ५**) यशः तथा अन्न के नामों में पठित है । इनका नाम द्युम्न इसलिये है क्योंकि वह सब जगह जाना जाता है ।

अन्वयः—यथा विद्वाँस्तथा विश्वो मर्त्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत विश्वो मनुष्यो राय इषुध्यति । स्वाहा द्युम्नं वृणीत यथा चैतेन त्वं पुष्यसे तथा वयमपि भवेम ।। ६७ ।।

सपदार्थान्वयः—यथा विद्वाँस्तथा **विश्वः** सर्वो **मर्त्तः** मनुष्यः **नेतुः** सर्वनायकस्य **देवस्य** सर्वजगत्प्रकाशकस्य परमेश्वरस्य **सख्यं** सख्युर्भावं कर्म वा **वुरीत** स्वीकुर्य्यात्, **विश्वः** अखिलः **मनुष्यो राये** श्रियै **इषुध्यति** शरादीनि शस्त्राणि धरेत्, **स्वाहा** सत्यां वाचं **द्युम्नं** प्रकाशयुक्तं यशोऽन्नं वा **वृणीत** स्वीकुर्य्यात् ।

यथा चैतेन त्वं पुष्यसे पुष्टो भवेः, **तथा वयमपि भवेम** ।। ११ । ६७ ।।

भाषार्थ—विद्वान् पुरुष के समान (विश्वः) सब (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) सबके नायक, (देवस्य) सब जगत् के प्रकाशक, परमेश्वर की (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत) स्वीकार करें; (विश्वः) सब मनुष्य (राये) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (इषुध्यति) शर=बाण आदि शस्त्रों को धारण करें; (स्वाहा) सत्य-वाणी को, (द्युम्नम्) प्रकाशयुक्त यश को वा अन्न को (वृणीत) स्वीकार करें ।

और जैसे इससे तू (पुष्यसे) पुष्ट होता है, वैसे हम भी होवें ।। ११ । ६७ ।।

[यथा विद्वांस्तथा विश्वो मर्त्तो नेतुर्देवस्य सख्यं वुरीत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। गृहस्थैर्मनुष्यैः परमेश्वरेण सह मैत्रीं कृत्वा,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ गृहस्थ मनुष्य परमेश्वर के साथ मैत्री करके—

[मनुष्यो राये इषुध्यति···द्युम्नं वृणीत]

सत्येन व्यवहारेण श्रियं प्राप्य यशस्वीनि कर्माणि नित्यं कार्याणि॥ ११। ६७॥

सत्य-व्यवहार से ऐश्वर्य को प्राप्त करके यशस्वी कर्मों को नित्य किया करें॥ ११। ६७॥

भा० पदार्थः—सख्यम्=मैत्रीम्। द्युम्नम्=यशस्वि कर्म॥

भाष्यसार—**गृहस्थी का परम-लक्ष्य**—परमात्मा ही एक मात्र सब का पूज्य तथा इष्ट देव है। उसी की उपासना करनी चाहिये। परमात्मा से भिन्न किसी की उपासना करना अथवा इष्ट देव मानना अज्ञानियों का कार्य है। सभी देवता सर्वजगत्प्रकाशक परमेश्वर की पूजा करते रहे हैं। वह सबका नायक तथा अधिष्ठाता है। सभी मनुष्यों को उचित है कि उसी को एक मात्र सखा मानें। वह सदा ही दुःख में परम सहायक तथा दया करता है।

जो दूसरे के धनादि का अपहरण करते रहते हैं वे दस्यु होते हैं। उनसे सदा लक्ष्मी की रक्षा करनी चाहिये। धन धान्यादि की रक्षा के लिये तथा दस्युवृत्ति को समाप्त करने के बाणादि सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को भी बनाना चाहिये। यदि दस्युओं को उचित दण्ड न मिले तब तो सर्वत्र अराजकता फैलने का भय बना रहता है। आन्तरिक दस्युओं अर्थात् दुर्गुण तथा दुर्व्यसनों से बचने के लिये सत्य भाषणादि व्रतों को सदा धारण करें और धन-धान्यादि की रक्षा करके यशस्वी बनना चाहिये। और ऐसा कदापि कोई कार्य न करें जिससे पर-हानि तथा अपयश की प्राप्ति होवे।

आत्रेयः। **अम्बा=माता**॥ गायत्री। षड्जः॥

पुनर्मातापितरौ प्रति पुत्रादयः किं किं ब्रूयुरित्याह॥

फिर माता पिता के प्रति पुत्रादि क्या क्या कहें, यह उपदेश किया है॥

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु। अग्निश्चेदं करिष्यथः॥ ६८॥

पदार्थः—(**मा**) (**सु**) (**भित्था**) भेदं कुर्य्याः (**मा**) (**सु**) (**रिषः**) हिंस्याः (**अम्ब**) मातः (**धृष्णु**) दार्ढ्यम् (**वीरयस्व**) आरब्धस्य कर्म्मणः समाप्तिमाचर (**सु**) (**अग्निः**) पावकइव (**च**) (**इदम्**) (**करिष्यथः**) करिष्यमाणं साधयिष्यथः॥ ६८॥

अन्वयः—हे अम्ब! त्वमस्मान् विद्यातो मा सु भित्था मा सुरिषो धृष्णु सुवीरयस्व चैव कुर्वन्तौ युवां मातापुत्रावग्निरिवेदं करिष्यथः॥ ६८॥

सपदार्थान्वयः—हे **अम्ब** मातः! **त्वमस्मान् विद्यातो मा सु**+**भित्थाः** भेदं कुर्य्याः, **मा सु**+**रिषः** हिंस्याः, **धृष्णु** दार्ढ्यं **सु**+**वीरयस्व** आरब्धस्य कर्मणः समाप्तिमाचर **च** एवं **कुर्वन्तौ युवां मातापितरौ अग्निः** पावक **इव इदं करिष्यथः**

भाषार्थ—हे (अम्ब) माता! तू हमें विद्या से (मा सु+भित्थाः) मत अलग कर, (मा सु+रिषः) हमारा हिंसन मत कर, अपितु (धृष्णु) दृढ़तापूर्वक (सु+वीरयस्व) प्रारम्भ किये हुये कर्म को पूरा कर। इस प्रकार आचरण करते हुये तुम

करिष्यमाणं साधयिष्यथः ॥ ११ । ६८ ॥

दोनों माता-पिता (अग्निः) अग्नि के समान (इदम्) इस करने योग्य कार्य को (करिष्यथः) सिद्ध कर सकोगे ॥ ११ । ६८ ॥

[हे अम्ब ! त्वमस्मान् विद्यातो मा सुभित्थाः, मा सुरिषः]

भावार्थः—माता सुसन्तानान् सुशिक्षेत, यत इमे परस्परं प्रीता भवेयुः,

भावार्थ—माता उत्तम सन्तानों को उत्तम शिक्षा करे, जिससे ये परस्पर प्रसन्न रहें।

[धृष्णुः सुवीरयस्व च]

वीराश्च यत्कर्त्तव्यं तत्कुर्युरकर्त्तव्यं च नाचरेयुः ॥ ११ । ६८ ॥

और—वीर होकर जो कर्त्तव्य कर्म है उसे करें और अकर्त्तव्य का आचरण न करें ॥ ११ । ६८ ॥

भाष्यसार—माता का कर्त्तव्य—माता-पिता अपने पुत्र तथा पुत्रियों को विद्या ग्रहण कराने में सदा प्रयत्नशील रहें। उन्हें कभी भी शिक्षादि से वञ्चित न रक्खें। चाहें कितना भी कष्ट सहना पड़े परन्तु सन्तान को योग्य बनाने में किसी प्रकार की न्यूनता न आने देवें।

आत्रेयः। **अम्बा=माता** ॥ त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनः पतिः स्वपत्नीं प्रति किं किं वदेदित्याह ॥

फिर पति अपनी स्त्री से क्या २ कहे, यह उपदेश किया है ॥

दृꣳहस्व देवि पृथिवि स्वस्तयऽ आसुरी माया स्वधया कृतासि ।
जुष्टं देवेभ्यऽ इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञेऽ अस्मिन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(**दृꣳहस्व**) वर्द्धस्व (**देवि**) विद्यायुक्ते (**पृथिवि**) भूमिरिव पृथुविद्ये (**स्वस्तये**) सुखाय (**आसुरी**) येऽसुषु=प्राणेषु रमन्ते तेषां स्वा (**माया**) प्रज्ञा (**स्वधया**) उदकेनान्नेन वा (**कृता**) निष्पादिता (**असि**) (**जुष्टम्**) सेवितम् (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यो दिव्येभ्यो गुणेभ्यो वा (**इदम्**) (**अस्तु**) (**हव्यम्**) दातुं योग्यं विज्ञानम् (**अरिष्टा**) अहिंसिता (**त्वम्**) (**उत्**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**यज्ञे**) संगन्तव्ये गृहाश्रमे (**अस्मिन्**) वर्त्तमाने ॥ ६९ ॥

अन्वयः—हे पृथिवि देवि पत्नि ! त्वया स्वस्तये स्वधया याऽऽसुरी मायाऽस्ति सा कृतासि तया त्वं मां पतिं दृꣳहस्वाऽरिष्टा सत्यस्मिन् यज्ञ उदिहि। यत् त्वयेदं हव्यम् जुष्टं कृतमस्ति तद्देवेभ्योऽस्तु ॥ ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पृथिवि भूमिरिव पृथुविद्ये ! **देवि=पत्नि** विद्यायुक्ते ! **त्वया स्वस्तये** सुखाय **स्वधया** उदकेनाऽन्नेन वा **या आसुरी** येऽसुषु=प्राणेषु रमन्ते तेषां स्वा **माया** प्रज्ञा **अस्ति सा कृता** निष्पादिता **असि, तया त्वं मां पतिं दृꣳहस्व** वर्द्धस्व। **अरिष्टा** अहिंसिता **सती अस्मिन्** वर्त्तमाने **यज्ञे** संगन्तव्ये गृहाऽऽश्रमे **उत्+इहि** प्राप्नुहि। **यत् त्वया इदं [हव्यं]** दातुं योग्यं

भाषार्थ—हे (पृथिवि) भूमि के समान विस्तृत विद्या वाली, (देवि) विद्या से युक्त पत्नी ! तू ने—(स्वस्तये) सुख के लिए (स्वधया) जल वा अन्न से जो (आसुरी) असुरों=प्राणों में रमण करने वालों की (माया) बुद्धि है उसे (कृता) सिद्ध किया है, उससे तू मुझ पति को (दृꣳहस्व) बढ़ा। (अरिष्टा) अपीडित होकर (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य गृहाश्रम में (उत्+इहि) प्राप्त

विज्ञानं **जुष्टं** सेवितं **कृतमस्ति, तद् देवेभ्यः** विद्वद्भ्यो दिव्येभ्यो गुणेभ्यो वा **अस्तु** ॥ ६९ ॥

हो । तू ने जो यह [हव्यम्] दान के योग्य विज्ञान को (जुष्टम्) सेवन किया है, वह (देवेभ्यः) विद्वानों वा दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (अस्तु) हो ॥

[हे···देवि !···त्वया स्वस्तये···या···माया अस्ति सा कृता असि, तया त्वं मां पतिं हंहस्व]

भावार्थः—या स्त्री पतिं प्राप्य गृहे वर्त्तते, तया सुबुद्धचा सुखाय प्रयत्नो विधेयः ।

भावार्थ—जो स्त्री पति को प्राप्त करके घर में रहती है उसे सुबुद्धि से सुख के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

[त्वयेदं हव्यं जुष्टं कृतमस्ति]

सुसंस्कृतं सर्वमन्नादि प्रीतिकरं संपादनीयम् ।

वह उत्तम रीति से संस्कृत, अन्न आदि को रुचिकारक बनावे । और—

[अरिष्टा···अस्मिन् यज्ञ उदिहि]

न कदाचित् कस्यचिद् हिंसा वैरबुद्धिर्वा क्वचित् कार्या ॥ ११ । ६९ ॥

कभी किसी की हिंसा और वैर बुद्धि कहीं न रखे ॥ ११ । ६९ ॥

भा० पदार्थः— माया=सुबुद्धिः । हव्यम्=सुसंस्कृतमन्नादि । जुष्टम्=प्रीतिकरम् । अरिष्टा=अहिंसा, अवैरबुद्धिः ॥

भाष्यसार—**आदर्श पत्नी**—गृहस्थाश्रम को सुखी बनाने के लिये जिस प्रकार पुरुषों का शिक्षित होना आवश्यक है उसी प्रकार स्त्रियों को पूर्ण विदुषी, सभ्य तथा पृथिवी की तरह सहनशील होना चाहिये । पूर्ण सुशिक्षित स्त्री-पुरुषों की सन्तान ही शिक्षादि ग्रहण करने में समर्थ हो सकती है ।

गृहस्थ रूपी यज्ञ को सफल बनाने के लिये पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक भाग होता है । सन्तान के बनाने में भी माता का स्थान पिता की अपेक्षा अधिक है । परिवार के बन्धुओं से कैसा व्यवहार करना है ? अचानक घर में आये विद्वान्-अतिथियों का सत्कार कैसे करना है ? उनसे सदुपदेश ग्रहण करके कैसे बुराईयों को दूर करना चाहिये ? गृहस्थी कर्त्तव्य रूप पंचयज्ञों को किस प्रकार करना चाहिये ? इत्यादि सभी बातों का ज्ञान स्त्रियों को होना चाहिये ।

इसके अतिरिक्त प्राण पोषक अन्नादि भोज्य पदार्थों को सुसंस्कृत करके बनाने में भी स्त्रियों को दक्ष होना चाहिये । ऋतु के अनुकूल भोजन का निर्माण करना स्वास्थ्य के लिये परमावश्यक है । अतः स्त्रियों को पाकशास्त्र तथा आयुर्वेद का भी ज्ञान होना चाहिये । ●

सोमाहुतिः । **अग्निः=पतिः** ॥ विराड्गायत्री । षड्जः ॥

पुनः सा स्वभर्त्तारं प्रति कथं कथं संवदेतेत्याह ॥

फिर वह स्त्री अपने पति से कैसे कैसे कहे, यह उपदेश किया है ॥

द्रुन्नः सुर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो ऽ अद्भुतः ॥ ७० ॥

पदार्थः—(**द्रवन्नः**) द्रवो=वृक्षादय ओषधयोऽन्नानि वा यस्य सः ((**सर्पिरासुतिः**) सर्पिषो=घृतादेरासुतिः=सवनं यस्य सः (**प्रत्नः**) पुरातनः (**होता**) दाता गृहीता (**वरेण्यः**) स्वीकर्त्तुमर्हः (**सहसः**) बलवतः (**पुत्रः**) अपत्यम् (**अद्भुतः**) आश्चर्य्यगुणकर्मस्वभावः ॥ ७० ॥

अन्वयः—हे पते ! द्र्वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः सहसस्पुत्रोऽद्भुतः त्वं स्वस्तयेऽस्मिन् यज्ञ उदिहि उदितो भव ॥ ७० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे पते ! द्रवन्नः** द्रवः=वृक्षादय ओषधयोऽन्नानि वा यस्य सः, **सर्पिरासुतिः** सर्पिषः=घृताऽऽदेरासुतिः=सवनं यस्य सः, **प्रत्नः** पुरातनः **होता** दाता गृहीता **वरेण्यः** स्वीकर्त्तुमर्हः **सहसः** बलवतः **पुत्रः** अपत्यम् **अद्भुतः** आश्चर्य्यगुणकर्मस्वभावः **त्वं स्वस्तये** सुखाय **अस्मिन्** वर्त्तमाने **यज्ञे** संगन्तव्ये गृहाऽऽश्रमे **उदिहि=उदितो भव** ॥ ११ । ७० ॥

भाषार्थ—हे पते ! तू (द्र्वन्नः) वृक्ष आदि ओषधियों वाला, अथवा अन्नों वाला, (सर्पिरासुतिः) घृत आदि को उत्पन्न करने वाला, (प्रत्नः) पुराना, (होता) आदान-प्रदान करने वाला, (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य, (सहसः) बलवान् पुरुष का (पुत्रः) पुत्र और (अद्भुतः) अद्भुत गुण, कर्म, स्वभाव वाला होकर (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्मिन्) इस (यज्ञे) संगति के योग्य गृहाश्रम में (उदिहि) उदय को प्राप्त हो ॥ ११ । ७० ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः--अत्र स्वस्तये, अस्मिन्, यज्ञ, उदिहीति पदचतुष्टयं पूर्वतोऽनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में स्वस्तये, अस्मिन्, यज्ञे, उदिहि इन चार पदों की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ।

[हे पते ! सहसस्पुत्रः, द्र्वन्नः, अद्भुतः, त्वं स्वस्तये ··· उदिहि]

कन्यया—यस्य पिता कृतब्रह्मचर्यो बलवान् भवेद्, यः पुरुषार्थेन बह्वन्यन्नादीन्यर्जयितुं शक्नुयात्, पवित्रस्वभावः पुरुषो भवेत्, तेन साकं विवाहं कृत्वा; सततं सुखं भोक्तव्यम् ॥ ११ । ७० ॥

कन्या—जिसका पिता ब्रह्मचर्यसेवन से बलवान् हो, जो पुरुषार्थ से अन्न आदि नाना पदार्थों को अर्जित कर सके, और पवित्र स्वभाव वाला पुरुष हो, उसके साथ विवाह करके—निरन्तर सुख का भोग करे ॥ ११ । ७० ॥

भा० पदार्थः—सहसः=कृतब्रह्मचर्यस्य बलवतः । द्र्वन्नः=यः पुरुषार्थेन बह्वन्यन्नादीन्यर्जयितुं शक्नुयात् सः । अद्भुतः=पवित्रस्वभावः ।

भाष्यसार—**पति के योग्य गुण**—गृहस्थाश्रम में प्रवेशार्थी में किन किन गुणों का होना आवश्यक है ? गृहस्थयज्ञ को सुखमय तथा सफल बनाने के लिये भोज्य पदार्थों का होना परमावश्यक है । उसके आय के साधन अच्छे हों, वह धर्मपूर्वक धन-धान्य का अर्जन करने वाला हो । ब्रह्मचर्य का पूर्णतया पालन करके जिसने अपने शरीरादि का पूर्ण विकास किया हो । पूर्णयुवावस्था को प्राप्त हो । घृत दुग्धादि पौष्टिक पदार्थों की प्राप्ति के लिये गायादि दुधारू पशुओं का स्वामी हो । यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में श्रद्धा भक्ति भाव से दान करने वाला हो । रूपवान्, विद्वान् तथा बलवान् हो जिसे सभी श्रेष्ठ मानते हों । जन-सामान्य से अद्भुत गुणों वाला और सूर्यवत् प्रकाशवान् हो । वही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी है ।

इसके विपरीत अविद्वान् रोगी ऐश्वर्य से रहित मनुष्य को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है ।

विरूपः । **अग्निः**=**पतिः** ॥ विराड् गायत्री । षड्जः ॥

पुनः पतिः स्वपत्नीं प्रति किं किमुपदिशेदित्याह ॥

फिर पति अपनी पत्नी को क्या क्या उपदेश करे, यह उपदेश किया है ॥

परस्या ऽ अधि संवतोऽवराँ२ ऽ अभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँ२ ऽ अव ॥ ७१ ॥

पदार्थः—(**परस्याः**) प्रकृष्टायाः कन्यायाः (**अधिः**) (**संवतः**) संविभक्तान् (**अवरान्**) नीचाननुत्कृष्टगुणस्वभावान् (**अभि**) (**आ**) (**तर**) प्लव (**यत्र**) (**अहम्**) (**अस्मि**) (**तान्**) (**अव**) ॥ ७१ ॥

अन्वयः—हे कन्ये ! यस्याः परस्यास्तवाहमधिष्ठाता भवितुमिच्छामि सा त्वं सम्वतोऽवरानभ्यातर यत्र कुलेऽहमस्मि तानव ॥ ७१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे कन्ये ! यस्याः परस्याः** प्रकृष्टायाः कन्यायाः **तवाहमधिष्ठाता भवितुमिच्छामि, सा त्वं सम्वतः** संविभक्तान् **अवरान्** नीचाननुत्कृष्टगुणस्वभावान् **अभि+आ+तर** प्लव, **यत्र=कुले अहम् अस्मि तान् अव** ॥

भाषार्थ—हे कन्या ! तुझ (परस्याः) उत्तम कन्या का मैं अधिष्ठाता=पति बनना चाहता हूँ, सो तू (सम्वतः) विभक्त (अवरान्) नीच गुण, स्वभावों को (अभि+आ+तर) दूर कर। और (यत्र) जिस कुल में (अहम्) मैं (अस्मि) हूँ (तान्) उनकी (अव) रक्षा कर ॥ ११ । ७१ ॥

[हे कन्ये ! यस्याः परस्यास्तवाहमधिष्ठाता···सा त्वं संवतो ऽवरानभ्यातर]

भावार्थः—कन्यया स्वस्या उत्कृष्टस्तुल्यो वा वरः स्वीकार्यः ; न नीचः ।

भावार्थ—कन्या-अपने से उत्कृष्ट वा तुल्य वर को स्वीकार करे; निकृष्ट को नहीं ।

[यत्र=कुलेऽहमस्मि तानव]

यस्य पाणिग्रहणं कुर्यात् तस्य सम्बन्धिनो मित्राणि च संर्वदा सन्तोषणीयानि ॥ ११ । ७१ ॥

जिसके पाणि=हाथ को ग्रहण करे उसके सम्बन्धी और मित्रों को सदा सन्तुष्ट रखे ॥

भा० पदार्थः—तान्=सम्बन्धिनो मित्राणि च ॥ अव=सन्तोषय ॥

भाष्यसार—**१. विवाह से पूर्व परीक्षा**—कन्या और वर दोनों को ही अपने से उत्कृष्ट कुल में, जिसमें वंशपरम्परा से कोई रोग अथवा असद् आचरण न हो, विवाह करना चाहिये । इसी प्रकार दोनों के गुण कर्म स्वभावों की परीक्षा विवाह से पूर्व करनी चाहिये । समान गुण कर्म स्वभाव वालों का ही पारस्परिक मित्रता तथा स्नेह स्थिर रहता है ।

२. स्त्री का कर्त्तव्य—कन्या दोनों कुलों का भूषण होती है । विवाह के पश्चात् पति के कुल में आकर सभी दुर्गुणों का परित्याग करना चाहिये तथा सतत् प्रयत्न करना चाहिये कि पति कुल में भी कोई दुर्व्यसन हो तो उसे भी निज सद्व्यवहार से समाप्त करना चाहिये । और अपने सभी सम्बन्धियों को यथा योग्य सेवा करना तथा अपने सुस्वभाव से सबके हृदयों में अपना स्थान बनाकर घर की साम्राज्ञी बनना चाहिये । पति कुल की सब सम्पत्ति आदि की सुरक्षा भी करनी चाहिये ।

वारुणिः । **अग्निः**=**पतिः** ॥ भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः सा स्वस्वामिनं प्रति किं किमादिशेदित्याह ॥

फिर वह स्त्री अपने स्वामी से क्या-क्या कहे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

परमस्याः परावतो रोहिदश्व ऽ इहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—(**परमस्याः**) अनुत्तमगुणरूपशीलायाः (**परावतः**) दूरदेशात् (**रोहिदश्वः**) रोहितो ऽग्न्यादयोऽश्वा=वाहनानि यस्य सः (**इह**) (**आ**) (**गहि**) आगच्छ (**पुरीष्यः**) पुरीषेषु=पालनेषु साधुः (**पुरुप्रियः**) पुरूणां=बहूनां जनानां मध्ये प्रियः=प्रीतः (**अग्ने**) अग्निप्रकाशवद्विज्ञानयुक्त (**त्वम्**) (**तरा**) उल्लंघ । **अत्र द्वयचोतस्तिङ इति दीर्घः** (**मृधः**) परपदार्थाभिकांक्षिणः शत्रून् ॥ ७२ ॥

प्रमाणार्थ—(**तरा**) यहाँ 'द्वयघोतस्तिङः' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने पावक इव तेजस्विन् स्वामिन् ! रोहिदश्वः पुरीष्यः पुरुप्रियस्त्वमिह परावतो देशात् परमस्याः कन्यायाः कीर्तिं श्रुत्वाऽऽगहि तथा प्राप्तया सह मृधस्तर ॥ ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=पावक इव तेजस्विन् स्वामिन्** अग्निप्रकाशवद्विज्ञानयुक्त ! **रोहिदश्वः** रोहितोऽग्न्यादयोऽश्वा=वाहनानि यस्य सः, **पुरीष्यः** पुरीषेषु=पालनेषु साधुः **पुरुप्रियः** पुरूणां=बहूनां जनानां मध्ये प्रियः=प्रीतः **त्वम् इह परावतः=देशात्** दूरदेशात् **परमस्याः** अनुत्तमगुणशीलायाः **कन्यायाः कीर्तिं श्रुत्वा आ+गहि** आगच्छ, **तया प्राप्त्या सहः मृधः** परपदार्थाऽभिकांक्षिणः शत्रून् **तर** उल्लङ्घ ॥ ११ । ७२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी एवं अग्नि के प्रकाश के समान विज्ञान से युक्त पते ! तू (रोहिदश्वः) रोहित्=अग्नि आदि अश्व=वाहनों वाला, (पुरीष्यः) पालकों में श्रेष्ठ, (पुरुप्रियः) बहुत जनों के प्रिय होकर (इह) यहाँ (परावतः) दूरदेश से (परमस्याः) अत्युत्तम गुण, स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति को सुनकर (आ+गहि) आ । और उस प्राप्त कन्या के साथ (मृधः) पर-पदार्थों के अभिलाषी शत्रुओं को (तर) पार कर ॥ ११ । ७२ ॥

[हे अग्ने ! ··· त्वमिह परावतो देशात् परमस्याः कन्यायाः कीर्तिं श्रुत्वाऽऽगहि]

भावार्थः—मनुष्यैः स्वस्याः कन्यायाः पुत्रस्य वा समीपदेशे विवाहः कदाचिन्नैव कार्यः ।

यावद् दूरे विवाहः क्रियते तावदेवाऽधिकं सुखं जायते, निकटे कलह एव ॥ ११ । ७२ ॥

भावार्थ—मनुष्य—अपनी कन्या वा पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें ।

जितना दूर देश में विवाह किया जाता है उतना ही अधिक सुख होता है । समीप में कलह ही रहता है ॥ ११ । ७२ ॥

भाष्यसार—पति की योग्यता—गृहस्थ जीवन में प्रवेश लेने के लिये यह आवश्यक है कि वह अग्नि के समान ज्ञानवान् व तेजस्वी हो । निस्तेज पुरुष कभी भी इस आश्रम को सुखी नहीं बना सकता । और वह दूर देश का रहने वाला हो । समीप के कुलों में विवाह नहीं करना चाहिये । अन्यथा दोनों कुलों में सहृदयता का अभाव और पारस्परिक कलहादि का होना सम्भव हो जाता है । पति बनने के लिए योग्य है कि वह इतना धन-धान्यादि से सम्पन्न हो जो अच्छी प्रकार पालन रक्षण तथा सम्वर्धन करने में समर्थ हो । और इधर-उधर यातायात के लिये अश्वादि यान भी रखने वाला हो । अपने अच्छे स्वभाव के कारण सबका मित्र हो तथा अपने सामर्थ्य से सबको अपने अनुकूल बनाने वाला हो । वाणी आदि में अतीव मधुरता हो । और अनार्य विचारों के मनुष्य हों उनको स्वपराक्रम से वश में करने का सामर्थ्य भी होना आवश्यक है । इन गुणों से विशिष्ट मनुष्य ही गृहाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी हो सकता है ।

जमदग्निः । **अग्निः**=पतिः ।। निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनः स्त्रीपुरुषौ प्रति सम्बन्धिनः किं किं प्रतिजानीरन्नित्याह ।।

फिर स्त्रीपुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या क्याप्रतिज्ञा करें और करावें,
यह उपदेश किया है ।।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ।।७३।।

पदार्थः—(यत्) (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमान (**कानि**) (**कानि**) (**चित्**) अपि (**आ**) (**ते**) तुभ्यं तव वा (**दारुणि**) काष्ठे (**दध्मसि**) धरामः (**सर्वम्**) (**तत्**) (**अस्तु**) (**ते**) तव (**घृतम्**) आज्यम् (**तत्**) (**जुषस्व**) (**यविष्ठ्य**) अतिशयेन युवा यविष्ठः स एव तत्सम्बुद्धौ ।। ७३ ।।

अन्वयः—हे यविष्ठ्याग्ने विद्वान् पते स्त्रि वा ! यथा कानि कानिचिद्वस्तूनि ते सन्ति तद्द्वयं दारुण्यादध्मसि । यदस्माकं वस्त्वस्ति तत्सर्वं तेऽस्तु यदस्माकं घृतं तत्त्वं जुषस्व । यत्ते वस्त्वस्ति तत्सर्वमस्माकमस्तु । यत्ते घृतादिकं वस्त्वस्ति तद्वयं गृह्णीमः ।। ७३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **यविष्ठ्य** अतिशयेन युवा=यविष्ठः स एव तत्सम्बुद्धौ ! **अग्ने=विद्वन् पते स्त्रि वा** अग्निरिव वर्त्तमान ! **यथा कानि कानि चित्** अपि **वस्तूनि ते** तुभ्यं तव वा **सन्ति, तद्द्वयं दारुणि** काष्ठे **आ+दध्मसि** धरामः । **यदस्माकं वस्त्वस्ति, तत् सर्वं ते** तव **अस्तु । यद् अस्माकं घृतम्** आज्यं **तत् त्वं जुषस्व । यत् ते** तव **वस्त्वस्ति, तत् सर्वम् अस्माकम् अस्तु । यत् ते** तव **घृतादिकं वस्त्वस्ति तद्वयं गृह्णीमः** ११ । ७३ ।।

भाषार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवा (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् पति वा स्त्री ! जैसे (कानि कानि चित्) कौन कौन सी वस्तुयें (ते) आप के लिये वा आपकी हैं वैसे हम उन्हें (दारुणि) काष्ठमय अलमारी आदि (आ+दध्मसि) रखते हैं । और—(यद्) जो हमारी वस्तु है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) आपकी (अस्तु) हो । (यद्) जो हमारा (घृतम्) घी है (तत्) उसे (त्वम्) आप (जुषस्व) सेवन करो । (यत्) जो (ते) आपकी वस्तु है (तत्) वह (सर्वम्) सब हमारी (अस्तु) हो । (यत्) जो (ते) आपकी (घृत) आदि वस्तु है उसे हम ग्रहण करें ।। ११ । ७३ ।।

[**हे यविष्ठ्य ! अग्ने ! पते स्त्रि ! वा यथा कानि कानि चिद् वस्तूनि ते सन्ति, तद्द्वयं दारुण्यादध्मसि**]

भावार्थः—ब्रह्मचार्यादिभिर्मनुष्यैः स्वकीयाः सर्वे पदार्थाः सर्वार्था निधातव्याः ।

भावार्थ—ब्रह्मचारी आदि मनुष्य अपने सब पदार्थों को सब के लिये रखें ।

[**यदस्माकं वस्त्वस्ति तत्सर्वं तेऽस्तु···**]

न कदाचिदीर्ष्यया परस्परं भेत्तव्य यतः सर्वेषां सर्वाणि सुखानि वर्धेरन्, विघ्नाश्च नोत्तिष्ठेरन्,

एवं—स्त्रीपुरुषावपि परस्परं वर्तेयाताम् ।।

कभी ईर्ष्या से परस्पर अलग न हों, जिससे सबके सब सुख बढ़ें और विघ्न खड़े न हों ।

इस प्रकार—स्त्री-पुरुष भी परस्पर वर्ताव करें ।। ११ । ७३ ।।

भाष्यसार—**पति और पत्नी के प्रति सम्बन्धियों का कर्त्तव्य**—पूर्ण युवावस्था में जब वर तथा वधू पति पत्नी भाव को प्राप्त होते हैं उस समय सभी सम्बन्धियों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे इन्हें अच्छी अच्छी शिक्षायें देवें । और जिस जिस वस्तु की इन्हें आवश्यकता हो उनको यथा समय प्रदान

करते हुए सहृदयता से रखें, ईर्ष्या भाव से नहीं। इसी प्रकार पति तथा पत्नी भी सभी के साथ सौहार्द भाव बनाये रखें। अपने से बड़ों का आदर करते हुए उनसे शुभ गुणों को सीखने का यत्न सदा करें। इससे पारिवारिक तथा सामाजिक सुखों की वृद्धि होती है।

जमदग्निः। **अग्निः**=पतिः॥ विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

स्त्री पुरुषों के प्रति सम्बन्धी लोग क्या क्या प्रतिज्ञा करें और करावें, यह उपदेश किया है॥

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रोऽअतिसर्पति। सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य॥ ७४॥

पदार्थः—(यत्) (अत्ति) भुङ्क्ते (उपजिह्विका) उपगताऽनुकूला जिह्वा यस्याः पत्न्याः सा (यत्) (वम्रः) उद्गलितोदानः (अतिसर्पति) अतिशयेन गच्छति (सर्वम्) (तत्) (अस्तु) (ते) (घृतम्) (तत्) (जुषस्व) (यविष्ठ्य)॥ ७४॥

अन्वयः—हे यविष्ठ्य! त्वमुपजिह्विका च यदत्ति वम्रो यदत्ति सर्पति तत्सर्वं तेऽस्तु यत्ते घृतमस्ति तत्त्वं जुषस्व॥ ७४॥

सपदार्थान्वयः—हे **यविष्ठ्य** अतिशयेन युवा यविष्ठः स एव तत्सम्बुद्धौ! **त्वम् उपजिह्विका** उपगताऽनुकूला जिह्वा यस्याः पत्न्याः सा **च यद् अत्ति** भुङ्क्ते, **वम्रः** उद्गलितोदानः **यद् अति+सर्पति** अतिशयेन गच्छति, **तत् सर्वं ते** तुभ्यं तव वा **अस्तु। यत् ते** तव **घृतम्** आज्यम् **अस्ति, तत् त्वं जुषस्व**॥ ११। ७४॥

भाषार्थ—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवा पते! (उपजिह्विका) अनुकूल जिह्वा वाली पत्नी (यद्) जो (अत्ति) खाती है, और (वम्रः) वमन किया हुआ उदान (यद्) जो (अति+सर्पति) तीव्र गति करता है (तत्) वह (सर्वम्) सब (ते) आपके लिये वा आपका (अस्तु) हो। और (यत्) जो (ते) आपका (घृतम्) घृत है (तत्) उसे तू (जुषस्व) सेवन कर॥ ११। ७४॥

[हे यविष्ठ्य! त्वमुपजिह्विका श्च च यदत्ति···सर्वं तेऽस्तु]

भावार्थः—यत्प्रति पतिः प्रवर्त्तते, स्त्री वा तदनुकूलौ दम्पती स्याताम्।

यत् स्त्रियाः स्वं तत् पुरुषस्य, यत् पुरुषस्य तत् स्त्रिया भवतु। नात्र कथंचिद् द्वेषो विधेयः, किन्तु परस्परं मिलित्वाऽऽनन्दं भुञ्जीयाताम्॥ ११। ७४॥

भावार्थ—जिसके प्रति पति वा स्त्री व्यवहार में प्रवृत्त होती है उसके अनुकूल दोनों स्त्री पुरुष रहें।

जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का पदार्थ है वह स्त्री का होवे। इस विषय में कभी द्वेष न करें किन्तु परस्पर मिलकर आनन्द भोगें॥ ११। ७४॥

भाष्यसार—**पति और पत्नी का धर्म**—पति व पत्नी भाव को प्राप्त स्त्री-पुरुष सदा एक दूसरे के प्रियाचरण का प्रयत्न किया करें। क्योंकि प्रतिकूलाचरण से दुःख की वृद्धि होती है। गृहाश्रम में जितेन्द्रियता का होना परमावश्यक है। जिह्वादि इन्द्रियों के वशीभूत होकर रहने से शरीर कभी भी स्वस्थ नहीं रहते हैं। अनेक प्रकार की बीमारियाँ घर कर लेती हैं। और स्त्री-पुरुष कदापि कोई वस्तु छिपाकर न रखें। दोनों के मनों के भी कपट भाव न हो। एक दूसरे के दुःख में दुःख तथा सुख में

सुख समझने वाले हों। एक दूसरे से छिपाकर अथवा चोरी करके कभी किसी वस्तु का भोग न करें। इससे दोनों ही सुखी रहते हैं ॥ ११ । ७४ ॥

नाभानेदिः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्गृहस्थाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

फिर गृहस्थ लोग आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

पदार्थः--(**अहरहः**) प्रतिदिनम् (**अप्रयावम्**) प्रयुवत्यन्यायं यस्मिन् स प्रयावो न विद्यते प्रयावो यस्मिन् गृहाश्रमे तम् (**भरन्तः**) धरन्तः (**अश्वायेव**) यथाश्वाय (**तिष्ठते**) वर्त्तमानाय (**घासम्**) भक्ष्यम् (**अस्मै**) गृहाश्रमाय (**रायः**) धनस्य (**पोषेण**) पुष्ट्या (**सम्**) (**इषा**) अन्नादिना (**मदन्तः**) हर्षन्तः (**अग्ने**) विद्वन् (**मा**) (**ते**) तव (**प्रतिवेशाः**) प्रतीता वेशा=धर्मप्रवेशा येषां ते (**रिषाम**) हिंस्याम । **अत्र** लिङर्थे लुङ् ॥ ७५ ॥

प्रमाणार्थ—(रिषाम) यहाँ लिङर्थ में लुङ् हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! अहरहस्तिष्ठतेश्वायेवास्मा अप्रयावं घासं भरन्तो रायस्पोषेणेषा संमदन्तः प्रतिवेशाः सन्तो वयं त ऐश्वर्य्यं मारिषाम ॥ ७५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** विद्वन् ! **अहरहः** प्रतिदिनं **तिष्ठते** वर्त्तमानाय **अश्वाय** यथाऽश्वाय **इव अस्मै** गृहाऽऽश्रमाय **अप्रयावं** प्रयुवत्यन्यायं यस्मिन् स प्रयावो, न विद्यते प्रयावो यस्मिन् गृहाऽऽश्रमे तं, **घासं** भक्ष्यं **भरन्तः** धरन्तः **रायः** धनस्य **पोषेण** पुष्ट्या **इषा** अन्नादिना **सम्+मदन्तः** हर्षन्तः, **प्रतिवेशाः** प्रतीता वेशा=धर्मप्रवेशा येषां ते, **सन्तो वयं ते** तव **ऐश्वर्य्यं मा रिषाम** हिंस्याम ॥ ७५ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! हम लोग (अहरहः) प्रतिदिन (तिष्ठते) विद्यमान (अश्वायेव) अश्व के समान (अस्मै) इस गृहाश्रम के लिए (अप्रयावम्) अन्याय के मिश्रण से रहित गृहाश्रम को तथा (घासम्) भक्ष्य पदार्थों को (भरन्तः) धारण करते हुए (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से तथा (इषा) अन्न आदि से (सम्+मदन्तः) हर्षित होकर (प्रतिवेशाः) धर्म-प्रवेश में प्रसिद्ध बन कर (ते) आप के ऐश्वर्य का (मा रिषाम) हिंसन न करें ॥ ११ । ७५ ॥

[हे अग्ने ! अहरहः···अश्वायेवास्मिन् घासं भरन्तो···]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । गृहस्था यथा अश्वादिपशूनां भोजनार्थं यव दुग्धादिकमश्वपालका नित्यं संचिन्वन्ति, तथैश्वर्यं समुन्नीय सुखयेयुः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ गृहस्थ लोग–जैसे अश्व आदि पशुओं के भोजन के लिये अश्व-पालक लोग जौ तथा दुग्ध आदि का नित्य संचय करते हैं वैसे ऐश्वर्य को उन्नत करके सुखी रहें ।

[रायस्पोषेणेषा संमदन्तः···वयं त ऐश्वर्यं मा रिषाम]

धनमदेन केनचित् सहेर्ष्यां कदाचिन्न कुर्युः,

धन के मद से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न

परस्योत्कर्षं श्रुत्वा दृष्ट्वा च सदा हृष्येयुः ॥ करें । दूसरे की उन्नति को सुन कर और देखकर सदा हर्षित होवें ॥ ११ । ७५ ॥

भा० पदार्थः—अहरहः=नित्यम् । अश्वायेव=यथा अश्वादिपशूनां भोजनार्थम् । घासम्=यवदुग्धादिकम् ।

भाष्यसार—**१. गृहस्थ-धर्म**—(क) गृहस्थ में प्रवेश करके गृहस्थी का परम कर्त्तव्य है कि वह विद्वान् अतिथियों की दीन दुःखियों की तथा स्वाश्रितों की अन्नादि पदार्थों से सदा तृप्ति करता रहे। और धनार्जन करते हुए यह ध्यान रक्खे कि मेरे व्यवहार से किसी प्राणी को दुःख तो नहीं मिल रहा है। मैं किसी के साथ अन्याय तो नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि अन्याय से अर्जित धन परिणाम में दुःखदायी ही होता है।

(ख) अन्नादि पदार्थ वे ही भक्षणीय है जो शरीर का पोषण करने वाले हों। जिह्वा के वशीभूत होकर कभी भी अपुष्टिकारक पदार्थों का भोग न करें। तभी शरीर नीरोग तथा दीर्घायु वाला हो सकता है। बुद्धिनाशक मदिरा, मांस तथा नशा करने वाले पदार्थ कभी भी प्रयोग में न लाये।

(ग) जिन मनुष्यों ने धर्म में प्रवेश ले रक्खा है अर्थात् परोपकारी साधु हैं, उनको कभी दुःख न होने देवे। उनके कार्यों में बाधक न होकर सदा सहायक ही रहे। और जो पाखण्डी मनुष्य हों उनका कदापि वाणी से भी सत्कार न करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे अश्व-पालक अश्वादि पशुओं के लिये घासादि के संचय के लिये प्रतिदिन प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार धनादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये यत्न करें। ●

नाभानेदिः । **अग्निः**=**सेनापतिः** ॥ स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरेते परस्परं कथं संवदेरन्नित्याह ॥

फिर ये मनुष्य लोग आपस में कैसे संवाद करें, यह उपदेश किया है ॥

नाभा॑ पृथि॒व्याः स॑मिधा॒ने ऽ अ॒ग्नौ रा॒यस्पोषा॑य बृह॒ते ह॑वामहे ।
इ॒र॒म्म॒दं बृ॒हदु॑क्थं॒ यज॑त्रं॒ जेता॑रम॒ग्निं पृत॑नासु सास॒हिम् ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(**नाभा**) नाभौ मध्ये (**पृथिव्याः**) (**समिधाने**) सम्यक् प्रदीप्ते (**अग्नौ**) वह्नौ (**रायः**) श्रियः (**पोषाय**) पोषणकराय (**बृहते**) महते (**हवामहे**) स्पर्द्धामहे (**इरम्मदम्**) य इरयाऽन्नेन माद्यति=हृष्यति तम् । **उग्रंपश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च ॥ अ० ३ । २ । ३७ ॥ इति खश् प्रत्ययान्तो निपातः** (**बृहदुक्थम्**) बृहन्महदुक्थं=प्रशंसनं यस्य तम् (**यजत्रम्**) संगन्तव्यम् (**जेतारम्**) जयशीलम् (**अग्निम्**) विद्युद्वद्वर्त्तमानम् (**पृतनासु**) सेनासु (**सासहिम्**) अतिशयेन सोढारम् ॥ ७६ ॥

प्रमाणार्थ—(**इरम्मदम्**) यह शब्द "खश् प्रत्ययान्त 'उग्रंपश्येरम्मदपाणिन्धमाश्च' (**अ०** ३ । २ । ३७) सूत्र से निपातन से सिद्ध होता है।

अन्वयः—हे गृहिणो ! यथा वयं बृहते रायस्पोषाय पृथिव्या नाभा समिधानेऽग्नौ पृतनासु सासहिमिरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रमग्निमिव जेतारं सेनापतिं हवामहे तथा यूयमप्याह्वयत ॥ ७६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहिणः ! **यथा वयं बृहते** महते **रायः** श्रियः **पोषाय** पोषणकराय **पृथिव्याः नाभा** नाभौ=मध्ये **समिधाने** सम्यक् प्रदीप्ते **अग्नौ** वह्नौ **पृतनासु** सेनासु **सासहिम्** अतिशयेन सोढारम् **इरम्मदं** य इरयाऽन्नेन माद्यति=हृष्यति तं, **बृहदुक्थं** बृहन्महदुक्थं=प्रशंसनं यस्य तं, **यजत्रं** संगन्तव्यम् **अग्निम्** विद्युद्वद्वर्त्तमानम् **इव जेतारं** जयशीलं **सेनापतिं हवामहे** स्पर्द्धामहे, **तथा यूयमप्याह्वयत** ॥ ७६ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थो ! जैसे हम लोग—(बृहते) महान् (रायः) ऐश्वर्य की (पोषाय) पुष्टि के लिये (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभौ) मध्य में (समिधाने) उत्तम रीति से प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में, तथा (पृतनासु) सेनाओं में (सासहिम्) अत्यन्त सहनशील, (इरम्मदम्) अन्न से हर्षित रहने वाले, (बृहदुक्थम्) बड़ी प्रशंसा वाले, (यजत्रम्) संगति के योग्य, (अग्निम्) विद्युत् के समान विद्यमान, (जेतारम्) विजेता सेनापति की (हवामहे) स्पर्द्धा करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥ ११ । ७६ ॥

[हे गृहिणः !···पृथिव्या नाभौ···पृतनासु सासहिं···बृहदुक्थं···अग्नि मिव जेतारं सेनापतिं हवामहे]

भावार्थः—भूमिराज्यं कुर्वद्भिर्जनैः शस्त्रास्त्राणि संचित्य पूर्णबुद्धिविद्याशरीरात्मबलसहितं पुरुषं सेनापतिं विधाय, निर्भयतया प्रवर्तन्ताम् ॥ ११ । ७६ ॥

भावार्थ—भूमि पर राज्य करने वाले लोग शस्त्रास्त्रों को संचित करके, पूर्ण बुद्धि, विद्या, शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष को सेनापति बनाकर निर्भयतापूर्वक रहें ॥ ११ । ७६ ॥

भा० पदार्थः—पृथिव्याः=भूमेः । बृहदुक्थम्=पूर्णबुद्धिविद्याशरीरात्मबलसहितं पुरुषम् ।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—सेनापति में निम्नलिखित गुण अवश्य होने चाहिये। अच्छा सेनापति ही प्रजा की सम्पत्ति रक्षक हो सकता है। (१) अग्नि=सेनापति बिजुली की तरह शीघ्रकारी, दक्ष तथा स्फूर्ति वाला हो। (२) जेता=शत्रु-सेना अथवा राज्य के दस्युओं को वश में करके सदा विजयशील हो। (३) यजत्र=संग्राम में अदम्य साहस वाला हो और अपने प्रभाव से सेना में संघटन करने वाला हो और सज्जनों का आदर तथा दुर्जनों का निरादर करने वाला हो। (४) बृहदुक्थ=जिसकी प्रशंसा करते हैं। शत्रु पक्ष के भी जिसकी वीरता को मानते हों। (५) इरम्मद=अन्नादि शक्तिप्रद पदार्थों से प्रसन्न और मद्य मांसादि से सदा अप्रसन्न रहता हो। (६) सासहि=अत्यन्त सहनशील हो। बड़ी से बड़ी आपत्ति आने पर भी धैर्यवान् हो। सेना के प्रत्येक कार्य में सहनशील होकर विचार करने वाला हो। इन गुणों से विशिष्ट सेनापति ही अराजकता को दूर करने में और शत्रुओं को जीतने में समर्थ होता है।

नाभानेदिः । **अग्निः**=**सेनासभापतिः** ॥ भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः पुनरेते चोरादीन् प्रयत्नेन निवर्त्तयेयुरित्याह ॥

राजपुरुषों को योग्य है कि अपने प्रयत्न से चोर आदि दुष्टों का वार वार निवारण करें, यह उपदेश किया है ॥

याः सेनाऽ अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाऽ उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्तेऽ अग्नेऽपि दधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(याः) (सेनाः) (अभीत्वरीः) आभिमुख्यं राजविरोधं कुर्वतीः (आव्याधिनीः)

समन्तद्बहुरोगयुक्तास्ताडितुं शीला वा (उगणाः) उद्यतायुधसमूहाः । पृषोदरादित्वादभीष्टसिद्धिः (उत) अपि (ये) (स्तेनाः) सुरङ्गं दत्त्वा परपदार्थापहारिणः (ये) (च) दस्यवः (तस्कराः) द्यूतादिकापट्येन परपदार्थापहर्त्तारः (तान्) (ते) अस्य । अत्र व्यत्ययः (अग्नेः) पावकस्य (अपि) (दधामि) प्रक्षिपामि (आस्ये) प्रज्वलिते ज्वालासमूहेऽग्नौ ॥ ७७ ॥

प्रमाणार्थ—(उगणाः उद्यतायुधसमूहाः) यहाँ इस शब्द की सिद्धि पृषोदरादि गण के अन्तर्गत मान कर करनी चाहिये । (ते=अस्य) इसमें 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्र से विभक्ति व्यत्यय से षष्ठी के स्थान पर प्रथमा विभक्ति है ।

अन्वयः—हे सेनासभापते ! यथाऽहं या अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणाः सेनाः सन्ति ता उत ये स्तेना ये तस्कराश्च सन्ति तांस्तेऽस्याग्नेः पावकस्यास्येऽपिदधामि तथात्वमेतानि दधेहि ॥ ७७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सेनासभापते ! **यथाऽहं याः अभीत्वरीः** आभिमुख्यं राजविरोधं कुर्वतीः **आव्याधिनीः** समन्ताद् बहुरोगयुक्तास्ताडितुं शीला वा **उगणाः** उद्यताऽऽयुधसमूहाः **सेनाः सन्ति, ता उत** अपि **ये स्तेनाः** सुरङ्गं दवत्त्वा परपदार्थाऽपहारिणः **ये तस्कराः** द्यूतादिकापट्येन परपदार्थाऽपहर्त्तारः **च सन्ति, तांस्ते=अस्य अग्नेः** पावकस्य **आस्ये** प्रज्वलिते ज्वालासमूहेऽग्नौ **अपि+दधामि** प्रक्षिपामि **तथा त्वमेतानि दधेहि** ॥

भाषार्थ—हे सेनापति तथा सभापति ! जैसे मैं–जो (अभित्वरीः) मुख्य रूप से राज-विरोध करने वाली, (आव्याधिनीः) सब ओर से नाना रोगों से युक्त अथवा ताड़न के योग्य, (उगणाः) शस्त्रों से युक्त (सेनाः) सेनाएँ हैं उन्हें, (उत) और–(ये) जो (स्तेनाः) सुरंग लगाकर पर-पदार्थों को अपहरण करने वाले, तथा (ये) जो (तस्कराः) द्यूत=जूवा आदि छल-कपट से पर-पदार्थों को अपहरण करने वाले हैं (तान्) उन्हें (ते) इस (अग्नेः) अग्नि की (आस्ये) प्रज्वलित ज्वालाओं में (अपि+दधामि) डालता हूँ; वैसे तू इन्हें डाल ॥

[हे सेनासभापते !···अभीत्वरीः, आव्याधिनीः, उगणाः सेनाः सन्ति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । धार्मिकै राजपुरुषैर्या अनुकूलाः सेनाः प्रजाश्च सन्ति ताः सततं सम्पूज्य, या विरोधिन्यो—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ धार्मिक राजपुरुष–जो अनुकूल सेनाएँ और प्रजा हैं उनका सदा सत्कार करके, और जो विरोधी सेनाएँ हों,

[उत—ये स्तेना ये तस्कराश्च सन्ति]

ये च दस्य्वादयश्चोरा दुष्टवाचोऽनृतवादिनो व्यभिचारिणो मनुष्या भवेयुस्तान्–

तथा जो दस्यु आदि चोर, दुष्ट वाणी वाले, मिथ्यावादी, व्यभिचारी मनुष्य हों उन्हें—

[तांस्तेऽस्याग्नेरास्येऽपिदधामि]

अग्निदाहाद्युद्वेजनकरैर्दण्डैर्भृशं ताडयित्वा वशं नेयाः ॥ ११ । ७७ ॥

अग्निदाह आदि उद्विग्नकारी दण्डों से अत्यन्त ताड़ना करके वश में रखें ॥

भा० पदार्थः—अभीत्वरीः=विरोधिन्यः । स्तेनाः=दस्य्वादयः । तस्कराः=चोराः, दुष्टवाचोऽनृतवादिनो व्यभिचारिणो मनुष्याः ।

भाष्यसार—१. **सेनापति का कर्त्तव्य**—सेनापति का यह परमधर्म है कि वह सज्जनों का पालन तथा दुष्टों का ताडन सदा किया करे । जिससे राज्य में अराजकता उत्पन्न न हो सके। अराज-

कता उत्पन्न करने वालों को कठोर से कठोर दण्ड देवे। अराजकता फैलाने वालों के तीन भेद हो सकते हैं—(१) शस्त्रधारी विरोधी सेना। जिस राज्य में विरोधी सेना प्रबल होती है वहाँ राजा तथा प्रजा को शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। (२) स्तेन, जो सुरङ्ग लगाकर दूसरों के पदार्थों का अपहरण करने में लगे रहते हैं। (३) तस्कर, जो जुआ आदि छल कपटादियुक्त कार्यों से अथवा रिश्वतादि के लोभ अन्याययुक्त कार्यों में लगे रहते हैं। अथवा दुश्चरित्र व्यक्ति भी तस्कर ही कहलाते हैं।

इन सभी प्रकारों के प्रजा विरोधी मनुष्यों को दधकते हुए अग्नि में, सभी के सामने गिरवा देवें। जिससे आगे से किसी को भी दुष्कर्म करने का साहस भी न हो सके।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे मैं अन्यायी शत्रुओं को अग्नि में डालता हूँ वैसे ही सेनापति भी शत्रुओं को दण्ड देवे।

नाभानेदिः। **अग्निः**=सभासेनेशः। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

पुनस्तान् कथं ताडयेयुरित्याह॥

फिर उन दुष्टों को किस प्रकार ताड़ना करें, यह उपदेश किया है॥

दंष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यैस्तस्कराँ२ऽ उत।
हनुभ्याथं स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान्॥ ७८॥

पदार्थः—(**दंष्ट्राभ्याम्**) तीक्ष्णाग्राभ्यां दन्ताभ्याम् (**मलिम्लून्**) मलिनाचारान् सिंहादीन् (**जम्भ्यैः**) जम्भेषु=सुखेषु भवैर्जिह्वादिभिः (**तस्करान्**) चोर इव वर्त्तमानान् (**उत**) अपि (**हनुभ्याम्**) ओष्ठमूलाभ्याम् (**स्तेनान्**) परपदार्थापहर्तॄन् (**भगवः**) ऐश्वर्यसम्पन्न राजन् (**तान्**) (**त्वम्**) (**खाद**) विनाशय (**सुखादितान्**) अन्यायेन परपदार्थानां भोक्तॄन्॥ ७८॥

अन्वयः—हे भगवः सभासेनेश! यथा त्वं जम्भ्यैर्दंष्ट्राभ्यां यान् मलिम्लून् तस्करान् हनुभ्यां सुखादितान् स्तेनान् खाद विनाशयेस्तान् वयमुत विनाशयेम॥ ७८॥

सपदार्थान्वयः—हे भगवः=सभासेनेश ऐश्वर्य्यसम्पन्न राजन्! **यथा त्वं जम्भ्यैः** जम्भेषु=सुखेषु भवैर्जिह्वादिभिः **दंष्ट्राभ्यां** तीक्ष्णाग्राभ्यां दन्ताभ्यां **यान् मलिम्लून्** मलिनाऽऽचारान् सिंहादीन् **तस्करान्** चोर इव वर्त्तमानान् **हनुभ्याम्** ओष्ठमूलाभ्यां **सुखादितान्** अन्यायेन परपदार्थानां भोक्तॄन् **स्तेनान्** परपदार्थाऽपहर्तॄन् **खाद**=**विनाशयेः** विनाशय। **तान् वयम् उत** अपि **विनाशयेम**॥ ७८॥

भाषार्थ—हे (भगवः) ऐश्वर्य से सम्पन्न सभापति और सेनापति राजा! जैसे आप (जम्भ्यैः) मुख में विद्यमान जिह्वा आदि तथा (दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण अग्रभाग वाले दांतों के विनाश से जिन (मलिम्लून्) मलिन आचार वाले सिंह आदिकों एवं (तस्करान्) चोर के तुल्य व्यवहार करने वालों को (हनुभ्याम्) ओठ के मूल=ठोडी के विनाश से (सुखादितान्) अन्याय से पर-पदार्थों के भोक्ता, (स्तेनान्) पर-पदार्थों को अपहरण करने वाले चोरों को (खाद) विनष्ट करते हो उन्हें हम (उत) भी विनष्ट करें॥ ११। ७८॥

[हे भगवः ! सभासेनेशः ! ...त्वं जम्भ्यं दंष्ट्राभ्यां मलिम्लून् तस्करान् ... स्तेनान् खाद]

भावार्थः—राजपुरुषैर्ये गवादिहिंसकाः पशवः पुरुषाश्च, ये च स्तेनास्ते विविधेन बन्धनेन ताडनेन नाशनेन वा=वशं नेयाः ॥ ११ । ७८ ॥

भावार्थ—राजपुरुष—जो गौ आदि के हिंसक सिंह आदि पशु और पुरुष हैं, और जो स्तेन=चोर हैं उन्हें विविध प्रकार के बन्धन, ताडन वा विनाश से वश में रखें ॥ ११ । ७८ ॥

भा० पदार्थः—मलिम्लून्=गवादिहिंसकान् पशून्, पुरुषान् वा ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—सेनापति राजा तथा प्रजा तब ही ऐश्वर्य सम्पन्न होकर भगवान् कहला सकते हैं। जब राज्य में चोर लुटेरों का भय न हो और हिंसक जन्तु सिंहादि का आतंक न हो। अतः दुश्चरित्र मनुष्य, जो राज्य के गुप्त चोर हैं, जो दूसरे के पदार्थों का अपहरण करते रहते हैं अथवा जो अन्याय से दूसरों के पदार्थों को लूटते रहते हैं, इन सभी चोरों को मुख में पड़े ग्रास की तरह बुरी तरह कुचल देवे। ऐसा कठोर दण्ड देवे जिससे वे पुनः वैसा अपराध करने का साहस ही न करें ॥ ७८ ॥

नाभानेदिः । **सेनापतिः**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरेते काँस्कान् निवर्त्तयेयुरित्याह ॥

फिर ये राजपुरुष किस किस का निवारण करें, यह उपदेश किया है ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

पदार्थः—(**ये**) (**जनेषु**) मनुष्येषु (**मलिम्लवः**) ये मलिनाः सन्तो म्लोचन्ति=गच्छन्ति ते (**स्तेनासः**) गुप्ताश्चोराः (**तस्कराः**) प्रसिद्धाः (**वने**) अरण्ये (**ये**) (**कक्षेषु**) सामन्तेषु (**अघायवः**) आत्मनोऽघेन=पापेनायुरिच्छवः (**तान्**) (**ते**) तव (**दधामि**) (**जम्भयोः**) बन्धने=मुखमध्ये ग्रासमिव ॥ ७९ ॥

अन्वयः—हे सभेश ! सेनापतिरहं ये जनेषु मलिम्लवः स्तेनासो ये वने तस्करा ये कक्षेष्वघायवः सन्ति ताँस्ते जम्भयोर्ग्रासमिव दधामि ॥ ७९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश ! सेनापतिरहं ये जनेषु** मनुष्येषु **मलिम्लवः** ये मलिनाः सन्तो म्लोचन्ति=गच्छन्ति ते, **स्तेनासः** गुप्ताश्चोराः, **ये वने** अरण्ये **तस्कराः** प्रसिद्धाः, **ये कक्षेषु** सामन्तेषु **अघायवः** आत्मनोऽघेन=पापेनाऽऽयुरिच्छवः **सन्ति, तान् ते** तव **जम्भयोः ग्रासं**-बन्धने=मुखमध्ये ग्रासम् **इव दधामि** ॥ ७९ ॥

भावार्थ—हे सभापति ! मैं सेनापति—(ये) जो (जनेषु) मनुष्यों में (मलिम्लवः) मलिन आचार वाले होकर गमन करने वाले (स्तेनासः) गुप्त–चोर हैं, (ये) जो (अरण्ये) जंगल में (तस्कराः) प्रसिद्ध चोर हैं, (ये) जो (कक्षेषु) सामन्त लोगों में (अघायवः) पाप करके आयु की इच्छा करने वाले पापी हैं (तान्) उन्हें (ते) आपके (ग्रासम्) बन्धन रूप मुख में ग्रास के तुल्य (दधामि) रखता हूँ ॥ ११ । ७९ ॥

[हे सभेश ! सेनापतिरहं ये मनुष्येषु मलिम्लवः, स्तेनासः, ये वने तस्कराः, ये कक्षेष्वघायवः सन्ति तान् जम्भयोः ग्रासमिव दधामि]

भावार्थः—सेनापत्यादिराजपुरुषाणामिदमेव

भावार्थ—सेनापति आदि राजपुरुषों का

कर्त्तव्यमस्ति यद् ग्रामारण्यस्थाः प्रसिद्धा अप्रसिद्धाश्चौराः पापाचाराश्च पुरुषा सन्ति, तेषां राजाधीनत्वं कुर्युरिति ।। ११ । ७९ ।।

यही कर्त्तव्य है कि जो ग्राम तथा जंगल में रहने वाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध चोर, पापी पुरुष हैं उन्हें राजा के अधीन रखें ।। ११ । ७९ ।।

भा० पदार्थः—स्तेनासः=प्रसिद्धा अप्रसिद्धाश्चोराः । अघायवः=पापाचाराः पुरुषाः ।

भाष्यसार—**सेनापति का धर्म**—सेनापति का मुख्य कर्त्तव्य है कि समस्त राज्य के चोरों तथा दस्युओं को वश में करके दण्ड देवे और राजा के अधीन करे । (१) प्रथम प्रकार के चोरों को स्तेन कहते हैं । जिन मनुष्यों का आचरण मलीन है, चरित्र की दृष्टि से पतित हैं, वे गुप्त-चोर होते हैं । (२) दूसरे प्रकार के चोरों को दस्यु कहते हैं, जो दूसरों के धन-धान्य को हानि पहुँचाते रहते हैं । अवसर का लाभ उठाकर पदार्थों की चोरी करके छिप जाते हैं । (३) तीसरे प्रकार के चोरों को अघायु कहते हैं । जो खुले रूप में शस्त्रादि की सहायता से हिंसक बनकर दूसरों के धनों को छीन लेते हैं । जिनको वर्तमान में डाकू कहते हैं । ये तीनों ही चोर राज्य में अराजकता फैलाते रहते हैं ।

नाभानेदिः । **अध्यापकोपदेशकौ**=स्पष्टम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजपुरुष किस किस का निवारण करें, उसका फिर उपदेश किया है ।।

यो ऽ अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्द्राद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसा कुरु ।। ८० ।।

पदार्थः—(**यः**) मनुष्यः (**अस्मभ्यम्**) धार्मिकेभ्यः (**अरातीयात्**) शत्रुत्वमाचरेत् (**यः**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**द्वेषते**) अप्रीतयति । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुगभावः (**जनः**) (**निन्दात्**) निन्देत् (**यः**) (**अस्मान्**) (**धिप्सात्**) दम्भितुमिच्छेत् (**च**) (**सर्वम्**) (**तम्**) (**भस्मसा**) कृत्स्नम्भस्मेति भस्मसा । अत्र छन्दसो वर्णलोप इति तलोपः (**कुरु**) सम्पादय ।। ८० ।।

प्रमाणार्थ—(**द्वेषते**) यहाँ 'बहुलं छन्दसि' इस पाणिनीय सूत्र से शप् विकरण का लुक् नहीं हुआ । (**भस्मसा**) यहाँ 'छन्दसो वर्णलोपः' इस वार्तिक सूत्र से तकार का लोप हुआ है ।

अन्वयः—हे सभासेनेश ! त्वं यो जनोऽस्मभ्यमरातीयाद्यो नो द्वेषते निन्दाच्च योऽस्मान् धिप्साच्छलेच्च तं सर्वं भस्मसा कुरु ।। ८० ।।

सपदार्थान्वयः—हे सभासेनेश ! **त्वं यः** मनुष्यः **जनः अस्मभ्यं** धार्मिकेभ्यः **अरातीयात्** शत्रुत्वमाचरेत्, **यः नः** अस्मान् **द्वेषते** अप्रीतयति, **निन्दात्** निन्देत् **च**, **यः अस्मान् धिप्सात्**=छलेत् दम्भितुमिच्छेत् **च तं सर्वं भस्मसा** कृत्स्नं भस्मेति भस्मसा **कुरु** सम्पादय ।। ८० ।।

भाषार्थ—हे सभापति और सेनापति ! आप (यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्मभ्यम्) हम धार्मिक जनों से (अरातीयात्) शत्रुता करे, (यः) जो (नः) हमसे (द्वेषते) द्वेष करे, (निन्दात्) हमारी निन्दा करे, और (यः) जो (अस्मान्) हमें (धिप्सात्) छलना चाहे (तम्) उन (सर्वम्) सबको (भस्मसा) भस्मसात् (कुरु) करो ।।

[हे सभासेनेश ! त्वं यो जनो ... अरातीयात् ... निन्दात् ... धिप्सात् ... तं सर्वं भस्मसा कुरु]

भावार्थः—अध्यापक-उपदेशक-राजपुरुषा-

भावार्थ—अध्यापक, उपदेशक और राज-

णामिदं योग्यमस्ति यदध्यापनेन शिक्षयोपदेशेन दण्डेन च विरोधस्य सततं विनाशकरणमिति ॥

पुरुषों को योग्य है कि वे अध्यापन, शिक्षा, उपदेश और दण्ड से विरोध का सदा विनाश करें ॥

भाष्यसार—**१. सुराज्य के निर्माता**—समाज की बुराइयों को तथा अज्ञान को दूर करने वाले तीन व्यक्ति होते हैं—१. अध्यापक। २. उपदेशक। ३. राजा। इन तीनों का यह परम कर्त्तव्य है कि शिक्षा से, उपदेश से तथा दण्ड से समाज में बुराइयों को पैदा न होने देवे। एतदर्थ यह भी आवश्यक है कि अध्यापक तथा उपदेशक पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी तथा सदाचारी हों। इसी प्रकार राजा न्यायकारी, धार्मिक, विद्वान् और बलवान् होना चाहिये।

२. दुर्गुणों के भेद—समाज की बुराइयों के दो प्रमुख भेद हैं— १. द्वेष। यह क्रोध का कारण है। इच्छा या स्वार्थवृत्ति के पूरा न होने से पारस्परिक द्वेष पैदा होता है। इसी प्रकार २. दम्भ=घमण्ड है। यह असत्य का दूसरा रूप है। जिसका उपद्रव छल कपट रूप में होता है। अतः इन दोनों बुराइयों का समूल उन्मूलन करना चाहिये।

नाभानेदिः। **पुरोहितयजमानौ**=स्पष्टम्। निचृदार्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

अथ पुरोहितो यजमानादिभ्यः किं किमिच्छेत्कुर्याच्चेत्याह ॥

अब पुरोहित यजमान आदि से किस किस पदार्थ की इच्छा और कार्य सिद्ध करे, यह उपदेश किया है॥

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम्। सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(**संशितम्**) प्रशंसनीयम् (**मे**) मम यजमानस्य (**ब्रह्म**)वेदविज्ञानम् (**संशितम्**) (**वीर्य्यम्**) पराक्रमः (**बलम्**) (**संशितम्**) (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुलम् (**जिष्णु**) जयशीलम् (**यस्य**) जनस्य (**अहम्**) (**अस्मि**) (**पुरोहितः**) यं यजमानः पुरः=पूर्वं दधाति सः। **पुरोहितः पुर एनं दधति ॥ निरु०** २। १२॥ ८१॥

प्रमाणार्थ—पुरोहितः=पुर एनं दधति। निरुक्त। अर्थात् जो प्रत्येक कार्य में मुख्य हो, अथवा जिसे सब कार्यों में आगे किया जाता है उसे पुरोहित कहते हैं।

अन्वयः--अहं यस्य पुरोहितोऽस्मि तस्य मे मम तस्य च संशितं ब्रह्म मे तस्य च संशितं वीर्य्यं संशितं बलं संशितं जिष्णु क्षत्रं चास्तु॥ ८१ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं यस्य** जनस्य **पुरोहितः** यं यजमानः पुरः=पूर्वं दधाति सः, **अस्मि**, **तस्य मे**=**मम** मम यजमानस्य **तस्य च संशितं** प्रशंसनीयं **ब्रह्म** वेदविज्ञानं, **मे** मम यजमानस्य **तस्य च संशितं** प्रशंसनीयं **वीर्य्यं** पराक्रमः, **संशितं** प्रशंसनीयं बलं, **संशितं** प्रशंसनीयं **जिष्णु** जयशीलं **क्षत्रं** क्षत्रियकुलं **चाऽस्तु**॥ ८१॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं (यस्य) जिस पुरुष का (पुरोहितः) पुरोहित अर्थात् जिसे यजमान यज्ञ-कर्म में आगे रखता है वह (अस्मि) हूँ सो (मम) मेरे यजमान का तथा मेरा (संशितम्) प्रशंसनीय (ब्रह्म) वेदविज्ञान हो; (मे) मेरे यजमान का तथा मेरा (संशितम्) प्रशंसनीय (वीर्यम्) पराक्रम हो, (संशितम्) प्रशंसनीय (बलम्) बल हो; और (संशितम्) प्रशंसनीय (जिष्णु) विजेता (क्षत्रम्) क्षत्रिय कुल हो॥ ११। ८१॥

[अहं यस्य पुरोहितोऽस्मि तस्य मे'''संशितं ब्रह्म'''वीर्यं'''बलं जिष्णु क्षत्रं चाऽस्तु]

भावार्थः—यो यस्य पुरोहितो यजमानश्च भवेत्, तावन्योऽन्यस्य यया विद्यया, योगबलेन, धर्माचरणेन चात्मोन्नतिः, ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियत्वेनारोग्येण च शरीरस्य बलं वर्धेत, तदेव कर्म सततं कुर्याताम् ॥ ११ । ८१ ॥

भावार्थ—जो जिसका पुरोहित और यजमान हो, वे दोनों परस्पर जिस विद्या, योगबल, और धर्माचरण से आत्मा की उन्नति, ब्रह्मचर्य के द्वारा जितेन्द्रियता और आरोग्य से शरीर-बल की वृद्धि हो वही कर्म सदा करें ॥ ११ । ८१ ॥

भा० पदार्थः--ब्रह्म=विद्या, योगबलम्, धर्माचरणम् । बलम्=ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियत्वेनारोग्येण च शरीरस्य बलम् ।

भाष्यसार--**पुरोहित कैसा हो ?**—गृहाश्रमियों के कुलों का पुरोहित बलवान् तथा विद्वान् होना चाहिये । जब तक कुलों के पुरोहित अच्छे नहीं होते तब तक कुलों में वर्त्तमान दुर्गुण दूर नहीं होते । पुरोहित निर्लोभी सत्यवक्ता तथा सदाचारी होना चाहिये । वह ब्रह्म अर्थात् वेद का विद्वान्, विद्वत्समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त होना चाहिये । उसका तेजोबल प्रबल होना चाहिये । वह जिष्णु अर्थात् अपने प्रभाव से दूसरों पर विजय करने वाला हो । आत्मिक बल में भी दूसरों से उत्कृष्ट हो । जितेन्द्रियतादि होने से पुरोहित पूर्ण स्वस्थ हो ।

उपरोक्त गुणों से विशिष्ट पुरोहित यजमान के कुल में भी प्रशंसित वेद ज्ञान, प्रशंसित बल तथा जयशीलता प्राप्त करा सकता है । ●

नाभानेदिः । **सभापतिर्यजमानः=राजा यजमानश्च** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्यजमानः पुरोहितं प्रति कथं वर्त्तेतेत्याह ॥

फिर यजमान पुरोहित के साथ कैसे वर्ते, यह उपदेश किया है ॥

उदे॑षां बा॒हूऽअ॑ति॒रमुद्वर्चो॒ऽअथो॒ बल॑म् । क्षि॒णोमि॒ ब्रह्म॑णा॒मित्रा॒नुन्न॑यामि॒ स्वाँ२ऽअ॒हम् ॥ ८२ ॥

पदार्थ—(उत्) (**एषाम्**) पूर्वोक्तानां चोरादीनां दुष्कर्मकारिणाम् (**बाहू**) बलवीर्य्ये (**अतिरम्**) सन्तरेयमुल्लङ्घेयम् (**उत्**) (**वर्चः**) तेजः (**अथो**) आनन्तर्ये (**बलम्**) सामर्थ्यम् (**क्षिणोमि**) हिनस्मि (**ब्रह्मणा**) वेदेश्वरविज्ञानप्रदानेन (**अमित्रान्**) शत्रून् (**उत्**) (**नयामि**) ऊर्ध्वं बध्नामि (**स्वान्**) स्वकीयान् (**अहम्**) ॥। ८२ ॥

अन्वयः—अहं यजमानः पुरोहितो वा ब्रह्मणैषां बाहू उदतिरम् । वर्चो बलममित्रांश्च क्षिणोम्यथो स्वान् सुहृदो वर्चो बलं चोन्नयामि प्रापयामि ॥ ८२ ॥

सपदार्थान्वयः—अहं = **यजमानः पुरोहितो वा ब्रह्मणा** वेदेश्वरविज्ञानप्रदानेन **एषां** पूर्वोक्तानां चोरादीनां दुष्कर्मकारिणां **बाहू** बलवीर्य्ये **उद्+अतिरं** सन्तरेयमुल्लङ्घेयम् । **वर्चः** तेजः **बलं** सामर्थ्यम् **अमित्रान्** शत्रून् **च** [**उत्**]+**क्षिणोमि** हिनस्मि **अथो** अनन्तरं **स्वान्** स्वकीयान् **सुहृदो वर्चः** तेजः बलं सामर्थ्यं च **उत्** +**नयामि**=**प्रापयामि** ऊर्ध्वं बध्नामि ॥ ८२ ॥

भाषार्थ—(अहम्) मैं यजमान वा पुरोहित (ब्रह्मणा) वेद और ईश्वर-विज्ञान के प्रदान से (एषाम्) इन पूर्वोक्त दुष्ट कर्म करने वाले चोर आदि के (बाहू) बल और वीर्य को (उद्+अतिरम्) क्षीण करता हूँ। और (वर्चः) तेज को (बलम्) सामर्थ्य को और (अमित्रान्) शत्रुओं को ([उत्]+क्षिणोमि) क्षीण करता हूँ । (अथो) और--(स्वान्) अपने मित्रों के (वर्चः) तेज और

(बलम्) सामर्थ्य को (उत्+नयामि) बढ़ाता हूँ ॥

[अहं यजमानः पुरोहितो वा ब्रह्मणैषां बाहू उदतिरं, वर्चो बलममित्रांश्च उत्क्षिणोमि]

भावार्थः—राजादिभिर्यजमानैः, पुरोहितादिभिश्च पापिनां सर्वस्वक्षयः,

भावार्थ—राजा आदि यजमान और पुरोहित लोग पापियों के सर्वस्व का क्षय=विनाश, और—

[अथो स्वान्...वर्चो बल च उन्नयामि]

धर्मात्मनां सर्वस्ववृद्धिश्च सर्वथा कार्या ॥ ८२ ॥

धर्मात्माओं के सर्वस्व की वृद्धि सर्वथा करें ॥

भा० पदार्थः—एषाम्=पापिनाम् । स्वान्=धर्मात्मनः ॥

भाष्यसार—राजधर्म—राजा और पुरोहितादि का यह परम कर्त्तव्य है कि सर्वप्रथम अपनी शक्ति इतनी बढ़ानी चाहिये जिससे दुष्कर्म कर्म करने वाले चौरादि, हिंसक जन्तु सिंहादि तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सके। जिस राजा के राज्य में और पुरोहित के पौरोहित्य में दुष्कर्म बढ़ते हैं और अराजकता बढ़ती है वे जीवनावस्था में भी मृतक तुल्य ही होते हैं। राजा का बल जलसेना, नभसेना तथा स्थलसेना होता है। और पुरोहित का बल ज्ञान तथा तप होता है।

अपने शत्रुओं को वश में करके उनके बल को सर्वथा छिन्न भिन्न कर दे जिससे वे कभी भी फिर सिर न उठा सकें। और मित्रों के तेज एवं सामर्थ्य की उन्नति करने का सर्वथा यत्न करना चाहिये।

नाभानेदिः । **यजमानपुरोहितौ**=स्पष्टम् । उपरिष्टाद्बृहती । मध्यमः ।

अथ मनुष्यैः कथं कथं वर्त्तितव्यमित्युपदिश्यते ॥

अब मनुष्यों को इस संसार में कैसे कैसे वर्त्तना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(**अन्नपते**) अन्नानां पालक (**अन्नस्य**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**देहि**) (**अनमीवस्य**) रोगरहितस्य सुखकरस्य (**शुष्मिणः**) बहु शुष्मं=बलं भवति यस्मात्तस्य (**प्रप्र**) अतिप्रकृष्टतया (**दातारम्**) (**तारिषः**) संतर (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**नः**) अस्माकम् (**धेहि**) (**द्विपदे**) द्वौ पादौ यस्य मनुष्यादेस्तस्मै (**चतुष्पदे**) चत्वारः पादा यस्य गवादेस्तस्मै ॥ ८३ ॥

अन्वयः—हे अन्नपते यजमान पुरोहित वा ! त्वं नोऽनमीवस्य शुष्मिणोऽन्नस्य प्रप्रदेहि। अस्यान्नस्य दातारं तारिषः । नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि ॥ ८३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अन्नपते !**=**यजमान ! पुरोहित ! वा** अन्नानां पालक ! **त्वं नः** अस्मभ्यम् **अनमीवस्य** रोगरहितस्य सुखकरस्य **शुष्मिणः** बहु शुष्मं=बलं भवति यस्मात्तस्य **अन्नस्य प्रप्र+देहि** अतिप्रकृष्टतया देहि । **अस्य अन्नस्य दातारं तारिषः** सन्तर । **नः**=**अस्माकं द्विपदे** द्वौ पादौ यस्य मनुष्यादेस्तस्मै **चतुष्पदे** चत्वारः पादा

भाषार्थ—हे (अन्नपते) अन्नों के पालक यजमान वा पुरोहित आप (नः) हमारे लिए (अनमीवस्य) रोगरहित, सुखकारी, (शुष्मिणः) अति-बलदायक, (अन्नस्य) अन्न को (प्र+प्र+देहि) अत्युत्तम रीति से प्रदान करो। इस (अन्नस्य) अन्न के (दातारम्) दाता को (तारिषः) बढ़ाओ। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पैरों वाले मनुष्य

यस्य गवादेस्तस्मै **ऊर्जं** पराक्रमं धेहि ॥ ८३ ॥

आदि तथा (चतुष्पदे) चार पैरों वाले गौ आदि के लिए (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कीजिए।

[हे अन्नपते !...त्वं नोऽनमीवस्य शुष्मिणोऽन्नस्य प्र प्र देहि]

भावार्थः—मनुष्यैः सदैवारोग्यबलकारकमन्नं स्वैर्भोक्तव्यमन्येभ्यः प्रदातव्यं च।

भावार्थ—मनुष्य सदैव आरोग्य और बलकारक अन्न को स्वयं सेवन करें तथा अन्यों को भी प्रदान करें।

[नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि]

मनुष्याणां पशूनां च सुखबले संवर्धनीये। यत् ईश्वरसृष्टिक्रमाऽनुकूलाऽऽचरणेन सर्वेषां सुखोन्नतिः सदा वर्धेत ॥

मनुष्य और पशुओं के सुख तथा बल को बढ़ावें। जिससे ईश्वर और सृष्टि-क्रम के अनुकूल आचरण से सब के सुख की उन्नति सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥

भा० पदार्थः—अनमीवस्य=आरोग्यकारकस्य। शुष्मिणः=बलकारकस्य। द्विपदे=मनुष्येभ्यः। चतुष्पदे=पशुभ्यः। ऊर्जम्=सुखं बलं च। धेहि=संवर्धय।

भाष्यसार—**भोजन कैसा हो ?**—अन्न ऐसा होना चाहिये जिससे शारीरिक बल की वृद्धि हो और किसी प्रकार के रोग का कारण न बने।

भोजन सदा सात्त्विक होना चाहिये। उससे ऊर्जा शक्ति की प्राप्ति होती है। और बुद्ध्यादि का विकास भली-भाँति होता है। तामसिक मांसादि के भोजन से सदा बचना चाहिये।

अपने आश्रित दो पैर वाले सेवकादि तथा चार पैर वाले गायादि पशुओं को यथायोग्य भोजन देना चाहिये। जिससे उनके बलादि की वृद्धि से सुख की वृद्धि सदा होती रहे।

विनियोग—आहुति से बचे हुए भात में दही, मधु और उसमें घी यथायोग्य किंचित् २ मिला के और सुगन्धयुक्त और भी चावल बनाये हुए थोड़े से मिला के बालक के रुचि प्रमाणे—"ओम् अन्नपते०" इस मन्त्र को पढ़ के थोड़ा-थोड़ा पूर्वोक्त भात बालक के मुख में देवे। **(संस्कारविधि अन्नप्राशन)** ॥

[पूर्वापराध्यायसंगतिमाह—]

अत्र गृहस्थराजपुरोहितसभासेनाधीशप्रजाजनकर्त्तव्यकर्मादिवर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीत्यवगन्तव्यम् ॥

इस अध्याय में गृहस्थ, राजा, पुरोहित, सभापति, सेनापति, प्रजा के कर्त्तव्य कर्म आदि का वर्णन होने से इस अध्याय में कथित अर्थ की पूर्व अध्याय में प्रोक्त अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे एकादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ द्वादशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=**विद्वान्** । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

तत्रादौ विद्वद्गुणानाह ॥

अब बारहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

दृ॒शा॒नो रु॒क्म ऽ उ॒र्व्या व्य॑द्यौद् दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः ।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ ऽ अभवद्वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौरज॑नयत्सु॒रेताः॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(**दृशानः**) दर्शकः (**रुक्मः**) दीप्तिमान् (**उर्व्या**) महत्या पृथिव्या सह (**वि**) (**अद्यौत्**) द्योतयति (**दुर्मर्षम्**) दुःखेन मर्षितुं=सोढुं शीलम् (**आयुः**) अन्नम् । **आयुरित्यन्ननाम ॥ निघं० २ । ७ ॥** (**श्रिये**) शोभायै (**रुचानः**) रोचकः (**अग्निः**) कारणाख्यः पावकः (**अमृतः**) नाशरहितः (**अभवत्**) भवति (**वयोभिः**) यावज्जीवनैः (**यत्**) यम् (**एनम्**) (**द्यौः**) विज्ञानादिभिः प्रकाशमानः (**अजनयत्**) जनयति (**सुरेताः**) शोभनानि रेतांसि=वीर्याणि यस्य सः ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**आयुः=अन्नम्**) निघण्टु २ । ७ में आयु शब्द अन्न नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा दृशानो द्यौरग्निः सूर्य उर्व्या सह सर्वान्मूर्तान् पदार्थान् व्यद्योतत्तथा यः श्रिये रुचानो रुक्मो जनोऽभवद्यश्च सुरेता अमृतो दुर्मर्षमायुरजनयद्वयोभिः सह यमेनं विद्वांसमजनयत्तं यूयं सततं सेवध्वम् ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा दृशानः** दर्शको **द्यौः** विज्ञानादिभिः प्रकाशमानः **अग्निः=सूर्यः** कारणाऽऽख्यः पावकः **उर्व्या** महत्या पृथिव्या **सह सर्वान् मूर्तान् पदार्थान् वि+अद्योत्** द्योतयति, **तथा यः श्रिये** शोभायै **रुचानः** रोचकः

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(**दृशानः**) दर्शक, (**द्यौः**) विज्ञान आदि से प्रकाशमान, (**अग्निः**) सूर्य एवं कारण रूप अग्नि (**उर्व्या**) महान् पृथिवी के साथ सब मूर्त्त पदार्थों को (**वि+अद्यौत्**) विशेष रूप से प्रकाशित करता है; वैसे—

रुक्मः दीप्तिमान् जनोऽ**भवत्** भवति, **यश्च सुरेताः** शोभनानि रेतांसि=वीर्याणि यस्य सः, **अमृतः** नाशरहितः **दुर्मर्षं** दुःखेन मर्षितुं=सोढुं शीलम् **आयुः** अन्नम् **अजनयत्** जनयति, **वयोभिः** यावज्जीवनैः **सह** [**यत्**]=**यम् एनं विद्वांसम् अजनयत्** जनयति, **तं यूयं सततं सेवध्वम्** ॥ १२ । १ ॥

जो (श्रिये) शोभा के लिए (रुचानः) रोचक, (रुक्मः) दीप्तिमान् परमेश्वर (अभवत्) है, और जो (सुरेताः) उत्तम बल वाला, (अमृतः) नाश रहित परमेश्वर (दुर्मर्षम्) दुःख सहने योग्य (आयुः) अन्न को (अजनयत्) उत्पन्न करता है, और—(वयोभिः) जीवन के साथ [यत्] इस विद्वान् को (अजनयत्) उत्पन्न करता है, उसकी तुम सदा सेवा=उपासना करो ॥ १२ । १ ॥

[हे मनुष्याः ! यथा···अग्निः=सूर्य उर्व्या सह सर्वान् मूर्तान् पदार्थान् व्यद्यौत्···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथाऽस्मिन् जगति सूर्यादयः सर्वे पदार्थाः स्वदृष्टान्तैः परमेश्वरं निश्चाययन्ति, तथा मनुष्या अपि भवेयुः ॥ १२ । १ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—इस जगत् में सूर्य आदि सब पदार्थ अपने दृष्टान्तों से परमेश्वर का निश्चय कराते हैं, वैसे—विद्वान् मनुष्य भी परमेश्वर के निश्चायक हों ॥ १२ । १ ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् के गुण**—विद्वान् के लिए योग्य है कि वह ज्ञान और विज्ञान से प्रकाशमान हो । अग्नि के समान तेजस्वी तथा ज्ञान से प्रकाशमान होकर प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त स्थूल पदार्थों का विशेष ज्ञाता हो । स्वयं विद्वान् होकर दूसरों के लिए भी दर्शक होना चाहिये । विद्वान् को परम तपस्वी होना चाहिये । दुःखादि कष्टों को सहन करने का सामर्थ्य हो । वीर्यादि शरीरस्थ धातुओं को अच्छी प्रकार पुष्ट करके शरीर को स्वस्थ रक्खे और अपनी आयु को बढ़ाये । और श्रेष्ठ कार्यों को करते हुए अमरता को प्राप्त करें ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में इवादि पद के लुप्त होने से वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे सूर्यादि पदार्थ परमेश्वर की सत्ता बता रहे हैं, उसी प्रकार विद्वानों को भी परमेश्वर की सत्ता का सभी को निश्चय कराना चाहिये ॥ १२ । १ ॥

कुत्सः । **अग्निः**=**विद्वान्** । भुरिगार्षीत्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के गुणों का फिर उपदेश किया है ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो ऽ अन्तर्विभाति देवा ऽ अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ २ ॥

पदार्थः—(**नक्तोषासा**) नक्तं=रात्रि चोषा=दिनं च ते (**समनसा**) समानं मनो=विज्ञानं ययोस्ते (**विरूपे**) तमःप्रकाशाभ्यां विरुद्धरूपे (**धापयेते**) पाययतः (**शिशुम्**) बालकम् (**एकम्**) असहायम् (**समीची**) ये सम्यगञ्चतः=सर्वान् प्राप्नुतस्ते (**द्यावाक्षामा**) प्रकाशभूमी अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**रुक्मः**) रुचिकरः (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**वि**) (**भाति**) प्रकाशते (**देवाः**) दिव्याः प्राणाः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**धारयन्**) धारयेयुः (**द्रविणोदाः**) ये द्रविणं=बलं ददति ते । द्रविणोदाः कस्माद्धनं द्रविणमुच्यते यदेनदभिद्रवन्ति बलं वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रवन्ति तस्य दाता द्रविणोदाः ॥ निरु० ८ । १ ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**द्यावाक्षामा**) इसमें 'अन्येषामपि दीर्घः' (अ० ६ । ३ । १३६) सूत्र से पूर्वपद को दीर्घ हुआ है।

'द्रविणोदस्' शब्द के महर्षि यास्क ने (**निरु० ८ । १**) में दो अर्थ किये हैं—(१) 'द्रविण' धन को कहते हैं क्योंकि सभी मनुष्य धन-प्राप्ति के लिए भागदौड़ करते हैं। और उसके दाता को द्रविणोदस् कहते हैं। (२) 'द्रविण' बल का नाम है, क्योंकि बल पाकर ही मनुष्य चेष्टादि कर सकते हैं। उस बल के दाता को द्रविणोदस् कहते हैं।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यमग्निं द्रविणोदा देवा धारयन् यो रुक्मः सन्नन्तर्विभाति यः समनसा विरूपे समीची द्यावाक्षामा नक्तोषासा यथैकं शिशुं द्वे मातरौ धापयेते तथा वर्त्तमानं तं विजानन्तु ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः । यम् अग्निं** विद्युतं **द्रविणोदाः** ये द्रविणं=बलं ददति ते, **देवाः** दिव्याः प्राणा **धारयन्** धारयेयुः, **यो रुक्मः** रुचिकरः **सन् अन्तः** आभ्यन्तरे **वि+भाति** प्रकाशते, **यः समनसा** समानं मनः=विज्ञानं ययोः ते, **विरूपे** तमःप्रकाशाभ्यां विरुद्धरूपे **समीची** ये सम्यगञ्चतः=सर्वान् प्राप्नुतस्ते **द्यावाक्षामा** प्रकाशभूमी **नक्तोषासा** नक्तं=रात्रिं चोषा=दिनं च ते, **यथा एकम्** असहायं **शिशुं** बालकं **द्वे मातरौ धापयेते** पाययतः, **तथा वर्त्तमानं** तं **विजानन्तु** ॥ १२ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस (अग्निम्) विद्युत् को (द्रविणोदाः) बल को देने वाले (देवाः) दिव्य प्राण (धारयन्) धारण करते हैं, जो (रुक्मः) रुचिकर होकर (अन्तः) अन्दर (वि+भाति) चमकता है, जो (समनसा) तुल्य विज्ञान वाले, (विरूपे) अन्धकार और प्रकाश से विरुद्ध रूप वाले, (समीची) सबको प्राप्त होने वाले, (द्यावाक्षामा) प्रकाश और अन्धकार रूप (नक्तोषासा) रात्रि और दिन हैं वे जैसे (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को दो माताएँ=जननी और धाई (धापयेते) दूध पिलाती हैं, वैसे वर्ताव वाली उस अग्नि=विद्युत् को जानो ॥ १२ । २ ॥

[नक्तोषासा, यथैकं शिशुं द्वे मातरौ धापयेते]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा जननी धात्री च बालकं पालयतस्तथाऽहोरात्रौ सर्वान् पालयतः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे माता और धाई दोनों बालक को पालती हैं वैसे दिन रात सबको पालते हैं ।

[हे मनुष्याः ! यमग्नि—देवा धारयन् यो रुक्मः सन्नन्तर्विभाति,···तं विजानन्तु]

यश्च विद्युद्रूपेणाऽभिव्याप्तोऽस्ति सोऽग्निः सूर्य्यादेः कारणमस्तीति सर्वे निश्चिन्वन्तु ॥

जो विद्युत् रूप से सर्वत्र व्याप्त है वह अग्नि सूर्य आदि का कारण है, ऐसा सब निश्चय करो ॥

भा० पदार्थः—नक्तोषासा=अहोरात्रौ । धापयेते=पालयतः । अग्निम्=विद्युद्रूपेणाऽभिव्याप्तं सूर्यादेः कारणम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् का कर्त्तव्य**—विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह सभी पदार्थ विद्या को जानकर सर्वत्र विद्यमान विद्युदग्नि को जानने का पूरा प्रयत्न करे। यह विद्युत् धन और शक्ति को देने वाला है, यह स्वयं प्रकाशमान होकर सबके अन्दर प्रकाशमान है। जैसे बालक को माता और धाई दोनों दूध पिलाती हैं, वैसे ही दिन और रात सबको पालते हैं, और विद्युत् प्रकाश और अन्धकार से विरुद्ध रूप वाला है ॥ १२ । २ ॥

श्यावाश्वः । **सविता**=**परमात्मा** । विराड्जगती । निषादः ।।

अथाग्रे परमात्मनः कृत्यमुपदिश्यते ।।

अब अगले मन्त्र में परमेश्वर के कृत्य का उपदेश किया है ।।

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद् भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्योऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ।। ३ ।।

पदार्थः—(**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपाणि**) (**प्रति**) (**मुञ्चते**) (**कविः**) क्रान्तदर्शनः क्रान्तप्रज्ञः सर्वज्ञो वा (**प्र**) (**असावीत्**) उत्पादयति (**भद्रम्**) जननीयं सुखम् (**द्विपदे**) मनुष्याद्याय (**चतुष्पदे**) गवाद्याय (**वि**) (**नाकम्**) सर्वदुःखरहितम् (**अख्यत्**) प्रकाशयति (**सविता**) सकलजगत्प्रसविता जगदीश्वरः सूर्यो वा (**वरेण्यः**) स्वीकर्त्तुमर्हः (**अनु**) (**प्रयाणम्**) प्रकृष्टं प्रापणम् (**उषसः**) प्रभातस्य (**वि**) (**राजति**) प्रकाशते ।। ३ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो वरेण्यः कविः सवितोषसः प्रयाणमनुविराजति विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते । द्विपदे चतुष्पदे नाकं व्यख्यत् भद्रं प्रासावीत्तमीदृशमुत्पादकं सूर्यं परमेश्वरं विजानीत ।। ३ ।।

[सूर्यः]

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यो वरेण्यः** स्वीकर्त्तुमर्हः **कविः** क्रान्तदर्शनः **सविता** सकल जगत्प्रसविता सूर्यः **उषसः** प्रभातस्य **प्रयाणं** प्रकृष्टं प्रापणम् **अनु**+**वि**+**राजति** प्रकाशते, **विश्वा** सर्वाणि **रूपाणि प्रति**+**मुञ्चते**, **द्विपदे** मनुष्याद्याय **चतुष्पदे** गवाद्याय **नाकं** सर्वदुःखरहितं **वि**+**अख्यत्** प्रकाशयति, **भद्रं** जननीयं सुखं **प्र**+**असावीत्** उत्पादयति, **तमीदृशमुत्पादकं सूर्यं विजानीत** ।।

[सूर्य]

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) स्वीकार करने के योग्य, (कविः) क्रान्त-दर्शी, (सविता) सकल जगत् का प्रेरक सूर्य (उषसः) प्रभात की (प्रयाणम्) उत्तम प्राप्ति को (अनु+वि+राजते) प्रकाशित करता है, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (प्रति+मुञ्चते) प्रकट करता है, (द्विपदे) मनुष्य आदि तथा (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (नाकम्) सब दुःखों से रहित स्वर्ग को (वि+अख्यत्) प्रकाशित करता है, (भद्रम्) सुख को (प्र+असावीत्) उत्पन्न करता है, ऐसे उत्पादक सूर्य को तुम जानो ।।

[परमेश्वरः]

हे **मनुष्याः ! यो वरेण्यः** स्वीकर्त्तुमर्हः **कविः** क्रान्तप्रज्ञः सर्वज्ञो वा **सविता** सकलजगत्प्रसविता जगदीश्वरः **उषसः** प्रभातस्य **प्रयाणं** प्रकृष्टं प्रापणम् **अनु**+**वि**+**राजते** प्रकाशते, **विश्वा** सर्वाणि **रूपाणि प्रति**+**मुञ्चते**, **द्विपदे** मनुष्याद्याय **चतुष्पदे** गवाद्याय **नाकं** सर्वदुःखरहितं **वि**+**अख्यत्** प्रकाशयति, **भद्रं** जननीयं सुखं **प्र**+**असावीत्** उत्पादयति **तमीदृशमुत्पादकं परमेश्वरं**

[परमेश्वर]

हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) स्वीकार करने के योग्य, (कविः) क्रान्त प्रज्ञा वाला वा सर्वज्ञ, (सविता) सकल जगत् का उत्पादक जगदीश्वर (उषसः) प्रभात की (प्रयाणम्) उत्तम प्राप्ति को (अनु+वि+राजते) प्रकाशित करता है, (विश्वा) सब (रूपाणि) रूपों को (प्रति+मुञ्चते) रचता है, (द्विपदे) मनुष्य आदि (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (नाकम्) सब दुःखों से रहित स्वर्ग को (वि+

विजानीत ॥ १२ । ३ ॥

अख्यत्) प्रकाशित करता है, (भद्रम्) सुख को (प्र+असावीत्) उत्पन्न करता है, ऐसे उत्पादक परमेश्वर को तुम जानो ॥ १२ । ३ ॥

[हे मनुष्या ! यो...सविता...विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते, द्विपदे चतुष्पदे नाकं व्यख्यत्...तं...परमेश्वरं विजानीत]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः । येन जगदीश्वरेण सकलरूपप्रकाशकः, प्राणिनां सुखहेतुः, प्रकाशमानः सूर्यो रचितस्तस्यैव भक्तिं सर्वे मनुष्याः कुर्वन्त्विति ॥ १२ । ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है ॥ जिस परमात्मा ने सकलरूपों को प्रकाशित करने हारे प्राणियों के सुख के हेतु प्रकाशमान सूर्य को बनाया उसी की भक्ति सब मनुष्य करें ॥ १२ । १३ ॥

भा० पदार्थः—प्रतिमुञ्चते=प्रकाशयति । नाकम्=प्राणिनां सुखहेतुः ।

भाष्यसार—**१. सूर्य के गुण**—सूर्य सब प्राणियों को अपने अपने कर्मों में प्रेरणा करने वाला, अन्धकार का नाश करने से सब वस्तुओं का दर्शक है । ओषधि आदियों को पकाने तथा रोगोत्पादक कीटाणुओं का नाश करने से सब से वरणीय है । संसार में दो पैर वाले मनुष्यादि तथा चार पैर वाले गायादि पशुओं को धान्यादि उत्पन्न करके सुख देने वाला है । क्योंकि सूर्य के न होने से अन्नादि की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

२. परमात्मा के गुण—परमात्मा सब जगत् का उत्पादक है, क्यों कि वह सर्वशक्तिमान् है । वेद के शाश्वत ज्ञान देने वाला होने से ईश्वर कवि है, और उन्नति की ओर बढ़ने वालों के लिए सदा सन्मार्ग दर्शक है । दुःखरहित मोक्ष सुख का प्रकाशक तथा प्रदाता है । मोक्ष सुख ही सच्चा सुख है अतः इसे भद्र कहते हैं ।

३. इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । अलङ्कार यह है कि सविता कवि, वरेण्यादि शब्द सूर्य तथा परमात्मा दोनों के वाचक होने से श्लेषालङ्कार है १२ । १३ ॥

श्यावाश्वः । **गरुत्मान्**=विद्वान् ॥ धृतिः । ऋषभः ॥

पुनर्विद्वद्गुणा उपदिश्यन्ते ॥

विद्वानों के गुणों का फिर उपदेश किया है ॥

सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ । स्तोमऽआत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम । साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः । सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि=लक्षणानि यस्य सः (**असि**) (**गरुत्मान्**) गुर्वात्मा (**त्रिवृत्**) त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि वर्त्तन्ते यस्मिन् तत् (**ते**) तव (**शिरः**) शृणाति=हिनस्ति दुःखानि येन तत् (**गायत्रम्**) गायत्र्या विहितं विज्ञानम् (**चक्षुः**) नेत्रमिव (**बृहद्रथन्तरे**) बृहद्भीरथैस्तरन्ति दुःखानि याभ्यां सामभ्यां ते (**पक्षौ**) पार्श्वाविव (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः ऋग्वेदः (**आत्मा**) स्वरूपम् (**छन्दांसि**) उष्णिगादीनि (**अङ्गानि**) श्रोत्रादीनि (**यजूंषि**) यजुश्श्रुतयः (**नाम**) आख्या (**साम**) तृतीयो वेदः (**ते**) तव (**तनूः**) शरीरम् (**वामदेव्यम्**) वामदेवेन दृष्टं विज्ञातं विज्ञापितं वा (**यज्ञायज्ञियम्**) यज्ञाः=संगन्तव्या

व्यवहारा अयज्ञास्त्यक्तव्याश्च तान् यदर्हति तत् (**पुच्छम्**) पुच्छमिवान्त्योऽवयवः (**धिष्ण्याः**) दिधिषति=शब्दयन्ति यैस्ते धिषणाः खुरोपरिभागास्तेषु साधवः (**शफाः**) खुराः (**सुपर्णः**) शोभनपतनशीलः (**असि**) अस्ति (**गरुत्मान्**) गरुतः=शब्दा विद्यन्ते यस्य सः (**दिवम्**) दिव्यं विज्ञानम् (**गच्छ**) प्राप्नुहि (**स्वः**) सुखम् (**पत**) गृहाण ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यतस्ते तव त्रिवृत् शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दांस्यङ्गानि यजूंषि नाम यज्ञायज्ञियं वामदेव्यं साम ते तनूश्चास्ति तस्मात् त्वं गरुत्मान् सुपर्णोऽस्यस्ति स इव त्वं दिवं गच्छ स्वः पत ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्! यतस्ते**=**तव त्रिवृत्** त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि वर्त्तन्ते यस्मिन् तत् **शिरः** शृणाति=हिनस्ति दुःखानि येन तद्, **गायत्रं** गायत्र्या विहितं विज्ञानं **चक्षुः** नेत्रमिव, **बृहद्रथन्तरे** बृहद्भी रथैस्तरन्ति दुःखानि याभ्यां सामभ्यां ते **पक्षौ** पार्श्वाविव, **स्तोमः** स्तोतुमर्ह ऋग्वेदः **आत्मा** स्वरूपं **छन्दांसि** उष्णिगादीनि **अङ्गानि** श्रोत्रादीनि, **यजूंषि** यजुःश्रुतयः **नाम** आख्या, **यज्ञायज्ञियं** यज्ञाः=सङ्गन्तव्या व्यवहारा अयज्ञास्त्यक्तव्याश्च तान् यदर्हति तद् **वामदेव्यं** वामदेवेन दृष्टं=विज्ञातं विज्ञापितं वा **साम** तृतीयो वेदः **ते** तव [**पुच्छम्**] पुच्छमिवाऽन्त्योऽवयवः, [**धिष्ण्याः**] दिधिषन्ति=शब्दयन्ति यैस्ते धिषणाः=खुरोपरिभागास्तेषु साधवः [**शफाः**] खुराः **तनूः** शरीरं **चाऽस्ति; तस्मात् त्वं गरुत्मान्** गरुतः=शब्दा विद्यन्ते यस्य सः **सुपर्णः** शोभनपतनशीलः **असि**=**अस्ति; स इव त्वं दिवं** दिव्यं विज्ञानं **गच्छ** प्राप्नुहि; **स्वः** सुखं **पत** गृहाण ॥ १२ । ४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! क्योंकि (ते) आप का (त्रिवृत्) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से युक्त (शिरः) दुःखों का हनन करने वाला शिर है, (गायत्रम्) गायत्री-छन्द से विहित विज्ञान (चक्षुः) नेत्र के समान है, (बृहद्रथन्तरे) बड़े रथों से दुःखों को तरने वाले दो साम (पक्षौ) पंखों के समान हैं, (स्तोमः) स्तुति के योग्य ऋग्वेद (आत्मा) स्वरूप है, (छन्दांसि) उष्णिक् आदि छन्द (अङ्गानि) श्रोत्र आदि अङ्ग हैं, (यजूंषि) यजुः रूप श्रुतियाँ (नाम) नाम है, (यज्ञायज्ञियम्) ग्रहण और त्याग करने योग्य व्यवहारों का प्रकाशक (वामदेव्यम्) वामदेव के द्वारा विज्ञात वा उपदिष्ट (साम) तीसरा सामवेद (ते) आप का [पुच्छम्] पुच्छ के समान अन्तिम अवयव है, [धिष्ण्याः] शब्द करने में श्रेष्ठ [खुराः] खुर हैं और (तनूः) शरीर है, अतः (गरुत्मान्) जो मधुर शब्द करने वाले (सुपर्णः) सुन्दर उड़ने वाला पक्षी (असि) है उसके समान आप (दिवम्) दिव्य विज्ञान को (गच्छ) प्राप्त करो, और (स्वः) सुख को (पत) ग्रहण करो ॥ १२ । ४ ॥

[हे विद्वन् ! ...... त्वं सुपर्णोऽसि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा सुन्दर शाखा-पत्र-पुष्प-फल-मूला वृक्षाः शोभन्ते तथा वेदादिशास्त्राऽध्येतारोऽध्यापकाः सुरोचन्ते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे सुन्दर शाखा, पत्ते, पुष्प, फल, मूल वाले वृक्ष शोभा देते हैं वैसे—वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने वाले बड़े अच्छे लगते हैं ।

[पुच्छं धिष्ण्याः, सुपर्णोऽसि, स इव दिवं गच्छ]

यथा पशवः पुच्छाद्यवयवैः स्वकार्याणि साध्नुवन्ति, यथा च पक्षी पक्षाभ्यामाकाशन्मार्गेण गत्वाऽऽगत्य च मोदते तथा—

जैसे—पशु पूँछ आदि अवयवों से अपने कार्यों को सिद्ध करते हैं, और जैसे पक्षी पंखों से आकाश मार्ग से जाकर और आकर प्रसन्न होता है वैसे—

[स्वः पत]

मनुष्या विद्या-सुशिक्षाः प्राप्य पुरुषार्थेन सुखान्याप्नुवन्तु ॥ १२ । ४ ॥

मनुष्य विद्या और सुशिक्षाओं को प्राप्त करके पुरुषार्थ से सुखों को प्राप्त करें ॥ १२ । ४ ॥

भा० पदार्थः—सुपर्णः=सुन्दर शाखा-पत्र-पुष्प-फल-मूलो वृक्षः, वेदादिशास्त्राध्येताऽध्यापकः, पक्षी च ॥

भाष्यसार—**विद्वान् का कर्त्तव्य**—ज्ञान, कर्म और उपासना तीनों प्रकार का ज्ञान विद्वान् को होना चाहिये। वह स्तुति के योग्य ऋचाओं वाले ऋग्वेद को, क्या कर्त्तव्य है और क्या अकर्तव्य है इसका प्रकाश करने वाले यजुः रूप श्रुतियों को, और वामदेव्य से उपदिष्ट सामरूप श्रुतियों को अवश्य जाने। और आकाश में उड़ने वाले पक्षी आदि की तरह विविध विमान आदि बनाने की विद्या को जानकर संसार को सुखी करे।

विनियोग—पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धर के यह मन्त्र बोले—"सुपर्णो···स्वः पत" (**संस्कार० पुंसवन०**) ॥ १२ । ४ ॥

श्यावाश्वः । **विष्णुः**=विद्वान् । भुरिगुत्कृतिः । षड्जः ॥

पुना राजधर्ममाह ॥

फिर राजधर्म का उपदेश किया है ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द ऽ आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द ऽ आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द ऽ आरोह दिवमनु विक्रमस्व
विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽऽनुष्टुभं छन्द ऽ आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**विष्णोः**) व्यापकस्य जगदीश्वरस्य (**क्रमः**) व्यवहारः (**असि**) (**सपत्नहा**) यः सपत्नानरीन् हन्ति सः (**गायत्रम्**) गायत्रीनिष्पन्नमर्थम् (**छन्दः**) स्वच्छम् (**आ**) (**रोह**) आरूढो भव (**पृथिवीम्**) पृथिव्यादिकम् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) व्यवहर (**विष्णोः**) व्यापकस्य कारणस्य (**क्रमः**) अवस्थान्तरम् (**असि**) (**अभिमातिहा**) योऽभिमातीनभिमानयुक्तान् हन्ति (**त्रैष्टुभम्**) त्रिभिः सुखैः संबद्धम् (**छन्दः**) बलप्रदम् (**आ**) (**रोह**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) (**विष्णोः**) व्याप्तुं शीलस्य विद्युद्रूपाग्नेः (**क्रमः**) (**असि**) (**अरातीयतः**) विद्यादिदानं कर्त्तुमनिच्छतः (**हन्ता**) नाशकः (**जागतम्**) जगज्जानाति येन तत् (**छन्दः**) सृष्टिविद्याबलकरम् (**आ**) (**रोह**) **दिवम्**) सूर्याद्यग्निम् (**अनु**) (**वि**)(**क्रमस्व**) (**विष्णोः**) हिरण्यगर्भस्य वायोः (**क्रमः**) (**असि**) (**शत्रूयतः**) आत्मनः शत्रुमाचरतः (**हन्ता**) (**आनुष्टुभम्**) अनुकूलतया स्तोभते=सुखं बध्नाति येन तत् (**छन्दः**) आनन्दकरम् (**आ**) (**रोह**) (**दिशः**) पूर्वादीन् (**अनु**) (**वि**) (**क्रमस्व**) प्रयतस्व ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यतस्त्वं विष्णोः क्रमः सपत्नहाऽसि। तस्माद् गायत्रं छन्द आरोह। पृथिवीमनुविक्रमस्व। यतस्त्वं विष्णोः क्रमोऽभिमातिहासि तस्मात्त्वं त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व यतस्त्वं विष्णोः क्रमोऽरातीयहन्ताऽसि तस्माज्जागतं छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व यस्त्वं विष्णोः क्रमः शत्रूयतो हन्ताऽसि स त्वमानुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनुविक्रमस्व ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यतस्त्वं **विष्णोः** व्यापकस्य जगदीश्वरस्य **क्रमः** व्यवहारः **सपत्नहा** यः सपत्नानरीन् हन्ति सः, **असि तस्माद् गायत्रं** गायत्रीनिष्पन्नमर्थं **छन्दः** स्वच्छम् **आ+रोह** आरूढो भव, **पृथिवीं** पृथिव्यादिकम् **अनु+वि+क्रमस्व** व्यवहर ।

यतस्त्वं विष्णोः व्यापकस्य कारणस्य **क्रमः** अवस्थान्तरम् **अभिमातिहा** योऽभिमातीनभिमानयुक्तान् हन्ति, **असि तस्मात्त्वं त्रैष्टुभं** त्रिभिः सुखैः सम्बद्धं **छन्दः** बलप्रदम् **आ+रोह** आरूढो भव **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **अनु वि+क्रमस्व** व्यवहर ।

यतस्त्वं विष्णोः व्याप्तुं शीलस्य विद्युद्रूपाऽग्नेः **क्रमः अरातीयतः** विद्यादिदानं कर्त्तुमनिच्छतः **हन्ता** नाशकः **असि, तस्माज् जागतं** जगज्जानाति येन तत्, **छन्दः** सृष्टिविद्याबलकरम् **आ+रोह** आरूढो भव, **दिवं** सूर्याद्यग्निम् **अनु+वि+क्रमस्व** व्यवहर ।

यतस्त्वं विष्णोः हिरण्यगर्भस्य वायोः **क्रमः शत्रूयतः** आत्मनः शत्रुमाचरतः **हन्ता** नाशकः **असि, स त्वम् आनुष्टुभम्** अ नुकूलतया स्तोभते=सुखं बध्नाति येन तत्, **छन्दः** आनन्दकरम् **आ+रोह** आरूढो भव, **दिशः** पूर्वादीन् **अनु+वि+क्रमस्व** प्रयतस्व ।। १२ । ५ ।।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! क्योंकि आप (विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर के (क्रमः) व्यवहार हो, (सपत्नहा) शत्रुओं के घातक (असि) हो, अतः (गायत्रं) गायत्री-विहित (छन्दः) स्वच्छ वेदार्थ पर (आ+रोह) आरूढ रहो, (पृथिवीम्) भूगर्भविद्या को (अनु+वि+क्रमस्व) व्यवहार में लाओ ।

क्योंकि आप (विष्णोः) व्यापक कारण=प्रकृति के (क्रम) कार्य रूप हो, (अभिमातिहा) अभिमानियों का हनन करने वाले (असि) हो, अतः आप (त्रैष्टुभम्) तीन सुखों से सम्बद्ध (छन्दः) बलदायक वेदार्थ पर (आ+रोह) आरूढ़ रहो, (अन्तरिक्षम्) खगोल विद्या को (अनु+वि+क्रमस्व) व्यवहार में लाओ ।

क्योंकि आप (विष्णोः) व्याप्तिशील विद्युत् रूप अग्नि के (क्रमः) व्यवहार हो, (अरातीयतः) विद्यादि दान करने के अनिच्छुक पुरुष के (हन्ता) नाशक (असि) हो, अतः (जागतम्) जगत्-ज्ञान के साधन (छन्दः) सृष्टि विद्या के बलकारी वेदार्थ पर (आ+रोह) आरूढ़ रहो, (दिवम्) सूर्य आदि अग्नि विद्या को (अनु+वि+क्रमस्व) व्यवहार में लाओ ।

जो आप (विष्णोः) हिरण्यगर्भ वायु के (क्रमः) व्यवहार हो, (शत्रूयतः) अपने से शत्रुता करने वाले के (हन्ता) नाशक (असि) हो, सो आप (आनुष्टुभम्) अनुकूलता से सुख को बांधने के साधन (छन्दः) आनन्दकारी (छन्दः) वेदार्थ पर (आ+रोह) आरूढ़ रहो, (दिशः) पूर्व आदि दिशा को (अनु+वि+क्रमस्व) अनुकूल बनाने का प्रयत्न करो ।। १२ । ५ ।।

[हे विद्वन् ! त्वं सपत्नहा ··· पृथिवीं त्वं ··· अभिमातहा ··· अन्तरिक्षं त्वम् ··· अरातीयतो हन्ता ··· दिवं ··· त्वं ··· शत्रूयतो हन्ता ··· दिशोऽनुविक्रमस्व]

भावार्थः—मनुष्यैर्वेदविद्यया भूगर्भादिविद्या निश्चित्य, पराक्रमेणोन्नीय, रोगाः शत्रवश्च विहन्तव्याः ।। १२ । ५ ।।

भावार्थ—मनुष्य वेद विद्या से भूगर्भ आदि विद्याओं को निश्चित करके, उन्हें पराक्रम से बढ़ाकर रोग और शत्रुओं का हनन करें ।।

भा० पदार्थः—पृथिवीम्=भूगर्भविद्याम् । अन्तरिक्षम्=आकाशविद्याम् । दिवम्=अग्नि-विद्याम् ।

भाष्यसार—**राजा के कर्त्तव्य**—(१) राजा सर्वव्यापक ईश्वर का प्रतिनिधि है अतः वह शत्रुओं का विनाश सदा करे और वेदादि सत्यशास्त्रों का ज्ञाता होकर अथवा वेदवेत्ताओं का परिपोषक होकर भूगर्भ विद्या को खोजकर सदा व्यवहार में लाये। (२) राजा प्रकृति-विज्ञान को कार्यरूप में लाने वाला होता है अतः प्रकृति-नियमों का अनुसन्धान करा कर खगोलविद्या को व्यवहार में लावे। और सभी प्रकार के सुखों को प्राप्त होवे। (३) राजा सर्वत्र विद्यमान विद्युत् का विज्ञान कराके व्यवहार में लाये। सूर्यादि विद्याओं का ज्ञान भी करे। और जो भी विद्या के जानने में बाधक कारण हों उनको सदा नष्ट करे। (४) राजा को वायु-विज्ञान का भी प्रसार तथा वृद्धि करनी चाहिये। इन विज्ञानों की सहायता से पूर्वादि दिशाओं को सदा अपने अनुकूल बनाता रहे॥ १२। ५॥

वत्सप्रीः। **अग्निः**=**सभेशः**। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है॥

अक्र॑न्दद॒ग्नि स्त॒नय॑न्निव॒ द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद्वी॒रुध॑: सम॒ञ्जन्।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो वि हीमि॒द्धोऽ अख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः॥ ६॥

पदार्थः—(**अक्रन्दत्**) प्राप्नोति (**अग्निः**) विद्युत् (**स्तनयन्निव**) यथा दिव्यं शब्दं कुर्वन् (**द्यौः**) सूर्य्यप्रकाशः (**क्षामा**) क्षामा=पृथिवी। **क्षामेति पृथिवीनाम निघं० ॥ १। १॥ अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः** (**रेरिहत्**) भृशं फलानि ददाति (**वीरुधः**) वृक्षान् (**समञ्जन्**) सम्यक् प्रकाशयन् (**सद्यः**) समानेऽह्नि (**जज्ञानः**) प्रादुर्भूतः सन् (**वि**) (**हि**) खलु (**ईम्**) सर्वतः (**इद्धः**) प्रदीप्तः (**अख्यत्**) प्रकाशयति (**आ**) (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**भानुना**) स्वदीप्त्या (**भाति**) प्रकाशते (**अन्तः**) मध्ये वर्त्तमानः सन्॥ ६॥

प्रमाणार्थ—'क्षामा' यह शब्द निघण्टु में (१। १) पृथिवीनामों में पढ़ा है। और इसमें 'अन्येषामपि' इस सूत्र से उपधा को दीर्घ हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः! यः सभेशः सद्यो जज्ञानो द्यौरग्निः स्तनयन्निवारीनाक्रन्दद्यथा क्षामा वीरुधस्तथा प्रजाभ्यः सुखानि रेरिहत् यथा सवितेद्धः समञ्जन् रोदसी व्यख्यद्भानुनाऽन्तराभाति तथा यः शुभगुणकर्मस्वभावैः प्रकाशते तं हि राजकर्मसु प्रयुङ्ध्वम्॥ ६॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यः सभेशः सद्यः** समानेऽहनि **जज्ञानः** प्रादुर्भूतः सन् **द्यौः** सूर्य्यप्रकाशः **अग्निः** विद्युत् **स्तनयन्निव** यथा दिव्यं शब्दं कुर्वन् **अरीन् आ**+**अक्रन्दत्** प्राप्नोति, **यथा क्षामा** क्षामा=पृथिवी **वीरुधः** वृक्षान् **तथा प्रजाभ्यः सुखानि रेरिहत्** भृशं फलानि ददाति।

यथा सविता इद्धः प्रदीप्तः **समञ्जन्** सम्यक् प्रकाशयन् **रोदसी** द्यावापृथिव्यौ [**ईम्**]=सर्वतः **वि**+**अख्यत्** प्रकाशयति, **भानुना** स्वदीप्त्या **अन्तः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो सभापति (सद्यः) उसी दिन=शीघ्र (जज्ञानः) प्रसिद्ध (द्यौः) सूर्य-प्रकाश, रूप (अग्निः) विद्युत् (स्तनयन्निव) जैसे दिव्य शब्द करती हुई शत्रुओं को (आ+अक्रन्दत्) प्राप्त होती है, जैसे (क्षामा) पृथिवी (वीरुधः) वृक्षों को प्राप्त होती है वैसे प्रजा को सुखदायक (रेरिहत्) फल प्रदान करता है।

जैसे सूर्य (इद्धः) प्रदीप्त होकर (समञ्जन्) प्रकाश करता हुआ (रोदसी) द्युलोक, और पृथिवी को [ईम्] सब ओर से (वि+अख्यत्) प्रकाशित

मध्ये वर्त्तमानः सन्, आ+भाति प्रकाशते **तथा यः शुभगुणकर्मस्वभावैः प्रकाशते तं हि खलु राजकर्मसु प्रयुङ्ध्वम्** ॥ १२ । ६ ॥

करता है, (भानुना) अपनी दीप्ति से (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान होकर (आ+भाति) सब ओर प्रकाश करता है, वैसे जो सभापति शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशित है उसे (हि) ही राजकार्यों में प्रयुक्त करो ॥ १२ । ६ ॥

[हे मनुष्या !···यथा सविता रोदसी···व्यख्यत्]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ हे मनुष्याः ! यथा सूर्यः सर्वलोकमध्यस्थः सर्वान् प्रकाश्याकर्षति,

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे-सूर्य सब लोकों के मध्य में स्थित होकर सबका प्रकाशन और आकर्षण करता है,

[क्षामा···रेरिहत्]

यथा पृथिवी बहुफलदा वर्तते, तथाभूतः पुरुषो राज्यकार्येषु सम्यगुपयोक्तव्यः ॥ १२ । ६ ॥

जैसे-पृथिवी बहुत फल प्रदान करने वाली है, ऐसे गुणों वाले पुरुष का राज्य-कार्यों में ठीक उपयोग करें ॥ १२ । ६ ॥

भा० पदार्थः—रेरिहत्=बहुफलप्रदा वर्तते ।

भाष्यसार—**१. राज-धर्म**—जैसे विद्युत् गर्जना करके मेघों को छिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही राजा सदा शत्रुओं का विनाश करने वाला हो। और जैसे पृथिवी सभी प्राणियों के हितार्थ ओषधियों और विविध फल वाले वृक्षों को पैदा करती है वैसे ही राजा को योग्य है कि वह अपने राज्य में तरह तरह के उद्योगों की स्थापना कराये और प्रजा के सुख की सदा वृद्धि करे। और जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशमान होकर सबको प्रकाशित करता है वैसे ही स्वयं शुभ-गुण-कर्म-स्वभाव से युक्त होकर सदा प्रसिद्धि को प्राप्त करे। क्योंकि अयोग्य राजा के होने से कभी भी सुख की वृद्धि नहीं हो सकती।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में 'इव' पद के प्रयोग होने से उपमा अलङ्कार है और इवादि पदों का लोप होने से भी वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है जैसे सूर्य सब का प्रकाशक है और पृथिवी बहुविध फलों को देने वाली है वैसे ही राजा भी होना चाहिये ॥ १२ । ६ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=विद्वान्** । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विद्वद्गुणानुपदिशति ॥

फिर विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् ! (**अभ्यावर्त्तिन्**) आभिमुख्येन वर्त्तितुं शीलमस्य तत्सम्बुद्धौ (**अभि**) (**मा**) माम् (**नि**) नितराम् (**वर्त्तस्व**) (**आयुषा**) चिरञ्जीवनेन (**वर्चसा**) अन्नाध्ययनादिना (**प्रजया**) सन्तानेन (**धनेन**) (**सन्या**) सर्वासां विद्यानां संविभागकर्त्र्या (**मेधया**) प्रज्ञया (**रय्या**) विद्याश्रिया (**पोषेण**) पुष्ट्या ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे अभ्यावर्तिन्नग्ने पुरुषार्थिन् विद्वन्! त्वमायुषा वर्चसा प्रजया धनेन सन्या मेधया रय्या पोषेण च सहाभिनिवर्त्तस्व मां चैतैः संयोजय ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अभ्यावर्त्तिन् आभिमुख्येन वर्त्तितुं शीलमस्य तत्सम्बुद्धौ! **अग्ने**=पुरुषार्थिन् विद्वन्! **त्वम् आयुषा** चिरञ्जीवेन **वर्चसा** अन्नाऽध्ययनादिना **प्रजया** सन्तानेन **धनेन सन्या** सर्वासां विद्यानां संविभागकर्त्र्या **मेधया** प्रज्ञया **रय्या** विद्याश्रिया **पोषेण** पुष्ट्या **च सह अभि+नि+वर्त्तस्व** नितरां वर्त्तस्व, **[मा]=मां चैतैः संयोजय** ॥ १२ । ७ ॥

भाषार्थ—हे (अभ्यावर्त्तिन्) सम्मुख अच्छा वर्त्ताव करने वाले, (अग्ने) पुरुषार्थी विद्वान्! आप (आयुषा) चिरायु से, (वर्चसा) अन्न, अध्ययन आदि से, (प्रजया) सन्तान से, (धनेन) धन से, (सन्या) सब विद्याओं का संविभाग करने वाली (मेधया) मेधा-बुद्धि से, (रय्या) विद्या की शोभा और (पोषेण) पुष्टि से युक्त होकर (अभि+नि+वर्तस्व) सर्वथा अच्छा वर्त्ताव करो, और [मा] मुझे इनसे संयुक्त करो ॥ १२ । ७ ॥

[हे···अग्ने···=विद्वन्! त्वं···धनेन···मेधया रय्या···च सह अभिनिवर्त्तस्व]

भावार्थः—मनुष्यैर्भूगर्भादिविद्यया विनैश्वर्यं प्राप्तुं नैव शक्येत। न प्रज्ञया विना विद्या भवितुं शक्या ॥ १२ । ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य भू-गर्भ आदि विद्या के विना ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकते। मेधा बुद्धि के विना विद्या प्राप्त नहीं हो सकती ॥ १२ । ७ ॥

भा० पदार्थः—वर्चसा=भूगर्भादिविद्यया। धनेन=ऐश्वर्येण।

भाष्यसार—**विद्वान् के गुण**—भूगर्भविद्यादि सभी विद्याओं का ज्ञाता, परम पुरुषार्थी विद्वान् को योग्य है कि वह चिरायु होकर विद्या के तेज को प्राप्त करे। धन धान्य से सम्पन्न होकर श्रेष्ठ सन्तान वाला हो। सभी विद्याओं को ग्रहण करने वाली मेधा बुद्धि से युक्त होकर विद्या की शोभा को सदा बढ़ाया करे १२ । ७ ॥

वत्सप्रीः। **अग्निः=विद्वान्**। आर्षीत्रिष्टुप्। निषादः ॥

पुनर्विद्याभ्यासमाह ॥

फिर विद्याभ्यास करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ऽअङ्गिरः श॒तं ते॑ सन्त्वा॒वृतः॑ स॒हस्रं॑ त॒ऽउपा॒वृतः॑।
अधा॒ पोष॑स्य॒ पोषे॑ण॒ पुन॑र्नो न॒ष्टमाकृ॑धि॒ पुन॑र्नो र॒यिमाकृ॑धि ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) पदार्थविद्यावित् (**अङ्गिरः**) विद्यारसयुक्त (**शतम्**) (**ते**) तव (**सन्तु**) (**आवृतः**) आवृत्तिरूपाः क्रियाः (**सहस्रम्**) (**ते**) (**उपावृतः**) ये भोगा उपावर्त्तन्ते (**अध**) अथ निपातस्य चेति दीर्घः (**पोषस्य**) पोषकस्य जनस्य (**पोषेण**) पालनेन (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**नष्टम्**) अदृष्टं विज्ञानम् (**आ**) समन्तात् (**कृधि**) कुरु (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**रयिम्**) प्रशस्तां श्रियम् (**आ**) (**कृधि**) कुरु ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—'अधा' इस पद में 'निपातस्य च' इस पाणिनीय सूत्र से दीर्घ हुआ है।

अन्वयः—हे अग्नेऽङ्गिरो विद्वन्! यस्य पुरुषार्थिनस्ते तवाऽग्नेरिव शतमावृतः सहस्रं ते तवोपावृतः सन्तु। अध त्वमेतैः पोषस्य पोषेण नष्टमपि नः पुनराकृधि रयिं पुनराकृधि ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** पदार्थ-विद्यावित् ! **अङ्गिरः**=**विद्वन्** विद्यारसयुक्त ! **यस्य पुरुषार्थिनः ते**=**तव अग्नेरिव शतम् आवृतः** आवृत्ति-रूपाः क्रियाः **सहस्रं ते**=**तव उपावृतः** ये भोगा उपावर्त्तन्ते **सन्तु** ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) पदार्थ-विद्या के वेत्ता (अङ्गिरः) विद्या के रसिक विद्वान् ! (ते) तुझ पुरुषार्थी की अग्नि के समान (शतम्) सैंकड़ों (आवृत्तः) विद्या की आवृत्ति रूप क्रियाएँ तथा (सहस्रम्) हजारों (ते) आपकी (उपावृतः) भोगों की उपावृत्तियाँ (सन्तु) होवें।

अध अथ **त्वमेतैः पोषस्य** पोषकस्य जनस्य **पोषेण** पालनेन **नष्टम्** अदृष्टं विज्ञानम् **अपि नः** अस्मभ्यं **पुनः आ**+**कृधि** समन्तात् कुरु, **रयिं** प्रशस्तां श्रियं [नः] अस्मभ्यं **पुनः आ**+**कृधि** कुरु ॥ १२ । ८ ॥

(अध) और-आप इनसे (पोषस्य) पोषक मनुष्य के (पोषेण) पालन से (नष्टम्) परोक्ष विज्ञान को भी (नः) हमारे लिए (पुनः) फिर (आ+कृधि) प्रत्यक्ष कीजिये, (रयिम्) प्रशस्त ऐश्वर्य को [नः] हमारे लिए (पुनः) फिर (आ+कृधि) उत्पन्न कोजिये ॥ १२ । ८ ॥

[हे अग्नेऽङ्गिरो विद्वन् ··· ते ··· शतमावृतः सहस्रं ते ··· उपावृतः सन्तु]

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्यासु शतश आवृत्तीः कृत्वा शिल्पविद्यासु सहस्रमुपावृतींश्च,

भावार्थ—मनुष्य विद्याओं में सैंकड़ों आवृत्तियाँ करके और शिल्प विद्याओं में हजार उपावृत्तियाँ भोगों की प्राप्ति करके—

[अधा ··· नष्टमपि पुनराकृधि, रयिं···पुनराकृधि]

गुप्तागुप्ता विद्याः प्रकाश्य, सर्वेषां श्रीसुखं जननीयम् ॥ १२ । ८ ॥

गुप्त और अगुप्त विद्याओं को प्रकाशित करके सबके लिये ऐश्वर्यसुख को उत्पन्न करें ॥ १२ । ८ ॥

भा० पदार्थः—शतम्=शतशः । नष्टम=गुप्तागुप्ता विद्याः । रयिम्=श्रीसुखम् ॥

भाष्यसार—**विद्वद्-धर्म**—विद्या के रसिक विद्वान् को योग्य है कि वह सभी प्रकार की पदार्थ विद्याओं का ज्ञाता हो । और गुप्तागुप्त विद्याओं को बार-बार अभ्यास करके सर्वजनहिताय सदा प्रकाशित करता रहे । जिससे सभी प्रकार का ऐश्वर्य बढ़ने से सुख की वृद्धि होती रहे ॥ १२ । ८ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनरध्यापककृत्यमाह ॥

अध्यापक के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्न ऽ इ॒षायु॑षा । पुन॑र्नः पा॒ह्यꣳह॑सः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(पुनः) (ऊर्जा) पराक्रमयुक्तानि कर्माणि (नि) (वर्त्तस्व) (पुनः) (अग्ने) विद्वन् ! (इषा) इच्छया (आयुषा) अन्नेन (पुनः) (नः) अस्मान् (पाहि) रक्ष (अंहसः) पापात् ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं नोऽस्मानंहसः पुनर्निवर्त्तस्व पुनरस्मान् पाहि पुनरिषाऽऽयुषोर्जा प्रापय ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** विद्वन् !

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (नः)

त्वं नः=अस्मान् अंहसः पापात् **पुनः नि+वर्त्तस्व। पुनः अस्मान् पाहि** रक्ष । **पुनः इषा** इच्छया **आयुषा** अन्नेन **ऊर्जा** पराक्रमयुक्तानि कर्माणि **प्रापय** ॥ १२ । ९ ॥

हमें (अंहसः) पाप से (पुनः) बार-बार (निवर्त्तस्व) हटाओ। (पुनः) बार-बार हमारी (पाहि) रक्षा करो। (पुनः) बार-बार(इषा) इच्छा से (आयुषा) अन्न से (ऊर्जा) पराक्रम-युक्त कर्मों को प्राप्त कराओ॥ १२ । ९ ॥

[**हे अग्ने ! त्वं नो ऽस्मानहंसः पुनर्निवर्त्तस्व,…ऊर्जा प्रापय**]

भावार्थः--विद्वांसः सर्वानुपदेश्यान् मनुष्यान् पापात् सततं निवर्त्य शरीरात्मबलयुक्तान् संपादयन्तु। स्वयं च पापान्निवृत्ताः परमपुरुषार्थिनः स्युः ॥ १२ । ९ ॥

भावार्थ--विद्वान्—सब उपदेश के योग्य मनुष्यों को पाप से सदा हटाकर शरीर और आत्मा के बल से युक्त करें। और स्वयं पाप से दूर रह कर अत्यन्त पुरुषार्थी होवें। १२ । ९ ॥

भा० पदार्थः—ऊर्जा=शरीरात्मबलानि।

भाष्यसार—**अध्यापक के कर्त्तव्य**—सच्चरित्र और विद्वान् अध्यापक का मुख्य कर्त्तव्य है कि वह स्वयं पापों से दूर रहे और दूसरों को सदुपदेश से पाप से दूर रक्खे। और उन्हें पाप से रक्षा करने की आत्म-शक्ति प्राप्त कराये। और शुभ कार्यों में प्रवृत्त करे। १२ । ९ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=विद्वान्** ॥ निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अध्यापक के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ १० ॥

पदार्थः—(**सह**) (**रय्या**) धनेन (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**अग्ने**) विद्वन् (**पिन्वस्व**) सेवस्व (**धारया**) धरति सकला विद्या यया सा वाक् तया । धारेति वाङ्ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**विश्वप्स्न्या**) विश्वं=सर्वं भोग्यं वस्तु प्सायते=भक्ष्यते यया (**विश्वतः**) सर्वतः (**परि**) ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—'धारया' यहाँ धारा शब्द निघण्टु (१ । ११) में वाणी के नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! त्वं दुष्टाद्व्यवहारान्निवर्तस्व विश्वप्स्न्या धारया रय्या च सह विश्वतः परिपिन्विस्व सर्वदा सुखानि सेवस्व ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=**विद्वन्** ! **त्वं दुष्टाद्व्यवहारात् नि+वर्त्तस्व । विश्वप्स्न्या** विश्वं=सर्वं भोग्यं वस्तु प्सायते=भक्ष्यते यया, **धारया** धरति सकला विद्या यया सा वाक् तया, **रय्या** धनेन **च सह विश्वतः** सर्वतः **परि+पिन्वस्व**= **सर्वदा सुखानि सेवस्व** ॥ १२ । १० ॥

भाषार्थ--हे (अग्ने) विद्वान् ! आप दुष्ट-व्यवहार से (नि+वर्त्तस्व) दूर रहो। (विश्वप्स्न्या) सब भोग्य वस्तुओं का भक्षण करने वाली, (धारया) सकल विद्याओं को धारण करने वाली वाणी से और (रय्या) धन से युक्त होकर (विश्वतः) सब ओर से (परि+पिन्वस्व) सदा सुखों का सेवन करो ॥ १२ । १० ॥

[हे अग्ने=विद्वन् ! त्वं दुष्टव्यवहारान्निवर्त्तस्व]

भावार्थः—न खलु विद्वांसः कदाचिदप्य-

भावार्थ—विद्वान् कभी भी अधर्म का

धर्ममाचरेयुः, न चान्यानुपदिशेयुः ।

आचरण न करें, और न ही अन्यों को उसका उपदेश करें ।

[धारया ... सह ... परिपिन्वस्व]

एवं सकलशास्त्रविद्यया विराजमानाः सन्तः पशंसिताः स्युः ॥ १२ । १० ॥

इस प्रकार-सकल शास्त्रों की विद्या से शोभायमान होकर प्रशंसा के पात्र हों ॥ १२ । १० ॥

भा० पदार्थः—धारया=सकलशास्त्रविद्यया । परिपिन्वस्व=प्रशंसितो भव ॥

भाष्यसार—**अध्यापक के कर्त्तव्य**—विद्वान् कभी भी स्वयं अधर्म में प्रवृत्त न हो और न ही दूसरों को अधर्म का उपदेश करे। उसकी वाणी में ऐसा सामर्थ्य तथा तेज हो, जिससे वह सब विद्याओं का धारण करने वाली होकर सब मनुष्यों को सन्मार्ग पर प्रवृत्त कर सके। और सभी प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त कर सुखों की वृद्धि करें ॥ १२ । १० ॥ ●

ध्रुवः । **अग्निः=राजा** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुना राजप्रजाकर्म्माह ॥

फिर राजा और प्रजा के कर्मों का उपदेश किया है ॥

आ त्वाहार्षमुन्तरंभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविंचाचलिः । विशस्त्वा सर्वां वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**त्वा**) त्वां राजानम् (**अहार्षम्**) हरेयम् (**अन्तः**) सभामध्ये (**अभूः**) भवेः (**ध्रुवः**) न्यायेन राजपालने निश्चितः (**तिष्ठ**) स्थिरो भव (**अविचाचलिः**) सर्वथा निश्चलः (**विशः**) प्रजाः (**त्वा**) त्वाम् (**सर्वाः**) अखिलाः (**वाञ्छन्तु**) अभिलषन्तु (**मा**) न (**त्वत्**) (**राष्ट्रम्**) राज्यम् (**अधि**) (**भ्रशत्**) नष्टं स्यात् ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे शुभगुणलक्षण सभेश राजन् ! त्वा राज्यपालनायाहमन्तराहार्षम् । त्वमन्तरभूः । अविचाचलिर्ध्रुवस्तिष्ठ । सर्वा विशस्त्वा वाञ्छन्तु । त्वत् तव सकाशाद्राष्ट्रं माऽधिभ्रशत् ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शुभगुणलक्षण सभेश राजन्** ! **त्वा** त्वां राजानं **राज्यपालनायाऽहम् अन्तः** सभामध्ये **आ+अहार्ष** हरेयम् ।

भावार्थ—हे शुभ गुण और लक्षणों वाले सभापति राजन् ! (त्वा) आप राजा को राज्य-पालन के लिए मैं (अन्तः) सभा के मध्य में (आ+अहार्षम्) स्वीकार करता हूँ ।

त्वम् अन्तः सभामध्ये **अभूः** भवेः । **अविचाचलिः** सर्वथा निश्चलः **ध्रुवः** न्यायेन राज्यपालने निश्चितः **तिष्ठ** स्थिरो भव ।

आप (अन्तः) सभा के मध्य में (अभूः) विद्यमान रहें । (अविचाचलिः) सर्वथा निश्चल तथा (ध्रुवः) न्यायपूर्वक राज्य-पालन में दृढ़ होकर (तिष्ठ) स्थिर रहो ।

सर्वाः अखिलाः **विशः** प्रजाः **त्वा** त्वां **वाञ्छन्तु** अभिलषन्तु । **त्वत्**=तव सकाशाद् **राष्ट्रं** राज्यं **मा** न **अधि+भ्रशत्** नष्टं स्यात् ॥ १२ । ११ ॥

(सर्वाः) सब (विशः) प्रजा (त्वा) आपको (वाञ्छन्तु) चाहें । (त्वत्) आपके अनाचार से (राष्ट्रम्) राज्य (मा अधि+भ्रशत्) नष्ट न हो ॥

[हे सभेश राजन् ! त्वां राज्यपालनायाऽहमन्तराहार्षम्]

भावार्थः—उत्तमाः प्रजाजनाः सर्वोत्तमं पुरुषं सभाध्यक्षं राजनं कृत्वाऽनूपदिशन्तु—

भावार्थ—श्रेष्ठ प्रजाजन सर्वश्रेष्ठ पुरुष को सभाध्यक्ष राजा बनाकर उसे उपदेश करें—

[त्वम्'''अविचाचलिर्ध्रुवस्तिष्ठ]

त्वं जितेन्द्रियः सन् सर्वदा धर्मात्मा पुरुषार्थी भवेः।

आप जितेन्द्रिय होकर सदा धर्मात्मा और पुरुषार्थी बनो।

[त्वत्'''राष्ट्रं माऽधिभ्रशत्]

न तवानाचाराद् राष्ट्रं कदाचिन्नष्टं भवेद्,

आपके अनाचार से राष्ट्र कभी नष्ट न हो।

[सर्वा विशस्त्वा वाञ्छन्तु]

यतः सर्वाः प्रजास्त्वदनुकूलाः स्युः ॥ १२ । ११ ॥

जिससे—सब प्रजा आपके अनुकूल रहे ॥

भा० पदार्थः—अविचाचलिः=जितेन्द्रियः । ध्रुवः=धर्मात्मा पुरुषार्थी । वाञ्छन्तु=अनुकूलाः स्युः ॥

भाष्यसार—**प्रजा कैसे पुरुष को राजा बनाये**—राजा बनाने से पहले उसकी परीक्षा करनी चाहिये। राजा वही बन सकता है जो बाधाओं से अथवा विपत्ति में कभी विचलित न होता हो। जो सभा में अथवा न्यायालय में दृढ़ होकर निष्पक्ष न्याय करने वाला हो। प्रजावत्सल हो, और जो दुराचारादि व्यसनों में फंसकर राज्य का विनाश न करने वाला है। जितेन्द्रिय होकर पुरुषार्थ से प्रजा को अपने अनुकूल रखने वाला हो ॥ १२ । ११ ॥

शुनःशेपः । **वरुणः**=**राजा** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्मों का फिर उपदेश किया है ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो ऽ अदितये स्याम ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**उत्**) (**उत्तमम्**) (**वरुण**) शत्रूणां बन्धक (**पाशम्**) बन्धनम् (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**अव**) (**अधमम्**) निकृष्टम् (**वि**) (**मध्यमम्**) मध्यस्थम् (**श्रथाय**) विमोचय (**अथ**) पश्चात्। **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः** (**वयम्**) प्रजास्थाः (**आदित्य**) अविनाशिस्वरूप सूर्य्य इव सत्यन्यायप्रकाशक (**व्रते**) सत्यन्यायपालननियमे (**तव**) (**अनागसः**) अनपराधिनः (**अदितये**) पृथिवीराज्याय । **अदितिरिति पृथिवीना० ॥ निघं० १ । १ ॥** (**स्याम**) भवेम ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—'अथा' यहाँ 'निपातस्य च' इस पाणिनीय सूत्र से दीर्घ हुआ है। 'अदितये' यहाँ पृथिवीवाची अदिति शब्द निघण्टु (१ । १) में पृथिवी नामों में पठित है।

अन्वयः—हे वरुणादित्य ! त्वमस्मदधमं मध्यममुत्तमं पाशमुदवविश्रथायाथ वयमदितये तव व्रतेऽनागसः स्याम ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वरुण** शत्रूणां बन्धक ! **आदित्य** अविनाशिस्वरूप सूर्य्य इव सत्यन्यायप्रकाशक ! **त्वम् अस्मत्** अस्माकं सकाशाद् **अधमं** निकृष्टं **मध्यमं** मध्यस्थम् **उत्तमं पाशं** बन्धनम् **उत्+अव, वि+श्रथाय** विमोचय ।

अथ पश्चाद् **वयं** प्रजास्थाः **अदितये** पृथिवीराज्याय **तव व्रते** सत्यन्यायपालननियमे **अनागसः** अनपराधिनः **स्याम** भवेम ॥ १२ । १२ ॥

भाषार्थ—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधने वाले, (आदित्य) अविनाशी स्वरूप, सूर्य के समान सत्य और न्याय के प्रकाशक, राजन् ! आप (अस्मत्) हमारे (अधमम्) निकृष्ट, (मध्यमम्) मध्यम, (उत्तमम्) उत्तम (पाशम्) बन्धन को (उत्+अव+वि+श्रथाय) सर्वथा मुक्त करो ।

(अथ) और—वयम् हम प्रजा-जन (अदितये) पृथिवी के राज्य के लिए (तव) आपके (व्रते) सत्य और न्याय के पालन के व्रत में (अनागसः) निर्दोष (स्याम) होवें ॥ १२ । १२ ॥

[हे वरुण ! आदित्य त्वमस्मत् ··· पाशं ··· विश्रथाय ···]

भावार्थः—यथेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावानुकूला धार्मिका जनाः सत्याचरणे वर्तमानाः सन्तः पापबन्धान्मुक्ताः सुखिनो भवन्ति, तथैवोत्तमं राजानं प्राप्य प्रजाजना आनन्दिता जायन्ते ॥ १२ । १२ ॥

भावार्थ—जैसे—ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल धार्मिक जन सत्य के आचरण में वर्तमान तथा पाप-बन्धन से मुक्त होकर सुखी रहते हैं, वैसे—श्रेष्ठ राजा को प्राप्त करके प्रजा-जन आनन्दित रहते हैं ॥ १२ । १२ ॥

भा० पदार्थः—वरुण=ईश्वरस्य गुणकर्मस्वभावानुकूलो धार्मिको जनः । आदित्य=सत्याचरणे वर्तमान । पाशम्=पाप-बन्धनम् ।

भाष्यसार—**राज-धर्म**—राजा का यह परम धर्म है कि वह ऐसा शक्तिशाली व अस्त्र-शस्त्रों से सम्पन्न हो जैसे वह शत्रुओं को बाँधने में समर्थ हो सके । राजा आदित्य के समान सत्य और न्याय का प्रकाशक हो; प्रजा को अधम, मध्यम तथा उत्तम पाप—बन्धनों से मुक्त करने वाला हो । जिससे सत्य और न्याय के पालन रूप व्रत में रहकर प्रजा सदा कभी पापाचरण में प्रवृत्त न हो । और धार्मिक होकर सुखी रहे ॥ १२ । १२ ॥

विनियोग—'ओम् उदुत्तमं ··· स्याम' इस मन्त्र को बोल के ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़े ॥ १२ । १२ ॥

त्रितः । **अग्निः**=**राजा** । भुरिगार्षीपंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के कर्मों का फिर उपदेश किया है ॥

अग्रे॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो ऽ अ॑स्थान्निर्जग॒न्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ ऽ आ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॒न्यप्राः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**अग्रे**) प्रथमतः (**बृहन्**) महत् (**उषसाम्**) प्रभातानाम् (**ऊर्ध्वः**) उपर्य्याकाशस्थः (**अस्थात्**) तिष्ठति (**निर्जगन्वान्**) निर्गतः सन् (**तमसः**) अन्धकारात् (**ज्योतिषा**) प्रकाशेन (**आ**) (**अगात्**) प्राप्नोति (**अग्निः**) पावकः (**भानुना**) दीप्त्या (**रुशता**) सुरूपेण (**स्वङ्गः**) शोभनान्यङ्गानि यस्य सः (**आ**) (**जातः**) निष्पन्नः (**विश्वा**) (**सद्मानि**) साकाराणि स्थानानि (**अप्राः**) व्याप्नोति ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे राजन् ! यस्त्वमग्रे यथा सूर्य्यः स्वङ्ग आजातो बृहन्नुषसामूर्ध्वोऽस्थाद्रुशता भानुना ज्योतिषा तमसो निर्जगन्वान्सन्नागाद्विश्वा सद्मान्यप्रास्तद्वत्प्रजायां भव ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यस्त्वम् **अग्रे** प्रथमतः **यथा** [अग्निः]=**सूर्य्यः** पावकः **स्वङ्गः** शोभनान्यङ्गानि यस्य सः, **आ+जातः** निष्पन्नः **बृहत्** महद् **उषसां** प्रभातानाम् **ऊर्ध्वः** उपर्य्याकाशस्थः **अस्थात्** तिष्ठति, **रुशता** सुरूपेण **भानुना** दीप्त्या **ज्योतिषा** प्रकाशेन **तमसः** अन्धकारात् **निर्जगन्वान्** निर्गतः सन् **आ+अगात्** प्राप्नोति, **विश्वा** सर्वाणि **सद्मानि** साकाराणि स्थानानि **अप्राः** व्याप्नोति, **तद्वत् प्रजायां भव** ॥ १२ । १३ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! आप (अग्रे) पहले से-जैसे [अग्निः] सूर्य (स्वङ्गः) सुन्दर अङ्गों वाला, (आ+जातः) प्रसिद्ध, (बृहत्) महान्, (उषसाम्) उषा=प्रभातों के (ऊर्ध्वः) ऊपर आकाश में (अस्थात्) स्थित है, (रुशता) सुरूप, (भानुना) दीप्ति, (ज्योतिषा) प्रकाश से युक्त तथा (तमसः) अन्धकार से (निर्जगन्वान्) रहित होकर (आ+अगात्) सब ओर प्राप्त है और (विश्वा) सब (सद्मानि) साकार स्थानों में (अप्राः) व्याप्त होता है, वैसे राजा प्रजा में व्याप्त होवे ॥ १२ । १३ ॥

[हे राजन् ! यस्त्वं···[अग्निः]=सूर्यः, बृहत्, तमसो निर्जगन्वान्, स्वङ्ग, जातः]

भावार्थः—यः सूर्यवत्सद्गुणैर्महान्, सत्पुरुषाणां शिक्षयोत्कृष्टः, दुर्व्यसनेभ्यः पृथग् वर्त्तमानः, सत्यन्यायप्रकाशितः, सुन्दराङ्गः, प्रसिद्धः, सर्वैः सत्कर्तुं योग्यः, विदितवेदितव्यः, दूतैः सर्वजनहृदयाशयवित्,

भावार्थ—जो सूर्य के समान सद्-गुणों से महान्, सत्पुरुषों की शिक्षा से उत्कृष्ट, दुर्व्यसनों से पृथक्, सत्य और न्याय से प्रकाशित, सुन्दर अङ्गों वाला, प्रसिद्ध, सबके लिए सत्कार के योग्य, जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता, दूतों के द्वारा सब जनों के हृदय के आशय का वेत्ता—

[विश्वा सद्मान्यप्राः, तद्वत् प्रजायां भव]

शुभन्यायेन प्रजा व्याप्नोति, स एव राजा भवितुं योग्यः ॥ १२ । १३ ॥

श्रेष्ठ न्याय से प्रजा में व्याप्त होता है वही राजा बनने के योग्य है ॥ १२ । १३ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=सूर्यवत् सद्गुणैर्महान् । बृहत्=सत्पुरुषाणां शिक्षयोत्कृष्टः । तमसः=दुर्व्यसनात् । निर्जगन्वान्=पृथग्वर्त्तमानः । स्वङ्गः=सुन्दराङ्गः । जातः=प्रसिद्धः ।

भाष्यसार—**राजा कैसा होना चाहिये**—राजा सूर्य की तरह सद्गुणों के कारण सब मनुष्यों में महान् तथा सत्य न्याय का प्रकाशक हो । और शत्रुओं को सदा छिन्न-भिन्न करने वाला हो। सुन्दर तथा स्वस्थ अङ्गों वाला हो, अपने प्रभाव से सर्वत्र प्रकाशमान हो । प्रजा के सभी व्यवहारों को दूतों से अथवा गुप्त पुरुषों से जानने वाला हो । राज्य में कोई स्थान अथवा पुरुष ऐसा न हो, जिसका ज्ञान राजा को न हो । वह सभी प्रकार के अज्ञानों से पृथक् हो ॥ १२ । १३ ॥

त्रितः । **जीवेश्वरौ**=जीव ईश्वरश्च । स्वराड् जगती । निषादः ॥

अथात्मलक्षणान्याह ॥

अब परमात्मा और जीव के लक्षणों का उपदेश किया जाता है ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऽ ऋतजा ऽ अद्रिजा ऽ ऋतं बृहत् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**हंसः**) दुष्टकर्महन्ता (**शुचिषत्**) शुचिषु=पवित्रेषु व्यवहारेषु वर्त्तमानः (**वसुः**) सज्जनेषु निवस्ता तेषां निवासयिता वा (**अन्तरिक्षसत्**) यो धर्मावकाशे सीदति (**होता**) सत्यस्य ग्रहीता ग्राहयिता वा (**वेदिषत्**) यो वेद्यां=जगत्यां यज्ञशालायां वा सीदति (**अतिथिः**) अविद्यमाना तिथिर्यस्य स राज्यरक्षणाय यथासमयं भ्रमणकर्त्ता (**दुरोणसत्**) यो दुरोणे=सर्वर्त्तुसुखप्रापके गृहे सीदति सः (**नृषत्**) यो नायकेषु सीदति सः (**वरसत्**) य उत्तमेषु=विद्वत्सु सीदति (**ऋतसत्**) य ऋते=सत्ये संस्थितः (**व्योमसत्**) यो व्योमवद्व्यापके=परमेश्वरे सीदति (**अब्जाः**) योऽपः=प्राणान् जनयति (**गोजाः**) यो गाव=इन्द्रियाणि पशून् वा जनयति (**ऋतजाः**) यः ऋतं=सत्यं ज्ञानं जनयति सः (**अद्रिजाः**) योऽद्रीन्मेघान् जनयति (**ऋतम्**) सत्यम् (**बृहत्**) महत् ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे प्रजाजनाः ! यूयं यो हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसन्नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहद् ब्रह्म जीवश्चास्ति यस्तौ जानीयात् तं सभाधीशं राजानं कृत्वा सततमानन्दत ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे प्रजाजनाः ! यूयं यो हंसः** दुष्टकर्महन्ता **शुचिषत्** शुचिषु=पवित्रेषु व्यवहारेषु वर्त्तमानः **वसुः** सज्जनेषु निवस्ता तेषां निवासयिता वा **अन्तरिक्षसत्** यो धर्माऽवकाशे सीदति, **होता** सत्यस्य ग्रहीता ग्राहयिता वा **वेदिषत्** यो वेद्यां=जगत्यां यज्ञशालायां वा सीदति **अतिथिः** अविद्यमाना तिथिर्यस्य स राज्यरक्षणाय यथासमयं भ्रमणकर्त्ता **दुरोणसत्** यो दुरोणे=सर्वर्त्तुसुखप्रापके गृहे सीदति सः, **नृषत्** यो नायकेषु सीदति सः, **वरसत्** य उत्तमेषु विद्वत्सु सीदति सः, **ऋतसत्** य ऋते=सत्ये संस्थितः, **व्योमसत्** यो व्योमवद्व्यापके=परमेश्वरे सीदति, **अब्जाः** योऽपः=प्राणान् जनयति **गोजाः** यो गावः=इन्द्रियाणि पशून् वा जनयति **ऋतजाः** य ऋतं=सत्यं ज्ञानं जनयति सः, **अद्रिजाः** योऽद्रीन्मेघान् जनयति, **ऋतं** सत्यं **बृहत्** महद् **ब्रह्म जीवश्चास्ति, यस्तौ जानीयात्, तं सभाधीशं राजानं कृत्वा सततमानन्दत** ॥ १२ । १४ ॥

भाषार्थ—हे प्रजा-जनो ! तुम–जो (हंसः) दुष्ट कर्मों का हनन करने वाला, (शुचिषत्) पवित्र व्यवहारों में वर्तमान, (वसुः) सज्जनों में निवास करने वाला, अथवा उनको बसाने वाला, (अन्तरिक्षसत्) धर्म-स्थान में रहने वाला, (होता) सत्य को ग्रहण करने वा कराने वाला, (वेदिषत्) जो वेदी अर्थात् जगत् वा यज्ञशाला में विद्यमान, (अतिथिः) जिसकी कोई तिथि निश्चित नहीं वह यथासमय राज्य की रक्षा के लिए भ्रमण करने वाला, (दुरोणसत्) सब ऋतुओं में सुखदायक गृह में रहने वाला, (नृषत्) नेताओं में बैठने वाला, (वरसत्) श्रेष्ठ विद्वानों में विराजमान, (ऋतसत्) सत्य में स्थित, (व्योमसत्) आकाश के समान व्यापक परमेश्वर में स्थित, (अब्जाः) प्राणों का जनक, (गोजाः) इन्द्रियों वा गौ आदि पशुओं का उत्पादक, (ऋतजाः) सत्य ज्ञान को उत्पन्न करने वाला, (अद्रिजाः) मेघों का जनक, (ऋतम्) सत्य (बृहत्) महान्, ब्रह्म और जीव है, जो उन्हें जानता है उस सभापति को राजा बनाकर सदा आनन्द में रहो ॥ १२ । १४ ॥

[हे प्रजाजनाः ! यूयं यो हंसः ··· ऋतं बृहत् ब्रह्म जीवश्चास्ति, यस्तौ जानीयात् तं सभाधीशं राजानं कृत्वा सततमानन्दत]

भावार्थः—य ईश्वरवत् प्रजाः पालयतु, सुखयितुं शक्नुयात् स एव राजा भवितुं योग्य स्यात्, न राज्ञा विना प्रजाः सुखिन्यो भवितुमर्हन्ति ॥

भावार्थ—जो ईश्वर के समान प्रजा का पालन और उसे सुखी कर सके वही राजा बनने के योग्य है, राजा के बिना प्रजा सुखी नहीं हो सकती ॥ १२ । १४ ॥

भाष्यसार—**मानव-धर्म**—सभी मनुष्यों को दुष्ट कर्मों का त्याग करके, पवित्र होकर, धर्म के कार्यों में लगे सज्जनों के साथ निवास करना चाहिये। सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने में सदा उद्यत होकर धर्म तथा राज्य के कार्यों के लिए सर्वत्र भ्रमण करें। जो सभी ऋतुओं में सुख देने वाले हों, ऐसे घरों का निर्माण करें। सर्वत्र विद्यमान परमात्मा की भक्ति करते हुए विद्वानों की संगति करें। प्राण शक्ति तथा इन्द्रियों का सामर्थ्य बढ़ाते हुए सदा सत्य-ज्ञान को प्राप्त करने में यत्नशील रहें। उपरोक्त धर्मों का पालन करने से मानव महान् बनता है॥ १२। १४॥

त्रितः। **अग्निः=राजा**। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनर्मातृकृत्यमाह॥

माता के कर्म्म का उपदेश किया है॥

सीद् त्वं मातुरस्या ऽ उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्।
मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याꣳ शुक्रज्योतिर्विभाहि॥ १५॥

पदार्थः—(**सीद**) तिष्ठ (**त्वम्**) (**मातुः**) जनन्याः (**अस्याः**) प्रत्यक्षाया भूमेरिव (**उपस्थे**) समीपे (**विश्वानि**) सर्वाणि (**अग्ने**) विद्यामभीप्सो (**वयुनानि**) प्रज्ञानानि (**विद्वान्**) यो वेत्ति सः (**मा**) (**एनाम्**) (**तपसा**) सन्तापेन (**मा**) (**अर्चिषा**) तेजसा (**अभि**) (**शोचीः**) शोकयुक्तां कुर्याः (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**अस्याम्**) मातरि (**शुक्रज्योतिः**) शुक्रं शुद्धाचरणं ज्योतिः=प्रकाशो यस्य सः (**वि**) (**भाहि**) प्रकाशय॥ **१५**॥

अन्वयः—हे अग्ने! त्वमस्यां मातरि सत्यां विभाहि प्रकाशितो भवास्या भूमेरिव शुक्रज्योतिर्विद्वान् मातुरुपस्थे सीद। अस्याः सकाशाद्विश्वानि वयुनानि प्राप्नुहि। एनामन्तर्मा तपसार्चिषामाभिशोचीः किन्त्वेतच्छिक्षां प्राप्य विभाहि॥ १५॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** विद्यामभीप्सो! **त्वम् अस्यां=मातरि सत्यां वि+भाहि=प्रकाशितो भव** प्रकाशय। **अस्याः=भूमेरिव** प्रत्यक्षाया भूमेरिव **शुक्रज्योतिः** शुक्रं=शुद्धाचरणं ज्योतिः=प्रकाशो यस्य सः, **विद्वान्** यो वेत्ति सः, **मातुः** जनन्याः **उपस्थे** समीपे **सीद** तिष्ठ। **अस्याः सकाशात् विश्वानि** सर्वाणि **वयुनानि** प्रज्ञानानि **प्राप्नुहि**। **एनाम् अन्तः** आभ्यन्तरे **मा तपसा** सन्तापेन **अर्चिषा** तेजसा **मा अभि+शोचीः** शोकयुक्तां कुर्य्याः, **किन्त्वेतच्छिक्षां प्राप्य वि+भाहि** प्रकाशय॥ १२। १५॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्या प्राप्ति के इच्छुक बालक! तू (अस्याम्) इस सती माता में (वि+भाहि) प्रकाशित हो। (अस्याः) इस प्रत्यक्ष भूमि के समान (शुक्रज्योतिः) शुद्धाचरण रूप प्रकाशवाला (विद्वान्) विद्वान् होकर (मातुः) माता के (उपस्थे) समीप (सीद) बैठ। (अस्याः) इस माता से (विश्वानि) सब (वयुनानि) प्रज्ञानों को प्राप्त कर। (एनाम्) इसके (अन्तः) अन्तःकरण को (तपसा) सन्ताप से (अर्चिषा) तेज से (मा अभि+शोचीः) शोकयुक्त मत कर। किन्तु इसकी शिक्षा को प्राप्त करके (विभाहि) प्रकाशित कर॥ १२। १५॥

[हे अग्ने ! त्वं···मातुरुपस्थे सीद, अस्याः सकाशाद् विश्वानि वयुनानि प्राप्नुहि, एनामन्तर्मा तपसा···माऽभिशोचीः किन्तु···विभाहि]

भावार्थः—यो विदुष्या मात्रा विद्यासुशिक्षां प्रापितः, मातृसेवकः जननीवत् प्रजाः पालयेत् स स राज्यैश्वर्येण प्रकाशेत ॥ १२ । १५ ॥

भावार्थ—जो विदुषी माता के द्वारा विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होकर, माता का सेवक बनकर जननी के समान प्रजा का पालन करे वह राज्य के ऐश्वर्य से प्रकाशित होता है ॥ १२ । १५ ॥

भा० पदार्थः—वयुनानि=विद्यां सुशिक्षां च । विभाहि=राज्यैश्वर्येण प्रकाशितो भव ॥

भाष्यसार—१. **माता का कर्त्तव्य**—बालक को शिक्षा देने वालों में सर्वप्रथम माता का स्थान है। माता स्वयं शुद्धाचरण वाली होकर बालक को सब प्रकार से सुशिक्षित करे। माता का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वह सभी प्रकार की शिक्षाओं से बालक को सुशिक्षित करे। बालक का भी यह कर्त्तव्य है कि वह कभी भी माता को किसी प्रकार का दुःख देकर शोकयुक्त न करे।

२. **राजा का कर्त्तव्य**—जैसे बालक अपनी माता को किसी प्रकार से भी शोक सन्तप्त नहीं करता वैसे ही राजा अपनी प्रजा को शोक सन्तप्त न करके सभी प्रकार से सुशिक्षित किया करे।

त्रितः । **अग्निः=राजा** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुना राजकर्म्माह ॥

राजा के कर्म का फिर उपदेश किया है ॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे । तस्यास्त्वꣳ हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अन्तः**) मध्ये (**अग्ने**) विद्वन् (**रुचा**) प्रीत्या (**त्वम्**) (**उखायाः**) प्राप्तायाः प्रजायाः (**सदने**) अध्ययनस्थाने (**स्वे**) स्वकीये (**तस्याः**) (**त्वम्**) (**हरसा**) ज्वलनेन । हर **इति ज्वलतो ना० ॥ निघं०** १ । १७ ॥ (**तपन्**) शत्रून् सन्तापयन् (**जातवेदः**) जाता=विदिता वेदा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—'हरसा' यहाँ 'हरस्' शब्द निघं० १ । १७ में 'ज्वलन' वाचक नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे जातवेदोऽग्ने ! यस्त्वं यस्या उखाया अधोऽग्निरिव स्वे सदने तपन् सन्नन्तारुचा वर्त्तेथास्तस्या हरसा सन्तपँस्त्वं शिवो भव ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जातवेदः** जाताः=विदिता वेदा यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **अग्ने** विद्वन् ! **यस्त्वं यस्या उखायाः** प्राप्तायाः प्रजाया **अधोऽग्निरिव स्वे** स्वकीये **सदने** अध्ययनस्थाने **तपन्** शत्रून् सन्तापयन् **सन्नन्तः** मध्ये **रुचा** प्रीत्या **वर्त्तेथास्तस्याः हरसा** ज्वलनेन **सन्तपन्** शत्रून् सन्तापयन् **त्वं शिवः** मङ्गलकारी **भव** ॥ १२ । १६ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) वेदों को जानने वाले (अग्ने) विद्वान् राजन् ! आप जिस (उखायाः) प्रजा के नीचे अग्नि के समान (स्वे) अपने (सदने) अध्ययन-शाला में (तपन्) शत्रुओं को सन्तापयुक्त करता हुआ (अन्तः) प्रजा के मध्य में (रुचा) प्रीति से वर्ताव करो, उस प्रजा के (हरसा) तेज से (सन्तपन्) शत्रुओं को सन्ताप-युक्त करते हुए आप (शिवः) मङ्गलकारी बनो ॥ १२ । १६ ॥

[हे··· अग्ने ! त्वं···सदने तपन् ··· रुचा वर्त्तथाः,···संतपन् त्वं शिवो भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा सभाध्यक्षो राजा न्यायासने स्थित्वा राज्य-पालनकृत्यानि कुर्यात्, तथा प्रजा राजानं सुखयन्ती सती दुष्टान् सन्तापयेत् ॥ १२ । १६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—सभापति राजा न्यायासन पर बैठकर राज्य-पालन सम्बन्धी कार्यों को करे, वैसे प्रजा राजा को सुखी करती हुई दुष्टों को संतप्त करे ॥ १२ । १६ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=सभाध्यक्ष ! राजन् ! सदने=न्यायासने ।

भाष्यसार—१. **राजा-धर्म**—राजा स्वयं जातवेदः=वेदों का विद्वान् हो कर प्रजा का पालन करे । और शत्रुओं को सन्ताप देता हुआ प्रीति से प्रजा में वर्ताव करे । और सदा मंगलकारी बना रहे । प्रजा के तेज से सदा शत्रुओं को वश में रक्खे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । उपमा यह है जैसे राजा प्रजा का न्याय से पालन करे वैसे ही प्रजा राजा को सहयोग देकर राजा को सुखी करे ।

त्रितः । **अग्निः=राजा** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा के कर्म का फिर उपदेश किया है ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम् । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥१७॥

पदार्थः—(**शिवः**) स्वयं मङ्गलाचारी (**भूत्वा**) (**मह्यम्**) प्रजाजनाय (**अग्ने**) शत्रुविदारक (**अथो**) (**सीद**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**त्वम्**) (**शिवाः**) मङ्गलचारिणीः (**कृत्वा**) (**दिशः**) या दिश्यन्त=उपदिश्यन्ते दिग्भिः सहचरितास्ताः प्रजाः (**सर्वाः**) (**स्वम्**) (**योनिम्**) राजधर्मासनम् (**इह**) अस्मिन् जगति (**आ**) (**असदः**) आस्व ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं मह्यं शिवो भूत्वेह शिवः सन् सर्वा दिशः शिवाः कृत्वा स्वं योनिमासदोऽथो राजधर्मे सीद ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** शत्रुविदारक ! **त्वं मह्यं** प्रजाजनाय **शिवः** स्वयं मङ्गलाचारी **भूत्वा इह** अस्मिन् जगती **शिवः** मङ्गलकारी **सन् सर्वाः दिशः** या दिश्यन्ते=उपदिश्यन्ते दिग्भिः सहचरितास्ताः प्रजाः, **शिवाः** मङ्गलचारिणीः **कृत्वा स्वं योनिं** राजधर्माऽऽसनम् **आ+असदः** आस्व, **अथो राजधर्मे सीद** ॥ १२ । १७ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) शत्रुओं के विदारक राजन् ! आप (मह्यम्) मुझ प्रजा-जन के लिए (शिवः) स्वयं मङ्गलाचारी होकर (इह) इस जगत् में (शिवः) मङ्गलकारी होते हुए (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं में विद्यमान प्रजाओं को (शिवाः) मङ्गलचारिणी बनाकर (स्वम्) अपने (योनिम्) राजधर्म के आसन पर (आ+असदः) बैठो (अथो) और राजधर्म में (सीद) स्थित रहो ॥ १२ । १७ ॥

[हे अग्ने ! त्वं मह्यं शिवो भूत्वा, इह शिवः सन्···स्वं योनिमा सदः]

भावार्थः—राजा स्वयं धार्मिको भूत्वा, प्रजाजनानपि धार्मिकान् संपाद्य, न्यायासनमधिष्ठाय, सततं न्यायं कुर्यात् ॥ १२ । १७ ॥

भावार्थ—राजा स्वयं धार्मिक होकर, प्रजा-जनों को भी धार्मिक बनाकर, न्याय-आसन पर बैठ कर सदा न्याय करे ॥ १२ । १७ ॥

भा० पदार्थः--अग्ने=राजन् । शिवः=धार्मिकः । योनिम्=न्यायासनम् ॥ आसदः=सततं न्यायं कुरु ॥

भाष्यसार--राज-धर्म--राजा स्वयं अच्छे आचरण वाला होकर मङ्गलकारी कार्य करता रहे और सभा में न्यायासन पर बैठकर सब दिशाओं में रहने वाली प्रजाओं को अच्छे आचरण वाली बनायें । और राजधर्म के पालन में कभी प्रमाद न करे ॥ १२ । १७ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=राजा** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुना राजविषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे ऽ अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा ऽ अजस्रमिन्धान ऽ एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**दिवः**) विद्युतः (**परि**) उपरि (**प्रथमम्**) (**जज्ञे**) जायते (**अग्निः**) (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वितीयम्**) (**परि**) (**जातवेदाः**) जातप्रज्ञानः (**तृतीयम्**) (**अप्सु**) प्राणेषु जलेषु वा (**नृमणाः**) नृषु=नायकेषु मनो यस्य सः (**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**इन्धानः**) प्रदीपयन् (**एनम्**) (**जरते**) स्तौति (**स्वाधीः**) शोभनाध्यानयुक्ताः प्रजाः ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे सभेश ! योऽग्निरिव त्वं दिवस्परि जज्ञे तमेनं प्रथमं यो जातवेदास्त्वमस्मज्जज्ञे तमेनं द्वितीयं यो नृमणास्त्वमप्सु जज्ञे तमेनं तृतीयमजस्रमिन्धानो विद्वान् परिजरते स त्वं स्वाधीः प्रजाः स्तुहि ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश ! योऽग्निरिव त्वं दिवः** विद्युतः **परि+ जज्ञे** उपरि+जायते **तमेनं प्रथमं, यो जातवेदाः** जातप्रज्ञानः **त्वम् अस्मत्** अस्माकं सकाशाद् **जज्ञे** जायते **तमेनं द्वितीयं, यो नृमणाः** नृषु=नायकेषु मनो यस्य सः, **त्वम् अप्सु** प्राणेषु जलेषु वा **जज्ञे** जायते, **तमेनं तृतीयम्, अजस्रं** निरन्तरम् **इन्धानः=विद्वान्** प्रदीपयन् **परि+जरते** स्तौति, **स त्वं स्वाधीः= प्रजाः** शोभनाध्यानयुक्ताः प्रजाः **स्तुहि** ॥ १२ । १८ ॥

भाषार्थ—हे सभापति राजन् ! जो आप (अग्निः) अग्नि के समान (दिवः) विद्युत् से (परि+जज्ञे) ऊपर हो, सो प्रथम श्रमी आप की जो आप (जातवेदाः) मेधा बुद्धि वाले (अस्मत्) हमारे सान्निध्य से (जज्ञे) बनते हो सो द्वितीय आश्रमी आप की जो आप (नृमणाः) नेताओं में मन को रखने वाले (अप्सु) प्राण=बल, जल=शान्ति में (जज्ञे) प्रसिद्ध हो सो तृतीयाश्रमी आपकी, (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) विद्या से प्रदीप्त विद्वान् (परि+जरते) स्तुति करता है, सो आप (स्वाधीः) अत्यन्त उत्कण्ठा से स्मरण करने वाली प्रजा की (स्तुहि) स्तुति करो ॥ १२ । १८ ॥

[हे सभेश ! योऽग्निः'''तमेनं प्रथमं, यो जातवेदाः'''तमेनं द्वितीयं, यो नृमणाः तमेनं तृतीयं, अजस्र मिन्धानः]

भावार्थः—मनुष्यैरादौ ब्रह्मचर्येण विद्या सुशिक्षा, द्वितीयेन गृहाश्रमेणैश्वर्यं, तृतीयेन वानप्रस्थेन तपश्चरणं, चतुर्थेन संन्यासाश्रमेण नित्यं

भावार्थ—मनुष्य—प्रथम ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा, द्वितीय गृहाश्रम से ऐश्वर्य, तृतीय वानप्रस्थ से तपस्या, चतुर्थ संन्यास आश्रम से नित्य

वेदविद्याधर्मे प्रकाशनं च कर्त्तव्यम् ॥ १२ । १८ ॥ वेदविद्या और धर्म का प्रकाश करें ॥ १२ । १८ ॥

भा० पदार्थः—प्रथमम्=ब्रह्मचर्यम् । द्वितीयम्=गृहाश्रमम् । तृतीयम्=वानप्रस्थम् । अजस्रम्=नित्यम् ॥

भाष्यसार—**राज-धर्म**—राजा का कर्त्तव्य है कि जिन्होंने प्रथमाश्रम में विद्या सुशिक्षा ग्रहण करके अपने को अग्नि के तुल्य तेजस्वी बनाया है जिन्होंने द्वितीयाऽश्रम में मेधा बुद्धि से सम्पन्न होकर ऐश्वर्य का अर्जन किया है, जिन्होंने तृतीयाश्रम में प्राणविद्या की उन्नति करके अथवा शान्ति से निरन्तर विद्या तथा तप से प्रदीप्त होते हुए मनुष्यों में नायक बने हुए हैं और जो चतुर्थाश्रम में ईश्वर की स्तुति में लगे हुए हैं, इन सभी आश्रमवासियों को सुव्यवस्था में रखे ॥ १२ । १८ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=राजा । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

वि॒द्मा तें अग्ने त्रे॒धा त्र॒याणिं वि॒द्मा ते॒ धाम॒ विभृ॑ता पुरु॒त्रा ।
वि॒द्मा ते॒ नाम॑ पर॒मं गुहा॒ यद्वि॒द्मा तमु॒त्सं यत॑ऽआज॒गन्थ॑ ॥ १९ ॥

पदार्थः—(विद्म) जानीयाम । **अत्र चतसृषु क्रियासु संहितायां द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः ।** (ते) तव (अग्ने) विद्वन् ! (त्रेधा) त्रिभिः प्रकारैः (त्रयाणि) त्रीणि (विद्म) (ते) तव (धाम) धामानि (विभृता) विशेषेण धर्तुं योग्यानि (पुरुत्रा) पुरूणि=बहूनि (विद्म) (ते) (नाम) (परमम्) (गुहा) गुहायां स्थितं गुप्तम् (यत्) (विद्म) (तम्) (उत्सम्) कूपइवार्द्रीकरम् । **उत्स इति कूपना० ॥ निघं० ३ । २३ ॥** (यतः) यस्मात् (आजगन्थ) आगच्छेः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—'विद्म' यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' इस पाणिनीय सूत्र से दीर्घ हुआ है । 'उत्सम्' यहाँ उत्स शब्द निघण्टु में (३ । २३) में कूप नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! ते तव यानि त्रेधा त्रयाणि कर्माणि सन्ति तानि वयं विद्म । हे स्थानेश ! ते यानि विभृता पुरुत्रा धाम सन्ति तानि वयं विद्म । हे विद्वन् ! ते तव यद् गुहा परमं नामास्ति तद्वयं विद्म । यतस्त्वमाजगन्थ तं त्वामुत्समिव विद्म विजानीमः ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** विद्वन् ! **ते**=**तव यानि त्रेधा** त्रिभिः प्रकारैः **त्रयाणि** त्रीणि **कर्माणि सन्ति, तानि वयं विद्म** जानीयाम ।

हे स्थानेश ! **ते** तव **यानि विभृता** विशेषेण धर्त्तुं योग्यानि **पुरुत्रा** पुरूणि=बहूनि **धाम** धामानि **सन्ति, तानि वयं विद्म** जानीयाम ।

हे विद्वन् ! **ते**=**तव यद् गुहा** गुहायां स्थितं गुप्तं **परमं नाम अस्ति, तद्वयं विद्म** जानीयाम ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् राजन् ! (ते) आपके जो (त्रेधा) तीन प्रकार के (त्रयाणि) तीन कर्म हैं उन्हें हम (विद्म) जानें ।

हे स्थानों के स्वामी ! (ते) आप के जो (विभृता) विशेष धारण करने योग्य (पुरुत्रा) बहुत (धाम) नाम, जन्म, स्थान हैं उन्हें हम (विद्म) जानें ।

हे विद्वान् राजन् ! (ते) आपका जो (गुहा) गुहा में स्थित=गुप्त (परमम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम है उसे हम (विद्म) जानें ।

यतः यस्मात् **त्वम् आ+जगन्थ** आगच्छेः, तं त्वाम् उत्सम् कूप इवाऽऽर्द्रीकरम् **इव विद्म=विजानीमः** ॥ १२ । १९ ॥

(यतः) जिससे आप(आ+जगन्थ)आते हो, हमें प्राप्त होते हो सो आपको हम (उत्सम्) आर्द्र=तृप्त करने वाले कूए के समान (विद्म) जानें।

[हे अग्ने ! ते=तव'''त्रयाणि कर्माणि, धाम, नाम अस्ति तद् वयं विद्म]

भावार्थः—प्रजास्थैर्जनैराज्ञा च राजनीतिकर्माणि, स्थानानि, सर्वेषां नामानि च विज्ञेयानि ।

भावार्थ—प्रजा और राजा राजनीति के कार्यों, स्थानों और सबके नामों को जानें ।

[त्वामुत्समिव विद्म]

यथा कृषीवलाः कूपाज्जलमुत्कृष्य क्षेत्रादीनि तर्पयन्ति तथैव प्रजास्थैर्धनादिभी राजा तर्पणीयो, राज्ञा प्रजाश्च तर्प्पणीयाः ॥ १२ । १९ ॥

जैसे—किसान कूए से जल को निकाल कर खेत आदि को तृप्त करते हैं वैसे ही प्रजा-जन धन आदि से राजा को तृप्त करें, और राजा प्रजा को तृप्त करे ॥ १२ । १९ ॥

भा० पदार्थः--धाम=स्थानानि । नाम=सर्वेषां नामानि । उत्सम्=कूपम् ॥

भाष्यसार--राज-प्रजाधर्म--राजा और प्रजा को योग्य है कि दोनों मिल कर एक दूसरे के सहयोग से राज्य के कार्यों को चलायें। एक दूसरे से छिपा कर कोई कार्य न करें। राज्यसम्बन्धी कार्यों को, स्थानों को और नामों को दोनों ही जानने का प्रयत्न करें। प्रजा धनादि से राजा को तथा राजा उस धन से प्रजा के हितकर कार्यों से प्रजा को सदा तृप्त किया करे ॥ १२ । १९ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=राजा** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुना राजप्रजासम्बन्धमाह ॥

फिर राजा और प्रजा के सम्बन्ध का उपदेश किया है ॥

समुद्रे त्वा नृमणा ऽ अप्स्वन्तर्नृचक्षा ऽ ईधे दिवो अग्न ऽ ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा ऽ अवर्धन् ॥ २० ॥

पदार्थः—(**समुद्रे**) अन्तरिक्षे (**त्वा**) त्वाम् (**नृमणाः**) नायकेषु मनो यस्य सः (**अप्सु**) अन्नेषु जलेषु वा (**अन्तः**) मध्ये (**नृचक्षाः**) नृषु=मनुष्येषु चक्षो=दर्शनं यस्य सः (**ईधे**) प्रदीपये (**दिवः**) सूर्यप्रकाशस्य (**अग्ने**) विद्वन् (**ऊधन्**) ऊधनि=उषसि । **ऊध इत्युषसो नामसु० ॥ निघं० १ । ८ ॥** (**तृतीये**) त्रयाणां पूरके (**त्वा**) त्वाम् (**रजसि**) लोके (**तस्थिवांसम्**) तिष्ठन्तम् (**अपाम्**) जलानाम् (**उपस्थे**) समीपे (**महिषाः**) महान्तो विद्वांसः । **महिष इति महन्नामसु० ॥ निघं० ३ । ३ ॥** (**अवर्धन्**) वर्धेरन् ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—'ऊधन्' यहाँ ऊधस् शब्द (निघं० १ । ८) में उषा के नामों में पढ़ा है। 'महिषाः' यहाँ महिष शब्द (निघं० ३ । ३) में महन्नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे अग्ने ! नृमणा अहं यं त्वा समुद्रेऽग्निमिवेधे नृचक्षा अहमप्स्वन्तरीधे दिव ऊधन्नीधे तृतीये रजसि तस्थिवांसं सूर्यमिव यं त्वामपामुपस्थे महिषा अवर्धन् स त्वमस्मान् सततं वर्धय ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! **नृमणाः** नायकेषु मनो यस्य सः, **अहं यं त्वा** त्वां **समुद्रे** अन्तरिक्षे **अग्निमिव ईधे** प्रदीपये, **नृचक्षाः** नृषु=मनुष्येषु चक्षो=दर्शनं यस्य सः, **अहम् अप्सु** अन्नेषु जलेषु वा **अन्तः** मध्ये **ईधे** प्रदीप्तये, **दिवः** सूर्य्यप्रकाशस्य **ऊधन्** ऊधनि=उषसि **ईधे** प्रदीप्तये, **तृतीये** त्रयाणां पूरके **रजसि** लोके **तस्थिवांसं** तिष्ठन्तं **सूर्य्यमिव यं** [**त्वा**]=त्वाम् **अपां** जलानाम् **उपस्थे** समीपे **महिषाः** महान्तो विद्वांसः=**अवर्धन्** वर्धेरन्; **स त्वमस्मान् सततं वर्धय** ॥ १२ । २० ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् राजन् ! (नृमणाः) नेताओं में मन वाला मैं (त्वा) आपको (समुद्रे) अन्तरिक्ष में अग्नि के समान (ईधे) प्रदीप्त करता हूँ, (नृचक्षाः) सब मनुष्यों को देखने वाला मैं आपको (अप्सु) अन्न वा जल (अन्तः) में (ईधे) प्रकाशित करता हूँ । (दिवः) सूर्य-प्रकाश की (ऊधन्) उषा में, (तृतीये) तीसरे (रजसि) लोक में (तस्थिवांसम्) स्थित सूर्य के समान (त्वा) आपको (अपाम्) जलों के (उपस्थे) पास में (महिषा) महान् विद्वान् लोग (अवर्धन्) बढ़ावें सो आप हमें सदा बढ़ाओ ॥ १२ । २० ॥

[हे अग्ने ! ··· यं त्वा ··· महिषा अवर्धन्, स त्वमस्मान् सततं वर्धय]

भावार्थः—प्रजासु वर्तमानाः सर्वे प्रधान-पुरुषा राजवर्गं नित्यं वर्द्धयेयुः, राजपुरुषाः प्रजा-पुरुषाँश्च ॥ १२ । २० ॥

भावार्थ—प्रजा में विद्यमान सब प्रधान पुरुष राज-वर्ग को नित्य बढ़ावें, और राज-पुरुष प्रजाजनों को बढ़ावें ॥ १२ । २० ॥

भा० पदार्थः—महिषाः=प्रधानपुरुषाः ॥

भाष्यसार—**राज-प्रजाधर्म**—प्रजाजनों को, उन्नति पथ पर ले जाने वाले, नृचक्षाः= सभी मनुष्यों को समानता से देखने वाले, अन्नादि उत्पन्न करने में सदा सहायक, सब मनुष्यों में उत्कृष्ट राजा को सदा बढ़ाना चाहिये । इसी प्रकार राजा प्रजा को बढ़ाया करे ॥ १२ । २० ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=विद्युत्** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ मनुष्याः कीदृशा भवेयुरित्युपदिश्यते ॥

अब मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो ऽ अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**अक्रन्दत्**) गमयति (**अग्निः**) विद्युत् (**स्तनयन्निव**) यथा शब्दयन् (**द्यौः**) सूर्यः (**क्षामा**) पृथिवीम् । अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः सुपांसुलुगिति विभक्तिलोपः । (**रेरिहत्**) ताडयति (**वीरुधः**) ओषधीः । वीरुध ओषधयो भवन्ति विरोहणात् ॥ निरु० ६ । ३ ॥ (**समञ्जन्**) प्रकटयन् (**सद्यः**) शीघ्रम् (**जज्ञानः**) जायमानः (**वि**) (**हि**) प्रसिद्धौ (**ईम्**) सर्वतः (**इद्धः**) प्रदीप्यमानः (**अख्यत्**) ख्याति (**आ**) (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**भानुना**) किरणसमूहेन (**भाति**) राजति (**अन्तः**) मध्ये ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—'क्षामा' यहाँ 'अन्येषामपि दीर्घः' इस पाणिनीय सूत्र से उपधा दीर्घ और 'सुपां सुलुक्०' सूत्र से विभक्ति का लोप हुआ है । 'विरुधः' यहाँ 'वीरुध' शब्द को महर्षि यास्क ने (**निरु० ६ । ३**) में ओषधि वाचक माना है । विरुध इसलिये कहते हैं क्योंकि ये विशेष रूप से पैदा होती रहती हैं ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यथा द्यौः सूर्योऽग्निस्तनयन्निव वीरुधः समञ्जन् सन् सद्यो ह्यक्रन्दत् । क्षामा रेरिहदयं जज्ञान इद्धः सन् भानुना रोदसी ई व्यख्यत् । ब्रह्माण्डस्यान्तरा भातीति तथा भवत ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यथा द्यौः**=**सूर्य्यः अग्निः** विद्युत् **स्तनयन्निव** यथा शब्दयन् **वीरुधः** ओषधीः **समञ्जन्** प्रकटयन् **सन् सद्यः** शीघ्रं **हि** प्रसिद्धम् **अक्रन्दत्** गमयति, **क्षामा** पृथिवीं **रेरिहत्** ताडयति, **अयं जज्ञानः** जायमानः **इद्धः** प्रदीप्यमानः **सन् भानुना** किरणसमूहेन **रोदसी** प्रकाशभूमी **ई** सर्वतः **वि+अख्यत्** ख्याति, **ब्रह्माण्डस्यान्तः** मध्ये **आ+भाति** राजति, **इति तथा भवत** ॥ १२ । २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(द्यौः) सूर्य (अग्निः) और विद्युत् (स्तनयन्निव) शब्द करती हुई (वीरुधः) ओषधियों को (समञ्जन्) उत्पन्न करती हुई (सद्यः) शीघ्र (हि) प्रसिद्ध रूप में (अक्रन्दत्) प्राप्त कराती है, तथा (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत्) ताडित करती है, और यह (जज्ञानः) उत्पन्न होकर (इद्धः) प्रदीप्त होती हुई (भानुना) किरणों से (रोदसी) प्रकाश और भूमि को (ईम्) सब ओर से (वि+अख्यत्) विख्यात करती है, तथा ब्रह्माण्ड के (अन्तः) मध्य में (आ+भाति) चमकती है वैसे—तुम बनो ॥ १२ । २१ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं यथा द्यौः=सूर्यः, अग्निः स्तनयन्, वीरुधः समञ्जन् ··· ब्रह्माण्डस्याऽन्तराभाति,··· तथा भवत]

भावार्थः—ईश्वरेण यदर्थः सूर्य उत्पादितः स विद्युदिव सर्वान् लोकानाकृष्य, संप्रकाश्य, ओषध्यादिवृद्धिहेतुः सन् सर्वभूगोलानां मध्ये यथा विराजते तथा राजादिभिर्भवितव्यम् ॥ १२ । २१ ॥

भावार्थ—ईश्वर ने जिस लिए सूर्य उत्पन्न किया है वह विद्युत् के समान सब लोकों का आकर्षण, प्रकाशन करके ओषधि आदि की वृद्धि का हेतु होकर सब भूगोलों के मध्य में जैसे विराजमान है वैसे राजा आदि मनुष्य भी होवें ॥

भाष्यसार—**सूर्याग्नि का कार्य**—सूर्य उत्पन्न होकर पृथिवी आदि लोकों का आकर्षण करके उनको प्रकाशित करता है । सूर्य ही विविध-ओषधियों को बढ़ाता है और परिपक्व करता है । सूर्य अपनी किरणों से सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है ॥ १२ । २१ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=**राजा** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अत्र राजकर्मणि कीदृग्जनोऽभिषेचनीय इत्याह ॥

यहाँ राज-कार्य में कैसे पुरुष को राजा बनावें, यह उपदेश किया है ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो ऽ अप्सु राजा विभात्यग्रं ऽ उषसामिधानः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**श्रीणाम्**) लक्ष्मीणां मध्ये (**उदारः**) य उत्कृष्टं परीक्ष्य ऋच्छति=ददाति (**धरुणः**) धर्त्ताऽऽधारभूतः (**रयीणाम्**) धनानाम् (**मनीषाणाम्**) प्रज्ञानाम्, याभिर्मन्यन्ते=जानन्ति ता मनीषाः=प्रज्ञास्तासाम् (**प्रार्पणः**) प्रापकः (**सोमगोपाः**) सोमानामोषधीनामैश्वर्य्याणां वा रक्षकः (**वसुः**) कृतब्रह्मचर्य्यः (**सूनुः**) सुतः (**सहसः**) बलवतः पितुः (**अप्सु**) प्राणेषु (**राजा**) प्रकाशमानः (**वि**) (**भाति**) प्रदीप्यते (**अग्रे**) संमुखे (**उषसाम्**) प्रभातानाम् (**इधानः**) प्रदीप्यमानः ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यो जन उषसामग्र इधानः सूर्य इव श्रीणामुदारो रयीणां धरुणो मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः सहसः सूनुर्वसुः सन्नप्सु राजा विभाति तं सर्वाध्यक्षं कुरुत ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं **यो जन उषसां** प्रभातानाम् **अग्रे** संमुखे **इधानः**=**सूर्यः** प्रदीप्यमानः **इव श्रीणां** लक्ष्मीणां मध्ये **उदारः** य उत्कृष्टं परीक्ष्य ऋच्छति=ददाति, **रयीणां** धनानां **धरुणः** धर्त्ताऽऽधारभूतः **मनीषाणां** प्रज्ञानां, याभिर्मन्यन्ते=जानन्ति ता मनीषाः=प्रज्ञास्तासां **प्रार्पणः** प्रापकः, **सोमगोपाः** सोमानामोषधीनामैश्वर्य्याणां वा रक्षकः, **सहसः** बलवतः पितुः **सूनुः** सुतः **वसुः** कृतब्रह्मचर्य्यः **सन्नप्सु** प्राणेषु **राजा** प्रकाशमानः **वि+भाति** प्रदीप्यते, तं **सर्वाऽध्यक्षं कुरुतः** ॥ १२ । २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम जो (उषसाम्) प्रभात-वेलाओं के (अग्रे) सम्मुख (इधानः) प्रदीप्यमान सूर्य के समान, (श्रीणाम्) लक्ष्मी का (उदारः) परीक्षापूर्वक उत्कृष्ट दान करने वाला, (रयीणाम्) धनों का (धरुणः) आधार, (मनीषाणाम्) जानने का साधन प्रज्ञाओं=बुद्धियों को (प्रार्पण) प्राप्त कराने वाला, (सोमगोपाः) सोम=ओषधियों वा ऐश्वर्यों का रक्षक, (सहसः) बलवान् पिता का (सूनुः) पुत्र (वसुः) वसु ब्रह्मचारी बनकर (अप्सु) प्राणों में (राजा) प्रकाशमान होकर (वि+भाति) चमकता है, उसे सर्वाध्यक्ष=राजा बनावें ॥ १२ । २२ ॥

[हे मनुष्याः ! यो जनः····श्रीणामुदारः, रयीणां धरुणः, मनीषाणां प्रापणः, सहसः सूनुर्वसुः, अप्सु राजा, उषामग्रं इधानः सूर्य इव, सोमगोपाः]

भावार्थः—मनुष्यैर्यः सुपात्रेभ्यो दाता, धनस्य व्यर्थव्ययस्याकर्त्ता, सर्वेषां विद्याबुद्धिप्रदः, कृतब्रह्मचर्यस्य जितेन्द्रियस्य तनयः, योगाङ्गानुष्ठानेन प्रकाशमानः, सूर्यवत् शत्रुगुणकर्मस्वभावानां मध्ये देदीप्यमानः, पितृवत् प्रजापालको जनोऽस्ति, स राज्यकरणायाभिषेचनीयः ॥ १२ । २२ ॥

भावार्थ--मनुष्य-जो सुपात्रों को दान देने वाला, धन को व्यर्थ व्यय न करने वाला, सब को विद्या और बुद्धि देने वाला, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय का पुत्र, योगाङ्गों के अनुष्ठान से प्रकाशमान, सूर्य के समान शत्रु के गुण, कर्म, स्वभावों में देदीप्यमान, पिता के समान प्रजा का पालक पुरुष है, उसका राज्य-कर्म के लिये अभिषेक करें ॥ १२ । २२ ॥

भा० पदार्थः--उदारः=सुपात्रेभ्यो दाता । धरुणः=व्यर्थव्ययस्याकर्त्ता । मनीषाणाम्=विद्याबुद्धीनाम् । प्रार्पणः=प्रदः । सहसः=कृतब्रह्मचर्यस्य जितेन्द्रियस्य । सूनुः=तनयः । अप्सु=योगाङ्गानुष्ठाने । राजा=प्रकाशमानः । उषसाम्=शत्रुगुणकर्मस्वभावानाम् । अग्रे=मध्ये । इधानः=देदीप्यमानः । सोमगोपाः=पितृवत् प्रजापालकः ।

भाष्यसार--**राजधर्म**--जिसने ब्रह्मचर्य का पालन करके सभी प्रकार की शक्तियों का विकास किया है और जो सूर्य की तरह शत्रु वर्ग में प्रकाशमान है । और शुभ कार्यों में लोभ न करके उदारता से दान देने वाला है और सभी प्रकार की प्राणपोषक ओषधियों का रक्षक हो । वह राजा बनने के योग्य है । राजा बनाने से पूर्व यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ऊँचे कुल में पैदा हुआ हो तथा शूरवीर पिता का पुत्र हो ॥ १२ । २२ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=**राजा** । आर्चीत्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजकर्म में कैसे पुरुष का अभिषेक करे, यह फिर उपदेश किया है ॥

विश्व॑स्य के॒तुर्भुव॑नस्य॒ गर्भ॒ऽ आ रोद॑सी ऽ अपृणा॒ज्जाय॑मानः ।
वी॒डुं चि॒दद्रि॑मभिनत् परा॒यञ्जना॒ यद॒ग्निमय॑जन्त॒ पञ्च॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**विश्वस्य**) (**केतुः**) (**भुवनस्य**) भवन्ति भूतानि यस्मिंस्तस्य लोकमात्रस्य (**गर्भः**) अन्तःस्थः (**आ**) (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**अपृणात्**) प्रपूर्यात् (**जायमानः**) उत्पद्यमानः (**वीडुम्**) दृढबलम् (**चित्**) इव (**अद्रिन्**) मेघम् (**अभिनत्**) भिन्द्यात् (**परायन्**) परेतः सन् (**जनाः**) (**यत्**) यः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**अयजन्त**) संगमयन्ति (**पञ्च**) प्राणाः ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ! यद्यो विद्वान् विश्वस्य भुवनस्य केतुगर्भो जायमानः परायन् रोदसी आपृणाद्वीडुमद्रिमभिनत् पञ्चजना अग्निमयजन्त चिदिव विद्यादिशुभगुणान् प्रकाशयन्तं न्यायाधीशं मन्यध्वम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यत्=यो विद्वान् विश्वस्य भुवनस्य भवन्ति भूतानि यस्मिंस्तस्य लोकमात्रस्य केतुः, गर्भः अन्तस्थः, जायमानः उत्पद्यमानः परायन् परेतः सन् रोदसी प्रकाशभूमी आ+अपृणात् प्रपूर्यात्, वीडुं दृढबलम् अद्रिंमेघम् अभिनत् भिन्द्यात् पञ्च प्राणाः जनाः अग्निं विद्युतम् अयजन्त संगमयन्ति, चित्=इव विद्याऽऽदिशुभगुणान् प्रकाशयेत्, तं न्यायाधीशं मन्यध्वम् ॥ १२ । २३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो विद्वान् (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) प्राणियों के निवास-स्थान लोकमात्र को (केतुः) प्राप्त करने वाला, (गर्भः) अन्दर रहने वाला, (जायमानः) सुखों का उत्पादक, (परायन्) शत्रुओं का उच्छेदक होकर (रोदसी) द्यौ और भूमि को (आ+अपृणात्) परिपूर्ण करे, (वीडुम्) दृढ़ बल वाले (अद्रिम्) मेघ का (अभिनत्) भेदन करे, (चित्) जैसे (पञ्च) पाँच प्राण रूप पुरुष (अग्निम्) विद्युत् का (अयजन्त) संग करते हैं वैसे विद्या आदि शुभगुणों को प्रकाशित करे, उसे न्यायाधीश मानें ॥ १२ । २३ ॥

[हे मनुष्या ! यत्=यो विद्वान् विश्वस्य भुवनस्य केतुः, वीडुमद्रिमभिनत्, गर्भः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा भुवनस्य मध्ये सूर्य आकर्षणेन सर्वविद्याप्रापकः, राज्य-धर्त्ता, शत्रूच्छेदकः, सुखानां जनयिता, गर्भस्य मातेव प्रजापालको विद्वान् भवेत्, तं राज्याधिकारिणं कुर्यात् ॥ १२ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे लोक में सूर्य आकर्षण से सबको धारण करता है वैसे जो सब विद्याओं को प्राप्त कराने वाला, राज्य को धारण करने वाला, शत्रुओं का उच्छेद करने वाला, सुखों का उत्पादक, जैसे माता गर्भ का पालन करती है वैसे प्रजा का पालक विद्वान् हो, उसे राज्याधिकारी बनावें ॥

भाष्यसार—१. **राजा के योग्य गुण**—राजा स्वयं विद्वान् होकर, प्राणीमात्र को सुख प्राप्त कराने की इच्छा से सभी के निवास की व्यवस्था करे। सभी मनुष्य के मन की बातों को दूतों के द्वारा जानकर शत्रुओं का विनाश करे और प्रजा के सुखों को बढ़ावे । अपने पराक्रम से उत्पन्न यश से द्युलोक तथा पृथिवी लोक को परिपूर्ण करे। यज्ञादि के द्वारा वृष्टि को न होने देने वाले तत्त्वों का भेदन करे। और विद्यादि शुभ गुणों की वृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा यह है जैसे सूर्य सब लोकों का आकर्षण

करके प्रकाशित करता है वैसे ही राजा भी अपने सद्व्यवहार से सब प्रजा को सुख देता हुआ विद्यादि को बढ़ाता रहे ॥ १२ । २३ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः=कारणाख्यः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

उ॒शिक् पा॑व॒को अ॑र॒तिः सु॑मे॒धा मर्त्ये॑ष्व॒ग्निर॒मृतो॒ नि धा॑यि ।
इय॑र्त्ति धू॒मम॑रु॒षं भरि॑भ्र॒दुच्छु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ द्यामिन॑क्षन् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**उशिक्**) कामयमानः (**पावकः**) पवित्रकर्त्ता (**अरतिः**) ज्ञाता (**सुमेधाः**) शोभनप्रज्ञः (**मर्त्येषु**) (**अग्निः**) कारणाख्यः (**अमृतः**) अविनाशी (**नि**) (**धायि**) निधीयते (**इयर्त्ति**) प्राप्नोति (**धूमम्**) (**अरुषम्**) रूपम् (**भरिभ्रत्**) अत्यन्तं धरन् पुष्यन् (**उत्**) (**शुक्रेण**) आशुकरेण (**शोचिषा**) दीप्त्या (**द्याम्**) सूर्यम् (**इनक्षन्**) व्याप्नुवन् । इनक्षतीति व्याप्तिकर्म० ॥ निघं० २ । १८ ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—'इनक्षन्' यहाँ व्याप्त्यर्थक-इनक्षति क्रिया है। इसका निघण्टु (२ । १८) में व्याप्त्यर्थक क्रियाओं में पाठ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमीश्वरेण मर्त्येषु य उशिक् पावकोऽरतिः सुमेधाऽमृतोऽग्निर्निधायि यः शुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् धूममरुषं भरिभ्रदुदियर्त्ति तमीश्वरमुपाध्वमुपकुरुत वा ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयमीश्वरेण मर्त्येषु य उशिक्** कामयमानः **पावकः** पवित्रकर्त्ता (**अरतिः**) ज्ञाता **सुमेधाः** शोभनप्रज्ञः **अमृतः** अविनाशी **अग्निः** कारणाऽऽख्यः **नि+धायि** निधीयते, **यः शुक्रेण** आशुकरेण **शोचिषा** दीप्त्या **द्यां** सूर्यम् **इनक्षन्** व्याप्नुवन् **धूमम् अरुषं** रूपं **भरिभ्रत्** अत्यन्तं धरन् पुष्यन् **उत्+इयर्त्ति** प्राप्नोति **तमीश्वरमुपाध्वमुपकुरुत वा** ॥ १२ । २४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—ईश्वर ने मनुष्यों में जो (उशिक्) कामना के योग्य, (पावकः) पवित्र करने वाला, (अरतिः) ज्ञाता, (सुमेधाः) मेधावी विद्वान् तथा (अमृतः) अविनाशी (अग्निः) कारण रूप अग्नि (नि+धायि) स्थापित किया है, जो (शुक्रेण) आशुकारी (शोचिषा) दीप्ति से (द्याम्) सूर्य को (इनक्षन्) व्याप्त करता हुआ (धूमम्) धूम (अरुषम्) रूप को (भरिभ्रत्) अत्यन्त धारण करके (उत्+इयर्त्ति) ऊपर पहुँचता है, उस ईश्वर की उपासना करो वा उपकार करो ॥ १२ । २४ ॥

[हे मनुष्याः !···ईश्वरेण मर्त्येषु···अरतिः सुमेधा···अग्निर्निधायि]

भावार्थः—मनुष्यैरीश्वरसृष्टानां पदार्थानां कारणकार्यपुरस्सरं विज्ञानं कृत्वा प्रज्ञोन्नेया ॥

भावार्थ—मनुष्य—ईश्वर के रचे पदार्थों का कारण कार्य पूर्वक विज्ञान करके बुद्धि को बढ़ावें ॥

भाष्यसार—**ईश्वर के गुणों का वर्णन**—ईश्वर सब से श्रेष्ठ होने से कामना करने के योग्य, पवित्र करने वाला, सर्वज्ञ और सुमेधा वाला है। कभी नष्ट न होने से अमृत है, अपनी दीप्ति से

सूर्यादि को प्रकाशित करता है। वह आशुकारी होने से शुक्र है। ईश्वर ही सारी सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता तथा भर्त्ता है। वही उपस्य है ॥ १२ । २४ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=जगदीश्वरः । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्नरैः किं किं वेद्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या-क्या जानना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

दृशानो रुक्म ऽ उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो ऽ अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ २५ ॥

पदार्थः--(दृशानः) दर्शकः (रुक्मः) (उर्व्या) पृथिव्या सह (वि) (अद्यौत्) प्रकाशयति (दुर्मर्षम्) दुर्गतो मर्षः=सेचनं यस्मात्तत् (आयुः) जीवनम् (श्रिये) शोभायै (रुचानः) प्रदीपकः (अग्निः) तेजः (अमृतः) नाशरहितः (अभवत्) (वयोभिः) व्यापकैर्गुणैः (यत्) यस्मात् (एनम्) (द्यौः) स्वप्रकाशः (अजनयत्) जनयति (सुरेताः) शोभनानि रेतांसि=वीर्याणि यस्य सः ॥ २५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यद्यो दृशानो रुक्मः श्रिये रुचानोऽमृतो दुर्मर्षमायुः कुर्वन्नमृतोऽग्निरुर्व्या सह व्यद्यौद्वयोभिः सहाभवत् । तद्द्यौः सुरेता जगदीश्वरो यदेनमजनयत्तं तत्तां च विजानीत ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यत्**=**यो दृशानः** दर्शकः **रुक्मः श्रिये** शोभायै **रुचानः** प्रदीपकः **अमृतः** नाशरहितः **दुर्मर्षं** दुर्गतो मर्षः=सेचनं यस्मात् तत्, **आयुः** जीवनं **कुर्वन्नमृतः** नाशरहितः **अग्निः** तेजः **उर्व्या** पृथिव्या **सह वि+अद्यौत्** प्रकाशयति, **वयोभिः** व्यापकैर्गुणैः **सह अभवत्, तद् द्यौः** स्वप्रकाशः **सुरेताः**=**जगदीश्वरः** शोभनानि रेतांसि=वीर्य्याणि यस्य सः, **यत्** यस्माद् **एनम् अजनयत्** जनयति **तं तत्तां च विजानीत** ॥१२।२५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(यत्) जो (दृशानः) दिखाने वाला, (रुक्मः) सुनहरी, (श्रिये) शोभा के लिए (रुचानः) प्रदीपक, (अमृतः) नाशरहित, (दुर्मर्षम्) दुःख-रहित (आयुः) जीवन को बनाने वाला (अमृतः) अविनाशी (अग्निः) तेजः-स्वरूप अग्नि (उर्व्या) पृथिवी के साथ पदार्थों को (वि+अद्यौत्) प्रकाशित करता है, (वयोभिः) व्यापक-गुणों से युक्त (अभवत्) है, वह (द्यौः) स्वप्रकाशस्वरूप (सुरेताः) उत्तम बलों वाला जगदीश्वर (यत्) जिससे (एनम्) इसे (अजनयत्) उत्पन्न करता है, उस जगदीश्वर, आयु और विद्युत्=अग्नि को जानो ॥ १२ । २५ ॥

[हे मनुष्याः! यूयं ...वयोभिः सह ...तद् द्यौः सुरेताः=जगदीश्वरो यदेनमजनयत्, तं तत् तां च विजानीत]

भावार्थः—हे मनुष्या जगत्स्रष्टारमनादिमीश्वरमनादिजगत्कारणं गुणकर्मस्वभावैः सह विज्ञायोपासत उपयुञ्जते च,

भावार्थ—जो मनुष्य जगत् के स्रष्टा, अनादि ईश्वर एवं अनादि जगत् के कारण=प्रकृति को गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर ईश्वर की उपासना और प्रकृति का उपयोग करते हैं—

[रुक्मः श्रिये......आयुः कुर्वन्]

ते दीर्घायुषः श्रीमन्तो जायन्ते ॥ १२ । २५ ॥

वे दीर्घायु, श्रीमान् होते हैं ॥ १२ । २५ ॥

भा० पदार्थः--वयोभिः=गुणकर्मस्वभावैः । आयुः=दीर्घायुः ।

भाष्यसार—**परमेश्वर के गुण तथा कर्म**—स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर त्रिकाल में भी नाशरहित होने से अमृत है। सभी प्रकार की शक्तियों से पूर्ण होने से सुरेता है। वह दुःखरहित है अतः दुर्मर्ष कहलाता है। वह सूर्यादि का तथा वेद ज्ञान का निर्माण करके सबको दिखाने वाला है, सबको जीवन शक्ति देने वाला है। वह सभी गुणों से युक्त होने से पृथिव्यादि को सूक्ष्म प्रकृति से बनाने वाला है॥ १२। २५॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=विद्वान् । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः॥

पुनर्विद्वद्भिः कीदृशः पाचकः स्वीकार्य इत्याह॥

फिर विद्वान् लोग कैसे रसोइया को स्वीकार करें, यह उपदेश किया है॥

यस्ते॑ अ॒द्य कृ॒णव॑द्भद्रशोचेऽपू॒पं दे॑व घृ॒तव॑न्तमग्ने ।
प्र तं न॑य प्रत॒रं वस्यो॒ऽअच्छा॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

पदार्थः—(यः) (ते) तव (**अद्य**) (**कृणवत्**) कुर्यात् (**भद्रशोचे**) भद्रा=भजनीया शोचिर्दीप्तिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ (**अपूपम्**) (**देव**) दिव्यभोगप्रद (**घृतवन्तम्**) बहु घृतं विद्यते यस्मिन् तम् (**अग्ने**) विद्वन् (**प्र**)(**तम्**) (**नय**) प्राप्नुहि (**प्रतरम्**) पाकस्य संतारकम् (**वस्यः**) अतिशयितं वसु तत् (**अच्छ**) (**अभि**) (**सुम्नम्**) सुखस्वरूपम् (**देवभक्तम्**) देवैर्विद्वद्भिः सेवितम् (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन्॥ २६॥

अन्वयः—हे भद्रशोचे यविष्ठ देवाग्ने ! यस्ते तव घृतवन्तमभिसुम्नं वस्यो देवभक्तमपूपमच्छ कृणवत्तं प्रतरं पाककर्त्तारं त्वमद्य प्रणय॥ २६॥

सपदार्थान्वयः--हे **भद्रशोचे** भद्रा=भजनीया शोचिर्दीप्तिर्यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **यविष्ठ** अतिशयेन युवन् ! **देव** दिव्यभोगप्रद ! **अग्ने** विद्वन् ! **यः ते**=तव **घृतवन्तं** बहु घृतं विद्यते यस्मिन् तम्, **अभि+सुम्नं** सुखस्वरूपं **वस्यः** अतिशयितं वसु तत्, **देवभक्तं** देवैर्विद्वद्भिः सेवितम् **अपूपम् अच्छ कृणवत्** कुर्यात् **तं प्रतरं**=**पाककर्त्तारं** पाकस्य सन्तारकं **त्वम् अद्य प्र+णय** प्राप्नुहि॥

भाषार्थ—हे (भद्रशोचे) उत्तम दीप्ति वाले (यविष्ठ) अत्यन्त युवक, (देव) दिव्य भोगों को प्रदाता, (अग्ने) विद्वान् ! जो (ते) आपके (घृतवन्तम्) बहुत घृतवाले, (अभि+सुम्नम्) सुखस्वरूप, (वस्यः) अत्यन्त सुगन्धित, (देवभक्तम्) विद्वानों से सेवित (अपूपम्) पूआ को (अच्छ) अच्छा (कृणवत्) बनावे उसे (प्रतरम्) पाचक को आप (अद्य) शीघ्र (प्र+णय) प्राप्त करो॥

[यः···देवभक्तमपूपमच्छ कृणवत्, तं प्रतरं=पाककर्त्तारं त्वमद्य प्रणय]

भावार्थः—मनुष्यैर्विद्वत्सुशिक्षितोऽत्युत्तमानां व्यञ्जनानां सुस्वादिष्ठानामन्नानां रुचिकराणां निर्माता पाककर्त्ता संग्राह्यः॥ १२। २६॥

भावार्थ—मनुष्य—विद्वानों द्वारा सुशिक्षित, अत्युत्तम व्यञ्जनों तथा अत्यन्त स्वादिष्ठ, रुचिकारक अन्नों के निर्माता को पाचक स्वीकार करें॥ १२। २६॥

भाष्यसार—**पाचक के योग्य गुण**—पाक शास्त्र में सुशिक्षित, दिव्य भोगों का प्रदाता और घृतादि पौष्टिक तथा सुगन्धित पदार्थों से युक्त भोजन के निर्माण में योग्य पाचक होना चाहिये। जो अपूपादि उत्तमोत्तम पदार्थों के निर्माण में दक्ष हो। और विद्वानों के प्रति श्रद्धाभाव भी रखता हो।

वत्सप्रीः । **अग्निः=विद्वान्** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् लोग कैसे रसोई को स्वीकार करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न ऽ उक्थ ऽ उक्थ आभज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो ऽ अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदद्दुज्जनित्वैः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(आ) (तम्) (भज) सेवस्व (सौश्रवसेषु) (अग्ने) विद्वन् (उक्थऽउक्थे) वक्तुं योग्ये योग्ये व्यवहारे (आ) (भज) (शस्यमाने) स्तूयमाने (प्रियः) कान्तः (सूर्य्ये) सूरिषु=स्तोतृषु भवे (प्रियः) सेवनीयः (अग्नाः) अग्नौ (भवाति) भवेत् (उत्) (जातेन) (भिनदत्) भिन्द्यात् (उत्) (जनित्वैः) जनिष्यमाणैः ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन्! त्वं यः सौश्रवसेषु वर्त्तमानस्तमाभज यः शस्यमान उक्थऽउक्थे प्रियः सूर्येऽग्ना च प्रियो जातेन जनित्वैः सहोद्भवात्युद्भिनदत्तं त्वमाभज ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=विद्वन्**! **त्वं यः सौश्रवसेषु वर्त्तमानस्तम् आ+भज** सेवस्व, **यः शस्यमाने** स्तूयमाने **उक्थऽउक्थे** वक्तुं योग्ये योग्ये व्यवहारे **प्रियः** सेवनीयः **सूर्य्ये** सूरिषु=स्तोतृषु भवे **अग्ना** अग्नौ **च प्रियः** कान्तः **जातेन जनित्वैः** जनिष्यमाणैः **सह उत्+भवाति** भवेत्, **उत्+भिनदत्** भिन्द्यात् **तं त्वम् आ+भज** सेवस्व ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान्! आप जो (सौश्रवसेषु) श्रेष्ठ धनों में वर्तमान हो उसका (आ+भजस्व) सेवन करो, जो (शस्यमाने) स्तुति करने योग्य (उक्थऽउक्थे) वाग्-व्यवहार में (प्रियः) प्रिय हो, जो (सूर्ये) स्तोता-जनों में और (अग्ना) अग्नि-सम्बन्धी कार्यों में (प्रियः) कमनीय हो, जो (जातेन) उत्पन्न हुए और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वाले पुरुषों के साथ (उत्+भवाति) रहने वाला हो, जो (उत्+भिनदत्) अन्न और व्यंजनों को भिन्न-भिन्न रखने वाला हो, उसका आप (आ+भज) सेवन करो ॥ १२ । २७ ॥

[**हे अग्ने!=विद्वन्! त्वं यः सौश्रवेषु वर्तमानः···प्रियः···उद्भिनदत् तं त्वमाभज**]

भावार्थः—मनुष्यैः पाककरणे साधुः, सर्वस्य प्रियः, अन्नव्यञ्जनानां भेदकः, पाचको भवेत् स स्वीकर्त्तव्यः ॥ ॥ १२ । २७ ॥

भावार्थ—मनुष्य पाक-कार्य में कुशल, सबका प्रिय, अन्न और व्यंजनों का भेदक, पाचक हो उसे स्वीकार करें ॥ १२ । २७ ॥

भा० पदार्थः—प्रियः=सर्वस्य प्रियः ।

भाष्यसार—**पाचक कैसा हो?**—जिसके मधुर वाग्व्यवहार से सब प्रसन्न हों । पाक-शास्त्र के जानने वालों में जिसकी प्रशंसा हो; पकाने की सभी क्रियाएँ जानता हो, और जो अन्न तथा व्यञ्जनों को पृथक्-पृथक् पकाना जानता हो, ऐसा पाचक होना चाहिये । पाचक श्रेष्ठ-धनों वाला भी हो क्योंकि धनाभाव से पीड़ित पाचक सदा दुःखप्रद होता है ॥ १२ । २७ ॥

वत्सप्रीः । **अग्निः**=विद्वान् ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैर्विद्याः कथं वर्द्धनीया इत्याह ॥

फिर मनुष्य लोग विद्या को किस प्रकार बढ़ावें, यह उपदेश किया है ॥

त्वाम॑ग्ने यज॑माना ऽ अनु द्यून् विश्वा वसु॑ दधिरे॒ वार्या॑णि ।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ वि व॑व्रुः ॥ २८ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (अग्ने) विद्वन् (यजमानाः) संगन्तारः (अनु) (द्यून्) दिनानि (विश्वा) सर्वाणि (वसु) वसूनि=द्रव्याणि (दधिरे) धरेयुः (वार्याणि) स्वीकर्त्तुमर्हाणि (त्वया) (सह) साकम् (द्रविणम्) धनम् (इच्छमानाः) व्यत्ययेनाऽऽत्मनेपदम् (व्रजम्) मेघम् (गोमन्तम्) प्रशस्ता गावः=किरणा यस्मिंस्तम् (उशिजः) मेधाविनः । उशिगिति मेधाविना० ॥ निघं० ३ । १५ ॥ (वि) (वव्रुः) वृणुयुः ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—'उशिजः' यहाँ उशिज् शब्द निघण्टु (३ । १५) में मेधावी नामों में पढ़ा है। 'इच्छमानाः' यहां 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्र से आत्मनेपद हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यन्त्वामाश्रित्योशिजो यजमानास्त्वया सह याननुद्यून् विश्वा वार्याणि वसु दधिरे द्रविणमिच्छमाना गोमन्तं व्रजं विवव्रुस्तथाभूता वयमपि भवेम ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=विद्वन् ! **यन्त्वामाश्रित्य उशिजः** मेधाविनः **यजमानाः** संगन्तारः **त्वया सह** साकं **यान् अनु+द्यून्** दिनानि **विश्वा** सर्वाणि **वार्याणि** स्वीकर्त्तुमर्हाणि **वसु** वसूनि=द्रव्याणि **दधिरे** धरेयुः, **द्रविणं** धनम् **इच्छमानाः गोमन्तं** प्रशस्ता गावः=किरणा यस्मिँस्तम् **व्रजं** मेघं **वि+वव्रुः** वृणुयुः, **तथाभूता वयमपि भवेम** ॥ १२ । २८ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आपका आश्रय करके (उशिजः) मेधावी (यजमानाः) संगतिकारक लोग आपके (सह) साथ जिन (अनु+द्यून्) अनुकूल दिनों को, (विश्वा) सब (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य (वसु) पदार्थों को (दधिरे) धारण करें, (द्रविणम्) धन की (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए (गोमन्तम्) प्रशस्त किरणों वाले (व्रजम्) मेघ को (वि+वव्रुः) वरण करें, वैसे हम भी बनें ॥ १२ । २८ ॥

[हे अग्ने !=विद्वान् ! यं त्वामाश्रित्य...यजमाना...अनुद्यून्...वार्याणि वसु दधिरे]

भावार्थः—मनुष्यैः प्रयतमानानां विदुषां संगात् पुरुषार्थेन प्रतिदिनं विद्यासुखे वर्द्धनीये ॥

भावार्थ—मनुष्य—प्रयत्नशील विद्वानों के संग में पुरुषार्थ के द्वारा प्रतिदिन विद्या और सुख को बढ़ावें ॥ १२ । २८ ॥

भाष्यसार—**विद्या की वृद्धि के उपाय**—जब पढ़ने तथा पढ़ाने वाले दोनों ही मेधावी होते हैं। विद्वानों की सङ्गति करके उनको अनुकूल धनादि से सन्तुष्ट रखा जाता हो। विद्या के अधिकारी को विद्या सिखाई जाये, तब विद्या की सदा वृद्धि होती है। विद्वान् सदा गोमान अर्थात् इन्द्रिय को संयम करके सर्वत्र प्रकाशमान होना चाहिये ।

वत्सप्रीः । **अग्निः**=परमेश्वरः ॥ विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तत्संगेन किं भवतीत्याह ॥

फिर उन विद्वानों के संग से क्या होता है, यह उपदेश किया है ॥

अस्ताव्यग्निर्नराᳬ सुशेवो वैश्वानर ऽ ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**अस्तावि**) स्तूयते (**अग्निः**) परमेश्वरः (**नराम्**) नायकानां विदुषाम् (**सुशेवः**) सुष्ठुसुखः । शेवमिति सुखना० ॥ निघं० ३ । ६ ॥ (**वैश्वानरः**) विश्वे सर्वे नरा यस्मिन् स एव (**ऋषिभिः**) वेदवद्भिर्विद्वद्भिः (**सोमगोपाः**) ऐश्वर्यपालकाः (**अद्वेषे**) द्वेष्टुमनर्हे प्रीतिविषये (**द्यावापृथिवी**) राजनीतिभूराज्ये (**हुवेम**) स्वीकुर्याम (**देवाः**) शत्रून् विजिगीषमाणाः (**धत्त**) धरत (**रयिम्**) राज्यश्रियम् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**सुवीरम्**) शोभना वीरा यस्मातम् ॥ २९ ॥

प्रमाणार्थ—'सुशेवः' यहाँ 'शेव' शब्द निघण्टु (३ । ६) में सुख वाचक नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे देवाः ! यैर्युष्माभिर्ऋषिभिर्यो नरां सुशेवो वैश्वानरोऽग्निरस्तावि वे यूयमस्मे सुवीरं धत्त तदाश्रिताः सोमगोपा वयमद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देवाः शत्रून् विजिगीषमाणाः ! **यैर्युष्माभिर्ऋषिभिः** वेदविद्भिर्विद्वद्भिः **यो नरां** नायकानां विदुषां **सुशेवः** सुष्ठुसुखो **वैश्वानरः** विश्वे सर्वे नरा यस्मिन् स एव **अग्निः** परमेश्वरो **अस्तावि** स्तूयते, **ये यूयम् अस्मे** अस्मभ्यं **सुवीरं** शोभना वीरा यस्मात् तम् [**रयिं**] राज्याश्रियम् **धत्त** धरत **तदाश्रिताः सोमगोपाः** ऐश्वर्य्यपालका **वयम् अद्वेषे** द्वेष्टुमनर्हे प्रीतिविषये **द्यावापृथिवी** राजनीतिभूराज्ये **हुवेम** स्वीकुर्याम ॥ १२ । २९ ॥

भाषार्थ—हे (देवाः) शत्रुओं को जीतने की इच्छा करने वाले, विद्वानो ! आप (ऋषिभिः) वेदज्ञ विद्वानों के द्वारा-जो (नराम्) नायक विद्वानों को (सुशेवः) उत्तम सुख देने वाला, (वैश्वानरः) जिस में सब नर=मनुष्य विद्यमान हैं उस (अग्निः) परमेश्वर की (अस्तावि) स्तुति की जाती है, आप (अस्मे) हमारे लिये (सुवीरम्) श्रेष्ठ वीरों के हेतु [रयिम्] राज्यलक्ष्मी को (धत्त) धारण करो, उसके आश्रित (सोमगोपाः) ऐश्वर्य के पालक हम लोग (अद्वेषे) द्वेष करने के अयोग्य, प्रीति विषयक (द्यावापृथिवी) राजनीति और भूमि के राज्य को (हुवेम) स्वीकार करें ॥ १२ । २९ ॥

[**हे देवाः ! यैर्युष्माभिर्ऋषिभिः ··· अग्निरस्तावि ··· वयमद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम**]

भावार्थः—ये सच्चिदानन्दस्वरूपेश्वर सेवका धार्मिका विद्वांसः सन्ति, ते परोपकारकत्वादाप्ता भवन्ति, नहीदृशानां संगमन्तरा सुस्थिरे विद्याराज्ये कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ १२ । २९ ॥

भावार्थ—जो सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर के सेवक धार्मिक विद्वान् हैं वे परोपकारी होने से आप्त होते हैं, ऐसे विद्वानों के संग के बिना विद्या और राज्य सुस्थिर नहीं कर सकते ॥ १२ । २९ ॥

भा० पदार्थः—ऋषिभिः=सच्चिदानन्दस्वरूपेश्वरसेवकैः धार्मिकैर्विद्वद्भिः, परोपकारकत्वादाप्तैः । अद्वेषे=सुस्थिरे । द्यावापृथिवी=विद्याराज्ये ॥

भाष्यसार—**विद्वानों की संगति से लाभ**—(१) जो सभी प्राणियों को सुख देने वाला परमेश्वर है उसकी ही उपासना करनी चाहिये, अन्य जड़ वस्तुओं की नहीं । (२) सोमगोपा-अर्थात् सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की रक्षा होती है । (३) पारस्परिक द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव बढ़ता है । (४) राजनीति तथा राज्य की लक्ष्मी के स्थिर होने से सर्वत्र शान्ति रहती है । (५) श्रेष्ठ-वीरों की वृद्धि होती है ॥

विरूपाक्षः । **अग्निः**=भौतिकः ॥ गायत्रीः । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्याणां के सेवनीयाः सन्तीत्याह ॥

फिर मनुष्य किन का सेवन करें, यह उपदेश किया है ॥

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम् । आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**समिधा**) सम्यगग्निसंस्कृतेनान्नादिना (**अग्निम्**) उपदेशकं विद्वांसम् (**दुवस्यत**) सेवध्वम् (**घृतैः**) घृतादिभिः (**बोधयत**) चेतयत (**अतिथिम्**) अनियततिथिमुपदेशकम् (**आ**) (**अस्मिन्**) (**हव्या**) दातुमर्हाणि (**जुहोतन**) दत्त ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे गृहस्थाः ! यूयं समिधाग्निमिवान्नादिनोपदेशकं दुवस्यत घृतैरतिथिं बोधयत । अस्मिन् हव्यां जुहोतन ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थाः ! यूयं **समिधा** सम्यगग्निसंस्कृतेनाऽन्नादिना **अग्निम्** इव उपदेशकं विद्वांसम् **इन्नादिनोपदशकं** दुवस्येत सेवध्वम् ।

घृतैः घृताऽऽदिभिः **अतिथिम्** अनियततिथिमुपदेशकं **बोधयत्** चेतयत ।

अस्मिन् हव्या दातुमर्हाणि [**आ**]+**जुहोतन** दत्त ॥ १२ । ३० ॥

भाषार्थ--हे गृहस्थो ! तुम—(समिधा) उत्तम रीति से अग्नि से संस्कृत अन्न आदि के द्वारा (अग्निम्) अग्नि के समान विद्वान् का (दुवस्यत) सेवन करो ।

(घृतैः) घृत आदि के द्वारा (अतिथिम्) अनिवत तिथि वाले उपदेशक को (बोधयत) सचेत करो ।

(अस्मिन्) इसमें (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों का ([आ]+जुहोतन) दान करो ॥ १२ । ३० ॥

[हे गृहस्थाः ! यूयं समिधाऽग्निमिवान्नादिनोपदेशकं दुवस्यत]

भावार्थः—मनुष्यैः सत्पुरुषाणामेव सेवा कार्या, सत्पात्रेभ्य एव दानं च देयम् ।

भावार्थ--मनुष्य-सत्पुरुषों की ही सेवा करें और सत्पात्रों को ही दान दें ।

[घृतैरतिथिं बोधयत, अस्मिन् हव्या जुहोतन]

यथाऽग्नौ घृतादिकं हुत्वा संसारोपकारं जनयन्ति, तथैव विद्वत्सूत्तमानि दानानि संस्थाप्यैतैर्जगति विद्यासुशिक्षे वर्धनीये॥ १२ । ३० ॥

जैसे—अग्नि में घृत आदि का होम करके संसार का उपकार करते हैं वैसे ही विद्वानों में उत्तम दानों को संस्थापित करके इनसे जगत में विद्या और सुशिक्षा को बढ़ावें ॥ १२ । ३० ॥

भाष्यसार—**विद्वान् ही पूज्य है**—सभी मनुष्यों को योग्य है कि वे उत्तमोत्तम पदार्थों से तथा सभी प्रकार के धनों से विद्वानों का सत्कार करें । विद्वान् अतिथि वर्ग का सदा सत्कार करके विद्या और सुशिक्षा को बढ़ायें । ❁

तापसः । **अग्निः**=**विद्वान्** ॥ विराडनुष्टुप् । गान्धार ॥

विद्वान् स्वतुल्यानन्यान् विदुषः कुर्यात् ।

विद्वान् पुरुष को चाहिये कि अपने तुल्य अन्य मनुष्यों को विद्वान् करे, यह उपदेश किया है ॥

उदु त्वा विश्वे देवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः। स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**उत्**) (उ) (**त्वा**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्ने**) विद्वन् (**भरन्तु**) पुष्णन्तु (**चित्तिभिः**) सम्यग् विज्ञानैस्सह (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**भव**) (**शिवः**) मङ्गलोपदेष्टा (**त्वम्**) (**सुप्रतीकः**) शोभनानि प्रतीकानि=लक्षणानि यस्य सः (**विभावसुः**) येन विविधा भा=विद्यादीप्तिर्वास्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यं त्वा विश्वे देवाश्चित्तिभिरुदुभरन्तु स विभावसुः सुप्रतीकस्त्वं नः शिवो भव ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=विद्वन् ! **यं त्वा विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः **चित्तिभिः** सम्यग् विज्ञानैः सह **उद् उ भरन्तु** पुष्णन्तु, **सः विभावसुः** येन विविधा भा=विद्यादीप्तिवास्यते, **सुप्रतीकः** शोभनानि प्रतीकानि=लक्षणानि यस्य सः, **त्वं नः** अस्मभ्यं **शिवः** मङ्गलोपदेष्टा **भव** ॥ १२ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (त्वा) आपको (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् पुरुष (चित्तिभिः) विज्ञानों से (उद्+उ+भरन्तु) उत्तम रीति से विचारपूर्वक पुष्ट करें। सो (विभावसुः) विविध विद्याप्रकाश से युक्त, (सुप्रतीकः) सुन्दर लक्षणों वाले आप (नः) हमारे लिए (शिवः) मङ्गल-उपदेशक (भव) बनो ॥ १२ । ३१ ॥

[हे **अग्ने**=विद्वन् ! **यं त्वा**···**देवाश्चित्तिभिरुदुभरन्तु स**···**त्वं नः शिवो भव**]

भावार्थः—यो यथा विद्वद्भ्यो विद्यां संचिनोति, तथैवान्यान् विद्यासंचितान् संपादयेत् ॥

भावार्थ—जो व्यक्ति जैसे विद्वानों से विद्या का संचय करता है वैसे वह अन्यों को भी विद्या-युक्त बनावे ॥ १२ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—चित्तिभिः=विद्या संचयैः ।

भाष्यसार—**विद्वान् का कर्त्तव्य**—जैसे अग्नि का प्रकाश दूर तक फैल जाता है वैसे ही विद्वान् की विद्या से सब मनुष्य प्रकाशित होने चाहियें। विद्या की शोभा इसी में है कि उसका सदा दूसरों को दान देकर मनुष्य मात्र का मङ्गल किया जाये। विद्वान् सुप्रतीक अर्थात् सभी शुभ लक्षणों से युक्त होना चाहिये। ❀

तापसः। **अग्निः**=**राजा** ॥ विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुना राजा किं कृत्वा किं प्राप्नुयादित्याह ॥

फिर राजा क्या करके किसको प्राप्त होवे, यह उपदेश किया है ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम्। बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिंꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥३२॥

पदार्थः—(**प्र**) (**इत्**) (**अग्ने**) विद्याप्रकाशक (**ज्योतिष्मान्**) बहूनि ज्योतींषि=विज्ञानानि विद्यन्ते यस्य सः (**याहि**) प्राप्नुहि (**शिवेभिः**) मङ्गलकारकैः (**अर्चिभिः**) पूजितैः (**त्वम्**) (**बृहद्भिः**) महद्भिः (**भानुभिः**) विद्याप्रकाशकैर्गुणैः (**भासन्**) प्रकाशकः सन् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**तन्वा**) शरीरेण (**प्रजाः**) पालनीयाः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! त्वं यथा ज्योतिष्मान् सूर्य्यः शिवेभिरर्चिभिर्बृहद्भिर्भानुभिरिदेव भासन्वर्त्तते तथा प्रयाहि तन्वा प्रजा माहिंसीः ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=विद्वन् विद्याप्रकाशक ! **त्वं यथा ज्योतिष्मान्=सूर्य्यः** बहूनि ज्योतींषि=विज्ञानानि विद्यन्ते यस्य सः, **शिवेभिः** मङ्गलकारकैः **अर्चिभिः** पूजितैः **बृहद्भिः** महद्भिः **भानुभिः** विद्याप्रकाशकैर्गुणैः **इत्=एव भासन्** प्रकाशकः सन् **वर्त्तते** तथा **प्र+याहि** प्राप्नुहि, **तन्वा** शरीरेण **प्रजाः** पालनीयाः **मा हिंसीः** हिंस्याः ॥ १२ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्याप्रकाशक विद्वान् राजन् आप—जैसे, (ज्योतिष्मान्) नाना ज्योतिरूप । विज्ञान वाला विद्वान् रूप सूर्य (शिवेभिः) मङ्गलकारक (अर्चिभिः) पूजित (बृहद्भिः) महान् (भानुभिः) विद्या-प्रकाशक गुणों से (इत्) ही (भासन्) प्रकाश करने वाला है, वैसे आप हमें (प्र+याहि) प्राप्त होओ । तन्वा शरीर से (प्रजाः) पालनीय प्रजा का (मा हिंसीः) हिंसन मत करो ॥ १२ । ३२ ॥

[हे अग्ने ! =विद्वन् त्वं ... तन्वा प्रजामा हिंसीः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे सराजपुरुष राजन् ! त्वं शरीरेणानपराधिनः कस्यापि प्राणिनो हिंसामकृत्वा,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे राजपुरुषों से युक्त राजन् ! आप शरीर से किसी भी निर्दोष प्राणी की हिंसा न करके,

[भानुभिः]

विद्यान्यायप्रकाशेन प्रजाः पालयन्, जीवन्नभ्युदयं, मृत्वा मुक्तिसुखं प्राप्नुयाः ॥ १२ । ३२ ॥

विद्या और न्याय के प्रकाश से प्रजा का पालन करते हुए, जीते हुए अभ्युदय को, प्राण-त्याग करके मुक्ति सुख को प्राप्त करो ॥ १२ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने !=रे सराजपुरुष राजन् ! भानुभिः=विद्यान्यायप्रकाशैः ।

भाष्यसार—१. **राजा के कर्त्तव्य**—राजा स्वयं सुशिक्षित होकर विद्या की वृद्धि के लिए सदा यत्न करे । राजा के प्रजा-हित के कार्यों का उद्देश्य महान् तथा कल्याणकारी होना चाहिये । और ऐसे कार्य की सब लोग प्रशंसा करने वाले हों । राजा कभी भी प्रजा-पालन रूप कर्त्तव्य का कभी हिंसन न करे अर्थात् प्रजा के कार्यों में कभी भी प्रमाद न करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में इव पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे विद्वान् रूप सूर्य मंगलकारक महान् गुणों से सबको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा को भी सद्विद्या का प्रकाश करना चाहिये ।

वत्सप्रीः । **अग्निः=शत्रुदाहको विद्वान्** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राज्यप्रबन्धः कथं कार्य्य इत्युपदिश्यते ॥

राज्य का प्रबन्ध कैसे करे, यह उपदेश किया है ॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो ऽ अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**अक्रन्दत्**) विजानाति (**अग्निः**) शत्रुदाहको विद्वान् (**स्तनयन्निव**) विद्युद्वद्गर्जयन् (**द्यौः**) विद्यान्यायप्रकाशकः (**क्षामा**) भूमिम् (**रेरिहत्**) भृशं युध्यस्व (**वीरुधः**) वनस्थान् वृक्षान् (**समञ्जन्**)

सम्यक् रक्षन् (सद्यः) तूर्णम् (जज्ञानः) राजनीत्या प्रादुर्भूतः (वि) (हि) खलु (ईम्) सर्वतः (इद्धः) शुभ-लक्षणैः प्रकाशितः (अख्यत्) धर्म्यानुपदेशान् प्रकथयः (आ) (रोदसी) अग्निभूमी (भानुना) पुरुषार्थप्रकाशेन (भाति) (अन्तः) राजधर्म्ममध्ये स्थितः ।। ३३ ।।

अन्वयः—हे प्रजाजनाः ! युष्माभिर्यथा द्यौरग्निः स्तनयन्निवाक्रन्दद्वीरुधः समञ्जन् क्षामा रेरिहत् जज्ञान इद्धः सद्यो व्यख्यत् भानुना हि रोदसी अन्तराभाति तथा स राजा भवितुं योग्योऽस्तीति वेद्यम् ।। ३३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाजनाः** ! **युष्माभिर्यथा द्यौः** विद्यान्यायप्रकाशकः **अग्निः** शत्रुदाहको विद्वान् **स्तनयन्निव** विद्युद्वद्गर्जयन् **अक्रन्दत्** विजानाति, **वीरुधः** वनस्थान् वृक्षान् **समञ्जन्** सम्यग् रक्षन् **क्षामा** भूमिं **रेरिहत्** भृशं युध्यति, **जज्ञानः** राजनीत्या प्रादुर्भूतः **इद्धः** शुभ लक्षणैः प्रकाशितः **सद्यः** तूर्णं **वि+अख्यत्** धर्म्यानुपदेशान् प्रकथयति, **भानुना** पुरुषार्थप्रकाशेन **हि** खलु **रोदसी** अग्निभूमी **अन्तः** राजधर्म्ममध्ये स्थितः **आ+भाति**, तथा स **राजा भवितुं योग्योऽस्तीति वेद्यम्** ।। १२ । ३३ ।।

भाषार्थ—हे प्रजा-जनो ! तुम्हें—जैसे (द्यौः) विद्या और न्याय का प्रकाशक (अग्निः) शत्रुओं का दाहक विद्वान् (स्तनयन्निव) विद्युत् के समान गर्जता हुआ (अक्रन्दत्) विज्ञान को प्राप्त होता है, (वीरुधः) वनस्थ वृक्षों की (समञ्जन्) सुरक्षा करता हुआ (क्षामा) भूमि पर (रेरिहत्) बहुत युद्ध करता है, (जज्ञानः) राजनीति से प्रसिद्ध, (इद्धः) शुभ लक्षणों से प्रकाशित, (सद्यः) शीघ्र (वि+अख्यत्) धर्मयुक्त उपदेश करता है, (भानुना) पुरुषार्थ के प्रकाश से (हि) निश्चय से (रोदसी) द्युलोक और भूलोक को (अन्तः) राज-धर्म में स्थित होकर (आ+भाति) प्रकाशित होता है, वैसे—वह राजा होने योग्य है, ऐसा जानो ।।

[वीरुधः समञ्जन्, अग्निः स्तनयन्निवाक्रन्दत्, द्यौः]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । न हि वनवृक्षरक्षणेन विना वृष्टिबाहुल्यम्, आरोग्यं, तडिद्व्यवहारवद् दूरसमाचारग्रहणेन शत्रुविनाशनेन राज्ये विद्यान्यायप्रकाशेन च विना सुराज्यं च जायते ।। १२ । ३३ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा और उपमा अलङ्कार हैं ।। वन के वृक्षों की रक्षा के विना वर्षा की अधिकता और आरोग्य नहीं होता । विद्युत्-व्यवहार के समान दूर के समाचारों का ग्रहण, शत्रुओं के विनाश, राज्य में विद्या और न्याय के प्रकाश के विना सुराज्य नहीं होता ।।

भा० पदार्थः—वीरुधः=वनवृक्षाः । स्तनयन्निव=तडिद्व्यवहारवत् ।

भाष्यसार—**१. राजा के योग्य गुणों का वर्णन**—राजा वही सुशासन कर सकता है जो विद्युत् की तरह गर्जता हुआ अपने शत्रुओं को जीत लेता है । राज्य में अराजकता को समाप्त करने के लिये विद्या तथा न्याय का प्रकाशक हो, राजनीति में दृढ़ता से ख्याति प्राप्त करे । सभी शुभ गुणों के कारण प्रजा का प्रिय हो । अपने पुरुषार्थ से सदा धर्मयुक्त कार्यों में सदा उत्साह दिखाने वाला हो । राजा का परम धर्म है कि वह वन की सम्पत्ति वृक्षादि की सदा रक्षा तथा वृद्धि करता रहे ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार तथा उपमालङ्कार हैं । उपमा यह है कि जैसे विद्युत् गर्जता हुआ मेघादि को छिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही राजा भी शत्रुओं का विनाश करने वाला होना चाहिये ।

वसिष्ठः । **अग्निः**=सेनेशः ॥ आर्षीत्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः कीदृशं जनं राजव्यवहारे नियुञ्जीरन्नित्याह ॥

फिर कैसे पुरुष को राजव्यवहार में नियुक्त करें, यह उपदेश किया है ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्यं शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचंते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो ऽ अतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**प्रप्र**) अतिप्रकर्षेण (**अयम्**) (**अग्निः**) सेनेशः (**भरतस्य**) पालितव्यस्य राज्यस्य (**शृण्वे**) (**वि**) (**यत्**) यः (**सूर्य्यः**) सविता (**न**) इव (**रोचते**) प्रकाशते (**बृहद्भाः**) महाप्रकाशः (**अभि**) (**यः**) (**पूरुम्**) पूर्णबलं सेनाध्यक्षम् । **पूरव इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥** (**पृतनासु**) सेनासु (**तस्थौ**) तिष्ठेत् (**दीदाय**) धर्मं प्रकाशयेत् (**दैव्यः**) देवेषु=विद्वत्सु प्रीतः (**अतिथिः**) नित्यं भ्रमणकर्त्ता विद्वान् (शिवः) मङ्गलप्रदः (**नः**) अस्मान् ॥ ३४ ॥

प्रमाणार्थ—'पूरुम्' इसमें पूरु शब्द मनुष्य वाची है। निघण्टु में (२ । ३) 'पूरव' यह शब्द मनुष्य के नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे राजप्रजाजनाः ! यूयं यद्योऽयमग्निः सूर्यो न बृहद्भाः प्रप्ररोचते। यो नः पृतनासु पूरुमभि तस्थौ दैव्योऽतिथिः शिवो विद्या दीदाय। यत्ते विजयो विद्या च श्रूयेत स लब्धलक्षः कुलीनः सेनाया योधयिताऽधिकर्त्तव्यः ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजप्रजाजनाः ! यूयं यद्**=**योऽयमग्निः** सेनेशः **सूर्य्यः** सविता **न** इव **बृहद्भाः** महाप्रकाशः **प्रप्र**+**रोचते** अतिप्रकर्षेण प्रकाशते; **यो नः** अस्मान् **पृतनासु** सेनासु **पूरुं** पूर्णबलं सेनाऽध्यक्षम् **अभि**+**तस्थौ** तिष्ठेत्, **दैव्यः** देवेषु=विद्वत्सु प्रीतः **अतिथिः** नित्यं भ्रमणकर्त्ता विद्वान् **शिवः** मङ्गलप्रदः **विद्या दीदाय** धर्मं प्रकाशयेत् **यत्** यः ते [**भरतस्य**] पालितव्यस्य राज्यस्य **वि**+**शृण्वे**=**विजयो विद्या च श्रूयेत, स लब्ध लक्षः कुलीनः सेनाया योधयिताऽधिकर्त्तव्यः** ॥

भाषार्थ—हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम—(यद्) जो यह (अग्निः) सेनापति (सूर्यः) सूर्य के (न) समान (बृहद्भाः) महान् प्रकाश वाला (प्र प्र+रोचते) अत्यन्त प्रकाशित है, जो (नः) हमारी (पृतनासु) सेनाओं में (पूरुम्) पूर्ण बल वाले सेनाध्यक्ष को (अभि+तस्थौ) स्थिर करे, (दैव्यः) विद्वानों में प्रिय, (अतिथिः) नित्य भ्रमण करने वाला विद्वान् (शिवः) मङ्गलकारी विद्या एवं धर्म को (दीदाय) प्रकाशित करे; (यत्) जो आपके [भरतस्य] पालनीय राज्य की (वि+शृण्वे) विद्या और विजय को प्रसिद्ध करे वह लक्ष्य को प्राप्त करने वाला, कुलीन पुरुष सेना का युद्ध कराने वाला अधिकारी हो ॥ १२ । ३४ ॥

[यत् ते [भरतस्य वि+शृण्वे] स···**कुलीनः सेनाया योधयिताऽधिकर्त्तव्यः**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यस्य पुण्यकीर्त्तेः पुरुषस्य शत्रुषु विजयो विद्याप्रचारश्च श्रूयते, स कुलीनः सेनाया योधयिताऽधिकर्त्तव्यः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जिस पुण्य कीर्त्तिवाले पुरुष का शत्रुओं पर विजय और विद्याप्रचार प्रसिद्ध होवे उस कुलीन पुरुष को सेना का युद्ध कराने वाला अधिकारी बनावें ॥ १२ । ३४ ॥

आ० पदार्थ:—भरतस्य=पुण्यकर्तः पुरुषस्य। विश्रृण्वे=शत्रुषु विजयो विद्याप्रचारश्च श्रूयते ॥

भाष्यसार—१. **सेनापति कैसा होना चाहिये**—जो सूर्य के समान तेजस्वी, तथा सब से अधिक बलवान् हो उसे सेनाध्यक्ष बनाना चाहिये। सेनापति अपने शुभ गुणों के कारण विद्वानों का प्रिय, सब का मंगलकारी तथा पुरुषार्थी होकर सदा भ्रमण करने वाला होना चाहिये। वह ऊँचे कुल में उत्पन्न तथा विद्यावृद्धि में एवं धर्मवृद्धि में रुचि रखने वाला हो। ऐसा सेनापति अन्दर तथा बाहर के सभी शत्रुओं पर सदा विजय प्राप्त करता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य सर्वत्र प्रकाशमान् है उसी प्रकार सेनापति भी अपने गुणों के कारण तेजस्वी होना चाहिये।

वशिष्ठः। **आपः**=**कन्याः** ॥ आर्षीत्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ सर्वैर्मनुष्यैः स्वयंवरो विवाहः कार्य इत्याह ॥

अब सब मनुष्यों को स्वयम्वर विवाह करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभा ऽउ लोके।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**आपः**) पवित्रजलानीव सकलशुभगुणव्यापिकाः कन्याः (**देवीः**) दिव्यरूपशीलाः (**प्रति**) (**गृभ्णीत**) स्वीकुर्वीत (**भस्म**) प्रदीपकं तेजः (**एतत्**) (**स्योने**) सुसुखकारिके (**कृणुध्वम्**) (**सुरभौ**) ऐश्वर्यप्रकाशके। **अत्र षुर ऐश्वर्यदीप्त्योरित्यस्माद्बाहुलकादौणादिकोऽभिच प्रत्ययः** (**उ**) (**लोके**) द्रष्टव्ये (**तस्मै**) (**नमन्ताम्**) नम्राः सन्तु (**जनयः**) विद्यासुशिक्षया प्रादुर्भूताः (**सुपत्नीः**) शोभानाश्च ताः पत्न्यश्च ताः (**मातेव**) (**पुत्रम्**) (**बिभृत**) धरत (**अप्सु**) प्राणेषु (**एनत्**) अपत्यम् ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—'सुरभौ' यहां 'षुर ऐश्वर्यदीप्त्योः' इस धातु से औणादिक अभिच् प्रत्यय हुआ है।

अन्वयः—हे विद्वांसो मनुष्याः! या आपो देवीः सुरभौ लोके पतीन् सुखिनः कुर्वन्ति ताः प्रतिगृभ्णीतैताः सुखिनीः कृणुध्वम्। यदेतद्भस्मास्ति तस्मै याः सुपत्नीर्जनयो नमन्ति ताः प्रतिभवन्तोऽपि नमन्तामुभये मिलित्वा पुत्रं मातेवाप्स्वेनद्बिभृत ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसो मनुष्याः! या आपः** पवित्रजलानीव सकलशुभगुणव्यापिकाः कन्याः **देवीः** दिव्यरूपशीलाः **सुरभौ** ऐश्वर्य्यप्रकाशके **लोके** द्रष्टव्ये **पतीनः सुखिनः कुर्वन्ति, ताः प्रति+गृभ्णीत** स्वीकुर्वीति, **एताः सुखिनीः कृणुध्वम्।**

यदेतद् भस्म प्रदीपकं तेजः **अस्ति, तस्मैः याः सुपत्नीः** शोभनाश्च ताः पत्न्यश्च ताः **जनयः** विद्यासुशिक्षया प्रादुर्भूताः **नमन्ति, ताः प्रति भवन्तोऽपि नमन्तां** नम्राः सन्तु।

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो! जो-(आपः) पवित्र जलों के समान सकल शुभ-गुणों में व्यापक (देवीः) दिव्य रूप और सुशीलता वाली कन्यायें (सुरभौ) ऐश्वर्य के प्रकाशक इस (लोके) दर्शनीय लोक में पतियों को सुखी करती हैं उन्हें (प्रतिगृभ्णीत) स्वीकार करो। इन्हें सुखी करो।

जो यह (भस्म) प्रकाशक तेज है उसके लिए जो (सुपत्नीः) सुन्दर पत्नियाँ (जनयः) विद्या और सुशिक्षा से प्रसिद्ध होकर नमस्ते करती हैं उनके प्रति आप भी (नमन्ताम्) नम्र हों।

उभये मिलित्वा पुत्रं मातेव अप्सु प्राणेषु एनत् अपत्यं बिभृत धरत ॥ १२ । ३५ ॥

दोनों मिलकर—जैसे माता पुत्र को धारण करती है वैसे (एनत्) इस बालक को (बिभृत) धारण करो ॥ १२ । ३५ ॥

[हे विद्वांसो मनुष्याः ! या आपो देवीः ···]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । मनुष्यैः परस्परं प्रसन्नतया स्वयंवरं विवाहं विधाय, धर्मेण सन्तानानुत्पाद्य, एतान् विदुषः कृत्वा गृहाश्रमैश्वर्यमुन्नेयम् ॥ १२ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—परस्पर प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके, धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करके, इन्हें विद्वान् बनाकर गृहाश्रम के ऐश्वर्य को उन्नत करें ॥ १२ । ३५ ॥

भाष्यसार—**१. स्वयंवरार्थ कन्या की योग्यता**—कन्या सभी शुभ लक्षणों वाली और छलकपट से रहित हो। देवी अर्थात् कन्यायें दिव्य रूप वाली हों, उनका आचरण तथा स्वभाव अच्छा हो। कन्याओं को भी पुरुषों की भांति ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके पूर्ण विदुषी होना चाहिये। सुशिक्षित कन्यायें ही स्वयंवर विवाह के योग्य होती हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा-अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे माता पुत्र को धारण करती है वैसे ही स्वयंवर विवाह करके सन्तान को धारण करें।

विरूपः । **अग्निः**=जीवः ॥ निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ जीवाः कथं कथं पुनर्जन्म प्राप्नुवन्तीत्याह ॥

अब जीव किस-किस प्रकार पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

अप्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे । गर्भे॒ सन् जा॑यसे॒ पुन॑: ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**अप्सु**) जलेषु (**अग्ने**) अग्निवद्वर्त्तमान विद्वन् (**सधिः**) षोढा ! अत्र वर्णव्यत्ययेन हस्य धः । इश्च प्रत्ययः (**तव**) (**सः**) **सोऽचि लोपे** चेत्पादपूरणमिति सन्धिः (**ओषधीः**) सोमादीन् (**अनु**) (**रुध्यसे**) (**गर्भे**) कुक्षौ (**सन्**) (**जायसे**) (**पुनः**) ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—'सधिः' यहाँ वर्णव्यत्यय से हकार को धकार और इकार प्रत्यय हुआ है। 'सौषधिः' (सः+ओषधिः) यहाँ 'सोऽचिलोपे चेत्पादपूरणम्' इस सूत्र से विभक्ति का लोप हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने अग्निरिव जीव ! सधिर्यस्त्वमप्सु गर्भे ओषधीरनुरुध्यसे स त्वं गर्भे स्थितः सन् पुनर्जायसे । इमावेकक्रमानुक्रमौ तव स्त इति जानीहि ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने=अग्निरिव जीव** अग्निवद्वर्त्तमान विद्वन् ! **सधिः** षोढा **यस्त्वम् अप्सु** जलेषु **गर्भे** कुक्षौ **ओषधीः** सोमादीन् **अनु+रुध्यसे, सः त्वं गर्भे** कुक्षौ **स्थितः सन् पुनः जायसे । इमावेकक्रमानुक्रमौ तव स्त इति जानीहि ॥**

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्ताव करने वाले विद्वान् जीव ! आप (सधिः) सुख-दुख को सहन करने वाले हो, सो आप (अप्सु) जलों में, (गर्भे) गर्भ में (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों का (अनु+रुध्यसे) अनुरोध करते हो, सो आप (गर्भे) गर्भ में स्थित होकर (पुनः) फिर

(जायसे) जन्म लेते हो। ये आपके क्रम-अनुक्रम हैं, ऐसा जान ॥ १२ । ३६ ॥

[हे अग्ने=अग्निरिवजीव !...त्वमप्सु...ओषधीरनुरुध्यसे, त्वं गर्भे स्थितः सन् पुनर्जायसे]

भावार्थः—ये जीवाः शरीरं त्यजन्ति ते वायावोषध्यादिषु च भ्रान्त्या गर्भं प्राप्य यथासमयं सशरीरा भूत्वा पुनर्जायन्ते ॥ १२ । ३६ ॥

भावार्थ—जो जीव शरीर त्याग करते हैं वे वायु और ओषधि आदि में भ्रमण करके, गर्भ को प्राप्त कर, यथासमय सशरीर होकर फिर जन्म लेते हैं ॥ १२ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—अप्सु=वायौ।

भाष्यसार—**जीवों के पुनर्जन्म का वर्णन**—जीव अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख को भोग करता है। जीवात्मा मृत्यु के बाद वायु और ओषधियों में घूमता हुआ पुनर्जन्म ले लेता है। जीव का यह आवागमन चक्र मुक्ति होने तक चलता रहता है।

विरूपः। **अग्निः**=जीवः ॥ भुरिगार्ष्युष्णिक्। ऋषभः ॥

पुनर्जीवस्य क्व क्व गतिर्भवतीत्याह ॥

फिर जीव कहाँ-कहाँ जाता है, यह उपदेश किया है ॥

गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्य भूतस्याग्ने गर्भोऽअपामसि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(गर्भः) योऽनर्थान् गिरति=विनाशयति सः। गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरस्यनर्थानिति यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति ॥ निरु० १०। २३॥ (असि) (ओषधीनाम्) सोमयवादीनाम् (गर्भः) (वनस्पतीनाम्) अश्वत्थादीनाम् (गर्भः) (विश्वस्य) सर्वस्य (भूतस्य) उत्पन्नस्य (अग्ने) देहान्तप्रापक जीव (गर्भः) (अपाम्) प्राणानां जलानां वा (असि)॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—'गर्भः' गर्भ शब्द के निर्वचन महर्षि यास्क ने (निरु० १०। २३) में इस प्रकार किये हैं—(१) जो ग्रहण करता है। (२) अथवा जो अनर्थों का नाश करता है। जब स्त्री भी गुणों को ग्रहण करती है अथवा उसके गुण ग्रहण किये जाते हैं तब ही गर्भ कहलाता है।

अन्वयः—हे अग्ने ! अग्नितुल्यजीव यतस्त्वमग्निरिवौषधीनां गर्भो वनस्पतीनां गर्भः। विश्वस्य भूतस्य गर्भोऽपां गर्भश्चासि तस्मात्त्वमजोऽसि ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=अग्नि-तुल्यजीव** देहान्तप्रापक जीव ! **यतस्त्वमग्निरिव ओषधीनां** सोमयवाऽऽदीनां **गर्भः** योऽनर्थान् गिरति=विनाशयति सः, **वनस्पतीनां** अश्वत्थाऽऽदीनां **गर्भः** योऽनर्थान् गिरति=विनाशयति सः, **विश्वस्य** सर्वस्य **भूतस्य** उत्पन्नस्य **गर्भः** योऽनर्थान् गिरति=विनाशयति सः, **अपां** प्राणानां जलानां वा **गर्भः** योऽनर्थान् गिरति=विनाशयति सः, **च असि। तस्मात्त्वमजो असि** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान देहान्त को प्राप्त करने वाले जीव ! जिससे तू अग्नि के समान (ओषधीनाम्) सोम और यव=जौ आदि ओषधियों के (गर्भः) दोषों को नष्ट करने वाला है, (वनस्पतीनाम्) अश्वत्थ=पीपल आदि वनस्पतियों के (गर्भः) दोषों को नष्ट करने वाला है, (विश्वस्य) सब (भूतस्य) उत्पन्न प्राणियों के (गर्भः) दोषों को नष्ट करने वाला है, (अपाम्) प्राण वा जल के (गर्भः) दोषों को

नष्ट करने वाला है, अतः तू अज=अजन्मा (असि) है।

[हे अग्ने !...त्वमग्निरिवौषधीनां गर्भः...असि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः ! ये विद्युद्वत् सर्वान्तर्गता जीवा जन्मवन्तः सन्ति, तान् जानन्त्विति ॥ १२ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा और उपमा अलङ्कार हैं ॥ हे मनुष्यो ! जो विद्युत् के समान सबके अन्तर्गत शरीर धारण करने वाले जीव हैं, उन्हें जानें ॥ १२ । ३७ ॥

भाष्यसार—१. **जीव की देहान्त होने के बाद की गति**—मृत्यु के पश्चात् यह अजन्मा जीवात्मा अग्नि की भाँति सोम-यवादि ओषधियों में, पीपलादि वनस्पतियों में, सम्पूर्ण प्राणियों में अथवा वायु में गति करता है। अर्थात् अपने कर्म वश भिन्न-भिन्न योनियों को प्राप्त कर लेता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा वह है कि जैसे अग्नि सब में विद्यमान् है वैसे ही जीवात्मा भी विना किसी बाधा के सर्वत्र गति करता रहता है।

विरूपः। **अग्निः=जीवः** ॥ निचृदार्ष्यनुष्टुप्। धैवतः ॥

मरणान्ते शरीरस्य का गतिः कार्य्येत्याह ॥

मृत्यु के पश्चात् शरीर का क्या होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने। सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**प्रसद्य**) प्रगत्य (**भस्मना**) दग्धेन (**योनिम्**) वेदधारणकारणम् (**अपः**) (**च**) अग्न्यादिकम् (**पृथिवीम्**) (**अग्ने**) प्रकाशमान (**संसृज्य**) संसर्गीभूत्वा (**मातृभिः**) (**त्वम्**) (**ज्योतिष्मान्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्तः (**पुनः**) पश्चात् (**आ**) (**असदः**) प्राप्नोषि ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे अग्ने सूर्य्य इव ज्योतिष्मान् ! त्वं भस्मना पृथिवीं चापश्च योनिं प्रसद्य मातृभिः सह संसृज्य पुनरासदः ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=सूर्य्य इव प्रकाशमान ! **ज्योतिष्मान्** प्रशस्तप्रकाशयुक्तः **त्वं भस्मना** दग्धेन **पृथिवीं च** अग्न्यादिकम् **अपः च योनिं** देहधारणकारणं **प्रसद्य** प्रगत्य **मातृभिः सह संसृज्य** संसर्गीभूत्वा **पुनः** पश्चाद् **आ+असदः** प्राप्नोषि ॥ १२ । ३८ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) सूर्य के समान (ज्योतिष्मान्) उत्तम प्रकाश से युक्त जीव ! तू (भस्मना) दग्ध होकर (पृथिवीम्) पृथिवी (च) और अग्नि आदि को (अपः) जल (च) और (योनिम्) देह-धारण के कारण गर्भाशय को (प्रसद्य) प्राप्त होकर (मातृभिः) माताओं के साथ (संसृज्य) संसर्ग करके (पुनः) फिर (आ+असदः) शरीर को प्रात करता है ॥ १२ । ३८ ॥

[हे अग्ने ! ... त्वं भस्मना पृथिवीं चापश्च आसदः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे जीवाः ! भवन्तो यदा शरीरं त्यजत, तदैतद्-भस्मीभूतं सत् पृथिव्यादिना सह संयुक्त।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे जीवो ! आप जब शरीर को छोड़ते हो तब इसे भस्मीभूत करके पृथिवी आदि के साथ से संयुक्त करो।

[योनिं प्रसद्य मातृभिः सह संसृज्य पुनरासदः]

यूयमात्मानश्चाम्बाशरीरेषु गर्भाशयं प्रविश्य पुनः सशरीराः सन्तो विद्यमाना भवन्त्विति ।।

तुम और तुम्हारी आत्मायें माताओं के शरीरों में गर्भाशय में प्रविष्ट होकर फिर शरीर धारण करके विद्यमान होवो ।। १२ । ३८ ।।

भा० पदार्थः—अग्ने=जीव । योनिम्=गर्भाशयम् । प्रसद्य=प्रविश्य । मातृभिः= अम्बाभिः ।

भाष्यसार—१. **मृत्यु के बाद शरीर और जीव की गति**—मृत्यु के बाद यह पाञ्चभौतिक शरीर अग्नि में जलाने से पृथिव्यादि पञ्चभूतों में मिल जाता है। और जीव माताओं से संसर्ग में आकर दूसरे शरीर को प्राप्त करता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सूर्य प्रकाशमान् है वैसे ही जीवात्मा भी प्रकाशस्वरूप है और सर्वत्र गति करने वाला है। ●

विरूपः । **अग्निः**=जीवः ।। निचृदनुष्टुप् । गांधारः ।।

अथ मातापित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह ।।

अब माता, पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ।।

पुन॑रा॒सद्य॒ सद॑नम॒पश्च॑ पृथि॒वीम॑ग्ने । शेषे॑ मा॒तुर्यथो॒पस्थे॒ऽन्तर॑स्याᳬ शि॒वत॑मः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**पुनः**) (**आसद्य**) आगत्य (**सदनम्**) गर्भस्थानम् (**अपः**) (**च**) भोजनादिकम् (**पृथिवीम्**) भूमितलम् (**अग्ने**) इच्छादिगुणप्रकाशित (**शेषे**) स्वपिषि (**मातुः**) जनन्याः (**यथा**) (**उपस्थे**) उत्संगे (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**अस्याम्**) मातरि (**शिवतमः**) अतिशयेन मङ्गलकारी ।। ३९ ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! यतस्त्वमपः पृथिवीं च सदनं पुनरासद्याऽस्यामन्तः शिवतमः सन् यथा बालो मातुरुपस्थे शेषे तस्मादस्यां शिवतमो भव ।। ३९ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** इच्छादि-गुणप्रकाशित ! **यतस्त्वम् अपः पृथिवीं** भूमितलं **च** भोजनादिकं **सदनं** गर्भस्थानं **पुनः आसद्य** आगत्य **अस्यां** मातरि **अन्तः** आभ्यन्तरे **शिवतमः** अतिशयेन मङ्गलकारी **सन् यथा बालो मातुः** जनन्याः **उपस्थे** उत्सङ्गे **शेषे** स्वपिषि, **तस्माद् अस्यां** मातरि **शिवतमः** अतिशयेन मंगलकारी **भव** ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) इच्छा आदि गुणों में प्रकाशित जीव ! क्योंकि तू (अपः) जल (पृथिवीम्) भूतल (च) और भोजन आदि को (सदनम्) गर्भाशय में (पुनः) बार-बार (आसद्य) पहुँच कर (अस्याम्) इस माता में (अन्तः) अन्दर (शिवतमः) अत्यन्त मङ्गलकारी होकर बालक के समान (मातुः) जननी की (उपस्थे) गोदी में (शेषे) सोता है, अतः (अस्याम्) इस माता में (शिवतमः) अत्यन्त मङ्गलकारी (भव) हो ।। १२ । ३९ ।।

[हे अग्ने !···त्वं···यथा बालो मातुरुपस्थे शेषे, तस्मादस्यां शिवतमो भव]

भावार्थः—पुत्रैः—यथामातरः स्वापत्यानि सुखयन्ति, तथैवानुकूलया सेवया स्वमातरः सतत-मानन्दयितव्याः न । च कदाचिन्मातापितृभ्यां

भावार्थ—जैसे मातायें अपने सन्तानों को सुख देती हैं वैसे पुत्र अनुकूलता से सेवा के द्वारा अपनी माताओं को सदा आनन्दित रखें। और

विरोधः समाचरणीयः। न च मातापितृभ्यामेते ऽधर्मकुशिक्षा युक्ताः कदाचित्कार्याः ॥ १२ । ३९ ॥

माता-पिता का कभी विरोध न करें। और माता-पिता इन्हें अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें ॥ १२ । ३९ ॥

भाष्यसार—**सन्तान का माता के प्रति कर्त्तव्य**—सन्तान का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी माता को कभी दुःख न देवे और सदा उसका मंगलकारी ही बना रहे। जैसे माता बच्चे को जन्म देकर उसको सब प्रकार से सुखी रखती है वैसे ही सन्तान भी माता को दुःख न देवे। और न कभी उनका विरोध करे।

वत्सप्रीः। **अग्निः**=मातापितरौ ॥ निचृदार्षीगायत्री। षड्जः ॥

पुनर्जनकजनन्यां परस्परं वर्त्तमानं योग्यं कार्य्यमित्याह ॥

फिर पुत्रों को माता पिता के विषय में परस्पर योग्य वर्त्तमान करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न ऽ इषायुषा। पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**पुनः**) (**ऊर्जा**) पराक्रमेण (**नि**) (**वर्तस्व**) (**पुनः**) (**अग्ने**) (**इषा**) अन्नेन (**आयुषा**) जीवनेन (**पुनः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**पाहि**) (**अंहसः**) पापाचरणात् ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे अग्ने मातः पितश्च ! त्वमिषायुषा सह नो वर्धय पुनरंहसः पाहि। हे पुत्र ! त्वमूर्जा सह निवर्त्तस्व। पुनर्नोऽस्मानहंसः पाहि ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=मातः पितश्च ! त्वम् **इषा** अन्नेन **आयुषा** जीवनेन **सह नः** अस्मभ्यं **वर्धय, पुनः अंहसः** पापाचरणात् **पाहि**।

भाषार्थ—हे (अग्ने) माता और पिता ! आप (इषा) अन्न (आयुषा) और जीवन से (नः) हमें बढ़ाओ (पुनः) फिर (अंहसः) पापाचरण से (पाहि) हमारी रक्षा करो।

हे पुत्र ! त्वम् ऊर्जा पराक्रमेण **सह नि+वर्त्तस्व, पुनः नः**=**अस्मान् अंहसः** पापाचरणात् **पाहि** ॥

हे पुत्र ! तू (ऊर्जा) पराक्रम के साथ (नि+वर्त्तस्व) पापाचरण से दूर हो (पुनः) फिर (नः) हमें (अंहसः) पापाचरण से (पाहि) बचा ॥

[हे अग्ने=मातः पितृश्च त्वम् ··· अहंसः पाहि]

भावार्थः—यथा विद्वांसो मातापितरः सुसन्तानान् विद्यया, सुशिक्षया दुष्टाचारात् पृथग्रक्षेयुः।

भावार्थ—जैसे विद्वान् माता-पिता उत्तम सन्तानों को विद्या एवं सुशिक्षा के द्वारा दुष्ट आचरण से उन्हें पृथक् रखें—

[हे पुत्र ! ··· नः=अस्मान हंसः पाहि]

तथा—अपत्यान्यप्येतान् पापाचरणात् सततं पृथग्रक्षेयुः।

वैसे—सन्तान भी इन्हें पापाचरण से सदा-पृथक् रखें।

[हेतुमाह···]

नैवं विना सर्वे धर्माचारिणो भवितुं शक्नुवन्ति ॥ १२ । ४० ॥

इसके बिना सब धर्मात्मा नहीं हो सकते ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=विद्वन् मातः पितः ! । अहंसः=दुष्टाचारात् । पाहि=पृथग्रक्ष ।।

भाष्यसार—माता-पिता का सन्तान के प्रति कर्तव्य—स्व-सन्तान की, अन्नादि पौष्टिक पदार्थों से पालन करके उनकी आयु को बढ़ाना माता-पिता का परम-कर्त्तव्य है । इसी प्रकार सन्तान को दुष्टाचरण से पृथक् रखकर, सुशिक्षित करके उनका पूर्ण-विकास कराने का प्रयत्न करना चाहिये ।

वत्सप्रीः । **अग्निः=विद्वान्** ।। निचृद्गायत्री । षड्जः ।।

विद्वद्भिः कथं वर्तितव्यमित्याह ।।

विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।। ४१ ।।

पदार्थः—(**सह**) (**रय्या**) श्रीप्रापिकया (**नि**) (**वर्त्तस्व**) (**अग्ने**) विद्वन् (**पिन्वस्व**) सेवस्व (**धारया**) सुसंस्कृतया वाचा (**विश्वप्स्न्या**) विश्वान्=सर्वान् भोगान् यया प्साति तया (**विश्वतः**) सर्वस्य जगतः (**परि**) मध्ये ।। ४१ ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं विश्वप्स्न्या रय्या धारया सह विश्वतस्परि निवर्त्तस्वास्मान् पिन्वस्व च ।। ४१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** विद्वन् ! **त्वं विश्वप्स्न्या** विश्वान्=सर्वान् भोगान् यया प्साति तया, **रय्या** श्रीप्रापिकया **धारया** सुसंस्कृतया वाचा **सह विश्वतः** सर्वस्य जगतः **परि** मध्ये **नि+वर्त्तस्व, अस्मान् पिन्वस्व** सेवस्व **च** ।। १२ । ४१ ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप—(विश्वप्स्न्या) सब भोगों का भक्षण करने वाली, (रय्या) श्री=लक्ष्मी को प्राप्त कराने वाली (धारया) सुसंस्कृत वाणी के साथ (विश्वतः) सब जगत् के (परि) मध्य में (नि+वर्त्तस्व) निश्चय से वर्तमान रहो । और हमारी (पिन्वस्व) सेवा करो ।। १२ । ४१ ।।

[**हे अग्ने ! त्वं···रय्या धारया सह विश्वतस्परि निवर्त्तस्व**]

भावार्थः—विद्वद्भिर्मनुष्यैरस्मिन् जगति सुबुद्धया पुरुषार्थेन श्रीमन्तो भूत्वा ऽन्येऽपि धनवन्तः संपादनीयाः ।। १२ । ४१ ।।

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य इस जगत् में सुबुद्धि एवं पुरुषार्थ से श्रीमान् होकर दूसरों को भी धनवान् बनावें ।। १२ । ४१ ।।

भा० पदार्थः—धारया=सुबुद्धया ।

भाष्यसार—विद्वान् का कर्त्तव्य—विद्वान् मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी वाणी को ऐसी सुसंस्कृत तथा सुसंयमित बनाये, जिससे सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो सके । और अपने पुरुषार्थ से सभी प्रकार के धन-धान्य से सम्पन्न होने का प्रयत्न करना चाहिये । और दूसरों को भी धनादि से सम्पन्न बनायें ।

दीर्घतमाः । **अग्निः=श्रोता** ।। विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

मनुष्याः परस्परमध्ययनाध्यापनं कथं कुर्युरित्याह ।।

मनुष्य लोग आपस में कैसे पढ़ें और पढ़ावें, इस विषय का उपदेश किया है ।।

**बोधा मे ऽ अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो ऽ अनुत्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे ऽ अग्ने ॥ ४२ ॥**

पदार्थः—(**बोध**) अवगच्छ । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**मे**) मम (**अस्य**) वर्त्तमानस्य (**वचसः**) (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**मंहिष्ठस्य**) अतिशयेन भाषितुं योग्यस्य महतः (**प्रभृतस्य**) प्रकर्षेण धारकस्य पोषकस्य वा (**स्वधावः**) प्रशस्ता स्वधा=बह्वन्यन्नादि विद्यन्ते यस्य सः (**पीयति**) निन्देत् । अत्रानेकार्था अपि धातवो भवन्तीति निन्दार्थः (**त्वः**) कश्चित् निन्दकः (**अनु**) पश्चात् (**त्वः**) कश्चित् (**गृणाति**) स्तुयात् (**वन्दारुः**) अभिवादनशीलः (**ते**) तव (**तन्वम्**) शरीरम् (**वन्दे**) स्तुवे (**अग्ने**) श्रोतः ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—'बोधा' यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' इस पाणिनीय सूत्र से दीर्घ हुआ है। 'पीयति' यहाँ यह धातु निन्दार्थ में है । क्योंकि 'अनेकार्था अपि धातवो भवन्ति' ऐसा महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है।

अन्वयः—हे यविष्ठ स्वधावोऽग्ने ! त्वं मे मम प्रभृतस्य मंहिष्ठस्यास्य वचसोऽभिप्रायं बोध । यदि त्वो यं त्वां पीयति निन्देत्त्वोऽनुगृणाति स्तुयात् तस्य ते तव तन्वं वन्दारुरहं वन्दे ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे यविष्ठ** अतिशयेन युवन् ! **स्वधावः** प्रशस्ता स्वधा=बह्वन्यन्नानि विद्यन्ते यस्य सः! **अग्ने** श्रोतः ! **त्वं मे=मम प्रभृतस्य** प्रकर्षेण धारकस्य पोषकस्य वा **मंहिष्ठस्य** अतिशयेन भाषितुं योग्यस्य महतः **अस्य** वर्त्तमानस्य **वचसः अभिप्रायं=बोध** अवगच्छ ।

यदि त्वः कश्चित् निन्दकः **यं त्वां पीयति=निन्देत्, त्वः** कश्चिद् **अनु+गृणाति=स्तुयात्** पश्चात् स्तुयात्, **तस्य ते=तव तन्वं** शरीरं **वन्दारुः** अभिवादनशीलः **अहं वन्दे** स्तुवे ॥ १२ । ४२ ॥

भाषार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक, (स्वधावः) उत्तम नाना अन्नों वाले, (अग्ने) वाणी को सुनने वाले ! तू (मे) मेरे (प्रभृतस्य) उत्तम रीति से धारण वा पोषण करने वाले, (मंहिष्ठस्य) सर्वथा भाषण के योग्य अर्थात् महान्, (अस्य) इस (वचसः) वचन के अभिप्राय को (बोध) समझ ।

यदि (त्वः) कोई निन्दक आपकी (पीयति) निन्दा करता है, (त्वः) कोई (अनु+गृणाति) स्तुति करता है, सो (ते) आपके (तन्वम्) शरीर का (वन्दारुः) अभिवादन करने वाला मैं—(वन्दे) आपकी स्तुति करता हूँ ॥ १२ । ४२ ॥

[हे ··· अग्ने ! त्वं मे=मम···वचसोऽभिप्रायं बोध]

भावार्थः—यदा कश्चित्कञ्चिदध्यापयेदुपदिशेद्वा तदाऽध्येता श्रोता च ध्यानं दत्त्वाऽधीयीत शृणुयाच्च ।

यदा सत्यासत्ययोर्निर्णयः स्यात् तदा सत्यं गृह्णीयादसत्यं त्यजेद् ।

भावार्थ—जब कोई किसी को पढ़ावे वा उपदेश करे तब पढ़ने और सुनने वाला ध्यान देकर पढ़े और सुने ।

जब सत्य-असत्य का निर्णय हो तब सत्य को ग्रहण करे और असत्य को छोड़ देवे ।

[यदि त्वः··· त्वां पीयति=निन्देत्, अनुगृणाति=स्तुयात्]

एवं कृते सति कश्चिन्निन्द्यात् कश्चित् स्तुयात् तर्ह्यपि कदाचित् सत्यं ने त्यजेत्, अनृतं च न भजेत् ।

ऐसा करने पर—कोई निन्दा करे वा कोई स्तुति करे तब भी कभी सत्य को न छोड़े, और असत्य को ग्रहण न करे ।

[तस्य ते ··· अहं वन्दे]

इदमेव मनुष्यस्यासाधारणो गुणः ॥ १२ । ४२ ॥

यही मनुष्य का असाधारण गुण है ॥ १२।४२ ॥

भाष्यसार—**शिष्य कैसा होना चाहिये**—(१) प्रभृतः=गुरु के सुने हुए पाठ को अच्छी प्रकार धारण करने वाला हो। (२) स्वधावः=अन्नादि पदार्थों से गुरु की सेवा करने वाला हो। (३) यविष्ठ=शरीर और बुद्धि से पूर्ण स्वस्थ हो। (४) मंहिष्ठः=महत्त्वाकांक्षी होकर भाषण करने में दक्ष हो। (५) अग्निः=गुरु के वचनों को ध्यानपूर्वक सुनकर प्रकाशित हो। (६) वचसो बोधः=गुरु के पढ़ाये हुए पाठ को समझने की योग्यता वाला हो। (७) दूसरों से निन्दा या स्तुति सुनकर भी सत्यमार्ग से विचलित न होने वाला हो। (८) वन्दारुः=गुरुजनों को सदा अभिवादन करने वाला हो।

सोमाहुतिः। **अग्निः**=**धार्मिक-विद्वान्** ॥ आर्चीपंक्तिः। पञ्चमः ॥

मनुष्याः किं कृत्वा किं प्राप्नुयुरित्याह ॥

मनुष्य लोग क्या करके किस को प्राप्त हों, यह उपदेश किया है ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्यस्मद् द्वेषांसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(सः) श्रोता वक्ता च (**बोधि**) बुध्येत (**सूरिः**) मेधावी (**मघवा**) पूजितविद्यायुक्तः (**वसुपते**) वसूनां=धनानां पालक (**वसुदावन्**) वसूनि=धनानि सुपात्रेभ्यो ददाति, तत्संबुद्धौ (**युयोधि**) वियोजय (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**द्वेषांसि**) द्वेषयुक्तानि कर्माणि (**विश्वकर्मणे**) अखिलशुभकर्मानुष्ठानाय (**स्वाहा**) सत्यां वाणीम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे वसुपते वसुदावन्! यो मघवा सूरिर्भवान्सत्यं बोधि स विश्वकर्मणे स्वाँहामुपदिशन्संस्त्वमस्मद्द्वेषांसि वियुयोधि सततं दूरीकुरु ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वसुपते** वसूनां=धनानां पालक! **वसुदावन्** वसूनि=धनानि सुपात्रेभ्यो ददाति तत्सम्बुद्धौ! **यो मघवा** पूजितविद्यायुक्तः **सूरिः** मेधावी **भवान् सत्यं बोधि** बुध्येत, **सः** श्रोता वक्ता च **विश्वकर्मणे** अखिलशुभकर्माऽनुष्ठानाय [**स्वाहा**]=**स्वाहां** सत्यां वाणीम् **उपदिशन् सँस्त्वम् अस्मत्** अस्माकं सकाशाद् **द्वेषांसि** द्वेषयुक्तानि कर्माणि **वि+युयोधि**=**सततं दूरीकुरु** वियोजय ॥ १२ ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—हे (वसुपते) वसु अर्थात् धनों के पालक, (वसुदावन्) वसु अर्थात् धनों को सुपात्रों को देने वाले, (मघवा) पूजित विद्या से युक्त (सूरिः) मेधावी विद्वान्! आप सत्य को (बोधि) जानो। (सः) वह श्रोता और वक्ता (विश्वकर्मणे) सब शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिये [स्वाहा] सत्य वाणी का उपदेश करता हुआ (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेष-युक्त कर्मों को (वि+युयोधि) सदा दूर करे ॥ १२ । ४३ ॥

[यो···सूरिर्भवान् सत्यं बोधि, विश्वकर्मणे स्वाहामुपदिशन्···अस्मद्द्वेषांसि वियुयोधि]

भावार्थः—ये मनुष्या ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रिया भूत्वा द्वेषं विहाय धर्मेणोपदिश्य श्रुत्वा च प्रयतन्ते त एव धार्मिका विद्वांसोऽखिलं सत्यासत्यं ज्ञातुमुपदेष्टुं चार्हन्ति, नेतरे हठाभिमानयुक्ताः क्षुद्राशयाः ॥ १२ । ४३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से जितेन्द्रिय होकर द्वेष को छोड़कर धर्म से उपदेश करके और सुनकर प्रयत्न करते हैं वे ही धार्मिक विद्वान् सब सत्य और असत्य को जान सकते और उपदेश कर सकते हैं, हठ और अभिमान से युक्त दूसरे क्षुद्राशय लोग नहीं ॥

भा० पदार्थः—सूरिः=धार्मिकविद्वान् । विश्वकर्मणे=अखिलं सत्यासत्यं ज्ञातुमुपदेष्टुं च ।

भाष्यसार—**अध्यापक कैसा हो**—(१) वसुपतिः=विद्यारूप धन का पालक हो। (२) वसुदावन्=विद्या-धन को योग्य शिष्यों को देने वाला हो। (३) मघवा=पूर्ण विद्या के कारण सर्वत्र पूजित हो। (४) सूरिः=मेधावी हो। (५) स्वाहा=सत्योपदेश करने वाला हो। (६) द्वेषादि दुर्गुणों से दूर रहने वाला हो।

सोमाहुतिः । **अग्निः**=विद्वान् ॥ स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृशा मनुष्याः सत्यसंकल्पा भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे मनुष्य सत्य संकल्प वाले होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**पुनः**) अध्ययनाध्यापनाभ्यां पश्चात् (**त्वा**) त्वाम् (**आदित्याः**) पूर्णविद्याबलयुक्ताः (**रुद्राः**) मध्यस्थाः (**वसवः**) प्रथमे च विद्वांसः (**सम्**) (**इन्धताम्**) प्रकाशयन्तु (**पुनः**) (**ब्रह्माणः**) चतुर्वेदाध्ययनेन ब्रह्मा इति सञ्ज्ञां प्राप्ताः (**वसुनीथ**) वेदादिशास्त्रबोधाख्यं सुवर्णादिधनं च यो नयति तत्सम्बुद्धौ (**यज्ञैः**) अध्ययनाध्यापनादिक्रियामयैः (**घृतेन**) सुसंस्कृतेनाज्यादिना जलेन वा (**त्वम्**) अध्यापकः श्रोता वा (**तन्वम्**) शरीरम् (**वर्धयस्व**) (**सत्याः**) सत्सु=धर्मेषु साधवः (**सन्तु**) भवन्तु (**यजमानस्य**) यष्टुं=संगन्तुं विदुषः पूजितुं च शीलं यस्य तस्य (**कामाः**) अभिलाषाः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे वसुनीथ त्वं यज्ञैर्घृतेन च तन्वं शरीरं नित्यं वर्धयस्व पुनस्त्वामादित्या रुद्रा वसवो ब्रह्माणः समिन्धताम् । एवमनुष्ठानाद्यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वसुनीथ** वेदादिशास्त्रबोधाऽऽख्यं सुवर्णादिधनं च यो नयति तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं** अध्यापकः श्रोता वा **यज्ञैः** अध्ययनाऽध्यापनादिक्रियामयैः **घृतेन** सुसंस्कृतेनाज्यादिना जलेन वा **च तन्वं** शरीरं **नित्यं वर्धयस्व । पुनः** अध्ययनाऽध्यापनाभ्यां पश्चात् [**त्वा**]=**त्वाम् आदित्याः** पूर्णविद्याबलयुक्ताः **रुद्राः** मध्यस्थाः **वसवः** प्रथमे च विद्वांसः **ब्रह्माणः** चतुर्वेदाऽध्ययनेन ब्रह्मा इति संज्ञां प्राप्ताः **सम्+इन्धतां** प्रकाशयन्तु । **एवमनुष्ठानाद् यजमानस्य** यष्टुं=संगन्तुं विदुषः पूजितुं च शीलं यस्य तस्य **कामाः** अभिलाषाः **सत्याः** सत्सु=धर्मेषु साधवः **सन्तु** भवन्तु ॥ १२ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (वसुनीथ) वेदादि शास्त्रों के बोध रूप धन और सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करने वाले अध्यापक वा श्रोता ! (त्वम्) आप—(यज्ञैः) अध्ययन-अध्यापन आदि क्रियामय यज्ञों से और (घृतेन) सुसंस्कृत घृत आदि वा जल से (तन्वम्) शरीर को नित्य (वर्धयस्व) बढ़ाओ। (पुनः) पठन-पाठन के पश्चात् [त्वा] आपको (आदित्याः) पूर्ण विद्याबल से युक्त विद्वान्, (रुद्राः) मध्य-कोटि के विद्वान्, (वसवः) प्रथम-कोटि के विद्वान्, (ब्रह्माणः) चारों वेदों के अध्ययन से 'ब्रह्मा' पद को प्राप्त विद्वान् (सम्+इन्धताम्) प्रकाशित करें। इस प्रकार अनुष्ठान करने से (यजमानस्य) संगति और पूजा करने वाले यजमान की (कामाः) अभिलाषाएँ (सत्याः) धर्म-युक्त (सन्तु) हों ॥ १२ । ४४ ॥

[हे वसुनीथ ! त्वं यज्ञैः ''']

भावार्थः—ये प्रयत्नेन सर्वा विद्या अधीत्याध्याप्य च पुनः पुनः सत्संगं कुर्वन्ति,

भावार्थ—जो-प्रयत्न से सब विद्याओं को पढ़-पढ़ाकर बार-बार सत्संग करते हैं—

[घृतेन तन्वं नित्यं वर्धयस्व]

कुपथ्यविषयत्यागेन शरीरात्मनोरारोग्यं वर्धयित्वा नित्यं पुरुषार्थमनुतिष्ठन्ति,

कुपथ्य और विषय के परित्याग से शरीर और आत्मा के आरोग्य को बढ़ाकर नित्य पुरुषार्थ करते हैं—

[यजमानस्य कामाः सत्याः सन्तु]

तेषामेव संकल्पाः सत्या भवन्ति, नेतरेषाम् ॥

उन्हीं के संकल्प सत्य होते हैं, अन्यों के नहीं ॥

भा० पदार्थः—घृतेन=कुपथ्यविषयत्यागेन । तन्वम्=शरीरात्मनोरारोग्यम् ।

भाष्यसार—**सत्य संकल्प करने के साधन**—हमारी इच्छायें पूर्ण हों एतदर्थ आवश्यक है कि हमारा शरीर यज्ञमय अर्थात् परोपकारी हो और यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों से तथा घृतादि पौष्टिक पदार्थों के प्रयोग से पूर्ण स्वस्थ हो । सत्याः=हमारी इच्छायें भी शुभ हों, तभी पूर्ण हो सकती हैं। शुभ इच्छाओं को पूरा करने के लिये वेदादि शास्त्रों की उत्तम विद्या तथा सुवर्णादि दूसरे धन भी होने चाहिये । इसके साथ वेद के विद्वान् आदित्य, रुद्र तथा वसु इन तीन प्रकार के विद्वानों की संगति से अच्छी प्रकार प्रकाशित हो, तब ही सत्य संकल्पी बन सकता है ।

सोमाहुतिः । **पितरः**=**माता-पितृ-आचार्याः** ॥ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ जन्यजनकाः किं किं कर्माचरेयुरित्याह ॥

सन्तान और पिता-माता परस्पर किन-किन कर्मों का आचरण करें,
यह उपदेश किया है ॥

**अपे॑त वी॒त वि च॑ सर्पता॒तो येऽत्र॒ स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः ।
अदा॑द्य॒मो॒ऽव॒सानं॑ पृथि॒व्या ऽ अक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥ ४५ ॥**

पदार्थः—(**अप**) (**इत**) त्यजत (**वि**) (**इत**) विविधतया प्राप्नुत (**वि**) (**च**) (**सर्पत**) गच्छत (**अतः**) कारणात् (**ये**) (**अत्र**) अस्मिन्समये (**स्थ**) भवथ (**पुराणाः**) प्रागधीतविद्याः (**ये**) (**च**) (**नूतनाः**) संप्रतिगृहीतविद्याः (**अदात्**) दद्यात् (**यमः**) उपरतः परीक्षकः (**अवसानम्**) अवकाशमधिकारं वा (**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये वर्त्तमानाः (**अक्रन्**) कुर्वन्तु (**इमम्**) प्रत्यक्षम् (**पितरः**) जनका अध्यापका उपदेशकाः परीक्षका वा (**लोकम्**) आर्षं दर्शनम् (**अस्मै**) सत्यसंकल्पाय ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! येऽत्र पृथिव्या मध्ये पुराणा ये च नूतनाः पितरः स्थ तेऽस्मै इमं लोकमक्रन् । यान् युष्मान्यमोऽवसानमदात्ते यूयमतोऽधर्मादपेतधर्म्मं वीतात्रैव च विसर्पत ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः- हे विद्वांसः ! येऽत्र अस्मिन् समये **पृथिव्या मध्ये** भूमेर्मध्ये वर्त्तमानाः **पुराणाः** प्रागधीतविद्याः **ये च नूतनाः** सम्प्रतिगृहीतविद्याः **पितरः** जनका अध्यापका

भाषार्थ—हे विद्वानो ! (ये) जो (अत्र) इस समय (पृथिव्या) भूमि पर विद्यमान (पुराणाः) पुराने विद्वान् हैं, और (ये च) जो (नूतनाः) नये विद्वान् हैं, (पितरः) पिता, अध्यापक

उपदेशका परीक्षका वा **स्थ** भवथ, **ते ऽस्मै** सत्य-संकल्पाय **इमं** प्रत्यक्षं **लोकम्** आर्षं दर्शनम् **अक्रन्** कुर्वन्तु ।

यान् युष्मान् यमः उपरतः परीक्षकः **अवसानम्** अवकाशमधिकारं वा **अदात्** दद्यात्, **ते यूयम् अतः**= **अधर्मात्** कारणाद् **अप+इत** त्यजत, **धर्मं वि+इत** विविधतया प्राप्नुत, **अत्र** अस्मिन् समये **एव च वि+सर्पत** गच्छत ॥ १२ । ४५ ॥

वा परीक्षक (स्थ) हैं, वे—(अस्मै) इस सत्य—संकल्प वाले मनुष्य के लिए (इमम्) इस (लोकम्) आर्ष दर्शन को (अक्रन्) प्राप्त करें ।

तुम्हें (यमः) प्राप्त परीक्षक (अवसानम्) अवकाश वा अधिकार (अदात्) प्रदान करे, सो तुम (अतः) इस अधर्म से (अप+इत) दूर रहो, और धर्म को (वि+इत्) विविध प्रकार से प्राप्त करो। और (अत्र) इसी समय ही (वि+सर्पत) प्राप्त करो ॥ १२ । ४५ ॥

[ये ऽत्र···पितरः स्थ, ते ऽस्मै इमं लोकमक्रन्]

भावार्थः—अयमेव माता-पितृ-आचार्याणां परमो धर्मो ऽस्ति यत् सन्तानेभ्यो विद्यासुशिक्षाप्राप्तिकारणम् ।

भावार्थ—यही माता, पिता और आचार्य का परम धर्म है कि सन्तानों को विद्या, सुशिक्षा की प्राप्ति कराना ।

[यूयमतो ऽधर्मादपेत, धर्मं वीत, येऽत्र···पुराणा ये च नूतनाः पितरः]

ये ऽधर्मान्मुक्ता धर्मेण युक्ताः परोपकारप्रिया वृद्धा युवानश्च विद्वांसः सन्ति ते सततं सत्योपदेशेनाविद्यां निवर्त्य विद्यां जनयित्वा कृतकृत्या भवन्तु ॥ १२ । ४५ ॥

जो अधर्म से मुक्त और धर्म से युक्त परोपकारी वृद्ध और युवक विद्वान् हैं वे सदा सत्य उपदेश से अविद्या को हटाकर तथा विद्या को उत्पन्न करके कृत-कृत्य होवें ॥ १२ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=माता-पितृ-आचार्याः । पुराणाः=परोपकारप्रिया वृद्धा विद्वांसः । नूतनाः=परोपकारप्रिया युवानो विद्वांसः ॥

भाष्यसार—**सन्तान और माता पिता का पारस्परिक व्यवहार**—माता पिता को योग्य है कि वे स्वयं अधर्म से दूर रह कर सन्तान को धर्म में प्रेरित करें और उन्हें सुशिक्षित करें । इसी प्रकार सन्तान का कर्त्तव्य है कि वे विद्वान् माता-पिता तथा आचार्य से उनके दोषों से अलग रह कर आर्ष-दर्शन प्राप्त करें और सदा सत्य-संकल्पी होकर अविद्यादि दोषों से दूर रहें । ●

सोमाहुतिः । **अग्निः=अध्येता, अध्यापकश्च** ॥ भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अध्येत्रध्यापकाः किं कृत्वा सुखिनः स्युरित्याह ॥

पढ़ने पढ़ाने वाले क्या करके सुखी हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् ।
अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चित स्थ परिचितं ऽऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**संज्ञानम्**) सम्यग्विज्ञानम् (**असि**) (**कामधरणम्**) संकल्पानामाधरणम् (**मयि**) (**ते**) तव (**कामधरणम्**) (**भूयात्**) (**अग्नेः**) पावकस्य (**भस्म**) दग्धदोषः (**असि**) (**अग्नेः**) विद्युतः (**पुरीषम्**) पूर्णं बलम् (**असि**) (**चितः**) संचिताः (**स्थ**) भवत (**परिचितः**) परितः=सर्वतः संचेतारः (**ऊर्ध्वचितः**) ऊर्ध्वं संचिन्वन्तः (**श्रयध्वम्**) सेवध्वम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! त्वं यत्संज्ञानं प्राप्तोऽसि । यत् त्वमग्नेर्भस्मास्याग्नेर्यत्पुरीषप्राप्तोसि तन्मां प्रापय । यस्य ते तव यत्कामधरणमस्ति तत्कामधरणं मयि भूयाद्यथा यूयं विद्यादिशुभगुणैश्चितः परिचितः ऊर्ध्वचितः स्थ पुरुषार्थं चाश्रयध्वं तथा वयमपि भवेम ।। ४६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं यत् संज्ञानं सम्यग् विज्ञानं **प्राप्तो असि, यत् त्वम् अग्नेः** पावकस्य **भस्म** दग्धदोषः **असि, अग्नेः** विद्युतः **यत् पुरीषं** पूर्णं बलं **प्राप्तो असि, तन्मां प्रापय ।**

भावार्थ—हे विद्वान् ! आप जिस (संज्ञानम्) उत्तम विज्ञान को प्राप्त (असि) हो आप (अग्नेः) अग्नि के (भस्म) जिन दोषों को दग्ध करने वाले (असि) हो, (अग्नेः) विद्युत् के जिस (पुरीषम्) पूर्ण बल को प्राप्त (असि) हो, उसे मुझे प्राप्त कराओ ।

यस्य ते=तव यत् कामधरणं संकल्पानामाधरणम् **अस्ति, तत् कामधरणं** संकल्पानामाधरणं **मयि भूयात् ।**

(ते) आपका जो (कामधरणम्) संकल्पों का आधार है, वह (कामधरणम्) संकल्पों का आधार (मयि) मुझ में भी (भूयात) होवे ।

यथा यूयं विद्यादिशुभगुणैश्चितः सञ्चिताः **परिचितः** परितः सर्वतः संचेतारः **ऊर्ध्वचितः** ऊर्ध्वं संचिन्वन्तः **स्थ** भवत, **पुरुषार्थं च आ+श्रयध्वम्** सेवध्वं, **तथा वयमपि भवेम** ।। १२ । ४६ ।।

जैसे आप विद्या आदि शुभ गुणों से (चितः) युक्त हो, (परिचितः) उन्हें सब ओर से संचित करने वाले तथा (ऊर्ध्वचितः) उन्हें उन्नत करने वाले (स्थ) हो, और पुरुषार्थ का (आ+श्रयध्वम्) सेवन करते हो, वैसे हम भी होवें ।। १२ । ४६ ।।

[हे विद्वन् ! त्वं यत् संज्ञानं प्राप्तोऽसि···तन्मां प्रापय]

भावार्थः—जिज्ञासवः सदा विदुषां सकाशाद् विद्याःप्रार्थ्य पृच्छेयुर्यावद् युष्मासु पदार्थविज्ञानमस्ति तावत्सर्वमस्मासु धत्त ।

भावार्थ—जिज्ञासु लोग सदा विद्वानों से विद्याओं को प्रार्थनापूर्वक पूछें कि जितना आपमें पदार्थविज्ञान है वह सब हममें स्थापित करो ।

[यथा यूयं ··· चितः परिचित ऊर्ध्वचितः स्थ]

यावतीर्हस्तक्रिया भवन्तो जानन्ति तावतीरस्मान् शिक्षत ।

जितनी हस्त क्रियायें आप जानते हैं उतनी हमें सिखाओ ।

[आश्रयध्वम्]

यथा वयं भवदाश्रिता भवेम तथैव भवन्तोऽप्यस्माकमाश्रयाः सन्तु ।। १२ । ४६ ।।

जैसे हम आपके आश्रित होवें वैसे ही आप हमारे आश्रित हों ।। १२ । ४६ ।।

भा० पदार्थः—संज्ञानम्=पदार्थविज्ञानम् ।

भाष्यसार—**अध्यापक का कर्त्तव्य**—जितना भी उत्तम पदार्थ विज्ञान है वह सब जिज्ञासुओं को सिखाकर अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह उनके दोषों को भी दूर कराये । उसके लिये आवश्यक है कि अध्यापक भी सच्चरित्र तथा सत्य संकल्प वाला हो । सब प्रकार के ज्ञानों से युक्त करना, परिचित कराना तथा उनको बढ़ाना अध्यापक का मुख्य कर्त्तव्य है ।

विश्वामित्रः । **अग्निः**=विद्वान् ॥ आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैरुत्तमाचरणानुकरणं कार्य्यमित्याह ॥

मनुष्यों को उत्तम आचरणों का अनुकरण करना चाहिये,
यह उपदेश किया है ॥

अयथ्ंश सो ऽ अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिथ्ंश ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**अयम**) (**सः**) (**अग्निः**) (**यस्मिन्**) (**सोमम्**) सर्वौषध्यादिरसम् (**इन्द्रः**) सूर्य्यः (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**दधे**) धरे (**जठरे**) उदरे । जठरमुदरम् भवति जग्धमस्मिन् ध्रियते धीयते वा ॥ निरु० ४ । ७ ॥ (**वावशानः**) भृशं कामयमानः (**सहस्रियम्**) सहप्राप्ताम् भार्य्याम् (**वाजम्**) अन्नादिकम् (**अत्यम्**) अतितुं=व्याप्तुं योग्यम् (**न**) इव (**सप्तिम्**) अश्वम् (**ससवान्**) ददत् (**सन्**) (**स्तूयसे**) प्रशस्यसे (**जातवेदः**) उत्पन्नविज्ञान ॥ ४७ ॥

प्रमाणार्थ—'जठरे-उदरे' यहाँ जठर शब्द उदर पर्यायवाची है । महर्षि यास्क ने (**निरुक्त** ४ । ७) में जठर शब्द निर्वचन करते हुए लिखा है—उदर को जठर इस लिये कहते हैं क्योंकि इसमें खाया हुआ रखा जाता है ।

अन्वयः—हे जातवेदः ! यथा ससवान्सँस्त्वं स्तूयसेऽयमग्निरिन्द्रश्च यस्मिन् सोमं दधाति यं सुतं जठरेऽहं दधे । सोऽहं वावशानः सन् सहस्रियं दधे । त्वया सह वाजमत्यं न सप्तिं दधे । तादृशस्त्वं भव ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जातवेदः** उत्पन्न-विज्ञान ! **यथा ससवान्** ददत् **सँस्त्वं स्तूयसे** प्रशस्यसे, **अयम् अग्निः** इन्द्रः सूर्य्यः **च यस्मिन् सोमं** सर्वौषध्यादिरसं **दधाति**, **यं सुतं** निष्पन्नं **जठरे** उदरे **अहं दधे** धरे, **सः अहं वावशानः** भृशं कामयमानः **सन् सहस्रियं** सहप्राप्तां भार्यां **दधे** धरे, **त्वया सह वाजम्** अन्नादिकम् **अत्यम्** अतितुं=व्याप्तुं योग्यं **न** इव **सप्तिम्** अश्वं **दधे** धरे, **तादृशस्त्वं भव** ॥ १२ । ४७ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) अंकुरित विज्ञान वाले विद्वान् ! जैसे—(ससवान्) दान करते हुए आप (स्तूयसे) प्रशंसित हो । और यह (अग्निः) अग्नि तथा (इन्द्रः) सूर्य (यस्मिन्) जिसमें (सोमम्) सब ओषधि आदि के रस को स्थापित करता है, जिस (सुतम्) तैयार सोम को (जठरे) उदर में मैं (दधे) धारण करता हूँ, सो मैं (वावशानः) अत्यन्त कामना करता हुआ (सहस्रियम्) साथ प्राप्त हुई स्त्री को (दधे) धारण करता हूँ और आप के साथ (वाजम्) अन्न आदि को एवं (अत्यम्) प्राप्त करने योग्य पदार्थ के (न) समान (सप्तिम्) अश्व=घोड़े को (दधे) धारण करता हूँ, वैसे आप भी होओ ॥ १२ । ४७ ॥

[**अयमग्निरिन्द्रश्च···सोमं दधाति, अहं···सहस्रियं दधे**]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा विद्युत्सूर्यौ सर्वान् रसान् गृहीत्वा जगद्रसयतो, यथा पत्या सह स्त्री, स्त्रिया सह पति-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे विद्युत् और सूर्य सब रसों को ग्रहण करके जगत् को रसयुक्त करते हैं,

श्चानन्दं भुङ्क्ते, तथाऽहमेतद् दधे ।

जैसे पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति आनन्द को भोगता है, वैसे मैं इस रस को धारण करता हूँ ।

[हे जातवेदः ! ससवान्...त्वं स्तूयसे]

यथा सद्गुणैर्युक्तस्त्वं स्तूयसे तथाऽहमपि प्रशंसितो भवेयम् ॥ १२ । ४७ ॥

जैसे—सद्गुणों से युक्त होकर आप प्रशंसित होते हो वैसे मैं भी प्रशंसित होऊँ ॥ १२ । ४७ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=विद्युत् । सोमम्=सर्वा रसम् ।

भाष्यसार—१. **मानव-धर्म**—जैसे विद्वान् पुरुष विद्या सिखाते हुए सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं वैसे ही अच्छे गुणों को प्राप्त होकर सब मनुष्य प्रशंसित हों । और जैसे विद्युत तथा सूर्य औषधियों में सोम रस स्थापित करते हैं वैसे सब मनुष्य सब संसार को रसयुक्त करें । पति से स्त्री तथा स्त्री से पुरुष प्रसन्न रह कर सदा आनन्दित रहें । और बलयुक्त अश्वादि पशुओं को, उत्तमोत्तम यवादि अन्नों को प्राप्त करके सदा स्वस्थ रहें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं । उपमा यह है जैसे विद्युत् तथा सूर्य रसों को लेकर सब जगत् को रसयुक्त करते हैं वैसे ही हम भी रस को धारण करें ।

विश्वामित्रः । **अग्निः**=अध्यापकः ॥ भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अध्यापकैर्निष्कपटत्वेन सर्वे विद्यार्थिनः पाठनीया इत्याह ॥

अध्यापक लोगों को निष्कपटता से सब विद्यार्थीजन पढ़ाने चाहियें, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**यत्**) यस्य (**ते**) तव (**दिवि**) द्योतनात्मके विद्युदादौ (**वर्चः**) विज्ञानप्रकाशः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**यत्**) (**ओषधीषु**) यवादिषु (**अप्सु**) प्राणेषु जलेषु वा (**आ**) (**यजत्र**) संगन्तुं योग्य (**येन**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**उरु**) बहु (**आ, ततन्थ**) समन्तात्तनु (**त्वेषः**) प्रकाशः (**सः**) (**भानुः**) प्रभाकरः (**अर्णवः**) अर्णांसि=बहून्युदकानि विद्यन्ते यस्मिन् सः । **अर्णसो लोपश्च ॥ अ० ५ । २ । १०९ ॥ इति मत्वर्थे वः सलोपश्च** (**नृचक्षाः**) नॄन् चक्षसे सः ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—'अर्णवः' यहाँ 'अर्णसो लोपश्च' (**अ०** ५ । २ । १०९) इस वार्त्तिक से मत्वर्थ में व प्रत्यय और सकार का लोप हुआ है ।

अन्वयः—हे येजत्राग्ने ! यद्यस्य ते तवाऽग्नेरिव दिवि वर्चः यत् पृथिव्यामोषधीष्वप्सु वर्चोऽस्ति येन नृचक्षा भानुरर्णवो नान्तरिक्षमुर्वाततन्थ तथा स त्वं तदस्मासु धेहि ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यजत्र** संगन्तुं योग्य ! **अग्ने** विद्वन् ! **यत्**=**यस्य ते**=**तव अग्नेरिव दिवि** द्योतनात्मके विद्युदादौ **वर्चः** विज्ञानप्रकाशः **यत्** यस्य **पृथिव्यां** भूमौ **ओषधीषु** यवादिषु **अप्सु**

भाषार्थ—हे (यजत्र) संग करने योग्य (अग्ने) विद्वान् ! (यत्) जो (ते) आपका अग्नि के समान (दिविः) दीप्तिमय विद्युत् आदि के विषय में (वर्चः) विज्ञान-प्रकाश है, और (यत्) जो

प्राणेषु जलेषु वा **वर्चः** विज्ञानप्रकाशः **अस्ति, येन नृचक्षाः** नॄन् चक्षते सः **[त्वेषः]**=प्रकाशः **भानुः** प्रभाकरः **अर्णवः** अर्णांसि=बहून्युदकानि विद्यन्ते यस्मिन्सः, **येन अन्तरिक्षम्** आकाशम् **उरु** बहु **आ+ततन्थ** समन्तात् तनु, **तथा स त्वं तदस्मासु धेहि** ॥ १२ । ४८ ॥

(पृथिव्याम्) भूमि, (ओषधिषु) जौ आदि औषधियों (अप्सु) प्राण वा जल के विषय में (वर्चः) विज्ञान-प्रकाश है, जिससे (नृचक्षाः) नरों को दिखानेवाला [त्वेषः] प्रकाशरूप (भानुः) सूर्य तथा (अर्णवः) बहुत जल वाला सागर विस्तृत है, जिससे (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आ+ततन्थ) चहुँ ओर विस्तृत है, वैसे—आप उस विज्ञानप्रकाश को हममें स्थापित करो ॥ १२ । ४८ ॥

[हे ··· **अग्ने** ! **यत्**=**यस्य ते** ··· **वर्चोऽस्ति** ··· **स त्वं तदस्मासु धेहि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ अस्मिन् जगति यस्य सृष्टिपदार्थविज्ञानं यादृशं स्यात् तादृशं सद्योऽन्यान् ग्राहयेत् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ इस जगत् में जिसे सृष्टि के पदार्थों का विज्ञान जैसा हो उसे शीघ्र अन्यों को ग्रहण करावे ।

[हेतुमाह—]

यदि न ग्राहयेत् तर्हि तन्नष्टं सदन्यैः प्राप्तुमशक्यं स्यात् ॥ १२ । ४८ ॥

यदि ग्रहण न करावे तो वह नष्ट हुआ दूसरों से प्राप्त नहीं किया जा सकता ॥ १२ । ४८ ॥

भा० पदार्थः—वर्चः=सृष्टिपदार्थ विज्ञानम् ॥

भाष्यसार—**१. अध्यापक का कर्त्तव्य**—अध्यापक का यह परम कर्त्तव्य है कि उसने विद्युत्सम्बन्धी तथा पार्थिव ओषधि आदि का जितना भी विज्ञान प्राप्त किया हो, वह नृचक्षाः=मनुष्यों को मार्ग दिखाने वाला होना चाहिये । निष्कपट होकर दूसरों को सिखाना चाहिये । जिससे स्वयं भी यजत्र=संग करने योग्य बन सके । शिक्षक का ज्ञान सूर्य के समान तेजस्वी तथा सागर के समान विस्तृत होना चाहिये ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में इव पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उपमा यह है जैसे–सूर्य स्वयं प्रकाशमान् होकर लोक-लोकान्तरों को प्रकाशित करता है वैसे ही शिक्षक भी दूसरों को ज्ञानस्वरूप होकर ज्ञानयुक्त करता रहे ।

विश्वामित्रः । **अग्निः**=**अध्यापकः** ॥ भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

अध्यापक लोग निष्कपट भाव से विद्यार्थियों को पढ़ावें,
यह फिर उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ दि॒वोऽ अर्ण॒मच्छा॑ जिगा॒स्यच्छा॑ दे॒वाँ२ऽ ऊ॑चिषे॒ धिष्ण्या॒ ये ।
या रो॑च॒ने प॒रस्ता॒त् सूर्य॑स्य॒ याश्चा॒वस्ता॑दु॒प॒तिष्ठ॑न्त॒ऽ आपः॑ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**दिवः**) प्रकाशात् (**अर्णम्**) विज्ञानम् (**अच्छ**) (**जिगासि**) स्तौषि (**अच्छ**) (**देवान्**) दिव्यगुणान् विदुषो विद्यार्थिनो वा (**ऊचिषे**) वक्ति (**धिष्ण्याः**) ये दिधिषन्ति=ब्रुवन्ति

ते धिषाणास्तेषु साधवः । अत्र धिधातोर्बाहुलकादौणादिकः कनिन् ततो यत (ये) (याः) (रोचने) प्रकाशे (परस्तात्) पराः (सूर्यस्य) (याः) (च) (अवस्तात्) अधस्थाः (उपतिष्ठन्ते) (आपः) प्राणा जलानि वा ।। ४६ ।।

प्रमाणार्थ—'धिष्ण्याः' यहाँ धि धातु से औणादिक कनिन् प्रत्यय बहुल वचन से हुआ है और फिर साधु अर्थ में यत् प्रत्यय हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! यस्त्वं दिवोर्णं या आपः सूर्यस्य रोचने परस्ताद्याश्चावस्तादुपतिष्ठन्ते ता अच्छ जिगासि । ये धिष्ण्याः सन्ति तान् देवान् प्रत्यर्णमच्छोचिषे स त्वमस्माकमुपदेष्टा भव ।। ४६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** विद्वन् ! **यस्त्वं दिवः** प्रकाशाद् **अर्णं** विज्ञानं **याः आपः** प्राणा जलानि वा **सूर्य्यस्य रोचने** प्रकाशे **परस्तात्** पराः **याः च अवस्तात्** अधस्थाः **उप+तिष्ठन्ते, ता अच्छ जिगासि** स्तौषि ।

ये धिष्ण्याः ये दिधिषन्ति=ब्रुवन्ति ते धिषाणास्तेषु साधवः, **सन्ति, तान् देवान्** दिव्यगुणान् विदुषो विद्यार्थिनो वा **प्रति अर्णं** विज्ञानम् **अच्छ ऊचिषे** वक्षि, **स त्वमस्माकमुपदेष्टा भव** ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (दिवः) प्रकाश से (अर्णम्) विज्ञान की, और (याः) जो (आपः) वायु वा जल (सूर्यस्य) सूर्य के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) ऊपर हैं और (याः) जो (अवस्तात्) नीचे (उप+तिष्ठन्ते) उपस्थित हैं, उनकी (अच्छ) अच्छी प्रकार से (जिगासि) स्तुति करते हो । और—

(ये) जो (धिष्ण्याः) उपदेश करने वालों में श्रेष्ठ विद्वान् हैं उन (देवान्) दिव्य गुणों वाले विद्वानों वा विद्यार्थियों के प्रति (अर्णम्) विज्ञान का (अच्छ) अच्छी प्रकार (ऊचिषे) उपदेश करते हो, सो आप हमारे उपदेष्टा बनो ।। १२ । ४६ ।।

[हे अग्ने ! यस्त्वं दिवोऽर्णं, या आपः सूर्यस्य रोचने परस्तात्, याश्चावस्तादुपतिष्ठन्ते ता अच्छ जिगासि]

भावार्थः—ये सुविचारेण विद्युतः सूर्यकिरणेषूपर्यधःस्थानां जलानां वायूनां च बोधं यथा प्राप्नुवन्ति, ते ऽन्यान् प्रति सम्यगुपदिशन्तु ।।

भावार्थ—जो—अत्यन्त विचारपूर्वक विद्युत् एवं सूर्य-किरणों में ऊपर नीचे स्थित जल और वायु सम्बन्धी बोध को जैसा प्राप्त करते हैं, वे उसका अन्यों को भी ठीक-ठीक उपदेश करें ।। १२ । ४६ ।।

भा० पदार्थः—दिवः=विद्युतः । अर्णम्=बोधम् । रोचने=किरणेषु । परस्तात्=उपरिस्थाः ।

भाष्यसार—**अध्यापक का धर्म**—शिक्षक को योग्य है कि वह निरन्तर अपने ज्ञान को बढ़ाता रहे । विद्युत् सम्बन्धी तथा सूर्य किरणों के ऊपर तथा नीचे स्थित जल और वायुओं को अच्छी प्रकार जाने । और उस ज्ञान को (**धिष्ण्या देवान्**) उपदेश करने वाले विद्वानों को और धारण करने में समर्थ विद्यार्थियों को सिखाता रहे ।

विश्वामित्रः । **अग्निः=विद्युत्** ।। आर्ची पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

मनुष्यैर्द्वेषादिकं विहायानन्दितव्यमित्युपदिश्यते ।।

मनुष्यों को द्वेषादिक छोड़ के आनन्द में रहना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ।।

पुरी॒ष्या॒सो ऽ अ॒ग्नय॑: प्राव॒णेभि॑: स॒जोष॑सः । जु॒षन्तां॑ य॒ज्ञम॑द्रु॒हो॑ऽनमी॒वा ऽ इषो॑ म॒हीः ॥ ५० ॥

पदार्थः—(पुरीष्यासः) पूर्णासु गुणक्रियासु भवाः (**अग्नयः**) वह्नय इव वर्त्तमाना विद्वांसः (**प्रावणेभिः**) विज्ञानैः । अत्रान्येषामपीति दीर्घत्वम् (**सजोषसः**) समानसेवाप्रीतयः (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**यज्ञम्**) विद्याविज्ञानदानग्रहणाख्यम् (**अद्रुहः**) द्रोहरहिताः (**अनमीवाः**) अरोगाः (**इषः**) इच्छाः (**महीः**) महतीः ॥ ५० ॥

प्रमाणार्थ—'प्रावणेभिः' यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' सूत्र से पूर्वपद को दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—सर्वे मनुष्याः प्रावणेभिः सह वर्तमाना अनमीवा अद्रुहः सजोषसः पुरीष्यासोऽग्नय इव सन्तो यज्ञं महीरिषो जुषन्ताम् ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—सर्वे मनुष्याः प्रावणेभिः विज्ञानैः सह वर्त्तमाना **अनमीवाः** अरोगाः **अद्रुहः** द्रोहरहिताः **सजोषसः** समानसेवाप्रीतयः **पुरीष्यासः** पूर्णासु गुणक्रियासु भवाः **अग्नयः** वह्नय इव वर्त्तमाना विद्वांसः इव सन्तो **यज्ञं** विद्याविज्ञान-दानग्रहणाऽऽख्यं **महीः** महतीः **इषः** इच्छाः **जुषन्तां** सेवन्ताम् ॥ १२ । ५० ॥

भाषार्थ—सब मनुष्य (प्रावणेभिः) नाना विज्ञानों से युक्त होकर (अनमीवाः) रोग-रहित, (अद्रुहः) द्रोह-रहित, (सजोषसः) समान सेवा और प्रीति वाले, (पुरीष्यासः) पूर्ण गुण-कर्मों में वर्तमान (अग्नयः) अग्नि के समान विद्वानों के तुल्य होकर (यज्ञम्), विद्या, विज्ञान, दान, ग्रहण रूप यज्ञ का तथा (महीः) महान् (इषः) इच्छाओं का (जुषन्ताम्) सेवन करो ॥ १२ । ५० ॥

[सर्वे मनुष्या अग्नय इव, अनमीवाः, अद्रुहः, सजोषसः सन्तो यज्ञं महीरिषो जुषन्ताम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्युदविरुद्धा सती समानसत्तया सर्वान् पदार्थान् सेवते तथैव रोग-द्रोहादिदोषै रहिताः परस्परं प्रीतिमन्तो भूत्वा विज्ञानवृद्धिकरं यज्ञं प्रतत्य, महान्ति सुखानि सततं भुञ्जीरन् ॥ १२ । ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—विद्युत् अविरुद्ध=अनुकूल होकर सत्ता-सामान्य से सब पदार्थों का सेवन करती है, वैसे ही रोग, द्रोह आदि दोषों से रहित विद्वान् मनुष्य परस्पर प्रीतिमान् होकर विज्ञान की वृद्धि करने वाले यज्ञ को फैलाकर महान् सुखों का सदा भोग करें ॥ १२ । ५० ॥

भा० पदार्थः—अग्नयः=विद्युत् । अनमीवाः=रोगरहिताः । अद्रुहः=द्रोहादिदोषरहिताः । सजोषसः=परस्परं प्रीतिमन्तः । यज्ञम्=विज्ञानवृद्धिकरं यज्ञम् । महतीः=महान्ति । इषः=सुखानि । जुषन्ताम्=सततं भुञ्जीरन् ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों का पारस्परिक व्यवहार**—सब मनुष्यों को योग्य है कि वे नाना प्रकार के विज्ञानों को सीखें, रोगरहित रहें, किसी के साथ द्रोहादि न रखकर समान सेवा तथा समान प्रीति वाले हों । सभी श्रेष्ठ गुणों से पुरीष्यासः=पूर्ण होकर ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त विद्वानों के समान यज्ञ-विद्या को सीखकर सब इच्छाओं को प्राप्त करें ॥ १२ । ५० ॥

विश्वामित्रः । **अग्निः**=माता, पिता, आचार्यश्च । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैर्गर्भाधानादिसंस्कारैरपत्यानि संस्कर्तव्यानीत्याह ॥

मनुष्य गर्भाधानादि संस्कारों से बालकों का संस्कार करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इडा॑मग्ने पुरु॒दꣳस॑ꣳ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मꣳ हव॑मानाय साध।
स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(इडाम्) स्तोतुमर्हां वाचम् (अग्ने) विद्वन् (पुरुदंसम्) पुरूणि=बहूनि दंसानि=कर्माणि भवन्ति यस्मात् (सनिम्) संविभागम् (गोः) वाचः (शश्वत्तमम्) अतिशयितमनादिरूपं वेदबोधम् (हवमानाय) विद्यां स्पर्द्धमानाय (साध) साध्नुहि। अत्र व्यत्ययेन शप् (स्यात्) भवेत् (नः) अस्माकम् (सूनुः) उत्पन्नः (तनयः) पुत्रः (विजावा) विविधैश्वर्य्यजनकः (अग्ने) अध्यापक (सा) (ते) तव (सुमतिः) शोभना प्रज्ञा (भूतु) भवतु। अत्र शपो लुक्। भूसुवोस्तिङीति गुणाभावः (अस्मे) अस्माकम् ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—'साध' इसमें 'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से व्यत्यय से शप् प्रत्यय हुआ है। इसी प्रकार 'भूतु' यहाँ शप् प्रत्यय का लुक् और 'भूसुवोस्तिङि' इस सूत्र से गुण का अभाव हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने! ते सा सुमतिरस्मे भूतु यया ते नोस्माकं च यो विजावा तनयः स्यात् तया त्वं तस्मै हवमानायेडां गोः शश्वत्तमं पुरुदंसं सनिं साधाग्ने वयं च साध्नुयाम ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**! अध्यापक! **ते** तव **सा सुमतिः** शोभना प्रज्ञा **अस्मे** अस्माकं **भूतु** भवतु, **यया ते** तव **नः**=अस्माकं **च यो विजावा** विविधैश्वर्य्यजनकः [**सूनुः**] उत्पन्नः **तनयः** पुत्रः **स्यात्** भवेत्, **तया त्वं तस्मै हवमानाय** विद्यां स्पर्द्धमानाय **इडां** स्तोतुमर्हां वाचं **गोः** वाचः **शश्वत्तमम्** अतिशयितमनादिरूपं वेद-बोधं **पुरुदंसं** पुरूणि=बहूनि दंसानि=कर्माणि भवन्ति यस्मात् **सनिं** संविभागं **साध** साध्नुहि।

अग्ने! विद्वन्! **वयं च साध्नुयाम** ॥ १२। ५१ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक! (ते) आपकी वह (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (अस्मे) हमारी (भूतु) होवे, जिससे (ते) आपका और (नः) हमारा जो (विजावा) विविध ऐश्वर्य को पैदा करने वाला [सूनुः] उत्पन्न (तनयः) पुत्र (स्यात्) होवे, उस सुमति से (हवमानाय) विद्या की स्पर्द्धा करने वाले उस पुत्र के लिए (इडाम्) स्तुति योग्य वाणी को तथा (शश्वत्तमम्) अत्यन्त अनादि रूप वेद-ज्ञान को और (पुरुदंसम्) नाना कर्मों के हेतु (सनिम्) विवेक को (साध) सिद्ध कीजिये।

हे (अग्ने) विद्वान्! हम भी उसे सिद्ध करें ॥ १२। ५१ ॥

[हे अग्ने!... ते नः=अस्माकं च यो विजावा [सूनुः] तनयः स्यात्]

भावार्थः—मातापितृभ्यामाचार्येण च सावधानतया गर्भाधानादिसंस्काररीत्या सुसन्तानानुत्पाद्य,

भावार्थ—माता, पिता और आचार्य सावधानता से, गर्भाधान आदि संस्कार की रीति से उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करके—

[सा सुमतिरस्मे भूतु]

वेदेश्वरविद्यायुक्ता धीरुत्पाद्या।

वेद, ईश्वर और विद्या से युक्त बुद्धि को उत्पन्न करें।

[हेतुमाह—]

नहीदृशोऽन्यो धर्मोऽपत्यसुखनिधिर्वर्त्तत इति निश्चेतव्यम् ॥ १२। ५१ ॥

क्योंकि अपत्य-सुख का खजाना रूप ऐसा दूसरा धर्म नहीं है, ऐसा निश्चय करें ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=हे मातः ! पितः ! आचार्य च ! ॥ तनयः=सुसन्तानः । सुमतिः=वेदेश्वरविद्यायुक्ता धीः ।

भाष्यसार—**गुरुजनों का कर्त्तव्य**—आचार्य को योग्य है कि वह पुत्र तुल्य शिष्यों को मेधाबुद्धि से सम्पन्न करे। जिससे विद्या-प्राप्ति में स्पर्धा करते हुए शिष्य स्तुति के योग्य, अनादि वेद-वाणी को हृदयंगम करने में अबाध रूप से प्रवृत्त रहें। 'विजावा' अर्थात् विविध ऐश्वर्यों के प्राप्त करने वाले ज्ञानों को सिखावें। उनमें ऐसी विवेक-बुद्धि पैदा करें, जिससे वे अनेक प्रकार की समस्याओं को स्वयं ही समाहित कर लेवें। ऐसे ही माता-पिता भी सन्तान को योग्य बनायें ॥ १२ । ५१ ॥

विश्वामित्रः । **अग्निः**=**मातापित्राचार्याः पुत्रश्च** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ जन्यजनकानां कर्त्तव्यं कर्माह ॥

अब माता पिता और पुत्रादिकों के कर्त्तव्य कर्म का उपदेश किया है ॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तोऽअरो॑चथाः । तं जा॒नन्न॑ग्न॒ऽ आ रो॒हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम् ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**ते**) तव (**योनिः**) दुःखवियोजकः सुखसंयोजको व्यवहारः (**ऋत्वियः**) ऋतुःसमयोऽस्य प्राप्तः । **अत्र छन्दसि घसिति घस् प्रत्ययः** (**यतः**) यस्मात् (**जातः**) प्रादुर्भूतः सन् (**अरोचथाः**) प्रदीप्येथाः (**तम्**) (**जानन्**) (**अग्ने**) अग्निरिव स्वच्छात्मन् (**आ**) (**रोह**) आरूढो भव (**अथ**) अनन्तरम् । **अत्र निपातस्य चेति संहितायां दीर्घः** (**नः**) अस्मभ्यम् (**वर्धय**) **अत्रान्येषामपीति संहितायां दीर्घत्वम्** (**रयिम्**) प्रशस्तां श्रियम् ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—'ऋत्वियः' इसमें 'छन्दसि घस्' इस सूत्र से घस् प्रत्यय हुआ है। 'अथा' यहाँ संहितायाम् अधिकार में 'निपातस्य च' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है। 'वर्धया' यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' सूत्र से संहिताधिकार में दीर्घ हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं यस्ते तव ऋत्वियोऽयं योनिरस्ति यतो जातस्त्वमरोचथाः । तं जानँस्त्वमारोहाथ नो रयिं वर्धय ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! अग्निरिव स्वच्छात्मन् । त्वं **यस्ते**=**तव ऋत्वियः** ऋतुः समयोऽस्य प्राप्तः **अयं योनिः** दुःखवियोजकः सुखसंयोजको व्यवहारः **अस्ति**, **यतः** यस्माद् **जातः** प्रादुर्भूतः सन् **त्वम् अरोचथाः** प्रदीप्येथाः **तं जानन् त्वम् आ+रोह** आरूढो भव । **अथ** अनन्तरं **नः** अस्मभ्यं **रयिं** प्रशस्तां श्रियं **वर्धय** ॥ १२ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान स्वच्छ आत्मा वाले पुत्र ! तू—जो (ते) तेरा (ऋत्वियः) समय के अनुसार (अयम्) यह (योनिः) दुःख से वियुक्त करने वाला और सुख से संयुक्त करने वाला व्यवहार है, (यतः) जिससे (जातः) प्रसिद्ध होकर तू (अरोचथाः) प्रकाशित होता है, (तम्) उसको (जानन्) जानता हुआ तू (आ+रोह) उन्नत हो। (अथ) और—(नः) हमारे लिए (रयिम्) उत्तम धन को (वर्धय) बढ़ा ॥ १२ । ५२ ॥

[हे अग्ने ! त्वं यस्ते=तव **ऋत्वियोऽयं योनिरस्ति, यतो जातस्त्वमरोचथाः**]

भावार्थ—हे मातापित्राचार्य्याः ! यूयं पुत्रान् पुत्रींश्च धर्म्येण ब्रह्मचर्य्येण सेवितेन सद्विद्या जनयित्वोपदिशत—

भावार्थ—हे माता, पिता और आचार्य ! आप पुत्र और पुत्रियों को धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य के सेवन से श्रेष्ठ-विद्या को उत्पन्न करके उपदेश करो—

[त्वमारोह, अथ नो रयिं वर्धय]

हे सन्तानाः ! यूयं सद्विद्यया सदाचारेणाऽस्मान् सुसेवया धनेन च सततं सुखयतेति ॥ १२ । ५२ ॥

हे सन्तानो ! तुम—श्रेष्ठ विद्या एवं सदाचार से हमें उत्तम-सेवा और धन से सदा सुखी करो ॥ १२ । ५२ ॥

भाष्यसार—गुरुजनों का सन्तान को उपदेश—जब सन्तान पढ़ लिखकर पूर्ण विद्वान् हो जाये तब उनको चाहिये कि वे ऋत्वियः=समय के अनुसार गुरुओं के प्रति दो प्रकार का व्यवहार रखें। एक तो उनको किसी प्रकार का दुःख न देवें और उनके दुःखों में सदा सहायक हों। दूसरे यथाशक्ति उनको सुख देने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से सन्तान का यश सर्वत्र फैल जाता है और उनका ज्ञान तेजस्वी होता है। इस प्रकार की सन्तति सदा उन्नति करती हुई सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कर स्वयं भी सुखी रहती है ॥ १२ । ५२ ॥

विश्वामित्रः । **अग्निः**=माता पित्रादयः । स्वराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

कन्याभिः किं कृत्वा किं कार्य्यमित्याह ॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ।
परि॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**चित्**) संज्ञप्ता (**असि**) (**तया**) (**देवतया**) दिव्यगुणप्रापिकया (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत (**ध्रुवा**) निश्चला (**सीद**) भव (**परिचित्**) विद्यापरिचयं प्राप्ता (**असि**) (**तया**) धर्मानुष्ठानयुक्तया क्रियया (**देवतया**) दिव्यसुखप्रदया (**अङ्गिरस्वत्**) हिरण्यगर्भवत् (**ध्रुवा**) निष्कम्पा (**सीद**) अवतिष्ठस्व ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे कन्ये ! या चिदसि सा त्वं तया देवतया सहाङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद । हे ब्रह्मचारिणि ! या त्वं परिचिदसि सा तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे कन्ये ! **या चित्** संज्ञप्ता **असि, सा त्वं तया देवतया** दिव्यगुणप्रापिकया **सह अङ्गिरस्वत्** प्राणवद् **ध्रुवा** निश्चला **सीद** भव ।

हे ब्रह्मचारिणि ! **या त्वं परिचित्** विद्यापरिचयं प्राप्ता **असि, सा** [त्वं] **तया** धर्माऽनुष्ठानयुक्तया क्रियया **देवतया** दिव्यसुखप्रदया **सह अङ्गिरस्वत्** हिरण्यगर्भवद् **ध्रुवा** निष्कम्पा **सीद** अवतिष्ठस्व ॥

भाषार्थ—हे कन्या ! जो तू (चित्) ज्ञानयुक्त (असि) है, सो तू उस (देवतया) दिव्य गुणों के प्रापक वर-देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (ध्रुवा) स्थिर (सीद) रह ।

हे ब्रह्मचारिणी ! जो तू (परिचित्) विद्यापरिचय को प्राप्त (असि) है, सो [त्वम्] तू (तया) धर्माचरण युक्त कर्म से एवं (देवतया) दिव्य सुखों के दाता वर के साथ (अङ्गिरस्वत्) हिरण्यगर्भ=ईश्वर के समान (ध्रुवा) स्थिर (सीद) रह ॥

भावार्थः—सर्वैर्मातापित्रादिभिरध्यापिकाभिर्विदुषीभिश्च कन्याः सम्बोधनीयाः—

भावार्थ—सब—माता, पिता आदि एवं अध्यापिका विदुषियाँ कन्याओं को समझावें—

[हे ब्रह्मचारिणि ! या त्वं परिचिदसि]

भो कन्याः ! यूयं यदि पूर्णेनाखण्डितेन ब्रह्मचर्येणाखिला विद्याः सुशिक्षाः प्राप्य, युवतयो भूत्वा—

हे कन्याओ ! तुम—यदि पूर्ण, अखण्डित ब्रह्मचर्य से अखिल विद्याओं तथा सुशिक्षाओं को प्राप्त करके, युवतियाँ होकर—

[सा त्वं तया देवतया सहाङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद]

स्वसदृशैर्वरैः स्वयंवरविवाहं कृत्वा गृहाश्रमं कुर्यात, तर्हि सर्वाणि सुखानि लभेध्वं, सन्तानाश्च जायेरन् ।। १२ । ५३ ।।

अपने सदृश वरों के साथ स्वयंवर विवाह करके गृहाश्रम करो तो सब सुखों को प्राप्त होओ, और सन्तान उत्पन्न होवें ।। १२ । ५३ ।।

भा० पदार्थः—परिचित्=पूर्णेनाखण्डितेन ब्रह्मचर्येणाखिला विद्याः सुशिक्षाः प्राप्ताः । देवतया=स्वसदृशेन वरेण ।

भाष्यसार—गुरुओं का कन्याओं को उपदेश—पुत्रों की भाँति पुत्रियाँ भी पूर्ण विदुषी होकर युवावस्था में अपने सदृश दिव्यगुणों वाले वर से स्वयंवर विवाह करें । इसी प्रकार धर्माधर्म को जानकर धर्मयुक्त कार्यों में दिव्य सुखों के देने वाले वर का सदा सहयोग देवें । और उसी के साथ निश्चल होकर रहें ।। १२ । ५३ ।। ●

विश्वामित्रः । **अग्निः**=मातापित्राचार्याः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

कन्याओं को क्या कर के क्या करना चाहिये, इसका फिर उपदेश किया है ।।

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ।। ५४ ।।

पदार्थः—(**लोकम्**) संप्रेक्षितव्यम् (**पृण**) तर्पय (**छिद्रम्**) छिनत्ति यत्तत् (**पृण**) पिपूर्द्धि (**अथो**) (**सीद**) (**ध्रुवा**) दृढनिश्चया (**त्वम्**) (**इन्द्राग्नी**) मातापितरौ (**त्वा**) त्वाम् (**बृहस्पतिः**) बृहत्या वेदवाचः पालिकाध्यापिका (**अस्मिन्**) विद्याबोधे (**योनौ**) बन्धच्छेदके मोक्षप्रापके (**असीषदन्**) प्रापयन्तु ।। ५४ ।।

अन्वयः—हे कन्ये ! यां त्वा योनावस्मिन्निन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चासीषदन् तस्मिन् त्वं ध्रुवा सीदाथो छिद्रं पृण लोकं पृण ।। ५४ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे कन्ये ! यां त्वा** त्वां **योनौ** बन्धच्छेदके मोक्षप्रापके **अस्मिन्** विद्याबोधे **इन्द्राग्नी** मातापितरौ **बृहस्पतिः** बृहत्या वेदवाचः पालिकाऽध्यापिका **च असीषदन्** प्रापयन्तु, **तस्मिन् त्वं ध्रुवा** दृढनिश्चया **सीद । अथो छिद्रं** छिनत्ति यत्तत् **पृण** तर्पय, **लोकं** संप्रेक्षितव्यं **पृण** पिपूर्द्धि ।। १२ । ५४ ।।

भाषार्थ—हे कन्ये ! जिस (त्वा) तुझ को (योनौ) बन्धनों से छुड़ाने वाले मुक्ति प्राप्त कराने वाले (अस्मिन्) इस विद्या के बोध में (इन्द्राग्नी) माता और पिता (बृहस्पतिः) वेदवाणी की रक्षा करने वाली अध्यापिका (असीषदन्) जो शिक्षाएँ सिखायें, उस पर (त्वम्) तुम (ध्रुवा) दृढ़ निश्चय के साथ (सीद) स्थित हो । (अथो) और जो-जो (छिद्रम्) न्यूनता हो उस-उस को (पृण) पूरा कर (लोकम्) जो भी देखने योग्य प्राणियों को (पृण) तृप्त कर ।। १२ । ५४ ।।

[हे कन्ये ! यां त्वा योनावस्मिन्निन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चासीषदन्]

भावार्थः—मातापित्राचार्यैरीदृशी धर्म्या विद्या-शिक्षा क्रियेत—

भावार्थ—माता, पिता और आचार्य कन्याओं को धार्मिक विद्या और शिक्षा का उपदेश करें।

[तस्मिंस्त्वं ध्रुवा सीद, अथो छिद्रं पृण, लोकं पृण]

यां स्वीकृत्य सर्वा कन्या निश्चिन्ता भूत्वा सर्वाणि दुर्व्यसनानि त्यक्त्वा समावर्तनानन्तरं स्वयंवरं विवाहं कृत्वा सुपुरुषार्थेनानन्दयेयुः।

जिन शिक्षाओं को स्वीकार करके सब कन्याएँ निश्चिन्त होकर, सब दुर्व्यसनों को छोड़कर, समावर्तन के बाद स्वयंवर विवाह करके पूर्ण पुरुषार्थ से आनन्दित रहें।

भा० पदार्थः—बृहस्पतिः=आचार्यः। ध्रुवा=निश्चिन्ता। छिद्रम्=सर्वाणि दुर्व्यसनानि। पृण=त्यज। लोकम्=समावर्तनानन्तरं स्वयंवरं विवाहम्। पृण=आनन्दय॥

भाष्यसार—**कन्या के लिए गुरुओं का उपदेश**—माता, पिता तथा आचार्य कन्याओं को ऐसी शिक्षा देवें जिससे सब बन्धनों से छूट कर मुक्तिसुख की प्राप्ति हो सके। वेद की विदुषी अध्यापिका कन्याओं की न्यूनताओं को दूर कराने का पूरा प्रयत्न करें। जिससे वे दुर्व्यसनों से छूट कर विदुषी तथा शरीर से स्वस्थ हों॥ १२। ५४॥

प्रियमेधाः। **आपः=कन्याः**। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

कन्याओं को क्या करके क्या करना चाहिये, इसका फिर उपदेश किया है॥

ताऽअ॑स्य सू॒ददो॑हसः॒ सोम॑ᳪ श्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः। जन्म॑न्दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वा रो॑च॒ने दि॒वः॥ ५५॥

पदार्थः—(**ताः**) ब्रह्मचारिणीः (**अस्य**) गृहाश्रमस्य (**सूददोहसः**) सूदाः=सुष्ठु पाचका दोहसो=गवादिदोग्धारश्च यासां ताः (**सोमम्**) सोमरसान्वितं पाकम् (**श्रीणन्ति**) परिपक्वं कुर्वन्ति (**पृश्नयः**) सुस्पर्शास्तन्वङ्ग्यः। **अत्र स्पृशधातोर्निः प्रत्ययः सलोपश्च** (**जन्मन्**) जन्मनि=प्रादुर्भावे (**देवानाम्**) दिव्यानां विदुषां पतीनाम् (**विशः**) प्रजाः (**त्रिषु**) भूतभविष्यद्वर्तमानेषु कालावयवेषु (**आ**) (**रोचने**) रुचिकरे व्यवहारे (**दिवः**) दिव्यस्य॥ ५५॥

प्रमाणार्थः—'पृश्नयः' यहां स्पृश् धातु से नि प्रत्यय और सकार का लोप हुआ है॥

अन्वयः—या देवानां सूददोहसः पृश्नयः पत्न्यो जन्मन् द्वितीये विद्याजन्मनि विदुष्यो भूत्वा दिवोऽस्य सोमं श्रीणन्ति ता आरोचने त्रिषु सुखदा भवन्ति विशश्च प्राप्नुवन्ति॥ ५५॥

सपदार्थान्वयः—**या देवानां** दिव्यानां विदुषां पतीनां **सूददोहसः** सूदाः=सुष्ठु पाचका दोहसो=गवादिदोग्धारश्च यासां ताः, **पृश्नयः**=पत्न्यः सुस्पर्शास्तन्वङ्ग्यः **जन्मन्=द्वितीये विद्या-जन्मनि** जन्मनि=प्रादुर्भावे **विदुष्यो भूत्वा दिवः** दिव्यस्य **अस्य** गृहाश्रमस्य **सोमं** सोमरसाऽन्वितं

भाषार्थ—जो-(देवानाम्) दिव्य विद्वान् पतियों की (सूददोहसः) श्रेष्ठ पाचक और गौ आदि के दोग्धा वाली, (पृश्नयः) अत्यन्त कोमल एवं सुडौल शरीर वाली पत्नियाँ हैं, वे (जन्मन्) दूसरे विद्या-जन्म में विदुषी होकर, इस (दिवः) दिव्य (अस्य) गृहाश्रम के (सोमम्) सोम-रस से युक्त

पाकं **श्रीणन्ति** परिपक्वं कुर्वन्ति, **ताः** ब्रह्मचारिणीः **आ+रोचने** रुचिकरे व्यवहारे **त्रिषु** भूतभविष्य-द्वर्त्तमानेषु कालाऽवयवेषु **सुखदा भवन्ति, विशः** प्रजाः **च प्राप्नुवन्ति** ॥ १२ । ५५ ॥

पाक को (श्रीणन्ति) पकाती हैं, (ताः) वे ब्रह्म-चारिणियाँ (आ+रोचने) रुचिकर व्यवहार में (त्रिषु) भूत, भविष्य और वर्तमान इन तीनों कालों में सुखदायक होती हैं, और (विशः) सन्तानों को प्राप्त करती हैं ॥ १२ । ५५ ॥

[या देवानां ··· पृश्नयः=पत्न्यो ··· रोचने त्रिषु सुखदा भवन्ति, विशश्च प्राप्नुवन्ति]

भावार्थः—यदा सुशिक्षितानां विदुषां यूनां स्वसदृशा रूपगुणसम्पन्नाः स्त्रियो भवेयुस्तदा गृहाश्रमे सर्वदा सुखं सुसन्तानाश्च जायेरन् ।

भावार्थ—जब सुशिक्षित, विद्वान् युवकों की अपने सदृश रूपवती स्त्रियाँ होवें तब गृहाश्रम में सदा सुख और उत्तम सन्तान उत्पन्न हों ।

[फलमाह—]

न ह्येवं विना वर्त्तमानेऽभ्युदयो, मरणानन्तरं निःश्रेयसं च प्राप्तुं शक्यम् ॥ १२ । ५५ ॥

इसके विना वर्तमान में अभ्युदय और मरणो-परान्त निःश्रेयस को प्राप्त नहीं किया जा सकता ॥ १२ । ५५ ॥

भा० पदार्थः—देवानाम्=सुशिक्षितानां विदुषां यूनाम् । पृश्नयः=स्वसदृशा रूपगुण-सम्पन्नाः स्त्रियः । रोचने=गृहाश्रमे । त्रिषु=सर्वदा । विशः=सुसन्तानाः ॥

भाष्यसार—**कन्याओं के कर्त्तव्य**—कन्याओं को योग्य है कि वे ब्रह्मचर्याश्रम में अच्छी प्रकार विद्या से युक्त होवें और पृश्नयः=शरीर से सुन्दर तथा बलवती होवें । तत्पश्चात् स्वयंवर विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके, और पाक विद्या में निपुण होकर उत्तमोत्तम सोमगुण युक्त पाकों को पकाया करें । उनका व्यवहार तीनों कालों में अच्छा होना चाहिये । इस प्रकार श्रेष्ठ आचरण से सन्तान का पालन करते हुए गृहाश्रम के सुखों को प्राप्त होवें ॥ १२ । ५५ ॥

सुतजेतृमधुच्छन्दाः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्** ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कुमारकुमारीभिरित्थं कर्तव्यमित्याह ॥

कुमार और कुमारियों को इस प्रकार करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्य्यम् (**विश्वाः**) अखिलाः (**अवीवृधन्**) वर्धेयुः (**समुद्रव्यचसम्**) समुद्रस्य व्यचसो व्याप्तय इव यस्मिंस्तम् (**गिरः**) वेदविद्यासंस्कृता वाचः (**रथीतमम्**) अतिशयेन प्रशस्त-रथयुक्तम् (**रथीनाम्**) प्रशस्तानां वीराणाम् । अत्र छन्दसीवनिपाविति ईकारः (**वाजानाम्**) संग्रामाणां मध्ये (**सत्पतिम्**) सत ईश्वरस्य वेदस्य धर्मस्य जनस्य वा पालकम् (**पतिम्**) अखिलैश्वर्य्य स्वामिनम् ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—'रथीनाम्' यहां 'छन्दसीवनिपौ' इस वार्त्तिक सूत्र से ईकार प्रत्यय हुआ है ।

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयं यथा विश्वा गिरः समुद्रव्यचसं वाजानां रथीनां मध्ये रथी-तमं सत्पतिं पतिमवीवृधँस्तथा सर्वान्विर्धयत ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रीपुरुषाः !** **यूयं यथा विश्वाः** अखिलाः **गिरः** वेदविद्यासंस्कृता

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम—जैसे (विश्वाः) सब (गिरः) वेद-विद्या से संस्कृत

वाचः **समुद्रव्यचसं** समुद्रस्य व्यचसो=व्याप्तय इव यस्मिंस्तं, **वाजानां** संग्रामाणां मध्ये **रथीनां** प्रशस्तानां वीराणां **मध्ये रथीतमम्** अतिशयेन प्रशस्तरथयुक्तं **सत्पतिं** सतः=ईश्वरस्य वेदस्य धर्मस्य जनस्य वा पालकं **पतिम्** अखिलैश्वर्य्यं स्वामिनम् [**इन्द्रम्**] **अवीवृधन्** परमैश्वर्यम् वर्धेयुः, **तथा सर्वान् वर्धयत** ॥ १२ । ५६ ॥

वाणियाँ (समुद्रव्यचसम्) समुद्र के समान व्याप्ति वाले, (वाजानाम्) संग्रामों तथा (रथीनाम्) प्रशस्त वीरों के मध्य में (रथीतमम्) अत्यन्त प्रशस्त रथ वाले अर्थात् महारथी, (सत्पतिम्) सत् अर्थात् ईश्वर, वेद, धर्म वा जनों के पालक, (पतिम्) अखिल ऐश्वर्य से सम्पन्न पति रूप (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र को (अवीवृधन्) बढ़ाती है, वैसे सबको बढ़ाओ ॥ १२ । ५६ ॥

[हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयं यथा विश्वा गिरः...सत्पतिं पतिमवीवृधन्]

भावार्थः—ये कुमारा याश्च कुमार्यो दीर्घेण ब्रह्मचर्येण साङ्गोपाङ्गान् वेदानधीत्य स्वप्रसन्नतया स्वयंवरं विवाहं कृत्वैश्वर्याय प्रयतेरन् ।

भावार्थ—जो—कुमार और जो कुमारियाँ दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य से साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़कर अपनी प्रसन्नता से स्वयंवर विवाह करके ऐश्वर्य के लिए प्रयत्न करते हैं,

[तथा सर्वान् वर्धयत]

धर्म्येण व्यवहारेणाव्यभिचारतया सुसन्तानानुत्पाद्य परोपकारे प्रवर्त्तेरन् ।

धर्म-युक्त व्यवहार से, व्यभिचार रहित होकर उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर परोपकार में प्रवृत्त रहते हैं,

[फलमाह—]

त इहामुत्र सुखमश्नुवीरन्, न चेतरेऽविद्वांसः ॥ १२ । ५६ ॥

वे—इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करते हैं, दूसरे अविद्वान् नहीं ॥

भा० पदार्थः—गिरः=साङ्गोपाङ्गान् वेदान् । अवीवृधन्=ऐश्वर्याय प्रयतेरन् ।

भाष्यसार—**सन्तान का कर्त्तव्य**—सन्तान का कर्त्तव्य है कि वह प्रथम वेदादि सत्य-शास्त्रों को सीखें, तदनन्तर संग्रामों में तेजगति से चलकर समुद्र की तरह सर्वत्र व्याप्त होने वाले प्रशस्त वीरों में महारथी बनने का प्रयत्न करें । एतदर्थ ईश्वरीय वेदविद्या के रक्षक समग्र ऐश्वर्य को धर्मयुक्त व्यवहारों से बढ़ायें ॥ १२ । ५६ ॥

मधुच्छन्दाः । **अग्निः=विवाहितस्त्रीपुरुषौ** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ विवाहं कृत्वा कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

अब विवाह करके कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

समितꣳ सं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**सम्**) एकीभावम् (**इतम्**) प्राप्नुतम् (**सम्**) समानाभिप्राये (**कल्पेथाम्**) समर्थयताम् (**संप्रियौ**) परस्परं सम्यक्प्रीतियुक्तौ (**रोचिष्णू**) विषयासक्तिविरहत्वेन देदीप्यमानौ (**सुमनस्यमानौ**) सुमनसौ=सखायौ विद्वांसाविवाचरन्तौ (**इषम्**) इच्छाम (**ऊर्जम्**) पराक्रमम (**संवसानौ**) सम्यक् सुवस्त्रालंकारेणाच्छादितौ ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ ! युवां संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ संवसानौ सन्ताविषं समितमूर्जमभि संकल्पेथाम् ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विवाहितौ स्त्री-पुरुषौ ! युवां संप्रियौ** परस्परं सम्यक् प्रीतियुक्तौ **रोचिष्णू** विषयाऽसक्तिविरहत्वेन देदीप्यमानौ **सुमनस्यमानौ** सुमनसौ=सखायौ विद्वांसाविवाचरन्तौ **संवसानौ** सम्यक् सुवस्त्राऽलङ्कारेणाऽऽच्छादितौ **सन्तौ इषम्** इच्छां **सम्+इतम्** एकीभावेन प्राप्नुतम्, **ऊर्जं** पराक्रमम् **अभि+संकल्पेथां** समानाऽभिप्रायेण समर्थयताम् ॥ १२ । ५७ ॥

भाषार्थ—हे विवाहित स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—(संप्रियौ) परस्पर उत्तम प्रीति से युक्त, (रोचिष्णू) विषयासक्ति से रहित होने के कारण देदीप्यमान, (सुमनस्यमानौ) दो मित्र विद्वानों के समान आचरण वाले, (संवसानौ) उत्तम रीति से सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत होकर (इषम्) इच्छा को (सम्+इतम्) मिलकर प्राप्त करो। और—(ऊर्जम्) पराक्रम को (अभि+संकल्पेथाम्) तुल्य अभिप्राय से समर्थ बनाओ।

[**हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ ! युवां संप्रियौ ··· सुमनस्यमानौ संवसानौ सन्तौ**]

भावार्थः—यदि स्त्रीपुरुषौ सर्वथा विरोधं विहायान्योऽन्यस्य प्रियाचरणे रतौ, विद्याविचारयुक्तौ, सुवस्त्रालङ्कृतौ भूत्वा प्रयतेतां—

भावार्थ—यदि स्त्री-पुरुष सर्वथा विरोध को छोड़कर, परस्पर प्रियाचरण में रत, विद्या और विचार से युक्त, उत्तम वस्त्रों से अलंकृत होकर प्रयत्न करें—

[**इषं समितम्, ऊर्जमभिसंकल्पेथाम्**]

तदागृहे कल्याणमारोग्यं वर्धेताम् ।

तब घर में कल्याण एवं आरोग्य की वृद्धि होवे।

[**व्यतिरेकमाह—**]

यदि च विद्वेषिणौ भवेतां तदा दुःखसागरे संमग्नौ भवेताम् ॥ १२ । ५७ ॥

और यदि स्त्री-पुरुष परस्पर द्वेष करने वाले हों तो दुःखसागर में मग्न होवें ॥ १२ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—संप्रियौ=सर्वथा विरोधं विहायान्योऽन्यस्य प्रियाचरणे रतौ । सुमनस्यमानौ=विद्याविचारयुक्तौ । संवसानौ=सुवस्त्रालङ्कृतौ । इषम्=कल्याणम् । ऊर्जम्=आरोग्यम् ॥

भाष्यसार—विवाहित स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक व्यवहार—विवाह के बाद स्त्री पुरुष सदा एक दूसरे के प्रियाचरण करने का प्रयत्न करें । सदा सहृदय होकर उत्तमोत्तम वस्त्रों तथा अलंकारों को धारण करें । विषयासक्त न होकर शरीरों को स्वस्थ रखें । सर्वत्र तेजस्वी होकर सम्मान प्राप्त करें । एक होकर सब इष्ट वस्तुओं को प्राप्त करें और पौष्टिक पदार्थों से अपनी-अपनी शक्तियों को बढ़ायें ।

मधुच्छन्दाः । **अग्निः**=**उपदेशकः** । भुरिगुपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

अध्यापकोपदेशका यावत्सामर्थ्यं तावद् वेदाध्यायनोपदेशौ कुर्य्युरित्याह ॥

अध्यापक और उपदेशक लोगों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना ही वेदों का अध्यापन और उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

सं वां मनांᳪसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽ इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**सम्**) एकस्मिन् धर्मे (**वाम्**) युवयोः (**मनांसि**) संकल्पविकल्पाद्या अन्तःकरण-वृत्तयः (**सन्**) (**व्रता**) सत्यभाषणादीनि (**सम्**) (उ) समुच्चये (**चित्तानि**) संज्ञप्तानि धर्म्याणि कर्माणि (**आ**) समन्तात् (**अकरम्**) कुर्याम् (**अग्ने**) उपदेशकाचार्य (**पुरीष्य**) पुरीषेषु=पालकेषु व्यवहारेषु भवस्तत्संबुद्धौ (**अधिपाः**) अधिकः पालकः (**भव**) (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**इषम्**) अन्नादिकम् (**ऊर्जम्**) शरीरात्मबलम् (**यजमानाय**) धर्मेण संगन्तुं शीलाय (**धेहि**) ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! यथाऽहमाचार्यो वां संमनांसि संव्रतो संचित्तान्याकरं तथा युवां मम प्रियमाचरेतम् । हे पुरीष्याग्ने ! त्वं नोऽधिपा भव यजमानायेषमूर्जं च धेहि ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! **यथाऽहमाचार्य्यो वां** युवयोः **संमनांसि** एकस्मिन् धर्मे, संकल्पविकल्पाद्या अन्तःकरणवृत्तयः **संव्रता** सत्यभाषणाऽऽदीनि [उ] समुच्चये **संचित्तानि** संज्ञप्तानि धर्म्याणि कर्माणि **आ+अकरं** समन्तात् कुर्य्याम्, **तथा युवां मम प्रियमाचरेतम्** ।

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे मैं आचार्य (वाम्) तुम दोनों के (संमनांसि) एक धर्म में अर्थात् सम्मिलित संकल्प-विकल्प आदि अन्तःकरण की वृत्तियों को, (संव्रता) सत्य-भाषण आदि व्रतों को, [उ] और (संचित्तानि) उपदिष्ट धर्मयुक्त कर्मों को (आ+अकरम्) सब ओर से सिद्ध करता हूँ, वैसे तुम दोनों मेरा प्रियाचरण करो ।

हे पुरीष्य ! पुरीषेषु=पालकेषु व्यवहारेषु भवस्तत्सम्बुद्धौ ! **अग्ने** ! उपदेशकाचार्य्य ! **त्वं नः** अस्माकम् **अधिपाः** अधिकः पालकः **भव, यजमानाय** धर्मेण संगन्तुं शीलाय **इषम्** अन्नादिकम् **ऊर्जं** शरीरात्मबलं **च धेहि** ॥ १२ । ५८ ॥

हे (पुरीष्य) पालक-व्यवहारों में वर्तमान (अग्ने) उपदेशक आचार्य ! आप (नः) हमारे (अधिपाः) अत्यन्त पालक (भव) बनो । और—(यजमानाय) धर्म से संगतिशील पुरुष के लिए (इषम्) अन्न आदि तथा (ऊर्जम्) शरीर आत्मा के बल को (धेहि) धारण कर ॥ १२ । ५८ ॥

[हे स्त्रीपुरुषौ ! यथाऽहमाचार्यो वां संमनांसि, संव्रता, [उ] संचित्तान्याकरम्]

भावार्थः—उपदेशका यावच्छक्यं तावत् सर्वेषामैकधर्म्यम्, ऐककर्म्यम्, एकनिष्ठाम, तुल्य-सुखदुःखे, यथा स्यात् तथा शिक्षयेयुः ।

भावार्थ—उपदेशक लोग जितना हो सके उतना सबका एक धर्म, एक कर्म, एक निष्ठा एवं समान सुख-दुःख होवे वैसी शिक्षा करें ।

[हे···अग्ने ! त्वं···इषमूर्जं च धेहि]

सर्वे स्त्रीपुरुषा आप्तविद्वांसमेवोपदेष्टारम-ध्यापकं सेवेरन्, स चैतेषामैश्वर्यपराक्रमवृद्धिं कुर्यात् ।

सब स्त्री-पुरुष आप्त विद्वान् उपदेशक एवं अध्यापक की ही सेवा करें, और वे इनके ऐश्वर्य तथा पराक्रम की वृद्धि करे ।

[व्यतिरेकमाह—]

नैकधर्मादिभिर्विनाऽऽत्मसु सौहार्दं जायते, नैतेन विना सततं सुखं च ॥ १२ । ५८ ॥

क्योंकि—एक धर्म आदि के बिना आत्माओं में मित्रता उत्पन्न नहीं होती, और इसके बिना निर-न्तर सुख भी नहीं हो सकता ॥ १२ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—संमनांसि=ऐकधर्म्यम् । संव्रता=ऐककर्म्यम् । संचित्तानि=एकनिष्ठाम् । अग्ने !=आप्त विद्वन्, उपदेष्टः, अध्यापक ! इषम्=ऐश्वर्यम् । ऊर्जम्=पराक्रमम् ॥

भाष्यसार—उपदेशक का कर्त्तव्य—उपदेशक अथवा आचार्य सभी स्त्री-पुरुषों को वेदोपदेश करके उनका मार्ग-दर्शन करते रहें। गृहस्थ में स्त्री-पुरुष समान संकल्प वाले होकर एक दूसरे का सदा प्रियाचरण किया करें। सत्यभाषणादि व्रतों को धारण करके सब कार्यों को सिद्ध करें। इस प्रकार की शिक्षाओं से उपदेशक सदा सब मनुष्यों का अत्यन्त पालक होकर विद्वानों का सत्कार करने वाले यजमान को अन्नादि ऐश्वर्य को बढ़ाकर आत्मा तथा शरीर की सब शक्तियों से युक्त करें॥ १२। १८॥

मधुच्छन्दाः। **अग्निः=विद्वान्**॥ भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

केऽध्यापनोपदेशाय नियोजनीया इत्याह॥

किन को पढ़ाने और उपदेश के लिए नियुक्त करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है॥

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः॥ ५९॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) उपदेशक विद्वन्! (**त्वम्**) (**पुरीष्यः**) ऐकमत्यपालनेषु भवः (**रयिमान्**) विद्याविज्ञानधनयुक्तः (**पुष्टिमान्**) प्रशस्तशरीरात्मबलसहितः (**असि**) (**शिवाः**) कल्याणोपदेशयुक्ताः (**कृत्वा**) (**दिशः**) उपदेष्टव्याः प्रजाः (**सर्वाः**) समग्राः (**स्वम्**) स्वकीयम् (**योनिम्**) सुखसाधकं दुःखविच्छेदकमुपदेशम् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**आ**) (**असदः**) आस्व॥ ५९॥

अन्वयः—हे अग्ने! यतस्त्वमिह पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमानसि तस्मात्सर्वा दिशः शिवाः कृत्वा स्वं योनिमासदः॥ ५९॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने! उपदेशक विद्वन्! **यतस्त्वम् इह** अस्मिन् संसारे **पुरीष्यः** ऐकमत्यपालनेषु भवः **रयिमान्** विद्याविज्ञानधनयुक्तः **पुष्टिमान्** प्रशस्तशरीरात्मबलसहितः **असि, तस्मात् सर्वाः** समग्रा **दिशः** उपदेष्टव्याः प्रजाः **शिवाः** कल्याणोपदेशयुक्ताः **कृत्वा स्वं** स्वकीयं **योनिं** सुखसाधकं दुःखविच्छेदकमुपदेशम् **आ+असदः** आस्व॥ १२। ५९॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) उपदेशक विद्वान्! क्योंकि आप (इह) इस संसार में (पुरीष्यः) एकमत को पालन करने वालों में वर्तमान, (रयिमान्) विद्या; विज्ञान तथा धन से युक्त और (पुष्टिमान्) प्रशस्त शरीर और आत्मा के बल से युक्त (असि) हो, इसलिए—(सर्वाः) सब (दिशः) उपदेश के योग्य प्रजा को (शिवाः) कल्याणकारी उपदेश से युक्त करके (स्वम्) अपने (योनिम्) सुखसाधक तथा दुःख-विच्छेदक उपदेश को (आ+असदः) स्थापित करो॥ १२। ५९॥

[हे अग्ने! यतस्त्वमिह पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमान् असि]

भावार्थः—राजप्रजाजनैर्येऽत्र जितेन्द्रिया धार्मिकाः परोपकारप्रिया विद्वांसो भवेयुस्ते प्रजासु धर्मोपदेशाय नियोजनीयाः।

भावार्थ—राजा और प्रजा-जनों को चाहिये कि वे—जो यहाँ जितेन्द्रिय, धार्मिक, परोपकारी विद्वान् हों उन्हें प्रजा में धर्मोपदेश के लिए लगावें।

[सर्वा दिशः शिवाः कृत्वा स्वं योनिमासदः]

उपदेशकाश्च प्रयत्नेन सर्वान् शिक्षयैकधर्मयुक्तान् सततमविरोधिनः सुखिनः संपादयेयुः ॥

और उपदेशक प्रयत्न से सबको शिक्षा के द्वारा एक धर्म से युक्त सदा अविरोधी एवं सुखी बनावें ॥ १२ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—पुरीष्यः=जितेन्द्रियः । रयिमान्=धार्मिकः । पुष्टिमान्=परोपकारप्रियः ।

भाष्यसार—अध्यापक की योग्यता—(१) अग्निः=अध्यापक ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त होना चाहिये । (२) पुरीष्यः=निश्चित एक मत वाला हो । जो अनिश्चित ज्ञान वाला हो उसका ज्ञान अपूर्ण होता है । (३) रयिमान्=विद्या तथा सुवर्णादि धन से पूर्ण हो । (४) पुष्टिमान्=प्रशस्त शारीरिक तथा प्रशस्त आत्मिक बल वाला हो । (५) योनिम् शिवाः=सुख प्रापक कल्याणकारी उपदेश देने वाला हो । स्वयं धार्मिक तथा जितेन्द्रिय होकर दूसरों को अच्छी शिक्षा देने वाला हो ॥ १२ । ५८ ॥

मधुच्छन्दाः । **दम्पती**=विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः सर्वविद्याप्रदानायाप्ता विद्वांसः प्रार्थनीया इत्याह ॥

फिर सब को चाहिये कि विद्या देने के लिए आप्त विद्वानों से प्रार्थना करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञᳬं हिᳬंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(भवतम्) (नः) अस्मभ्यम् (**समनसौ**) समानविचारौ (**सचेतसौ**) समानसंज्ञानौ (**अरेपसौ**) अनपराधिनौ (**मा**) (**यज्ञम्**) संगन्तव्यं धर्मम् (**हिंसिष्टम्**) हिंस्यातम् (**मा**) (**यज्ञपतिम्**) उपदेशेन धर्मरक्षकम् (**जातवेदसौ**) उत्पन्नाऽखिलविज्ञानौ (**शिवौ**) मंगलकारिणौ (भवतम्) (**अद्य**) (नः) अस्मभ्यम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ ! युवां नः समनसौ सचेतसावरेपसौ भवतम् । यज्ञं मा हिंसिष्टं यज्ञपतिं मा हिंसिष्टम् । अद्य नो जातवेदसौ शिवौ भवतम् ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विवाहितौ स्त्री-पुरुषौ ! **युवां नः** अस्मभ्यं **समनसौ** समानविचारौ **सचेतसौ** समानसंज्ञानौ **अरेपसौ** अनपराधिनौ **भवतम्** । **यज्ञं** संगन्तव्यं धर्मं **मा हिंसिष्टं** हिंस्यातम्, **यज्ञपतिम्** उपदेशेन धर्मरक्षकं **मा हिंसिष्टं** हिंस्यातम् । **अद्य नः** अस्मभ्यं **जातवेदसौ** उत्पन्नाऽखिलविज्ञानौ **शिवौ** मङ्गलकारिणौ **भवतम्** ॥ १२ । ६० ॥

भाषार्थ—हे विवाहित स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—(नः) हमारे लिए (समनसौ) समान विचार वाले, (सचेतसौ) समान ज्ञान वाले, (अरेपसौ) निर्दोष (भवतम्) बनो, (यज्ञम्) संग के योग्य धर्म का (मा हिंसिष्टम्) हिंसन मत करो, (यज्ञपतिम्) उपदेश के द्वारा धर्म के रक्षक का (मा हिंसिष्टम्) हिंसन मत करो । (अद्य) आज (नः) हमारे लिए (जातवेदसौ) उत्पन्न सकल विज्ञान वाले एवं (शिवौ) मङ्गलकारी (भवतम्) हों ॥

[हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां ... यज्ञपतिं मा हिंसिष्टम्]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषजनैः सत्योपदेशाया-

भावार्थ—स्त्री-पुरुष—सत्य-उपदेश एवं

ध्यापनाय पूर्णविद्याः प्रगल्भा निष्कपटा आप्ता नित्यं प्रार्थनीयाः ।

अध्यापन के लिए पूर्ण-विद्या वाले, प्रगल्भ चतुर निष्कपट, आप्त विद्वानों से नित्य प्रार्थना करें ।

[अद्य नः...शिवौ भवतम्]

विद्वांसस्तु सर्वेभ्य एवमुपदिशेयुर्यतः सर्वे धर्माचारिणः स्युः ॥ १२ । ६० ॥

और विद्वान् सबको ऐसा उपदेश करें जिससे सब धार्मिक होवें ॥ १२ । ६० ॥

भा० पदार्थः—यज्ञपतिम्=पूर्णविद्यं प्रगल्भं निष्कपटमाप्तम् । शिवौ=धर्माचारिणौ ॥

भाष्यसार—गृहस्थ-धर्म—विवाहित स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे दुर्व्यसनों से दूर रह कर समान विचार वाले तथा समान ज्ञान वाले होकर रहें । गृहस्थ के योग्य धर्म का कभी उल्लंघन न करें । और जो धर्म का प्रचार करके धर्म की रक्षा करते हैं ऐसे धार्मिक विद्वानों का सदा सत्कार करें । अपूज्यों की पूजा कभी न करें । किन्तु पूज्य, सकल विज्ञान से पूर्ण विद्वानों के लिए सदा मङ्गलकारी बने रहें ॥ १२ । ६० ॥

मधुच्छन्दाः । **पत्नी**=माता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

माता किंवत्संतानान् पालयतीत्याह ॥

माता किस के तुल्य सन्तानों को पालती है, यह उपदेश किया है ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**मातेव**) (**पुत्रम्**) (**पृथिवी**) भूमिवद्वर्त्तमाना विदुषी स्त्री (**पुरीष्यम्**) पुष्टिकरेषु गुणेषु भवम् (**अग्निम्**) विद्युतमिव सुप्रकाशम् (**स्वे**) स्वकीये (**योनौ**) गर्भाशये (**अभाः**) पुष्णाति धरति वा (**उखा**) ज्ञातुमर्हा (**ताम्**) (**विश्वैः**) सर्वैः (**देवैः**) दिव्यैर्गुणैः सह (**ऋतुभिः**) वसन्ताद्यैः (**संविदानः**) सम्यग्ज्ञापयन् (**प्रजापतिः**) परमेश्वरः (**विश्वकर्म्मा**) अखिलोत्तमक्रियः (**वि**) विरुद्धार्थे (**मुञ्चतु**) ॥ ६१ ॥

अन्वयः—योखा पृथिवीवद्वर्त्तमाना स्त्री स्वे योनौ पुरीष्यमग्निं पुत्रं मातेवाभा धरति तां संविदानो विश्वकर्मा प्रजापतिर्विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः सह सततं दुःखाद्विमुञ्चतु पृथग्रक्षतु ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—**या उखा** ज्ञातुमर्हा [पृथिवी]=पृथिवीवद्वर्तमाना **स्त्री**, भूमिवद्वर्त्तमाना विदुषी स्त्री **स्वे** स्वकीये **योनौ** गर्भाशये **पुरीष्यं** पुष्टिकरेषु गुणेषु भवम् **अग्निं** विद्युतमिव सुप्रकाशं **पुत्रं मातेव अभाः** पुष्णाति धरति वा, **तां संविदानः** सम्यग् ज्ञापयन् **विश्वकर्मा** अखिलोत्तमक्रियः **प्रजापतिः** परमेश्वरः **विश्वैः** सर्वैः **देवैः** दिव्यैर्गुणैः सह **ऋतुभिः** वसन्ताद्यैः **सह सततं दुःखाद् वि+मुञ्चतु=पृथग्रक्षतु** ॥ १२ । ६१ ॥

भाषार्थ—जो (उखा) जानने के योग्य [पृथिवी] भूमि के समान वर्तमान विदुषी स्त्री (स्वे) अपने (योनौ) गर्भाशय में (पुरीष्यम्) पुष्टिकारक गुणों से युक्त, (अग्निम्) विद्युत् के समान सुप्रकाश वाले पुत्र का माता के समान (अभाः) पोषण वा धारण करती है, उस स्त्री को (संविदानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ (विश्वकर्मा) अखिल उत्तम कर्मों वाला, (प्रजापतिः) परमेश्वर—(विश्वैः) सब (देवैः) दिव्य-गुणों से युक्त (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के द्वारा सदा दुःख से (वि+मुञ्चतु) पृथक् रखें ॥ १२ । ६१

[या-उखा [पृथिवी] पृथिवीवद्वर्त्तमाना स्त्री स्वे योनौ ···अग्निं पुत्रं मातेऽभाः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा जननी सन्तानानुत्पाद्य पालयति तथैव पृथिवी कारणस्थां विद्युतं प्रकटय्य रक्षति,

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे जननी सन्तानों को उत्पन्न करके पालन करती है, वैसे ही पृथिवी कारणस्थ विद्युत् को प्रकट करके उसकी रक्षा करती है।

[तां संविदानो विश्वकर्मा प्रजापतिः···ऋतुभिः सह]

यथा परमेश्वरो याथातथ्येन पृथिव्यादिगुणान् जानाति, प्रतिनियतसमयमृत्वादीन् पृथिव्यादींश्च धृत्वा, स्वस्वनियतपरिधौ चालयित्वा प्रलयसमये भिनत्ति, तथैव विद्वद्भिर्यथाबुद्धयेतान् विदित्वा कार्यसिद्धये प्रयतितव्यम् ॥ १२ । ६१ ॥

जैसे परमेश्वर यथार्थ रूप से पृथिवी आदि के गुणों को जानता है, प्रत्येक के नियत समय पर ऋतु आदि और पृथिवी आदिकों को धारण करके अपनी-अपनी नियत परिधि में चलाकर, प्रलय समय में भेदन करता है, वैसे ही विद्वान् लोग यथाबुद्धि इन्हें जानकर कार्य-सिद्धि के लिए प्रयत्न करें ॥

भा० पदार्थः—अग्निम्=कारणस्थां विद्युतम् । पुत्रम्=सन्तानम् । मातेव=यथा-जननी । अभाः=पालयति/रक्षति ।

भाष्यसार—**१. माता का कर्त्तव्य**—सन्तान के पालन करने में माता का स्थान पृथिवी के समान होता है। जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना अपने अनन्त सामर्थ्य से करता है और दिव्यगुणों से युक्त ऋतुओं के द्वारा पृथिवी से उत्पन्न होने वाला धान्य और फलादि के द्वारा सब प्राणियों का पालन करता है और नाना प्रकार के रोगों से मुक्त रखता है, वैसे ही विदुषी माता बालक को गर्भाशय में सुरक्षित रक्खे और पुष्टिकारक गुणों से बालक को विद्युत् की तरह तेजस्वी बनायें। और अच्छी-अच्छी शिक्षाएँ देकर बालक को सुशिक्षित करे।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे माता सन्तान को उत्पन्न कर उसका पालन करती है वैसे ही परमात्मा पृथिवी आदि से औषधियों को पैदा करके प्राणियों को पालता है ॥ १२ । ६१ ॥

मधुच्छन्दाः । **निर्ऋतिः=स्त्री** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

स्त्रियः कीदृशान्पतीन्नेच्छेयुरित्याह ॥

स्त्रियाँ कैसे पतियों की इच्छा न करें, यह उपदेश किया है ॥

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य ।
अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**असुन्वन्तम्**) अभिषवादिक्रियानुष्ठानरहितम् (**अयजमानम्**) अदातारम् (**इच्छ**) (**स्तेनस्य**) अप्रसिद्धचोरस्य (**इत्याम्**) एतुमर्हां क्रियाम् (**अनु**) (**इहि**) गच्छ (**तस्करस्य**) प्रसिद्धचोरस्य (**अन्यम्**) भिन्नम् (**अस्मत्**) (**इच्छ**) (**सा**) (**ते**) तव (**इत्या**) एतुमर्हा क्रिया (**नमः**) अन्नम् (**देवि**) विदुषि (**निर्ऋते**) नित्ये सत्याचारे पृथिवीवद्वर्त्तमाने (**तुभ्यम्**) (**अस्तु**) भवतु ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे निर्ऋते देवि ! त्वमस्मत्स्तेनस्य तस्करस्य सम्बन्धिनं विहायान्यमिच्छासुन्वन्तमयजमानं मेच्छ । यामित्यामन्विहि सेत्या तेऽस्तु नमश्च तस्यै तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे निर्ऋते ! नित्ये सत्याचारे पृथिवीवद्वर्त्तमाने ! **देवि** ! विदुषि ! **त्वम् अस्मत् स्तेनस्य** अप्रसिद्धचोरस्य **तस्करस्य** प्रसिद्धचोरस्य **सम्बन्धिनं विहायाऽन्यं** भिन्नम् **इच्छ, असुन्वन्तम्** अभिषवादिक्रियाऽनुष्ठानरहितम् **अयजमानम्** अदातारं **मेच्छ । यामित्याम्** एतुमर्हां क्रियाम् **अनु+इहि** गच्छ, **सेत्या** एतुमर्हा क्रिया **ते** तव **अस्तु** भवतु, **नमः** अन्नं **च तस्यै तुभ्यमस्तु** भवतु ॥ १२ । ६२ ॥

भाषार्थ—हे (निर्ऋते) नित्ये सत्याचारण वाली, पृथिवी के समान वर्तमान (देवि) विदुषी ! तू (अस्मत्) हमारे (स्तेनस्य) अप्रसिद्ध चोर, (तस्करस्य) प्रसिद्ध चोर के सम्बन्धी को छोड़कर (अन्यम) किसी और की (इच्छ) कामना कर । और—(असुन्वन्तम) अभिषव आदि क्रियाओं के अनुष्ठान से रहित (अयजमानम्) अदाता की (मेच्छ) कामना मत कर । और जिस (इत्याम्) प्राप्त करने योग्य क्रिया का (अनु+इहि) अनुगमन करे वह (इत्या) प्राप्त करने योग्य क्रिया (ते) तेरी (अस्तु) सफल हो । और (नमः) अन्न (तुभ्यम्) तुझे (अस्तु) प्राप्त हो ॥

[हे देवि ! त्वमस्मत् स्तेनस्य तस्करस्य सम्बन्धिनं विहायान्यामिच्छ]

भावार्थः—हे स्त्रियः ! यूयमपुरुषार्थिनः स्तेनसम्बन्धिनः पुरुषान् पतीन् मेच्छत, आप्तनीतन् गृह्णीत ।

भावार्थ—हे स्त्रियो ! तुम—पुरुषार्थ से रहित, चोरों के सम्बन्धी पुरुषों को पति रूप में मत चाहो, किन्तु आप्त नीति वाले पुरुषों को स्वीकार करो ।

[हे निर्ऋते ! नमश्च तस्यै तुभ्यमस्तु]

यथा पृथिव्यनेकोत्तमफलप्रदानेन जनान् रञ्जयति तथा भवत । एवंभूताभ्यो युष्मभ्यं वयं नमः कुर्मः ।

जैसे—पृथिवी अनेक उत्तम फल प्रदान करने से जनों को रंजित करती है, वैसी तुम बनो । सो तुम्हारा हम सत्कार करते हैं ।

[असुन्वन्तमयजमानं मेच्छ]

यथा वयमलसेभ्यः स्तेनेभ्यश्च पृथग् वर्त्तेमहि तथा यूयमपि वर्त्तध्वम् ॥ १२ । ६२ ॥

जैसे—हम आलसी और चोरों से पृथक् रहते हैं वैसे तुम भी रहो ॥ १२ । ६२ ॥

भा० पदार्थः—देवि=स्त्रि ! । स्तेनस्य=स्तेनसम्बन्धिनः । तस्करस्य=अपुरुषार्थिनः । अन्यम्=आप्तनीतिम् । इच्छ=गृहाण । असुन्वन्तम्=अलसम् । अयजमानम्=स्तेनम् ।

भाष्यसार—**पति कैसा हो**—स्वयंवर विवाह से पूर्व विदुषी और सत्याचरण करने वाली कुमारियाँ ऐसे पति को कभी न स्वीकार करें, जो छिप कर चोरी करता हो अथवा प्रसिद्ध चोर हो । चोरों के सम्बन्धियों में से भी वर न चुनें । और अभिषवादी क्रियाओं वाले यज्ञादि से रहित तथा अदाता हो, अच्छे पुरुषों की संगति न करता हो, ऐसे पुरुष को भी वर न बनायें । जो श्रेष्ठ कार्यों में प्रीति रखता हो और अन्नादि पदार्थों वाला हो, ऐसे पति का सदा वरण करें । जिससे सदा सुखों की वर्षा होती रहे ॥ १२ । ६२ ॥

मधुच्छन्दाः । **निर्ऋतिः**=स्त्री । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनरेताः कथं भवेयुरित्याह ॥

फिर ये स्त्रियाँ कैसी हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं वि चृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके ऽअधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिकम् (**सु**) (**ते**) तव (**निर्ऋते**) नितरामृतं=सत्यं यस्यां तत्सम्बुद्धौ (**तिग्मतेजः**) तीव्राणि तेजांसि यस्मात्तत् (**अयस्मयम्**) सुवर्णादिप्रकृतम् । **अय इति हिरण्यना० ॥ निघं० १ । २ ॥** (**वि**) (**चृत**) विमुञ्च । **द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** (**बन्धम्**) बध्नाति येन तम् (**एतम्**) (**यमेन**) न्यायाधीशेन (**त्वम्**) (**यम्या**) न्यायकर्त्र्या (**संविदाना**) सम्यक्कृतप्रतिज्ञा (**उत्तमे**) (**नाके**) आनन्दे भोक्तव्ये सति (**अधि**) (**रोहय**) (**एनम्**) ॥ ६३ ॥

प्रमाणार्थ—'अयस्मयम्' यहां 'अयस्' शब्द हिरण्य वाची है और यह शब्द निघं० (१ । २) में हिरण्यवाचियों में पढ़ा है । 'विचृता' यहाँ द्वयचोऽतस्तिङः' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे निर्ऋते ! यस्यास्ते तिग्मतेजोऽयस्मयं नमोऽस्ति सा त्वमेतं बन्धं सुविचृत । यमेन यम्या सह च संविदाना सत्येनं पतिमुत्तमे नाकेऽधिरोहय ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **निर्ऋते** ! नितरामृतं=सत्यं यस्यां तत्सम्बुद्धौ ! **यस्यास्ते** तव **तिग्मतेजः** तीव्राणि तेजांसि यस्मात्तत्, **अयस्मयं** सुवर्णादिप्रकृतं **नमः** अन्नादिकम् **अस्ति, सा त्वमेतं बन्धं** बध्नाति येन तम्, **सु+वि+चृत** विमुञ्च । **यमेन** न्यायाधीशेन **यम्या** न्यायकर्त्र्या **सह च संविदाना** सम्यक् कृतप्रतिज्ञा **सत्येनं-पतिमुत्तमे नाके** आनन्दे भोक्तव्ये सति **अधि+रोहय** ॥ १२ । ६३ ॥

भाषार्थ—हे (निर्ऋते) नितान्त सत्य से युक्त स्त्री ! (ते) तेरा (तिग्मतेजः) तीव्र तेजों का हेतु (अयस्मयम्) सुवर्ण आदि का कारण (नमः) अन्न आदि है, सो तू (एतम्) इस (बन्धम्) बन्धन को (सु + वि + चृत) उत्तम रीति से खोल । और (यमेन) न्यायाधीश पुरुष तथा (यम्या) न्याय-कर्त्री स्त्री के साथ (संविदाना) सत्य प्रतिज्ञा वाली होकर (एनम्) इस पति को (उत्तमे) श्रेष्ठ (नाके) भोग करने योग्य आनन्द में (अधि+रोह) आरूढ कर ॥

[**हे निर्ऋते ! यस्यास्ते तिग्मतेजोऽयस्मयं नमोऽस्ति**]

भावार्थः—हे स्त्रियः ! यूयं यथेयं पृथिवी तेजःसुवर्णान्नादिसम्बन्धाऽस्ति, तथा भवत ।

भावार्थ—हे स्त्रियो ! तुम—जैसे यह पृथिवी तेज, सुवर्ण और अन्न आदि से सम्बन्धित है, वैसी ही बनो ।

[**यमेन यम्या च सह संविदाना सती**]

युष्माकं पतयो न्यायाधीशा भूत्वा सापराधानपराधिनां सत्यन्यायेन विवेचनं कृत्वा सापराधान् दण्डयन्ति, निरपराधिनः सत्कुर्वन्ति—

तुम्हारे पति न्यायाधीश होकर, दोषी और निर्दोषों का सत्यन्याय से विवेचन करके, दोषियों को दण्ड देते हैं और निर्दोषों का सत्कार करते हैं, और—

[एनं पतिमुत्तमे नाकेऽधिरोहय]

युष्मभ्यमनुत्तमानानन्दान् प्रददति; तथा यूयमपि भवत ॥ १२ । ६३ ॥

तुम्हें उत्तम आनन्द प्रदान करते हैं, वैसी तुम भी बनो ॥ १२ । ६३ ॥

भाष्यसार—गृहस्थ-स्त्रियों का धर्म—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके स्त्रियाँ भूमि की तरह सदा सहनशील, सत्याचरण वाली होकर रहें। जिससे उनका यश सर्वत्र बढ़ता रहे। न्यायाधीश के समान सत्यासत्य के विवेक में कुशल स्त्री पुरुषों की संगति से श्रेष्ठ ज्ञान का अर्जन सदा करे और दुःखप्रद कारणों से पृथक् रहकर अपने सदाचरण से पुरुष को भी उत्तम सुख देने वाले मार्ग पर चलायें।

मधुच्छन्दाः। **निर्ऋतिः**=स्त्रीः। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

कस्मै प्रयोजनाय दम्पती भवेतामित्युपदिश्यते॥

किस प्रयोजन के लिये स्त्री पुरुष संयुक्त होवें, यह उपदेश किया है॥

यस्यांस्ते घोर ऽ आसन् जुहोम्येषां बन्धानांमवसर्जनाय।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः॥ ६४॥

पदार्थः—(यस्याः) सुव्रतायाः स्त्रियाः **(ते)** तव **(घोरे)** भयानके **(आसन्)** आस्ये=मुखे **(जुहोमि)** ददामि **(एषाम्)** वर्त्तमानानाम् **(बन्धानाम्)** दुःखकारकत्वेन निरोधकानाम् **(अवसर्जनाय)** त्यागाय **(याम्)** **(त्वा)** त्वाम् **(जनः)** **(भूमिः)** **(इति)** इव **(प्रमन्दते)** आनन्दयति **(निर्ऋतिम्)** भूमिमिव **(त्वा)** **(अहम्)** **(परि)** सर्वतः **(वेद)** जानीयाम् **(विश्वतः)** सर्वतः॥ ६४॥

अन्वयः—हे घोरे पत्नि ! यस्यास्त आसन्नेषां बन्धानामवसर्जनायामृतात्मकमन्नादिकं जुहोमि यो जनो भूमिरिति यां त्वा प्रमन्दते तामहं विश्वतो निर्ऋतिमिव त्वा परि वेद सा त्वमित्थं मां विद्धि॥ १२। ६४॥

सपदार्थान्वयः—हे घोरे ! भयानके ! **पत्नि ! यस्याः** सुव्रतायाः स्त्रियाः **ते** तव **आसन्** आस्ये=मुखे **एषां** वर्त्तमानानां **बन्धानां** दुःखकारकत्वेन निरोधकानाम् **अवसर्जनाय** त्यागाय **अमृतात्मकमन्नादिकं जुहोमि** ददामि, **यो जनो भूमिरिति** इव **यां त्वा** त्वां **प्र+मन्दते** आनन्दयति, **तामहं विश्वतः** सर्वतः **निर्ऋतिः** भूमिम् **इव त्वा** त्वां **परि+वेद** सर्वतो जानीयाम्, **सा त्वमित्थं मां विद्धि॥** १२। ६४॥

भाषार्थ—हे (घोरे) भयानक पत्नी ! (यस्याः) जिस सुव्रता (ते) तुझ स्त्री के (आसन्) मुख में विद्यमान (एषाम्) इन (बन्धानाम्) दुःखकारक बन्धनों के (अवसर्जनाय) त्याग के लिए अमृत-रूप अन्न आदि (जुहोमि) प्रदान करता हूँ, और जो पुरुष (भूमिः) पृथिवी के (इति) समान (त्वा) तुझे (प्र+मन्दते) आनन्द देता है, सो मैं (विश्वतः) सब ओर से (निर्ऋतिम्) भूमि के समान (त्वा) तुझे (परि+वेद) सब ओर से जानूँ। सो तू इस प्रकार मुझे भी जान॥

[हे…पत्नि ! यस्यास्ते आसन्नेषां बन्धानामवसर्जनाय…जुहोमि]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा पतयः स्वानन्दाय स्त्रियो गृह्णन्ति, तथैव तस्मै स्त्रियोऽपि पतीन् गृह्णीयुः। अत्र गृहा-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जैसे—पति अपने आनन्द के लिए स्त्रियों को ग्रहण करते हैं वैसे ही उस

श्रमे पतिव्रता स्त्री स्त्रीव्रतः पतिश्च सुखनिधिरिव भवति । आनन्द के लिए स्त्रियाँ भी पतियों को ग्रहण करें। इस गृहाश्रम में पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति सुख की निधि के तुल्य होता है ।

[भूमिरिति यां त्वा'''तामहं'''निर्ऋतिमिव त्वां परिवेद]

क्षेत्रभूता स्त्री, बीजरूपः पुमान् । स्त्री क्षेत्र रूप है, और पुरुष बीज रूप है।

[तात्पर्यमाह—]

यद्येतयोः शुद्धयोर्बलवतोः समागमेनोत्तमाः विविधाः प्रजा जायेरँस्तर्हि सर्वदा भद्रं भवतीति वेद्यम् ॥ १२ । ६४ ॥ यदि इन शुद्ध एवं बलवान् स्त्री-पुरुषों के समागम से उत्तम विविध प्रजा उत्पन्न हो तभी सदा कल्याण होता है, ऐसा जानें ॥ १२ । ६४ ॥

भा० पदार्थः—भूमिः । निर्ऋतिः=क्षेत्रभूता ।

भाष्यसार—१. **गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य**—गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे परस्पर सौहार्दभाव से रहते हुए सांसारिक सुखों को प्राप्त होवें । पुरुष एक पत्नीव्रत और स्त्री एकपतिव्रता होकर रहें । अपने जीवन को संयम से बितायें और श्रेष्ठ व्रतों को धारण करें । जिससे दुःख देने वाले बन्धनों से छूट कर सभी प्रकार के अन्नादि ऐश्वर्यों को प्राप्त करते रहें । इस आश्रम में प्रवेश करके एक दूसरे को जानने का प्रयत्न करें अर्थात् कभी भी अप्रियाचरणादि व्यवहार न करें। इस आश्रम में स्त्री भूमि की तरह सुप्रजा को पैदा करने वाली होती है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि सब प्राणियों को अन्नादि उत्पन्न करके आनन्द प्रदान करती है वैसे स्त्री-पुरुष दोनों ही स्वयंवर विवाह करके सुखों को प्राप्त करें ॥ १२ । ६४ ॥

मधुच्छन्दाः । **यजमानः**=स्त्रीपुरुषौ । आर्षी जगती । निषादः ॥

विवाहसमये कीदृशीः प्रतिज्ञाः कुर्य्युरित्याह ॥

विवाह समय में कैसी प्रतिज्ञाएँ करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(**यम्**) (**ते**) तव (**देवी**) दिव्या स्त्री (**निर्ऋतिः**) पृथिवीव (**आबबन्ध**) समन्ताद्बध्नामि (**पाशम्**) धर्म्यं बन्धनम् (**ग्रीवासु**) कण्ठेषु (**अविचृत्यम्**) अमोचनीयम् (**तम्**) (**ते**) तव (**वि**) (**स्यामि**) प्रविशामि (**आयुषः**) जीवनस्य (**न**) इव (**मध्यात्**) (**अथ**) आनन्तर्ये (**एतम्**) (**पितुम्**) अन्नादिकम् (**अद्धि**) भुङ्क्ष्व (**प्रसूतः**) उत्पन्नः सन् (**नमः**) सत्कारे (**भूत्यै**) ऐश्वर्यकारिकायै (**या**) (**इदम्**) प्रत्यक्षं नियमनम् (**चकार**) कुर्यात् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—हे पते ! निर्ऋतिरिवाहं ते तव यं ग्रीवास्वविचृत्यं पाशमाबबन्ध तं ते तवाप्यहं विष्यामि । आयुषोऽन्नस्य न विष्यामि । अथावयोर्मध्यात्कश्चिदपि नियमात् पृथङ् न गच्छेत् । यथाऽहमेतं पितुमद्मि तथा प्रसूतः सँस्त्वमेनमद्धि । हे स्त्रि ! या त्वमिदं पतिव्रताधर्मेण सुसंस्कृतं चकार तस्यै भूत्यै नमोऽहं करोमि ॥ १२ । ६५

सपदार्थान्वयः—हे पते ! निर्ऋतिः पृथिवी इव [देवी] दिव्या स्त्री **अहं ते=तव यं ग्रीवासु** कण्ठेषु **अविचृत्यम्** अमोचनीयं **पाशं** धर्म्यं वन्धनम् **आ+बबन्ध** समन्ताद् बध्नामि, **तं ते=तवाऽप्यहं वि+स्यामि**, प्रविशामि, **आयुषः=अन्नस्य** जीवनस्य **न** इव **वि+ष्यामि** प्रविशामि । **अथ** आनन्तर्य्ये **आवयोर्मध्यात् कश्चिदपि नियमात् पृथङ् न गच्छेत्** । **यथाऽहमेतं पितुन्** अन्नादिकम् **अद्मि तथा प्रसूतः** उत्पन्नः **सँस्त्वमेनमद्धि** भुङ्क्ष्व ।

भाषार्थ—हे पति ! मैं—(निर्ऋतिः) पृथिवी के समान (देवी) दिव्यगुणों वाली स्त्री (ते) आपके (यम्) जिस (ग्रीवासु) कण्ठ में (अविचृत्यम्) त्याग के अयोग्य (पाशम्) धर्मयुक्त बन्धन को (आ+बबन्ध) सब ओर से बाँधती हूँ, उसे (ते) आपके हृदय में मैं (वि+स्यामि) प्रविष्ट करती हूँ, और (आयुषः) अन्न एवं जीवन के (न) समान (वि+ष्यामि) प्रविष्ट करती हूँ । (अथ) और—हम दोनों में से कोई नियम से पृथक् न होवे । जैसे मैं इस (पितुम्) अन्न आदि को खाती हूँ वैसे (प्रसूतः) लोक में उत्पन्न हुए आप भी इसका (अद्धि) भक्षण करो ।

हे स्त्रि ! **या त्वमिदं** प्रत्यक्षं नियमनं **पतिव्रता-धर्मेण सुसंस्कृतं चकार** कुर्य्याः, **तस्यै भूत्यै** ऐश्वर्य्य-कारिकायै **नमः** सत्कारम् **अहं करोमि** ॥ १२ । ६५ ॥

हे स्त्री ! जो तू (इदम्) इस बन्धनरूप नियम=व्रत को पतिव्रता धर्म से सुसंस्कृत (चकार) करती है, सो (भूत्यै) इस उक्त ऐश्वर्य से सम्पन्न तेरा मैं (नमः) सत्कार करता हूँ ॥ १२ । ६५ ॥

[**अथावयोर्मध्यात् कश्चिदपि नियमात् पृथङ् न गच्छेत्**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । विवाहसमये यानव्यभिचाराख्यादीन् नियमान् कुर्युस्तेभ्योऽन्यथा कदाचिन्नाचरेयुः । कुतः-

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ विवाह के समय जिन अव्यभिचार आदि नियमों को करें उनसे विरुद्ध कभी आचरण न करें । क्योंकि—

[**यथाऽहमेतं पितुमद्मि तथा···त्वमेनमद्धि**]

यदा पाणिं गृह्णन्ति तदा पुरुषस्य यावत्स्वं तावत् सर्वं स्त्रियाः, यावत् स्त्रियास्तावदखिलं पुरुषस्यैव भवति ।

जब पाणिग्रहण करते हैं तब पुरुष का जितना ऐश्वर्य है वह सब स्त्री का और जितना ऐश्वर्य स्त्री का है वह सब पुरुष का ही होता है ।

[**हे पते ! ··· अहं ते=तव यं ग्रीवास्वविचृत्यं पाशमाबबन्ध तं ते=तवाहं विष्यामि**]

यदि पुरुषो विवाहितां विहायान्यस्त्रीगो भवेत्, स्त्री च परपुरुषगामिनी स्यात्, तावुभावपि स्तेनवत् पापात्मानौ स्याताम्, अतः स्त्रियोऽनुमतिमन्तरा पुरुषः, पुरुषाज्ञया च विना स्त्री किञ्चिदपि कर्म न कुर्यात् ।

यदि पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रीगामी होवे, और स्त्री अन्य पुरुषगामिनी होवे तो वे चोर के समान पापातमा होवें, अतः स्त्री के अनुमति के विना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के विना स्त्री कोई भी कार्य न करे ।

[**अव्यभिचरणमाह**—]

इदमेव स्त्रीपुरुषयोः प्रीतिकरं कर्म, यदव्यभि-चरणमिति ॥ १२ । ६५ ॥

अव्यभिचार ही स्त्री और पुरुष का प्रीतिकारक कर्म है ॥ १२ । ६५ ॥

भा० पदार्थः—पितुम्=स्वम् ।

भाष्यसार—**विवाह-समय की प्रतिज्ञाएँ**—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय स्त्री-पुरुष दोनों ही दृढ़ प्रतिज्ञा करें कि हम दोनों कभी भी एक दूसरे का अप्रियाचरणरूप व्यवहार न करेंगे। और धर्मबन्धनों में सदा बंधे रहेंगे। जैसे अन्न और जीवन हमें प्रिय होते हैं वैसे ही परस्पर पृथक् न होकर सदा सुखों की वृद्धि करेंगे। दोनों का खान-पान, रहन-सहन, एक सा होगा, दोनों ही मित्रता का व्यवहार रखेंगे। कभी भी एक दूसरे से छिपाकर किसी वस्तु का भोग न करेंगे। एक दूसरे का सदा सत्कार करेंगे। इस प्रकार यह आश्रम स्वर्गतुल्य हो जाता है ॥ १२ । ६५ ॥

विश्वावसुः । **अग्निः**=स्त्रीपुरुषौ । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृशाः स्त्रीपुरुषा गृहाश्रमं कर्तुं योग्याः सन्तीत्याह ॥

कैसे स्त्री-पुरुष गृहाश्रम करने के योग्य होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः ।
देव ऽइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(**निवेशनः**) यः स्त्रियां निविशते (**संगमनः**) सम्यग्गन्ता (**वसूनाम्**) पृथिव्यादीनां पदार्थानाम् (**विश्वा**) सर्वाणि (**रूपा**) रूपाणि (**अभि**) (**चष्टे**) पश्यति (**शचीभिः**) प्रज्ञाभिः कर्म्मभिर्वा (**देव इव**) यथेश्वरः (**सविता**) सकलजगतः प्रसविता (**सत्यधर्मा**) सत्यो धर्मो यस्य सः (**इन्द्रः**) सूर्यः (**न**) इव (**तस्थौ**) तिष्ठेत् (**समरे**) संग्रामे । **समर इति संग्रामना० ॥ २ । १७ ॥** (**पथीनाम्**) गच्छताम् ॥ ६६ ॥

प्रमाणार्थ—'समरे' यहाँ समर शब्द संग्राम वाची है। यह शब्द निघण्टु (२ । १७) में संग्राम वाचक शब्दों में पढ़ा है।

अन्वयः—यः सत्यधर्मा सविता देव इव निवेशनः संगमनः शचीभिर्वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे । इन्द्रो न समरे पथीनां सम्मुखे तस्थौ स एव गृहाश्रमाय योग्यो जायते ॥ ६६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः सत्यधर्मा** सत्यो धर्मो यस्य सः **सविता** सकलजगतः प्रसविता **देव** यथेश्वरः **इव निवेशनः** यः स्त्रियां निविशते **संगमनः** सम्यग् गन्ता **शचीभिः** प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा **वसूनां** पृथिव्यादीनां पदार्थानां **विश्वा** सर्वाणि **रूपा** रूपाणि **अभि+चष्टे** पश्यति, **इन्द्रः** सूर्य्यः **न** इव **समरे** संग्रामे **पथीनां** गच्छतां **सम्मुखे तस्थौ** तिष्ठेत्, **स एव गृहाश्रमाय योग्यो जायते** ॥ १२ । ६६ ॥

भाषार्थ—जो (सत्यधर्मा) सत्य धर्म वाला, (सविता) सकल जगत् को उत्पन्न करने वाला (देवः) ईश्वर है, उसके समान (निवेशनः) स्त्री में प्रविष्ट तथा (संगमनः) सङ्ग करने वाला होकर (शचीभिः) प्रज्ञा वा कर्मों से (वसूनाम्) पृथिवी आदि पदार्थों के (विश्वा) सब (रूपा) रूपों को (अभि+चष्टे) सब ओर से देखता है; और–(इन्द्रः) सूर्य के (न) समान (समरे) संग्राम में (पथीनाम्) पथिकों के सम्मुख (तस्थौ) खड़ा रहता है, वही गृहाश्रम के योग्य होता है ॥ १२ । ६६ ॥

[यः'''देव इव'''शचीभिर्वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारौ। हे मनुष्याः ! यथेश्वरेण मनुष्योपकाराय कारणात् कार्यरूपा अनेके पदार्था रचिता उपयुज्यन्ते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में दो उपमा अलङ्कार हैं ॥ हे मनुष्यो ! जैसे—ईश्वर ने मनुष्यों के उपकार के लिए कारण (प्रकृति) से कार्यरूप अनेक

पदार्थ रचे हैं, जिनका मनुष्य उपयोग करते हैं, और—

[इन्द्रो न समरे पथीनां सम्मुखे तस्थौ]

यथा सूर्यो मेघेन सह युद्धाय वर्तते, तथा सृष्टिक्रमविज्ञानेन सुक्रियया च भूम्यादि पदार्थेभ्योऽनेके व्यवहाराः संसाधनीयाः ॥ १२ । ६६ ॥

जैसे—सूर्य मेघ के साथ युद्ध के लिए तैयार रहता है, वैसे सृष्टिक्रम के विज्ञान से और उत्तम क्रिया से भूमि आदि पदार्थों से अनेक व्यवहारों को सिद्ध करो ॥ १२ । ६६ ॥

भा० पदार्थः—समरे=युद्धे ।

भाष्यसार—**१. गृहस्थी स्त्री-पुरुषों की योग्यता**—(१) निवेशनः—इस आश्रम में प्रवेश करने वालों को योग्य है कि वे "संगमनो वसूनाम्" सभी प्रकार के ऐश्वर्य वाले हों। उनका ऐसा स्वभाव हो कि वे सभी वसु ब्रह्मचर्य का पालने वालों से मिल कर चलते हों। (२) जैसे परमेश्वर सत्यधर्म वाला, सब को उत्पन्न करने वाला और सब पदार्थों को देखता है वैसे ही गृहस्थी स्त्री-पुरुष सत्यव्रती हों। उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करके शरीरादि से पूर्ण स्वस्थ हों और सभी पदार्थों का ज्ञान रखते हों (३) जैसे सूर्य सदा नियम में रहता हुआ अपने शत्रुओं से निरन्तर संघर्ष करता रहता है वैसे ही गृहस्थी भी अपने दुर्व्यसनों से और विरोधियों से सदा संघर्ष करते रहें।

२. अलंकार—इस मन्त्र में दो उपमा अलङ्कार हैं। उपमा यह है कि जैसे ईश्वर ने अनेक पदार्थ बनाये हैं वैसे ही पदार्थ विद्या को सीख कर उनका उपयोग करें। और सूर्य मेघ के साथ युद्ध करता रहता है वैसे ही दुर्गुणों से दृढ़ता से युद्ध करते रहें ॥ १२ । ६६ ॥

विश्वावसुः । **कृषीवलाः कवयः**=विद्वांसः । गायत्री । षड्जः ॥

अथ कृषियोगविद्यम् आह ॥

अब खेती और योग-विद्या का उपदेश किया जाता है ॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

पदार्थः—(**सीरा**) सीराणि=हलानि (**युञ्जन्ति**) युञ्जन्तु (**कवयः**) मेधाविनः । **कविरिति मेधाविना०** ॥ ३ । १५ ॥ (**युगा**) युगानि (**वि**) (**तन्वते**) विस्तृणन्ति (**पृथक्**) (**धीराः**) ध्यानवन्तः (**देवेषु**) विद्वत्सु (**सुम्नया**) सुम्नेन=सुखेन । **अत्र तृतीयैकवचनस्यायादेशः** ॥ ६७ ॥

प्रमाणार्थ—'कवयः' यहाँ कवि शब्द मेधावी वाचक है। निघं० (३ । १५) में कवि शब्द मेधावी-नामों में पढ़ा है। 'सुम्नया' यहाँ तृतीया विभक्ति के एक वचन के स्थान पर अयादेश हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा धीराः कवयः सीरा युगा च युञ्जन्ति सुम्नया देवेषु पृथग् वितन्वते तथा सर्वैरेतदनुष्ठेयम् ॥ ६७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा धीराः** ध्यानवन्तः **कवयः** मेधाविनः **सीरा** सीराणि=हलानि **युगा** युगानि **च युञ्जन्ति** युञ्जन्तु, **सुम्नया**

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(धीराः) ध्यान करने वाले (कवयः) मेधावी लोग (सीरा) हल और (युगा) जुओं को (युञ्जन्ति) युक्त करते

सुम्नेन=सुखेन **देवेषु** विद्वत्सु **पृथक् वि+तन्वते** विस्तृणन्ति, **तथा सर्वैरेतदनुष्ठेयम्** ॥ १२ । ६७ ॥

हैं, और (सुम्नया) सुख से (देवेषु) विद्वानों में (पृथक्) अलग ही (वि+तन्वते) उन्नति को प्राप्त करते हैं, वैसे सब इस कृषिकर्म का अनुष्ठान करें ॥ १२ । ६७ ॥

[हे मनुष्याः ! यथा धीराः कवयः सीरा युगा च युञ्जन्ति, सुम्नया···वितन्वते]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैरिह विद्वच्छिक्षया कृषिकर्मोन्नेयम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य—इस संसार में विद्वानों की शिक्षा से कृषि-कर्म को उन्नत करें ।

यथा योगिनो नाडीषु परमेश्वरं समाधि-योगेनोपकुर्वन्ति तथैव कृषिकर्मद्वारा सुखोपयोगः कर्त्तव्यः ॥ १२ । ६७ ॥

जैसे योगी लोग नाडियों में परमेश्वर की समाधि-योग से उपासना करते हैं वैसे ही कृषि-कर्म से सुख की प्राप्ति करें ॥ १२ । ६७ ॥

भा० पदार्थः—धीराः=योगिनः । कवयः=विद्वांसः । सीरा=नाड्यः । युगा=समाधि-योगेन ।

अन्यत्र व्याख्यात—(**कवयः**) जो विद्वान् लोग और (**धीराः**) ध्यान करने वाले हैं वे (**सीरा**) (**युञ्जन्ति**) (**पृथक्**) यथायोग्य विभाग से नाड़ियों में अपने आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं (**युगा**) जो योग-युक्त कर्मों में तत्पर रहते हैं (**वितन्वते**) अपने ज्ञान और आनन्द को सदा विस्तृत करते हैं (**देवेषु सुम्नया**) वे विद्वानों के बीच में प्रशंसित होके परमानन्द को प्राप्त होते हैं (**ऋग्वेदादि० उपासनाविषय**) ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों का मुख्य कर्त्तव्य**—सभी मनुष्यों को योग्य है कि उत्तम कृषि आदि कर्मों को करते हुए उन्नति किया करें । जैसे विद्वान् पुरुष कृषि के उत्तम साधन हलादि यन्त्रों से तथा उत्तम बैलों को जुओं में जोड़ कर अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करते हैं अथवा जैसे ध्यान करने वाले नाड़ियों में अपने आत्मा से परमात्मा की धारणा करते हुए योग युक्त कर्मों से ज्ञान तथा आनन्द को बढ़ाते हैं, वैसे ही सदा सुखों की समृद्धि करते हुए उन्नति करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उपमा यह है जैसे योगी नाडियों में परमात्मा का ध्यान करते हुए ज्ञानवान् होते हैं वैसे ही कृषि-विद्या के द्वारा सुखों की प्राप्ति करें ।

विश्वावसुः । **कृषीवलाः, कवयो वा**=**विद्वांसो वा** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

खेती और योग-विद्या का फिर उपदेश किया है ॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽ इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(**युनक्त**) युङ्ध्वम् (**सीरा**) हलादीनि कृष्युपकरणानि नाडीर्वा (**वि**) विविधार्थे (**युगा**) युगानि (**तनुध्वम्**) विस्तृणीत (**कृते**) हलादिभिः कर्षिते योगाङ्गैर्निष्पादितेऽन्तःकरणे वा (**योनौ**) क्षेत्रे (**वपत**) (**इह**) अस्यां भूमौ बुद्धौ वा (**बीजम्**) यवादिकं सिद्धिमूलं वा (**गिरा**) कृषियोगकर्मोपयुक्तया

सुशिक्षितया वाचा (**च**) स्वसुविचारेण (**श्रुष्टिः**) शीघ्रम् । **श्रुष्टीति क्षिप्रनामाशु अष्टीति ॥ निरु० ६ । १२ ॥** (**सभराः**) समानधारणपोषणाः (**असत्**) अस्तु (**नः**) अस्मान् (**नेदीयः**) अतिशयेनान्तिकम् (**इत्**) एव (**सृण्यः**) याः क्षेत्रयोगान् गता यवादिजातयः (**पक्वम्**) (**आ**) (**इयात्**) प्राप्नुयात् ॥ ६८ ॥

प्रमाणार्थ—'श्रुष्टिः' यहाँ श्रुष्टि शब्द क्षिप्रवाचक है । निरु० (६।१२) में इसका निर्वचन यह किया है —जो शीघ्र व्याप्त करे उसे श्रुष्टि कहते हैं ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमिह साधनानि वितनुध्वं सीरा युगा युनक्त । कृते योनौ बीजं वपत गिरा च सभराः श्रुष्टिर्भवत याः सृण्यः सन्ति ताभ्यो यन्नेदीयोऽसत् पक्वं भवेत्तदिदेव न एयात् ॥

[योगविद्या]

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयमिह** अस्यां बुद्धौ **साधनानि वि+तनुध्वं** विस्तृणीत; **सीरा** नाडीः **युगा** युगानि **युनक्त** युङ्ध्वम्, **कृते** योगाङ्गैर्निष्पादितेऽन्तःकरणे **योनौ** क्षेत्रे **बीजं** सिद्धिमूलं **वपत**; **गिरा** योगकर्मोपयुक्तया सुशिक्षितया वाचा **च** सुविचारेण **सभराः** समानधारणपोषणाः **श्रुष्टिः** शीघ्रं **भवत**। **याः सृण्यः** या योगान् गता **सन्ति**; **ताभ्यो यन्नेदीयः** अतिशयेनाऽन्तिकम् **असत्** अस्तु; **पक्वं भवेत्**; **तदिद्**= **एव नः** अस्मान् **आ+इयात्** प्राप्नुयात् ॥

[योगविद्या]

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(इह) इस बुद्धि में साधनों को (वि+तनुध्वम्) विस्तृत करो, (सीराः) नाड़ियों को एवं (युगा) योग-साधनों को (युनक्त) युक्त करो (कृते) योग-अङ्गों से निष्पन्न अन्तःकरण में (योनौ) योग के क्षेत्र में (बीजम्) सिद्धि के मूल को (वपत) बोओ। (गिरा) योग-कर्म में उपयोगी सुशिक्षित वाणी से (च) और सुविचार से (सभराः) समान रूप से सबका धारण-पोषण करने वाले (श्रुष्टिः) शीघ्र बनो। और जो (सृण्यः) योग को प्राप्त कराने वाले साधन हैं उनसे जो (नेदीयः) अत्यन्त निकट (अस्तु) हो, (पक्वम्) परिपक्व हो, उसे (इद्) ही (नः) हमें (आ+इयात्) प्राप्त करो ॥

[कृषिविद्या]

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयमिह** अस्यां भूमौ **साधनानि वि+तनुध्वं** विस्तृणीत, **सीरा** हलादीनि कृष्युपकरणानि **युगा** युगानि **युनक्त** युङ्ध्वम् । **कृते** हलादिभिः कर्षिते, **योनौ** क्षेत्रे **बीजं** यवादिकं **वपत** । **गिरा** कृषिकर्मोपयुक्तया सुशिक्षितया वाचा **च** स्वसुविचारेण **सभराः** समान धारणपोषणाः **श्रुष्टिः** शीघ्रं **भवत** । **याः सृण्यः** याः क्षेत्रान् गता यवादिजातयः **सन्ति**, **ताभ्यो यन्नेदीयः** अतिशयेनाऽन्तिकम् **असत्** अस्तु, **पक्वं भवेत्तदिद्**=**एव नः** अस्मान् **आ+इयात्** प्राप्नुयात् ॥

[कृषिविद्या]

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(इह) इस भूमि पर साधनों का (वि+तनुध्वम्) विस्तार करो, (सीरा) हल आदि कृषि के उपकरणों एवं (युगा) जूआ आदि को (युनक्त) युक्त करो । (कृत) हल आदि से कर्षित (योनौ) खेत में (बीजम्) यव=जौ आदि बीज को (वपत) बोओ। (गिरा) कृषिकर्म में उपयोगी सुशिक्षित वाणी से (च) और अपने उत्तम विचार से (सभरा) समान रूप से सबका धारण-पोषण करने वाले (श्रुष्टिः) शीघ्र बनो । और जो (सृण्यः) क्षेत्रों को प्राप्त होने वाली यव आदि अन्नों की जातियाँ हैं उनसे जो (नेदीयः) अत्यन्त निकट (असत्) हो, अर्थात् उनसे जो (पक्वम्) पाक बन सके वह (इत्) ही (नः) हमें (आ+इयात्) प्राप्त करो ॥ १२ । ६८ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयमिह साधनानि वितनुध्वं, सीरा युगा युनक्त]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं विद्वद्भ्यः कृषीवलेभ्यश्च कृषियोगकर्मशिक्षां प्राप्यानेकानि साधनानि सम्पाद्य कृषिं योगं च कुरुत।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—विद्वानों और किसानों से कृषि और योग-कर्म की शिक्षा को प्राप्त करके, अनेक साधनों को सिद्ध करके, कृषि और योग को सिद्ध करो।

[याः सृण्यः सन्ति ताभ्यो यत्'''पक्वं भवेत् तदिदेव न एयात्]

तस्माद्यद्यत्पक्वं स्यात् तत्तद् गृहीत्वोपभुङ्ध्वं भोजयत वा ॥ १२ । ६८ ॥

अतः जो-जो पाक बने उस उस को ग्रहण करके खाओ वा खिलाओ ॥ १२ । ६८ ॥

भा० पदार्थः—युनक्त=कृषिं योगं च कुरुत ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे उपासक लोगो ! तुम योगाभ्यास और परमात्मा के योग से नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द को (**वितनुध्वम्**) विस्तार करो, इस प्रकार करने से (**कृते योनौ**) योनि अर्थात् अपने अन्तःकरण को शुद्ध और परमानन्दस्वरूप परमेश्वर में स्थिर करके उसमें उपासना विधान से विज्ञानरूप (**बीजम्**) बीज को (**वपत**) अच्छी प्रकार से बोओ तथा (**गिरा च**) पूर्वोक्त प्रकार से वेदवाणी करके परमात्मा में (**युनक्त**) युक्त होकर उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना में प्रवृत्ति करो तथा (**श्रुष्टिः**) तुम लोग ऐसी इच्छा करो कि हम उपासना-योग के फल को प्राप्त होवें और (**नो नेदीयः**) हमको ईश्वर के अनुग्रह से वह फल (**असत्**) शीघ्र ही प्राप्त हो, कैसा वह फल है कि (**पक्वम्**) जो परिपक्व शुद्ध परम आनन्द से भरा हुआ और मोक्ष सुख को प्राप्त करने वाला है (**इत्सृण्यः**) अर्थात् वह उपासना योगवृत्ति कैसी है कि सब क्लेशों को नाश करने वाली और (**सभराः**) सब शान्ति आदि गुणों से पूर्ण है । उन उपासना योगवृत्तियों से परमात्मा के योग को अपने आत्मा में प्रकाशित करो ॥ १२ । ६८ ॥

भाष्यसार—**कृषि-विद्या का उपदेश**—सब मनुष्यों को चाहिये कि वे नये-नये कृषि के यन्त्रों का निर्माण करके भूमि की उपज बढ़ाते रहें। क्योंकि हलादि उत्तम साधनों की सहायता से ही उत्तम खेती हो सकती है। उपज बढ़ाने के लिए उत्तम बीज बोना चाहिये। बीजों की जो विभिन्न जातियाँ हैं उनका विकास करते रहें । जो कृषिविद्या में सुशिक्षित हों, अथवा जो कृषि-कर्म में निपुण हों। वे दोनों ही समान विचारों वाले होकर कृषि-कर्म को नित्य बढ़ायें और धान्यादि से सुखों को प्राप्त करें ॥ १२ ।६८ ॥ ●

कुमारहारितः । **कृषिवलाः**=**कृषकाः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कृषि विद्या का फिर उपदेश किया है ॥

शुनꣳ सु फाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा ऽ अभि यन्तु वाहैः ।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ऽ ओषधीः कर्त्तनास्मे ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(**शुनम्**) सुखम् । **शुनमिति सुखना० ॥ निघं० ३ । ६ ॥** (**सु**) (**फालाः**) फलन्ति=विस्तीर्णां भूमिं कुर्वन्ति यैस्ते (**वि**) (**कृषन्तु**) विलिखन्तु (**भूमिम्**) (**शुनम्**) सुखम् (**कीनाशाः**) ये श्रमेण क्लिश्यन्ति ते कृषिवलाः । **अत्र क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च ॥ उ० ५ । ५६ ॥ क्लिशधातोः कनि**

प्रत्यये लोप उपधाया ईत्वं धातोर्नामागमश्च (**अभि**) (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**वाहैः**) वहन्ति यैस्तैर्वृषभादिवाहनैः (**शुनासीरा**) यथा वायुसूर्यौ । शुनासीरौ शुनो वायुः सरत्यन्तरिक्षे सीर आदित्यः सरणात् ॥ निरु० ६ । ४० ॥ (**हविषा**) संस्कृतेन घृतादिना संस्कृतौ (**तोशमाना**) सन्तुष्टिकारौ । अत्र वर्णव्यत्ययेन शः । विकरणात्मनेपदव्यत्ययौ च (**सुपिप्पलाः**) शोभनानि पिप्पलानि फलानि यासु ताः (**ओषधीः**) यवादीन् (**कर्त्तन**) कुर्वन्तु (**अस्मे**) अस्मभ्यम् ॥ ६९ ॥

प्रमाणार्थ—'शुनम्' शुनम् शब्द निघण्टु में (३ । ६) सुख-नामों में पढ़ा है। 'कीनाशः' यहाँ 'क्लिशेरीच्चोपधायाः कन् लोपश्च लो नाम् च' (उणादि० ५ । ५६) सूत्र से क्लिश् धातु से कन् प्रत्यय, उपधाभूत इकार के स्थान पर ईकारादेश, धातु के लकार का लोप, और मित् 'नाम्' का आगम हुआ है। (क्लिश्+कन्, क्लीश्+अ, कीश्+अ, की नामश्+अ,=कीनाशः) 'शुनासीरा' यहाँ शुन शब्द वायु का वाचक, और सीर शब्द आदित्य का वाचक है। निरुक्त (९ । ४०) में इनके निर्वचन इस प्रकार हैं—वायु अन्तरिक्ष में सरण क्रिया करती है अतः शुन वायु का वाचक है। आदित्य भी सरण क्रिया करने से सीर कहलाता है। 'तोशमाना' यहाँ 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्रस्थ योगविभाग से वर्णव्यत्यय से षकार को शकार हुआ और विकरण तथा आत्मनेपद भी व्यत्यय से हुआ है।

अन्वयः—ये कीनाशास्ते फाला वाहैः सह वर्त्तमानैर्हलादिभिर्भूमिं विकृषन्तु शुनमभियन्तु । हविषा तोषमाना शुनासीरेवास्मे सुपिप्पा ओषधीः कर्त्तन ताभिः सु शुनं च ॥ ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये कीनाशाः** ये श्रमेण क्लिश्यन्ति ते कृषीवलाः **ते फालाः** फलन्ति= विस्तीर्णां भूमिं कुर्वन्ति यैस्ते, **वाहैः**=वहन्ति यैस्तैर्वृषभादिवाहनैः **सह वर्त्तमानैर्हलादिभिः भूमिं वि+कृषन्तु** विलिखन्तु, **शुनं** सुखम् **अभि+यन्तु** प्राप्नुवन्तु । **हविषा** संस्कृतेन घृतादिना संस्कृतौ **तोशमाना** सन्तुष्टिकरौ **शुनासीरा** यथा वायुसूर्य्यौ **इव अस्मे** अस्मभ्यं **सुपिप्पलाः** शोभनानि पिप्पलानि= फलानि यासु ताः, **ओषधीः** यवादीन् **कर्त्तन** कुर्वन्तु । **ताभिः सु शुनं** सुखं **च** ॥ १२ । ६९ ॥

भाषार्थ—जो (कीनाशाः) जो श्रम से कष्ट उठाने वाले कृषीवल हैं वे (फालाः) भूमि को विस्तीर्ण करने के साधन फाली आदि से युक्त होकर (वाहैः) बैल आदि के साथ वर्तमान हल आदि साधनों से (भूमिम्) भूमि का (वि+कृषन्तु) विलेखन करें और (शुनम्) सुख को (अभियन्तु) प्राप्त करें। और (हविषा) सुगन्धित घृत आदि से संस्कृत (तोशमाना) सन्तुष्टिकारक (शुनासीरा) वायु और सूर्य के समान (अस्मे) हमारे लिए (सुपिप्पलाः) सुन्दर फलों वाली (ओषधीः) यव= जौ आदि ओषधियों को (कर्त्तन) उत्पन्न करें और उनसे (सु) उत्तम (शुनम्) सुख को उत्पन्न करें ॥ १२ । ६९ ॥

[ये कीनाशा ··· वाहैः सह ··· भूमिं विकृषन्तु, शुनमभियन्तु]

भावार्थः—ये चतुराः कृषिकारा गोवृषभादीन् संरक्ष्य विचारेण कृषिं कुर्वन्ति, तेऽत्यन्तं सुखं लभन्ते ।

भावार्थ—जो चतुर किसान गौ और बैल आदि की रक्षा करके विचारपूर्वक कृषि करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं।

[हविषा तोशमाना शुनःसीरेवास्ये सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तन]

नात्र क्षेत्रेऽमेध्यं किञ्चित् प्रक्षेप्यम्, किन्तु—बीजान्यपि सुगन्ध्यादियुक्तानि कृत्वैव वपन्तु ।

इस खेत में अमेध्य=गन्दी वस्तु न डालें, अपितु—बीजों को सुगन्धि आदि गुणों से युक्त करके ही बोवें।

[ताभिः सु शुनं च]

यतोऽन्नान्यारोग्यकराणि भूत्वा बलबुद्धी वर्धयेयुः ॥ १२ । ६९ ॥	जिससे— अन्न आरोग्य-कारक होकर बल और बुद्धि को बढ़ावें ।

भा० पदार्थः—कीनाशाः=चतुराः कृषिकाराः । वाहैः=गोवृषभादिभिः । विकृषन्तु=विचारेण कृषिं कुर्वन्तु । शुनम्=अत्यन्तं सुखम् । सु+शुनम्=आरोग्यकरं बलबुद्धिवर्द्धकम् ॥

भाष्यसार—**कृषि-विद्या का उपदेश**—सब मनुष्यों को उचित है कि वे यवादि उत्तम ओषधियों को उत्पन्न करने के लिए अत्यधिक परिश्रम करें । भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए यह परमावश्यक है कि कृषि करने के विस्तीर्ण फाली वाले हलादि यन्त्रों को बनायें । कृषि के योग्य बलवान् बैलादि पशुओं को बढ़ायें । उत्तम कृषि के लिए अच्छी वर्षा और समय पर होवे, एतदर्थ सुगन्धित, पौष्टिक तथा रोगनिवारक पदार्थों से यज्ञ के द्वारा वायु की शुद्धि करें । शुद्ध वायु मण्डल के होने पर सूर्य भी वर्षा करने में सहायक होता है । और वर्षा से अच्छे फलों वाली यवादि औषधियों को पैदा करके सुखों को प्राप्त करें ॥ १२ । ६९ ॥

कुमारहारितः । **कृषीवलाः**=कृषकाः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कृषि विद्या का फिर उपदेश किया है ॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः ।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व ॥ ७० ॥

पदार्थः—(**घृतेन**) आज्येन (**सीता**) सायन्ति=क्षेत्रस्थलोष्ठान् क्षयन्ति यया सा काष्ठपट्टिका (**मधुना**) क्षौद्रेण शर्करादिना वा (**सम्**) एकीभावे (**अज्यताम्**) संयुज्यताम् (**विश्वैः**) सर्वैः (**देवैः**) अन्नादिं कामयमानैर्विद्वद्भिः (**अनुमता**) अनुज्ञापिता (**मरुद्भिः**) मनुष्यैः (**ऊर्जस्वती**) ऊर्जः=पराक्रमसम्बन्धो विद्यते यस्याः सा (**पयसा**) जलेन दुग्धेन वा (**पिन्वमाना**) सिक्ता=सेविता (**अस्मान्**) (**सीते**) सीता (**पयसा**) जलेन (**अभि**) (**आ**) (**ववृत्स्व**) वर्त्तिता भवतु ॥ ७० ॥

अन्वयः—विश्वैर्देवैर्मरुद्भिर्युष्माभिरनुमता पयसोर्जस्वती पिन्वमाना सीता घृतेन मधुना समज्यताम् । सा सीते सीतास्मान् घृतादिना संयोत्स्यतीति पयसाऽभ्याववृत्स्व अभ्यावर्त्यताम् ॥ ७० ॥

सपदार्थान्वयः—**विश्वैः** सर्वैः **देवैः** अन्नादिं कामयमानैर्विद्वद्भिः **मरुद्भिः** मनुष्यैः **युष्माभिरनुमता** अनुज्ञापिता **पयसा** जलेन दुग्धेन वा **उर्जस्वती** ऊर्जः=पराक्रमसम्बन्धो विद्यते यस्याः सा, **पिन्वमाना** सिक्ता=सेविता **सीता** सायन्ति=क्षेत्रस्थलोष्ठान् क्षयन्ति यया सा काष्ठपट्टिका **घृतेन** आज्येन **मधुना** क्षौद्रेण शर्करादिना वा **सम्+अज्यताम्** एकीभावेन संयुज्यताम् । **सा सीते** सीता **अस्मान्** घृतादिना **संयोत्स्यतीति, पयसा** जलेन

भावार्थ—आप (विश्वैः) सब (देवैः) अन्न आदि की कामना करने वाले विद्वान् (मरुद्भिः) मनुष्य (अनुमता) स्वीकृत, (पयसा) जल वा दुग्ध के द्वारा—(ऊर्जस्वती) पराक्रम वाली (पिन्वमाना) सेवन की हुई, (सीता) खेत के ढेलों को क्षीण करने वाली काठ की पट्टी=मैंज को (घृतेन) घृत से एवं (मधुना) मधु=शहद वा शक्कर से (सम्+अज्यताम्) संयुक्त करें । और वह (सीते) सीता=मैंज हमें घृत आदि से संयुक्त

अभि+आ+ ववृत्स्व = अभ्यावर्त्यतां वर्त्तिता भवतु ॥ १२ । ७० ॥

करेगी अतः उसे (पयसा) जल से अभि+आ+ ववृत्स्व) परिवृत्त करो ॥ १२ । ७० ॥

[विश्वैर्देवैः'''अनुमता पयसोर्जस्वती पिन्वमाना सीता घृतेन मधुना समज्यताम्]

भावार्थः—सर्वे विद्वांसः कृषीवला विद्यया ऽनुज्ञातां, घृत-मधु-जलादिना सुसंस्कृतामनुमतां क्षेत्रभूमिमन्नसुसाधिकां कुर्वन्तु ।

यथा सुगन्धादियुक्तानि बीजानि कृत्वा वपन्ति, तथैव तामपि सुगन्धेन संस्कृतां कुर्वन्तु ॥ १२ । ७० ॥

भावार्थ—सब विद्वान् किसान विद्या से अनुज्ञात, घृत, मधु और जल आदि से सुसंस्कृत, स्वीकृत क्षेत्र-भूमि को अन्न को उत्पन्न करने वाली=उपजाऊ बनावें ।

जैसे बीजों को सुगन्ध आदि गुणों से युक्त करके बोते हैं वैसे ही उस भूमि को भी सुगन्ध से संस्कृत करें ॥ १२ । ७० ॥

भाष्यसार—कृषि विद्या का उपदेश--भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए जैसे हल चलाना परमावश्यक है, उसी प्रकार उसको समान करना, बड़े-बड़े मिट्टी के ढेले फोड़ने के लिए सीता= मँज भी दृढ़ तथा विस्तृत होने चाहिए। इस प्रकार जलादि से संस्कृत भूमि स्निग्ध होकर अधिक उपजाऊ हो जाती है । और हमें घृतादि स्निग्ध पदार्थों तथा गुड़ादि मधुर पदार्थों को पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करने में समर्थ हो जाती है । ऐसी इस कृषि विद्या का पूर्ण ज्ञान करना सब मनुष्यों का परमधर्म है ।

कुमारहारितः । **कृषीवलाः**=कृषकाः । विराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कृषिविद्या का फिर उपदेश किया है ॥

लाङ्ग॑लं॒ पवी॑रवत्सु॒शेव॑ꣳ सोम॒पित्स॑रु ।
तदु॒द्व॑पति॒ गामविं॑ प्रफु॒र्व्य॑ च॒ पीव॑रीं प्र॒स्थाव॑द्रथ॒वाह॑नम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः--(**लाङ्गलम्**) सीरापश्चाद्भागे दाढर्याय संयोज्यं काष्ठम् (**पवीरवत्**) प्रशस्तः पवीरः=फालो विद्यते यस्मिन् तत् (**सुशेवम्**) सुष्ठु सुखकरम् (**सोमपित्सरु**) ये सोमयवाद्योषधीः पालयन्ति तान्त्सरयति=कुटिलं गमयति (**तत्**) (**उत्**) (**वपति**) (**गाम्**) पृथिवीम् (**अविम्**) रक्षणादिहेतुम् (**प्रफर्व्यम्**) प्रफर्वितुं=गमयितुं योग्यम् (च) (**पीवरीम्**) यया पाययन्ति तां स्थूलाम् (**प्रस्थावत्**) प्रशस्तं प्रस्थानं यस्यास्ति तत् (**रथवाहनम्**) रथं वहति येन तत् ॥ ७१ ॥

अन्वयः—हे कृषीवलाः ! यूयं यत् सोमपित्सरु पवीरवत्सुशेवं लाङ्गलं प्रफर्व्यं प्रस्थावद्रथवाहनं चास्ति येनाविं पीवरीं गामुद्वपति तद्यूयं साध्नुत ॥ ७१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे कृषीवलाः ! यूयं यत् सोमपित्सरु ये सोमयवाद्योषधीः पालयन्ति तान्त्सरयति=कुटिलं गमयति, **पवीरवत्** प्रशस्तः पवीरः=फालो विद्यते यस्मिन् तत्, **सुशेवं** सुष्ठु सुखकरं **लाङ्गलं** सीरापश्चाद्भागे दाढर्याय संयोज्यं काष्ठं **प्रफर्व्यं** प्रफर्वितुं=गमयितुं योग्यं **प्रस्थावत्**

भाषार्थ—हे किसानो ! तुम—जो (सोमपित्सरु) सोम एवं जौ आदि ओषधियों के पालकों को टेढ़ा-मेढ़ा चलाने वाला, (पवीरवत्) उत्तम फाली वाला, (सुशेवम्) उत्तम सुखदायक (लाङ्गलम्) हल एवं उसके पीछे दृढ़ता के लिए प्रयुक्त काष्ठ-विशेष है, और—जो (प्रफर्व्यम्) चलाने के

प्रशस्तं प्रथालनं यस्याऽस्ति तत्, **रथवाहनं** रथं वहति येन तत्, **चाऽस्ति, येन अविं** रक्षणादिहेतुं **पीवरीं** यया पाययन्ति तां स्थूलां **गां** पृथिवीम् **उत्+वपति तद् यूयं साध्नुत** ॥ १२ । ७१ ॥

योग्य (प्रस्थावत्) उत्तम प्रस्थान=गति वाला (रथवाहनम्) रथ को वहन करने वाला बैल आदि है, जिससे (अविम्) रक्षा आदि की हेतु (पीवरीम्) स्थूल (गाम्) पृथिवी को (उत्+वपति) प्रजा बोती है, उसे तुम सिद्ध करो ॥ १२ । ७१ ॥

[हे कृषीवला: !···पीवरीं गाम्, अविं···उद्वपति, तद् यूयं साध्नुत]

भावार्थः—कृषीवलैः स्थूलमृत्स्नामन्नाद्युत्पादनेन रक्षिकां सुपरीक्ष्य, हलादिसाधनैः संकृष्य, समीकृत्य, सुसंस्कृता नि बीजानि समुप्योत्तमानि धान्यान्युत्पाद्य भोक्तव्यानि ॥ १२ । ७१ ॥

भावार्थ—किसान—स्थूल उत्तम मिट्टी जो अन्न आदि के उत्पादन से है उसकी सुपरीक्षा करके, हल आदि साधनों से जोतकर, एकसार करके, सुसंस्कृत बीजों को बोकर, उत्तम धान्यों को उत्पन्न करके उनका भोग करें ॥ १२ । ७१ ॥

भा० पदार्थः—पीवरीम्=स्थूलाम् । गाम्=मृत्स्नाम् । अविम्=अन्नाद्युत्पादनेन रक्षिकाम् ।

भाष्यसार—**कृषि-विद्या का उपदेश**—कृषि विशेषज्ञों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे प्रथम मिट्टी की परीक्षा करें कि किस भूमि में क्या वस्तु पैदा हो सकती है । उस भूमि को हलादि से जोतकर एकसार करने के लिए ऐसी मैज बनायें, जिसमें उत्तम फालीवाला (**पवीरवत्**) सुखदायक 'लाङ्गलम्' दृढ़ता के लिए एक विशेष काष्ठ लगा हुआ हो, जिससे एकसार करते समय कृषक की रक्षा होती है । और उस संस्कृत भूमि में संस्कृत बीजों का वपन सदा किया करें ॥ १२ । ७० ॥

कुमारहारितः । **मित्रादयो लिङ्गोक्ताः**=सुहृदादयः ॥ आर्ची पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पाचिका स्त्री प्रयत्नेन सुसंस्कृतान्यन्नानि व्यञ्जनानि कुर्यादित्याह ॥

पकानेहारी स्त्री अच्छे यत्न से सुन्दर अन्न और व्यंजनों को बनावे, यह उपदेश किया है ॥

कामं॑ कामदुघे धुक्ष्व मि॒त्राय॒ वरु॑णाय च ।
इन्द्रा॑या॒श्विभ्यां॑ पू॒ष्णे प्र॒जाभ्य॒ ऽ ओष॑धीभ्यः ॥ ७२ ॥

पदार्थः—(**कामम्**) इच्छाम् (**कामदुघे**) इच्छापूरिके (**धुक्ष्व**) पिपूर्धि (**मित्राय**) सुहृदे (**वरुणाय**) उत्तमाय विदुषे (**च**) अतिथये (**इन्द्राय**) परमैश्वर्य्ययुक्ताय (**अश्विभ्याम्**) प्राणापानाभ्याम् (**पूष्णे**) पुष्टिकराय (**प्रजाभ्यः**) स्वसन्तानेभ्यः (**ओषधीभ्यः**) सोमयवादिभ्यः ॥ ७२ ॥

अन्वयः—हे कामदुघे पाचिके त्वं भूमिरिव सुसंस्कृतैरन्नैर्मित्राय, वरुणाय चेन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यः ओषधीभ्यः कामं धुक्ष्व ॥ ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **कामदुघे** != **पाचिके** इच्छापूरिके ! **त्वं भूमिरिव सुसंस्कृतैरन्नैः मित्राय** सुहृदे **वरुणाय** उत्तमाय विदुषे च अतिथये **इन्द्राय** परमैश्वर्य्ययुक्ताय **अश्विभ्यां** प्राणाऽपानाभ्यां **पूष्णे** पुष्टिकराय **प्रजाभ्यः** स्वसन्तानेभ्यः

भाषार्थ—हे (कामदुघे) इच्छा को पूर्ण करने वाली पाचिका ! तू—पूर्वोक्त भूमि के समान सुसंस्कृत अन्नों से (मित्राय) मित्र, (वरुणाय) उत्तम विद्वान्, (च) और अतिथि, (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् राजा, (अश्विभ्याम्) प्राण और अपान,

ओषधीभ्यः सोमयवादिभ्यः **कामम्** इच्छां **धुक्ष्व** पिपूर्द्धि ॥ ११ । ७२ ॥

(पूष्णे) पुष्टिकारक वायु, (प्रजाभ्यः) अपनी सन्तान तथा (ओषधीभ्यः) सोम आदि ओषधियों की (कामम्) इच्छा को (धुक्ष्व) पूर्ण कर ॥ १२ । ७२ ॥

[**हे कामदुघे=पाचिके ! त्वं सुसंस्कृतैरन्नैः ··· कामं धुक्ष्व**]

भावार्थः—या स्त्री वा पुरुषः पाकं कुर्यात्, तां तं च पाकविद्यां सुशिक्ष्य, हृद्यान्यन्नानि निर्माय, संभोज्य सर्वान् रोगान् दूरीकुर्यात् ॥ १२ । ७२ ॥

भावार्थ—जो स्त्री वा पुरुष पाक बनावे उस स्त्री वा पुरुष को पाक-विद्या सिखलाकर, रुचिकारक अन्न बनाकर उनका सेवन कर सब रोगों को दूर करे ॥ १२ । ७२ ॥

भाष्यसार—**पाचिका स्त्री कैसी हो ?**—पाक-शास्त्र में निपुण पाचिका स्त्री कामदुघा=अर्थात् सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। वह सभी यवादि ओषधियों के पकाने तथा उन्हें सुसंस्कृत करने की विधि जानती हो। यथाविधि पकाये गये पदार्थ ही स्वादिष्ठ होते हैं। पाचिका का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह उत्तमोत्तम सुसंस्कृत अन्नों से मित्रों की, विद्वानों की, अतिथि की, परमैश्वर्यवान् राजा तथा सन्तान की इच्छाओं को पूर्ण करने वाली हो ॥ १२ । ७२ ॥

कुमारहारितः । **अघ्न्याः=गवादिपशवः** । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

मनुष्यैर्गवादिपशुवृद्धिं कृत्वा पयोघृतादीनि वर्द्धयित्वा नन्दितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को गौ आदि पशुओं को बढ़ा उन से दूध घी आदि की वृद्धि कर आनन्द में रहना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वि मु॑च्यध्वमघ्न्या देवयाना॒ऽ अग॑न्म॒ तम॑सस्पा॒रम॒स्य । ज्योति॑रापाम ॥ ७३ ॥

पदार्थः—(वि) (**मुच्यध्वम्**) त्यजत (**अघ्न्याः**) हन्तुमयोग्या गाः (**देवयानाः**) याभिर्देवान्=दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्ति ताः (**अगन्म**) गच्छेम (**तमसः**) रात्रेः (**पारम्**) (**अस्य**) सूर्य्यस्य (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**आपाम**) व्याप्नुयाम ॥ ७३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा यूयं अघ्न्या देवयानाः प्राप्य सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा रोगेभ्यो विमुच्यध्वं तथा वयमपि विमुच्येमहि। यथा यूयं तमसः पारं प्राप्नुत तथा वयमप्यगन्म। यथा यूयमस्य ज्योतिर्व्याप्नुत तथा वयमप्यापाम ॥ ७३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा यूयम् अघ्न्या** हन्तुमयोग्या गाः **देवयानाः** याभिर्वान्=दिव्यान् भोगान् प्राप्नुवन्ति ताः, **प्राप्य, सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा रोगेभ्यो वि+मुच्यध्वं** त्यजत **तथा वयमपि विमुच्येमहि।**

यथा यूयं तमसः रात्रेः **पारं प्राप्नुत तथा वयमपि अगन्म** गच्छेम।

यथा यूयम् अस्य सूर्य्यस्य **ज्योतिः** प्रकाशं

भाषार्थ—हे मनुष्यो !—जैसे तुम—(अघ्न्या) हनन के अयोग्य (देवयानाः) दिव्य: भोगों को प्राप्त कराने वाली गौओं को प्राप्त करके, सुसंस्कृत अन्नों को खाकर रोगों से (विमुच्यध्वम्) विमुक्त रहते हो वैसे हम भी रोग-विमुक्त रहें।

जैसे तुम—(तमसः) अन्धकार के (पारम्) पार को प्राप्त करते हो वैसे हम भी (अगन्म) प्राप्त करें।

जैसे तुम—(अस्य) इस सूर्य के (ज्योतिः)

व्याप्नुत तथा वयमप्यापाम व्याप्नुयाम ॥१२।७३॥

प्रकाश को प्राप्त करते हो वैसे हम भी (आपाम) प्राप्त करें ॥ १२ । ७३ ॥

[हे मनुष्याः ! ...यूयमघ्न्या...प्राप्य सुसंस्कृतान्यन्नानि भुक्त्वा रोगेभ्यो विमुच्यध्वम्... तमसः पारं प्राप्नुत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्या गवादीन् पशून् कदाचिन्न हन्युः, न घातयेयुश्च ।

यथा सूर्योदयाद् रात्रिर्निवर्त्तते, तथा वैद्यकशास्त्ररीत्या पथ्यान्यन्नानि संसेव्य, रोगेभ्यो निवर्त्तन्ताम् ॥ १२ । ७३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य—गौ आदि पशुओं की स्वयं कभी हत्या न करें, और न हत्या करावें।

जैसे सूर्योदय से रात्रि निवृत्त हो जाती है वैसे वैद्यक शास्त्र की रीति से पथ्य अन्नों का सेवन करके रोग-निवृत्त रहें ॥ १२ । ७३ ॥

भा० पदार्थः—अघ्न्याः=गवादिपशवः ।

भाष्यसार—**१. गायादि के पालन से रोगमुक्ति**—गायादि दुधारु पशु देवयानाः—दिव्य भोगों को प्राप्त कराने वाले होते हैं। अतः उनका पालन अवश्य करना चाहिये। घी दूधादि से अन्नों को सुसंस्कृत करके भोजन करने से रोगों से मुक्ति होती है। जैसे सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर हो जाता है, वैसे ही वैद्यक शास्त्रों के अनुसार घृतादि से संस्कृत अन्नों के खाने से रोगों से निवृत्ति होती है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है—जैसे सूर्य अन्धकार को दूर करता है वैसे ही संस्कृत अन्न खाने से रोगों की निवृत्ति होती है ॥ १२ । ७३ ॥

कुमारहारितः । **अश्विनौ=दम्पती** । आर्षी जगती । निषादः ॥

मनुष्यैः कथं कृत्वा सुखयितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को किस प्रकार परस्पर सुखी होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

सजूरब्दो ऽ अयवोभिः सजूरुषा ऽ अरुणीभिः ।
सजोषसावश्विना दंसोभिः सजूः सूरऽएतशेन
सजूर्वैश्वानर ऽ इडया घृतेन स्वाहा ॥ ७४ ॥

पदार्थः—(**सजूः**) संयुक्तः (**अब्दः**) संवत्सरः (**अयवोभिः**) मिश्रितामिश्रितैरन्नैः क्षणादिभिः कालावयवैः (**सजूः**) सहवर्त्तमानाः (**उषा**) प्रभातः (**अरुणीभिः**) रक्तप्रभाभिः (**सजोषसौ**) समानसेवनौ (**अश्विना**) प्राणापानाविव दम्पती (**दंसोभिः**) कर्मभिः (**सजूः**) सहितः (**सूरः**) सूर्य्यः (**एतशेन**) अश्वेनेव व्याप्तिशीलेन वेगवता किरणनिमित्तेन वायुना। **एतश इत्यश्वनाम ॥ निघं० १ । १४ ॥** (**सजूः**) संयुक्तः (**वैश्वानरः**) विद्युदग्निः (**इडया**) अन्नादिनिमित्तरूपया पृथिव्या (**घृतेन**) जलेन (**स्वाहा**) सत्येन वागिन्द्रियेण ॥ ७४ ॥

प्रमाणार्थ—(एतशेन) एतश शब्द निघं० (१ । १४) में अश्व-नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! वयं सर्वे स्त्रीपुरुषा यथाऽयवोभिः सजूरब्दोऽरुणीभिः सजूरुषा दंसोभिः सजोषसावश्विनेव एतशेनेव सजूः सूर इडया घृतेन स्वाहा सजूर्वैश्वानरश्च वर्त्तते तथैव प्रीत्या वर्त्तेमहि ॥ ७४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! वयं सर्वे स्त्रीपुरुषा यथा अयवोभिः मिश्रिताऽमिश्रितैरन्नैः क्षणादिभिः कालाऽवयवैः सजूः संयुक्तः अब्दः संवत्सरः, अरुणीभिः रक्तप्रभाभिः सजूः सहवर्त्तमानाः उषाः प्रभातः, दंसोभिः कर्मभिः सजोषसौ समानसेवनौ अश्विना प्राणाऽपानाविव दम्पती इव, एतशेन अश्वेनेव व्याप्तिशीलेन वेगवता किरणनिमित्तेन वायुना इव सजूः सहितः सूरः सूर्य्यः, इडया अन्नादिनिमित्तिरूपया घृतेन जलेन स्वाहा सत्येन वागिन्द्रियेण सजूः संयुक्तः वैश्वानरः विद्युदग्निः च वर्त्तते, तथैव प्रीत्या वर्त्तेमहि ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम सब स्त्री-पुरुष—जैसे (अयवोभिः) मिश्रित-अमिश्रित अन्न एवं क्षण आदि काल के अवयवों से (सजूः) संयुक्त (अब्दः) संवत्सर है, (अरुणीभिः) रक्त-प्रभा आदि से (सजूः) युक्त (उषाः) प्रभातकाल हैं, (दंसोभिः) कर्मों के द्वारा (सजोषसौ) परस्पर समान रूप से सेवा करने वाले (अश्विनौ) प्राण–अपान के समान दम्पती हैं, (एतशेन) अश्व के समान व्याप्तिशील, वेगवान्, किरणों के निमित्त वायु के (सजूः) सहित (सूरः) सूर्य है, और—(इडया) कार्य रूप अन्न आदि (घृतेन) जल तथा (स्वाहा) सत्य वाणी से (सजूः) युक्त (वैश्वानरः) विद्युत् रूप अग्नि है—वैसे ही प्रीति से संयुक्त रहें ॥ १२ । ७४ ॥

[हे मनुष्याः ! वयं सर्वे स्त्रीपुरुषा यथाऽयवोभिः सजूरब्दः···वर्तते तथैव प्रीत्या वर्तेमहि]

भावार्थः—मनुष्येषु यावत् परस्परं सौहार्दं तावदेव सुखम्, यावद्, दौहार्दं तावदेव दुःखं जायते । तस्मात्–सर्वैः स्त्री-पुरुषैः परोपकारक्रियया सहैव सदा वर्त्तितव्यम् ॥

भावार्थ—मनुष्यों में परस्पर जितना सौहार्द=मित्रता होती है उतना ही सुख तथा जितना दौहार्द=शत्रुता होती है उतना ही दुःख उत्पन्न होता है । अतः—सब स्त्री-पुरुष परोपकार से संयुक्त होकर ही सदा वर्ताव करें ॥ १२ । ७४ ॥

भाष्यसार—**सौहार्द ही दाम्पत्य जीवन का सुख**—गृहस्थाश्रम में स्त्री पुरुष परस्पर सौहार्द भाव से इस प्रकार रहें जैसे क्षणादि काल के अवयव संवत्सर से संयुक्त हैं, जैसे प्रभातकाल रक्तप्रभा से संयुक्त है, जैसे परस्पर समान रूप से सेवा करने वाले प्राण-अपान संबद्ध है, जैसे अश्व के समान व्याप्तिशील वेग वाली किरणें सूर्य से संबद्ध हैं और जैसे अन्नादि का निमित्त जल विद्युदग्नि से संबद्ध है, उसी प्रकार स्त्री पुरुष परस्पर अच्छे व्रतों से संबद्ध हैं। वे सदा दौहार्द भाव को छोड़कर सुखों को बढ़ाएँ ॥ १२ । ६४॥

भिषक् । **वैद्यः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैरवश्यमौषधसेवनं कृत्वाऽरोगैर्वर्तितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को अवश्य औषध सेवन कर रोगों से बचना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहथ्ं शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(याः) (**ओषधीः**) सोमाद्याः (**पूर्वाः**) (**जाताः**) प्रसिद्धाः (**देवेभ्यः**) पृथिव्यादिभ्यः (**त्रियुगम्**) वर्षत्रयम् (**पुरा**) (**मनै**) मन्यै । अत्र विकरणव्यत्ययेन शप् (**नु**) शीघ्रम् (**बभ्रूणाम्**) भरणानां धारकाणां रोगिणाम् (**अहम्**) (**शतम्**) अनेकानि (**धामानि**) मर्मस्थानानि (**सप्त**) (**च**) ॥ ७५ ॥

प्रमाणार्थ--(मनै) यहाँ दिवादिगण की मन धातु से विकरण व्यत्यय से शप् हुआ है ।

अन्वयः--अहं या ओषधीर्देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा पूर्वा जाता या बभ्रूणां शतं सप्त च धामानि मर्माणि व्याप्नुवन्ति ता नु मनै शीघ्रं जानीयाम् ॥ ७५ ॥

सपदार्थान्वयः--अहं याः **ओषधीः** सोमाद्याः **देवेभ्यः** पृथिव्यादिभ्यः **त्रियुगं** वर्षत्रयं **पुरा पूर्वाः जाताः** प्रसिद्धाः **या बभ्रूणां** भरणानां=धारकाणां रोगिणां **शतम्** अनेकानि **सप्त च धामानि**=**मर्माणि** मर्मस्थानानि **व्याप्नुवन्ति, ता नु मनै**=**शीघ्रं जानीयां** शीघ्रं मन्यै ॥ १२ । ७५ ॥

भाषार्थ--मैं--जो (ओषधीः) सोम आदि ओषधियाँ (देवेभ्यः) पृथिवी आदि में (त्रियुगम्) तीन वर्ष (पुरा) पुरानी (पूर्वाः) पहले (जाताः) प्रसिद्ध अर्थात् उत्पन्न हुई हैं, और जो (बभ्रूणाम्) रोगों को धारण करने वाले रोगियों के (शतं सप्त च) एक सौ सात (धामानि) मर्म-स्थलों को व्याप्त करती हैं, उन्हें (नु) शीघ्र (मनै) जानूँ ॥

[अहमोषधीर्देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा पूर्वा जाताः]

भावार्थः--मनुष्या याः पृथिव्यामप्सु चौषधयो जायन्ते गतत्रिवर्षा भवेयुस्ताः संगृह्य,

भावार्थ--मनुष्य--जो पृथिवी और जल में ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं जब वे तीन वर्ष पुरानी हो जायें तब उन्हें ग्रहण करके--

[या बभ्रूणां शतं सप्त च धामानि=मर्माणि व्याप्नुवन्ति]

यथावैद्यकशास्त्रविधि संसेवन्ते ता भुक्ताः सत्यः सर्वाणि मर्माण्यभिव्याप्य, रोगान् निवार्य, शरीर-सुखानि सद्यो जनयन्तु ॥ १२ । ७५ ॥

वैद्यक-शास्त्र की विधि से सेवन करते हैं, वे सेवन की हुई सब मर्म-स्थानों में व्याप्त होकर, रोगों को हटाकर, शारीरिक सुखों को शीघ्र उत्पन्न करती हैं ॥ १२ ॥ ७५ ॥

भाष्यसार--**रोगनिवारणार्थ ओषधियों का ज्ञान**--जो बभ्रूणाम्=रोगों को धारण करने वाले हैं। उनके मर्म-स्थलों तक प्रभाव करने वाली सोमादि ओषधियों का ज्ञान करना अत्यावश्यक है। पुरानी तथा परिपक्व ओषधियाँ ही रोगों की निवृत्ति करने में समर्थ होती हैं। इस शरीर में एक सौ सात मर्मस्थान हैं, सब के रोगों के दूरीकरणार्थ ओषधियों का ज्ञान करने वाला ही अच्छा वैद्य होता है ॥ १२ । ७५ ❁

भिषक् ॥ **वैद्याः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्याः किं कृत्वा किं साधयेयुरित्याह ॥

मनुष्य क्या करके किस को सिद्ध करें, यह उपदेश किया है ॥

श॒तं वो॑ ऽ अम्ब॒ धामा॑नि स॒हस्र॑मु॒त वो॒ रुहः॑ । अधा॑ शतक्रत्वो यू॒यमि॒मं मे॑ ऽ अग॒दं॑ कृ॒त ॥ ७६ ॥

पदार्थः--(**शतम्**) (वः) युष्माकम् (**अम्ब**) मातः (**धामानि**) मर्मस्थानानि (**सहस्रम्**) असंख्याः (**उत**) अपि (**वः**) युष्माकम् (**रुहः**) नाड्यङ्कुराः (**अधा**) अथ । **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः** (**शतक्रत्वः**) शतं क्रतवः=प्रज्ञाः क्रिया येषान्तत्सम्बुद्धौ (**यूयम्**) (**इमम्**) देहम् (**मे**) मम (**अगदम्**) रोग-रहितम् (**कृत**) कुरुत । **अत्र विकरणलुक्** ॥ ७६ ॥

प्रमाणार्थ--(**अधा**) यहाँ 'निपातस्य च' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है । (**कृत**) यहाँ उकार विकरण प्रत्यय का लुक् हुआ है ॥

अन्वयः—हे शतक्रत्वः ! यूयं यासां शतमुत सहस्रं रुहः सन्ति ताभिर्मे ममेमं देहमगदं कृत । अध स्वयं वो देहानगदान् कुरुत । यानि वोऽसंख्यानि धामानि तानि प्राप्नुत । हे अम्ब ! त्वमप्येवमाचरत ॥ ७६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शतक्रत्वः ! शतं क्रतवः=प्रज्ञाः क्रियाये पान्तत्सम्बुद्धौ **! यूयं यासां शतमुत** अपि सहस्रम् असंख्याः रुहः नाड्यङ्कुराः **सन्ति, ताभिर्मे=ममेमं=देहमगदं** रोगरहितं **कृत** कुरुत ।

अध अथ स्वयं वः युष्माकं **देहानगदान् कुरुत । यानि वः** युष्माकम् **असङ्ख्यानि धामानि** मर्मस्थानानि **तानि प्राप्नुत ।**

हे अम्ब मातः ! **त्वमप्येवमाचर** ॥ १२ । ७६ ॥

भाषार्थ—हे (शतक्रत्वः) नाना प्रज्ञा और कर्म वाले वैद्यजनो ! तुम—जिन ओषधियों के (शतम्) सौ (उत) और (सहस्रम्) असंख्य (रुहः) नाड़ी-अंकुर हैं उनसे (मे) मेरे (इमम्) इस शरीर को (अगदम्) रोग-रहित (कृत) करो।

(अध) और—स्वयं (वः) अपने शरीरों को भी रोग-रहित रखो । और-जो (वः) आपके असंख्य (धामानि) मर्म-स्थान हैं उन्हें प्राप्त करो।

हे (अम्ब) माता ! तू भी ऐसा आचरण कर॥ १२ । ७६ ॥

[हे शतक्रत्वः ! यूयं···मे=ममेमं देहमगदं कृत, अधा स्वयं वो देहानगदान् कुरुत]

भावार्थः—मनुष्याणामिदमादिमं कर्त्तव्यं कर्मास्ति यदोषधिसेवनं, पथ्याचरणं, सुनियमव्यवहरणं च कृत्वा शरीरारोग्यसम्पादनम् ।

भावार्थ—मनुष्यों का यह पहला कर्त्तव्य कर्म है कि ओषधियों का सेवन, पथ्याचरण और उत्तम नियमों का अनुष्ठान करके शरीर को नीरोग रखना ।

[हेतुमाह—]

न ह्येतेन विना धर्मार्थकाममोक्षाणामनुष्ठानं कर्त्तुं कश्चिदपि शक्नोति ॥ १२ । ७६ ॥

इसके विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान कोई भी नहीं कर सकता ॥ १२ । ७६ ॥

भा० पदार्थः—अगदम्=अरोगम् ।

भाष्यसार—**अच्छा वैद्य कैसा हो ?**—अच्छा वैद्य वही होता है जो रोग के कारणों का भी ज्ञान रखता हो । शतक्रत्वः=वैद्य बहुत बुद्धिमान् तथा औषध-निर्माण के कार्यों में कुशल होना चाहिए । और विभिन्न सोमादि ओषधियों के रुहः=विभिन्न जड़, फल, फूल आदि के गुणों को जानने वाला हो । धामानि=शरीर के सभी स्थानों को जानता हो । ऐसा वैद्य ही रोगों से रक्षा करने में समर्थ होता है । अम्ब=वैद्य का स्वभाव माता के समान हितकारक एवं स्नेहपूर्ण होना चाहिये ।

भिषः । **वैद्याः=स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशा ओषधयः सेव्या इत्याह ॥

कैसी ओषधियों का सेवन करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(**ओषधीः**) सोमादीन् (**प्रति**) (**मोदध्वम्**) आनन्दयत (**पुष्पवतीः**) प्रशस्तानि

पुष्पाणि यासां ताः (**प्रसूवरीः**) सुखप्रसाविकाः (**अश्वा इव**) यथा तुरङ्गाः (**सजित्वरीः**) शरीरैः सह संयुक्ता, रोगान् जेतुं शीलाः (**वीरुधः**) सोमादीन् (**पारयिष्णवः**) रोगजदुःखेभ्यः पारं नेतुं समर्थाः ॥ ७७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः पुष्पवतीः प्रसूवरीरोषधीः संसेव्यः प्रतिमोदध्वम् ॥ ७७ ॥

सपदार्थान्वयः--हे मनुष्या ! **यूयम् अश्वा** यथा तुरङ्गाः **इव सजित्वरीः** शरीरैः सह संयुक्ता रोगान् जेतुं शीलाः **वीरुधः** सोमादीन् **पारयिष्णवः** रोगजदुःखेभ्यः पारं नेतुं समर्थाः **पुष्पवतीः** प्रशस्तानि पुष्पाणि यासां ताः **प्रसूवरीः** सुखप्रसाविकाः **ओषधीः** सोमादीन् **संसेव्यः प्रति+मोदध्वम्** आनन्दयत ॥ १२ । ७७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(अश्वा) घोड़ों के समान (सजित्वरीः) शरीर से संयुक्त एवं रोगों को जीतने वाली, (वीरुधः) सोमलता आदि, (पारयिष्णवः) रोगज दुःखों से पार ले जाने वाली (पुष्पवतीः) प्रशंसनीय पुष्पों वाली, (प्रसूवरीः) सुखों को उत्पन्न करने वाली (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों का सेवन करके (प्रति+मोदध्वम्) आनन्दित रहो ॥ १२ । ७७ ॥

[हे मनुष्या ! यूयमश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः...ओषधीः संसेव्य प्रतिमोदध्वम्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथाऽश्वारूढा वीराः शत्रून् जित्वा विजयं प्राप्याऽऽनन्दन्ति, तथा सदौषधसेविनः पथ्यकारिणो जितेन्द्रिया जना आरोग्यमवाप्य नित्यं मोदन्ते ॥ १२ । ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे—अश्वारोही वीर शत्रुओं को जीतकर, विजय को प्राप्त करके आनन्द करते हैं, वैसे उत्तम औषध का सेवन करने वाले, पथ्यकारी, जितेन्द्रिय लोग आरोग्य को प्राप्त करके नित्य हर्षित रहते हैं ॥ १२ । ७७ ॥

भा० पदार्थः—अश्वाः=अश्वारूढाः वीराः ।

भाष्यसार--१. **कैसी ओषधियाँ सेवन करनी चाहिये**—शरीर को स्वस्थ रखने के लिये ऐसी ओषधियों का सेवन करें, जो अश्वाः=घोड़ों के समान सजित्वरी=रोगों को जीतने वाली हों, पारयिष्णवः=रोगों से पार ले जाने वाली हों, पुष्पवतीः=प्रशंसनीय फलों वाली हों, और प्रसूवरीः=दुःखों से दूर करके सुखों को उत्पन्न करने वाली हों । ऐसे गुणों वाली ओषधियों के सेवन से सदा आनन्द की वृद्धि होती है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। जैसे घोड़ों पर चढ़कर वीर शत्रुओं को जीतकर आनन्दित होते हैं वैसे ही उत्तमौषधियों के सेवन से सदा स्वस्थ रहें ॥ १२ । ७७ ॥

भिषक् । **चिकित्सुः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः पित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्निरयाह ॥

फिर पिता और पुत्र आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

पदार्थः—(**ओषधीः**) (**इति**) इव (**मातरः**) जनन्यः (**तत्**) कर्म (**वः**) युष्मान् (**देवीः**) दिव्या विदुषीः (**उप**) समीपस्थः सन् (**ब्रुवे**) उपदिशेयम् (**सनेयम्**) संभजेयम् (**अश्वम्**) तुरङ्गादिकम्

(**गाम्**) धेन्वादिकं पृथिव्यादिकं वा (**वासः**) वस्त्रादिकं निकेतनं वा (**आत्मानम्**) जीवम् (**तव**) (**पूरुष**) प्रयत्नशील ॥ ७८ ॥

अन्वयः—हे ओषधीरिति देवीर्मातरोऽहं तनयो वस्तत्पथ्यं वच उपब्रुवे। हे पूरुष ! सुसन्तानाऽहं माता तवाश्वं गां वास आत्मानं च सततं सनेयम् ॥ ७८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ओषधीरिति** इव **देवीः** ! दिव्या विदुषीः **मातरः** ! जनन्यः ! **अहं तनयो वः** युष्मान् **तत् पथ्यं वचः** कर्म **उप+ब्रुवे** समीपस्थः सन् उपदिशेयम्।

हे पूरुष ! प्रयत्नशील **सुसन्तान** ! **अहं माता तवाश्वं** तुरङ्गादिकं **गां** धेन्वादिकं पृथिव्यादिकं वा **वासः** वस्त्रादिकं निकेतनं वा **आत्मानं** जीवं **च सततं सनेयं** संभजेयम् ॥ १२ । ७८ ॥

भाषार्थ—हे (ओषधीः) ओषधियों के (इति) समान (देवीः) दिव्य गुणों वाली (मातरः) विदुषी माताओ ! मैं पुत्र (वः) तुम्हें (तत्) पथ्य (वचः) कर्म का (उप+ब्रुवे) समीप रहकर उपदेश करूँ।

हे (पूरुष) प्रयत्नशील उत्तम सन्तान ! मैं माता तेरे (अश्वम्) घोड़ा आदि, (गाम) धेनु आदि, या पृथिवी आदि (वासः) वस्त्र आदि या निवास आदि और (आत्मानम्) जीव की सदा (सनेयम्)सेवा करूँ ॥ १२ । ७८ ॥

[हे ओषधीरिति देवीर्मातरः ! अहं तनयो वस्तत्पथ्यं वच उप ब्रुवे]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा यवादय ओषधयः सेविताः शरीराणि पुष्यन्ति तथैव जनन्यो विद्यासुशिक्षोपदेशेनाऽपत्यानि सुपोषयेयुः।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है जैसे जो आदि ओषधियाँ सेवन की हुई शरीरों को पुष्ट करती हैं वैसे ही माताएँ विद्या और सुशिक्षा के उपदेश से सन्तानों को पुष्ट बनावें।

[हे पुरुष ! सुसन्तानाऽहं माता तवाश्वं गां वास आत्मानं च सततं सनेयम्]

यन्मातुरैश्वर्य्यं तद्दायोऽपत्यस्य यदपत्यस्यैतन्मातुरस्ति, एवं सर्वे सुप्रीत्या वर्त्तित्वा परस्परस्य सुखानि सततं वर्धयेयुः। १२ । ७८ ॥

जो माता का ऐश्वर्य है वह सन्तान का भाग है, और जो सन्तान का है वह माता का है, इस प्रकार सब प्रीतिपूर्वक बर्ताव करके पारस्परिक सुखों को सदा बढ़ावें ॥ १२ । ७८ ॥

भा० पदार्थः—ओषधीः=यवादय ओषधयः।

भाष्यसार—**१. माता का कर्त्तव्य**—देवीः=दिव्य गुणों वाली विदुषी माता का सन्तान का पालन करना तथा सुशिक्षित करना परम कर्त्तव्य है। जैसे ओषधियाँ रोगों से बचाकर सुखों को बढ़ाती हैं, वैसे ही माता सन्तान को दुर्गुणों से सदा बचाए। और माता की जितनी भी घोड़े, गाय, भूमि तथा वस्त्रादि सम्पत्ति है वह सब सन्तान के लिए ही होती है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे यवादि ओषधियाँ सेवन करने से शरीर को पुष्ट करती हैं वैसे ही माता बच्चों को विद्यादि से सुशिक्षित करे। ●

भिषक्। **वैद्याः=स्पष्टम्**। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

मनुष्याः प्रत्यहं कीदृशं विचारं कुर्य्युरित्याह ॥

मनुष्य लोग नित्य कैसा विचार करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाज ऽ इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

पदार्थः—(**अश्वत्थे**) श्वः स्थाता न स्थाता वा वर्त्तते तादृशे देहे (**वः**) युष्माकं जीवानाम् (**निषदनम्**) निवासः (**पर्णे**) चलिते पत्रे (**वः**) युष्माकम् (**वसतिः**) निवासः (**कृता**) (**गोभाजः**) ये गां=पृथिवीं भजन्ते ते (**इत्**) इह (**किल**) खलु (**असथ**) भवत (**यत्**) यतः (**सनवथ**) ओषधिदानेन सेवध्वम् । **अत्र विकरणद्वयम्** (**पूरुषम्**) अन्नादिना पूर्णं देहम् ॥ ७९ ॥

प्रमाणार्थ—'सनवथ' यहाँ उकार और शप् दो विकरण प्रत्यय हुए हैं ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ओषधय इव यद्वोऽश्वत्थे निषदनं वः पर्णे वसतिः कृताऽस्ति तस्माद्गोभाजः किल पूरुषं सनवथ सुखिन इदसथ ॥ ७९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ओषधय इव यत्** यतः **वः** युष्माकं जीवानाम् **अश्वत्थे** श्वः स्थाता न स्थाता वा वर्त्तते तादृशे देहे **निषदनं** निवासः **वः** युष्माकं **पर्णे** चलिते पत्रे **वसतिः** निवासः **कृताऽस्ति । तस्माद् गोभाजः** ये गां=पृथिवीं भजन्ते ते **किल** खलु **पूरुषम्** अन्नादिना पूर्णं देहं **सनवथ** ओषधिदानेन सेवध्वम्, **सुखिन इत्** इह **असथ** भवथ ॥ १२ । ७९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! ओषधियों के समान (यत्) क्योंकि (वः) तुम जीवों का (अश्वत्थे) कल रहे वा न रहे ऐसे देह में (निषदनम्) निवास है और (वः) तुम जीवों का (पर्णे) चलायमान पत्र पर (वसतिः) निवास (कृता) बना है । अतः—गोभाजः पृथिवी का सेवन करने वाले बनकर (किल) निश्चय से (पूरुषम्) अन्न आदि से पूर्ण शरीर की (सनवथ) ओषधि-प्रदान से सेवा करो तथा (इत्) इस लोक में सुखी (असथ) रहो ॥

[**हे मनुष्याः ! ··· वोऽश्वत्थे निषदनं वः पर्णे वसतिष्कृताऽस्ति**]

भावार्थः—मनुष्यैरेवं भावनीयम्—अस्माकं शरीराण्यनित्यानि, स्थितिश्चञ्चलाऽस्ति, तस्माच्छरीरमरोगिणं संरक्ष्य, धर्मार्थकाममोक्षाणामनुष्ठानं सद्यः कृत्वा ऽनित्यैः साधनैर्नित्यं मोक्षसुखं खलु लब्धव्यम् ।

भावार्थ—मनुष्यों को यह समझना चाहिये—हमारे शरीर अनित्य हैं, स्थिति चंचल हैं, अतः शरीर को नीरोग रखकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान शीघ्र करके अनित्य साधनों से नित्य मोक्ष-सुख को प्राप्त करें ।

[**ओषधयः इव, ··· पूरुषं सनवथ**]

यथौषधितृणादीनि पत्र पुष्पफलमूलस्कन्दशाखादिभिः शोभन्ते तथैव नीरोगाणि शोभमानानि भवन्ति ॥ १२ । ७९ ॥

जैसे—ओषधि-तृण आदि पत्र, पुष्प, फल, मूल, स्कन्ध, शाखा आदि से शोभित होते हैं वैसे ही नीरोग शरीर शोभायमान होते हैं ॥ १२ । ७९ ॥

भाष्यसार—**शरीरों की अनित्यता का चिन्तन**—मनुष्यों को नित्य यह ध्यान रखना चाहिये कि हमारे ये शरीर अस्थिर हैं । अश्वत्थ अर्थात् इनका विश्वास नहीं, कल रहेंगे या नहीं । इस संसार में हमारा निवास चंचल पत्तों की तरह है । पता नहीं कब टूटकर गिर जायें । अतः गोभाजः= पृथिवी के सुखों का भोग करते हुए अनित्य शरीरों को स्वस्थ रखते हुए सुखी रहना चाहिए । ●

भिषक् । **ओषधयः=ओषधिविद्या** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः पुनः सद्वैद्यसेवनं कार्य्यमित्याह ॥

बार-बार श्रेष्ठ वैद्यों का सेवन करें, यह उपदेश किया है ॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स ऽ उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

पदार्थः—(**यत्र**) येषु स्थलेषु (**ओषधीः**) सोमाद्याः (**समग्मत**) प्राप्नुत (**राजानः**) क्षत्रधर्मयुक्ता वीराः (**समिताविव**) यथा संग्रामे तथा (**विप्रः**) मेधावी (**सः**) (**उच्यते**) उपदिश्येत । लेट्प्रयोगोऽयम् (**भिषक्**) यो भिषज्यति=चिकित्सति सः । अत्र भिषज्धातोः क्विप् (**रक्षोहा**) यो दुष्टानां=रोगाणां हन्ता (**अमीवचातनः**) योऽमीवान रोगान् शातयति सः । अत्र वर्णव्यत्ययेन शस्य चः ॥ ८० ॥

प्रमाणार्थ—'उच्यते' यह लिङर्थ में लेट् का प्रयोग है । 'भिषक्' यहाँ भिषज् धातु से क्विप् प्रत्यय हुआ है । 'अमीवचातनः' यहाँ वर्णव्यत्यय से शकार के स्थान पर चकार हुआ है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यत्रौषधीः सन्ति ता राजानः समिताविव समग्मत यो रक्षोहाऽमीवचातनो विप्रो भिषग्भवेत्स युष्मान् प्रत्युच्यत उच्येत तद्गुणान् प्रकाशयेत्तास्तं च सदा सेवध्वम् ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं **यत्र** येषु स्थलेषु **ओषधीः** सोमाद्याः **सन्ति, ताः राजानः** क्षत्रधर्मयुक्ता वीराः **समिताविव** यथा संग्रामे तथा **सम्+अग्मत** प्राप्नुत । **यो रक्षोहा** यो दुष्टानां=रोगाणां हन्ता, **अमीवचातनः** यो ऽमीवान्=रोगान् शातयति सः, **विप्रः** मेधावी **भिषग्** यो भिषज्यति=चिकित्सति सः, **भवेत्, सः युष्मान् प्रत्युच्येत=उच्येत तद्गुणान् प्रकाशयेद्** उपदिश्येत **तास्तं च सदा सेवध्वम्** ॥ १२ । ८० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(यत्र) जिन स्थलों में (ओषधीः) सोम आदि ओषधियाँ हैं, उन्हें (राजानः) क्षात्रधर्म से युक्त वीर (समिताविव) जैसे संग्राम में (समम्+अग्मत) प्राप्त होते हैं वैसे प्राप्त करो, जो (क्षोहा) रोगों का हनन करने वाला, (अमीवचातनः) रोगों को निवृत्त करने वाला, (विप्रः) मेधावी, (भिषग्) चिकित्सक हो, वह तुम्हें (उच्येत) उनके गुणों का उपदेश करे, तुम—उन ओषधियों का सेवन तथा उस चिकित्सक की सेवा करो ॥ १२ । ८० ॥

[हे मनुष्या यूयं यत्रोषधीः सन्ति ता राजानः समिताविव समग्मत । यो···
भिषग् भवेत् स युष्मान् प्रत्युच्यते]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा सेनापतिसुशिक्षिता राज्ञो वीरपुरुषाः परमप्रयत्नेन देशान्तरं गत्वा शत्रून् विजित्य राज्यं प्राप्नुवन्ति तथा सद्वैद्य सुशिक्षिता यूयमोषधिविद्यां प्राप्नुत ।

यस्मिन् शुद्धे देशे ओषधयः सन्ति, ता विज्ञायोपयुङ्ध्वमन्येभ्यश्चोपदिशत ॥ १२ । ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे—सेनापति के द्वारा सुशिक्षित, राजा के वीरपुरुष देशान्तर में जाकर शत्रुओं को जीतकर राज्य को प्राप्त करते हैं, वैसे श्रेष्ठ वैद्य से सुशिक्षित आप लोग ओषधिविद्या को प्राप्त करो ।

जिस शुद्ध देश में ओषधियाँ हैं उन्हें जान कर उनका उपयोग करो और अन्यों को भी उपदेश करो ॥ १२ । ८० ॥

भा० पदार्थः—राजानः=सेनापतिसुशिक्षिता राज्ञोवीरपुरुषाः । यत्र=यस्मिन् शुद्धे देशे ।

भाष्यसार—**१. सद्वैद्य की योग्यता**—जैसे संग्राम में क्षत्रिय योद्धा मिल कर शत्रु को प्राप्त करके विजय प्राप्त करते हैं, वैसे अच्छा वैद्य उत्तम ओषधियों की खोज तथा उनके ज्ञान से रोगों पर विजय प्राप्त करने वाला हो । रक्षोहा=रोगों का समूल हनन करने वाला हो । अमीवचातनः-रोगों को धीरे-धीरे समाप्त करने वाला हो । कुछ काल के लिए लाभ दिखाकर धन का लोभी न हो ।

'विप्रः भिषक्' चिकित्सक अपने कार्य में बहुत निपुण हो। और दूसरों को अपने अनुभव की शिक्षा भी दिया करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे सुशिक्षित सेनापति शत्रु को जीतकर राज्य प्राप्त करते हैं, वैसे ही वैद्य रोगों पर ओषध-विज्ञान से विजय प्राप्त करे॥ १२। ८०॥

भिषक्। **वैश्यः**=स्पष्टम्। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

मनुष्यैः सदा पुरुषार्थ उन्नेय इत्याह॥

मनुष्यों को नित्य पुरुषार्थ बढ़ाना चाहिये, यह उपदेश किया है॥

अ॒श्वा॒व॒तीᳬ सो॑माव॒तीमू॒र्जय॑न्ती॒मुदो॑जसम्। आवि॑त्सि॒ सर्वा॒ऽ ओष॑धीर॒स्मा अ॑रि॒ष्टता॑तये॥ ८१॥

पदार्थः—(**अश्वावतीम्**) प्रशस्तशुभगुणयुक्ताम्। **अत्रोभयत्र मतौ दीर्घः** (**सोमावतीम्**) बहुरससहिताम् (**ऊर्जयन्तीम्**) बलं प्रापयन्तीम् (**उदोजसम्**) उत्कृष्टं पराक्रमम् (**आ**) (**अवित्सि**) जानीयाम् (**सर्वाः**) अखिलाः (**ओषधीः**) सोमयवाद्याः (**अस्मै**) (**अरिष्टतातये**) रिष्टानां=हिंसकानां रोगाणामभावाय॥ ८१॥

प्रमाणार्थः—'अश्वावतीम्' 'सोमावतीम्' इन दोनों पदों में मतुप् प्रत्यय के परे दीर्घ हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथाऽहमरिष्टतातयेऽश्वावतीं सोमावतीमुदोजसमूर्जयन्तीं महौषधीमावित्स्यस्मै यूयमपि प्रयतध्वम्॥ ८१॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽहम् अरिष्टतातये** रिष्टानां=हिंसकानां रोगाणामभावाय **अश्वावतीं** प्रशस्तशुभगुणयुक्तां **सोमावतीं** बहुरससहिताम् **उदोजसम्** उत्कृष्टं पराक्रमम् **ऊर्जयन्तीं** बलं प्रापयन्तीं **महौषधीं [सर्वाः]** अखिला **[ओषधीः]** सोमयवाद्या **आ+अवित्सि** जानीयाम्, **अस्मै यूयमपि प्रयतध्वम्**॥ १२। ८१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं—(अरिष्टतातये) हिंसक रोगों के अभाव के लिए (अश्वावतीम्) प्रशस्त शुभ गुणों से युक्त, (सोमावतीम्) बहुत रसीली, (उदोजसम्) उत्कृष्ट पराक्रम एवं (ऊर्जयन्तीम्) बल को प्राप्त कराने वाली महौषधी को एवं [सर्वाः] सब [ओषधीः] सोम, यव=जौ आदि ओषधियों को (आ+अवित्सि) जानता हूँ, इसके लिए तुम भी प्रयत्न करो॥ १२। ८१॥

[हे मनुष्याः! अममरिष्टतातये ··· महौषधीमावित्सि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ मनुष्याणामादिममिदं कर्माऽस्ति यत्—रोगाणां निदानचिकित्सौषधपथ्यसेवनमोषधीनां गुणविज्ञानं यथावदुपयोजनं च,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है॥ मनुष्यों का पहला कर्म यह है कि—रोगों का निदान, चिकित्सा, औषध एवं पथ्य का सेवन ओषधियों का गुण-विज्ञान और उनका यथावत् उपयोग करना।

[हेतुमाह—]

यतो रोगनिवृत्त्या निरन्तरं पुरुषार्थोन्नतिः स्यादिति॥ १२। ८१॥

जिससे—रोगनिवृत्ति होकर सदा पुरुषार्थ की उन्नति होवे॥ १२। ८१॥

भाष्यसार—१. **सद्वैद्य की योग्यता**—अरिष्टतातये=शरीरस्थ रोगों को शान्त करने के लिए आवश्यक है कि अच्छे-अच्छे चिकित्सक ऐसी नवीन ओषधियों का ज्ञान बढ़ाते रहें जो अश्वावतीः=प्रशस्त गुणों वाली हों, प्रभूत रस वाली हों, उत्कृष्ट पराक्रम तथा ऊर्जयन्ती=बलों को प्राप्त कराने वाली हों। रोगों की निवृत्ति तथा बल की वृद्धि करना ही सद्वैद्य का मुख्य कर्त्तव्य है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। उपमा यह है कि जैसे परमेश्वर अथवा सद्वैद्य ओषधियों के गुणों को जानता है वैसे ही सब मनुष्यों को ओषधि-विज्ञान तथा उनका उपयोग आना चाहिये ॥१२। ८१ ●

भिषक्। **ओषधयः**=स्पष्टम्। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

किन्निमित्ता ओषधयः सन्तीत्याह॥

ओषधियाँ किस लिए हैं, इस विषय का उपदेश किया है॥

उच्छुष्मा ऽ ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते। धनᳬं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥

पदार्थः--(उत्) (**शुष्माः**) प्रशस्तबलकारिण्यः। **शुष्मेति बलनाम॥ निघं० २। ६॥ अर्श-आदित्वादच्** (**ओषधीनाम्**) सोमयवादीनाम् (**गावः**) धेनवः किरणा वा (**गोष्ठादिव**) यथा स्वस्थानात्तथा (**ईरते**) वत्सान् प्राप्नुवन्ति (**धनम्**) यद्धिनोति=वर्धयति तत् धनम्। **कस्माद्धिनोतीति सतः॥ निरु० ३। ६॥** (**सनिष्यन्तीनाम्**) संभजन्तीनाम् (**आत्मानम्**) शरीराऽधिष्ठातारम् (**तव**) (**पूरुष**) पुरि=देहे शयान देहधारक वा॥ ८२॥

प्रमाणार्थ—'शुष्माः' यहाँ शुष्म शब्द निघण्टु में (२। ६) बल-नामों में पढ़ा है। और अर्श आदि गण में होने से मत्वर्थ में अच् प्रत्यय हुआ है। 'धनम्' धन शब्द का निर्वचन (**निरु० ३। ६**) में इस प्रकार किया है कि जो तृप्त करता है अथवा वृद्धि करता है उसे धन कहते हैं।

अन्वयः—हे पूरुष ! या धनं सनिष्यन्तीनामोषधीनां शुष्मा गावो गोष्ठादिव तवात्मान-मुदीरते तास्त्वं सेवस्व॥ ८२॥

सपदार्थान्वयः--हे **पूरुषः** ! पुरि=देहे शयान देहधारक वा ! **या धनं** यद्धिनोति-वर्धयति तद् धनं **सनिष्यन्तीनां** सम्भजन्तीनाम् **ओषधीनां** सोमयवादीनां **शुष्माः** प्रशस्तबलकारिण्यः **गावः** धेनवः किरणा वा **गोष्ठादिव** यथा स्वस्थानात्तथा **तवाऽऽतमानं** शरीराऽधिष्ठातारम् **उत्+ईरते** वत्सान् प्राप्नुवन्ति, **तास्त्वं सेवस्व**॥

भाषार्थ—हे (पुरुष) पुर अर्थात् देह में शयन करने वाले वा देह को धारण करने वाले जीव ! जो—(धनम्) वृद्धि के हेतु धन को (सनिष्यन्तीनाम्) प्राप्त कराने वाली (ओषधीनाम्) सोम, यव आदि ओषधियों में (शुष्माः) उत्तम बलकारी हैं, और जो (गावः) गौवें वा किरणें (गोष्ठादिव) जैसे अपने स्थान से तेरे (आत्मानम्) शरीर के अधिष्ठाता आत्मा को (उत्+ईरते) बछड़े प्राप्त कराती हैं, उन ओषधियों का सेवन एवं उनके गौओं की सेवा कर॥ १२। ८२॥

[हे पूरुष ! या ··· ओषधीनां शुष्मा गावो गोष्ठादिव तवात्मानमुदीरते]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। हे मनुष्याः ! यथा सम्पालिता गावो दुग्धादिभिः स्ववत्सान्

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है॥ हे मनुष्यो ! जैसे—पालन की हुई गौवें दुग्ध

मनुष्यादींश्च सम्पोष्य बलयन्ति, तथैवौषधयो युष्माकमात्मशरीरे संपोष्य पराक्रमयन्ति ।

आदि से अपने बछड़ों और मनुष्य आदि का पोषण करके बल प्रदान करती हैं वैसे ओषधियाँ आपके आत्मा और शरीर का पोषण करके पराक्रम को बढ़ाती हैं ।

[हेतुमाह—]

यदि कश्चिदन्नादिकमौषधं न भुञ्जीत, तर्हि क्रमशो बलविज्ञानह्रासं प्राप्नुयात्, तस्मादेता एतन्निमित्ताः सन्तीति वेद्यम् ॥ १२ । ८२ ॥

यदि कोई अन्न आदि औषध का सेवन न करे तो क्रमशः बल और विज्ञान के ह्रास को प्राप्त होवे, अतः ये गायें और ओषधियाँ शरीर और आत्मा के लिए हैं, ऐसा जानो ॥ १२ । ८२ ॥

भा० पदार्थः—गावः=सम्पालिता गावः । आत्मानम्=आत्मानं शरीरं च ।

भाष्यसार—**१. ओषधियों के लाभ**—जैसे गायें पौष्टिक दूधादि से बछड़ों तथा मनुष्यों का पालन करती हैं, वैसे ही ओषधियाँ (यव सोमादि) बल को बढ़ाने वाली होती हैं। शारीरिक बल के बढ़ने से ओषधियाँ (धनम्) तृप्ति तथा वृद्धि के कारणभूत धन को प्राप्त कराने वाली हैं। विधि के अनुसार ओषधियों के सेवन से आत्मिक शक्ति की प्राप्ति भी होती है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे गौवें दूधादि से मनुष्यों का पोषण करती हैं, वैसे ही ओषधियाँ भी आत्मिक तथा शारीरिक बल को प्रदान करती हैं।

भिषक् । **वैश्याः=स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

सुसेविता ओषधयः किं कुर्वन्तीत्याह ॥

अच्छे प्रकार सेवन की हुई ओषधियाँ क्या करती हैं, यह उपदेश किया है ॥

इष्कृ॑ति॒र्नाम॑ वो मा॒ताथो॑ यू॒यꣳ स्थ॒ निष्कृ॑तीः । सीराः॑ पत॒त्रिणी॑ स्थन॒ यदा॒मय॑ति॒ निष्कृ॑थ ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(इष्कृतिः) निष्कर्त्री (**नाम**) प्रसिद्धम् (**वः**) युष्माकम् (**माता**) जननीव (**अथो**) (**यूयम्**) (**स्थ**) भवत (**निष्कृतीः**) प्रत्युपकारान् (**सीराः**) नदीः । **सीरा इति नदीनाम ॥ निघं० १ । १३ ॥** (**पतत्रिणीः**) पतितुं=गन्तुं शीलाः (**स्थन**) भवत (**यत्**) या क्रिया (**आमयति**) रोगयति (**निः**) नितराम् (**कृथ**) कुरुत । **अत्र विकरणस्य लुक्** ॥ ८३ ॥

प्रमाणार्थ—'सीराः' यहाँ सीर शब्द निघण्टु (१ । १३) में सीर के नामों में पढ़ा है। 'कृथ' यहाँ उकारविकरण विकरण व्यत्यय से लुक् हुआ है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं या व इष्कृतिर्मातेवौषधिर्नाम वर्त्तते तस्याः सेवका इवौषधीः सेवितारः स्थ पतत्रिणी सीराः नद्य इव निष्कृतीः सम्पादयन्तः स्थनाथो यदाऽऽमयति तान्निष्कृथ ॥ ८३ ॥

सपदार्थान्वय—हे **मनुष्याः ! यूयं या वः** युष्माकम् **इष्कृतिः** निष्कर्त्री **माता** जननी **इव ओषधिर्नाम** प्रसिद्धं **वर्त्तते, तस्याः सेवका इवौषधीः सेवितारः स्थ** भवत, **पतत्रिणीः** पतितुं=गन्तुं शीलाः **सीराः=नद्य इव निष्कृतीः** प्रत्युप-

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (वः) आपकी (इष्कृतिः) उपकार करने वाली (माता) जननी के समान (नाम) प्रसिद्ध ओषधि है, उसके सेवन करने वालों के समान ओषधि के सेवन करने वाले (स्थ) बनो, और—(पतत्रिणीः) गतिशील

कारान् सम्पादयन्तः स्थन भवत, अथो यत् या क्रिया आमयति रोगयति, तां निः+कृथ नितरां कुरुत ॥ १२ । ८३ ॥

(सीराः) नदियों के समान (निष्कृतीः) प्रत्युपकार करने वाले (स्थन) बनो, और-(यत्) जो क्रिया (आमयति) रोगों को उत्पन्न करती है उसे (निः+कृथ)सर्वथा दूर करो ॥ १२ । ८३ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं या व इष्कृतिर्मातिवौषधिः''' वर्तते तस्याः सेवका इवौषधीः सेवितारः स्थ]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! यथा मातापितरौ युष्मान् सेवन्ते तथा यूयमप्येतान् सेवध्वम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे माता-पिता तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे तुम भी इनकी सेवा करो ।

[अथो यदामयति तान् निष्कृथ]

यद्यत्कर्म रोगाविष्करं भवति तत्तत् त्यजत, एवं सुसेविता ओषधयः प्राणिनो मातृवत्पोषयन्ति ॥ १२ । ८३ ॥

जो-जो कर्म रोगों को बढ़ाता है उस-उस को छोड़ो, इस प्रकार उत्तम रीति से सेवन की हुई ओषधियाँ माता के तुल्य पोषण करती हैं ॥

भा० पदार्थः—माता=मातापितरौ । यत्=यद्यत्कर्म । आमयति=रोगाविष्करं भवति । निष्कृथ=त्यजत ।

भाष्यसार—**१. ओषधियों के लाभ**—(१) जैसे माता उपकार करने वाली होती है वैसे ही ओषधियाँ भी उपकार करती हैं । अतः इनकी सुरक्षा माता की तरह करनी चाहिये । (२) और जिन कर्मों के करने से रोग पैदा होते हैं उनका परित्याग करके ओषधियों का सेवन करना चाहिये । तभी रोगों के निवारण में सोमादि ओषधियाँ समर्थ होती हैं, अन्यथा नहीं । (३) ओषधियाँ उसी प्रकार गतिशील बनाने वाली होती हैं जिस प्रकार नदियाँ गति वाली होकर सदा परोपकारार्थ ही गति करती रहती हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे माता सन्तान का निरन्तर लाभ ही करती है वैसे ओषधियाँ भी सदा लाभ देने वाली होती हैं ॥ १२ । ८३ ॥

भिषक् । **वैश्याः=स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कथं रोगा निवर्त्तन्त इत्याह ॥

कैसे रोग निवृत्त होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव ऽ व्रजमक्रमुः । ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—(**अति**) (**विश्वाः**) सर्वाः (**परिष्ठाः**) सर्वतः स्थिताः (**स्तेन इव**) यथा चोरो भित्त्यादिकं तथा (**व्रजम्**) गोस्थानम् (**अक्रमुः**) क्राम्यन्ति (**ओषधीः**) सोमयवाद्याः (**प्र**) (**अचुच्यवुः**) च्यावयन्ति=नाशयन्ति (**यत्**) (**किम्**) (**च**) (**तन्वः**) (**रपः**) पापफलमिव रोगाख्यं दुःखम् ॥ ८४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं याः परिष्ठा विश्वा ओषधीर्व्रजं स्तेन इवात्यक्रमुः । यत् किं च तन्वो रपस्तत्सर्वं प्राचुच्यवुस्ता युक्तचोपयुञ्जीध्वम् ॥ ८४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो (परिष्ठाः)

याः परिष्ठाः सर्वतः स्थिताः **विश्वाः** सर्वाः **ओषधीः** सोमयवाद्याः **व्रजं** गोस्थानं **स्तेन इव** यथा चोरो भित्त्यादिकं तथा **अति+अक्रमुः** क्राम्यन्ति, **यत् किं च तन्वो रपः** पापफलमिव रोगाख्यं दुःखं **तत्सर्वं प्र+अचुच्यवुः** च्यावयन्ति=नाशयन्ति, **ता युक्त्योपयुञ्जीध्वम्** ॥ १२ । ८४ ॥

सब ओर विद्यमान (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोम, यव=जौ आदि हैं वे जैसे (व्रजम्) गोशाला की भित्ति आदि को लांघकर (स्तेनः) चोर भय से भाग जाता है वैसे (अति+अक्रमुः) रोगों को भगाती हैं, और—(यत्) जो (किं च) कुछ (तन्वः) शरीर का (रपः) पाप-फल के तुल्य रोग नामक दुःख है उस सबको (प्र+अचुच्यवुः) नष्ट कर देती हैं, उनका युक्ति से उपयोग करो ॥ १२ । ८४ ॥

[हे मनुष्या ! यूयं या ··· ओषधीर्व्रजं स्तेन इवात्यक्रमुः··· तन्वो रपः ··· प्राचुच्यवुः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा चोरो गोस्वामिना धर्षितः सन्नभीरघोषमुल्लङ्घ्य पलायते, तथैव सदौषधैस्ताडिता रोगा नश्यन्ति ॥ १२ । ८४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे चोर गोस्वामी से धमकाया हुआ भित्ति आदि को लाँघकर भाग जाता है वैसे ही उत्तम ओषधों से ताड़ना किये हुए रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ । ८४ ॥

भा० पदार्थः—अत्यक्रमुः=उल्लङ्घ्य पलायन्ते ।

भाष्यसार—१. **ओषधियों से रोग निवृत्ति**—जैसे चोर भय से भित्ति आदि को लाँघ कर भाग जाता है, वैसे ही सोमादि ओषधियों के सदुपयोग से रोग भाग जाते हैं । और जो भी शरीर में पाप तुल्य दुःख हैं उन को समूल नष्ट कर देती हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालंकार है । उपमा यह कि जैसे चोर स्वामी से डरकर भाग जाता है, वैसे ही रोग भी ओषधियों के उपयोग से दूर हो जाते हैं ॥ १२ । ८४ ॥

भिषक् । **वैद्यः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

रोग कैसे निवृत्त होते हैं, इसका फिर उपदेश किया है ॥

यदि॒मा वा॒जय॑न्न॒हमोष॑धी॒र्हस्त॑ऽ आद॒धे । आ॒त्मा यक्ष्म॑स्य नश्यति पु॒रा जी॑व॒गृभो॑ यथा ॥ ८५ ॥

पदार्थः—(**यत्**) याः (**इमाः**) (**वाजयन्**) प्रापयन् (**अहम्**) (**ओषधीः**) (**हस्ते**) (**आदधे**) (**आत्मा**) तत्त्वमूलम् (**यक्ष्मस्य**) क्षयस्य=राजरोगस्य (**नश्यति**) (**पुरा**) पूर्वम् (**जीवगृभः**) यो जीवं गृह्णाति तस्य व्याधेः (**यथा**) येन प्रकारेण ॥ ८५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा पुरा वाजयन्नहं यदिमा ओषधीर्हस्त आदधे याभ्यो जीवगृभो यक्ष्मस्यात्मा नश्यति ताः सद्युक्त्योपयुञ्जताम् ॥ ८५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा** येन प्रकारेण **पुरा** पूर्वं **वाजयन्** प्रापयन् **अहं यत्** याः **इमाः ओषधीः** सोमयवाद्याः **हस्ते आ+दधे**, **याभ्यो जीवगृभः** यो जीवं गृह्णाति तस्य व्याधेः

भावार्थ—हे मनुष्यो ! (यथा) जिस प्रकार (पुरा) पहले (वाजयन्) प्राप्त कराता हुआ मैं—(यत्) जिन इन (ओषधीः) सोम, यव=जौ आदि ओषधियों को (हस्ते) हाथ में (आ+दधे)

यक्ष्मस्य क्षयस्य=राजरोगस्य **आत्मा** तत्त्वमूलं **नश्यति, ताः सद्युक्त्योपयुञ्जताम्** ॥ १२ । ८५ ॥

धारण करता हूँ, जिनसे (जीवगृभः) जीव को पकड़ने वाली व्याधि (यक्ष्मस्य) क्षय अर्थात् राज-रोग का (आत्मा) मूल नष्ट होता है, उनको श्रेष्ठ युक्ति से उपयोग करो ॥ १२ । ८५ ॥

[हे मनुष्याः ! **यथा**···**अहं**···**ओषधीर्हस्त आदधे, याभ्यो**···**यक्ष्मस्यात्मा नश्यति**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः सुहस्तक्रिययौषधीः संसाध्य, यथाक्रममुपयोज्य, यक्ष्मादिरोगान्निवार्य, नित्यमानन्दाय प्रयतितव्यम् ॥ १२ । ८५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—उत्तम हस्त-क्रिया से ओषधियों को सिद्ध करके, यथाक्रम उपयोग करके, यक्ष्मा आदि रोगों का निवारण करके, नित्य आनन्द के लिए प्रयत्न करें ॥ १२ । ८५ ॥

भा० पदार्थः—हस्ते=सुहस्तक्रियया । यक्ष्मस्य=यक्ष्मादिरोगस्य ।

भाष्यसार—**१. वैद्य का कर्त्तव्य**—अच्छे वैद्य का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह प्रथम ओषधियों का यथाविधि ज्ञान प्राप्त करे। तत्पश्चात् क्रियात्मक औषध-निर्माण भी सीखे। उसके हाथ में ऐसा यश होना चाहिये, अथवा वह ऐसे कौशल से ओषधियों का निर्माण करें, जिससे वे असाध्य क्षय जैसी भयंकर बीमारियों को भी नष्ट करने में समर्थ हों।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पहले विद्वान् रोगों की निवृत्ति ओषधियों से करते रहे हैं, वैसे ही सभी मनुष्य प्रयत्न करें ॥ १२ । ८५ ॥

भिषक् । **वैद्यः=स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

यथायोग्यं सेवितमौषधं रोगान्कथं नो नाशयेयुरित्याह ॥

ठीक-ठीक सेवन की हुई औषध रोगों को कैसे न नष्ट करे ? यह उपदेश किया है ॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं विबाधध्व ऽ उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

पदार्थः—(**यस्य**) (**ओषधीः**) (**प्रसर्पथ**) (**अङ्गमङ्गम्**) प्रत्यवयवम् (**परुष्परुः**) मर्ममर्म (**ततः**) (**यक्ष्मम्**) (**वि**) (**बाधध्वे**) (**उग्रः**) (**मध्यमशीरिव**) यो मध्यमानि मर्माणि शृणातीव ॥ ८६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यस्याङ्गमङ्गं परुष्परुः प्रतिवर्तमानं यक्ष्मं मध्यमशीरिव विबाधध्वे । ओषधीः प्रसर्पथ विजानीत तान्वयं सेवेमहि ॥ ८६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः यूयं यस्य अङ्गमङ्गं** प्रत्यवयवं **परुष्परुः** मर्ममर्म **प्रति वर्त्तमानं यक्ष्मम् [उग्रः] मध्यमशीरिव** यो मध्यमानि मर्माणि शृणातीव **वि+बाधध्वे, [ततः] ओषधीः** सोमयवादीन् **प्र+सर्पथ=विजानीत । तान् वयं सेवेमहि** ॥ १२ । ८६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिसके (अङ्गमङ्गम्) प्रत्येक अङ्ग में तथा (परुष्परुः) प्रत्येक मर्म-स्थान में विद्यमान (यक्ष्मम्) क्षय-रोग जो [उग्रः] उग्र होकर (मध्यमशीरिव) मर्म-स्थलों का मानो हिंसन करता है उसको (वि+बाधध्वे) हटाओ। (ततः) और (ओषधीः) सोम, यव=जौ आदि ओषधियों को (प्र+सर्पथ) जानो। उनका हम सेवन करें ॥ १२ । ८६ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं ··· अङ्गमङ्गं ··· प्रति वर्त्तमानं यक्ष्मं [उग्रः] मध्यमशीरिव विबाधध्वे, ओषधीः प्रसर्पथ]

भावार्थ—यदि शास्त्राऽनुसारेणौषधानि सेवेरँस्तर्ह्यङ्गादङ्गाद् रोगान् निःसार्य्याऽरोगिणो भवन्ति ॥ १२ । ८६ ॥

भावार्थ—यदि शास्त्र के अनुसार औषधियों का सेवन करें तो प्रत्येक अङ्ग से रोगों को निकालकर नीरोग होवें ॥ १२ । ८६ ॥

भाष्यसार—**यथाविधि सेवित औषध ही रोगनाशक**—जो-जो असाध्य क्षय जेसी बीमारियाँ हैं, जो शरीर की प्रत्येक धातु में प्रवेश कर चुकी हैं, जो प्रत्येक मर्मस्थान को उग्र होकर पीड़ित करने लगी हैं, उन को समूल नष्ट करने के लिए शास्त्रानुसार तथा निरन्तर औषध-सेवन करना परमावश्यक है। तब ही नीरोग होकर सुखों की वृद्धि सम्भव है ॥ १२ । ८६ ॥

भिषक् । **वैश्याः**=**स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कथं कथं रोगा निहन्तव्या इत्याह ॥

कैसे-कैसे रोगों को नष्ट करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

साकं यक्ष्म प्र पंत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

पदार्थः—(**साकम्**) सह (**यक्ष्म**) राजरोगः (**प्र**) (**पत**) प्रपातय (**चाषेण**) भक्षणेन (**किकिदीविना**) किं किं ज्ञानं दीव्यति=ददाति यस्तेन । **कि ज्ञान इत्यस्मादौणादिके सन्वति डौ कृते । किकिस्तदुपपदाद्दिवुधातोरौणादिकः किर्बाहुलकाद्दीर्घश्च** (**साकम्**) (**वातस्य**) वायोः (**ध्राज्या**) गत्या (**साकम्**) (**नश्य**) नश्यत् । **अत्र व्यत्ययः** (**निहाकया**) नितरां हातुं योग्यया पीडया ॥ ८७ ॥

प्रमाणार्थ—'किकिदीविना' यहाँ ज्ञानार्थक कि धातु से औणादिक डि प्रत्यय और सन्वद्भाव से 'किकि' शब्द बना है। और 'किकि' उपपद से 'दिव्' धातु से औणादिक कि प्रत्यय और बहुल वचन से धातु के इकार को दीर्घ होने से 'किकिदीवि' शब्द बना है।

अन्वयः—हे चिकित्सक विद्वन् ! किकिदीविना चाषेण साकं यक्ष्म प्रपत यथा तस्य वातस्य ध्राज्या साकमयं नश्य निहाकया साकं दूरीभवेत्तदर्थं प्रयतस्व ॥ ८७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे चिकित्सक विद्वन्** ! **किकिदीविना** किं किं ज्ञानं दीव्यति=ददाति यस्तेन, **चाषेण** भक्षणेन **साकं** सह **यक्ष्म** राजरोगः **प्र**+**पत** प्रपातय, **यथा तस्य वातस्य** वायोः **ध्राज्या** गत्या **साकं** सह **अयं नश्य** नश्येत्, **निहाकया** नितरां हातुं योग्यया पीडया **साकं** सह **दूरीभवेत्**, **तदर्थं प्रयतस्व** ॥ १२ । ८७ ॥

भाषार्थ—हे चिकित्सक विद्वान् ! तुम—(किकिदीविना) न जाने किस-किस ज्ञान को प्रदान करने वाले (चाषेण) आहार के (साकम्) सहाय से (यक्ष्म) राजरोग को (प्र+पत) गिराओ। जैसे—उस (वातस्य) वायु की (ध्राज्या) गति के (साकम्) सहाय से यह (नश्य) नष्ट होवे, तथा (निहाकया) सर्वथा त्याग के योग्य पीड़ा के (साकम्) सहित दूर होवे, उसके लिए प्रयत्न करो ॥ १२ । ८७ ॥

[हे चिकित्सक विद्वन् ! ··· चाषेण साकं यक्ष्म प्रपत, वातस्य ध्राज्या साकमयं नश्य]

भावार्थः—मनुष्यैरौषधसेवनप्राणायामव्यायामै रोगान् निहत्य सुखेन वर्त्तितव्यम् ॥

भावार्थ—मनुष्य—औषध-सेवन, प्राणायाम और व्यायाम से रोगों का नाश करके सुख से रहें ॥ १२ । ८७ ॥

भा० पदार्थः—चापेण=ओषधसेवनेन । वातस्य [ध्राज्या]=प्राणायामेन, व्यायामेन च ॥

भाष्यसार—**असाध्य रोगों के निवृत्ति का उपाय**—१. जब कोई शरीर में असाध्य रोग घर कर जाये, तब विभिन्न प्रकार की औषधों के सेवन से पथ्य रखता हुआ रोगों से छूट जाता है। और उस समय शुद्ध आहार का भी विशेष ध्यान रखना चाहिये । २. वातस्य ध्राज्या=वायु की गति से अर्थात् प्राणायाम के अभ्यास से क्षयादि रोगों का समूल निवारण होने से शरीर नीरोग रहता है ॥ १२ । ८७ ॥

भिषक् । **वैश्याः=स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

युक्त्या संमेलिता ओषधयो रोगनाशिका जायन्त इत्याह ॥

युक्ति से मिलाई हुई ओषधियाँ रोगों को नष्ट करती हैं, यह उपदेश किया है ॥

अन्या वो ऽ अन्यामवत्वन्यान्यस्या ऽ उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना ऽ इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

पदार्थः—(**अन्या**) भिन्ना (**वः**) युष्मान् (**अन्याम्**) (**अवतु**) रक्षतु (**अन्या**) (**अन्यस्याः**) (**इदम्**) (**मे**) मम (**प्र**) (**अवत**) अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**वचः**) ॥ ८८ ॥

प्रमाणार्थ—'अवता' यहाँ 'अन्येषामपि दीर्घः' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे स्त्रियः ! संविदाना यूयमिदं मे वचः प्रावत तास्सर्वा ओषधीरन्या अन्यस्या इवोपावत । यथाऽन्याऽन्यां रक्षति तथा वोऽध्यापिकाऽवतु ॥ ८८ ॥

विशेषः—मन्त्र के 'ताः सर्वाः संविदानाऽइदं मे प्रावता वचः' इतने अंश का पदार्थ छूटा हुआ है ।

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रियः** ! **संविदानाः यूयमिदं मे** मम **वचः प्र+अवत, ताः सर्वाः ओषधीरन्या** भिन्ना **अन्यस्या इवोपावत ।**

यथा अन्या भिन्ना **अन्यां** भिन्नां **रक्षति, तथा वः युष्मान् अध्यापिका अवतु रक्षतु** ॥ १२ । ८८ ॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! ज्ञान युक्त होकर तुम–(इदम्) इस (मे) मेरे (वचः) उपदेश की (प्र+अवत) रक्षा करो । (ताः) उन (सर्वाः) सब ओषधियों को (अन्याऽन्यस्याः) अपनी परस्पर की अनुकूलता के समान (उप+अवत) मिलाओ ।

जैसे (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की रक्षा करती है वैसे (वः) तुम्हारी, अध्यापिका (अवतु) रक्षा करे ॥ १२ । ८८ ॥

[हे स्त्रियः ! यूयं ... सर्वा ओषधीरन्याऽन्यस्या इवोपावत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा सद्वृत्ताः स्त्रियोऽन्याऽन्यस्या रक्षणं कुर्वन्ति तथैवानुकूल्येन संमिलिता ओषधयः सर्वेभ्यो रोगेभ्यो रक्षन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे सदाचारिणी स्त्रियाँ परस्पर रक्षा करती हैं वैसे ही अनुकूलता से मिली हुई ओषधियाँ सब रोगों से रक्षा करती हैं।

[हे स्त्रियः ! संविदाना यूयमिदं मे वचः प्रावत]

हे स्त्रियः ! यूयमोषधिविद्यायै परस्परं संवदध्वम् ॥ १२ । ८८ ॥

हे स्त्रियो ! तुम—ओषधिविद्या के लिए परस्पर संवाद करो ॥ १२ । ८८ ॥

भाष्यसार—१. **ओषधियों की उपयोग विधि**—अच्छे वैद्यों को योग्य है कि वे ओषधियों के गुणों का ज्ञान करके उनको उचित मात्रा में मिलाकर औषध-निर्माण करें। क्योंकि ओषधियों के मिलाने से विशेष गुणों की उत्पत्ति होने से वे विशेष रोगनाशक होती हैं। जैसे स्त्रियाँ सदाचार के कारण एक दूसरों की रक्षा करती हैं, वैसे ही ओषधियाँ मिलाने से रोगनाशक हो जाती हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सदाचारिणी स्त्रियाँ एक दूसरे की रक्षा करती हैं वैसे ही ओषधियाँ मिलकर अधिक उपयोगी होती हैं ॥ ॥ १२ । ८८ ॥

भिषक् । **वैश्याः=स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

रोगनिवारणार्था एवौषधय ईश्वरेण निर्मिता इत्याह ॥

रोगों के निवारण के लिए ही ओषधियाँ ईश्वर ने रची हैं, यह उपदेश किया है ॥

याः फलिनीर्या ऽ अफला ऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—(**याः**) (**फलिनीः**) बहुफलाः (**याः**) (**अफलाः**) अविद्यमानफलाः (**अपुष्पाः**) पुष्परहिताः (**याः**) (**च**) (**पुष्पिणीः**) बहुपुष्पाः (**बृहस्पतिप्रसूताः**) बृहतां पतिनेश्वरेणोत्पादिताः (**ताः**) (**नः**) अस्मान् (**मुञ्चन्तु**) मोचयन्तु (**अंहसः**) रोगजन्यदुःखात् ॥ ८९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! याः फलिनीर्या अफला या अपुष्पा याश्च पुष्पिणीर्बृहस्पतिप्रसूता ओषधयो नोऽंहसो यथा मुञ्चन्तु ता युष्मानपि मोचयन्तु ॥ ८९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! याः फलिनीः** बहुफलाः **याः अफलाः** अविद्यमानफलाः **याः अपुष्पाः** पुष्परहिताः **याश्च पुष्पिणीः** बहुपुष्पाः **बृहस्पतिप्रसूताः** बृहतां पतिनेश्वरेणोत्पादिताः **ओषधयो नः** अस्मान् **अंहसः** रोगजन्यदुःखाद् **यथा मुञ्चन्तु** मोचयन्तु, **ता युष्मानपि मोचयन्तु** ॥ १२ । ८९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (याः) जो (फलिनीः) बहुत फलों वाली, (याः) जो (अफलाः) फलों से रहित, (याः) जो (अपुष्पाः) पुष्पों से रहित, और (याः) जो (पुष्पिणीः) बहुत पुष्पों वाली (बृहस्पतिप्रसूताः) बृहस्पति=ईश्वर के द्वारा उत्पन्न की हुई ओषधियाँ हैं, वे (नः) हमें (अंहसः) रोगजन्य दुःख से जैसे (मुञ्चन्तु) मुक्त करती हैं, वैसे वे तुम्हें भी मुक्त करें ॥ १२ । ८९ ॥

[हे मनुष्या ! याः···बृहस्पतिप्रसूता ओषधयो नोऽंहसो···मुञ्चन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्या ईश्वरेण सर्वेषां प्राणिनां जीवनाय रोगनिवारणाय चौषधयो निर्मिताः, ताभ्यो वैद्यकशास्त्रोक्तोपयोगेन सर्वान् रोगान् हत्वा, पापाचा-

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—जो ईश्वर ने सब प्राणियों के जीवन और रोगनिवारण के लिए ओषधियाँ बनाई हैं, उनसे वैद्यकशास्त्र में प्रतिपादित उपयोग

राद् दूरे स्थित्वा धर्मे नित्यं प्रवर्त्तितव्यम् ॥

लेकर सब रोगों को नष्ट करके, पापाचरण से दूर रह कर, धर्म में नित्य प्रवृत्त रहें ॥ १२ । ८९ ॥

भा० पदार्थः—बृहस्पतिप्रसूताः=ईश्वरेण निर्मिताः । अंहसः=पापाचारात् ॥

भाष्यसार—**१. ओषधियों की रोगनिवारणार्थ उत्पत्ति**—बृहस्पति परमेश्वर ने जो भी फलों से युक्त अथवा फलरहित, पुष्पों से युक्त अथवा पुष्पों से रहित ओषधियाँ बनाई हैं, वे सभी रोग निवारक हैं। अतः इनका विशेष ज्ञान करके रोगों को दूर करना चाहिये ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे रोगों के निवारणार्थ परमेश्वर ने सब ओषधियों को बनाया है, वैसे ही वैद्य उनका विशेष ज्ञान करके रोगों का निवारण करते रहें ॥ १२ । ८९ ॥

भिषक् । **वैद्यः=स्पष्टम्** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

किं किमौषधं कस्मात्कस्मान्मुञ्चतीत्याह ॥

कौन-कौन ओषधि किस-किस से छुड़ाती है, यह उपदेश किया है ॥

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒द॒थो॑ वरु॒ण्या॒दु॒त । अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शा॒त्सर्व॑स्माद् देवकिल्बि॒षात् ॥ ९० ॥

पदार्थः—(**मुञ्चन्तु**) पृथक्कुर्वन्तु (**मा**) माम् (**शपथ्यात्**) शपथे भवात् कर्मणः (**अथो**) (**वरुण्यात्**) वरुणेषु=वरेषु भवादपराधात् (**उत**) अपि (**अथो**) (**यमस्य**) न्यायाधीशस्य (**पड्वीशात्**) न्यायविरोधाचरणात् (**सर्वस्मात्**) (**देवकिल्विषात्**) देवेषु=विद्वत्स्वपराधकरणात् ॥ ९० ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! भवन्तो यथौषधयो रोगात्पृथग्रक्षन्ति तथा शपथ्यादथो वरुण्यादथो यमस्य पड्वीशादुत सर्वस्माद्देवकिल्विषान्मा मुञ्चन्तु पृथग्रक्षन्तु तथा युष्मानपि रोगेभ्यो मुञ्चन्तु ॥ ९० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसः ! भवन्तो यथौषधयो रोगात् पृथग् रक्षन्ति, तथा शपथ्यात्** शपथे भवात् कर्मणः **अथो वरुण्यात्** वरुणेषु=वरेषु भवादपराधाद् **अथो यमस्य** न्यायाऽधीशस्य **पड्वीशात्** न्यायविरोधाऽऽचरणाद् **उत** अपि **सर्वस्मात् देवकिल्विषात्** देवेषु=विद्वत्स्वपराधकरणात् **मा** मां **मुञ्चन्तु=पृथग् रक्षन्तु** पृथक् कुर्वन्तु **तथा युष्मानपि रोगेभ्यो मुञ्चन्तु** पृथक् कुर्वन्तु ॥ १२ । ९० ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप—जैसे ओषधियाँ रोग से पृथक् रखती हैं वैसे (शपथ्यात्) शपथ सम्बन्धी कर्म से, (अथो) और (वरुण्यात्) श्रेष्ठ-जनों में होने वाले अपराध से, (अथो) और (यमस्य) न्यायाधीश के (पड्वीशात्) न्याय-विरुद्ध आचरण से, (उत) और (सर्वस्मात्) सब (देवकिल्विषात्) विद्वानों में होने वाले अपराध के कारण से (मा) मुझे (मुञ्चन्तु) पृथक् रखो । वैसे ओषधियाँ तुमको भी रोगों से (मुञ्चन्तु) पृथक् रखें ॥

[हे विद्वांसः ! **भवन्तो यथौषधयो रोगात्पृथग् रक्षन्ति तथा**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः ॥ मनुष्यैः प्रमादकार्यौषधं विहायान्यद् भोक्तव्यम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य—प्रमादकारी औषध को छोड़कर अन्य का सेवन करें ।

[**शपथात्, वरुण्यात्, यमस्य पड्वीशात्, देवकिल्विषान्मा मुञ्चन्तु**]

न कदाचिच्छपथः कार्यः, श्रेष्ठापराधात्, न्याय-

सौगन्ध (शपथ) कभी न खावें, श्रेष्ठों के प्रति

विरोधात्, पापाचरणा‌द्विद्वदीर्ष्याविषयात् पृथग् भूत्वाऽऽनुकूल्येन वर्त्तितव्यमिति ॥ १२ । ९० ॥

अपराध, न्याय के विरोध, पापाचारण, मूर्खों के समान ईर्ष्या विषय से पृथक् होकर अनुकूलता से वर्ताव करें ॥ १२ । ९० ॥

भा० पदार्थः—वरुण्यात्=श्रेष्ठापराधात् । यमस्य=न्यायस्य । पड्वीशात्=विरोधात् । देवकिल्विषात्=पापाचरणाद् विद्वदीर्ष्याविषयात् ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् वैद्यों का धर्म**—उत्तम वैद्यों को चाहिए कि जैसे ओषधियों से शारीरिक रोगों से सुरक्षा करते हैं वैसे ही मानसिक अपराधों से अर्थात् मिथ्या शपथ से, सज्जनों के प्रति अनादर भाव से, और न्याय विरुद्ध आचरण से सदा मनुष्यों को बचावें। जो विद्वान्, सदाचारी तथा परोपकारी देव तुल्य मनुष्य हों उनके प्रति जो भी अपराध करते हों, उनसे सदा रक्षा करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ओषधियाँ रोगों से बचाती हैं, वैसे ही विद्वान् पुरुष मानसिक दोषों से सदा सुरक्षा करें ॥ १२ । ९० ॥

वरुणः । **वैद्याः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अध्यापकाः सर्वेभ्य उत्तमौषधिविज्ञानं कारयेयुरित्याह ॥

अध्यापक लोग सब को उत्तम ओषधि जनावें, यह उपदेश किया है ॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ऽ ओषधयस्परि । यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ९१ ॥

पदार्थः—(**अवपतन्तीः**) अध आगच्छन्तीः (**अवदन्**) उपदिशन्तु (**दिवः**) प्रकाशात् (**ओषधयः**) सोमाद्याः (**परि**) सर्वतः (**यम्**) (**जीवम्**) प्राणधारकम् (**अश्नवामहै**) प्राप्नुयाम (**न**) निषेधे (**सः**) (**रिष्याति**) रोगैर्हिंसितो भवेत् (**पूरुषः**) पुमान् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—वयं या दिवोऽवपतन्तीरोषधयः सन्ति या विद्वांसः पर्यवदन् याभ्यो यं जीवमश्नवामहै याः संसेव्य **स** पूरुषो न रिष्याति कदाचिद्रोगैर्हिंसितो न भवेत् ॥ ९१ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं या दिवः** प्रकाशाद् **अवपतन्तीः** अध आगच्छन्तीः **ओषधयः** सोमाद्याः **सन्ति, या विद्वांसः** परि+**अवदन्** सर्वत उपदिशन्तु, **याभ्यो यं जीवं** प्राणधारकम् **अश्नवामहै** प्राप्नुयाम, **याः संसेव्य सः पूरुषः** पुमान् **न रिष्याति=कदाचिद् रोगैर्हिंसितो न भवेत्** [**ताः सेवेमहि**] ॥ १२ । ९१ ॥

भाषार्थ—हम—जो (दिवः) प्रकाश से (अवपतन्तीः) नीचे आती हुई (ओषधयः) सोम आदि ओषधियाँ हैं, जिनका विद्वान् लोग (परि+अवदन्) सब ओर उपदेश करते हैं, जिनसे (यम्) जिस (जीवम्) प्राणों को धारण करने वाले जीव को (अश्नवामहै) प्राप्त करते हैं, जिनका सेवन करके (सः) वह (पूरुषः) पुरुष (न रिष्याति) रोगों से कभी पीड़ित नहीं होता; उनका सेवन करें ॥

[या दिव...ओषधयः सन्ति, ता विद्वांसः पर्यवदन्]

भावार्थः—विद्वांसोऽखिलेभ्यो मनुष्येभ्यो दिव्यौषधीनां विद्यां प्रदद्युः ।

भावार्थ—विद्वान् सब मनुष्यों को दिव्य ओषधियों की विद्या को प्रदान करें ।

[याभ्यो...जीवमश्नवामहै]

यतोऽलं जीवनं सर्वे प्राप्नुयुः ॥ एता ओषधयः

जिससे—दीर्घ जीवन को सब प्राप्त करें ।

केनापि कदाचिन्नैव विनाशनीया: ॥ १२ । ९१ ॥ इन ओषधियों को कोई कभी नष्ट न करे ॥

भा० पदार्थः—पर्यवदन्=विद्यां प्रदद्युः । जीवम्=अलं जीवनम् ।

भाष्यसार—**वैद्यों का उत्तम कर्त्तव्य**—जितनी भी ओषधियाँ जीवनप्रद हैं, जिनके सेवन से रोग पीड़ित नहीं करते, उनको विद्वान् वैद्य अच्छी प्रकार जानकर दूसरों को भी उपदेश करें। और जीवनप्रद ओषधियों को नष्ट होने से सदा बचावें। जिससे रोगों की निवृत्ति होकर मनुष्यों की आयु बढ़ती रहे ॥ १२ । ९१ ॥

वरुणः । **वैद्याः**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

स्त्रीभिरवश्यमोषधिविद्या ग्राह्या इत्याह ॥

स्त्रियाँ अवश्य ओषधिविद्या ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

या ऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शꣳ हृदे ॥ ९२ ॥

पदार्थः—(**याः**) (**ओषधीः**) (**सोमराज्ञीः**) सोमो राजा यासां ताः (**बह्वीः**) (**शतविचक्षणा**) शतमसंख्या विचक्षणा गुणा यासु ताः (**तासाम्**) (**असि**) (**त्वम्**) (**उत्तमा**) (**अरम्**) अलम् (**कामाय**) इच्छासिद्धये (**शम्**) कल्याणकारिणी (**हृदे**) हृदयाय ॥ ९२ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! यतस्त्वं याः शतविचक्षणा बह्वीः सोमराज्ञीरोषधीः सन्ति तासामुत्तमा विदुष्यसि तस्माच्छं हृदेऽरं कामाय भवितुमर्हसि ॥ ९२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! यतस्त्वं याः शतविचक्षणाः शतमसंख्या विचक्षणा गुणा यासु ताः, **बह्वीः सोमराज्ञीः** सोमो राजा यासां ताः, **ओषधीः** सोमाद्याः सन्ति, **तासामुत्तमा**=**विदुषी असि। तस्मात्** शं कल्याणकारिणी **हृदे** हृदयाय **अरम्** अलं **कामाय** इच्छासिद्धये **भवितुमर्हसि** ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! क्योंकि तू—(याः) जो (शतविचक्षणाः) असंख्य विचक्षण गुणों वाली, (बह्वीः) बहुत, (सोमराज्ञीः) सोम जिनका राजा है वे (ओषधीः) सोम आदि ओषधियाँ हैं, उनकी उत्तम विदुषी हैं। अतः (शम्) कल्याणकारिणी होकर (हृदे) हृदय के लिए (अरम्) पर्याप्त (कामाय) इच्छा-सिद्धि की हेतु हो सकती है ॥

[हे स्त्रि ! यतस्त्वं याः ···ओषधीः सन्ति तासामुत्तमा विदुष्यसि, तस्मात्···अरं कामाय भवितुमर्हसि]

भावार्थः—स्त्रीभिरवश्यमोषधिविद्या ग्राह्या, नैतामन्तरा पूर्णं कामसुखं लब्धुं शक्यम्, रोगान्निवर्त्तयितुं च ॥ १२ । ९२ ॥

भावार्थ—स्त्रियाँ अवश्य ओषधि-विद्या को ग्रहण करें। इस विद्या के बिना पूर्ण कामसुख प्राप्त नहीं किया जा सकता, रोगों से निवृत्त रहना भी संभव नहीं ॥ १२ । ९२ ॥

भा० पदार्थः—कामाय=कामसुखाय ।

भाष्यसार—**स्त्रियों के लिए ओषधि-विद्या की आवश्यकता**—पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी सोमादि ओषधियों का ज्ञान करना चाहिये। शतविचक्षणाः=असंख्य अद्भुत गुणों वाली ओषधियों को जानकर स्त्रियाँ कल्याण करने की भावना से दूसरों के तथा अपने रोगों का निवारण करके (**कामाय**) संकल्प बल को बढ़ायें ॥ १२ । ९२ ॥

वरुणः । **वैद्यः**=स्पष्टम् । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कथं सन्तानोत्पत्तिः कार्य्येत्याह ॥

कैसे सन्तानों को उत्पन्न करें, यह उपदेश किया है ॥

या ऽ ओष॑धीः॒ सोम॑राज्ञी॒र्विष्ठि॑ताः पृथि॒वीमनु॑ । बृह॒स्पति॑प्रसूता ऽ अ॒स्यै सं द॑त्त वी॒र्य्य॑म् ॥ ९३ ॥

पदार्थः—(याः) (**ओषधीः**) ओषध्यः (**सोमराज्ञीः**) सोमप्रमुखाः (**विष्ठिताः**) विशेषेण स्थिताः (**पृथिवीम्**) (**अनु**) (**बृहस्पतिप्रसूताः**) बृहतः=कारणस्य पालकस्येश्वरस्य निर्माणादुत्पन्नाः (**अस्यै**) पत्न्यै (**सम्**) (**दत्त**) (**वीर्य्यम्**) ॥ ९३ ॥

अन्वयः—हे विवाहित पुरुष ! याः सोमराज्ञीर्बृहस्पतिप्रसूता ओषधीः पृथिवीमनु विष्ठिताः सन्ति ताभ्योऽस्यै वीर्य्यं देहि । हे विद्वांसः ! यूयमेतासां विज्ञानं सर्वेभ्यः संदत्त ॥ ९३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विवाहित पुरुष ! **याः सोमराज्ञीः** सोमप्रमुखा **बृहस्पतिप्रसूताः** बृहतः कारणस्य पालकस्येश्वरस्य निर्माणादुत्पन्नाः **ओषधीः** ओषध्यः **पृथिवीमनु विष्ठिताः** विशेषेण स्थिताः **सन्ति, ताभ्योऽस्यै** पत्न्यै **वीर्यं देहि** ।

भाषार्थ—हे विवाहित पुरुष ! (याः) जो—(सोमराज्ञीः) सोम जिनमें प्रमुख है वे, (बृहस्पतिप्रसूताः) बृहत् कारणरूप प्रकृति के पालक ईश्वर के निर्माण से उत्पन्न (ओषध्यः) ओषधियाँ हैं वे (पृथिवीम्) पृथिवी के (अनु) पृष्ठ भाग पर (विष्ठिताः) विशेष रूप से स्थित हैं, उनसे (अस्यै) इस पत्नी के लिए (वीर्यम्) वीर्य दान कर ।

हे विद्वांसः ! **यूयमेतासां विज्ञानं सर्वेभ्यः संदत्त** ॥ १२ । ९३ ॥

हे विद्वानो ! तुम—इन ओषधियों का विज्ञान सबको प्रदान करो ॥ १२ । ९३ ॥

[हे विवाहित पुरुष ! याः ··· **ओषधीः पृथिवीमनु विष्ठिताः सन्ति, ताभ्योऽस्यै वीर्यं देहि**]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषाभ्यां महौषधीः संसेव्य सुनियमेन गर्भाधानमनुष्ठेयम् ।

भावार्थ—स्त्री-पुरुष महौषधियों का सेवन करके उत्तम नियम से गर्भाधान करें ।

[हे विद्वांसः ! **यूयमेतासां विज्ञानं सर्वेभ्यः संदत्त**]

ओषधीविज्ञानं विद्वद्भ्यः संग्राह्यम् ॥ ९३ ॥

ओषधि-विज्ञान को विद्वानों से ग्रहण करें ॥

भाष्यसार—**उत्तम सन्तान का उपाय**—उत्तम सन्तति के लिए स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे अच्छी गुणोत्पादक सोमादि ओषधियों का सेवन करके सब प्रकार की शक्तियों का विकास करके ही सन्तान की इच्छा करें । तब ही अच्छी सन्तान प्राप्त हो सकती है ॥ १२ । ९३ ॥

वरुणः । **भिषजः**=स्पष्टम् । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

शुद्धेभ्यो देशेभ्य ओषधयः संग्राह्या इत्याह ॥

शुद्ध देशों से ओषधियों का ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

याश्चे॒दमु॑पशृ॒ण्वन्ति॒ याश्च॑ दू॒रं परा॑गताः । सर्वाः॑ सं॒गत्य॑ वीरुधो॒ऽस्यै सं द॑त्त वी॒र्य्य॑म् ॥ ९४ ॥

पदार्थः—(याः) (**च**) विदिताः (**इदम्**) (**उपशृण्वन्ति**) (**याः**) (**च**) समीपस्थाः (**दूरम्**)

(परागताः) (सर्वाः) (संगत्य) एकीभूत्वा (वीरुधः) वृक्षप्रभृतयः (अस्यै) प्रजायै (सम्) (दत्त) (वीर्य्यम्) पराक्रमम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! भवन्तो याश्चोपश्रृण्वन्ति याश्च दूरं परागतास्ताः सर्वा वीरुधः संगत्येदं वीर्यं प्रसाध्नुवन्ति तासां विज्ञानमस्यै कन्यायै संदत्त ॥ ९४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! **भवन्तो याश्च** विदिताः **उपश्रृण्वन्ति, याश्च** समीपस्थाः **दूरं परागताः, ताः सर्वाः वीरुधः** वृक्षप्रभृतयः **संगत्य** एकीभूत्वा **इदं वीर्य्यं** पराक्रमं **प्रसाध्नुवन्ति, तासां विज्ञानमस्यै**=**कन्यायै** प्रजायै **संदत्त** ॥ १२ । ९४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! आप—(याः) जिन (च) विदित=प्रसिद्ध ओषधियों को (उपश्रृण्वन्ति) सुनते हैं, और (याः) जो (च) समीप और दूरस्थ हैं वे सब (वीरुधः) वृक्ष आदि ओषधियाँ (संगत्य) मिलकर इस (वीर्यम्) पराक्रम को सिद्ध करती हैं, उनका विज्ञान (अस्यै) इस कन्या एवं प्रजा के लिए प्रदान करो ॥ १२ । ९४ ॥

[हे विद्वांसः ! भवन्तो याश्चोपश्रृण्वन्ति, याश्च दूरं परागताः, ताः सर्वा]
वीरुधः संगत्येदं वीर्यं प्रसाध्नुवन्ति]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! या ओषधयो दूरसमीपस्था, रोगापहारिण्यो, बलकारिण्यः श्रूयन्ते ता उपयुज्यारोगिणो भवत ॥ १२ । ९४ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ओषधियाँ दूर एवं समीपस्थ हैं, रोगों को अपहरण करने वाली तथा बलकारी प्रसिद्ध हैं उनका उपयोग करके नीरोग रहो ॥ १२ । ९४ ॥

भा० पदार्थः—वीरुधः=ओषधयः । वीर्यम्=बलम् ।

भाष्यसार—**अनुभूत ओषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये**—विद्वानों को योग्य है कि जो-जो ओषधियाँ लोक प्रसिद्ध हो चुकी हैं, जो दूर तथा समीप के रोगों को दूर करने में समर्थ हों, उन ओषधियों को जानकर सदा सेवन करें। और ओषधियाँ सदा दूर या समीप के शुद्ध स्थानों से ही (**संगत्य**) एकत्रित करें। वे ही सदा शक्तिप्रद तथा रोगनिवारक हो सकती हैं ॥ १२ । ९४ ॥

वरुणः । **वैद्याः**=**स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

केनाप्योषधयो नैव ह्रासनीया इत्याह ॥

कोई भी मनुष्य ओषधियों की हानि न करे, यह उपदेश किया है ॥

मा वो॑ रिषत् ख॒नि॒ता यस्मै॑ चा॒हं खना॑मि वः । द्वि॒पाच्चतु॑ष्पाद॒स्माक॒ꣳ सर्व॑मस्त्वनातु॒रम् ॥ ९५ ॥

पदार्थः—(**मा**) (**वः**) युष्मान् (**रिषत्**) हिंस्यात् (**खनिता**) (**यस्मै**) प्रयोजनाय (**च**) (**अहम्**) (**खनामि**) उत्पाटयामि (**वः**) युष्माकम् (**द्विपात्**) मनुष्यादि (**चतुष्पात्**) गवादि (**अस्माकम्**) (**सर्वम्**) (**अस्तु**) भवतु (**अनातुरम्**) रोगेणातुरतारहितम् ॥ ९५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! अहं यस्मै यामोषधीं खनामि सा खनिता सती वो युष्मान् मा रिष्यत् । यतो वोऽस्माकं च सर्वं द्विपाच्चतुष्पादनातुरमस्तु ॥ ९५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **अहं यस्मै** प्रयोजनाय **यामोषधीं खनामि** उत्पाटयामि,

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! मैं—(यस्मै) जिस प्रयोजन के लिए जिस ओषधि को (खनामि)

सा खनिता उत्पाटिता **सती वः=युष्मान् मा रिषत्** हिंस्यात् । **यतो वः** युष्माकम् **अस्माकं च सर्वं द्विपात्** मनुष्यादि **चतुष्पात्** गवादि **अनातुरं** रोगेणातुरता-रहितम् **अस्तु** भवतु ॥ १२ । ९५ ॥

खोदता एवं फाड़ता है वह (खनिता) खोदी एवं फाड़ी हुई ओषधि (वः) तुम्हें (मा रिषत्) पीड़ित न करें । क्योंकि—(वः) तुम्हारा और (अस्माकम्) हमारा सब (द्विपात्) मनुष्य आदि वर्ग तथा (चतुष्पाद्) गौ आदि वर्ग (अनातुरम्) रोगजन्य व्याकुलता से रहित (अस्तु) हो ॥ १२ । ९५ ॥

[हे मनुष्याः ! अहं ···यामोषधीं खनामि सा···मा रिषत्]

भावार्थः—य ओषधीः खनेत् स ता निर्बीजा न कुर्यात्, यावत् प्रयोजनं तावदादाय प्रत्यहं रोगान्निवारयेदोषधिसन्ततिं च वर्धयेत् ।

भावार्थ—जो ओषधियों को खोदे वह उन्हें निर्मूल न करे, जितना प्रयोजन हो उतनी लेकर प्रतिदिन रोगों का निवारण करे और ओषधियों की सन्तति को बढ़ावे ।

[यतो···द्विपाच्चतुष्पादनातुरमस्तु]

येन सर्वे प्राणिनो रोगकष्टमप्राप्य सुखिनः स्युः ॥ १२ । ९५ ॥

जिससे—सब प्राणी रोगज कष्ट को प्राप्त न होकर सुखी रहें ॥ १२ । ९५ ॥

भा० पदार्थः—अनातुरम्=रोगकष्टमप्राप्तम् ।

भाष्यसार—**ओषधियों का नाश करना पाप है**—जो-जो ओषधियाँ दो पैर वाले मनुष्यादि के, चार पैर वाले गायादि पशुओं के लिए हितकारक हों, उनको कभी नष्ट न करें । उन्हें आवश्यकता के अनुसार ही खोदें और उनका सदुपयोग करके सुखी रहें । सभी मनुष्य ऐसा प्रयत्न करें कि रोगनिवारक ओषधियाँ बढ़ती रहें ॥ १२ । ९५ ॥ ●

वरुणः । **वैद्याः=स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

किं कृत्वौषधिविज्ञानं वर्द्धतेत्याह ॥

क्या करने से ओषधियों का विज्ञान बढ़ता है, यह उपदेश किया है ॥

ओष॑धयः॒ सम॑वदन्त॒ सोमे॑न स॒ह राज्ञा॑ । यस्मै॑ कृ॒णोति॑ ब्राह्म॒णस्तꣳ रा॑जन् पारयाम॒सि ॥ ९६ ॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) सोमाद्याः (**सम्**) (**अवदन्त**) परस्परं संवादं कुर्य्युः (**सोमेन**) (**सह**) (**राज्ञा**) प्रधानेन (**यस्मै**) रोगिणे (**कृणोति**) (**ब्राह्मणः**) वेदोपवेदवित् (**तम्**) (**राजन्**) प्रकाशमान (**पारयामसि**) रोगसमुद्रात्पारं गमयेम ॥ ९६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! याः सोमेन राज्ञा सह वर्त्तमाना ओषधयः सन्ति तद्विज्ञानार्थं भवन्तः समवदन्त । हे राजन् ! वयं वैद्या ब्राह्मणो यस्मै ओषधीः कृणोति तं रोगिणं रोगात् पारयामसि ॥ ९६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! याः सोमेन राज्ञा** प्रधानेन **सह वर्त्तमाना ओषधयः** सोमाद्याः **सन्ति, तद्विज्ञानार्थं भवन्तः सम्+अवदन्त** परस्परं संवादं कुर्य्युः ।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(सोमेन) सोम नामक (राज्ञा) ओषधियों के राजा के साथ वर्त्तमान (ओषधयः) सोम आदि ओषधियाँ हैं उनके विज्ञान के लिए आप (सम+अवदन्त) परस्पर संवाद करो ।

हे राजन् प्रकाशमान ! **वयं वैद्या ब्राह्मणः**

हे (राजन्) प्रकाशमान राजा ! हम लोग—

वेदोपवेदविद् **यस्मै** रोगिणे **ओषधीः कृणोति, तं रोगिणं रोगात् पारयामसि** रोगसमुद्रात् पारं गमयेम ॥ १२ । ९६ ॥

(ब्राह्मणः) वेदों और उपवेदों का वेत्ता विद्वान् (यस्मै) जिस रोगी के लिए ओषधियों को (कृणोति) बनाता है, उस रोगी को (पारयामसि) रोग-समुद्र से पार ले जाते हैं ॥ १२ । ९६ ॥

[हे मनुष्याः ! या···ओषधयः सन्ति तद्विज्ञानार्थं भवन्तः समवदन्त, वयं वैद्याः···रोगिणं रोगात् पारयामसि]

भावार्थः—वैद्याः परस्परं प्रश्नोत्तरैरोषधिविज्ञानं सम्यक् कृत्वा रोगेभ्यो रोगिणः पारं नीत्वा सततं सुखयेयुः ।

भावार्थ—वैद्य लोग परस्पर प्रश्न-उत्तर से ओषधि-विज्ञान को ठीक करके, रोगों से रोगियों को पार ले जाकर, सदा सुखी रखें ।

[ब्राह्मणः]

यश्चैतेषां विद्वत्तमः स्यात् स सर्वानायुर्वेदमध्यापयेत् ॥ १२ । ९६ ॥

और जो इन वैद्यों में श्रेष्ठ विद्वान् हो वह सबको आयुर्वेद पढ़ावे ॥ १२ । ९६ ॥

भा० पदार्थः—समवदन्त=परस्परं प्रश्नोत्तरं कुर्युः । ब्राह्मणः=विद्वत्तमः ॥

भाष्यसार—**पारस्परिक प्रश्नोत्तर विद्या से ओषधि-विद्या की वृद्धि**—ओषधि-विद्या के विद्वान् इकट्ठे बैठकर प्रश्नोत्तर विद्या से परस्पर विचार-विनिमय किया करें, जिससे यह विद्या अधिक प्रभावोत्पादक बनकर रोगों के निवारण में समर्थ हो सके । जो इस विद्या का ब्राह्मणः=पूर्ण विद्वान् हो, उसे दूसरों को सिखाने के लिए नियुक्त करें । ऐसा करने से रोगी रोग-सागर से मुक्ति पा सकता है ॥ १२ । ९६ ॥ ●

वरुणः । **भिषग्वराः**=वैद्याः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

रोगपरिमाणा ओषधयः सन्तीत्याह ॥

जितने रोग हैं उतनी ओषधि हैं उन का सेवन करे, यह उपदेश किया है ॥

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

पदार्थः—(**नाशयित्री**) (**बलासस्य**) आविर्भूतकफस्य (**अर्शसः**) मूलेन्द्रियव्याधेः (**उपचिताम्**) अन्येषां वर्धमानानां रोगाणाम् (**असि**) अस्ति (**अथो**) (**शतस्य**) अनेकेषाम् (**यक्ष्माणाम्**) महारोगाणाम् (**पाकारोः**) मुखादिपाकस्यारोर्मर्मच्छिदः शूलस्य च (**असि**) अस्ति । **अत्रोभयत्र व्यत्ययः** (**नाशनी**) निवारयितुं शीला ॥ ९७ ॥

प्रमाणार्थ—'असि' यहाँ 'व्यत्ययो बहुलम्' सूत्रस्थ योगविभाग से पुरुष व्यत्यय से प्रथम-पुरुष के स्थान पर मध्यमपुरुष हुआ है ।

अन्वयः—हे वैद्याः ! या बलासस्यार्शस उपचितां नाशयित्र्यसि अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोर्नाशिन्यसि तामोषधिं यूयं विजानीत ॥ ९७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वैद्याः ! या बलाशस्य** आविर्भूतकफस्य **अर्शसः** मूलेन्द्रियव्याधेः **उपचिताम्** अन्येषां वर्धमानानां रोगाणां **नाशयित्री**

भाषार्थ—हे वैद्य लोगो ! जो ओषधि (बलाशस्य) प्रकट कफ का, (अर्शसः) मूलेन्द्रिय की व्याधि अर्श का, (उपचिताम्) अन्य बढ़ने वाले

असि अस्ति, **अथो शतस्य** अनेकेषां **यक्ष्माणां** महारोगाणां **पाकारोः** मुखादिपाकस्यारोर्मर्मच्छिदः शूलस्य च **नाशनी** निवारयितुं शीला **असि** अस्ति, **तामोषधिं यूयं विजानीत** ॥ १२ । ९७ ॥

रोगों का (नाशयित्री) नाश करने वाली (असि) है, (अथो) और (शतस्य) अनेक (यक्ष्मा) यक्ष्मा आदि महारोगों का,(पाकारोः) मुख आदि का पाक तथा अरु=मर्मच्छेदक शूल का (नाशनी) निवारण करने वाली (असि) है, उस ओषधि को तुम जानो ॥ १२ । ९७ ॥

[हे वैद्याः ! या···उपचितां नाशयित्र्यसि]

भावार्थः—मनुष्यैरेवं विज्ञेयं—यावन्तो रोगाः सन्ति, तावत्य एव तन्निवारिका ओषधयोऽपि वर्त्तन्ते ।

भावार्थ—मनुष्यों को यह जानना चाहिए कि जितने रोग हैं उतनी ही उनका निवारण करने वाली ओषधियाँ भी हैं ।

[अथो···पाकारोर्नाशन्यसि]

एतासां विज्ञानेन रहिताः प्राणिनो रोगैः पच्यन्ते ।

इनके विज्ञान से रहित प्राणी रोगों से पीड़ित रहते हैं ।

[तामोषधिं यूयं विजानीत]

यदि रोगाणामोषधीर्जानीयुस्तर्हि तेषां निवारणात् सततं सुखिनः स्युरिति ॥ १२ । ९७ ॥

यदि रोगों की ओषधियों को जानें तो उनके निवारण से सदा सुखी रहें ॥ १२ । ९७ ॥

भा० पदार्थः—नाशयित्री=निवारिका ।

भाष्यसार—**प्रत्येक रोग के लिए ओषधि-विद्या**--ओषधि-विद्या के विद्वानों को उचित है कि वे प्रत्येक रोग की ओषधि के खोजने का सदा प्रयत्न करें । जैसे बलाशस्य=बलनाशक कफ की वृद्धि, अर्शसः=बवासीरादि, यक्ष्मा=क्षयादि असाध्य रोग, पाकारोः=मुख का पकना और भयङ्कर मर्मच्छेदक शूलादि भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग हैं, उनके निवारण के लिए ओषधि-विद्या को अच्छी प्रकार जानना चाहिये ॥ १२ । ९७ ॥ ●

वरुणः । **वैद्याः=स्पष्टम्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कः क ओषधिं खनतीत्युपदिश्यते ॥

कौन-कौन ओषधि का खनन करता है, यह उपदेश किया है ॥

त्वां ग॒न्ध॒र्वाऽअ॑खनँ॒स्त्वामिन्द्र॒स्त्वां बृह॒स्पतिः॑ ।
त्वामो॑षधे॒ सोमो॒ राजा॑ वि॒द्वान् यक्ष्मा॑दमुच्यत ॥ ९८ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) ताम् (**गन्धर्वाः**) गानविद्याकुशलाः (**अखनन्**) खनन्ति (**त्वाम्**) ताम् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्ययुक्तः (**त्वाम्**) ताम् (**बृहस्पतिः**) वेदवित् (**त्वाम्**) ताम् (**ओषधे**) ओषधिम् (**सोमः**) सौम्यगुणसम्पन्नः (**राजा**) प्रकाशमानो राजन्यः (**विद्वान्**) सत्यशास्त्रवित् (**यक्ष्मात्**) क्षयादिरोगात् (**अमुच्यत**) मुच्येत ॥ ९८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सेवितया रोगी यक्ष्मादमुच्यत यामोषधे ओषधिं यूयमुपयुङ्ग्ध्वं त्वां तां गन्धर्वा अखनँस्त्वां तामिन्द्रस्त्वां तां बृहस्पतिस्त्वां तां सोमो विद्वान् राजा च त्वां तां खनेत् ॥ ९८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा सेवितया रोगी यक्ष्मात्** क्षयादिरोगाद् **अमुच्यत** मुच्येत, **यामोषधे=ओषधिं यूयमुपयुङ्ग्ध्वं, त्वां=तां गन्धर्वाः** गानविद्याकुशलाः **अखनन्** खनन्ति, **त्वां=ताम् इन्द्रः** परमैश्वर्य्ययुक्तः, **त्वां=तां बृहस्पतिः** वेदवित्, **त्वां=तां सोमः** सौम्यगुणसम्पन्नः **विद्वान्** सत्यशास्त्रविद् **राजा** प्रकाशमानो राजन्यः **च त्वां=तां खनेत्** ॥ १२ । ९८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ओषधि के सेवन से रोगी (यक्ष्मात्) क्षय आदि रोगों से (अमुच्यत) मुक्त हो जाता है, जिस (ओषधे) ओषधि का तुम उपयोग करते हो, (त्वाम्) उसे (गन्धर्वाः) गानविद्या में कुशल गन्धर्व लोग (अखनन्) खोदते हैं, (त्वाम्) उसे (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा, (त्वाम्) उसे (बृहस्पतिः) वेदवेत्ता विद्वान्, (त्वाम्) उसे (सोमः) सौम्यगुणों से सम्पन्न व्यक्ति, (विद्वान्) सत्य-शास्त्रों का वेत्ता विद्वान् और (राजा) प्रकाशमान क्षत्रिय राजा (त्वा) उसे खोदे ॥ १२ । ९८ ॥

[हे मनुष्याः ! यया सेवितया रोगी यक्ष्मादमुच्यत, यामोषधे=ओषधिं यूयमुपयुङ्ध्व]

भावार्थः—याः काश्चिदोषधयो मूलेन, काश्चिच्छाखादिना, काश्चित्पुष्पेण, काश्चित्पत्रेण, काश्चित्फलेन, काश्चित् सर्वाङ्गैः रोगान् मोचयन्ति; तासां सेवनं मनुष्यैर्यथावत् कार्यम् ॥ १२ । ९८ ॥

भावार्थ—जो कुछ ओषधियाँ मूल से, कुछ शाखा आदि से, कुछ पुष्पों से, कुछ पत्तों से, कुछ फलों से, कुछ सर्वांग से रोगों को हटाती हैं, मनुष्य उनका यथावत् सेवन करें ॥ १२ । ९८ ॥

भाष्यसार—**ओषधियों को खोदने के अधिकारी**—जिन ओषधियों के सेवन से क्षयादि रोगों की निवृत्ति होती है, उनको खोदने का अधिकार सबको नहीं । जो गन्धर्व=गानविद्या में कुशल हों, जो बृहस्पतिः=वेद के विद्वान् हों, जो इन्द्र=परम ऐश्वर्य वाला राजा हो, जो सोम विद्वान् राजा=सोम्य गुणों से तथा ओषधि विद्या से प्रकाशमान हों, वे ही ओषधियों को खुदवाने के अधिकारी हैं !

वरुणः । **ओषधिः=स्पष्टम्** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैः किं कृत्वा किं कार्य्यमित्याह ॥

मनुष्यों को क्या करके क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

सहस्व मे॒ऽ अरा॑ती॒ः सह॑स्व पृतनाय॒तः । सह॑स्व॒ सर्वं॒ पा॒प्मान॒ꣳ सह॑मानास्योषधे ॥ ९९ ॥

पदार्थः—**(सहस्व)** बलीभव **(मे)** मम **(अरातीः)** शत्रून् **(सहस्व) (पृतनायतः)** आत्मनः पृतनां=सेनामिच्छतः **(सहस्व) (सर्वम्) (पाप्मानम्)** रोगादिकम् **(सहमाना)** बलनिमित्ता **(असि) (ओषधे)** ओषधिवद्वर्त्तमाने ॥ ९९ ॥

अन्वयः—हे ओषधे ओषधिवद्वर्त्तमाने स्त्रि ! यथौषधिः सहमानासि मे मम रोगान् सहते तथाऽरातीः सहस्व स्वस्य पृतनायत-सहस्व । सर्वं पाप्मानं सहस्व ॥ ९९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ओषधे=ओषधिवद्वर्त्तमाने स्त्रि** ! ओषधिवद्वर्त्तमाने ! **यथौषधिः सहमाना** बलनिमित्ता **असि, मे=मम रोगान् सहते, तथा अरातीः** शत्रून् **सहस्व** बलीभव, **स्वस्य पृतनायतः** आत्मनः पृतनां सेनामिच्छतः **सहस्व** बली भव,

भाषार्थ—हे (ओषधे) ओषधि के तुल्य वर्ताव वाली स्त्री ! जैसे—ओषधि (सहमाना) बल का निमित्त (असि) है, तथा (मे) मेरे रोगों को वश में करती वैसे तू (अरातीः) शत्रुओं को (सहस्व) वश में कर, अपनी (पृतनायतः) सेना की

सर्वं पाप्मानं रोगादिकं सहस्व बली भव ॥

इच्छा करने वाले को (सहस्व) वश में कर, सब (पाप्मानम्) रोग आदि को (सहस्व) वश में कर ॥ १२ । ९९ ॥

[हे ओषधे ! ···सहमानाऽसि अरातीः सहस्व, स्वस्य पृतनायतः सहस्व, सर्वं पाप्मानं सहस्व]

भावार्थः—मनुष्यैरोषधिसेवनेन बलं वर्धयित्वा प्रजायाः स्वस्य च शत्रून् पापात्मनो जनाँश्च वशं नीत्वा सर्वे प्राणिनः सुखयितव्याः ॥

भावार्थ—मनुष्य—ओषधियों के सेवन से बल को बढ़ाकर प्रजा के और अपने शत्रुओं तथा पापी जनों को वश में करके सब प्राणियों को सुखी करें ॥ १२ । ९९ ॥

भा० पदार्थः—सहमाना=बलवर्द्धिका । पृतनायतः=शत्रून् । पाप्मानम्=पापात्मानं जनम् । सहस्व=वशे नय ।

भाष्यसार—**ओषधि-सेवन का उद्देश्य**—जैसे ओषधियाँ रोगों को वश में करती हैं, वैसे ही ओषधि-सेवन से नीरोग तथा बलवान् होकर अपने तथा प्रजा के शत्रुओं को वश में करे । और शत्रु सेनाओं को पराजित करके पाप्मानम्=जो दुराचरणादि पाप हों उनको वश में करना चाहिये ।

वरुणः । **वैद्याः=स्पष्टम्** । विराड्बृहती । मध्यमः ॥

मनुष्याः कथं भूत्वा स्वभिन्नान् कथं कुर्युरित्याह ॥

मनुष्य कैसे हो के दूसरों को कैसे करें, यह उपदेश किया है ॥

दीर्घायुस्त ऽ ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥

पदार्थः—(**दीर्घायुः**) चिरमायुः (**ते**) तस्याः (**ओषधे**) ओषधिवद्वर्त्तमान विद्वन् (**खनिता**) सेवकः (**यस्मै**) (**च**) (**त्वा**) ताम् (**खनामि**) (**अहम्**) (**अथो**) (**त्वम्**) (**दीर्घायुः**) (**भूत्वा**) (**शतवल्शा**) शतमसंख्याता वल्शा=अङ्कुरा यस्याः सा (**वि**) (**रोहतात्**) ॥ १०० ॥

अन्वयः—हे ओषध इव मनुष्य ! यस्य ते तव यामोषधीं खनिताऽहं खनामि तया त्वं दीर्घायुर्भव दीर्घायुर्भूत्वाथो त्वं या शतवल्शौषधी वर्त्तते त्वा तां सेवित्वाऽथ सुखी भव तथा विरोहतात् ॥

सपदार्थान्वयः—हे **ओषधे=इव मनुष्य** ! ओषधिवद्वर्त्तमान विद्वन् ! **यस्य ते=तव यामोषधीं खनिता** सेवकः **अहं खनामि, तया त्वं दीर्घायुः** चिरमायुः **भव** । **दीर्घायुः** चिरमायुः **भूत्वा अथो त्वं या शतवल्शा** शतमसंख्याता वल्शा=अङ्कुरा यस्याः सा, **ओषधी वर्त्तते त्वा=तां सेवित्वा अथ सुखी भव तथा वि+रोहतात् ॥**

भाषार्थ—हे (ओषधे) ओषधि के समान वर्ताव करने वाले विद्वान् मनुष्य ! (ते) आपकी जिस ओषधि को (खनिता) खोदने वाला सेवक मैं, खोदता हूँ, उससे आप (दीर्घायुः) चिर आयु वाले बनो । और—(दीर्घायुः) चिर आयु वाले होकर (अथो) फिर आप जो (शतवल्शा) असंख्य अंकुरों वाली ओषधि है, (त्वा) उसका सेवन करके सुखी बनो तथा (वि+रोहतात्) विशेष उन्नति करो ॥ १२ । १०० ॥

[हे ओषधे इव मनुष्य !···तया त्वं दीर्घायुर्भव]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयमोषधिसेव-

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—ओषधि-

नेन दीर्घायुषो भवत, धर्माचारिणश्च भूत्वा सर्वानोषधिसेवनेनेदृशान् कुरुत ॥ १२ । १०० ॥

सेवन से दीर्घायु बनो, और धर्माचारी होकर सब को ओषधि-सेवन से दीर्घायु और धर्माचारी बनाओ ॥ १२ । १०० ॥

भाष्यसार—**उत्तम वैद्यों का कर्त्तव्य**—अच्छे ओषधि विद्या के विद्वानों को योग्य है कि वे शतवल्शा=असंख्य अंकुरों वाली ओषधियों के सेवन से दीर्घायु होकर दूसरों को भी दीर्घायु करें। और धर्मात्मा होकर सदा सुखी रहें। ऐसे सद्वैद्य सदा उन्नति करते हैं ॥ १२ । १०० ॥

वरुणः । **भिषज्ः=वैद्याः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्सौषधिः कीदृशीत्याह ॥

फिर वह ओषधि किस प्रकार की है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

त्वमु॑त्त॒मास्यो॑षधे॒ तव॑ वृ॒क्षा ऽ उप॑स्तयः ।
उप॑स्तिरस्तु॒ सो॒ऽस्माकं॒ यो॒ऽअ॒स्माँ२ऽअ॑भि॒दास॑ति ॥ १०१ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (उत्तमा) (असि) अस्ति । अत्र व्यत्ययः (ओषधे) ओषधिः (तव) यस्य (वृक्षाः) वटादयः (उपस्तयः) ये उप समीपे स्त्यायन्ति=संघ्नन्ति ते । अत्रोपपूर्वात्स्त्यै संघात इत्यस्मादौणादिकः क्विप् संप्रसारणं च (उपस्तिः) संहतिः (अस्तु) (सः) (अस्माकम्) (यः) (अस्मान्) (अभिदासति) अभीष्टं सुखं ददाति ॥ १०१ ॥

प्रमाणार्थ—'असि' यहाँ पुरुष व्यत्यय से प्रथम पुरुष के स्थान पर मध्यम पुरुष हुआ है। 'उपस्तयः' यह शब्द उप पूर्वक 'स्त्यै संघाते' धातु से औणादिक क्विप् प्रत्यय और सम्प्रसारण होकर बना है।

अन्वयः—हे वैद्यजन ! योऽस्मान् अभिदासति स त्वमस्माकमुपस्तिरस्तु योत्तमौषधे-ओषधिरसि-अस्ति तव यस्य वृक्षा उपस्तयस्तेनौषधिनाऽस्मभ्यं सुखं देहि ॥ १०१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वैद्यजन ! यो स्मान् अभिदासति** अभीष्टं सुखं ददाति, **स त्वम ऽस्माकमुपस्तिः** संहतिः **अस्तु, योत्तमौषधे=ओषधिरसि=अस्ति, तव=यस्य वृक्षाः** वटादयः **उपस्तयः** ये उप=समीपे स्त्यायन्ति=संघ्नन्ति ते, **तेनौषधिनाऽस्मभ्यं सुखं देहि** ॥ १२ । १०१ ॥

भाषार्थ—हे वैद्य ! जो हमें (अभिदासति) अभीष्ट सुख देता है (सः) वह (त्वम्) तू (अस्माकम्) हमारा (उपस्तिः) संग करने वाला (अस्तु) हो, जो (उत्तमा) उत्तम (ओषधे) ओषधि है, तथा (तव) आपके (वृक्षाः) वट=बड़ आदि वृक्ष (उपस्तयः) पास में संघात रूप में हैं, उस ओषधि से हमें सुख दीजिये ॥ १२ । १०१ ॥

[हे वैद्यजन ! योऽस्मानभिदासति, स त्वमस्माकमुपस्तिरस्तु]

भावार्थः—मनुष्यैर्न कदाचिद् विरोधिनो वैद्यस्यौषधं ग्राह्यं, न विरोधिमित्रस्य च, किन्तु—यो वैद्यक-शास्त्रविदाप्तोऽजातशत्रुः सर्वोपकारी सर्वेषां सुहृद् वर्त्तते तस्मादौषधविद्या संग्राह्या ॥

भावार्थ—मनुष्य—कभी विरोधी वैद्य की औषध ग्रहण न करें, और न विरोधी के मित्र की, किन्तु—जो वैद्यक-शास्त्र का वेत्ता, आप्त, अजातशत्रु, सर्वोपकारी और सबका मित्र है उससे औषध-विद्या को ग्रहण करें ॥ १२ । १०१ ॥

भाष्यसार--**रोगी कैसे वैद्यों से चिकित्सा करायें**--जो अभीष्ट सुख देने वाला हितेच्छु वैद्य हो, उससे ही औषध ग्रहण करना चाहिये, विरोधी वैद्य से नहीं। वह वैद्य उपस्ति=विद्यादि गुणों से पूर्ण तथा संग करने वाला हो। और इतना अच्छा चिकित्सक हो कि जो उसके पास वटादि वृक्ष हों उन्हीं से आवश्यकता होने पर सब रोगों की चिकित्सा जानने वाला हो ॥१२। १०१॥

हिरण्यगर्भः। **कः**=ईश्वरः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अथ किमर्थ ईश्वरः प्रार्थनीय इत्याह॥

अब किसलिये ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये, यह उपदेश किया है॥

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १०२॥

पदार्थः—(**मा**) निषेधे (**मा**) माम् (**हिंसीत्**) रोगैर्हिंस्यात् (**जनिता**) उत्पादकः (**यः**) जगदीश्वरः (**पृथिव्याः**) भूमेः (**यः**) (**वा**) (**दिवम्**) सूर्यादिकं जगत् (**सत्यधर्मा**) सत्यो धर्मो यस्य सः (**वि**) (**आनट्**) व्याप्तोऽस्ति (**यः**) (**च**) अग्निं सूर्यम् (**अपः**) जलानि वायून् (**चन्द्राः**) चन्द्रादिलोकान्। अत्र शसः स्थाने जस् (**प्रथमः**) जन्मादेः पृथगादिमः (**जजान**) जनयति (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय सुखकारकाय। क इति पदना०॥ निघं० ५। ४॥ वा छन्दसि सर्वे विधय इति सर्वनामकार्य्यम् (**देवाय**) दिव्यसुखप्रदाय विज्ञानस्वरूपाय (**हविषा**) उपादेयेन भक्तियोगेन (**विधेम**) परिचरेम॥ १०२॥

प्रमाणार्थ—'चन्द्राः' यहाँ सुप् व्यत्यय से शस् के स्थान पर जस् प्रत्यय हुआ है। 'कस्मै' यहाँ क शब्द (**निघण्टु** ५। ४) में पद-नामों में पढ़ा है। इसमें "वा छन्दसि सर्वे विधयः" इस वार्तिक से सर्वनाम कार्य हुआ है।

अन्वयः—यः सत्यधर्मा जगदीश्वरः पृथिव्या जनिता यो वा दिवमपश्च व्यानट्। चन्द्राश्च जजान यस्मै कस्मै देवाय हविषा वयं विधेम स जगदीश्वरो मा मा हिंसीत्॥ १०२॥

सपदार्थान्वयः—**यः** जगदीश्वरः **सत्यधर्मा**=**जगदीश्वरः** सत्यो धर्मो यस्य सः, **पृथिव्याः** भूमेः **जनिता** उत्पादकः, **यः** जगदीश्वरः **वा दिवं** सूर्य्यादिकं जगद् **अपः** जलानि वायून् **च** अग्निं सूर्य्यं **व्यानट्** व्याप्तोऽस्ति। [**प्रथमः**] जन्मादेः पृथगादिमः **चन्द्राः** चन्द्रादिलोकान् **च जजान** जनयति, **यस्मै कस्मै** सुखस्वरूपाय सुखकारकाय **देवाय** दिव्यसुखप्रदाय विज्ञानस्वरूपाय **हविषा** उपादेयेन भक्तियोगेन **वयं विधेम** परिचरेम, **स जगदीश्वरो मा मां मा न हिंसीत्** रोगैः हिंस्यात्॥ १२। १०२॥

भाषार्थ—(यः) जो जगदीश्वर (सत्यधर्मा) सत्य धर्म वाला, (पृथिव्याः) भूमि का (जनिता) उत्पादक है, (वा) अथवा (यः) जो जगदीश्वर (दिवम्) सूर्य आदि जगत् को, (अपः) जल तथा वायु को, (च) और अग्नि तथा सूर्य को (व्यानट्) व्याप्त करता है, और—[प्रथमः] जन्म आदि से पृथक् तथा आदिम है, और (चन्द्राः) चन्द्र लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है, जिस (कस्मै) सुखस्वरूप, सुखकारक (देवाय) दिव्य सुखों के प्रदाता, विज्ञान स्वरूप जगदीश्वर की (हविषा) उपादेय भक्ति योग से हम (विधेम) परिचर्या=सेवा करें, वह जगदीश्वर (मा) मुझे (मा हिंसीत्) रोगों से पीड़ित न करे॥

[यः सत्यधर्मा जगदीश्वरः पृथिव्या जनिता```स```मा मा हिंसीत्]

भावार्थः—मनुष्यैः सत्यधर्मप्राप्तये, ओषध्यादि विज्ञानाय च परमेश्वरः प्रार्थनीयः ॥

भावार्थ—मनुष्य सत्य धर्म की प्राप्ति के लिए और ओषधि आदि के विज्ञान के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करें ॥ १२ । १०२ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर की उपासना का फल**—जो परमेश्वर पृथिवी, सूर्यादि को रचने वाला है जो जलादि को व्याप्त कर रहा है, जो जन्मादि से रहित है, उस दिव्य गुणों से पूर्ण सबको आनन्द देने वाले परमेश्वर की ही उपासना करनी चाहिये । ईश्वर की उपासना करने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक दुःखों से छूट जाता है ॥ १२ । १०२ ॥

हिरण्यगर्भः । **अग्निः**=विद्युत् । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भूस्थपदार्थविज्ञानं कथं कर्त्तव्यमित्याह ॥

पृथिवी के पदार्थों का विज्ञान कैसे करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह । वपां तेऽ अग्निरिषितोऽ अरोहत् ॥ १०३ ॥

पदार्थः—(अभि) (आ) (वर्त्तस्व) वर्तते वा (पृथिवि) भूमिः (यज्ञेन) संगमनेन (पयसा) जलेन (सह) (वपाम्) वपनम् (ते) तव (अग्निः) (इषितः) प्रेरितः (अरोहत्) रोहति ॥ १०३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! त्वं या पृथिवि भूमिर्यज्ञेन पयसा सह वर्त्तते तामभ्यावर्त्तस्वाभिमुख्येनावर्तते यया ते वपामिषितोऽग्निररोहत्स गुणकर्मस्वभावतः सर्वैर्वेदितव्यः ॥ १०३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! त्वं या पृथिवि=भूमिर्यज्ञेन संगमनेन पयसा जलेन सह वर्त्तते, तामभ्यावर्त्तस्व=आभिमुख्येनाऽऽवर्त्तते वर्त्तते वा, यया ते तव वपां वपनम् इषितः प्रेरितः अग्निररोहत् रोहति, स गुणकर्मस्वभावतः सर्वैर्वेदितव्यः ॥ १२ । १०३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! तू जो (पृथिवि) भूमि (यज्ञेन) संगतिकारक यज्ञ से (पयसा) जल से (सह) युक्त है, उसको (अभ्यावर्त्तस्व) सब ओर से वर्ताव में ला । जिससे (ते) तेरी (वपाम्) वपन-क्रिया के प्रति (इषितः) प्रेरित की हुई (अग्निः) विद्युत् (अरोहत्) बढ़ती है, उसे गुण, कर्म और स्वभाव से जान ॥ १२ । १०३ ॥

[हे मनुष्य ! त्वं या पृथिवि=भूमिः यज्ञेन पयसा सह वर्त्तते, यया इषितोऽग्निररोहत् स गुणकर्मऽस्वभावतः सर्वैर्वेदितव्यः]

भावार्थः—या भूमिः सर्वस्याधारा, रत्नाकरा, जीवनप्रदा, विद्युद्युक्ताऽस्ति, तस्या विज्ञानं भूगर्भविद्यातः सर्वैर्मनुष्यैः कार्यम् ॥ १२ । १०३ ॥

भावार्थ—जो भूमि सबका आधार, रत्नों का खजाना, जीवनप्रद और विद्या से युक्त है, उसका विज्ञान भूगर्भविद्या से सब मनुष्य प्राप्त करें ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=विद्युत् ।

भाष्यसार—**भूगर्भ-विद्या का ज्ञान आवश्यक**—सभी मनुष्यों को योग्य है कि पृथिवी सब प्रकार के रत्नों का खजाना है, इसमें लोकोपयोगी तथा संगतिकारक पयसा=जल अथवा तेलादि भरे हुए हैं । अतः भूगर्भ-विद्या को जानकर उनका सदुपयोग करें और कृषि आदि से अन्नादि उपज बढ़ाकर सदा सुखी रहें ॥ १२ । १०३ ॥

हिरण्यगर्भः । **अग्निः**=**अग्निविद्या** । भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥

किमर्थाऽग्निविद्यान्वेषणीया इत्याह ॥

किसलिए अग्निविद्या की खोज करनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**यत्**) (**ते**) तुभ्यम् (**शुक्रम्**) आशुकरम् (**यत्**) (**चन्द्रम्**) हिरण्यवदानन्दप्रदम् (**यत्**) (**पूतम्**) पवित्रम् (**यत्**) (**च**) (**यज्ञियम्**) यज्ञानुष्ठानार्हं स्वरूपम् (**तत्**) (**देवेभ्यः**) गुणेभ्यः (**भरामसि**) भरेम ॥ १०४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यत्पावकस्य शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियं स्वरूपमस्ति तत्ते देवेभ्यश्च वयं भरामसि ॥ १०४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=**विद्वन्** ! **यत् पावकस्य शुक्रम्** आशुकरं **यच्चन्द्रं** हिरण्यवदानन्दप्रदं **यत् पूतं** पवित्रं **यच्च यज्ञियं** यज्ञाऽनुष्ठानाऽर्हं **स्वरूपमस्ति, तत्** **ते** तुभ्यं **देवेभ्यः** गुणेभ्यः **च वयं भरामसि** भरेम ॥ १२ । १०४ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (यत्) जो अग्नि का (शुक्रम्) आशुकारी (यत्) जो (चन्द्रम्) हिरण्य=सुवर्ण के समान आनन्दप्रद, (यत्) जो (पूतम्) पवित्र और (यत्) जो (यज्ञियम्) यज्ञानुष्ठान के योग्य स्वरूप है, उसे (ते) आप के लिए एवं (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिए हम (भरामसि) धारण करें ॥ १२ । १०० ॥

[हे अग्ने !=विद्वन् ! यत् पावकस्य शुक्रं, चन्द्रं, पूतं, यज्ञियं स्वरूपमस्ति तत्ते देवेभ्यश्च भरामसि]

भावार्थः—मनुष्यैर्दिव्यगुणकर्मसिद्धये विद्युदादेरग्नेर्विद्या संप्रेक्षणीया ॥ १२ । १०४ ॥

भावार्थ—मनुष्य दिव्य गुण, कर्म की सिद्धि के लिए विद्युत् आदि अग्नि से विद्याओं का प्रत्येक्ष करें ॥ ॥ १२ । १०४ ॥

भा० पदार्थः—देवेभ्यः=दिव्यगुणकर्मसिद्धये ।

भाष्यसार—**अग्नि-विद्या के लाभ**—विद्वानों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए अग्नि-विद्या को अवश्य ही जानें। क्योंकि इसके जानने से यज्ञ के लाभों का ज्ञान होता है । यह अग्नि-शुद्धिकारक और पावन करने वाली है। शुक्रम्=अग्नि-विद्या के ज्ञान से शीघ्र चलने वाले यन्त्रों का आविष्कार हो सकता है। जिससे (**चन्द्रम्**) आनन्दवर्द्धक विविध प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ॥ १२ । १०४ ॥ ●

हिरण्यगर्भः । **विद्वान्**=**स्पष्टम्** । विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ युक्ताहारविहारौ कुर्युरित्याह ॥

अब ठीक-ठीक आहार विहार करें, यह उपदेश किया है ॥

इषमूर्जमहमित ऽ आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

पदार्थः—(**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**अहम्**) (**इतः**) अस्मात्पूर्वोक्तात् विद्युत्स्व-

रूपात् (**आदम्**) अत्तुं योग्यम् (**ऋतस्य**) सत्यस्य (**योनिम्**) कारणम् (**महिषस्य**) महतः (**धाराम्**) धारिकां वाचम् (**आ**) (मा) माम् (**गोषु**) इन्द्रियेषु (**विशतु**) प्रविशतु (**आ**) (**तनूषु**) शरीरेषु (**जहामि**) (**सेदिम्**) हिंसाम् । **सेदिमनि० ॥ अ० ३ । २ । १७१ ॥ इति वार्त्तिकेनास्य सिद्धिः** (**अनिराम्**) अविद्यमाना इराऽन्नभुक्ति-र्यस्यां ताम् (**अमीवाम्**) रोगोत्पन्नां पीडाम् ॥ १०५ ॥

प्रमाणार्थ—'सेदिम्' इस की सिद्धि 'सेदिमनि०' (**अ०** ३ । २ । १७१) इस वार्त्तिक से कि प्रत्यय तथा लिट्वत् कार्य करने से होती है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहमित आदमिषमूर्जं महिषस्यर्त्तस्य योनिं धारां प्राप्नुयां यथेयमिड्रूर्क् मा मामाविशतु । येन मम गोषु तनूषु प्रविष्टां सेदिमनितराममीवां जहामि त्यजामि तथा यूयमपि कुरुत ॥ १०५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा अहमितः** अस्मात् पूर्वोक्तात् विद्युत्स्वरूपाद् **आदम्** अत्तुं योग्यम् **इषम्** अन्नम् **ऊर्जं** पराक्रमं **महिषस्य** महतः **ऋतस्य** सत्यस्य **योनिं** कारणं **धारां** धारिकां वाचं **प्राप्नुयाम्, यथेयमिड्रूर्क् मा**=**माम् आ**+**विशतु** प्रविशतु, **येन मम गोषु** इन्द्रि-येषु **तनूषु** शरीरेषु **प्रविष्टां सेदिं** हिंसाम् **अनि-राम्** अविद्यमाना इराऽन्नभुक्तिर्यस्यां ताम् **अमीवां** रोगोत्पन्नां पीडां **जहामि**=**त्यजामि तथा यूयमपि कुरुत** ॥ १२ । १०५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—(इतः) इस पूर्वोक्त विद्युत् स्वरूप अग्नि से (आदम्) खाने योग्य (इषम्) अन्न को, (ऊर्जम्) पराक्रम को, (महिषस्य) महान् (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) कारण को (धाराम्) धारण करने वाली वाणी को प्राप्त करता हूँ; जैसे—यह अन्न और पराक्रम (मा) मुझ में (आ+विशतु) प्रविष्ट होते हैं; जिससे—मेरी (गोषु) इन्द्रियों और (तनूषु) शरीर में प्रविष्ट हुई (सेदिम्) हिंसा को, (अनि-राम्) जिसमें अन्न का सेवन न कर सकें ऐसी (अमीवाम्) रोग से उत्पन्न पीड़ा को (जहामि) छोड़ता हूँ; वैसे तुम भी करो ॥ १२ । १०५ ॥

[अहमितः···अमीवां जहामि]

भावार्थः—मनुष्या अग्नेर्यच्छुक्लादियुक्तं स्वरूपं तेन रोगान् हन्युः ।

भावार्थ—मनुष्य—अग्नि का जो शुक्ल आदि गुणों से युक्त स्वरूप है उससे रोगों का हनन करें ।

[मम गोषु तनूषु प्रविष्टां सेदिं···जहामि, महत ऋतस्य योनिं धारां प्राप्नुयाम्]

इन्द्रियाणि शरीराणि च स्वस्थान्यरोगाणि कृत्वा कार्यकारणज्ञापिकां विद्यावाचं प्राप्नुवन्तु ।

इन्द्रियों और शरीरों को स्वस्थ एवं नीरोग बनाकर कार्य-कारण को बतलाने वाली विद्या सम्बन्धी वाणी को प्राप्त करें ।

[अहम्···आदमिषमूर्जं···प्राप्नुयाम्]

युक्ताहारविहारौ च कुर्युः ॥ १२ । १०५ ॥

और-युक्त आहार-विहार करें ।

भा० पदार्थः—इतः=अग्नेर्यच्छुक्लादियुक्तं स्वरूपं तेन । अमीवाम्=रोगम् । जहामि= हन्मि । योनिम्=कार्यकारणज्ञापिकाम् । धाराम्=विद्यावाचम् । इषम्=आहारम् । ऊर्जम्=विहारम् ॥

भाष्यसार—**मनुष्य का आहार कैसा हो**—मनुष्यों को उचित है कि वे विद्युदग्नि की सहायता से ऐसे अन्नों की उत्पत्ति बढ़ाएँ, जिनसे शक्ति की वृद्धि हो । वाणी सत्यता को धारण कर

सके। भोजन ऐसा सात्त्विक होना चाहिये, जिससे शरीर तथा इन्द्रियों के दोष दूर होकर सत्त्व गुणों की वृद्धि हो। और हिंसावृत्ति को बढ़ाने वाले तथा रोगों की उत्पत्ति करने वाले भोजनों का सर्वथा त्याग कर देवें ॥ १२ । १०५ ॥

पावकाग्निः । **अग्निः**=विद्वान् । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः कथं भवितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते ऽ अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥ १०६ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) पावक इव वर्तमान विद्वन् (**तव**) (**श्रवः**) श्रवणम् (**वयः**) जीवनम् (**महि**) पूज्यं महत् (**भ्राजन्ते**) (**अर्चयः**) दीप्तयः (**विभावसो**) यो विविधायां भायां वसति तत्सम्बुद्धौ (**बृहद्भानो**) अग्निवद्बृहन्तो=महान्तो भानवो=विद्याप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शवसा**) बलेन (**वाजम्**) विज्ञानम् (**उक्थ्यम्**) वक्तुं योग्यम् (**दधासि**) (**दाशुषे**) दातुं योग्याय विद्यार्थिने (**कवे**) विक्रान्तप्रज्ञ ॥ १०६ ॥

अन्वयः—हे बृहद्भानो विभावसो कवेऽग्ने विद्वन् ! यतस्त्वं शवसा दाशुष उक्थ्यं वाजं दधासि तस्मात्तवाग्नेरिव महि श्रवो वयोऽर्चयश्च भ्राजन्ते ॥ १०६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे बृहद्भानो ! अग्निवद्बृहन्तो=महान्तो भानवो=विद्याप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **विभावसो** यो विविधायां भायां वसति तत्सम्बुद्धौ ! **कवे** ! विक्रान्तप्रज्ञ ! **अग्ने** !=**विद्वन्** पावक इव वर्त्तमान विद्वन् ! **यतस्त्वं शवसा** बलेन **दाशुषे** दातुं योग्याय विद्यार्थिने **उक्थ्यं** वक्तुं योग्यं **वाजं** विज्ञानं **दधासि, तस्मात् तवाग्नेरिव महि** पूज्यं महत् **श्रवः** श्रवणं **वयः** जीवनम् **अर्चयः** दीप्तयः **च भ्राजन्ते** ॥ १२ । १०६ ॥

भाषार्थ—हे (बृहद्भानो) अग्नि के समान महान् विद्या के प्रकाश वाले, (विभावसो) विविध विद्या-प्रकाश में निवास करने वाले, (कवे) अत्यन्त बुद्धिमान्, (अग्ने) अग्नि के समान वर्ताव वाले विद्वान् ! क्योंकि आप (शवसा) बल से (दाशुषे) विद्यादान के योग्य विद्यार्थी के लिए (उक्थ्यम्) उपदेश करने योग्य (वाजम्) विज्ञान को (दधासि) धारण करते हो; अतः (तव) आपका अग्नि के समान (महि) पूजा के योग्य महान् (श्रवः) सुनने के योग्य शब्द, (वयः) जीवन और (अर्चयः) विद्या की किरणें (भ्राजन्ते) चमकती हैं ॥ १२ । १०६ ॥

[हे बृहद्भानो !··· तवाग्नेरिव···अर्चयः ··· भ्राजन्ते]

भावार्थः—ये मनुष्या अग्निवद्गुणिन आप्तवत् सत्कीर्तयः प्रकाशन्ते,

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि के समान गुणी, आप्त पुरुष के समान सत्कीर्ति वाले होकर प्रकाशित होते हैं —

[दाशुषे ··· वाजं दधासि]

ते परोपकारायान्येभ्यो विद्याविनयधर्मान् सततमुपदिशेयुः ॥ १२ । १०६ ॥

वे परोपकार के लिए अन्यों को विद्या, विनय और धर्म का सदा उपदेश करें ॥ १२ । १०६ ॥

भा० पदार्थः—बृहद्भानो !=अग्निवद्गुणिन् ! । अर्चयः=सत्कीर्तयः । भ्राजन्ते=प्रकाशन्ते । दाशुषे=परोपकाराय । वाजम्=विद्याविनयधर्मम् । दधासि=उपदिशसि ॥

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वानों को उचित है कि प्रथम वे स्वयं बृहद्भानु=अग्नि के समान महान् विद्या के प्रकाश से युक्त, विभावसु=सदा प्रकाश में ही निवास करने वाले हों। विद्या रूपी अग्नि से प्रकाशमान होकर कवि=अत्यन्त बुद्धिमान् बनें। तत्पश्चात् उस विद्याबल से दाशुषे=विद्या-दान के योग्य अधिकारी विद्यार्थी को युक्त करें। विद्या का दान करने से विद्या की किरणें सर्वत्र फैलने से विद्वान् का जीवन पूजनीय बन जाता है। अतः विद्वान् को निरन्तर विद्या-दान में लगे रहना चाहिये ॥ १२ । १०६ ॥

पावकाग्निः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

जनकजनन्यौ सन्तानान् प्रति किं किं कुर्यातामित्याह ॥

माता-पिता सन्तानों के प्रति क्या-क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः ऽ अनूनवर्चा ऽ उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी ऽ उभे ॥ १०७ ॥

पदार्थः—(**पावकवर्चाः**) पवित्रीकारिकाया विद्युतो वर्चो=दीप्तिरिव वर्चोऽध्ययनं यस्य सः (**शुक्रवर्चाः**) शुक्रस्य=सूर्यस्य प्रकाश इव वर्चो=न्यायाचरणं यस्य सः (**अनूनवर्चाः**) न विद्यते ऊनं=न्यूनं यस्य सः (**उत्**) (**इयर्षि**) प्राप्नोषि (**भानुना**) धर्मप्रकाशेन (**पुत्रः**) (**मातरा**) मातापितरौ (**विचरन्**) (**उप**) (**अवसि**) रक्षसि (**पृणक्षि**) संबध्नासि (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**उभे**) ॥ १०७ ॥

अन्वयः—हे जन ! यस्त्वं यथा पुत्रो ब्रह्मचर्यादिषु विचरन् सन् विद्यामाप्नोति तथा सूर्यविद्युतौ भानुना पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चा न्यायं करोति यथा संबध्नीत तथा विद्यामियर्षि राज्यं पृणक्षि । मातरोपाऽवसि तस्माद्धार्मिकोऽसि ॥ १०७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जन ! यस्त्वं यथा पुत्रो ब्रह्मचर्य्यादिषु विचरन् सन् विद्यामाप्नोति, यथा सूर्य्यविद्युतौ भानुना धर्मप्रकाशेन पावकवर्चाः पवित्रीकारिकाया विद्युतो वर्चो=दीप्तिरिव वर्चोऽध्ययनं यस्य सः, **शुक्रवर्चाः** शुक्रस्य=सूर्य्यस्य प्रकाश इव वर्चो=न्यायाचरणं यस्य सः, **अनूनवर्चाः** न विद्यते ऊनं=न्यूनं वर्चः यस्य सः, **न्यायं करोति, यथा** [उभे] [**रोदसी**] द्यावापृथिव्यौ **संबध्नीत तथा विद्याम्** [उत्]+**इयर्षि** प्राप्नोषि, **राज्यं पृणक्षि** सम्बध्नासि, **मातरा** मातापितरौ **उपावसि** रक्षसि, **तस्माद्धार्मिकोऽसि** ॥ १२ । १०७ ॥

भावार्थ—हे पुरुष ! तू–जैसे पुत्र ब्रह्मचर्य आदि में विचरण करता हुआ विद्या को प्राप्त करता है, सूर्य और विद्युत् के समान (भानुना) धर्म के प्रकाश से (पावकवर्चाः) पवित्र करने वाली विद्युत् के समान अध्ययन की दीप्ति से दीप्तिमान्, (शुक्रवर्चाः) सूर्य के प्रकाश के समान न्यायाचरण के प्रकाश से प्रकाशमान, (अनूनवर्चाः) पूर्ण तेज वाला होकर न्याय करता है, जैसे—[उभे] दोनों [रोदसी] द्युलोक और पृथिवी परस्पर सम्बद्ध हैं; वैसे–विद्या को ([उत्]+इयर्षि) प्राप्त करता है, राज्य को (पृणक्षि) बांधता है, (मातरा) माता-पिता की (उपावसि) रक्षा करता है; अतः धार्मिक है ॥ १२ । १०७ ॥

[हे जन ! यस्त्वं यथा पुत्रो ब्रह्मचर्यादिषु विचरन् सन् विद्यामाप्नोति'''पावकवर्चाः तथा विद्याम् [उत्] इयर्षि]

भावार्थः—मातापितॄणामिदमत्युचितमस्ति यत्–सन्तानानुत्पाद्य बाल्यावस्थायां स्वयं सुशिक्ष्य ब्रह्मचर्यं कारयित्वाऽऽचार्यकुले विद्याग्रहणाय संप्रेष्य विद्यायोगकरणम् ।

भावार्थ—माता-पिता को यह अति उचित है कि—सन्तानों को उत्पन्न कर, बाल्यावस्था में स्वयं सुशिक्षा करके, ब्रह्मचर्य करा, आचार्य कुल में विद्या ग्रहण करने के लिए भेजकर विद्या युक्त करना ।

[मातरा उपावसि]

अपत्यानां चेदं समुचितं वर्तते यत्–विद्यासुशिक्षायुक्ता भूत्वा पुरुषार्थेनैश्वर्यमुन्नीय, निरभिमानमत्सरया प्रीत्या मातापितॄणां मनसा वाचा कर्मणा यथावत् परिचर्यानुष्ठानं कर्त्तव्यमिति

सन्तानों को यह अति उचित है कि—विद्या और सुशिक्षा से युक्त होकर, पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को उन्नत करके, अभिमान और ईर्ष्या से रहित होकर प्रीतिपूर्वक माता-पिता की मन, वचन, कर्म से यथावत् सेवा करना ॥ १२ । १०७ ॥

भा० पदार्थः—पुत्रः=सन्तानः । मातरा=मातापितरौ ॥

भाष्यसार—**माता-पिता तथा सन्तान का कर्त्तव्य**—माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे सन्तान उत्पन्न करके उसे सुशिक्षित करें । सन्तान को पावकवर्चा=पवित्र कराने वाली विद्या से युक्त करें, शुक्रवर्चाः=सूर्य की भांति न्यायाचरण करने वालाब नावें अर्थात् उसके चरित्र का विशेष ध्यान रक्खें । अनूनवर्चा=और ऐसा प्रयत्न करें कि सन्तान में किसी प्रकार का दोष न रहे, उसका सर्वाङ्गपूर्ण विकास हो सके ।

सन्तान का कर्त्तव्य यह है कि वह सुशिक्षित होकर माता-पिता की सदा सेवा करते हुए उनकी रक्षा करे । और जैसे द्युलोक और पृथिवी परस्पर सम्बद्ध हैं वैसे ही विद्या की प्राप्ति निरन्तर करता रहे ॥ १२ । १०७ ॥

पावकाग्निः । **अग्निः=सन्तानः** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मातापितृसन्तानाः कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

माता, पिता और सन्तान कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे ऽ इषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

पदार्थः—(**ऊर्जः**) पराक्रमस्य (**नपात्**) न विद्यते पातो=धर्मात्पतनं यस्य सः (**जातवेदः**) जातप्रज्ञान=जातवित्त (**सुशस्तिभिः**) शोभनाभिः प्रशंसाभिः क्रियाभिः सह (**मन्दस्व**) आनन्द (**धीतिभिः**) स्वाङ्गुलीभिः । धीतय इत्यङ्गुलिनाम० ॥ निघं० २ । ५ ॥ (**हितः**) सर्वस्य हितं दधन् (**त्वे**) त्वयि (**इषः**) अन्नादीनि (**सम्**) (**दधुः**) दधतु (**भूरिवर्पसः**) बहूनि प्रशंसनीयानि वर्पांसि=रूपाणि यासु ताः । वर्प इति रूपना० ॥ निघं० ३ । ७ ॥ (**चित्रोतयः**) चित्रा=आश्चर्य्यवद्रक्षणाद्याः क्रिया यासु ताः (**वामजाताः**) वामेषु=प्रशस्येषु कर्मसु वा जाताः=प्रसिद्धाः । वाम इति प्रशस्यना० ॥ निघं० ३ । ८ ॥ १०८ ॥

प्रमाणार्थ—'धीतिभिः' यहाँ धीति शब्द अंगुलि-वाचक है। धीति शब्द निघण्टु (२। ५) में अङ्गुलि-नामों में पढ़ा है। 'भूरिवर्पसः' यहाँ वर्प शब्द रूप वाचक है और निघण्टु (३। ७) में वर्प शब्द रूप नामों में पढ़ा है। 'वामजाताः' यहाँ वाम शब्द प्रशस्यवाचक है और यह शब्द प्रशस्य-नामों में निघण्टु (३। ८) में पढ़ा है।

अन्वयः—हे जातवेदस्तनय ! यस्मिँस्त्वे त्वयि भूरिवर्पसश्चित्रोतयो जाता मात्रादयोऽध्यापिका इषः संदधुः स सुशस्तिभिर्धीतिभिराहूत ऊर्ज्जो नपाद्धितः सदा मन्दस्व ॥ १०८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जातवेदः ! =तनय** जातप्रज्ञान=जातवित्त ! **यस्मिँस्त्वे=त्वयि भूरिवर्पसः** बहूनि प्रशंसनीयानि वर्पांसि=रूपाणि यासु ताः, **चित्रोतयः** चित्रा=आश्चर्य्यवद्रक्षणाद्याः क्रिया यासु ताः, [**वामजाता**] वामेषु=प्रशस्येषु कर्मसु वा जाताः=प्रसिद्धाः **मात्रादयोऽध्यापिका इषः** अन्नादीनि **सम्+दधुः** दधतु, **स सुशस्तिभिः** शोभनाभिः प्रशंसाभिः क्रियाभिः सह **धीतिभिः** स्वाङ्गुलीभिः **आहूत ऊर्ज्जः** पराक्रमस्य **नपात्** न विद्यते पातो=धर्मात्पतनं यस्य सः, **हितः** सर्वस्य हितं दधन् **सदा मन्दस्व** आनन्द ॥ १२। १०८ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) प्रज्ञान=बुद्धि और वित्त=धन से युक्त पुत्र ! (त्वे) तुझ में (भूरिवर्पसः) नाना प्रशंसनीय रूपों वाली, (चित्रोतयः) आश्चर्य से युक्त रक्षा आदि कर्म करने वाली, [वामजाताः] वाम=प्रशंसनीय कर्मों में प्रसिद्ध माता आदि अध्यापिकाएँ (इषः) अन्न आदि को (सम्+दधुः) धारण करें, अर्थात् तुझे अन्न आदि प्रदान करें सो तू (सुशस्तिभिः) सुन्दर प्रशंसनीय कर्म करने वाली (धीतिभिः) सुन्दर अंगुलियों से बुलाया हुआ (ऊर्जः) पराक्रम को (नपात्) धर्म से गिराने वाला न होकर (हितः) सबके हित को धारण करता हुआ सदा (मन्दस्व) आनन्द कर ॥ १२। १०८ ॥

[हे जातवेदः=तनय ! यस्मिँस्त्वे=त्वयि मात्रादयोऽध्यापिका इषं संदधुः]

भावार्थः—येषां कुमाराणां कुमारीणां मातरो विद्याप्रिया विदुष्यः सन्तु, त एव सततं सुखमाप्नुवन्ति।

भावार्थ—जिन कुमारों एवं कुमारियों की माताएँ विद्याप्रिय विदुषी होती हैं वे ही सदा सुख को प्राप्त करती हैं।

[स सुशस्तिभिः ··· ऊर्जो नपात् सदा मन्दस्व]

यासां मातॄणां येषां पितॄणां चापत्यानि विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्यैः शरीरात्मबलयुक्तानि धर्माचारीणि सन्ति, त एव सदा सुखिनः स्युः ॥ १२। १०८ ॥

जिन माता-पिता के सन्तान विद्या, सुशिक्षा और ब्रह्मचर्य से शारीरिक तथा आत्मिक बल से युक्त धर्माचारी होते हैं वे ही सदा सुखी रहते हैं।

भा० पदार्थः—जातवेदः=कुमारः/कुमारी। सुशस्तिभिः=विद्यासुशिक्षाब्रह्मचर्यैः। ऊर्जः=शरीरात्मबलम्। नपात्=धर्माचारी। मन्दस्व=सदा सुखी भव ॥

भाष्यसार—**माता-पिता का कर्त्तव्य**—धार्मिक तथा विद्वान् माता-पिता को योग्य है कि वह सन्तान को विद्या से, बुद्धि से तथा धनादि से सम्पन्न करें, और ऐसा यत्न करें जिससे सन्तान का शारीरिक पूर्ण विकास होने से सुन्दर रूपवाली बने। अपने चरित्रधन की रक्षा करने वाली हो, उसके सभी कार्य प्रशंसनीय हों, नपात्=धर्म से कभी भी अलग न हो और हितकर कार्य करती हुई सदा आनन्द से युक्त रहे ॥ १२। १०८ ॥

पावकाग्निः । **अग्निः**=पुरुषार्थी । निचृदार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यः कीदृशो भवेदित्याह ॥

मनुष्य कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

इ॒र॒ज्यन्न॑ग्ने प्रथयस्व ज॒न्तुभि॑र॒स्मे रायो॑ ऽ अमर्त्य ।
स द॑र्श॒तस्य॒ वपु॑षो॒ वि रा॑जसि पृ॒णक्षि॑ सान॒सिं क्रतु॑म् ॥ १०९ ॥

पदार्थः—(इरज्यन्) ऐश्वर्यं कुर्वन् । इरज्यतीति ऐश्वर्यकर्मा० ॥ निघं० २ । २१ ॥ (अग्ने) अग्निवत्प्राप्तपुरुषार्थ (प्रथयस्व) विस्तारय (जन्तुभिः) मनुष्यादिभिः (अस्मे) अस्मभ्यम् (रायः) श्रियः (अमर्त्य) नाशप्राकृतमनुष्यस्वभावरहित (सः) (दर्शतस्य) द्रष्टुं योग्यस्य (वपुषः) रूपस्य । वपुरिति-रूपना० ॥ निघं० ३ । ७ ॥ (वि) (राजसि) (पृणक्षि) संबध्नासि (सानसिम्) सनातनीम् (क्रतुम्) प्रज्ञाम् ॥ १०९ ॥

प्रमाणार्थ—'इरज्यन्' इरज्यति क्रिया निघण्टु २ । २१ में ऐश्वर्यार्थ क्रियाओं में पढ़ी है । 'वपुषः' वपुष् शब्द निघण्टु ३ । ७ में रूप-नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे अमर्त्याग्ने ! य इरज्यंस्त्वं दर्शतस्य वपुषः सानसिं क्रतुं पृणक्षि तत्रैव विराजसि सोऽस्मे जन्तुभी रायः प्रथयस्व ॥ १०९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अमर्त्य** ! नाशप्राकृतमनुष्यस्वभावरहित ! **अग्ने** ! अग्निवत् प्राप्तपुरुषार्थ ! **य इरज्यन्** ऐश्वर्यं कुर्वन् **त्वं दर्शतस्य** द्रष्टुं योग्यस्य **वपुषः** रूपस्य **सानसिं** सनातनीं **क्रतुं** प्रज्ञां **पृणक्षि** संबध्नासि, **तत्रैव वि+राजसि, सोऽस्मै** अस्मभ्यं **जन्तुभिः** मनुष्यादिभिः **रायः** श्रियः **प्रथयस्व** विस्तारय ॥ १२ । १०९ ॥

भाषार्थ—हे (अमर्त्य) नाश और प्राकृत=मूर्ख मनुष्य के स्वभाव से रहित (अग्ने) अग्नि के समान पुरुषार्थी ! (इरज्यन्) ऐश्वर्य को सिद्ध करता हुआ तू (दर्शतस्य) दर्शनीय (वपुषः) रूप की (सानसिम्) सनातन (क्रतुम्) प्रज्ञा=बुद्धि को (पृणक्षि) संबद्ध करता है एवं उसी में (वि+राजसि) विराजमान रहता है, सो (अस्मे) हमारे लिए (जन्तुभिः) मनुष्य आदि प्राणियों से (रायः) श्री=लक्ष्मी का (प्रथयस्व) विस्तार कर ॥ १२ । १०९ ॥

[हे⋯अग्ने ! य—त्वं सानसिं क्रतुं पृणक्षि तत्रैव विराजसि, सोऽस्मे⋯रायः प्रथयस्व]

भावार्थः—यो मनुष्येभ्यः सनातनीं वेदविद्यां ददाति, सुरूपाचारे विराजते, स एवैश्वर्यं लब्ध्वाऽन्येभ्यः प्रापयितुं शक्नोति ॥ १२ । १०९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्यों को सनातन वेद-विद्या देता है, सुन्दर आचरण में विराजमान रहता है, वही ऐश्वर्य को प्राप्त करके अन्यों को भी प्राप्त कर सकता है ॥ १२ । १०९ ॥

भा० पदार्थः—क्रतुम्=वेदविद्याम् । पृणक्षि=ददासि । रायः=ऐश्वर्यम् ।

भाष्यसार—**पुरुषार्थी ही लक्ष्मी का स्वामी**—अग्नि के समान पुरुषार्थी तथा कार्य में कुशल मनुष्य अज्ञानादि से रहित होकर ऐश्वर्य को प्राप्त करता है । उसका रूप दर्शनीय होता है, उसकी बुद्धि सदा कार्य में संलग्न रहती है, वह सदा दूसरे प्राणियों की अपेक्षा लक्ष्मी का अधिक विस्तार कर लेता है ॥ १२ । १०९ ॥

पावकाग्निः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

कः परोपकारी जायत इत्याह ॥

कौन पुरुष परोपकारी होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इ॒ष्क॒र्त्तार॑मध्व॒रस्य॑ प्रचे॑तसं॒ क्षय॑न्तु॒ꣳ राध॑सो म॒हः ।
रा॒तिं वा॒मस्य॑ सु॒भगां॑ म॒हीमिषं॑ द॒धा॑सि सान॒सिꣳ र॒यिम् ॥ ११० ॥

पदार्थः—(**इष्कर्त्तारम्**) निष्कर्त्तारं=संसाधकम् । **अत्र छान्दसो वर्णलोप इति नलोपः** (**अध्वरस्य**) अहिंसनीयस्य=वर्धितुं योग्यस्य यज्ञस्य (**प्रचेतसम्**) प्रकृतप्रज्ञम । **चेता इति प्रज्ञाना० ॥ नि० ३ । ६ ॥** (**क्षयन्तम्**) निवसन्तम् (**राधसः**) धनस्य (**महः**) महतः (**रातिम्**) दातारम् (**वामस्य**) प्रशस्यस्य (**सुभगाम्**) सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदाम् (**महीम्**) पृथिवीम् (**इषम्**) अन्नादिकम् (**दधासि**) (**सानसिम्**) पुराणम् (**रयिम्**) धनम् ॥ ११० ॥

प्रमाणार्थ—'इष्कर्त्तारम्' यहाँ 'छन्दसो वर्णलोपः' इस वार्तिक से नकार लोप हुआ है । 'प्रचेतसम्' यहाँ चेतस् शब्द प्रज्ञा वाचक है । चेतस् शब्द प्रज्ञावाचक शब्दों में निघण्टु ३ । ६ में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वमध्वरस्येष्कर्त्तारं प्रचेतसं वामस्य महो राधसो रातिं सुभगां महीमिषं सानसिं रयिं च दधासि । तस्मादस्माभिः पूज्योऽसि ॥ ११० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वमध्वरस्य अहिंसनीयस्य=वर्धितुं योग्यस्य यज्ञस्य **इष्कर्त्तारं** निष्कर्तारं=संसाधकं **प्रचेतसं** प्रकृतप्रज्ञं [**क्षयन्तं**] निवसन्तं **वामस्य** प्रशस्यस्य **महः** महतः **राधसः** धनस्य **रातिं** दातारं **सुभगां** सुष्ठ्वैश्वर्यप्रदां **महीं** पृथिवीम् **इषम्** अन्नादिकं **सानसिं** पुराणं **रयिं** धनं **च दधासि, तस्मादस्याभिः पूज्योऽसि ॥**

भाषार्थ—हे विद्वान् ! आप—(अध्वरस्य) अहिंसनीय=बढ़ाने के योग्य यज्ञ के (इष्कर्तारम्) सिद्ध करने वाले, (प्रचेतसम्) उत्तम बुद्धि वाले, (क्षयन्तम्) निवास करने वाले पुरुष को, (वामस्य) प्रशंसनीय (महतः) महान् (राधसः) धन के (रातिम्) दाता को; (सुभगाम्) उत्तम ऐश्वर्य को प्रदान करने वाली (महीम्) पृथिवी को; (इषम्) अन्न आदि को और (सानसिम्) पुराने (रयिम्) धन को (दधासि) धारण करते हो; अतः हमारे पूज्य हो ॥ १२ । ११० ॥

[हे विद्वन् ! यस्त्वमध्वरस्य ··· रयिं च दधासि, तस्मादस्माभिः पूज्योऽसि]

भावार्थः—मनुष्यो यथा स्वार्थं सुखमिच्छेत् तथा परार्थं च, स एवाप्तः पूज्यो भवेत् ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे अपने लिए सुख की कामना करे वैसे दूसरे के लिए भी, वही आप्त पुरुष पूज्य होवे ॥ १२ । ११० ॥

भाष्यसार—**परोपकारी का लक्षण**—जो उत्तम बुद्धि वाला मनुष्य सदा यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सिद्ध करता रहता है, जिसका सभी प्रशंसनीय धन दूसरों के लिए होता है अथवा सदा उत्तम ऐश्वर्य का दान करता रहता है, और जो अन्नादि को तथा विद्यादि सदा रहने वाले धन को धारण करता है, वह प्रशंसा के योग्य और आदरणीय होता है ॥ १२ । ११० ॥

पावकाग्निः । **अग्निः**=**विद्वान्** । स्वराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः केषामनुकरणं कार्यमित्याह ॥

मनुष्यों को किन का अनुकरण करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

पदार्थः—(**ऋतावानम्**) ऋतं=बहु सत्यं विद्यते यस्मिँस्तम् । **अत्र छन्दसीवनिपाविति वार्तिकेन वनिप्** (**महिषम्**) महान्तम् (**विश्वदर्शतम्**) सर्वविद्याबोधस्य द्रष्टारम् (**अग्निम्**) विद्वांसम् (**सुम्नाय**) सुखाय (**दधिरे**) हितवन्तः (**पुरः**) पुरस्तात् (**जनाः**) विद्याविज्ञानेन प्रादुर्भूता मनुष्याः (**श्रुत्कर्णम्**) श्रुतौ=श्रवणसाधकौ कर्णौ यस्य बहुश्रुतस्य तम् (**सप्रथस्तमम्**) प्रथसा=विस्तरेण सह वर्त्तमानः सप्रथास्तमतिशयितम् (**त्वा**) त्वाम् (**गिरा**) वाचा (**दैव्यम्**) देवेषु=विद्वत्सु कुशलम् (**मानुषा**) मनुष्याणामिमानि (**युगा**) युगानि=वर्षाणि ॥ १११ ॥

प्रमाणार्थ—'ऋतावानम्' यहां ऋत शब्द से 'छन्दसीवनिपौ' इस वार्तिक सूत्र से वनिप् प्रत्यय हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्य ! यथा जना गिरा सुम्नाय दैव्यं श्रुत्कर्णं विश्वदर्शतं सप्रथस्तममृतावानं महिषमग्निं विद्वांसं मानुषा युगा च पुरो दधिरे तथैवं विद्वांसमेतानि च त्वं धेहीति त्वा शिक्षयामि ॥ १११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! **यथा जनाः** विद्याविज्ञानेन प्रादुर्भूता मनुष्याः **गिरा** वाचा **सुम्नाय** सुखाय **दैव्यं** देवेषु=विद्वत्सु कुशलं **श्रुत्कर्णं** श्रुतौ=श्रवणसाधकौ कर्णौ यस्य बहुश्रुतस्य तम्, **विश्वदर्शतं** सर्वविद्याबोधस्य द्रष्टारं **सप्रथस्तमं** प्रथसा=विस्तरेण सह वर्त्तमानः सप्रथास्तमतिशयितम्, **ऋतावानम्** ऋतं=बहु सत्यं विद्यते यस्मिँस्तम्, **महिषं** महान्तम् **अग्निं**=**विद्वांसं मानुषा** मनुष्याणामिमानि **युगा** युगानि=वर्षाणि **च पुरः** पुरस्ताद् **दधिरे** हितवन्तः, **तथैव विद्वांसमेतानि च त्वं धेहीति त्वा त्वां शिक्षयामि** ॥ १२ । १११ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जैसे-(जनाः) विद्या और विज्ञान से प्रसिद्ध मनुष्य (गिरा) वाणी से (सुम्नाय) सुख के लिए (दैव्यम्) विद्वानों में कुशल, (श्रुत्कर्णम्) श्रवण-क्रिया को सिद्ध करने वाले कानों से युक्त अर्थात् बहुश्रुत, (विश्वदर्शतम्) सब विद्या-बोध के द्रष्टा, (सप्रथस्तमम्) अत्यन्त विद्या-विस्तार से युक्त, (ऋतावानम्) बहुत सत्याचरण से युक्त, (महिषम्) महान् (अग्निम्) विद्वान् पुरुष को और (मानुषा) मानव के (युगा) वर्षों को (पुरः) प्रथम (दधिरे) धारण कर चुके हैं, वैसे ही उक्त विद्वान् और इन मानव-वर्षों को तू धारण कर, यह (त्वा) तुझे शिक्षा करता हूँ ॥

हे मनुष्य ! यथा जनाः'''अग्निं=विद्वांसं मानुषा युगा च पुरो दधिरे तथैव विद्वांसमेतानि च त्वं धेहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये सत्पुरुषा अतीतास्तेषामेवानुकरणं मनुष्याः कुर्युः; नेतरेषामधार्मिकाणाम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो सत्पुरुष हो चुके हैं उन्हीं का मनुष्य अनुकरण करें; अन्य अधार्मिकों का नहीं ॥

भाष्यसार—**अनुकरण किन का करें ?**—जो श्रेष्ठ वाणी वाले हों, जो दैव्यम्=विद्वानों में कुशल हों, जो श्रुत्कर्णम्=बहुत ज्ञान वाले हों, जो सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों को जानते हों,

जिनकी विद्या का विस्तार हो चुका हो, ऋतावानम्=जो सत्याचरण वाले हों, और जो मानव के वर्षों को धारण कर चुके हों अर्थात् बहुत अनुभवी हों, उन धार्मिक विद्वान् पुरुषों का ही अनुकरण करना चाहिये ॥ १२ । १११ ॥

गोतमः । **सोमः**=राजजनः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

राजजनाः किं कृत्वा कीदृशा भवेयुरित्याह ॥

राजपुरुष क्या करके कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥

पदार्थः—(आ) (प्यायस्व) वर्धस्व (सम्) (एतु) संगच्छताम् (ते) तुभ्यम् (विश्वतः) सर्वतः (सोम) चन्द्र इव वर्तमान (वृष्ण्यम्) वृष्णो=वीर्यवतः कर्म (भव) **द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** (वाजस्य) विज्ञानवेगयुक्तस्य स्वामिन आज्ञया (संगथे) संग्रामे ॥ ११२ ॥

प्रमाणार्थ—'भवा' यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' इस से दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे सोम ! तादृशस्य विदुषः संगात्ते वृष्ण्यं विश्वतः समेतु तेन त्वमाप्यायस्व वाजस्य वेत्ता सन् संगाथे विजयी भव ॥ ११२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोम !** चन्द्र इव वर्तमान ! **तादृशस्य विदुषः संगात् ते** तुभ्यं **वृष्ण्यं** वृष्णो=वीर्यवतः कर्म **विश्वतः** सर्वतः **सम्+एतु** संगच्छतां, **तेन त्वमाप्यायस्व** वर्धस्व । **वाजस्य** विज्ञानवेगयुक्तस्य स्वामिन आज्ञया **वेत्ता सन्** [**संगथे**] संग्रामे **विजयी भव** ॥ १२ । ११२ ॥

भाषार्थ—हे (सोम) चन्द्र के समान वर्ताव वाले राजपुरुष ! उक्त विद्वान् के संग से (ते) तेरे लिए (वृष्ण्यम्) वीर्यवान्=बलवान् पुरुष का कर्म (विश्वतः) सब ओर से (सम्+एतु) प्राप्त हो, उससे तू (आप्यायस्व) बढ़ । और (वाजस्य) विज्ञान एवं वेग से युक्त स्वामी की आज्ञा से उसका वेत्ता होकर [संगथे] संग्राम में विजयी (भव) हो ॥ १२ । ११२ ॥

[हे सोम ! ··· वृष्ण्यम् ··· आप्यायस्व, [संगथे] विजयी भव]

भावार्थः—राजपुरुषैर्नित्यं वीर्यं वर्धयित्वा विजयेन भवितव्यम् ॥ १२ । ११२ ॥

भावार्थ—राजपुरुष नित्य वीर्य=बल को बढ़ाकर विजय से युक्त रहें ॥ १२ । ११२ ॥

भा० पदार्थः—वृष्ण्यम्=वीर्यम् ।

भाष्यसार—राजपुरुष कैसे हों ?—राजपुरुषों को उचित है कि वे सोम=चन्द्र के समान सौम्य स्वभाव वाले तथा प्रजा को सुख देने वाले हों । विद्वानों की संगति से सब ओर से एक होकर वृष्ण्यम्=बलवान् होकर उन्नति करते रहें । और संगथे=संग्राम में विज्ञान के सहयोग से सदा विजय प्राप्त करें ॥ १२ । ११२ ॥

गोतमः । **सोमः**=**योगाभ्यासी** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

शरीरात्मबलयुक्ताः किमाप्नुवन्तीत्याह ॥

शरीर और आत्मा के बल से युक्त पुरुष किसको प्राप्त होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

सं ते॒ पया॑ᳬसि॒ सम्॑ यन्तु॒ वाजाः॒ सं वृष्ण्या॑न्यभिमाति॒षाहः॑ ।
आ॒प्याय॑मानो ऽ अ॒मृता॑य सोम दि॒वि श्रवा॑ᳬस्युत्त॒मानि॑ धिष्व ॥ ११३ ॥

पदार्थः—(सम्) (ते) तुभ्यम् (पयांसि) जलानि दुग्धानि वा (सम्) (उ) (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (वाजाः) धनुर्वेदबोधजा वेगाः (सम्) वृष्ण्यानि) वीर्य्याणि (अभिमातिषाहः) येऽभिमातीनभिमानयुक्तान् शत्रून् सहन्ते=निवारयन्ति (आप्यायमानः) समन्ताद्वर्धमानः (अमृताय) मोक्षसुखाय (सोम) ऐश्वर्य्य-युक्त (दिवि) द्योतनात्मके परमेश्वरे (श्रवांसि) अन्नानि श्रवणानि वा (उत्तमानि) (धष्व) धित्स्व ॥११३॥

अन्वयः—हे सोम ! यस्मै ते पयांसि संयन्त्वभिमातिषाहो वाजाः संयन्तु वृष्ण्यानि संयन्तु स आप्यायमानस्त्वं दिव्यमृतायोत्तमानि श्रवांसि धिष्व ॥ ११३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोम !** ऐश्वर्य्य-युक्त ! **यस्मै ते** तुभ्यं **पयांसि** जलानि दुग्धानि वा **सम्+यन्तु** प्राप्नुवन्तु, **अभिमातिषाहः** येऽभिमातीन-भिमानयुक्तान् शत्रून् सहन्ते=निवारयन्ति, **वाजाः** धनुर्वेदबोधजा वेगाः **सम्+यन्तु** प्राप्नुवन्तु, **वृष्ण्यानि** वीर्य्याणि **सम्+यन्तु** प्राप्नुवन्तु, **स आप्यायमानः** समन्ताद्वर्धमानः **त्वं दिवि** द्योतनात्मके परमेश्वरे **अमृताय** मोक्षसुखाय **उत्तमानि श्रवांसि** अन्नानि श्रवणानि वा **धिष्व** धत्स्व ॥ १२ । ११३ ॥

भाषार्थ—हे (सोम) योग-ऐश्वर्य से युक्त पुरुष ! (ते) तुझे (पयांसि) दूध वा जल (सम्+यन्तु) प्राप्त होवें; (अभिमातिषाहः) अभिमानी शत्रुओं का निवारण करने वाले (वाजाः) धनुर्वेद के बोध से उत्पन्न वेग (सम्+यन्तु) प्राप्त होवें; (वृष्ण्यानि) विविध वीर्य=बल (सम्+यन्तु) प्राप्त होवें, सो (आप्यायमानः) सब ओर से बढ़ता हुआ तू (दिवि) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर में (अमृताय) मोक्ष-सुख के लिए (उत्तमानि) उत्तम (श्रवांसि) अन्न वा उपदेशों को (धिष्व) धारण कर ॥

[हे सोम ! ··· आप्यायमानस्त्वं दिव्यमृताय ··· धिष्व]

भावार्थः—ये मनुष्याः शरीरात्मबलं नित्यं वर्धयन्ति, ते योगाभ्यासेन परमात्मनि मोक्षानन्दं लभन्ते ॥ १२ । ११३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को नित्य बढ़ाते हैं वे योगाभ्यास से पर-मात्मा में मोक्षानन्द को प्राप्त करते हैं ॥१२।११३॥

भा० पदार्थः—आप्यायमानः=शरीरात्मबलं नित्यं वर्धमानः । दिवि=परमात्मनि । अमृताय=मोक्षानन्दाय ॥

भाष्यसार—**स्वस्थ योगाभ्यासी ही मोक्ष का अधिकारी**—योगाभ्यासी को उचित है कि प्रथम वह दूधादि पदार्थों के सेवन से शरीर को स्वस्थ करे और शत्रुतुल्य रोगों का सदा निवारण करे। वृष्ण्यानि=शारीरिक बल तथा आत्मिक बल का विकास करके उन्नति करता हुआ द्युलोक में प्रकाशमान परमेश्वर में मोक्ष सुख को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। क्योंकि निर्बल मनुष्य मोक्षप्राप्ति नहीं कर सकता ॥ ११ । ११३ ॥ (५)

गोतमः । **सोमः=सर्वहितकारी** । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

कोऽत्र वर्द्धत इत्याह ॥

संसार में कौन वृद्धि को प्राप्त होता है, यह उपदेश किया है ॥

आप्या॑यस्व म॒दिन्त॑म॒ सोम॒ विश्वे॑भिर॒ᳬशुभिः॑ । भवा॑ नः स॒प्रथ॑स्तमः॒ सखा॑ वृ॒धे ॥ ११४ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**प्यायस्व**) (**मदिन्तम**) अतिशयेन मदितु=र्हषितुं शील (**सोम**) ऐश्वर्य्य-युक्त (**विश्वेभिः**) सर्वैः (**अंशुभिः**) किरणैः (**भव**) द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सप्रथस्तमः**) अतिशयेन विस्तृतसुखकारकः (**सखा**) मित्रः (**वृधे**) वर्धनाय ॥ ११४॥

प्रमाणार्थ—'भवा' यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है।

अन्वयः—हे मदिन्तम सोम ! त्वमंशुभिः किरणैः सूर्य्य इव विश्वेभिः साधनैराप्यायस्व सप्रथस्तमः सखा सन् नो वृधे भव ॥ ११४॥

सपदार्थान्वयः—हे **मदिन्तम** ! अतिशयेन मदितुं=र्हषितुं शील ! **सोम** ! ऐश्वर्य्ययुक्त ! **त्वम् अंशुभिः**=**किरणैः सूर्य्य इव विश्वेभिः सर्वैः साधनैः आप्यायस्व** । **सप्रथस्तमः** अतिशयेन विस्तारसुखकारकः **सखा** मित्रः **सन् नः** अस्माकं **वृधे** वर्धनाय **भव** ॥ १२ । ११४ ॥

भाषार्थ—हे (मदिन्तम) अत्यन्त र्हषित स्वभाव वाले, (सोम) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष ! तू—(अंशुभिः) जैसे किरणों से सूर्य बढ़ता है वैसे (विश्वेभिः) सब साधनों से (आप्यायस्व) बढ़ । और—(सप्रथस्तमः) अत्यन्त विस्तृत सुख को उत्पन्न करने वाला (सखा) मित्र होकर (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (भव) तत्पर हो ॥

[हे···सोम ! त्वं···विश्वेभिः साधनैराप्यायस्व]

भावार्थः—इह सर्वहितकारी सर्वतो वर्धते, नेर्ष्यकः ॥ १२ । ११४ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो सबका हितकारी है वह सब ओर से बढ़ता है; ईर्ष्या करने वाला नहीं ॥ १२ । ११४ ॥

भा० पदार्थः—सोम=सर्वहितकारिन् ! ॥

भाष्यसार—**उन्नति के साधन**—(१) मदिन्तम=जो अत्यन्त प्रसन्न रहने वाला है। (२) सोम=जो सौम्य स्वभाव वाला तथा चन्द्रतुल्य दूसरों को भी प्रसन्न करने वाला है। (३) सखा=जो सब का मित्र है। दूसरों से मित्रता करके कभी किसी को धोखा नहीं देता है। अपने विचारों की वृद्धि करके अपने साथियों को बढ़ाता है। (४) सप्रथस्तमः=जो सुख के साधनों को उत्पन्न करके सत्कर्मों के कारण सर्वत्र प्रसिद्ध है। वह सदा ही उन्नति को प्राप्त करता है॥ १२। ११४॥

वत्सारः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

मनुष्याः किं किं वशीकृत्यानन्दं प्राप्नुवन्त्वित्याह ॥

मनुष्य लोग किस को वश में करके आनन्द को प्राप्त होवें, यह उपदेश किया है ॥

आ ते॑ व॒त्सो मनो॒ यम॑त्पर॒मा॒च्चि॑त्स॒धस्था॑त् । अग्ने॒ त्वां का॑मया गि॒रा ॥ ११५ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**ते**) तव (**वत्सः**) (**मनः**) चित्तम् (**यमत्**) उपरमेत (**परमात्**) उत्कृष्टात् (**चित्**) अपि (**सधस्थात्**) समानस्थानात् (**अग्ने**) विद्वन् (**त्वाङ्कामया**) यया त्वां कामयते तया। **अत्र द्वितीयैकवचनस्यालुक्** (**गिरा**) ॥ ११५ ॥

प्रमाणार्थ—(त्वाङ्कामया) यहाँ द्वितीया विभक्ति के एकवचन का अलुक् हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने सोम ! विद्वंस्त्वाङ्कामया गिरा परमात्सधस्थाच्चिद्वत्सो गोरिवायमतस्त्वं मुक्तिं कथन्नाप्नुयाः ॥ ११५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=सोम **विद्वन्** ! **त्वाङ्कामया** यया त्वां कामयते तया, **गिरा** [**ते**] तव [**मनः**] चित्तं **परमात्** उत्कृष्टात् **सधस्थात्** समानस्थानात् **चित्** अपि **वत्सो गौरिव आ+यमत्** उपरमेत्, स त्वं मुक्ति कथन्नाऽऽप्नुयाः ?

भाषार्थ—हे (अग्ने) सोम्य गुणों से युक्त विद्वान् ! तुझे- (कामया) कमनीय (गिरा) वाणी से [ते] तेरा [मनः] चित्त (परमात्) उत्तम (सधस्थात्) निवास से (चित्) भी जैसे (वत्सः) बछड़ा गौ के (आ+यमत्) पास रमण करता है वैसे रमण करे, सो तू मुक्ति को क्यों न प्राप्त हो ।। १२ । ११५ ।।

[हे अग्ने ! = विद्वन् ! त्वां कामया गिरा [मनः] ...चित्...आरमेत्]

भावार्थः—मनुष्यैः सदैव मनः स्ववशं विधेयं, वाणी च ।। १२ । ११५ ।।

भावार्थ—मनुष्य सदा ही मन और वाणी को अपने वश में रखें ।। १२ । ११५ ।।

भा० पदार्थः—गिरा=वाण्या ।।

भाष्यसार—**मन और वाणी के संयम से ही मुक्ति**—मुक्ति-सुख के अभिलाषी को चाहिये कि वह सदा अपनी वाणी तथा मन को इतना संयम में रक्खे कि इनकी प्रवृत्ति ईश्वर में इस प्रकार हो जावे, जैसे बछड़ा अपनी माता (**गाय**) के पास उत्सुकता से रमण करता है। मन और वाणी के संयम से मुक्ति-परमसुख की प्राप्ति अवश्य होती है ।। १२ । ११५ ।।

विरूपः । **अग्निः=राजा** । गायत्री । षड्जः ।।

अथ राजा किं कुर्यादित्याह ।।

अब राजा क्या करे, यह उपदेश किया है ।।

तुभ्यं ता ऽ अङ्गिरस्तम् विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ।। ११६ ।।

पदार्थः—(**तुभ्यम्**) (**ताः**) (**अङ्गिरस्तम**) अतिशयेन सारग्राहिन् (**विश्वाः**) अखिलाः (**सुक्षितयः**) श्रेष्ठमनुष्याः प्रजाः (**पृथक्**) (**अग्ने**) प्रकाशमान राजन् ! (**कामाय**) इच्छासिद्धये (**येमिरे**) प्राप्नुवन्तु ।। ११६ ।।

अन्वयः—हे अङ्गिरस्तमाग्ने राजन् ! या विश्वाः सुक्षितयः प्रजाः पृथक् कामाय तुभ्यं येमिरे तास्त्वं सततं रक्ष ।। ११६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अङ्गिरस्तम** ! अतिशयेन सारग्राहिन् ! **अग्ने** !=**राजन्** प्रकाशमान राजन् । **या विश्वाः** अखिलाः **सुक्षितयः**=**प्रजाः** श्रेष्ठमनुष्याः प्रजाः **पृथक् कामाय** इच्छासिद्धये **तुभ्यं येमिरे** प्राप्नुवन्तु, **तास्त्वं सततं रक्ष** ।। १२ । ११६ ।।

भाषार्थ—हे (अङ्गिरस्तम) अत्यन्त सार को ग्रहण करने वाले (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! जो (विश्वाः) सब (सुक्षितयः) श्रेष्ठ प्रजाजन (पृथक्) अलग (कामाय) इच्छा-सिद्धि के लिए (तुभ्यम) तुझे (येमिरे) प्राप्त होते हैं उनकी तू सदा रक्षा कर ।। १२ । ११६ ।।

[हे...अग्ने=राजन् ! याः...सुक्षितयः=प्रजाः पृथक् कामाय तुभ्यं येमिरे, तास्त्वं सततं रक्ष]

भावार्थः—यत्र प्रजा धार्मिकं राजानं प्राप्य स्वां स्वामभिलाषां प्राप्नुवन्ति, तत्र राजा कथं न वर्द्धेत ।। १२ । ११६ ।।

भावार्थ—जहाँ प्रजा धार्मिक राजा को प्राप्त करके अपनी-अपनी अभिलाषा को प्राप्त करते हैं वहाँ राजा कैसे वृद्धि को प्राप्त न हो ।।

भा० पदार्थः—अग्ने=धार्मिकराजन्। कामाय=स्वस्वाभिलाषप्राप्तये।

भाष्यसार—**राज-धर्म**—अग्नि के तुल्य सर्वत्र प्रकाशमान राजा का यह परमकर्त्तव्य है कि वह अङ्गिरस्तमः=सारभूत को सदा ग्रहण करे और असार को सदा त्याग देवे। और जो-जो प्रजा-जन अपनी श्रेष्ठ कामनाएँ लेकर, राजा के पास आएँ, उनको सदा पूर्ण करके प्रजा की रक्षा करे ॥ १२ । ११६ ॥

प्रजापतिः। **अग्निः=सभेशः/परमेश्वरः**। गायत्री। षड्जः॥

पुनर्मनुष्याः कीदृशा भूत्वा किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्य कैसे होकर क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य। सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावक इव वर्त्तमानः (**प्रियेषु**) इष्टेषु (**धामसु**) जन्मस्थाननामसु (**कामः**) यः काम्यते सः (**भूतस्य**) अतीतस्य (**भव्यस्य**) आगामिसमयस्य (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशकः (**एकः**) अद्वितीयः परमेश्वरः (**वि**) (**राजति**) ॥ ११७ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यः सम्राडेकः कामोऽग्निः सभेशः परमेश्वर इव भूतस्य भव्यस्य प्रियेषु धामसु विराजति स एव राज्याभिषेधनीयः ॥ ११७ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो मनुष्यः सम्राट्** सम्यक् प्रकाशकः **एकः** अद्वितीयः परमेश्वरः **कामः** यः काम्यते सः **अग्निः=सभेशः परमेश्वर इव** पावक इव वर्त्तमानः **भूतस्य** अतीतस्य **भव्यस्य** आगामिसमयस्य **प्रियेषु** इष्टेषु **धामसु** जन्मस्थान-नामसु **विराजति, स एव राज्याऽभिषेचनीयः** ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य (सम्राट्) उत्तम रीति से प्रकाश करने वाला, (एकः) अद्वितीय, (कामः) कामना करने के योग्य, (अग्निः) सभा-पति एवं परमेश्वर के समान (भूतस्य) भूत (भव्यस्य) भविष्य समय के (प्रियेषु) प्रिय (धामसु) नाम, जन्म और स्थानों में (विराजति) विराज-मान रहता है वही राज्याभिषेक के योग्य है ॥

[यो मनुष्यः'''अग्निः=सभेशः परमेश्वर इव'''विराजति स एव राज्याभिषेचनीयः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः परमात्मनो गुणकर्मस्वभावानुकूलान् स्वगुणकर्मस्वभावान् कुर्वन्ति, त एव साम्राज्यं भोक्तुमर्हन्ति ॥ १२ । ११७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म और स्वभाव को बनाते हैं वे ही साम्राज्य को भोग सकते हैं ॥ १२ । ११७ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=परमात्मा ॥

भाष्यसार—१. **राजा कैसा हो ?**—जो मनुष्य अपने गुणों से सर्वत्र प्रकाशमान हो, सब मनुष्यों में असाधारण होने से अद्वितीय हो, जिसे सब प्रजा के मनुष्य चाहते हों, परमेश्वर के समान अग्रणी और ईश्वर के तुल्य गुण-कर्म-स्वभाव वाला हो, और भूत एवं भविष्यत् काल में सर्वत्र विशेष रूप से विराजमान रहता हो, ऐसे मनुष्य को राज्यपद पर बैठाना चाहिये।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे परमात्मा के गुण, कर्म तथा स्व-भाव हैं, वैसे ही मनुष्य राज्य करने का अधिकारी हैं ॥ १२ । ११७ ॥

[पूर्वापराध्यायसंगतिमाह—]

अत्र स्त्रीपुरुषराजप्रजाकृष्यध्ययनाध्यापनादि-कर्मवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इस अध्याय में स्त्री-पुरुष, राजा-प्रजा, कृषि, पठन-पाठन आदि कर्म इनके वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है; ऐसा जानें ॥ १२ । ११७ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे द्वादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

❊ अथ त्रयोदशाऽध्यायारम्भः ❊

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

वत्सारः । **अग्निः**=परमविद्वान् । आर्ची पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्यैरादिमाऽवस्थायां किं किं कार्य्यमित्याह ॥

अब तेरहवें अध्याय का प्रारम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को पहली अवस्था में क्या-क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

मयि॑ गृह्णा॒म्यग्रे॑ ऽ अ॒ग्निꣳरा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्य्या॑य । मामु॑ दे॒वताः॑ सचन्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(**मयि**) आत्मनि (**गृह्णामि**) (**अग्रे**) (**अग्निम्**) परमविद्वांसम् (**रायः**) विज्ञानादि-धनस्य (**पोषाय**) पुष्टये (**सुप्रजास्त्वाय**) शोभनाश्च ताः प्रजाः सुप्रजास्तासां भावाय (**सुवीर्य्याय**) आरोग्येण सुष्ठुपराक्रमाय (**माम्**) (**उ**) (**देवताः**) दिव्या विद्वांसो गुणा वा (**सचन्ताम्**) समवयन्तु ॥१॥

अन्वयः—हे कुमारा कुमार्य्यश्च ! यथाऽहमग्रे मयि रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याग्निं गृह्णामि येन मामु देवताः सचन्तां तथा यूयमपि कुरुत ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे कुमाराः कुमार्य्यश्च ! यथाऽहमग्रे मयि** आत्मनि **रायः** विज्ञानादि-धनस्य **पोषाय** पुष्टये **सुप्रजास्त्वाय** शोभनाश्च ताः प्रजाः सुप्रजास्तासां भावाय, **सुवीर्य्याय** आरोग्येण सुष्ठुपराक्रमाय **अग्निं** परमविद्वांसं **गृह्णामि, येन माम् उ देवताः** दिव्या विद्वांसो गुणा वा **सचन्तां** समवयन्तु, **तथा यूयमपि कुरुत** ॥ १३ । १ ॥

भाषार्थ—हे कुमार और कुमारियो ! जैसे मैं—(अग्रे) आदिम अवस्था में (मयि) अपनी आत्मा में (रायः) विज्ञान आदि धन की (पोषाय) पुष्टि के लिए (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम प्रजा-भाव के लिए, (सुवीर्य्याय) आरोग्य से उत्तम पराक्रम की प्राप्ति के लिए (अग्निम्) परम विद्वान् को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ; जिससे (माम्) मुझे (उ) निश्चय से (देवताः) दिव्य विद्वान् वा गुण (सचन्ताम्) प्राप्त होते हैं, वैसे तुम भी करो ॥

[अहम् ··· अग्निं गृह्णामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा

मनुष्याणामिदं समुचितमस्तिब्रह्मचर्यकुमारावस्थायां वेदाद्यध्ययनेन पदार्थविद्यां, ब्रह्मकर्म, ब्रह्मोपासनां, ब्रह्मज्ञानं स्वीकुर्युः ।

अलंकार है ।। मनुष्यों को यह अति उचित है कि वे ब्रह्मचर्ययुक्त कुमारावस्था में वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से पदार्थविद्या, ब्रह्म-कर्म, ब्रह्म-उपासना और ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करें ।

[येन मामु देवताः सचन्ताम्]

येन दिव्यान् गुणानाप्तान् विदुषश्च प्राप्य,

जिससे—दिव्य गुणों और आप्त विद्वानों को प्राप्त होके—

[रायस्पोषाय, सुप्रजास्त्वाय, सुवीर्याय]

उत्तम श्री-प्रजा-पराक्रमान् प्राप्नुयुरिति ।।

उत्तम ऐश्वर्य, प्रजा और पराक्रम को प्राप्त करें ।। १३ । १ ।।

भा० पदार्थः—अग्निम्=पदार्थविद्याम्, ब्रह्मकर्म, ब्रह्मोपासनाम्, ब्रह्मज्ञानम् । गृह्णामि=स्वीकरोमि । देवताः=दिव्यान् गुणान्, आप्तान् विदुषश्च । सचन्ताम्=प्राप्नुवन्तु । रायस्पोषाय=उत्तम-श्रीप्राप्तये । सुप्रजास्त्वाय=उत्तमप्रजाप्राप्तये । सुवीर्याय=उत्तमपराक्रमप्राप्तये ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य की प्रथमावस्था के कर्त्तव्य**—१. ज्ञान-विज्ञान के पोषण के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें । २. उत्तम प्रजा के लिए शारीरिक शक्ति का पोषण करें । ३. विद्या तथा शक्ति की प्राप्ति के लिए अग्नितुल्य तेजस्वी, सदाचारी और विद्वान् आचार्य के पास जावें । इस प्रकार श्रेष्ठ आचार्य के पास रहकर सब प्रकार की उन्नति किया करें । क्योंकि दिव्यगुण युक्त पुरुष ही दिव्य गुणों को प्राप्त करा सकते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । जैसे पूर्व-काल में देवता दिव्यगुणों वालों से दिव्य गुणों की प्राप्ति करते रहे हैं वैसे ही सब मनुष्यों को भी करना चाहिये ।। १३ । १ ।।

वत्सारः । **अग्निः=ब्रह्म** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथ परमेश्वरोपासनाविषयमाह ।।

अब परमेश्वर की उपासना विषय का उपदेश किया जाता है ।।

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ।। २ ।।

पदार्थः—(**अपाम्**) व्यापकानां=प्राणानां जलानां वा (**पृष्ठम्**) अधिकरणम् (**असि**) (**योनिः**) कारणम् (**अग्नेः**) विद्युदादेः (**समुद्रम्**) अन्तरिक्षमिव सागरम् (**अभितः**) सर्वतः (**पिन्वमानम्**) सिञ्चमानम् (**वर्धमानः**) सर्वथोत्कृष्टः (**महान्**) सर्वेभ्यो वरीयान् सर्वैः पूज्यश्च (**आ**) (**च**) (**पुष्करे**) अन्तरिक्षे । पुष्करमित्यन्तरिक्षनाम० ।। निघं० १ । ३ ।। (**दिवः**) द्योतमानस्य (**मात्रया**) यया सर्वं मिमीते (**वरिम्णा**) अतिशयेनोरुर्बहुस्तेन व्यापकत्वेन (**प्रथस्व**) प्रख्यातो भव ।। २ ।।

प्रमाणार्थ—'पुष्करे' यहाँ पुष्कर शब्द अन्तरिक्षवाची है । निघण्टु १ । ३ में इसका पाठ अन्तरिक्ष-नामों में किया है ।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वमभितोऽपां पृष्ठं समुद्रं पिन्वमानमग्नेर्योनिर्दिवो मात्रया पुष्करे वर्धमानो महाँश्चासि सोऽस्मासु वरिम्णाऽऽ प्रथस्व ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यस्त्व-भितः** सर्वतः **अपां** व्यापकानां प्राणानां जलानां वा **पृष्ठम्** अधिकरणं **समुद्रम्** अन्तरिक्षमिव सागरं **पिन्वमानं** सिञ्चमानम् **अग्नेः** विद्युदादेः **योनिः** कारणं **दिवः** द्योतमानस्य **मात्रया** यया सर्वं मिमीते **पुष्करे** अन्तरिक्षे **वर्धमानः** सर्वथोत्कृष्टो, **महान्** सर्वेभ्यो वरीयान् सर्वैः पूज्यश्च **चाऽसि, सोऽस्मासु वरिम्णा** अतिशयेनोरुर्बहुस्तेन व्यापकत्वेन **आ+प्रथस्व** पख्यातो भव ॥ १३ । २ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् परमेश्वर ! आप—(अभितः) सब ओर (अपाम्) व्यापक प्राण वा जल के (पृष्ठम्) आधार (समुद्रम्) अन्तरिक्ष के तुल्य सागर को (पिन्वमानम्) सींचने वाले हो, (अग्नेः) विद्युत् आदि के (योनिः) कारण (दिवः) प्रकाशमान द्युलोक की (मात्रया) मात्रा से (पुष्करे) अन्तरिक्ष में (वर्धमानः) सर्वथा उत्कृष्ट हो, (महान्) सबसे श्रेष्ठ **और** सबके पूज्य (असि) हो, सो हममें (वरिम्णा) अत्यन्त व्यापकता से (आ+प्रथस्व) प्रख्यात=प्रसिद्ध हूजिए ॥ १३ । २ ॥

[हे विद्वन् ! **यस्त्वं'''अग्नेर्योनिर्दिवो मात्रया, अपां'''समुद्रं, महान्, वर्धमानश्चासि**]

भावार्थः—मनुष्यैर्यत् सच्चिदानन्दस्वरूपमखिलस्य जगतो निर्मातृ, सर्वत्राभिव्याप्तं, सर्वेभ्यो वरं, सर्वशक्तिमद् ब्रह्मैवोपास्यं सकलविद्याः प्राप्यन्ते,

भावार्थ—मनुष्य—जिस सच्चिदानन्दस्वरूप, सकल जगत् के निर्माता, सर्वत्र व्यापक, सबसे श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की उपासना करके सकल विद्याएं प्राप्त की जाती हैं,

[**सोऽस्मासु'''आप्रथस्व**]

तत् कथं न सेवितव्यं स्यात् ॥ १३ । २ ॥

उसकी सेवा क्यों न करें ॥ १३ । २ ॥

भा० पदार्थः—महान्=सर्वेभ्यो वरम् । वर्धमानः=सर्वशक्तिमत् ।

भाष्यसार—**परमेश्वर ही सब का उपास्य देव है**—परमेश्वर सब व्यापक जलों का आधार है, अन्तरिक्ष के समान सागर को सींचता है, विद्युत् तथा प्रकाशमान द्युलोक आदि का कारण है, अपनी वरिम्णा=महिमा से सब से महान्, सर्वोत्कृष्ट और सर्वव्यापक है । उसी की उपासना करनी चाहिये । उसी की उपासना से मनुष्य की उन्नति होती है । और सर्वत्र ख्याति की प्राप्ति होती है ॥ १३ । २ ॥ ●

वत्सारः । **आदित्यः**=**ब्रह्म** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

किंस्वरूपं ब्रह्म जनैरुपास्यमित्याह ॥

मनुष्य किस स्वरूप वाले ब्रह्म की उपासना करें, यह उपदेश किया है ॥

ब्रह्म॑ जज्ञा॒नं प्र॑थ॒मं पु॒रस्ता॒द्वि सी॑म॒तः सु॒रुचो॑ वे॒न ऽ आ॑वः ।
स बु॒ध्न्या॒ ऽ उप॒मा ऽ अ॑स्य वि॒ष्ठाः स॒तश्च॒ योनि॒मस॑तश्च॒ विवः॑ ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**ब्रह्म**) सर्वेभ्यो बृहत् (**जज्ञानम्**) सर्वस्य जनकं विज्ञातृ (**प्रथमम्**) विस्तृतं विस्तारयितृ (**पुरस्तात्**) सृष्ट्यादौ (**वि**) (**सीमतः**) सीमातो=मर्य्यादातः (**सुरुचः**) सुप्रकाशमानः सुष्ठुरुचिविषयश्च (**वेनः**) कमनीयः । वेनतीति कान्तिकर्म्मा० ॥ निघं० २ । ६ ॥ (**आवः**) आवृण्वन्ति=स्वव्याप्तयाच्छा-

दयन्ति ताः (सः) (**बुध्न्याः**) बुध्ने=जलसम्बन्धेऽन्तरिक्षे भवाः सूर्य्यचन्द्रपृथिवीतारकादयो लोकाः (उपमाः) उपमिमते याभिस्ताः (**अस्य**) जगदीश्वरस्य (**विष्ठाः**) या विविधेषु स्थानेषु तिष्ठन्ति ताः (**सतः**) विद्यमानस्य व्यक्तस्य (**च**) अव्यक्तस्य (**योनिम्**) स्थानमाकाशम् (**असतः**) अविद्यमानस्यादृश्यस्याव्यक्तस्य कारणस्य (**च**) महत्तत्त्वादेः (**विवः**) विवृणोति । **अत्र मन्त्रे घसेति च्लेर्लुगडभावश्च ।। ३ ।।**

अत्राह यास्कमुनिः—विसीमतः सुरुचो वेन आवरिति च व्यवृणोत्सर्वत आदित्यः सुरुच आदित्यरश्मयः सुरोचनादपि वासीमेत्येतदनर्थकमुपबन्धमाददीत पञ्चमीकर्माणं सीम्नः सीमतः सीमातो मर्य्यादातः सीमा मर्य्यादा विषीव्यति देशाविति ।। निरु० १ । ७ ।।

प्रमाणार्थ—'वेनः' वेनती क्रिया कान्ति अर्थ में निघण्टु २ । ६ में पढ़ी है । 'विवः' यहाँ 'मन्त्रे घसह्वर०' इस सूत्र से च्लि प्रत्यय का लुक् और छान्दस अडागम नहीं हुआ । इस मन्त्र के कुछ भाग का निरु० १ । ७ में यास्कमुनि ने इस प्रकार व्याख्या की है:—वि आवः=सब प्रकार से विस्तृत किया, सुरुचः=सूर्य की किरणें, क्योंकि ये बहुत दीप्ति वाली होती हैं, वेनः=सूर्य, सीमतः=सब प्रकार से । यहाँ सीम् निपात परिग्रहार्थ में है और उससे अनर्थक 'अतः' प्रत्यय करने से 'सीमतः' बना है । अथवा अतः प्रत्यय पंचम्यर्थक हो । तब 'सीमतः' का अर्थ 'सीमातः' होगा । क्योंकि सीमा का अर्थ मर्यादा है क्योंकि यह दो देशों को अलग-अलग करती है ।

अन्वयः—यज्जज्ञानं प्रथमं ब्रह्म यः सुरुचो वेनो यस्यास्य बुध्न्या विष्ठा आवः उपमाः सन्ति स सर्वभावः स पुरस्तात् विसीमतः सतश्चासतश्च योनिं विवस्तत्सर्वैरुपासनीयम् ।। ३ ।।

सपदार्थान्वयः—**यज् जज्ञानं** सर्वस्य जनकं विज्ञातृ **प्रथमं** विस्तृतं विस्तारयितृ **ब्रह्म** सर्वेभ्यो बृहद् **यः सुरुचः** सुप्रकाशमानः सुष्ठुरुचिविषयश्च **वेनः** कमनीयः **यस्याऽस्य** जगदीश्वरस्य **बुध्न्याः** बुध्ने=जलसम्बन्धेऽन्तरिक्षे भवाः सूर्य्यचन्द्रपृथिवीतारकादयो लोकाः **विष्ठाः** या विविधेषु स्थानेषु तिष्ठन्ति ताः [**आवः**] आवृण्वन्ति=स्वव्याप्त्याऽऽच्छादयन्ति ताः **उपमाः** उपमिमते याभिस्ताः **सन्ति, स सर्वभावः सः** [**पुरस्तात्**] सृष्ट्यादौ **विसीमतः** सीमातो=मर्य्यादातः **सतः** विद्यमानस्य व्यक्तस्य **च** अव्यक्तस्य **असतः** अविद्यमानस्याऽदृश्यस्याऽव्यक्तस्य कारणस्य **च** महत्तत्त्वादेः **योनिं** स्थानमाकाशं **विवः** विवृणोति, **तत्सर्वैरुपासनीयम्** ।। १३ । ३ ।।

भाषार्थ—जो ब्रह्म-(जज्ञानम्) सबका जनक, विज्ञाता, (प्रथमम्) स्वयं विस्तृत और सबका विस्तार करने वाला, (ब्रह्म) सबसे बड़ा है; जो (सुरुचः) अत्यन्त प्रकाशमान और उत्तम रुचि का विषय, (वेनः) कामना करने योग्य है, (अस्य) इस जगदीश्वर के (बुध्न्याः) जल-सम्बन्धित अन्तरिक्ष में विद्यमान सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और तारा आदि लोक (विष्ठाः) विविध स्थानों में स्थित हैं, [आवः] जो अपनी व्याप्ति से आकाश को आच्छादित करते हैं, (उपमाः) जो ब्रह्म-विज्ञान के लिए उपमा=दृष्टान्त हैं, वह ब्रह्म सब में विद्यमान है, वह [पुरस्तात्] सृष्टि के आदि में (विसीमतः) मर्यादा से (सतः) विद्यमान=व्यक्त=कार्य-जगत् के (च) और (असतः) अविद्यमान=अदृश्य=अव्यक्त कारण=प्रकृति (च) और (महत्तत्व आदि के (योनिम्) स्थान आकाश को (विवः) खोल देता है, उस ब्रह्म की सबको उपासना करनी चाहिये ।। १३ । ३ ।।

[यस्यास्य बुध्न्या'''उपमाः सन्ति]

भावार्थः—यस्य ब्रह्मणो विज्ञानाय

भावार्थ—जिस ब्रह्म के विज्ञान के लिए

प्रसिद्धाऽप्रसिद्धा लोका दृष्टान्ताः सन्ति, प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध लोक दृष्टान्त हैं,

[आवः, विवः, विसीमतः]

यत् सर्वत्राभिव्याप्तं सत् सर्वमावृणोति सर्वं विकाशयति, सुनियमेन स्वस्वकक्षायां विचालयति, जो ब्रह्म सब में व्यापक होकर सबको आच्छादित कर रहा है, सबका विकास करता है, सबको नियमपूर्वक अपनी-अपनी कक्षा में चलाता है,

[तत्सर्वैरुपासनीयम्]

तदेवान्तर्यामि ब्रह्म सर्वैर्मनुष्यैरुपास्यं, नातः पृथग्वस्तु भजनीयम् ॥ १३ । ३ ॥ सब मनुष्य उसी अन्तर्यामी ब्रह्म की उपासना करें, उससे पृथक् वस्तु का भजन न करें ॥

भा० पदार्थः—बुध्न्याः=प्रसिद्धाऽप्रसिद्धा लोकाः । उपमाः=दृष्टान्ताः । विसीमतः=सुनियमेन स्वस्वकक्षायाम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने आर्याभिविनय में इस मन्त्र की व्याख्या की है—"हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो । आप से बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं है । 'जज्ञानम्' सब सब जगत् में व्यापक=प्रादुर्भूत हो । सब जगत् के प्रथम=आदिकरण आप ही हो । सूर्य आदि लोक 'सीमतः' सीमा से युक्त=मर्यादा रहित 'सुरुचः' आप से प्रकाशित हैं । 'पुरस्तात्' इनको पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो । 'वि+आवः' इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक्-पृथक् यथायोग्य वर्त्ता रहे हो । 'वेनः' आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे किन्तु सब ही आपको मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त-विद्या-युक्त हो । सब रीति से रक्षक आप ही हो । सो ही परमात्मा 'बुध्न्याः' अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को 'विवः' विवृत=विभक्त करता है । वे अन्तरिक्ष आदि 'उपमा' सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवास-स्थान हैं । 'सत्' विद्यमान स्थूल जगत्, 'असत्' अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस द्विविध जगत् की 'योनिः' आदिकरण आपको ही वेदादिशास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं । इससे इस जगत् के माता-पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हो ॥ (**आर्याभिविनय** २ । २८) ॥

भाष्यसार—**ब्रह्म का स्वरूप**—जो परमात्मा सब संसार का जनक तथा जानने वाला है, वह स्वयं विस्तृत है और सबका विस्तार करने वाला है, वह ब्रह्म=सबसे बड़ा है, सुरुचः=वह अत्यन्त प्रकाशमान है, वेनः=वह सबसे कामना करने योग्य है, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सब पदार्थ ईश्वर के अन्तरिक्ष में स्थित हैं, जो आकाश को भी आच्छादित कर रहा है, वह ब्रह्म विज्ञान के लिए उपमा है और वही व्यक्त कार्य जगत् का और अव्यक्त-कारण प्रकृति के कारण आकाशादि को खोल देता है । उसी ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये ॥ १३ । ३ ॥

हिरण्यगर्भः । **प्रजापतिः=परमेश्वरः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तत् कीदृशमित्याह ॥

फिर वह ब्रह्म कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽ आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

पदार्थः—(हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि=सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे=मध्ये यस्य सः । **ज्योतिर्वै हिरण्यम् ॥ शत० ॥ हिरण्यं कस्माद्ध्रियत आयम्यमानमिति वा ह्रियते जनाज्जनमिति वा हितरमणं भवतीति वा हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मणः ॥ निरु० २ । १० ॥** (**सम्**) (**अवर्त्तत**)(**अग्रे**) सृष्टेः प्राक् (**भूतस्य**) उत्पन्नस्य (**जातः**) जनकः (**पतिः**) पालकः (**एकः**) असहायोऽद्वितीयः (**आसीत्**) (**सः**) (**दाधार**) धृतवान् (**पृथिवीम्**) प्रकाशरहितं भूगोलादिकम (**द्याम्**) प्रकाशमयं सूर्यादिकम (**उत**) (**इमाम्**) वर्त्तमानां सृष्टिम् (**कस्मै**) सुखस्वरूपाय प्रजापतये (**देवाय**) प्रकाशमानाय (**हविषा**) आत्मादिसामग्र्या (**विधेम**) परिचरेम । **विधेमेति परिचरणकर्मा० ॥ निघं० ३ । ५ ॥** निरुक्तकारमेवमाह—हिरण्यगर्भो हिरण्मयो गर्भो हिरण्मयो गर्भोऽस्येति वा गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे गिरत्यनर्थानिति वा यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति । समभवदग्रेभूतस्य जातः पतिरेको बभूव स धारयति पृथिवीं दिवं च कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातं विधतिर्दानकर्मा० निरु० १० । २३ । ४ ॥

प्रमाणार्थ—'हिरण्यगर्भः' इसमें हिरण्य शब्द सूर्यादि ज्योति का वाचक है। शतपथ में लिखा है—'ज्योतिर्वै हिरण्यम्' अर्थात् हिरण्य शब्द ज्योति का वाचक है। हिरण्य शब्द के निरुक्त २ । १० में निम्न अर्थ किये हैं—(१) क्योंकि स्वर्णकार तन्त्री आदि यन्त्रों से लम्बा करने के लिए खींचते हैं। (२) सुवर्ण एक मनुष्य से दूसरे के पास दानादान रूप में ग्रहण किया जाता है । (३) यह मनुष्य को हित (**सुख**) प्राप्त कराता है। (४) यह हृदय को प्रिय लगता है। (५) इच्छार्थक हर्य धातु से हिरण्य बना है। सभी मनुष्य सुवर्ण को प्राप्त करना चाहते हैं । 'विधेम' यहाँ विधेम क्रिया का परिचर्या (**सेवा**) अर्थ है। निघण्टु ३ । ५ में इसका पाठ परिचरण अर्थ वाली क्रियाओं में है । इस मन्त्र की व्याख्या निरुक्त (१० । २३) में यास्कमुनि ने की है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं योऽस्य भूतस्य जातः पतिरेको हिरण्यगर्भोऽग्रे समवर्त्तता-सीत्स इमां सृष्टिं रचयित्वोतापि पृथिवीं द्यां दाधार तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय परमेश्वराय हविषा विधेम तथा यूयमप्येनं सेवध्वम् ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा वयं योऽस्य भूतस्य** उत्पन्नस्य **जातः** जनकः **पतिः** पालकः **एकः** असहायोऽद्वितीयः **हिरण्यगर्भः** हिरण्यानि=सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे=मध्ये यस्य सः, **अग्रे** सृष्टेः प्राक् **समवर्त्तत=आसीत् स इमां** वर्त्तमानां (सृष्टिं) **सृष्टिं रचयित्वा, उत=अपि पृथिवीं** प्रकाशरहितं भूगोलादिकं **द्यां** प्रकाशमयं सूर्य्यादिकं **दाधार** धृतवान् **तस्मै कस्मै=सुखस्वरूपाय** सुखस्वरूपाय प्रजापतये **देवाय=परमेश्वराय** प्रकाशमानाय **हविषा** आत्मादिसामग्र्या **विधेम** परिचरेम, **तथा यूयमप्येनं सेवध्वम्** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग—जो इस (भूतस्य) उत्पन्न जगत् का (जातः) जनक (पतिः) पालक, (एकः) अद्वितीय, (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ=मध्य में सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थ विद्यमान हैं वह **परमेश्वर** (अग्रे) सृष्टि से पूर्व (समवर्तत) वर्त्तमान था उसने (इमाम्) इस सृष्टि को रचकर (उत) और (पृथिवीम्) प्रकाश-रहित भूगोल आदि को, (द्याम्) प्रकाशमय सूर्य आदि को (दाधार) धारण किया है, उस (कस्मै) सुखस्वरूप प्रजापति (देवाय) प्रकाशमान परमेश्वर की (हविषा) आत्मा आदि सामग्री से (विधेम) परिचर्या=सेवा करते हैं, वैसे तुम भी इसकी सेवा करो ॥ १३ । ४ ॥

[**हे मनुष्याः ! अस्य भूतस्य जातः पतिः···अग्रे समवर्तत**]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयम्—अस्याः

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—इस सृष्टि से

सृष्टेः प्राक् परमेश्वर एव जागरूक आसीद्,	पूर्व परमेश्वर ही जागरूक था,

[स···पृथिवीं द्यां दाधार]

येनेमे लोका धृताः, प्रलयसमये भिद्यन्ते,	जिसने इन लोकों को धारण किया है, जो प्रलय-समय में इनका भेदन करता है,

[कस्मै देवाय हविषा विधेम]

तमेवोपास्यं मन्यध्वम् ॥ १३ । ४ ॥	उसी परमेश्वर को उपास्य मानो ॥ १३ । ४ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) 'स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां' इस मन्त्रांश की व्याख्या महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार की है—"सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। इसलिए जो सब जगत् को रचता है वही—'स दाधार पृथिवीमुत द्याम्'' यह यजुर्वेद का वचन है। जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोक लोकान्तर, पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश-सहित लोक और पदार्थों का रचन, धारण परमात्मा करता है। जो सबमें व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्त्ता और धारण करने वाला है (**सत्यार्थ० समु० ८**) ॥

(ख) "हिरण्यगर्भः ······ हविषा विधेम" यह यजुर्वेद का मन्त्र है। हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य आदि तेज वाले लोकों का उत्पत्ति-स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था और होगा **उस**का स्वामी था, है और रहेगा। वह पृथिवी से लेके सूर्यलोक पर्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो (**सत्यार्थप्रकाश समु० ७**) ॥

(ग) "हिरण्यगर्भ ······ हविषा विधेम" अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे, सूर्य चन्द्रमा आदि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (**भूतस्य**) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (**जातः**) प्रसिद्ध (**पतिः**) स्वामी (**एक**) एक ही चेतन स्वरूप (**आसीत्**) था, जो (**अग्रे**) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (**समवर्त्तत**) वर्तमान था (**सः**) सो (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) भूमि (**उत**) और (**द्याम्**) सूर्यादि को (**दाधार**) धारण कर रहा है। हम लोग उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) शुद्ध परमात्मा के लिए (**हविषा**) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (**विधेम**) विशेष भक्ति किया करें (**संस्कारविधि० ईश्वरस्तुति०**) ॥

(घ) **विनियोग**—'हिरण्यगर्भः०' इस मन्त्र को बोल के पति अपनी गर्भिणी पत्नी के गर्भाशय पर हाथ धरे (**संस्कारविधि पुंसवन०**) ॥

(ङ) "हिरण्यगर्भः" — जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक=अद्वितीय 'हिरण्यगर्भः' (**जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति स्थान=उत्पादक**) है, सो ही प्रथम था। वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है। वही परमात्मा पृथिवी से लेके प्रकृति-पर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है। 'कस्मै' (**कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कः, तस्मै देवाय, शतपथे**) प्रजापति जो परमात्मा उसकी पूजा आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करें, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करें। जो परमात्मा को छोड़ के, वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है उसकी और उस देश भर की दुर्दशा अत्यन्त होती है, यह प्रसिद्ध है। इससे चेतो मनुष्यो, जो तुमको सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो अन्यथा तुमको कभी सुख न होगा (**आर्याभिविनय २ । २०**) ॥

(च) महर्षि ने इस मन्त्र का शास्त्रार्थ आदि में बड़ा उपयोग किया है। महर्षि के जीवन चरित्र में इसका कई स्थानों पर उल्लेख किया गया है ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर का स्वरूप**—परमेश्वर इस उत्पन्न मात्र जगत् का जनक तथा पालक है, वह अद्वितीय है, उस के मध्य में ही सूर्य-चन्द्रादि तेजस्वी पदार्थ विद्यमान हैं, परमेश्वर ही सृष्टि से पूर्व विद्यमान था, वह ही इस सृष्टि को रचकर पृथिवी आदि प्रकाश-रहित तथा सूर्यादि प्रकाशमय लोकों को धारण कर रहा है। उसी की उपासना हम सब श्रद्धा से करें। क्योंकि वह परमेश्वर सुख-स्वरूप तथा सुखों का दाता है ।१३।४॥

हिरण्यगर्भः। **ईश्वरः**=स्पष्टम्। विराडार्षी त्रिष्टुप्। गान्धारः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है॥

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥ ५॥

पदार्थः—(**द्रप्सः**) हर्ष=उत्साहः। **अत्र दृप विमोहनहर्षणयोरित्यत औणादिकः सः किच्च** (**चस्कन्द**) प्राप्नोति (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अनु**) (**द्याम्**) प्रकाशम् (**इमम्**) (**च**) (**योनिम्**) कारणम् (**अनु**) (**यः**) (**च**) (**पूर्वः**) पूर्णः (**समानम्**) (**योनिम्**) स्थानम् (**अनु**) (**संचरन्तम्**) (**द्रप्सम्**) आनन्दम् (**जुहोमि**) गृह्णामि (**अनु**) (**सप्त**) पञ्च प्राणा मन आत्मा चेति (**होत्राः**) आदातारः॥ ५॥

प्रमाणार्थ—'द्रप्सः' इसमें विमोहन तथा हर्षण अर्थ वाली दृप् धातु से औणादिक स प्रत्यय और कित्वद्भाव हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथाहं यस्य सप्त होत्राऽनुग्रहीतारो य इमां पृथिवीं द्यां योनिं चानु यः पूर्वो द्रप्सोऽनु चस्कन्द तस्य योनिमनु संचरन्तं समानं द्रप्सं सर्वत्राभिव्याप्तमानन्दमनुजुहोमि तथैनमादत्त॥ ५॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽहं यस्य सप्त** पञ्च प्राणा मन आत्मा चेति **होत्राः**=**अनुग्रहीतार** आदातारः **य इमां पृथिवीं** भूमिं **द्यां** प्रकाशं **योनिं** कारणं **चाऽनु यः पूर्वः** पूर्णः **द्रप्सः** हर्षः=उत्साहः **अनु**+**चस्कन्द** प्राप्नोति, **तस्य योनिं** स्थानम् **अनु**+सम्+**चरन्तं समानं द्रप्सम्**=**सर्वत्राऽभिव्याप्तमानन्दम् अनु**+**जुहोमि** गृह्णामि, **तथैनमादत्त**॥ १३।५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे मैं—जिसके (सप्त) पाँच प्राण, मन और आत्मा ये सात (होत्राः) ग्रहण करने वाले हैं, जो (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि को (द्याम्) प्रकाशमय द्युलोक को (योनिम्) इनके कारण=प्रकृति को प्राप्त है, (च) और जो (पूर्वः) पूर्ण तथा (द्रप्सः) हर्ष=उत्साह से युक्त होकर (अनु+चस्कन्द) सर्वत्र उपलब्ध है, उसके (योनिम्) निवास-स्थान में (अनु+संचरन्तम्) संचरण करते हुए (समानम्) समान रूप से (द्रप्सम्) सर्वत्र व्याप्त आनन्द को (अनु+जुहोमि) ग्रहण करता हूँ वैसे इस आनन्द को तुम ग्रहण करो॥ १३।५॥

[हे मनुष्याः! यथाऽहं···द्रप्सम्=सर्वत्राभिव्याप्तमानन्दमनु जुहोमि, तथैनमादत्त]

भावार्थः—हे मनुष्याः! यूयं यस्य

भावार्थ—हे मनुष्यो! तुम–जिस

जगदीश्वरस्य सानन्दं स्वरूपं सर्वत्रोपलभ्यते, तत्प्राप्तये योगमभ्यस्यत ।। १३ । ५ ।।

दीश्वर का आनन्द-युक्त स्वरूप सर्वत्र उपलब्ध है, उसकी प्राप्ति के लिए योगाभ्यास करो ।। १३ । ५ ।।

भा० पदार्थः—द्रप्सम्=जगदीश्वरस्य सानन्दं स्वरूपं सर्वत्रोपलब्धम् ।

भाष्यसार--**परमेश्वर का स्वरूप-वर्णन**—वह परमेश्वर पृथिवी तथा सूर्यादि के कारण प्रकृति में व्यापक है, पूर्णपुरुष है, आनन्दस्वरूप है और सर्वत्र उपलब्ध है। उसके बनाये इस संसार में संचरण करते हुए, उसके समान रूप वाला होकर सर्वत्र विद्यमान आनन्द को ग्रहण करना चाहिये। उसके प्राप्त करने के लिए साधनभूत सात होते हैं अर्थात् पाँच प्राण मन और आत्मा ।। १३ । ५ ।।

हिरण्यगर्भः । **हिरण्यगर्भः**=ईश्वरः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ।।

मनुष्यैरत्र कथं वर्त्तितव्यमित्याह ।।

मनुष्यों को संसार में कैसे वर्त्तना चाहिये, यह उपदेश किया है ।।

नमो॑ऽस्तु स॒र्पेभ्यो॒ ये के च॑ पृथि॒वीमनु॑ । ये ऽ अ॒न्तरि॑क्षे॒ ये दि॒वि तेभ्यः॑ स॒र्पेभ्यो॒ नमः॑ ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् । नम इत्यन्ननाम० ।। निघं० २ । ७ ।। (**अस्तु**) (**सर्पेभ्यः**) ये सर्पन्ति=गच्छन्ति ते लोकास्तेभ्यः । इमे वै लौकाः सर्पास्तेहानेन सर्वेण सर्पन्ति ।। शत० ७ । ३ । १ । २५ ।। (**ये**) (**के**) (**च**) (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**अनु**) (**ये**) (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ये**) (**दिवि**) सूर्य्यादिलोके (**तेभ्यः**) (**सर्पेभ्यः**) प्राणिभ्यः (**नमः**) अन्नम् ।। ६ ।।

प्रमाणार्थ—'नमः' निघण्टु २ । ७ में नमस् शब्द अन्न-नामों में पढ़ा है। 'सर्पेभ्यः' यहाँ सर्प शब्द लोक का वाची है । शतपथ ब्राह्मण में (७ । ३ । १ । २५) में लिखा है कि ये लोक सर्प कहलाते हैं क्योंकि वे गति करते हैं ।

अन्वयः—ये के चात्र सर्पाः सन्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमोऽस्तु । येऽन्तरिक्षे ये दिवि ये च पृथिवीमनुसर्पन्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमोऽस्तु ।। ६ ।।

सपदार्थान्वयः— **ये के चात्र सर्पाः सन्ति, तेभ्यः सर्पेभ्यः** ये सर्पन्ति=गच्छन्ति ते लोकास्तेभ्यः **नमः** अन्नम् **अस्तु** ।

ये ऽन्तरिक्षे आकाशे, **ये दिवि** सूर्य्यादिलोके, **ये च पृथिवीं** भूमिम् **अनु+सर्पन्ति, तेभ्यः सर्पेभ्यः** प्राणिभ्यः **नमः** अन्नम् **अस्तु** ।। १३ । ६ ।।

भाषार्थ—(ये) जो (के) कोई इस जगत् में लोक हैं (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) गतिशील लोकों के लिए (नमः) अन्न (अस्तु) हो ।

(ये) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में, (ये) जो (दिवि) सूर्य आदि लोक में (च) और (ये) जो (पृथिवीम्) पृथिवी पर (अनु+सर्पन्ति) प्राणी गति करते हैं (तेभ्यः) उन (सर्पभ्यः) प्राणियों के लिए (नमः) अन्न (अस्तु) हो ।। १३ । ६ ।।

[ये के चात्र सर्पाः सन्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमो ऽस्तु]

भावार्थः—यावन्त इमे लोका दृश्यन्ते, ये च न दृश्यन्ते ते सर्वे स्वस्वकक्षायामीश्वरेण नियताः सन्तः,

भावार्थ—जितने ये लोक दिखाई देते हैं, और जो दिखाई नहीं देते हैं वे सब अपनी-अपनी कक्षा में ईश्वर से नियत किए हुए—

[येऽन्तरिक्षे ...अनुसर्पन्ति, तेभ्यः सर्पेभ्यो नमोऽस्तु]

आकाशे भ्रमन्ति, तेषु सर्वेषु लोकेषु ये प्राणिनश्चलन्ति, तदर्थमीश्वरेण [अन्नम्] रचितं यत एतेषां जीवनं भवति, यूयं विजानीत ॥ १३ । ६ ॥

आकाश में घूमते हैं, उन सब लोकों में जो प्राणी चलते हैं उनके लिए [अन्न] बनाया है, जिससे इनका जीवन रहता है, ऐसा तुम जानो ॥

भा० पदार्थः—अनुसर्पन्ति=भ्रमन्ति ।

भाष्यसार—मनुष्यों का व्यवहार—जितने भी संसार में लोक हैं, वे सब गतिशील हैं, और वे अपनी-अपनी कक्षा में भ्रमण कर रहे हैं। उन सब लोकों में जितने भी प्राणी रहते हैं, उन सब के जीवन का आधार अन्न है। मनुष्यों का यह विशेषधर्म है कि वे सब प्राणियों को अन्नादि से तृप्त करने का प्रयत्न करें ॥ १३ । ६ ॥

हिरण्यगर्भः । **हिरण्यगर्भः**=ईश्वरः ॥ अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तैः कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

या ऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१ऽरनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

पदार्थः—(याः) (इषवः) गतयः (**यातुधानानाम्**) (ये) यान्ति परपदार्थान् दधति तेषाम् (ये) (वा) (**वनस्पतीन्**) वटादीन् (**अनु**) (ये) (वा) (**अवटेषु**) अपरिभाषितेषु मार्गेषु (**शेरते**) (**तेभ्यः**) (**सर्पेभ्यः**) (**नमः**) वज्रम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं या यातुधानानामिषवो ये वा वनस्पतीननुवर्त्तन्ते ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः प्रक्षिपत ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं या यातुधानानां** ये यान्ति परपदार्थान् दधति तेषाम् **इषवः** गतयः **ये वा वनस्पतीन्** वटादीन् **अनु+वर्त्तन्ते, ये वाऽवटेषु** अपरिभाषितेषु मार्गेषु **शेरते, तेभ्यः सर्पेभ्यः** ये सर्पन्ति=गच्छन्ति ते लोकास्तेभ्यः **नमः** वज्रं **प्रक्षिपत** ॥ १३ । ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(याः) जो (यातुधानानाम्) परपदार्थों को प्राप्त करके धारण करने वाले डाकुओं की (इषवः) चाल हैं, (वा) अथवा (ये) जो (वनस्पतीन्) बड़ आदि वनस्पतियों के वनों में (अनु+वर्त्तन्ते) रहते हैं, (वा) अथवा (ये) जो (अवटेषु) अप्रसिद्ध मार्गों में (शेरते) सोते हैं, (तेभ्यः) उन (सर्पेभ्यः) गतिशील लोगों के लिए (नमः) वज्र को फेंको ॥ १३ । ७ ॥

[या यातुधानानामिषवः, ये वा वनस्पतीननुवर्त्तन्ते, ये वाऽवटेषु शेरते]

भावार्थः—मनुष्या ये मार्गेषु, वनेषूत्कोचका दिवसे एकान्ते स्वपन्ति तान्—

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि जो मार्गों में, वनों में उचक्के लोग दिन में एकान्त में सोते हैं, उन—

[तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः प्रक्षिपत]

दस्यून् नागांश्च शस्त्रौषधादिना निवारयन्तु ॥

डाकुओं और सर्पों का शस्त्र और औषध आदि से निवारण करें ॥ १३ । ७ ॥

भा० पदार्थः—यातुधानानाम्=उत्कोचकानाम् । अवटेषु=एकान्ते । शेरते=स्वपन्ति । सर्पेभ्यः=दस्युभ्यः, नागेभ्यः । नमः=शस्त्रौषधादि ।

भाष्यसार—मानव धर्म—मनुष्यों का यह परम धर्म होना चाहिये कि जो संसार में यातुधान=परपदार्थों को बलपूर्वक लेकर धारण करने वाले डाकू आदि हों। वे चाहे वनों में अथवा अप्रसिद्ध मार्गों में छुपकर रहते हों, उनको नमः=वज्रादि से नष्ट करने का प्रयत्न करें ॥ १३ । ७ ॥

हिरण्यगर्भः । **सूर्यः**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्यैः कण्टकाः कथं बाधनीया इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कंटक अर्थात् दुष्ट प्राणी कैसे हटाने चाहिएँ, यह उपदेश किया है ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

पदार्थ—(**ये**) (**वा**) (**अमी**) (**रोचने**) दीप्तौ (**दिवः**) विद्युतः (**ये**) (**वा**) (**सूर्य्यस्य**) (**रश्मिषु**) (**येषाम्**) (**अप्सु**) (**सदः**) सदनम् (**कृतम्**) निष्पन्नम् (**तेभ्यः**) (**सर्पेभ्यः**) **दुष्टप्राणिभ्यः** (**नमः**) वज्रम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! येऽमी दिवो रोचने ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु येषां वाप्सु सदस्कृतमस्ति तेभ्यः सर्पेभ्यो नमो दत्त ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! येऽमी दिवः** विद्युतः **रोचने** दीप्तौ, **ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु, येषां वाऽप्सु सदः** सदनं **कृतं** निष्पन्नम् **अस्ति, तेभ्यः सर्पेभ्यः** दुष्टप्राणिभ्यः **नमः** वज्रं **दत्त** ॥ १३ । ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (ये) जो (अमी) यह (दिवः) विद्युत् की (रोचने) दीप्ति=चमक में, (वा) अथवा (ये) जो (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिषु) किरणों में, (वा) अथवा (येषाम्) जिनका (अप्सु) जल में (सदः) घर (कृतम्) बना हुआ है, (तेभ्यः) उन सब (सर्पेभ्यः) सर्प आदि दुष्ट प्राणियों के लिए (नमः) वज्र प्रदान करो।

[**हे मनुष्याः ! येऽमी दिवो रोचने, येषां वाऽप्सु सदस्कृतं···तेभ्यः सर्पेभ्यो नमो दत्त**]

भावार्थः—मनुष्यैर्ये जलेष्वन्तरिक्षे सर्पा निवसन्ति, ते वज्रप्रहारेण निवर्तनीयाः ॥ १३ । ८ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि वे जो जल और अन्तरिक्ष में सर्प आदि दुष्ट प्राणी रहते हैं उनकी वज्र-प्रहार से निवृत्ति करें ॥ १३ । ८ ॥

भा० पदार्थः—अप्सु=जलेषु । नमः=वज्रप्रहारम् ।

भाष्यसार—मनुष्य का कर्त्तव्य—सभी मनुष्यों को उचित है कि जो-जो विद्युत् की दीप्ति में अर्थात् आकाश में सूर्य की किरणों में अथवा जल में घर बनाकर सर्प सदृश वृत्ति वाले हिंसक प्राणी रहते हों, उन सबको वज्र-प्रहार से दूर करने का पूरा प्रयत्न करें ॥ १३ । ८ ॥

वामदेवः । **अग्निः**=सेनापतिः । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

राजपुरुषैः कथं शत्रवो बन्धनीया इत्याह ॥

राजपुरुषों को शत्रु कैसे बाँधने चाहियें, यह उपदेश किया है ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ ऽ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**कृणुष्व**) कुरुष्व (**पाजः**) बलम् । पातेर्बले जुट् च ॥ उ० ४ । २१० ॥ इत्यसुन् (**प्रसितिम्**) जालम् । प्रसितिः प्रसयनात्तन्तुर्वा जालं वा ॥ नि० ६ । १२ ॥ (**न**) इव (**पृथ्वीम्**) भूमिम् (**याहि**) प्राप्नुहि (**राजेव**) (**अमवान्**) बहवः सचिवा विद्यन्ते यस्य तद्वत् (**इभेन**) हस्तिना (**तृष्वीम्**) क्षिप्रगतिम् तृष्विति क्षिप्रनाम० ॥ निघं० २ । १५ ॥ ततो वोतो गुणवचनादिति ङीष् (**अनु**) (**प्रसितिम्**) बन्धनं=जालम् (**द्रूणानः**) हिंसन् (**अस्ता**) प्रक्षेप्ता (**असि**) (**विध्य**) ताडय (**रक्षसः**) शत्रून् (**तपिष्ठैः**) अतिशयेन संतापकरैः शस्त्रैः । अयं मन्त्रः नि० ६ । १२ व्याख्यातः ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—'पाजः' यहाँ पा धातु से 'पातेर्बले जुट् च' (**उणादि० ४ । २१०**) सूत्र से असुन् प्रत्यय हुआ है । 'प्रसितिम्' इसमें प्रसिति शब्द को (**निरु० ६ । १२ में**) जालवाचक तथा तन्तु-वाचक कहा है । 'तृष्वीम्' निघण्टु २ । १५ में तृषु शब्द क्षिप्र-वाचकों में पढ़ा है । तृषु शब्द से स्त्रीलिङ्ग में वोतो गुणवचनात् सूत्र से ङीष् प्रत्यय करने से तृष्वी शब्द बनता है । इस मन्त्र की व्याख्या निघण्टु २ । १५ में यास्कमुनि ने की है ।

अन्वयः—हे सेनापते ! त्वं पाजः कृणुष्व प्रसितिं न पृथ्वीं याहि । यतस्त्वमस्तासि तस्मा-दिभेनामवान् राजेव तपिष्ठैः प्रसितिं संसाध्य रक्षसश्च द्रूणानस्तृष्वीमनुविध्य ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सेनापते ! त्वं पाजः** बलं **कृणुष्व** कुरुष्व, **प्रसितिं** जालं **न** इव **पृथिवीं** भूमिं **याहि** प्राप्नुहि । यतस्**त्वमस्ता** प्रक्षेप्ता **असि, तस्मादिभेन** हस्तिना **अमवान्** बहवः सचिवा विद्यन्ते यस्य तद्वद् **राजेव तपिष्ठैः** अतिशयेन सन्तापकरैः शस्त्रैः **प्रसितिं** बन्धनं=जालं **संसाध्य रक्षसः** शत्रून् **च द्रूणानः** हिंसन् **तृष्वीं** क्षिप्रगतिम् **अनु+विध्य** ताडय ॥ १३ । ९ ॥

भाषार्थ—हे सेनापति ! तू—(पाजः) बल=सेना को (कृणुष्व) बना, (प्रसितिम्) जाल=बन्धन के (न) समान (पृथिवीम्) भूमि को (याहि) प्राप्त कर । क्योंकि तू (अस्ता) शर=बाण आदि को फैंकने वाला (असि) है अतः (इभेन) हाथी से (अमवान्) बहुत सचिव=मन्त्रियों वाले (राजेव) राजा के समान (तपिष्ठैः) अत्यन्त सन्ताप कारक शस्त्रों से (प्रसितिम्) बन्धन=जाल को सिद्ध करके (रक्षसः) शत्रुओं का (द्रूणानः) हिंसन करता हुआ (तृष्वीम्) शीघ्र गति से (अनु+विध्य) ताड़न कर ॥ १३ । ९ ॥

[हे सेनापते ! त्वं पाजः कृणुष्व,...तपिष्ठैः प्रसितिं संसाध्य, रक्षसश्च द्रूणानस्तृष्वीमनुविध्य]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ राजवत्सेनापतिः पूर्णं बलं सम्पाद्य, अनेकैः पाशैः शत्रून् बद्ध्वा, शरादिभिर्विद्ध्वा, कारागारे संस्थाप्य, श्रेष्ठान् पालयेत् ॥ १३ । ९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ राजा के समान सेनापति पूर्ण बल=सेना को बनाकर, अनेक बन्धनों से शत्रुओं को बाँधकर, शर=बाण आदि से बींधकर तथा उन्हें कारा-गार=जेल में रखकर श्रेष्ठों का पालन करे ॥

भा० पदार्थः—पाजः=पूर्णं बलम् । प्रसितिम्=अनेकविधं पाशम् ।

भाष्यसार—**१. सेनापति शत्रुओं को कैसे बांधे**—राजा के समान सेनापति का कर्त्तव्य है कि वह अपने सेना के बल को सर्वथा सुदृढ़ बनाकर, अत्यन्त सन्तापकारक शस्त्रों को बनाये और उनका अच्छी प्रकार चलाने का अभ्यास कर शत्रुओं का विनाश करे। जो शत्रु हिंसन करने वाला है और राक्षस-सदृश दुःखदायी हो उसको शीघ्र ही शस्त्रों के बन्धनों से बांध कर दण्ड देवे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजा शत्रुओं का विनाश कर प्रजा की रक्षा करता है वैसा ही सेनापति भी करे ॥ १३ । ९ ॥

वामदेवः । **अग्निः=सेनापतिः ।** भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः स किं कुर्य्यादित्युपदिश्यते ॥

फिर वह सेनापति क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

तव॒ भ्रमास॑ऽआशु॒या प॑त॒न्त्यनु॑ स्पृश धृष॒ता शोशु॑चानः ।
तपू॑ᳪंष्यग्ने जु॒ह्वा॒ पत॒ङ्गानस॑न्दितो॒ विसृ॑ज॒ विष्व॑गु॒ल्काः ॥ १० ॥

पदार्थः—(**तव**) (**भ्रमासः**) भ्रमणशीला वीराः (**आशुया**) शीघ्रगमनाः । **अत्र जसः स्थाने यादेशः** (**पतन्ति**) श्येनवच्छत्रुदले संचरन्ति (**अनु**) (**स्पृश**) अनुगतो भव (**धृषता**) दृढेन सैन्येन (**शोशुचानः**) भृशं पवित्राचरणः (**तपूंषि**) तापाः (**अग्नेः**) अग्निरिव वर्त्तमान (**जुह्वा**) आज्यहवनसाधनया (**पतङ्गान्**) अश्वान् । **पतङ्गा इत्यश्वना० ॥ निघं० १ । १४ ॥** (**असंदितः**) अखण्डितः (**वि**) (**सृज**) निष्पादय (**विष्वक्**) सर्वतः (**उल्काः**) विद्युत्पाताः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—'आशुया' यहाँ जस् के स्थान पर यादेश हुआ है। 'पतङ्गान्' इसमें पतङ्ग शब्द अश्ववाचक है। और इसका पाठ निघण्टु १ । १४ में अश्व-नामों में किया है।

अन्वयः—हे सेनापतेऽग्ने शोशुचानस्त्वं ये तव भ्रमासो यथा विष्वगाशुयोल्कास्तथा शत्रुषु पतन्ति तान् धृषताऽनुस्पृश । अखण्डितः सन् जुह्वाग्नेस्तपूंषीव शत्रूणामुपरि सर्वतो विद्युतो विसृज पतङ्गान् सुशिक्षितानश्वान् कुरु ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सेनापते अग्ने !** अग्निरिव वर्त्तमान ! **शोशुचानः** भृशं पवित्राऽऽचरणः **त्वं ये तव भ्रमासः** भ्रमणशीला वीराः **यथा विष्वक्** सर्वतः **आशुया** शीघ्रगमनाः **उल्काः** विद्युत्पाताः **तथा शत्रुषु पतन्ति** श्येनवच्छत्रुदले संचरन्ति, **तान् धृषता** दृढेन सैन्येन **अनुस्पृश** अनुगतो भव । [**असंदितः**]=**अखण्डितः सन् जुह्वा** आज्यहवनसाधनया **अग्नेस्तपूंषि** तापाः **इव शत्रूणामुपरि सर्वतो विद्युतो विसृज** निष्पादय, **पतङ्गान्**=**सुशिक्षितानश्वान्** अश्वान् **कुरु** ॥ १३ । १० ॥

भाषार्थ—हे सेनापति ! (अग्ने) अग्नि के समान वर्ताव वाला तथा (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र आचरण वाला तू–जो (तव) तेरे (भ्रमासः) भ्रमणशील वीर, जैसे (विष्वक्) सब ओर से (आशुया) शीघ्रगति वाली (उल्काः) विद्युत् की चिंगारियाँ गिरती हैं वैसे शत्रुओं पर (पतन्ति) बाज पक्षी के समान शत्रुदल पर गिरते हैं **उनके** प्रति (धृषता) दृढ़ सेना से (अनुस्पृश) अनुकूल हो। और—[असंदितः] अखण्डित होकर (जुह्वा) घृत-होम करने का साधन=स्रुवा से अग्नि को (तपूंषि)

नाना तापों के तुल्य शत्रुओं के ऊपर सब ओर से बिजलियों को (वि+सृज) छोड़। और— (पतङ्गान्) सुशिक्षित अश्वों को सिद्ध कर ॥

[हे सेनापते ! अग्ने ! शोशुचानस्त्वं ये तव भ्रमासः, यथा विद्युद्गाग्नेरुल्कास्तथा शत्रुषु पतन्ति, तान् धृषताऽनुस्पृश]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ राजसेनापतिसेनाभृत्यैः परस्परं प्रीत्या, बलं संवर्ध्य, वीरान् हर्षयित्वा, संयोध्य,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। राजा सेनापति और सेना के भृत्य परस्पर प्रीतिपूर्वक बल=सेना को बढ़ाकर, वीरों को हर्षित करके, युद्ध कराके—

[अग्नेस्तपूंषीव शत्रूणामुपरि सर्वतो विद्युतो विसृज]

अग्न्याद्यस्त्रैः शतघ्न्यादिभिश्च शत्रूणामुपरि विद्युद्वृष्टिः कार्या।

आग्नेय आदि अस्त्रों से, और शतघ्नी=तोप आदि से शत्रुओं के ऊपर विद्युत् की वर्षा करें।

[हेतुमाह—]

यतः सद्यो विजयः स्यात् ॥ १३। १०॥

जिससे शीघ्र विजय हो ॥ १३। १०॥

भा० पदार्थः—अग्ने=राजसेनापतिः, सेनाभृत्यः। शोशुचानः=परस्परं प्रीत्या। तपूंषि=अग्न्याद्यस्त्राणि, शतघ्न्यादयः।

भाष्यसार—१. **सेनापति का कर्त्तव्य**—सेनापति ऐसा होना चाहिए, जो अग्नि के समान तेजस्वी हो, शोशुचानः=अत्यन्त पवित्र आचरण वाला हो। उसकी सेना में जो भ्रमणशील अर्थात् शत्रुओं की गतिविधियों का पता लगाने वाले हों, अथवा जो ऐसे योद्धा हों जो विद्युत् की तरह शीघ्र गति वाले और शत्रु सेना पर बाज पक्षी की तरह तीव्र प्रहार करने वाले हों, उनके सदा अनुकूल रहे। उनको सभी सुविधाएँ देकर सदा प्रोत्साहित करता रहे। अपने सेना-बल को अखण्डित बनाये रक्खे। सेना के घोड़े बहुत ही प्रशिक्षित रक्खे। शत्रु पर सदा बिजली की तरह तीव्र प्रहार किया करें, जिससे शत्रुओं पर शीघ्र विजय प्राप्त की जा सके।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे हवन में स्रुवा से अग्नि को प्रचण्ड किया जाता है वैसे ही शत्रु पर तीव्र विद्युत् की तरह प्रहार करे ॥ १३। १०॥

वामदेवः। **अग्निः**=सेनापतिः। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते ॥

फिर वह सेनापति कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्रति स्पशो विसृ॑ज॒ तूर्णि॑तमो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शोऽअ॒स्या अद॑ब्धः।
यो नो॑ दू॒रेऽअ॒घश॑ꣳसो॒ योऽअन्त्यग्ने॒ माकि॑ष्टे॒ व्यथि॒राद॑धर्षीत् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(प्रति) (स्पशः) बाधनानि (वि) (सृज) (तूर्णितमः) अतिशयेन त्वरिता (भव) द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (पायुः) रक्षकः (विशः) प्रजायाः (अस्याः) वर्त्तमानायाः (अदब्धः) अहिंसकः

(यः) (नः) अस्माकम् (दूरे) विप्रकृष्टे (अघशंसः) योऽघं=पापं कर्तुं शंसति स स्तेनः (यः) (अन्ति) निकटे (अग्ने) अग्निवच्छत्रुदाहक (माकिः) निषेधे । अत्र मकि धातोर्बाहुलकादिञ् नुमभावश्च (ते) तव (व्यथिः) व्यथकः=शत्रुः (आ) (दधर्षीत्) धर्षेत् । अत्र वा च्छन्दसीति द्विर्वचनम् ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—'भवा' यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' सूत्र से दीर्घ हुआ है । 'माकिः' यहाँ मकि धातु से बहुलवचन से इञ् प्रत्यय और नुम् आगम का अभाव हुआ है । 'दधर्षीत्' इसमें 'वा छन्दसि' वार्तिक सूत्र से द्विर्वचन हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! ते तव नोऽस्माकं च यो व्यथिरघशंसो दूरे योऽन्त्यस्ति यथा सोऽस्मान्माकिरादधर्षीत् तं प्रति त्वं तूर्णितमः सन् स्पशो विसृज अस्या विशः पायुरदब्धो भव ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! अग्निवच्छत्रुदाहक ! **ते**=**तव नः**=**अस्माकं च यो व्यथिः** व्यथकः=शत्रुः **अघशंसः** योऽघं=पापं कर्त्तुं शंसति स स्तेनः **दूरे** विप्रकृष्टे **योऽन्ति** निकटे **अस्ति, यथा सोऽस्मान् माकिः** न **आदधर्षीत्** धर्षेत्, **तं प्रति त्वं तूर्णितमः** अतिशयेन त्वरिता **सन् स्पशः** बाधनानि **विसृज** । **अस्याः** वर्त्तमानायाः **विशः** प्रजायाः **पायुः** रक्षकः **अदब्धः** अहिंसकः **भव** ॥ १३ । ११ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं का दहन करने वाले सेनापति ! (ते) तेरा और (नः) हमारा (यः) जो (व्यथिः) व्यथा=पीड़ा देने वाला शत्रु, (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करने वाला चोर, (दूरे) दूर है एवं (यः) जो (अन्ति) निकट है, जिससे वह हमें (माकिः) न (आ+दधर्षीत्) दबावें । उसके प्रति तू (तूर्णितमः) अत्यन्त त्वरित गति वाला होकर (स्पशः) बाधाओं को (विसृज) हटा । और–(अस्याः) इस (विशः) प्रजा का (पायुः) रक्षक एवं (अदब्धः) अहिंसक (भव) बन ॥ १३ । ११ ॥

[यो व्यथिरघशंसो दूरे यो ऽन्ति अस्ति,···तं प्रति त्वं···स्पशो विसृज]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये निकटदूरस्थाः प्रजाभ्यो दुःखप्रदा दस्यवः सन्ति, तान् राजादयः सामदामदण्डभेदैः सद्यो वशं नीत्वा,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो निकट वा दूर रहने वाले प्रजा के लिए दुःखदायक दस्यु हैं उन्हें राजा आदि लोग साम, दाम, दण्ड और भेद से शीघ्र वश में करके–

[विशः पायुरदब्धो भव]

दयान्यायाभ्यां धार्मिकीः प्रजाः सततं पालयेयुः ॥ १३ । ११ ॥

दया और न्याय से धार्मिक प्रजा का सदा पालन करें ॥ १३ । ११ ॥

भा० पदार्थः—व्यथिः=प्रजाभ्यो दुःखप्रदः । अघशंसः=दस्युः । दूरे=दूरस्थः । अन्ति=निकटस्थः ।

भाष्यसार—**१. सेनापति कैसा हो**—जो व्यथिः=पीड़ा देने वाला शत्रु हो और जो अघशंसः=पापों की प्रशंसा करता हो । चाहे वह दूर हो, अथवा वह निकट हो, जो भी धर्षित करता है, उस प्रबल शत्रु के प्रति तूर्णितमः=अत्यन्त त्वरित गति होकर अग्निः=शत्रुओं को अग्नि की तरह जलाने वाला होकर नष्ट कर दे । और प्रजा का पायुः=पालक होकर अदब्धः=और अहिंसक होकर सब बाधाओं को दूर करने में तत्पर रहे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे अग्नि सब पदार्थों को पास आते ही भस्म कर देती है, वैसे ही सेनापति शत्रु को समूल नष्ट कर देवे ॥ १३। ११ ॥

वामदेवः। **अग्निः=सभाध्यक्षो राजा**। भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

पुनः स किं कुर्यादित्याह ॥

फिर वह सभाध्यक्ष राजा क्या करे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उद॑ग्ने तिष्ठ॒ प्रत्यात॑नुष्व॒ न्य॒मित्राँ॑२ ऽ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो॒ ऽ अरा॑तिꣳ समिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(उत्) (अग्ने) सभाध्यक्ष (तिष्ठ) (प्रति) (आ) (तनुष्व) (नि) (अमित्रान्) धर्मद्वेष्टॄन् शत्रून् (ओषतात्) दह (तिग्महेते) तिग्मस्तीव्रो हेतिर्वज्रो=दण्डो यस्य सः। **हेतिरिति वज्रना०। निघं० २। २०॥** (यः) (नः) अस्माकम् (अरातिम्) शत्रुम् (समिधान) सम्यक् तेजस्विन् (चक्रे) करोति (नीचा) न्यग्भूतं कृत्वा (तम्) (धक्षि) दह। **अत्र विकरणलुक्** (अतसम्) काष्ठम् (न) इव (शुष्कम्) अनार्द्रम् ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—'तिग्महेते' इसमें हेति शब्द वज्रवाचक है। निघण्टु २। २० में हेति शब्द वज्र नामों में पढ़ा है। 'धक्षि' इसमें विकरण प्रत्यय का लुक् हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने! त्वं राजधर्म उत्तिष्ठ धार्मिकान् प्रत्यातनुष्व। हे तिग्महेतेऽमित्रान्योषतात्। हे समिधान! यो नोऽरातिं चक्रे तं नीचा शुष्कमतसं न धक्षि ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने!** सभाध्यक्ष **त्वं राजधर्म उत्+तिष्ठ, धार्मिकान् प्रत्यातनुष्व।**

हे **तिग्महेते**! तिग्मस्तीव्रो हेतिर्वज्रो=दण्डो यस्य सः [तत्सम्बुद्धौ]! **अमित्रान्** धर्मद्वेष्टॄन् शत्रून् **नि+ओषतात्** दह।

हे **समिधान!** सम्यक् तेजस्विन्! **यो नः** अस्माकम् **अरातिं** शत्रुं **चक्रे** करोति, **तं नीचा** न्यग्भूतं कृत्वा **शुष्कम्** अनार्द्रम् **अतसं** काष्ठं **न** इव **धक्षि** दह ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) सभाध्यक्ष! तू—राजधर्म का (उत्+तिष्ठ) उत्थान कर, धार्मिकों का (प्रत्यातनुष्व) विस्तार कर।

हे (तिग्महेते) तीव्र वज्र=दण्ड वाले सभाध्यक्ष! तू (अमित्रान्) धर्म से द्वेष करने वाले शत्रुओं का (नि+ओषतात्) दहन कर।

हे (समिधान) उत्तम तेजस्वी सभाध्यक्ष! (यः) जो (नः) हमारे (अरातिम्) शत्रु (चक्रे) बनाता है, उसे (नीचा) तिरस्कृत करके (शुष्कम्) सूखे (अतसम्) काठ के (न) समान (धक्षि) दहन कर ॥ १३। १२ ॥

[हे अग्ने! त्वं राजधर्म उत्तिष्ठ, धार्मिकान् प्रत्यातनुष्व]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ राजादयः सभ्या धर्मे विनये समाहिता भूत्वा जलमिव मित्रान् शीतयेयुः।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है॥ राजा आदि सभ्य जन धर्म एवं विनय में समाहित होकर जल के तुल्य मित्रों को शीतल करें।

[हे तिग्महेते ! अमित्रान् न्योषतात्]

अग्निरिव शत्रून् दहेयुः ।

अग्नि के समान शत्रुओं का दहन करें ।

[यो नोऽरातिं चक्रे तं नीचा शुष्कमतसं न धक्षि]

य उदासीनः स्थित्वाऽस्माकं शत्रूनुत्पादयेत्तं दृढं बन्धं बद्ध्वा निष्कण्टकं राज्यं कुर्युः ॥ १३ । १२ ॥

जो उदासीन रहकर हमारे शत्रुओं को उत्पन्न करे उसे दृढ़ बन्धन में बांधकर निष्कण्टक राज्य करें ॥ १३ । १२ ॥

भा० पदार्थः—चक्रे=उत्पादयेत् ॥

भाष्यसार—**१. राजा का कर्त्तव्य**—(१) राजा का प्रथम कर्त्तव्य है कि स्वयं उन्नत होकर प्रजा की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न किया करे । जो धार्मिक तथा विद्वान् पुरुष हैं उनकी सदा सुरक्षा किया करे । (२) जो धर्मादि श्रेष्ठ कार्यों से द्वेष करने वाले हों उनको तीव्रदण्ड देकर दहन कर देवे । तीव्र दण्ड के विना पापी पाप से कदापि निवृत्त नहीं होते । (३) जो अराति=अदानशील स्वार्थी मनुष्य राज्य में हों, अथवा राज्य से बाहर शत्रु हों, उन सबको तेजस्वी होकर सूखे काठ की तरह जला देवे अर्थात् समूल नष्ट कर देवे ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सब पदार्थों को जला देती है उसी प्रकार राजा पापियों का और शत्रुओं का विनाश करे ॥ १३ । १२ ॥ ●

वामदेवः । **अग्निः=राजा** । निचृदार्ष्यतिजगती । निषादः ॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह ॥

फिर वह राजा किस प्रकार का हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने । अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून् । अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि ॥ १३ ॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वः) उत्कृष्टः (भव) (प्रति) (विध्य) ताडय (अधि) (अस्मत्) (आविः) प्राकट्ये (कृणुष्व) (दैव्यानि) देवैर्विद्वद्भिर्निर्वृत्तानि वस्तूनि (अग्ने) (अव) (स्थिरा) निश्चलानि (तनुहि) विस्तृणुहि (यातुजूनाम्) ये यान्ति ये च जवन्ते तेषाम् (जामिम्) भोजनयुक्तम् (अजामिम्) भोजनरहितं स्थानम् । अत्र जमुधातोर्वपादिभ्य इतीञ् (प्र) (मृणीहि) हिन्धि (शत्रून्) अरीन् (अग्नेः) पावकस्य (त्वा) त्वाम् (तेजसा) प्रकाशेन सह (सादयामि) स्थापयामि ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—'अजामिम्' यह शब्द जमु (**भक्षणार्थक**) धातु से 'वपादिभ्यः०' इस सूत्र से इञ् प्रत्यय करने से बना है ।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन्राजन् ! यतस्त्वमूर्ध्वो भव शत्रून् प्रति विध्यास्मत् स्थिरा दैव्यान्याकृणुष्व । सुखानि तनुहि यातुजूनां जामिमजामिमवतनुहि विनाशय । शत्रून् प्रमृणीहि तस्मादहं त्वाग्नेस्तेजसाधिसाधयामि ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=विद्वन् राजन्** ! **यतस्त्वमूर्ध्वः** उत्कृष्टः **भव, शत्रून्** अरीन् **प्रति+विध्य** ताडय, **अस्मत् स्थिरा** निश्च-

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् राजन् ! तू (ऊर्ध्वः) उत्कृष्ट=उत्तम (भव) बन, (शत्रून्) शत्रुओं का (प्रति+विध्य) ताड़न कर, (अस्मत्)

लानि **दैव्यानि** देवैर्विद्वद्भिर्निर्वृत्तानि, वस्तूनि **आविः+कृणुष्व** (प्रकटं कुरु) **सुखानि तनुहि** विस्तृणुहि, **यातुजूनां** ये यान्ति ये च जवन्ते तेषाम् **जामिं** भोजनयुक्तम् **अजामिं** भोजनरहितं स्थानम् **अव+तनुहि=विनाशय, शत्रून्** अरीन् **प्र+मृणीहि** हिन्धि । **तस्मादहं त्वा** त्वाम् **अग्नेः** पावकस्य **तेजसा** प्रकाशेन सह **अधि+सादयामि** स्थापयामि ।

हमारी (स्थिरा) स्थिर (दैव्यानि) विद्वानों के द्वारा बनाई हुई वस्तुओं का (आविः+कृणुष्व) आविष्कार कर, सुखों का (तनुहि) विस्तार कर, (यातुजूनाम्) पर-पदार्थों को प्राप्त करने वाले तथा वेगवान् शत्रुओं के (जामिम्) भोजनयुक्त स्थान और (अजामिम्) भोजन-रहित स्थान को (अव+तनुहि) नष्ट कर, (शत्रून्) शत्रुओं की (प्र+मृणीहि) हिंसा कर। अतः मैं (त्वा) तुझे (अग्नेः) अग्नि के (तेजसा) प्रकाश से (अधि+सादयामि) सभापति पद पर स्थापित करता हूँ ।। १३ । १३ ।।

[हे अग्ने !=विद्वन् राजन् !···त्वमूर्ध्वो भव]

भावार्थः—मनुष्या राज्यैश्वर्यं प्राप्योत्तमगुणकर्मस्वभावा भवेयुः

भावार्थ—मनुष्य राजा के ऐश्वर्य को प्राप्त करके उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव वाले हों,

[अस्मत्···सुखानि तनुहि]

प्रजाभ्यो दरिद्रेभ्यश्च सततं सुखं दद्युः ।

प्रजा और दरिद्र-जनों को सदा सुख देवें ।

[स्थिरा···यातुजूनां जामिमजामिमवतनुहि]

धर्मे स्थिराः सन्तो दुष्टाधर्माचारिणो मनुष्यान् सततं शिक्षयेयुः ।

धर्म में स्थिर होकर दुष्ट, अधर्माचारी मनुष्यों को सदा शिक्षा देवें ।

[अहं त्वाऽग्नेस्तेजसाऽधिसादयामि]

सर्वोत्कृष्टं सभापतिं च मन्येरन् ।। १३ । १३ ।।

और सर्वोत्कृष्ट पुरुष को सभापति मानें ।।

भा० पदार्थः—ऊर्ध्वः=उत्तमगुणकर्मस्वभावः । यातुजूनाम्=दुष्टाधर्माचारिणाम् ।

भाष्यसार—**राज-धर्म**—राजा को उचित है कि वह स्वयं उत्कृष्ट बनने का प्रयास करे । श्रेष्ठ राजा ही दूसरों को श्रेष्ठ बनाने वाला होता है । जो राज्य में अच्छे विद्वान्, वैज्ञानिक तथा शिल्पी हों उनको प्रोत्साहन देकर नई-नई वस्तुओं का आविष्कार कराने का प्रयत्न करे । जो दूसरों के पदार्थों का अपहरण करने वाले हों, उनके भोजन के स्थानों को और भोजन-रहित स्थानों को नष्ट कर देवे । और तेजस्वी होकर शत्रु पर विजय प्राप्त करके राज्य को निष्कण्टक बनावे ।। १३ । १३ ।।

वामदेवः । **अग्निः=राजा** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह ।।

फिर वह राजा कैसा हो, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ।।

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽ अयम् ।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति । इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) सूर्य्यः (**मूर्द्धा**) सर्वेषां शिर इव (**दिवः**) प्रकाशयुक्तस्याकाशस्य मध्ये (**ककुत्**) महान् । **ककुह इति महन्ना० ॥ निघं० ३ । ३ ॥ अस्यान्त्यलोपो वर्णव्यत्ययेन हस्य दः** (**पतिः**) पालकः

(**पृथिव्याः**) भूमेः (**अयम्**) (**अपाम्**) जलानाम् (**रेतांसि**) वीर्य्याणि (**जिन्वति**) प्रीणाति=तर्पयति (**इन्द्रस्य**) सूर्यस्य (**त्वा**) त्वाम् (**ओजसा**) पराक्रमेण (**सादयामि**) ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—'ककुत्' यहाँ ककुत् महान् अर्थ में है। निघण्टु ३। ३ में ककुह् शब्द महत्-नामों में पठित है। वर्ण-व्यत्यय से हकार के स्थान पर दकार हुआ है।

अन्वयः—हे राजन् ! यथाऽयमग्निर्दिवः पृथिव्या मूर्द्धा ककुत्पतिरपां रेतांसि जिन्वति तथा त्वं भव। अहं त्वा त्वामिन्द्रस्यौजसा सह राज्याय सादयामि ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् ! यथाऽय**मग्निः** सूर्य्यः **दिवः** प्रकाशयुक्तस्याऽऽकाशस्य मध्ये **पृथिव्याः** भूमेः **मूर्द्धा** सर्वेषां शिर इव **ककुत्** महान् **पतिः** पालकः **अपां** जलानां **रेतांसि** वीर्य्याणि **जिन्वति** प्रीणाति=तर्पयति, **तथा त्वं भव। अहं त्वा**= **त्वामिन्द्रस्य** सूर्य्यस्य **ओजसा** पराक्रमेण **सह राज्याय सादयामि** ॥ १३ । १४ ॥

भाषार्थ—हे राजन् ! जैसे (अयम्) यह (अग्निः) सूर्य (दिवः) प्रकाशयुक्त आकाश के मध्य में (पृथिव्याः) भूमि का (मूर्द्धा) सब के शिर के समान (ककुत्) महान् (पतिः) पालक=रक्षक होकर (अपाम्) जल के (रेतांसि) नाना बल को (जिन्वति) तृप्त=पुष्ट करता है, वैसा तू बन। मैं—(त्वा) तुझे (इन्द्रस्य) सूर्य के (ओजसा) पराक्रम सहित राज्य के लिए (सादयामि) सभापति पद पर स्थापित करता हूँ ॥ १३ । १४ ॥

[हे राजन् ! यथाऽयमग्निः··· तथा त्वं भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यो मनुष्यः सूर्यवद् गुणकर्मस्वभावो न्यायेन प्रजा-पालनतत्परो धार्मिको विद्वान् भवेत्,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो मनुष्य सूर्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला, न्याय से प्रजा के पालन में तत्पर, धार्मिक विद्वान् हो,

[अहं त्वा=त्वामिन्द्रस्यौजसा सह राज्याय सादयामि]

तं राजत्वेन सर्वे मनुष्याः स्वीकुर्युः ॥

उसे सब मनुष्य राजा स्वीकार करें ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=सूर्यवत् गुणकर्मस्वभावः।

भाष्यसार—**१. राजधर्म**—राजा को सूर्य की तरह तेजस्वी होना चाहिये। जैसे सूर्य शिर के समान महान् पालक होकर जलों का धारण करता है और उनकी विभिन्न शक्तियों को परिपुष्ट करता है, वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव वाला राजा विभिन्न शक्तियों का पोषण करे और सूर्य की तरह पराक्रमी होकर राज्य को चलावे।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य तेजस्वी होकर जलों के बलों का पोषण करता है वैसे ही राजा प्रजा का न्याय से पालन करे॥ १३ । १४ ॥

त्रिशिराः। **अग्निः=राजा**। निचृदार्षीत्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह ॥

वह राजा कैसा हो, इस विषय का फिर उपदेश किया है॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**भुवः**) पृथिव्याः (**यज्ञस्य**) राजधर्मस्य (**रजसः**) लोकस्यैश्वर्यस्य वा (**च**) पश्वादीनाम् (**नेता**) नयनकर्त्ता (**यत्र**) राज्ये । अत्र निपातस्य चेति दीर्घः (**नियुद्भिः**) वायोर्वेगादिगुणैः सह (**सचसे**) समवैषि (**शिवाभिः**) कल्याणकारिकाभिर्नीतिभिः (**दिवि**) न्यायप्रकाशे (**मूर्द्धानम्**) शिरः (**दधिषे**) धरसि (**स्वर्षाम्**) स्वः=सुखानि सनन्ति=भजन्ति यया ताम् (**जिह्वाम्**) जोहवीति यया तां वाचम् (**अग्ने**) विद्वन् (**चकृषे**) करोषि (**हव्यवाहम्**) हव्यानि=होतुं दातुमर्हाणि प्रज्ञानानि यया ताम् ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—'यत्रा' यहाँ 'निपातस्य च' इस सूत्र से दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यथाऽग्निर्नियुद्भिः सह वायू रजसो च नेता सन् दिवि मूर्द्धानं धरति तथा यत्र शिवाभिः सह भुवो यज्ञस्य सचसे राज्यं दधिषे हव्यवाहं स्वर्षां जिह्वाञ्चकृषे तत्र सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्त इति विजानीहि ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=**विद्वन्** ! **यथाऽग्निर्नियुद्भिः** वायोर्वेगादिगुणैः **सह वायू रजसः** लोकस्यैश्वर्यस्य वा [**च**] पश्वादीनां **नेता** नयनकर्त्ता **सन् दिवि** न्यायप्रकाशे **मूर्द्धानं** शिरः **धरति, तथा यत्र** राज्ये **शिवाभिः** कल्याणकारिकाभिर्नीतिभिः **सह भुवः** पृथिव्याः **यज्ञस्य** राजधर्मस्य **सचसे** समवैषि **राज्यं दधिषे** धरसि, **हव्यवाहं** हव्यानि=होतुं दातुमर्हाणि प्रज्ञानानि यया ताम्, **स्वर्षां** स्वः=सुखानि सनन्ति=भजन्ति यया ताम्, **जिह्वां** जोहवीति यया तां वाचं **चकृषे** करोषि, **तत्र सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्त इति विजानीहि** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् राजन् ! जैसे अग्नि तथा (नियुद्भिः) अपने वेग आदि गुणों के सहित वायु (रजसः) लोक वा ऐश्वर्य [च] और पशु आदि का (नेता) नेता होकर (दिवि) न्याय के प्रकाश में (मूर्द्धानम्) शिर को धारण करता है, वैसे तू (यत्र) जिस राज्य में (शिवाभिः) कल्याणकारी नीतियों से (भुवः) पृथिवी के (यज्ञस्य) राजधर्म से (सचसे) संयुक्त होता है, राज्य को (दधिषे) धारण करता है, (हव्यवाहम्) नाना-विध प्रज्ञान को देने में समर्थ (स्वर्षाम्) सुखों के सेवन का साधन (जिह्वाम्) वाणी को (चकृषे) सिद्ध करता है, उस राज्य में सब सुख बढ़ते हैं; ऐसा जान ॥

[हे अग्ने !···यत्र शिवाभिः सह भुवः···राज्यं दधिषे···तत्र सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्त इति विजानीहि]

भावार्थः—यस्मिन् राज्ये राजादयः सर्वे धार्मिका मङ्गलचारिणो धर्मेण प्रजाः पालयेयुस्तत्र विद्यासुशिक्षाजानि सुखानि कुतो न वर्द्धेरन् ॥

भावार्थ—जिस राज्य में राजा आदि सब धार्मिक, मङ्गलचारी लोग धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करें वहाँ विद्या और सुशिक्षा से उत्पन्न सुख क्यों न बढ़े ॥ १३ । १५ ॥

भाष्यसार—**राज-धर्म**—जैसे अग्नि और वायु वेगादि गुणों से युक्त होकर लोक-लोकान्तरों को नेता होकर धारण करते हैं, उसी प्रकार राजा राज्य की कल्याण करने वाली नीतियों से पृथिवी के राज्य को नेता होकर धारण करे। अपने राज्य में सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान को उन्नत करता हुआ सुखों के साधनों को बढ़ावे और सत्य और मधुर वाणी से प्रजा के सुखों को बढ़ाता रहे ॥ १३ । १५ ॥

त्रिशिराः। **अग्निः**=राजपत्नी। स्वराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह॥

फिर वह राजपत्नी कैसी होवे, यह उपदेश किया है॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।
मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह॥ १६॥

पदार्थः--(**ध्रुवा**) निष्कम्पा (**असि**) (**धरुणा**) विद्याधर्मधर्त्री (**आस्तृता**) वस्त्रालङ्कारशुभगुणैः सम्यगाच्छादिता (**विश्वकर्मणा**) विश्वानि=समग्राणि धर्म्यकर्माणि यस्य पत्युस्तेन (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**समुद्रः**) समुद्द्रवन्ति कामुका यस्मिन् व्यवहारे सः(**उत्**) (**वधीत्**) हन्यात् (**मा**) (**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि=पालितान्यङ्गानि यस्य सः (**अव्यथमाना**) पीडामप्राप्ता (**पृथिवीम्**) स्वराज्यभूमिम् (**दृꣳह**) वर्धय॥ १६॥

अन्वयः—हे राजपत्नि! यतो विश्वकर्मणा पत्या सह वर्त्तमानाऽऽस्तृता धरुणा ध्रुवाऽसि साऽव्यथमाना सती त्वं पृथिवीमुद्दृंह त्वा समुद्रो मावधीत् सुपर्णश्च मा वधीत्॥ १६॥

सपदार्थान्वयः—हे राजपत्नि! **यतो विश्वकर्मणा** विश्वानि=समग्राणि धर्म्यकर्माणि यस्य पत्युस्तेन **पत्या सह वर्त्तमानाऽऽस्तृता** वस्त्राऽलङ्कारशुभगुणैः सम्यगाच्छादिता **धरुणा** विद्याधर्मधर्त्री **ध्रुवा** निष्कम्पा **असि, सा ऽव्यथमाना** पीडामप्राप्ता **सती त्वं पृथिवीं** स्वराज्यभूमिम् **उत्+दृँह** वर्धय; **त्वा** त्वां **समुद्रः** समुद्द्रवन्ति कामुका यस्मिन् व्यवहारे सः, **मा वधीत्** हन्यात्, **सुपर्णः** शोभनानि पर्णानि=पालितान्यङ्गानि यस्य सः, **च मा वधीत्** हन्यात्॥ १३। १६॥

भाषार्थ—हे राजपत्नी! जिससे तू (विश्वकर्मणा) सब धर्मयुक्त कर्मों को करने वाले पति के साथ रहती हुई (आस्तृता) वस्त्र, अलङ्कार और शुभ गुणों से भली-भाँति आच्छादित, (धरुणा) विद्या और धर्म को धारण करने वाली, और (ध्रुवा) स्थिर (असि) है, सो (अव्यथमाना) पीड़ा को न प्राप्त होती हुई तू (पृथिवीम्) भूमि (उत्+दृंह) बढ़ा, (त्वाम्) तुझे (समुद्रः) कामुक लोग जिस व्यवहार में द्रवित रहते हैं वह काम-व्यवहार (मा वधीत्) पीड़ित न करे, और (सुपर्णः) सुन्दर, पालित अङ्गों वाला पति (मावधीत्) पीड़ित न करे॥ १३। १६॥

[हे राजपत्नि!...पत्या सह वर्तमाना...त्वं पृथिवीमुद्दृँह]

भावार्थः—यादृशीं राजनीतिविद्यां राजाऽधीतवान् भवेत्, तादृशीमेव राज्ञ्यप्यधीतवती स्यात्।

भावार्थ—जैसे राजनीति-विद्या राजा पढ़ा हुआ हो, वैसी ही विद्या को रानी भी पढ़ी हुई हो।

[ध्रुवाऽसि]

सदैवोभौ पतिव्रतास्त्रीव्रतौ भूत्वा न्यायेन पालनं कुर्याताम्।

सदा दोनों पतिव्रता और स्त्रीव्रत होकर न्याय से पालन करें।

[अव्यथमानः सती, समुद्रो मावधीत्]

व्यभिचारकामव्यथारहितौ भूत्वा धर्मेण सन्ता-

व्यभिचार तथा काम-व्यथा से रहित होकर

नानुत्पाद्य स्त्रीन्यायं स्त्री, पुरुषन्यायं पुरुषश्च कुर्यात् ॥ १३ । १६ ॥ धर्मपूर्वक सन्तानों को उत्पन्न करके, स्त्रियों का न्याय स्त्री और पुरुषों का न्याय पुरुष किया करे ॥

भा० पदार्थः—ध्रुवा=पतिव्रता । अव्यथमाना=व्यभिचारकामव्यथारहिता ॥

भाष्यसार—राजपत्नी-धर्म—जैसे राजा धर्म से प्रजा का पालन करता है, वैसे ही राजपत्नी भी शुभ गुणों से युक्त होकर सदा पति के कार्यों में सहयोग देती रहे। सदा विद्या और धर्म को धारण करती हुई पृथिवीस्थ प्राणियों के सुखों को बढ़ावे। जिस व्यवहार से कामुक मनुष्य द्रवित होते हैं उस-उस व्यवहार से रहित और पतिव्रता होकर प्रजा का पालन किया करें। स्त्रियों का न्याय स्त्रियाँ तथा पुरुषों का न्याय पुरुष ही किया करें॥ १३ । १६ ॥

त्रिशिराः । **प्रजापतिः=राजा** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः पतिस्तां कथं वर्त्तयेदित्याह ॥

फिर राजा अपनी राणी को कैसे वर्त्तावे, यह उपदेश किया है ॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) स्थापयतु (**अपाम्**) जलानाम् (**पृष्ठे**) उपरि (**समुद्रस्य**) सागरस्य (**एमन्**) प्राप्तव्ये स्थाने । **अत्र सप्तम्या लुक् । अत्र एमन्नादिषु छन्दसि पररूपमिति वार्त्तिकेन पररूपम् ।** (**व्यचस्वतीम्**) बहु व्यचो=व्यञ्चनं विद्यागमनं सत्करणं वा विद्यते यस्यास्ताम् (**प्रथस्वतीम्**) प्रथाः=प्रख्याता कीर्त्तिर्विद्यते यस्यास्ताम् (**प्रथस्व**) प्रख्याता भव (**पृथिवी**) भूमिरिव सुखप्रदा (**असि**) ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—'एमन्' यहाँ 'सुपां सुलुक्०' सूत्र से सप्तमी विभक्ति का लुक् हुआ है।

अन्वयः—हे विदुषि प्रजापालिके राज्ञि ! यथा प्रजापतिः समुद्रस्यापामेमन् पृष्ठे नौकेव व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं त्वा त्वां सादयतु यतस्त्वं पृथिव्यसि तस्मात् स्त्रीन्यायकरणे प्रथस्व तथा ते पतिर्भवेत् ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विदुषि प्रजापालिके राज्ञि ! यथा प्रजापतिः** प्रजायाः स्वामी **समुद्रस्य** सागरस्य **अपां** जलानाम् **एमन्** प्राप्तव्ये स्थाने **पृष्ठे** उपरि **नौकेव व्यचस्वतीं** बहु व्यचो=व्यञ्चनं विद्यागमनं सत्करणं वा विद्यते यस्यास्ताम्, **प्रथस्वतीं** प्रथाः=प्रख्याता कीर्त्तिर्विद्यते यस्यास्तां **त्वा=त्वां सादयतु** स्थापयतु, **यतस्त्वं पृथिवी** भूमिरिव सुखप्रदा **असि, तस्मात् स्त्रीन्यायकरणे प्रथस्व** प्रख्याता भव **तथा ते पतिर्भवेत्** ॥ १३।१७ ॥

भाषार्थ—हे विदुषी, प्रजापालक, रानी ! जैसे—(प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी राजा (समुद्रस्य) सागर के (अपाम्) जलके (एमन्) प्राप्ति-स्थान (पृष्ठे) जल की पीठ के ऊपर नौका के समान (व्यचस्वतीम्) विद्याप्राप्ति वा सत्कार से युक्त (प्रथस्वतीम्) प्रसिद्ध कीर्त्ति वाली (त्वा) तुझको (सादयतु) न्यायासन पर स्थापित करे, क्योंकि तू (पृथिवी) भूमि के समान सुखदायक (असि) है, अतः स्त्रियों के न्याय करने में (प्रथस्व) प्रख्यात=प्रसिद्ध हो, वैसे तेरा पति पुरुषों के न्याय में प्रसिद्ध होवे ॥ १३ । १७ ॥

[हे विदुषि प्रजापालिके राज्ञि ! ''' प्रजापतिः त्वां सादयतु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। राजपुरुषादयः स्वयं यस्मिन् राजकर्मणि प्रवर्त्तेरँस्तस्मिन् स्वां स्वां स्त्रियं स्थापयेयुः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ।। राजपुरुष आदि स्वयं जिस राजकर्म में प्रवृत्त होवें उसमें अपनी-अपनी स्त्री को भी स्थापित करें ।

[त्वं'''स्त्रीन्यायकरणे प्रथस्व, तथा ते पतिर्भवेत्]

यः पुरुषः पुरुषाणां न्यायाधिकारे तिष्ठेत्तस्य स्त्री स्त्रीणां न्यायासने स्थिता भवेत् ।।

जो पुरुष पुरुषों के न्यायाधिकार में स्थित होवे उसकी स्त्री स्त्रियों के न्यायासन पर विराजमान होवे ।। १३ । १७ ।।

भाष्यसार—१. **राजा अपनी पत्नी को भी राजकार्य में नियुक्त करें**—राजा की तरह स्त्रियाँ भी न्यायादि कार्यों में सहयोग करें, अर्थात् पुरुषों के कार्य पुरुष करें और स्त्रियों के कार्य स्त्रियाँ ही करें । न्याय-पीठ पर बैठी स्त्रियाँ जल के ऊपर नौका के समान हों अर्थात् निष्पक्ष होकर कार्य करके प्रजा को उचित न्याय दिया करें । वे स्त्रियाँ भी पूर्ण विदुषी, प्रसिद्ध कीर्ति वाली और पृथिवी की तरह सुख देने वाली हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे पृथिवी सुख देने वाली है वैसे ही राजकार्य में लगे हुए पुरुष प्रजा को सुख देने वाले हों ।। १३ । १७ ।।

त्रिशिराः । **अग्निः=राजपत्नी** । प्रस्तारपङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह ।।

फिर वह राणी कैसी हो, यह फिर उपदेश किया है ।।

भूर॑सि॒ भूमि॑र॒स्यदि॑तिरसि वि॒श्वधा॑या॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य ध॒र्त्री ।
पृ॒थि॒वीं य॑च्छ पृ॒थि॒वीं दृ॑ꣳह पृ॒थि॒वीं मा हि॑ꣳसीः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**भूः**) भवतीति भूः (**असि**) (**भूमिः**) पृथिवीवत् (**असि**) (**अदितिः**) अखण्डितैश्वर्य्यमन्तरिक्षमिवाक्षुब्धा (**असि**) (**विश्वधायाः**) या विश्वं=सर्वं गृह्णाति=गृहाश्रमी राजव्यवहारं दधाति सा (**विश्वस्य**) सर्वस्य (**भुवनस्य**) भवन्ति भूतानि यस्मिन्राज्ये तस्य (**धर्त्री**) धारिका (**पृथिवीम्**) (**यच्छ**) निगृहाण (**पृथिवीम्**) (**दृंह**) वर्धय (**पृथिवीम्**) (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः ।। १८ ।।

अन्वयः—हे राजपत्नि ! यतस्त्वं भूरिवासि तस्मात् पृथिवीं यच्छ । यतस्त्वं विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री भूमिरिवासि तस्मात् पृथिवीं दृंह । यतस्त्वमदितिरिवासि तस्मात् पृथिवीं मा हिंसीः ।। १८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे राजपत्नि ! **यतस्त्वं भूः** भवतीति भूः **इव असि, तस्मात् पृथिवीं यच्छ** निगृहाण । **यतस्त्वं विश्वधायाः** या विश्वं=सर्वं गृह्णाति=गृहाश्रमी राजव्यवहारं दधाति सा, **विश्वस्य** सर्वस्य **भुवनस्य** भवन्ति भूतानि यस्मिन्

भावार्थ—हे राजपत्नी ! क्योंकि तू (भूः) भूमि के समान (असि) है, अतः (पृथिवीम्) भूमि को ग्रहण कर । क्योंकि तू (विश्वधायाः) सब गृहाश्रम तथा राजव्यवहारों को धारण करने वाली, (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) प्राणियों के निवास

राज्ये तस्य धर्त्री धारिका भूमिः पृथिवीवत् इवासि, तस्मात् पृथिवीं दृंह वर्धय । यतस्त्वमदितिः अखण्डितैश्वर्यमन्तरिक्षमिवाक्षुब्धा इवासि, तस्मात् पृथिवीं मा हिंसीः हिंस्याः ॥ १३ । १८ ॥

स्थान=राज्य को (धर्त्री) धारण करने वाली (भूमिः) भूमि के समान (असि) है, अतः (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृँह) बढ़ा । क्योंकि तू (अदितिः) अखण्डित ऐश्वर्य एवं अन्तरिक्ष के समान क्षोभ-रहित (असि) है, अतः (पृथिवीम्) पृथिवी का (मा हिंसीः) हिंसन मत कर ॥ १३ । १८ ॥

[हे राजपत्नि ! यतस्त्वं भूरिवासि,...विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री असि]

भावार्थः—या राजकुलस्त्रियः पृथिव्यादिवद् धैर्यादिगुणयुक्ताः सन्ति, ता एव राज्यं कर्तुमर्हन्ति ॥ १३ । १८ ॥

भावार्थ—जो राजकुल की स्त्रियाँ पृथिवी आदि के समान धैर्य आदि गुणों से युक्त हैं वे ही राज्य कर सकती हैं ॥ १३ । १८ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—महर्षि ने 'भूरसि०' इस मन्त्र को सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के नामों की व्याख्या में प्रमाण रूप में उद्धृत किया है । **(सत्यार्थप्रकाश समु० १)** ॥

भाष्यसार—**राजकुल की स्त्रियाँ कैसी हों**—राजकुल की स्त्रियाँ भूमि के समान सहनशील तथा निष्पक्ष होकर राजकार्य करने वाली हों । विश्वधा=गृहाश्रम और राजव्यवहारों को धारण करने वाली हों । सब प्राणियों के आश्रय भूत राज्य को धारण करने वाली हों । उनका ऐश्वर्य अदिति=अखण्डित रहे और वे अन्तरिक्ष के समान क्षोभ-रहित होकर पृथिवीस्थ प्राणियों का कभी हिंसन न करें ॥ १३ । १८ ॥

त्रिशिराः । **अग्निः**=**स्त्रीपुरुषौ** । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तौ परस्परं कथं वर्त्तेयातामित्याह ॥

फिर वे स्त्री-पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय ।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**विश्वस्मै**) सम्पूर्णाय (**प्राणाय**) जीवनहेतवे (**अपानाय**) दुःखनिवारणाय (**व्यानाय**) विविधोत्तमव्यवहाराय (**उदानाय**) उत्कृष्टाय बलाय (**प्रतिष्ठायै**) सत्कृतये (**चरित्राय**) धर्माचरणाय (**अग्निः**) विज्ञानवान् पतिः (**त्वा**) त्वाम् (**अभि**) आभिमुख्यतया (**पातु**) रक्षतु (**मह्या**) महत्या (**स्वस्त्या**) सुखप्रापकक्रियया (**छर्दिषा**) प्रदीप्तेन (**शन्तमेन**) अत्यन्तसुखरूपेण कर्मणा (**तया**) (**देवतया**) विवाहितपतिरूपया सुखप्रदया (**अङ्गिरस्वत्**) कारणवत् (**ध्रुवा**) निश्चलस्वरूपा (**सीद**) अवस्थिता भव ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! योऽग्निस्ते पतिर्मह्या स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय यां त्वाभिपातु सा त्वं तया देवतया सहाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥१९॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! योऽग्निः विज्ञानवान् पतिः ते पतिर्मह्या महत्या **स्वस्त्या** सुखप्रापकक्रियया **शन्तमेन** अत्यन्तसुखरूपेण कर्मणा **छर्दिषा** प्रदीप्तेन **विश्वस्मै** सम्पूर्णाय **प्राणाय**

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो (अग्निः) विज्ञानवान् तेरा पति है वह (मह्या) महती (स्वस्त्या) सुख-प्रापक क्रिया से, (शन्तमेन) अत्यन्त सुख रूप (छर्दिषा) प्रकाशयुक्त कर्म से, (विश्वस्मै) सम्पूर्ण

जीवनहेतवे **अपानाय** दुःखनिवारणाय **व्यानाय** विविधोत्तमव्यवहाराय **उदानाय** उत्कृष्टाय बलाय **प्रतिष्ठायै** सत्कृतये **चरित्राय** धर्माऽऽचरणाय **यां त्वा** त्वाम् **अभिपातु** आभिमुख्यतया रक्षतु, **सा त्वं तया देवतया** विवाहितपतिरूपया सुखप्रदया **सह अङ्गिरस्वत्** कारणवद् **ध्रुवा** निश्चलस्वरूपा **सीद** अवस्थिता भव ॥ १३ । १९ ॥

(प्राणाय) जीवन के लिए (अपानाय) दुःखों के निवारण के लिए, (व्यानाय) विविध उत्तम व्यवहार के लिए, (उदानाय) उत्कृष्ट बल के लिए, (प्रतिष्ठायै) सत्कार के लिए, (चरित्राय) धर्माचरण के लिए (त्वाम्) तेरी (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे, सो तू (तया) उस (देवतया) विवाहित पति रूप सुखदायक देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) कारण=प्रकृति के समान (ध्रुवा) स्थिर (सीद) रह ॥ १३ । १९ ॥

[हे स्त्रि ! ··· अग्निस्ते पतिः ··· प्रतिष्ठायै चरित्राय ··· त्वाऽभिपातु]

भावार्थः—पुरुषाः स्वस्वस्त्रीणां सत्कार-सुखाभ्यामव्यभिचारेण च प्रियाचरणं पालनादिकं च सततं कुर्युः ।

भावार्थ—पुरुष अपनी-अपनी स्त्रियों के सत्कार, सुखप्रदान और अव्यभिचार से प्रियाचरण तथा पालन आदि सदा करे ।

[सां त्वं तया देवतया सह···ध्रुवा सीद]

स्त्रियोऽप्येवमेव, नस्वस्त्रियं विहायान्यां पुरुषः, स्वपुरुषं विहायान्यं स्त्री च संगच्छेत ।

स्त्रियाँ भी ऐसा ही करें, अपनी स्त्री को छोड़ कर पुरुष, और अपने पुरुष को छोड़कर स्त्री अन्य का संग न करे ।

[तात्पर्यमाह—]

एवं परस्परस्य प्रियाचरणावुभौ वर्तेयाताम् ॥ १३ । १९ ॥

इस प्रकार परस्पर प्रियाचरण वाले होकर दोनों वर्ताव करें ॥ १३ । १९ ॥

भा० पदार्थः—प्रतिष्ठायै=सत्काराय । चरित्राय=अव्यभिचारेण ।

भाष्यसार—**स्त्रीपुरुषों का पारस्परिक व्यवहार**—पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे स्वयं विज्ञानवान् होकर अपनी सुख देने वाली क्रियाओं से अपनी स्त्रियों की निम्न कार्यों के लिए रक्षा करें । जो जीवन के कारण हैं जिनसे जीवन की रक्षा होती है उनकी रक्षा करना । अपान=जो दुःखप्रद कार्य हैं उनको दूर करना । व्यान=जितने भी विविध उत्तम व्यवहार हैं उनका पालन करना । उदान=सभी प्रकार के बलों की प्राप्ति करना । प्रतिष्ठा=ऐसे कार्य जिनसे निरन्तर सम्मान की वृद्धि हो सके । चरित्र=जो-जो धर्माचरण हैं उनका पालन करना । इसी प्रकार स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि वे देवतुल्य पति के साथ प्रकृति के समान स्थिर होकर रहें । १३ । १९ ॥

अग्निः । **पत्नी=स्त्री** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

काण्डा॑त्काण्डात्प्ररोह॑न्ती परु॑षः परुषस्परि॑ । एवा नो॑ दूर्वे प्रत॑नु सहस्रे॑ण श॒तेन॑ च ॥ २० ॥

पदार्थः—(**काण्डात्काण्डात्**) ग्रन्थेर्ग्रन्थेः (**प्ररोहन्ती**) प्रकृष्टतया वर्द्धमाना (**परुषः परुषः**)

मर्मणो मर्मणः (**परि**) सर्वतः (**एवा**) निपातस्य चेति दीर्घः (**नः**) अस्मान् (**दूर्वे**) दूर्वावद्वर्त्तमाने (**प्र**) (**तनु**) विस्तृणुहि (**सहस्रेण**) असंख्यातेन (**शतेन**) अनेकैः (**च**) ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—'एवा' यहाँ 'निपातस्य च' सूत्र से दीर्घ हुआ है।

अन्वय—हे स्त्रि ! त्वं यथा सहस्रेण शतेन च काण्डात्काण्डात्परुषः परुषस्परि प्ररोहन्ती दूर्वौषधी वर्त्तते तथैव नोऽस्मान् पुत्रपौत्रैश्वर्यादिभिः प्रतनु ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! त्वं यथा **सहस्रेण** असङ्ख्यातेन **शतेन** अनेकैः **च काण्डात्काण्डात्** ग्रन्थेर्ग्रन्थेः **परुषः परुषः** मर्मणो मर्मणः **परि+प्र+रोहन्ती** सर्वतः प्रकृष्टतया वर्द्धमाना [**दूर्वे**] **दूर्वा=ओषधी** दूर्वावद्वर्त्तमाने **वर्त्तते तथैव नः=अस्मान् पुत्रपौत्रैश्वर्यादिभिः प्र+तनु** विस्तृणुहि ॥ २० ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! तू—जैसे (सहस्रेण) असंख्य (शतेन) और अनेक (काण्डात् काण्डात्) ग्रन्थियों से एवं (परुषः परुषः) मर्म-स्थानों से (परि+प्र+रोहन्ती) सब ओर से भलीभाँति बढ़ती हुई [दूर्वे] दूब नामक ओषधि होती है वैसे ही (नः) हमें पुत्र-पौत्र एवं ऐश्वर्य आदि से (प्र+तनु) विस्तृत कर ॥ १३ । २० ॥

[हे स्त्रि ! त्वं यथा सहस्रेण शतेन च···परिप्ररोहन्ती **दूर्वा=ओषधी वर्त्तते तथैव** नोऽस्मान् ···**प्रतनु**]

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा दूर्वौषधी रोगप्रणाशिका सुखवर्द्धिका सुविस्तीर्णा चिरं स्थात्री, तथा सती विदुषी स्त्री कुलं शतधा सहस्रधा वर्धयेत्, तथा पुरुषोऽपि प्रयतेत ॥ १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे दूर्वा=दूब नामक ओषधि रोग नाशक, सुख वर्द्धक, अति विस्तृत, और चिर-स्थायी होती है वैसे सती, विदुषी, स्त्री कुल को नाना-प्रकार से बढ़ावें । वैसे पुरुष भी प्रयत्न करे ॥ १३ । २० ॥

भाष्यसार—१. **स्त्रियाँ कैसी हों ?**—जैसे दूब घास असंख्य ग्रन्थियों से और मर्मस्थानों से अंकुरित होकर चिरस्थायी रहती है और रोगों का नाश करके सुखों की वृद्धि करती है, वैसे ही स्त्रियाँ भी कुल को पुत्र-पौत्रादि से बढ़ाने वाली हों। कुल के दोषों को दूर करके सुखों को निरन्तर बढ़ाया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे दूर्वा घास अनेक स्थानों से अंकुरित होकर चिरस्थायी रहती है वैसे ही स्त्रियाँ भी कुल को बढ़ाया करें ॥ १३ । २० ॥

अग्निः । **पत्नी=स्त्री** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो, यह उपदेश किया है ॥

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(या) (शतेन) असंख्यातेन (**प्रतनोषि**) (**सहस्रेण**) असंख्यातेन (**विरोहसि**) विविधतया वर्धसे (**तस्याः**) (**ते**) तव (**देवि**) देदीप्यमाने (**इष्टके**) इष्टकेव शुभैर्गुणैः सुशोभिते (**विधेम**) परिचरेम (**हविषा**) होतुमर्हेण (**वयम्**) ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे इष्टके इष्टकावद् दृढांगे देवि स्त्रि ! यथेष्टका शतेन प्रतनोति सहस्रेण विरोहति

तथा या त्वमस्मान् शतेन प्रतनोषि सहस्रेण च विरोहसि तस्यास्ते तव हविषा वयं विधेम त्वां परिचरेम ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे इष्टके**=**इष्टकावद् दृढाङ्गे** इष्टकेव शुभैर्गुणैः सुशोभिते ! **देवि**=**स्त्रि** ! देदीप्यमाने ! **यथेष्टका शतेन** असङ्ख्यातेन **प्रतनोति, सहस्रेण** असंख्यातेन **विरोहति** विविधतया वर्धते **तथा या त्वमस्मान् शतेन** असङ्ख्यातेन **प्रतनोषि, सहस्रेण** असङ्ख्यातेन **च विरोहसि** विविधतया वर्धसे, **तस्यास्ते**=**तव हविषा** होतुमर्हेण **वयं विधेम**=**त्वां परिचरेम** ॥

भाषार्थ—हे (इष्टके) ईंट के समान दृढ़ अङ्गों वाली एवं शुभ गुणों से सुशोभित, (देवि) देदीप्यमान स्त्री ! जैसे—ईंट (शतेन) शत संख्या से (प्रतनोति) घर को विस्तृत करती है, (सहस्रेण) सहस्र संख्या से (विरोहति) विविध प्रकार से बढ़ाती है, वैसे—जो तू हमें (शतेन) शत संख्या से (प्रतनोषि) विस्तृत करती है, और (सहस्रेण) सहस्र संख्या से (विरोहसि) विविध प्रकार से बढ़ाती है, सो (ते) आपकी (हविषा) देने योग्य सामग्री से (वयम्) हम (विधेम) सेवा करें ॥ १३ । २१ ॥

[**हे इष्टके देवि स्त्रि ! यथेष्टका शतेन प्रतनोति, सहस्रेण विरोहति, तथा**···**त्वमस्मान् शतेन प्रतनोषि सहस्रेण च विरोहसि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा शतशः सहस्राणीष्टका गृहाकारा भूत्वा सर्वान् सुखयन्ति तथैव याः साध्व्यः स्त्रियः पुत्रपौत्रभृत्यादिभिः सर्वानानन्दयेयुः—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे सैकड़ों तथा हजारों ईंट घर-रूप होकर सबको सुख देती हैं, वैसे ही जो श्रेष्ठ स्त्रियाँ पुत्र, पौत्र, भृत्य आदि से सबको आनन्दित करें—

[**तस्यास्ते**=**तव हविषा वयं विधेम**]

ताः पुरुषाः सततं सत्कुर्युः न हि सत्पुरुषस्त्रीसमागमेन विना शुभगुणाढ्यान्यपत्यानि जायेरन्।

उनका पुरुष सदा सत्कार करें । क्योंकि सत्पुरुषों और श्रेष्ठ स्त्रियों के समागम के विना शुभ गुणों से भरपूर सन्तान उत्पन्न नहीं होते ।

एवं भूतैः सन्तानैर्विना मातापितॄणां कुतः सुखं जायेत ॥ १३ ॥ २१ ॥

इस प्रकार के सन्तानों के विना माता-पिता को सुख कहाँ से हो सकता है ॥ १३ । २१ ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-धर्म**—दिव्य गुणों से युक्त स्त्री ईंट के समान दृढ़ अंगों वाली अर्थात् शरीरादि से पूर्ण स्वस्थ होनी चाहिये । जैसे असंख्यात ईंटों से बना हुआ घर सुख देने वाला होता है, वैसे ही जो साध्वी स्त्रियां उत्तम पुत्र, पौत्रादि से गृहस्थ के सुखों को बढ़ाती हैं वे सदा आवश्यक वस्तुओं से सत्कार के योग्य होती हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे शत-सहस्र परिमाण वाली ईंटें गृहाकार में सुखप्रद होती हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी सुखों की वृद्धि करें ॥ १३ । २१ ॥

इन्द्राग्नी । **अग्निः**=**विदुष्यध्यापिका** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्युपदिश्यते ॥

फिर वह स्त्री कैसी होवे, यह उपदेश किया है ॥

यास्ते॑ ऽ अग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।
ताभि॑र्नो ऽ अ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ २२ ॥

पदार्थः—(याः) (ते) तव (अग्ने) अग्निरिव वर्त्तमाने (सूर्य्ये) अर्के (रुचः) दीप्तयः (दिवम्) प्रकाशम् (आतन्वन्ति) समन्ताद्विस्तृणवन्ति (रश्मिभिः) किरणैः (ताभिः) रुचिभिः (नः) अस्मान् (अद्य) (सर्वाभिः) (रुचे) रुचिकारकाय (जनाय) प्रसिद्धाय (नः) अस्मान् (कृधि) कुरु । **अत्र विकरण-लुक्** ॥ २२ ॥

प्रमाणार्थ—(कृधि) कुरु । यहाँ विकरण-प्रत्यय का लुक् है ॥

अन्वयः—हे अग्ने विदुष्यध्यापिके स्त्रि ! यास्ते रुचयः सन्ति ताभिः सर्वाभिर्नो यथा रुचः सूर्य्ये रश्मिभिर्दिवमातन्वन्ति तथा त्वमातनु अद्य रुचे जनाय नः प्रीतान् कृधि ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** !=**विदुष्यध्यापिके स्त्रि** अग्निरिव वर्त्तमाने ! **यास्ते** तव **रुचयः सन्ति, ताभिः** रुचिभिः **सर्वाभिः नः** अस्मान् **यथा रुचः** दीप्तयः **सूर्य्ये** अर्के **रश्मिभिः** किरणैः **दिवं** प्रकाशम् **आतन्वन्ति** समन्ताद् विस्तृणवन्ति **तथा त्वमातनु अद्य रुचे** रुचिकारकाय **जनाय** प्रसिद्धाय **नः** अस्मान् **प्रीतान् कृधि** कुरु ॥ २२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विनी विदुषी अध्यापिका स्त्री ! (याः) जो (ते) तेरी (रुचयः) दीप्तियाँ हैं, (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब दीप्तियों से (नः) हमें—जैसे (रुचः) दीप्तियाँ (सूर्ये) सूर्य में (रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर फैलाती हैं वैसे तू संयुक्त कर । (अद्य) शीघ्र (रुचे) दीप्ति उत्पन्न करने वाले (जनाय) पुरुष के लिए (नः) हमें प्रीतिमान् (कृधि) कर ॥ १३ । २२ ॥

[हे अग्ने ! ···यथा रुचः सूर्ये रश्मिभिर्दिवमातन्वन्ति तथा त्वमातनु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा ब्रह्माण्डे सूर्यस्य दीप्तयः सर्वाणि वस्तूनि प्रकाश्य रोचयन्ति तथैव विदुष्यः साध्व्यः पतिव्रताः स्त्रियः सर्वाणि गृहकर्माणि प्रकाशयन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य की दीप्तियाँ सब वस्तुओं को प्रकाशित करके प्रदीप्त करती हैं, वैसे ही विदुषी, साध्वी, पतिव्रता स्त्रियाँ सब गृह कार्यों को प्रकाशित करती हैं ॥

[अद्य रुचे जनाय नः प्रीतान् कृधि]

यत्र स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीतिमन्तौ स्यातां तत्र सर्वं कल्याणमेव ॥ १३ । २२ ॥

जहाँ स्त्री-पुरुष परस्पर प्रीतिमान् होवें वहाँ सब कल्याण ही है ॥ १३ । २२ ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-धर्म**—जैसे सूर्य प्रदीप्त किरणों से सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वैसे ही विदुषी तथा अग्नि के समान तेजस्वी स्त्रियाँ सब गृहकार्यों को कुशलतापूर्वक करें और अपने दक्षतापूर्ण कार्यों से सबको प्रभावित करें । दीप्ति-युक्त पति-रूप पुरुष के प्रति सदा प्रीतिमान् होकर रहें । तब ही गृहस्थ में कल्याण हो सकता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे सूर्य की किरणें सबको प्रकाशित करती हैं वैसे ही स्त्रियाँ घर के कार्यों को प्रकाशित करें ॥ १३ । २२ ॥

इन्द्राग्नी । **बृहस्पतिः**=परीक्षकः ॥ अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ स्त्रीपुरुषैः कथं विज्ञानं संपाद्यमित्याह ॥

अब स्त्री पुरुषों को विज्ञान की सिद्धि कैसे करनी चाहिये यह उपदेश किया है ॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः ।

इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**याः**) (**वः**) युष्माकम् (**देवाः**) विद्वांसः (**सूर्ये**) सवितरि (**रुचः**) रुचयः (**गोषु**) धनेषु (**अश्वेषु**) गवादिषु (**याः**) (**रुचः**) प्रीतयः (**इन्द्राग्नी**) विद्युत्सूर्य्यवदध्यापकोपदेशकौ (**ताभिः**) (**सर्वाभिः**) (**रुचम्**) कामनाम् (**नः**) अस्माकं मध्ये (**धत्त**) (**बृहस्पते**) बृहतां विदुषां पालक ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे देवाः ! यूयं या वः सूर्ये रुचो या गोष्वश्वेषु रुचश्चेव रुचः सन्ति ताभिः सर्वाभीरुग्भिर्नो रुचमिन्द्राग्नी इव धत्त । हे बृहस्पते परीक्षक ! भवानस्माकं परीक्षां कुरु ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **देवाः** ! विद्वांसः ! **यूयं याः वः** युष्माकं **सूर्ये** सवितरि **रुचः** रुचयः **याः गोषु** धेनुषु **अश्वेषु** गवादिषु **रुचः** रुचयः **चेव रुचः** प्रीतयः सन्ति, **ताभिः सर्वाभिः** रुग्भिः **नः** अस्माकं मध्ये **रुचं** कामनाम् **इन्द्राग्नी** विद्युत्सूर्य्यवदध्यापकोपदेशकौ **इव धत्त** ।

हे **बृहस्पते**=परीक्षक बृहतां विदुषां पालक ! **भवानस्माकं परीक्षां कुरु** ॥ १३ । २३ ॥

भाषार्थ—हे (देवाः) विद्वानो ! तुम—(याः) जो (वः) तुम्हारी (सूर्ये) सूर्य में (रुचयः) रुचियाँ हैं, (याः) जो (गोषु) गायों में, (अश्वेषु) घोड़ा, गाय आदि पशुओं में (रुचः) रुचियों के तुल्य (रुचः) प्रीतियाँ हैं (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब रुचियों से (नः) हममें (रुचम्) कामना को (इन्द्राग्नी) विद्युत् और सूर्य के समान तेजस्वी अध्यापक और उपदेशक के तुल्य (धत्त) स्थापित करो ।

हे (बृहस्पते) महान् विद्वानों के पालक, परीक्षक विद्वान् ! आप हमारी परीक्षा करो ॥ १३ । २३ ॥

[हे देवाः ! यूयं या···सूर्ये, **गोषु, अश्वेषु रुचः** सन्ति, ताभिः ··· **रुग्भिर्नो रुचं**··· **धत्त, हे** बृहस्पते ! ··· **अस्माकं परीक्षां कुरु**]

भावार्थः—यावन्मनुष्याणां विद्वत्सङ्ग ईश्वरेऽस्य सृष्टौ च रुचिः परीक्षा च न जायते, तावद् विज्ञानं न वर्द्धते ॥ १३ । २३ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्यों की विद्वानों के सङ्ग में, ईश्वर और इसकी सृष्टि में रुचि और परीक्षा उत्पन्न नहीं होती है तब तक विज्ञान नहीं बढ़ता ॥ १३ । २३ ॥

भाष्यसार—**परीक्षक ही विज्ञान जान सकता है**—जो बृहस्पति=विद्वान् और परीक्षक हैं वे विद्युत् तथा सूर्य के समान तेजस्वी होकर ऐसे उत्तम अध्यापक तथा उपदेशक बनें, जो हमारे अन्दर ऐसी रुचि पैदा करें, जिससे सूर्य सम्बन्धी, गायादि पशुओं तथा पार्थिव-विज्ञान, और अश्वशक्ति समान्न पदार्थ-विज्ञान को हम जानने में समर्थ हो सकें ॥ १३ । २३ ॥

इन्द्राग्नी । **प्रजापतिः**=दम्पती । निचृद्बृहती । ऋषभः ॥

दम्पती अन्योऽन्यं कथं वर्त्तेयातामित्याह ॥

स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिष्ट्वा सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**विराट्**) या विविधासु राजते (**ज्योतिः**) विद्याप्रकाशम् (**अधारयत्**) धारयेत् (**स्वराट्**) सर्वेषु धर्माचरणेषु स्वयं राजते (**ज्योतिः**) विद्युदादिप्रकाशम् (**अधारयत्**) (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) संस्थापयतु (**पृष्ठे**) तले (**पृथिव्याः**) भूमेः (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशस्तं ज्योतिर्विद्याविज्ञानं विद्यते यस्यास्ताम् (**विश्वस्मै**) अखिलाय (**प्राणाय**) प्राणिति सुखं येन तस्मै (**अपानाय**) अपानिति दुःखं येन तस्मै (**व्यानाय**) व्यानिति सर्वान् शुभगुण कर्म स्वभावान् येन तस्मै (**विश्वम्**) समग्रम् (**ज्योतिः**) विज्ञानम् (**यच्छ**) गृहाण (**अग्निः**) विज्ञानवान् (**ते**) तव (**अधिपतिः**) स्वामी (**तया**) (**देवतया**) दिव्यया (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मवत् (**ध्रुवा**) निष्कम्पा (**सीद**) स्थिरा भव ॥ २४ ॥

अन्वयः—या विराट् स्त्री ज्योतिरधारयत्, यः स्वराड् ज्योतिरधारयत् सा सचाऽखिलं सुखं प्राप्नुयात् । हे स्त्रि ! योऽग्निस्ते ऽधिपतिरस्ति तया देवतया सह त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद । हे पुरुष ! याऽग्निरतवाऽधिपत्न्यस्ति तया देवतया सह त्वमङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद । हे स्त्रि ! यः प्रजापतिः पृथिव्याः पृष्ठे विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय ज्योतिमतीं विद्युतामिव त्वा सादयतु सा त्वं विश्वं ज्योतिर्यच्छ त्तस्मा एनं पतिं त्वं सादय ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—या **विराट्**=स्त्री या विविधासु राजते **ज्योतिः** विद्युदादिप्रकाशम **अधारयत्** धारयेत्, [**यः स्वराट्** सर्वेषु धर्माचरणेषु स्वयं राजते **ज्योतिः** विद्युदादिप्रकाशम् **अधारयत्** धारयेत्] **सा स चाऽखिलं सुखं प्राप्नुयात्** ।

हे स्त्रि ! **यो ऽग्निः** विज्ञानवान् **ते** तव **अधिपतिः** स्वामी **अस्ति, तया देवतया** दिव्यया **सह त्वमङ्गिरस्वत्** सूत्राऽऽत्मवद् **ध्रुवा** निष्कम्पा **सीद** स्थिरा भव ।

हे पुरुष ! **या ऽग्निः** विज्ञानवती [**ते**]=**तवाधिपत्नी** स्वामिनी **अस्ति, तया देवतया** दिव्यया **सह त्वमङ्गिरस्वत्** सूत्रात्मवद् **ध्रुवः** निष्कम्पः **सीद** स्थिरो भव ।

हे **स्त्रि** ! **यः प्रजापतिः** प्रजायाः पालकः **पृथिव्याः** भूमेः **पृष्ठे** तले **विश्वस्मै** अखिलाय **प्राणाय** प्राणिति सुखं येन तस्मै, **अपानाय**

भावार्थ—जो (विराट्) विविध विद्याओं में प्रकाशमान स्त्री (ज्योतिः) विद्युत् आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे, [जो (स्वराट्) सब धर्म-कार्यों में स्वयं प्रकाशमान पुरुष (ज्योतिः) विद्युत् आदि के प्रकाश को (अधारयत्) धारण करे] वह स्त्री और पुरुष सकल सुख को प्राप्त करते हैं ।

हे स्त्री ! जो (अग्निः) विज्ञान वाला (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है, (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाले स्वामी के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म आत्मा के समान (ध्रुवा) अचलं=स्थिर होकर (सीद) रह ।

हे पुरुष जो (अग्निः) विज्ञानवती [ते] तेरी (अधिपत्नी) स्वामिनी है (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाली स्त्री के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म आत्मा के समान (ध्रुवः) अचल=स्थिर होकर (सीद) रह ।

हे स्त्री ! जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) तल पर-(विश्वस्मै) सब (प्राणाय) सुख-प्राप्ति (अपानाय) दुःखनिवृत्ति,

अपानिति दुःखं येन तस्मै, **व्यानाय** व्यानिति सर्वान् शुभगुणकर्मस्वभावान् येन तस्मै, **ज्योतिष्मतीं**= **विद्युतां** प्रशस्तं ज्योतिर्विद्याविज्ञानं विद्यते यस्यास्ताम् **इव त्वा** त्वां **सादयतु** संस्थापयतु, **सा त्वं विश्वं** समग्रं **ज्योतिः** विज्ञानं **यच्छ** गृहाण । **एतस्मा एनं पतिं त्वं सादय** संस्थापय

(व्यानाय) सब शुभ गुण, कर्म, स्वभाव की व्याप्ति के लिए (ज्योतिष्मतीम्) प्रशस्त ज्योति अर्थात् विद्या-विज्ञान वाली के तुल्य (त्वाम्) तुझे (सादयतु) उच्च पद पर स्थापित करे, सो तू (विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर । इसी के लिए इस पति को तू (सादय) उच्च पद पर स्थापित कर ।। १३ । २४ ।।

[या विराड् ज्योतिरधारयत्, यः स्वराट्...सा स चाखिलं सुखं प्राप्नुयात्]

भावार्थः—ये स्त्रीपुरुषाः सत्सङ्गविद्याभ्यासाभ्यां विद्युदादिपदार्थविद्यां वर्द्धयन्ते त इह सुखिनो भवन्ति ।

भावार्थ—जो स्त्री-पुरुष सत्संग और विद्याभ्यास से विद्युत् आदि पदार्थ विद्या को बढ़ाते हैं, वे ही सुखी होते हैं ।

[हे स्त्रि ! यो...तेऽधिपतिरस्ति तया देवतया सह...सीद, हे पुरुष...त्वं...सीद]

पतिः स्त्रियं सदा सत्कुर्यात्, स्त्री पतिं च कुर्यात् एवं परस्परं प्रीत्या सहैव सुखं भुञ्जाताम् ।।

पति स्त्री का सदा सत्कार करे, और स्त्री पति का सत्कार करे, इस प्रकार परस्पर प्रीतिपूर्वक ही सुख को भोगें ।। १३ । २४ ।।

भा० पदार्थः—ज्योतिः=विद्युदादिपदार्थविद्याम् ।

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक व्यवहार**—स्त्रियों को योग्य है कि वे विविध विद्याओं को सीखकर सब धर्म कार्यों में भी प्रकाशमान रहें । और अपने विज्ञान युक्त स्वामी के साथ सूक्ष्म-आत्मा के समान स्थिर होकर रहें । वैसे ही पुरुषों को योग्य है कि वे दिव्य गुणों वाली स्त्री के साथ सूक्ष्मात्मा के समान अचल होकर रहें । और दोनों ही स्त्री-पुरुष प्राणाय सुखप्राप्ति के लिए अपानाय=दुःख निवृत्ति के लिए, व्यानाय=विविध शुभगुणों की प्राप्ति के लिए समस्त विज्ञान को प्राप्त करें और एक दूसरे की उन्नति के लिए सदा प्रयत्नशील रहें । ऐसा करने से सब सुखों की वृद्धि होती है ।। १३ । २४ ।।

इन्द्राग्नी । **ऋतवः**=**स्पष्टम्** । पूर्वस्य भुरिगतिजगती । निषादः । ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः, मध्यम स्वरः ।।

अथ वसन्तर्त्तुवर्णनमाह ।।

अब वसन्त ऋतु का वर्णन किया जाता है ।।

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वासन्तिकावृतूऽअभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।। २५ ।।

पदार्थः—(**मधुः**) मधुरसुगन्धयुक्तश्चैत्रः (**च**) (**माधवः**) मधुरादिफलनिमित्तो वैशाखः (**च**) (**वासन्तिकौ**) वसन्ते भवौ (**ऋतू**) सर्वान् प्रापकौ (**अग्नेः**) उष्णत्वनिमित्तस्य (**अन्तःश्लेषः**)

आभ्यन्तरे सम्बन्धः (**असि**) भवति । **अत्र व्यत्ययः** (**कल्पेताम्**) समर्थयतः (**द्यावापृथिवी**) सूर्यभूमी (**कल्पन्ताम्**) समर्थयन्तु (**आपः**) जलानि (**ओषधयः**) यवादयः सोमादयश्च (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) पावकाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) ज्येष्ठे मासि भवाय व्यवहाराय मम वृद्धत्वाय वा (**सव्रताः**) व्रतैः=सत्यैर्व्यवहारैः सह वर्त्तमानाः (**ये**) (**अग्नयः**) पावक इव कालविदो विद्वांसः (**समनसः**) समानविज्ञानाः (**अन्तरा**) मध्ये (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशान्तरिक्षे (**इमे**) प्रत्यक्षे (**वासन्तिकौ**) (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) आभिमुख्येन समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथापरमैश्वर्य्यम् (**देवाः**) (**अभिसंविशन्तु**) (**तया**) (**देवतया**) परमपूज्यया परमेश्वराख्यया (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत् (**ध्रुवे**) निश्चिते दृढे (**सीदतम्**) भवेताम् । **अत्र पुरुषव्यत्ययः** ।। २५ ।।

प्रमाणार्थ—(असि) भवति । यहाँ व्यत्यय है । (सीदतम्) भवेताम् यहाँ पुरुष-व्यत्यय है ।।

अन्वयः—यथा मम ज्यैष्ठ्याय यावग्नेरुत्पद्यमानौ ययोरन्तः श्लेषोऽसि भवति तौ मधुश्च माधवश्च वासन्तिकौ सुखायर्तू कल्पेतां याभ्यां द्यावापृथिवी चापः कल्पन्ताम् पृथगोषधयः कल्पन्तामग्नयश्च । हे सव्रताः समनसो देवा वासन्तिकावृतू येऽत्रान्तराग्नयश्च सन्ति तांश्चाभिकल्पमानाः सन्तो भवन्त इन्द्रमिवाभिसंविशन्तु यथेमे द्यावापृथिवी तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवे वर्त्तेते तथा युवां स्त्रीपुरुषौ निश्चलौ सीदतम् ।। २५ ।।

सपदार्थान्वयः—**यथा ज्यैष्ठ्याय** ज्येष्ठे मासे भवाय व्यवहाराय मम वृद्धत्वाय वा **यावग्नेः** उष्णत्वनिमित्तस्य **उत्पद्यमानौ ययोरन्तः-श्लेषः** आभ्यन्तरे सम्बन्धः **असि=भवति, तौ मधुः** मधुरसुगन्धयुक्तश्चैत्रः **च माधवः** मधुरादिफलनिमित्तो वैशाखः **च वासन्तिकौ** वसन्ते भवौ **सुखाय** ऋतू सर्वान् प्रापकौ **कल्पेतां** समर्थयतः, **याभ्यां द्यावापृथिवी** सूर्यभूमी **चापः** जलानि **कल्पन्तां** समर्थयन्तु, **पृथगोषधयः** यवादयः सोमादयश्च **कल्पन्तां** समर्थयन्तु, **अग्नयः** पावकाः **च** ।

हे **सव्रताः** व्रतैः=सत्यव्यवहारैः सह वर्त्तमानाः **समनसः** समानविज्ञानाः **देवाः** ! **वासन्तिकौ** वसन्ते भवौ **ऋतू** सर्वान् प्रापकौ **येऽत्रान्तरा मध्ये अग्नयः** पावक इव कालविदो विद्वांसः **च सन्ति, तांश्च अभिकल्पमानाः** आभिमुख्येन समर्थयन्तः **सन्तो भवन्त इन्द्रमिव** यथापरमैश्वर्य्यम् **अभिसंविशन्तु** ।

भाषार्थ—जैसे—मेरे (ज्यैष्ठ्याय) ज्येष्ठमास के व्यवहार वा वृद्धत्व के लिए जो (अग्नेः) उष्णता के निमित्त अग्नि से उत्पन्न होने वाले हैं, जिनका परस्पर (अन्तःश्लेषः) आन्तरिक सम्बन्ध (असि) है, वे दोनों—(मधुः) मधुर सुगन्ध से युक्त चैत्र (च) और (माधवः) मधुर आदि गुणों से युक्त फलों का हेतु वैशाख (च) भी (वासन्तिकौ) वासन्तिक हैं, जो सुख के लिए (ऋतू) सबको प्राप्त होकर (कल्पेताम्) समर्थ होवें, जिनसे (द्यावापृथिवी) सूर्य, भूमि और (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें, (पृथक्) भिन्न-भिन्न (ओषधयः) जौ और सोम आदि ओषधियाँ (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें । (अग्नयः) और अग्नियाँ समर्थ होवें ।

हे (सव्रताः) सत्य-व्यवहारों से युक्त (समनसः) समान विज्ञान वाले विद्वानो ! (वासन्तिकौ) वसन्त-सम्बन्धी (ऋतू) सबको प्राप्त होने वाले=चैत्र और वैशाख हैं, और (ये) जो इनके (अन्तरा) मध्य में (अग्नयः) अग्नि के समान काल के वेत्ता विद्वान् हैं, उन्हें (अभिकल्पमानाः) सब ओर से समर्पित करते हुए आप (इन्द्रमिव) परम ऐश्वर्य के समान (अभिसंविशन्तु) सब ओर प्राप्त हों । और—

यथेमे प्रत्यक्षे **द्यावापृथिवी** प्रकाशाऽन्तरिक्षे **तया देवतया** परमपूज्यया परमेश्वराख्यया **सहाङ्गिरस्वत्** प्राणवद् **ध्रुवे** निश्चिते=दृढे **वर्त्तेते, तथा युवां स्त्रीपुरुषौ निश्चलौ सीदतं** भवेताम् ॥ २५ ॥

जैसे—(इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (तया) उस (देवतया) परमपूज्य परमेश्वर नामक देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य (ध्रुवे) निश्चित=दृढ़ हैं वैसे तुम स्त्री-पुरुष निश्चल (सीदतम्) रहो ॥ १३ । २५ ॥

[यथोरन्तः श्लेषोऽसि=भवति, तौ...वासन्तिकौ सुखाय ऋतू कल्पेतां, द्यावापृथिवी, अपः, ओषधयः कल्पन्तामग्नयश्च]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं यस्मिन् वसन्तर्तौ श्लेष्मोत्पद्यते, यस्मिन् सूर्यः तीव्रप्रकाशः, पृथिवी शुष्का, आपो मध्यस्था, ओषधयो नूतनपुष्पपत्रान्विता अग्निज्वाला इव भवन्ति, तं युक्त्या सेवित्वा पुरुषार्थेन सर्वाणि सुखान्याप्नुत ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस वसन्त ऋतु में श्लेष्मा उत्पन्न होता है, जिसमें सूर्य तीव्र प्रकाश वाला, पृथिवी शुष्क=सूखी, जल मध्यस्थ, नूतन पुष्प और पत्तों से युक्त ओषधियाँ अग्नि की ज्वालाओं के समान हैं, उन्हें युक्ति से सेवन करके पुरुषार्थ से सब सुखों को प्राप्त करो ।

[हे सव्रता...देवाः ! ... ऋतू...भवन्त इन्द्रमिवाभिसंविशन्तु]

यथा विद्वांसः परमप्रयत्नेनान्वृतु सुखायैश्वर्यमुन्नयन्ति तथैव प्रयतध्वम् ॥ १३ । २५ ॥

जैसे विद्वान् परम प्रयत्न से ऋतु के अनुकूल सुख के लिए ऐश्वर्य को उन्नत करते हैं, वैसे ही तुम प्रयत्न करो ॥ १३ । २५ ॥

भा० पदार्थः—श्लेषः=श्लेष्मा ।

भाष्यसार—वसन्तर्त्तु-वर्णन—वसन्त-ऋतु चैत्र और वैशाख मासों का नाम है। इस ऋतु में श्लेष्मा=कफ की वृद्धि और उष्णता की वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है । ये दोनों मास मधुरता से पूर्ण तथा मधुर-फलों से युक्त सदा रहें । इसी प्रकार सूर्य, भूमि, जल और विभिन्न ओषधियाँ मधुर होकर सुख के लिए समर्थ रहें । और जो सत्य-व्यवहारों से युक्त, समान विज्ञान वाले, और अग्नि के समान काल के वेत्ता विद्वान् हैं उनको ऐश्वर्यादि की प्राप्ति के लिए सब ओर से प्राप्त करें । जैसे प्रकाश और अन्तरिक्ष परमात्मा के साथ प्राण के समान दृढ़ हैं वैसे ही स्त्री-पुरुष निश्चल रहकर, वसन्तर्त्तु में ऋतु के अनुकूल रहकर नीरोग होकर सुखी रहें ॥ १३ । २५ ॥

सविता । **क्षत्रपतिः=स्त्री** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः सा कीदृशी भवेदित्याह ॥

फिर वह स्त्री कैसी हो, यह उपदेश किया है ॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व ॥ २६ ॥

पदार्थः—**(अषाढा)** शत्रुभिरसह्यमाना **(असि)** **(सहमाना)** पत्यादीन् सोढुमर्हा **(सहस्व)** **(अरातीः)** शत्रून् **(सहस्व)** **(पृतनायतः)** आत्मनः पृतनां सेनामिच्छतः **(सहस्रवीर्य्या)** असंख्यातपराक्रमा **(असि)** **(सा)** **(मा)** माम् **(जिन्व)** प्रीणीहि ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे पत्नि ! या त्वमषाढासि सा त्वं सहमाना सती पतिं मां सहस्व । या त्वं सहस्रवीर्य्याऽसि सा त्वं पृतनायतोऽरातीः सहस्व यथाहं त्वां प्रीणामि पतिं तथा मा च जिन्व ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पत्नि ! **या त्वम्-षाढा** शत्रुभिरसह्यमाना **असि, सा त्वं सहमाना** पत्यादीन् सोढुमर्हा **सती पतिं मां सहस्व ।**

भाषार्थ—हे पत्नी ! जो तू—(अषाढा) शत्रुओं के द्वारा असह्य (असि) है, सो तू (सहमाना) पति आदि सम्बन्धियों को सहन करती हुई, मुझ पति को सहन कर ।

या त्वं सहस्रवीर्या असंख्यातपराक्रमा **असि, सा त्वं पृतनायतः** आत्मनः पृतनां=सेनामिच्छतः **अरातीः** शत्रून् **सहस्व ।**

जो तू—(सहस्रवीर्या) असंख्य पराक्रम वाली (असि) है, सो तू (पृतनायतः) अपनी सेना के इच्छुक (अरातीः) शत्रुओं का (सहस्व) मर्षण कर ।

यथाऽहं त्वां प्रीणामि पतिं तथा मा मां च जिन्व प्रीणीहि ॥ १३ । २६ ॥

जैसे मैं—तुझे प्रसन्न करता हूँ वैसे पति को तथा (मा) मुझको (जिन्व) प्रसन्न कर ॥१३।२६॥

[या त्वं सहस्रवीर्याऽसि सा त्वं पृतनायतोऽरातीः सहस्व]

भावार्थः—या कृतदीर्घब्रह्मचर्यबलिष्ठा, जितेन्द्रिया, वसन्ताद्यृतुकृत्यविलक्षणा, पत्यपराध-क्षमाकारिणी, शत्रुनिवारिकोत्तमपराक्रमा स्त्री,

भावार्थ—जो—दीर्घ ब्रह्मचर्य के सेवन से बलिष्ठ, जितेन्द्रिय, वसन्त आदि ऋतुओं के कर्मों में विलक्षण, पति के अपराध को क्षमा करने वाली शत्रुओं की निवारक, उत्तम पराक्रम वाली स्त्री—

[यथाऽहं त्वां प्रीणामि पतिं तथा मा च जिन्व]

नित्यं स्वस्वामिनं प्रीणाति, तां पतिरपि नित्यमानन्दयेत् ॥ १३ । २६ ॥

नित्य अपने स्वामी को प्रसन्न रखती है उसे पति भी नित्य आनन्दित रखे ॥ १३ । २६ ॥

भा० पदार्थः—सहस्रवीर्या=कृतदीर्घब्रह्मचर्यबलिष्ठा, जितेन्द्रिया ।

भाष्यसार—स्त्री-धर्म—स्त्रियों को उचित है कि वे अषाढा=शत्रु से **(विरोधियों से)** असह्य हों अर्थात् विरोधियों के आगे कभी झुकने वाली न हों और सहमाना=पति आदि सम्बन्धियों को सहन करने वाली हों। सहस्रवीर्या=अनन्तशक्तियों से सम्पन्न हों। अपनी सेना के शत्रुओं को सहन करने वाली हों अर्थात् उनके आगे कभी न झुककर सहिष्णुता प्राप्त करें और अपने स्वामी को प्रियाचरण से प्रसन्न रक्खें ॥ १३ । २६ ॥

गोतमः । **विश्वेदेवाः**=माधुर्यादयो गुणाः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ वसन्तर्तोर्गुणान्तरानाह ॥

अब वसन्त ऋतु के अन्य गुणों का वर्णन किया है ॥

मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(मधु) मधुरं यथा स्यात्तथा (वाताः) वायवः (ऋतायते) ऋतमुदकमिवाचरन्ति अत्र वचनव्यत्ययेन बहुवचनस्थाने एकवचनम् । ऋतमित्युदकनामसु पठितम् ॥ निघं० १ । १२ ॥ न छन्दस्यपुत्रस्येतीत्वाभावः । अन्येषामपीति दीर्घः (मधु) (क्षरन्ति) वर्षन्ति (सिन्धवः) नद्यः समुद्रा वा । सिन्धव इति नदीनाम० ॥ निघं० १ । १३ ॥ (माध्वीः) माध्व्यो मधुरगुणयुक्ताः । अत्र ऋत्व्यवास्त्व्य० इति मधुशब्दादणि यणादेशनिपातः (नः) अस्मभ्यम् (सन्तु) (ओषधीः) ओषधयः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ--(**ऋतायते**) यहां वचन-व्यत्यय से बहुवचन के स्थान में एकवचन है। 'ऋतुम्' पद निघं० १। १२ में उदक=जल के नामों में पठित है। यहां न 'छन्दस्यपुत्रस्य (७। ४। ३५) से ईत्व का अभाव है। 'अन्येषामपि दृश्यते' (६। ३। १३७) से दीर्घ है। (**सिन्धवः**) 'सिन्धुः' पद निघं० १। १३ में नदी के नामों में पठित है। (**माध्वीः**) यहां 'ऋत्व्यवास्त्वच०' (६। ४। १७५) से से मधु शब्द से अण् प्रत्यय करने पर यण्-आदेश निपातित है॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वाता वसन्ते नो मधु ऋतायते सिन्धवो मधु क्षरन्ति ओषधीर्नो माध्वीः सन्तु तथा वयमनुतिष्ठेम॥ २७॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा वाताः** वायवः **वसन्ते नः** अस्मभ्यं **मधु** मधुरं यथा स्यात्तथा **ऋतायते** ऋतमुदकमिवाऽऽचरन्ति, **सिन्धवः** नद्यः समुद्रा वा **मधु** मधुरं यथा स्यात्तथा **क्षरन्ति** वर्षन्ति, **ओषधीः** ओषधयः **नः** अस्मभ्यं **माध्वीः** माध्व्यो=मधुरगुणयुक्ताः **सन्तु, तथा वयमनुतिष्ठेम**॥ १३। २७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे-(वाताः) वायु वसन्त में (नः) हमारे लिए (मधु) मधुरता पूर्वक (ऋतायते) जल के समान चलते हैं, (सिन्धवः) नदी वा समुद्र (मधु) मधुरता पूर्वक (क्षरन्ति) बरसते हैं, (ओषधीः) ओषधियाँ (नः) हमारे लिए (माध्वीः) मधुर गुण से युक्त (सन्तु) हों, वैसे हम अनुष्ठान करें॥ १३। २७॥

[वाता वसन्ते नो मधु ऋतायते]

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ यदा वसन्त आगच्छति तदा पुष्पादिसुगन्धयुक्ता वाय्वादयः पदार्था भवन्ति, तस्मिन् भ्रमणं पथ्यं वर्त्तत इति वेद्यम्॥ १३। २७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जब वसन्त आता है, तब पुष्प आदि की सुगन्ध से युक्त वायु आदि पदार्थ होते हैं, उसमें भ्रमण पथ्य होता है, ऐसा जानो॥ १३। २७॥

भा० पदार्थः—मधु=पुष्पादिसुगन्धयुक्तः (वायुः)।

विनियोग—इस मन्त्र से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे (**संस्कारविधि विवाह०**)॥

भाष्यसार—१ वसन्तर्त्तु के लाभ—वसन्त-ऋतु में हवाएँ सुगन्ध, मधुर, मन्द तथा शीतल चलती हैं, नदी और समुद्र मधुरता पूर्वक वर्षा करते हैं और विभिन्न प्रकार की ओषधियाँ मधुरता से युक्त होती हैं। अतः इस ऋतु में भ्रमण करना उपयोगी है और हमारा जीवन वसन्तर्त्तु की तरह मधुरता पूर्ण बने।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमालङ्कार है। वसन्तर्त्तु की तरह हमारा जीवन मधुर बने॥१३। २७॥

गोतमः। **विश्वेदेवाः=माधुर्यादयो गुणाः**। गायत्री। षड्जः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

फिर उसी वसन्त ऋतु के गुणों का उपदेश किया है॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता॥ २८॥

पदार्थः—(**मधु**) (**नक्तम्**) रात्रिः (**उत**) अपि (**उषसः**) प्रातुर्मुखानि दिनानि (**मधुमत्**)

मधुरगुणयुक्तम् (पार्थिवम्) पृथिव्या विकारः (रजः) द्व्यणुकादिरेणु (मधु) (द्यौः) प्रकाशः (अस्तु) (नः) अस्मभ्यम् (पिता) पालकः ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथा वसन्ते नक्तं मधूताप्युषसो मधु पार्थिवं रजो मधुमद् द्यौर्मधु पिता नोऽस्तु तथा यूयमप्येतं युक्त्या सेवध्वम् ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यथा **वसन्ते नक्तं** रात्रिः **मधु** मधुरं यथा स्यात्तथा **उत**=**अपि उषसः** प्रातर्मुखानि दिनानि **मधु** मधुरं यथा स्यात्तथा **पार्थिवं** पृथिव्या विकारः **रजः** द्व्यणुकादिरेणु **मधुमत्** मधुरगुणयुक्तं **द्यौः** प्रकाशः **मधु** मधुरं यथा स्यात्तथा **पिता** पालकः **नः** अस्मभ्यम् **अस्तु**, **तथा यूयमप्येतं युक्त्या सेवध्वम्** ॥ १३ । २८॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—वसन्त में (नक्तम्) रात्रि (मधु) मधुर हो, (उत) और—(उषसः) उषा अर्थात् प्रातःकाल के मुख वाले दिन (मधुः) मधुर हों, (पार्थिवम्) पृथिवी का विकार रूप (रज) द्व्यणुक आदि रेणु (मधु) मधुर गुण से युक्त हो, (द्यौः) प्रकाश (मधु) मधुर एवं (पिता) पालक (नः) हमारे लिए हो, वैसे तुम भी इसे युक्ति से सेवन करो ॥ १३ । २८ ॥

[वसन्ते ··· उषसो मधु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ प्राप्ते वसन्ते पक्षिणोऽपि मधुरं स्वनन्ति, हर्षिताः प्राणिनश्च जायन्ते ॥ १३ । २८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ वसन्त के आने पर पक्षी भी मधुर शब्द करते हैं, और प्राणी हर्षित होते हैं ॥

विनियोग—इस मन्त्र में मधुपर्क की ओर अवलोकन करे (**संस्कारविधि विवाह०**) ॥

भाष्यसार—१. **वसन्तर्त्तुवर्णन**—जैसे वसन्तर्त्तु में रात्रियाँ, दिन, पार्थिवरेणु और प्रकाशादि हमारे लिए मधुर तथा विविध उत्तम ओषधियाँ प्राप्त कराने से पालक हैं वैसे ही हम माधुर्यादि गुण वाले होवें। और वसन्त में होने वाले पदार्थों को जानकर यथार्थ में जीवनोपयोगी बनायें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमालंकार है। जैसे वसन्तर्त्तु सब प्राणियों के लिए मधुर और आह्लादक है वैसे ही हम भी बनें ॥ १३ । २८ ॥

गोतमः । **विश्वेदेवाः**=**विद्वांसः**। निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

अथ वसन्ते जनैः किमाचरणीयमित्याह ॥

अब वसन्त-ऋतु में मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ२ऽ अस्तु॒ सूर्य्यः॑। माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु॒ नः॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**मधुमान्**) प्रशस्ता मधवो=गुणा विद्यन्ते यस्मिन् सः (**नः**) अस्मभ्यम् (**वनस्पतिः**) अश्वत्थादिः (**मधुमान्**) प्रशस्तो मधुः=प्रतापो विद्यते यस्य सः (**अस्तु**) भवतु (**सूर्य्यः**) सविता (**माध्वीः**) मधुरा गुणा विद्यन्ते यासु ताः (**गावः**) धेनव इव किरणाः (**भवन्तु**) (**नः**) अस्मभ्यम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः! यथा वसन्ते नो वनस्पतिर्मधुमान् सूर्य्यश्च मधुमानस्तु। नो गावो माध्वीर्भवन्तु तथोपदिशत ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः- हे विद्वांसः ! **यथा वसन्ते नः** अस्मभ्यं **वनस्पतिः** अश्वत्थादिः **मधुमान्** प्रशस्तो मधुः=प्रतापो विद्यते यस्य सः, **सूर्य्यः** सविता **च मधुमान्** प्रशस्तो मधु=प्रतापो विद्यते यस्य सः **अस्तु** भवतु, **नः** अस्मभ्यं **गावः** धेनव इव किरणाः **माध्वीः** मधुरा गुणा विद्यन्ते यासु ताः **भवन्तु, तथोपदिशत** ॥ १३ । २६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे-वसन्त में (न.) हमारे लिए (वनस्पतिः) वट आदि वनस्पति (मधुमान्) प्रशंसनीय प्रताप=तेज वाली हो, और (सविता) सूर्य (मधुमान्) प्रशंसनीय मधु=तेज वाला (अस्तु) हो, (नः) हमारे लिए (गावः) गौ के तुल्य किरणें (माध्वीः) मधुर गुणों वाली हों—वैसा उपदेश करो ॥ १३ । २६ ॥

[हे विद्वांसः ! यथा वसन्ते नो वनस्पतिर्मधुमान्...भवतु तथोपदिशत]

भावार्थः--हे मनुष्याः ! यूयं वसन्तमृतुं प्राप्य यादृग्द्रव्यहोमेन वनस्पत्यादयो मधुरादिगुणाः स्युः, तादृशं यज्ञमाचरत ।

इत्थं वासन्तिकं सुखं सर्वे यूयं प्राप्नुत ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम-वसन्त ऋतु को प्राप्त करके जैसे द्रव्यों के होम से वनस्पति आदि पदार्थ मधुर आदि गुण वाले हों, वैसा यज्ञ करो ।

इस प्रकार तुम सब वासन्तिक सुख को प्राप्त करो ॥ १३ । २६ ॥

भा० पदार्थः—मधुमान्=मधुरादिगुणः ।

विनियोग—इस मन्त्र से मधुपर्क की ओर अवलोकन करे (**संस्कारविधि विवाह०**) ॥

भाष्यसार—**वसन्तर्त्तु में विद्वानों का कर्त्तव्य**—वसन्तर्त्तु में वट, पीपलादि वनस्पतियाँ मधुरतादि गुणों वाले हो जाते हैं अर्थात् वटादि के प्रयोग से विभिन्न गर्मी के रोगों की निवृत्ति होती है। अतः वे स्वास्थ्यप्रद होने के कारण हमारे लिए मधुर हैं । इनके सदुपयोग से सूर्य तथा सूर्य की किरणों से होने वाले रोगों का शमन होता है। अतः विद्वान् पुरुष वनस्पति विज्ञान से वासन्तिक सुखों को प्राप्त करें ॥ १३ । २६ ॥

गोतमः । **प्रजापतिः=ऋतुः** । आर्षीपङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वसन्त में मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इसका फिर उपदेश किया है ॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा ऽ अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानाम् (**गम्भन्**) गम्भनि=धारके मेघे । **अत्र गमधातोरौणादिको बाहुलकाद् भनिः प्रत्ययः सप्तम्या लुक् च** (**सीद**) आःस्व (**मा**) (**त्वा**) (**सूर्य्यः**) मार्तण्डः (**अभि**) (**ताप्सीत्**) तपेत् (**मा**) (**अग्निः**) (**वैश्वानरः**) विश्वेषु नरेषु राजमानः (**अच्छिन्नपत्राः**) अच्छिन्नानि पत्राणि यासां ताः (**प्रजाः**) (**अनुवीक्षस्व**) आनुकूल्येन विशेषतः संप्रेक्षस्व (**अनु**) (**त्वा**) त्वाम् (**दिव्या**) शुद्धगुणसम्पन्ना (**वृष्टिः**) (**सचताम्**) समवैतु ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(गम्भन्) यहाँ 'गम्' धातु से औणादिक बहुल करके 'भनि' प्रत्यय है ।

अन्वयः—हे मनुष्य ! त्वं वसन्तेऽपां गम्भन्निव सीद यतः सूर्यस्त्वामाऽभिताप्सीत् । वैश्वानरोऽग्निस्त्वामाभिताप्सीदच्छिन्नपत्राः प्रजा अनु त्वा दिव्या वृष्टिः सचतां तथा त्वमनुवीक्षस्व ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य! त्वं त्रसन्तेऽपां जलानां **गम्भन्** गम्भनि=धारके मेघे **इव सीद** आःस्व, **यतः सूर्य्यः** मार्तण्डः **त्वा** त्वां **माऽभिताप्सीत्** तपेत्, **वैश्वानरः** विश्वेषु नरेषु राजमानः **अग्निः त्वा** त्वां **माऽभिताप्सीत्** तपेत्, **अच्छिन्नपत्राः** अच्छिन्नानि पत्राणि यासां ताः **प्रजाः अनु त्वा** त्वां **दिव्या** शुद्धगुणसम्पन्ना **वृष्टिः सचतां** समवैतु **तथा त्वमनुवीक्षस्व** आनुकूल्येन विशेषतः संप्रेक्षस्व ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! तू-(अपाम्) जलों को (गम्भन्) धारण करने वाले मेघ के समान (सीद) रह, जिससे (सूर्यः) सूर्य (त्वा) तुझे (माऽभिताप्सीत्) सन्तप्त न करे, (वैश्वानरः) सब नरों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि (त्वा) तुझे (माऽभिताप्सीत्) सन्तप्त न करे, (अच्छिन्नपत्राः) पूर्ण अवयवों वाली (प्रजाः) प्रजा (अनु) अनुकूल हो, (त्वा) तुझे (दिव्या) शुद्ध गुणों से युक्त (वृष्टिः) वर्षा (सचताम्) प्राप्त हो, वैसे तू (अनुवीक्षस्व) अनुकूलतापूर्वक विशेष रूप से निरीक्षण करे ॥

[हे मनुष्य ! त्वं वसन्तेऽपां गम्भन्निव सीद]

भावार्थः—वसन्तग्रीष्मयोर्मध्ये मनुष्या जलाशयस्थं शीतलं स्थानं संसेवन्ताम् ।

भावार्थ—वसन्त और ग्रीष्म में मनुष्य जलाशय से युक्त शीतल स्थान का सेवन करें ।

[यतः सूर्यस्त्वा माऽभिताप्सीत्]

येन तापाऽभितप्ता न स्युः ।

जिससे ताप से सन्तप्त न हों ।

[त्वा दिव्या वृष्टिः सचतां तथा त्वमनुवीक्षस्व]

येन यज्ञेन पुष्कला वृष्टिः स्यात्, प्रजानन्दश्च, तं सेवध्वम् ॥ १३ । ३० ॥

जिस यज्ञ से पुष्कल वृष्टि हो, प्रजा को आनन्द हो उसका सेवन करो ॥ १३ । ३० ॥

भा० पदार्थः—दिव्या=पुष्कला । सचताम्=सेवताम् ॥

भाष्यसार—**वसन्तर्त्तु में कर्त्तव्य-कर्म**—वसन्तर्त्तु में गर्मी बढ़ने लगती है अतः भौतिक अग्नि तथा सूर्य के सन्ताप से बचने के लिए आवश्यक है कि जल के धारण करने वाले मेघ-तुल्य जलाशयों अथवा नदी आदि का सेवन अधिक मात्रा में किया जाये । और जिस प्रकार के यज्ञों से यथासमय शुद्ध तथा पर्याप्त-वर्षा हो सके, ऐसे यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिए । इससे प्रजा सदा आनन्द में रहती है ॥ १३ । ३० ॥

गोतमः । **वरुणः=वरणीयो गुणः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ जनैस्तत्र सुखप्राप्तये किमाचरणीयमित्याह ॥

अब मनुष्यों को उस वसन्त में सुखप्राप्ति के लिए क्या करना चाहिये,
यह उपदेश किया है ॥

त्रीन्त्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ ऽ इष्टकानाम् ।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(त्रीन्) अधोमध्योर्ध्वस्थान् (समुद्रान्) समुद्द्रवन्ति पदार्था येषु तान् भूतभविष्यद्वर्त्तमानान् समयान् (सम्) (असृपत्) सर्पति (स्वर्गान्) स्वःसुखं गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति येभ्यस्तान् (अपाम्) प्राणानाम् (पतिः) रक्षकः (वृषभः) वर्षकः श्रेष्ठो वा (इष्टकानाम्) इज्यन्ते=संगम्यन्ते कामा

यैः पदार्थैस्तेषाम् (**पुरीषम्**) पूर्णसुखकरमुदकम् (**वसानः**) वासयन् (**सुकृतस्य**) सुष्ठु कृतो धर्मो येन तस्य (**लोके**) द्रष्टव्ये स्थाने (**तत्र**) (**गच्छ**) धर्म्ये मार्गे (**पूर्वे**) प्रावतना जनाः (**परेताः**) सुखं प्राप्ताः ॥ १ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं ! यथाऽपांपतिर्वृषभः पुरीषं वसानः सन्निष्टकानां त्रीन् समुद्रांल्लोकान् स्वर्गान् समसृपत्। संसर्पति तथा सर्प यत्र सुकृतस्य लोके मार्गे पूर्वे परेतास्तत्र त्वमपि गच्छ ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं **यथाऽपां** प्राणानां **पतिः** रक्षकः **वृषभः** वर्षकः श्रेष्ठो वा **पुरीषं** पूर्णसुखकरमुदकं **वसानः** वासयन् **सन्निष्टकानां** इज्यन्ते=संगम्यन्ते कामा यैः पदार्थैस्तेषां **त्रीन्** अधोमध्योर्ध्वस्थान् **समुद्रान्**=**लोकान्** समुद्द्रवन्ति पदार्था येषु तान् भूतभविष्यद्वर्त्तमानान् समयान् **स्वर्गान्** स्वः=सुखं गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति येभ्यस्तान्, **समसृपत्** =**संसर्पति, तथा सर्प** ।

भावार्थ—हे विद्वान् ! तू–जैसे (अपाम्) प्राणों का (पतिः) रक्षक, (वृषभः) वर्षा करने वाला वा श्रेष्ठ, बादल (पुरीषम्) पूर्ण सुखकारी जल को (वसानः) धारण करता हुआ, (इष्टकानाम्) कामनाओं को प्राप्त कराने वाले अभीष्ट पदार्थों में से (त्रीन्) निकृष्ट, मध्यम और उत्कृष्ट तीन (समुद्रान्) पदार्थों की प्राप्ति के आधार भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालों को (स्वर्गान्) जो सुख-प्राप्ति के साधन हैं उन्हें (समसृपत्) प्राप्त होता है–वैसे उन्हें प्राप्त कर।

यत्र सुकृतस्य सुष्ठु कृतो धर्मो येन तस्य **लोके**=**मार्गे** द्रष्टव्ये स्थाने **पूर्वे** प्रावतना जनाः **परेताः** सुखं प्राप्ताः **तत्र त्वमपि गच्छ** धर्म्ये मार्गे [गच्छ] ॥ १३ । ३१ ॥

जिस (सुकृतस्य) धर्म के (लोके) मार्ग पर (पूर्वे) पूर्वज लोग चलकर (परेताः) सुख को प्राप्त हुए हैं (तत्र) उस धर्मयुक्त मार्ग पर तू भी (गच्छ) चल ॥ १३ । ३१ ॥

[यत्र सुकृतस्य लोके=मार्गे पूर्वे परेतास्तत्र त्वमपि गच्छ, त्रीन् समुद्रान्...स्वर्गान् समसर्पत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। मनुष्यैर्धार्मिकाणां मार्गेण गच्छद्भिः शारीरिकवाचिक मानसानि त्रिविधानि सुखानि प्राप्तव्यानि।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य—धार्मिक लोगों के मार्ग से चलकर शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के सुखों को प्राप्त करें।

[इष्टकानाम्]

यत्र कामा अलं स्युस्तत्र प्रयतितव्यम्।

जिसमें कामनाएँ पूर्ण हों उसमें प्रयत्न करें।

[ऋत्वनुकूलव्यवहारमाह—]

यथा वसन्तादय ऋतवः क्रमेण वर्त्तित्वा स्वानि स्वानि लिङ्गान्यभिपद्यन्त, तथा ऋत्वनुकूलान् व्यवहारान् कृत्वाऽऽनन्दयितव्यम् ॥ १३ । ३१ ॥

जैसे वसन्त आदि ऋतुएँ क्रम से आकर अपने-अपने चिह्नों को प्रकट करती हैं, वैसे ऋतु-अनुकूल व्यवहारों को करके आनन्दित रहें ॥

भा० पदार्थः—त्रीन्=शारीरिकवाचिकमानसानि त्रिविधानि ।

भाष्यसार—**१. सुखप्राप्ति के लिए वरणीय गुण**—जैसे जलों का रक्षक, वर्षा करने वाला बादल पूर्ण सुख देने वाले जलों को धारण करता हुआ सब कामनाओं को प्राप्त कराने वाले साधन रूप उत्तम, मध्यम तथा अधम समुद्रों को प्राप्त होता है, वैसे ही जो प्राणों के रक्षक, सुखों की वर्षा करने वाले, पूर्ण सुखों से युक्त, सब कामनाओं की प्राप्ति की इच्छा से शारीरिक, वाचिक एवं

मानसिक सुखों को प्राप्त करने वाले महापुरुष हैं, उन्हें सदा प्राप्त करें। और जैसे पूर्वज धर्म के मार्ग पर चलकर सुखों को प्राप्त करते रहे हैं वैसे ही सदा धर्माचरण किया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है कि मेघ की तरह महापुरुषों का अनुगमन करके सुख प्राप्त करें ॥ १३ । ३१ ॥

गोतमः । **द्यावापृथिव्यौ**=भूमिसूर्यौ । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

मातापितृभ्यां स्वसन्तानाः कथं शिक्ष्या इत्याह ॥

माता पिता अपने सन्तानों को कैसी शिक्षा करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न ऽ इ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् । पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**मही**) महती (**द्यौः**) सूर्यः (**पृथिवी**) भूमिः (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**इमम्**) (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं गृहाश्रमव्यवहारम् (**मिमिक्षताम्**) सेक्तुमिच्छेताम् (**पिपृताम्**) पालयतम् (**नः**) अस्मान् (**भरीमभिः**) धारणपोषणाद्यैः कर्मभिः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मातापितरौ ! यथा मही द्यौः पृथिवी च सर्वं सिञ्चतः पालयतस्तथा युवां न इमं यज्ञं मिमिक्षतां भरीमभिर्नः पिपृताम् ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मातापितरौ ! **यथा मही** महती **द्यौः** सूर्य्यः **पृथिवी** भूमिः **च सर्वं सिञ्चतः, पालयतस्तथा युवां नः** अस्माकम् **इमं यज्ञं** सङ्गन्तव्यं गृहाऽऽश्रमव्यवहारं **मिमिक्षतां** सेक्तुमिच्छताम्, **भरीमभिः** धारणपोषणाद्यैः कर्मभिः नः अस्मान् **पिपृतां** पालयतम् ॥ १३ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे माता और पिता ! जैसे—(मही) महान् (द्यौः) सूर्य, और (पृथिवी) भूमि सबको सींचते और पालते हैं वैसे तुम दोनों (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) संग के योग्य गृहाश्रम के व्यवहार को (मिमिक्षताम्) सींचने की इच्छा करो, (भरीमभिः) धारण पोषण आदि कर्मों से (नः) हमारा (पिपृताम्) पालन करो ॥

[**हे मातापितरौ ! यथा ··· द्यौः पृथिवी च सर्वं ··· पालयतस्तथा युवां ··· भरीमभिर्नः पिपृताम्**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा भूमिसूर्यौ सर्वेषां धारणं, प्रकाशं, पालनं च कुरुतस्तथा मातापितरः स्वसन्तानेभ्योऽन्नं विद्यादानं सुशिक्षां च कृत्वा पूर्णान् विदुषः पुरुषार्थिनः सम्पादयेयुः ॥ १३ । ३२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे भूमि और सूर्य सबका धारण, प्रकाशन और पालन करते हैं वैसे माता-पिता अपने सन्तानों को अन्न, विद्यादान और सुशिक्षा करके पूर्ण विद्वान् तथा पुरुषार्थी बनावें ॥ १३ । ३२ ॥

भाष्यसार—१. **माता-पिता सन्तान को कैसे शिक्षित करें**—जैसे भूमि सबको धारण करती है और जैसे सूर्य सबको प्रकाशित करता है वैसे ही संगमनीय गृहाश्रम रूप यज्ञ को सींचते हुए धारण-पोषणादि कर्मों से सन्तान का पालन करें । माता भूमि की तरह सहनशील होकर और पिता सूर्य की तरह तेजस्वी होकर सन्तान को सुशिक्षादि से युक्त करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । माता-पिता भूमि और सूर्य की तरह सन्तान का धारण-पोषणादि करें ॥ १३ । ३२ ॥

गोतमः । **विष्णुः**=ईश्वरः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

विद्वद्वदितरैर्जनैराचरणीयमित्याह ॥

विद्वानों के तुल्य अन्य मनुष्यों को आचरण करना चाहिये,
इस विषय का उपदेश किया है ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**विष्णोः**) व्यापकेश्वरस्य (**कर्माणि**) जगत्सृष्टिपालनप्रलयकरणन्यायादीनि (**पश्यत**) संप्रेक्षध्वम् (**यतः**) (**व्रतानि**) नियतानि सत्यभाषणादीनि (**पस्पशे**) स्पृशति (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यमिच्छुकस्य जीवस्य युक्तस्य (युज्यः) उपयुक्त नन्दप्रदः (**सखा**) मित्र इव वर्तमानः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य इन्द्रस्य जीवस्य युज्यः सखास्ति यतोऽयं विष्णोः कर्माणि व्रतानि च पस्पशे तस्मादेतस्यैतानि यूयमपि पश्यत ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! य **इन्द्रस्य**=**जीवस्य** परमैश्वर्यमिच्छुकस्य जीवस्य युक्तस्य **युज्यः** उपयुक्ताऽऽनन्दप्रदः **सखा** मित्र इव वर्त्तमानो **अस्ति**, **यतोऽयं विष्णोः** व्यापकेश्वरस्य **कर्माणि** जगत्सृष्टिपालनप्रलयकरणन्यायादीनि **व्रतानि** नियतानि सत्यभाषणादीनि **च पस्पशे** स्पृशति, **तस्मादेतस्यैतानि यूयमपि पश्यत** संप्रेक्षध्वम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य के इच्छुक जीव=योगी को (युज्यः) उपयुक्त आनन्द प्रदान करने वाला तथा (सखा) मित्र के समान वर्ताव करने वाला है, (यतः) क्योंकि यह (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) जगत् की सृष्टि, पालन, प्रलय और न्याय आदि करना और (व्रतानि) नियत सत्य-भाषण आदि व्रतों को (पस्पशे) स्पर्श करता है, अतः इस विद्वान् के इन कर्मों एवं व्रतों को तुम भी (पश्यत) देखो, धारण करो ॥ १३ । ३३ ॥

[य इन्द्रस्य=जीवस्य युज्यः सखाऽस्ति, यतोऽयं विष्णोः कर्माणि व्रतानि च पस्पशे]

भावार्थः—यथा परमेश्वरस्य सुहृदुपासको धार्मिको विद्वानस्य गुणकर्मस्वभावक्रमानुसाराणि सृष्टिकर्माणि कुर्यात् जानीयात्, तथैवेतरे मनुष्याः कुर्युर्जानीयुश्च ॥ १३ । ३३ ॥

भावार्थ—जैसे परमेश्वर का मित्र उपासक, धार्मिक, विद्वान् अपने गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार सृष्टि-कर्मों को करे और जाने वैसे ही दूसरे मनुष्य भी करें और जानें ॥ १३ । ३३ ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के अनुकूल आचरण**—जो विद्वान् परम ऐश्वर्य का इच्छुक होकर परमात्मा में मन लगाये रहता है, और जो मित्र के समान सब से उत्तम व्यवहार करता है और जो सर्वव्यापक ईश्वर के संसार की सृष्टि, पालन और प्रलयरूप कर्मों को तथा सत्यभाषणादि व्रतों को स्पर्श करता है अर्थात् सृष्टि के पदार्थों से परमात्मा की कुशलता को देखकर स्वयं भी तदनुकूल आचरण करता है। उनके कर्मों के अनुसार ही मनुष्य-मात्र को अपना आचरण बनाना चाहिये । ●

गौतमः । **जातवेदाः**=**विद्वान्** । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वद्वत्स्त्रीभिरप्युपदेष्टव्यमित्याह ॥

विद्वान् पुरुषों के समान विदुषी स्त्रियाँ भी उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो ऽ अधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**ध्रुवा**) स्थिरा (**असि**) (**धरुणा**) धर्त्री (**इतः**) कर्मणः (**जज्ञे**) प्रादुर्भवति (**प्रथमम्**) आदिमं कार्यम् (**एभ्यः**) (**योनिभ्यः**) कारणेभ्यः (**अधि**) (**जातवेदाः**) यो जातेषु विद्यते सः (**सः**) (**गायत्र्या**) गायत्रीनिष्पादितया विद्यया (**त्रिष्टुभा**) (**अनुष्टुभा**) (**च**) (**देवेभ्यः**) दिव्यगुणेभ्यो विद्वद्भ्यो वा (**हव्यम्**) होतुमादातुमर्हं विज्ञानम् (**वहतु**) प्राप्नोतु (**प्रजानन्**) प्रकृष्टतया जानन् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! यथा त्वं धरुणा ध्रुवासि यथैभ्यो योनिभ्यः स जातवेदाः प्रथममधिजज्ञे तथेतोऽधिजायस्व । यथा स तव पतिर्गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च प्रजानन् देवेभ्यो हव्यं वहतु तथैतया प्रजानन्ती ब्रह्मचारिणी कन्या भवन्तीभ्यः स्त्रीभ्यो विज्ञानं प्राप्नोतु ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! यथा त्वं धरुणा धर्त्री **ध्रुवा** स्थिरा **असि, यथैभ्यो योनिभ्यः** कारणेभ्यः **स जातवेदाः** यो जातेषु विद्यते सः, **प्रथमम्** आदिमं कार्य्यम् **अधि+जज्ञे** प्रादुर्भवति, **तथेतः** कर्मणः **अधिजायस्व** ।

भाषार्थ—हे स्त्री ! जैसे तू—(धरुणा) शुभ गुणों को धारण करने वाली, (ध्रुवा) और स्थिर है, जैसे—(एभ्यः) इन (योनिभ्यः) कारणों से (सः) वह (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्नि (प्रथमम्) आदिम कार्य रूप में (अधि+जज्ञे) प्रकट होता है, वैसे—(इतः) इस कर्म से प्रसिद्ध हो ।

यथा स तव पतिः गायत्र्या गायत्रीनिष्पादितया विद्यया **त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च प्रजानन्** प्रकृष्टतया जानन् **देवेभ्यः** दिव्यगुणेभ्यो विद्वद्भ्यो वा **हव्यं** होतुमादातुमर्हं विज्ञानं **वहतु** प्राप्नोतु, **तथैतया प्रजानन्ती ब्रह्मचारिणी कन्या भवन्तीभ्यः स्त्रीभ्यो विज्ञानं प्राप्नोतु** ॥ १३ । ३४ ॥

जैसे—वह तेरा पति (गायत्र्या) गायत्री छन्द से, (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् छन्द से, (अनुष्टुभा) और अनुष्टुप् छन्द से प्रतिपादित विद्या के द्वारा (प्रजानन्) उत्तम रीति से ज्ञान-युक्त होता हुआ (देवेभ्यः) दिव्य गुणों वा विद्वानों से (हव्यम्) आदान के योग्य विज्ञान को (वहतु) प्राप्त करता है, वैसे इस उक्त विद्या से ज्ञान-युक्त होती हुई ब्रह्मचारिणी कन्या आप स्त्रीजनों से विज्ञान को प्राप्त करे ॥ १३ । ३४ ॥

[यथा स तव पतिः···देवेभ्यो हव्यं वहतु तथैतया···कन्या भवन्तीभ्यः स्त्रीभ्यो विज्ञानं प्राप्नोतु]

भावार्थः—मनुष्या जगदीश्वरसृष्टिक्रमनिमित्तानि विदित्वा, विद्वांसो भूत्वा यथा पुरुषेभ्यः शास्त्रोपदेशान् कुर्वन्ति, तथैव स्त्रियोऽप्येतानि विदित्वा स्त्रीभ्यो वेदार्थनिष्कर्षोपदेशान् कुर्वन्तु ॥

भावार्थ—मनुष्य जगदीश्वर, सृष्टिक्रम और निमित्त=कारण को जानकर, विद्वान् होकर जैसे पुरुषों को शास्त्र-उपदेश करते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी इन्हें जानकर स्त्रियों को वेदार्थ के निष्कर्ष=सार का उपदेश करें ॥ १३ ॥ ३४ ॥

भाष्यसार—**पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी उपदेश करें**—स्त्रियों का यह कर्त्तव्य है कि वे धरुणा=शुभगुणों को धारण करने वाली हों, ध्रुवा=धार्मिक कार्यों तथा अपने स्वामी के साथ स्थिरता से रहें और जैसे जातवेदा अग्नि सब पदार्थों में विद्यमान है तथा सबको प्रकाशित करता है वैसे ही सब पदार्थ मात्र की विद्या को जानकर प्रकाशित हों। जैसे पुरुष गायत्र्यादि छन्दों से प्रतिपादित विद्या को

सीख कर दिव्य गुणों वाले विज्ञान को प्राप्त करते हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी पूर्ण विदुषी होकर स्त्रियों को उपदेश किया करें ॥ १३ । ३४ ॥

गोतमः । **जातवेदाः**=स्पष्टम् । निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

अथ जायापती उद्वाहं कृत्वा कथं वर्तेयातामित्याह ॥

अब स्त्री पुरुष विवाह करके कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इ॒षे रा॒ये र॑मस्व॒ सह॑से द्यु॒म्न ऽ ऊ॒र्जे ऽ अप॑त्याय ।
स॒म्राड॑सि स्व॒राड॑सि सारस्व॒तौ त्वोत्सौ॒ प्राव॑ताम् ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**इषे**) विज्ञानाय (**राये**) श्रिये (**रमस्व**) क्रीडस्व (**सहसे**) बलाय (**द्युम्ने**) यशसेऽन्नाय वा । **द्युम्नं द्योततेर्यशो वाऽन्नं वा ॥ निरु० ५ । ५ ॥** (**ऊर्जे**) पराक्रमाय (**अपत्याय**) संतानाय (**सम्राट्**) यः सम्यग्राजते सः (**असि**) (**स्वराट्**) या स्वयं राजते सा (**असि**) (**सारस्वतौ**) सरस्वत्यां=वेदवाचि कुशलावुपदेशकोपदेष्ट्र्यौ (**त्वा**) त्वाम् (**उत्सौ**) कूपोदकमिवार्द्रीभूतौ (**प्र**) (**अवताम्**) रक्षणादिकं कुरुताम् ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(**द्युम्ने**) 'द्युम्न' शब्द 'द्युत् दीप्तौ' धातु से बना है । अतः 'द्युम्न' का अर्थ यश वा अन्न है ।

अन्वयः—हे पुरुष ! यस्त्वं सम्राडसि । हे स्त्रि या त्वं स्वराडसि स त्वं चेषे राये सहसे द्युम्न ऊर्जेऽपत्याय रमस्व । उत्साविव सारस्वतौ सन्तावेतानि प्रावतामिति त्वां पुरुषं स्त्रियं चोपदिशामि ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे पुरुष ! यस्त्वं सम्राट्** यः सम्यग् राजते सः **असि, हे स्त्रि ! या त्वं स्वराट्** या स्वयं राजते सा **असि, स त्वं चेषे** विज्ञानाय **राये** श्रिये **सहसे** बलाय **द्युम्ने** यशसेऽन्नाय वा **ऊर्जे** पराक्रमाय **अपत्याय** सन्तानाय **रमस्व** क्रीडस्व । **उत्सौ** कूपोदकमिवाऽऽर्द्रीभूतौ **इव सारस्वतौ** सरस्वत्यां=वेदवाचि कुशलावुपदेशकोपदेष्ट्र्यौ **सन्तावेतानि प्रावतां** रक्षणादिकं कुरुताम् **इति** [**त्वा**] त्वां **पुरुषं स्त्रियं चोपदिशामि** ॥ १३ । ३५ ॥

भाषार्थ—हे पुरुष ! जो तू—(सम्राट्) उत्तम-रीति से राजमान=प्रकाशमान (असि) है, हे स्त्री ! जो तू (स्वराट्) स्वयं राजमान=प्रकाशमान (असि) है, वह और सम्राट् पुरुष और स्वराट् स्त्री (इषे) विज्ञान, (राये) श्री=ऐश्वर्य, (सहसे) बल, (द्युम्ने) यश वा अन्न, (ऊर्जे) पराक्रम, (अपत्याय) सन्तान की प्राप्ति के लिए (रमस्व) रमण कर । (उत्सौ) कूप जल के तुल्य आर्द्रस्वभाव वाले होकर (सारस्वतौ) सरस्वती=वेदवाणी में कुशल उपदेशक और उपदेष्ट्री बन कर इन विज्ञान आदि पदार्थों की (प्रावताम्) रक्षा आदि करो । यह [त्वा] तुझ पुरुष और स्त्री को उपदेश करता हूँ ॥ १३ । ३५ ॥

[हे पुरुष !...हे स्त्रि !...स त्वं च इषे, राये,...द्युम्ने, ऊर्जेऽपत्याय रमस्व]

भावार्थः—कृतविवाहौ स्त्रीपुरुषौ परस्परं प्रीत्या विद्वांसौ सन्तौ वसन्ते पुरुषार्थेन श्रीमन्तौ,

भावार्थ—विवाहित स्त्री-पुरुष परस्पर प्रीतिपूर्वक विद्वान् होकर वसन्त में पुरुषार्थ से

सद्गुणौ, परस्परस्य रक्षां कुर्वन्तौ धर्मेणा-पत्यान्युत्पाद्यास्मिन् संसारे नित्यं क्रीडेताम् ॥

श्रीमान्, सद्गुणी होकर परस्पर रक्षा करते हुए धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करके इस संसार में नित्य रमण करें ॥ १३ । ३५ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य**—पूर्ण-विद्वान् और ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने से प्रकाशमान स्त्री-पुरुष ही विवाह करें। और कूप-जल के तुल्य आर्द्रस्वभाव वाले होकर वेदवाणी के कुशल उपदेष्टा तथा उपदेष्ट्री बनने का पूरा प्रयत्न करें। और सुख-प्राप्ति के लिए विज्ञान, ऐश्वर्य, बल, यश, अन्न, पराक्रम और सन्तानादि की प्राप्ति का प्रयत्न करके सदा उनकी रक्षा करें ॥ १३ । ३५ ॥

भरद्वाजः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ शत्रुविजयः कथं कर्तव्य इत्याह ॥

अब शत्रुओं को कैसे जीतना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**युक्ष्व**) **अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः । विकरणस्य लुक् च** (**हि**) खलु (**तव**) (**अश्वासः**) सुशिक्षितास्तुरङ्गाः (**देव**) दिव्यविद्यायुक्त (**साधवः**) अभीष्टं साध्नुवन्तः (**अरम्**) अलम् (**वहन्ति**) रथादीनि यानानि प्रापयन्ति (**मन्यवे**) शत्रूणामुपरि क्रोधाय ॥ ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**युक्ष्वा**) यहां 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है और विकरण का लुक् है।

अन्वयः—हे देवाऽग्ने ! ये तव साधवोऽश्वासो मन्यवेऽरं वहन्ति तान् हि त्वं युङ्क्ष्व ॥ १३ । ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देव** दिव्यविद्या-युक्त **अग्ने** ! विद्वन् ! **ये तव साधवः** अभीष्टं साध्नुवन्तः **अश्वासः** सुशिक्षितास्तुरङ्गाः **मन्यवे** शत्रूणामुपरि क्रोधाय **अरम्** अलं **वहन्ति** रथादीनि यानानि प्रापयन्ति, **तान् हि** खलु **त्वं युक्ष्व** ॥

भाषार्थ—हे (देव) दिव्यविद्या से युक्त (अग्ने) विद्वान् ! जो तेरे (साधवः) अभीष्ट को सिद्ध करने वाले (अश्वासः) सुशिक्षित घोड़े (मन्यवे) शत्रुओं के ऊपर क्रोध करने के लिए (अरम्) सामर्थ्य से (वहन्ति) रथ आदि यानों को वहन करते हैं, उन्हें (हि) ही तू (युक्ष्व) रथादि में युक्त कर ॥ १३ । ३६ ॥

[**हे···अग्ने ! ये तव साधवो ऽश्वास मन्यवेऽरं वहन्ति, तान् हि त्वं युक्ष्व**]

भावार्थः—राजमनुष्यैर्वसन्ते प्रथममश्वान् सुशिक्ष्य, सारथींश्च रथेषु नियोज्य, शत्रुविजयाय गन्तव्यम ॥ १३ । ३६ ॥

भावार्थ—राजा लोग वसन्त में घोड़ों को सुशिक्षित करके और सारथियों को रथ पर नियुक्त करके शत्रुविजय के लिए जावें ॥ १३ । ३६ ॥

भाष्यसार—**शत्रु-विजय के आवश्यक उपाय**—दिव्य गुणों से युक्त राजा का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अभीष्ट को सिद्ध करने के लिए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। उसके लिए वसन्तादि उत्तमर्त्तु में अश्वादि को अच्छी प्रकार प्रशिक्षित करे। और जो अश्व अथवा रथादि यानों को चलाने में निपुण हों उनको ही इस काम में लगावे ॥ १३ । ३६ ॥

विरूपः । **अग्निः**=सेनापतिः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ राजपुरुषकृत्यमाह ॥

अत्र राजपुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ ऽ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(युक्ष्व) अत्रापि दीर्घः (हि) किल (देवहूतमान्) देवैर्विद्वद्भिः स्पर्द्धितान् (अश्वान्) (अग्ने) (रथीरिव) यथा शत्रुभिः सह बहुरथादिसेनाङ्गवान् योद्धा युध्यति तथा (नि) नितराम् (होता) दाता (पूर्व्यः) पूर्वैर्विद्वद्भिः कृतशिक्षः (सदः) सीद । अत्र लङ्यडभावः ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(युक्ष्वा) यहाँ भी 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है । (सदः) यहाँ छान्दस लङ् में अडागम नहीं हुआ ।

अन्वयः—हे अग्ने ! पूर्व्यो होता त्वं देवहूतमानश्वान् रथीरिव युक्ष्व हि न्यायासने निषदः ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने ! पूर्व्यः पूर्वैर्विद्वद्भिः । कृतशिक्षः होता दाता त्वं देवहूतमान् देवैर्विद्वद्भिः स्पर्द्धितान् अश्वान् रथीरिव यथा शत्रुभिः सह बहुरथादिसेनाङ्गवान् योद्धा युध्यति तथा युक्ष्व । हि किल न्यायासने नि+षदः नितरां सीद ॥ १३ । ३७ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) सेनापतिः ! (पूर्व्यः) पूर्वज विद्वानों से सुशिक्षित (होता) और दाता तू-(देवहूतमान्) विद्वानों के द्वारा स्पर्द्धा किए हुए (अश्वान्) घोड़ों को-(रथीरिव) जैसे शत्रुओं के साथ बहुत रथ आदि सेना के अङ्गों वाला योद्धा युद्ध करता है वैसे युद्ध करने के लिए (युक्ष्व) रथ आदि में युक्त कर । और-(हि) निश्चय से न्याय के आसन पर (नि+षदः) सर्वथा विराजमान रह ॥ १३ । ३७ ॥

[हे अग्ने !···त्वम्···अश्वान् रथीरिव युक्ष्व]

भावार्थः—सेनापत्यादिराजपुरुषैर्महारथिवदश्वादीनि सेनाङ्गानि कार्य्येषु संयोजनीयानि ।

भावार्थ—सेनापति आदि राजपुरुष महारथी के समान अश्व=घोड़े आदि सेना के अङ्गों को कार्यों में संयुक्त करें ।

[हि न्यायासने निषदः]

सभापत्यादयो न्यायासने स्थित्वा धर्म्यं न्यायमाचरन्तु ॥ १३ । ३७ ॥

सभापति आदि लोग न्याय के आसन पर बैठकर धर्मानुसार न्याय करें ॥ १३ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने !=सेनापत्यादिराजपुरुष ! । रथीरिव=महारथिवत् । अश्वान्=अश्वादीनि सेनाऽङ्गानि । युक्ष्व=कार्येषु संयोजय ।

भाष्यसार--राजपुरुषों के कर्तव्य—सेनापति आदि राजपुरुषों का कर्त्तव्य है कि अश्वविद्या के प्रशिक्षण-प्राप्त विद्वानों से युद्ध के लिए घोड़ों को सुशिक्षित करावें । और ऐसे शिक्षित घोड़ों को रथादि में नियुक्त करें । इसी प्रकार सभापति पूर्व्यः=पूर्वज विद्वानों से सुशिक्षित, होता=अच्छे न्याय का दाता होकर न्यायासन पर विराजमान रहे ॥ १३ । ३७ ॥

विरूपः । **अग्निः**=**विद्युत्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः किं भूत्वा वाग्धार्य्येत्याह ॥

मनुष्यों को कैसे होके वाणी धारण करनी चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना॑ऽ अन्तर्हृदा मन॑सा पूयमा॑नाः ।
घृतस्य धारा॑ऽ अभि चा॑कशीमि हिरण्ययो॑ वेतसो मध्ये॑ऽ अग्नेः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**सम्यक्**) (**स्रवन्ति**) गच्छन्ति (**सरितः**) नद्यः । **सरित इति नदीनाम० ॥ निघं० १ । १३ ॥** (**न**) इव (**धेनाः**) वाचः । **धेना इति वाङ्नाम० ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**हृदा**) हृदयेन (**मनसा**) विज्ञानवता चित्तेन (**पूयमानाः**) पवित्राः (**घृतस्य**) उदकस्य (**धाराः**) (**अभि**) आभिमुख्ये (**चाकशीमि**) भृशं प्राप्नोमि (**हिरण्ययः**) यशस्वी (**वेतसः**) वेगवत्यः । **अत्र वीधातोर्बाहुलकादौणादिकस्तसिः** प्रत्ययः (**मध्ये**) (**अग्नेः**) विद्युतः ॥ ३८ ॥

प्रमाणार्थ—(सरितः) 'सरित्' पद निघं० १ । १३ में नदी के नामों में पठित है । (धेनाः) 'धेना' पद निघं० १ । ११ में वाणी के नामों में पठित है । (वेतसः) यहाँ 'वि' धातु से बहुल करके औणादिक 'तसि' प्रत्यय है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽग्नेर्मध्ये हिरण्यय इव वर्त्तमानोऽहं या घृतस्य वेतसो धाराः सरितो नान्तर्हृदा मनसा पूयमाना धेनाः सम्यक् स्रवन्ति ता अभिचाकशीमि तथा यूयमप्येताः प्राप्नुत ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा** ऽग्नेः विद्युतः **मध्ये हिरण्ययः** यशस्वी इव **वर्त्तमानोऽहं या घृतस्य** उदकस्य **वेतसः** वेगवत्यः **धाराः सरितः** नद्यः **न** इव **अन्तः** आभ्यन्तरे **हृदा** हृदयेन **मनसा** विज्ञानवता चित्तेन **पूयमानाः** पवित्राः **धेनाः** वाचः **सम्यक् स्रवन्ति** गच्छन्ति, **ता अभिचाकशीमि** आभिमुख्यतया भृशं प्राप्नोमि, **तथा यूयमप्येताः प्राप्नुत** ।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(अग्नेः) विद्युत् के मध्य में (हिरण्ययः) यशस्वी पुरुष के समान वर्त्तमान मैं—जो (घृतस्य) जल की (वेतसः) वेगवती (धाराः) धाराएँ (सरितः) नदियों के (न) समान, (अन्तः) अन्दर (हृदा) हृदय से (मनसा) विज्ञानवान् चित्त से (पूयमानाः) पवित्र (धेनाः) वाणियाँ (सम्यक्) उत्तम-रीति से (स्रवन्ति) है, उन्हें—(अभिचाकशीमि) मुख्य रूप से प्राप्त करता हूँ, वैसे तुम भी इन्हें प्राप्त करो ॥ १३ । ३८ ॥

[हे मनुष्याः ! यथो ⋯ **या घृतस्य वेतसो धाराः सरितो न, अन्तर्हृदा मनसा पूयमाना धेना सम्यक् स्रवन्ति ता अभिचाकशीमि**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यथा समं विषमं चलन्त्यः शुद्धाः सत्यो नद्यः समुद्रं प्राप्य स्थिरत्वं प्राप्नुवन्ति, तथैव विद्यासुशिक्षाधर्मैः पवित्रीभूता वाण्यो निश्चलाः प्राप्तव्याः प्रापयितव्याश्च ॥ १३ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । मनुष्य जैसे सम और विषम चलती हुई, शुद्ध होती हुई नदियाँ समुद्र को प्राप्त करके स्थिरता को प्राप्त करती हैं, वैसे ही विद्या, सुशिक्षा और धर्म से पवित्र हुई निश्चल वाणियों को प्राप्त करें और करावें ॥ १३ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—वेतसः=समं विषमं चलन्त्यः । पूयमानाः=पवित्रीभूताः । धेनाः=वाण्यः ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् ही वाणी को धारण कर सकता है**—जैसे प्रबल वेगवाली जल से युक्त नदियाँ समुद्र में जाकर स्थिर हो जाती हैं। इसी प्रकार हिरण्य तथा अग्नि के समान तेजस्वी, हृदय और मन से पवित्र विद्वान् पुरुष को पाकर वाणियाँ स्थिर हो जाती हैं। इसी प्रकार सब मनुष्यों को पवित्र वाणियों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। नदियों की तरह निश्चल वाणियाँ प्राप्त करनी चाहियें ॥ १३ । ३८ ॥

विरूपः । **अग्निः**=विद्वान् । निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

विद्वद्भ्य इतरैरपि विज्ञानं प्राप्यमित्याह ॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान लेना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**ऋचे**) स्तुतये (**त्वा**) त्वाम् (**रुचे**) प्रीतये (**त्वा**) (**भासे**) विज्ञानाय (**त्वा**) (**ज्योतिषे**) न्यायप्रकाशाय (**त्वा**) (**अभूत्**) भवेत् (**इदम्**) (**विश्वस्य**) सर्वाधिकारस्य (**भुवनस्य**) जगतः (**वाजिनम्**) वाजिनां=विज्ञानवतामिदमवयवभूतं विज्ञानम् (**अग्नेः**) विद्युदाख्यस्य (**वैश्वानरस्य**) अखिलेषु नरेषु राजमानस्य (**च**) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्य तव विश्वस्य भुवनस्य वैश्वानरस्याग्नेश्च वाजिनमिदं विज्ञानमभूत् जातं तमृचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा वयमाश्रयेम ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यस्य तव विश्वस्य** सर्वाधिकारस्य **भुवनस्य** जगतः **वैश्वानरस्य** अखिलेषु नरेषु राजमानस्य **अग्नेः** विद्युदाख्यस्य **च वाजिनं** वाजिनां=विज्ञानवतामिदमवयवभूतं विज्ञानम् **इदं विज्ञानमभूत्=जातं** भवेत्, **तमृचे** स्तुतये **त्वा** त्वां, **रुचे** प्रीतये **त्वा** त्वां, **भासे** विज्ञानाय **त्वा** त्वां, **ज्योतिषे** न्यायप्रकाशाय **त्वा** त्वां **वयमाश्रयेम** ॥ १३ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तेरा-(विश्वस्य) सबके समान अधिकार वाले (भुवनस्य) जगत् का और (वैश्वानरस्य) सब नरों में विराजमान (अग्नेः) विद्युत् नामक अग्नि का (वाजिनम्) विज्ञानवान् जनों का अवयव रूप यह विज्ञान (अभूत्) है, सो (ऋचे) स्तुति के लिए (त्वा) तुझको, (रुचये) प्रीति के लिए (त्वा) तुझको, (भासे) विज्ञान के लिए (त्वा) तुझको, (ज्योतिषे) न्याय के प्रकाश के लिए (त्वा) तुझको हम आश्रय करते हैं, अर्थात् तेरा आश्रय ग्रहण करते हैं ॥

[हे विद्वन् ! यस्य तव विश्वस्य भुवनस्य ... इदं विज्ञानमभूत्]

भावार्थः—यस्य मनुष्यस्य सर्वेषां जगत्-पदार्थानां यथार्थो बोधः स्यात्,

भावार्थ—जिस मनुष्य को सब जगत् के पदार्थों का यथार्थ बोध होवे—

[तमृचे त्वा ... वयमाश्रयेम]

तमेव सेवित्वा पदार्थविज्ञानं सर्वैर्मनुष्यैः प्राप्तव्यम् ॥ १३ । ३९ ॥

उसी की सेवा करके पदार्थविज्ञान को सब मनुष्य प्राप्त करें ॥ १३ । ३९ ॥

भाष्यसार—**पूर्ण विद्वान् ही विज्ञान देने में योग्य है**—जो समस्त संसार के पदार्थों का और सब मनुष्यों में विद्यमान विद्युदादि का विशेष ज्ञाता हो, वह दूसरों को भी विज्ञान की शिक्षा देवे। जिस को सीख कर सब पदार्थों की स्तुति=गुणविद्या, रुचये=उन पदार्थों के प्रति रुचि, भासे=उनका विशेष ज्ञान, और ज्योतिषे=न्याय के प्रकाश को जानकर सदा आनन्दित रहें ॥ १३। ३९ ॥

विरूपः। **अग्निः**=**विद्वान्**। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते॥

विद्वानों से अन्य मनुष्यों को भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, फिर इसी विषय का उपदेश किया है॥

अ॒ग्निर्ज्योति॑षा॒ ज्योति॑ष्मान् रु॒क्मो वर्च॑सा॒ वर्च॑स्वान्। स॒ह॒स्र॒दा ऽअ॑सि स॒ह॒स्राय॑ त्वा ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावकः (**ज्योतिषा**) दीप्त्या (**ज्योतिष्मान्**) प्रशस्तप्रकाशयुक्तः (**रुक्मः**) सुवर्णमिव (**वर्चसा**) विद्यादीप्त्या (**वर्चस्वान्**) विद्याविज्ञानवान् (**सहस्रदाः**) सहस्रमसंख्यं सुखं ददातीति (**असि**) (**सहस्राय**) अतुलविज्ञानाय (**त्वा**) त्वाम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यस्त्वं ज्योतिषा ज्योतिष्मानग्निरिव वर्चसा वर्चस्वान् **रुक्म** इव सहस्रदा असि तं त्वां सहस्राय वयं सत्कुर्याम ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! यस्त्वं ज्योतिषा** दीप्त्या **ज्योतिष्मान्** प्रशस्तप्रकाशयुक्तः **अग्निः** पावकः **इव, वर्चसा** विद्यादीप्त्या **वर्चस्वान्** विद्याविज्ञानवान् **रुक्म** सुवर्णम् **इव सहस्रदाः** सहस्रमसङ्ख्यं सुखं ददातीति **असि, तं** [**त्वा**]=**त्वां सहस्राय** अतुलविज्ञानाय **वयं सत्कुर्य्याम**॥४०॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! जो तू—(ज्योतिषा) दीप्ति के कारण (ज्योतिष्मान्) प्रशस्त प्रकाश से युक्त (अग्निः) अग्नि के समान है, (वर्चसा) विद्या की दीप्ति से (वर्चस्वान्) विद्या और विज्ञान वाला होकर (रुक्म) सुवर्ण के समान वर्चस्वी है, (सहस्रदाः) असंख्य सुखों को देने वाला (असि) है, सो [त्वा] तुझे (सहस्राय) अतुल विज्ञान के लिए हम सत्कृत करें ॥ १३। ४० ॥

[हे विद्वन्! यस्त्वं ज्योतिषा ज्योतिष्मान् ···असि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ मनुष्यैर्योऽग्निसूर्यविद्यया प्रकाशमानो विद्वान् भवेत्,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ मनुष्य—जो अग्नि विद्या एवं सूर्य विद्या से प्रकाशमान विद्वान् हो—

[तं त्वां सहस्राय वयं सत्कुर्याम]

तस्मादधीत्य पुष्कला विद्याः स्वीकार्याः ॥ ४० ॥

उससे विद्या को पढ़कर सब विद्याओं को स्वीकार करें ॥ १३। ४० ॥

भा० पदार्थः—सहस्राय=पुष्कलविद्यायै।

भाष्यसार—**पूर्ण-विद्वान् ही विज्ञानदाता है**—जो विद्या के प्रकाश से प्रकाशमान, अग्नि की तरह तेजस्वी सुवर्ण की तरह वर्चस्वी विद्वान् हैं वे ही सहस्रदाः=असंख्य सुखों के देने वाले होते हैं। ऐसे पुरुषों से दूसरे मनुष्य भी सहस्राय=असख्य विज्ञान को सीखकर सदा आनन्दित रहें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि अग्नि और सुवर्ण के समान तेजस्वी से विज्ञान को सीखें॥ १३। ४०॥ ●

विरूपः। **अग्निः**=विद्वान्। त्रिष्टुप्। धैवतः॥
पुनस्ते किं कुर्य्युरित्याह॥
फिर वे विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें, इस विषय का उपदेश किया है॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङ्धि हरसा माभि मंᳬस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः॥ ४१॥

पदार्थः—(**आदित्यम्**) सूर्यम् (**गर्भम्**) स्तुतिविषयम् (**पयसा**) जलेनेव (**सम्**) (**अङ्धि**) शोधय (**सहस्रस्य**) असंख्यपदार्थसमूहस्य (**प्रतिमाम्**) प्रतीयन्ते सर्वे पदार्था यया ताम् (**विश्वरूपम्**) सर्वरूपवत्पदार्थदर्शकम् (**परि**) सर्वतः (**वृङ्धि**) वर्जय (**हरसा**) ज्वलितेन तेजसा। **हर इति ज्वलतो नाम०॥ निघं० १। १७॥** (**मा**) (**अभि**) (**मंस्थाः**) मन्येथाः (**शतायुषम्**) शतवर्षपरिमितजीवनम् (**कृणुहि**) (**चीयमानः**) वृध्यमानः॥ ४१॥

प्रमाणार्थ—(**हरसा**) 'हर' यह पद निघं० १। १७ में तेज-नामों में पढ़ा है॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं यथा विद्युत्पयसा सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपं गर्भमादित्यं धरति तथान्तःकरणं समङ्धि। हरसा रोगान् परिवृङ्धि चीयमानः सन् शतायुषं तनयं कृणुहि कदाचिन्माऽभिमंस्था॥ ४१॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! त्वं **यथा विद्युत् पयसा** जलेनेव **सहस्रस्य** असङ्ख्यपदार्थसमूहस्य **प्रतिमां** प्रतीयन्ते सर्वे पदार्था यया तां, **विश्वरूपं** सर्वरूपवत्पदार्थदर्शकं **गर्भं** स्तुतिविषयम् **आदित्यं** सूर्य्यं **धरति, तथाऽन्तःकरणं समङ्धि** शोधय। **हरसा** ज्वलितेन तेजसा **रोगान् परिवृङ्धि** सर्वतो वर्जय। **चीयमानः** वृध्यमानः **सन् शतायुषं** शतवर्षपरिमितजीवनं **तनयं कृणुहि। कदाचिन्माऽभिमंस्थाः** मन्येथाः॥ १३। ४१॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! तू-जैसे विद्युत् (पयसा) जल से (सहस्रस्य) असंख्य पदार्थों की (प्रतिमा) जिससे पदार्थ प्रतीत=विदित होते हैं उस प्रतिमा को; और (विश्वरूपम्) सब रूपवान् पदार्थों के दर्शक, (गर्भम्) स्तुति के योग्य, (आदित्यम्) सूर्य को धारण करती है, वैसे—अन्तःकरण को (समङ्धि) शुद्ध कर। (हरसा) प्रज्वलित अग्नि से रोगों को (परिवृङ्धि) सब ओर से हटा। (चीयमानः) बढ़ता हुआ (शतायुषम्) सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र को (कृणुहि) प्राप्त कर। कभी (माऽभिमंस्थाः) अभिमान मत कर॥

[हे विद्वन्! हरसा रोगान् परिवृङ्धि, शतायुषं तनयं कृणुहि]

भावार्थः—हे स्त्रीपुरुषाः! यूयं सुगन्ध्यादिहोमेन सूर्यप्रकाशं जलं वायुञ्च शोधयित्वा, अरोगा भूत्वा, शतायुषस्तनयान् कुरुत।

भावार्थ—हे स्त्री-पुरुषो! तुम-सुगन्धि आदि के होम से सूर्य के प्रकाश, जल और वायु को शुद्ध करके, नीरोग होकर, पुत्रों को शतायु बनाओ।

[यथा विद्युत्...सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपं गर्भमादित्यं धरति तथा]

यथा विद्युन्निर्मितेन सूर्येण रूपवतां पदार्थानां

जैसे विद्युत् से बने सूर्य से रूपवान् पदार्थों का

दर्शनं परिमाणं च भवति, तथा विद्यावन्त्यपत्यानि भवन्ति ।

दर्शन और परिमाण होता है वैसे विद्यावान् सन्तान होते हैं ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात् कदाचिदभिमानिनो भूत्वा प्रमादेन विद्याया आयुषश्च विनाशं मा कुरुत ॥ ४१ ॥

अतः—कभी अभिमानी होकर प्रमाद से विद्या और आयु का विनाश न करें ॥ १३ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—हरसा=सुगन्ध्यादिहोमेन । प्रतिमाम्=परिमाणम् ।

विनियोग—दोनों वधू वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करें, उस समय—'आदित्य-गर्भः' इस मन्त्र से परमेश्वर का उपस्थान करें (**संस्कारविधि गर्भा०**) ॥

भाष्यसार—**विद्या सम्पन्न स्त्रीपुरुषों का धर्म**—विद्वान् स्त्री-पुरुषों का यह परम-कर्त्तव्य है कि जैसे विद्युत् असंख्य पदार्थों को प्रतीत कराने वाले, सब रूपवान् पदार्थों के दर्शक गर्भम्=स्तुति के योग्य सूर्य को धारण करती है वैसे ही अन्तःकरण को शुद्ध रक्खें और प्रज्वलित यज्ञ की अग्नि से वायु तथा जल को शुद्ध करके नीरोग रहें । और इस प्रकार की सन्तानों को जन्म देवें जो सौ वर्ष तक स्वस्थ रहकर जीवित रह सकें । और कभी भी किसी प्रकार का अभिमान न करें ॥ १३ । ४१ ॥

विरूपः । **अग्निः=विद्वान्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तेन किं कार्य्यमित्याह ॥

फिर विद्वान् पुरुष को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

वात॑स्य जू॒तिं वरु॑णस्य॒ नाभि॒मश्वं॑ जज्ञा॒नꣳ स॑रि॒रस्य॒ मध्ये॑ ।
शिशुं॑ न॒दीना॒ꣳ हरि॒मद्रि॑बुध्न॒मग्ने॒ मा हि॑ꣳसीः पर॒मे व्यो॑मन् ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**वातस्य**) वायोः (**जूतिम्**) वेगम् (**वरुणस्य**) जलसमूहस्य (**नाभिम्**) बन्धनम् (**अश्वम्**) व्याप्तुं शीलम् (**जज्ञानम्**) प्रादुर्भूतम् (**सरिरस्य**) सलिलस्योदकस्य । **सलिलमित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥** कपिलकादित्वाद्रेफः (**मध्ये**) (**शिशुम्**) बालकम् (**नदीनाम्**) (**हरिम्**) हरमाणम् (**अद्रिबुध्नम्**) मेघाकाशम् (**अग्ने**) पाकवद्वर्त्तमान (**मा**) (**हिंसीः**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्नि=व्याप्ते आकाशे ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—(**सरिरस्य**) 'सलिल' पद निघं० १ । १२ में उदक=जल के नामों में पढ़ा है । यहाँ कपिलकादि से लकार के स्थान में रेफ है ।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वँस्त्वं परमे व्योमन् वातस्य मध्ये जूतिमश्वं सरिरस्य वरुणस्य नाभि नदीनां जज्ञानं शिशुं बालमिव वर्त्तमानं हरिमद्रिबुध्नं मा हिंसीः ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=विद्वन् पावकवद्वर्त्तमान ! **त्वं परमे** प्रकृष्टे **व्योमन्** व्योम्नि=व्याप्ते आकाशे **वातस्य** वायोः **मध्ये जूतिं** वेगम् **अश्वं** व्याप्तुं शीलं **सरिरस्य** सलिलस्योदकस्य **वरुणस्य** जलसमूहस्य **नाभिं** बन्धनं **नदीनां जज्ञानं** प्रादुर्भूतं **शिशुं**=**बालं** बालकम् इव **वर्त्तमानं हरिं** हरमाणम् **अद्रिबुध्नं** मेघाऽऽकाशं **मा हिंसीः** ॥ ४२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! तू—(परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक आकाश में, (वातस्य) वायु के मध्य में, विद्यमान (जूतिम्) वेगरूप (अश्वम्) व्याप्तिशील अश्व को, (सरिरस्य) सलिल=जल रूप (वरुणस्य) समुद्र के (नाभिम्) बन्धन को, (नदीनाम्) नदियों का (जज्ञानम्) प्रादुर्भाव करने वाले, (शिशुम्)

बालक के समान वर्ताव वाले, (हरिम्) दुःखों को हरण करने वाले (अद्रिबुध्नम्) मेघ एवं आकाश का (मा हिंसीः) हिंसन मत कर ॥ १३ । ४२ ॥

[हे अग्ने=विद्वन् ! त्वं परमे व्योमन वातस्य जूतिं, वरुणस्य नाभिम्, अद्रिबुध्नं मा हिंसीः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः प्रमादेनावकाशे वर्त्तमानं वायुवेगं वृष्टि-प्रबन्धं मेघमहत्वा जीवनं वर्धनीयम् ॥ १३ । ४२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—प्रमाद के कारण, आकाश में विद्यमान वायु के वेग और वर्षा के प्रवन्ध रूप मेघ का विनाश न करके जीवन को बढ़ावें ॥

भा० पदार्थः—वरुणस्य=वृष्टेः । नाभिम्=प्रबन्धम् । अद्रिबुध्नम्=मेघम् ॥

भाष्यसार—१. विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य—सभी विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे आकाश में विद्यमान तथा व्याप्त वायु के वेग का और जल का कारण, नदियों के उत्पत्तिकर्त्ता, दुःखों के हरण करने वाले, बालक के समान राग-द्वेषादि से रहित मेघ का कभी विनाश न करें । क्योंकि वायु का वेग और वृष्टिकर्त्ता मेघ के हनन न करने से जीवनोत्पादक पदार्थों के बढ़ने से जीवन वृद्धि को प्राप्त करता है ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि बालक के समान वर्ताव करने वाले मेघ का विनाश न करें ॥ १३ । ४२ ॥

विरूपः । **अग्निः**=विद्युद्रूपोऽग्निः । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरयं किं कुर्य्यादित्याह ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंसीरदितिं विराजम् ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**इन्दुम्**) जलम् (**अरुषम्**) अश्वम् (**भुरण्युम्**) पोषकम् । अत्र भुरणधातोर्युः प्रत्ययः (**अग्निम्**) विद्युतम् (**ईडे**) अध्यन्विच्छामि (**पूर्वचितिम्**) पूर्वा चितिश्चयनं यस्य तम् (**नमोभिः**) अन्नैः (**सः**) (**पर्वभिः**) पूर्णैः साधनाङ्गैः (**ऋतुशः**) बहूनृतून् (**कल्पमानः**) समर्थः सन् (**गाम्**) पृथिवीम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**अदितिम्**) अखण्डिताम् (**विराजम्**) विविधैः पदार्थैं राजमानाम् ॥ ४३ ॥

प्रमाणार्थ—(**भुरण्युम्**) यहां 'भुरण' धातु से 'यु' प्रत्यय है ।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथाहं पर्वभिर्नमोभिः सह वर्त्तमानमिन्दुमरुषं भुरण्युं पूर्वचितिमग्नि-मजस्रमीडे तमृतुशः कल्पमानः सन्नदितिं विराजं गां न नाशयामि तथैव स त्वमेतमेनां च मा हिंसीः ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथाऽहं **पर्वभिः** पूर्णैः साधनाङ्गैः **नमोभिः** अन्नैः **सह वर्त्तमानमिन्दुं** जलम् **अरुषम्** अश्वं **भुरण्युं** पोषकं

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जैसे मैं–(पर्वभिः) पूर्ण साधन रूप अङ्गों वाले (नमोभिः) अन्नों सहित (इन्दुम्) जल को, (अरुषम्) अश्व रूप,

पूर्वचितिं पूर्वा चितिश्चयनं यस्य तम्, **अग्निं** विद्युतम् **अजस्त्रं** निरन्तरम् **ईडे** अध्यन्विच्छामि **तमृतुशः** बहूनृतून् **कल्पमानः** समर्थः **सन् अदितिम्** अखण्डितां **विराजं** विविधैः पदार्थैः राजमानं **गां** पृथिवीं **न नाशयामि, तथैव स त्वमेतमेनां च मा हिंसीः** हिंस्याः ॥ १३ । ४३ ॥

(भुरण्युम्) पोषक, (पूर्वचितिम्) प्रथम चयन वाली (अग्निम्) विद्युत् को; (अजस्त्रम्) निरन्तर (ईडे) खोजता हूँ। उसको, तथा (ऋतुशः) सब ऋतुओं को (कल्पमानः) समर्थ करता हुआ (अदितिम्) अखण्डित (विराजम्) विविध पदार्थों से सुशोभित (गाम्) पृथिवी को नहीं नष्ट करता हूँ, वैसे ही तू इस अन्न सहित जल, अग्नि और पृथिवी को (मा हिंसीः) नष्ट न कर ॥ १३ । ४३ ॥

[हे विद्वन् !···अहं···नमोभिः सह···इन्दुम्···अग्निम्···ईडे, ऋतुशः कल्पमानः]

भावार्थः—मनुष्यैर्ऋत्वनुकूलतया क्रियया-ऽग्निं जलमन्नं च संसेव्य,

भावार्थ—मनुष्य ऋतु के अनुकूल क्रिया से अग्नि, जल और अन्न का सेवन करके—

[विराजं गां न नाशयामि]

राजभूमिः सदैव रक्षणीया ।

राजभूमि की सदा रक्षा करें ।

[हेतुमाह—]

यतः सर्वाणि सुखानि स्युः ॥ १३ । ४३ ॥

जिससे सब सुख उत्पन्न हों ॥ १३ । ४३ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य यह है कि वे स्वास्थ्य-प्रद होने से पूर्ण साधन रूप अन्नों को, जीवन शक्तिप्रद जलों को तथा अश्व के समान शक्तिसम्पन्न, पुष्टिकारक विद्युदग्नि को ऋतुओं के अनुकूल सेवन करें, और विविध पदार्थों से सुशोभित अखण्डित पृथिवी की सदा रक्षा करें ॥ १३ । ४३ ॥

विरूपः । **अग्निः=विद्वान्** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तेन किं न कार्य्यमित्याह ॥

फिर उस विद्वान् को क्या नहीं करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳ साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**वरूत्रीम्**) वरयित्रीम् (**त्वष्टुः**) छेदकस्य सूर्य्यस्य (**वरुणस्य**) जलस्य (**नाभिम्**) बन्धिकाम् (**अविम्**) रक्षणादिनिमित्ताम् (**जज्ञानाम्**) प्रजाताम् (**रजसः**) लोकात् (**परस्मात्**) श्रेष्ठात् (**महीम्**) महतीं भूमिम् (**साहस्रीम्**) असंख्यातां बहुफलप्रदाम् (**असुरस्य**) मेघस्य (**मायाम्**) प्रज्ञापिकां विद्युतम् (**अग्ने**) विद्वन् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**परमे**) सर्वोत्कृष्टे (**व्योमन्**) **आ**काशवद् व्याप्ते ब्रह्मणि ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं त्वष्टुर्वरूत्रीं वरुणस्य नाभिं परस्माद्रजसो जज्ञानामसुरस्य मायां साहस्रीमविं परमे व्योमन्वर्त्तमानां महीं मा हिंसीः ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् ! **त्वं त्वष्टुः** छेदकस्य सूर्य्यस्य **वरूत्रीं** वरयित्रीं

भाषार्थ—हे अग्ने विद्वान् ! तू—(त्वष्टुः) छेदक सूर्य को (वरूत्रीम्) वरण करने वाली,

वरुणस्य जलस्य **नाभिं** बन्धिकां **परस्मात्** श्रेष्ठाद् **रजसः** लोकाद् **जज्ञानां** प्रजाताम् **असुरस्य** मेघस्य **मायां** प्रज्ञापिकां विद्युतं **साहस्रीम्** असङ्ख्यातां बहुफलप्रदाम् **अविं** रक्षणादिनिमित्तां **परमे** सर्वोत्कृष्टे **व्योमन्** आकाशवद् व्याप्ते ब्रह्मणि **वर्त्तमानां महीं** महतीं भूमिं **मा हिंसीः** हिंस्याः ॥ १३ । ४४

(वरुणस्य) जल को (नाभिम्) बाँधने वाली, (परस्मात्) श्रेष्ठ (रजसः) लोक से (जज्ञानाम्) उत्पन्न हुई, (असुरस्य) मेघ=बादल की (मायाम्) प्रज्ञापक विद्युत् रूप, (साहस्रीम्) सहस्र=असंख्य फल प्रदान करने वाली, (अविम्) रक्षा आदि की निमित्त, (परमे) सबसे उत्तम (व्योमन्) आकाश के समान व्यापक ब्रह्म में विद्यमान (महीम्) विशाल भूमि को (मा हिंसीः) नष्ट न कर ॥ १३ । ४४ ॥

[परस्माद्रजसो जज्ञानां, त्वष्टुर्वरूत्रीं, वरुणस्य नाभिम्, असुरस्य मायां, परमे व्योमन् वर्तमानां साहस्रीं महीम्]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैर्येयं पृथिवी परस्मात्-कारणाज्जाता, सूर्याकर्षणसम्बन्धिनी, जलधारा, मेघनिमित्ता, बहुभूगोलाकारा असंख्यसुखप्रदा परमेश्वरेण निर्मिताऽस्ति—

भावार्थ—सब मनुष्य—जो यह पृथिवी सूक्ष्म कारण से उत्पन्न, सूर्य के आकर्षण से सम्बद्ध, जल का आधार, मेघ की निमित्त, विशाल भूगोल के आकार वाली, असंख्य सुख प्रदान करने वाली परमेश्वर ने बनाई है—

[मा हिंसीः]

तां गुणकर्मस्वभावतो विज्ञाय सुखाय समुपयोक्तव्या ॥ १३ । ४४ ॥

उसको गुण, कर्म और स्वभाव से जानकर सुख के लिए उपयोग करें ॥ १३ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—रजसः=कारणात् । वरूत्रीम्=आकर्षणसम्बन्धिनीम् । नाभिम्=आधाराम् । मायाम्=निमित्ताम् । साहस्रीम्=असंख्यसुखप्रदाम् ॥

भाष्यसार—**विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य**—विद्वान पुरुषों को योग्य है कि वे आकाश के समान विशाल भूमि को कभी नष्ट न करें। क्योंकि यह महत्त्वशाली पृथिवी जीवन-रक्षा का निमित्त है, असंख्य फलों को देने वाली है, सूर्य के आकर्षण से स्थित होने से सूर्य को वरण करने वाली है, जलों को बाँधने वाली है और मेघ का कारण है। ऐसी इस ईश्वर से निर्मित भूमि के गुणों का ज्ञान करके सुख के लिए उपयोग करना चाहिये ॥ १३ । ४४ ॥

विरूपः । **अग्निः=विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनरनेन किं कार्यमित्याह ॥

फिर इस विद्वान् को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

यो ऽ अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या ऽ उत वा दिवस्परि ।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**यः**) (**अग्निः**) चाक्षुषः (**अग्नेः**) विद्युदाख्यात् (**अधि**) (**अजायत**) जायते (**शोकात्**) शोषकात् (**पृथिव्याः**) (**उत**) (**वा**) (**दिवः**) सूर्यात् (**परि**) सर्वतः (**येन**) (**प्रजाः**) (**विश्वकर्मा**) विश्वानि कर्माणि यस्य सः (**जजान**) जनयति (**तम्**) (**अग्ने**) विद्वन् (**हेडः**) अनादरः (**परि**) (**ते**) तव (**वृणक्तु**) छिन्नो भवतु ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यः पृथिव्याः शोकादुत वा दिवोऽग्नेरग्निरध्यजायत । येन विश्वकर्मा प्रजाः परिजजान तं ते हेडः परिवृणक्तु ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=विद्वन् ! **यः पृथिव्याः शोकात्** शोषकाद् **उत वा दिवः** सूर्याद्, **अग्नेः** विद्युदाख्याद् **अग्निः** चाक्षुषः **अधि+अजायत** जायते; **येन विश्वकर्मा** विश्वानि कर्माणि यस्य सः **प्रजाः परि+जजान** सर्वतो जनयति, **तं ते** तव **हेडः** अनादरः **परि+वृणक्तु** सर्वतः छिन्नो भवतु ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जो (पृथिव्याः) भूमि के (शोकात्) शोषक-भाव से, (उत वा) अथवा (दिवः) सूर्य से, (अग्नेः) विद्युत् नामक अग्नि से (अग्निः) चाक्षुष अग्नि (अधि+अजायत) उत्पन्न होती है, जिससे (विश्वकर्मा) सब कर्मों वाला ईश्वर (प्रजाः) प्रजा को (परि+जजान) सब ओर उत्पन्न करता है, उसके प्रति (ते) तेरा (हेडः) अनादर भाव (परि+वृणक्तु) सब ओर से छिन्न=नष्ट हो ॥ १३ । ४५ ॥

[हे अग्ने-विद्वन् ! यः पृथिव्याः ··· दिवः···अध्यजायत, तं···परिवृणक्तु]

भावार्थः—हे विद्वांसः ! यूयं योऽग्निः पृथिवीं भित्त्वोत्पद्यते, यश्च सूर्यादिस्तस्माद्विघ्नकारिणोऽग्नेः सर्वान् प्राणिनः पृथग् रक्षत ।

भावार्थ—हे विद्वानो ! तुम—जो अग्नि पृथिवी का भेदन करके उत्पन्न होती है, और जो सूर्य आदि से उत्पन्न होती है उस विघ्नकारी अग्नि से सब प्राणियों को पृथक् रखो ।

[येन विश्वकर्मा प्रजाः परि+जजान]

येनाग्निनेश्वरः सर्वान् रक्षति, तद्विद्यां विजानीत ॥ १३ । ४५ ॥

जिस अग्नि से ईश्वर सबकी रक्षा करता है उस अग्नि-विद्या को जानो ॥ १३ । ४५ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य**—विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे अग्निविद्या को खोजकर जन-हित के कार्यों में सदा उपयोग किया करें । चाहे वह अग्नि पृथिवी से, सूर्य से अथवा विद्युत् से उत्पन्न हुई हो, किन्तु कभी भी उसका दुरुपयोग न करें, जिससे अग्नि-विद्या के प्रति किसी को अनादर भाव पैदा न हो सके ॥ १३ । ४५ ॥

विरूपः । **सूर्यः**=**ब्रह्म** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अब ईश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः ।
आ प्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ऽ अ॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ सूर्य॑ ऽ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**चित्रम्**) अद्भुतम् (**देवानाम्**) पृथिव्यादीनां मध्ये (**उत्**) (**अगात्**) उदितोऽस्ति (**अनीकम्**) सेनेव किरणसमूहम् (**चक्षुः**) दर्शकम् (**मित्रस्य**) प्राणस्य (**वरुणस्य**) उदानस्य (**अग्नेः**) प्रसिद्धस्य (**आ**) (**अप्राः**) व्याप्नोति (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशाप्रकाशे जगती (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**सूर्य्यः**) सविता (**आत्मा**) सर्वस्यान्तर्यामी (**जगतः**) जङ्गमस्य (**तस्थुषः**) स्थावरस्य (**च**) ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! भवन्तो यद् ब्रह्म देवानां चित्रमनीकं मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चक्षुः

सूर्य इवोदगाज्जगतस्तस्थुषश्चात्मा सद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं चाप्रास्तज्जगन्निर्मातृ पातृ संहर्तृ व्यापकं सततमुपासीरन् ।। ४६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **भवन्तो यद् ब्रह्म देवानां** पृथिव्यादीनां मध्ये **चित्रम्** अद्‌भुतम् **अनीकं** सेनेव किरणसमूहं **मित्रस्य** प्राणस्य **वरुणस्य** उदानस्य **अग्नेः** प्रसिद्धस्य **चक्षुः** दर्शकं **सूर्य्यः** सविता **इवोदगाद्** उदितोऽस्ति, **जगतः** जङ्गमस्य **तस्थुषः** स्थावरस्य **चाऽऽत्मा** सर्वस्यान्तर्य्यामी **सद् द्यावापृथिवी** प्रकाशाऽप्रकाशे जगती **अन्तरिक्षम्** आकाशं **चाऽऽप्राः** व्याप्नोति, **तज्जगन्निर्मातृ पातृ संहर्तृ व्यापकं सततमुपासीरन्** ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! आप—जो ब्रह्म (देवानाम्) पृथिवी आदि के मध्य में (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सेना के तुल्य किरणसमूह के समान है, जो (मित्रस्य) प्राण (वरुणस्य) उदान एवं (अग्नेः) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दर्शक (सूर्यः) सूर्य के समान (उदगात्) उदित है, जो (जगतः) जङ्गम=चेतन (तस्थुषश्च) और स्थावर=जड़ जगत् का (आत्मा) सर्वान्तर्यामी होकर (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अप्रकाश रूप जगत् को **और** (अन्तरिक्षम) आकाश को (आ प्राः) व्याप्त कर रहा है उस—जगत् के निर्माता, पाता=रक्षक, और संहर्ता, व्यापक ब्रह्म की सदा उपासना करो ।।

[जगत्कर्तृत्वादिकमाह—]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। न खल्विदं निष्कर्तृकमनधिष्ठातृकमनीश्वरं जगदस्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ।। यह जगत्-कर्ता, अधिष्ठाता और ईश्वर से रहित नहीं है ।

[**यद् ब्रह्म "सूर्य इवोदगाज्जगतस्तस्थुषश्चात्मा सद् द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं चा प्राः**]

यद् ब्रह्म सर्वान्तर्यामि, सर्वेषां जीवानां पापपुण्यफलदानव्यवस्थापकमनन्तज्ञानप्रकाशं वर्त्तते,

जो ब्रह्म सर्वान्तर्यामी, सब जीवों के पाप-पुण्य रूप फल के प्रदान का व्यवस्थापक और अनन्त ज्ञान के प्रकाश वाला है ।

[तात्पर्यमाह—]

तदेवोपास्य धर्मार्थकाममोक्षफलानि मनुष्यैराप्तव्यानि ।। १३ । ४६ ।।

मनुष्य—उसी ब्रह्म की उपासना करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त करें ।।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम—प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं, 'तस्थुषः' अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सबके आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम 'सूर्य' है, (**सत्यार्थ० समु० १**) ।।

(**ख**) **प्रश्न**—"सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इत्यादि वेद-प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो (**सत्यार्थ० समु० ११**) ।।

(**ग**) "चित्रं देवाना० । (**सूर्य आत्मा०**) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य कहते हैं । (**आ प्रा द्या०**) जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बना के धारण और रक्षण करने वाला है (**चक्षुर्मित्रस्य**) जो मित्र अर्थात् राग-द्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्य लोक और प्राण का चक्षु=प्रकाश करने वाला है (**वरुणस्या०**) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य-प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाश

करने वाला है, (**चित्रं देवानां०**) जो अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (**अनीकम्**) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिए परम उत्तम बल है, वह परमेश्वर (**उदगात्**) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे (**पंचमहायज्ञविधि**) ॥

विनियोग—'चित्रं देवा०' इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान करे (**संस्कारविधि गृहाश्रम०**) ॥

भा० पदार्थः—सूर्यः=अनन्तज्ञानप्रकाशं [**ब्रह्म**] ।

भाष्यसार—१. **ब्रह्म का स्वरूप**—जो ब्रह्म पृथिवी आदि देवों से विचित्र है, जो सेना की तरह सर्वत्र अपने प्रकाश को फैलाए हुए है, जो प्राण, उदान और भौतिक अग्नि के दर्शक सूर्य के समान सर्वत्र उदित है, जो चलने वाले चेतन तथा न चलने वाले अचेतनों में व्यापक है, जो भूलोक, अन्तरिक्षलोक और द्युलोक में सर्वत्र विद्यमान है उसी परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि वह ब्रह्म सूर्य की तरह सबका दर्शक और सेना की तरह शक्ति-सम्पन्न एवं प्रकाशक है ॥ १३ । ४६ ॥

विरूपः । **अग्निः=मनुष्यः** । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्मनुष्येण किं कार्य्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, यह उपदेश किया है ॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) (**मा**) (**हिꣳसीः**) हिंस्याः (**द्विपादम्**) मनुष्यादिकम् (**पशुम्**) चतुष्पादं गवादिकम् (**सहस्राक्षः**) असंख्यदर्शनः (**मेधाय**) सुखसंगमाय (**चीयमानः**) वर्धमानः (**मयुम्**) जाङ्गलम् (**पशुम्**) प्रसिद्धम् (**मेधम्**) पवित्रकारकम् (**अग्ने**) पावक इव मनुष्यजन्मप्राप्त (**जुषस्व**) प्रीणीहि (**तेन**) (**चिन्वानः**) वर्धमानः (**तन्वः**) शरीरस्य मध्ये पुष्टः सन् (**नि**) नितराम् (**सीद**) तिष्ठ (**मयुम्**) शस्यादिहिंसकं पशुम् (**ते**) तव (**शुक्**) शोकः भावे क्विप् (**ऋच्छतु**) प्राप्नोतु (**यम्**) शत्रुम् (**द्विष्मः**) अप्रीतयामः (**तम्**) (**ते**) तव सकाशात् (**शुक्**) शोकः (**ऋच्छतु**) ॥ ४७ ॥

प्रमाणार्थ—(**शुक्**) यहाँ भाव अर्थ में क्विप् प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! पावक इव मनुष्य मेधाय चीयमानः सहस्राक्षस्त्वमिमं द्विपादं मेधं मयुं पशुं च मा हिंसीः तं पशुं जुषस्व तेन चिन्वानः सन् तन्वो मध्ये निषीद । इयं ते शुङ्मयुमृच्छतु । ते तव यं शत्रुं वयं द्विष्मस्तं शुगृच्छन्तु ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने !=पावक इव मनुष्य** पावक इव मनुष्यजन्मप्राप्त ! **मेधाय** सुखसङ्गमाय **चीयमानः** वर्द्धमानः **सहस्राक्षः** असङ्ख्यदर्शनः **त्वमिमं द्विपादं** मनुष्यादिकं **मेधं** पवित्रकारकं **मयुं** जाङ्गलं **पशुं** चतुष्पादं गवादिकं **च मा हिंसीः** हिंस्याः, **तं पशुं** प्रसिद्धं **जुषस्व**

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान मनुष्य-जन्म को प्राप्त पुरुष ! (मेधाय) सुख की प्राप्ति के लिए (चीयमानः) बढ़ता हुआ (सहस्राक्षः) असंख्य आँखों वाला तू (इमम्) इस (द्विपादम्) मनुष्य आदि का, (मेधम्) पवित्र करने वाले (मयुम्) जङ्गली (पशुम्) चार पैरों वाले गौ

प्रीणीहि । **तेन चिन्वानः** वर्धमानः **सन् तन्वो मध्ये** शरीरस्य मध्ये पुष्टः सन् **निषीद** नितरां तिष्ठ । **इयं ते** तव **शुक्** शोकः **मयुं** शस्यादिहिंसकं पशुम **ऋच्छतु** प्राप्नोतु । **ते=तव** तव सकाशाद् **यं शत्रुं वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः **तं शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु ॥ १३ । ४७ ॥

आदि पशुओं का (मा हिंसीः) हिंसन मत कर, उस (पशुम्) प्रसिद्ध गौ आदि पशु से (जुषस्व) प्रीति कर। उससे (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में पुष्ट होता हुआ (निषीद) सर्वथा स्थिर रह। यह (ते) तेरा (शुक्) शोक (मयुम्) शस्य=खेती आदि के हिंसक पशुओं को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे। (ते) तेरे जिस शत्रु से हम (द्विष्मः) अप्रीति करें उसे (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे॥

[हे अग्ने !···त्वमिमं···मेधं मयुं पशुं च मा हिंसीः]

भावार्थः—केनापि मनुष्येणोपकारकाः पशवः कदाचिन्न हिंसनीयाः,

भावार्थ—कोई भी मनुष्य उपकारक पशुओं की हिंसा न करे।

[तं पशुं जुषस्व, तेन चिन्वानः···निषीद]

किन्त्वेतान् संपाल्यैतेभ्य उपकारं संगृह्य सर्वे मनुष्या आनन्दयितव्याः ।

किन्तु—इनका पालन करके, इनसे उपकार लेकर सब मनुष्य आनन्दित रहें।

[इयं ते शुङ् मयुमृच्छतु]

यैर्जाङ्गलैर्हिंसकैः पशु-शस्य-मनुष्याणां हानिः स्यात्, ते तु राजपुरुषैर्हन्तव्या निग्रहीतव्याश्च ॥

जिन जंगली हिंसक प्राणियों से पशु, खेती और मनुष्यों को हानि हो उनका राजपुरुष हनन करें और उन्हें पकड़ें ॥ १३ । ४७ ॥

भाष्यसार—**मानव-धर्म**—मनुष्यों का यह परम कर्त्तव्य है कि सुखों की प्राप्ति का सदा प्रयत्न करें और उन्नति करते हुए असंख्य आँखों वाले हों अर्थात् विभिन्न प्रकार के ज्ञान का अर्जन करें। जो दो पैर वाले उपकारक प्राणी हैं, अथवा चार पैर वाले गायादि पशु हैं, उनकी सदा रक्षा करें। क्योंकि उपकारक पशुओं के पालन से शरीरादि का पोषण होता है । और खेती आदि को हानि पहुँचाने वाले अथवा हिंसक वन्य पशु हों, उनसे कभी प्रीति न करें। १३ । ४७ ॥

विरूपः । **अग्निः**=मनुष्यः । निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनरयं मनुष्यः किं कुर्यादित्याह ॥

फिर यह मनुष्य क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

इमं मा हिंᳪसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**एकशफम्**) एकखुरमश्वादिकम् (**पशुम्**) द्रष्टव्यम् (**कनिक्रदम्**) भृशं विकलं प्राप्तव्यथम् (**वाजिनम्**) वेगवन्तम् (**वाजिनेषु**) वाजिनानां=संग्रामाणामयं-वेषु=कर्मसु कार्यसिद्धिकरम् (**गौरम्**) गौरवर्णम् (**आरण्यम्**) अरण्ये भवम् (**अनु**) (**ते**) तुभ्यम् (**दिशामि**)

उपदिशामि (**तेन**) (**चिन्वानः**) वर्द्धमानः (**तन्वः**) शरीरस्य मध्ये (**नि**) (**सीद**) (**गौरम्**) (**ते**) इत्यादि पूर्ववत् ॥ ४८॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! त्वं वाजिनेष्विममेकशफं कनिक्रदं वाजिनं पशुं मा हिंसीः । ईश्वरोऽहं ते तुभ्यं यमारण्यं गौरं पशुमनु दिशामि तेन चिन्वानः सँस्तन्वो मध्ये निषीद । ते तव सकाशाद् गौरं शुगृच्छतु यं वयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्य ! त्वं वाजिनेषु** वाजिनानां=संग्रामाणामवयवेषु कर्मसु कार्य्यसिद्धिकरम् **इममेकशफम्** एकखुरमश्वादिकं **कनिक्रदं** भृशं विकलं=प्राप्तव्यथं **वाजिनं** वेगवन्तं **पशुं** द्रष्टव्यं **मा हिंसीः** हिंस्याः ।

भाषार्थ—हे मनुष्य ! तू—(वाजिनेषु) संग्रामों के अवयव रूप कर्मों में कार्य-सिद्धि करने वाले (इमम्) इस (एकशफम्) एक-खुर वाले अश्व=घोड़े आदि पशुओं को, जो (कनिक्रदम्) अत्यन्त व्यथा को प्राप्त होने वाले (वाजिनम्) वेगवान् (पशुम्) दर्शनीय पशु हैं उनका (मा हिंसीः) हिंसन मत कर ।

ईश्वरोऽहं **ते**=**तुभ्यं यमारण्यम्** अरण्ये भवं **गौरं** गौरवर्णं **पशुं** द्रष्टव्यम् **अनु+दिशामि** उपदिशामि, **तेन चिन्वानः** वर्धमानः **सन् तन्वो मध्ये** शरीरस्य मध्ये **निषीद** नितरां तिष्ठ ।

मैं ईश्वर—(ते) तेरे लिए (आरण्यम्) जंगली (गौरम्) गौर वर्ण वाले (पशुम्) दर्शनीय पशु का (अनु+दिशामि) उपदेश करता हूँ । उससे (चिन्वानः) बढ़ता हुआ (तन्वः) शरीर में (निषीद) सर्वथा स्थिर रह ।

ते=**तव सकाशाद् गौरं** गौरवर्णं **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु । **यं वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः **तं ते** तुभ्यं **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु ॥ १३ । ४८ ॥

(ते) तेरे पास से (गौरम्) गौर वर्ण वाले पशु को (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे । जिससे हम (द्विष्मः) अप्रीति=द्वेष करते हैं उसे (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ १३ । ४८ ॥

[**हे मनुष्य ! त्वम्...एकशफं...पशुं मा हिंसी, यमारण्यं...अनुदिशामि**]

भावार्थः—मनुष्यैरेकशफा अश्वादयः पशवः कदाचिन्नो हिंस्याः, न चोपकारका आरण्याः ।

भावार्थ—मनुष्य एक-खुर वाले घोड़े आदि पशुओं की कभी हिंसा न करें और उपकारक जंगली पशुओं का भी हिंसन न करें ।

[**ते...गौरं शुग् ऋच्छतु**]

येषां हननेन जगतो हानी रक्षणेनोपकारश्च भवति, ते सदैव पालनीया, हिंस्राश्च हन्तव्याः ॥

जिनके हनन से जगत् की हानि और रक्षा से उपकार होता है उन पशुओं का सदा ही पालन करें और जो हिंसक हैं उनका हनन करें ॥ १३ । ४८ ॥

भाष्यसार—**मानव-धर्म**—मनुष्यों को परमेश्वर ने यह उपदेश दिया है कि जो एक-खुर वाले अश्वादि पशु हैं, जो संग्रामों में कार्य-सिद्धि करते हैं, उन वेग वाले दर्शनीय पशुओं की कभी हिंसा न करें, उनकी सर्वथा रक्षा किया करें । इसी प्रकार हिंसन-वृत्ति से रहित जो दर्शनीय वन्य-पशु हों, उनको भी न मारें । और उनकी सहायता से वृद्धि करते हुए सर्वथा स्थिर रहें । और जो हिंसा-वृत्ति के गौरवर्ण के जंगली अनुपकारक पशु हैं, उनका सदा हिंसन किया करें ॥ १३ । ४८ ॥

विरूपः । **अग्निः**=**राजा** । कृतिः । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः के पशवो नो हिंसनीया हिंसनीयाश्चेत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कौन पशु न मारने और कौन मारने चाहियें,
यह उपदेश किया है ॥

इमꣳ साहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) (**साहस्रम्**) सहस्रस्यासंख्यातानां सुखानामयं साधकस्तम् (**शतधारम्**) शतमसंख्याता दुग्धधारा यस्मात्तम् (**उत्सम्**) कूपमिव पालकं गवादिकम् (**व्यच्यमानम्**) विविधप्रकारेण पालनीयम् (**सरिरस्य**) अन्तरिक्षस्य (**मध्ये**) (**घृतम्**) आज्यम् (**दुहानाम्**) प्रपूरयन्तीम् (**अदितिम्**) अखण्डनीयां गाम् (**जनाय**) मनुष्याद्याय प्राणिने (**अग्ने**) विवेकप्राप्तोपकारप्रकाशक राजन् (**मा**) (**हिंसीः**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्नि=व्याप्तेऽन्तरिक्षे वर्त्तमानाम् (**गवयम्**) गोसदृशम् (**आरण्यम्**) (**अनु**) (**ते**) (**दिशामि**) (**तेन**) (**चिन्वानः**) पुष्टः सन् (**तन्वः**) (**नि**) (**सीद**) (**गवयम्**) (**ते**) (**शुक्**) शोकः (**ऋच्छतु**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**तम्**) (**ते**) (**शुक्**) (**ऋच्छतु**) ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं जनायेमं साहस्रं शतधारं व्यच्यमानमुत्समिव वीर्य्यसेचकं वृषभं घृतं दुहानामदितिं धेनुं च मा हिंसीस्ते तुभ्यमपरमारण्यं गवयमनुदिशामि तेन परमे व्योमन् सरिरस्य मध्ये चिन्वानः संस्तन्वो निषीद । तं गवयं ते शुगृच्छतु यन्ते शत्रुं वयं द्विष्मस्तमति शुगृच्छतु शोकः प्राप्नोतु ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विवेकप्राप्तोपकारप्रकाशक राजन् ! **त्वं जनाय** मनुष्याद्याय प्राणिने **इमं साहस्रं** सहस्रस्याऽसंख्यातानां सुखानामयं साधकस्तं, **शतधारं** शतमसङ्ख्याता दुग्धधारा यस्मात्तं **व्यच्यमानं** विविधप्रकारेण पालनीयम् **उत्समिव** कूपमिव पालकं गवादिकं **वीर्य्यसेचकं वृषभं घृतम्** आज्यं **दुहानां** प्रपूरयन्तीम् **अदितिम्**=**धेनुम्** अखण्डनीयां गां **च मा हिंसीः** हिंस्याः ।

ते=**तुभ्यमपरमारण्यम्** अरण्ये भवं **गवयं** गोसदृशम् **अनु**+**दिशामि** उपदिशामि । **तेन परमे** प्रकृष्टे **व्योमन्** व्योम्नि=व्याप्तेऽन्तरिक्षे वर्त्तमानां **सरिरस्य** अन्तरिक्षस्य **मध्ये चिन्वानः** पुष्टः **सन् तन्वः** शरीरस्य **निषीद** नितरां तिष्ठ ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विवेकी उपकार के प्रकाशक राजन् ! तू—(जनाय) मनुष्य आदि प्राणियों के लिए (इमम्) इस (साहस्रम्) सहस्र अर्थात् असंख्य सुखों के साधक, (शतधारम्) शत अर्थात् असंख्य दुग्ध-धारा वाले, (व्यच्यमानम्) विविध प्रकार से पालन के योग्य, (उत्सवम्) कूप=कूए के समान पालक एवं वीर्य के सेचक वृषभ=सांड की, और—(घृतम्) घृत से (दुहानाम्) पूरण करने वाली (अदितिम्) अखण्डनीय गौ की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर ।

(ते) तेरे लिए दूसरे (आरण्यम्) जंगली (गवयम्) गौ के सदृश पशु=नीलगाय का (अनु+दिशामि) उपदेश करता हूँ । उससे (परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक (सरिरस्य) आकाश में (चिन्वानः) पुष्ट होकर (तन्वः) शरीर को (निषीद) सर्वथा स्थिर कर ।

तं गवयं गोसदृशं **ते** तुभ्यं **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु, **यं ते** तव **शत्रु वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः **तमति शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु ॥ १३ । ४६ ॥

उस (गवयम्) गौ के सदृश नीलगाय पशु को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे। जिस (ते) तेरे शत्रु से हम (द्विष्मः) अप्रीति=द्वेष करते हैं उसे अत्यन्त (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ॥ १३ । ४६ ॥

[हे अग्ने !···वृषभं, घृतं दुहानामदितिं=धेनुं च मा हिंसीः]

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ राजमनुष्या येभ्यो वृषादिभ्यः कृष्यादीनि कर्माणि भवन्ति, याभ्यो गवादिभ्यो दुग्धादिपदार्था जायन्ते, यैः सर्वेषां रक्षणं भवति, ते कदाचिन्नैव हिंसनीयाः। य एतान् हिंस्युस्तेभ्यो राजादिन्यायेशा अतिदण्डं दधुः।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है॥ राजपुरुष—जिन बैल आदि से कृषि आदि कार्य होते हैं, जिन गौ आदि से दुग्ध आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिन पदार्थों से सबकी रक्षा होती है उनकी कभी हिंसा न करें। जो इनकी हिंसा करें उन्हें राजा आदि न्यायाधीश अति दण्ड देवें।

[गवयं ते शुग् ऋच्छतु]

ये च जाङ्गला गवयादयः प्रजाहानिं कुर्युस्ते हन्तव्याः ॥ १३ । ४६ ॥

और—जो जंगली गवय=नील गाय आदि पशु प्रजा की हानि करें, उनका हनन करें ॥

भाष्यसार—**१. राज-धर्म**—राजा का यह परम-कर्त्तव्य है कि मनुष्यों को अपरिमित सुख देने वाले, पालन करने योग्य, दूध घृतादि से पूर्ण करने वाले अखण्डनीय=विनाश न करने योग्य गायादि पशुओं की और कूए के समान पालक कृषि के योग्य एवं वीर्य के सेचक अच्छी नस्ल के सांडों की कभी भी हिंसा न करे। और जो गाय के सदृश जङ्गली नीलगायादि कृषि के लिए हानिकारक पशु हैं, उनको मारना राजा का धर्म है।

२ अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि कूए के समान पालक पशुओं को नहीं मारना चाहिए ॥ १३ । ४६ ॥

विरूपः । **अग्निः**=**राजा** । कृतिः । निषादः ॥

पुनः के पशवो न हिंस्या हिंस्याश्चेत्याह ॥

फिर किन पशुओं को न मारना और किन को मारना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

इ॒मामूर्णा॒युं वरु॑णस्य॒ नाभि॒ त्वचं॑ पशू॒नां द्वि॒पदां॒ चतु॑ष्पदाम् ।
त्वष्टुः॑ प्र॒जानां॑ प्रथ॒मं ज॒नित्र॒मग्ने॒ मा हि॑ᳬसीः पर॒मे व्यो॑मन् ।
उष्ट्र॑मार॒ण्यमनु॑ ते दिशामि॒ तेन॑ चिन्वा॒नस्त॒न्वो॒ नि षी॑द ।
उष्ट्रं॑ ते॒ शुगृ॑च्छतु॒ यं द्वि॒ष्मस्तं ते॒ शुगृ॑च्छतु ॥ ५० ॥

पदार्थः--(**इमम्**) (**ऊर्णायुम्**) अविम् (**वरुणस्य**) वरस्य=प्राप्तव्यस्य सुखस्य (**नाभिम्**) निबन्धनम् (**त्वचम्**) (**पशूनाम्**) (**द्विपदाम्**) (**चतुष्पदाम्**) (**त्वष्टुः**) सुखप्रकाशकस्य (**प्रजानाम्**) (**प्रथमम्**) आदिमम् (**जनित्रम्**) उत्पत्तिनिमित्तम् (**अग्ने**) (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**परमे**) (**व्योमन्**) (**उष्ट्रम्**)

(आरण्यम्) अरण्ये भवम् **(अनु) (ते) (दिशामि) (तेन) (चिन्वानः) (तन्वः) (नि) (सीद) (उष्ट्रम्)** इत्यादि पूर्ववत् ।। ५० ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! प्राप्तविद्य राजंस्त्वमिमं वरुणस्य नाभिं द्विपदां चतुष्पदां पशूनां त्वचं त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रं परमे व्योमन्वर्तमानमूर्णायुं मा हिंसीः । ते यं धान्यहिंसकमारण्यमुष्ट्रं हन्तुमनु-दिशामि तेन चिन्वानः संस्तन्वो मध्ये निषीद । ते शुगारण्यमुष्ट्रमृच्छतु यं ते द्वेष्टारं वयं द्विष्मस्तं शुगृच्छतु ।। ५० ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने !**=प्राप्त-विद्य राजन् ! **त्वमिमं वरुणस्य** वरस्य प्राप्तव्यस्य सुखस्य **नाभिं** निबन्धनं **द्विपदां चतुष्पदां पशूनां त्वचं त्वष्टुः** सुखप्रकाशकस्य **प्रजानां प्रथमम्** आदिमं **जनित्रम्** उत्पत्तिनिमित्तं **परमे** प्रकृष्टे **व्योमन्** व्योम्नि=व्याप्तेऽन्तरिक्षे **वर्त्तमानमूर्णायुम्** अविं **मा हिंसीः** हिंस्याः ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्या को प्राप्त=विद्वान् राजन् ! तू—(इमम्) इस (वरुणस्य) श्रेष्ठ प्रापणीय सुख के (नाभिम्) बन्धन की, (द्विपदाम्) दो पैरों वाले (चतुष्पदाम्) चार पैरों वाले (पशूनाम्) पशुओं की (त्वचम्) त्वचा की, (त्वष्टुः) सुख के प्रकाशक राजा की (प्रजानाम्) प्रजा के (प्रथमम्) प्रथम (जनित्रम्) उत्पत्ति के हेतु की, (परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक आकाश में विद्यमान (ऊर्णायुम्) भेड़ की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर ।

ते तुभ्यं **यं धान्यहिंसकमारण्यम्** अरण्ये भवम् **उष्ट्रं हन्तुमनु+दिशामि** उपदिशामि, **तेन चिन्वानः** पुष्टः **सन् तन्वः** शरीरस्य **मध्ये निषीद** नितरां तिष्ठ ।

(ते) तेरे लिए जिस धान्य के हिंसक (आरण्यम्) जंगली (उष्ट्रम्) ऊंट को मारने का (अनु+दिशामि) उपदेश करता हूँ। उससे (चिन्वानः) पुष्ट होकर (तन्वः) शरीर में (निषीद) सर्वथा स्थिर रह ।

ते तव **शुक्** शोकः **आरण्यम्** अरण्ये भवम् **उष्ट्रमृच्छतु** प्राप्नोतु, **यं ते** तव **द्वेष्टारं वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः **तं ते** तव **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु ।

(ते) तेरा (शुक्) शोक (आरण्यम्) जंगली (उष्ट्रम्) ऊँट को (ऋच्छतु) प्राप्त होवे, (यम्) जिस (ते) तेरे द्वेष्टा से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रीति =द्वेष करते हैं (तम्) उसे (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ।। १३ । ५० ।।

[हे अग्ने··· राजन् ! ··· ऊर्णायुं मा हिंसीः, ··· उष्ट्रमनुदिशामि]

भावार्थः—हे राजन् ! येषामव्यादीनां लोमानि त्वगपि मनुष्याणां सुखाय प्रभवति, य उष्ट्रा भारं वहन्तो मनुष्यान् सुखयन्ति, तान् ये हन्तुमिच्छेयुस्ते जगत्पीडका विज्ञेयाः, सम्यग् दण्डनीयाश्च ।

भावार्थ—हे राजन् ! जिन भेड़ आदि पशुओं के रोम और त्वचा=चमड़ी भी मनुष्यों के सुख के लिए समर्थ है, जो ऊंट भार को वहन करके मनुष्यों को सुख देते हैं, उन्हें जो मारना चाहें उनको जगत् को पीड़ा देने वाले समझें और उन्हें दण्ड देवें ।

[ते शुगारण्यमुष्ट्रमृच्छतु]

ये चारण्या उष्ट्रा हानिकरास्तेऽपि दण्ड-नीयाः ।। १३ । ५० ।।

और-जो जंगली ऊंट हानिकारक हैं उन्हें भी दण्डित करें ।। १३ । ५० ।।

भाष्यसार—**अन्य अहिंसनीय पशुओं का वर्णन**—राजा का यह परम धर्म है कि जो-जो भेड़ादि प्रजा को सुख देने वाले पशु हैं, जिनकी त्वचा तथा लोमादि जीवनोपयोगी हों, उन दो पैर वाले अथवा चार पैर वाले पशुपक्षियों की कभी हिंसा न करे किन्तु उनको संरक्षण देकर उनका सदुपयोग बढ़ाया करे और जो जंगली ऊँटादि हिंस्रवृत्ति वाले पशु हों, उनकी प्रजा के सुख के लिए हत्या करवा दे। इससे राज्य में स्थिरता रहती है ॥ १३ । ५० ॥

विरूपः । **अग्निः**=**राजा** । भुरिक्कृतिः । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः के पशवो न हन्तव्या के च हन्तव्या इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कौन से पशु न मारने और कौन से मारने चाहियें,
यह उपदेश किया है ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो ऽ अपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**अजः**) छागः (**हि**) खलु (**अग्नेः**) पावकात् (**अजनिष्ट**) जायते (**शोकात्**) (**सः**) (**अपश्यत्**) पश्यति (**जनितारम्**) उत्पादकम् (**अग्ने**) (**तेन**) (**देवाः**) विद्वांसः (**देवताम्**) दिव्यगुणताम् (**अग्रम्**) उत्तमं सुखम् (**आयन्**) यन्ति=प्राप्नुवन्ति (**तेन**) (**रोहम्**) प्रादुर्भावम् (**आयन्**) प्राप्नुवन्तु (**उप**) (**मेध्यासः**) पवित्राः सन्तः (**शरभम्**) शल्यकम् (**आरण्यम्**) जङ्गलोत्पन्नम् (**अनु**) (**ते**) (**दिशामि**) (**तेन**) (**चिन्वानः**) अग्रे पूर्ववत् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे राजंस्त्वं यो ह्यजोऽजनिष्ट सोऽग्रे जनितारमपश्यत् । येन मेध्यासो देवा अग्रं देवतां सुखमुपायन् येन रोहमुपायन् तेनोत्तमगुणतामग्रं सुखं तेन वृद्धिं च प्राप्नुहि यमारण्यं शरभं तेऽनुदिशामि तेन चिन्वानः संस्तन्वो निषीद तं ते शुगृच्छतु यं ते तवारिं वयं द्विष्मस्तं शोकादग्नेः शुगृच्छतु ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन् त्वं यो हि खलु **अजः** छागः **अजनिष्ट** जायते, **सोऽग्रे जनितारम्** उत्पादकम् **अपश्यत्** पश्यति । **येन मेध्यासः** पवित्राः सन्तः **देवाः** विद्वांसः **अग्रम्** उत्तमं सुखं **देवतां** दिव्यगुणतां **सुखमुप**+**आयन्** यन्ति=प्राप्नुवन्ति, **येन रोहं** प्रादुर्भावम् **उप**+**आयन्** प्राप्नुवन्तु, **तेनोत्तमगुणताम् अग्रं**=**सुखम्** उत्तमं सुखं, **तेन वृद्धिं च प्राप्नुहि** ।

भाषार्थ—हे राजन् ! तू—जो (हि) निश्चय से (अजः) बकरा (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है (सः) वह (अग्रे) पहले (जनितारम्) उत्पादक को (अपश्यत्) देखता है, जिससे—(मेध्यासः) पवित्र हुए (देवाः) विद्वान् लोग (अग्रम्) उत्तम सुख और (देवताम्) दिव्य गुणों को सुखपूर्वक (उप+आयन्) प्राप्त करते हैं। जिससे—(रोहम्) प्रसिद्धि को (उप+आयन्) प्राप्त होवें अतः उत्तम-गुण और (अग्रम्) उत्तम-सुख को और उससे वृद्धि को प्राप्त कर।

यमारण्यं जङ्गलोत्पन्नं **शरभं** शल्यकं **ते** तुभ्यम् **अनु**+**दिशामि** उपदिशामि, **तेन चिन्वानः**

जिस (आरण्यम्) जंगली (शरभम्) शल्यक=सेंह को (ते) तेरे लिए (अनु+दिशामि) उपदेश

सन् पुष्टः सन् **तन्वः** शरीरस्य मध्ये **निषीद** नितरां तिष्ठ।

करता हूँ, उससे (चिन्वानः) पुष्ट होकर (तन्वः) शरीर में (नि+षीद) सर्वथा स्थिर रह।

तं ते तव **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु।

उस शल्यक को (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे।

यं ते=**तवारिं वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः, **तं शोकादग्नेः** पावकात् **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु॥

(यम्) जिस (ते) तेरे शत्रु से (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रीति=द्वेष करते हैं उसे शोक रूप (अग्नेः) अग्नि से (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त होवे॥ १३। ५१॥

[हे राजन्! त्वं यो ह्यजो ... तेनोत्तमगुणताक्ष्यं=सुखं तेन वृद्धिं च प्राप्नुहि]

भावार्थः—राजजनैरजादीनहत्वा संरक्ष्यैते उपकाराय संयोजनीयाः।

भावार्थ—राजा लोग—अज=बकरे आदि पशुओं को न मारकर अपितु इनका संरक्षण करके इन्हें उपकार के लिए संयुक्त करें।

ये शुभपशुपक्षिहिंसका भवेयुस्ते भृशं ताडनीयाः।

जो उत्तम पशु-पक्षियों के हिंसक हों उनका अत्यन्त ताड़न करें।

[यमारण्यं शरभं तेऽनुदिशामि ... तं ते शुग् ऋच्छतु]

यदि शल्यकी हानिकारिका स्यात्, तर्हि—सा प्रजापालनाय हन्तव्या॥ १३। ५१॥

यदि शल्यकी=सेंह (स्त्री) हानिकारक हो तो उसका प्रजा के पालन के लिए हनन करें॥

भा० पदार्थः—शरभम्=शल्यकीम्।

भाष्यसार—**राजा किन-किन पशुओं की रक्षा और हत्या करे**—राजा का यह परम-धर्म है कि वह जिन अजादि पशुओं की सहायता से पवित्र विद्वान् सुखों को प्राप्त करते हैं, और वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उन-उन की सदा रक्षा तथा वृद्धि करें। और कृषि आदि के लिए हानिकारक जो शल्यकी **(सेंह)** आदि पशु हों अथवा हिंसा-वृत्ति वाले हों उनकी सदा हत्या करवा दे। इसी प्रकार जो-जो हितकारी पक्षी हों उनकी रक्षा और हानिकारकों का विनाश कराता रहे। इससे प्रजा में सुख तथा शान्ति रहती है॥ १३। ५१॥

उशनाः। **अग्निः**=**युवा**। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

पुनः कीदृशा रक्ष्या हिंसनीयाश्चेत्याह॥

फिर कैसे पशुओं की रक्षा और हिंसा करनी चाहिए, यह उपदेश किया है॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः। रक्षा तोकमुत त्मना॥ ५२॥

पदार्थः—(**त्वम्**) (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**दाशुषः**) सुखदातॄन् (**नॄन्**) धर्मनेतॄन्मनुष्यान्। अत्र नॄन् पे इति रुरादेशः पूर्वस्यानुनासिकत्वं च (**पाहि**) (**शृणुधि**) अत्र हेर्धिरादेशोऽन्येषामपीति दीर्घः (**गिरः**) सत्या वाचः। (**रक्ष**) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**तोकम्**) अपत्यम् (**उत**) अपि (**त्मना**) आत्मना॥ ५२॥

प्रमाणार्थ—(**नॄँः पाहि**) यहां 'नॄन् पे' (८। ३। १०) से न वर्ण को 'रु' आदेश और पूर्व वर्ण को अनुनासिक भाव हुआ है। (**शृणुधी**) यहाँ 'हि' के स्थान में 'धि' आदेश है तथा

'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है । (रक्षा) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' सूत्र से दीर्घ हुआ है ।

सपदार्थान्वयः—हे यविष्ठ ! अतिशयेन युवन् ! त्वं संरक्षितैरेतैः पशुभिः दाशुषः सुखदातॄन् नॄन् धर्मनेतॄन्मनुष्यान् पाहि । इमा गिरः सत्या वाचः शृणुधि । त्मना आत्मना मनुष्याणामुत अपि पशूनां तोकम् अपत्यं रक्ष ॥ १३ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक ! तू—इन संरक्षित पशुओं से (दाशुषः) सुख-दाता (नॄन्) धर्म-नायक मनुष्यों की (पाहि) रक्षा कर । इन (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) सुन । और—(त्मना) आत्मा से मनुष्यों के (उत) और पशुओं के (अपत्यम्) सन्तान की (रक्ष) रक्षा कर ।

[हे यविष्ठ ! त्वं...मनुष्याणामुत पशूनां तोकं रक्ष]

भावार्थः—ये मनुष्या मनुष्यादिरक्षकान् पशून् वर्धयन्ते,

भावार्थ—जो मनुष्य—मनुष्य आदि के रक्षक पशुओं की वृद्धि करते हैं—

[इमा गिरः शृणुधि]

करुणामयानुपदेशान् शृण्वन्ति श्रावयन्ति,

करुणामय उपदेशों को सुनते सुनाते हैं—

[त्मना]

त आत्मजं सुखं लभन्ते ॥ १३ । ५२ ॥

वे—सन्तान-सुख को प्राप्त करते हैं ॥ १३ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—गिरः=करुणामयानुपदेशान् । शृणुधि=शृणु, श्रावय ।

भाष्यसार—**युवकों का कर्त्तव्य**—युवकों को उचित है कि वे सुखों के देने वाले, धर्म के कार्य में अग्रणी पुरुषों की रक्षा करें । उनके बताये उपदेशों को ध्यान से श्रवण करें, और अपनी तथा पशुओं के सन्तान की स्वयं सदा रक्षा करें ॥ १३ । ५२ ॥

उशनाः । **आपः**=अध्येतृ-अध्यापकाः । पूर्वस्य ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ।
सरिरे त्वेति मध्यस्य ब्राह्मी जगती । निषादः । गायत्रेणेत्युत्तरस्य
निचृद् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथाध्येतृजनानध्यापकाः किमुपदिशेयुरित्याह ॥

अब पढ़ने वालों को अध्यापक क्या उपदेश करें, यह उपदेश किया है ॥

अपां त्वेम॑न्त्सादयाम्य॒पां त्वोद्म॑न्त्सादयाम्य॒पां त्वा॒ भस्म॑न्त्सादयाम्य॒पां त्वा॒ ज्योति॑षि सादयाम्य॒पां त्वाय॑ने सादयाम्यर्ण॒वे त्वा॒ सद॑ने सादयामि समु॒द्रे त्वा॒ सद॑ने सादयामि । स॒रि॒रे त्वा॒ सद॑ने सादयाम्य॒पां त्वा॒ क्षये॑ सादयाम्य॒पां त्वा॒ सधि॑षि सादयाम्य॒पां त्वा॒ सद॑ने सादयाम्य॒पां त्वा॑ स॒धस्थे॑ सादयाम्य॒पां त्वा॒ योनौ॑ सादयाम्य॒पां त्वा॒ पुरी॑षे सादयाम्य॒पां त्वा॒ पाथ॑सि सादयामि गाय॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा सादयामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा सादयामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा सादयाम्यानु॑ष्टुभेन त्वा॒ छन्द॑सा सादयामि॒ पाङ्क्ते॑न त्वा॒ छन्द॑सा सादयामि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) प्राणानां रक्षणे (**त्वा**) त्वाम् (**एमन्**) एति=गच्छति तस्मिन् वायौ (**सादयामि**) स्थापयामि (**अपाम्**) जलानाम् (**त्वा**) (**ओद्मन्**) ओषधिषु (**सादयामि**) (**अपाम्**) प्राप्तानां काष्ठादीनाम् (**त्वा**) (**भस्मन्**) भस्मन्यभ्रे । **अत्र सर्वत्र सप्तमीलुक्** (**सादयामि**) (**अपाम्**) व्याप्नुवतां विद्युदादीनाम् (**त्वा**) (**ज्योतिषि**) विद्युति (**सादयामि**) (**अपाम्**) अन्तरिक्षस्य (**त्वा**)(**अयने**) भूमौ (**सादयामि**) (**अर्णवे**) प्राणे (**त्वा**) (**सदने**) स्थातव्ये (**सादयामि**) (**समुद्रे**) मनसि (**त्वा**) (**सदने**) गन्तव्ये (**सादयामि**) (**सरिरे**) वाचि (**त्वा**) (**सदने**) प्राप्तव्ये (**सादयामि**) (**अपाम्**) प्राप्तव्यानां पदार्थानाम् (**त्वा**) (**क्षये**) चक्षुषि (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**सधिषि**) समानान् शब्दान् शृणोति येन तस्मिन् श्रोत्रे (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**सदने**) दिवि (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**सधस्थे**) अन्तरिक्षे (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**योनौ**) समुद्रे (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**पुरीषे**) सिकतासु (**सादयामि**) (**अपाम्**) (**त्वा**) (**पाथसि**) अन्ने (**सादयामि**) (**गायत्रेण**) गायत्रीनिर्मितेन (**त्वा**) (**छन्दसा**) स्वच्छेनार्थेन (**सादयामि**) (**त्रैष्टुभेन**) त्रिष्टुप्प्रोक्तेन (**त्वा**) (**छन्दसा**) (**सादयामि**) (**जागतेन**) जगत्युक्तेन (**त्वा**) (**छन्दसा**) (**सादयामि**) (**आनुष्टुभेन**) अनुष्टुप्कथितेन (**त्वा**) (**छन्दसा**) (**सादयामि**) (**पाङ्क्तेन**) पङ्क्तिप्रकाशितेन (**त्वा**) (**छन्दसा**) (**सादयामि**) संस्थापयामि ॥ ५३ ॥

प्रमाणार्थ—यहां सप्तमी का लुक् है।

अन्वयः—हे मनुष्य ! यथा शिक्षकोऽहमपामेमंस्त्वा सादयाम्यपामोद्मंस्त्वा सादयाम्यपां भस्मंस्त्वा सादयाम्यपां ज्योतिषि त्वा सादयाम्यपामयने त्वा सादयाम्यर्णवे सदने त्वा सादयामि समुद्रे सदने त्वा सादयामि सरिरे सदने त्वा सादयाम्यपां क्षये त्वा सादयाम्यपां सधिषि त्वा सादयाम्यपां सदने त्वा सादयाम्यपां सधस्थे त्वा सादयाम्यपां योनौ त्वा सादयाम्यपां पुरीषे त्वा सादयाम्यपां पाथसि त्वा सादयामि । गायत्रेण छन्दसा त्वा सादयामि त्रैष्टुभेन छन्दसा त्वा सादयामि जागतेन छन्दसा त्वा सादयाम्यानुष्टुभेन छन्दसा त्वा सादयामि पाङ्क्तेन छन्दसा त्वा सादयामि तथैव वर्तस्व ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्य ! यथा शिक्षकोऽहमपां** प्राणानां रक्षणे **एमन्** एति=गच्छति तस्मिन् वायौ **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** जलानाम् **ओद्मन्** ओषधिषु **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तानां काष्ठादीनां **भस्मन्** भस्मन्यभ्रे **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** व्याप्नुवतां विद्युदादीनां **ज्योतिषि** विद्युति **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपाम** अन्तरिक्षस्य **अयने** भूमौ **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अर्णवे** प्राणे **सदने** स्थातव्ये **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **समुद्रे** मनसि **सदने** गन्तव्ये **त्वा** त्वां **सादयामि**, स्थापयामि, **सरिरे** वाचि **सदने** प्राप्तव्ये **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **क्षये** चक्षुषि **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **सधिषि** समानान् शब्दान् शृणोति येन तस्मिन् श्रोत्रे **त्वा** त्वां **साद**-

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जैसे मैं शिक्षक—(अपाम्) प्राणों की रक्षा के लिए (एमन्) गतिशील वायु में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) जलों की (ओद्मन्) ओषधियों में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्त हुए काष्ठ आदि की (भस्मन्) भस्म=राख में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) व्यापक विद्युत् आदि की (ज्योतिषि) दीप्ति में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) अन्तरिक्ष के (अयने) स्थान में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अर्णवे) प्राण के (सदने) स्थान में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (समुद्रे) मन के (सदने) स्थान में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (सरिरे) वाणी के (सदने) प्राप्ति-स्थान में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्)

यामि स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **सदने** दिवि **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **सधस्थे** अन्तरिक्षे **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **योनौ** समुद्रे **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **पुरीषे** सिकतासु **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **अपां** प्राप्तव्यानां पदार्थानां **पाथसि** अन्ने **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **गायत्रेण** गायत्रीनिर्मितेन **छन्दसा** स्वच्छेनाऽर्थेन **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **त्रैष्टुभेन** त्रिष्टुप्-प्रोक्तेन **छन्दसा** स्वच्छेनाऽर्थेन **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **जागतेन** जगत्युक्तेन **छन्दसा** स्वच्छेनार्थेन **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **आनुष्टुभेन** अनुष्टुप्कथितेन **छन्दसा** स्वच्छेनार्थेन **त्वा** त्वां **सादयामि** स्थापयामि, **पाङ्क्तेन** पङ्क्तिप्रकाशितेन **छन्दसा** स्वच्छेनाऽर्थेन **त्वा** त्वां **सादयामि** संस्थापयामि **तथैव वर्त्तस्व** ॥ १३ । ५३ ॥

प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (क्षये) चक्षु में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (सधिषि) श्रोत्र में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (सदने) प्रकाश में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (सदने) आकाश में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (योनौ) समुद्र में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (पुरीषे) सिकता=रेत में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (अपाम्) प्राप्ति के योग्य पदार्थों में (पाथसि) अन्न में (त्वा) तुझे (सादयामि) स्थापित करता हूँ, (गायत्रेण) गायत्री से प्रतिपादित (छन्दसा) स्वच्छ अर्थ से (त्वा) तुझे (सादयामि) संयुक्त करता हूँ, (त्रैष्टुभेन) त्रिष्टुप् से प्रतिपादित (छन्दसा) स्वच्छ अर्थ से (त्वा) तुझे (सादयामि) संयुक्त करता हूँ, (जागतेन) जगती से प्रतिपादित (छन्दसा) स्वच्छ अर्थ से (त्वा) तुझे (सादयामि) संयुक्त करता हूँ, (आनुष्टुभेन) अनुष्टुप् से प्रतिपादित (छन्दसा) स्वच्छ अर्थ से (त्वा) तुझे (सादयामि) संयुक्त करता हूँ, (पाङ्क्तेन) पंक्ति से प्रकाशित (छन्दसा) स्वच्छ अर्थ से (त्वा) तुझे (सादयामि) संयुक्त करता हूँ—वैसे ही तू वर्त्ताव कर ॥

[हे मनुष्य !···शिक्षकोऽहंमपामेमन् त्वा सादयामि]

भावार्थः—विद्वद्भिः सर्वान् पुरुषांस्त्रियश्च वेदानध्याप्य जगत्स्थानां वाय्वादिपदार्थानां विद्यासु निपुणीकृत्य ते प्रयोजनसाधने प्रवर्त्तनीयाः ॥ १३ । ५३ ॥

भावार्थ—विद्वान्—सब पुरुषों और स्त्रियों को वेद पढ़ाकर, जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्याओं में निपुण करके उन्हें प्रयोजन-सिद्धि में प्रवृत्त करें ॥ १३ । ५३ ॥

भाष्यसार—**अध्यापक पढ़ने वालों को उपदेश करें**—अध्यापक शिष्यों को सभी प्रकार की शिक्षाएँ देवें, जिससे उनका सर्वाङ्गपूर्ण विकास हो सके। प्राणों की रक्षा के लिए प्राणविद्या, जीवनोपयोगी ओषधि-विज्ञान, औषधनिर्माणकला, विद्युत् विद्या, समुद्र और अन्तरिक्ष में गति करने की विद्या, मन, श्रोत्र, नेत्रादि को सुसंयमित करने की विद्या और अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति तथा उपयोग करने की सब विद्याएँ शिष्यों को सिखावें। और गायत्री आदि छन्दों में प्रतिपादित वेदों की शिक्षा देवें। जिससे सब पदार्थ-विद्या के ज्ञान से सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कर सकें। इसी प्रकार शिष्य भी विद्वान् होकर दूसरों को सिखाया करें ॥ १३ । ५३ ॥

उशनाः । **प्राणाः**=बलम् । स्वराड् ब्राह्मी जगती । निषादः ॥

अथ मनुष्यैः सृष्टेः सकाशात् के क उपकारा ग्राह्या इत्याह ॥

अब मनुष्यों को सृष्टि से कौन-कौन उपकार लेने चाहियें, यह उपदेश किया है ॥

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) अग्निः (**पुरः**) पूर्वम् (**भुवः**) यो भवति सः (**तस्य**) (**प्राणः**) येन प्राणिति सः (**भौवायनः**) भुवेन=सता रूपेण कारणेन निर्वृत्तः (**वसन्तः**) यः सुगन्धादिभिर्वासयति (**प्राणायनः**) प्राणा निर्वृत्ता यस्मात् (**गायत्री**) या गायन्तं त्रायते सा (**वासन्ती**) वसन्तस्य व्याख्यात्री (**गायत्र्यै**) गायत्र्याः । **अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी** (**गायत्रम्**) गायत्र्येव छन्दः (**गायत्रात्**) (**उपांशुः**) उपगृहीताः (**उपांशोः**) (**त्रिवृत्**) यस्त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैर्वर्त्तते सः (**त्रिवृतः**) (**रथन्तरम्**) यद्रथै=रमणीयैस्तारयति तत् (**वसिष्ठः**) अतिशयेन वासयिता (**ऋषिः**) प्रापको विद्वान् (**प्रजापतिगृहीतया**) प्रजापतिर्गृहीतो यया स्त्रिया तया (**त्वया**) (**प्राणम्**) बलयुक्तं जीवनम् (**गृह्णामि**) (**प्रजाभ्यः**) ॥ ५४ ॥

प्रमाणार्थ—(**गायत्र्यै**) गायत्र्याः । यहाँ षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है ।

अन्वयः—हे स्त्रि ! यथाऽयं पुरो भुवोऽग्निस्तस्य भौवायनः प्राणः प्राणायनो वसन्तो वासन्ती गायत्री गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशुरुपांशोस्त्रिवृत्त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिश्च प्रजापतिगृहीतया त्वया सह प्रजाभ्यः प्राणं गृह्णाति तथा त्वया साकमहं प्रजाभ्यो बलं गृह्णामि ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **यथाऽयम्** अग्निः **पुरः** पूर्वं **भुवः**=**अग्निः** यो भवति सः **तस्य भौवायनः भुवेन** =सता रूपेण कारणेन निर्वृत्तः **प्राणः** येन प्राणिति सः **प्राणायनः** प्राणा निर्वृत्ता यस्मात् **वसन्तः** यः सुगन्धादिभिर्वासयति, **वासन्ती** वसन्तस्य व्याख्यात्री **गायत्री** या गायन्तं त्रायते सा **गायत्र्यै** गायत्र्या **गायत्रं** गायत्र्येव छन्दः **गायत्रादुपांशुः** उपग्रहीता **उपांशोस्त्रिवृत्** यस्त्रिभिः कर्मोपासनाज्ञानैर्वर्त्तते सः **त्रिवृतो रथन्तरं** यद्रथै=रमणीयैस्तारयति तत् **वसिष्ठः** अतिशयेन वासयिता **ऋषिः** प्रापको विद्वान् **च प्रजापतिगृहीतया** प्रजापतिर्गृहीतो यया स्त्रिया तया **त्वया सह प्रजाभ्यः प्राणं** बलयुक्तं जीवनं **गृह्णाति, तथा त्वया साकमहं प्रजाभ्यो बलं गृह्णामि** ॥ १३ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जैसे—(अयम्) यह (पुरः) पहले (भुवः) उत्पन्न अग्नि है उसका (भौवायनः) सत्ता रूप कारण से बना हुआ (प्राणः) प्राण है, (प्राणायनः) प्राण जिससे बने हैं वह (वसन्तः) सुगन्ध आदि से सुगन्धित करने वाला वसन्त है, (वासन्ती) वसन्त की व्याख्या करने वाली (गायत्री) गायक की रक्षा करने वाली गायत्री है, (गायत्र्यै) गायत्री का (गायत्रम्) गायत्री छन्द है, (गायत्रात्) गायत्री छन्द से (उपांशुः) उपग्रहीता, (उपांशोः) उपग्रहीता से (त्रिवृत्) तीन=ज्ञान, कर्म, उपासना से युक्त पुरुष, (त्रिवृतः) त्रिवृत् से (रथन्तरम्) रथ=रमणीय पदार्थों से दुःख से तारने वाला, (वसिष्ठः) अत्यन्त वास का हेतु और (ऋषिः) सुखों का प्रापक विद्वान् (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापति को जिसने ग्रहण किया है उस (त्वया) तुझ स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) सन्तान के लिए (प्राणम्) बलवान् जीवन को स्वीकार करता है,

वैसे तेरे साथ मैं सन्तान के लिए बल को ग्रहण करता हूँ ॥ १३ । ५४ ॥

[हे स्त्रि ! यथाऽयं...भुः=अग्निस्तस्य भौवायनः प्राणः ... प्रजापतिगृहीतया त्वया सह प्रजाभ्यः प्राणं गृह्णामि]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषा [स्त्रीपुरुषैः] अग्न्यादिपदार्थानामुपयोगं कृत्वा परस्परं प्रीत्याऽतिविषयासक्तिं विहाय, सर्वस्माज्जगतो बलं संगृह्य, प्रजा उत्पाद्याः ॥ १३ । ५४ ॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष अग्नि आदि पदार्थों का उपयोग करके, परस्पर प्रीति से अत्यन्त विषयासक्ति को छोड़कर, सब जगत् से बल का संग्रह करके सन्तान को उत्पन्न करें ॥ १३ । ५४ ॥

भाष्यसार—**वसन्त-ऋतु में मनुष्यों के कर्त्तव्य-कर्म**—अग्नि से प्राण की उत्पत्ति होती है, प्राण को सुगन्धित करने वाला वसन्त-ऋतु है, वसन्त की व्याख्या करने वाला गायत्री-छन्द है। गायत्री का ग्रहण करने वाला अथवा मौन जप करने वाला ज्ञान, कर्म तथा उपासना से युक्त होकर दुःखों से तारने वाले रथन्तर सामों को जान लेता है। उससे वसिष्ठ=अत्यन्त वास का हेतु और ऋषि=वेदार्थवेत्ता बन जाता है। अतः सुखों के प्रापक स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे प्राणविद्या से बलवान् होकर अग्नि आदि पदार्थों का विज्ञान सीखें और दूसरों को भी सिखायें ॥ १३ । ५४ ॥ ●

उशनाः । **प्रजापतिः**=**स्त्रीपुरुषौ** । निचृद्भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

अथ मनुष्यैर्ग्रीष्मऋतौ कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

अब मनुष्यों को ग्रीष्म ऋतु में कैसे वर्त्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब्ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) वायुः (**दक्षिणा**) दक्षिणतः (**विश्वकर्मा**) विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात्सः (**तस्य**) वायोः (**मनः**) मननशीलं प्रेरकं कर्म (**वैश्वकर्मणम्**) यस्माद्विश्वानि निर्वृत्तानि भवन्ति तत् (**ग्रीष्मः**) यो रसान् ग्रसते सः (**मानसः**) मनस ऊष्मेव वर्त्तमानः (**त्रिष्टुप्**) छन्दः (**ग्रैष्मी**) ग्रीष्मर्तुव्याख्यात्री ऋक् (**त्रिष्टुभः**) छन्दसः (**स्वारम्**) तापाज्जातं तेजः (**स्वारात्**) (**अन्तर्यामः**) अन्तर्मध्ये यामाः=प्रहरा यस्मिन्समये सः (**अन्तर्यामात्**) (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां तिथीनां पूरकः (**स्तोमः**) (**पञ्चदशात्**) (**बृहत्**) महान् (**भरद्वाजः**) वाजोऽन्नं विज्ञानं वा बिभर्त्ति येन श्रोत्रेण तत् (**ऋषिः**) विज्ञापकः (**प्रजापतिगृहीतया**) (**त्वया**) (**मनः**) मननात्मकविज्ञानयुक्तं चित्तम् (**गृह्णामि**) (**प्रजाभ्यः**) ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! यथा दक्षिणाऽयं विश्वकर्मा वायुरिवास्ति तस्य वैश्वकर्मणं मनो मानसो ग्रीष्मो ग्रैष्मी त्रिष्टुप् त्रिष्टुभः स्वारं स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद्भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया विद्यया सह राजा प्रजाभ्यो मनो गृह्णाति तथा त्वया साकमहं विश्वस्माद्विज्ञानं गृह्णामि ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! यथा **दक्षिणा** दक्षिणतः **अयं** वायुः **विश्वकर्मा**=**वायुः**

भाषार्थ—हे स्त्री !—जैसे (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में (अयम्) यह (विश्वकर्मा) सब

विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात् सः, **इवाऽस्ति, तस्य वैश्वकर्मणं** यस्माद्विश्वानि निर्वृत्तानि भवन्ति तत् **मनः** मननशीलं प्रेरकं कर्म **मानसः** मनस ऊष्मेव वर्त्तमान. **ग्रीष्मः** यो रसान् ग्रसते सः, **ग्रैष्मी** ग्रीष्मर्त्तुव्याख्यात्री ऋक् **त्रिष्टुप्** छन्दः **त्रिष्टुभः** छन्दसः **स्वारं** तापाज्जातं तेजः **स्वारादन्तर्यामः** अन्तर्मध्ये यामाः=प्रहरा यस्मिन् समये सः, **अन्तर्यामात् पञ्चदशः** पञ्चदशानां तिथीनां पूरकः **पञ्चदशाद् बृहत्** महान् **भरद्वाजः** वाजोऽन्नं विज्ञानं वा बिभर्त्ति येन श्रोत्रेण तत् **ऋषिः** विज्ञापकः **प्रजापतिगृहीतया विद्यया सह राजा प्रजाभ्यो मनः** मननात्मकविज्ञानयुक्तं चित्तं **गृह्णाति, तथा त्वया साकमहं विश्वस्माद् विज्ञानं गृह्णामि** ॥ १३ । ५५ ॥

कर्म=चेष्टाओं का हेतु विश्वकर्मा वायु के समान है, उसका—(वैश्वकर्मणम्) विश्व के बनने का कारण (मनः) मननशील प्रेरक कर्म है, (मानसः) मन की ऊष्मा=गर्मी के समान वर्त्तमान (ग्रीष्मः) रसों को ग्रसने वाला ग्रीष्म है, (ग्रैष्मी) ग्रीष्म ऋतु की व्याख्या करने वाली ऋचा (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् छन्द है, (त्रिष्टुभः) त्रिष्टुप् छन्द का (स्वारम्) ताप से उत्पन्न तेज है, (स्वारात्) तेज से (अन्तर्यामः) जिसमें प्रहर हैं ऐसा समय है, (अन्तर्यामात्) उक्त समय से (पञ्चदशः) पन्द्रह तिथियों का पूरक एक पक्ष है, (पञ्चदशात्) उक्त पक्ष से (बृहत्) महान् (भरद्वाजः) अन्न वा विज्ञान को धारण करने वाला श्रोत्र (ऋषिः) विज्ञापक है (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापति से ग्रहण की हुई विद्या के साथ-साथ राजा प्रजा के लिए (मनः) मननात्मक विज्ञान से युक्त चित्त को ग्रहण करता है—वैसे तेरे साथ मैं सबसे विज्ञान को ग्रहण करता हूँ ॥ १३ । ५५ ॥

[हे स्त्रि ! यथा···अयं विश्वकर्मा वायुः···तस्य वैश्वकर्मणं मनः, मानसो ग्रीष्मः]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषैः प्राणस्य मनो नियन्तृ, मनसश्च प्राणो नियन्तेति विदित्वा प्राणायामान् मनःशुद्धिं संपादयद्भिः

भावार्थ—स्त्री-पुरुष—प्राण का मन नियन्ता है, और मन का प्राण नियन्ता है ऐसा जानकर प्राणायाम से मन की शुद्धि करके

[त्वया साकमहं विश्वस्माद्विज्ञानं गृह्णामि]

अखिलायाः सृष्टेः पदार्थविज्ञानं स्वीकार्यम् ।

अखिल सृष्टि के पदार्थ विज्ञान को स्वीकार करें ।

भाष्यसार—**ग्रीष्म-ऋतु में स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य-कर्म**—जैसे दक्षिण-दिशा से आने वाला सभी चेष्टाओं का कारण वायु है, वैसे ही सब के बनने का कारण मन है। मन की ऊष्मा के समान ग्रीष्मर्त्तु है। ग्रीष्मर्त्तु की व्याख्या त्रिष्टुप् छन्द वाली ऋचाएँ करती हैं। त्रिष्टुप् से उत्पन्न तेज से प्रहर और पक्ष वाला समय होता है, पक्ष का पूरक स्तोम और बृहत् साम है। इन सामों का विशेष ज्ञान रखने वाला भरद्वाज=श्रोत्र ऋषि है। अतः स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य है कि प्राणायामादि से मन को संयम करके सृष्टि के पदार्थ विज्ञान को सीखकर सबको सिखावें ॥ १३ । ५५ ॥

उशनाः । **प्रजापतिः**=**स्त्रीपुरुषौ** । निचृद् धृतिः । षड्जः ।

अथ स्त्रीपुरुषौ मिथः कथमाचरेतामित्याह ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसा आचरण करें, यह उपदेश किया है ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऽऋक्समम् । ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(अयम्) आदित्यः (पश्चात्) पश्चिमायां दिशि वर्त्तमानः (**विश्वव्यचाः**) विश्वं व्यचति=प्रकाशेनाभिव्याप्य प्रकटयति सः (**तस्य**) सूर्यस्य (**चक्षुः**) नयनम् (**वैश्वव्यचसम्**) प्रकाशकम् (**वर्षाः**) यासु मेघा वर्षन्ति ताः (**चाक्षुष्यः**) चक्षुष इमा दर्शनीयाः (**जगती**) जगद्गता (**वार्षी**) वर्षाणां व्याख्यात्री (**जगत्याः**) (**ऋक्समम्**) ऋचः सनन्ति=संभजन्ति येन तत्साम (**ऋक्समात्**) (**शुक्रः**) पराक्रमः (**शुक्रात्**) वीर्य्यात् (**सप्तदश**) सप्तदशानां पूरकः (**सप्तदशात्**) (**वैरूपम्**) विविधानि रूपाणि यस्मात्तस्येदम् (**जमदग्निः**) प्रज्वलिताग्निर्नयनम् (**ऋषिः**) रूपप्रापकः (**प्रजापतिगृहीतया**) (**त्वया**) (**चक्षुः**) (**गृह्णामि**) (**प्रजाभ्यः**) ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे वरानने ! यथाऽयमादित्य इव विद्वान् विश्वव्यचाः सन् पश्चादादित्यस्तस्य वैश्वव्यचसं चक्षुश्चाक्षुष्यो वर्षा वार्षी जगती जगत्या ऋक्सममृक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं यथा च जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया सह प्रजाभ्यश्चक्षुर्गृह्णाति तथाऽहं त्वया साकं संसाराद् बलं गृह्णामि ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वरानने ! **यथाऽयमादित्य इव विद्वान् विश्वव्यचाः** विश्वं व्यचति=प्रकाशेनाऽभिव्याप्य प्रकटयति सः **सन् पश्चात्** पश्चिमायां दिशि वर्त्तमानः **आदित्यस्तस्य** सूर्य्यस्य **वैश्वव्यचसं** प्रकाशकं **चक्षुः** नयनं **चाक्षुष्यः** चक्षुष इमा दर्शनीयाः **वर्षाः** यासु मेघा वर्षन्ति ताः **वार्षी** वर्षाणां व्याख्यात्री **जगती** जगद्गता **जगत्या ऋक्समम्** ऋचः सनन्ति=संभजन्ति येन तत् साम **ऋक्समात्-शुक्रः** पराक्रमः **शुक्रात्** वीर्य्यात् **सप्तदशः** सप्तदशानां पूरकः **सप्तदशाद् वैरूपं** विविधानि रूपाणि यस्मात्तस्येदं **यथा च जमदग्निः** प्रज्वलिताग्निर्नयनम् **ऋषिः** रूपप्रापकः **प्रजापतिगृहीतया सह प्रजाभ्यः चक्षुः** नयनं **गृह्णाति, तथाऽहं त्वया साकं संसाराद् बलं गृह्णामि** ॥ १३ । ५६ ॥

भाषार्थ—हे सुन्दर मुख वाली स्त्री ! जैसे (अयम्) यह सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् (विश्वव्यचाः) विश्व को प्रकाश से व्याप्त करके प्रसिद्ध करने वाला होकर (पश्चात्) पश्चिम दिशा में विद्यमान सूर्य है, (तस्य) उस सूर्य का (वैश्वव्यचसम्) प्रकाशक (चक्षुः) नयन है, (चाक्षुष्यः) चक्षुओं के लिए दर्शनीय (वर्षा) जिसमें मेघ बरसते हैं वह वर्षा है, (वार्षी) वर्षा की व्याख्या करने वाली (जगती) जगत्-प्रसिद्ध ऋचा है, (जगत्याः) जगती का (ऋक्समम्) ऋचाओं को सेवन करने वाला साम है, (ऋक्समात्) उक्त साम से (शुक्रः) पराक्रम है, (शुक्रात्) पराक्रम रूप वीर्य से (सप्तदशः) सतरह तत्त्वों का पूरक विज्ञान है, (सप्तदशात्) उक्त विज्ञान से (वैरूपम्) विविध रूपों का कारण है, और जैसे (जमदग्निः) प्रज्वलित अग्नि रूप नेत्र (ऋषि) रूप का प्रापक ऋषि (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापति से ग्रहण की हुई स्त्री के साथ (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिए (चक्षुः) नेत्र को ग्रहण करता है वैसे—मैं तेरे साथ संसार से बल को ग्रहण करता हूँ ॥ १३ । ५६ ॥

[हे वरानने ! **यथा**···**आदित्यस्तस्य वैश्वव्यचसं चक्षुः**···**जगत्या ऋक्समम्, यथा च जमदग्निः**···**चक्षुर्गृह्णाति तथाऽहं त्वया साकं**···**बलं गृह्णामि**]

भावार्थः—दम्पतिभ्यां सामवेदाध्ययनेन सूर्यादिप्रसिद्धं जगदर्थतो विज्ञाय सर्वस्याः सृष्टेः सुदर्शनचरित्रे संग्राह्ये ॥ १३ । ५६ ॥

भावार्थ—स्त्री-पुरुष सामवेद के अध्ययन से सूर्य आदि प्रसिद्ध जगत् को अर्थ से जानकर सब सृष्टि के उत्तम दर्शन और चरित्र को ग्रहण करें ॥

भावार्थ—**वर्षा-ऋतु में स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य-कर्म**—विश्व को प्रकाश से व्याप्त करने वाले सूर्य की सहायता से नेत्र प्रकाशक बनते हैं। और नेत्रों के लिए हितकर वर्षर्त्तु है। वर्षा की व्याख्या जगती ऋचा करती है। ऋचाओं की व्याख्या साम करता है, साम से पराक्रम, प्राप्त होता है, उससे सतरह तत्त्वों वाला विज्ञान होता है। विज्ञान से विविध रूपों का कारण जमदग्निः=प्रज्ज्वलित अग्नि रूप नेत्र होकर ऋषि=वेदार्थवेत्ता हो जाता है। अतः स्त्री-पुरुषों को उचित है कि उस ज्ञान स्वरूप नेत्र को प्राप्त करके दूसरों को भी उपदेश किया करें ॥ १३ । ५६ ॥

उशनाः । **प्रजापतिः**=स्त्रीपुरुषौ । स्वराड्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ शरदृतौ कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

अब शरद् ऋतु में कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳ शरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभऽ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिनऽ एकविꣳशऽ एकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्रऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**इदम्**) (**उत्तरात्**) सर्वेभ्य उत्तरम् (**स्वः**) सुखसंपादकदिग्रूपम् (**तस्य**) (**श्रोत्रम्**) कर्णम् (**सौवम्**) स्वः सुखस्येदं साधनम् (**शरत्**) शृणाति येन सा (**श्रौत्री**) श्रोत्रस्येयं सम्बन्धिनी (**अनुष्टुप्**) (**शारदी**) शरदो व्याख्यात्री (**अनुष्टुभः**) (**ऐडम्**) इडाया=वाचो व्याख्यात्री (**साम**) (**ऐडात्**) (**मन्थी**) पदार्थानां मन्थनसाधनः (**मन्थिनः**) (**एकविंशः**) एकविंशतेर्विद्यानां पूरकः (**एकविꣳशात्**) (**वैराजम्**) विविधानां पदार्थानामिदं प्रकाशकम् (**विश्वामित्रः**) विश्वं मित्रं येन भवति सः (**ऋषिः**) शब्दप्रापकः (**प्रजापतिगृहीतया**) (**त्वया**) (**श्रोत्रम्**) शृणोति येन तत् (**गृह्णामि**) (**प्रजाभ्यः**) प्रजाताभ्यो विद्युदादिभ्यः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे सुभगे ! यथेदमुत्तरात्स्वस्तस्य सौवं श्रोत्रं श्रौत्री शरच्छारद्यनुष्टुबनुष्टुभ ऐडमैडान्मन्थी मन्थिन एकविंश एकविंशाद्वैराजं साम प्राप्तो विश्वामित्र ऋषिश्च प्रजाभ्यः श्रोत्रं गृह्णामि तथा प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाहं प्रजाभ्यः श्रोत्रं गृह्णामि ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सुभगे ! **यथेदमुत्तरात्** सर्वेभ्य उत्तरं **स्वः** सुखसम्पादकदिग्रूपं **तस्य सौवं** स्वः सुखस्येदं साधनं **श्रोत्रं** कर्णं **श्रौत्री** श्रोत्रस्येयं सम्बन्धिनी **शरत्** शृणाति येन सा **शारदी** शरदो व्याख्यात्री **अनुष्टुप् अनुष्टुभ ऐडम्** इडाया=वाचो व्याख्यात्री साम **ऐडान्मन्थी** पदार्थानां मन्थनसाधनः **मन्थिन एकविंशः** एकविंशतेर्विद्यानां पूरकः **एकविंशाद् वैराजं** विविधानां पदार्थानामिदं प्रकाशकं **साम प्राप्तो विश्वामित्रः** विश्वं मित्रं येन भवति सः **ऋषिः** शब्दप्रापकः **च प्रजाभ्यः** प्रजाताभ्यो विद्युदादिभ्यः **श्रोत्रं** शृणोति येन तत् **गृह्णाति तथा प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाऽहं प्रजाभ्यः** प्रजा-

भावार्थ—हे सौभाग्यवती ! जैसे-यह (उत्तरात्) सबसे उत्तम (स्वः) सुखों का साधक दिशाओं का स्वरूप है, उसके—(सौवम्) स्वः=सुख का साधन (श्रोत्रम्) कान है, (श्रौत्री) श्रोत्र से सम्बन्ध रखने वाली (शरत्) शरद् ऋतु है, (शारदी) शरद् की व्याख्या करने वाली (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् ऋचा है, (अनुष्टुभः) अनुष्टुप् ऋचा (ऐडम्) रूप वाणी का व्याख्यान करने वाला साम है, (ऐडात्) उक्त साम से (मन्थी) पदार्थों का मन्थन करने वाला मन्थी है, (मन्थिनः) उक्त मन्थी का (एकविंशः) इक्कीस विद्याओं को पूरा करने वाला विज्ञान है, (एकविंशाद्) उक्त विज्ञान

ताभ्यो विद्युदादिभ्यः श्रोत्रं शृणोति येन तद् गृह्णामि ॥ १३ । ५७ ॥

से (वैराजम्) विविध पदार्थों के प्रकाशक साम को प्राप्त (विश्वामित्रः) सबको मित्र बनाने वाला और (ऋषिः) शब्द का प्रापक ऋषि (प्रजाभ्यः) उत्पन्न विद्युत् आदि से (श्रोत्रम्) सुनने के साधन श्रोत्र को ग्रहण करता है, जैसे (प्रजापतिगृहीतया) प्रजापति से ग्रहण की हुई तुझ स्त्री के साथ मैं (प्रजाभ्यः) उत्पन्न विद्युत् आदि से (श्रोत्रम्) श्रोत्र को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ १३ । ५७ ॥

[हे सुभगे !···प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाहं प्रजाभ्यः श्रोत्रं गृह्णामि]

भावार्थः—ब्रह्मचर्येणाधीतविद्यौ कृत-विवाहौ स्त्रीपुरुषौ ब्रह्मश्रुतौ भवेताम्, न ह्याप्तानां सकाशाच्छ्रवणेन विना पठिताऽपि विद्या फलवती जायते ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्य से विद्या को अध्ययन करने वाले विवाहित स्त्री-पुरुष बहुश्रुत हों क्योंकि आप्त-विद्वानों के पास श्रवण किए बिना पढ़ी हुई भी विद्या फलवती नहीं होती ।

[तात्पर्यमाह—]

तस्मात्—सदा श्रुत्वा सत्यं धरेतामसत्यं त्यजेताम् ॥ १३ । ५७ ॥

अतः—सदा सुनकर सत्य को धारण करें और असत्य को छोड़ें ॥ १३ । ५७ ॥

भाष्यसार—शरहतु में कर्त्तव्य-कर्म—सबसे उत्तम सुखों का साधक श्रोत्र (**कान**) है। इसी इन्द्रिय से सुनकर विद्या की प्राप्ति होती है। श्रोत्र का सम्बन्ध शरद् ऋतु से है, शरद् की व्याख्या अनुष्टुप् छन्द वाली ऋचाएँ हैं, ऋचा की व्याख्या करने वाला साम है। सामों का विशेष ज्ञान विश्वामित्र और वेदार्थ-वेत्ता बताता है। अतः इस ऋतु में विशेष रूप से श्रवण के द्वारा विद्यार्जन करके प्रजा को भी उपदेश देवें। एतदर्थ विद्वानों के सम्पर्क से विद्या को सदा बढ़ाते रहें ॥ १३ । ५७ ॥

उशनाः । **प्रजापतिः=स्त्रीपुरुषौ** । विराडाकृतिः । पञ्चमः ॥

अथ हेमन्ते कथं वर्तितव्यमित्याह ॥

अब हेमन्त ऋतु में किस प्रकार वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत ऽ आग्रयणः । आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशाभ्याꣳ शाक्वररैवते विश्वकर्म ऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**इयम्**) (**उपरि**) सर्वोपरि विराजमाना (**मतिः**) प्रज्ञा (**तस्यै**) तस्याः **अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी** (**वाक्**) वक्ति यया सा । (**मात्या**) मतेर्भावः कर्म वा (**हेमन्तः**) हन्त्युष्णतां येन सः । **अत्र हन्तेर्हि मुट् च ॥ उ० ३ । १ । २७ ॥** (**वाच्यः**) वाचो भावः कर्म वा (**पङ्क्तिः**) छन्दः (**हैमवती**) हेम्नो व्याख्यात्री (**पङ्क्त्यै**) पङ्क्त्याः (**निधनवत्**) निधनं=प्रशस्तं मृत्युव्याख्यानं विद्यते यस्मिंस्तत्साम (**निधनवतः**) (**आग्रयणः**) अङ्गति=प्राप्नोति येन तस्यायम् (**आग्रयणात्**) (**त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ**) त्रिनवं च त्रयस्त्रिंशं च ते सामनी (**त्रिनवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्**) (**शाक्वररैवते**) शक्तिधनप्रतिपादके (**विश्वकर्मा**) विश्वानि कर्माणि यस्य

सः (ऋषिः) वेदार्थवेत्ता (प्रजापतिगृहीतया) (त्वया) (वाचम) विद्यासुशिक्षान्वितां वाणीम (गृह्णामि) (प्रजाभ्यः) ।। ५८ ।। अत्र लोकान्ता इन्द्रमिति द्वादशाध्यायस्थानां त्रयाणां मन्त्राणां प्रतीकानि सूत्रव्याख्यानं दृष्ट्वा केनचिद्धतानि शतपथेऽव्याख्यातत्वादत्र न गृह्यन्ते ।। ५८ ।।

प्रमाणार्थ—(तस्यै) तस्याः । यहां षष्ठी विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । (हेमन्तः) यहां 'हन्तेर्हि मुट् च' (उ० ३ । १ । २७) से 'हन्' धातु को 'हि' आदेश और मुट् का आगम है ।

यहां 'लोकान्ता इन्द्रम्' यह १२वें अध्याय के तीन मन्त्रों की प्रतीक सूत्र-व्याख्यान को देखकर किसी ने रखी हैं, शतपथ में व्याख्यात न होने से यहाँ गृहीत नहीं होतीं ।। १३ । ५८ ।।

अन्वयः—हे विदुषि पत्नि ! या इयमुपरि मतिस्तस्यै मात्या वाग्वाच्यो हेमन्तो हैमन्ती पङ्क्तिः पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयण आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वर-रैवते विदित्वा विश्वकर्मर्षिर्वर्तते तथाहं प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाऽहं प्रजाभ्यो वाचं गृह्णामि ।। ५८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विदुषि पत्नि ! **या इयमुपरि** सर्वोपरि विराजमाना **मतिः** प्रज्ञा **तस्यै** तस्याः **मात्या** मतेर्भावः कर्म वा **वाक्** वक्ति यया सा **वाच्यः** वाचो भावः कर्म वा **हेमन्तः** हन्त्युष्णतां येन सः **हैमन्ती** हेम्नो व्याख्यात्री **पङ्क्तिः** छन्दः **पङ्क्त्यै** पङ्क्त्याः **निधनवत्** निधनं=प्रशस्तं मृत्युव्याख्यानं विद्यते यस्मिन् तत् साम **निधनवत आग्रयणः** अञ्चति=प्राप्नोति येन तस्याऽयम् **आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ** त्रिनवं च त्रयस्त्रिंशं च ते साम्नी **त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते** शक्तिधनप्रतिपादिके **विदित्वा विश्वकर्मा** विश्वानि कर्माणि यस्य सः **ऋषिः** वेदार्थवेत्ता **वर्त्तते, तथा प्रजापतिगृहीतया त्वया सहाऽहं प्रजाभ्यो वाचं** विद्यासुशिक्षाऽन्वितां वाणीं **गृह्णामि** ।। १३ । ५८ ।।

भाषार्थ—हे विदुषी पत्नी ! जो यह (उपरि) सब से ऊपर विराजमान (मतिः) प्रज्ञा=बुद्धि है (तस्यै) उसका (मात्या) मतित्व (वाक्) वाणी है, (वाच्यः) वाणीत्व (हेमन्तः) उष्णता का हनन है, (हैमन्ती) उष्णता के हनन की व्याख्या करने वाली (पङ्क्तिः) पंक्ति ऋचा है, (पङ्क्त्यै) पंक्ति ऋचा का (निधनवत्) मृत्यु का प्रशस्त व्याख्यान करने वाला साम है, (निधनवतः) उक्त साम का (आग्रायणः) प्रापक विज्ञान है, (आग्रायणात्) उक्त विज्ञान से (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) ३+९=१२ बारह और तैंतीस साम स्तोत्र हैं, (त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याम्) उक्त साम से (शाक्वर-रैवते) शक्ति और धन के साधक साम को जानकर (विश्वकर्मा) सब कर्मों को करने वाला (ऋषिः) वेदार्थ का वेत्ता ऋषि है, वैसे—(प्रजापतिगृहीतया) प्रजापति से ग्रहण की हुई (त्वया) तुझ स्त्री के साथ मैं (प्रजाभ्यः) प्रजा के लिए (वाचम्) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ।। १३ । ५८ ।।

[हे विदुषि पत्नि !···मात्या वाक्, वाच्यो हेमन्त···निधनवत्···विश्वकर्मा ऋषिर्वर्तते तथा···त्वया सहाऽहं प्रजाभ्यो वाचं गृह्णामि]

भावार्थः—पतिपत्नीभ्यां विदुषां वाचं श्रुत्वा प्रज्ञा वर्द्धनीया, तया हेमन्तर्त्तुकृत्यं सामानि च विदित्वा, महर्षिवद् वर्त्तित्वा विद्यासुशिक्षासंस्कृतां वाचं स्वीकृत्य प्रजाभ्योऽप्येताः सदोपदेष्टव्या इति ।।

भावार्थ—पति-पत्नी विद्वानों की वाणी को सुनकर बुद्धि को बढ़ावें, उससे हेमन्त ऋतु के कर्त्तव्य और साम को जानकर महर्षियों के समान वर्त्ताव करके विद्या और सुशिक्षा से संस्कृत=शुद्ध

वाणी को स्वीकार करके प्रजा के लिए भी इनका सदा उपदेश करें ।। १३ । ५८ ।।

भाष्यसार—**हेमन्तर्त्तु में कर्त्तव्य-कर्म**—स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे विद्वानों के उपदेश सुनकर बुद्धि को बढ़ावें । क्योंकि बुद्धि की वृद्धि तथा विकास वाणी से होता है । तत्पश्चात् क्रोधादि से उत्पन्न उष्णता को नष्ट करके शान्ति प्रदान करने वाले, मृत्यु (दुःख) का व्याख्यान करने वाले और शक्ति और धन के साधक सामों का विशेष ज्ञान करके वेदार्थवेत्ता बनने का प्रयत्न करें । और सुशिक्षित वाणी से प्रजा को भी उपदेश दिया करें । हेमन्तर्त्तु में स्वास्थ्य ठीक रहता है अतः बुद्धि का कार्य इस ऋतु में विशेषरूप से करना चाहिये ।। १३ । ५८ ।।)

[पूर्वापराध्यायसङ्गतिमाह—]

अत्रेश्वरजायापतिव्यवहारस्य प्रतिपादनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेदितव्यम् ।। १३ ।।

इस अध्याय में ईश्वर और पति-पत्नी के व्यवहार के प्रतिपादन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति है, ऐसा जानें ।। १३ ।।

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे त्रयोदशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।।

॥ ओ३म् ॥

* अथ चतुर्दशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

उशनाः । **अश्विनौ**=अध्यापकोपदेशकौ । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथादिमे मन्त्रे स्त्रीभ्य उपदेशमाह ॥

अब चौदहवें अध्याय का आरम्भ है । इस के पहले मन्त्र में स्त्रियों के लिए उपदेश किया है ॥

ध्रु॒वक्षि॑तिर्ध्रु॒वयो॑निर्ध्रु॒वासि॑ ध्रु॒वं योनि॒मासी॑द सा॒धुया॑ ।
उख्य॑स्य के॒तुं प्र॑थ॒मं जु॑षा॒णा अ॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(**ध्रुवक्षितिः**) ध्रुवा=निश्चला क्षितिर्निवसतिर्जनपदो यस्याः सा (**ध्रुवयोनिः**) ध्रुवा योनिर्गृहं यस्याः सा (**ध्रुवा**) निश्चलधर्मा (**असि**) (**ध्रुवम्**) (**योनिम्**) गृहम् (**आ**) (**सीद**) (**साधुया**) साधुना धर्मेण सह (**उख्यस्य**) उखायां=स्थाल्यां भवस्य पाकसमूहस्य (**केतुम्**) प्रज्ञाम् (**प्रथमम्**) विस्तीर्णम् (**जुषाणा**) प्रीत्या सेवमाना (**अश्विना**) व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ (**अध्वर्यू**) आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू (**सादयताम्**) अवस्थापयतम् (**इह**) गृहाश्रमे (**त्वा**) त्वाम् ॥ १ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं साधुयोख्यस्य प्रथमं केतुं जुषाणा ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि सा त्वं ध्रुवं योनिमासीद त्वामिहाध्वर्यू अश्विना सादयताम् ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं **साधुया** साधुना धर्मेण सह **उख्यस्य** उखायां=स्थाल्यां भवस्य पाकसमूहस्य **प्रथमं** विस्तीर्णं **केतुं** प्रज्ञां **जुषाणा** प्रीत्या सेवमाना **ध्रुवक्षितिः** ध्रुवा=निश्चला क्षितिर्निवसतिर्जनपदो यस्याः सा **ध्रुवयोनिः** ध्रुवा योनिर्गृहं यस्याः सा **ध्रुवा** निश्चल-

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—(साधुया) श्रेष्ठ धर्म के साथ (उख्यस्य) स्थाली में विद्यमान पाक-समूह से सम्बन्धित (प्रथमम्) विस्तृत (केतुम्) प्रज्ञा=बुद्धि का (जुषाणा) प्रीतिपूर्वक सेवन करती हुई—(ध्रुवक्षितिः) निश्चल=स्थिर जनपद वाली (ध्रुवयोनिः) निश्चल=स्थिर घर वाली, (ध्रुवा)

धर्मा **असि**, सा त्वं **ध्रुवं योनिं** गृहम् **आसीद**। [त्वा]=त्वामिह गृहाश्रमे **अध्वर्यू** आत्मनोऽध्वर-महिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्** अवस्थापयताम् ॥ १४ । १ ॥

निश्चल=स्थिर धर्म वाली (असि) है; सो तू (ध्रुवम्) निश्चल=स्थिर (योनिम्) घर को (आसीद) प्राप्त कर। और—[त्वा] तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विनौ) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें ॥ १४ । १ ॥

[हे स्त्रि ! या त्वं साधुया'''ध्रुवाऽसि, सा त्वं ध्रुवं योनिमासीद। त्वामिह अध्वर्यू अश्विना सादयताम्]

भावार्थः—कुमारीणां ब्रह्मचर्याऽवस्थायामध्यापिकोपदेशिके विदुष्यौ गृहाश्रमधर्मशिक्षां कृत्वैताः साध्वीः संपादयेताम् ॥ १४ । १ ॥

भावार्थ—कुमारियों को ब्रह्मचर्य अवस्था में अध्यापिका और उपदेशिका विदुषियाँ गृहाश्रम-धर्म की शिक्षा देकर इन्हें साध्वी बनावें ॥ १४ । १ ॥

भा० पदार्थः—अश्विनौ=अध्यापिकोपदेशिके विदुष्यौ ॥

भाष्यसार—**स्त्रियों को कर्त्तव्योपदेश**—योग्य अध्यापिका तथा उपदेशिका का यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे स्वयं अहिंसक हों अर्थात् मन, वचन और कर्म से कभी किसी को दुःख न देवें। और कुमारियों को इस प्रकार की शिक्षा एवं उपदेश किया करें, जिससे वे पूर्ण विदुषियाँ तथा सच्चरित्र बनें। वे द्वितीयाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व ऐसी योग्य हो जायें कि पाक-सम्बन्धी सभी विद्याओं को जानने वाली हों, उनकी गति प्रत्येक कार्य में स्थिर हो। वे निश्चल बुद्धि से युक्त होकर कार्य करने वाली हों। उनका निवास का प्रदेश और घर दोनों ही स्थिरता वाले हों। वे अपने धर्म में इतनी दृढ़ आस्था रखने वाली हों कि कभी भी धर्म-कार्यों में अस्थिरता न आ सके ॥ १४ । १ ॥

उशनाः। **अश्विनौ**=**अध्यापकोपदेशकौ**। ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

पुनः स एव विषय उपदिश्यते ॥

स्त्रियों के लिए फिर उपदेश किया है ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥

पदार्थः—(**कुलायिनी**) कुलं यदेति तत्कुलायं तत्प्रशस्तं विद्यते यस्याः सा (**घृतवती**) घृतं=बहूदकमस्ति यस्याः सा (**पुरन्धिः**) या पुरूणि=बहूनि सुखानि दधाति सा (**स्योने**) सुखकारिके (**सीद**) (**सदने**) गृहे (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अभि**) (**त्वा**) त्वाम् (**रुद्राः**) मध्या विद्वांसः (**वसवः**) आदिमा विपश्चितः (**गृणन्तु**) प्रशंसन्तु (**इमा**) इमानि (**ब्रह्म**) विद्याधनम् (**पीपिहि**) प्राप्नुहि। **अत्र पि गतावित्यस्माच्छपः श्लुः तुजादित्वादभ्यासदीर्घश्च** (**सौभगाय**) शोभनैश्वर्य्याणां भावाय (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**पीपिहि**) यहां 'पि गतौ' इस धातु से 'शप्' को श्लु और तुजादित्व से अभ्यास को दीर्घ है।

अन्वयः—हे स्योने ! यां त्वां वसवो रुद्राश्चेमा ब्रह्मदातॄन् गृहीतॄनभिगृणन्तु सा त्वं

सौभगायैतानि पीपिहि । घृतवती पुरन्धिः कुलायिनी सती पृथिव्याः सदने सीद । अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम् ।। २ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **स्योने** सुखकारिके ! **यां त्वां वसवः** आदिमा विपश्चितः **रुद्राः** मध्या विद्वांसः **च इमा** इमानि **ब्रह्म** विद्याधनं **दातृन् गृहीतृन् अभि+गृणन्तु** प्रशंसन्तु, **सा त्वं सौभगाय** शोभनैश्वर्य्याणां भावाय **एतानि पीपिहि** प्राप्नुहि ।

घृतवती घृतं=बहूदकमस्ति यस्याः सा **पुरन्धिः** या पुरूणि=बहूनि सुखानि दधाति सा **कुलायिनी** कुलं यदेति तत्कुलायं तत्प्रशस्तं विद्यते यस्याः सा **सती पृथिव्याः** भूमेः **सदने** गृहे **सीद** ।

अध्वर्यू आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **त्वा** त्वाम् **इह** गृहाश्रमे **सादयताम्** अवस्थापयतम् ।। १४ । २ ।।

भाषार्थ—हे (स्योने) सुखकारक स्त्री ! तुझे—(वसवः) प्रथम कोटि के विद्वान् और (रुद्राः) मध्यम कोटि के विद्वान् (इमा) इन (ब्रह्म) विद्याधन को देने और लेने वालों की (अभि+गृणन्तु) प्रशंसा करें, सो तू (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए इन्हें (पीपिहि) प्राप्त कर । और–

(घृतवती) अधिक जल वाली, (पुरन्धिः) नाना सुखों को धारण करने वाली, (कुलायिनी) श्रेष्ठ कुल को प्राप्त करने वाली होकर (पृथिव्याः) भूमि के (सदने) घर में (सीद) रह । तथा—

(अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (त्वा) तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ।।

[हे स्योने !...त्वां वसवो रुद्राश्च...ब्रह्मदातृन् गृहीतृनभिगृणन्तु । सा त्वं सौभगाय...पीपिहि]

भावार्थः—स्त्रियः साङ्गोपाङ्गागमैश्वर्यसुखभोगाय स्वसदृशान् पतीनुपयम्य विद्यासुवर्णादिधनं प्राप्य—

भावार्थ—स्त्रियाँ साङ्गोपाङ्ग शास्त्र तथा ऐश्वर्य के सुख को भोगने के लिए अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को प्राप्त करके—

[पृथिव्याः सदने सीद]

सर्वर्तुसुखसाधकेषु गृहेषु निवसन्तु ।

सब ऋतुओं में सुखदायक घरों में निवास करें ।

[अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम्]

विदुषां सङ्गं शास्त्राभ्यासं च सततं कुर्युः ।।

विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास सदा किया करें ।। १४ । २ ।।

भा० पदार्थः—ब्रह्म=विद्यासुवर्णादिधनम् । सौभगाय=साङ्गोपाङ्गागमैश्वर्यसुखभोगाय ।।

भाष्यसार—स्त्रियों को कर्त्तव्योपदेश—स्त्रियों को योग्य है कि वे प्रशस्त घृतवाली अर्थात् प्रशस्त घृतादि से युक्त अथवा जल की तरह शान्त स्वभाव वाली हों, पुरन्धी=बहुत प्रकार के सुखों को धारण करने वाली हों । गृहाश्रम को सुखी बनाने में प्रमुख स्थान स्त्री का होता है, अतः उनका ऐसा आचरण तथा स्वभाव होना चाहिए कि जिससे सुखों की वृद्धि ही हो । कुलायिनी=स्त्रियाँ सदा प्रशस्त और धार्मिक कुलों को प्राप्त करने का प्रयत्न करें । कुलीन-घरों में ही जीवन सुख-सम्पन्न हो सकता है । और अपने गुणों के कारण वसु संज्ञा वाले तथा रुद्र संज्ञा वाले विद्वानों से सदा प्रशंसित होकर अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए अच्छे योग्य, समान गुण स्वभाव वाले विद्वानों को प्राप्त करें ।

और गृहाश्रम रूपी यज्ञ को अहिंसनीय बनाने की कामना वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका सदा उत्तम शिक्षाओं से स्त्रियों का मार्ग-प्रदर्शन करती रहें ॥ १४ । २ ॥

उशनाः । **अश्विनौ**=**अध्यापकोपदेशकौ** । निचृद् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्रियों के लिए फिर उपदेश किया है ॥

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांꣳ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

पदार्थः—(**स्वैः**) स्वकीयैः (**दक्षैः**) बलैश्चतुरैर्भृत्यैर्वा (**दक्षपिता**) दक्षस्य=बलस्य चतुराणां भृत्यानां वा पिता पालकः (**इह**) अस्मिन् लोके (**सीद**) (**देवानाम्**) धार्मिकाणां विदुषां मध्ये (**सुम्ने**) सुखे (**बृहते**) महते (**रणाय**) संग्रामाय (**पितेव**) (**एधि**) भव (**सूनवे**) अपत्याय (**आ**) (**सुशेवा**) सुष्ठुसुखा (**स्वावेशा**) सुष्ठु समन्ताद् वेशो यस्याः सा (**तन्वा**) शरीरेण (**सम्**) एकीभावे (**विशस्व**) (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! त्वं यथा स्वैर्दक्षैः सह वर्तमानो देवानां बृहते रणाय सुम्ने दक्षपिता विजयेन वर्धते तथेहैधि सुम्न आसीद पितेव सूनवे सुशेवा स्वावेशा सती तन्वा संविशस्व अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम् ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **त्वं यथा स्वैः** स्वकीयैः **दक्षैः** बलैश्चतुरैर्भृत्यैर्वा **सह वर्त्तमानो देवानां** धार्मिकाणां विदुषां मध्ये **बृहते** महते **रणाय** संग्रामाय **सुम्ने** सुखे **दक्षपिता** दक्षस्य=बलस्य चतुराणां भृत्यानां वा पिता=पालकः **विजयेन वर्धते**, **तथेह** अस्मिन् लोके **एधि** भव, **सुम्ने** सुखे **आ+सीद**, **पितेव सूनवे** अपत्याय **सुशेवा** सुष्ठु-सुखा **स्वावेशा** सुष्ठु समन्ताद् वेशो यस्याः सा=**सती तन्वा** शरीरेण **संविशस्व** एकीभावेन विशस्व ।

अध्वर्यू आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **त्वा** त्वाम् **इह** गृहाश्रमे **सादयताम्** अवस्थापयतम् ॥ १४ । ३ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! तू—जैसे (स्वैः) अपने (दक्षैः) बल वा चतुर भृत्यों के साथ वर्तमान (देवानाम्) धार्मिक विद्वानों में (बृहते) महान् (रणाय) संग्राम के लिए (सुम्ने) सुख में (दक्षपिता) बल वा चतुर भृत्यों का पालक पुरुष विजय से बढ़ता है, वैसे (इह) इस लोक में (भव) हो, (सुम्ने) सुख में (आ+सीद) स्थिर रह (पितेव) पिता के समान (सूनवे) अपने सन्तान के लिए (सुशेवा) उत्तम सुख देने वाली, (स्वावेशा) सब ओर से सुन्दर वेश वाली होकर (तन्वा) अपने शरीर से (संविशस्व) मिलकर पति-गृह में प्रवेश कर । और—

(अध्वर्यू) अपने अहिंसनीय गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (त्वा) तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (सादयताम्) स्थापित करें ॥ १४ । ३ ॥

[हे स्त्रि ! त्वं, यथा दक्षैः सह —रणाय सुम्ने दक्षपिता विजयेन वर्धते, तथेहैधि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ स्त्रियो युद्धेऽपि पतिभिः सह तिष्ठेयुः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ स्त्रियाँ युद्ध में भी पतियों के साथ रहें ।

[पितेव सूनवे सुशेवा]

स्वकीयभृत्यपुत्रपश्वादीन् पितर इव पालयेयुः।	अपने भृत्य, पुत्र, पशु आदिकों को पितरों के समान पालें।

[स्वावेशा सती तन्वा संविशस्व]

सदैवात्युत्तमैर्वस्त्रभूषणैः शरीराणि संसृज्य वर्तेरन्।	सदा अत्युत्तम वस्त्र और भूषणों से शरीर को सजाकर रखें।

[अध्वर्यू अश्विना त्वेह सादयताम्]

विद्वांसश्चैवमेताः सदोपदिशेयुः, स्त्रियोऽप्येतांश्च ॥ १४। ३॥	और—विद्वान् इस प्रकार इन्हें सदा उपदेश करें और स्त्रियाँ भी इन्हें उपदेश किया करें॥

भा० पदार्थः—स्वावेशा=सदैवात्युत्तमैर्वस्त्रभूषणैः संसृष्टा।

भाष्यसार—१. स्त्रियों को कर्त्तव्योपदेश—स्त्रियों को उचित है कि वे अपने योग्य सेवकों के साथ इस प्रकार से व्यवहार करें जैसे पिता अपने पुत्रों के प्रति करता है। इस प्रकार दक्ष-भृत्यों का पालन करने वाली स्त्रियाँ युद्ध में विजय प्राप्त करती हैं। और विद्वानों के मध्य में रमणीय सुखों को बढ़ाने वाली होती हैं। और स्वावेशा=सुन्दर वस्त्र तथा अलंकारों से युक्त होकर अपनी सन्तान के लिए सदा उत्तम सुखों को देने वाली हों। अपने स्वामी का प्रियाचरण करती हुई गृहाश्रम में स्थित रहें। और विदुषी अध्यापिका तथा उपदेशिका भी गृहाश्रमरूपी यज्ञ को हिंसा रहित बनाने की कामना से सदा स्त्रियों को सदुपदेश दिया करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमालंकार है। स्त्रियाँ सदा अपने भृत्यों, पशुओं और पुत्रों का पिता की तरह पालन करने वाली हों॥ १४। ३॥

उशनाः। **अश्विनौ**=अध्यापकोपदेशकौ। स्वराड्ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

स्त्रियों के लिए फिर उपदेश किया है॥

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥ ४॥

पदार्थः—(**पृथिव्याः**) (**पुरीषम्**) पालनम् (**असि**) (**अप्सः**) रूपम् (**नाम**) आख्याम् (**ताम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वे**) सर्वे (**अभि**) (**गृणन्तु**) अर्चन्तु=सत्कुर्वन्तु। गृणातीत्यर्चतिकर्मा०॥ निघं० ३। १४॥ (**देवाः**) विद्वांसः (**स्तोमपृष्ठा**) स्तोमानां पृष्ठं=ज्ञीप्सा यस्याः सा (**घृतवती**) प्रशस्तान्याज्यादीनि विद्यन्ते यस्याः सा (**इह**) गृहाश्रमे (**सीद**) वर्तस्व (**प्रजावत्**) प्रशस्ताः प्रजा भवन्ति यस्मात्तत् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**द्रविणा**) धनानि। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**आ**) समन्तात् (**यजस्व**) देहि (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) सत्ये व्यवहारे (**त्वा**) त्वाम्॥ ४॥

प्रमाणार्थ—(**गृणन्तु**) 'गृणाति' धातु निघं० ३। १४ में अर्चति-अर्थक धातुओं में पठित है। (द्रविणा) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' सूत्र से सुप् के स्थान पर आकारादेश हुआ है।

अन्वयः-हे स्त्रि ! या स्तोमपृष्ठा त्वमिह पृथिव्याः पुरीषमप्सो नाम च घृतवत्यसितां त्वा विश्वे देवा अभिगृणन्त्विह सीद त्वाऽध्वर्यू अश्विनेहासादयतां सा त्वमस्मे प्रजावद् द्रविणा यजस्व ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्त्रि ! या स्तोमपृष्ठा** स्तोमानां पृष्ठं=झीप्सा यस्याः सा **त्वमिह** गृहाश्रमे **पृथिव्याः पुरीषं** पालनम् **अप्सः** रूपं **नाम** आख्यां **च घृतवती** प्रशस्तान्याज्यादीनि विद्यन्ते यस्याः सा **असि, तां त्वा** त्वां **विश्वे** सर्वे **देवा** विद्वांसः **अभि+गृणन्तु** अर्चन्तु=सत्कुर्वन्तु **इह** गृहाश्रमे **सीद** वर्त्तस्व । **त्वा** त्वाम् **अध्वर्यू** आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** सकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **इह** सत्ये व्यवहारे **आ+सादयताम्** समन्ताद् अवस्थापयतम, **सा त्वमस्मे** अस्मभ्यं **प्रजावत्** प्रशस्ताः प्रजा भवन्ति यस्मात् तद् **द्रविणा** धनानि **यजस्व** देहि ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो—(स्तोमपृष्ठा) स्तोमों को जानने की इच्छुक तू—(इह) इस गृहाश्रम में (पृथिव्याः) पृथिवी का (पुरीषम्) पालन, (अप्सः) रूप तथा (नाम) ख्याति है और (घृतवती) उत्तम घृत आदि पदार्थों वाली (असि) है, सो (त्वा) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभि+गृणन्तु) सत्कृत करें, तू (इह) इस गृहाश्रम में (सीद) विद्यमान रह। (त्वा) तुझे (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (इह) इस सत्य-व्यवहार में (आ+सादयताम्) सब ओर से स्थापित करें, सो तू (अस्मे) हमारे लिए (प्रजावत्) उत्तम प्रजा के हेतु (द्रविणा) धनों को (यजस्व) प्रदान कर ॥

[**हे स्त्रि ! या···त्वमिह पृथिव्याः पुरीषम् असि**]

भावार्थः—याः स्त्रियो गृहाश्रमविद्याक्रियाकौशलयोर्विदुष्यः स्युः,

भावार्थ—जो स्त्रियाँ गृहाश्रम विद्या और क्रियाकौशल में विदुषी होती हैं,

[**सा त्वमस्मे प्रजावद् द्रविणा यजस्व**]

ता एव सर्वेभ्यः सुखानि दातुमर्हन्ति ॥

वे ही सबको सुख दे सकती हैं ॥ १४ । ४ ॥

भा० पदार्थः—द्रविणा=सुखानि ।

भाष्यसार—स्त्रियों को कर्त्तव्योपदेश—स्त्रियों को उचित है कि वे गृहाश्रम में प्रवेश से पूर्व सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञानों को जानने तथा दूसरों को सिखाने का पूरा प्रयत्न करें। इसी प्रकार पृथिवीस्थ पदार्थों के गुणावगुण जानकर सन्तानादि के पालने की योग्यता, ब्रह्मचर्यादि नियमों के पालन करने से रूपादि गुणों को प्राप्त करें। और अपने सद्गुणों के कारण स्वच्छ यश प्राप्त करके आरोग्य-वर्धक घृतादि प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इन पूर्वोक्त गुणों से अलंकृत होने से सभी विद्वानों से सम्मानित हों और गृहाश्रम में प्रवेश करें। पूर्ण विदुषी अध्यापिका तथा धार्मिक उपदेशिका सदा सत्य व्यवहार में स्थिर रहने की शिक्षा दिया करें और उत्तम प्रजा के लिए विद्वानों का धनादि से सदा सत्कार किया करें ॥ १४ । ४ ॥

उशनाः । **अश्विनौ=अध्यापकोपदेशकौ** ॥ स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्रियों के लिए फिर उपदेश किया है ॥

अदि॑त्यास्त्वा पृ॒ष्ठे सा॑दयाम्यन्तरि॑क्षस्य ध॒र्त्रीं वि॒ष्टम्भ॑नीं दि॒शामधि॑पत्नीं॒ भुव॑नानाम् । ऊ॒र्मिर्द्र॒प्सो ऽ अ॒पाम॑सि वि॒श्वक॑र्मा त॒ ऽ ऋषि॑र॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**अदित्याः**) भूमेः (**त्वा**) त्वाम् (**पृष्ठे**) उपरि (**सादयामि**) स्थापयामि (**अन्तरिक्षस्य**) अन्तरक्षयविज्ञानस्य (**धर्त्रीम्**) (**विष्टम्भनीम्**) (**दिशाम्**) पूर्वादीनाम् (**अधिपत्नीम्**) अधिष्ठातृत्वेन पालयिकाम् (**भुवनानाम्**) भवन्ति भूतानि येषु तेषां गृहाणाम् (**ऊर्मिः**) तरङ्ग इव (**द्रप्सः**) हर्षः (**अपाम्**) जलानाम् (**असि**) (**विश्वकर्मा**) शुभाखिलकर्मा (**ते**) तव (**ऋषिः**) विज्ञापकः पतिः (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! यस्ते विश्वकर्मर्षिः पतिरहमन्तरिक्षस्य धर्त्रीं दिशां विष्टम्भनीं भुवनानामधिपत्नीं सूर्य्यामिव त्वादित्याः पृष्ठे सादयामि योऽपामूर्मिरिव ते द्रप्स आनन्दस्तेन युक्तासि तां त्वेहाध्वर्यू अश्विना सादयताम् ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **यस्ते** तव **विश्वकर्मा** शुभाऽखिलकर्मा **ऋषिः**=**पतिः** विज्ञापकः पतिः **अहमन्तरिक्षस्य** अन्तरक्षयविज्ञानस्य **धर्त्रीं**, **दिशां** पूर्वादीनां **विष्टम्भनीं**, **भुवनानां** भवन्ति भूतानि येषु तेषां गृहाणाम् **अधिपत्नीं**=**सूर्य्याम्** अधिष्ठातृत्वेन पालयिकाम् **इव त्वा** त्वाम् **अदित्याः** भूमेः **पृष्ठे** उपरि **सादयामि** स्थापयामि ।

योऽपां जलानाम् **ऊर्मिः** तरङ्ग **इव ते** तव **द्रप्सः**=**आनन्दो** हर्षः **तेन युक्ताऽसि, तां त्वा** त्वाम् **इह** गृहाश्रमे **अध्वर्य्यू** आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्** अवस्थापयतम् ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो (ते) तेरा (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों वाला, (ऋषिः) विज्ञान दाता पति मैं—(अन्तरिक्षस्य) अन्तःकरण के अक्षय विज्ञान को (धर्त्रीम्) धारण करने वाली, (दिशाम्) पूर्व आदि दिशाओं को (विष्टम्भनीम्) स्थिर करने वाली, (भुवनानाम्) प्राणियों के निवास-स्थान घरों का (अधिपत्नीम्) अधिष्ठात्री होकर पालन करने वाली सूर्य की किरणों के समान (त्वा) तुझे (अदित्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (सादयामि) स्थापित करता हूँ।

जो (अपाम्) जल की (ऊर्मिः) तरंग के समान (ते) तेरा (द्रप्सः) आनन्द एवं हर्ष है उससे युक्त (असि) है, सो (त्वा) तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें ॥ १४ । ५ ॥

[हे स्त्रि ! यस्ते···पतिरहमन्तरिक्षस्य धर्त्रीं, दिशां विष्टम्भनीम्, अधिपत्नीं···त्वाऽऽदित्याः पृष्ठे सादयामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ याः स्त्रियोऽक्षयसुखकारिण्यः, प्रसिद्धदिक्कीर्तयः, विद्वत्पतयः, सदानन्दिताः सन्ति, ता एव गृहाश्रमपालनोन्नतये प्रभवन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो स्त्रियाँ अक्षय सुख को उत्पन्न करने वाली, सब दिशाओं में प्रसिद्ध कीर्ति वाली, विद्वान्-पतियों वाली, और सदा आनन्दित रहने वाली हैं वे ही गृहाश्रम धर्म के पालन और उन्नति के लिए समर्थ होती हैं ।

[विशेषमाह—]

मधुश्चेति मन्त्रमारभ्यैतन्मन्त्रपर्यन्तं वसन्तर्तुगुणव्याख्यानं प्राधान्येन कृतमिति विज्ञेयम् ॥

'मधुश्च' इस मन्त्र से लेकर यहाँ तक वसन्त-ऋतु के गुणों की व्याख्या प्रधान रूप से की है, ऐसा जानें ॥ १४ । ५ ॥

भाष्यसार—स्त्रियों को गृहाश्रम का उपदेश—गृहाश्रम में प्रवेश पाकर स्त्रियों को उचित है कि वे सदा शुभ कर्मों में प्रवृत्त और विद्वान् पति का सदा प्रियाचरण किया करें। सूर्य की किरणों की तरह अन्तःकरण विज्ञान को जानने वाली हों अर्थात् अपने व्यवहार से दूसरों के अन्तःकरण को अक्षय सुख देने वाली हों, जैसे सूर्य की किरणें पूर्वादि दिशाओं को स्थिर करने वाली हैं और प्राणियों के निवास-स्थानों का, दूषित कीटाणुओं के विनाश करने से, पालन करने वाली होती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी पृथिवीस्थ गायादि उपकारक प्राणियों का तथा सन्तानादि का पालन करने वाली हों। जैसे जल की तरङ्गें मनों को हर्षित करती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी स्वयं प्रसन्नचित्त वाली होकर दूसरों को हर्षित करने वाली हों। ऐसी ही शिक्षाएँ गृहाश्रम-यज्ञ के मंगल चाहने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका दिया करें ॥ १४ । ५ ॥

उशनाः । **ग्रीष्मर्तुः**=स्पष्टम् । निचृदुत्कृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी ग्रीष्म ऋतु का व्याख्यान किया है ॥

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽ अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे ग्रैष्मावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**शुक्रः**) य आशु पांसुवर्षातीव्रतापाभ्यामन्तरिक्षं मलिनं करोति स ज्येष्ठः (**च**) (**शुचिः**) पवित्रकारक आषाढः (**च**) (**ग्रैष्मौ**) ग्रीष्मे भवौ (**ऋतू**) यावृच्छतस्तौ (**अग्नेः**) पावकस्य (**अन्तःश्लेषः**) मध्य आलिङ्गनम् (**असि**) अस्ति (**कल्पेताम्**) समर्थयेताम् (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशान्तरिक्षे (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) जलानि (**ओषधयः**) यवसोमाद्याः (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) पावकाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) अतिशयेन प्रशस्यस्य भावाय (**सव्रताः**) सत्यैर्नियमैः सह वर्तमानाः (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) मनसा सह वर्तमानाः (**अन्तरा**) मध्ये (**द्यावापृथिवी**) (**इमे**) (**ग्रैष्मौ**) (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) आभिमुख्येन समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथा विद्युतम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अभिसंविशन्तु**) अभितः सम्यक् प्रविशन्तु (**तया**) (**देवतया**) दिव्यगुणया (**अङ्गिरस्वत्**) अङ्गानां रसः=कारणं तद्वत् (**ध्रुवे**) निश्चले (**सीदतम्**) विजानीतम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! यथा मम ज्यैष्ठ्याय यौ शुक्रश्च शुचिश्च ग्रीष्मावृतू ययोरग्नेरन्तः श्लेषोऽस्यस्ति याभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेतामापः कल्पन्तामोषधयोऽग्नयश्च पृथक् कल्पन्तां यथा समनसः सव्रता अग्नयोऽन्तरा कल्पन्ते तैर्ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमाना देवा भवन्त इन्द्रमिव तानग्नीनभिसंविशन्तु तथा तया देवतया सह युवामिमे द्यावापृथिवी ध्रुवे एतौ चाङ्गिरस्वत् सीदतम् ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! **यथा मम ज्यैष्ठ्याय** अतिशयेन प्रशस्यस्य भावाय **यौ शुक्रः** य आशु पांसुवर्षातीव्रतापाभ्यामन्तरिक्षं मलिनं करोति स ज्येष्ठः **च शुचिः** पवित्रकारक आषाढः **च ग्रैष्मौ** ग्रीष्मे भवौ **ऋतू** यावृच्छतस्तौ **ययोरग्नेः** पावकस्य **अन्तःश्लेषः** मध्य आलिङ्गनम् **असि**=**अस्ति, याभ्यां द्यावापृथिवी** प्रकाशाऽन्तरिक्षे **कल्पेतां** समर्थयेताम्, **आपः** जलानि **कल्पन्तां** समर्थयन्ताम्, **ओषधयः** यवसोमाद्याः **अग्नयः** पावकाः **च पृथक् कल्पन्तां** समर्थयन्ताम्;

भावार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! जैसे—मेरी (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिए जो (शुक्रः) धूल की वर्षा और तीव्र ताप से आकाश को मलिन करने वाला ज्येष्ठ मास और (शुचिः) पवित्रता करने वाला आषाढ मास ; यह (ग्रैष्मौ) ग्रीष्म (ऋतू) ऋतु है, जिनमें (अग्नेः) अग्नि का (अन्तःश्लेषः) आन्तरिक आलिङ्गन (असि) है, जिनसे—(द्यावा-पृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (कल्पेताम्) समर्थ होते हैं, (आपः) जल (कल्पन्ताम्) समर्थ होते हैं, (ओषधयः) सोम आदि ओषधियाँ और (अग्नयः) अग्नियाँ (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होती हैं ।

यथा समनसः मनसा सह वर्त्तमानाः **सव्रताः** सत्यैर्नियमैः सह वर्त्तमानाः **अग्नयः** पावकाः **अन्तरा** मध्ये **कल्पन्ते, तैर्ग्रैष्मौ** ग्रीष्मे भवौ **ऋतू** यावृच्छतस्तौ **अभिकल्पमाना** आभिमुख्येन समर्थयन्तः **देवाः** विद्वांसः **भवन्त इन्द्रमिव** यथाविद्युतं **तानग्नीनभिसं विशन्तु** अभितः सम्यक् प्रविशन्तु, **तथा तया देवतया** दिव्यगुणया **सह युवामिमे द्यावापृथिवी** प्रकाशान्तरिक्षे **ध्रुवे** निश्चले **एतौ चाङ्गिरस्वत्** अङ्गानां रसः=कारणं तद्वत् **सीदतं** विजानीतम् ॥

जैसे—(समनसः) मन के साथ वर्त्तमान (सव्रताः) सत्य नियमों के साथ वर्तमान (अग्नयः) अग्नियां (अन्तरा) मध्य में समर्थ होती हैं, उनसे (ग्रैष्मौ) ग्रीष्म (ऋतू) ऋतुओं को (अभिकल्पमानाः) मुख्य रूप से समर्थ बनाते हुए आप (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्रमिव) विद्युत् के समान उन अग्नियोंमें (अभिसंविशन्तु) प्रवेश करते हैं वैसे (तया) उस (देवतया) दिव्य गुण वाली स्त्री के साथ तुम दोनों (इमे) (द्यावापृथिवी) प्रकाश और आकाश के तुल्य (ध्रुवे) निश्चल रहो और इन्हें (अङ्गिरस्वत्) अङ्गों के कारण समान (सीदतम्) जानो ॥ १४ । ६ ॥

[**विशेषमाह**—]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ वसन्तर्तु-व्याख्यानानन्तरं ग्रीष्मर्तुर्व्याख्यायते—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। । अब वसन्त-ऋतु के व्याख्यान के पश्चात् ग्रीष्म-ऋतु की व्याख्या की जाती है ।

[**हे स्त्रीपुरुषौ···ग्रैष्मावृतू···याभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेतां, यथा समनसः सव्रता अग्नयोऽन्तरा कल्पन्ते तैर्ग्रैष्मावृतू अभिकल्पमानाः**]

हे मनुष्याः ! यूयं ये पृथिव्यादिस्थाः शरीरात्म-मानसाश्चाग्नयो वर्त्तन्ते, यैविना ग्रीष्मर्त्तुसंभवो न जायते,

हे मनुष्यो ! तुम—जो पृथिवी में स्थित तथा शारीरिक, आत्मिक और मानसिक अग्नियाँ हैं, जिनके विना ग्रीष्म-ऋतु का संभव नहीं है—

[**तानग्नीनभिसंविशन्तु**]

तान् विज्ञायोपयुज्य सर्वेभ्यः सुखं प्रयच्छत ॥

उनको जान कर एवं उपयोग करके सबको सुख-प्रदान करो ॥ १४ । ६ ॥

भाष्यसार—१. ग्रीष्मर्त्तु में कर्त्तव्योपदेश—जैसे ग्रीष्मर्त्तु में तीव्रताप तथा धूल से ज्येष्ठ मास आकाश को मलीन करता है, और आषाढ मास असह्य गर्मी से सब पदार्थों को शुद्ध करता है। इन दोनों मासों में प्रचण्ड ताप होने से सब अग्निमय ही हो जाता है, उससे वर्षा होने से विभिन्न प्रकार की ओषधियां पैदा होती हैं। वैसे ही स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि शारीरिक, आत्मिक और मानसिक तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं उनको सत्यव्रत तथा नियमादि से प्रदीप्त करके शारीरिक मानसिकादि सब बुराइयों को दग्ध करके दिव्य गुणों का प्रवेश विद्युत् की तरह करायें। और ग्रीष्मर्त्तु के अनुसार जीवन को बनाकर प्रकाश और आकाश की तरह स्थिर रहें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। ग्रीष्म की तरह शारीरिक आदि अग्नियों को प्रदीप्त करके दुर्गुणों को दूर करें ॥ १४। ६ ॥

विश्वेदेवाः=सर्वशुभगुणकर्माणि। वस्वादयो मन्त्रोक्ताः। सजूर्ऋतुभिरित्यस्य भुरिक्कृतिः। धैवतः। सजूर्ऋतुभिरिति द्वितीयस्य स्वराट्पङ्क्तिः। सजूर्ऋतुभिरिति तृतीयस्य निचृदाकृतिः। पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

पदार्थः—(सजूः) यः समानं प्रीणाति सेवते वा (**ऋतुभिः**) वसन्तादिभिश्च सह (**सजूः**) (**विधाभिः**) अद्भिः (**सजूः**) (**देवैः**) दिव्यैर्गुणैः (**सजूः**) दिव्यसुखप्रदैः (**वयोनाधैः**) वयांसि=जीवनादीनि गायत्र्यादिछन्दांसि वा नह्यन्ति यैः प्राणैस्तैः (**अग्नये**) पावकाय (**त्वा**) त्वाम् (**वैश्वानराय**) अखिलानां पदार्थानां नयनाय=प्रापणाय (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) त्वां स्त्रियं पुरुषं वा, (**सजूः**) (**ऋतुभिः**) (**सजूः**) (**विधाभिः**) (**सजूः**) (**वसुभिः**) अग्न्यादिभिरष्टभिः (**सजूः**) (**देवैः**) दिव्यैः (**वयोनाधैः**) वयांसि=विज्ञानानि नह्यन्ति यैर्विद्वद्भिः (**अग्नये**) विज्ञानाय (**त्वा**), (**वैश्वानराय**) विश्वस्य=सर्वस्य जगतो नायकाय (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) (**सजूः**) (**ऋतुभिः**) (**सजूः**) (**विधाभिः**) विविधानि वस्तूनि दधति याभिः प्राणचेष्टाभिस्ताभिः (**सजूः**) (**रुद्रैः**) प्राणचेष्टाभिः ताभिः (**सजूः**) (**रुद्रैः**) प्राणापानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयजीवैः (**सजूः**) (**देवैः**) विद्वद्भिः (**वयोनाधैः**) वेदादिशास्त्रप्रज्ञापनप्रबन्धकैः (**अग्नये**) शास्त्रविज्ञानाय (**त्वा**) (**वैश्वानराय**) विश्वेषां नराणामिदं सुखसाधकं तस्मै (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**), (**सजूः**) (**ऋतुभिः**) सहचरितैः सुखैः (**सजूः**) (**विधाभिः**) विविधाभिः सत्यक्रियाधारिकाभिः क्रियाभिः (**सजूः**) (**आदित्यैः**)

संवत्सरस्य द्वादशमासैः (**सजूः**) (**देवैः**) पूर्णविद्यैः (**वयोनाधैः**) पूर्णविद्याविज्ञानप्रचारप्रबन्धकैः (**अग्नये**) पूर्णाय विज्ञानाय (**त्वा**) (**वैश्वानराय**) विश्वेषां नराणामिदं पूर्णसुखसाधनं तस्मै (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**), (**सजूः**) (**ऋतुभिः**) सर्वैः कालावयवैः (**सजूः**) (**विधाभिः**) समस्ताभिः सुखव्यापिकाभिः (**सजूः**) (**विश्वैः**) समस्तैः (**देवैः**) परोपकाराय सत्यासत्यविज्ञापयितृभिः (**सजूः**) (**देवैः**) (**वयोनाधैः**) ये वयः=कामयमानं जीवनं नह्यन्ति तैः (**अग्नये**) सुशिक्षाप्रकाशाय (**त्वा**) (**वैश्वानराय**) विश्वेषां नराणामिदं हितं यस्मै (**अश्विना**) (**अध्वर्यू**) (**सादयताम्**) (**इह**) (**त्वा**) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा यं त्वा त्वामिहाध्वर्यू अश्विना वैश्वानरायाग्नये सादयतां वयं च यं त्वा सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्देवैस्सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह सजूश्च भव। हे पुरुषार्थयुक्ते स्त्रि वा पुरुष ! यं त्वा त्वामिह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्वसुभिः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे विद्याध्ययनाय प्रवृत्ते ब्रह्मचारिणि वा ब्रह्मचारिन् ! यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूः रुद्रैः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे पूर्णविद्ये स्त्रि पुरुष वा यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूरादित्यैः सह सजूर्वतोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव। हे सत्यार्थोपदेशिके स्त्रि पुरुष वा यं त्वेह वैश्वानरायाग्नयेऽध्वर्यू अश्विना सादयतां यं त्वा वयं च सादयेम स त्वमृतुभिः सह सजूर्विधाभिः सह सजूर्विश्वैर्देवैः सह सजूर्वयोनाधैर्देवैः सह च सजूर्भव ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि पुरुष वा** ! **यं त्वा=त्वामिह** गृहाश्रमे **अध्वर्यू** आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **वैश्वानराय** अखिलानां पदार्थानां नयनाय=प्रापणाय **अग्नये** पावकाय **सादयतां** अवस्थापयतम्, **वयं च यं त्वा** त्वां स्त्रियं पुरुषं वा **सादयेम, स त्वमृतुभिः** वसन्तादिभिश्च **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति समानं सेवते वा, **विधाभिः** अद्भिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा, **देवैः,** दिव्यैर्गुणैः **सह सजूः** समानं प्रीणाति सेवते वा **वयोनाधैः=देवैः** वयांसि=जीवनादीनि गायत्र्यादिछन्दांसि वा नह्यन्ति यैः प्राणैस्तैः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **च भव**।

भाषार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! (त्वा) तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (वैश्वानराय) सब पदार्थों के प्रापक (अग्नये) अग्नि के लिए (सादयताम्) स्थापित करें, और—हम (त्वा) तुझ स्त्री वा पुरुष को (सादयेम) स्थापित करें, सो तू (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (विधाभिः) जलों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (देवैः) दिव्य गुणों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (वयोनाधैः) जीवन आदि वा गायत्री आदि छन्दों को बाँधने वाले प्राणों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो।

हे पुरुषार्थयुक्ते स्त्रि वा पुरुष ! यं त्वा=त्वमिह गृहाश्रमे **वैश्वानराय** विश्वस्य सर्वस्य जगतो नायकाय **अग्नये** विज्ञानाय **अध्वर्यू** आत्मनोऽध्वरमहिंसनीयं गृहाश्रमादिकं यज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्त-

हे पुरुषार्थी स्त्री वा पुरुष ! तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (वैश्वानराय) सब जगत् के नायक (अग्नये) विज्ञान के लिए (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना)

सकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्** अवस्थापयतम्, **यं त्वा** त्वां स्त्रियं पुरुषं वा **वयं च सादयेम, स त्वमृतुभिः** वसन्तादिभिश्च **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **विधाभिः** अद्भिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **वसुभिः** अग्न्यादिभिरष्टभिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **सजूर्वयोनाधैः** वयांसि=विज्ञानानि नह्यन्ति यैर्विद्वद्भिः **देवैः** दिव्यैः **सह च सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **भव**।

सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम) स्थापित करें, (त्वा) तुझ स्त्री वा पुरुष को हम स्थापित करें, सो तू (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (विधाभिः) जलों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (वसुभिः) अग्नि आदि आठ वसुओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (वयोनाधैः) विज्ञानों को बाँधने वाले विद्वानों और (देवैः) दिव्य-गुणों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो।

हे विद्याऽध्ययनाय प्रवृत्ते ब्रह्मचारिणि वा ब्रह्मचारिन्! यं त्वा त्वाम् **इह वैश्वानराय** विश्वेषां नराणामिदं सुखसाधकं तस्मै, **अग्नये** शास्त्रविज्ञानाय **अध्वर्यू** आत्मनोऽहिंसनीयं ब्रह्मचर्याश्रमादियज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्** अवस्थापयतम्, **यं त्वा** त्वां **वयं च सादयेम, स त्वमृतुभिः** वसन्तादिभिश्च **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **विधाभिः** विविधानि वस्तूनि दधति याभिः प्राणचेष्टाभिस्ताभिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **रुद्रैः** प्राणचेष्टाभिस्ताभिः, प्राणाऽपानव्यानोदानसमाननागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयजीवैः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **वयोनाधैः** वेदादिशास्त्रप्रज्ञापनप्रबन्धकैः **देवैः** विद्वद्भिः **सह च सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **भव**।

हे विद्याध्ययन के लिए प्रवृत्त ब्रह्मचारिणी वा ब्रह्मचारिन्! (त्वा) तुझे (इह) इस ब्रह्मचर्यआश्रम में (वैश्वानराय) सब नरों के सुख-साधक (अग्नये) शास्त्र-विज्ञान के लिए (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य ब्रह्मचर्य-आश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम) स्थापित करें, और (त्वा) तुझे हम भी स्थापित करें, सो तू—(ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (विधाभिः) विविध वस्तुओं को धारण करने वाली प्राण-चेष्टाओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (रुद्रैः) उक्त प्राण-चेष्टाओं तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और जीव से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (वयोनाधैः) वेदादि शास्त्रों के प्रज्ञापन=अध्यापन का प्रबन्ध करने वाले (देवैः) विद्वानों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनकी सेवा करने वाला वाला हो,

हे पूर्णविद्ये स्त्रि पुरुष वा! यं त्वा त्वाम् **इह** गृहाश्रमे **वैश्वानराय** विश्वेषां नराणामिदं पूर्णसुखसाधनं तस्मै **अग्नये** पूर्णाय विज्ञानाय **अध्वर्यू** आत्मनोऽहिंसनीयं गृहाश्रमादियज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्, यं**

हे पूर्ण विद्या से युक्त स्त्री वा पुरुष! (त्वा) तुझे (इह) इस गृहाश्रम में (वैश्वानराय) सब नरों के पूर्ण-सुख के साधक (अग्नये) पूर्ण विज्ञान के लिए (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से

त्वा त्वां वयं च सादयेम, स **त्वमृतुभिः** सहचरितैः सुखैः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **विधाभिः** विविधाभिः सत्क्रियाधारिकाभिः क्रियाभिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **आदित्यैः** संवत्सरस्य द्वादशमासैः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **वयोनाधैः** पूर्णविद्याविज्ञानप्रचारप्रबन्धकैः **देवैः** पूर्णविद्यैः **सह च सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **भव** ।

युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें, और (त्वा) तुझे हम भी स्थापित करें, सो तू—(ऋतुभिः) साथ रहने वाले सुखों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (विधाभिः) विविध सत्क्रियाओं को धारण करने वाली क्रियाओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (आदित्यैः) संवत्सर=वर्ष के बारह मासों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (वयोनाधैः) पूर्ण विद्या और विज्ञान के प्रचार का प्रबन्ध करने वाले (देवैः) पूर्ण विद्वानों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो।

हे **सत्यार्थोपदेशिके स्त्रि पुरुष वा ! यं त्वा** त्वाम् **इह** गृहाश्रमे **वैश्वानराय** विश्वेषां नराणामिदं हितं तस्मै **अग्नये** सुशिक्षाप्रकाशाय **अध्वर्यू** आत्मनोऽहिंसनीयं गृहाश्रमादियज्ञमिच्छू **अश्विना** व्याप्तसकलविद्यावध्यापकोपदेशकौ **सादयताम्** अवस्थापयतम्, **यं त्वा** त्वां **वयं च सादयेम, स त्वमृतुभिः** सर्वैः कालाऽवयवैः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **विधाभिः** समस्ताभिः सुखव्यापिकाभिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **विश्वैः** समस्तैः **देवैः** परोपकाराय सत्याऽसत्यविज्ञापयितृभिः **सह सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **वयोनाधैः** ये वयः=कामयमानं जीवनं नह्यन्ति तैः **देवैः सह च सजूः** यः समानं प्रीणाति सेवते वा **भव** ॥ १४ । ७ ॥

हे सत्यार्थ का उपदेश करने वाली स्त्री वा पुरुष ! (त्वा) तुझे (इह) गृहाश्रम में (वैश्वानराय) सब नरों के हितकारी (अग्नये) सुशिक्षा के प्रकाश के लिए (अध्वर्यू) अपने अहिंसा के योग्य गृहाश्रम आदि यज्ञ के इच्छुक (अश्विना) सकल विद्याओं से युक्त अध्यापक और उपदेशक (सादयताम्) स्थापित करें और हम (त्वा) तुझे स्थापित करें, सो तू (ऋतुभिः) सब काल-अवयवों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनका सेवन करने वाला हो, (विधाभिः) समस्त सुखों से युक्त क्रियाओं से (सजूः) समान रूप से प्रीति अथवा सेवन करने वाला हो, (विश्वैः) सब (देवैः) परोपकार के लिए सत्य और असत्य के विज्ञापक=उपदेशकों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनकी सेवा करने वाला हो, (वयोनाधैः) कामना के योग्य जीवन को बाँधने वाले (देवैः) विद्वानों से (सजूः) समान रूप से प्रीति और उनकी सेवा करने वाला हो ॥ १४ । ७ ॥

[हे स्त्रि पुरुष वा यं त्वा=त्वामिहाध्वर्यू अश्विनाऽग्नये सादयतां···स त्वमृतुभिः सह सजूः···भव]

भावार्थः—अस्मिन् जगति मनुष्यजन्म प्राप्य स्त्रियो विदुष्यः, पुरुषा विद्वांसश्च भूत्वा येषु ब्रह्मचर्यविद्यासुशिक्षाग्रहणादिषु शुभेषु कर्मसु स्वयं प्रवृत्ता भूत्वा यानन्यान् प्रवर्तयेयुस्तेऽत्र प्रवर्तित्वा परमेश्वरमारभ्य पृथिवीपर्यन्तानां पदार्थानां यथार्थेन

भावार्थ—इस जगत् में मनुष्य-जन्म को प्राप्त करके स्त्रियाँ विदुषी और पुरुष विद्वान् होकर जिन ब्रह्मचर्य विद्या और सुशिक्षा के ग्रहण आदि शुभ कर्मों में स्वयं प्रवृत्त होकर जिन अन्य जनों को प्रवृत्त करें वे यहाँ प्रवृत्त होकर परमेश्वर से लेकर

विज्ञानेनोपयोगं संगृह्य सर्वेष्वृतुषु स्वयं सुखयन्त्वन्यांश्च ॥ १४ । ७ ॥

पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के यथार्थ विज्ञान से उपयोग ग्रहण करके सब ऋतुओं में स्वयं सुखी रहें तथा अन्यों को भी सुखी रखें ॥ १४ । ७ ॥

भाष्यसार—ग्रीष्मर्त्तु में कर्त्तव्योपदेश—सभी स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे गृहाश्रम में प्रवेश करके ऋतुओं के अनुसार जीवन-चर्या बनावें। जो धार्मिक विद्वान् अध्यापक अथवा उपदेशक हों, वे भी गृहाश्रम-यज्ञ को अहिंसनीय बनाने की इच्छा से स्त्री-पुरुषों को शिक्षा दिया करें कि वे दिव्यगुणों तथा विद्वानों से, जीवन को संयमित करने वाले प्राणों की विद्या से, सब पदार्थों के विज्ञान से समान रूप से प्रीति तथा उनका सेवन करें।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणियों को चाहिए कि वे सकल शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऋतुओं के अनुसार जीवन-चर्या बनावें। और जीवन को संयम में रखने में प्रमुख कारण प्राणादि की चेष्टाओं को वश में करने के लिए वेदादि शास्त्रों के विद्वान् तथा प्राणविद्या के वेत्ताओं की मन से सेवा करें तथा उनकी संगति से विद्यार्जन करके दूसरों को भी इस मार्ग के पथिक बनायें। इस प्रकार के सद्व्यवहार से सदा दुःखों से निवृत्ति तथा सुखों की वृद्धि होती है ॥ १४ । ७ ॥

विश्वदेवः । **दम्पती**=**स्त्रीपुरुषौ** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है ॥

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म ऽ उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय । अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**प्राणम्**) नाभेरूर्ध्वगामिनम् (**मे**) मम (**पाहि**) रक्ष (**अपानम्**) यो नाभेरर्वागगच्छति तम् (**मे**) मम (**पाहि**) (**व्यानम्**) यो विविधेषु शरीरसंधिष्वनिति तम् (**मे**) (**पाहि**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**मे**) (**उर्व्या**) बहुरूपयोत्तमफलप्रदया पृथिव्या सह । **उर्वीति पृथिवीना० ॥ निघं० १ । १ ॥** (**वि**) (**भाहि**) (**श्रोत्रम्**) (**मे**) (**श्लोकय**) शास्त्रश्रवणाय सम्बन्धय (**अपः**) प्राणान् (**पिन्व**) पुष्णीहि=सिंच (**ओषधीः**) सोमयवादीन् (**जिन्व**) प्राप्नुहि । **जिन्वतीति गतिकर्म्मा० ॥ निघं० २ । १४ ॥** (**द्विपात्**) मनुष्यादीन् (**अव**) रक्ष (**चतुष्पात्**) गवादीन् (**पाहि**) (**दिवः**) सूर्यप्रकाशात् (**वृष्टिम्**) (**आ**) (**ईरय**) प्रेरय ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(उर्व्या) 'उर्वी' पद निघं० १ । १ में पृथिवी-नामों में पठित है। (जिन्व) 'जिन्वति' धातु निघं० २ । १४ में गत्यर्थक धातुओं में पठित है।

अन्वयः—हे पते स्त्रि पुरुष वा त्वमुर्व्या सह मे प्राणं पाहि मेऽपानं पाहि मे व्यानं पाहि मे चक्षुर्विभाहि मे श्रोत्रं श्लोकयापः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि यथा सूर्यो दिवो वृष्टिं करोति तथा गृहकृत्यमेरय ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे पते स्त्रि पुरुष वा ! त्वमुर्व्या** बहुरूपयोत्तमफलप्रदया पृथिव्या **सह मे** मम **प्राणं** नाभेरूर्ध्वगामिनं **पाहि** रक्ष, **मे** मम **अपानं** यो नाभेरर्वागगच्छति तं **पाहि** रक्ष, **मे**

भाषार्थ—हे पति ! स्त्री ! वा पुरुष ! तू—(उर्व्या) बहुत रूप वाली, उत्तम फल प्रदान करने वाली पृथिवी के साथ (मे) मेरे (प्राणम्) नाभि से ऊपर को उठने वाले प्राण की (पाहि)

मम **व्यानं** यो विविधेषु शरीरसंधिष्वनिति तं **पाहि** रक्ष, **मे** मम **चक्षुः** नेत्रं **विभाहि**, **मे** मम **श्रोत्रं** **श्लोकय** शास्त्रश्रवणाय सम्बन्धय, **अपः** प्राणान् **पिन्व** पुष्णीहि=सिञ्च, **ओषधीः** सोमयवादीन् **जिन्व** प्राप्नुहि, **द्विपात्** मनुष्यादीन् **अव** रक्ष, **चतुष्पात्** गवादीन् **पाहि** रक्ष ।

रक्षा कर, (मे) मेरे (अपानम्) नाभि से नीचे गति करने वाले अपान की (पाहि) रक्षा कर, (व्यानम्) विविध शरीर की सन्धियों में गति करने वाले व्यान की (पाहि) रक्षा कर, (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्र को (विभाहि) प्रकाशित कर, (मे) मेरे (श्रोत्रम्) श्रोत्र को (श्लोकय) शास्त्रों के श्रवण के लिए सम्बद्ध कर, (अपः) प्राणों को (पिन्व) पुष्ट कर एवं सींच, (ओषधीः) सोम, यव=जौ आदि ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त कर, (द्विपात्) दो पांव वाले मनुष्य आदि की (अव) रक्षा कर, (चतुष्पात्) चार पाँव वाले गौ आदि की (पाहि) रक्षा कर ।

यथा सूर्यो दिवः सूर्यप्रकाशाद् **वृष्टिं करोति, तथा गृहकृत्यमेरय** प्रेरय ॥ १४ । ८ ॥

जैसे सूर्य (दिवः) द्युलोक से (वृष्टिम्) वर्षा करता है वैसे गृह-कार्य का (एरय) संचालन कर ॥ १४ । ८ ॥

[हे पते स्त्रि पुरुष वा त्वमुव्यों सह मे प्राणं पाहि,……श्रोत्रं श्लोकय, ओषधीर्जिन्व]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । स्त्रीपुरुषौ स्वयंवरं विवाहं विधायातिप्रेम्णा परस्परं प्राणप्रियाचरणं शास्त्रश्रवणमोषध्यादि-सेवनं कृत्वा,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ स्त्री-पुरुष स्वयंवर विवाह करके, अति प्रेम से परस्पर प्राणों के प्रिय आचरण, शास्त्रों का श्रवण और ओषधि आदि का सेवन करके,

[यथा सूर्यो दिवो वृष्टिं करोति तथा गृहकृत्यमेरय]

यज्ञाद् वृष्टिं च कारयेताम् ॥ १४ । ८ ॥

यज्ञ से वर्षा करावें ॥ १४ । ८ ॥

भाष्यसार—१. ग्रीष्मर्त्तु में कर्त्तव्योपदेश—ग्रीष्मर्त्तु में सभी स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्राण=जो वायु नाभि से ऊपर गति करता है, अपान=जो वायु नाभि से नीचे गति करता है, व्यान=जो वायु शरीर की सन्धियों में गति करता है, इन सब को विशेष रूप से संयम में रक्खें । इसी प्रकार इस ऋतु में प्राणों को पुष्ट करने के लिए जीवनोपयोगी ओषधियों का सिञ्चन अवश्य करें । और ज्ञान-प्राप्ति के मुख्य साधन नेत्र और कर्णेन्द्रिय की सदा रक्षा करें । क्योंकि दृश्य तथा श्रव्य दोनों प्रकार के ज्ञानों का साधन ये दोनों इन्द्रियाँ ही हैं । दो पैर वाले मनुष्य पक्षी आदि प्राणियों की तथा चार पैर वाले गायादि पशुओं की रक्षा के लिए इस ऋतु में विशेष अग्निहोत्रादि साधनों से वर्षा को प्रेरित करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे द्युलोक से सूर्य वृष्टि करता है, वैसे ही मनुष्य भी अग्निहोत्रादि से वृष्टि को प्रेरित करें ॥ १४ । ८ ॥ ●

विश्वेदेवाः । **प्राजापत्यादयः**=**ब्राह्मणादयः** । पूर्वस्य निचृद्ब्राह्मी पङ्क्तिः । पुरुष इत्युत्तरस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है ॥

मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्द ऽ उक्षा वयः ककुप् छन्द ऽ ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**मूर्धा**) मूर्धावदुत्तमं ब्राह्मणकुलम् (**वयः**) कमनीयम् (**प्रजापतिः**) प्रजापालकः (**छन्दः**) विद्याधर्मशमादिकर्म (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुलम् (**वयः**) न्यायविनयपराक्रमव्याप्तम् (**मयन्दम्**) यन्मयं=सुखं ददाति तत् (**छन्दः**) बलयुक्तम् (**विष्टम्भः**) विशो=वैश्यस्य विष्टम्भो=रक्षणं येन (**वयः**) प्रजनकः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**छन्दः**) स्वाधीनः (**विश्वकर्मा**) अखिलोत्तमकर्मकर्ता राजा (**वयः**) कमिता (**परमेष्ठी**) सर्वेषां स्वामी (**छन्दः**) स्वाधीनः (**वस्तः**) व्यवहारैराच्छादितो=युक्तः (**वयः**) विविधव्यवहारव्यापी (**विबलम्**) विविधं बलं यस्मात् (**छन्दः**) (**वृष्णिः**) सुखसेचकः (**वयः**) सुखप्रापकम् (**विशालम्**) विस्तीर्णम् (**छन्दः**) स्वाच्छन्द्यम् (**पुरुषः**) पुरुषार्थयुक्तः (**वयः**) कमनीयं कर्म्म (**तन्द्रम्**) कुटुम्बधारणम् । **अत्र तत्रिकुटुम्बधारण इत्यस्मादच् वर्णव्यत्ययेन तस्य दः** (**छन्दः**) बलम् (**व्याघ्रः**) यो विविधान् समन्ताज्जिघ्रति (**वयः**) कमनीयम् (**अनाधृष्टम्**) धाष्टर्च्यम् (**छन्दः**) बलम् (**सिंहः**) यो हिनस्ति पश्वादीन् सः (**वयः**) पराक्रमम् (**छदिः**) अपवारणम् (**छन्दः**) प्रदीपनम् (**पष्ठवाट्**) यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहत्युष्ट्रादिः । **वर्णव्यत्ययेन ऋकारस्यात्राकारादेशः** (**वयः**) बलवान् (**बृहती**) महत्त्वम् (**छन्दः**) पराक्रमम् (**उक्षा**) सेचको=वृषभः (**वयः**) बलिष्ठः (**ककुप्**) दिशः (**छन्दः**) आनन्दम् (**ऋषभः**) गतिमान् पशुः (**वयः**) बलिष्ठः (**सतोबृहती**) (**छन्दः**) स्वातन्त्र्यम् ॥ ९ ॥

प्रमाणार्थ—(तन्द्रम्) यहाँ 'तत्रि कुटुम्बधारणे' इस धातु से 'अच्' प्रत्यय और वर्ण-व्यत्यय से 'त' के स्थान में 'द' आदेश है । (**पष्ठवाट्**) यहाँ वर्ण-व्यत्यय से 'ऋ' के स्थान में अकार-आदेश है ।

अन्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा मूर्धा प्रजापतिरिव त्वं वयो मयन्दं छन्दः क्षत्रमेरय विष्टम्भोऽधिपतिरिव त्वं वयश्छन्दः एरय विश्वकर्मा परमेष्ठीव त्वं वयश्छन्द एरय वस्त इव त्वं वयो विबलं छन्दः एरय वृष्णिरिव त्वं विशालं वयश्छन्द एरय । पुरुष इव त्वं वयस्तन्द्रं छन्द एरय व्याघ्र इव त्वं वयोनाधृष्टं छन्द एरय सिंह इव त्वं वयश्छदिश्छन्द एरय पष्ठवाडिव त्वं बृहती वयश्छन्द एरयोक्षेव त्वं वयः ककुप्छन्द एरय । ऋषभ इव त्वं वयः सतोबृहती छन्द एरय प्रेरय ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि पुरुष वा** ! **मूर्धा** मूर्धवदुत्तमं ब्राह्मणकुलं **प्रजापतिः** प्रजापालकः **इव त्वं वयः** न्यायविनयपराक्रमव्याप्तं **मयन्दं** यन्मयं=सुखं ददाति तत् **छन्दः** विद्याधर्मशमादिकर्म **क्षत्रं** क्षत्रियकुलम् **एरय** ।

विष्टम्भः विशो=वैश्यस्य विष्टम्भो=रक्षणं येन, **अधिपतिः** अधिष्ठाता **इव त्वं वयः** प्रजनकः छन्द स्वाधीन **एरय** ।

भाषार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! (मूर्धा) मूर्धा=शिर के समान उत्तम ब्राह्मणकुल तथा (प्रजापतिः) प्रजा-पालक राजा के समान तू—(वयः) न्याय, विनय और पराक्रम से युक्त, (मयन्दम्) सुख को देने वाले, (छन्दः) विद्या, धर्म और शम आदि कर्मों वाले (क्षत्रम्) क्षत्रिय-कुल को (एरय) प्राप्त कर ।

(विष्टम्भः) वैश्य की रक्षा करने वाले (अधिपतिः) अधिष्ठाता के समान तू—(वयः) उत्पादक एवं (छन्दः) स्वाधीन (एरय) हो ।

विश्वकर्मा अखिलोत्तमकर्मकर्त्ता राजा **परमेष्ठी** सर्वेषां स्वामी **इव त्वं वयः** कमिता **छन्दः** स्वाधीन **एरय** ।

(विश्वकर्मा) सब उत्तम कर्म करने वाले राजा (परमेष्ठी) सबके स्वामी के समान तू—(वयः) कामना करने वाला एवं (छन्दः) स्वाधीन (एरय) हो ।

वस्तः व्यवहारै राच्छादितो=युक्त **इव त्वं वयः** विविधव्यवहारव्यापी **विबलं** विविधं बलं यस्मात्, **छन्दः** स्वाधीन **एरय** ।

(वस्तः) सब व्यवहारों से युक्त पुरुष के समान तू—(वयः) विविध व्यवहारों को प्राप्त करने वाला (विबलम्) विविध बलों से युक्त एवं (छन्दः) स्वाधीन (एरय) हो ।

वृष्णिः सुखसेचक **इव त्वं विशालं** विस्तीर्णं **वयः** सुखप्रापकं **छन्दः** स्वाच्छन्द्यम् **एरय** ।

(वृष्णिः) सुख के सेचक पुरुष के समान तू—(विशालम्) विस्तृत (वयः) सुख-प्रापक (छन्दः) स्वतन्त्रता को (एरय) प्राप्त कर ।

पुरुषः पुरुषार्थयुक्त **इव त्वं वयः** कमनीयं कर्म **तन्द्रं** कुटुम्बधारणं **छन्दः** बलयुक्तम् **एरय** ।

(पुरुषः) पुरुषार्थी के समान तू—(वयः) कामना करने योग्य कर्म को, (तन्द्रम्) कुटुम्ब के धारण को तथा (छन्दः) बलवान् पुरुष को (एरय) प्राप्त कर ।

व्याघ्रः यो विविधान् समन्ताज्जिघ्रति, **इव त्वं वयः** कमनीयम् **अनाधृष्टं** धार्ष्ट्यं **छन्दः** बलम् **एरय** ।

(व्याघ्रः) विविध जनों को सब ओर से सूँघने वाले व्याघ्र=बाघ के समान तू—(वयः) कामना करने के योग्य, (अनाधृष्टम्) दृढ़ (छन्दः) बल को (एरय) प्राप्त कर ।

सिंहः यो हिनस्ति पश्वादीन् सः, **इव त्वं वयः** पराक्रमं **छदिः** अपवारणं **छन्दः** प्रदीपनम् **एरय** ।

(सिंहः) पशु आदि का हिंसन करने वाले सिंह के समान तू—(वयः) पराक्रम, (छदिः) आच्छादन और (छन्दः) प्रकाश को (एरय) प्राप्त कर ।

पष्ठवाट् यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहत्युष्ट्रादिः **इव त्वं बृहती** महत्त्वं **वयः** बलवान् **छन्दः** पराक्रमम् **एरय** ।

(पष्ठवाट्) पीठ से वहन करने वाले ऊंट आदि के समान तू—(बृहती) महत्ता, (वयः) बलवत्ता और (छन्दः) पराक्रम को (एरय) प्राप्त कर ।

उक्षा सेचको=वृषभ **इव त्वं वयः** बलिष्ठः ककुप् दिशः **छन्दः** आनन्दम् **एरय** ।

(उक्षा) वीर्य-सेचन करने वाले वृषभ के समान तू—(वयः) बलिष्ठ होकर (ककुप्) दिशा तथा (छन्दः) आनन्द को (एरय) प्राप्त कर ।

ऋषभः गतिमान् पशुः **इव त्वं वयः** बलिष्ठः **सतोबृहती छन्दः** स्वातन्त्र्यम् **एरय=प्रेरय** ॥

(ऋषभः) गतिशील पशु के समान तू—(वयः) बलिष्ठ होकर (सतोबृहती) महान् (छन्दः) स्वतन्त्रता को (एरय) प्राप्त कर ॥ १४ । ६ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । एरयेति पूर्वस्मान्मन्त्रादनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ 'एरय' पद की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ॥

[हे स्त्रि पुरुष वा ! मूर्धा प्रजापतिरिव त्वं...छन्दः क्षत्रमेरय...]

स्त्री पुरुषैर्ब्राह्मणादीन् वर्णान् स्वच्छन्दान् संपाद्य, वेदादीन् प्रचार्यालस्यादिकं त्यक्त्वा, शत्रून् निवार्य महद् बलं सदा वर्द्धनीयम् ॥ १४ । ९॥

स्त्री-पुरुष ब्राह्मण आदि वर्णों को स्वतन्त्र करके, वेद आदि शास्त्रों का प्रचार कर, आलस्य आदि को छोड़कर, शत्रुओं को हटाकर, महान् बल को सदा बढ़ावें ॥ १४ । ९॥

भाष्यसार—१. **ग्रीष्मर्त्तु में कर्त्तव्योपदेश**—मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः सारे मानव समाज को स्वस्थ रखने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के शिर के समान उत्तम विद्वान् ब्राह्मणों को, प्रजा का न्याय से पालन करने वाले बलवान् क्षत्रियों को, धनादि की वृद्धि से मनुष्य मात्र में प्रवेश को प्राप्त वैश्यों को तथा शारीरिक श्रम करने वाले पुरुषों को पूर्ण स्वतन्त्र करके वेदादि शास्त्रों का पठन-पाठन तथा प्रचार किया करें। और पूर्ण पुरुषार्थ करके सिंहादि बलवान् पशुओं की तरह बलवान् होकर अपने शत्रुओं का विनाश किया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेष वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य प्रजापति की तरह प्रजा के पालक तथा सिंहादि की तरह बलवान् होकर बल को सदा बढ़ावें ॥ १४ । ९॥

विश्वदेवः । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । स्वराड्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनरतमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है ॥

अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽ उष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

पदार्थः—(**अनड्वान्**) वृषभः (**वयः**) बलम् (**पंक्तिः**) (**छन्दः**) (**धेनुः**) दुग्धप्रदा (**वयः**) कामनाम् (**जगती**) जगदुपकारकम् (**छन्दः**) आह्लादनम् (**त्र्यविः**) त्रयोऽव्यादयो यस्मात्तम् (**वयः**) प्रजननम् (**त्रिष्टुप्**) त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तुवन्ति यया सा (**छन्दः**) (**दित्यवाट्**) दितिभिः=खण्डनैर्निर्वृत्तान् यवादीन् वहति (**वयः**) प्रापणम् (**विराट्**) (**छन्दः**) आनन्दकरम् (**पंचाविः**) पंचेन्द्रियाण्यवन्ति येन सः (**वयः**) विज्ञानम् (**गायत्री**) (**छन्दः**) (**त्रिवत्सः**) त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य सः (**वयः**) पराक्रमम् (**उष्णिक्**) यद् दुःखानि दहति तत् (**छन्दः**) (**तुर्यवाट्**) तुर्यान् चतुरो वेदान् वहति येन सः (**अनुष्टुप्**) अनुस्तौति यया सा (**छन्दः**) सुखसाधकम् । **अत्र पूर्ववत् मन्त्रत्रयप्रतीकानि लोकन्ता इन्द्रमिति लिखितानि निवारितानि ॥ १० ॥**

अन्वयः—हे स्त्रि पुरुष वाऽनड्वानिव त्वं पंक्तिश्छन्दो वय एरय, धेनुरिव त्वं जगती छन्दो वय एरय त्र्यविरिव त्वं त्रिष्टुप् छन्दो वय एरय, दित्यवाडिव त्वं विराट् छन्दो वय एरय पंचाविरिव त्वं गायत्री छन्दो वय एरय, त्रिवत्स इव त्वमुष्णिक् छन्दो वय एरय, तुर्य्यवाडिव त्वमनुष्टुप्छन्दो वय एरय ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा ! **अनड्वान्** वृषभः इव त्वं **पङ्क्तिश्छन्दः वयः** बलम् **एरय** ।

भावार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! (अनड्वान्) बैल के समान तू—(पंक्तिः) प्रकट (छन्दः) स्वतन्त्रता और (वयः) बल को (एरय) प्राप्त कर।

धेनुः दुग्धप्रदा **इव त्वं जगती** जगदुपकारकं **छन्दः** आह्लादनं **वयः** कामनाम् **एरय**।

(धेनुः) दूध देने वाली गाय के समान तू—(जगती) जगत् की उपकारक (छन्दः) आह्लादकारी (वयः) कामना को (एरय) प्राप्त कर।

त्र्यविः त्रयोऽव्यादयो यस्मात्तम् **इव त्वं त्रिष्टुप्** त्रीणि कर्मोपासनाज्ञानानि स्तुवन्ति यया सा **छन्दः वयः** प्रजननम् **एरय**।

(त्र्यविः) तीन—भेड़, बकरी और गौ के अध्यक्ष के समान तू—(त्रिष्टुप्) ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों की स्तुति करने वाले (छन्दः) छन्द को तथा (वयः) सन्तान को (एरय) प्राप्त कर।

दित्यवाट् दितिभिः=खण्डनैर्निर्वृत्तान् यवादीन् वहति, **इव त्वं विराट् छन्दः** आनन्दकरं **वयः** प्रापणम् **एरय**।

(दित्यवाट्) खण्डन से बने यव=जौ आदि प्राप्त करने वाले पुरुष के समान तू—(विराट्) विविध प्रकाश से युक्त (छन्दः) आनन्दकारक (वयः) उपलब्धि को (एरय) प्राप्त कर।

पञ्चाविः पञ्चेन्द्रियाण्यवन्ति येन सः, **इव त्वं गायत्री छन्दो वयः** विज्ञानम् **एरय**।

(पञ्चाविः) पाँच इन्द्रियों की रक्षा करने वाले पुरुष के समान तू—(गायत्री) स्तोता के रक्षक (छन्दः) आनन्दकारी (वयः) विज्ञान को (एरय) प्राप्त कर।

त्रिवत्सः त्रयः कर्मोपासनाज्ञानानि वत्सा इव यस्य सः, **इव त्वमुष्णिक्** यद् दुःखानि दहति तत् **छन्दो वयः** पराक्रमम् **एरय**।

(त्रिवत्सः) तीन–ज्ञान, कर्म, उपासना जिसके वत्स=बछड़े के तुल्य हैं उस पुरुष के समान तू—(उष्णिक्) दुःखों का दहन करने वाले (छन्दः) आनन्दकारी (वयः) पराक्रम को (एरय) प्राप्त कर।

तुर्य्यवाट् तुर्य्यान्=चतुरो वेदान् वहति येन सः **इव त्वमनुष्टुप्** अनुस्तौति यया सा, **छन्दः** सुखसाधकं **वय एरय** ॥ १४ । १० ॥

(तुर्यवाट्) चारों वेदों को प्राप्त करने वाले पुरुष के समान तू—(अनुष्टुप्) स्तुति के साधन (छन्दः) आनन्दकारी (वयः) विज्ञान को (एरय) प्राप्त कर ॥ १४ । १० ॥

[हे स्त्रि पुरुष वा ! अनड्वानिव त्वं पंक्तिश्छन्दो वय एरय···]

भावार्थः—अत्र श्लेषवाचकलुप्तोपमालङ्कारौ, एरय-पदानुवृत्तिश्च ॥ यथाऽनडुहादीनां रक्षणेन कृषीवला अन्नादीन्युत्पाद्य सर्वान् सुखयन्ति, तथैव विद्वांसः स्त्रीपुरुषा विद्यां प्रचार्य सर्वानानन्दयन्ति ॥ १४ । १० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचक लुप्तोपमा अलंकार है। और 'एरय' पद की अनुवृत्ति है॥ जैसे—बैल आदि की रक्षा से किसान लोग अन्न आदि को उत्पन्न करके सबको सुखी करते हैं वैसे ही विद्वान् स्त्री-पुरुष विद्या का प्रचार करके सबको आनन्दित करते हैं ॥ १४ । १० ॥

समीक्षा—यहाँ पूर्ववत् तीन मन्त्रों की प्रतीक 'लोकान्ता इन्द्रम्' ये लिखी हुई थीं; उन्हें हटा दिया है।

भाष्यसार—१. **विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वान् स्त्री-पुरुषों का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वे बैल के समान शारीरिक बल को बढ़ावें, गायादि उपकारक पशुओं के समान सब को आनन्दित करने की

कामना सदा करें, ज्ञान, कर्म तथा उपासना त्रिविध ज्ञान को प्राप्त कर दूसरों को भी ज्ञानवान् बनावें, जीवनोपयोगी यवादि ओषधियों के विविध विज्ञान को जानकर संसार को सुखी बनाने का प्रयत्न करें। पांचों इन्द्रियों को संयम में रखने वालों के समान संयमी, ज्ञानी पुरुषों की तरह दुःखनिवारक शक्ति को प्राप्त करने वाले तथा ईश्वर के उपासक होकर सब प्राणियों का सदा उपकार किया करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेषवाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। अन्नादि उत्पन्न करने वाले किसानों की तरह विद्वान् भी विद्या के प्रचार से सबको आनन्दित करें॥ १४। १०॥

विश्वेदेवाः। **इन्द्राग्नी**=विद्युत्सूर्यौ। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है॥

इन्द्राग्नी ऽ अव्यथमानामिष्टकां दृंहतं युवम्। पृष्ठेन द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्षं च विबाधसे॥ ११॥

पदार्थः—(**इन्द्राग्नी**) इन्द्रो विद्युच्चाग्निः सूर्य्यश्चेव (**अव्यथमानाम्**) अपीडितामचलिताम् (**इष्टकाम्**) इष्टं कर्म यस्यास्ताम् (**दृंहतम्**) वर्धेताम् (**युवम्**) युवाम् (**पृष्ठेन**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**च**) (**वि**) (**बाधसे**)॥ ११॥

अन्वयः—हे इन्द्राग्नी इव वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ! युवं युवामव्यथमानां प्रज्ञां प्राप्येष्टकामिव गृहाश्रमं दृंहतम्। यथा द्यावापृथिवी पृष्ठेनान्तरिक्षं बाधेते तथा दुःखानि शत्रूंश्च बाधेथाम्! हे पुरुष! यथा त्वमेतस्याः स्वपत्न्याः पीडां विबाधसे तथा चेयमपि तव पीडां बाधताम्॥ ११॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्राग्नी** इन्द्रो विद्युच्चाग्निः सूर्य्यश्च **इव वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ! युवं**=**युवामव्यथमानाम्** अपीडितामचलितां **प्रज्ञां प्राप्येष्टकाम्** इष्टं कर्म यस्यास्ताम् **इव गृहाऽऽश्रमं दृंहतं** वर्धेताम्।

यथा द्यावापृथिवी प्रकाशभूमी **पृष्ठेनान्तरिक्षम्** आकाशं **बाधेते, तथा दुःखानि शत्रूंश्च बाधेथाम्।**

हे पुरुष! यथा त्वमेतस्याः स्वपत्न्याः पीडां विबाधसे तथा चेयमपि तव पीडां बाधताम्॥ १४। ११॥

भाषार्थ—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र=विद्युत् और अग्नि=सूर्य के समान वर्तमान स्त्री-पुरुषो! (युवम्) तुम दोनों—(अव्यथमानाम्) अचल प्रज्ञा=बुद्धि को प्राप्त करके (इष्टकाम्) इष्टका के समान गृहाश्रम को (दृंहतम्) बढ़ाओ।

जैसे—(द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पृष्ठेन) पीठ से (अन्तरिक्षम्) आकाश को बाधित करते हैं वैसे दुःखों और शत्रुओं को बाधित=पीड़ित करो।

हे पुरुष! जैसे तू—इस अपनी पत्नी की पीड़ा को (विबाधसे) हटाता है वैसे यह भी तेरी पीड़ा को दूर करे॥

[**हे इन्द्राग्नी इव वर्त्तमानौ स्त्रीपुरुषौ! युवं गृहाश्रमं दृंहतम्**]

भावार्थः—अत्र श्लेष वाचकलुप्तोपमाऽलङ्कारौ। यथा विद्युत्सूर्य्यावितो वर्षित्वौषध्यादीन् वर्धयतस्तथैव स्त्रीपुरुषौ कुटुम्बं वर्धयाताम्।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं॥ जैसे विद्युत् और सूर्य जल बरसा कर ओषधि आदि को बढ़ाते हैं वैसे ही स्त्री-पुरुष कुटुम्ब को बढ़ावें।

[यथा द्यावापृथिवी'''अन्तरिक्षं बाधेते तथा दुःखानि शत्रूंश्च बाधेथाम्]

यथा प्रकाशः पृथिवी आकाशमाच्छादयतस्तथैव गृहाश्रमव्यवहारमलंकुर्याताम् ॥ १४ । ११ ॥

जैसे प्रकाश और पृथिवी आकाश को आच्छादित करते हैं वैसे ही गृहाश्रम के व्यवहार को अलंकृत करें ॥ १४ । ११ ॥

भाष्यसार—**१. स्त्री-पुरुषों का सामान्य-धर्म**—गृहस्थी स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे जैसे विद्युत् और सूर्य वर्षा के द्वारा यवादि ओषधियों को बढ़ाते हैं, वैसे ही विचलित न होने वाली बुद्धि को प्राप्त करके गृहाश्रम को बढ़ाते रहें। क्योंकि गृहाश्रम में ही मनुष्य इष्ट कार्यों की सिद्धि कर सकता है। अतः सभी प्रकार के साधनों से सम्पन्न होकर यज्ञादि सुख के साधनो को बढ़ायें। और उत्तम सन्तान उत्पन्न करके उसको सर्वथा शिक्षित करें। और जैसे प्रकाश और पृथिवी सुखों के साधनों से दुःखों को समाप्त करते हैं, वैसे ही अपने दुःखों एवं दुःखों के कारण शत्रुओं को सदा विनाश किया करें। और स्त्री-पुरुष परस्पर एक दूसरे के दुःखों को दूर किया करें, तब ही सुखों की वृद्धि हो सकती है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेष वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। विद्युत् सूर्य की तरह स्त्री-पुरुष मिलकर परिवार को बढ़ाया करें ॥ १४ । ११ ॥

विश्वकर्मा । **वायुः**=स्पष्टम् । विकृतिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्म ऋतु का फिर व्याख्यान किया है ॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मा**) अखिलशुभक्रियाकुशलः (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) संस्थापयतु (**अन्तरिक्षस्य**) आकाशस्य (**पृष्ठे**) भागे (**व्यचस्वतीम्**) प्रशस्तं व्यचो=विज्ञानं सत्करणं विद्यते यस्यास्ताम् (**प्रथस्वतीम्**) उत्तमविस्तीर्णविद्यायुक्ताम् (**अन्तरिक्षम्**) जलम् । अन्तरिक्षमित्युदकनाम० ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**यच्छ**) (**अन्तरिक्षम्**) प्रशस्तं शोधितमुदकम् (**दृंह**) (**अन्तरिक्षम्**) मधुरादिगुणयुक्तं रोगनाशकमुदकम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**विश्वस्मै**) समग्राय (**प्राणाय**) (**अपानाय**) (**व्यानाय**) (**उदानाय**) (**प्रतिष्ठायै**) (**चरित्राय**) शुभकर्माचाराय (**वायुः**) प्राण इव (**त्वा**) (**अभि**) (**पातु**) (**मह्या**) महत्या (**स्वस्त्या**) सुखक्रियया (**छर्दिषा**) प्रकाशेन (**शन्तमेन**) अतिशयेन सुखकारकेण (**तया**) (**देवतया**) दिव्यसुखप्रदानक्रियया सह (**अङ्गिरस्वत्**) सूत्रात्मवायुवत् (**ध्रुवा**) निश्चलज्ञानयुक्ता (**सीद**) स्थिरा भव ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**अन्तरिक्षम्**) निघण्टु १ । १२ में अन्तरिक्ष शब्द उदक नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे स्त्रि ! विश्वकर्मा पतिर्या व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षस्य पृष्ठे त्वा सादयतु । सा त्वं विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्रायान्तरिक्षं यच्छाऽन्तरिक्षं दृंहान्तरिक्षं मा हिंसीः यो वायुः प्राण इव प्रियस्तव स्वामी मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन त्वामभिपातु सा त्वं तया पत्याख्यया देवतया सहाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **विश्वकर्मा** अखिलशुभक्रियाकुशलः **पतिर्या व्यचस्वतीं** प्रशस्तं व्यचो=विज्ञानं सत्करणं विद्यते यस्यास्ताम् =**प्रथस्वतीं** उत्तमविस्तीर्णविद्यायुक्ताम् **अन्तरिक्षस्य** आकाशस्य **पृष्ठे** भागे **त्वा** त्वां **सादयतु** संस्थापयतु, **सा** त्वं **विश्वस्मै** समग्राय **प्राणायाऽपानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय** शुभकर्माचाराय **अन्तरिक्षं** प्रशस्तं शोधितमुदकं **यच्छ, अन्तरिक्षं** जलं **दृंह, अन्तरिक्षं** मधुरादिगुणयुक्तं रोगनाशकमुदकं **मा हिंसीः** हिंस्याः ।

भाषार्थ—हे स्त्री ! (विश्वकर्मा) सब शुभ क्रियाओं में कुशल पति (व्यचस्वतीम्) प्रशस्त विज्ञान एवं सत्कार वाली, (प्रथस्वतीम्) उत्तम विस्तृत विद्या वाली (त्वाम्) तुझ स्त्री को (अन्तरिक्षस्य) आकाश के (पृष्ठे) भाग में (सादयतु) स्थापित करें; सो तू—(विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण, (अपानाय) अपान, (व्यानाय) व्यान, (उदानाय) उदान, (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा, (चरित्राय) शुभ कर्मों के आचरण के लिए (अन्तरिक्षम्) प्रशस्त शुद्ध जल (यच्छ) दे; (अन्तरिक्षम्) जल को (दृंह) बढ़ा; (अन्तरिक्षम्) मधुर आदि गुणों से युक्त रोगनाशक जल की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर ।

यो वायुः=प्राण इव प्रियस्तव स्वामी **मह्या** महत्या **स्वस्त्या** सुखक्रियया **छर्दिषा** प्रकाशेन **शन्तमेन** अतिशयेन सुखकारकेण [**त्वा**]=**त्वामभिपातु, सा** त्वं **तया**=पत्याख्यया **देवतया** दिव्यसुखप्रदानक्रियया **सहाङ्गिरस्वत्** सूत्रात्मवायुवद् **ध्रुवा** निश्चलज्ञानयुक्ता **सीद** स्थिरा भव ॥ १४ । १२ ॥

जो (वायुः) प्राणों के समान प्रिय तेरा स्वामी (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुखद क्रिया से, (छर्दिषा) प्रकाश से, (शन्तमेन) अत्यन्त सुखकारक कर्म से [त्वा] तेरी (अभिपातु) रक्षा करता है, सो तू—(तया) उस (देवतया) दिव्य सुख-प्रदान करने वाले पति के साथ (अङ्गिरस्वत्) सूक्ष्म वायु के समान (ध्रुवा) निश्चल ज्ञान-युक्त होकर (सीद) स्थिर हो ॥ १४ । १२ ॥

[हे स्त्रि ! विश्वकर्मा पतिः···यां त्वा सादयतु सा त्वमन्तरिक्षं यच्छ, दृंह, मा हिंसीः, यो वायुः···स्वामी··· त्वा=त्वामभिपातु···सा त्वं तया···देवतया सह···ध्रुवा सीद]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा पुरुषः स्त्रियं सत्कर्मसु नियोजयेत् तथा स्त्र्यपि स्वपतिं च प्रेरयेत्, यतः सततमानन्दो वर्द्धेत ॥ १४ । १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—पुरुष स्त्री को शुभ कर्मों में लगावे वैसे स्त्री भी अपने पति को शुभ-कर्मों में प्रेरित करे, जिससे सदा आनन्द की वृद्धि हो ॥

भाष्यसार—१. स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक कर्त्तव्य—पुरुष का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह स्वयं शुभ कार्यों में प्रवृत्त होकर प्रशस्त विज्ञान वाली उत्तम विदुषी स्त्री को आकाश अर्थात् सत्कर्मों में प्रेरित करके प्रकाशित करे। उसकी उन्नति में सदा सहायक रहे। और स्त्रियाँ भी अपने पतियों को शुभ कर्मों में ही सदा प्रेरित करें । दोनों मिलकर प्राण, अपान, व्यानादि शरीरस्थ वायुओं को स्थिर करके समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए सच्चरित्र होकर रहें। यज्ञादि साधनों से अन्तरिक्षस्थ सूक्ष्म जलों को सदा शुद्ध करते रहें, जिससे किसी प्रकार का रोग न हो सके। अन्तरिक्षस्थ जलों के दूषित होने से ही विभिन्न प्रकार के रोगों की वृद्धि होती है। अतः उसको कभी हिंसित न करें । प्राण के समान प्रिय पति स्त्री की सुखद तथा शान्त कर्मों से रक्षा करे और स्त्री दिव्य सुखों को देने के कारण देव तुल्य पति के साथ सदा स्थित रहे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। स्त्री-पुरुष वायु की तरह एक दूसरे को शुभकार्यों में प्रवृत्त करें ॥ १४ । १२ ॥

विश्वदेवः । **दिशः=स्पष्टम्** । विराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्मऋतु का फिर व्याख्यान किया है ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराड-स्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**राज्ञी**) राजमाना (**असि**) (**प्राची**) पूर्वा (**दिक्**) दिगिव (**विराट्**) विविध-विनयविद्याप्रकाशयुक्ता (**असि**) (**दक्षिणा**) (**दिक्**) दिगिव (**सम्राट्**) सम्यक् सुखे भूगोले राजमाना (**असि**) (**प्रतीची**) पश्चिमा (**दिक्**) (**स्वराट्**) या स्वयं राजते सा (**असि**) (**उदीची**) उत्तरा (**दिक्**) (**अधिपत्नी**) गृहेऽधिकृता स्त्री (**असि**) (**बृहती**) महती (**दिक्**) अध ऊर्ध्वा ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं प्राची दिगिव राज्ञ्यसि दक्षिणा दिगिव विराडसि प्रतीची दिगिव सम्राडस्युदीची दिगिव स्वराडसि बृहती दिगिवाधिपत्न्यसि सा त्वं सर्वान् पत्यादीन् प्रीणीहि ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं **प्राची** पूर्वा **दिगिव राज्ञी** राजमाना **असि, दक्षिणा दिगिव विराट्** विविधविनयविद्याप्रकाशयुक्ता **असि, प्रतीची** पश्चिमा **दिगिव सम्राट्** सम्यक् सुखे भूगोले राजमाना **असि, उदीची** उत्तरा **दिगिव स्वराट्** या स्वयं राजते सा **असि, बृहती** महती **दिक्** अध ऊर्ध्वा **इवाधिपत्नी** गृहेऽधिकृता स्त्री **असि, सा त्वं सर्वान् पत्यादीन् प्रीणीहि** ॥ १४ । १३ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—(प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) राजमान=प्रकाशमान (असि) है; (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (विराट्) विविध विनय, विद्या और प्रकाश से युक्त (असि) है; (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्) उत्तम रीति से सुखमय भूगोल में राजमान=प्रकाशमान (असि) है; (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा के समान (स्व-राट्) स्वयं प्रकाशमान (असि) है, (बृहती) बड़ी (दिक्) नीचे और ऊपर की दिशा के समान (अधि-पत्नी) घर में अधिकार वाली पत्नी है, सो तू—सब पति आदि जनों को तृप्त कर ॥ १४ । १३ ॥

[**हे स्त्रि ! या त्वं प्राची दिगिव···असि सा त्वं सर्वान् पत्यादीन् प्रीणीहि**]

भावार्थः—अत्र वाचक-लुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा दिशः सर्वतोऽभिव्याप्ता विज्ञापिका अक्षुब्धाः सन्ति तथैव स्त्री शुभगुणकर्मस्वभावैः सहिता स्यात् ॥ १४ । १३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे दिशाएँ सब ओर व्याप्त, विज्ञापक और अक्षुब्ध हैं वैसे ही स्त्री शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त हो ॥ १४ । १३ ॥

भाष्यसार—**१. गृहाश्रम में स्त्री के कर्त्तव्य**—गृहाश्रम में प्रवेश करके स्त्रियों को उचित है कि वे पूर्व दिशा के समान विद्या से प्रकाशमान हों, दक्षिण-दिशा के समान विविध विनयादि गुणों से युक्त हों, पश्चिम-दिशा की तरह उत्तम सुखों की प्राप्ति का प्रयत्न करने वाली हों, उत्तर-दिशा की

तरह स्व कर्त्तव्य-पालन से स्वयं प्रकाशमान हों और नीचे ऊपर की दिशाओं की तरह घर के सब कार्यों को व्यवस्थित रूप में करने से घर की स्वामिनी बनकर रहें। और घर में श्वसुर, आदि गुरुजनों की तथा पति की सब प्रकार से सेवा किया करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे दिशाएँ व्यापक तथा अक्षुब्ध हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाली होवें ॥ १४। १३ ॥

विश्वेदेवाः। **वायुः**=प्राणप्रियपतिः। स्वराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ग्रीष्मऋतु का फिर व्याख्यान किया है॥

वि॒श्वक॑र्मा त्वा सादयत्व॒न्तरि॑क्षस्य पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम्।
विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ।
वा॒युष्टे॒ऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मा**) सकलेष्टक्रियः (**त्वा**) त्वाम् (**सादयतु**) (**अन्तरिक्षस्य**) जलस्य (**पृष्ठे**) उपरिभागे (**ज्योतिष्मतीम्**) बहु ज्योतिर्विद्यते यस्यास्ताम् (**विश्वस्मै**) सर्वस्मै (**प्राणाय**) (**अपानाय**) (**व्यानाय**) (**विश्वम्**) सम्पूर्णम् (**ज्योतिः**) विज्ञानम् (**यच्छ**) गृहाण (**वायुः**) प्राण इव प्रियः (**ते**) तव (**अधिपतिः**) (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) सूर्यवत् (**ध्रुवा**) दृढा (**सीद**) ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि! यो ज्योतिष्मतीं त्वा विश्वस्मै प्राणायाऽपानाय व्यानायाऽन्तरिक्षस्य पृष्ठे विश्वकर्मा सादयतु सा त्वं विश्वं ज्योतिर्यच्छ यो वायुरिव तेऽधिपतिरस्ति तया देवतया सह ध्रुवाङ्गिरस्वत् सीद ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि! यां **ज्योतिष्मतीं** बहु ज्योतिर्विद्यते यस्यास्तां **त्वा** त्वां **विश्वस्मै** सर्वस्मै **प्राणायाऽपानाय व्यानायाऽन्तरिक्षस्य** जलस्य **पृष्ठे** उपरिभागे **विश्वकर्मा** सकलेष्टक्रियः **सादयतु, सा त्वं विश्वं** सम्पूर्णं **ज्योतिः** विज्ञानं **यच्छ** गृहाण।

यो वायुः प्राण इव प्रियः **ते** तव **अधिपतिरस्ति, तया देवतया सह ध्रुवा** दृढा **अङ्गिरस्वत्** सूर्यवत् **सीद** ॥ १४। १४ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री! (त्वा) तुझ (ज्योतिष्मतीम्) बहुत ज्योति वाली को (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण, (अपानाय) अपान, (व्यानाय) व्यान के लिए (अन्तरिक्षस्य) जल के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वकर्मा) सकल इष्ट—क्रियाओं वाला पुरुष (सादयतु) स्थापित करे; सो तू—(विश्वम्) सम्पूर्ण (ज्योतिः) विज्ञान को (यच्छ) ग्रहण कर।

जो (वायुः) प्राणों के समान प्रिय (ते) तेरा (अधिपतिः) स्वामी है (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाले पति के साथ (ध्रुवा) दृढ़ होकर (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (सीद) स्थिर हो॥

[हे स्त्रि! यां ज्योतिष्मतीं त्वा ... विश्वकर्मा सादयतु सा त्वं विश्वं ज्योतिर्यच्छ]

भावार्थः—स्त्री ब्रह्मचर्येण स्वयं विदुषी भूत्वा शरीरात्मबलवर्द्धनाय स्वापत्येभ्यो विज्ञानं सततं प्रदद्यात्।

भावार्थ—स्त्री ब्रह्मचर्य से स्वयं विदुषी होकर शरीर और आत्मा के बल की वृद्धि के लिए अपने सन्तानों को विज्ञान सदा प्रदान करे।

[उपसंहरते]

इति ग्रीष्मर्त्तुव्याख्यानं कृतम् ।। १४ । १४ ।। यह ग्रीष्म-ऋतु का व्याख्यान किया है ।।

भाष्यसार—**स्त्रियों का परम कर्त्तव्य**—गृहाश्रम में प्रवेश से पूर्व स्त्रियों को योग्य है कि वे ग्रीष्मर्तु की तरह ब्रह्मचर्यादि नियमों के पालन से तेजस्वी और विद्याग्नि से पूर्ण प्रकाशमान बनें। और गृहाश्रम में जाकर भी सब शुभकार्यों में निपुण पुरुष को प्राण, अपान तथा व्यान इन तीनों प्रकार के प्राणों को संयम में रखने में सहायक हों। क्योंकि इनके संयम से शरीर सदा नीरोग तथा स्वस्थ रहता है। तत्पश्चात् ज्ञान-विज्ञान के ग्रहण में सदा उद्यत रहें। अपनी सन्तान को ज्ञान के प्रकाश से सदा सन्मार्ग का प्रदर्शन किया करें। और जो प्राणों के समान प्रिय पति है, उस दिव्य गुणों वाले पति के साथ सूर्य की तरह नियमित होकर स्थिर रहें ।। १४ । १४ ।।

विश्वदेवः। **ऋतवः=स्पष्टम्**। स्वराडुत्कृतिः। षड्जः ।।

अथ वर्षर्त्तुर्व्याख्यायते ।।

अब वर्षाऋतु का व्याख्यान किया जाता है ।।

नभ॑श्च नभ॒स्य॒श्च॒ वार्षि॑कावृतू ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॒ऽसि कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ऽ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। ये ऽ अ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी ऽ इ॒मे वार्षि॒कावृ॒तू ऽ अ॑भि॒कल्प॑माना॒ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वा ऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ।। १५ ।।

पदार्थः—(**नभः**) नह्यन्ति घना यस्मिन् स श्रावणो मासः (**च**) (**नभस्यः**) नभस्सु भवो भाद्रपदः (**च**) (**वार्षिकौ**) वर्षासु भवौ (**ऋतू**) वर्षर्त्तुसम्बन्धिनौ (**अग्नेः**) ऊष्मणः (**अन्तःश्लेषः**) मध्ये स्पर्शो यस्य (**असि**) अस्ति (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) (**ओषधयः**) (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशस्यभावाय (**सव्रताः**) समानानि व्रतानि=नियमा येषान्ते (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) समानं मनो=ज्ञानं येभ्यस्ते (**अन्तरा**) मध्ये (**द्यावापृथिवी**) (**इमे**) (**वार्षिकौ**) वर्षासु भवौ (**ऋतू**) वृष्टिप्रापकौ (**अभिकल्पमानाः**) अभितः सुखाय समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथा विद्युतम् (**देवाः**) (**अभिसंविशन्तु**) आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) (**सीदतम्**) ।। १५ ।।

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां यौ नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू मम ज्यैष्ठ्याय कल्पेतां ययोरग्नेरन्तःश्लेषोऽस्यस्ति याभ्यां सह द्यावापृथिवी कल्पेतां ताभ्यां युवाङ्कल्पेतां यथाप ओषधयश्च कल्पन्तामग्नयः पृथक् कल्पन्ते तथा सव्रताः समनसोऽग्नयः कल्पन्तां य इमे द्यावापृथिवी कल्पेते तौ वार्षिकावृतू अभिकल्पमाना देवा इन्द्रमिव तया देवतया सहाऽभिसंविशन्तु तयोरन्तराङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।। १५ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रीपुरुषौ** ! **युवां यौ नभः** नह्यन्ति घना यस्मिन् स श्रावणो मासः **च नभस्यः** नभस्सु भवो भाद्रपदः **च वार्षिकौ** वर्षासु भवौ **ऋतू** वर्षर्त्तुसम्बन्धिनौ **मम ज्यैष्ठ्याय**

भावार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—जो (नभः) बादलों को बाँधने वाला श्रावण मास है (च) और जो (नभस्यः) बादलों में विद्यमान भाद्रपद मास है (च) ये दोनों (वार्षिकौ) वर्षा-

प्रशस्यभावाय **कल्पेतां** समर्थयतः, **ययोरग्नेः** ऊष्मण **अन्तःश्लेषः** मध्ये स्पर्शो यस्य **असि**=**अस्ति, याभ्यां सह द्यावापृथिवी कल्पेतां** समर्थयतः, **ताभ्यां युवां कल्पेतां** समर्थयतः ।

सम्बन्धी (ऋतू) ऋतु (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) उत्तमता के लिए (कल्पेताम्) समर्थ होवें । जिनमें (अग्नेः) ऊष्मा का (अन्तःश्लेषः) मध्य स्पर्श (असि) है, जिनसे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ होते हैं, उनसे तुम दोनों (कल्पेताम्) समर्थ होवो ।

यथाऽऽप ओषधयश्च कल्पन्तां समर्थयन्ताम्, **अग्नयः पृथक् कल्पन्ते**, तथा **सव्रताः** समानानि व्रतानि=नियमा येषान्ते **समनसः** समानं मनो=ज्ञानं येभ्यस्ते **अग्नयः कल्पन्तां** समर्थयन्ताम् ।

जैसे—(आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियाँ (कल्पन्ताम्) समर्थ होती हैं, (अग्नयः) अग्नियाँ (पृथक्) अलग (कल्पन्ते) समर्थ होती हैं, वैसे—(सव्रताः) तुल्य व्रत=नियम वाले (समनसः) तुल्य मन=ज्ञान वाले (अग्नयः) विद्वान् लोग (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ।

ये इमे द्यावापृथिवी कल्पेते, तौ वार्षिकौ वर्षासु भवौ **ऋतू** वृष्टिप्रापकौ **अभिकल्पमानाः** अभितः सुखाय समर्थयन्तः **देवाः इन्द्रमिव** यथा विद्युतं **तया देवतया सहाभिसंविशन्तु** आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु **तयोरन्तरा** मध्ये **अङ्गिरस्वत् ध्रुवे सीदतम्** ।। १४ । १५ ।।

जो (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (कल्पेते) समर्थ हैं, और उस (वार्षिकौ) वर्षा सम्बन्धी (ऋतू) वृष्टि-प्रापक ऋतु को (अभिकल्पमानाः) सब ओर से सुख के लिए समर्थ बनाने वाले (देवाः) विद्वान् (इन्द्रमिव) विद्युत् के समान (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाली वर्षा के साथ (अभिसंविशन्तु) घर में प्रवेश करें वैसे तुम उन (अन्तरा) वर्षा ऋतु के मासों में (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (ध्रुवे) निश्चल होकर (सीदतम्) स्थिर रहो ।। १४ । १५ ।।

[हे स्त्रीपुरुषौ !···वार्षिकावृतू मम ज्यैष्ठ्याय कल्पेताम्···]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । मनुष्यैर्विद्वद्वद् वर्षासु सामग्री संग्राह्या, यतो वर्षासु सर्वाणि सुखानि भवेयुः ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ।। मनुष्य—विद्वानों के समान वर्षा में सामग्री का संग्रह करें, जिससे वर्षा में सब सुख हों ।। १४ । १५ ।।

भाष्यसार—१. **वर्षा-ऋतु में कर्त्तव्योपदेश**—सभी स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य है कि श्रावण और भाद्रपद मास वर्षा-ऋतु के हैं, इन में अग्नि का मध्य स्पर्श होता है अतः शरीर के स्वास्थ्य के लिए विशेष प्रयत्न करें । शरीरस्थ जठराग्नि मन्द हो जाती है, मच्छरादि उत्पन्न होने से तरह-तरह की बीमारियाँ उत्पन्न होने का भय रहता है, अतः इन मासों को उत्तम स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिए विद्वानों की तरह व्रतों तथा नियमों का पालन करें, सहृदय-भाव से रहें । वर्षा होने से विभिन्न प्रकार की ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, वे भी रोगों की निवृत्ति के लिए समर्थ होवें । वर्षा-ऋतु में सभी सुख देने वाले पदार्थों का संग्रह करके विद्युत् की तरह दिव्य गुणों को ग्रहण करें और सूर्य की तरह जीवनों को नियमित बनाकर स्वास्थ्य-प्राप्ति किया करें ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है। विद्युत् तथा सूर्य के समान सभी स्त्री-पुरुष जीवनों को बनायें ॥ १४ । १५ ॥

विश्वेदेवाः । **ऋतवः**=स्पष्टम् । भुरिगुत्कृतिः । षड्जः ॥

अथ शरदृतुर्व्याख्यायते ॥

अब शरद् ऋतु का व्याख्यान किया जाता है ॥

इ॒षश्चो॒र्जश्च॑ शा॒र॒दावृ॒तू ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ऽ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । ये ऽ अ॒ग्नयः॒ सम॑नसो॒ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी ऽ इ॒मे शा॒र॒दावृ॒तू ऽ अ॑भि॒कल्प॑माना॒ ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वा ऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् । १६ ॥

पदार्थः—(**इषः**) इष्यतेऽसावाश्विनो मासः (**च**) (**ऊर्जः**) ऊर्जन्ति सर्वे पदार्था यस्मिन् स कार्त्तिकः (**च**) (**शारदौ**) शरदि भवौ (**ऋतू**) बलप्रदौ (**अग्नेः**) (**अन्तःश्लेषः**) मध्यस्पर्शः (**असि**) अस्ति (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) (**ओषधयः**) (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) बहिःस्थाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) प्रशस्तसुखभावाय (**सव्रताः**) संनियमाः (**ये**) (**अग्नयः**) शरीरस्थाः (**समनसः**) मनसा सह वर्त्तमानाः (**अन्तरा**) मध्ये **द्यावापृथिवी इमे** (**शारदौ**) (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) (**इन्द्रमिव**) (**देवाः**) (**अभिसंविशन्तु**) (**तया**) (**देवतया**) सह (**अङ्गिरस्वत्**) आकाशवत् (**ध्रुवे**) निश्चलसुखे (**सीदतम्**) सीदतः । **अत्र पुरुषव्यत्ययः** ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(**सीदतम्**) यहाँ पुरुषव्यत्यय से प्रथम पुरुष के स्थान पर मध्यमपुरुष हुआ है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! याविषश्चोर्जश्च शारदावृतू यथा मम ज्यैष्ठ्याय भवतो ययोरग्नेरन्तःश्लेषोऽस्यस्ति। तौ द्यावापृथिवी कल्पेतामाप ओषधयश्च कल्पन्ताम् । सव्रता अग्नयः पृथक् कल्पन्ताम् । येऽन्तरा समनसोऽग्नय इमे द्यावापृथिवी कल्पेताम् । शारदावृतू इन्द्रमिवाभि कल्पमाना देवा अभिसंविशन्तु तथा तया देवतया सह ध्रुवे सीदतं गच्छतः ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **याविषः** इष्यतेऽसावाश्विनो मासः **चोर्जः** ऊर्जन्ति सर्वे पदार्था यस्मिन् स कार्त्तिकः **च शारदौ** शरदि भवौ **ऋतू** बलप्रदौ **यथा मम ज्यैष्ठ्याय** प्रशस्त-सुखभावाय **भवतः, ययोरग्नेरन्तःश्लेषः** मध्यस्पर्शः **असि=अस्ति, तौ द्यावापृथिवी कल्पेतां** समर्थयतः, **आप ओषधयश्च** कल्पन्तां समर्थयन्ताम्, **सव्रताः** सनियमाः **अग्नयः** बहिःस्थाः **पृथक् कल्पन्तां** समर्थ-यन्ताम्, **येऽन्तरा** मध्ये **समनसः** मनसा सह वर्त्त-मानाः **अग्नयः** शरीरस्थाः **इमे द्यावापृथिवी कल्पेतां** समर्थयतः, **शारदौ** शरदि भवौ **ऋतू** बलप्रदौ **इन्द्रमिव** यथा विद्युतम् **अभिकल्पमानाः** अभितः

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(इषः) कामना के योग्य आश्विन मास है (च) और (ऊर्जः) जिसमें सब पदार्थ ऊर्जा=बल को प्राप्त करते हैं वह कार्त्तिक मास है (च) ये दोनों—(शारदौ) शरद् सम्बन्धी (ऋतू) बलप्रद ऋतु जैसे (मम) मेरे (ज्यैष्ठ्याय) प्रशस्त सुख के लिए हैं, जिनमें (अग्नेः) ऊष्मा का (अन्तःश्लेषः) मध्य स्पर्श (असि), है; वे दोनों (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (कल्पेताम्) समर्थ करते हैं, (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियाँ (कल्पन्ताम्) समर्थ होती हैं, (सव्रताः) नियम सहित (अग्नयः) बाह्य अग्नियाँ (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होती

सुखाय समर्थयन्तः देवा अभिसंविशन्तु आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु, तथा तया देवतया सह [अङ्गिरस्वत्] आकाशवद् ध्रुवे निश्चलसुखे सीदतं=गच्छतः सीदतः ।। १४ । १६ ।।

हैं, (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ होती हैं; (शारदौ) शरद्—सम्बन्धी (ऋतू) बलप्रद ऋतु को (इन्द्रमिव) विद्युत् के समान (अभिकल्पमानाः) सुख के लिए समर्थ बनाने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) घर में प्रवेश करते हैं वैसे (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाली शरद् ऋतु के साथ (अङ्गिरस्वत्) आकाश के समान (ध्रुवे) निश्चल सुख वाले होकर (सीदतम्) रहो ।। १४ । १६ ।।

[हे मनुष्याः ! यौ इषश्चोर्जश्च शारदावृतू यथा मम ज्यैष्ठयाय भवतो ···]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ।। हे मनुष्या ! ये शरद्युपयुक्ताः पदार्थाः सन्ति, तान् यथायोग्यं संस्कृत्य सेवध्वम् ।। १४ । १६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ।। हे मनुष्यो ! जो शरद् ऋतु में उपयुक्त पदार्थ हैं उन्हें यथायोग्य संस्कृत=शुद्ध करके सेवन करो ।।

भाष्यसार—१. **शरद्ऋतु में कर्त्तव्योपदेश**—शरद्-ऋतु के आश्विन तथा कार्त्तिक मास हैं। ये दोनों मास कामना करने योग्य और ऊर्जा-शक्ति को बढ़ाने वाले होते हैं। इस ऋतु में अग्नि का मध्य स्पर्श होने से शरीर की मन्दाग्नि रहती है। अतः विभिन्न प्रकार की ओषधियों के सेवन से अग्नि की वृद्धि करें और यम-नियमों का पालन करके शरीर के बल को बढ़ावें। प्रकाश और भूमि को अग्नि-होत्रादि से समर्थ बनावें। विद्युत् के समान उत्तम गुणों को धारण करके परमैश्वर्यवान् बनें। सभी पदार्थों को संस्कृत करके सेवन करें। इस दिव्य गुणों वाली शरद् ऋतु में आकाश की तरह स्थिर होकर रहें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। सभी मनुष्य इन्द्र की तरह दिव्य गुण वाले होकर तथा आकाश की तरह स्थिर होकर रहें ।। १४ । १६ ।।

विश्वेदेवः । **छन्दांसि=आयुरादयः** । भुरिगतिजगती । धैवतः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

शरद्ऋतु का फिर व्याख्यान किया है ।।

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचंम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानंम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ।। १७ ।।

पदार्थः—(**आयुः**) जीवनम् (**मे**) मम (**पाहि**) (**प्राणम्**) (**मे**) (**पाहि**) (**अपानम्**) (**मे**) (**पाहि**) (**व्यानम्**) (**मे**) (**पाहि**) (**चक्षुः**) दर्शनम् (**मे**) (**पाहि**) (**श्रोत्रम्**) श्रवणम् (**मे**) (**पाहि**) (**वाचम्**) वाणीम् (**मे**) (**पिन्व**) सुशिक्षया सिंच (**मनः**) (**मे**) (**जिन्व**) प्रीणीहि (**आत्मानम्**) चेतनम् (**मे**) (**पाहि**) (**ज्योतिः**) विज्ञानम् (**मे**) मह्यम् (**यच्छ**) देहि ।। १७ ।।

अन्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा त्वं शरदृतावायुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ।। १७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि पुरुष वा ! **त्वं शरद्दतावायुः** जीवनं **मे** मम **पाहि** रक्ष, **प्राणं मे** मम **पाहि** रक्ष, **अपानं मे** मम **पाहि** रक्ष, **व्यानं मे** मम **पाहि** रक्ष, **चक्षुः** दर्शनं **मे** मम **पाहि** रक्ष, **श्रोत्रं** श्रवणं **मे** मम **पाहि** रक्ष, **वाचं** वाणीं **मे** मम **पिन्व** सुशिक्षया सिञ्च, **मनो मे** मम **जिन्व** प्रीणीहि, **आत्मानं** चेतनं **मे** मम **पाहि** रक्ष, **ज्योतिः** विज्ञानं **मे** मम **यच्छ** देहि ।। १४ । १७ ।।

भाषार्थ—हे स्त्री वा पुरुष ! तू–शरद्-ऋतु में (मे) मेरे (आयुः) जीवन की (पाहि) रक्षा कर; (मे) मेरे (प्राणम्) प्राण की (पाहि) रक्षा कर; (मे) मेरे (अपानम्) अपान की (रक्ष) रक्षा कर; (मे) मेरे (व्यानम्) व्यान की (रक्ष) रक्षा कर; (मे) मेरे (चक्षुः) नेत्रों की (रक्ष) रक्षा कर; (मे) मेरे (श्रोत्रम्) कानों की (रक्ष) रक्षा कर; (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (पिन्व) सुशिक्षा से सींच, (मे) मेरे (मनः) मन को (जिन्व) तृप्त कर; (मे) मेरी (आत्मानम्) आत्मा की (पाहि) रक्षा कर; (मे) मुझे (ज्योतिः) विज्ञान (यच्छ) प्रदान कर ।। १४ । १७ ।।

[हे स्त्रि पुरुष वा ! त्वं शरद्दतावायुर्मे पाहि···]

भावार्थः—स्त्री पुरुषस्य पुरुषः स्त्रियाश्च यथाऽऽयुरादीनां वृद्धिः स्यात्तथैव नित्यमाचरेताम् ।।

भावार्थ—स्त्री पुरुष की और पुरुष स्त्री की जैसे आयु आदि की वृद्धि होवे वैसा ही नित्य आचरण करें ।। १४ । १७ ।।

भाष्यसार—**शरद्ऋतु में कर्त्तव्योपदेश**—सभी स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे अपने जीवन की रक्षा नित्य किया करें। जीवन की रक्षा के लिए प्राण, अपान तथा व्यान इन तीनों प्रकार के प्राणों की सतत रक्षा करें। ज्ञान के साधन नेत्र, श्रोत्र और वाणी को सुशिक्षा से तृप्त रक्खें। इसी प्रकार सुख-दुःख के मूल कारण मन को वश में करके आत्मा की शक्ति बढ़ाएँ। और विविध विज्ञान की प्राप्ति का सतत प्रयत्न किया करें। वैसे तो सभी ऋतुओं में स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए, किन्तु गर्मी और सर्दी की सन्धि होने के कारण शरद् ऋतु में विशेष ध्यान रखना चाहिये ।। १४ । १७ ।।

विश्वेदेवः । **छन्दांसि=आनन्दादयः** । भुरिगतिजगती । निषादः ।।

स्त्रीपुरुषैः कथं विज्ञानं वर्द्धनीयमित्याह ।।

स्त्री पुरुषों को कैसे विज्ञान बढ़ाना चाहिये, इस विषय का उपदेश किया है ।।

मा च्छन्दः॑ प्र॒मा च्छन्दः॑ प्रति॒मा च्छन्दो॑ऽअस्त्री॒वय॒श्छन्दः॑ प॒ङ्क्तिश्छन्द॑ऽउ॒ष्णिक् छन्दो॑ बृह॒ती छन्दो॑ऽनु॒ष्टुप् छन्दो॑ वि॒राट् छन्दो॑ गाय॒त्री छन्द॑स्त्रि॒ष्टुप् छन्दो॒ जग॑ती॒ छन्दः॑ ।। १८ ।।

पदार्थः—(**मा**) यया मीयते सा (**छन्दः**) आनन्दकरी (**प्रमा**) यया प्रमीयते सा प्रज्ञा (**छन्दः**) बलम् (**प्रतिमा**) प्रतिमीयते यया क्रियया सा (**छन्दः**) (**अस्त्रीवयः**) यदस्यति कामयते च तदस्त्री-वयोऽन्नादिकम् (**छन्दः**) बलकारि (**पङ्क्तिः**) पंचावयवो योगः (**छन्दः**) प्रकाशः (**उष्णिक्**) स्नेहनम् (**छन्दः**) (**बृहती**) महती प्रकृतिः (**छन्दः**) (**अनुष्टुप्**) सुखानामनुष्टम्भनम् (**छन्दः**) (**विराट्**) विविधविद्या-प्रकाशनम् (**छन्दः**) (**गायत्री**) या गायन्तं त्रायते सा (**छन्दः**) (**त्रिष्टुप्**) यया त्रीणि सुखानि स्तोभति सा (**छन्दः**) (**जगती**) गच्छति सर्वं जगद्यस्यां सा (**छन्दः**) ।। १८ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्माछन्दः प्रमाच्छन्दः प्रतिमा छन्दोऽस्त्रीवयश्छन्द पङ्क्ति-

श्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः स्वीकृत्य विज्ञाय च सुखयितव्यम् ।। १८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्मा यया मीयते सा छन्दः आनन्दकरी, **प्रमा** यया प्रमीयते सा प्रज्ञा **छन्दः** बलं, **प्रतिमा** प्रतिमीयते यया क्रियया सा **छन्दः**, **अस्त्रीवयः** यदस्यति कामयते च तदस्त्रीवयोऽन्नादिकं **छन्दः** बलकारि **पङ्क्तिः** पञ्चावयवो योगः **छन्दः** प्रकाशः **उष्णिक्** स्नेहनं **छन्दः**, **बृहती** महती प्रकृतिः **छन्दः**, **अनुष्टुप्** सुखानामनुष्टम्भनं **छन्दः**, **विराट्** विविधविद्याप्रकाशनं **छन्दः**, **गायत्री** या गायन्तं त्रायते सा **छन्दः**, **त्रिष्टुप्** यया त्रीणि सुखानि स्तोभति सा **छन्दः**, **जगती** गच्छति सर्वं जगद्यस्यां सा **छन्दः**, **स्वीकृत्य विज्ञाय च सुखयितव्यम्** ।। १४ । १८ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(मा) जिससे जाना जाता है वह मन (छन्दः) आनन्दकारी है, (प्रमा) जिससे निश्चय किया जाता है वह बुद्धि (छन्दः) बल है, (प्रतिमा) जिससे प्रत्येक को जाना जाता है वह प्रतिमा (छन्दः) आनन्दकारी है, (अस्त्रीवयः) जो बल और कान्ति-वर्द्धक अन्न आदि (छन्दः) बलकारी है, (पङ्क्तिः) पाँच अवयवों वाला योग (छन्दः) प्रकाश है, (उष्णिक्) स्नेह करना (छन्दः) आनन्दकारी है, (बृहती) महान् प्रकृति (छन्दः) सुखदायक है, (अनुष्टुप्) सुखों का आश्रय करना (छन्दः) सुखकारक है, (विराट्) विविध विद्याओं का प्रकाश करना (छन्दः) आनन्दकारी है, (गायत्री) गायक की रक्षा करना (छन्दः) आनन्दकारी है, (त्रिष्टुप्) तीन सुखों को प्राप्त करना (छन्दः) आनन्दकारी है, (जगती) सब जगत् की गति का आधार=ईश्वर (छन्दः) आनन्दकारी है; उसे स्वीकार करके एवं जानकर सुखी रहो ।। १४ । १८ ।।

[हे मनुष्याः ! युष्माभिर्मा छन्दः'''स्वीकृत्य विज्ञाय च सुखयितव्यम्]

भावार्थः—ये मनुष्याः प्रमादिभिः साध्यानि धर्म्याणि कर्माणि साध्नुवन्ति ते सुखालङ्कृता भवन्ति ।। १४ । १८ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य प्रमा=बुद्धि आदि से सिद्ध करने योग्य धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते हैं वे सुख से अलंकृत होते हैं ।। १४ । १८ ।।

भाष्यसार—विज्ञान की वृद्धि के उपाय—जो मनुष्य विज्ञान की उन्नति से सुखों को बढ़ाना चाहते हैं, वे सर्वप्रथम सब को जानने के साधन मन को संयम में करके आनन्द को बढ़ाएँ । तदनन्तर निश्चय करने वाली बुद्धि के बल को बढ़ाएँ । मन और बुद्धि के सहयोग से ज्ञान-वर्धन होता है । ज्ञान से भौतिक पदार्थों के विज्ञान को जानकर अन्नादि बलवर्धक पदार्थों को बढ़ायें । सांसारिक उन्नति करते हुए ईश्वर की उपासना करके परम सुख मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न करें । क्योंकि ईश्वर ही पृथिवी आदि पाँच अवयवों के योग से संसार के पदार्थों को बनाता है, वह सुखों का आश्रय है, विविध विद्याओं का प्रकाश करने वाला है, गायक अर्थात् अपने भक्तों की रक्षा करने वाला है, सब जगत् का एक मात्र आश्रय है, और शारीरिक मानसिक तथा आध्यात्मिक सुखों का दाता है ।। १४। १८ ।।

विश्वदेवः । **पृथिव्यादयः=स्पष्टम्** । आर्षी जगती । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

स्त्री पुरुषों को विज्ञान कैसे बढ़ाना चाहिए, इसका फिर उपदेश किया है ।।

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक्
छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(पृथिवी) भूमिः (छन्दः) स्वछन्दः (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (छन्दः) (द्यौः) प्रकाशः (छन्दः) (समाः) वर्षाणि (छन्दः) (नक्षत्राणि) (छन्दः) (वाक्) (छन्दः) (मनः) (छन्दः) (कृषिः) भूमिविलेखनम् (छन्दः) (हिरण्यम्) सुवर्णम् (छन्दः) (गौः) (छन्दः) (अजा) (छन्दः) (अश्वः) (छन्दः) ॥ १९ ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयं यथा पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दोऽस्ति तथा विद्याविनयधर्माचरणेषु स्वाधीनतया वर्त्तध्वम् ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! **यूयं यथा पृथिवी** भूमिः **छन्दः** स्वच्छन्दः, **अन्तरिक्षम्** आकाशं **छन्दः** स्वच्छन्दः, **द्यौः** प्रकाशः **छन्दः** स्वच्छन्दः, **समाः** वर्षाणि **छन्दः** स्वच्छन्दः **नक्षत्राणि छन्दः** स्वच्छन्दः, वाक् **छन्दः** स्वच्छन्दः, **मनः छन्दः** स्वच्छन्दः, **कृषिः** भूमिविलेखनं **छन्दः** स्वच्छन्दः, **हिरण्यं** सुवर्णं **छन्दः** स्वच्छन्दः, **गौश्छन्दः** स्वच्छन्दः, **अजा छन्दः** स्वच्छन्दः, **अश्वः छन्दः** स्वछन्दः **अस्ति**, **तथा विद्याविनयधर्माचरणेषु स्वाधीनतया वर्त्तध्वम्** ।

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम—जैसे (पृथिवी) भूमि (छन्दः) स्वच्छन्द है, (अन्तरिक्षम्) आकाश (छन्दः) स्वच्छन्द है, (द्यौः) प्रकाश (छन्दः) स्वच्छन्द है, (समाः) वर्ष (छन्दः) स्वच्छन्द है, (नक्षत्राणि) नक्षत्र (छन्दः) स्वच्छन्द हैं, (वाक्) वाणी (छन्दः) स्वच्छन्द है, (मनः) मन (छन्दः) स्वच्छन्द है, (कृषिः) कृषि (छन्दः) स्वच्छन्द है, (हिरण्यम्) सोना (छन्दः) स्वच्छन्द है, (गौः) गौ (छन्दः) स्वच्छन्द है, (अजा) बकरी (छन्दः) स्वच्छन्द है, (अश्वः) घोड़ा (छन्दः) स्वच्छन्द है, वैसे—विद्या, विनय और धर्माचरण में स्वाधीनता से वर्ताव करो ॥ १४ । १९ ॥

[हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयं यथा पृथिवी छन्दः, कृषिश्छन्दः, हिरण्यं छन्दः, गौश्छन्दः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ स्त्रीपुरुषैः स्वच्छविद्याक्रियाभ्यां स्वातन्त्र्येण पृथिव्यादिपदार्थानां गुणादीन् विज्ञाय कृष्यादिकर्मभिः सुवर्णादि प्राप्य गवादीन् संरक्ष्यैश्वर्यमुन्नेयम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ स्त्री-पुरुष स्वच्छ=शुद्ध विद्या और क्रिया=आचरण से स्वतन्त्रता से पृथिवी आदि पदार्थों के गुण आदि को जानकर, कृषि आदि कर्मों से सुवर्ण आदि प्राप्त करके, गौ आदि पशुओं की संरक्षा से ऐश्वर्य को उन्नत करें ॥ १४ । १९ ॥

भाष्यसार—१. **विज्ञान की वृद्धि के उपाय**—विज्ञान की वृद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि विज्ञान का अभिलाषी मनुष्य अपने सब कार्यों में पृथिवी आदि की तरह स्वतन्त्र हो, अर्थात् उसका ज्ञान ऐसा स्वच्छ होना चाहिए जिससे उसकी बुद्धि, मन, आत्मादि स्वतन्त्रता से सोचने में समर्थ हों। तब ही विज्ञान की वृद्धि होती है। पृथिवी आदि पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें जीवनोपयोगी बनाने का प्रयत्न करें। कृषि सम्बन्धी साधनों के आविष्कारों से सुवर्णादि ऐश्वर्य की प्राप्ति करें। उस धन से गाय अश्वादि उपकारक पशुओं की रक्षा करके सब तरह उन्नत होने का पुरुषार्थ किया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। पृथिवी आकाश आदि की तरह मनुष्य धर्माचरण में भी स्वतन्त्रता से व्यवहार करें ॥ १४ । १९ ॥

विश्वदेवः। **अग्न्यादयः**=भौतिकाग्न्यादयः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री पुरुषों को विज्ञान कैसे बढ़ाना चाहिए, उसका फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निर्दे॒वता॒ वातो॑ दे॒वता॒ सूर्यो॑ दे॒वता॑ च॒न्द्रमा॑ दे॒वता॒ वस॑वो दे॒वता॑ रु॒द्रा दे॒वता॑ऽऽदि॒त्या दे॒वता॑ म॒रुतो॑ दे॒वता॒ विश्वे॑ दे॒वा दे॒वता॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वतेन्द्रो॑ दे॒वता॒ वरु॑णो दे॒वता॑ ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) प्रकटः पावकः (**देवता**) देव एवं दिव्यगुणत्वात् (**वातः**) पवनः (**देवता**) (**सूर्य्यः**) सविता (**देवता**) (**चन्द्रमाः**) इन्दुः (**देवता**) (**वसवः**) वसुसंज्ञकाः प्रसिद्धाग्न्यादयोऽष्टौ (**देवता**) (**रुद्राः**) प्राणादय एकादश (**देवता**) (**आदित्याः**) द्वादशमासा वसुरुद्रादिसंज्ञका विद्वांसश्च (**देवता**) (**मरुतः**) ब्रह्माण्डस्थाः प्रसिद्धा मनुष्या विद्वांस ऋत्विजः। मरुत इत्यृत्विङ्नाम० ॥ निघं० ३ । १८ ॥ (**देवता**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) दिव्यगुणयुक्ता मनुष्याः पदार्थाश्च (**देवता**) (**बृहस्पतिः**) बृहतो वचनस्य ब्रह्माण्डस्य वा पालकः (**देवता**) (**इन्द्रः**) विद्युत्परमैश्वर्य्यं वा (**देवता**) (**वरुणः**) जलं वरगुणाढ्योऽर्थो वा (**देवता**) ॥२०॥

प्रमाणार्थ—(**मरुतः**) निघण्टु ३ । १८ में 'मरुतः' शब्द ऋत्विक्-नामों में पढ़ा है।

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! युष्माभिरग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता सम्यग्विज्ञेयाः ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! **युष्माभिरग्निः** प्रकटः पावकः **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वाद्, **वातः** पवनः **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वात्, **सूर्य्यः** सविता **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वात्, **चन्द्रमाः** इन्दुः **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वाद्, **वसवः** वसुसंज्ञकाः प्रसिद्धाऽग्न्यादयोऽष्टौ **देवता** देवा एव दिव्यगुणत्वाद्, **रुद्राः** प्राणादय एकादश **देवता** देवा एव दिव्यगुणत्वाद्, **आदित्याः** द्वादशमासा वसुरुद्रादिसंज्ञका विद्वांसश्च **देवता** देवा एव दिव्यगुणत्वाद्, **मरुतः** ब्रह्माण्डस्थाः प्रसिद्धा मनुष्या विद्वांस ऋत्विजो **देवता** देवा एव दिव्यगुणत्वाद् **विश्वेदेवाः** सर्वे दिव्यगुणयुक्ता मनुष्याः पदार्थाश्च **देवता** देवा एव दिव्यगुणत्वाद् **बृहस्पतिः** बृहतो वचनस्य ब्रह्माण्डस्य वा पालकः **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वाद्, **इन्द्रः** विद्युत्परमैश्वर्य्यं वा **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वाद्, **वरुणः** जलं वरगुणाढ्योऽर्थो वा **देवता** देव एव दिव्यगुणत्वात् **सम्यग् विज्ञेयाः** ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम—(अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (वातः) वायु को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (सूर्यः) सूर्य को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (चन्द्रमाः) चन्द्रमा को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (वसवः) प्रसिद्ध अग्नि आदि आठ वसुओं को (देवताः) दिव्य गुणों वाले होने से देवता, (रुद्राः) प्राण आदि ग्यारह रुद्रों को (देवता) दिव्य गुणों वाले होने से देवता, (आदित्याः) बारह मास और वसु, रुद्र तथा आदित्य नामक विद्वानों को (देवता) दिव्य गुणों वाले होने से देवता, (मरुतः) ब्रह्माण्ड के प्रसिद्ध मनुष्य, विद्वान् एवं ऋत्विजों को (देवता) दिव्य गुणों वाले होने से देवता, (विश्वेदेवाः) सब दिव्य गुणों से युक्त मनुष्य और पदार्थों को (देवता) दिव्य गुणों वाले होने से देवता, (बृहस्पतिः) बृहत्=वचन वा ब्रह्माण्ड के पालक को (देवता)

दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (इन्द्रः) विद्युत् वा परम ऐश्वर्य को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता, (वरुणः) जल वा श्रेष्ठ गुणों से भरपूर पदार्थ को (देवता) दिव्य गुणों वाला होने से देवता उत्तम रीति से समझो ।। १४ । २० ।।

[हे स्त्रीपुरुषाः ! युष्माभिरग्निर्देवता···विश्वेदेवा देवता, बृहस्पतिर्देवता···सम्यग्विज्ञेयाः]

भावार्थः—ये दिव्याः पदार्थाः, विद्वांसः सन्ति ते दिव्यगुणकर्मस्वभावत्वाद् देवतासंज्ञां लभन्ते ।

यश्च देवतानां देवतात्वान्महादेवः सर्वस्य धर्त्ता, स्रष्टा, पाता, व्यवस्थापकः, प्रलापकः, सर्वशक्तिमान-जोऽस्ति, तमपि परमात्मानं सकलाधिष्ठातारं सर्वे मनुष्या जानीयुः ।। १४ । २० ।।

भावार्थ—जो दिव्य पदार्थ तथा विद्वान् हैं वे दिव्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले होने से देवता कहलाते हैं ।

और जो देवताओं का देवता होने से महादेव सबका धर्त्ता, स्रष्टा, रक्षक, व्यवस्थापक, बतलाने वाला, सर्वशक्तिमान्, अज=अजन्मा है उस परमात्मा को भी सबका अधिष्ठाता सब मनुष्य जानें ।। १४ । २० ।।

भा० पदार्थः—विश्वेदेवाः=विद्वांसः । बृहस्पतिः=महादेवः, सर्वस्य धर्त्ता, स्रष्टा, पाता, व्यवस्थापकः, प्रलापकः, सर्वशक्तिमान्, अजः, परमात्मा, सकलाधिष्ठाता ।।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) "(प्र०) यज्ञ में देवता शब्द से किसका ग्रहण होता है ? (उ०) जो-जो वेद में कहे हैं, उन्हीं-उन्हीं का ग्रहण होता है । इसमें यह यजुर्वेद का प्रमाण है कि—(**अग्निर्देवता०**) कर्मकाण्ड अर्थात् यज्ञक्रिया में मुख्य करके देवता शब्द से वेद-मन्त्रों का ही ग्रहण करते हैं । क्योंकि जो गायत्र्यादि छन्द हैं, वे ही देवता कहाते हैं और इन वेद-मन्त्रों से ही सब विद्याओं का प्रकाश भी होता है । इसमें यह कारण है कि जिन-जिन मन्त्रों में 'अग्नि' आदि शब्द हैं, उन-उन मन्त्रों का और उन-उन शब्दों के अर्थों का 'अग्नि' आदि देवता नामों से ग्रहण होता है । मन्त्रों का देवता नाम इसलिए है कि उन्हीं से सब अर्थों का यथावत् प्रकाश होता है (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषयविचार**) ।।

(ख) "अग्निर्देवता०, इस मन्त्र में भी अग्नि का प्रथम और विष्णु का अन्त में ग्रहण किया है" (**भ्रान्ति-निवारण**) ।।

भाष्यसार—**विज्ञान की वृद्धि के उपाय**—विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे पदार्थ को जान कर उसे उत्तरोत्तर बढ़ाने का प्रयत्न करें । अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा विद्युत् ये दिव्यगुण युक्त होने से देवता हैं । इनके दिव्यगुणों तथा इनके नियमों का ज्ञान करके उनको मानव जीवन के लिए उपयोगी बनावें । इसी प्रकार आठ वसु, ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य भी दिव्यगुणयुक्त होने से देवता कहलाते हैं । और इन्हें वश में रखकर शुभ कार्यों में लगा हुआ मनुष्य भी देवता बन जाता है । और जो पूर्ण विद्वान् वसु, रुद्र तथा आदित्य संज्ञक हैं, अथवा ऋत्विगादि हैं, अथवा वरुणादि दिव्यशक्तियाँ हैं, ये दिव्य-गुण होने से देवता कहलाती हैं । और सब देवताओं से बड़ा तथा सबका नियन्ता रक्षक देव परमात्मा है, उसको जानकर परमानन्द की प्राप्ति करनी चाहिए ।। १४ । २० ।।

विश्वदेवः । **विदुषी**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

किं प्रकारिकया विदुष्या भवितव्यमित्याह ।।

विदुषी स्त्री कैसी हो, इस विषय का उपदेश किया है ।।

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी ।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**मूर्द्धा**) उत्कृष्टा (**असि**) (**राट्**) राजमाना (**ध्रुवा**) दृढा=स्वकक्षायां गच्छन्त्यपि निश्चला (**असि**) (**धरुणा**) पुष्टिकर्त्री (**धर्त्री**) धारिका (**असि**) अस्ति (**धरणी**) आधारभूता (**आयुषे**) जीवनाय (**त्वा**) त्वाम् (**वर्चसे**) अन्नाय (**त्वा**) त्वाम् (**कृष्यै**) कृषिकर्मणे (**त्वा**) त्वाम् (**क्षेमाय**) रक्षायै (**त्वा**) त्वाम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं सूर्य्यवन्मूर्द्धासि राडिव ध्रुवासि धरुणा धरणीव धर्त्र्यसि तामायुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वामहं परिगृह्णामि ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि** ! **या त्वं सूर्य्यवत् मूर्द्धा** उत्कृष्टा **असि, राट्** राजमाना **इव ध्रुवा** दृढा=स्वकक्षायां गच्छन्त्यपि निश्चला **असि, धरुणा** पुष्टिकर्त्री **धरणी** आधारभूता **इव धर्त्री** धारिका **असि तामायुषे** जीवनाय, **त्वा** त्वां **वर्चसे** अन्नाय, **त्वा** त्वां **कृष्यै** कृषिकर्मणे, **त्वा** त्वां **क्षेमाय** रक्षायै [त्वा]=**त्वामहं परिगृह्णामि** ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—सूर्य के समान (मूर्द्धा) उत्कृष्ट=उत्तम (असि) है, (राट्) राजा के समान (ध्रुवा) अपनी कक्षा में गति करती हुई भी निश्चल (असि) है, (धरुणा) पुष्टि करने वाली (धरणी) आधारभूत पृथिवी के समान (धर्त्री) सब को धारण करने वाली (असि) है; सो (त्वा) तुझे (आयुषे) जीवन के लिए, (त्वा) तुझे (वर्चसे) अन्न के लिए, (त्वा) तुझे (कृष्यै) कृषि-कर्म के लिए, (त्वा) तुझे (क्षेमाय) रक्षा के लिए, [त्वा] तुझे मैं स्वीकार करता हूँ ॥

[हे स्त्रि या त्वं···मूर्द्धाऽसि, राडिव ध्रुवाऽसि, कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा=त्वामहं परिगृह्णामि]

भावार्थः—यथोत्तमाङ्गेन स्थितेन शिरसा सर्वेषां जीवनं, राज्येन लक्ष्मीः, कृष्या अन्नादिकं, निवासेन रक्षणं जायते,

भावार्थ—जैसे उत्तमाङ्ग रूप शिर के स्थित होने से सबका जीवन, राज्य से लक्ष्मी, कृषि से अन्न आदि और निवास से रक्षा होती है, तथा—

[धरणीव धर्त्र्यसि]

सेयं सर्वेषामाधारभूता मातृवन्मान्यकर्त्री भूमिर्वर्त्तते तथा सती विदुषी स्त्री भवेदिति ॥

सो यह सबकी आधारभूत माता के समान मान्य करने करने वाली भूमि है, वैसे सती विदुषी स्त्री भी होवे ॥ १४ । २१ ॥

भा० पदार्थः—मूर्द्धा=उत्तमाङ्गम् । धरणी=सर्वेषामाधारभूता । धर्त्री=मातृवन्मान्यकर्त्री भूमिः ।

भाष्यसार—**विदुषी स्त्रियों का कर्त्तव्य**—जो सूर्य के समान उत्कृष्ट अथवा मानव समाज में मुख स्थानीय विदुषी स्त्रियाँ हैं, उनको सदा विरोध भावना छोड़कर अपनी मर्यादाओं को दृढ़ता तथा निश्चलता से पालन करना चाहिए। क्योंकि दूसरे मनुष्य विद्वानों का ही अनुकरण करते हैं। वे सबका पोषण करने वाली और धारण करने वाली पृथिवी के समान होनी चाहिये। मनुष्यों का भी परम-कर्त्तव्य है कि ऐसी देवता-स्वरूप विदुषी स्त्रियों का सदा सम्मान किया करें ॥ १४ । २१ ॥

विश्वदेवः । **विदुषी**=स्पष्टम् । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः पत्नी कीदृशी स्यादित्याह ॥

फिर स्त्री कैसी होवे, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री ।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**यन्त्री**) यन्त्रवत्स्थिता (**राट्**) प्रकाशमाना (**यन्त्री**) यन्त्रनिमित्ता (**असि**) (**यमनी**) आकर्षणेन नियन्तुं शीला, (**ध्रुवा**) आकाशवद्दृढा (**असि**) (**धरित्री**) सर्वेषां धारिका (**इषे**) इच्छासिद्धये (**त्वा**) त्वाम् (**ऊर्जे**) पराक्रमप्राप्तये (**त्वा**) त्वाम् (**रय्यै**) लक्ष्म्यै (**त्वा**) त्वाम् (**पोषाय**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं यन्त्री राट् यन्त्री भूमिरिवाऽसि यमनी ध्रुवा धरित्र्यसि त्वेषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय चाऽहं स्त्रीकरोमि ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्त्रि ! या त्वं यन्त्री** यन्त्रवत्स्थिता **राट्** प्रकाशमाना **यन्त्री**=**भूमिरिव** यन्त्रनिमित्ता **असि, यमनी** आकर्षेण नियन्तुं शीला, **ध्रुवा** आकाशवद् दृढा **धरित्री** सर्वेषां धारिका **असि, त्वा** त्वाम् **इषे** इच्छासिद्धये **त्वा** त्वाम् **ऊर्जे** पराक्रमप्राप्तये **त्वा** त्वां **रय्यै** लक्ष्म्यै **त्वा** त्वां **पोषाय चाऽहं स्त्रीकरोमि** ॥ १४ । २२ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—(यन्त्री) यन्त्रों के समान, (राट्) प्रकाशमान, (यन्त्री) यन्त्रों के निमित्त भूमि के समान (असि) है, (यमनी) आकर्षण से नियमन करने वाली (ध्रुवा) आकाश के समान दृढ़, (धरित्री) सबको धारण करने वाली (असि) है; सो (त्वा) तुझे (इषे) इच्छा-सिद्धि के लिए, (त्वा) तुझे (ऊर्जे) पराक्रम की प्राप्ति के लिए, (त्वा) तुझे (रय्यै) लक्ष्मी के लिए और (त्वा) तुझे (पोषाय) पुष्टि के लिए मैं स्वीकार करता हूँ ॥ १४ । २२ ॥

[हे स्त्रि ! भूमिरिवासि, यमनी···असि, यन्त्री···असि]

भावार्थः—या स्त्री भूमिवत् क्षमान्विता, अन्तरिक्षवदक्षोभा, यन्त्रवज्जितेन्द्रिया भवति, सा कुलदीपिकाऽस्ति ॥ १४ । २२ ॥

भावार्थ—जो स्त्री भूमि के समान क्षमा से युक्त, आकाश के समान क्षोभ-रहित, यन्त्रों के समान जितेन्द्रिय होती है वह कुलदीपिका होती है ॥ १४ । २२ ॥

भा० पदार्थः—यन्त्री=भूमिवत् क्षमान्विता । यमनी=अन्तरिक्षवदक्षोभा । यन्त्री=यन्त्रवज्जितेन्द्रिया ॥

भाष्यसार—**कुलदीपिका स्त्रियों के कर्त्तव्य**—जो स्त्रियाँ यन्त्र की तरह नियमों तथा व्रतों का पालन करके परम प्रकाशमान हैं, वे दूसरों को मर्यादा में रखने वाली होती हैं। नियमन करने वाली, जितेन्द्रिय स्त्रियाँ सारे परिवार को सुव्यवस्थित रखने में समर्थ होती हैं। वे सत्य-संकल्पों पर दृढ़ रहकर अन्नादि पदार्थों से, पराक्रम की वृद्धि से और ऐश्वर्य की वृद्धि से सारे कुल का धारण-पोषण करने वाली होती हैं ॥ १४ । २२ ॥

विश्वदेवः । **यज्ञः**=संवत्सरः । पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । गर्भा इत्युत्तरस्य भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ संवत्सरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अब संवत्सर कैसा है, यह उपदेश किया है

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः । गर्भाः पञ्चविꣳशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**आशुः**) (**त्रिवृत्**) शीते चोष्णे द्वयोर्मध्ये च वर्त्तते सः (**भान्तः**) प्रकाशः (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूरणः पञ्चदशविधः (**व्योमा**) व्योमवद्विस्तृतः (**सप्तदशः**) सप्तदशविधः (**धरुणः**) धारणगुणः (**एकविंशः**) एकविंशतिधा (**प्रतूर्त्तिः**) शीघ्रगतिः (**अष्टादशः**) अष्टादशधा (**तपः**) संतापो गुणः (**नवदशः**) नवदशधा (**अभीवर्त्तः**) य आभिमुख्ये वर्त्तते सः (**सविंशः**) विंशत्या सह वर्त्तमानः (**वर्चः**) दीप्तिः (**द्वाविंशः**) द्वाविंशतिधा (**संभरणः**) सम्यग् धारकः (**त्रयोविंशः**) त्रयोविंशतिधा (**योनिः**) संयोजको वियोजको गुणः (**चतुर्विंशः**) चतुर्विंशतिधा (**गर्भाः**) गर्भधारणशक्तयः (**पञ्चविंशः**) पञ्चविंशतिधा (**ओजः**) पराक्रमः (**त्रिणवः**) सप्तविंशतिधा (**क्रतुः**) कर्म प्रज्ञा वा (**एकत्रिंशः**) एकत्रिंशद्धा (**प्रतिष्ठा**) प्रतिष्ठन्ति यस्यां सा (**त्रयस्त्रिंशः**) त्रयस्त्रिंशत् प्रकारः (**ब्रध्नस्य**) महतः (**विष्टपम्**) व्याप्तिम् । अत्र विष् धातोर्बाहुलकादौणादिकस्तपः प्रत्ययः (**चतुस्त्रिंशः**) चतुस्त्रिंशद्विधः (**नाकः**) आनन्दः (**षट्त्रिंशः**) षट्त्रिंशत्प्रकारः (**विवर्त्तः**) विविधं वर्तते यस्मिन् सः (**अष्टाचत्वारिंशः**) अष्टाचत्वारिंशद्धा (**धर्त्रम्**) धारणम् (**चतुष्टोमः**) चत्वारः स्तोमाः=स्तुतयो यस्मिन् संवत्सरे सः ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**विष्टपम्**) यहाँ विष् धातु से बहुलवचन से औणादिक तप प्रत्यय हुआ है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यस्मिन् संवत्सर आशुस्त्रिवृद् भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः संभरणस्त्रयोविंशो योनिश्चतुर्विंशो गर्भाः पञ्चविंश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिंशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशो नाकः षट्त्रिंशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिंशो धर्त्रं चतुष्टोमोऽस्ति तं संवत्सरं विजानीत ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं यस्मिन् संवत्सर आशुस्त्रिवृत्** शीते चोष्णे द्वयोर्मध्ये च वर्त्तते सः **भान्तः** प्रकाशः **पञ्चदशः** पञ्चदशानां पूरणः पञ्चदशविधः **व्योमा** व्योमवद्विस्तृतः **सप्तदशः** सप्तदशविधः **धरुणः** धारणगुणः, **एकविंशः** एकविंशतिधा **प्रतूर्त्तिः** शीघ्रगतिः, **अष्टादशः** अष्टादशधा **तपः** सन्तापो गुणः, **नवदशः** नवदशधा **अभीवर्त्तः** य आभिमुख्येन वर्त्तते सः, **सविंशः** विंशत्या सह वर्त्तमानः **वर्चः** दीप्तिः, **द्वाविंशः** द्वाविंशतिधा **संभरणः** सम्यग् धारकः **त्रयोविंशः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस संवत्सर=वर्ष में (आशुः) प्राप्त होने वाला (त्रिवृत्) शीत, उष्ण और शीतोष्ण तीन प्रकार का (भान्तः) प्रकाश है, (पञ्चदशः) पन्द्रह प्रकार का (व्योमा) आकाश है, (सप्तदशः) सत्रह प्रकार का (धरुणः) धारण गुण है, (एकविंशः) इक्कीस प्रकार की (प्रतूर्त्तिः) शीघ्र-गति है, (अष्टादशः) अठारह प्रकार की (तपः) सन्ताप गुण है, (नवदशः) उन्नीस प्रकार का (अभीवर्त्तः) मुख्य वर्ताव है, (सविंशः) बीस प्रकार की (वर्चः) दीप्ति

त्रयोविंशतिधा **योनिः** संयोजको वियोजको गुणः, **चतुर्विंशः** चतुर्विंशतिधा **गर्भाः** गर्भधारणशक्तयः, **पञ्चविंशः** पञ्चविंशतिधा **ओजः** पराक्रमः, **त्रिणवः** सप्तविंशतिधा **क्रतुः** कर्म प्रज्ञा वा, **एकत्रिंशः** एकत्रिंशद्धा **प्रतिष्ठा** प्रतिष्ठन्ति यस्यां सा, **त्रयस्त्रिंशः** त्रयस्त्रिंशत् प्रकारः **ब्रध्नस्य** महतः **विष्टपं** व्याप्तिः, **चतुस्त्रिंशः** चतुस्त्रिंशद्विधः **नाकः** आनन्दः **षट्त्रिंशः** षट्त्रिंशत्प्रकारः **विवर्त्तः** विविधं वर्त्तते यस्मिन् सः **अष्टाचत्वारिंशः** अष्टाचत्वारिंशद्धा **धर्त्रं** धारणं **चतुष्टोमः** चत्वारः स्तोमाः=स्तुतयो यस्मिन् संवत्सरे सः **अस्ति, तं संवत्सरं विजानीत** ॥

है, (द्वाविंशः) बाईस प्रकार का (संभरणः) भली-भाँति धारण करने वाला गुण है, (त्रयोविंशः) तेईस प्रकार का (योनिः) संयोजक और वियोजक गुण है, (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार का (गर्भाः) गर्भ धारण की शक्तियाँ हैं, (पंचविंशः) पच्चीस प्रकार का पराक्रम है, (त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (क्रतुः) कर्म वा बुद्धि है, (एकत्रिंशः) इकत्तीस प्रकार की (प्रतिष्ठा) प्रतिष्ठा है, (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीस प्रकार की (ब्रध्नस्य) महत् की विष्टपम्) व्याप्ति है, चतुस्त्रिंशः) चौंतीस प्रकार का (नाकः) आनन्द है, (षट्त्रिंशः) छत्तीस प्रकार का (विवर्त्तः) विविध वर्त्ताव है, (अष्टाचत्वारिंशः) अड़तालीस प्रकार का (धर्त्रम्) धारण गुण है तथा (चतुष्टोमः) चार स्तोम=स्तुतियों वाली है, उस संवत्सर=वर्ष को जानो ॥ १४ । २३ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं यस्मिन् संवत्सर आशुस्त्रिवृत्… अस्ति, तं संवत्सरं विजानीत]

भावार्थः—यस्य संवत्सरस्य सम्बन्धिनो भूतभविष्यद् वर्त्तमानादयोऽवयवाः सन्ति तस्य सम्बन्धादेते व्यवहारा भवन्तीति यूयं बुध्यध्वम् ॥

भावार्थ—जिस संवत्सर—वर्ष के सम्बन्धी भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान आदि अवयव हैं उसके सम्बन्ध से ये मन्त्रोक्त व्यवहार होते हैं ऐसा तुम जानो ॥ १४ । २३ ॥

भा० पदार्थः—त्रिवृत्=भूतभविष्यद्वर्त्तमानादयः ।

भाष्यसार—**संवत्सर में कर्त्तव्य-कर्म**—वर्ष में तीन प्रकार का समय आता है—उष्ण, शीतल तथा शीतोष्ण । इन में शरीरादि को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि सभी मनुष्य वर्ष में कब और क्या कर्त्तव्य है, इसे जानें । जब ऋतु बदलती है, तब अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं अतः यह जानना अतीव आवश्यक है कि किस समय क्या कर्म करना चाहिए । प्रकृति के संयोजक और वियोजक गुणों को, उनके व्यावहारिक रूप को, उनको जीवन में धारण करने के प्रकार को जानना बहुत ही आवश्यक है । इन पूर्वोक्त व्यवहारों को न जानने से मनुष्य तीनों ऋतुओं में दुःखी रहता है है और जानने वाला मनुष्य प्रत्येक ऋतु का स्वागत करता है और सदा स्वस्थ रहता है ॥ १४ । २३ ॥

विश्वदेवः । **मेधाविनः**=**विद्वांसः** । भुरिग्विकृतिः । मध्यमः ॥

अथ मनुष्यैः कथं विद्या अधीत्य किमाचरणीयमित्याह ॥

अब मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें यह उपदेश किया है ॥

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया ऽ आधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः ।
इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳ स्पृतं पञ्चदश स्तोमः ।
नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदश स्तोमः ।
मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽएकविꣳश स्तोमः ॥ २४ ॥

पदार्थः--(**अग्नेः**) सूर्य्यस्य (**भागः**) विभजनीयः (**असि**) (**दीक्षायाः**) ब्रह्मचर्यादेः (**आधिपत्यम्**) (**ब्रह्म**) ब्रह्मवित्कुलम् (**स्पृतम्**) प्रीतं=सेवितम् (**त्रिवृत्**) यत्त्रिभिः कायिकवाचिकमानसैः साधनैः शुद्धं वर्त्तते (**स्तोमः**) यः स्तूयते (**इन्द्रस्य**) विद्युतः परमैश्वर्यस्य वा (**भागः**) (**असि**) (**विष्णोः**) व्यापकस्य जगदीश्वरस्य (**आधिपत्यम्**) (**क्षत्रम्**) क्षात्रधर्मप्राप्तं राजन्यकुलम् (**स्पृतम्**) (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूर्णः (**स्तोमः**) स्तोता (**नृचक्षसाम्**) येऽर्था नृभिः ख्यायन्ते तेषाम् (**भागः**) (**असि**) (**धातुः**) धर्त्तुः (**आधिपत्यम्**) अधिपतेर्भावः (**जनित्रम्**) जननम् (**स्पृतम्**) (**सप्तदशः**) (**स्तोमः**) स्तावकः (**मित्रस्य**) (**भागः**) (**असि**) (**वरुणस्य**) श्रेष्ठोदकसमूहस्य वा (**आधिपत्यम्**) (**दिवः**) प्रकाशस्य (**वृष्टिः**) वर्षा (**वातः**) वायुः (**स्पृतः**) सेवितः (**एकविꣳशः**) (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन सः ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यस्त्वमग्नेर्भागः संवत्सर इवाऽसि स त्वं दीक्षायाः स्पृतमाऽधिपत्यं ब्रह्म प्राप्नुहि। यस्त्रिवृत्स्तोम इन्द्रस्य भाग इवासि स त्वं विष्णोः स्पृतमाधिपत्यं क्षत्रं प्राप्नुहि। यस्त्वं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भाग इवासि स त्वं धातुः स्पृतं जनित्रमाधिपत्यं प्राप्नुहि। यस्त्वं सप्तदश स्तोमो मित्रस्य भाग इवासि स त्वं वरुणस्याधिपत्यं याहि। यस्त्वं वातस्पृतं एकविंशस्तोम इवासि तेन त्वया दिवो वृष्टिर्विधेया ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! यस्त्वमग्नेः सूर्य्यस्य **भागः** विभजनीयः **संवत्सरः इवासि, स त्वं दीक्षायाः** ब्रह्मचर्य्यादेः **स्पृतं** प्रीतं=सेवितम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **ब्रह्म** ब्रह्मवित्कुलं **प्राप्नुहि**।

भाषार्थ—हे विद्वान्! जो तू—(अग्नेः) सूर्य के (भागः) विभाग करने योग्य संवत्सर=वर्ष के समान (असि) है, सो तू—(दीक्षायाः) ब्रह्मचर्य आदि का (स्पृतम्) सेवन (आधिपत्यम्) अधिपति-भाव (ब्रह्म) और ब्रह्मवित् कुल को प्राप्त कर।

यस्त्रिवृत् यस्त्रिभिः कायिकवाचिकमानसैः साधनैः शुद्धं वर्त्तते **स्तोमः** यः स्तूयते **इन्द्रस्य** विद्युतः परमैश्वर्य्यस्य वा **भागः** विभजनीयः **इवाऽसि, स त्वं विष्णोः** व्यापकस्य जगदीश्वरस्य **स्पृतं** प्रीतं= सेवितम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **क्षत्रं** क्षात्रधर्म-प्राप्तं राजन्यकुलं **प्राप्नुहि**।

जो (त्रिवृत्) कायिक, वाचिक और मानसिक साधनों से शुद्ध (स्तोमः) स्तुति के योग्य, (इन्द्रस्य) विद्युत् वा परम ऐश्वर्य के (भागः) भाग के समान (असि) है; तू—(विष्णोः) व्यापक जगदीश्वर की (स्पृतम्) सेवा (आधिपत्यम्) अधिपति-भाव, (क्षत्रम्) क्षात्रधर्म को प्राप्त क्षत्रियकुल को प्राप्त कर।

यस्त्वं पञ्चदशः पञ्चदशानां पूर्णः **स्तोमः** स्तोता **नृचक्षसां** येऽर्था नृभिः ख्यायन्ते तेषां **भागः** विभजनीयः **इवाऽसि, स त्वं धातुः** धर्त्तुः **स्पृतं** प्रीतं=सेवितं **जनित्रं** जननम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **प्राप्नुहि**।

जो तू—(पञ्चदशः) पन्द्रहवाँ (स्तोमः) स्तुति करने वाला, (नृचक्षसाम्) नरों से व्याख्या करने योग्य पदार्थों के (भागः) भाग के समान (असि) है, सो तू—(धातुः) धर्त्ता जगदीश्वर की (स्पृतम्) सेवा (जनित्रम्) सृष्टि (आधिपत्यम्) और अधिपति भाव को प्राप्त कर।

यस्त्वं सप्तदशः सप्तदशानां पूर्णः **स्तोमः** स्तावकः **मित्रस्य भागः** विभजनीयः **इवाऽसि, स त्वं वरुणस्य** श्रेष्ठोदकसमूहस्य वा **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **याहि**।

जो तू—(सप्तदशः) सत्तरहवां (स्तोमः) तोता (मित्रस्य) मित्र के (भागः) भाग के समान (असि) है; सो तू—(वरुणस्य) श्रेष्ठ जल-समूह के (आधिपत्यम्) अधिपति-भाव को प्राप्त कर।

यस्त्वं वातः वायुः **स्पृतः** सेवितः **एकविंशः स्तोमः** स्तुवन्ति येन सः **इवासि तेन** त्वया **दिवः** प्रकाशस्य **वृष्टिः** वर्षा **विधेया** ॥ १४ । २४ ॥

जो तू—(वातः) वायु के तुल्य (स्पृतः) सेवनीय (एकविंशः) इक्कीसवां (स्तोमः) स्तोता के समान (असि) है, इसलिए तू—(दिवः) प्रकाश की (वृष्टि) वर्षा कर ॥ १४ । २४ ॥

[हे विद्वन् ! ···त्वं दीक्षायाः स्पृतमाधिपत्यं···प्राप्नुहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये बाल्यावस्थामारभ्य सज्जनोपदिष्टविद्याग्रहणाय प्रयत्नेनाधिपत्यं लभन्ते ते—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो बाल्यावस्था से लेकर सज्जनों से उपदिष्ट विद्या को ग्रहण करने के लिए प्रयत्न से आधिपत्य को प्राप्त करते हैं वे—

[स्तोम···असि]

स्तुत्यानि कर्माणि कृत्वोत्तमा भूत्वा सविधं कालं विज्ञाय विज्ञापयेयुः ॥ १४ । २४ ॥

स्तुत्य कर्मों को करके, उत्तम बनकर, विधि-सहित काल को जानकर दूसरों को जनावें ।

भा० पदार्थः—दीक्षायाः=बाल्यावस्थामारभ्य सज्जनोपदिष्टविद्याग्रहणाय । स्तोमः=स्तुत्यं कर्म ।

भाष्यसार—**विद्वानों के कर्त्तव्य**—जैसे सूर्य का विभाग संवत्सर करता है वैसे ही विद्वान् मनुष्य विवेकशील होने से सत्याऽसत्य और कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य के भेद को जानने और करने वाला होता है। उसे विद्युत् की तरह तेजस्वी होकर मन, वचन, कर्म से पवित्र होना चाहिए, जिससे सब उसकी स्तुति करें। वह परम-पिता परमात्मा का सच्चा उपासक होकर सब शक्तियों को प्राप्त करे ॥ १४ । २४ ॥ ●

विश्वदेवः । **वस्वादयो लिङ्गोक्ताः**=भौतिकाग्न्यादयो विद्वांसो वा ।
स्वराट् संकृतिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य किस प्रकार विद्या पढ़ के कैसा आचरण करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विंशश स्तोमः ।
आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृताः पञ्चविंशश स्तोमः ।
अदित्यै भागोऽसि पूष्ण ऽ आधिपत्यमोज स्पृतं त्रिणव स्तोमः ।
देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳ समीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**वसूनाम्**) अग्न्यादीनामादिमानां विदुषां वा (**भागः**) (**असि**) (**रुद्राणाम्**) प्राणादीनां मध्यमानां विदुषां वा (**आधिपत्यम्**) (**चतुष्पात्**) गवादिकम् (**स्पृतम्**) सेवितम् (**चतुर्विंशः**) चतुर्विंशतिधा (**स्तोमः**) स्तोता (**आदित्यानाम्**) मासानामुत्तमानां विदुषां वा (**भागः**) (**असि**) (**मरुताम्**) मनुष्याणां पशूनां वा ! **मरुत इति पदना०** ॥ **निघं० ५ । ५** ॥ (**आधिपत्यम्**) (**गर्भाः**) गर्भ इव विद्याशुभगुणैरावृताः (**स्पृताः**) प्रीतिमन्तः (**पञ्चविंशः**) पञ्चविंशतिप्रकारः (**स्तोमः**) स्तोतव्यः (**अदित्यै**) प्रकाशस्य (**भागः**) (**असि**) (**पूष्णः**) पुष्टिकर्त्र्या भूमेः । **पूषेति पृथिवीनाम०** ॥ **निघं० १ । १** ॥ (**आधिपत्यम्**) (**ओजः**)

बलम् (**स्पृतम्**) सेवितम् (**त्रिणवः**) सप्तविंशतिधा (**स्तोमः**) स्तोतव्यः (**देवस्य**) सुखप्रदस्य (**सवितुः**) जनकस्य (**भागः**) (**असि**) (**बृहस्पतेः**) बृहत्या वेदवाचः पालकस्य (**आधिपत्यम्**) (**समीचीः**) याः सम्यगच्यन्ते (**दिशः**) (**स्पृताः**) (**चतुष्टोमः**) चतुर्भिर्वेदैः स्तूयते (**स्तोमः**) स्तोता ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(**मरुताम्**) मरुत् शब्द निघण्टु ५ । ५ में पदनामों में पठित है। (**पूष्णः**) पूषन् शब्द निघण्टु १ । १ में पृथिवी-नामों में पठित है।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं वसूनां भागोऽसि स त्वं रुद्राणामाधिपत्यं गच्छ यश्चतुर्विंशस्तोमः आदित्यानां भागोऽसि स त्वं चतुष्पात्स्पृतं कुरु मरुतामाधिपत्यं गच्छ यस्त्वं पञ्चविंशस्तोमोऽदित्यै भागोऽसि स त्वं पूष्ण ओजः स्पृतमाधिपत्यं प्राप्नुहि यस्त्वं त्रिणवः स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि स त्वं बृहस्पतेराधिपत्यं याहि यस्त्वं चतुष्टोमोऽसि स त्वं गर्भाः स्पृता या जानन्ति ताः समीचीः स्पृता दिशो विजानीहि ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यस्त्वं वसूनाम्** अग्न्यादीनामादिमानां विदुषां वा **भागः** विभजनीयः **असि, स त्वं रुद्राणां** प्राणादीनां मध्यमानां विदुषां वा **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **गच्छ**।

यश्चतुर्विंशः चतुर्विंशतिधा **स्तोमः** स्तोता **आदित्यानां** मासानामुत्तमानां विदुषां वा **भागः** विभजनीयः **असि**, स **त्वं चतुष्पात्** गवादिकं **स्पृतं** सेवितं **कुरु, मरुतां** मनुष्याणां पशूनां वा **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **गच्छ**।

यस्त्वं पञ्चविंशः पञ्चविंशतिप्रकारः **स्तोमः** स्तोतव्यः **अदित्यै** प्रकाशस्य **भागः** विभजनीयः **असि, स त्वं पूष्णः** पुष्टिकर्त्र्या भूमेः **ओजः** बलं **स्पृतं** सेवितम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **प्राप्नुहि**।

यस्त्वं त्रिणवः सप्तविंशतिधा **स्तोमः** स्तोतव्यः **देवस्य** सुखप्रदस्य **सवितुः** जनकस्य **भागः** विभजनीयः **असि, स त्वं बृहस्पतेः** बृहत्या वेदवाचः पालकस्य **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **याहि**।

यस्त्वं चतुष्टोमः चतुर्भिर्वेदैः स्तूयते, **असि, स त्वं गर्भाः** गर्भ इव विद्याशुभगुणैरावृताः **स्पृताः** प्रीतिमन्तः **या जानन्ति, ताः समीचीः** याः सम्यगच्यन्ते **स्पृताः दिशो विजानीहि** ॥ १४ । २५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो तू—(वसूनाम्) अग्नि आदि वा वसु आदि प्रथम-कोटि के विद्वानों का (भागः) भाग (असि) है, सो तू—(रुद्राणाम्) प्राण आदि वा मध्यम कोटि के विद्वानों के (अधिपत्यम्) अधिपति-भाव को प्राप्त कर।

जो तू (चतुर्विंशः) चौबीस प्रकार का (स्तोमः) स्तोता, (आदित्यानाम्) बारह मास वा उत्तम-कोटि के विद्वानों का (भागः) असि है; सो तू—(चतुष्पात्) गौ आदि की (स्पृतम्) सेवा कर; तथा—(मरुताम्) मनुष्यों वा पशुओं के (आधिपत्यम्) अधिपति-भाव को प्राप्त कर।

जो तू—(पञ्चविंशः) पच्चीस प्रकार का (स्तोमः) स्तोता, (अदित्यै) प्रकाश का (भागः) भाग (असि) है, सो तू—(पूष्णः) पुष्टि करने वाली भूमि के (ओजः) बल, (स्पृतम्) सेवा, (अधिपत्यम्) और अधिपति-भाव को प्राप्त कर।

जो तू—(त्रिणवः) सत्ताईस प्रकार का (स्तोमः) स्तोता, (देवस्य) सुखदायक (सवितुः) सबके जनक ईश्वर का (भागः) भाग (असि) है; सो तू—(बृहस्पतेः) वेदवाणी के पालक बृहस्पति के (आधिपत्यम्)। अधिपति भाव को प्राप्त कर।

जो तू—(चतुष्टोमः) चारों वेदों से स्तुति करने वाला (असि) है; सो तू—(गर्भाः) गर्भ के समान विद्यादि शुभ गुणों से आवृत (स्पृताः) प्रीतिमान् विद्वान् जिन्हें जानते हैं उन (समीचीः)

उत्तम रीति से प्राप्त करने योग्य (स्पृताः) प्रीति-कारक दिशाओं को जान ॥ १४ । २५ ॥

[हे विद्वन् ! यस्त्वं वसूनां भागोऽसि, स त्वं रुद्राणामाधिपत्यं गच्छ...]

भावार्थः—ये सुशीलत्वादिगुणान् गृह्णन्ति, ते विद्वत्प्रियाः सन्तः सर्वाधिष्ठातृत्वं प्राप्नुवन्ति ।

भावार्थ—जो सुशीलता आदि गुणों को ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्रिय होकर सबके अधिपति-भाव को प्राप्त करते हैं।

[अधिपतिवर्त्तनमाह—]

येऽधिपतयो भवेयुस्ते नृषु पितृवद् वर्त्तन्ताम् ॥

जो अधिपति=अधिष्ठाता होवें वे नरों में पिता के समान वर्ताव करें ॥ १४ । २५ ॥

भा० पदार्थः—भागः=प्रियः ॥

भाष्यसार—विद्वानों का सद्व्यवहार—विद्वानों का पारस्परिक व्यवहार बहुत उत्तम होना चाहिए। वे बड़े छोटों के सम्मान का विशेष ध्यान रक्खें। जो वसु संज्ञक विद्वान् हैं, वे रुद्र संज्ञक विद्वानों का सत्कार करें और उनके नियन्त्रण में रहें। इसी प्रकार रुद्र विद्वान् आदित्य संज्ञक विद्वानों का आदर किया करें। आदित्य विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे गायादि पशुओं तथा मनुष्यों का मार्गप्रदर्शन करते हुए परोपकार में रत रहें। जो ईश्वर के उपासक विद्वान् हैं वे पोषक शक्तियों को प्राप्त करके सेवा से अधिपति बनने का प्रयत्न करें। और जो उच्च कोटि के ईश्वर के भक्त हैं, जिन्होंने योगसाधना से ईश्वर तथा ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त कर लिया है, वे वेद-ज्ञान का प्रचार व प्रसार करके वेद के अधि-पति बनें। और जो चारों वेदों के ज्ञाता होकर ईश्वर की स्तुति करने में लगे हैं, वे विद्यादि गुणों से अलंकृत होकर प्राणी-मात्र का हितैषी होकर सब दिशाओं को प्रीतियुक्त करें अर्थात् सार्वभौम होकर प्राणिमात्र का हित किया करें ॥ १४ । २५ ॥

विश्वदेवः । **ऋभवः=मेधाविनः** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनः स शरदि कथं वर्त्तेतेत्याह ॥

फिर वह अधिपति शरद् ऋतु में कैसे वर्त्ते, यह उपदेश किया है ॥

यवा॑नां भा॒गो᳖ऽस्यय॑वाना॒माधि॑पत्यं प्र॒जा स्पृ॒ताश्च॑तुश्चत्वारि॒ꣳश स्तोम॑ः ।
ऋ॒भू॒णां भा॒गो॒ऽसि॒ विश्वे॑षां दे॒वाना॒माधि॑पत्यं भू॒तꣳ स्पृ॒तं त्र॑यस्त्रि॒ꣳश स्तोम॑ः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**यवानाम्**) मिश्रितानाम् (**भागः**) (**असि**) (**अयवानाम्**) अमिश्रितानाम् (**आधिपत्यम्**) (**प्रजाः**) पालनीयाः (**स्पृताः**) प्रीताः (**चतुश्चत्वारिंशः**) एतत्संख्यायाः पूरकः (**स्तोमः**) (**ऋभूणाम्**) मेधाविनाम् (**भागः**) (**असि**) (**विश्वेषाम्**) सर्वेषाम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**आधिपत्यम्**) (**भूतम्**) (**स्पृतम्**) सेवितम् (**त्रयस्त्रिंशः**) एतत्संख्यापूरकः (**स्तोमः**) स्तुतिविषयः ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! यस्त्वं यवानां भागः शरदृतुरिवासि योऽयवानामाधिपत्यं प्राप्य प्रजाः स्पृताः करोति यश्चतुश्चत्वारिंश स्तोम ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानां भूतं स्पृतमाधिपत्यं प्राप्य यस्त्रयस्त्रिंशः स्तोमोसि स त्वमस्माभिः सत्कर्त्तव्यः ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! यस्त्वं

भावार्थ—हे मनुष्य ! जो तू=(यवानाम्)

यवानां मिश्रितानां **भागः शरदृतुरिवासि, योऽयवानाम्** अमिश्रितानाम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **प्राप्य प्रजाः** पालनीयाः **स्पृताः** प्रीताः **करोषि, यः चतुश्चत्वारिंशः** एतत्संख्यायाः पूरकः **स्तोम ऋभूणां** मेधाविनां **भागः** विभजनीयः **असि, विश्वेषां** सर्वेषां **देवानां** विदुषां **भूतं स्पृतं** सेवितम् **आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावं **प्राप्य यस्त्रयस्त्रिंशः** एतत्संख्यायाः पूरकः **स्तोमः** स्तुतिविषयः **असि, स त्वमस्माभिः** सत्कर्त्तव्यः ॥ १४ । २६ ॥

मिले हुए लोगों के (भागः) भाग रूप शरद्-ऋतु के समान (असि) है; जो तू—(अयवानाम्) न मिले हुए लोगों के लिए (आधिपत्यम्) अधिपतिभाव को प्राप्त करके (प्रजाः) पालन के योग्य प्रजा को (स्पृताः) प्रसन्न करता है; जो तू—(चतुश्चत्वारिंशः) चवालीस प्रकार का (स्तोमः) स्तोता, (ऋभूणाम्) मेधावी जनों का (भागः) भाग (असि) है; तू—(विश्वेषाम्) सब (देवानाम्) विद्वानों की (भूतम्) समुचित (स्पृतम्) सेवा तथा (आधिपत्यम्) अधिपति-भाव को प्राप्त करके जो (त्रयस्त्रिंशः) तेंतीसवां (स्तोमः) स्तुति का विषय (असि) है; सो तू हमारे लिए सत्कार के योग्य है ॥ १४ । २६ ॥

[तात्पर्यमाह—]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्य इमे शरदृतोर्गुणा उक्तास्ते यथावत्सेवनीया इति ॥ १४ । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—जो ये शरद्-ऋतु के गुण कहे हैं उनका यथावत् सेवन करें ॥ १४ । २६ ॥

भाष्यसार—१. विद्वान् का व्यवहार शरद् ऋतु के तुल्य हो—जैसे शरद्ऋतु वर्षा और सर्दी की ऋतुओं को मिलाने वाली होती है, वैसे ही विद्वान् स्वयं मिलकर प्रीति से रहें और जो द्वेषादि वश पृथक्-पृथक् हो गए हैं, उनको मिलाने की योग्यता प्राप्त करें। जो विद्वान् होकर कलह कार्य में लगा रहता है वह वास्तव में विद्वान् नहीं। उत्कृष्ट कोटि के स्तोता विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह दूसरे विद्वानों की सेवा से उनको उत्कृष्ट बनावे, और उनके हृदय में अपना स्थान बनाकर उनका अधिपति बनने का प्रयास करे। ऐसे विद्वानों का सत्कार स्वयमेव होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जैसे शरद्ऋतु का समय बहुत सुहावना होने से सर्वजन प्रिय होता है, वैसे ही विद्वान् का स्वभाव ऐसा हो जो सब को आकृष्ट करने वाला हो।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वानों को शरद् ऋतु के समान सुशील होना चाहिए ॥ १४ । २६ ॥

विश्वदेवः । **ऋतवः**=**स्पष्टम्** । पूर्वस्य भुरिगति जगती । निषादः । ये अग्नय इत्युत्तरस्य भुरिग्ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अथ हेमन्तर्त्तुविधानमाह ॥

अब हेमन्त ऋतु का विधान किया है ॥

**सह॑श्च सह॒स्य॒श्च॒ हैम॑न्तिकावृ॒तू ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्लेषो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी ।
कल्प॑न्ता॒माप॒ ऽ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः ।
ये ऽ अ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी ऽ इ॒मे हैम॑न्तिकावृ॒तू ऽअ॑भि॒कल्प॑माना॒
ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वा ऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ २७ ॥**

पदार्थः—(**सहः**) बलकारी मार्गशीर्षः (**च**) (**सहस्यः**) सहसि=बले भवः पौषः (**च**) (**हैमन्तिकौ**) हेमन्ते भवौ मार्गशीर्षः पौषश्च मासौ (**ऋतू**) स्वलिङ्गप्रापकौ (**अग्नेः**) विद्युतः (**अन्तःश्लेषः**) मध्यः स्पर्शः (**असि**) (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**) (**ओषधयः**) (**अग्नयः**) श्वैत्येन युक्ताः पावकाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठचाय**) ज्येष्ठानां=वृद्धानां भावाय (**सव्रताः**) नियमैः सहिताः (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) समानं मनो येभ्यस्ते (**अन्तरा**) आभ्यन्तरे (**द्यावापृथिवी**) (**इमे**) (**हैमन्तिकौ**) उक्तौ (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) आभिमुख्येन समर्थयन्तः (**इन्द्रमिव**) यथैश्वर्यम् (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**अभिसंविशन्तु**) (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) दृढे (**सीदतम्**) तिष्ठेताम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे मित्र ! यौ मम ज्यैष्ठचाय सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अङ्गिरस्वत् सीदतं यस्याग्नेरन्तःश्लेष इवासि स त्वं तेन द्यावापृथिवी कल्पेतामाप ओषधयोऽग्नयश्च पृथक् कल्पन्तामिति जानीहि । येऽग्नय इवान्तरा सव्रताः समनस इमे ध्रुवे द्यावापृथिवी कल्पन्तामिन्द्रमिव हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना देवा अभिसंविशन्तु ते तया देवतया सह युक्ताहारविहारा भूत्वा सुखिनः स्युः ॥ २७॥

सपदार्थान्वयः—**हे मित्र ! यौ मम ज्यैष्ठचाय** ज्येष्ठानां=वृद्धानां भावाय **सहः** बलकारी मार्गशीर्षः **च सहस्यः** सहसि=बले भवः पौषः **च हैमन्तिकौ** हेमन्ते भवौ मार्गशीर्षः पौषश्च मासौ ऋतू स्वलिङ्गप्रापकौ **अङ्गिरस्वत् सीदतं** तिष्ठेताम् ।

यस्याऽग्नेः विद्युतः **अन्तःश्लेषः** मध्यः स्पर्शः **इवाऽसि, स त्वं येन द्यावापृथिवी कल्पेतां** समर्थयतः, **आप ओषधयोऽग्नयः** श्वैत्येन युक्ताः पावकाः **च पृथक् कल्पन्तां** समर्थयन्ति **इति जानीहि ।**

ये अग्नयः श्वैत्येन युक्ताः पावकाः **इवाऽन्तरा** आभ्यन्तरे **सव्रताः** नियमैः सहिताः **समनसः** समानं मनो येभ्यस्ते **इमे ध्रुवे** दृढे **द्यावापृथिवी कल्पन्तां** समर्थयन्ति,

इन्द्रमिव यथैश्वर्य्यं **हैमन्तिकौ** उक्तौ **ऋतू अभिकल्पमानाः** आभिमुख्येन समर्थयन्तः **देवाः** दिव्यगुणाः **अभिसंविशन्तु** आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु, **ते तया देवतया सह युक्ताहारविहारा भूत्वा सुखिनः स्युः** ॥ १४ । २७ ॥

भाषार्थ—हे मित्र ! जो—(मम) मेरी (ज्यैष्ठचाय) श्रेष्ठता के लिए—(सहः) बलकारी मार्गशीर्ष मास (च) और (सहस्यः) बल में विद्यमान पौष मास (च) ये दोनों (हैमन्तिकौ) हेमन्त-सम्बन्धी (ऋतू) अपने लिङ्ग=लक्षण के प्रापक ऋतु (अङ्गिरस्वत्) सूर्य के समान (सीदतम्) स्थित हों ।

तू—(अग्नेः) अग्नि=विद्युत् के (अन्तःश्लेषः) मध्य स्पर्श के समान (असि) है, सो तू—उससे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ होती हैं, (आपः) जल, (ओषधयः) ओषधियाँ (अग्नयः) श्वेतिमा से युक्त अग्नियाँ (पृथक्) अलग (कल्पन्ताम्) समर्थ होती हैं, ऐसा जान ।

जो (अग्नयः) श्वेतिमा से युक्त अग्नियों के समान (अन्तरा) अन्दर (सव्रताः) नियमों से युक्त (समनसः) समान मन वाले विद्वान् (इमे) इन (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (कल्पन्ताम्) समर्थ करते हैं ।

(इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के अनुसार (हैमन्तिकौ) हेमन्त (ऋतू) ऋतु को (अभिकल्पमानाः) मुख्य रूप से समर्थ बनाते हुए (देवाः) दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् (अभिसंविशन्तु) घर में प्रवेश करते हैं, वे—(तया) उस (देवतया) दिव्यगुणों से युक्त हेमन्त ऋतु के अनुसार युक्त आहार-विहार वाले होकर सुखी रहें ॥ १४ । २७ ॥

[ये'''हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना देवा अभिसंविशन्तु ते तया देवतया सह'''सुखिनः स्युः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! यथा विद्वांसः स्वसुखाय हेमन्ततौं पदार्थान् सेवेरन्, तथैवान्यानपि सेवयेयुः ॥१४।२७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अपने सुख के लिए हेमन्त-ऋतु में पदार्थों का सेवन करें वैसे ही दूसरों को भी सेवन करावें ॥ १४ । २७ ॥

भाष्यसार—१. **हेमन्त-ऋतु और उसमें कर्त्तव्योपदेश**—हेमन्त-ऋतु मार्गशीर्ष और पौष मासों में होती है। ये दोनों मास स्वास्थ्यप्रद होने से बलवृद्धि करने वाले हैं। इस ऋतु में स्वस्थ मनुष्य पूरे वर्ष भर स्वस्थ रहता है। इस ऋतु में शीत-प्रधान होने से व्यायाम प्राणायामादि से बलवृद्धि करके सूर्य की तरह तेजस्वी तथा नियमित रहना चाहिए। इस ऋतु में अग्नि गुण को प्राप्त कराने वाली ओषधियों, जल और आवास स्थानों का सेवन करना चाहिये। इस ऋतु में युक्ताहार-विहार करने वाला दिव्य-शक्तियों को प्राप्त करके और इन्द्र की तरह परमैश्वर्यशाली बनकर सुखी रहता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वानों की तरह दूसरे मनुष्यों को भी सुख प्राप्ति के लिए हेमन्त-ऋतु का सेवन करना चाहिये ॥ १४ । २७ ॥

विश्वदेवः । **ईश्वरः**=**स्पष्टम्** । निचृद्विकृतिः । मध्यमः ॥

अथैतदृतुचक्रं केन सृष्टमित्याह ॥

अब यह ऋतुओं का चक्र किसने रचा है, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

एकयास्तुवत प्रजा ऽ अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत् ।
तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् ।
पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् ।
सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**एकया**) वाण्या (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**प्रजाः**) (**अधीयन्त**) अधीयताम् (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालक ईश्वरः (**अधिपतिः**) (**आसीत्**) अस्ति (**तिसृभिः**) प्राणोदानव्यानगतिभिः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**ब्रह्म**) परमेश्वरेण वेदः (**असृज्यत**) सृष्टः (**ब्रह्मणस्पतिः**) वेदस्य पालकः (**अधिपतिः**) (**आसीत्**) अस्ति (**पञ्चभिः**) समानचित्तबुद्ध्यहंकारमनोभिः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**भूतानि**) पृथिव्यादीनि (**असृज्यन्त**) संसृष्टानि (**भूतानाम्**) (**पतिः**) पालकः (**अधिपतिः**) पत्युः पतिः (**आसीत्**) भवति (**सप्तभिः**) नागकूर्म्मकृकलदेवदत्तधनंजयेच्छाप्रयत्नैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**सप्त ऋषयः**) पंच मुख्यप्राणा महत्तत्त्वमहंकारश्चेति (**असृज्यन्त**) सृज्यन्ते (**धाता**) धर्त्ता पोषको वा (**अधिपतिः**) सर्वेषां स्वामी (**आसीत्**) अस्ति ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः प्रजापतिरधिपतिः सर्वस्य स्वामीश्वर आसीत्तमेकयाऽस्तुवत सर्वाः प्रजाश्चाधीयन्त । यो ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीद्येनेदं सर्वविद्यामयं ब्रह्म वेदोऽसृज्यत तं तिसृभिरस्तुवत । येन भूतान्यसृज्यन्त यो भूतानां पतिरधिपतिरासीत्तं सर्वे मनुष्याः । पंचभिरस्तुवत येन सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त यो धाताऽधिपतिरासीत्तं सप्तभिरस्तुवत ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यः** **प्रजापतिः** प्रजायाः पालक ईश्वरः **अधिपतिः**=

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक ईश्वर (अधिपतिः) सबका स्वामी

सर्वस्य स्वामीश्वर आसीत् अस्ति, **तमेकया** वाण्या **अस्तुवत** स्तुवन्तु, **सर्वाः प्रजाश्चाऽधीयन्त** अधीयताम् ।

ईश्वर (आसीत्) है उसकी (एकया) वाणी से (अस्तुवत) स्तुति करो और सब (प्रजाः) प्रजा (अधीयन्त) उसको स्मरण करे ।

यो ब्रह्मणस्पतिः वेदस्य पालकः **अधिपतिः**=**सर्वस्य स्वामीश्वर आसीत्** अस्ति, **येनेदं सर्वविद्यामयं ब्रह्म**=**वेदः** परमेश्वरेण वेदः **असृज्यत** सृष्टः, **तं तिसृभिः** प्राणोदानव्यानगतिभिः **अस्तुवत** स्तुवन्तु ।

जो (ब्रह्मणस्पतिः) वेद का पालक (अधिपतिः) सबका स्वामी ईश्वर (आसीत्) है, जिसने यह सर्व विद्यामय (ब्रह्म) वेद (असृज्यत) रचा है, उसकी (तिसृभिः) तीन प्राण, उदान और व्यान गति से (अस्तुवत) स्तुति करो ।

येन भूतानि पृथिव्यादीनि **असृज्यन्त** संसृष्टानि **यो भूतानां** पृथिव्यादीनां **पतिः** पालकः **अधिपतिः** पत्युः पतिः **आसीत्** भवति **तं सर्वे मनुष्याः पञ्चभिः** समानचित्तबुद्ध्यहंकारमनोभिः **अस्तुवत** स्तुवन्तु ।

जिसने (भूतानि) पृथिवी आदि पाँच भूतों को (असृज्यन्त) रचा है, जो (भूतानाम्) पृथिवी आदि पाँच भूतों का (पतिः) पालक, (अधिपतिः) रक्षक का भी रक्षक (आसीत्) है, उसे सब मनुष्य (पञ्चभिः) समान, चित, बुद्धि, अहंकार और मन इन पाँचों से (अस्तुवत) स्तुति करो ।

येन सप्तऽऋषयः पञ्च मुख्यप्राणा महत्तत्त्वमहङ्कारश्चेति **असृज्यन्त** सृज्यन्ते, **यो धाता** धर्त्ता पोषको वा **अधिपतिः** सर्वेषां स्वामी **आसीत्** अस्ति, **तं सप्तभिः** नागकूर्मकृकलदेवदत्तधनञ्जयेच्छाप्रयत्नैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु ॥ १४ । २८ ॥

जिसने (सप्तऽऋषयः) पाँच मुख्य प्राण, महत्तत्त्व और अहंकार ये सप्त ऋषि (असृज्यन्त) रचे हैं, जो (धाता) धारक वा पोषक (अधिपतिः) सबका स्वामी (आसीत्) है, उसकी (सप्तभिः) नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, इच्छा और प्रयत्न इन सातों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥

[हे मनुष्याः ! **यः प्रजापतिरधिपतिः**=**सर्वस्य स्वामीश्वर आसीत्, तमेकयाऽस्तुवत**]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः सर्वस्य जगत उत्पादको न्यायाधीशः, परमेश्वरः स्तोतव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ।

भावार्थ—सब मनुष्य-सब जगत् के उत्पादक, न्यायाधीश परमेश्वर की स्तुति करें, उसी का श्रवण, मनन और निदिध्यासन करें ।

[तात्पर्यमाह—]

यथा हेमन्ततौ सर्वे पदार्थाः शीतला भवन्ति, तथैव परमेश्वरमुपास्य शान्तियुक्ता भवन्तु ॥

जैसे—हेमन्त ऋतु में सब पदार्थ शीतल होते हैं वैसे ही परमेश्वर की उपासना करके सब शान्तियुक्त होवे ॥ १४ । २८ ॥

भाष्यसार—ऋतुओं के स्रष्टा सूर्यादि का निर्माता ईश्वर ही है—परमेश्वर सब प्रजा का पालन करने से प्रजापति कहलाता है । वेद-ज्ञान का दाता होने से उसका नाम ब्रह्मणस्पति है । उस की वाणी से, प्राण, उदान, व्यान रूप प्राणों की गति स्तुति करनी चाहिए, अर्थात् हमारी एक-एक चेष्टा ईश्वर को स्मरण करते हुए ही होवे, जिससे पाप से अपनी रक्षा कर सकें । उस ईश्वर ने ही पृथिवी आदि पाँच महाभूतों को सूक्ष्म से स्थूल रूप में रचा है । अतः उसकी उपासना समान, चित, बुद्धि, अहङ्कार और मन से करनी चाहिए । उस परमेश्वर ने ही सब मनुष्यों के शरीरों को सात ऋषियों अर्थात् पाँच प्राण, महत्तत्त्व और अहङ्कार से युक्त किया है । वह ही इन शरीरादि भौतिक पदार्थों का धारक,

पोषक तथा स्वामी है, उसकी उपासना नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, इच्छा और प्रयत्न से करनी चाहिए। तब ही सुख तथा शान्ति की प्राप्ति हो सकती है ॥ १४ । २८ ॥

विश्वदेवः । **ईश्वरः**=**स्पष्टम्** । पूर्वस्यार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । त्रयोदशभिरित्युत्तरस्य ब्राह्मी जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

पुनः स जगत्स्रष्टा किंभूत इत्याह ॥

फिर वह जगत् का रचने वाला कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत् ।
एकादशभिरस्तुवतऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवा ऽ अधिपतय ऽ आसन् ।
त्रयोदशभिरस्तुवत मासा ऽ असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् ।
पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् ।
सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**नवभिः**) प्राणविशेषैः (**अस्तुवत**) प्रशंसन्तु (**पितरः**) पालका वर्षादयः (**असृज्यन्त**) उत्पादिताः (**अदितिः**) मातेव पालिका भूमिः (**अधिपत्नी**) अधिपतिसहिता (**आसीत्**) अस्ति (**एकादशभिः**) दश प्राणा एकादश आत्मा तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**ऋतवः**) वसन्तादयः (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**आर्त्तवाः**) ऋतुषु भवा गुणाः (**अधिपतयः**) (**आसन्**) भवन्ति (**त्रयोदशभिः**) दश प्राणा द्वे प्रतिष्ठे त्रयोदश आत्मा तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**मासाः**) चैत्राद्याः (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**संवत्सरः**) (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) अस्ति (**पञ्चदशभिः**) प्रतिपदादितिथिभिः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु संख्यायन्तु (**क्षत्रम्**) राज्यं क्षत्रियकुलं वा (**असृज्यत**) सृष्टम् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यहेतुः सूर्य्यः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) (**सप्तदशभिः**) दश पाद्या अङ्गुलयश्चत्वार्य्यूर्वष्ठीवानि द्वे प्रतिष्ठे यदर्वाङ् नाभेस्तत्सप्तदशं तैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**ग्राम्याः**) ग्रामे भवाः (**पशवः**) गवादयः (**असृज्यन्त**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां पालको वैश्यः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) अस्ति ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं येन पितरोऽसृज्यन्त यत्राधिपत्न्यदितिरासीत्तं यूयं नवभिरस्तुवत येनर्त्तवोऽसृज्यन्त यत्रार्त्तवा अधिपतय आसंस्तमेकादशभिरस्तुवत येन मासा असृज्यन्त पञ्चदशभिः संवत्सरोऽधिपतिः सृष्ट आसीत् त्रयोदशभिरस्तुवत । यत्रेन्द्रोऽधिपतिरासीद्येन नक्षत्रमसृज्यत तं सप्तदशभिरस्तुवत । येन बृहस्पतिरधिपतिः सृष्ट आसीद् ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त तं परमेश्वरं सप्तदशभिरस्तुवत ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं येन पितरः** पालका वर्षादयः **असृज्यन्त** उत्पादिताः, **यत्राधिपत्नी** अधिपतिसहिता **अदितिः** मातेव पालिका भूमिः **आसीत्** अस्ति, **तं नवभिः** प्राणविशेषैः **अस्तुवत** प्रशंसन्तु ।

येनर्त्तवः वसन्तादयः **असृज्यन्त** सृष्टाः **यत्रा-**

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिसने (पितरः) पालक वर्ष आदि पितरों को (असृज्यन्त) उत्पन्न किया है, जिसमें—(अधिपत्नी) अधिपति सहित (अदितिः) माता के समान पालक भूमि (आसीत्) है, उसकी (नवभिः) नौ प्राण-विशेषों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ।

जिससे (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (असृ-

र्त्तवाः ऋतुषु भवा गुणाः **अधिपतय आसन्** भवन्ति, **तमेकादशभिः** दश प्राणा एकादश आत्मा तैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु ।

येन मासाः चैत्राद्याः **असृज्यन्त** सृष्टाः, **पञ्चदशभिः** प्रतिपदादितिथिभिः **संवत्सरोऽधिपतिः** अधिष्ठाता **सृष्ट आसीत्** अस्ति, **तं त्रयोदशभिः** दश प्राणा द्वे प्रतिष्ठे त्रयोदश आत्मा तैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु संख्यायन्तु ।

यत्रेन्द्रः परमैश्वर्य्यहेतुः सूर्य्यः **अधिपतिः** अधिष्ठाता **आसीत्** अस्ति **येन क्षत्रं** राज्यं क्षत्रियकुलं वा **असृज्यत** सृष्टं, **तं सप्तदशभिः** दश पाद्या अङ्गुलयश्चत्वार्यूर्वष्ठीवानि द्वे प्रतिष्ठे यदर्वाङ् नाभेस्तत्सप्तदशं तैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु ।

येन बृहस्पतिः बृहतां पालको वैश्यः **अधिपतिः** अधिष्ठाता **सृष्ट आसीत्** अस्ति, **ग्राम्याः** ग्रामे भवाः **पशवः** गवादयः **असृज्यन्त, तं परमेश्वरं सप्तदशभिरस्तुवत** स्तुवन्तु ॥ १४ । २९ ॥

ज्यन्त) रचे हैं, जिसमें (आर्त्तवाः) ऋतुओं में विद्यमान गुण (अधिपतयः) अधिपति रूप में (आसन्) हैं, उसकी (एकादशभिः) दस प्राण और ग्यारहवां आत्मा इनसे (अस्तुवत) स्तुति करो ।

जिसने (मासाः) चैत्र आदि मास (असृज्यन्त) रचे हैं, और जिसने (पञ्चदशभिः) प्रतिपदा आदि पन्द्रह तिथियों से युक्त (संवत्सरः) वर्ष (अधिपतिः) अधिष्ठाता बनाया (आसीत्) है; उसकी (त्रयोदशभिः) दस प्राण, दो प्रतिष्ठा और तेरहवाँ आत्मा इनसे (अस्तुवत) स्तुति करो ।

जिसमें (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का हेतु सूर्य (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है, जिसने (क्षत्रम्) राज्य वा क्षत्रियकुल को (असृज्यत) रचा है, उसकी (सप्तदशभिः) दस पांव की अङ्गुलियाँ, दो जंघा दो जानु चार, दो प्रतिष्ठा, एक नाभि के नीचे का भाग इनसे (अस्तुवत) स्तुति करो ।

जिसने (बृहस्पतिः) बड़ों के पालक वैश्य को रचा (आसीत्) है, (ग्राम्याः) ग्रामीण (पशवः) गौ आदि पशुओं को (असृज्यन्त) उत्पन्न किया है उस परमेश्वर की (सप्तदशभिः) उक्त सत्रह साधनों से (अस्तुवत) स्तुति करो ॥ १४ । २९ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं येन पितरोऽसृज्यन्त, येन ऋतवोऽसृज्यन्त ···तमस्तुवत]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! भवन्तो येन ऋत्वादयः प्रजापालका निर्मिताः पाल्याश्च, येन कालनिर्मापकाः सूर्यादयः सर्वे पदार्थाः सृष्टास्तं परमात्मानमुपासीरन् ॥ १४ । २९ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! आप—जिसने ऋतु आदि प्रजा के पालक तथा अन्य गौ आदि पालन के योग्य पदार्थ रचे हैं और जिसने काल के निर्माता सूर्य आदि सब पदार्थ उत्पन्न किए हैं उस परमात्मा की उपासना करो ॥ १४ । २९ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=ऋत्वादयः प्रजापालकाः । अस्तुवत=उपासीरन् ॥

भाष्यसार—**जगत्स्रष्टा ईश्वर ही उपास्यदेव है**—परमेश्वर संसार का रचयिता है, वह पालकों का भी पालक है । उसने पालन करने वाले वर्ष को तथा माता की तरह पालन करने वाली भूमि को बनाया है । उसने ही भिन्न-भिन्न ऋतुओं के जनक सूर्यादि को रचा है । उसकी उपासना समस्त प्राण-शक्तियों से और आत्मा से करनी चाहिए ।

सूर्य की तरह अपने प्राणों को प्रदीप्त बनाकर ही दशों प्राणों से, दो प्रतिष्ठा तथा आत्मा से परमेश्वर की उपासना करने के योग्य बनता है । ईश्वर-रचित सूर्य सब ऐश्वर्यों का कारण है । सब प्रकार की शक्तियाँ सूर्य से प्राप्त होती हैं । अतः क्षत्रकुल का जन्म सूर्य से माना जाता है । शरीर के अङ्गों को हृष्ट-पुष्ट बनाने के लिए सूर्य की उपासना करनी चाहिए ॥ १४ । २९ ॥

विश्वदेवः। **जगदीश्वरः**=स्पष्टम्। पूर्वस्य ब्राह्मी जगती। निषादः।
पञ्चविंशत्येतस्य ब्राह्मी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

पुनः स कीदृश इत्याह॥

फिर वह जगत्स्रष्टा ईश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे ऽ अधिपत्नी ऽ आस्ताम्। एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्॥ त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। पञ्चविꣳशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा ऽ आदित्या ऽ अनुव्यायँस्त ऽ एवाधिपतय ऽ आसन्॥ ३०॥

पदार्थः—(**नवदशभिः**) दश प्राणाः पञ्चमहाभूतानि मनोबुद्धिचित्ताहंकारैः (**अस्तुवत**) स्तुवन्तु (**शूद्रार्यौ**) शूद्रश्चार्य्यो=द्विजश्च तौ (**असृज्येताम्**) (**अहोरात्रे**) (**अधिपत्नी**) अधिष्ठात्र्यौ (**आस्ताम्**) भवतः (**एकविंशत्या**) मनुष्याणामङ्गैः (**अस्तुवत**) (**एकशफाः**) अश्वादयः (**पशवः**) (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**वरुणः**) जलम् (**अधिपतिः**) (**आसीत्**) (**त्रयोविंशत्या**) पश्वङ्गैः (**अस्तुवत**) (**क्षुद्राः**) नकुलपर्यन्ताः (**पशवः**) (**असृज्यन्त**) (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता भूगोलः (**अधिपतिः**) (**आसीत्**) (**पञ्चविंशत्या**) क्षुद्रपश्ववयवैः (**अस्तुवत**) (**आरण्याः**) अरण्ये भवाः (**पशवः**) सिंहादयः (**असृज्यन्त**) (**वायुः**) (**अधिपतिः**) (**आसीत्**) (**सप्तविंशत्या**) आरण्यपशुगुणैः (**अस्तुवत**) (**द्यावापृथिवी**) (**वि**) विविधतया (**ऐताम्**) प्राप्नुतः (**वसवः**) अग्न्यादयोऽष्टौ (**रुद्राः**) प्राणादयः (**आदित्याः**) चैत्रादयो द्वादश मासाः प्रथममध्यमोत्तमा विद्वांसो वा (**अनुव्यायन्**) अनुकूलतयोत्पादिताः (**ते**) (**एव**) (**अधिपतयः**) (**आसन्**)॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं येनोत्पादिते अहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्। येन शूद्रार्यावसृज्येतां तं नवदशभिरस्तुवत। येनोत्पादितो वरुणोऽधिपतिरासीद्येनैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त तं परमात्मानमेकविंशत्यास्तुवत। येन निर्मितः पूषाऽधिपतिरासीद् येन क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त तं त्रयोविंशत्यास्तुवत। येनोत्पादितो वायुरधिपतिरासीद्येनाऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त तं पञ्चविंशत्यास्तुवत येन सृष्टे द्यावापृथिव्यैतां येन चरिता वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायंस्त एवाऽधिपतय आसंस्तं सप्तविंशत्यास्तुवत॥ ३०॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यूयं** येनोत्पादिते **अहोरात्रे अधिपत्नी** अधिष्ठात्र्यौ **आस्तां** भवतः, येन **शूद्रार्य्यौ** शूद्रश्चार्य्यो द्विजश्च तौ **असृज्येतां** तं **नवदशभिः** दश प्राणा पञ्चमहाभूतानि मनोबुद्धिचित्ताऽहङ्कारैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु।

येनोत्पादितो **वरुणः** जलम् **अधिपतिरासीत्** भवति येनैकशफाः अश्वादयः **पशवोऽसृज्यन्त** सृष्टाः तं परमात्मानमेकविंशत्या तं मनुष्याणामङ्गैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु।

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जिसके रचे (अहोरात्रे) दिन-रात (अधिपत्नी) अधिष्ठाता (आस्ताम्) हैं, जिसने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और आर्य=द्विज को (असृज्येताम्) बनाया है, उसकी (नवदशभिः) दस प्राण, पांच महाभूत, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इनसे (अस्तुवत) स्तुति करो।

जिसका रचा हुआ (वरुणः) जल (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है, जिसने (एकशफाः) घोड़े आदि (पशवः) पशुओं को (असृज्यन्त)

उत्पन्न किया है, उस परमात्मा की (अस्तुवत) स्तुति करो।

येन निर्मितः पूषा पुष्टिकर्त्ता भूगोलः **अधिपति-रासीत्** भवति, **येन क्षुद्राः** नकुलपर्यन्ताः **पशवः असृज्यन्त** सृष्टाः, **तं त्रयोविंशत्या** पश्वङ्गैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु।

जिसका बनाया हुआ (पूषा) पुष्टि कर्त्ता यह भूगोल (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है, जिसने (क्षुद्राः) नकुल पर्यन्त क्षुद्र (पशवः) जन्तु (असृज्यन्त) उत्पन्न किए हैं उसकी (त्रयोविंशत्या) तेईस पशु-अङ्गों से (अस्तुवत) स्तुति करो।

येनोत्पादितो वायुरधिपतिरासीत् भवति, **येनाऽऽरण्याः** अरण्ये भवाः **पशवः** सिंहादयः **असृज्यन्त** सृष्टाः, **तं पञ्चविंशत्या** क्षुद्रपश्ववयवैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु।

जिसका उत्पन्न किया हुआ (वायुः) वायु (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है, जिसने (आरण्याः) जंगली (पशवः) सिंह आदि पशुओं को (असृज्यन्त) उत्पन्न किया है, उसकी (पंचविंशत्या) पच्चीस क्षुद्र-पशुओं के अवयवों से (अस्तुवत स्तुति करो।

येन सृष्टे द्यावापृथिवी व्यैतां विविधतया प्राप्नुतः, **येन रचिता वसवः** अग्न्यादयोऽष्टौ **रुद्राः** प्राणादयः **आदित्याः** चैत्रादयो द्वादशाः मासाः प्रथममध्यमोत्तमा विद्वांसो वा **अनुव्यायन्** अनुकूलतयोत्पादिताः, **त एव अधिपतय आसन्** भवन्ति, **तं सप्तविंशत्या** आरण्यपशुगुणैः **अस्तुवत** स्तुवन्तु॥ १४। ३०॥

जिसके रचे (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (व्यैताम्) विविध रूपों में प्राप्त होते हैं, जिसके रचे (वसवः) अग्नि आदि, आठ वसु, (रुद्राः) प्राण आदि, (आदित्याः) चैत्र आदि बारह मास वा प्रथम, मध्यम और उत्तम विद्वान (अनुव्यायन्) अनुकूलता से उत्पन्न किए हैं, (ते) वे (एव) ही (अधिपतय) अधिष्ठाता (आसन्) हैं उसकी (सप्तविंशत्या) सत्ताईस आरण्य=जंगली पशुओं के गुणों से (अस्तुवत) स्तुति करो॥ १४। ३०॥

[हे मनुष्याः!···येन शूद्रार्यावसृज्येतां, येनैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त, येन क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त]

भावार्थः—हे मनुष्याः! येनार्याः शूद्रा दस्यवश्च मनुष्याः सृष्टा, येन स्थूलसूक्ष्मा प्राणिदेहा महद्ध्रस्वाः पशव, एतेषां पालनसाधनानि च।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिसने आर्य, शूद्र और दस्यु मनुष्यों को उत्पन्न किया है, जिसने स्थूल, सूक्ष्म प्राणियों के देह तथा बड़े-छोटे पशु और इनके पालन के साधन रचे हैं,

[येन···वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायन्···तं···अस्तुवत]

यस्य सृष्टावल्पविद्याः समग्रविद्याश्च विद्वांसो भवन्ति, तमेव यूयमुपास्यं मन्यध्वम्॥

जिसकी सृष्टि में अल्प विद्या और पूर्ण विद्या वाले विद्वान् होते हैं उसी को तुम उपास्य मानो॥

भा० पदार्थः—वसवः=अल्पविद्या विद्वांसः। आदित्याः=समग्रविद्या विद्वांसः॥

भाष्यसार—जगत्स्रष्टा ईश्वर ही उपास्य देव है—सभी मनुष्यों को चाहिए कि जिस परमेश्वर के रचे दिन-रात सब प्राणियों के अधिष्ठाता हैं। जिसने मनुष्य जाति के शूद्रों तथा आर्यों को बनाया है। जिसका रचा जल जीवनाधार है। जिसने एक खुर वाले अश्वादि को, नकुल पर्यन्त क्षुद्र-जीवों को, प्राणाधार वायु को और सिंहादि जंगली पशुओं को बनाया है। समस्त भूगोल का रचयिता

वही ईश्वर है। उसने ही वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञक देवों को बनाया है। इन सबका अधिष्ठाता परमेश्वर ही है। अतः उसके बनाये पदार्थों को जानकर जीवनोपयोगी बनाना चाहिए। और उनसे सामर्थ्य प्राप्त करके ईश्वर की उपासना करनी चाहिए ।। १४ । ३० ।।

विश्वदेवः । **प्रजापतिः=ईश्वरः** । स्वराड् ब्राह्मी जगती । निषादः ।।

पुनः स एव विषय उपदिश्यते ।।

वह जगत्स्रष्टा ईश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ।।

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् ।
एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजा ऽ असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय ऽ आसन् ॥
त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**नवविंशत्या**) एतत्संख्याकैर्वनस्पतिगुणैः (**अस्तुवत**) जगत्स्रष्टारं परमात्मानं प्रशंसत (**वनस्पतयः**) अश्वत्थादयः (**असृज्यन्त**) सृष्टाः (**सोमः**) ओषधिराजः (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) भवति (**एकत्रिंशता**) प्रजाङ्गैः (**अस्तुवत**) प्रशंसत (**प्रजाः**) (**असृज्यन्त**) निर्मिताः (**यवाः**) मिश्रिताः (**च**) (**अयवाः**) अमिश्रिताः (**च**) (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः (**आसन्**) सन्ति (**त्रयस्त्रिंशता**) महाभूतगुणैः (**अस्तुवत**) प्रशंसत (**भूतानि**) महान्ति तत्त्वानि (**अशाम्यन्**) शाम्यन्ति (**प्रजापतिः**) प्रजापालक ईश्वरः (**परमेष्ठी**) परमेश्वररूपे आकाशे वाऽभिव्याप्य तिष्ठतीति (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**आसीत्**) **अत्राऽपि लोकन्ता इन्द्रमिति मन्त्रत्रयप्रतीकानि पूर्ववत्केनचित् क्षिप्तानीति वेद्यम्** ।। ३१ ।।

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र में भी 'लोकन्ता इन्द्रम्' यह वाक्यांश पूर्ववत् किसी ने मिला दिया है, अतः त्याज्य होने से यहाँ नहीं लिखा है।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं येनोत्पादितः सोमोऽधिपतिरासीद्येन ते वनस्पतयोऽसृज्यन्त तं जगदीश्वरं नवविंशत्यास्तुवत। यासां यवा मिश्रिता पर्वतादयश्च त्रसरेण्वादयश्चाऽयवाः प्रकृत्यवयवाः सत्त्वरजस्तमांसि गुणाः परमाण्वादयश्चाऽधिपतय आसन् ता असृज्यन्त तमेकत्रिंशतास्तुवत। यस्य प्रभावाद् भूतान्यशाम्यन्यः प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्तं त्रयस्त्रिंशतास्तुवत ।। ३१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यूयं येनोत्पादितः सोमः** ओषधिराजः **अधिपतिः** अधिष्ठाता **आसीत्** भवति, **येन ते वनस्पतयः** अश्वत्थादयः **असृज्यन्त** सृष्टाः, **तं जगदीश्वरं नवविंशत्या** एतत्संख्याकैर्वनस्पतिगुणैः **अस्तुवत** (जगत्स्रष्टारं परमात्मानं) प्रशंसत।

यासां यवाः=**मिश्रिताः पर्वतादयश्च त्रसरेण्वादयश्च** मिश्रिताः, **अयवाः प्रकृत्यवयवाः सत्त्वरजस्तमांसि गुणाः परमाण्वादयश्च** अमिश्रिताः **अधिपतयः** अधिष्ठातारः **आसन्** सन्ति, **ताः असृज्यन्त**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिसका उत्पन्न किया हुआ (सोमः) ओषधियों का राजा सोम (अधिपतिः) अधिष्ठाता (आसीत्) है, जिसने वे (तेवनस्पतयः) अश्वत्थ=पीपल आदि वनस्पतियों को (असृज्यन्त) उत्पन्न किया है, उस जगदीश्वर की (नवविंशत्या) उनतीस वनस्पति के गुणों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो।

जिनके—(यवाः) अवयव मिश्रित मिले हुए हैं, वे पर्वत आदि और त्रसरेणु आदि, और (अयवाः) जिनके अवयव अमिश्रित=पृथक्-पृथक् हैं वे प्रकृति के अवयव सत्त्व, रज, तम गुण और परमाणु आदि

निर्मिताः, **तमेकत्रिंशता** प्रजाङ्गैः **अस्तुवत** प्रशंसत ।

(अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं, उन्हें (असृज्यन्त) कार्य रूप बनाता है, उस जगदीश्वर की (एकत्रिंशता) इकत्तीस प्रजा के अङ्गों से (अस्तुवत) प्रशंसा करो ।

यस्य प्रभावाद् भूतानि महान्ति तत्त्वानि **अशाम्यन्** शाम्यन्ति, **यः प्रजापतिः** प्रजापालक ईश्वरः **परमेष्ठी** परमेश्वररूपे आकाशे वाऽभिव्याप्य तिष्ठतीति **अधिपतिः** अधिष्ठाता **आसीत्** भवति, **तं त्रयस्त्रिंशता** महाभूतगुणैः **अस्तुवत** प्रशंसत ॥

जिसके प्रभाव से (भूतानि) महान् तत्त्व (अशाम्यन्) शान्त हो जाते हैं, जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक ईश्वर (परमेष्ठी) परमेश्वर-रूप वा आकाश में व्यापक होकर स्थित है, वह (अधिपतिः) सबका अधिष्ठाता (आसीत्) है, उसकी (त्रयस्त्रिंशता) तेंतीस महाभूतों के गुणों से (अस्तुवत) करो ॥ १४ । ३१ ॥

[हे मनुष्याः ! येन ते वनस्पतयोऽसृज्यन्त तं जगदीश्वरम्...अस्तुवत]

भावार्थः—येन जगदीश्वरेण लोकानां रक्षणाय वनस्पत्यादीन् सृष्ट्वा ध्रियन्ते, व्यवस्थाप्यन्ते, स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः ॥ १४ । ३१ ॥

भावार्थ—जो जगदीश्वर लोकों की रक्षा के लिए वनस्पति आदि को रचकर धारण और व्यवस्थित कर रहा है उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ १४ । ३१ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) 'त्रयस्त्रिंशतास्तुवत०' अर्थात् व्यवहार के ये (३३) तेंतीस देवता हैं—(८) आठ वसु, (११) ग्यारह रुद्र, (१२) बारह आदित्य, (१) एक इन्द्र, और (१) एक प्रजापति । इनमें से आठ वसु ये हैं—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र । इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और ये ही सबके निवास करने के स्थान हैं । ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं—जो शरीर में दस प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और ग्यारहवाँ जीवात्मा है । क्योंकि जब ये इस शरीर से निकल जाते हैं, तब मरण होने से उसके सब सम्बन्धी लोग रोते हैं, वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं, इससे इनका नाम रुद्र हैं । इसी प्रकार(१२)आदित्य बारह महीनों को कहते हैं । क्योंकि ये सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं । इसी से इनका नाम आदित्य है । ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है । क्योंकि यह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इसलिए कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि-जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है । तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का यह कारण है कि इनसे भी प्रजा का जीवन होता है ।

ये सब मिलके अपने-अपने दिव्य-गुणों से तेतीस देव कहाते हैं; और तीन देव-स्थान, जन्म और नाम को कहते हैं । दो देव-अन्न और प्राण को कहते हैं । अध्यर्धदेव अर्थात् जिससे सबका धारण और वृद्धि होती है, जो सूत्रात्मा वायु सब जगत् में भर रहा है, उसको अध्यर्धदेव कहते हैं (**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषयविचार**) ॥

(ख) जो "त्रयस्त्रिंशत्त्रिंशता०" इत्यादि वेदों में प्रमाण है । इसकी व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र, सब सृष्टि के निवास-स्थान होने से आठ वसु । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं, तब रोदन कराने वाले होते हैं ।

संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसीलिए हैं कि ये सबकी आयु को लेते जाते हैं। बिजली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि यह परम ऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि-जल ओषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्प विद्या से प्रजा का पालन होता है।

ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं। इनका स्वामी और सबसे बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवाँ उपास्यदेव शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है (**सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास**)॥

भाष्यसार—जगत्-स्रष्टा ईश्वर ही उपास्य देव है—जिस परमेश्वर ने पञ्चमहाभूतों के परमाणुओं के मिश्रण से त्रसरेणु से लेकर पर्वत तक के पदार्थों को बनाया है। और जो परमेश्वर अमिश्रित प्रकृति के अवयव सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण का अधिष्ठाता है। जिसने सोमादि रोग-नाशक ओषधियों को और पीपलादि वनस्पतियों को बनाया है। वह परमात्मा आकाश की तरह सर्वत्र व्यापक तथा सबकी रक्षा करने वाला है। सब पदार्थों को रचकर व्यवस्था में चला रहा है। उसके बनाये पदार्थों के गुण-विज्ञान को जानकर ही परमेश्वर के प्रति श्रद्धा पैदा होती है। अतः परमसुख के लाभ के लिए उसी की उपासना करनी चाहिए॥ १४। ३१॥ ●

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये वसन्ताद्यृतुवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाऽध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति ज्ञेयम्॥ १४॥

इस अध्याय में वसन्त आदि ऋतुओं के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें॥ १४॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे चतुर्दशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥

॥ ओ३म् ॥

❋ अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः ❋

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=राजा सेनापतिः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अस्य प्रथममन्त्रे राजराजपुरुषैः किं किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब पन्द्रहवें अध्याय का आरम्भ है । इस के प्रथम मन्त्र में राजा और राजपुरुषों को क्या-क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ने॑ जा॒तान् प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान्नुद जातवेदः ।
अधि॑ नो ब्रूहि सु॒मना॒ऽ अहे॑डँस्तव॑ स्याम॒ शर्मँ॑स्त्रि॒वरू॑थ ऽ उ॒द्भौ ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) राजन् वा सेनापते (**जातान्**) उत्पन्नान् प्रसिद्धान् (प्र) (**नुद**) दूरे प्रक्षिप । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नान्**) सपत्नीव वर्त्तमानानरीन् (**प्रति**) (**अजातान्**) अप्रकटान् (**नुद**) प्रेर्ष्व (**जातवेदः**) जातबल (**अधि**) (**नः**) अस्मान् (**ब्रूहि**) उपदिश (**सुमनाः**) प्रसन्नस्वान्तः (**अहेडन्**) अनादरमकुर्वन् (**तव**) (**स्याम**) (**शर्मन्**) गृहे (**त्रिवरूथे**) त्रीणि वरूथान्याध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानि सुखानि यस्मिन् (**उद्भौ**) उदुत्कृष्टानि वस्तूनि भवन्ति यस्मिंस्तस्मिन् ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**नुद**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं नो जातान् सपत्नान् प्रणुदा हे जातवेदस्त्वमजातान् शत्रून्नुद अस्मान् अहेडन् सुमनास्त्वं नोऽस्मान् प्रत्यधिब्रूहि यतो वयं तवोद्भौ त्रिवरूथे शर्मन् सुखिनः स्याम ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! राजन् वा सेनापते ! **त्वं नः** अस्माकं **जातान्** उत्पन्नान् प्रसिद्धान् **सपत्नान्** सपत्नीव वर्त्तमानानरीन् **प्र+णुद** दूरे प्रक्षिप ।

भावार्थ—हे (अग्ने) राजन् वा सेनापति ! तू—(नः) हमारे (जातान्) उत्पन्न एवं प्रसिद्ध (सपत्नान्) सपत्नी के तुल्य वर्ताव करने वाले शत्रु-जनों को (प्र+णुद) दूर हटा ।

हे जातवेदः ! जातबल ! **त्वमजातान्** अप्रकटान् शत्रून् **नुद** प्रेर्ष्व । **अस्मानहेडन्** अनादरमकुर्वन् **सुमनाः** प्रसन्नस्वान्तः **त्वं नः**=**अस्मान् प्रति, अधि+ब्रूहि** उपदिश । **यतो वयं तवोद्भौ** उदुत्कृष्टानि वस्तूनि भवन्ति यस्मिंस्तस्मिन् **त्रिवरूथे** त्रीणि वरूथान्याध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानि सुखानि यस्मिन् **शर्मन्** गृहे सुखिनः स्याम ॥ १५ । १ ॥

हे (जातबल) बलवान् राजन् ! तू—(अजातान्) अप्रसिद्ध शत्रुओं को (नुद) दूर कर । (अस्मान्) (अहेडन्) अनादर न करता हुआ (सुमनाः) प्रसन्न-चित्त होकर तू—(नः) हमारे (प्रति) प्रति (अधि+ब्रूहि) उत्तम उपदेश कर । जिससे हमें (तव) तेरे (उद्भौ) उत्कृष्ट वस्तुओं वाले, (त्रिवरूथे) तीन—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सुखों वाले (शर्मन्) घर में सुखी रहें ॥ १५ । १ ॥

[हे अग्ने ! त्वं नो जातान् सपत्नान् प्रणुद...त्वमजातान् शत्रून् नुद]

भावार्थः— राजादिसभ्यजनैर्गुप्तैश्चारैः प्रसिद्धाऽप्रसिद्धान् शत्रून् निश्चित्य वशं नेयाः ।

भावार्थ—राजा आदि सभासद् जन गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं का निश्चय करके उन्हें वश में करें ।

[अस्मानहेडन् सुमनास्त्वं...प्रत्यधिब्रूहि]

न कस्यापि धार्मिकस्यानादरोऽधार्मिकस्यादरश्च कर्त्तव्यः,

किसी धार्मिक पुरुष का अनादर और अधार्मिक जन का आदर न करें ।

[यतो वयं तव...त्रिवरूथे शर्मन् सुखिनः स्याम]

यतः सर्वे सज्जना विश्वस्ताः सन्तो राष्ट्रे वसेयुः ॥ १५ । १ ॥

जिससे सब सज्जन पुरुष विश्वासपूर्वक राष्ट्र में वास करें ॥ १५ । १ ॥

भा० पदार्थः—सपत्नान्=शत्रून् । अजातान्=अप्रसिद्धान् । त्रिवरूथे=राष्ट्रे ।

भाष्यसार—राजा और सेनापति के उत्तम कर्त्तव्य—राजा और सेनापति का मुख्य धर्म यह है कि अपने सेनाबल को बढ़ाकर उत्तमोत्तम अस्त्र-शस्त्रों के चलाने में सेना को प्रशिक्षित करें और राज्य में जो भी छिपकर शत्रुता का व्यवहार करते हैं अथवा प्रकट रूप में शत्रु हों, उनको समूल नष्ट करके राज्य की सर्वथा रक्षा किया करें । जिससे प्रजा में किसी प्रकार का आतङ्क न रहे । राज्य में जो धार्मिक व विद्वान् पुरुष हों, उनका सदा सत्कार किया करें । क्योंकि अच्छे पुरुषों की रक्षा करने से अच्छाई बढ़ती है । और प्रजा अपने निवास स्थानों में सुख-पूर्वक रहती हुई सभी प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करने में समर्थ होती है । और प्रजा में आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक सुखों की वृद्धि होती है ॥ १५ । १ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=राजा, राजपुरुषः** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और राजपुरुषों को क्या-क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व ।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयᳬ स्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ २ ॥

पदार्थः—(**सहसा**) बलेन सह (**जातान्**) प्रादुर्भूतान् विरोधिनः (**प्र**) (**नुद**) विजयस्व। अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नान्**) सपत्नीव वर्त्तमानान् शत्रून् (**प्रति**) (**अजातान्**) युद्धेऽप्रकटान् शत्रुसेविनो मित्रान् (**जातवेदः**) जातप्रज्ञान (**नुदस्व**) पृथक् कुरु (**अधि**) (**नः**) (**ब्रूहि**) विजयविधिमुपदिश (**सुमनस्यमानः**) सुष्ठु विचारयन् (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**प्र**) (**नुद**) हिन्धि। अत्रापि पूर्ववद्दीर्घः (**नः**) अस्माकम् (**सपत्नान्**) विरोधे वर्त्तमानान् सम्बन्धिनः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ--(**नुद**) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है। (**नुद**) यहाँ भी पूर्ववत् दीर्घ है॥

अन्वयः—हे जातवेदस्त्वं नः सहसा जातान्सपत्नान् प्रणुद। तान् प्रत्यजातान् नुदस्व। सुमनस्यमानस्त्वं नोऽधि ब्रूहि। वयं तव सहायाः स्याम। यान्नः सपत्नान् त्वं प्रणुद तान् वयमपि प्रणुदेम ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे जातवेदः!** जातप्रज्ञान! **त्वं नः** अस्माकं **सहसा** बलेन सह **जातान्** प्रादुर्भूतान् विरोधिनः **सपत्नान्** सपत्नीव वर्त्तमानान् शत्रून् **प्र+णुद** विजयस्व **तान् प्रत्यजातान्** युद्धेऽप्रकटान् शत्रुसेविनो मित्रान् **नुदस्व** पृथक् कुरु। **सुमनस्यमानः** सुष्ठु विचारयन् **त्वं नः** अस्मान् **अधि+ब्रूहि** विजयविधिमुपदिश। **वयं तव सहायाः स्याम** भवेम **यान् नः** अस्माकं **सपत्नान्** विरोधे वर्त्तमानान् सम्बन्धिनः **त्वं प्र+णुद** हिन्धि, **तान् वयमपि प्रणुदेम** ॥ १५ । २ ॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) उत्तम ज्ञान वाले राजन्! तू—(नः) हमारे (सहसा) बल से (जातान्) प्रसिद्ध विरोधी (सपत्नान्) सपत्नी के समान वर्ताव करने वाले शत्रु जनों को (प्र+णुदस्व) जीत, उन (प्रत्यजातान्) युद्ध में प्रकट शत्रु के सेवक मित्रों को (नुदस्व) पृथक् कर। (सुमनस्यमानः) उत्तम विचार करता हुआ तू—(नः) हमें (अधि+ब्रूहि) विजय-विधि का उपदेश कर। (वयम्) हम (तव) तेरे सहायक (स्याम) हों। जिन (नः) हमारे (सपत्नान्) विरोध में वर्तमान सम्बन्धियों का तू (प्र+णुद) हनन करता है, उनका हम भी हनन करें।

[हे जातवेद! त्वं···सपत्नान् प्रणुद]

भावार्थः—ये राजभृत्याः शत्रुनिवारणे यथाशक्ति न प्रयतन्ते, ते सम्यग् दण्डचाः।

भावार्थ—जो राज-भृत्य शत्रुओं के निवारण में यथाशक्ति प्रयत्न नहीं करते उनको भली-भाँति दण्डित करें।

[वयं तव सहायाः स्याम]

ये स्वसहायाः स्युस्तान् राजा सत्कुर्यात् ॥ १५॥

जो अपने सहायक हों उनका राजा सत्कार करे॥ १५ । २॥

भाष्यसार—**राजा के कर्त्तव्य**—राजा को उचित है कि वह राजकीय कार्यों में कार्य-कुशल और कर्त्तव्य-परायण सेवकों की ही नियुक्ति करे। राजा अपनी प्रजा के कार्यों को गुप्तचरों के द्वारा सदा जानने का यत्न करे और अपने बल को बढ़ाकर अपने शत्रुओं का विनाश करे। प्रजा में भी जो मनुष्य शत्रुओं से सहयोग अथवा मित्रता करते हों, उनको भी उत्तम विचार करके यथायोग्य दण्ड देवे। अपने राजकीय पुरुषों को सदुपदेश से सन्मार्ग पर चलावे, और अपने सहयोगियों का सदा सत्कार किया करे। फिर जो राजकीय पुरुष अथवा प्रजा-जन शत्रुओं का साथ देवें और अपने-अपने

कर्त्तव्य का पालन न करते हों, अथवा रिश्वतादि लेकर प्रजा को दुःख देते हों उन्हें सदा दण्ड देकर अपने वश में करता रहे। इससे प्रजा में शान्ति रहती है ॥ १५ । २ ॥

परमेष्ठी। **दम्पती**=स्त्रीपुरुषौ ॥ ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ पतिपत्नीधर्म्ममाह ॥

अब स्त्री पुरुष के धर्म का उपदेश किया है ॥

षोडशी स्तोम ऽ ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम्।
अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे ऽ अभि गृणन्तु देवाः।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

पदार्थः—(षोडशी) प्रशस्ताः षोडश कलाः सन्ति यस्मिन् सः (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः (**ओजः**) पराक्रमः (**द्रविणम्**) धनम् (**चतुश्चत्वारिंशः**) एतत्संख्यापूरको ब्रह्मचर्यव्यवहारकरः (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन सः (**वर्चः**) अध्ययनम् (**द्रविणम्**) बलं वा (**अग्नेः**) पावकस्य (**पुरीषम्**) पूर्त्तिकरम् (**असि**) (**अप्सः**) न विद्यते परपदार्थस्याप्सो=भक्षणं यस्य सः (**नाम**) प्रसिद्धम् (**ताम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**विश्वे**) (**अभि**) (**गृणन्तु**) प्रशंसन्तु (**देवाः**) विद्वांसः (**स्तोमपृष्ठा**) स्तोमाः पृष्ठा=ज्ञापयितुमिष्टा यस्याः सा (**घृतवती**) प्रशस्ताज्यादियुक्ता (**इह**) गृहाश्रमे (**सीद**) (**प्रजावत्**) बह्व्यः प्रजा यस्मात्तत् (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**द्रविणा**) द्रविणं=धनम्। अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**यजस्व**) देहि ॥ ३ ॥

प्रमाणार्थ—(**द्रविणा**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७।१।३९) से आकार-आदेश है ॥

अन्वयः—यः षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं यश्चत्वारिंशः स्तोमो नाम वर्चो द्रविणं च ददाति योऽग्नेः पुरीषं प्राप्तोऽप्सोऽसि तं त्वां तां च विश्वे देवा अभिगृणन्तु सा त्वं स्तोमपृष्ठा घृतवती सतीह गृहाश्रमे सीदास्मे प्रजावद् द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः षोडशी** प्रशस्ताः षोडश कलाः सन्ति यस्मिन् सः **स्तोमः** स्तोतुमर्हः **ओजः** पराक्रमः **द्रविणं** धनं, **यश्चत्वारिंशः** एतत्संख्यापूरको ब्रह्मचर्य्यव्यवहारकरः **स्तोमः** स्तुवन्ति येन सः **नाम** प्रसिद्धं **वर्चः** अध्ययनं **द्रविणं** बलं वा **च ददाति, योऽग्नेः** पावकस्य **पुरीषं** पूर्त्तिकरं **प्राप्तोऽप्सः** न विद्यते परपदार्थस्याऽप्सो=भक्षणं यस्य सः **असि,** [अस्ति] **तं** [**त्वा**]=**त्वां तां च विश्वे देवाः** विद्वांसः **अभिगृणन्तु** प्रशंसन्तु। **सा त्वं स्तोमपृष्ठा** स्तोमाः पृष्ठा=ज्ञापयितुमिष्टा यस्याः सा **घृतवती** प्रशस्ताज्यादियुक्ता **सतीह**=**गृहाऽऽश्रमे सीद**। **अस्मे** अस्मभ्यं **प्रजावत्** बह्व्यः प्रजा यस्मात्तद् **द्रविणा** द्रविणं=धनं **यजस्व** देहि ॥ १५ । ३ ॥

भाषार्थ—जो (षोडशी) उत्तम सोलह कलाओं से युक्त (स्तोमः) स्तुति के योग्य (ओजः) पराक्रम तथा (द्रविणम्) धन है, और जो—(चत्वारिंशः) चालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्यवहार करने वाला पुरुष (स्तोमः) स्तुति के हेतु (नाम) प्रसिद्ध (वर्चः) अध्ययन (द्रविणम्) धन वा बल को देता है, जो (अग्नेः) अग्नि की (पुरीषम्) पूर्त्ति करने वाले को प्राप्त होकर (अप्सः) पर-पदार्थ का भक्षण न करने वाला (असि) है, सो [त्वा] तुझ पुरुष और स्त्री की (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें। सो तू स्त्री (स्तोमपृष्ठा) स्तुति को बतलाने वाली (घृतवती) उत्तम घृत आदि पदार्थों से युक्त होकर (इह) इस गृहाश्रम में (प्रजावत्) बहुत प्रजा के हेतु (द्रविणा) धन को (यजस्व) प्रदान कर ॥ १५ । ३ ॥

[यः षोडशी ··· वर्चो द्रविणं च ददाति, इह गृहाश्रमे सीद]

भावार्थः—मनुष्यैः षोडशकलात्मके जगति विद्याबलं विस्तार्य गृहाश्रमं कृत्वा विद्यादानादीनि कर्माणि सततं कार्याणि ॥ १५ । ३ ॥

भावार्थ—मनुष्य—सोलह कलाओं से युक्त जगत् में विद्या और बल को विस्तृत करके, गृहाश्रम कर, विद्या-दान आदि शुभ कर्मों को सदा किया करें ॥ १५ । ३ ॥

भा० पदार्थः—षोडशी=षोडशकलात्मकं जगत् । वर्चः=विद्या ।

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य**—स्त्री और पुरुष जीवन की प्रथम आयु में पूर्ण-ब्रह्मचारी होकर विद्याबल और शारीरिक बलों को प्राप्त करके गृहाश्रम में प्रवेश करें। गृहस्थी को आवश्यक है कि वह पूर्ण स्वस्थ, पराक्रमी, धन-धान्य से सम्पन्न तथा स्तुति के योग्य हो। निर्बल मनुष्य को गृहाश्रम में प्रवेश का अधिकार नहीं है। जो चालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उनका विद्या-बल और शारीरिक-बल बढ़ने से उनकी सर्वत्र प्रशंसा होती है। ऐसे पूर्ण-स्वस्थ विद्वान् स्त्री-पुरुष गृहाश्रम में प्रवेश करके अपने-अपने कर्तव्यों के पालने में सदा तत्पर रहें। और कभी भी पर-पदार्थों को ग्रहण करने की मन से इच्छा न करें। दोनों स्त्री-पुरुषों के ऐसे श्रेष्ठ कर्त्तव्य हों, जिनकी विद्वान् पुरुष सदा प्रशंसा किया करें। घृतादि पौष्टिक पदार्थों को सेवन करते हुए ईश्वर की स्तुति में सदा तत्पर रहें, उत्तम सन्तान को उत्पन्न करके उनको सदा योग्य बनावें, और यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों में कभी प्रमाद न करें ॥ १५ । ३ ॥

परमेष्ठी । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । निचृदाकृतिः । पञ्चमः ॥

मनुष्याः प्रयत्नेन साधनैः सुखानि वर्द्धयन्त्वित्याह ॥

मनुष्यों को चाहिए कि प्रयत्नपूर्वक साधनों से सुख बढ़ावें, यह उपदेश किया है।

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द ऽ आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप् छन्दः काव्यं छन्दो ऽ अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**एवः**) ज्ञानम् (**छन्दः**) आनन्दम् (**वरिवः**) सत्यसेवनम् (**छन्दः**) सुखप्रदम् (**शम्भूः**) सुखं भावुकः (**छन्दः**) आह्लादकारी व्यवहारः (**परिभूः**) सर्वतः पुरुषार्थी (**छन्दः**) सत्यप्रदीपकः (**आच्छत्**) दोषापवारणम् (**छन्दः**) ऊर्जनम् (**मनः**) संकल्पो विकल्पः (**छन्दः**) प्रकाशकरम् (**व्यचः**) शुभगुणव्याप्तिः (**छन्दः**) आनन्दकारि (**सिन्धुः**) नदीव चलनम् (**छन्दः**) (**समुद्रः**) सागर इव गाम्भीर्य्यम् (**छन्दः**) अर्थकरम् (**सरिरम्**) जलमिव सरलता कोमलता (**छन्दः**) जलमिव शान्तिः (**ककुप्**) दिगिव यशः (**छन्दः**) प्रतिष्ठाप्रदम् (**त्रिककुप्**) त्रीणि कानि=सुखानि स्कुभ्नाति येन कर्मणा तत् । **अत्र छान्दसो वर्णलोप इति सलोपः** (**छन्दः**) आनन्दकरम् (**काव्यम्**) कविभिर्निर्मितम् (**छन्दः**) प्रकाशकम् (**अङ्कुपम्**) अङ्कूनि=कुटिलानि गमनानि पाति=रक्षति तज्जलम् (**छन्दः**) तृप्तिकरं कर्म (**अक्षरपङ्क्तिः**) असौ च लोकः (**छन्दः**) आनन्दकरः (**पदपङ्क्तिः**) अयं लोकः (**छन्दः**) सुखसाधकः (**विष्टारपङ्क्तिः**) सर्वा दिशः (**छन्दः**) सुखसाधिकाः (**क्षुरः**) क्षुर इव छेदक आदित्यः (**छन्दः**) विज्ञानम् (**भ्रजः**) दीप्तम् । **अत्र वर्णव्यत्ययेन ह्रस्वत्वम्** (**छन्दः**) स्वच्छन्दानन्दकरः ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(त्रिककुप्) यहां 'छान्दसो वर्णलोपः' (८।२।२५) इस वार्तिक से 'स्कुभ्' धातु के सकार का लोप है। (भ्रजः) यहाँ वर्ण-व्यत्यय से 'भ्राज' के स्थान में ह्रस्व अकार होकर 'भ्रज' बना है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं परमप्रयत्नेनैवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दोऽङ्कुपं छन्दोऽक्षरपंक्तिश्छन्दः पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सुखाय साध्नुत ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यूयं परमप्रयत्नेनैवः** ज्ञानं **छन्दः** आनन्दं, **वरिवः** सत्य-सेवनं **छन्दः** सुखप्रदं, **शम्भूः** सुखं भावुकः **छन्दः** आह्लादकारी व्यवहारः, **परिभूः** सर्वतः पुरुषार्थी **छन्दः** सत्यप्रदीपकः, **आच्छत्** दोषाऽपवारणं **छन्दः** ऊर्जनं, **मनः** संकल्पो विकल्पः **छन्दः** प्रकाशकरं, **व्यचः** शुभगुणव्याप्तिः **छन्दः** आनन्दकारि, **सिन्धुः** नदीव चलनं **छन्दः**, **समुद्रः** सागर इव गाम्भीर्य्यं **छन्दः** अर्थकरं, **सरिरं** जलमिव सरलता कोमलता **छन्दः** जलमिव शान्तिः, **ककुप्** दिगिव यशः **छन्दः** प्रतिष्ठाप्रदं, **त्रिककुप्** त्रीणि कानि=सुखानि स्कुभ्नाति येन कर्मणा तत् **छन्दः** आनन्दकरं, **काव्यं** कविभिर्निर्मितं **छन्दः** प्रकाशकं, **अङ्कुपं** अङ्कूनि=कुटिलानि गमनानि पाति=रक्षति तज्जलं **छन्दः** तृप्तिकरं कर्म, **अक्षरपङ्क्तिः** असौ च लोकः **छन्दः** आनन्दकरः, **पदपङ्क्तिः** अयं लोकः **छन्दः** सुखसाधकः, **विष्टारपङ्क्तिः** सर्वा दिशः **छन्दः** सुखसाधिकाः, क्षुरः क्षुर इव छेदक आदित्यः **छन्दः** विज्ञानं, **भ्रजः** दीप्तं **छन्दः** स्वच्छन्दाऽऽनन्द-करः **सुखाय साध्नुत** ॥ १५ । ४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—परम प्रयत्न से—(एवः) ज्ञान रूप (छन्दः) आनन्द है, (वरिवः) सत्य का सेवन (छन्दः) सुखदायक है, (शम्भूः) सुख को उत्पन्न करने वाला (छन्दः) आह्लादकारी व्यवहार है, (परिभूः) सब ओर से पुरुषार्थी (छन्दः) सत्य का प्रकाशक है, (आच्छत्) दोष-निवारण रूप (छन्दः) बल है, (मनः) संकल्प, विकल्प (छन्दः) प्रकाश करने वाला है, (व्यचः) शुभगुणों की प्राप्ति (छन्दः) आनन्दकारक है, (सिन्धुः) नदी के समान गति (छन्दः) सुखदायक है, (समुद्रः) सागर के समान गम्भीरता (छन्दः) अर्थकारी है, (सरिरम्) जल के समान सरलता एवं कोमलता (छन्दः) शान्तिदायक है, (ककुप्) दिशा के समान यश (छन्दः) प्रतिष्ठा-प्रद है, (त्रिककुप्) तीन सुखों को स्थिर करने वाला कर्म (छन्दः) आनन्दकारक है, (काव्यम्) कवि-कृत काव्य (छन्दः) प्रकाशक है, (अङ्कुपम्) कुटिल गतियों का रक्षक जल (छन्दः) तृप्ति-कारक है, (अक्षर-पङ्क्तिः) परलोक (छन्दः) आनन्दकारक है, (पदपङ्क्तिः) यह लोक (छन्दः) सुख-साधक है, (विष्टारपङ्क्तिः) सब दिशाएँ (छन्दः) सुख-साधक हैं, (क्षुरः) खुर के समान छेदक सूर्य (छन्दः) विज्ञान है, (भ्रजः) प्रकाश (छन्दः) स्वच्छ और आनन्दकारक है, उसे सुख के लिए सिद्ध करो ॥

[हे मनुष्याः! यूयं परमप्रयत्नेनैवश्छन्दः···सुखाय साध्नुत]

भावार्थः—ये मनुष्या धर्म्यकर्मपुरुषार्था-नुष्ठानेन प्रिया भवन्ति, ते सर्वेभ्यः सृष्टिस्थ-पदार्थेभ्यः सुखानि संग्रहीतुं शक्नुवन्ति ॥ १५ । ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मयुक्त कर्म तथा पुरुषार्थ के अनुष्ठान से प्रिय होते हैं वे सृष्टि के पदार्थों से सुखों को ग्रहण कर सकते हैं ॥

भाष्यसार—**सुखों को बढ़ाने के साधन**—सभी विद्वानों का मुख्य धर्म यह है कि वे

सुखों के साधनों से सदा सुखों को बढ़ावें। सुखों के साधन निम्नलिखित हैं:—(१) परम-पुरुषार्थ से ज्ञान प्राप्त करना। (२) मन, वचन, कर्म से असत्य व्यवहार का त्याग करना और परम सुखदायक और दोषों को दूर करने वाले सत्य का सेवन करना। (३) संकल्प-विकल्प करने वाले मन तथा अन्य इन्द्रियों को वश में करना। यह मन ही सुख-दुःख का मूल कारण है, नदी के समान निरन्तर गतिशील है। (४) समुद्र की तरह गम्भीरता भी सुखों को प्राप्त कराती है। गम्भीरता के अभाव में चंचलतादि दुःखों के कारण बन जाते हैं। (५) जल की तरह सरलता का होना परमावश्यक है। कुटिलतादि मन को दूषित करते हैं, सरलता से मन शुद्ध रहता है। (६) तीनों सुखों को प्राप्त कराने वाले कर्मों से और काव्य-प्रतिभा प्राप्त करके व्यापक कीर्त्ति को प्राप्त करना। (७) इस लोक के विज्ञान को, सब दिशाओं के विज्ञान को और सूर्य के विज्ञान को सीखकर सुखों के साधन बढ़ाना।

उपरोक्त साधनों से मनुष्य सांसारिक सुखों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं॥ १५।४॥

परमेष्ठी। **विद्वांसः**=स्पष्टम्। भुरिगभिकृतिः। ऋषभः॥

अथ मनुष्यैः प्रयत्नेन स्वातन्त्र्यं विधेयमित्याह॥

मनुष्यों को चाहिए कि प्रयत्न के साथ स्वतन्त्रता बढ़ावें, यह उपदेश किया है॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सꣳस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो ऽएवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो ऽअङ्काङ्कं छन्दः॥ ५॥

पदार्थः—(**आच्छत्**) समन्तात् पापनिवारकं कर्म (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**प्रच्छत्**) प्रयत्नेन दुष्टस्वभावदूरीकरणार्थं कर्म (**छन्दः**) उत्साहनम् (**संयत्**) संयमः (**छन्दः**) (**बलम्**) (**वियत्**) विविधैः प्रकारैर्यतते येन तत् (**छन्दः**) उत्साहः (**बृहत्**) महद्वर्धनम् (**छन्दः**) स्वातन्त्र्यम् (**रथन्तरम्**) यदस्मिन् लोके तारकं वस्त्वस्ति तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**निकायः**) निचिन्वन्ति=उपसमादधते येन वायुना तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**विवधः**) विशेषेण बध्नन्ति पदार्था यस्मिंस्तदन्तरिक्षम् (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**गिरः**) गीर्यते=निगल्यते यदेनं तत् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**भ्रजः**) भ्राजते=प्रकाशते योऽग्निः सः (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**संस्तुप्**) सम्यक् स्तुभ्नाति शब्दार्थसम्बन्धान् यया सा वाक् (**छन्दः**) आह्लादकारि (**अनुष्टुप्**) श्रुत्वा पश्चात् स्तुभ्नाति=जानाति शास्त्राणि यया मननक्रियया सा (**छन्दः**) उपदेशः (**एवः**) प्रापणम् (**छन्दः**) प्रयतनम् (**वरिवः**) विद्वत्परिचरणम् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**वयः**) जीवनम् (**छन्दः**) स्वाधीनम् (**वयस्कृत्**) यद्वयस्करोति तज्जीवनसाधनम् (**छन्दः**) स्वीकरणम् (**विष्पर्द्धाः**) विशेषेण यः स्पर्ध्यते सः (**छन्दः**) प्रदीपनम् (**विशालम्**) विस्तीर्णं कर्म (**छन्दः**) परिग्रहणम् (**छदिः**) विघ्नापवारणम् (**छन्दः**) सुखावहम् (**दूरोहणम्**) दुःखेन रोढुमर्हम् (**छन्दः**) ऊर्जनम् (**तन्द्रम्**) स्वतन्त्रताकरणम् (**छन्दः**) प्रकाशनम् (**अङ्काङ्कम्**) गणितविद्या (**छन्दः**) संस्थापनम्॥ ५॥

अन्वयः—मनुष्यैराच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरं छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः संस्तुप्छन्दोऽनुष्टुप्छन्दः एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दोऽङ्काङ्कं छन्दः-स्वीकृत्य प्रचाराय प्रयतितव्यम्॥ ५॥

सपदार्थान्वयः — मनुष्यैराच्छत् समन्तात् पापनिवारकं कर्म **छन्दः** प्रकाशनं, **प्रच्छत्** प्रयत्नेन दुष्टस्वभावदूरीकरणार्थं कर्म **छन्दः** उत्साहनं **संयत्** संयमः **छन्दः**, **वियत्** विविधैः प्रकारैर्यतते येन तत् **छन्दः** उत्साहो, **बृहत्** महद्वर्धनं **छन्दः** स्वातन्त्र्यं, **रथन्तरं** यदस्मिन् लोके तारकं वस्त्वस्ति तत् **छन्दः** स्वीकरणं, **निकायः** निचिन्वन्ति=उपसमादधते येन वायुना तत् **छन्दः** स्वीकरणं, **विवधः** विशेषेण बध्नन्ति पदार्था यस्मिंस्तदन्तरिक्षं **छन्दः** प्रकाशनं, **गिरः** गीर्यते=निगल्यते यदेनं तत् **छन्दः** स्वीकरणं, **भ्रजः** भ्राजते=प्रकाशते योऽग्निः सः, **छन्दः** स्वीकरणं **संस्तुप्** सम्यक् स्तुभ्नाति शब्दार्थसम्बन्धान् यया सा वाक् **छन्दः** आह्लादकारि, **अनुष्टुप्** श्रुत्वा पश्चात् स्तुभ्नाति=जानाति शास्त्राणि यया मननक्रियया सा **छन्दः** उपदेशः, **एवः** प्रापणं **छन्दः** प्रयतनं, **वरिवः** विद्वत्परिचरणं **छन्दः** स्वीकरणं, **वयः** जीवनं **छन्दः** स्वाधीनं, **वयस्कृत्** यद्वयस्करोति तज्जीवनसाधनं **छन्दः** स्वीकरणं, **विष्पर्द्धाः** विशेषेण यः स्पर्ध्यते सः **छन्दः** प्रदीपनं, **विशालं** विस्तीर्णं कर्म **छन्दः** परिग्रहणं, **छदिः** विघ्नापवारणं **छन्दः** सुखावहं, **दूरोहणं** दुःखेन रोढुमर्हं **छन्दः** ऊर्जनं, **तन्द्रं** स्वतन्त्रताकरणं **छन्दः** प्रकाशनं, **अङ्काङ्कं** गणितविद्या **छन्दः** संस्थापनं **स्वीकृत्य प्रचाराय प्रयतितव्यम्** ॥ १५ । ५ ॥

भाषार्थ—मनुष्य—(आच्छत्) सब ओर से पाप-निवारक कर्म (छन्दः) प्रकाश है, (प्रच्छत्) प्रयत्न से दुष्ट स्वभाव को दूर करने के लिए कर्म करना (छन्दः) उत्साह है, (संयत्) संयम (छन्दः) उत्साह है, (वियत्) विविध प्रकार से यत्न करना (छन्दः) उत्साह है, (बृहत्) महान् वृद्धि (छन्दः) स्वतन्त्रता है, (रथन्तरम्) इस लोक में पार करने वाली वस्तु (छन्दः) स्वीकार के योग्य है, (निकायः) संयोग का हेतु वायु (छन्दः) स्वीकार के योग्य है, (विवधः) विशेष रूप से पदार्थों का बन्धन-स्थान अन्तरिक्ष (छन्दः) प्रकाश है, (गिरः) निगलने योग्य अन्न आदि (छन्दः) स्वीकार के योग्य हैं, (भ्रजः) प्रकाश करने वाला अग्नि (छन्दः) स्वीकार के योग्य है, (संस्तुप्) शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को उत्तमता से स्थिर करने वाली वाणी (छन्दः) आह्लादकारी है, (अनुष्टुप्) सुनने के पश्चात् शास्त्रों को जानने का साधन मनन (छन्दः) उपदेश है, (एवः) प्राप्त करना-कराना (छन्दः) प्रयत्न है, (वरिवः) विद्वानों की परिचर्या=सेवा (छन्दः) स्वीकार के योग्य है, (वयः) जीवन (छन्दः) स्वाधीनता है, (वयस्कृत्) वयः=आयु को बढ़ाने वाले जीवन-साधन (छन्दः) स्वीकार के योग्य हैं, (विष्पर्द्धाः) विशेष स्पर्द्धा के योग्य (छन्दः) प्रकाश है, (विशालम्) विस्तृत कर्म (छन्दः) परिग्रह= स्वीकार के योग्य है, (छदिः) विघ्नों को हटाना (छन्दः) सुख-प्रापक है, (दूरोहणम्) कठिनता से बढ़ने वाला (छन्दः) बल है, (तन्द्रम्) स्वतन्त्रता प्राप्त करना (छन्दः) प्रकाश है, (अङ्काङ्कम्) गणित विद्या (छन्दः) संस्थापन के योग्य है, इनको स्वीकार करके इनके प्रचार के लिए प्रयत्न करें ॥ १५ । ५ ॥

[मनुष्यैः···बृहच्छन्दः···स्वीकृत्य···प्रयतितव्यम्]

भावार्थः—मनुष्यैः पुरुषार्थेन पारतन्त्र्य-हानिः स्वातन्त्र्यस्वीकरणं सततं विधेयम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—मनुष्य—पुरुषार्थ से परतन्त्रता की हानि और स्वतन्त्रता को सदा स्वीकार करें।

भाष्यसार—**स्वतन्त्रता की रक्षा करना परमपुरुषार्थ**—संसार में स्वतन्त्रता मनुष्यों का परम सुख है। अतः सभी प्रयत्नों से इसकी रक्षा करनी चाहिए। किन्तु उच्छृङ्खलता का नाम स्वतन्त्रता नहीं है। पापों से दूर रहकर दुष्ट-स्वभाव को त्यागना और मन व इन्द्रियों को वश में करके उत्साह प्राप्त करना ही स्वतन्त्रता है। इससे निरन्तर उन्नति, सांसारिक दुःखों से मुक्ति मिलती है। स्वतन्त्रता प्राप्त

मनुष्य वायु की तरह सर्वत्र गति वाले होकर विज्ञान की सहायता से अनन्त अन्तरिक्ष में गमनागमन कर सकते हैं और अग्नि के समान शब्दार्थ के सम्बन्धों वाली विद्या के प्रकाश से परमानन्द को प्राप्त करते हैं। श्रवण के पश्चात् शिक्षा-प्राप्ति के दूसरे साधन रूप मनन को स्वतन्त्र मनुष्य ही कर सकते हैं। विद्वानों की सेवा, विद्याबल की वृद्धि, आयु-बढ़ाने वाले साधनों में स्पर्द्धा-प्रवृत्ति, विस्तृत शुभ कार्यों से विघ्नों का विनाश करके सुखों की वृद्धि बिना स्वतन्त्रता के कभी नहीं हो सकती। अतः उपरोक्त गुणों की प्राप्ति के लिए स्वतन्त्रता की रक्षा करना बहुत आवश्यक है॥ १५। ५॥

परमेष्ठी। **विद्वांसः**=स्पष्टम्। विराडभिकृतिः। ऋषभः॥

अथ विद्वद्भिः पदार्थविद्या ज्ञातव्येत्याह॥

विद्वानों को पदार्थविद्या के जानने का उपाय करना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

रश्मिना॑ स॒त्याय॑ स॒त्यं जि॑न्व॒ प्रेति॑ना॒ धर्म्म॑णा॒ धर्मं॑ जि॒न्वान्वि॑त्या दि॒वा दिवं॑ जिन्व स॒न्धिना॒न्तरि॑क्षेणा॒न्तरि॑क्षं जिन्व प्रति॒धिना॑ पृथि॒व्या पृ॑थि॒वीं जि॑न्व विष्ट॒म्भेन॒ वृष्ट्या॒ वृष्टिं॑ जिन्व प्र॒वयाऽह्नाह॑र्जिन्वानु॒या रात्र्या॒ रात्रीं॑ जिन्वो॒शिजा॒ वसु॑भ्यो॒ वसू॑न् जिन्व प्रके॒तेना॑दि॒त्येभ्य॑ऽ आदि॒त्याञ्जि॑न्व॥ ६॥

पदार्थः—(**रश्मिना**) किरणसमूहेन (**सत्याय**) सति=वर्त्तमाने भवाय स्थूलाय पदार्थसमूहाय (**सत्यम्**) अव्यभिचारि कर्म (**जिन्व**) प्राप्नुहि (**प्रेतिना**) प्रकृष्टविज्ञानयुक्तेन (**धर्मणा**) न्यायाचरणेन (**धर्मम्**) (**जिन्व**) जानीहि (**अन्वित्या**) अन्वेषणेन (**दिवा**) धर्मप्रकाशेन (**दिवम्**) सत्यप्रकाशम् (**जिन्व**) (**सन्धिना**) सन्धानेन (**अन्तरिक्षेण**) आकाशेन (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**जिन्व**) जानीहि (**प्रतिधिना**) प्रतिदधाति यस्मिस्तेन (**पृथिव्या**) भूगर्भविद्यया (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**जिन्व**) जानीहि (**विष्टम्भेन**) विशेषेण स्तभ्नोति शरीरं येन तेन (**वृष्ट्या**) वृष्टिविद्यया (**वृष्टिम्**) (**जिन्व**) जानीहि (**प्रवया**) कान्तिमता (**अह्ना**) अहर्विद्यया (**अहः**) दिनम् (**जिन्व**) जानीहि (**अनुया**) यानुयाति तया (**रात्र्या**) रात्रिविद्यया (**रात्रीम्**) रजनीम् (**जिन्व**) (**उशिजा**) कामयमानेन (**वसुभ्यः**) अग्न्यादिभ्यः (**वसून्**) अग्न्यादीन् (**जिन्व**) (**प्रकेतेन**) प्रकृष्टेन विज्ञानेन (**आदित्येभ्यः**) मासेभ्यः (**आदित्यान्**) द्वादशमासान् (**जिन्व**) विजानीहि॥ ६॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं रश्मिना सत्याय सूर्य इव नित्यसुखाय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व। अन्वित्या दिवा दिवं जिन्व। सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व। पृथिव्या प्रतिधिना पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्व। अनुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसून् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्यान् जिन्व॥ ६॥

सपदार्थान्वयः--हे विद्वन्! त्वं **रश्मिना** किरणसमूहेन **सत्याय**=सूर्य इव नित्यसुखाय सति=वर्त्तमाने भवाय स्थूलाय पदार्थसमूहाय **सत्यम्** अव्यभिचारि कर्म **जिन्व** प्राप्नुहि, **प्रेतिना** प्रकृष्टविज्ञानयुक्तेन **धर्मणा** न्यायाचरणेन **धर्मं जिन्व** जानीहि, **अन्वित्या** अन्वेषणेन **दिवा** धर्मप्रकाशेन **दिवं** सत्यप्रकाशं **जिन्व** प्राप्नुहि, **सन्धिना** सन्धानेन

भावार्थ—हे विद्वान् तू—(रश्मिना) किरण समूह से (सत्याय) सूर्य के समान नित्य सुख की तथा स्थूल पदार्थों की प्राप्ति के लिए (सत्यम्) सत्य-अव्यभिचारी कर्म को (जिन्व) प्राप्त कर, (प्रेतिना) उत्तम विज्ञान से युक्त (धर्मणा) न्यायाचरण से (धर्मम्) धर्म को (जिन्व) प्राप्त कर, (अन्वित्या) अन्वेषण खोज के योग्य (दिवा) धर्म-प्रकाश से

अन्तरिक्षेण आकाशेन **अन्तरिक्षम्** अवकाशं **जिन्व** जानीहि, **पृथिव्या** भूगर्भविद्यया **प्रतिधिना** प्रतिदधाति यस्मिंस्तेन **पृथिवीं** भूमिं **जिन्व** जानीहि, **विष्टम्भेन** विशेषेण स्तभ्नोति शरीरं येन तेन **वृष्टचा** वृष्टिविद्यया **वृष्टिं जिन्व** जानीहि, **प्रवया** कान्तिमता **अह्ना** अहर्विद्यया **अहः** दिनं **जिन्व** जानीहि, **अनुया** याऽनुयाति तया **रात्र्या** रात्रिविद्यया **रात्रीं** रजनीं **जिन्व** जानीहि, **उशिजा** कामयमानेन **वसुभ्यः** अग्न्यादिभ्यः **वसून्** अग्न्यादीन् **जिन्व** जानीहि, **प्रकेतेन** प्रकृष्टेन विज्ञानेन **आदित्येभ्यः** मासेभ्य **आदित्यान्** द्वादशमासान् **जिन्व** विजानीहि ॥

(दिवम्) सत्य-प्रकाश को (जिन्व) प्राप्त कर। (सन्धिना) सन्धि रूप (अन्तरिक्षेण) आकाश से (अन्तरिक्षम्) अवकाश को (जिन्व) जान, (पृथिव्या) भूगर्भ-विद्या के (प्रतिधिना) सम्बन्ध से (पृथिवीम्) भूमि को (जिन्व) जान, (विष्टम्भेन) शरीर को विशेष रूप से धारण के हेतु अन्नादि के कारण (वृष्टचा) वृष्टि-विद्या (वृष्टिम्) वर्षा को (जिन्व) जान, (प्रवया) कान्तिमान् (अह्ना) दिवस की विद्या से (अहः) दिन को (जिन्व) जान, (अनुया) अनुगमन करने वाली (रात्र्या) रात्रि की विद्या से (रात्रीम्) रजनी=रात को (जिन्व) जान, (उशिजा) कामना से (वसुभ्यः) अग्नि आदि से (वसून्) अग्नि आदि को (जिन्व) जान, (प्रकेतेन) उत्तम विज्ञान के द्वारा (आदित्येभ्यः) मासों से (आदित्यान्) बारह मासों को (जिन्व) जान ॥

[हे विद्वन् ! त्वं रश्मिना···सत्यं जिन्व ···]

भावार्थः—विद्वद्भिर्यथा पदार्थपरीक्षणेन पदार्थविद्या विदिता कार्या, तथैवान्येभ्य उपदेष्टव्या ॥ १५ । ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग जैसे पदार्थ-परीक्षा से पदार्थ-विद्या को जानें वैसे दूसरों को भी उपदेश करें ॥ १५ । ६ ॥

भाष्यसार—**सब पदार्थविद्या को जानने के उपाय**—सभी विद्वानों का परम धर्म है कि वे सुख के साधनों की प्राप्ति के लिए पदार्थ–विद्या जानने का प्रयत्न करें। पदार्थ-विद्या जानने के निम्न उपाय हैं—(१) सूर्य की किरणें जैसे अन्धकार का भेदन करती हैं, वैसे ही निष्पक्ष होकर सत्यासत्य का विवेक करके सत्य का सेवन करना। (२) न्यायाचरण से धर्मकार्यों को करना और सत्य प्रकाश को प्राप्त करना। (३) आकाश और पृथिवी के बीच-बीच के सन्धिस्थानों को जानकर तदनुकूल ही व्यवहार करना। (४) वर्षा, दिन, रात, अग्नि और मासों का विशेष ज्ञान करना और उसके अनुसार अपना व्यवहार बनाना।

इन पूर्वोक्त उपायों से पदार्थ-विद्या जानकर विद्वान् मनुष्य दूसरों को भी सिखाया करें ॥ १५ । ६ ॥

परमेष्ठी । **विद्वांसः**=स्पष्टम् । ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

गृहाश्रमिणा केन किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

गृहाश्रमी पुरुष को किस साधन से क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

तन्तुंना रायस्पोषेंण रायस्पोषं जिन्व सꣳसर्पेणं श्रुतायं श्रुतं जिन्वैडेनौषंधीभिरोषंधीर्जिन्वोत्तमेनं तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधींतेनाधींतं जिन्वाभिजिता तेजंसा तेजों जिन्व ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**तन्तुना**) विस्तृतेन (**रायः**) धनस्य (**पोषेण**) पुष्टचा (**रायः**) धनस्य (**पोषम्**)

पुष्टिम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि (**संसर्पेण**) सम्यक् प्रापणेन (**श्रुताय**) श्रवणाय (**श्रुतम्**) श्रवणम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि (**ऐडेन**) इडाया अन्नस्येदं संस्करणं तेन (**ओषधीभिः**) यवसोमलतादिभिः (**ओषधीः**) ओषधिविद्याम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि (**उत्तमेन**) धर्माचरणेन (**तनूभिः**) सुसंस्कृतैः शरीरैः (**तनूः**) शरीराणि (**जिन्व**) प्राप्नुहि (**वयोधसा**) वयो=जीवनं दधाति येन तेन (**आधीतेन**) समन्ताद्धारितेन (**आधीतम्**) सर्वतो धारितम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि रक्ष वा (**अभिजिता**) आभिमुख्यगतान् शत्रून् जयति येन तेन (**तेजसा**) निशातेन=तीव्रेण कर्मणा (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि ॥ ७ ॥

अन्वयः--हे मनुष्य ! त्वं तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनोषधीभिरौषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाऽऽधीतेनाधीतं जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! त्वं **तन्तुना** विस्तृतेन **रायः** धनस्य **पोषेण** पुष्ट्या **रायः** धनस्य **पोषं** पुष्टिं **जिन्व** प्राप्नुहि, **संसर्पेण** सम्यक् प्रापणेन **श्रुताय** श्रवणाय **श्रुतं** श्रवणं **जिन्व** प्राप्नुहि, **ऐडेन** इडाया अन्नस्येदं संस्करणं तेन **ओषधीभिः** यवसोमलतादिभिः **ओषधीः** ओषधिविद्यां **जिन्व** प्राप्नुहि, **उत्तमेन** धर्माऽऽचरणेन **तनूभिः** सुसंस्कृतैः शरीरैः **तनूः** शरीराणि **जिन्व** प्राप्नुहि, **वयोधसा** वयो=जीवनं दधाति येन तेन **आधीतेन** समन्ताद्धारितेन **आधीतं** सर्वतो धारितं **जिन्व** प्राप्नुहि रक्ष वा **अभिजिता** आभिमुख्यगतान् शत्रून् जयति येन तेन **तेजसा** निशातेन=तीव्रेण कर्मणा **तेजः** प्रागल्भ्यम् **जिन्व** प्राप्नुहि ॥ १५ । ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य ! तू—(तन्तुना) विस्तृत (रायः) धन की (पोषेण) पुष्टि से (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (जिन्व) प्राप्त कर, (संसर्पेण) उत्तम प्राप्ति के कारण (श्रुताय) सुनने के लिए (श्रुतम्) श्रवण को (जिन्व) प्राप्त कर, (ऐडेन) इडा=अन्न के संस्कार के कारण (ओषधीभिः) यव=जौ एवं सोमलता आदि ओषधियों से (ओषधीः) ओषधि-विद्या को (जिन्व) प्राप्त कर, (उत्तमेन) धर्माचरण के कारण (तनूभिः) सुसंस्कृत शरीरों से (तनूः) शरीरों को (जिन्व) प्राप्त कर, (वयोधसा) जीवन को धारण करने वाली (आधीतेन) धारण-शक्ति से (आधीतम्) सब ओर से धारण करने वाली शक्ति को (जिन्व) प्राप्त कर वा उसकी रक्षा कर, (अभिजिता) समक्ष आए हुए शत्रुओं को जीतने वाले (तेजसा) तेजपूर्ण कर्म से (तेजः) तेज को (जिन्व) प्राप्त कर ॥ १५ । ७ ॥

[हे मनुष्य ! त्वं तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व···]

भावार्थः—मनुष्यैर्विस्तृतेन पुरुषार्थेनैश्वर्यं प्राप्य सार्वजनिकं हितं संसाध्यम् ॥ १५ । ७ ॥

भावार्थ—मनुष्य-विस्तृत पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को प्राप्त करके सार्वजनिक हित को सिद्ध करें ॥ १५ । ७ ॥

भाष्यसार—गृहस्थी पुरुषों के कर्त्तव्य—गृहस्थी स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे इस आश्रम को सुखमय बनाने के लिए ऐश्वर्य को धर्मपूर्वक प्राप्त करने का प्रयत्न करें। धनादि साधनों से शरीर का पोषण किया करें। धार्मिक उपदेश सुनकर धर्म-व्यवहार में श्रद्धा रक्खें। शरीर को पोषण करने के लिए अन्नों का और शरीर की नीरोगता के लिए ओषधियों का संस्कार करके सेवन किया करें। आयु को बढ़ाने के लिए जीवन को धारण करने वाली शक्तियों की प्राप्ति का निरन्तर प्रयास किया करें। अपने विरोधियों का अथवा अपने दुर्गुणों का मुकाबला करने के लिए शारीरिक बल के साथ आत्मिक बल तथा तेज की वृद्धि सदा किया करें।

इस प्रकार अपनी सर्वाङ्गीण उन्नति करके सर्वजनहितकारक कार्यों को सदा प्रमुखता देवें ॥ १५ । ७ ॥

परमेष्ठी । **प्रजापतिः**=पुरुषः ॥ स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरेतैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(प्रतिपत्) प्रतिपद्यते=प्राप्यते या सा (**असि**) (**प्रतिपदे**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) त्वाम् (**अनुपत्**) अनु=पश्चात् प्राप्यते या सा (**असि**) (**अनुपदे**) पश्चात् प्राप्तव्याय (**त्वा**) (**सम्पत्**) सम्यक् प्राप्यते या सा (**असि**) (**सम्पदे**) ऐश्वर्याय (**त्वा**) (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**असि**) (**तेजसे**) (**त्वा**) त्वाम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे पुरुषार्थिनि विदुषि स्त्रि ! यतस्त्वं प्रतिपदिवासि तस्यै प्रतिपदे त्वा याऽनुपदिवासि तस्या अनुपदे त्वा या सम्पदिवासि तस्यै सम्पदे त्वा या तेज इवासि तस्यै तेजसे त्वा त्वां स्वीकरोमि ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पुरुषार्थिनि विदुषि स्त्रि ! **यतस्त्वं प्रतिपद्** प्रतिपद्यते=प्राप्यते या सा **इवासि तस्यै प्रतिपदे** ऐश्वर्य्याय **त्वा** त्वां **या, अनुपत्** अनु=पश्चात् प्राप्यते या सा, **इवासि, तस्या अनुपदे** पश्चात् प्राप्तव्याय **त्वा** त्वां, **या सम्पत्** सम्यक् प्राप्यते या सा **इवासि तस्यै सम्पदे** ऐश्वर्य्याय **त्वा** त्वां, **या तेजः** प्रागल्भ्यम् **इवासि तस्यै तेजसे त्वा**=**त्वां स्वीकरोमि** ॥ १५ । ८ ॥

भाषार्थ—हे पुरुषार्थी विदुषी स्त्री ! क्योंकि तू-(प्रतिपद्) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के समान (असि) है, सो (प्रतिपदे) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूँ; जो तू-(अनुपत्) पश्चात् प्राप्त करने योग्य सुख के समान (असि) है सो (अनुपदे) पश्चात् प्राप्तव्य सुख के लिए (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूँ, जो तू-(सम्पत्) उत्तमता से प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के समान (असि) है, सो (सम्पदे) ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए त्वा तुझे स्वीकार करता हूँ; जो तू—(तेजः) तेज के समान (असि) है सो (तेजसे) तेज=चातुर्य प्राप्ति के लिए (त्वा) तुझे स्वीकार करता हूँ ॥ १५ । ८ ॥

[हे ... स्त्रि ! यतस्त्वं प्रतिपदिवासि, तस्यै प्रतिपदे त्वा ... स्वीकरोमि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः सर्वसुखसिद्धये तुल्यगुणकर्मस्वभावैः स्त्रीपुरुषैः स्वयंवरेण विवाहेन परस्परं स्वीकृत्यानन्दितव्यम् ॥ १५ । ८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य–सब सुखों की सिद्धि के लिए तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले स्त्री-पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह से परस्पर को स्वीकार करके आनन्दित रहें ॥ १५ । ८ ॥

भाष्यसार—१. स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य—पुरुषार्थी स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश से पूर्व पूर्ण युवावस्था पर्यन्त ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके ऐसे दृढांग तथा सौन्दर्य युक्त बनने का प्रयत्न करें, जिससे ऐश्वर्य के समान सब प्राप्त करने का प्रयत्न करें । और ऐसे शुभ-कर्मों का अनुष्ठान

किया करें, जिनका परिणाम अच्छा रहे। ऐसे पूर्ण स्वस्थ तेजस्वी स्त्री-पुरुष ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए स्वयंवर विवाह करके सदा आनन्दित रहें। और शुभ कर्मों में कुशलता प्राप्त करके बल और तेज से युक्त रहें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी पूर्ण स्वस्थ होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए स्वयंवर विवाह किया करें ॥ १५ । ८ ॥

परमेष्ठी । **प्रजापतिः**=पुरुषः । विराड् ब्राह्मी जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**त्रिवृत्**) यत् त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैः सह वर्त्तते तस्याव्यक्तस्य वेत्ता (**असि**) (**त्रिवृते**) (**त्वा**) त्वाम् (**प्रवृत्**) यत्कार्य्यरूपेण प्रवर्त्तते तस्य ज्ञाता (**असि**) (**प्रवृते**) (**त्वा**) (**विवृत्**) यद्विविधैराकारैर्वर्त्तते तज्जगदुपकर्त्ता (**असि**) (**विवृते**) (**त्वा**) (**सवृत्**) यः समानेन धर्मेण सह वर्त्तते तस्य बोधकः (**असि**) (**सवृते**) (**त्वा**) (**आक्रमः**)समन्तात्क्रमन्ते पदार्था यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्य विज्ञापकः (**असि**) (**आक्रमाय**) (**त्वा**) (**संक्रमः**) सम्यक् क्रमन्ते यस्मिँस्तस्य (**असि**) (**संक्रमाय**) (**त्वा**) (**उत्क्रमः**) उदूर्ध्वं क्रमः क्रमणं यस्मात्तस्य (**असि**) (**उत्क्रमाय**) (**त्वा**) (**उत्क्रान्तिः**) उत्क्राम्यन्त्युल्लंघयन्ति समान् विषमान् देशान् यया गत्या तद्विद्याज्ञात्री (**असि**) (**उत्क्रान्त्यै**) (**त्वा**) (**अधिपतिना**) अधिष्ठात्रा (**ऊर्जा**) पराक्रमेण (**ऊर्जम्**) बलम् (**जिन्व**) प्राप्नुहि ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! यस्त्वं त्रिवृदसि तस्मै त्रिवृते त्वा यत्प्रवृदसि तस्मै प्रवृते त्वा यद्विवृदसि तस्मै विवृते त्वा य आक्रमोऽसि तस्मा आक्रमाय त्वा यत् सवृदसि तस्मै सवृते त्वा यः संक्रमोऽसि तस्मै संक्रमाय त्वा य उत्क्रमोऽसि तस्मा उत्क्रमाय त्वा योत्क्रान्तिरसि तस्या उत्क्रान्त्यै त्वा त्वामहं परिगृह्णामि तेन मयाधिपतिना सह वर्त्तमाना त्वमूर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्य ! यस्त्वं त्रिवृत्** यत् त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोगुणैः सह वर्त्तते तस्याऽव्यक्तस्य वेत्ता **असि तस्मै त्रिवृते त्वा** त्वां, **यत् प्रवृत्** यत्कार्यरूपेण प्रवर्त्तते तस्य ज्ञाता **असि तस्मै प्रवृते त्वा** त्वां, **यत् विवृत्** यद्विविधैराकारैर्वर्त्तते तज्जगदुपकर्त्ता **असि तस्मै विवृते त्वा** त्वां, **य आक्रमः** समन्तात् क्रमन्ते पदार्था यस्मिन्नन्तरिक्षे तस्य विज्ञापकः **असि तस्मा आक्रमाय त्वा** त्वां, **यत् सवृत्** यः समानेन धर्मेण सह वर्त्तते तस्य बोधकः **असि तस्मै सवृते त्वा** त्वां, **यः संक्रमः** सम्यक् क्रमन्ते यस्मिंस्तस्य **असि तस्मै संक्रमाय त्वा** त्वां, **य उत्क्रमः**

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जो तू—(त्रिवृत्) तीन-सत्त्व, रज, तम गुणों से युक्त अव्यक्त-प्रकृति है उसका ज्ञाता (असि) है, सो (त्रिवृते) उक्त ज्ञाता होने के लिए (त्वा) तुझको, जो (प्रवृत्) कार्य रूप में प्रवर्तित होता है उसका ज्ञाता (असि) है सो (प्रवृते) उक्त ज्ञाता होने के लिए (त्वा) तुझ को, जो (विवृत्) जितने प्रकार के आकारों वाला जगत् है उसका उपकार करने वाला (असि) है, सो (विवृते) उक्त उपकारक होने के लिए (त्वा) तुझ को, जो (आक्रमः) सब ओर से जिसमें पदार्थ गति करते हैं उस आकाश का विज्ञापक

उद्धर्व क्रमः=क्रमणं यस्मात्तस्य **असि तस्मा उत्क्रमाय त्वा** त्वां, **या उत्क्रान्तिः** उत्क्राम्यन्त्युल्लङ्घयन्ति समान् विषमान् देशान् यया गत्या तद्विद्याज्ञात्री **असि तस्या उत्क्रान्त्यै त्वा**-त्वामहं **परिगृह्णामि**। **तेन मयाऽधिपतिना** अधिष्ठात्रा **सह वर्त्तमाना त्वमूर्जा** पराक्रमेण **ऊर्जं** बलं **जिन्व** प्राप्नुहि ॥ १५ ॥

(असि) है, सो (आक्रमाय) उक्त विज्ञापक होने के लिए (त्वा) तुझ को, जो (सवृत्) समान धर्म से युक्त का बोधक (असि) है, सो (सवृते) उक्त बोधक होने के लिए (त्वा) तुझ को जो तू (संक्रमः) जिसमें सम्यक् गति करते हैं उस आकाश का ज्ञाता (असि) है, सो (संक्रमाय) उक्त ज्ञाता होने के लिए (त्वा) तुझ को, जो (उत्क्रमः) ऊर्ध्व गति के साधन विमान आदि का ज्ञाता (असि) है सो (उत्क्रमाय) उक्त ज्ञाता होने के लिए (त्वा) तुझ को, जो तू स्त्री-(उत्क्रान्तिः) समविषम देशों को लाँघने वाली गति विद्या की ज्ञात्री (असि) है, सो (उत्क्रान्त्यै) उक्त विद्या के लिए (त्वा) तुझे मैं स्वीकार करता हूँ। उक्त मुझ (अधिपतिना) पति के साथ रहकर तू (ऊर्जा) पराक्रम से (ऊर्जम्) बल को (जिन्व) प्राप्त कर ॥ १५ ॥ ६ ॥

[हे मनुष्य ! यस्त्वं त्रिवृदसि तस्मै त्रिवृते त्वा···परिगृह्णामि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। नहि पृथिव्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावविज्ञानेन विना कश्चिदपि विद्वान् भवितुमर्हति, तस्मात् कार्यकारणसंघातं विज्ञायान्येभ्य उपदेष्टव्यः।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है॥ पृथिवी आदि पदार्थों के गुण, कर्म, और स्वभाव के विज्ञान विना कोई भी विद्वान् नहीं हो सकता, अतः कार्य कारण के संघात को जानकर दूसरों को उपदेश करें।

[तेन मयाधिपतिना सह वर्तमाना त्वमूर्जोर्जं जिन्व]

यथाऽध्यक्षेण सह सेना विजयं करोति तथा स्वस्वामिना सह स्त्री सर्वं दुःखं जयति ॥ १५ ॥

जैसे अध्यक्ष के साथ सेना विजय को प्राप्त करती है वैसे अपने स्वामी=पति के साथ स्त्री सब दुख को जीत लेती है ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा० पदार्थः—त्रिवृत्=पृथिव्यादिपदार्थानां गुणकर्मस्वभावविज्ञाता विद्वान्। अधिपतिना-अध्यक्षेण।

भाष्यसार—(१) **मनुष्यों के कर्त्तव्य**—इस संसार का उपादानकारण सत्त्व-रज-तम गुणों वाली प्रकृति है। इस प्रकृति से ही विकृत होकर यह संसार बना हुआ है। सभी विद्वान् पुरुषों को योग्य है कि प्रकृति के विज्ञान को जानकर तदनुकूल विभिन्न विमानादि यानों का आविष्कार करके संसार का उपकार करने में लगे रहें। इन प्रकृति के बने पदार्थों में यह जानना आवश्यक है कि कौन-कौन से पदार्थ समान धर्म वाले हैं और कौन-कौन से विरोधी गुण वाले हैं। इस पदार्थ विद्या के ज्ञान से मनुष्य ऊँचे-नीचे स्थानों पर समुद्र पर और आकाश में गति कर सकता है। अतः कार्य-कारण भाव को जानकर विद्वान् पुरुष दूसरों को भी उपदेश दिया करें। जैसे सेनापति के साथ सेना विजय को प्राप्त करती है, इसी प्रकार स्त्रियाँ भी पदार्थ विद्या सीखकर अपने स्वामियों के साथ सुखों को प्राप्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे सेनापति के साथ सेना विजय प्राप्त करती हैं, वैसे ही स्त्रियाँ भी पदार्थविद्या के ज्ञाता पतियों के साथ सुखों को प्राप्त करें ॥ १५ । ९ ॥

परमेष्ठी । **वसवः**=अग्न्याद्याः ॥ पूर्वस्य विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अग्न्यादिपदार्थाः कीदृशा इत्याह ॥

अग्नि आदि पदार्थ कैसे गुणों वाले हैं, यह उपदेश किया है ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा ऽ अधिपतयोऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬं साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

पदार्थः—(**राज्ञी**) राजमाना प्रधाना (**असि**) (**प्राची**) पूर्वा (**दिक्**) दिगिव (**वसवः**) अग्न्याद्याः (**ते**) तव (**देवाः**) देदीप्यमानाः (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः (**अग्निः**) विद्युदिव (**हेतीनाम्**) वज्रास्त्रादीनाम् । हेतिरिति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥ (**प्रतिधर्त्ता**) प्रत्यक्षं धारकः (**त्रिवृत्**) यस्त्रिधा वर्त्तते (**त्वा**) (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**श्रयतु**) सेवताम् (**आज्यम्**) घृतम् (**उक्थम्**) वक्तुमर्हम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानशरीरपीडायै (**स्तभ्नातु**) धरतु (**रथन्तरम्**) रथैस्तारकम् (**साम**) एतदुक्तं कर्म (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतितिष्ठन्ति यस्यां तस्यै (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ऋषयः**) प्रापकाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) प्रथमतो जाता वायवः (**देवेषु**) कमनीयेषु पदार्थेषु (**दिवः**) विद्युतः (**मात्रया**) लेशविषयेण (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) उपदिशन्तु । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विधर्त्ता**) विविधानां धारकः (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) उपरिष्टात्पालकः (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) समाननिश्चया (**नाकस्य**) सुखप्रापकस्य भूगोलस्य (**पृष्ठे**) उपरि (**स्वर्गे**) सुखप्रापके (**लोके**) द्रष्टव्ये (**यजमानम्**) दातारम् (**च**) (**सादयन्तु**) अवस्थापयन्तु ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ--(**हेतीनाम्**) 'हेति' पद निघं० २ । २० में वज्र-नामों में पठित है। (**प्रथन्तु**) यहां व्यत्यय से परस्मैपद है।

अन्वयः—हे स्त्रि ! तेऽधिपतिर्यथा यस्या वसवो देवा अधिपतय आसन् तथा प्राची दिगिव राज्ञ्यसि यथा हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत्स्तोमोऽग्निरस्ति तथा त्वाऽहं धरामि भवती पृथिव्यामव्यथाया उक्थमाज्यं श्रयतु प्रतिष्ठित्यै रथन्तरं साम स्तभ्नातु यथाऽन्तरिक्षे दिवो मात्रया वरिम्णा देवेषु प्रथमजा ऋषयस्त्वा प्रथन्तु यथा चायं विधर्त्ता ते पतिर्वर्तेत तथा तेन सह त्वं वर्त्तस्व यथा च सर्वे संविदाना विद्वांसो नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वा यजमानं च सादयन्तु तथा युवां सीदेतम् ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि** ! **ते** तव **अधिपतिः** उपरिष्टात् पालको **यथा यस्य वसवः** अग्न्याद्याः **देवाः** देदीप्यमानाः **अधिपतयः** अधिष्ठातारः **आसन् तथा प्राची** पूर्वा **दिगिव राज्ञी** राजमाना प्रधाना **असि**,

भाषार्थ—हे स्त्री ! (ते) तेरा (अधिपतिः) पालक पति मैं—जैसे जिसके (वसवः) अग्नि आदि वसु (देवाः) देदीप्यमान देव (अधिपतयः) अधिष्ठाता हैं वैसे (प्राची) पूर्व (दिक्) दिशा के समान (राज्ञी) शोभायमान प्रधाना (असि) है,

यथा हेतीनां वज्राऽस्त्रादीनां **प्रतिधर्त्ता** प्रत्यक्षं धारकः **त्रिवृत्** यस्त्रिधा वर्त्तते **स्तोमः** स्तोतुमर्हः **अग्निः** विद्युदिव **अस्ति, तथा त्वाऽहं धरामि ।**

जैसे—(हेतीनाम्) वज्र-अस्त्र आदि को (प्रतिधर्त्ता) प्रत्यक्ष धारण करने वाला (त्रिवृत्) तीन प्रकार की (स्तोमः) स्तुति के योग्य (अग्निः) विद्युत् के समान है, वैसे तुझे मैं पति धारण करता हूँ ।

भवती पृथिव्यां भूमौ **अव्यथायै** अविद्यमान-शरीरपीडायै **उक्थं** वक्तुमर्हम् **आज्यं** घृतं **श्रयतु** सेवताम्, **प्रतिष्ठित्यै** प्रतितिष्ठन्ति- यस्यां तस्यै **रथन्तरं** रथैस्तारकं **साम** एतदुक्तं कर्म **स्तभ्नातु** धरतु ।

आप—(पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) शरीर-पीड़ा के अभाव के लिए (उक्थम्) प्रशंसनीय (आज्यम्) घृत का (श्रयतु) सेवन कीजिए, (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (रथन्तरम्) रथों से तारने वाले (साम) साम-प्रोक्त कर्म को (स्तभ्नातु) धारण कीजिए ।

यथाऽन्तरिक्षे आकाशे **दिवः** विद्युतः **मात्रया** लेशविषयेण **वरिम्णा देवेषु** कमनीयेषु पदार्थेषु **प्रथमजाः** प्रथमतो जाता वायवः **ऋषयः** प्रापकाः **त्वा प्रथन्तु** उपदिशन्तु,

जैसे—(अन्तरिक्ष) आकाश में (दिवः) विद्युत् के (मात्रया) लेश से एवं (वरिम्णा) श्रेष्ठता से (देवेषु) कामना के योग्य पदार्थों में (प्रथमजाः) प्रथम से उत्पन्न वायु (ऋषयः) सुगन्ध आदि के प्रापक होकर (त्वा) तुझे (प्रथन्तु) उपदेश करें,

यथा चाऽयं विधर्त्ता विविधानां धारकः **ते** तव **पतिर्वर्त्तते, तथा तेन सह त्वं वर्त्तस्व ।**

और जैसे—यह (विधर्त्ता) विविध पदार्थों का धारक (ते) तेरा पति है उसके साथ तू वर्ताव कर ।

यथा च सर्वे संविदानाः=समाननिश्चयाः **विद्वांसः नाकस्य** सुखप्रापकस्य भूगोलस्य **पृष्ठे** उपरि **स्वर्गे** सुखप्रापके **लोके** द्रष्टव्ये **त्वा यजमानं** दातारं **च सादयन्तु** अवस्थापयन्तु **तथा युवां सीदेतम्** ॥१५॥

और जैसे—(संविदानाः) एक निश्चय वाले विद्वान् (नाकस्य) सुख के प्रापक भूगोल के (पृष्ठे) ऊपर (स्वर्ग) सुख के प्रापक (लोके) लोक में (त्वा) तुझ (यजमानम्) दाता को (सादयन्तु) स्थापित करें वैसे तुम दोनों स्थित रहो ॥ १५ । १० ॥

[हे स्त्रि ! ···प्राची दिगिव राज्ञ्यसि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ पूर्वादिक् तस्मादुत्तमाऽस्ति यस्मात् प्रथमं सूर्य उदेति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ पूर्व दिशा इसलिए उत्तम है क्योंकि यहाँ प्रथम सूर्य उदित होता है ।

ये पूर्वस्या दिशो वायव आगच्छन्ति, ते कस्मिंश्चिद्देशे मेघकरा भवन्ति ।

जो पूर्व दिशा से वायु आती हैं वे किसी देश में मेघों को उत्पन्न करने वाली होती हैं ।

[प्रतिधर्त्ता···अग्निः]

अयमग्निरेव सर्वेषां धर्त्ता वायुनिमित्तो वर्धते, ये तं जानन्ति ते जगति सुखं संस्थापयन्ति ॥ १५ ॥

यह अग्नि ही सबको धारण करने वाला एवं वायु का निमित्त है, जो उसे जानते हैं वे जगत् में सुख को स्थापित करते हैं ॥ १५ । १० ॥

भा० पदार्थः—राज्ञी=उत्तमा । प्रतिधर्त्ता=सर्वेषां धर्त्ता ॥

भाष्यसार—१. **अग्न्यादि के तुल्य स्त्री-पुरुषों का कर्तव्य**—स्त्रियाँ पूर्व दिशा के समान घर के कार्यों में कुशल होकर प्रधान होकर रहें और पुरुष अग्नि के तुल्य विद्यादि से प्रकाशमान दिव्य-गुणों से अलंकृत होने चाहिए। जैसे विद्युत् वज्रादि को धारण करने वाला वृष्टि आदि से सबसे स्तुत्य होता है, वैसे ही पुरुष भी बलवान् होकर, प्रशंसा के योग्य होकर स्त्रियों का पालन करने वाले बनें। पुरुष अपने स्थानों पर शरीर को स्वस्थ बनाने के लिए घृतादि पुष्टिकारक पदार्थों का सदा सेवन किया करें और लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए दुःखों से पार करनेवाले साम-प्रोक्त कर्मों को सदा किया करें। जैसे अन्तरिक्ष में कामना करने योग्य, सुगन्धादि का प्रापक वायु सबको प्रिय है, वैसे ही प्रथम उत्पन्न विद्वान् पुरुषों से सभी स्त्री पुरुष स्नेह किया करें और उनके बताये मार्ग का अनुसरण किया करें। विद्वान् पुरुष भी ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे सभी स्त्री-पुरुष दुःखों से छूटकर सुखलोक में निवास करने वाले बन सकें।

२. **अलङ्कार**— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। सभी स्त्री-पुरुष अग्नि-वायु आदि के तुल्य विद्वानों का अनुसरण करें ॥ १५ । १० ॥

परमेष्ठी । **रुद्राः=बलवन्तो वायवः** ॥ पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषाः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा ऽ अधिपतय ऽ इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥११॥

पदार्थः—(**विराट्**) विविधैः पदार्थैः राजमाना (**असि**) अस्ति (**दक्षिणा**) (**दिक्**) काष्ठा (**रुद्राः**) बलवन्तो वायवः (**ते**) अस्याः (**देवाः**) मोदकाः (**अधिपतयः**) उपरिष्टात्पालकाः (**इन्द्रः**) सूर्यः (**हेतीनाम्**) वज्राणाम् (**प्रतिधर्ता**) (**पञ्चदशः**) पञ्चदशानां पूरकः (**त्वा**) त्वाम् (**स्तोमः**) स्तुवन्ति येन सह ऋचां भागः (**पृथिव्याम्**) भूमौ (**श्रयतु**) सेवताम् (**प्रउगम्**) प्रयोगार्हम् (**उक्थम्**) उपदेष्टुं योग्यम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानमानसभयायै (**स्तभ्नातु**) स्थिरीकरोतु (**बृहत्**) महदर्थम् (**साम**) (**प्रतिष्ठायै**) प्रतिष्ठायै (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**ऋषयः**) ज्ञापकाः प्राणाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) आदौ विद्वांसो जाताः (**देवेषु**) कमनीयेषु पदार्थेषु (**दिवः**) द्योतनकर्मणोऽग्नेः (**मात्रया**) भागेन (**वरिम्णा**) बहोर्भावेन (**प्रथन्तु**) अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विधर्त्ता**) विविधाकर्षणेन पृथिव्यादिधारकः (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) द्योतकानामधिष्ठाता (**च**) (**ते**) (**त्वा**)(**सर्वे**) (**संविदानाः**) सम्यग् विचारशीलाः (**नाकस्य**) अविद्यमानदुःखस्याकाशस्य (**पृष्ठे**) सेचके भागे (**स्वर्गे**) सुखकारके (**लोके**) विज्ञातव्ये (**यजमानम्**) एतद्विद्यादातारम् (**च**) (**सादयन्तु**) स्थापयन्तु ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(प्रथन्तु) यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं विराड् दक्षिणा दिगिवासि तस्यास्ते पतौ रुद्रा देवा अधिपतय इव हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशः स्तोम इन्द्रस्त्वा पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै प्रउगमुक्थं स्तभ्नातु प्रतिष्ठित्यै

बृहत्साम च स्थिरीकरोतु यथा चान्तरिक्षे देवेषु प्रथमजा ऋषयो दिवो मात्रया वरिम्णा सह वर्तन्ते तथा विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु । यथा विधर्त्ता पोषकश्चाऽयमधिपतिस्त्वा पुष्णातु तथा संविदाना विद्वांसस्ते सर्वे नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वां यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **या त्वं विराट्** विविधैः पदार्थैः राजमाना **दक्षिणा दिक्** काष्ठा **इवाऽसि** अस्ति, **तस्यास्ते** अस्याः **पतौ रुद्राः** बलवन्तो वायवः **देवाः** मोदकाः **अधिपतयः** उपरिष्टात्पालकाः **इव हेतीनां** वज्राणां **प्रतिधर्त्ता पञ्चदशः** पञ्चदशानां पूरकः **स्तोमः** स्तुवन्ति येन सह ऋचां भागः **इन्द्रः** सूर्यः **त्वा** त्वां **पृथिव्यां** भूमौ **श्रयतु** सेवताम्; **अव्यथायै** अविद्यमानमानसभयायै **प्रउगं** प्रयोगार्हम् **उक्थम्** उपदेष्टुं योग्यं **स्तभ्नातु** स्थिरीकरोतु, **प्रतिष्ठित्यै** प्रतिष्ठायै **बृहत्** महदर्थं **साम** एतदुक्तं कर्म **च स्थिरीकरोतु** ।

यथा चान्तरिक्षे आकाशे **देवेषु** कमनीयेषु पदार्थेषु **प्रथमजाः** आदौ विद्वांसो जाताः **ऋषयः** ज्ञापकाः प्राणाः **दिवः** द्योतनकर्मणोऽग्नेः **मात्रया** भागेन **वरिम्णा** बहोर्भावेन **सह वर्त्तन्ते, तथा विद्वांसस्त्वा** त्वां **प्रथन्तु** उपदिशन्तु ।

यथा विधर्त्ता=**पोषकः** विविधाकर्षणेन पृथिव्यादिधारकः **चायमधिपतिः** द्योतकानामधिष्ठाता **त्वा** त्वां **पुष्णातु तथा संविदानाः**=**विद्वांसः** सम्यग् विचारशीलाः **ते सर्वे नाकस्य** अविद्यमानदुःखस्याऽऽकाशस्य **पृष्ठे** सेचके भागे **स्वर्गे** सुखकारके **लोके** विज्ञातव्ये **[त्वा]**=**त्वां यजमानम्** एतद्विद्यादातारं **च सादयन्तु** स्थापयन्तु ॥ १५ ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—(विराट्) विविध पदार्थों से शोभायमान (दक्षिणा) दक्षिण (दिक्) दिशा के समान (असि) है, सो (ते) इस तुझ स्त्री के पति में (रुद्राः) बलवान् वायु (देवा) हर्षित करने वाले (अधिपतयः) पालक के समान हैं, (हेतीनाम) वज्रों को (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला पुरुष, (पञ्चदशः) पन्द्रहवाँ (स्तोमः) स्तुति का साधन ऋग्-भाग, तथा (इन्द्रः) सूर्य (त्वा) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर (श्रयतु) सेवा करे; (अव्यथायै) मानस भय के अभाव के लिए (प्रऽउगम्) प्रयोग एवं (उक्थम्) उपदेश के योग्य वचन को (स्तभ्नातु) स्थिर करे, (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (बृहत्) महान् (साम) साम-प्रोक्त कर्म को स्थिर करें ।

और जैसे—(अन्तरिक्षे) आकाश में (देवेषु) कामना के योग्य पदार्थों में (प्रथमजाः) आदि में उत्पन्न विद्वान्, (ऋषयः) ज्ञापक प्राण, (दिवः) प्रकाश कर्म वाले अग्नि के (मात्रया) भाग से (वरिम्णा) अधिकता से युक्त हैं, वैसे विद्वान् लोग (त्वा) तुझे (प्रथन्तु) उपदेश करें ।

और जैसे— (विधर्त्ता) पोषक एवं विविध आकर्षण से पृथिवी आदि को धारण करने वाला यह (अधिपतिः) प्रकाशकों का अधिष्ठाता यह सूर्य (त्वा) तुझे पुष्ट करे, वैसे (संविदानाः) जो उत्तम विचारशील विद्वान् हैं वे सब (नाकस्य) दुःख-रहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में एवं (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) विज्ञान में (त्वा) तुझ (यजमानम्) इस विद्या के दाता को (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ १५ । ११ ॥

[हे स्त्रि···यथा···प्रथमजा ऋषयो दिवो मात्रया···सह वर्त्तन्ते तथा विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्वांसो वायुभिः सह वर्त्तमानं सूर्यं, तद्विद्याविज्ञापकं विद्वांसं च समाश्रित्यैतद्विद्यां विज्ञापयन्ति

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—विद्वान् वायुओं के साथ वर्त्तमान सूर्य को, और उस विद्या के विज्ञापक विद्वान्

तथा स्त्री-पुरुषा ब्रह्मचर्येण विद्वांसो भूत्वाऽन्यान-ध्यापयन्तु ॥ १५ ॥ ११ ॥

को प्राप्त करके उक्त विद्या का उपदेश करते हैं, वैसे स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्वान् होकर दूसरों को पढ़ावें ॥ १५ । ११ ॥

भा० पदार्थः—प्रथन्तु=अन्यानध्यापयन्तु ।

भाष्यसार—**१. स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य**—स्त्रियाँ विविध-पदार्थों से शोभायमान दक्षिण दिशा के समान हैं । और पुरुष बलवान् वायु के समान गतिमान् और सदा प्रसन्न रहने वाले पालक होते हैं । वज्रादि को धारण करने वाला, स्तुति के योग्य सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष पृथिवी पर अर्थात् अपने निवास स्थानों पर स्त्रियों के मानस भय को दूर करके सेवा करें । पुरुष व्यवहार के योग्य विद्वानों के श्रेष्ठ वचनों से जीवन में स्थिरता प्राप्त करने वाले हों और प्रतिष्ठा-प्राप्ति के लिए महान् सान्त्वना देने वाले साम-प्रोक्त कर्मों को स्थिरता से आचरण करें । जो विद्या-वृद्ध, वयोवृद्ध तथा धर्म-वृद्ध प्रथम-उत्पन्न विद्वान् हों, वे अग्नि के समान सदा उपदेश के द्वारा प्रकाश किया करें । जैसे विविध आकर्षणों से पृथिवी का धारण-पोषण करने वाला सूर्य इस लोक को प्रकाशित करता है, वैसे ही निश्चयात्मक बुद्धि रखने वाले विद्वान् पुरुषों के उपदेश के अनुसार स्त्री-पुरुष अपना व्यवहार करें और दुःख-रहित सुखकारक लोकों को प्राप्त करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे सूर्यादि के समान विद्वान् पुरुष विद्वान् होकर दूसरों को उपदेश देते हैं, वैसे सभी स्त्री-पुरुष प्रयत्न किया करें ॥ १५ ॥ ११ ॥

परमेष्ठी । **आदित्याः**=**विद्वांसः** ॥ पूर्वस्य निचृद् ब्राह्मी जगती । निषादः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तौ कीदृशौ स्यातामित्याह ॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

स॒म्राड॑सि प्र॒तीची॒ दिगा॑दि॒त्यास्ते॑ दे॒वा ऽ अधि॑पतयो॒ वरु॑णो हे॒ती॒नां प्र॑तिध॒र्त्ता स॑प्तद॒शस्त्वा॒ स्तोमः॑ पृथि॒व्याᳫं श्र॑यतु म॒रुत्व॒तीय॑मु॒क्थमव्य॑थायै स्त॒भ्नातु॒ वैरू॒पᳫं साम॒ प्रति॑ष्ठित्या ऽ अ॒न्तरि॑क्ष॒ ऽ ऋष॑यस्त्वा प्रथम॒जा दे॒वेषु॒ दि॒वो मात्र॑या व॒रि॒म्णा प्र॑थन्तु॒ वि॒ध॒र्त्ता चा॒यमधि॑पतिश्च॒ ते त्वा॒ सर्वे॑ संविदा॒ना नाक॑स्य पृ॒ष्ठे स्व॒र्गे लो॒के यज॑मानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**सम्राट्**) या सम्यक् प्रदीप्यते (**असि**) (**प्रतीची**) पश्चिमा (**दिक्**) दिशन्ति यया सा दिक् तद्वत् (**आदित्याः**) विद्युद्युक्ताः प्राणा वायवः (**ते**) तव (**देवाः**) दिव्यसुखप्रदाः (**अधिपतयः**) स्वामिनः (**वरुणः**) जलसमुदाय इव दुष्टानां बन्धकः (**हेतीनाम्**) विद्युताम् (**प्रतिधर्त्ता**) (**सप्तदशः**) एतत्संख्यापूरकः (**त्वा**) त्वाम् (**स्तोमः**) स्तोतुमर्हः (**पृथिव्याम्**) (**श्रयतु**) (**मरुत्वतीयम्**) बहवो मरुतो=व्याख्यातारो मनुष्या विद्यन्ते यस्मिँस्तत्र भवम् (**उक्थम्**) वाच्यम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानात्मसंचलनायै (**स्तभ्नातु**) गृह्णातु (**वैरूपम्**) विविधानि रूपाणि प्रकृतानि यस्मिंस्तत् (**साम**) (**प्रतिष्ठित्यै**) प्रतिष्ठायै (**अन्तरिक्षे**) (**ऋषयः**) गतिमन्तः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणाज्जाता वायवः (**देवेषु**) दानसाधकेषु (**दिवः**) प्रकाशस्य (**मात्रया**) भागेन (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) (**विधर्त्ता**) विविधानां रत्नानां धारकः

(च) (अयम्) (अधिपतिः) (च) (ते) (त्वा) (सर्वे) (संविदानाः) सम्यग्लब्धज्ञानाः **(नाकस्य) (पृष्ठे) (स्वर्गे) (लोके) (यजमानम्) (च) (सादयन्तु)** ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या प्रतीची दिगिव सम्राडसि तस्यास्ते पतिरादित्या देवा अधिपतय इवायं सप्तदशश्च स्तोमो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ताधिपतिस्त्वा पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै मरुत्वतीयमुक्थं प्रतिष्ठित्यै वैरूपं साम च स्तभ्नातु ये च दिवो मात्रया वरिम्णा सहान्तरिक्षे प्रथमजा ऋषयो देवेषु वर्त्तन्ते तद्वत्त्वा विद्वांसः प्रथन्तु । यथा विधर्त्ता चाधिपतिश्च राजा प्रजाः सुखे स्थापयतु तथा ते सर्वे संविदानाः सन्तस्त्वा यजमानं च नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके सादयन्तु ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि** ! **या प्रतीची** पश्चिमा **दिक्** दिशन्ति यया सा दिक् **इव सम्राट्** या सम्यक् प्रदीप्यते **असि, तस्यास्ते** तव **पतिरादित्याः** विद्युद्युक्ताः प्राणा वायवः **देवाः** दिव्यसुखप्रदाः **अधिपतयः** स्वामिनः **इवाऽयं सप्तदशः** एतत्संख्यापूरकः **च स्तोमः** स्तोतुमर्हः **वरुणः** जलसमुदाय इव दुष्टानां बन्धकः **हेतीनां** विद्युतां **प्रतिधर्त्ताऽधिपतिस्त्वा** त्वां **पृथिव्यां** भूमौ **श्रयतु** सेवताम्, **अव्यथायै** अविद्यमानात्मसञ्चलनायै **मरुत्वतीयं** बहवो मरुतो=व्याख्यातारो मनुष्या विद्यन्ते यस्मिँस्तत्र भवम् **उक्थं** वाच्यं **प्रतिष्ठित्यै** प्रतिष्ठायै **वैरूपं** विविधानि रूपाणि प्रकृतानि यस्मिँस्तत्, **साम** एतदुक्तं कर्म **च स्तभ्नातु** गृह्णातु ।

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू (प्रतीची) पश्चिम (दिक्) दिशा के समान (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (असि) है, सो (ते) तेरा पति (आदित्याः) विद्युत् से युक्त प्राण-वायु, (देवाः) दिव्य सुख प्रदान करने वाले (अधिपतयः) स्वामी जनों के समान है, और यह (सप्तदशः) सत्तरहवां (स्तोमः) स्तुति के योग्य (वरुणः) जल-समुदाय के समान दुष्टों का बन्धक, (हेतीनाम्) विद्युतों को (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला (अधिपतिः) पति (त्वा) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर (श्रयतु) सेवा करे, (अव्यथायै) आत्म-संचलन के अभाव के लिए (मरुत्वतीयम्) बहुत व्याख्याता मनुष्यों में विद्यमान (उक्थम्) उपदेश को, और (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (वैरूपम्) विविध रूपों से युक्त (साम) साम-प्रोक्त कर्म को (स्तभ्नातु) ग्रहण करे,

ये च दिवः प्रकाशस्य **मात्रया** भागेन **वरिम्णा** बहोर्भावेन **सहाऽन्तरिक्षे** आकाशे **प्रथमजाः** प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणाज्जाता वायवः **ऋषयः** गतिमन्तः **देवेषु** दानसाधकेषु **वर्त्तन्ते, तद्वत् त्वा** त्वां **विद्वांसः प्रथन्तु** उपदिशन्तु ।

और जो (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग की (वरिम्णा) अधिकता से युक्त (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) प्रथम=विस्तृत कारण से उत्पन्न (ऋषयः) गतिमान् वायु (देवेषु) दान के साधक विद्वानों में हैं, वैसे (त्वा) तुझको विद्वान् (प्रथन्तु) उपदेश करें ।

यथा विधर्त्ता विविधानां रत्नानां धारकः **अधिपतिश्च राजा प्रजाः सुखे स्थापयतु, तथा ते सर्वे संविदानाः** सम्यग्लब्धज्ञानाः **सन्तस्त्वा** त्वां **यजमानम्** एतद्विद्यादातारं **च नाकस्य** अविद्यमानदुःखस्याऽऽकाशस्य **पृष्ठे** सेचके भागे **स्वर्गे** सुखकारके **लोके** विज्ञातव्ये **सादयन्तु** स्थापयन्तु ॥ १५ । १२ ॥

जैसे (विधर्त्ता) विविध रत्नों को धारण करने वाला (अधिपतिः) राजा प्रजा को सुख में रखता है वैसे वे सब (संविदानाः) सम्यक् ज्ञान को प्राप्त विद्वान् (त्वा) तुझ (यजमानम्) इस विद्या के दाता को (नाकस्य) दुःख रहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में एवं (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) विज्ञान में (सादयन्तु) स्थापित करें ॥ १५ । १२ ॥

[प्रतीची दिक् ...ये च प्रथमजा ऋषयो देवेषु वर्त्तन्ते तद्वत् त्वा विद्वांसः प्रथन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्वांसः पश्चिमां दिशं तत्रस्थान् पदार्थांश्चान्येभ्यो विज्ञापयन्ति, तथा स्त्रीपुरुषाः स्वपत्यादीन् विद्ययाऽलंकुर्वन्तु ॥ १५ । १२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे विद्वान् पश्चिम दिशा को और उस दिशा में स्थित पदार्थों का दूसरों को उपदेश करते हैं वैसे स्त्री-पुरुष अपने सन्तानों को विद्या से अलंकृत करें ॥ १५ । १२ ॥

भाष्यसार—**१. स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य**—स्त्रियाँ पश्चिम दिशा के समान विद्यादि से प्रकाशमान हों। और पुरुष विद्युत् के समान तेजस्वी, दिव्य सुखों को देने वाले, ऐश्वर्यादि के स्वामी होकर रहें। और पुरुष दुःखों से छूटने के लिए शुभगुणों से स्तुति के योग्य, वरुण देव के समान दुष्टों को बांधने वाले और वज्रादि शस्त्रों को धारण करने वाले हों। लोक में प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए विद्वानों की शिक्षा को ग्रहण करें और साम-प्रोक्त कर्मों का सदा आचरण किया करें।

और प्रथम उत्पन्न उन्नत जीवन वाले, विद्या आदि गुणों से महान्, विद्वानों में ऋषि-तुल्य हों, उनके उपदेशों को सदा ग्रहण करें। और वे विद्वान्, जैसे विविध गुणों का धारण करने वाला राजा प्रजा को सुख देता है, वैसे ही दुःखमय लोकों से बचाकर सुखमय लोकों को प्राप्त कराते रहें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। विद्वानों की तरह सभी स्त्री-पुरुष सुशिक्षित होकर दूसरों को भी शिक्षित किया करें ॥ १५ । १२ ॥

परमेष्ठी । **मरुतः**=**वायवः** ॥ पूर्वस्य भुरिग्ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः । प्रथमजा इत्युत्तरस्य ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

पुनस्तौ कीदृशावित्याह ॥

फिर वे दोनों स्त्री पुरुष कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा ऽ अधिपतय: सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**स्वराट्**) या स्वयं राजते (**असि**) अस्ति (**उदीची**) या उदङ्ङुत्तरं देशमञ्चति सा (**दिक्**) (**मरुतः**) वायवः (**ते**) तव (**देवाः**) दिव्यसुखप्रदाः (**अधिपतयः**) (**सोमः**) चन्द्रः (**हेतीनाम्**) वज्रवद्वर्त्तमानानां किरणानाम् (**प्रतिधर्त्ता**) (**एकविंशः**) एतत्संख्यापूरकः (**त्वा**) त्वाम् (**स्तोमः**) स्तुतिसाधकः (**पृथिव्याम्**) (**श्रयतु**) (**निष्केवल्यम्**) निरन्तरं केवलं=स्वरूपं यस्मिंस्तत्र साधुम्। **अत्र केर्धातोर्बाहुलकादौणादिको वलच् प्रत्ययः** (**उक्थम्**) वक्तुं योग्यम् (**अव्यथायै**) अविद्यमानेन्द्रियभयायै (**स्तभ्नातु**) (**वैराजम्**) विराट्प्रतिपादकम् (**साम**) (**प्रतिष्ठित्यै**) (**अन्तरिक्षे**) (**ऋषयः**) बलवन्तः प्राणाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) (**देवेषु**) (**दिवः**) (**मात्रया**) (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) (**विधर्त्ता**) विविधस्य शीतस्य धर्त्ता (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) सम्यक्कृतप्रतिज्ञाः (**नाकस्य**) (**पृष्ठे**) (**स्वर्गे**) (**लोके**) (**यजमानम्**) (**च**) (**सादयन्तु**) ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(निष्केवल्यम्) यहाँ 'कि' धातु से बहुल करके औणादिक 'वलच्' प्रत्यय है ।।

अन्वयः—हे स्त्रि ! यथा स्वराडुदीची दिगस्यस्ति तथा ते पतिर्भवतु यस्या दिशो मरुतो देवा अधिपतयः सन्ति तद्वद्य एकविंशः स्तोमः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्ता जनस्त्वां पृथिव्यां श्रयत्वव्यथायै निष्केवल्यमुक्थं प्रतिष्ठित्यै वैराजं साम च स्तभ्नातु यथा तेऽन्तरिक्षे स्थिता देवेषु प्रथमजा दिवो मात्रया वरिम्णा सह वर्त्तमाना ऋषयः सन्ति तथाऽयमेवैतेषां विधर्त्ता चाधिपतिरस्ति तत्र विषये ते सर्वे संविदाना विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके त्वा यजमानं च सादयन्तु ।। १३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रि** ! **यथा स्वराट्** या स्वयं राजते **उदीची** या उदङ्ङुत्तरं देशमञ्चति सा **दिगसि**=**अस्ति, तथा ते** तव **पतिर्भवतु** ।

यस्या दिशो मरुतः वायवः **देवाः** दिव्यसुखप्रदाः **अधिपतयः सन्ति, तद्वद्य एकविंशः** एतत्संख्यापूरकः **स्तोमः** स्तुतिसाधकः **सोमः** चन्द्रः **हेतीनां** वज्रवद्वर्त्तमानानां किरणानां **प्रतिधर्त्ता जनस्त्वा**=**त्वां पृथिव्यां** भूमौ **श्रयतु** सेवताम्; **अव्यथायै** अविद्यमानेन्द्रियभयायै **निष्केवल्यं** निरन्तरं केवलं स्वरूपं यस्मिंस्तत्र साधुम् **उक्थं** वक्तुं योग्यं **प्रतिष्ठित्यै** प्रतिष्ठायै **वैराजं** विराट्प्रतिपादकं **साम** एतदुक्तं कर्म **च स्तभ्नातु** गृह्णातु ।

यथा ते तव **अन्तरिक्षे** आकाशे **स्थिता देवेषु** दानसाधकेषु **प्रथमजाः** प्रथमाद्विस्तीर्णात्कारणाज्जाताः **दिवः** प्रकाशस्य **मात्रया** भागेन **वरिम्णा** बहोर्भावेन **सह वर्त्तमाना ऋषयः** बलवन्तः प्राणाः **सन्ति, तथायमेवैतेषां विधर्त्ता** विविधस्य शीतस्य धर्त्ता **चाधिपतिः** अधिष्ठाता **अस्ति, तत्र विषये ते सर्वे संविदानाः**=**विद्वांसः** सम्यक्कृतप्रतिज्ञाः **त्वा** त्वां **प्रथन्तु** उपदिशन्तु, **नाकस्य** अविद्यमानदुःखस्याकाशस्य **पृष्ठे** सेचके भागे **स्वर्गे** सुखकारके **लोके** विज्ञातव्ये **त्वा** त्वां **यजमानं** एतद्विद्यादातारं **च सादयन्तु** स्थापयन्तु ।। १५ । १३ ।।

भाषार्थ—हे स्त्री ! जैसे—(स्वराट्) स्वयं प्रकाशमान (उदीची) उत्तर (दिक्) दिशा (असि) है, वैसे—(ते) तेरा पति हो ।

जिस दिशा के (मरुतः) वायु (देवाः) दिव्य सुख प्रदान करने वाले (अधिपतयः) अधिपति हैं, उसके समान जो (एकविंशः) इक्कीसवां (स्तोमः) स्तुति का साधक (सोमः) चन्द्र, तथा (हेतीनाम्) वज्र के समान वर्त्तमान किरणों को (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला पुरुष (त्वा) तेरी (पृथिव्याम्) भूमि पर (श्रयतु) सेवा करे; (अव्यथायै) इन्द्रिय-भय के अभाव के लिए (निष्केवल्यम्) सदा केवल स्वरूप वालों में श्रेष्ठ (उक्थम्) उपदेश को, (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (वैराजम्) विराट् के प्रतिपादक (साम) साम-प्रोक्त कर्म को (स्तभ्नातु) ग्रहण कर ।

जैसे—(ते) तेरे (अन्तरिक्षे) आकाश में स्थित, (देवेषु) दान के साधकों में (प्रथमजाः) प्रथम= विस्तृत कारण से उत्पन्न (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग के (वरिम्णा) बाहुल्य से युक्त (ऋषयः) बलवान् प्राण हैं, वैसे यही इन्हें (विधर्त्ता) विविध रूप में धारण करने वाला (अधिपतिः) अधिष्ठाता है, उस विषय में (ते) वे सब (संविदानाः) सम्यक् प्रतिज्ञा करने वाले विद्वान् (त्वा) तुझे (प्रथन्तु) उपदेश करें, और—(नाकस्य) दुःख-रहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में एवं (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) विज्ञान में (त्वा) तुझे (यजमानम्) इस विद्या के दाता को (सादयन्तु) स्थापित करें ।। १५ । १३ ।।

[मरुतः, सोमः, ··· तत्र विषये ते सर्वे संविदानाः=विद्वांसस्त्वा प्रथन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा

यथा विद्वांसः सोमं प्राणांश्च। साधिष्ठानान् विदित्वा कार्येषूपयुज्य सुखं लभन्ते, तथा–अध्यापका अध्यापिकाश्च शिष्यान् शिष्याश्च विद्याग्रहणायोपयुज्यानन्दयन्तु ॥ १५ । १३ ॥

अलंकार है ॥ जैसे विद्वान् सोम और प्राणों को अधिष्ठान-सहित जानकर, कार्यों में उपयोग करके सुख को प्राप्त करते हैं; वैसे—अध्यापक और अध्यापिकाएँ शिष्यों और शिष्याओं का विद्या-ग्रहण के लिए उपयोग करके आनन्दित रहें ॥ १५ । १३ ॥

भाष्यसार—१. **स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य**—स्त्री-पुरुष दोनों ही विद्यादि गुणों से प्रकाशमान हों। जैसे दिव्य सुख प्रदान करने वाले, इक्कीसवें स्तोम के साधक, चन्द्र के समान आनन्दकारक, सोम्य स्वभाव वाले, दुष्ट स्वभाव वालों के लिए वज्र के समान देव तुल्य विद्वान् हों, उनके बताये मार्ग का सदा आश्रय करें। प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए इन्द्रियों को वश में करें और ऐसे साम-प्रोक्त कर्मों को करने का प्रयत्न करें, जिनसे इन्द्रियों से भय न रहे। जिनका जीवन उन्नत हो, जो दानादि से दूसरों का हित करने में लगे हों, प्राणादि के वश में करने से ऋषि-तुल्य पूर्वज हों ऐसे विद्वानों के अनुसार अपने जीवन बनावें। और वे विद्वान् दुःखमार्ग से हटाकर सुख लोकों को प्राप्त करावें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे विद्वान् सोमादि ओषधियों को और प्राण-विद्या को जानकर सुख प्राप्त करते हैं, वैसे ही सब स्त्री-पुरुष अपना आचरण करें ॥ १५ । १३ ॥

परमेष्ठी। **विश्वेदेवाः**=**अखिलद्योतकाः**॥ पूर्वस्य ब्राह्मी जगती। निषादः।
प्रतिष्ठित्या इत्युत्तरस्य ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

आधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा ऽ अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽ उक्थे ऽ अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अधिपत्नी**) सर्वासां दिशामुपरि वर्त्तमाना (**असि**) (**बृहती**) महती (**दिक्**) (**विश्वे**) अखिलाः (**ते**) तव (**देवाः**) द्योतकाः (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः (**बृहस्पतिः**) पालकः सूर्यः (**हेतीनाम्**) वृद्धानाम् (**प्रतिधर्त्ता**) प्रतीत्या धर्त्ता (**त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ**) (**त्वा**) (**स्तोमौ**) स्तुतिसाधकौ (**पृथिव्याम्**) (**श्रयताम्**) (**वैश्वदेवाग्निमारुते**) वैश्वदेवाग्निमरुद्व्याख्यायिके (**उक्थे**) वक्तव्ये (**अव्यथायै**) अविद्यमानसार्वजनिकपीडायै (**स्तभ्नीताम्**) (**शाक्वररैवते**) शक्त्यैश्वर्य्यप्रतिपादिके (**सामनी**) (**प्रतिष्ठित्यै**) (**अन्तरिक्षे**) (**ऋषयः**) धनञ्जयादयः सूक्ष्मस्थूला वायवः प्राणाः (**त्वा**) (**प्रथमजाः**) आदिजाः (**देवेषु**) दिव्यगुणेषु पदार्थेषु वा (**दिवः**) (**मात्रया**) (**वरिम्णा**) (**प्रथन्तु**) (**विधर्त्ता**) (**च**) (**अयम्**) (**अधिपतिः**) (**च**) (**ते**) (**त्वा**) (**सर्वे**) (**संविदानाः**) कृतप्रतिज्ञाः (**नाकस्य**) (**पृष्ठे**) (**स्वर्गे**) (**लोके**) (**यजमानम्**) (**च**) (**सादयन्तु**) ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि! या त्वं बृहत्यधिपत्नि दिगिवासि तस्यास्ते पतिर्विश्वे देवा अधिपतयः

सन्ति तद्वद्यो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्वा च त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ पृथिव्यामव्यथायै वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे च श्रयताम् । प्रतिष्ठित्यै शाक्वररैवते सामनी च स्तभ्नीताम् । यथा तेऽन्तरिक्षे प्रथमजा ऋषयो देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा त्वा प्रथन्ते तान् मनुष्याः प्रथन्तु । यथाऽयमधिपतिर्विधर्त्ता सूर्योऽस्ति यथा संविदाना विद्वांसस्त्वा नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके सादयन्ति यथा सर्वे ते यजमानं च सादयन्तु तथा त्वं पत्या सह वर्त्तेथाः ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! या **त्वं बृहती** महती **अधिपत्नी** सर्वासां दिशामुपरि वर्त्तमाना **दिक्** दिशन्ति यया सा दिक् **इवासि तस्यास्ते** तव **पतिर्विश्वे** अखिलाः **देवाः** द्योतकाः **अधिपतयः** अधिष्ठातारः **सन्ति, तद्वद्यो बृहस्पतिः** पालकः सूर्य्यः **हेतीनां** वृद्धानां **प्रतिधर्त्ता** प्रतीत्या धर्त्ता **त्वा** त्वां **च त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ** स्तुतिसाधकौ **पृथिव्यां** भूमौ **अव्यथायै** अविद्यमानसार्वजनिकपीडायै **वैश्वदेवाग्निमारुते** वैश्वदेवाऽग्निमरुद्व्याख्यायिके **उक्थे** वक्तव्ये **च श्रयतां** सेवेतां **प्रतिष्ठित्यै** प्रतिष्ठायै **शाक्वररैवते** शक्त्यैश्वर्य्यप्रतिपादिके **सामनी** एतदुक्ते कर्मणी **च स्तभ्नीतां** गृह्णीताम् ।

भाषार्थ—हे स्त्री ! जो तू—(बृहती) बड़ी, (अधिपत्नी) सब दिशाओं के ऊपर वर्तमान (दिक्) दिशा के समान (असि) है, सो (ते) तेरा पति—जो (विश्वे) सब (देवाः) प्रकाशक (अधिपतयः) अधिष्ठाता है, उनके समान जो (बृहस्पतिः) पालक सूर्य (हेतीनाम्) वृद्धों को (प्रतिधर्त्ता) प्रतीतिपूर्वक धारण करने वाला पुरुष (त्वा) तेरी—और (त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ) ३×९=२७+३३=६० साठ (स्तोमौ) स्तुति के साधक (पृथिव्याम्) भूमि पर (अव्यथायै) सार्वजनिक पीड़ा के अभाव के लिए (वैश्वदेवाग्निमारुते) वैश्वदेव और अग्निमारुत की व्याख्या करने वाले (उक्थे) उपदेश (श्रयताम्) सेवा करें; (प्रतिष्ठित्यै) प्रतिष्ठा के लिए (शाक्वररैवते) शक्ति और ऐश्वर्य के साधक (सामनी) साम-प्रोक्त कर्मों को (स्तभ्नीताम्) ग्रहण करें ।

यथा ते तव **अन्तरिक्षे** आकाशे **प्रथमजाः** आदिजाः **ऋषयः** धनञ्जयादयः सूक्ष्मस्थूला वायवः=प्राणाः **देवेषु** दिव्यगुणेषु पदार्थेषु वा **दिवः** प्रकाशस्य **मात्रया** भागेन **वरिम्णा** बहोर्भावेन **त्वा** त्वां **प्रथन्ते** उपदिशन्ति, **तान् मनुष्याः प्रथन्तु** उपदिशन्तु ।

जैसे (ते) तेरे (अन्तरिक्षे) आकाश में (प्रथमजाः) आदि में उत्पन्न (ऋषयः) धनंजय आदि सूक्ष्म और स्थूल प्राण (देवेषु) दिव्य गुणों वा पदार्थों में (दिवः) प्रकाश के (मात्रया) भाग के (वरिम्णा) बाहुल्य से (त्वा) तुझे (प्रथन्ते) उपदेश करते हैं, उनका मनुष्य (प्रथन्तु) उपदेश करें ।

यथाऽयमधिपतिः अधिष्ठाता **विधर्त्ता=सूर्योऽस्ति, यथा संविदानाः=विद्वांसः** कृतप्रतिज्ञाः **त्वा** त्वां **नाकस्य** अविद्यमानदुःखस्याकाशस्य **पृष्ठे** सेचके भागे **स्वर्गे** सुखकारके **लोके** विज्ञातव्ये **सादयन्ति** स्थापयन्ति, **यथा सर्वे ते यजमानम्** एतद्विद्यादातारं **च सादयन्तु** स्थापयन्तु **तथा त्वं पत्या सह वर्त्तेथाः** ॥ १५ ॥ १४ ॥

जैसे यह (अधिपतिः) अधिष्ठाता (विधर्त्ता) विविध पदार्थों को धारण करने वाला सूर्य है, जैसे—(संविदानाः) प्रतिज्ञा करने वाले विद्वान् (त्वा) तुझे (नाकस्य) दुःख-रहित आकाश के (पृष्ठे) सेचक भाग में एवं (स्वर्गे) सुखकारक (लोके) विज्ञान में (सादयन्ति) स्थापित करते हैं, जैसे (ते) वे सब (यजमानम्) इस विद्या के दाता को (सादयन्तु) स्थापित करें वैसे तू पति के साथ वर्ताव कर ॥ १५ । १४ ॥

[बृहती······दिक्······]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा

यथा सर्वासां मध्यस्था दिक् सर्वाभ्योऽधिकाऽस्ति, तथा सर्वेभ्यो गुणेभ्यः शरीरात्मबलमधिकमस्तीति वेद्यम् ॥ १५ । १४ ॥

अलंकार है ॥ जैसे—सबके मध्य में स्थित दिशा सबसे बड़ी है वैसे सब गुणों से शरीर और आत्मा का बल अधिक बड़ा है, ऐसा समझें ॥ १५ । १४ ॥

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुषों के समान कर्त्तव्य**—गृहाश्रम में स्त्रियाँ अपने गुणों के कारण सर्वोपरि होकर रहें और पुरुष देव-तुल्य प्रकाशक, सूर्य के समान पालक, और बड़ों का आदर करने वाले हों और जो साठ प्रकार के स्तोमों के साधक तथा वैश्वदेवादि के व्याख्याता विद्वान् पुरुष हों, उनके दुःख-विनाशक उपदेश को सदा ग्रहण करें। और अपनी प्रतिष्ठा तथा स्थिरता के लिए ऐसे कार्य सदा करें, जिसे शक्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि हो और जो प्रथम उत्पन्न विद्वान् धनञ्जयादि सूक्ष्म-स्थूल भेद से वायुओं को उपदेश करें, जिन से दिव्यगुणों की प्राप्ति होती है, उनका दूसरों को भी उपदेश दिया करें। जैसे सूर्य के समान प्रकाशमान प्रतिज्ञा का पालन करने वाले विद्वान् दुःख मार्ग से बचाकर सुखमय लोकों को प्राप्त कराते हैं, वैसे ही सभी स्त्री-पुरुष पारस्परिक व्यवहार को सुखमय बनावें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वानों की तरह सभी स्त्री पुरुष दूसरों को सदुपदेश दिया करें ॥ १५ ॥ १४ ॥

परमेष्ठी । **वसन्त ऋतुः**=स्पष्टम् ॥ विकृतिः । मध्यमः ॥

अथ रश्म्यादिदृष्टान्तेन सद्विद्योपदिश्यते ॥

अब किरण आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का उपदेश किया जाता है ॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**पुरः**) पूर्वस्मिन् काले वर्त्तमानः (**हरिकेशः**) हरणशीला हरितवर्णाः केशा इव केशाः=प्रकाशा यस्य। अत्र क्लिशेरन् लो लोपश्च ॥ उ० ५ । ३३ ॥ इत्यन् लकारलोपश्च (**सूर्यरश्मिः**) सूर्य्यस्य किरणः (**तस्य**) (**रथगृत्सः**) रथस्य प्रवेता गृत्सो=मेधावीव वर्त्तमानः। गृत्स इति मेधाविना० ॥ निघं० ३ । २५ ॥ गृत्सो=मेधावी गृणातेः ॥ स्तुतिकर्मणः ॥ निरु० ६ । ५ ॥ (**च**) (**रथौजाः**) रथेनौजो=बलं यस्य (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) सेनानीश्च ग्रामणीश्च ताविव (**पुञ्जिकस्थला**) समूहस्थाना दिक् (**च**) (**क्रतुस्थला**) प्रज्ञाकर्मज्ञापनोपदिक् (**च**) (**अप्सरसौ**) ये अप्सु=प्राणेषु सरन्त्यौ=गच्छन्त्यौ ते (**दङ्क्ष्णवः**) मांसघासादीनां दंशनशीला व्याघ्रादयः। अत्र दंशधातोर्बाहुलकान्नुः सुडागमश्च (**पशवः**) (**हेतिः**) वज्र इव घातुकः (**पौरुषेयः**) पुरुषाणां समूहः (**वधः**) हन्ति येन (**प्रहेतिः**) प्रकृष्टो हेतिर्वज्र इव वर्त्तमानः (**तेभ्यः**) (**नमः**) वज्रः (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**मृडयन्तु**) आनन्दयन्तु (**ते**) रक्षका वयम् (**यम्**) हिंसकम् (**द्विष्मः**) विरुन्ध्मः (**यः**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**द्वेष्टि**) विरुणद्धि (**तम्**) (**एषाम्**) पशूनाम् (**जम्भे**) जम्भन्ति=गात्राणि विनामयन्ति येन मुखेन तस्मिन् (**दध्मः**) संस्थापयामः ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(हरिकेशः) यहाँ 'क्लिशेरन् लो लोपश्च' (उ० ५ । ३३) इस सूत्र से 'क्लिश' धातु से अन् प्रत्यय और धातुस्थ लकार का लोप है। (**रथगृत्सः**) 'गृत्स' पद निघं० ३ । २५ में मेधावी-

नामों में पठित है। निरुक्त ६। ५ के अनुसार 'गृत्स' पद का अर्थ मेधावी है क्योंकि यह पद स्तुति-अर्थ वाली 'गृ' धातु से सिद्ध होता है। (**दंक्ष्णवः**) यहां 'दंश' धातु से बहुल करके 'नु' प्रत्यय और 'सुट्' आगम है।।

अन्वयः—योऽयं पुरो हरिकेशः सूर्य्यरश्मिरस्ति तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्याविवापरौ रश्मी वर्तेते। तस्य पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ वर्तेते। ये दंक्ष्णवः पशवः सन्ति तेषामुपरि हेतिर्वज्रः पततु ये पौरुषेयो वधः प्रहेतिरिव वर्तमानाः सन्ति तेभ्यो नमोऽस्तु। धार्मिका राजादयः सभ्याः राजपुरुषाः सन्ति ते नोऽवन्तु। ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः।। १५।।

सपदार्थान्वयः—**योऽयं पुरः** पूर्वस्मिन् काले वर्तमानः **हरिकेशः** हरणशीला=हरितवर्णाः केशा इव केशाः=प्रकाशा यस्य, **सूर्यरश्मिः** सूर्यस्य किरणः **अस्ति, तस्य रथगृत्सः** रथस्य प्रवेता गृत्सो=मेधावीव वर्त्तमानः **च रथौजाः** रथेनौजो=बलं यस्य, **च सेनानीग्रामण्यौ** सेनानीश्च ग्रामणीश्च तौ **इवापरौ रश्मी वर्त्तेते, तस्य पुञ्जिकस्थला** समूहस्थाना दिक् **च क्रतुस्थला** प्रज्ञाकर्मज्ञापनोपदिक् **चाप्सरसौ** ये अप्सु=प्राणेषु सरन्त्यौ=गच्छन्त्यौ ते **वर्त्तेते**।

ये दंक्ष्णवः मांसघासादीनां दंशनशीला व्याघ्रादयः **पशवः सन्ति, तेषामुपरि हेतिः**=**वज्रो** वज्र इव घातुकः **पततु**।

ये पौरुषेयः पुरुषाणां समूहः **वधः** हन्ति येन **प्रहेतिः** प्रकृष्टो हेतिर्वज्र **इव वर्त्तमानाः सन्ति, तेभ्यो नमः** वज्र **अस्तु**।

ये धार्मिका राजादयः सभ्या राजपुरुषाः सन्ति, ते नः अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु। **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** आनन्दयन्तु।

ते रक्षका **वयं यं** हिंसकं **द्विष्मः** विरुन्ध्मः, **यश्च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** विरुणद्धि, **तमेषां** पशूनां **जम्भे** जम्भन्ति=गात्राणि विनामयन्ति येन मुखेन तस्मिन् **दध्मः** संस्थापयामः।। १५। १५।।

भाषार्थ—जो यह (पुरः) पहले समय में वर्तमान, (हरिकेशः) हरित वर्ण वाले केशों के समान प्रकाश वाली (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरण है, उसके—(रथगृत्सः) रथ का संचालक मेधावी पुरुष के समान और (रथौजाः) रथ से ओजस्वी और (सेनानीग्रामण्यौ) सेनानी तथा ग्रामणी पुरुष के समान किरणें हैं, उसके (पुञ्जिकस्थला) समूहस्थान वाली दिशा और (क्रतुस्थला) प्रज्ञा और कर्म को बतलाने वाली उपदिशा ये (अप्सरसौ) प्राणों में गमन करने वाली हैं।

जो (दंक्ष्णवः) मांस, घास आदि को खाने वाले व्याघ्र आदि पशु हैं उनके ऊपर (हेतिः) वज्र एवं वज्र के समान घातक अस्त्र गिरे।

जो (पौरुषेयः) पुरुष-समूह का (वधः) वध करने वाले (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान हैं (तेभ्यः) उनके लिए (नमः) वज्र (अस्तु) हो।

जो धार्मिक राजा आदि सभ्य राजपुरुष हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें। (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) आनन्दित करें।

सो (ते) रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक का (द्विष्मः) विरोध करें, और जो (नः) हमारा (द्वेष्टि) विरोध करता है (तम्) उसे (एषाम्) इन पशुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापित करते हैं।। १५। १५।।

[योऽयं...हरिकेशः सूर्यरश्मिः, ... **सेनानीग्रामण्याविव रश्मी वर्त्तेते**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः।। यथा सूर्यस्य रश्मिर्हरितोऽस्ति, तेन साकं रक्तपीतादयः किरणा वर्त्तन्ते, तथा सेनानीग्रामण्यौ

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है।। जैसे—सूर्य की किरण हरित=हरी है, उसके साथ लाल, पीली आदि किरणें हैं वैसे—

वर्त्तित्वा रक्षकौ भवेताम् । सेनानी और ग्रामणी पुरुष वर्त्ताव करके रक्षक बनें।

[ये दंक्षणवः पशवः सन्ति, तेषामुपरि हेतिः=वज्रः पततु, ...ये राजादयः ते नोऽवन्तु, यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः]

यथा राजादयः सिंहादिहिंसकान् पशून् निरुध्य गवादीन् रक्षन्ति, तथैव विद्वांसः सुशिक्षयाऽस्मान् सर्वान् मनुष्यानधर्मानुष्ठानान्निरुध्य धर्म्ये कर्मणि वर्त्तयित्वा द्वेष्टॄन् निवारयन्तु ।

जैसे—राजा आदि लोग सिंह आदि हिंसक पशुओं को रोक कर गौ आदि पशुओं की रक्षा करते हैं, वैसे ही–विद्वान् सुशिक्षा से हम सब मनुष्यों को अधर्माचरण से रोककर धर्मयुक्त कर्म में प्रवृत्त करके विरोधियों का निवारण करें।

इदमपि वसन्तर्तोर्व्याख्यानम् ॥ १५ । १५ ॥

यह भी वसन्त-ऋतु की व्याख्या है॥ १५ । १५ ।

भा० पदार्थः—दंक्षणवः=सिंहादिहिंसकाः पशवः ॥

भाष्यसार—**१. ग्रीष्म-ऋतु के किरण-तुल्य राजपुरुष सदा रक्षा करें**—सूर्य की किरणें। हरितादि अनेक वर्णों वाली होती हैं। ये किरणें सूर्य के रथ को चलाने वाली हैं, और बहुत उग्र हैं। सेनानी और ग्रामणी पुरुष के समान किरणें अन्धकारादि पर विजय प्राप्त करने वाली और सदा आगे बढ़ती रहती हैं। ये किरणें दिशा और कर्मों को बतलाती हैं। सूर्य की किरणों के आने पर ही सब मनुष्य कार्यों में प्रवृत्त होते हैं। और जो हिंसक तथा रोगकारक कीटाणु आदि होते हैं, उनको ये प्रचण्ड किरणें नष्ट कर देती हैं। ग्रीष्म-ऋतु में प्रचण्ड गर्मी से सब मच्छरादि हिंसक जन्तु नष्ट हो जाते हैं।

सूर्य की किरणों के समान ही सेनापति आदि राजपुरुषों का कर्त्तव्य है कि जो राज्य में हिंसक सिंहादि प्राणी प्रजा को दुःख देने वाले हों, उनको सदा वज्रादि शस्त्रों से मारकर प्रजा को आनन्दित करें। इस प्रकार जो राज्य के विघातक और द्वेषी शत्रु हों, उनको पराजित करके सदा अपने आधीन रक्खें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। सूर्य की किरणों की तरह सेनापति आदि राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें ॥ १५ । १५ ॥

परमेष्ठी । **ग्रीष्मर्तुः**=स्पष्टम् । प्रकृतिः । धैवतः ॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह ॥

वायु आदि के दृष्टान्त से श्रेष्ठ विद्या का पूर्वसदृश फिर उपदेश किया है ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांऽसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**दक्षिणा**) दक्षिणतः (**विश्वकर्मा**) विश्वानि=सर्वाणि कर्माणि यस्मात्स वायुः (**तस्य**) (**रथस्वनः**) रथस्य स्वनः=शब्द इव शब्दो यस्य सः (**च**) (**रथेचित्रः**) रथे=रमणीये चित्राण्याश्चर्य्यरूपाणि चिह्नानि यस्य सः (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) (**मेनका**) यया मन्यते सा (**च**) (**सहजन्या**) सहोत्पन्ना (**च**) (**अप्सरसौ**) ये अप्स्वन्तरिक्षे सरतस्ते (**यातुधानाः**) प्रजापीडकाः (**हेतिः**) वज्रः (**रक्षांसि**) दुष्टकर्मकारिणः (**प्रहेतिः**) (**तेभ्यः**) (**नमः**) वज्रः (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) (**ते**) (**नः**) (**मृडयन्तु**) सुखयन्तु (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**यः**) (**च**) (**नः**) (**द्वेष्टि**) (**तम्**) (**एषाम्**) वायूनाम् (**जम्भे**) व्याघ्रस्य मुख इव कष्टे (**दध्मः**) ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा योऽयं विश्वकर्मा वायुर्दक्षिणा वाति तस्य वायो रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्याविव वर्त्तमाने मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ वर्तेते । ये यातुधानाः सन्ति तेषामुपरि हेतिर्यानि रक्षांसि वर्त्तन्ते तेषामुपरि प्रहेतिरिव तेभ्यो नमोस्त्विवति कृत्वा शिक्षका न्यायाधीशास्ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां वायूनां जम्भे दध्मस्तथा प्रयतध्वम् ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा योऽयं विश्वकर्मा**=**वायुः** विश्वानि=सर्वाणि कर्माणि यस्मात् स वायुः **दक्षिणा** दक्षिणतः **वाति, तस्य वायो रथस्वनः** रथस्य स्वनः=शब्द इव शब्दो यस्य सः **च रथेचित्रः** रथे=रमणीये चित्राण्याश्चर्यरूपाणि चिह्नानि यस्य सः **च सेनानीग्रामण्यौ** सेनानीश्च ग्रामणीश्च तौ **इव वर्त्तमाने मेनका** यया मन्यते सा, **च सहजन्या** सहोत्पन्ना **चाप्सरसौ** ये अप्स्वन्तरिक्षे सरतस्ते **वर्त्तेते** ।

ये यातुधानाः प्रजापीडकाः **सन्ति, तेषामुपरि हेतिः** वज्रः, **यानि रक्षांसि** दुष्टकर्मकारिणः **वर्त्तन्ते, तेषामुपरि प्रहेतिः** प्रकृष्टो हेतिर्वज्र **इव तेभ्यो नमः** वज्रः **अस्त्विवति कृत्वा शिक्षका न्यायाधीशास्ते नः** अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु,** सुखयन्तु,

ते रक्षका **वयं यं** हिंसकं **द्विष्मः** विरुन्ध्मः, **यश्च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** विरुणद्धि, **तमेषां**=**वायूनां जम्भे** व्याघ्रस्य मुखे इव कष्टे **दध्मः** संस्थापयामः **तथा प्रयतध्वम्** ॥ १५ । १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—जो यह (विश्वकर्मा) सब कर्मों का कारण वायु (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में चलता है, उस वायु के (रथस्वनः) रथ के शब्द के समान शब्द वाले और (रथेचित्रः) रथ में चित्र=आश्चर्य रूप चिह्नों वाले (सेनानीग्रामण्यौ) सेनानी और ग्रामणी पुरुष के समान वर्ताव हैं, तथा (मेनका) मेनका नामक और (सहजन्या) सहजन्या नामक (अप्सरसौ) अन्तरिक्ष–गतियाँ हैं ।

जो (यातुधानाः) प्रजा को पीड़ा देने वाले हैं, उनके ऊपर (हेतिः) वज्र हो, जो (रक्षांसि) दुष्ट कर्म करने वाले हैं उनके ऊपर (प्रहेतिः) उत्तम वज्र के समान अस्त्र हो, (तेभ्यः) उनके लिए (नमः) वज्र (अस्तु) हो इसलिए जो शिक्षक, न्यायाधीश हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी रखें ।

(ते) वे हम रक्षक (यम्) जिस हिंसक से (द्विष्मः) विरोध करते हैं (यश्च) और जो (नः) हमारा (द्वेष्टि) विरोध करता है उसे (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) व्याघ्र के मुख के समान कष्ट में (दध्मः) स्थापित करते हैं, वैसा तुम प्रयत्न करो ॥ १५ । १६ ॥

[योऽयं विश्वकर्मा=वायुः ··· वाति, ये यातुधानास्तेषामुपरि हेतिः ···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये स्थूलसूक्ष्ममध्यस्थस्य वायोरुपयोगं कर्त्तुं जानन्ति, ते शत्रून् निवार्य सर्वानानन्दयन्ति ।

इदमपि ग्रीष्मर्तोः शिष्टं व्याख्यानं वेद्यम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो विद्वान् स्थूल, सूक्ष्म और मध्यस्थ वायु का उपयोग करना जानते हैं, वे शत्रुओं का निवारण करके सबको आनन्दित करते हैं ।

यह भी ग्रीष्म-ऋतु की अवशिष्ट व्याख्या है, ऐसा समझें ॥ १५ । १६ ॥

भा० पदार्थः—विश्वकर्मा=स्थूलसूक्ष्ममध्यस्थवायुः ॥

भाष्यसार—१. **ग्रीष्मर्त्तु के वायुतुल्य न्यायाधीशादि का कर्त्तव्य**—ग्रीष्म-ऋतु में चारों तरफ प्रचण्ड हवाएँ चलती हैं। वे रथ के शब्द के समान शब्द करती हैं। रथ में बैठे सेनापति और ग्रामणी के समान हवाएँ उग्र रूप वाली होती हैं। अन्तरिक्ष में चलने वाली हवाओं के मेनका और सहजन्या दो नाम हैं। तेज हवाओं को सहजन्या कहते हैं। वे अपने सम्मुख आने वाले पदार्थों को उड़ा ले जाती हैं।

न्यायाधीशादि राजपुरुष भी वायु के समान और वायु के स्थूल-सूक्ष्म भेदों को जानने वाले होने चाहिए। जो प्रजा को पीड़ा देने वाले दुष्ट स्वभाव वाले राक्षस हों, उनको उचित दण्ड देकर प्रजा की रक्षा करें। और सदा ऐसा प्रयत्न करें कि जो प्रजा के विद्वेषी शत्रु हों, उनकी किसी प्रकार की वृद्धि न हो सके और प्रजा भय रहित होने से शान्ति से रह सके।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। हवाएँ रथ के शब्द के समान शब्द करने वाली, सेनानी और ग्रामणी के समान हैं॥ १५। १६॥

परमेष्ठी। **वर्षर्त्तुः**=स्पष्टम्। विराट् कृतिः। निषादः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

पूर्व ग्रीष्म ऋतु के समान यहाँ वर्षा ऋतु का व्याख्यान किया है॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ।
प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽ
अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः॥ १७॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**पश्चात्**) (**विश्वव्यचाः**) विश्वं विचति=व्याप्नोति स विद्युद्रूपोऽग्निः (**तस्य**) (**रथप्रोतः**) रथो=रमणीयस्तेजःसमूहः प्रोतो=व्यापितो येन सः (**च**) (**असमरथः**) अविद्यमानः समो रथो यस्य सः (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) एताविव (**प्रम्लोचन्ती**) प्रकृष्टतया सर्वानोषध्यादिपदार्थान् म्लोचयन्ती (**च**) (**अनुम्लोचन्ती**) अनुम्लोचयन्ती दीप्तिः (**च**) (**अप्सरसौ**) (**व्याघ्राः**) सिंहाः (**हेतिः**) (**सर्पाः**) ये सर्पन्ति तेऽहयः (**प्रहेतिः**) (**तेभ्यः**) (**नमः**) (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) (**अवन्तु**) (**ते**) (**नः**) (**मृडयन्तु**) (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**यः**) (**च**) (**नः**) (**द्वेष्टि**) (**तम्**) (**एषाम्**) (**जम्भे**) (**दध्मः**)॥ १७॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथाऽयं पश्चाद्विश्वव्यचा अस्ति तस्य सेनानीग्रामण्याविव रथप्रोतश्चासमरथश्च प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ स्तः। यथा हेतिः प्रहेतिर्व्याघ्राः सर्पाश्च सन्ति तेभ्यो नमोऽस्तु। य एतेभ्यो रक्षकास्ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि यमेषां जम्भे दध्मस्तं तेऽपि धरन्तु॥ १७॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यथाऽयं **पश्चाद् विश्वव्यचाः** विश्वं विचति=व्याप्नोति स विद्युद्रूपोऽग्निः **अस्ति, तस्य सेनानीग्रामण्यौ** एतौ **इव रथप्रोतः** रथो=रमणीयस्तेजः समूहः प्रोतो=व्यापितो येन सः **चासमरथः** अविद्यमानः समो रथो यस्य सः **च प्रम्लोचन्ती** प्रकृष्टतया सर्वानोषध्यादिपदार्थान् म्लोचयन्ती **चाऽनुम्लोचन्ती** अनुम्लोचयन्ती=दीप्तिः

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे यह (पश्चात्) पीछे विद्यमान (विश्वव्यचाः) सबमें व्यापक विद्युत् रूप अग्नि है, उसके (सेनानीग्रामण्यौ) सेनानी और ग्रामणी के समान (रथप्रोतः) रथ=रमणीय तेज-समूह से व्याप्त (च) और (असमरथः) अतुल तेजसमूह वाला ये दो स्वरूप हैं, (च) और (प्रम्लोचन्ती) सब ओषधि आदि पदार्थों को गति

चाप्सरसौ ये अप्स्वन्तरिक्षे सरतस्ते **स्तः**।

देने वाली (च) और (अनुम्लोचन्ती) दीप्ति रूप (अप्सरसौ) आकाश में विद्यमान गतियाँ हैं।

यथा हेतिः वज्रः **प्रहेतिः** प्रकृष्टो हेतिर्वज्रः **व्याघ्राः** सिंहा **सर्पाः** ये सर्पन्ति तेऽहयः **च सन्ति, तेभ्यो नमः** वज्रः **अस्तु**।

जैसे—(हेतिः) वज्र, (प्रहेतिः) उत्तम वज्र, (व्याघ्राः) सिंह और (सर्पाः) साँप हैं (तेभ्यः) उनके लिए (वज्रः) वज्र (अस्तु) हो।

य एतेभ्यो रक्षकास्ते नः अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु।

जो इनसे रक्षा करने वाले हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें।

ते रक्षका **वयं यं** हिंसकं **द्विष्मः** विरुन्ध्मः, **यः** हिंसकः **च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** विरुणद्धि, **यं** हिंसकम् **एषां जम्भे दध्मः** संस्थापयामः, **तं तेऽपि धरन्तु**॥

(ते) वे रक्षक हम लोग (यम्) जिस हिंसक का (द्विष्मः) विरोध करते हैं, (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हमारा (द्वेष्टि) विरोध करता है, (यम्) जिस हिंसक को (एषाम्) इन सर्प आदि के (जम्भे) मुख रूप कष्ट में (दध्मः) स्थापित करते हैं, (तम्) उसे वे भी स्थापित करें॥ १५। १७॥

[यथाऽयं विश्वव्यचा अस्ति ··· तं धरन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ इदं वर्षर्तोः शिष्टं व्याख्यानं अस्मिन् युक्ताहार-विहारौ मनुष्यैः कार्यौ॥ १५। १७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है॥ यह वर्षा ऋतु की अवशिष्ट व्याख्या है।

इस ऋतु में मनुष्य युक्त आहार-विहार करें॥

भाष्यसार—१. वर्षा-ऋतु और उसकी उपयोगिता—इस ऋतु में वर्षा व्यापक रूप से होती है। वर्षा का निमित्त व्यापक विद्युदग्नि होती है। इस समय विद्युत् प्रचण्ड रूप में होने से सेनानी और ग्रामणी के समान है। अर्थात् यह अग्नि वर्षा के प्रतिबन्धक कारणों को छिन्न-भिन्न कर देती है। इस ऋतु में सर्वत्र पर्याप्त जल मिलने से ओषधियाँ अंकुरित हो जाती हैं। नष्ट-प्रायः पुरानी जड़ें और नवीन बीज भी स्वयं ही प्रस्फुटित तथा पल्लवित हो जाते हैं। आकाश में प्राण-प्रद हवाएँ चलती हैं। इस ऋतु में हिंसक मच्छर, सर्प, बिच्छू आदि उत्पन्न हो जाते हैं अतः इनसे सुरक्षा करके जीवन को सुखी बनाना चाहिए। जो सर्पादि से दवादि देकर रक्षा करते हैं, वे विद्वान् वैद्य हमारी रक्षा किया करें और सब मनुष्यों को अपने विरोधी शत्रु तुल्य रोगों पर विजय प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्युदग्नि सेनानी और ग्रामणी के समान है॥ १५। १७॥

परमेष्ठी। **शरदृतुः=स्पष्टम्**। भुरिगतिधृतिः। षड्जः॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह॥

पूर्व वर्षा ऋतु के समान यहाँ शरद् ऋतु का व्याख्यान किया है॥

अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ ।
विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽ अस्तु
ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**उत्तरात्**) (**संयद्वसुः**) यज्ञस्य संगतिकरणः (**तस्य**) (**तार्क्ष्यः**) तीक्ष्ण-तेजःप्रापक आश्विनः (**च**) (**अरिष्टनेमिः**) अरिष्टानि=दुःखानि दूरे नयति स कार्तिकः (**च**)(**सेनानीग्रामण्यौ**) एतद्वद्वर्तमानौ (**विश्वाची**) या विश्वं=सर्वं जगदञ्चति=व्याप्नोति सा (**च**) (**घृताची**) घृतमाज्यमुदकं वाञ्चति=प्राप्नोति सा दीप्तिः (**च**) (**अप्सरसौ**) अप्सु=प्राणेषु सरन्त्यौ गती (**आपः**) (**हेतिः**) वृद्धिः (**वातः**) प्रियः पवनः (**प्रहेतिः**) प्रकर्षेण वर्द्धकः (**तेभ्यः**) (**नमः**) (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) (**अवन्तु**)(**ते**) (**नः**) (**मृडयन्तु**) (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) (**यः**) (**च**) (**नः**) (**द्वेष्टि**) (**तम्**) (**एषाम्**) (**जम्भे**) (**दध्मः**) ॥ १८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथायमुत्तरात्संयद्वसुरिव शरदृतुरस्ति तस्य सेनानीग्रामण्याविव तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च विश्वाची च घृताची चाप्सरसौ स्तः यत्राऽऽपो हेतिरिव वर्तिका वातः प्रहेतिरिवानन्दप्रदो भवति तं ये युक्त्या सेवन्ते तेभ्यो नमोऽस्तु । ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषामब्वातानां जम्भे दध्मस्तथा यूयं वर्तध्वम् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथायमुत्तरात् संयद्वसुः** यज्ञस्य सङ्गतिकरणः **इव शरदृतुरस्ति, तस्य सेनानीग्रामण्यौ** एतद्वद्वर्त्तमानौ **इव तार्क्ष्यः** तीक्ष्णतेजःप्रापक आश्विनः **चारिष्टनेमिः** अरिष्टानि=दुःखानि दूरे नयति स कार्त्तिकः **च विश्वाची** या विश्वं=सर्वं जगदञ्चति=व्याप्नोति सा **च घृताची** घृतमाज्यमुदकं वाऽञ्चति=प्राप्नोति सा दीप्तिः **चाप्सरसौ** अप्सु=प्राणेषु सरन्त्यौ गती **स्तः**,

यत्राऽऽपोः हेतिः वृद्धिः **इव वर्त्तिका वातः** प्रियः पवनः **प्रहेतिः** प्रकर्षेण वर्द्धक **इवाऽऽनन्दप्रदो भवति, तं ये युक्त्या सेवन्ते, तेभ्यो नमोऽस्तु । ते नः** अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु ।

ते रक्षका वयं यं हिंसकं **द्विष्मः** विरुन्ध्मः **यः** हिंसकः **च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** विरुणद्धि **तमेषाम्=अब्वातानां जम्भे दध्मः** संस्थापयामः **तथा यूयं वर्त्तध्वम्** ॥१८॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(अयम्) यह (उत्तरात्) उत्तर दिशा में (संयद्वसुः) यज्ञ की संगति करने वाले के तुल्य शरद्-ऋतु है, उसके—(सेनानीग्रामण्यौ) सेनानी और ग्रामणी के समान (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेज का प्रापक आश्विन (च) और (अरिष्टनेमिः) दुःखों को दूर ले जाने वाला कार्त्तिक मास है, (च) और (विश्वाची) सब जगत् को व्याप्त करने वाली (च) और (घृताची) घृत वा जल को प्राप्त करने वाली दीप्ति रूप (अप्सरसौ) प्राणों में विद्यमान गतियाँ हैं ।

जिसमें—(आपः) जल (हेतिः) वृद्धि के तुल्य वर्ताव करने वाले, (वातः) प्रिय पवन (प्रहेतिः) अत्यन्त वर्द्धक के समान आनन्दप्रद है, उसे जो युक्ति से सेवन करते हैं (तेभ्यः) उनके लिए (नमः) सुख (अस्तु) हो । (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें ।

(ते) वे रक्षक हम (यम्) जिस हिंसक का (द्विष्मः) विरोध करते हैं (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हमसे (द्वेष्टि) विरोध करते हैं (तम्) उसे (एषाम्) इन जल और वायुओं के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापित करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥

[अयमुत्तरात् संयद्वसुरिव शरदृतुरस्ति ... तथा यूयं वर्तध्वम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ इदं शरदृतोः शिष्टं व्याख्यानम् ।

अस्मिन्नपि मनुष्यैर्युक्तया प्रवर्त्तितव्यम् ॥१५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ यह शरद्-ऋतु की अवशिष्ट व्याख्या है ।

इस ऋतु में भी मनुष्य युक्ति-पूर्वक प्रवृत्त हों ॥ १५ । १८ ॥

भाष्यसार—**१. शरद् ऋतु और उसकी उपयोगिता**—शरद्-ऋतु उत्तर दिशा में यज्ञ की संगति करने वाले के समान है । जैसे यज्ञादि में जाने से सुमति हो जाती है और वह अपने जीवन को सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करता है, वैसे ही शरद् ऋतु का समय समशीतोष्ण होने से अच्छा होता है । स्वस्थ रहने के लिए शुभ कार्यों का प्रारम्भ इस ऋतु में सरलता से किया जा सकता है । इस ऋतु का प्रथम मास आश्विन होता है, यह तेज का प्रापक है अर्थात् वर्षा में अग्नि मन्द हो जाती है, वर्षा के बाद जठराग्नि पुनः प्रदीप्त होने लगती है । दूसरा मास कार्तिक है; यह दुःखों को दूर करने वाला है । इस मास में घरों की शुद्धि करने से दुःख दूर होते हैं । यज्ञादि करने से वायुमण्डल की शुद्धि करनी चाहिए । ये दोनों मास सेनानी और ग्रामणी के समान होते हैं, इनमें प्रत्येक मनुष्य को अपने विरोधी गुणों पर विजय और उन्नति की ओर बढ़ना चाहिए । सब शरीर में व्याप्त तथा घृतादि से परिपुष्ट प्राणों की गति प्रदीप्त करनी चाहिए, जिससे बल की वृद्धि हो सके । जो मनुष्य इस ऋतु में जल और वायु का युक्ति-पूर्वक सेवन करते हैं वे सदा सुखी रहते हैं । और जल वायु के आश्रय से रोगादि पर विजय प्राप्त करके स्वस्थ रहते हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । इस ऋतु के दोनों मास सेनानी और ग्रामणी के समान हैं ॥ १५ । १८ ॥

परमेष्ठी । **हेमन्तर्तुः=स्पष्टम्** । निचृत्कृतिः । निषादः ॥

पुनस्तादृशमेव विषयमाह ॥

पूर्व शरद् ऋतु के समान यहाँ हेमन्त ऋतु का व्याख्यान किया है ॥

अ॒यमु॒पर्य॒र्वाग्व॑सु॒स्तस्य॒ सेन॒जिच्च॒ सु॒षेण॑श्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॒ ।
उ॒र्वशी॑ च पू॒र्वचि॑त्तिश्चाप्स॒रसा॑ववस्फू॒र्जन् हे॒तिर्वि॒द्युत्प्र॑हे॒तिस्तेभ्यो॒ नमो॑ऽ अस्तु ते
नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**उपरि**) वर्तमानः (**अर्वाग्वसुः**) अर्वाग्वृष्टेः पश्चाद्वसु=धनं यस्मात्स हेमन्तर्तुः (**तस्य**) (**सेनजित्**) यः सेनया जयति सः । अत्र ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलमिति ह्रस्वत्वं च (**सुषेणः**) शोभना सेना यस्य सः (**च**) (**सेनानीग्रामण्यौ**) एतद्वद्वर्त्तमानौ मार्गशीर्षपौषौ मासौ (**उर्वशी**) उरु=बहु अश्नाति यया सा दीप्तिः (**च**) (**पूर्वचित्तिः**) पूर्वा=प्रथमा चित्तिः=संज्ञानं यस्याः सा (**च**) (**अप्सरसौ**) (**अवस्फूर्जन्**) अर्वाचीनं घोषं कुर्वन् (**हेतिः**) वज्रघोषः (**विद्युत्**) (**प्रहेतिः**) प्रकृष्टो वज्र इव (**तेभ्यः**) (**नमः**) (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) (**अवन्तु**) (**ते**) (**नः**) (**मृडयन्तु**) (**ते**) (**यम्**) **द्विष्मः**) (**यः**) (**च**) (**नः**) (**द्वेष्टि**) (**तम्**) (**एषाम्**) (**जम्भे**) (**दध्मः**) ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(सेनजित्) यहाँ 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' (६ । ३ । ६३) से सेना-पद को ह्रस्व हुआ है ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽयमुपरि वर्त्तमानोऽर्वाग्वसुर्हेमन्तर्तुरस्ति तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्याविव मार्गशीर्षपौषौ मासावुर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिश्चास्ति तेभ्यो नमोऽन्नमस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मस्तं यूयमपि तथा विदधत ।। १६ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथाऽयमुपरि वर्त्तमानोऽर्वाग्वसुः**=**हेमन्तर्तुः** अर्वाग्वृष्टेः पश्चाद् वसु=धनं यस्मात् स हेमन्तर्तुः **अस्ति, तस्य सेनजित्** यः सेनया जयति सः **च सुषेणः** शोभना सेना यस्य सः **च सेनानीग्रामण्याविव**=**मार्गशीर्षपौषौ मासौ** एतद्वद्वर्त्तमानौ मार्गशीर्षपौषौ मासौ **उर्वशी** उरु=बहु अश्नाति यया सा दीप्तिः **च पूर्वचित्तिः** पूर्वा=प्रथमा चित्तिः=संज्ञानं यस्याः सा **चाप्सरसौ** अप्सु=प्राणेषु सरन्त्यौ गती, **अवस्फूर्जन्** अर्वाचीनं घोषं कुर्वन् हेतिः=**विद्युत्** वज्रघोषः **प्रहेतिः** प्रकृष्टो वज्र इव **चाऽस्ति, तेभ्यो नमः**=**अन्नमस्तु, ते नः** अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु,

ते रक्षका **वयं यं** हिंसकं **द्विष्मः** विरुन्ध्मः, **यः** हिंसकः **च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** विरुणद्धि, **तमेषां जम्भे दध्मः** संस्थापयामः, **तं यूयमपि तथा विदधत** ।। १५ । १६ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(अयम्) यह (उपरि) ऊपर विद्यमान (अर्वाग्वसुः) वर्षा के पश्चात् धन का हेतु हेमन्त-ऋतु है, उसके—(सेनजित्) सेना से जीतने वाले (च) और (सुषेणः) उत्तम सेना वाले (सेनानीग्रामण्यौ) सेनानी और ग्रामणी के समान मार्गशीर्ष तथा पौष मास हैं, और—(उर्वशी) बहुत खाने वाली दीप्ति (च) और (पूर्वचित्तिः) प्रथम विज्ञान वाली (अप्सरसौ) प्राणों में विद्यमान गतियाँ हैं, और—(अवस्फूर्जन्) नवीन घोष करने वाला (हेतिः) विद्युत् एवं वज्रघोष, (प्रहेतिः) और उतम वज्र है, (तेभ्यः) उनके लिए (नमः) अन्न (अस्तु) हो। (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें।

(ते) वे रक्षक हम (यम्) जिस हिंसक का (द्विष्मः) विरोध करते हैं (च) और (यः) जो हिंसक (नः) हमारा (द्वेष्टि) विरोध करता है (तम्) उसे (एषाम्) इन मासों के (जम्भे) मुख में (दध्मः) स्थापित करते हैं, उसे तुम भी वैसे स्थापित करो ।। १५ । १६ ।।

[यथाऽयमुपरि वर्त्तमानोऽर्वाग्वसुः=हेमन्तर्तुः ··· तं यूयमपि तथा विदधत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । इयमपि हेमन्तर्तोः शिष्टा व्याख्या ।

इममृतुं मनुष्या युक्त्या सेवित्वा बलिष्ठा भवन्तु ।। १५ । १६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ।। यह भी हेमन्तु-ऋतु की अवशिष्ट व्याख्या है ।

इस ऋतु का मनुष्य युक्ति से सेवन करके बलिष्ठ होवें ।। १५ । १६ ।।

भाष्यसार—**१. हेमन्त ऋतु और उसकी उपयोगिता**—वर्षा के पश्चात् हेमन्त-ऋतु आती है। इस ऋतु के मार्गशीर्ष मास सेनानी के समान हैं। जैसे सेनापति शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, वैसे ही इस मास में अपने रोगादि शत्रुओं का विघात करने के लिए व्यायाम तथा संयमित भोजन

करना चाहिए। और पौष मास ग्रामणी की तरह है, जैसे ग्राम का मुखिया ग्राम की उन्नति के लिए सचेष्ट रहता है, वैसे ही यह मास सब प्रकार की उन्नति का विशेष साधक होता है। इस ऋतु में जठराग्नि उर्वशी अर्थात् बहुत खाने वाली हो जाती है। और प्राणों को विशेष शक्ति प्राप्त होने से वे हमारी रक्षा करते हैं तथा सुख देते हैं। प्राणशक्ति के बढ़ने से प्रतिकूल वातावरण का कोई प्रभाव नहीं होता और शरीर स्वस्थ रहता है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। हेमन्त-ऋतु के मास सेनानी और ग्रामणी के समान हैं ॥ १५ । १९ ॥

परमेष्ठी। **अग्निः=जाठराग्निः**। निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

कथं जनैर्बलं वर्धनीयमित्याह ॥

मनुष्यों को किस प्रकार बल बढ़ाना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निर्मू॒र्द्धा दि॒वः क॒कुत्पतिः॑ पृथि॒व्याऽअ॒यम्। अ॒पाᳬ रेता॑ᳬसि जिन्वति ॥ २० ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) प्रसिद्धः पावकः (**मूर्द्धा**) शिर इव सूर्यरूपेण वर्तमानः (**दिवः**) प्रकाशस्य (**ककुत्पतिः**) दिशां पालकः (**पृथिव्याः**) भूमेश्च (**अयम्**) (**अपाम्**) प्राणानाम् (**रेतांसि**) वीर्य्याणि (**जिन्वति**) प्रीणाति ॥ २० ॥

अन्वयः—यथा हेमन्तर्त्तावयमग्निर्दिवः पृथिव्याश्च मध्ये मूर्द्धा ककुत्पतिः सन्नपां रेतांसि जिन्वति तथैव मनुष्यैर्बलिष्ठैर्भवितव्यम् ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा हेमन्तर्त्तावयमग्निः** प्रसिद्धः पावकः **दिवः** प्रकाशस्य **पृथिव्याः** भूमेः **च मध्ये मूर्द्धा** शिर इव सूर्य्यरूपेण वर्त्तमानः **ककुत्पतिः** दिशां पालकः **सन्नपां** प्राणानां **रेतांसि** वीर्य्याणि **जिन्वति** प्रीणाति, **तथैव मनुष्यैर्बलिष्ठैर्भवितव्यम्** ॥ १५ । २० ॥

भाषार्थ—जैसे—हेमन्त ऋतु में यह (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (दिवः) प्रकाश (च) और (पृथिव्याः) भूमि के मध्य में (मूर्द्धा) शिर के समान सूर्य रूप में वर्तमान (ककुत्पतिः) दिशाओं का पालक होकर (अपाम्) प्राणों के (रेतांसि) बलों को (जिन्वति) बढ़ाता है, वैसे ही मनुष्य बलिष्ठ=बलवान् होवें ॥ १५ । २० ॥

[यथा हेमन्तर्तावयमग्निः ··· रेतांसि जिन्वति, तथैव मनुष्यैर्बलिष्ठैर्भवितव्यम्]

भावार्थः—अत्र वाचक लुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्युक्त्या जाठराग्निं वर्धयित्वा संयमेनाहार-विहारौ कृत्वा सदा बलं वर्धनीयम् ॥ १५ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य युक्ति से जाठराग्नि को बढ़ाकर संयमपूर्वक आहार-विहार करके सदा बल को बढ़ावें ॥ १५ । २० ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=जाठराग्निः।

अन्यत्र व्याख्यात—"देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है, कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है···चन्द्र का मन्त्र—"अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः" २ । ३। (**सत्यार्थप्रकाश** समु० ११) ॥

भाष्यसार—**१. शारीरिक बलवृद्धि का उपाय**—जैसे शरीर के लिए भोजन आवश्यक है, वैसे ही उसे पकाना भी आवश्यक है। जो कुछ हम खाते पीते हैं, जठराग्नि उसे पकाकर शरीर का अंग बना देती है। जब यह अग्नि मन्द हो जाती है तब विभिन्न प्रकार के रोग आ जाते हैं। अतः इस अग्नि को कभी भी मन्द नहीं होने देना चाहिए। हेमन्त-ऋतु में यह अग्नि स्वाभाविक रूप से तीव्र हो जाती है, अतः भूख खुलकर लगती है। खाया पिया पचने से शरीर के बल की वृद्धि हो जाती है। इस पृथिवी पर रहने वाले प्राणियों के लिए यह अग्नि शिर के समान मुख्य है। सब दिशाओं में रहने वाले प्राणियों का पालक है। शरीर के स्वस्थ रहने से यह अग्नि प्राणों के बल को बढ़ाता है। अतः सब मनुष्यों को ऋतुओं के अनुकूल भोजन करना तथा संयमित जीवन बिताना परमावश्यक है जिससे यह अग्नि कभी मन्द तथा विषम न हो सके।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। यह अग्नि शिर के समान मुख्य तथा उपयोगी है ॥ १५। २० ॥

परमेष्ठी। **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः ॥ निचृद् गायत्री। षड्जः।

पुनर्मनुष्यः किं कुर्य्यादित्याह ॥

फिर मनुष्य क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**अग्निः**) हेमन्ते वर्त्तमानः (**सहस्रिणः**) प्रशस्तासंख्यपदार्थयुक्तस्य (**वाजस्य**) अन्नस्य (**शतिनः**) प्रशस्तैर्गुणैः सह शतधा वर्त्तमानस्य (**पतिः**) पालकः (**मूर्द्धा**) उत्तमांगवद्वर्त्तमानः (**कविः**) क्रान्तदर्शनः (**रयीणाम्**) धनानाम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथाऽयमग्निः सहस्रिणः शतिनो वाजस्य रयीणां च पतिर्मूर्द्धा कविरस्ति तथैव यूयं भवत ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽयमग्निः** हेमन्ते वर्त्तमानः **सहस्रिणः** प्रशस्तासङ्ख्यपदार्थयुक्तस्य **शतिनः** प्रशस्तैर्गुणैः सह शतधा वर्त्तमानस्य **वाजस्य** अन्नस्य **रयीणां** धनानां **च पतिः** पालकः **मूर्द्धाः** उत्तमाङ्गवद् वर्त्तमानः **कविः** क्रान्तदर्शनः **अस्ति, तथैव यूयं भवत** ॥ १५। २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—यह (अग्निः) हेमन्त में वर्त्तमान अग्नि (सहस्रिणः) उत्तम असंख्य पदार्थों से युक्त तथा (शतिनः) प्रशस्त गुणों से शतधा वर्तमान पुरुष का, (वाजस्य) अन्न का और (रयीणाम्) धनों का (पतिः) पालक; (मूर्द्धा) उत्तमाङ्ग=शिर के समान वर्त्तमान, (कविः) क्रान्तदर्शी है वैसे तुम होवो ॥ १५। २१ ॥

[यथाऽयमग्निः ··· वाजस्य रयीणां च पतिः ··· अस्ति, तथैव यूयं भवत]

भावार्थः—अत्र वाचक-लुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्यायुक्तिभ्यां सेवितोऽग्निः पुष्कले धनधान्ये प्रयच्छति तथैव सेवितः पुरुषार्थो मनुष्यान् श्रीमतः संपादयति ॥ १५। २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—विद्या और युक्ति से सेवन किया हुआ अग्नि पुष्कल धन-धान्य प्रदान करता है वैसे ही सेवन किया हुआ पुरुषार्थ मनुष्यों को श्रीमान् बनाता है ॥ १५। २१ ॥

भा० पदार्थः—वाजस्य=पुष्कलधान्यस्य । रयीणाम्=पुष्कलधनानाम् ।

भाष्यसार—**१. मानव-धर्म**—जैसे यह भौतिक अग्नि असंख्य पदार्थों का साधक और सैकड़ों प्रकार के गुणों से युक्त होने से अन्न और धनों को प्रदान करता है, वैसे ही समाज में जो मनुष्य अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशमान और सदाचारादि श्रेष्ठ गुणों वाला है, वह शिर के समान मुख्य तथा क्रान्तदर्शी होता है। सभी मनुष्यों को धन-धान्य की कामना करते हुए उस विद्वान् का अनुसरण करना चाहिए।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष अग्नि के समान धन-धान्य को सदा बढ़ाया करें ॥ १५ । २१ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=विद्युत् । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन् ! (**पुष्करात्**) अन्तरिक्षात् । **पुष्करमित्यन्तरिक्षनाम० ॥ निघं० २ । ३ ॥** (**अधि**) (**अथर्वा**) अहिंसकः (**निः**) नितराम् (**अमन्थत**) मथित्वा गृह्णीयात् (**मूर्ध्नः**) शिरोवद्वर्त्तमानस्य (**विश्वस्य**) समग्रस्य जगतो मध्ये (**वाघतः**) सुशिक्षिताभिर्वाग्भिरविद्या हन्यते येन स मेधावी । **वाघत इति मेधाविना० ॥ निघं० ३ । २५ ॥ २२ ॥**

प्रमाणार्थ—(पुष्करात्) अन्तरिक्षात् । 'पुष्कर' पद निघं० २ । ३ में अन्तरिक्ष-नामों में पठित है। (वाघतः) मेधावी । 'वाघतः' पद निघं० ३ । २५ में मेधावी नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यथाऽथर्वा वाघतो विद्वान् पुष्करादधिमूर्ध्नो विश्वस्य च मध्येऽग्निं विद्युतं निरमन्थत तथैव त्वां बोधयामि ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! विद्वन् **यथाऽथर्वा** अहिंसकः **वाघतः**=**विद्वान्** सुशिक्षिताभिर्वाग्भिरविद्या हन्यते येन स मेधावी **पुष्करात्** अन्तरिक्षाद् **अधि मूर्ध्नः** शिरोवद्वर्त्तमानस्य **विश्वस्य** समग्रस्य जगतः **च मध्येऽग्निं**=**विद्युतं निरमन्थत** नितरां मथित्वा गृह्णीयात् **तथैव त्वां बोधयामि** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे—(अथर्वा) अहिंसक, (वाघतः) सुशिक्षित वाणी से अविद्या का हनन करने वाला मेधावी विद्वान् (पुष्करात्) अन्तरिक्ष के (अधि) अन्दर (मूर्ध्नः) शिर के समान मुख्य रूप से वर्त्तमान और (विश्वस्य) समग्र जगत् के मध्य में विद्यमान (अग्निम्) विद्युत् को (निरमन्थत) नितान्त मन्थन करके ग्रहण करता है, वैसे ही तुझे समझाता हूँ ॥

[वाघतः=विद्वान् पुष्करादधि मूर्ध्नो विश्वस्य च मध्येऽग्निं=विद्युतं निरमन्थत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्विद्वदनुकरणेनाकाशात् पृथिव्याश्च विद्युतं संगृह्याश्चर्याणि कर्माणि साधनीयानि ॥ १५ । २२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य विद्वानों के अनुकरण से आकाश और पृथिवी से विद्युत् को ग्रहण करके अद्भुत कर्मों को सिद्ध करें ॥ १५ । २२ ॥

भाष्यसार—**१. विद्युदग्नि का उपयोग**—जैसे विद्वान् पुरुष की वाणी अहिंसक होती है और अविद्या का नाश करती है, वैसे ही विद्युत् अन्तरिक्ष और समस्त जलादि में विद्यमान, शिर के समान कार्यों का साधक होने से मुख्य है, उसको मन्थन क्रिया से ग्रहण करके अन्धकार के विनाश और अहिंसक कार्यों में उपयोग लेना चाहिए। विद्युत् के प्रयोग से नाना प्रकार के आश्चर्ययुक्त कर्मों की सिद्धि होती है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् मनुष्य की वाणी की तरह विद्युत् का प्रयोग प्रकाशादि कार्यों में करना चाहिए ॥ १५ । २२ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भि॒ः सच॑से शि॒वाभि॑ः ।
दि॒वि मू॒र्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**भुवः**) भवतीति यस्य (**यज्ञस्य**) संगतस्य कार्यसाधकस्य व्यवहारस्य (**रजसः**) लोकसमूहस्य (**च**) (**नेता**) नयनकर्त्ता (**यत्र**) ऋचि तुनु० [अ० ६ । ३ । १३३] इति दीर्घः (**नियुद्भिः**) मिश्रिकामिश्रिकाभिः क्रियाभिः (**सचसे**) युनक्षि (**शिवाभिः**) मंगलकारिणीभिः (**दिवि**) द्योतनात्मके स्वरूपे (**मूर्द्धानम्**) मूर्द्धेव वर्तमानं सूर्य्यं (**दधिषे**) धरसि (**स्वर्षाम्**) स्वः सुखं सनोति ददाति यया ताम् (**जिह्वाम्**) । जिह्वेति वाङ्नामसु पठितम् । निघं० १ । ११ (**अग्ने**) विद्वन् (**चकृषे**) करोति (**हव्यवाहम्**) यो हव्यान् दातुमादातुं च योग्यान् रसान् वहति तम् ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋचि**) यहाँ 'ऋचि तुनुघमक्षु०' इस अष्टाध्यायी सूत्र से दीर्घ होता है।

अन्वयः—हे अग्ने ! यथाऽयमग्निर्नियुद्भिः शिवाभिः सह वर्त्तमानः भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता सन् सचते, यत्र दिवि मूर्द्धानं दधाति, हव्यवाहं स्वर्षां जिह्वां चकृषे, तथा तत्र त्वं दिवि सचसे विद्यां दधिषे ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! विद्वन् ! **यथाऽयमग्निर्नियुद्भिः** मिश्रिकाऽमिश्रिकाभिः क्रियाभिः **शिवाभिः** मङ्गलकारिणीभिः **सह वर्त्तमानः भुवः** भवतीति तस्य **यज्ञस्य** संगतस्य कार्यसाधकस्य व्यवहारस्य **रजसः** लोकसमूहस्य **च नेता** नयनकर्त्ता **सन् सचते** युनक्ति, **यत्र दिवि** द्योतनात्मके स्वस्वरूपे **मूर्द्धानं** मूर्द्धेव वर्त्तमानं सूर्य्यं **दधाति, हव्यवाहं** यो हव्यान्=दातुमादातुं च योग्यान् रसान् वहति तं **स्वर्षां** स्वः=सुखं सनोति=ददाति यया तां **जिह्वां** वाचं **चकृषे** करोति **तथा तत्र त्वं दिवि** द्योतनात्मके स्वस्वरूपे **सचसे** युनक्षि, **विद्यां दधिषे** धरसि ॥ १५ । २३ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे—यह (अग्निः) भौतिकाग्नि (नियुद्भिः)मिश्रण, अमिश्रण करने वाली (शिवाभिः) मङ्गलकारी क्रियाओं सहित (भुवः) भूमि, (यज्ञस्य) संगत कार्यसाधक व्यवहार और (रजसः) लोकसमूह के (नेता) नायक होकर (सचते) संयुक्त करता है, (यत्र) जिस (दिवि) प्रकाश आत्मक अपने स्वरूप में (मूर्द्धानम्) मूर्द्धा के समान वर्तमान सूर्य को धारण करता है; (हव्यवाहम्) आदान-प्रदान करने योग्य रसों को प्राप्त कराने वाली (स्वर्षाम्) सुखदायक (जिह्वाम्) वाणी को (चकृषे) बनाता है, वैसे वहाँ तू (दिवि) प्रकाशात्मक अपने स्वरूप में (सचसे) युक्त करता है, विद्या को (दधिषे) धारण करता है ॥१५।२३॥

[हे अग्ने ! यथाऽयमग्निर्नियुक्तः शिवाभिः सह ··· सचते ··· तथा तत्र त्वं···सचसे, विद्यां दधिषे]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथाऽग्निरीश्वरेण नियुक्तः सन् सर्वस्य जगतः सुखकारी वर्त्तते तथैव विद्याग्राहका अध्यापकाः सर्वेषां जनानां सुखकारिणः सन्तीति ज्ञेयम् ॥ १५ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—अग्नि ईश्वर के द्वारा नियुक्त किया हुआ सब जगत् का सुखकारी है, वैसे ही विद्या के ग्राहक अध्यापक सब जनों के सुखकारी हैं, ऐसा समझें ॥ १५ । २३ ॥

भा० पदार्थः—शिवाभिः=जगतः सुखकारिणीभिः ।

भाष्यसार—१. **भौतिकाग्नि के कार्यों का वर्णन**—यह भौतिकाग्नि लोहे आदि धातुओं को मिलाने वाली है, और जो कुछ अग्नि में डाला जाता है, उन सबको अलग-अलग करने वाली होने से अमिश्रण करने वाली है। इसका प्रयोग यज्ञादि मंगलकारी कार्यों में होता है। भोजनादि का पाचक होने से यह सब प्राणियों का नेता है। प्रकाशस्वरूप होने से शिर के समान मुख्य और श्रेष्ठ है। इसमें डाली गई वस्तुओं के रसों को वहन करने से इस अग्नि का नाम हव्यवाट् है। जैसे यह अग्नि प्राणियों को सुख देने वाला है, वैसे ही विद्वान् पुरुषों की विद्या और वाणी सदा दूसरों को सुख देने वाली होनी चाहिए। विद्वान् होकर विद्या का प्रयोग असत् कार्यों में कभी भी न करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। अग्नि के समान विद्वान् पुरुषों को सदा मनुष्यादि का उपकार करना चाहिए ॥ १५ । २३ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः ॥ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स कीदृशो भवेदित्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वाऽइ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्र॒ते नाक॒मच्छ॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**अबोधि**) प्रबुध्यते (**अग्निः**) (**समिधा**) प्रदीपनसाधनैः (**जनानाम्**) मनुष्याणाम् (**प्रति**) (**धेनुमिव**) यथा दुग्धदां गां तथा (**आयतीम्**) प्राप्नुवतीम् (**उषासम्**) उषसं=प्रभातम् । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**यह्वा इव**) महान्तो धार्मिका जना इव (**प्र**) (**वयाम्**) व्यापिकां सुखनीतिम् (**उज्जिहानाः**) उत्कृष्टतया प्राप्नुवन्तः (**प्र**) (**भानवः**) किरणाः (**सिस्रते**) प्रापयन्ति । अत्र सृधातोर्लटि शपः श्लुर्व्यत्ययेनात्मनेपदमन्तर्गतो ण्यर्थश्च (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखमाकाशम् (**अच्छ**) सम्यक् ॥ २४ ॥

प्रमाणार्थ—(**उषासम्**) यहाँ 'अन्येषामपि०' (६ । ३ । १३७) सूत्र से दीर्घ है। (**सिस्रते**) प्रापयन्ति । यहाँ सृ-धातु से लट् में शप्-विकरण का श्लु, व्यत्यय से आत्मनेपद और ण्यर्थ=णिच् प्रत्यय का अर्थ अन्तर्गत है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा समिधायमग्निरबोध्यायतीमुषासं प्रति जनानां धेनुमिवास्ति । यस्य यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवो नाकमच्छ सिस्रते तं सुखाय यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः । यथा **समिधा** प्रदीपनसाधनैः **अयमग्निः अबोधि** प्रबुध्यते,

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(समिधा) समिधा आदि प्रदीपन-साधनों से यह (अग्निः)

आयतीं प्राप्नुवतीम् **उषासम्** **उषसं**=प्रभातं **प्रति जनानां** मनुष्याणां **धेनुमिव** यथा दुग्धदा गौस्तथा **अस्ति। यस्य यह्वाः** महान्तो धार्मिका जनाः **इव प्र+वयां** व्यापिकां सुखनीतिम् **उज्जिहानाः** उत्कृष्टतया प्राप्नुवन्तः **प्र+भानवः** किरणाः **नाकम्** अविद्यमानदुःखमाकाशम् **अच्छ** सम्यक् **सिस्रते** प्रापयन्ति, **तं सुखाय यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥१५।२४॥

अग्नि (अबोधिः) प्रबुद्ध=प्रज्वलित होता है, (आयतीम्) प्राप्त होने वाली (उषासम्) उषा= प्रभात के प्रति (जनानाम्) लोगों की (धेनुमिव) दूध देने वाली गौ के समान है, जिसकी—(यह्वाः) महान् धार्मिक जनों के (इव) समान (प्र+वयाम्) उत्तम व्यापक सुख-नीति को (उज्जिहानाः) उत्कृष्टता से प्राप्त करती हुई (प्र+भानवः) उत्तम किरणें (नाकम्) दुःखरहित आकाश को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सिस्रते) प्राप्त कराती हैं; उसको सुख के लिए तुम सम्यक् प्रयुक्त करो ॥ १५ । २४ ॥

[यथा···अयमग्निः···धेनुमिवास्ति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा दुग्धदात्री धेनुर्गौः संसेविता सती दुग्धादिभिः प्राणिनः सुखयति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—दूध देने वाली धेनु=गौ सेवा से दुग्ध आदि के द्वारा प्राणियों को सुख देती है,

[यस्य यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्रभानवः]

यथाऽऽप्ता विद्वांसो विद्यादानेनाविद्यां निवार्य मनुष्यानुन्नयन्ति, तथैवायमग्निर्वर्त्तत इति वेद्यम् ॥

जैसे आप्त विद्वान् विद्यादान से अविद्या का निवारण करके मनुष्यों को उन्नत करते हैं, वैसे ही यह अग्नि है, ऐसा समझें ॥ १५ । २४ ॥

भा० पदार्थः—धेनुम्=दुग्धदात्रीं धेनुं गाम् । यह्वाः=आप्ता विद्वांसः । उज्जिहानाः= उन्नयन्तः ॥

भाष्यसार—१. **भौतिकाग्नि का वर्णन**—जैसे अच्छी प्रकार सेवा करने से गायादि पशु दूधादि से प्राणियों को सुख देते हैं, और जैसे विद्वान् पुरुषों की उत्तम विद्या और सुख देने वाला व्यवहार मनुष्यों की उन्नति कराने वाला होता है; वैसे ही भौतिकाग्नि इन्धनादि से प्रज्वलित किया गया, प्रभात समय की किरणों के समान दुःख-रहित प्रकाश को देता है । हिंसक जन्तु तो इसके पास नहीं आते। अतः इस अग्नि-विद्या को अच्छी प्रकार जानकर उसका सुखप्रद कार्यों में प्रयोग करना चाहिए।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। यह अग्नि गायादि पशुओं के और विद्वान् पुरुषों की वाणी के समान सुख देने वाली है ॥ १५ । २४ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=पावकः** ॥ निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

फिर वह कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अवोचाम**) उच्याम (**कवये**) मेधाविने (**मेध्याय**) सर्वशुभलक्षणसंगताय पवित्राय (**वचः**) वचनम् (**वन्दारु**) प्रशंसनीयम् (**वृषभाय**) बलिष्ठाय (**वृष्णे**) वृष्टिकर्त्रे (**गविष्ठिरः**) गोषु=किरणेषु तिष्ठतीति (**नमसा**) अन्नादिना (**स्तोमम्**) स्तुत्यं कार्य्यम् (**अग्नौ**) पावके (**दिवीव**) यथा सूर्य्यप्रकाशे (**रुक्मम्**) आदित्यम् (**उरुव्यञ्चम्**) उरुषु=बहुषु विशेषेणाञ्चति तम् (**अश्रेत्**) श्रयेत् । **अत्र विकरणस्य लुक् । लङ्प्रयोगश्च ॥ २५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**अश्रेत्**) श्रयेत् । यहाँ विकरण प्रत्यय का लुक् और लङ् लकार का प्रयोग है ॥

अन्वयः—वयं यथा गविष्ठिरो दिवीवोरुव्यञ्चं रुक्ममश्रेत्तथा मेध्याय वृषभाय वृष्णे कवये वन्दारु वचोऽग्नौ नमसा स्तोमं चावोचाम ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं यथा गविष्ठिरः** गोषु=किरणेषु तिष्ठतीति **दिवीव** यथा सूर्य्यप्रकाशे **उरुव्यञ्चं** उरुषु=बहुषु विशेषेणाऽञ्चति तं **रुक्मम्** आदित्यम् **अश्रेत्** श्रयेत्, **तथा मेध्याय** सर्वशुभलक्षण-संगताय पवित्राय **वृषभाय** बलिष्ठाय **वृष्णे** वृष्टिकर्त्रे **कवये** मेधाविने **वन्दारु** प्रशंसनीयं **वचः** वचनम् **अग्नौ** पावके **नमसा** अन्नादिना **स्तोमं** स्तुत्यं कार्य्यं **चावोचाम** उच्याम ॥ १५ । २५ ॥

भाषार्थ—हम जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में रहने वाला प्रकाश (दिवीव) सूर्य प्रकाश के समान (उरुव्यञ्चम्) बहुत पदार्थों में विशेष रूप से प्राप्त (रुक्मम्) आदित्य=सूर्य के (अश्रेत्) आश्रित है, वैसे (मेध्याय) सब शुभ-लक्षणों से युक्त, पवित्र (वृषभाय) बलवान् (वृष्णे) वृष्टि-कारक (कवये) मेधावी विद्वान् के लिए (वन्दारु) प्रशंसनीय (वचः) वचन का, और (अग्नौ) अग्नि में (नमसा) अन्न आदि से (स्तोमम्) स्तुत्य कार्य का (अवोचाम) उपदेश करें ॥ १५ । २५ ॥

[**मेध्याय···कवये वन्दारु वचः···नमसा ··· अवोचाम**]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ विद्वद्भिः सुशीलाय शुद्धधिये विद्यार्थिने परमप्रयत्नेन विद्या देया,

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ विद्वान्—सुशील, शुद्ध-बुद्धि विद्यार्थी को परम प्रयत्न से विद्या प्रदान करें ।

[**यथा···दिवीव···रुक्ममाश्रेत्**]

यतोऽसौ विद्यामधीत्य सूर्यप्रकाशे घटपटादीन् पश्यन्निव सर्वान् यथावज्ज्ञातुं शक्नुयात् ॥१५।२५॥

जिससे वह विद्या को पढ़कर सूर्य के प्रकाश में घट, पट आदि के प्रत्यक्ष के समान सब पदार्थों को यथावत् जान सके ॥ १५ । २५ ॥

भा० पदार्थः—मेध्याय=सुशीलाय । कवये=शुद्धधिये विद्यार्थिने । नमसा=परम-प्रयत्नेन ।

भाष्यसार—**१. भौतिकाग्नि का वर्णन**—जैसे किरणों में विद्यमान प्रकाश सूर्य के आश्रित है, वैसे ही यह पार्थिव अग्नि विभिन्न पदार्थों का प्रकाशक तथा सिद्ध करने वाला है । यह अग्नि यज्ञादि में डाले गए पदार्थों का वहन करके वर्षा का साधक होने से मनुष्यों की इच्छा पूरी करने वाला है अतः इसे मेध्य-शुभ लक्षणों वाला कहते हैं । इस अग्नि के तुल्य विद्वान् पुरुष भी ऐसे छात्रों को उत्तम उपदेश दिया करें, जो सुशील, मेधा बुद्धि से युक्त, शुभलक्षण वाले होने से प्रशंसनीय और विद्या ग्रहण करने का सामर्थ्य रखने वाले हों ॥ १५ । २५ ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। घट-पटादि के प्रकाशक अग्नि के समान विद्यावान् पुरुष योग्य शिष्यों को विद्या का उपदेश किया करें ॥ १५ । २५ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=अग्निविद्या । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

अ॒यमि॒ह प्र॑थ॒मो धा॑यि धा॒तृभि॒र्होता॒ यजि॑ष्ठो ऽ अध्व॒रेष्वीड्यः॑ ।
यमप्न॑वानो॒ भृग॑वो विरुरु॒चुर्वने॑षु चि॒त्रं वि॒भ्वं॒ वि॒शेवि॑शे ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**अयम्**) (**इह**) (**प्रथमः**) विस्तीर्णोऽग्निः (**धायि**) ध्रियते (**धातृभिः**) धारकैः (**होता**) आदाता (**यजिष्ठः**) अतिशयेन यष्टा (**अध्वरेषु**) अहिंसनीयव्यवहारेषु (**ईड्यः**) अन्वेषितुं योग्यः (**यम्**) (**अप्नवानः**) रूपवन्तः । अप्नमिति रूपना० ॥ निघं० ३ । ५ ॥ अत्र छान्दसो वर्णलोप इति मतोस्तलोपः (**भृगवः**) परिपक्वविज्ञानाः (**विरुरुचुः**) विरोचन्ते=प्रकाशन्ते (**वनेषु**) रश्मिषु (**चित्रम्**) अद्भुतम् (**विभ्वम्**) व्यापकम् (**विशेविशे**) प्रजायै प्रजायै ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**अप्नवानः**) रूपवन्तः । 'अप्न' पद निघं० ३ । ५ में रूप-नामों में पठित है। यहाँ 'छान्दसो वर्णलोप' (८ । २ । २५) इससे मतु के त–का लोप है ॥

अन्वयः—य इहाध्वरेष्वीड्यो यजिष्ठो होता प्रथमोऽयमग्निर्धातृभिर्धायि यं वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशेऽप्नवानो भृगवो विरुरुचुस्तं सर्वे मनुष्या अङ्गीकुर्य्युः ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**य इहाध्वरेषु** अहिंसनीयव्यवहारेषु **ईड्यः** अन्वेषितुं योग्यः **यजिष्ठः** अतिशयेन यष्टा **होता** आदाता **प्रथमः** विस्तीर्णः **अयमग्निर्धातृभिः** धारकैः **धायि** ध्रियते, **यं वनेषु** रश्मिषु **चित्रम्** अद्भुतं **विभ्वं** व्यापकं **विशेविशे** प्रजायै प्रजायै **अप्नवानः** रूपवन्तः **भृगवः** परिपक्वविज्ञानाः **विरुरुचुः** विरोचन्ते=प्रकाशन्ते, **तं सर्वे मनुष्या** अङ्गीकुर्य्युः ॥ १५ । २६ ॥

भाषार्थ—जो (इह) इन (अध्वरेषु) हिंसा के अयोग्य व्यवहारों में (ईड्यः) अन्वेषण के योग्य, (यजिष्ठः) अत्यन्त यजन करने वाला (होता) ग्रहण करने वाला (प्रथमः) विस्तृत (अयम्) यह अग्नि (धातृभिः) धारण करने वालों से (धायि) धारण किया जाता है, जिस (वनेषु) किरणों में (चित्रम्) अद्भुत (विभ्वम्) व्यापक अग्नि को (विशे-विशे) प्रत्येक प्रजा-जन के लिए (अप्नवानः) रूपवान् (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वान् (विरुरुचुः) प्रकाशित करते हैं; उसे सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ १५ । २६ ॥

[य···अग्निर्धातृभिरधायि, यं ··· भृगवो विरुरुचुः]

भावार्थः—विद्वांसोऽग्निविद्यां धृत्वाऽन्येभ्यः प्रदद्युः ॥ १५ । २६ ॥

भावार्थ—विद्वान्—अग्नि-विद्या को धारण करके दूसरों को प्रदान करें ॥ १५ । २६ ॥

भा० पदार्थः—धातृभिः=विद्वद्भिः । भृगवः=विद्वांसः ॥

भाष्यसार—**अग्नि-विद्या का उपदेश**—यह भौतिकाग्नि हिंसा के अयोग्य यज्ञादि में अन्वेषण करने योग्य है। यह यज्ञादि उत्तम कार्यों का साधक है, यज्ञादि में डाले गये पदार्थों को लेकर

वायु आदि को देने से होता है। यह सब देवों में प्रथम=मुख्य है। शुभ गुणों को धारण करने वाले इस अग्नि को धारण करते हैं। विद्वान् पुरुष प्रजा के हित के लिए अद्भुत कार्यों के साधक तथा व्यापक अग्नि को प्रकाशित करते हैं। परिपक्व विज्ञान वाले विद्वान् जैसे अग्नि विद्या का प्रयोग करते हैं, वैसे ही सब मनुष्य किया करें ॥ १५ । २६ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=**विद्युत्** ॥ निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

जनस्य गोपा ऽ अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**जनस्य**) जातस्य (**गोपाः**) रक्षकः (**अजनिष्ट**) जातः (**जागृविः**) जागरूकः (**अग्निः**) विद्युत् (**सुदक्षः**) सुष्ठुबलः (**सुविताय**) उत्पादनीयायैश्वर्य्याय (**नव्यसे**) अतिशयेन नवीनाय । अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति ईलोपः । (**घृतप्रतीकः**) प्रतीतिकरं जलमाज्यं वा यस्य सः (**बृहता**) महता (**दिविस्पृशा**) दिवि=प्रकाशे स्पृशति येन तेन (**द्युमत्**) द्यौः=प्रकाशोऽस्त्यस्मिन् तद्वत् (**वि**) (**भाति**) (**भरतेभ्यः**) आदित्येभ्यः । भरत आदित्यः ॥ निरु० ८ । १३ ॥ (**शुचिः**) पवित्रः ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—(**नव्यसे**) अतिशयेन नवीनाय । यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपो वा' (८ । २ । २५) इस वार्त्तिक से 'ई' का लोप है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो जनस्य गोपा जागृविः सुदक्षो घृतप्रतीकः शुचिरग्निर्नव्यसे सुवितायाऽजनिष्ट बृहता दिविस्पृशा भरतेभ्यो द्युमद्विभाति तं यूयं विजानीत ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यो जनस्य** जातस्य **गोपाः** रक्षकः **जागृविः** जागरूकः **सुदक्षः** सुष्ठुबलः **घृतप्रतीकः** प्रतीतिकरं जलमाज्यं वा यस्य सः **शुचिः** पवित्रः **अग्निः** विद्युत्, **नव्यसे** अतिशयेन नवीनाय **सुविताय** उत्पादनीयायैश्वर्य्याय **अजनिष्ट** जातः, **बृहता** महता **दिविस्पृशा** दिवि=प्रकाशे स्पृशति येन तेन **भरतेभ्यः** आदित्येभ्यः **द्युमत्** द्यौः=प्रकाशोऽस्त्यस्मिन् तद्वद् **विभाति**, **तं यूयं विजानीत** ॥ १५ । २७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(जनस्य) उत्पन्न जनों का (गोपाः) रक्षक, (जागृविः) जागरूक, (सुदक्षः) उत्तम बल वाली, (घृतप्रतीकः) प्रतीतिकारक जल वा घृत वाली, (शुचिः) पवित्र, (अग्निः) विद्युत् हैं; वह (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) उत्पन्न करने योग्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (अजनिष्ट) उत्पन्न हुई है, जो (बृहता) महान् (दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श करने से (भरतेभ्यः) सूर्यों के लिए (द्युमत्) प्रकाशमान होकर (विभाति) चमकती है; उसे तुम जानो ॥ १५ । २७ ॥

[हे मनुष्याः ! यो ··· अग्निर्नव्यसे सुवितायाजनिष्ट,···भरतेभ्यो द्युमत् तं यूयं विजानीत]

भावार्थः—मनुष्यैर्यदैश्वर्यप्राप्तेरसाधारणं निमित्तं सृष्टिस्थानां सूर्याणां कारणं विद्युत्तेजस्तद् विज्ञायोपयोक्तव्यम् ॥ १५ । २७ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जो ऐश्वर्यप्राप्ति का असाधारण कारण, सृष्टि के सूर्यों का कारण विद्युत् का तेज है उसको जानकर उपभोग करें ॥ १५ । २७ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=विद्युतेजः । सुविताय=ऐश्वर्यप्राप्तये ।

भाष्यसार—**विद्युदग्नि का उपदेश**—यह विद्युदग्नि प्राणिमात्र का रक्षक है, क्योंकि यह वृष्टि आदि से अन्नादि का साधक है । वृष्टि निरोधक वृत्र के वध करने में सदा जागरूक रहता है । यह उत्तम बल वाला है, पवित्र है, जलादि से उत्पन्न होता है, ऐश्वर्य-प्राप्ति का उत्तम साधन है । यह महान् तेज वाला होकर आकाश में चमकता रहता है । अतः इसको जानकर उपयोग में लाना चाहिए ।। १५ । २७ ।।

परमेष्ठी । **अग्निः**=**आभ्यन्तरो बाह्यश्चाग्निः** । विराडार्षी जगती । निषादः ।।

पुनः स कीदृश इत्याह ।।

फिर वह अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ।।

त्वाम॑ग्ने ऽ आङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।
स जा॑यसे म॒थ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत् त्वामा॑हुः॒ सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ।। २८ ।।

पदार्थः—(**त्वाम्**) (**अग्ने**) विद्वन् ! (**अङ्गिरसः**) विद्वांसः (**गुहा**) गुहायां=बुद्धौ । **अत्र सुपां सुलुगिति** ङेर्लुक् (**हितम्**) हितकारिणम् (**अनु**) (**अविन्दन्**) प्राप्नुयुः (**शिश्रियाणम्**) श्रयन्तम् (**वनेवने**) रश्मौ रश्मौ पदार्थे पदार्थे वा (**सः**) (**जायसे**) (**मथ्यमानः**) संघृष्यमाणः (**सहः**) बलम् (**महत्**) (**त्वाम्**) तम् (**आहुः**) कथयन्ति (**सहसः**) बलवतो वायोः (**पुत्रम्**) उत्पन्नम् (**अङ्गिरः**) प्राणवत् प्रिय ।। २८ ।।

प्रमाणार्थ—(**गुहा**) गुहायाम् । यहाँ 'सुपां' सुलुक्० (७ । १ । ३९) से ङि-प्रत्यय का लुक् हुआ है ।।

अन्वयः—हेऽङ्गिरोऽग्ने ! त्वं स मथ्यमानोऽग्निरिव विद्यया जायसे यथा महत्सहो युक्तं सहसस्पुत्रं वने वने शिश्रियाणं गुहाहितं त्वामाहुरङ्गिरसोऽन्वविन्दस्तथा त्वामहं बोधयामि ।। २८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अङ्गिरः** प्राणवत् प्रिय ! **अग्ने** विद्वन् ! **त्वं स मथ्यमानः** संघृष्यमाणः अग्निरिव विद्यया **जायसे** ।

यथा महत् सहः बलं **युक्तं सहसः** बलवतो वायोः **पुत्रम्** उत्पन्नं **वने वने** रश्मौ रश्मौ पदार्थे पदार्थे वा **शिश्रियाणं** श्रयन्तं **गुहा** गुहायां=बुद्धौ **हितं** हितकारिणं **त्वां** तम् **आहुः** कथयन्ति, **अङ्गिरसः** विद्वांसः **अन्वविन्दन्** प्राप्नुयुः, **तथा त्वां** तम् **अहं बोधयामि** ।। १५ । २८ ।।

भाषार्थ—हे (अङ्गिरः) प्राणों के समान प्रिय (अग्ने) विद्वान् ! तू—(मथ्यमानः) मन्थन की हुई अग्नि के समान विद्या से उत्पन्न होता है ।

जैसे—(महत्) महान् (सहः) बल से युक्त, (सहसः) बलवान् वायु के (पुत्रम्) पुत्र, (वने वने) प्रत्येक रश्मि वा प्रत्येक पदार्थ में (शिश्रियाणम्) विद्यमान, (गुहा) बुद्धि के लिए (हितम्) हितकारी (त्वा) तुझे (आहुः) कहते हैं; (अङ्गिरसः) विद्वान् लोग (अन्वविन्दन्) प्राप्त करते हैं; वैसे (त्वा) तुझे मैं समझाता हूँ ।। १५ । २८ ।।

[अग्निभेदद्वयमाह—]

भावार्थः—द्विविधोऽग्निर्मानसो बाह्यश्चास्ति ।

भावार्थ—मानस (आन्तरिक) और बाह्य दो प्रकार की अग्नि है ।।

[गुहाहितं त्वामाहुः, मथ्यमानोऽग्निः, अङ्गिरसोऽन्वविन्दन्]

तयोराभ्यन्तरं युक्ताभ्यामाहारविहाराभ्यां, बाह्यं मन्थनादिभ्यः सर्वे विद्वांसः सेवन्ताम् । तथोत्तरे भजन्तु ॥ १५ । २८ ॥

उनमें से आभ्यन्तर अग्नि को युक्त आहार-विहार से और बाह्य अग्नि को मन्थन आदि से सब विद्वान् लोग सेवन करें । वैसे—इतर जन भी सेवन किया करें ॥ १५ । २८ ॥

भा० पदार्थः—अन्वविन्दन्=सेवन्ताम् ॥

भाष्यसार—**भौतिकाग्नि के दो भेद**—भौतिकाग्नि दो प्रकार की होती है—(१) आन्तरिक जठराग्नि; (२) बाह्याग्नि । प्रथम अग्नि को विद्वान् पुरुष खाये हुए प्रत्येक पदार्थ को पकाने के लिए युक्ताहार-विहार वाले होकर प्रदीप्त रखते हैं । और शरीरादि के लिए हितकारी बना लेते हैं । दूसरी बाह्याग्नि को मन्थन करके पैदा करते हैं; यह महान् बलयुक्त होती है, अतः इस का नाम सहसस्पुत्र है । वायु के पश्चात् अग्नि की उत्पत्ति होती है—इसलिए भी भौतिकाग्नि को सहसस्पुत्र कहते हैं । विद्वान् पुरुष इस अग्नि का भी हितकर कार्यों में प्रयोग किया करें । विद्वान् मनुष्य भी अग्नि के समान विद्या का मन्थन करके विद्यावान् होता है, उसका बुद्धि के हित के लिए सभी मनुष्य सेवन किया करें ॥ १५ । २८ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ।

मनुष्याः कीदृशा भूत्वाग्निं विजानीयुरित्याह ॥

मनुष्य लोग कैसे होके अग्नि को जानें, यह उपदेश किया है ॥

सखा॑यः सं वः॑ सम्यञ्च॒मिषु॒ᳪ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ । वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**सखायः**) सुहृदः (**सम्**) (**वः**) युष्माकम् (**सम्यञ्चम्**) यः समीचीनमञ्चति तम् (**इषम्**) अन्नम् (**स्तोमम्**) स्तुतिसमूहम् (**च**) (**अग्नये**) पावकाय (**वर्षिष्ठाय**) अतिवृद्धाय (**क्षितीनाम्**) मनुष्याणाम् (**ऊर्जः**) बलस्य (**नप्त्रे**) पौत्र इव वर्त्तमानाय (**सहस्वते**) बहुबलयुक्ताय ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा विद्वांसः सखायः सन्तः क्षितीनां वो युष्माकमूर्जो नप्त्रे सहस्वते वर्षिष्ठायाग्नये सम्यञ्चमिषं स्तोमं च समाहुस्तथा यूयमनुतिष्ठत ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा विद्वांसः सखायः** सुहृदः **सन्तः क्षितीनां** मनुष्याणां **वः=युष्माकमूर्जः** बलस्य **नप्त्रे** पौत्र इव वर्त्तमानाय **सहस्वते** बहुबलयुक्ताय **वर्षिष्ठाय** अतिवृद्धाय **अग्नये** पावकाय **यं सम्यञ्चं** यः समीचीनमञ्चति तम् **इषम्** अन्न **स्तोमं** स्तुतिसमूहं **च सम्+आहुः** सम्यक्तया कथयन्ति **तथा यूयमनुतिष्ठत** ॥ १५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—विद्वान् लोग (सखायः) मित्र बनकर (वः) तुम (क्षितीनाम्) मनुष्यों को—(ऊर्जः) बल के (नप्त्रे) पौत्र के समान वर्तमान, (सहस्वते) बहुत बल से युक्त, (वर्षिष्ठाय) अति-वृद्ध (अग्नये) अग्नि का; और—जिस (सम्यञ्चम्) उत्तम जनों के सत्कार के साधन (इषम्) अन्न का और (स्तोमम्) स्तुति-समूह का (सम्+आहुः) उत्तमता से उपदेश करते हैं; वैसे तुम आचरण करो ॥ १५ । २९ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र पूर्वमन्त्रादाहुरित्यनुवर्त्तते । **भावार्थ**—यहाँ पूर्व मन्त्र से 'आहुः' पद की अनुवृत्ति है।

[यथा विद्वांसः सखायः सन्तः···अग्नये··· स्तोममाहुः]

शिल्पिनः सुहृदो भूत्वा विद्वदुक्तानुकूलतया पदार्थविद्यामनुतिष्ठेयुः, शिल्पी लोग मित्र बनकर विद्वानों के कथनानुसार पदार्थविद्या का अनुष्ठान करें,

[सहस्वते, ऊर्जो नप्त्रेऽग्नये]

विद्युत् कारणाख्याद् बलाज्जायते सा पुत्रवत्, या सूर्यादेः सकाशादुत्पद्यते सा पौत्रवदस्तीति वेद्यम् ॥ १५ । २९ ॥ विद्युत् कारण नामक बल से उत्पन्न होती है सो पुत्र के समान है, जो सूर्य आदि से उत्पन्न होती है वह पौत्र के समान है, ऐसा समझें ॥ १५ । २९ ॥

भाष्यसार—भौतिकाग्नि के उपयोग का उपाय—भौतिकाग्नि दो प्रकार से उत्पन्न होती है। एक अपने कारण से मन्थन क्रिया करने से अग्नि पैदा होती है। दूसरी सूर्य की किरणों से पैदा होती है, अतः इसका नाम नप्ता है। विद्वान् शिल्पी सब प्रजा के लिए मित्रवत् हितभावना रखकर उत्तम-कार्यों के साधन स्वरूप बलशाली अग्नि का प्रयोग इस प्रकार करें कि जिससे बल और प्रकाश की वृद्धि हो सके। अति प्रदीप्त अग्नि ही अन्नादि का पाचक होकर बल को बढ़ाता है। विद्वान् मनुष्यों की तरह सामान्य मनुष्य भी अग्नि-विद्या को सीखकर सदुपयोग किया करें ॥ १५ । २९ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=**अग्निविद्या** ॥ विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

वैश्येन किं कार्यमित्युपदिश्यते ॥

वैश्य को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्य ऽ आ । इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**संसम्**) सम्यक् (**इत्**) एव (**युवसे**) मिश्रय। अत्र विकरणात्मनेपदव्यत्ययः। (**वृषन्**) बलवन् (**अग्ने**) प्रकाशमान (**विश्वानि**) अखिलानि (**अर्यः**) वैश्यः । अर्यः स्वामिवैश्ययोरिति वैश्यार्थे निपातितः (**आ**) (**इडः**) प्रशंसनीयस्य । इड इति पदना० ॥ निघं० ५ । २ ॥ अत्रेडधातोर्बाहुलकादौणादिकः क्विप् । आदेर्ह्रस्वश्च (**पदे**) प्रापणीये (**सम्**) (**इध्यसे**) प्रदीप्यसे (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**वसूनि**) (**आ**) (**भर**) धर ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**युवसे**) यहाँ विकरण और आत्मनेपद का व्यत्यय है। (**अर्यः**) वैश्यः । 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (३ । १ । १०३) से 'अर्य' पद 'वैश्य' अर्थ में निपातित है। (**इडः**) प्रशंसनीयस्य । 'इड' पद निघं० ५ । २ में पद-नामों में पठित है। यहाँ 'ईड स्तुतौ' धातु से बहुल करके औणादिक क्विप् प्रत्यय है और धातु के आदि अक्षर को ह्रस्व है ॥

अन्वयः—हे वृषन्नग्ने अर्यस्त्वं संसमायुवसे इडस्पदे समिध्यसे स त्वमिदग्निना नो विश्वानि वसून्याभर ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे वृषन् ! बलवन् ! **अग्ने** ! प्रकाशमान ! **अर्यः** वैश्यः **त्वं संसम्**+**आ**+ **भाषार्थ**—हे (वृषन्) बलवान् (अग्ने) प्रकाशमान (अर्यः) वैश्य ! तू—(संसम्+आ+

युवसे सम्यग् मिश्रय, इडः प्रशंसनीयस्य **पदे** प्रापणीये **समिध्यसे** सम्यक् प्रदीप्यसे, **सः त्वमित्** एव **अग्निना नः** अस्मभ्यं **विश्वानि** अखिलानि **वसून्याभर** धर ॥ १५ । ३० ॥

युवसे) अत्युत्तमता से मेल करता है, (इडः) प्रशंसा के योग्य पुरुष के (पदे) पद पर (समिध्यसे) सम्यक् प्रकाशित होता है, (स) सो तू (इत्) ही अग्नि से (नः) हमारे लिए (विश्वानि) सब (वसूनि) धनों को (आभर) धारण कर ॥ १५ । ३० ॥

[अयंस्त्वं ··· अग्निना नो विश्वानि वसून्याभर]

भावार्थः—राजभिः संरक्षिता वैश्या अग्न्यादिविद्याभ्यः स्वेभ्यो राजपुरुषेभ्यश्चाखिलानि धनानि संभरेयुः ॥ १५ । ३० ॥

भावार्थ—राजाओं से संरक्षित वैश्य अग्नि आदि विद्याओं से अपने और राजपुरुषों के लिए सब धनों को धारण करें ॥ १५ । ३० ॥

भा० पदार्थः—अग्निना=अग्न्यादिविद्यया । वसूनि=धनानि ।

भाष्यसार—अग्नि-विद्या का उपयोग—प्रजा के लिए हितकारी, बलवान् अग्नि का सदुपयोग जानने से निम्न लाभ होते हैं--(१) यज्ञादि के द्वारा संगति कराता है । (२) मनुष्य इसके उपयोग से उत्तरोत्तर प्रशंसा के योग्य बन जाता है । (३) सभी प्रकार के ऐश्वर्य अग्नि-विद्या से प्राप्त होते हैं ।

वैश्य भी अग्निविद्या के द्वारा सब ऐश्वर्य को प्राप्त करके संगति के कार्यों में और विद्यादि के प्रकाश के कार्यों में प्रयोग किया करें, तभी उन्हें पद पद पर प्रशंसा प्राप्त हो सकती है ॥ १५ । ३० ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=भौतिकोऽग्निः** ॥ विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैरग्निना किं साध्यमित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य लोग अग्नि से क्या सिद्ध करें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः । शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(त्वाम्) (**चित्रश्रवस्तम**) चित्राण्यद्भुतानि श्रवांस्यतिशयितान्यन्नानि वा यस्य (**हवन्ते**) स्वीकुर्वन्तु (**विक्षु**) प्रजासु (**जन्तवः**) जनाः (**शोचिष्केशम्**) शोचिषः केशाः=सूर्य्यस्य रश्मय इव तेजांसि यस्य तम् (**पुरुप्रिय**) बहून् प्रीणाति बहूनां प्रियो वा तत्संबुद्धौ (**अग्ने**) विद्वन् (**हव्याय**) स्वीकर्त्तव्यमन्नादिपदार्थम् । **अत्र सुब्व्यत्ययेन द्वितीयैकवचनस्य चतुर्थ्येकवचनम्** (**वोढवे**) वोढुम् । **अत्र तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ॥ ३१ ॥**

प्रमाणार्थ—(**हव्याय**) यहाँ सुप्-व्यत्यय से द्वितीया–एकवचन के स्थान में चतुर्थी–एकवचन है । (**वोढवे**) वोढुम् । यहाँ तुमर्थ में 'तवेन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे पुरुप्रिय चित्रश्रवस्तमाग्ने ! विक्षु हव्याय वोढवे यं शोचिष्केशं त्वां जन्तवो हवन्ते तं वयमपि हवामहे ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **पुरुप्रिय** बहून् प्रीणाति बहूनां प्रियो वा तत्सम्बुद्धौ **चित्रश्रवस्तम** चित्राण्यद्भुतानि श्रवांस्यतिशयितान्यन्नानि वा यस्य तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** ! विद्वन् ! **विक्षु** प्रजासु **हव्याय**

भाषार्थ—हे (पुरुप्रिय) बहुतों को तृप्त करने वाले वा बहुत जनों के प्रिय, (चित्रश्रवस्तम) चित्र=अद्भुत श्रवण वाले वा अद्भुत अन्नों वाले (अग्ने) विद्वान् ! (विक्षु) प्रजा में---(हव्याय)

स्वीकर्त्तव्यमन्नादिपदार्थं **वोढवे** वोढुं **यं शोचिष्केशं** शोचिषः केशाः=सूर्य्यस्य रश्मय इव तेजांसि यस्य तं त्वां **जन्तवः** जनाः **हवन्ते** स्वीकुर्वन्तु, **तं वयमपि हवामहे** ॥ १५ । ३१ ॥

स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों को (वोढवे) प्राप्त करने के लिए जिस (शोचिष्केशम्) सूर्य की रश्मि=किरणों के समान तेज वाले आपको (जन्तवः) लोग (हवन्ते) स्वीकार करते हैं, सो आपको हम भी स्वीकार करें ॥ १५ । ३१ ॥

[वोढवे यं ··· त्वां जन्तवो हवन्ते, तं वयमपि हवामहे]

भावार्थः—मनुष्या—यमग्निं जीवाः सेवन्ते तेन भारवहनादीनि कार्याण्यपि साध्नुवन्तु ॥ १५ ॥

भावार्थ—जिस अग्नि का प्राणी सेवन करते हैं उससे भार-वहन आदि कार्यों को भी मनुष्य सिद्ध करें ॥ १५ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—वोढवे=भारवहनादिकार्यसिद्धये । जन्तवः=जीवाः ॥

भाष्यसार—**भार-वहनादि के लिए अग्नि का प्रयोग**—जो अग्निविद्या को जानकर, विविध आविष्कार बनाकर प्रजा का हित सम्पादन करते हैं, वे विद्वान् शिल्पी सदा सबको प्रिय हो जाते हैं। प्रजाजन जैसे सूर्य की किरणों का स्वागत करते हैं, वैसे ही अन्नादि हवनीय पदार्थों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्राप्त कराने के विविध अग्नि यानादि साधनों को हृदय से स्वीकार करते हैं ॥ १५ । ३१ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=अग्निविद्या** । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

एना वो॑ऽ अ॒ग्निं नम॑सो॒र्जो नपा॑त॒मा हु॑वे । प्रि॒यं चेति॑ष्ठमर॒तिꣳ स्व॑ध्व॒रं विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् ॥३२॥

पदार्थः—(**एना**) एनेन पूर्वोक्तेन । अत्राकारादेशः (**वः**) युष्मभ्यम् (**अग्निम्**) (**नमसा**) ग्राह्येणान्नेन (**ऊर्जः**) पराक्रमान् (**नपातम्**) अपतनशीलम् (**आ**) (**हुवे**) आह्वये (**प्रियम्**) प्रीत्युत्पादकम् (**चेतिष्ठम्**) अतिशयेन चेतयितारं=संज्ञापकम् (**अरतिम्**) नास्ति रतिश्चैतन्यमस्मिंस्तम् (**स्वध्वरम्**) सुष्ठ्वध्वरा=अहिंसनीया व्यवहारा यस्मात्तम् (**विश्वस्य**) समग्रस्य जगतः (**दूतम्**) सर्वत्राभिगन्तारं विद्युतम् (**अमृतम्**) कारणरूपेण नित्यम् ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(**एना**) एनेन । यहां सुप् के स्थान में आकार-आदेश है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं वो युष्मभ्यमेना नमसा नपातं प्रियं चेतिष्ठं स्वध्वरमरतिममृतं विश्वस्य दूतमग्निमूर्जश्चाहुवे तथा यूयं मह्यं जुहुत ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथाऽहं वः=युष्मभ्यमेना** एनेन पूर्वोक्तेन **नमसा** ग्राह्येणान्नेन **नपातम्** अपतनशीलं **प्रियं** प्रीत्युत्पादकं **चेतिष्ठम्** अतिशयेन चेतयितारं=संज्ञापकं **स्वध्वरं** सुष्ठ्वध्वरा=अहिंसनीया व्यवहारा यस्मात्तम् **अरतिं** नास्ति रतिश्चैतन्यमस्मिंस्तम् **अमृतं** कारण-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—मैं (वः) तुम्हारे लिए (एना) इस पूर्वोक्त (नमसा) ग्राह्य अन्न से—(नपातम्) पतन-रहित, (प्रियम्) प्रीति के उत्पादक, (चेतिष्ठम्) अत्यन्त चेतना देने वाले, (स्वध्वरम्) उत्तम हिंसा-रहित व्यवहारों के हेतु, (अरतिम्) रति=चेतन-धर्म से रहित, (अमृतम्)

रूपेण नित्यं **विश्वस्य** समग्रस्य जगतः **दूतं** सर्वत्राभिगन्तारं विद्युतम् **अग्निमूर्जः** पराक्रमान् **चाहुवे** आह्वये, **तथा यूयं मह्यं जुहुत** ॥ १५ । ३२ ॥

कारण रूप से नित्य, (विश्वस्य) समग्र जगत् के (दूतम्) दूत अर्थात् सर्वत्र गति करने वाले अग्नि=विद्युत् को और (ऊर्जः) पराक्रमों को (आहुवे) स्वीकार करता हूँ; वैसे—तुम मेरे लिए स्वीकार करो ॥ १५ । ३२ ॥

[हे मनुष्याः ! यथाऽहं वः=युष्मभ्यम् ··· अग्निमूर्जश्चाहुवे तथा यूयं मह्यं जुहुत]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! वयं युष्मदर्थं या अग्न्यादिविद्याः प्रकटयेम, ता यूयं स्वीकुरुत ॥१५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! हम—तुम्हारे लिए जिन अग्नि आदि विद्याओं को प्रकट करें उन्हें तुम स्वीकार करो ॥ १५ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—वः=युष्मदर्थम् । अग्निम्=अग्निविद्याम् । आहुवे=प्रकटये ।

भाष्यसार—**विद्युदग्नि का स्वरूप-वर्णन**—अग्नि-विद्या के जानने के अभिलाषियों को प्रथम इस अग्नि के गुणों को जानना चाहिए। यह अग्नि समस्त जगत् में गति करने के कारण दूत कहलाता है, यह कारणरूप से नित्य है, चेतनों के धर्म से रहित है, किन्तु सबको चेतना देने वाला है । समस्त अन्नादि के कारण वृष्टि आदि को करने से यह विद्युदग्नि सबको अतिशय रूप से प्रिय है । यह पतन-रहित है अतः इसे नपात कहते हैं । इसका प्रयोग हिंसा से रहित प्राणियों के हित के कार्यों में ही करना चाहिए । इसके सदुपयोग से सभी मनुष्यों को ऊर्क् (शक्ति) तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥ १५ । ३२ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=**भौतिकोऽग्निः** । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

पुनः सः कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर वह अग्नि कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

विश्वस्य दूतम॒मृतं॒ विश्व॑स्य दू॒तम॒मृत॑म् । स योजते ऽअरु॒षा वि॒श्वभो॑जसा॒ स दु॑द्रव॒त् स्वाहु॑तः ॥३३॥

पदार्थः—(**विश्वस्य**) समग्रस्य भूगोलसमूहस्य (**दूतम्**) परितापकं विद्युदाख्यमग्निम् (**अमृतम्**) कारणरूपेणाविनाशिस्वरूपम् (**विश्वस्य**) अखिलपदार्थजातस्य (**दूतम्**) परितापेन दाहकम् (**अमृतम्**) उदकेऽपि व्यापकं कारणम् अमृतमित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**सः**) (**योजते**) युनक्ति । अत्र व्यत्ययेन शप् (**अरुषा**) रूपवता पदार्थसमूहेन (**विश्वभोजसा**) विश्वस्य पालकेन (**सः**) (**दुद्रवत्**) शरीरादौ द्रवति-गच्छति । अत्र वर्तमाने लङ् । माङ्योगमन्तरेणाप्यडभावः (**स्वाहुतः**) सुष्ठु समन्ताद्धुत=आदत्तः सन् ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**अमृतम्**) 'अमृत' पद निघं० १ । १२ में उदक=जल के नामों में पठित है । (**योजते**) युनक्ति । यहाँ व्यत्यय से शप् विकरण है । (**दुद्रवत्**) यहाँ वर्तमान-काल में लङ् लकार है तथा माङ्-योग के बिना भी अड्-आगम का अभाव है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतमग्निमाहुवे तथा विश्वभोजसाऽरुषा सर्वैः पदार्थैः सह वर्त्तते स योजते । यः स्वाहुतः सन् दुद्रवत्स युष्माभिर्वेद्यः ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथाऽहं विश्वस्य** समग्रस्य भूगोलसमूहस्य **दूतं** परि-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—मैं (विश्वस्य) समग्र भूगोलसमूह के (दूतम्) परितापक=तपाने

तापकं विद्युदाख्यमग्निम् **अमृतं** कारणरूपेणाविनाशिस्वरूपं **विश्वस्य** अखिलपदार्थजातस्य **दूतं** परितापेन दाहकम् **अमृतम्** उदकेऽपि व्यापकं कारणम् **अग्निमाहुवे** आह्वये, **तथा विश्वभोजसा** विश्वस्य पालकेन **अरुषा=सर्वैः पदार्थैः** रूपवता पदार्थसमूहेन **सह वर्त्तते, स योजते** युनक्ति । **यः स्वाहुतः** सुष्ठु समन्ताद् धुत=आदत्तः **सन् दुद्रवत्** शरीरादौ द्रवति=गच्छति, **स युष्माभिर्वेद्यः** ॥ १५ । ३३ ॥

वाले, (अमृतम्) कारण रूप से अविनाशी स्वरूप वाले, (विश्वस्य) सब पदार्थों को (दूतम्) ताप से दहन करने वाले, (अमृतम्) उदक=जल में भी व्यापक कारण रूप अग्नि को (आहुवे) स्वीकार करता हूँ; वैसे (विश्वभोजसा) विश्व के पालक (अरुषाः) रूपवान् सब पदार्थों के साथ वर्तमान है, (सः) वह (योजते) जोड़ता है । जो (स्वाहुतः) उत्तम रीति से सब ओर से स्वीकार किया हुआ (दुद्रवत्) शरीर आदि में गति करता है; उसे तुम जानो ॥ १५ । ३३ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र पूर्वमन्त्रादाहुव इति पदमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—यहां पूर्व मन्त्र से 'आहुवे' इस पद की अनुवृत्ति है ।

[द्विरुक्तितात्पर्यमाह—]

विश्वस्य दूतममृतमिति द्विरावृत्य द्विविधस्य स्थूलसूक्ष्मस्याग्नेर्ग्रहणम् ।

'विश्वस्य दूतममृतम्' इसकी दो बार आवृत्ति होने से दो प्रकार की स्थूल और सूक्ष्म अग्नि का ग्रहण है ।

[अमृतम्=अग्निमाहुवे]

स सर्वः कारणरूपेण नित्य इति वेद्यम् ॥ १५ ॥

वह सब अग्नि कारण रूप से नित्य है, ऐसा समझें ॥ १५ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—अमृतम्=कारणरूपेण नित्यम् ॥

भाष्यसार—भौतिकाग्नि का वर्णन—यह भौतिकाग्नि कारणरूप में सब पदार्थों में विद्यमान होने से दूत कहलाता है । और कार्य रूप स्थूल अग्नि सबको तपाने के कारण दूत कहलाता है । सूक्ष्म और स्थूल दोनों अग्नियाँ अविनाशी स्वरूप वाले हैं । यह समस्त प्राणी जगत् का पालन करता है । जो विद्वान् पुरुष इस अग्नि के विशेष व्यवहारों को जानता है, वह इसके आश्रय से विभिन्न आविष्कारों को प्रकट करे । और प्रजाजन भी उसको स्वीकार करें और उत्तम-कार्यों में उनका उपयोग किया करें । अग्नि के सदुपयोग से शरीरों में स्फूर्ति और मूर्त पदार्थों में भी गति प्राप्त हो जाती है ॥ १५ । ३३ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

फिर वह कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः । सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥३४॥

पदार्थः—(**सः**) अग्निः (**दुद्रवत्**) द्रवति (**स्वाहुतः**) सुष्ठु कृताह्वानः सखा (**सः**) (**दुद्रवत्**) गच्छति (**स्वाहुतः**) सुष्ठु निमन्त्रितो विद्वान् (**सुब्रह्मा**) सुष्ठुतया चतुर्वेदवित् (**यज्ञः**) संगन्तुं योग्यः

(**सुशमी**) सुष्ठुशमयितुमर्हः (**वसूनाम्**) पृथिव्यादीनाम् (**देवम्**) कमनीयम् (**राधः**) सुखसाधनं धनम् (**जनानाम्**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! स स्वाहुतः सखिवद् दुद्रवत् स स्वाहुतो विद्वानिव दुद्रवत् सुब्रह्मा यज्ञः सुशमीव यो वसूनां जनानां च देवं राधोऽस्ति तं यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! सः** अग्निः **स्वाहुतः=सखिवत्** सुष्ठु कृताह्वानः सखा **दुद्रवत्** द्रवति । **सः** अग्निः **स्वाहुतः=विद्वानिव** सुष्ठु निमन्त्रितो विद्वान् **दुद्रवत्** गच्छति । **सुब्रह्मा** सुष्ठुतया चतुर्वेदविद् **यज्ञः** संगन्तुं योग्यः **सुशमी** सुष्ठु शमयितुमर्हः **इव यो वसूनां** पृथिव्यादीनां **जनानां च देवं** कमनीयं **राधः** सुखसाधनं धनम् **अस्ति, तं यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥ १५ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार से आहूत सखा के समान (दुद्रवत्) गति करता है । (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमन्त्रित विद्वान् के समान (दुद्रवत्) गति करता है । (सुब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेदों के ज्ञाता, (यज्ञः) संग करने योग्य, (सुशमी) अच्छे प्रकार शान्ति करने वाले पुरुष के समान जो (वसूनाम्) पृथिवी आदि वस्तुओं और (जनानाम्) श्रेष्ठ जनों के (देवम्) कामना के योग्य (राधः) सुख-साधक धन है, उसे तुम अच्छे प्रकार प्रयुक्त करो ॥ १५ । ३४ ॥

[सः ··· दुद्रवत् ··· सुशमी, यो वसूनां ··· देवं ··· यूयं संप्रयुङ्ग्ध्वम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यो वेगवानन्येभ्यो वेगप्रदः शान्तिकरः पृथिव्यादीनां प्रकाशकोऽग्निर्वर्त्तते, स कथं न विज्ञेयः? ॥१५।३४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जो वेगवान्, अन्यों को वेग प्रदान करने वाला, शान्तिकारक, पृथिवी आदि का प्रकाशक अग्नि है उसे क्यों न जानें ? ॥ १५ । ३४ ॥

भा० पदार्थः—दुद्रवत्=वेगवानन्येभ्यो वेगप्रदो वर्त्तते । सुशमी=शान्तिकरः । देवम्=प्रकाशकम् ।

भाष्यसार—**१. भौतिकाग्नि का वर्णन**—यह भौतिकाग्नि विद्वान् शिल्पी के बताये व्यवहार के अनुसार इस प्रकार गति प्रदान करता है जैसे अच्छी प्रकार बुलाया हुआ मित्र गति देता है । चारों वेदों के ज्ञाता इसका उपयोग संगति के साधक यज्ञ में करते हैं। यह भोजनादि को पकाकर क्षुधादि को शान्त करने वाला है । जिस पार्थिव धन की सब मनुष्य कामना करते हैं, उस धन को अग्नि प्राप्त कराता है । ऐसे अग्नि को सब मनुष्यों को अवश्य जानना चाहिए ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है । यह अग्नि अच्छी प्रकार से व्यवहार में लाने से मित्र की तरह गति देने से सहायक तथा धनादि को देने वाला है ॥ १५ । ३४ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः ॥ उष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

वह अग्नि कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

अग्ने॒ वाज॑स्य॒ गोम॑त॒ ऽ ईशा॑नः सहसो यहो । अ॒स्मे धे॑हि जातवेदो॒ महि॒ श्रवः॑ ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् ! (**वाजस्य**) अन्नस्य (**गोमतः**) प्रशस्तधेनुपृथिवीयुक्तस्य (**ईशानः**) साधकः समर्थः (**सहसः**) बलवतः (**यहो**) सुसन्तान (**अस्मे**) अस्मभ्यम् (**धेहि**) (**जातवेदः**) जातं विज्ञानं यस्य सः (**महि**) महत् (**श्रवः**) धनम् ।। ३५ ।।

अन्वयः—हे सहसो यहो जातवेदोऽग्ने ! त्वमग्निरिव वाजस्य गोमत ईशानः सन्नस्मे महि श्रवो धेहि ।। ३५ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **सहसः** बलवतः **यहो** सुसन्तान **जातवेदः** जातं विज्ञानं यस्य सः **अग्ने** ! विद्वन् ! **त्वमग्निरिव वाजस्य** अन्नस्य **गोमतः** प्रशस्तधेनुपृथिवीयुक्तस्य **ईशानः** साधकः समर्थः **सन्नस्मे** अस्मभ्यं **महि** महत् **श्रवः** धनं **धेहि** ।। १५ । ३५ ।।

भाषार्थ—हे (सहसः) बलवान् की (यहो) उत्तम सन्तान, (जातवेदः) विज्ञान से युक्त, (अग्ने) विद्वान् ! तू अग्नि के समान (वाजस्य) अन्न और (गोमतः) उत्तम धेनु=गौ एवं पृथिवी से युक्त पुरुष का (ईशानः) साधक एवं समर्थक होकर (अस्मे) हमारे लिए (महि) महान् (श्रवः) धन को (धेहि) धारण कर ।। १५ । ३५ ।।

[हे अग्ने ! त्वमग्निरिव···महि श्रवो धेहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । साधुरीत्योपयुक्तोऽग्निः पुष्कलं धनं प्रयच्छतीति वेद्यम् ।। १५ । ३५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ।। उत्तम रीति से उपयुक्त अग्नि पुष्कल=पर्याप्त धन प्रदान करता है; ऐसा समझें ।। १५ । ३५ ।।

भा० पदार्थः—महि=पुष्कलम् ।

भाष्यसार—**१. भौतिकाग्नि का वर्णन**—यह अग्नि बलवान् वायु के पुत्र के समान है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति वायु के बाद होती है । यह अग्नि अन्नादि पदार्थों का साधक और गायादि पशुओं के स्वामियों का सहायक होता है । धनादि ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के कारण अग्नि का नाम जातवेदा है। अतः महान् अग्निविद्या के जानने वाले शिल्पी अग्नि के सहाय से नवीन साधनों का आविष्कार करें और महान् धनों को प्राप्त करके सबको सुखी रक्खें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। अग्नि के समान विद्वान् शिल्पी अग्निविद्या से सब प्राणियों का उपकार किया करें ।। १५ । ३५ ।।

परमेष्ठी । **अग्निः**=**भौतिकोऽग्निः** ।। निचृदुष्णिक् । ऋषभः ।।

पुनः स कीदृश इत्याह ।।

वह अग्नि कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ।।

स ऽ इ॑धा॒नो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒डेन्यो॑ गि॒रा । रे॒वद॒स्मभ्यं॑ पुर्वणीक दीदिहि ।। ३६ ।।

पदार्थः—(**सः**) पूर्वोक्तः (**इधानः**) प्रदीप्तः (**वसुः**) वासयिता (**कविः**) समर्थः (**अग्निः**) पावकः (**ईडेन्यः**) अन्वेषणीयः (**गिरा**) वाण्या (**रेवत्**) प्रशस्तधनयुक्तम् (**अस्मभ्यम्**) (**पुर्वणीक**) पुरु=बहु अनीकं=सैन्यं यस्य तत्संबुद्धौ (**दीदिहि**) प्रकाशय ।। ३६ ।।

अन्वयः—हे पुर्वणीक विद्वन् ! स गिरेडेन्यो वसुः कविरिधानः सोऽग्निरिवाऽस्मभ्यं रेवद्दीदिहि प्रकाशय ।। ३६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे पुर्वणीकः=विद्वन् पुरु=बहु अनीकं=सैन्यं यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **सः** पूर्वोक्तः **गिरा** वाण्या **ईडेन्यः** अन्वेषणीयः **वसुः** वासयिता **कविः** समर्थः **इधानः** प्रदीप्तः **सः** पूर्वोक्तः **अग्निः** पावकः **इवास्मभ्यं रेवत्** प्रशस्तधनयुक्तं **दीदिहि**=प्रकाशय ॥ १५ । ३६ ॥

भाषार्थ—हे (पुर्वणीक) बहुत सेना वाले विद्वान् ! (सः) पूर्वोक्त तू (गिरा) वाणी से (ईडेन्यः) अन्वेषण के योग्य, (वसुः) वास का हेतु, (कविः) समर्थ, (इधानः) प्रदीप्त (सः) वह पूर्वोक्त (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (रेवत्) प्रशस्त धन वाला (दीदिहि) प्रकाश प्रदान कर ॥ १५ । ३६ ॥

[हे पुर्वणीक=विद्वन् ! स गिरा···अग्निरिवास्मभ्यं रेवद् दीदिहि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। विदुषाऽग्निगुणकर्मस्वभावप्रकाशनेन मनुष्येभ्य ऐश्वर्यमुन्नेयम् ॥ १५ । ३६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ विद्वान्—अग्नि के गुण, कर्म और स्वभाव के प्रकाशन से मनुष्यों के लिए ऐश्वर्य को उन्नत करे ॥ १५ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—रेवत्=ऐश्वर्यम् ।

भाष्यसार—१. **भौतिकाग्नि का वर्णन**—जो अग्नि सब प्राणियों के निवास का कारण है, और प्रशस्त धनों का देने वाला है, उसका अग्नि विद्या के विद्वानों को अन्वेषण करना चाहिए तथा उसे अधिक प्रदीप्त करना चाहिए। अग्नि से चलने वाले यन्त्रों का आविष्कार करके दूसरों को भी उपदेश द्वारा सिखाना चाहिए; जिससे विद्वानों की तरह दूसरे मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न होकर उन्नति करने में समर्थ हो सकें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। अग्नि के समान विद्वान् मनुष्यों का ऐश्वर्य-बल बढ़ाया करें ॥ १५ । ३६ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

वह भौतिक अग्नि कैसा हो, यह फिर उपदेश किया है ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(क्षपः) रात्रीः (**राजन्**) राजमान (उत) (**त्मना**) आत्मना । अत्र छान्दसो वर्णलोप इत्याकारलोपः (**अग्ने**) विद्वन् ! (**वस्तोः**) दिनम् (उत) (**उषसः**) प्रातः सायं समयान् (**सः**) उक्तः (**तिग्मजम्भ**) तिग्मं=तीव्रं जम्भो=गात्रविनामनं यस्मात्तत्संबुद्धौ (**रक्षसः**) दुष्टान् (**दह**) भस्मीकुरु (**प्रति**) प्रत्यक्षे ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**त्मना**) आत्मना । यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपः' (८ । २ । २५) इस वार्त्तिक से आकार का लोप है।

अन्वयः—हे तिग्मजम्भ राजन्नग्ने ! स त्वं यथा तीक्ष्णतेजा अग्निः क्षप उत वस्तोरुतोषसो जनयति तथा सुशिक्षां जनय रक्षसस्तम इव तीव्रत्मना प्रति दह ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **तिग्मजम्भ** तिग्मं=तीव्रं जम्भो=गात्रविनामनं यस्मात्तद्-

भाषार्थ—हे (तिग्मजम्भ) तीव्रता से गात्र को संचालन करने वाले (राजन्) राजा (अग्ने)

संबुद्धौ **राजन्** राजमान **अग्ने** ! विद्वन् ! **सः** उक्तः **त्वं** **यथा तीक्ष्णतेजा अग्निः क्षपः** रात्रीः **उत वस्तोः** दिनम् **उतोषसः** प्रातः सायं समयान् **जनयति, तथा सुशिक्षां जनय । रक्षसः** दुष्टान् **तम इव [त्मना] तीव्रत्मना** आत्मना **प्रति+दह** प्रत्यक्षतया भस्मी-कुरु ॥ १५ । ३७ ॥

विद्वान् ! (सः) उक्त गुणों वाला तू जैसे तीक्ष्ण तेज वाला (अग्निः) अग्नि (क्षपः) रात्रि, (उत) और (वस्तोः) दिन, (उत) और (उषसः) प्रातः सायं रूप कालों को उत्पन्न करता है, वैसा सुशिक्षा को उत्पन्न कर । (रक्षसः) दुष्टों को अन्धकार के समान [त्मना] तीव्र आत्मा से (प्रति+दह) प्रत्यक्ष भस्म कर ॥ १५ । ३७ ॥

[हे···राजन् !···त्वं यथा—अग्निः क्षपः, उत **वस्तोरुतोषसो जनयति तथा सुशिक्षां जनय**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्यथा प्रभातस्य, दिनस्य, रात्रेश्च निमित्तमग्नि-र्विज्ञायते तथा राजा न्यायप्रकाशस्यान्यायनिवृत्तेश्च हेतुरस्तीति वेद्यम् ॥ १५ । ३७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य जैसे प्रभात, दिन और रात्रि का निमित्त अग्नि समझा जाता है वैसे राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है; ऐसा समझें ॥ १५ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—उषसः=प्रभातस्य ।

भाष्यसार—१. **भौतिकाग्नि का वर्णन**—जैसे यह भौतिकाग्नि प्रभात, दिन और रात्रि को उत्पन्न करता है, और अन्धकार रूपी राक्षस का तीक्ष्ण तेज वाला होकर विनाश करता है, वैसे ही अग्नि के तुल्य तीक्ष्ण-तेज वाले राजा का कर्त्तव्य है कि वह विद्या के प्रकाश को बढ़ाकर अविद्या के अन्धकार को सदा नष्ट किया करे । न्याय के प्रकाश से अन्याय करने वाले राक्षसों को अग्नि की तरह समूल भस्म कर दे, जिससे प्रजा में सत्पुरुष शान्ति से निवास कर सकें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । अग्नि के समान विद्वान् राजा अन्याय करने वालों को नष्ट किया करें ॥ १५ । ३७ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

वह अग्नि कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः । भद्राऽउत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(भद्रः) भजनीयः (नः) अस्मभ्यम् (**अग्निः**) पावकः (**आहुतः**) संगृहीतो धर्म इव (**भद्रा**) सेवनीया (**रातिः**) दानम् (**सुभग**) शोभनैश्वर्य्य (**भद्रः**) कल्याणकरः (**अध्वरः**) अहिंसनीयो व्यवहारः (**भद्राः**) कल्याणप्रतिपादिकाः (**उत**) (**प्रशस्तयः**) प्रशंसाः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—हे सुभग विद्वन् ! यथाऽऽहुतः सखाग्निर्भद्रो रातिर्भद्राऽध्वरो भद्र उत प्रशस्तयो भद्राः स्युस्तथा त्वं नो भव ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सुभग=विद्वन् ! शोभनैश्वर्य्य ! **यथाऽऽहुतः**=सखा संगृहीतो धर्म इव **अग्निः** पावकः **भद्रः** भजनीयः, **रातिः** दानं **भद्रा**

भाषार्थ—हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य वाले विद्वान् ! जैसे (आहुतः) संग्रह किए हुए धर्म के समान मित्र रूप (अग्निः) अग्नि (भद्रः) सेवन

सेवनीया, **अध्वरः** अहिंसनीयो व्यवहारः **भद्रः** कल्याणकरः, **उत प्रशस्तयः** प्रशंसाः **भद्राः** कल्याण-प्रतिपादिकाः **स्युस्तथा त्वं नः** अस्मभ्यं **भव** ॥ १५ ॥

करने योग्य हो, (रातिः) दान (भद्रा) सेवन करने योग्य हो, (अध्वरः) अहिंसा के योग्य व्यवहार (भद्रः) कल्याणकारी हो, (उत) और (प्रशस्तयः) प्रशंसाएँ (भद्राः) कल्याण-साधक हों; वैसा तू (नः) हमारे लिए हो ॥ १५ । ३८ ॥

[हे सुभग=विद्वन् ! यथा ···अग्निर्भद्रः···स्युस्तथा त्वं नो भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैर्यथा विद्यया सुसेविता जगत्स्थाः पदार्थाः सुखकारिणो भवन्ति, तथाऽऽप्ता विद्वांसः सन्तीति वेद्यम् ॥ १५ । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य—जैसे विद्या से सेवन किए हुए जगत् के पदार्थ सुखकारी होते हैं, वैसे आप्त विद्वान् हैं; ऐसा समझें ॥ १५ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—भद्रः=सुखकारी । सुभग=आप्तविद्वन् ॥

भाष्यसार—**१. भौतिकाग्नि का वर्णन**—अग्नि विद्या के विद्वान् नये-नये साधनों से वैसे ही प्रजा के हितकारी बनें, जैसे संग्रह किये हुए धर्म के समान सुसेवित अग्नि मित्र के समान कल्याण-कारी होता है । जैसे सत्पात्र में दिया गया दान कल्याणकारी होता है, जैसे हिंसा-रहित सद्व्यवहार कल्याणकारी होते हैं, और उत्तम प्रशंसाएँ सेवन करने योग्य होती हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । सुसेवित अग्नि आदि के समान विद्वान् पुरुष मनुष्यों के हित-साधन में तत्पर रहें ॥ १५ । ३८ ॥ ●

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स विद्वान् कीदृश इत्याह ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

भद्राऽ उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये । येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**भद्राः**) भन्दनीयाः (**उत**) अपि (**प्रशस्तयः**) प्रशंसनीयाः प्रजाः (**भद्रम्**) भन्दनीयं कल्याणकरम् (**मनः**) मननात्मकम् (**कृणुष्व**) कुरु (**वृत्रतूर्य्ये**) संग्रामे (**येन**) अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**समत्सु**) संग्रामेषु (**सासहः**) अतिशयेन सोढा ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**येन**) यहाँ "अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे सुभग ! त्वं येन नोऽस्माकं वृत्रतूर्य्ये भद्रं मन उतापि भद्राः प्रशस्तयो येन च समत्सु सासहः स्यात्तत्कृणुष्व ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सुभग=विद्वन् !** शोभनैश्वर्य ! **त्वं येन नः**=**अस्माकं वृत्रतूर्य्ये** संग्रामे **भद्रं** भन्दनीयं=कल्याणकरं **मनः** मननाऽऽत्मकम् **उत**=**अपि भद्राः** भन्दनीयाः **प्रशस्तयः** प्रशंसनीयाः **प्रजाः येन च समत्सु** सङ्ग्रामेषु **सासहः** अतिशयेन सोढा **स्यात्, तत् कृणुष्व** कुरु ॥ १५ । ३९ ॥

भाषार्थ—हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य वाले विद्वान् ! तू—(येन) जिससे (नः) हमारे (वृत्र-तूर्य्ये) संग्राम में (भद्रम्) कल्याणकारी (मनः) मननात्मक मन हो, (उत) और (भद्राः) कल्याण-कारी (प्रशस्तयः) प्रशंसनीय प्रजा हो, और जिससे-(समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त

सहनशील वीर पुरुष हों, वैसा (कृणुष्व) यत्न कर ॥ १५ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र 'सुभग' 'नः' इति पदद्वयं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में 'सुभग' और 'नः' इन दो पदों की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ॥

[हे सुभग !···त्वं येन नोऽस्माकं भद्रं ···स्यात्, तत् कृणुष्व]

विदुषा राजा तत्कर्मानुष्ठेयं येन प्रजाः सेनाश्चोत्तमाः स्युः ॥ १५ । ३९ ॥

विद्वान् राजा वह कर्म करे जिससे प्रजा और सेनाएँ उत्तम हों ॥ १५ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—सुभग=विद्वन् राजन् ॥

भाष्यसार—**विद्वान् राजा के कर्त्तव्य**—ऐश्वर्य-सम्पन्न विद्वान् राजा का मुख्य कर्त्तव्य है कि शत्रुओं का विनाश करके प्रजा का पालन करना । अतः संग्राम के समय राजा को ऐसा वातावरण पैदा करना चाहिए, जिससे शूरवीर योद्धाओं का और प्रजा का मनोबल ऊँचा बना रहे । किसी प्रकार की निराशा न फैलने पाये । प्रजाएँ राजा के हित में कल्याण की भावना रखने वाली हों और सहनशील होकर संग्राम के समय सहयोग देने वाली हों ॥ १५ । ३९ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनः स कीदृश इत्याह ॥

वह विद्वान् कैसा हो, यह फिर उपदेश किया है ॥

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा ते ऽअभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**येन**) **अत्र संहितायामिति दीर्घः** (**समत्सु**) संग्रामेषु (**सासहः**) भृशं सोढा (**अव**) (**स्थिरा**) स्थिराणि सैन्यानि (**तनुहि**) विस्तृणु (**भूरि**) बहु (**शर्द्धताम्**) बलं कुर्वताम् । **बलवाचिशर्ध-शब्दात्करोत्यर्थे क्विप् ततः शतृ** (**वनेम**) संभजेम । **अत्र संहितायामिति दीर्घः** (**ते**) तव (**अभिष्टिभिः**) इष्टाभिरिच्छाभिः ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—(**येन**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) इसके अधिकार में 'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ है । (**शर्द्धताम्**) यहां बल-वाची 'शर्ध' शब्द से 'करोति' अर्थ में क्विप् प्रत्यय होकर शतृ प्रत्यय हुआ है । (**वनेम**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) के अधिकार में 'अन्येषामपि दृश्यते' से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे सुभग ! येन त्वं समत्सु सासहः स्यातस त्वं भूरि शर्धतामस्माकं स्थिरावतनुहि तेऽभिष्टिभिः सह वर्त्तमाना वयं तानि वनेम ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सुभग**=**विद्वन्** शोभनैश्वर्य्य ! **येन त्वं समत्सु** संग्रामेषु **सासहः** भृशं सोढा **स्यात्**, **सः त्वं भूरि** बहु **शर्धतां** बलं कुर्वताम्, [**नः**] **अस्माकं स्थिरा** स्थिराणि सैन्यानि **अव+तनुहि** विस्तृणु **ते** तव **अभिष्टिभिः** इष्टाभिरिच्छाभिः

भाषार्थ—हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य वाले विद्वान् ! जिससे तू—(समत्सु) संग्रामों में (सासहः) अत्यन्त सहनशील है, सो तू (भूरि) बहुत (शर्धताम्) बल-सेना को बढ़ाने वाले [नः] हम लोगों की (स्थिरा) स्थिर सेनाओं को (अव+तनुहि)

सह वर्त्तमाना वयं तानि **वनेम** संभजेम ।।१५ । ४०।।

विस्तृत कर। और (ते) तेरी (अभिष्टिभिः) इच्छाओं के साथ वर्तमान होकर हम उन सैन्यों का (वनेम) सेवन करें ।। १५ । ४० ।।

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्रापि 'सुभग' 'नः' इति पदद्वयं पूर्वतोऽनुवर्त्तते ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में भी 'सुभग' और 'नः' इन दो पदों की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ।।

[हे सुभग=विद्वन् !—त्वं भूरिशर्धतां [नः]=अस्माकं स्थिराऽवतनुहि]

विद्वद्भिर्बहुबलयुक्तानां वीराणां नित्यमुत्साहो वर्धनीयः ।

विद्वान्—बहुत बल से युक्त वीरों का नित्य उत्साह बढ़ावें ।

[हेतुमाह—]

येनोत्साहिताः सन्तो राजप्रजाहितानि कर्माणि कुर्युः ।।१५ । ४० ।।

जिससे वे उत्साहित होकर राजा और प्रजा के हितकारक कर्म करें ।। १५ । ४० ।।

भा० पदार्थः—शर्धताम्=बलयुक्तानां वीराणाम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् राजा का कर्तव्य**—राजा का यह परम धर्म है कि युद्ध के समय अत्यन्त सहनशील होकर सब कार्यों को करने का प्रयत्न करे। और सेना के बल को बढ़ाकर; उसका स्थिरता से विस्तार करे और वीरों का उत्साह बढ़ाता रहे। सहनशीलता, स्थिरता तथा सैन्यबल की वृद्धि, इन तीन कार्यों से राजा अपने लक्ष्य की पूर्ति में निश्चित सफलता प्राप्त करता है । १५ । ४० ।। ●

परमेष्ठी । **अग्निः**=**विद्वान् (अध्यापकः)** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनः स किं कुर्य्यादित्याह ।।

फिर वह विद्वान् क्या करे, यह उपदेश किया है ।।

अ॒ग्निं तं म॑न्ये॒ यो वसु॒रस्तं॒ यं यन्ति॑ धे॒नवः॑ ।
अस्त॒मर्व॑न्त ऽ आ॒शवोऽस्तं॒ नित्या॑सो वा॒जिन॒ ऽ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ ऽ आ भ॑र ।। ४१ ।।

पदार्थः—(**अग्निम्**) (**तम्**) पूर्वोक्तम् (**मन्ये**) (**यः**) (**वसुः**) सर्वत्र निवस्ता (**अस्तम्**) गृहम् (**यम्**) (**यन्ति**) गच्छन्ति (**धेनवः**) गावः (**अस्तम्**) गृहम् (**अर्वन्तः**) अश्वाः (**आशवः**) आशुगामिनः (**अस्तम्**) (**नित्यासः**) कारणरूपेणाविनाशिनः (**वाजिनः**) वेगवन्तः (**इषम्**) अन्नादिकम् (**स्तोतृभ्यः**) स्तावकेभ्यो विद्वद्भ्यः (**आभर**) ।। ४१ ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यो वसुरस्ति यमग्निं धेनवोऽस्तं यन्तीव नित्यासो वाजिन आशवोऽर्वन्तोऽस्तमिवाहं तं मन्ये स्तोतृभ्य इषमाभरामि तथैव त्वं तमग्निमस्तं मन्यस्वेषं चाभर।। ४१ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यो वसुः** सर्वत्र निवस्ता **अस्ति, यमग्निं धेनवः** गावः **अस्तं** गृहं **यन्ति** गच्छन्ति **इव नित्यासः** कारणरूपेणाऽविनाशिनः **वाजिनः** वेगवन्तः **आशवः** आशुगामिनः **अर्वन्तः** अश्वाः **अस्तं** गृहम् **इवाऽहं तं** पूर्वोक्तं **मन्ये**,

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (वसुः) सर्वत्र निवास करने वाला है, जिस अग्नि को (धेनवः) गौओं के (अस्तम्) घर, (यन्ति) जाने के समान; (नित्यासः) कारण रूप से अविनाशी (वाजिनः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी (अर्वन्तः) घोड़े के

स्तोतृभ्यः स्तावकेभ्यो विद्वद्भ्यः **इषम्** अन्नादिकम् **आभरामि, तथैव** त्वं तं पूर्वोक्तम् **अग्निमस्तं** गृहं **मन्यस्व, इषम्** अन्नादिकं **चाभर** ॥ १५ । ४१ ॥

(अस्तम्) घर जाने के समान मैं (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (मन्ये) स्वीकार करता हूँ, (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वानों के लिए (इषम्) अन्न आदि को (आभरामि) धारण करता हूँ, वैसे तू (तम्) उस पूर्वोक्त अग्नि को (अस्तम्) घर मान, और (इषम्) अन्न आदि को (आ+भर) धारण कर ॥ १५ । ४१ ॥

[धेनवोऽस्तं यन्तीव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ विद्यार्थिनः प्रत्यध्यापक एवं वदेत्—

यथाऽहमाचरेयं तथा यूयमप्याचरत । यथा गवादयः पशव इतस्ततो दिने भ्रान्त्वा सायं स्वगृहं प्राप्य मोदन्ते तथैव विद्यागृहं प्राप्य यूयमपि मोदध्वम् ॥ १५ । ४१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ विद्यार्थियों को अध्यापक इस प्रकार उपदेश करें

जैसे मैं आचरण करूँ वैसे तुम भी करो । जैसे--गौ आदि पशु इधर-उधर दिन में भ्रमण करके सायंकाल अपने घर को प्राप्त करके प्रसन्न होते हैं वैसे ही विद्या-गृह को प्राप्त करके तुम भी प्रसन्न होवो ॥ १५ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—धेनवः=गवादयः पशवः । अस्तम्=स्वगृहम् विद्यागृहम् ।

भाष्यसार—**१. विद्वान् अध्यापक का शिष्यों के प्रति व्यवहार**—अध्यापकों का शिष्यों के प्रति ऐसा उत्तम व्यवहार होना चाहिए, जिससे विद्या-गृह को विद्यार्थी, अपने घर के समान ही मानकर आनन्द से विद्या-ग्रहण करते रहें। जैसे गायें और बलवान् घोड़े इधर-उधर घूमकर, घर पर आकर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं, वैसे ही विद्यार्थी विद्यालय में प्रसन्न होकर विद्या प्राप्त किया करें । अध्यापकों का आचरण उत्तम होना चाहिए और शिष्य भी अध्यापकों के उत्तम आचरण का अनुकरण करें, तथा विद्या-धन का संग्रह करते रहें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । गायादि पशुओं के समान विद्यार्थी विद्यागृहों में प्रसन्न होकर रहें ॥ १५ । ४१ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान् (अध्यापकः)** । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

सो ऽ अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो ऽ रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय ऽ इषꣳ स्तोतृभ्य ऽ आ भर ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(सः) (अग्निः) (यः) (वसुः) (गृणे) स्तुवे (सम्) (यम्) (आयन्ति) (धेनवः) वाण्यः (सम्) (अर्वन्तः) प्रशस्तविज्ञानवन्तः (रघुद्रुवः) ये रघु=लघु द्रवन्ति=गच्छन्ति ते । अत्र कपिलकादित्वाल्लत्वम् (सम्) (सुजातासः) विद्यासु सुष्ठु जाताः=प्रसिद्धाः (सूरयः) विद्वांसः (इषम्) ज्ञानम् (स्तोतृभ्यः) स्तावकेभ्यो विद्यार्थिभ्यः (आ) (भर) ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ—(रघुद्रुवः) ये रघु=लघु द्रवन्ति=गच्छन्ति ते। यहाँ "कपिलकादीनां संज्ञाछन्दसोर्वा रो लमापद्यत इति वक्तव्यम्" (८।२।१८) इस वार्तिक से लत्व है।

अन्वयः—हे विद्वन्! यथाऽहं यो वसुरग्निरस्ति तं गृणे यं धेनवः समायन्ति रघुद्रुवोऽर्वन्तः सुजातासः सूरयः स्तोतृभ्य इषं समाभरन्ति स स्तौति च तथा त्वमेतानि समाभर ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! **यथाऽहं यो वसुः** सर्वत्र निवस्ता **अग्निरस्ति, तं गृणे** स्तुवे, **यं धेनवः** वाण्यः **सम्+आयन्ति, रघुद्रुवः** ये रघु=लघु द्रवन्ति=गच्छन्ति ते, **अर्वन्तः** प्रशस्तविज्ञानवन्तः **सुजातासः** विद्यासु सुष्ठु जाताः=प्रसिद्धाः **सूरयः** विद्वांसः **स्तोतृभ्यः** स्तावकेभ्यो विद्यार्थिभ्यः **इषं** ज्ञानं **समाभरन्ति, स स्तौति च, तथा त्वमेतानि सम्+आभर** ॥ १५। ४२ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! जैसे मैं—जो (वसुः) सर्वत्र निवास करने वाला अग्नि है, उसकी (गृणे) स्तुति करता हूँ, जिसे (धेनवः) वाणियाँ (सम्+आयन्ति) प्राप्त होती हैं, जिसके—(रघुद्रुवः) शीघ्र गति करने वाले (अर्वन्तः) प्रशस्त विज्ञान वाले (सुजातासः) विद्याओं में सुप्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् लोग (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्यार्थियों के लिए (इषम्) ज्ञान को (समाभरन्ति) धारण करते हैं, वह विद्वान् जिसकी स्तुति करता है वैसे तू इन्हें (सम्+आभर) धारण कर ॥ १५। ४२ ॥

[यो वसुरग्निरस्ति तं गृणे, यं धेनवः समायन्ति]

भावार्थः—अध्यापका यथा धेनवो वत्सान् प्रीणयन्ति तथा विद्यार्थिन आनन्दयेयुः।

भावार्थ—अध्यापक लोग—जैसे गौवें बछड़ों को प्रसन्न करती हैं वैसे विद्यार्थियों को आनन्दित करें।

[अर्वन्तः—स्तोतृभ्य इषं समाभरन्ति]

यथाऽश्वाः शीघ्रं गमयन्ति तथा सर्वविद्यापारगान् कुर्य्युः ॥ १५। ४२ ॥

जैसे—घोड़े शीघ्र देशान्तर में पहुँचाते हैं वैसे विद्यार्थियों को सब विद्याओं में पारंगत करें ॥ १५ ॥

भाष्यसार—**अध्यापक का कर्त्तव्य**—अध्यापक को सदा ज्ञानाग्नि का उपासक होना चाहिए। ज्ञानवान् अध्यापक ही शिष्यों को ज्ञानवान् बना सकते हैं। जैसे गायें अपने बछड़ों को दूधादि से प्रसन्न रखती हैं, वैसे ही ज्ञानामृत से शिष्यों को तृप्त रखें। और जैसे शीघ्र गति वाले घोड़े मार्ग को शीघ्रता से व्याप्त कर लेते हैं, इसी प्रकार शिष्यों की बुद्धियाँ सर्वविद्यापारग होनी चाहिए। जिस ज्ञान की प्रशस्त विज्ञान वाले विद्वान् प्रशंसा करते हैं, उस ज्ञान को शिष्यों को सदा प्रदान किया करें ॥ १५। ४२ ॥

परमेष्ठी। **अग्निः=विद्वान्**। निचृत्पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

पुनः सः किं कुर्यादित्याह ॥

फिर वह विद्वान् क्या करे, यह उपदेश किया है ॥

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष ऽ आसनि।

उतो न ऽ उत्पुपूर्या ऽ उक्थेषु शवसस्पत ऽ इषꣳ स्तोतृभ्य ऽ आभर ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(उभे) द्वे अध्ययनाध्यापनक्रिये (**सुश्चन्द्र**) शोभनश्चासौ चन्द्र आह्लादकारकश्च

तत्सम्बुद्धौ (**सर्पिषः**) घृतस्य (**दर्वी**) ग्रहणाग्रहणसाधने (**श्रीणीषे**) पचसि (**आसनि**) आस्ये (**उतो**) अपि (**नः**) अस्मभ्यम् (**उत्**) (**पुपूर्याः**) पूर्णं कुर्य्याः (**उक्थेषु**) वक्तुं=श्रोतुमर्हेषु वेदविभागेषु (**शवसः**) बलस्य (**पते**) पालक (**इषम्**) अन्नम् (**स्तोतृभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**आ**) (**भर**) ॥४३॥

अन्वयः—हे सुश्चन्द्र ! त्वं सर्पिषो दर्वी श्रीणीष इवासन्युभे आ भर । हे शवस्पते ! त्वमुक्थेषु नोऽस्मभ्यमुतो अपि स्तोतृभ्य इषं चोत्पुपूर्याः ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सुश्चन्द्र ! शोभनश्चासौ चन्द्र=आह्लादकारकश्च तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं सर्पिषः** घृतस्य **दर्वी** ग्रहणाग्रहणसाधने **श्रीणीषे** पचसि **इवाऽऽसनि** आस्ये **उभे** द्वे अध्ययनाऽध्यापन-क्रिये **आभर** ।

हे शवसः बलस्य **पते** ! पालक ! **त्वमुक्थेषु** वक्तुं श्रोतुमर्हेषु वेदविभागेषु **नः=अस्मभ्यमुतो= अपि स्तोतृभ्यः** विद्वद्भ्यः **इषम्** अन्नं **चोत्पुपूर्याः** पूर्णं कुर्य्याः ॥ १५ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे (सुश्चन्द्र) उत्तम आह्लाद को उत्पन्न करने वाले अध्यापक ! तू—(सर्पिषः) घृत को (दर्वी) लेने और छोड़ने के साधन दो चमसों को (श्रीणीषे) तपाने के समान (आस्ये) मुख में (उभे) दोनों अध्ययन-अध्यापन रूप क्रियाओं को (आभर) धारण कर !

हे (शवसः) बल के (पते) रक्षक अध्यापक ! तू—उक्थेषु उपदेश करने एवं सुनने योग्य वेद-विभागों में (नः) हमारे लिए (उतो) और (स्तोतृभ्यः) स्तुति-कर्त्ता विद्वानों के लिए (इषम्) अन्न को (उत्पुपूर्याः) पूर्ण कर ॥ १५ । ४३ ॥

[हे सुश्चन्द्र ! त्वं सर्पिषो दर्वी श्रीणीषे इव आसन्युभे आ भर]

भावार्थः—यथा—ऋत्विजो घृतं संशोध्य दर्व्याऽग्नौ हुत्वा वायुवृष्टिजले रोगनाशके कृत्वा सर्वान् सुखयन्ति, तथैव—अध्यापका विद्यार्थिमनांसि सुशिक्षया संशोध्य तत्र विद्या हुत्वाऽऽत्मनः पवित्री-कृत्य सर्वान् प्राणिनः सुखयेयुः ॥ १५ । ४३ ॥

भावार्थ—जैसे—ऋत्विक् लोग घृत को शुद्ध करके, चमस से अग्नि में होम कर वायु और वर्षा-जल को रोग-नाशक बनाकर सबको सुखी करते हैं, वैसे ही—अध्यापक विद्यार्थियों के मनों को सुशिक्षा से शुद्ध करके उनमें विद्याओं का दानकर आत्माओं को पवित्र बनाकर सब प्राणियों को सुखी करें ॥ १५ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—सुश्चन्द्र=ऋत्विक् । अध्यापक ॥

भाष्यसार—**उत्तम अध्यापक के लक्षण**—अच्छे अध्यापक में निम्नलिखित गुण होने चाहिएँ—(१) सुश्चन्द्र अर्थात् विद्यार्थियों को ज्ञानामृत से प्रसन्न रखने वाला हो। उसका स्वभाव सौम्य हो, क्रूर स्वभाव न हो। (२) जैसे ऋत्विज घृतादि हवनीय सामग्री को शुद्ध करके वायु और वर्षा को रोग-रहित करने के लिए अग्नि में डालते हैं, वैसे ही अध्यापक प्रथम छात्रों के मन आदि को शुद्ध करके तत्पश्चात् विद्या का दान किया करे। (३) शवस्पतिः—अध्यापक ज्ञान-बल का पालक होता है, अतः उसे पूर्ण-विद्वान् होना चाहिए। थोड़े ज्ञान वाले पर छात्र कभी श्रद्धा नहीं रखते। (४) अध्यापक में छात्रों की परीक्षा करने की योग्यता होनी चाहिए। जिससे वह पता लगा सके कि छात्र विद्या ग्रहण करने के योग्य है अथवा नहीं। अयोग्य को दिया गया ज्ञान कभी सफल नहीं होता। जैसे घृत का चमस अपने सामर्थ्य के अनुरूप ही घृत ग्रहण करता है, वैसे ही छात्र भी मनादि साधनों के अनुरूप ही ज्ञान ग्रहण करता है। (५) अध्यापक कर्त्तव्य-परायण हो, लोभी न हो। अच्छा अध्यापक ज्ञान देकर अपने को पवित्र समझता है। उसकी आत्मा में प्रसन्नता होती है। १५ । ४३ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः**=विद्वान् (अध्यापकः) । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ऽ ओहैः ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) अध्यापक ! (**तम्**) विद्याबोधम् (**अद्य**) अस्मिन् वर्त्तमाने समये (**अश्वम्**) सुशिक्षितं तुरङ्गम् (**न**) इव (**स्तोमैः**) विद्यास्तुतिविशेषैर्वेदभागैः (**क्रतुम्**) प्रज्ञातम् (**न**) इव (**भद्रम्**) कल्याणकरम् (**हृदिस्पृशम्**) यो हृद्यात्मनि स्पृशति तम् (**ऋध्याम**) वर्धेमहि । **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** (**ते**) तव सकाशात् (**ओहैः**) विद्यासुखप्रापकैः ॥ ४४ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋध्याम**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे अग्नेऽध्यापक ! वयं ते तव सकाशादोहैः स्तोमैरद्याश्वं न भद्रं क्रतुं न तं हृदिस्पृशं प्राप्य सततमृध्याम ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=**अध्यापक**! **वयं ते**=**तव सकाशादोहैः** विद्यासुखप्रापकैः **स्तोमैः** विद्यास्तुतिविशेषैर्वेदभागैः **अद्य** अस्मिन् वर्त्तमाने समये **अश्वं** सुशिक्षितं तुरङ्गं **न** इव **भद्रं** कल्याण-करं **क्रतुं** प्रज्ञातं **न** इव **तं** विद्याबोधं **हृदिस्पृशं** यो हृद्यात्मनि स्पृशति तं **प्राप्य सततमृध्याम** वर्धे-महि ॥ १५ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक ! हम (ते) तेरे पास से—(ओहैः) विद्या-सुख को प्राप्त कराने वाले (स्तोमैः) विद्या की स्तुति-विशेष वाले वेद के भागों से (अद्य) इस समय (अश्वम्) सुशिक्षित घोड़े के (न) समान; (भद्रम्) कल्याणकारी (**क्रतुम्**) के (न) समान (तम्) उस प्रज्ञा=बुद्धि (हृदिस्पृशम्) आत्मा में स्पर्श करने वाले विद्या-बोध को प्राप्त करके सदा (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥ १५ ॥

[हे अग्ने=अध्यापक ! वयं ते=तव सकाशाद्...अश्वं न, भद्रं क्रतुं न, तं हृदिस्पृशं प्राप्य...ऋध्याम]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारौ ॥ अध्ये-तारो—यथा सुशिक्षितेनाश्वेन सद्योऽभीष्टं स्थानं गच्छन्ति, यथा विद्वांसः सर्वशास्त्रबोधसंपन्नया कल्याणकर्या प्रज्ञया धर्मार्थकाममोक्षान् प्राप्नुवन्ति, तथा—तेभ्योऽध्यापकेभ्यो विद्यापारं गत्वा प्रशस्तां प्रज्ञां प्राप्य स्वयं वर्धेरन्, अन्यांश्च वेदाध्यापनो-पदेशाभ्यामेधयेयुः ॥ १५ । ४४ ॥

भावार्थ—यहाँ दो उपमा अलंकार हैं ॥ विद्यार्थी—जैसे लोग सुशिक्षित घोड़े से शीघ्र अभीष्ट स्थान पर जाते हैं, जैसे विद्वान् सब शास्त्रों के बोध से सम्पन्न कल्याणकारी प्रज्ञा=बुद्धि से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वैसे—उन अध्यापकों से विद्या के पार जाकर, उत्तम प्रज्ञा=बुद्धि को प्राप्त करके स्वयं बढ़ें और दूसरों को वेद के अध्यापन तथा उपदेश से बढ़ावें ॥ १५ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—भद्रम्=सर्वशास्त्रबोधसम्पन्नां कल्याणकरीम् । क्रतुम्=प्रज्ञाम् । प्रशस्तां प्रज्ञाम् ।

भाष्यसार—**१. उत्तम-अध्यापक का कर्त्तव्य**—विद्वान् अध्यापक का यह प्रमुख कर्त्तव्य है कि जैसे सुशिक्षित घोड़े आदि से शीघ्र ही अभीष्ट स्थान पर जाया जाता है, वैसे ही वेदादिसत्यविद्या से सुशिक्षित होकर स्वयं सुखों को प्राप्त करे, और दूसरों को सुशिक्षित करके कल्याण करने वाले मार्ग

पर चलावे। सच्चा ज्ञान वह होता है जिससे आत्मा का बोध हो, और मोक्ष सुख की प्राप्ति हो। अतः उसके लिए निरन्तर प्रयत्न किया करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में दो उपमा अलङ्कार हैं। सुशिक्षित घोड़े के समान, और भद्र करने वाली बुद्धि के समान विद्वान् सुशिक्षा से प्रशस्त बुद्धि प्राप्त करके उन्नति करे और कराये ॥ १५। ४४ ॥

परमेष्ठी। **अग्निः**=विद्वान्। भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः॥

पुनः स कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**अध**) अथ मङ्गले। अत्र निपातस्य चेति दीर्घः। वर्णव्यत्ययेन थस्य धश्च (**हि**) खलु (**अग्ने**) विद्वन् (**क्रतोः**) प्रज्ञायाः (**भद्रस्य**) आनन्दकरस्य (**दक्षस्य**) शरीरात्मबलयुक्तस्य (**साधोः**) सन्मार्गे वर्त्तमानस्य (**रथीः**) प्रशस्ता रथा=रमणसाधनानि यानानि विद्यन्ते यस्य सः (**ऋतस्य**) प्राप्त-सत्यस्य (**बृहतः**) महाविषयस्य (**बभूथ**) भवेः ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**अध**) यहां 'निपातस्य च' (६। ३। १३६) से दीर्घ है ॥ और वर्णव्यत्यय से थकार के स्थान पर धकार हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने ! यथा त्वं भद्रस्य दक्षस्य साधोर्ऋतस्य बृहतः क्रतोः सकाशाद्रथीर्बभूथ तथाऽध हि वयमपि भवेम ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने !** विद्वन्। **यथा त्वं भद्रस्य** आनन्दकरस्य **दक्षस्य** शरीराऽऽत्म-बलयुक्तस्य **साधोः** सन्मार्गे वर्त्तमानस्य **ऋतस्य** प्राप्तसत्यस्य **बृहतः** महाविषयस्य **क्रतोः** प्रज्ञायाः **सकाशाद् रथीः** प्रशस्ता रथा=रमणसाधनानि यानानि विद्यन्ते यस्य सः **बभूथ** भवेः, **तथा अध** अथ=मंगले **हि** खलु **वयमपि भवेम** ॥ १५। ४५ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जैसे तू (भद्रस्य) आनन्दकारी (दक्षस्य) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (साधोः) सन्मार्ग पर चलने वाले (ऋतस्य) सत्य को प्राप्त (**बृहतः**) महान् विद्वान् की (क्रतोः) प्रज्ञा=बुद्धि के संग से (रथीः) प्रशंस-नीय रथों वाला (बभूथ) बन। तथा—(अध) मङ्गलपूर्वक (हि) निश्चय से हम भी रथी बनें ॥ १५। ४५ ॥

[**हे अग्ने ! यथा त्वं······क्रतोः सकाशाद् रथीर्बभूथ तथा······वयमपि भवेम**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा शास्त्रयोगजां धियं प्राप्य विद्वांसो वर्धन्ते, तथैवाध्येतृभिरपि वर्धितव्यम् ॥ १५। ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे शास्त्र और योग से उत्पन्न बुद्धि को प्राप्त करके विद्वान् बढ़ते हैं वैसे अध्येता=विद्यार्थी भी बढ़ें ॥ १५। ४५ ॥

भा० पदार्थः—क्रतोः=शास्त्रयोगजाया धियः।

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुषों का व्यवहार**—विद्वान् पुरुष सदा ऐसा प्रयत्न करें कि उनका व्यवहार महापुरुषों के समान कल्याण करने वाला हो। वे स्वयं शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त करके सन्मार्ग पर चलें और सत्यज्ञान को प्राप्त करें। ऐसा करने से और विद्वानों की संगति से श्रेष्ठ बुद्धि

प्राप्त करके रमणीय सुखों के साधन रथादि यानों को प्राप्त करते हैं। और दूसरे मनुष्य भी विद्वानों के समान आचरण करके उन्नति किया करें।

(२) **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वानों के समान शास्त्र-सम्मत बुद्धि प्राप्त करके अध्येता विद्यार्थी भी उन्नति करें ॥ १५ । ४५ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** ॥ भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

एभिर्नो ऽ अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽ अनीकैः ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(एभिः) पूर्वोक्तैः (नः) अस्मभ्यम् (अर्कैः) पूज्यैर्विद्वद्भिः (भव) द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (नः) अस्मभ्यम् (अर्वाङ्) योऽर्वाचीनाननुत्कृष्टानुत्कृष्टान् कर्त्तुमञ्चति=जानाति सः (स्वः) सुखम् (न) इव (ज्योतिः) प्रकाशकः (अग्ने) विद्याप्रकाशाढ्य (विश्वेभिः) समग्रैः (सुमनाः) सुखकारिमनाः (अनीकैः) सैन्यैरिव ॥ ४६ ॥

प्रमाणार्थ—(भव) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं नोऽस्मभ्यं विश्वेभिरनीकै राजेव सुमना भव । एभिरर्कैर्नोऽस्मभ्यं ज्योतिरर्वाङ् स्वर्न भव ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्याप्रकाशाऽऽढ्य ! त्वं **नः**=**अस्मभ्यं विश्वेभिः** समग्रैः **अनीकैः** सैन्यैरिव **राजेव सुमनाः** सुखकारिमनाः **भव**। **एभिः** पूर्वोक्तैः **अर्कैः** पूज्यैर्विद्वद्भिः **नः**=**अस्मभ्यं ज्योतिः** प्रकाशकः **अर्वाङ्** योऽर्वाचीनाननुत्कृष्टानुत्कृष्टान् कर्त्तुमञ्चति=जानाति सः **स्वः** सुखं **न** इव **भव** ॥ १५ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्याप्रकाश से भरपूर विद्वान् ! तू—(नः) हमारे लिए (विश्वेभिः) समग्र (अनीकैः) सेनाओं के द्वारा राजा के समान (सुमनाः) सुखकारी मन वाला हो। (एभिः) इन पूर्वोक्त (अर्कैः) पूज्य विद्वानों के द्वारा (नः) हमारे लिए (ज्योतिः) प्रकाश करने वाले (अर्वाङ्) निकृष्टों को उत्कृष्ट बनाना जानने वाले (स्वः) सुख के (न) समान बन ॥ १५ । ४६ ॥

[हे अग्ने ! त्वं नः=अस्मभ्यं···अनीकै राजेव सुमना भव]

भावार्थः—अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ। यथा राजा सुशिक्षितैर्बलाद्यैः सैन्यैः शत्रून् जित्वा सुखी भवति, तथैव प्रज्ञादिभिर्गुणैरविद्याक्लेशान् जित्वा मनुष्याः सुखिनः सन्तु ॥ १५ । ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जैसे—राजा सुशिक्षित बल आदि सेनाओं से शत्रुओं को जीतकर सुखी होता है, वैसे ही प्रज्ञा=बुद्धि आदि गुणों से अविद्या आदि क्लेशों को जीतकर मनुष्य सुखी रहे ॥ १५ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—अनीकैः=सुशिक्षितैर्बलाद्यैः सैन्यैः ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुषों का प्रमुख कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुषों को निरन्तर ऐसा प्रयास करना चाहिए कि जैसे राजा उत्तम सुशिक्षित सेना की सहायता से शत्रु को जीतकर प्रजा को सुख देने

वाला होता है, वैसे ही शास्त्रों को पढ़ कर उत्तम बुद्धि को प्राप्त करके अविद्यादि क्लेशों का विनाश किया करें। और सद्विद्या की ज्योति से निकृष्ट मनुष्यों को उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न किया करें। अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना विद्वानों का प्रमुख कर्त्तव्य है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। विद्वान् पुरुष राजा के समान सुख देने वाला होना चाहिए॥ १५। ४६॥

परमेष्ठी। **अग्निः**=विद्वान् भौतिकोऽग्निः। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है॥

अ॒ग्निꣳ होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं॒ वसु॑ꣳ सू॒नुꣳ सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम्
य ऽ ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा। घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑ वष्टि
शो॒चिषा॒ऽऽजुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑॥ ४७॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) (**होतारम्**) सुखदातारम् (**मन्ये**) सत्करोमि (**दास्वन्तम्**) दातारम् (**वसुम्**) धनप्रदम् (**सूनुम्**) पुत्रमिव (**सहसः**) बलिष्ठस्य (**जातवेदसम्**) सर्वेषु जातेषु पदार्थेषु विद्यमानम् (**विप्रम्**) आप्तं मेधाविनम् (**न**) इव (**जातवेदसम्**) प्रसिद्धप्रज्ञम् (**यः**) (**ऊर्ध्वया**) उपरिगत्या (**स्वध्वरः**) शोभनकारित्वादहिंसनीयः (**देवः**) दिव्यगुणः (**देवाच्या**) देवानञ्चति तया (**कृपा**) समर्थया क्रियया (**घृतस्य**) उदकस्य (**विभ्राष्टिम्**) विविधा भ्राष्टयः=प्रकाशनानि यस्मिंस्तम् (**अनु**) (**वष्टि**) प्रकाशते (**शोचिषा**) दीप्त्या (**आजुह्वानस्य**) समन्ताद्धूयमानस्य (**सर्पिषः**) आज्यस्य॥ ४७॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवाच्या कृपा देवः शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषो घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि तं होतारं जातवेदसं सहसः सूनुमिव वसुं दास्वन्तं जातवेदसमग्निं विप्रं न यथाऽहं मन्ये तथा यूयमपि मन्यध्वम्॥ ४७॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः**! **य ऊर्ध्वया** उपरिगत्या **स्वध्वरः** शोभनकारित्वादहिंसनीयः **देवाच्या** देवानञ्चति तया **कृपा** समर्थया क्रियया **देवः** दिव्यगुणः **शोचिषा** दीप्त्या **आजुह्वानस्य** समन्ताद्धूयमानस्य **सर्पिषः** आज्यस्य **घृतस्य** उदकस्य **विभ्राष्टिं** विविधा भ्राष्टयः=प्रकाशनानि यस्मिंस्तम् **अनुवष्टि** प्रकाशते **तं होतारं** सुखदातारं **जातवेदसं** सर्वेषु जातेषु पदार्थेषु विद्यमानं **सहसः** बलिष्ठस्य **सूनुं** पुत्रम् **इव वसुं** धनप्रदं **दास्वन्तं** दातारं **जातवेदसं** प्रसिद्धप्रज्ञम् **अग्निं विप्रम्** आप्तं मेधाविनं **न** इव **यथाऽहं मन्ये** सत्करोमि **तथा यूयमपि मन्यध्वं** सत्कुरुत॥ १५। ४७॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो—(ऊर्ध्वया) ऊर्ध्व गति से (स्वध्वरः) उत्तम कर्म करने से हिंसा के अयोग्य है, (देवाच्या) देवों का अञ्चन=पूजन करने वाली (कृपा) समर्थ क्रिया से (देवः) दिव्य गुणों वाला है, (शोचिषा) दीप्ति के कारण (आजुह्वानस्य) सब ओर से कमनीय (सर्पिषः) घी और (घृतस्य) जल की (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकार की ज्योतियों को (अनुवष्टि) प्रकाशित करता है, उस (होतारम्) सुख के दाता, (जातवेदसम्) सब उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान, (सहसः) बलवान् पुरुष के (सूनुम्) पुत्र के समान, (वसुम्) धन के दाता, (दास्वन्तम्) दानशील, (जातवेदसम्) प्रसिद्ध प्रज्ञा वाले, (अग्निम्) तेजस्वी (विप्रम्) आप्त मेधावी विद्वान् के (न) समान जैसे मैं

(मन्ये) सत्कार करता हूँ, वैसे तुम भी सत्कार करो ॥ १५ । ४७ ॥

[हे मनुष्या ! अग्निं विप्रं न यथाऽहं मन्ये, तथा यूयमपि मन्यध्वम्]

भावार्थः— अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यथा सुसेविता विद्वांसो विद्याधर्मसुशिक्षाभिः सर्वानार्यान् संपादयन्ति, तथा युक्त्या सेवितोऽग्निः स्वगुणकर्मस्वभावैः सर्वानुन्नयति ॥ १५ । ४७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे—उत्तम रीति से सेवा किए हुए विद्वान् विद्या, धर्म और सुशिक्षा से सबको आर्य बनाते हैं, वैसे—युक्तिपूर्वक सेवन किया हुआ अग्नि अपने गुण, कर्म और स्वभाव से सबको उन्नत करता है ॥ १५ । ४७ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुष स्वयं अहिंसित कर्मों को करते हुए, उन्नति की ओर ले जाने वाली तथा देवों का पूजन करने वाली क्रियाओं से सदा दिव्य गुणों वाला होकर रहे। वह विद्या की ज्योति से ऐसा प्रदीप्त हो कि सभी मनुष्य उसकी कामना किया करें। जैसे हवनीय घृतादि से प्रदीप्त, सुखों का दाता और प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान अग्नि सब की उन्नति का साधन होता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष विद्या-धन का दान देकर, श्रेष्ठ-बुद्धि वाला होकर सब की उन्नति किया करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा और वाचक-लुप्तोपमा दो अलङ्कार हैं। अग्नि के समान विद्वान् सबकी उन्नति किया करें ॥ १५ । ४७ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

अग्ने त्वं नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमᳬ रयिन्दाः ।
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् ! (**त्वम्**) (**नः**) अस्माकम् (**अन्तमः**) अतिशयेनान्तिकः । **अन्तमानामित्यन्तिकना० ॥ निघं० २ । १६ ॥** (**उत**) अपि (**त्राता**) रक्षकः (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) **द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** (**वरूथ्यः**) वरः (**वसुः**) धनप्रदः (**अग्निः**) प्रापकः (**वसुश्रवाः**) वसूनि=धनानि श्रवांस्यन्नानि च यस्मात्सः (**अच्छ**) **अत्र संहितायामिति दीर्घः** (**नक्षि**) प्राप्नोमि । **अत्र णक्ष गतावित्यस्माल्लङुत्तमैकवचनेऽड्विकरणयोरभावः** (**द्युमत्तमम्**) प्रशस्ता दिवः=प्रकाशा कामना वा विद्यन्ते यस्मिन् सोऽतिशयितस्तम् (**रयिम्**) धनम् (**दाः**) ददाति । **अत्राप्यडभावः** (**तम्**) (**त्वा**) त्वाम् (**शोचिष्ठ**) अतिशयेन तेजस्विन् (**दीदिवः**) ये दीदयन्ति ते दीदयः=प्रकाशास्ते बहवो विद्यन्ते यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ (**सुम्नाय**) सुखाय (**नूनम्**) निश्चितम् (**ईमहे**) याचामहे (**सखिभ्यः**) मित्रेभ्यः ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अन्तमः**) अन्तम पद निघं० (२ । १६) में अन्तिक=समीप के नामों में पठित है। (**भव**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है। (**अच्छ**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) के अधिकार में 'निपातस्य च' से दीर्घ है। (**नक्षि**) यहाँ 'णक्ष गतौ' इस धातु से लङ्

लकार उत्तम पुरुष, एकवचन में अट् और विकरण-प्रत्यय का अभाव है। (**दाः**) यहाँ भी अट्-आगम का अभाव है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं यथाऽयं वसुर्वसुश्रवा अग्नी रयिन्दा ददाति तथा नोऽस्माकमन्तमस्त्राता वरूथ्य उतापि शिवो भव। हे शोचिष्ठ दीदिवो विद्वन् ! यथा वयं त्वा सखिभ्यः सुम्नाय नूनमीमहे तथा तं त्वां सर्वे मनुष्या याचन्ताम्। यथाऽहं द्युमत्तमं त्वामच्छ नक्षि प्राप्नोमि तथा त्वमस्मान्प्राप्नुहि ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् ! **त्वं यथाऽयं वसुः** धनप्रदः **वसुश्रवाः** वसूनि=धनानि श्रवांस्यन्नानि च यस्मात् सः **अग्निः** प्रापकः **रयिं** धनं **दाः**=**ददाति तथा नः**=**अस्माकमन्तमः** अतिशयेनाऽन्तिकः **त्राता** रक्षकः **वरूथ्यः** वरः **उत**=**अपि शिवः** मङ्गलकारी **भव**।

हे शोचिष्ठ अतिशयेन तेजस्विन् **दीदिवः** !=**विद्वन्** ये दीदयन्ति ते दीदयः=प्रकाशास्ते बहवो विद्यन्ते यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ ! **यथा वयं त्वा** त्वां **सखिभ्यः** मित्रेभ्यः **सुम्नाय** सुखाय **नूनं** निश्चितम् **ईमहे** याचामहे, **तथा तं त्वा सर्वे मनुष्या याचन्ताम्**।

यथाऽहं द्युमत्तमं प्रशस्ता दिवः=प्रकाशा कामना वा विद्यन्ते यस्मिन् सोऽतिशयितस्तं **त्वामच्छ नक्षि**=**प्राप्नोमि तथा त्वमस्मान् प्राप्नुहि**।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! तू—जैसे यह (वसुः) धन का दाता, (वसुश्रवाः) धनों और अन्नों का निमित्त (अग्निः) सुखप्रापक अग्नि (रयिम्) धन को (दाः) प्रदान करता है, वैसे (नः) हमारे (अन्तमः) अत्यन्त समीप (त्राता) रक्षक, (वरूथ्यः) वर-श्रेष्ठ, (उत) और (शिवः) मङ्गलकारी हो।

हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त तेजस्वी (दीदिवः) बहुत प्रकाशों वाले विद्वान् ! जैसे हम लोग (त्वा) तुझसे (सखिभ्यः) मित्रों के(सुम्नाय) सुख के लिए (नूनम्) निश्चित रूप से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं वैसे—तुझसे सब मनुष्य प्रार्थना करें।

जैसे मैं—(द्युमत्तमम्) प्रशंसनीय प्रकाश वा कामनाओं वालों में श्रेष्ठ तुझको (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षि) प्राप्त होता हूँ वैसे तू हमें प्राप्त कर ॥ १५ । ४८ ॥

[हे अग्ने ! ··· यथा वयं त्वा सखिभ्यः सुम्नाय—ईमहे तथा त्वां सर्वे मनुष्या याचन्ताम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा सुहृदो मित्राणीच्छन्त्युन्नयन्ति, तथा विद्वान् सर्वस्य मित्रः सर्वान् सुखिनः सम्पादयेत् ॥१५।४८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—मित्र अपने मित्रों को चाहते और उनको उन्नत करते हैं वैसे विद्वान् पुरुष सबका मित्र होकर सबको सुखी करें ॥ १५ । ४८ ॥

भा० पदार्थः—ईमहे=इच्छामः, उन्नयामः।

भाष्यसार—**१. विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य**—जैसे धनों और अन्नों का निमित्त अग्नि उत्तम रीति से सेवन करने से धनों को देता है, वैसे ही विद्वान् पुरुष अत्यन्त निकट रहकर, श्रेष्ठ होकर अविद्यादि क्लेशों से रक्षा करने वाला और मंगल करने वाला हो। विद्वान् पुरुषों का व्यवहार मित्रों के समान होना चाहिए। जैसे मित्र मित्रों को सदा सुख करने वाले होते हैं, वैसे ही विद्वान् सुख देने वाले हों। विद्वान् सब विद्या वालों में अधिक विद्या वाला होकर रहे, जिससे सब उसकी कामना किया करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् पुरुष अग्नि के समान धनदाता और मित्र की तरह सुखदाता होकर रहे ॥ १५ । ४८ ॥

परमेष्ठी। **अग्निः=विद्वान्** ।। आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ।।

येन॒ ऽ ऋष॑य॒स्तप॑सा स॒त्रमाय॒न्निन्धा॑ना ऽ अ॒ग्निꣳ स्व॑रा॒भर॑न्तः ।
तस्मि॑न्न॒हं निद॑धे॒ नाके॑ ऽ अ॒ग्निं यमा॒हुर्मन॑व स्ती॒र्णब॑र्हिषम् ।। ४९ ।।

पदार्थः—(**येन**) कर्मणा (**ऋषयः**) वेदार्थवेत्तारः (**तपसा**) धर्माऽनुष्ठानेन (**सत्रम्**) सत्रा=सत्यं विद्यते यस्मिन् विज्ञाने तत् (**आयन्**) प्राप्नुयुः (**इन्धानाः**) प्रकाशमानाः (**अग्निम्**) विद्युदादिम् (**स्वः**) सुखम् (**आभरन्तः**) समन्ताद्धरन्तः (**तस्मिन्**) (**अहम्**) (**निदधे**) (**नाके**) अविद्यमानदुःखे सुखे प्राप्तव्ये सति (**अग्निम्**) उक्तम् (**यम्**) (**आहुः**) वदन्ति (**मनवः**) मननशीला विद्वांसः (**स्तीर्णबर्हिषम्**) स्तीर्णमाच्छादितं बर्हिरन्तरिक्षं येन तम् ।। ४९ ।।

अन्वयः—येन तपसेन्धानाः स्वराभरन्त ऋषयः सत्रमग्निमायंस्तस्मिन्नाके मनवो यं स्तीर्णबर्हिषमग्निमाहुस्तमहं निदधे ।। ४९ ।।

सपदार्थान्वयः—**येन** कर्मणा **तपसा** धर्माऽनुष्ठानेन **इन्धानाः** प्रकाशमानाः **स्वः** सुखम् **आभरन्तः** समन्ताद् धरन्तः **ऋषयः** वेदाऽर्थवेत्तारः **सत्रं** सत्रा=सत्यं विद्यते यस्मिन् विज्ञाने तद् **अग्निं** विद्युदादिम् **आयन्** प्राप्नुयुः, **तस्मिन् नाके** अविद्यमानदुःखे सुखे प्राप्तव्ये सति **मनवः** मननशीला विद्वांसः **यं स्तीर्णबर्हिषं** स्तीर्णमाच्छादितं बर्हिरन्तरिक्षं येन तम्, **अग्निम्** उक्तं (विद्युदादिम्) **आहुः** वदन्ति, **तमहं निदधे** ।। १५ । ४९ ।।

भाषार्थ—(येन) जिस (तपसा) धर्माचरण रूप कर्म से (इन्धानाः) प्रकाशमान होकर (स्वः) सुखको (आभरन्तः) सब ओर से धारण करते हुए (ऋषयः) वेदार्थ के वेत्ता ऋषि (सत्रम्) सत्य से युक्त विज्ञान को तथा (अग्निम्) विद्युत् आदि को (आयन्) प्राप्त करते हैं, उस (नाके) दुःखरहित सुख के प्राप्त होने पर (मनवः) मननशील विद्वान् जिस (स्तीर्णबर्हिषम्) अन्तरिक्ष को आच्छादित करने वाले (अग्निम्) अग्नि=विद्युत् आदि को (आहुः) उपदेश करते हैं, उसे मैं (निदधे) धारण करता हूँ ।। १५ । ४९ ।।

[येन......ऋषयः सत्रमग्निमायन्, तस्मिन् नाके मनवः......अग्निमाहुः]

भावार्थः—येन प्रकारेण वेदपारगाः सत्यमनुष्ठाय विद्युदादिपदार्थान् सम्प्रयुज्य समर्था भवन्ति, तेनैव मनुष्यैः समृद्धियुक्तैर्भवितव्यम् ।। १५ । ४९ ।।

भावार्थ—जिस प्रकार से वेद के पारंगत ऋषि सत्य का अनुष्ठान करके विद्युत् आदि पदार्थों के सम्प्रयोग से समर्थ होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य समृद्धि से युक्त हों ।। १५ । ४९ ।।

भा० पदार्थः—ऋषयः=वेदपारगाः । अग्निम्=विद्युदादिपदार्थम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् मनुष्य विज्ञान को भी सीखे**—विद्वान् मनुष्य वेदार्थ का पूर्ण ज्ञाता होकर, धर्माचरण से प्रकाशित होकर सुखों को प्राप्त करे । और सत्य-पदार्थ विज्ञान को जानने का प्रयत्न करके उस विद्युदग्नि को अवश्य जाने, जिसे जानकर मननशील पूर्वज विद्वान् सुखों की प्राप्ति के लिए ऐश्वर्य प्राप्त करते रहे हैं ।। १५ । ४९ ।।

परमेष्ठी । **अग्निः**=विद्वान् । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वद्भिः कथं भवितव्यमित्याह ॥

विद्वानों को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे ऽ अधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥

पदार्थः—(तम्) अग्निम् (पत्नीभिः) स्वस्वस्त्रीभिः (अनु) (गच्छेम) (देवाः) विद्वांसः (पुत्रैः) वृद्धावस्थाजन्यदुःखात्त्रातृभिः (भ्रातृभिः) बन्धुभिः (उत) (वा) अन्यैरनुक्तैः सम्बन्धिभिः (हिरण्यैः) सुवर्णादिभिः (नाकम्) आनन्दम् (गृभ्णानाः) गृह्णन्तः (सुकृतस्य) सुष्ठुकृतस्य वेदोक्तकर्मणः (लोके) द्रष्टव्ये स्थाने (तृतीये) विज्ञानजे (पृष्ठे) ज्ञीप्सिते (अधि) उपरिभागे (रोचने) रुचिकरे (दिवः) द्योतनकर्मणः ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे देवा विद्वांसः ! यथा यूयं तं गृभ्णाना दिवः सुकृतस्याधिरोचने तृतीये पृष्ठे लोके वर्त्तमानाः पत्नीभिः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः सह नाकं गच्छत तथैतैः सहिता वयमनुगच्छेम ॥५०॥

सपदार्थान्वयः—हे **देवाः** !=विद्वांसः! **यथा यूयं तम्** अग्निं **गृभ्णानाः** गृह्णन्तः **दिवः** द्योतनकर्मणः **सुकृतस्य** सुष्ठुकृतस्य वेदोक्तकर्मणः **अधि** उपरिभागे **रोचने** रुचिकरे **तृतीये** विज्ञानजे **पृष्ठे** ज्ञीप्सिते **लोके** द्रष्टव्ये स्थाने **वर्त्तमानाः पत्नीभिः** स्वस्वस्त्रीभिः **पुत्रैः** वृद्धाऽवस्थाजन्यदुःखात् त्रातृभिः **भ्रातृभिः** बन्धुभिः **उत वा** अन्यैरनुक्तैः सम्बन्धिभिः **हिरण्यैः** सुवर्णादिभिः **सह नाकम्** आनन्दं **गच्छत, तथैतैः सहिता** वयमनुगच्छेम ॥५०॥

भाषार्थ—हे (**देवाः**) विद्वानो ! जैसे तुम—(तम्) उस अग्नि को (गृभ्णानाः) ग्रहण करके (दिवः) प्रकाशमान (सुकृतस्य) उत्तम रीति से आचरण किए हुए वेदोक्त कर्म की (अधि) चोटी में, एवं (रोचने) रुचिकर (तृतीय) विज्ञान से उत्पन्न (पृष्ठे) बतलाने=उपदेश करने योग्य (लोके) दर्शनीय स्थान में विद्यमान होकर—(पत्नीभिः) अपनी-अपनी स्त्रियों, (पुत्रैः) वृद्धावस्था में उत्पन्न दुःख से त्राण=रक्षा करने वाले पुत्रों, (भ्रातृभिः) बन्धुओं (उत) और (वा) अन्य अनुरागी सम्बन्धियों तथा (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि धनों से (नाकम्) आनन्द को प्राप्त करते हो, वैसे—इनसे युक्त होकर हम भी आनन्द को (अनुगच्छेम) प्राप्त करें ॥ १५ । ५० ॥

[हे देवाः=विद्वांसः ! यथा यूयं—पत्नीभिः पुत्रैर्भ्रातृभिः······सह नाकं गच्छत, तथैतैः सहिता वयमनुगच्छेम]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा विद्वांसः स्वस्त्रीपुत्रभ्रातृदुहितृमातृपितृभृत्य-पार्श्वस्थान् विद्या-सुशिक्षाभ्यां धार्मिकान् पुरुषार्थिनः कृत्वा सन्तुष्टा भवन्ति, तथैव सर्वै रप्यनुवर्त्यम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—विद्वान् अपनी स्त्री, पुत्र, भ्राता, पुत्री, माता, पिता भृत्य=सेवक और पड़ोसी जनों को विद्या और सुशिक्षा से धार्मिक पुरुषार्थी बनाकर सन्तुष्ट होते हैं, वैसे ही सब मनुष्य उनका अनुकरण करें ॥ १५ । ५० ॥

भाष्यसार—(१) **विद्वान् मनुष्य के कर्त्तव्य**—विद्वान् मनुष्य को विद्या के साथ सच्चरित्र भी होना चाहिए। उसका आचरण वेदोक्त कर्मों के अनुसार हो। ज्ञान-विज्ञान में प्रतिष्ठा प्राप्त करके अग्नि के समान प्रकाशित होवे और पत्नी, पुत्रों और इष्ट सम्बन्धियों को विद्या से सुशिक्षित करके सच्चरित्र बनाकर सुखों को प्राप्त करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् मनुष्यों की तरह सबको कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ १५ । ५० ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान् राजा** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

ईश्वरवद्राज्ञा किं कार्य्यमित्याह ॥

ईश्वर के तुल्य राजा को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**वाचः**) (**मध्यमः**) मध्ये भवम् (**अरुहत्**) रोहति (**भुरण्युः**) पोषकः (**अयम्**) (**अग्निः**) विद्वान् (**सत्पतिः**) सतां पालकः (**चेकितानः**) विज्ञानयुक्तः (**पृष्ठे**) उपरिभागे (**पृथिव्याः**) भूमेः (**निहितः**) नितरां धृतः (**दविद्युतत्**) प्रकाशयति (**अधस्पदम्**) नीचाधिकारम् (**कृणुताम्**) करोतु (**ये**) (**पृतन्यवः**) युद्धायात्मनः पृतनां=सेनामिच्छवः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! चेकितानः सत्पतिर्भवान् वाचो मध्यं प्राप्य यथाऽयं भुरण्युरग्निः पृथिव्याः पृष्ठे निहितो दविद्युतदारुहत्तेन ये पृतन्यवस्तान्नधस्पदं कृणुताम् ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **चेकितानः** विज्ञानयुक्तः **सत्पतिः** सतां पालकः **भवान् वाचो मध्यं** मध्ये भवं **प्राप्य यथाऽयं भुरण्युः** पोषकः **अग्निः** विद्वान् **पृथिव्याः** भूमेः **पृष्ठे** उपरिभागे **निहितः** नितरां धृतः **दविद्युतत्** प्रकाशयति, **आ+अरुहत्** रोहति, **तेन ये पृतन्यवः** युद्धायात्मनः पृतनां=सेनामिच्छवः **तानधस्पदं** नीचाधिकारं **कृणुतां** करोतु ॥ १५ । ५१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (चेकितानः) विज्ञान से युक्त (सत्पतिः) श्रेष्ठों के पालक आप—(वाचः) वाणी के (मध्यम्) मध्य को प्राप्त करके—जैसे यह (भुरण्युः) पोषक (अग्निः) विद्वान् (पृथिव्याः) भूमि के (पृष्ठे) ऊपर (निहित) विद्यमान होकर (दविद्युतत्) प्रकाश करता है (आ+अरुहत्) ऊँचा उठता है, उससे (ये) जो (पृतन्यवः) युद्ध के लिए अपनी सेना की इच्छा वाले शत्रु हैं उन्हें (अधस्पदम्) पद-च्युत (कृणुताम्) करो ॥ १५ । ५१ ॥

[हे विद्वन् !—यथा—अग्निः पृथिव्याः पृष्ठे निहितो दविद्युतत्—तेन ये पृतन्यवस्तानधस्पदं कृणुताम्]

भावार्थः—विद्वांसो राजानो यथेश्वरो ब्रह्माण्डस्य मध्ये सूर्यं निधाय सर्वान् सुखेनोपकरोति, तथैव राज्यमध्ये विद्याबले धृत्वा, शत्रून् जित्वा प्रजास्थान् मनुष्यानुपकुर्य्युः ॥ १५ । ५१ ॥

भावार्थ—विद्वान् राजा—जैसे ईश्वर ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य को रख कर सबका सुख से उपकार करता है, वैसे ही राज्य में विद्या और बल को धारण करके, शत्रुओं को जीतकर प्रजाजनों का उपकार करें ॥ १५ । ५१ ॥

भा० पदार्थः--अग्निः=विद्वान् राजा, ईश्वरः । पृथिव्याः=ब्रह्माण्डस्य । पृतन्यवः=शत्रवः ।

भाष्यसार—**राजा का कर्त्तव्य**—राजा स्वयं विद्वान् होकर श्रेष्ठ पुरुषों का पालन किया करे । जैसे पृथिवी के ऊपर सबका पोषक सूर्य सबको प्रकाशित करता है, वैसे ही राजा अपने राज्य में विद्या के प्रकाश से अविद्यादि क्लेशों को नष्ट करने वाले विद्वान् पुरुषों को बढ़ावे । जो शत्रु-तुल्य अविद्या को फैलाने वाले पुरुष हों, उनको सदा तिरस्कृत करके प्रजा का उपकार किया करे ।। १५ । ५१ ।।

परमेष्ठी । **अग्निः**=**धर्मात्मा** ।। निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

धार्मिकजनवदितरैर्वर्तितव्यमित्याह ।।

धर्मात्माओं के तुल्य अन्य लोगों को वर्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ।।

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।

विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य ऽ उप प्र याहि दिव्यानि धाम ।। ५२ ।।

पदार्थः--(**अयम्**) (**अग्निः**) पावक इव सेनापतिः (**वीरतमः**) वेति=स्वबलेन शत्रुबलं व्याप्नोति सोऽतिशयितः (**वयोधाः**) **यः** सर्वेषां जीवनं दधाति सः (**सहस्रियः**) सहस्रेणासङ्ख्यातेन योद्धृसमूहेन सम्मितस्तुल्यः (**द्योतताम्**) प्रकाशताम् (**अप्रयुच्छन्**) अप्रमाद्यन् (**विभ्राजमानः**) विशेषेण विद्यान्यायाभ्यां देदीप्यमानः (**सरिरस्य**) अन्तरिक्षस्य (**मध्ये**) (**उप**) (**प्र**) (**याहि**) प्राप्नुहि (**दिव्यानि**) (**धाम**) जन्मकर्मस्थानानि ।। ५२ ।।

अन्वयः—योऽयं वीरतमो वयोधाः सहस्रियः सरिरस्य मध्ये विभ्राजमानोऽप्रयुच्छन्नग्निरिव स भवान् द्योतताम् । दिव्यानि धाम धामानि त्वमुपप्रयाहि ।। ५२ ।।

सपदार्थान्वयः—**योऽयं वीरतमः** वेति=स्वबलेन शत्रुबलं व्याप्नोति सोऽतिशयितः **वयोधाः** यः सर्वेषां जीवनं दधाति सः **सहस्रियः** सहस्रेणासङ्ख्यातेन योद्धृसमूहेन सम्मितस्तुल्यः **सरिरस्य** अन्तरिक्षस्य **मध्ये विभ्राजमानः** विशेषेण विद्यान्यायाभ्यां देदीप्यमानः **अप्रयुच्छन्** अप्रमाद्यन् **अग्निः** पावक इव सेनापतिः **इव स भवान् द्योततां** प्रकाशताम् । **दिव्यानि धाम**=**धामानि** जन्मकर्मस्थानानि **त्वमुपप्रयाहि** प्राप्नुहि ।। १५ । ५२ ।।

भाषार्थ—जो (अयम्) यह (वीरतमः) अपने बल से शत्रु के बल को अत्यन्त व्याप्त करने वाला, (वयोधाः) सबके जीवन को धारण करने वाला, (सहस्रियः) सहस्र=असंख्य योद्धाओं के तुल्य, (सरिरस्य) अन्तरिक्ष के मध्य में (विभ्राजमानः) विशेष रूप से विद्या और न्याय से देदीप्यमान, (अप्रयुच्छन्) प्रमादरहित (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति है, सो वह (द्योतताम्) सर्वत्र प्रकाशित हो, (दिव्यानि) प्रकाशयुक्त (धाम) जन्म, कर्म और स्थान को तू (उपप्रयाहि) प्राप्त कर ।। १५ । ५२ ।।

[**यो ऽयम् अप्रयुच्छन्, वयोधाः, विभ्राजमानः, भवान् द्योतताम्**]

भावार्थः—मनुष्या धार्मिकैर्जनैः सहोषित्वा प्रमादं विहाय, जितेन्द्रियत्वेन जीवनं वर्धयित्वा विद्याधर्मानुष्ठानेन पवित्रा भूत्वा परोपकारिणः सन्तु ।। १५ । ५२ ।।

भावार्थ—मनुष्य—धार्मिक जनों के साथ रहकर, प्रमाद को छोड़कर जितेन्द्रियता से जीवन=आयु को बढ़ाकर, विद्या और धर्माचरण से पवित्र होकर परोपकारी होवें ।। १५ । ५२ ।।

भा० पदार्थः—अप्रयुच्छन्=प्रमादं विहाय। वयोधाः=जितेन्द्रियत्वेन जीवनं वर्धयिता। विभ्राजमानः=विद्याधर्मानुष्ठानेन पवित्रः।

भाष्यसार—**धर्मात्मा मनुष्य का जीवन**—धार्मिक मनुष्य अपने धर्म के बल में इतना बढ़ा हुआ हो कि अधर्म उसे दबा न सके। वह जितेन्द्रिय होकर अपने जीवन की शिक्षा से दूसरों के जीवनों को धारण करने वाला हो। वह धर्म-युक्त कार्यों में कभी प्रमाद न करे। जैसे असंख्य योद्धाओं को जीतने वाला सेनापति सर्वत्र प्रकाशित होता है, वैसे ही धार्मिक-जन विद्या और न्याय से सदा प्रकाशित रहे। और सत्कर्मों के कारण उत्तम जन्म, कर्म तथा स्थानों को प्राप्त करे॥ १५। ५२॥

परमेष्ठी। **अग्निः=विद्वान्**। भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

कथं विवाहं कृत्वा किं कुर्य्यातामित्याह॥

स्त्री पुरुष कैसे विवाह करके क्या करें, यह उपदेश किया है॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम्॥ ५३॥

पदार्थः—(**संप्रच्यवध्वम्**) सम्यग्गच्छत (**उप**) (**संप्रयात**) सम्यक् प्राप्नुत (**अग्ने**) विद्वन्! (**पथः**) मार्गान् (**देवयानान्**) देवा=धार्मिका यान्ति येषु तान् (**कृणुध्वम्**) कुरुत (**पुनः**) (**कृण्वाना**) कुर्वन्तौ (**पितरा**) पालकौ मातापितरौ (**युवाना**) पूर्णयुवावस्थास्थौ। **अत्र सर्वत्र विभक्तेराकारादेशः** (**अन्वातांसीत्**) पश्चात् समन्तात्तनुताम्। **अत्र वचनव्यत्ययेन द्विवचनस्थान एकवचनम्** (**त्वयि**) पितामहे विद्यमाने सति (**तन्तुम्**) सन्तानम् (**एतम्**) गर्भाधानादिरीत्या यथोक्तम्॥ ५३॥

प्रमाणार्थ—(**कृण्वाना**) (**पितरा**) (**युवाना**) यहाँ सर्वत्र विभक्ति को आकार-आदेश है। (**अन्वातांसीत्**) पश्चात्समन्तात् तनुताम्। यहाँ वचन-व्यत्यय से द्विवचन के स्थान में एकवचन है।

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं विद्या उपसम्प्रयात देवयानान् पथः सम्प्रच्यवध्वं धर्मं कृणुध्वम्। हे अग्ने! त्वयि पितामहे विद्यमाने सति पितरा ब्रह्मचर्य्यं कृण्वाना युवाना भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा पुनरेतं तन्तुमन्वातांसीत्॥ ५३॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यूयं विद्या उप+सम्प्रयात** सम्यक् प्राप्नुत, **देवयानान्** देवा=धार्मिका यान्ति येषु तान् **पथः** मार्गान् **संप्रच्यवध्वं** सम्यग् गच्छत, **धर्मं कृणुध्वं** कुरुत।

हे **अग्ने** विद्वन्! **त्वयि=पितामहे विद्यमाने सति पितरा** पालकौ मातापितरौ **ब्रह्मचर्य्यं कृण्वाना** कुर्वन्तौ **युवाना** पूर्णयुवावस्थास्थौ **भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा पुनरेतं** गर्भाधानादिरीत्या यथोक्तं **तन्तुं** सन्तानम् **अन्वातांसीत्** पश्चात्

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—विद्याओं को (उप+संप्रयात) उत्तम रीति से प्राप्त करो, (देवयानान्) धार्मिक विद्वान् जिन मार्गों पर चलते हैं उन (पथः) मार्गों पर (सम्प्रच्यवध्वम्) उत्तम रीति से चलो, और धर्म का आचरण (कृणुध्वम्) करो।

हे (अग्ने) विद्वान्! (त्वयि) तुझ पितामह=दादा के विद्यमान रहते हुए (पितरा) पालक माता-पिता ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान (कृण्वाना) करते हुए (युवाना) पूर्ण युवावस्था वाले होकर स्वयं विवाह करके (पुनः) फिर (एतम्) यथोक्त

समन्तात्तनुताम् ॥ १५ । ५३ ॥

गर्भाधान आदि की रीति से (तन्तुम्) सन्तान का (अन्वातांसीत्) सब ओर विस्तार करें ॥१५।५३॥

[हे मनुष्याः ! यूयं विद्या उपसम्प्रयात]

भावार्थः—कुमारा धर्म्येण सेवितब्रह्मचर्येण पूर्णा विद्या अधीत्य, स्वयं धार्मिका भूत्वा—

भावार्थ—कुमार धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य के सेवन से पूर्ण विद्याओं को पढ़कर, स्वयं धार्मिक होकर—

[ब्रह्मचर्यं कृण्वाना युवाना भूत्वा स्वयंवरं विवाहं कृत्वा]

पूर्णयुवावस्थायां प्राप्तायां कन्यानां पुरुषाः, पुरुषाणां च कन्याः परीक्षां कृत्वाऽत्यन्तप्रीत्याऽऽकर्षितहृदयाः स्वेच्छया विवाहं विधाय—

पूर्ण युवावस्था प्राप्त होने पर कन्याओं की पुरुष और पुरुषों की कन्याएँ परीक्षा करके, अत्यन्त प्रीति से आकर्षित हृदय वाले होकर, स्वेच्छा से विवाह करके—

[पुनरेतं तन्तुमन्वातांसीत्]

धर्मेण सन्तानानुत्पाद्य सेवया मातापितरौ च सन्तोष्य—

धर्मपूर्वक सन्तानों को उत्पन्न कर, सेवा से माता-पिता को सन्तुष्ट करके—

[देवयानान् पथः संप्रच्यवध्वम्]

आप्तानां विदुषां मार्गं सततमन्वाययुः ।

आप्त विद्वानों के मार्ग का सदा अनुसरण करें ।

यथा सरलान् धर्ममार्गान् कुर्युस्तथैव भूमिजलान्तरिक्षमार्गानपि निष्पादयेरन् ॥ १५ । ५३ ॥

जैसे सरल धर्म-मार्गों को सिद्ध करें वैसे ही भूमि, जल और आकाश के मार्गों को भी सिद्ध करें ॥ १५ । ५३ ॥

भा० पदार्थः—देवयानान्=आप्तानां विदुषां मार्गान् । सरलान् धर्ममार्गान् । भूमिजलान्तरिक्षमार्गान् ॥

भाष्यसार—**विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य**—विद्वान् स्त्री-पुरुषों को उचित है कि वे पूर्ण युवावस्था में विवाह करके उत्तम विद्याओं की प्राप्ति का प्रयत्न किया करें, और धर्म का आचरण करें । जिस मार्ग पर धार्मिक-विद्वान् चलते हों, उसका सदा अनुसरण किया करें । जो पिता, माता, पितामहादि वृद्ध घर में हैं उनकी सेवा करते हुए सदा प्रसन्न रक्खें । और वंश-लता के तन्तु रूप सन्तान को उत्पन्न करके उनको योग्य बनावें ॥ १५ । ५३ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्याप्रकाशितौ स्त्रीपुरुषौ** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विवाह विषयक फिर उपदेश किया है ॥

उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयं च ।

अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(उत्) उत्कृष्टरीत्या (**बुध्यस्व**) जानीहि (**अग्ने**) विद्यया सुप्रकाशिते स्त्रि पुरुष वा (**प्रति**) (**जागृहि**) अविद्यानिद्रां त्यक्त्वा विद्यया चेत (**त्वम्**) स्त्री (**इष्टापूर्त्ते**) इष्टं=सुखं विद्वत्सत्करण-मीश्वराराधनं सत्संगतिकरणं सत्यविद्यादिदानं च, पूर्तं=पूर्णबलं ब्रह्मचर्य्यं विद्यालंकरणं पूर्णं यौवनं पूर्णं साधनोपसाधनं च ते (**सम्**) सम्यक् (**सृजेथाम्**) निष्पादयेतम्। **अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्** (**अयम्**) पुरुषः (**च**) (**अस्मिन्**) वर्तमाने (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अधि**) उपरि (**उत्तरस्मिन्**) आगामिनि (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**यजमानः**) पुरुषः (**च**) स्त्री (**सीदत**) अवस्थिता भवत ॥ ५४ ॥

प्रमाणार्थ—(सृजेथाम्)। यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वमुद्बुध्यस्व सर्वान् प्रति जागृहि त्वमयं चास्मिन्त्सधस्थ उत्तरस्मिँश्च सदेष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्। विश्वे देवा यजमानश्चैतस्मिन्नधि सीदत ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्यया सुप्रकाशिते स्त्रि पुरुष वा ! **त्वं** स्त्री **उद्बुध्यस्व** उत्कृष्टरीत्या जानीहि, **सर्वान् प्रतिजागृहि** अविद्या-निद्रां त्यक्त्वा विद्यया चेत। **त्वं** स्त्री **अयं** पुरुषः **चास्मिन्** वर्त्तमाने **सधस्थे** सहस्थाने **उत्तरस्मिन्** आगामिनि **च सदेष्टापूर्त्ते** इष्टं=सुखं विद्वत्सत्करण-मीश्वराराधनं सत्संगतिकरणं सत्यविद्यादिदानं च, पूर्त्तं=पूर्णबलं ब्रह्मचर्य्यं विद्यालङ्करणं पूर्णं यौवनं पूर्णं साधनोपसाधनं च ते **संसृजेथां** सम्यक् निष्पादयेतम्,

विश्वे सर्वे देवाः विद्वांसः **यजमानः** पुरुषः **च** स्त्री **एतस्मिन् अधि** उपरि **सीदत** अवस्थिता भवत ॥ १५ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरुष ! तू—(उद्+बुध्यस्व) उत्कृष्ट रीति से ज्ञान प्राप्त कर, सब के (प्रति) प्रति (जागृहि) अविद्या-निद्रा को छोड़ कर विद्या से सचेत रह। (त्वम्) तू स्त्री (अयं च) और यह पुरुष दोनों—(अस्मिन्) इस (सधस्थे) जगत् में और (उत्तर-स्मिन्) परलोक में भी सदा (इष्टापूर्त्ते) इष्ट अर्थात् सुख, विद्वानों का सत्कार, ईश्वर की आराधना, सत्संगति और सत्य-विद्या आदि का दान, पूर्त अर्थात् पूर्ण बल, ब्रह्मचर्य, विद्या से अलंकृत होना, पूर्ण यौवन और पूर्ण साधन-उपसाधनों को (संसृजेथाम्) उत्तम रीति से सिद्ध करो। और—

(विश्वे) सब (देवाः) विद्वान्, (यजमानः) पुरुष (च) और स्त्री इस कार्य में (अधि) ऊपर (सीदत) विद्यमान रहें ॥ १५ । ५४ ॥

[हे अग्ने ! ··· यजमानश्चैतस्मिन्नधिसीदत]

भावार्थः—यथाऽग्नि-यजमानौ सुखं पूर्णां सामग्रीं च साध्नुतस्तथा कृतविवाहाः स्त्रीपुरुषा अस्मिन् जगति समाचरन्तु।

भावार्थ—जैसे अग्नि और यजमान सुख और पूर्ण-सामग्री को सिद्ध करते हैं वैसे विवाहित स्त्री-पुरुष इस जगत् में आचरण करें।

[अस्मिन् सधस्थे—सदेष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्]

यदा विवाहाय दृढप्रीती स्त्रीपुरुषौ भवेतां तदा विदुष आहूयैतेषां सन्निधौ वेदोक्ताः प्रतिज्ञाः कृत्वा पतिः पत्नी च भवेताम् ॥ १५ । ५४ ॥

जब विवाह के लिए दृढ़ प्रीतियुक्त, स्त्री-पुरुष होवें तब विद्वानों को बुलाकर इनके पास वेदोक्त प्रतिज्ञाएँ करके पति और पत्नी बनें ॥ १५ । ५४ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है—'उद्बुध्यस्वाग्ने०। ४। बुध का मन्त्र (**सत्यार्थ० समु० ११**) ॥

(ख) अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे—"ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने०" (**संस्कार-विधि सामान्यप्रकरण**) ॥

(ग) (**उद्बुध्यस्वाग्ने**) हे परमेश्वर ! हमारे हृदय में प्रकाशित हूजिये (**प्रति, जागृहि**) अविद्या की अन्धकार रूप निद्रा से हम सब जीवों को अलग करके विद्यारूप सूर्य के प्रकाश से प्रकाशमान कीजिए कि जिससे (**त्वमिष्टापूर्त्ते**) हे भगवान् ! मनुष्य देह धारण करने वाला जो जीव है, जैसे वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सामग्री की पूर्त्ति कर सके वैसे आप इष्टसिद्धि कीजिए (**अस्मिन्त्सधस्थे**) इस लोक इस शरीर तथा (**अध्युत्तरस्मिन्**) परलोक और दूसरे जन्म में (**विश्वे देवा यजमानश्च सीदत**) आप की कृपा से सब विद्वान् और यजमान अर्थात् विद्या के उपदेश का ग्रहण और सेवा करने वाले मनुष्य लोग सुख से वर्त्तमान सदा बने रहें कि जिससे हम लोग विद्या-युक्त होते रहें ।

'व्यत्ययो बहुलम्' इस सूत्र से (**संसृजेथाम्**) (**सीदत**) इन प्रयोगों में पुरुष-व्यत्यय अर्थात् प्रथम पुरुष की जगह मध्यम पुरुष हुआ है ।

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य**—विद्या से प्रकाशित स्त्री-पुरुष सदा उत्कृष्ट रीति से व्यवहार करें, ज्ञान-प्राप्ति के लिए निष्ठावान् होकर दूसरों के अविद्यान्धकार को दूर करें। दोनों स्त्री-पुरुष विद्वानों का सत्कार, ईश्वर की उपासना, सत्संगतिकरण और विद्या का दान रूप इष्ट सुखों को तथा ब्रह्मचर्य के पालन से पूर्णबल को प्राप्त किया करें । जिससे इहलोक तथा परलोक सुखमय बन सकें । सभी विद्वान् और यजमान इस कार्य में सदा सहयोग देते रहें ॥ १५ । ५४ ॥

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विवाह विषयक फिर उपदेश किया है ॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्र॒ꣳ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् । तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**येन**) प्रतिज्ञातेन कर्मणा (**वहसि**) (**सहस्रम्**) असंख्यं गृहाश्रम-व्यवहारम् (**येन**) विज्ञानेन (**अग्ने**) विद्वन् विदुषि वा (**सर्ववेदसम्**) सर्वैर्वेदैरुक्तं कर्म (**तेन**) (**इमम्**) गृहाश्रमम् (**यज्ञम्**) संगन्तव्यम् (**नः**) अस्मान् (**नय**) (**स्वः**) सुखम् (**देवेषु**) विद्वत्सु (**गन्तवे**) गन्तुं=प्राप्तुम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं देवेषु स्वर्गन्तवे येन सहस्रं वहसि येन सर्ववेदसं वहसि तेनेमं यज्ञं नोऽस्मान्नय ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् विदुषि वा ! त्वं **देवेषु** विद्वत्सु **स्वः** सुखं **गन्तवे** गन्तुं=प्राप्तुं **येन** प्रतिज्ञातेन कर्मणा **सहस्रम्** असङ्ख्यं गृहाश्रमव्यवहारं **वहसि, येन** विज्ञानेन **सर्ववेदसं** सर्वैर्वेदैरुक्तं कर्म **वहसि, तेनेमं** गृहाश्रमं **यज्ञं** संगन्तव्यं **नः**=अस्मान् **नय** ॥ १५ । ५५ ॥

भावार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् वा विदुषी ! तू—(देवेषु) विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त करने के लिए (येन) जिस प्रतिज्ञात कर्म से (सहस्रम्) सहस्र=असंख्य गृहाश्रम के व्यवहार को (वहसि) वहन करती है, (येन) जिस विज्ञान से (सर्ववेदसम्) सब वेदों के द्वारा प्रतिपादित कर्म को (वहसि) प्राप्त करती है, उस कर्म से (इमम्) इस (यज्ञम्) संग के योग्य गृहाश्रम को (नः) हमें (नय) प्राप्त करा ॥ १५ । ५५ ॥

[हे अग्ने ! त्वं······इमं यज्ञं नः=अस्मान् नय]

भावार्थः—विवाह प्रतिज्ञास्वियमपि प्रतिज्ञा कारयितव्या—

हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां यथा स्वहितायाचरतं तथाऽस्माकं माता-पिताचार्यातिथीनां सुखायापि सततं वर्त्तेयाथामिति ॥ १५ । ५५ ॥

भावार्थ—विवाह की प्रतिज्ञाओं में यह भी प्रतिज्ञा करावें—

हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—जैसे अपने हित के लिए आचरण करते हो वैसे हम माता, पिता, आचार्य और अतिथि जनों के सुख के लिए भी सदा वर्ताव करो ॥ १५ । ५५ ॥

भाष्यसार—**विवाहित स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य**—विवाह करके स्त्री-पुरुष गृहाश्रम के असंख्य कर्त्तव्यों को और वेदोक्त कर्मों को करते हुए इस बात का अवश्य ध्यान रक्खें कि सुख प्राप्त करने के लिए देवता तुल्य माता-पिता, आचार्य और विद्वान् अतिथियों को अन्नादि से तृप्त रक्खें और उनको किसी प्रकार का दुःख न होने देवें। ऐसा करने से गृहस्थ रूपी यज्ञ पूर्ण रूप से सफल होता है ॥ १५ । ५५ ॥

परमेष्ठी। **अग्निः=विद्वान्**। निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विवाह विषयक फिर उपदेश किया है ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं जानन्नग्नऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥५६॥

पदार्थः—(अयम्) (ते) तव (**योनिः**) गृहम् (**ऋत्वियः**) ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः (**यतः**) यस्य विद्याध्ययनस्याध्यापनस्य च सकाशात् (**जातः**) जाता च (**अरोचथाः**) प्रदीप्येथाः (**तम्**) (**जानन्**) जानन्ती च (**अग्ने**) विद्वन् विदुषि ! च (**आ**) (**रोह**) (**अथ**) आनन्तर्य्ये। **निपातस्य चेति दीर्घः** (**नः**) अस्माकम् (**वर्धय**) **अन्येषामपीति दीर्घः** (**रयिम्**) संपत्तिम् ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(अथ) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से मन्त्र में दीर्घ है। (वर्धय) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! योऽयं ते तव ऋत्वियो योनिरस्ति यतो जातो जाता त्वं चारोचथास्तं जानन् जानन्ति चारोहाथ नो रयिं वर्धय ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् विदुषि च ! **योऽयं ते=तव ऋत्वियः** ऋतुः प्राप्तोऽस्य सः **योनिः** गृहम् **अस्ति, यतः** यस्य विद्याध्ययनस्याध्यापनस्य च सकाशाद् **जातः=जाता,** जाता च **त्वं चाऽरोचथाः** प्रदीप्येथाः, **तं जानन्=जानन्ती चारोह । अथ** आनन्तर्य्ये **नः** अस्माकं **रयिं** सम्पत्ति **वर्धय** ॥ १५ । ५६ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् और विदुषी ! जो—(अयम्) यह (ते) तेरा (ऋत्वियः) ऋतु के अनुसार (योनिः) घर है, (यतः) जिस विद्या के पठन-पाठन से (जातः) प्रसिद्ध होकर तू (अरोचथाः) प्रकाशित हो, (तम्) उस घर को (जानन्) जानता और जानती हुई (आरोह) उन्नति कर (अथ) और—(नः) हमारी (रयिम्) सम्पत्ति को (वर्धय) बढ़ा ॥ १५ । ५६ ॥

[हे अग्ने ! योऽयं ते=तव ऋत्वियो योनिरस्ति, यतो जातो जाता त्वं चारोचथाः]

भावार्थः—विवाहे स्त्रीपुरुषाभ्यामियमपि द्वितीया प्रतिज्ञा कारयितव्या—

येन ब्रह्मचर्येण यया विद्यया च युवां स्त्रीपुरुषौ कृतकृत्यौ भवथस्तत् तां च सदैव प्रचारयतम् ।

भावार्थ—विवाह में स्त्री-पुरुषों से यह भी दूसरी प्रतिज्ञा करावें—

जिस ब्रह्मचर्य और जिस विद्या से तुम दोनों स्त्री-पुरुष कृत-कृत्य होते हो उसका सदा प्रचार करो ।

[अथो नो रयिं वर्धय]

पुरुषार्थेन धनादिकं च वर्धयित्वैतत् सन्मार्गे वीतम् ।

पुरुषार्थ से धन आदि को बढ़ा कर इसे सन्मार्ग में व्यय करो ।

[उपसंहरति—]

इत्येतत् सर्वं हेमन्तस्य ऋतोर्व्याख्यानं समाप्तम् ।। १५ । ५६ ।।

यह सब हेमन्त ऋतु की व्याख्या समाप्त हुई ।। १५ । ५६ ।।

भा० पदार्थः—अरोचथाः=कृतकृत्यो भव । रयिम्=धनादिकम् ।।

भाष्यसार—**गृहस्थियों को उपदेश**—विवाहित स्त्री-पुरुषों का कर्त्तव्य यह है कि वे जिस विद्या के पठन-पाठन से योग्य होकर प्रदीप्त हो रहे हैं, उस विद्या से सन्तानादि को भी प्रकाशित करें । और अपने घर को प्रत्येक ऋतु के योग्य बनावें । सभी ऋतुओं में सुख देने वाले घर ही उत्तम घर होते हैं । सदा दोनों मिलकर सब प्रकार के ऐश्वर्यों को पुरुषार्थ से उत्पन्न कर उन्नति के पथ पर आरूढ़ रहें ।। १५ । ५६ ।।

परमेष्ठी । **शिशिरर्तु**ः=स्पष्टम् ।। स्वराडुत्कृतिः । षड्जः ।।

अथ शिशिरस्य ऋतोर्वर्णनमाह ।।

अब शिशिर ऋतु का वर्णन किया जाता है ।।

तप॑श्च तप॒स्य॒श्च शैशि॑रावृ॒तू ऽ अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ऽ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ्‌ मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः । ये ऽ अ॒ग्नयः॒ सम॑नसो॒ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी ऽ इ॒मे शैशि॑रावृ॒तू ऽ अ॑भि॒कल्प॑माना॒ ऽ इन्द्र॑मिव दे॒वा ऽ अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ।। ५७ ।।

पदार्थः—(**तपः**) यस्तापहेतुः स माघो मासः (**च**) (**तपस्यः**) तपो=धर्मो विद्यतेऽस्मिन् स फाल्गुनो मासः (**च**) (**शैशिरौ**) शिशिरर्त्तौ भवौ (**ऋतू**) स्वलिङ्गप्रापकौ (**अग्नेः**) (**अन्तःश्लेषः**) मध्यप्रवेशः (**असि**) (**कल्पेताम्**) (**द्यावापृथिवी**) (**कल्पन्ताम्**) (**आपः**)(**ओषधयः**) (**कल्पन्ताम्**) (**अग्नयः**) पावकाः (**पृथक्**) (**मम**) (**ज्यैष्ठ्याय**) (**सव्रताः**) समाननियमाः (**ये**) (**अग्नयः**) (**समनसः**) समानमनोनिमित्ताः (**अन्तरा**) मध्ये (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी (**इमे**) (**शैशिरौ**) शिशिरऋतुसंपादकौ (**ऋतू**) (**अभिकल्पमानाः**) संपादयन्तः (**इन्द्रमिव**) ऐश्वर्य्यमिव (**देवाः**) विद्वांसः (**अभिसंविशन्तु**) (**तया**) (**देवतया**) पूज्यतमया व्याप्तया ब्रह्माख्यया सह (**अङ्गिरस्वत्**) प्राणवत् (**ध्रुवे**) दृढे (**सीदतम्**) सीदतः ।। ५७ ।।

अन्वयः—हे ईश्वर ! मम ज्यैष्ठ्याय तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू सुखकारकौ भवतः । त्वं

ययोरग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ताभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेतामाप ओषधयश्च कल्पन्ताम् । सव्रता अग्नयः पृथक् कल्पन्तां ये समनसोऽग्नय इमे द्यावापृथिवी अन्तरा शैशिरावृतू अभिकल्पमानाः सन्ति तानिन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु । हे स्त्रीपुरुषौ ! युवां तया देवतया सहाङ्गिरस्वद् वर्त्तमानौ ध्रुवे द्यावापृथिवी इव सीदतम् ।। ५७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे ईश्वर ! **मम ज्यैष्ठ्याय तपः** यस्तापहेतुः च माघो मासः **च तपस्यः** तपो=धर्मो विद्यतेऽस्मिन् स फाल्गुनो मासः **च शैशिरौ** शिशिरर्त्तौ भवौ **ऋतू** स्वलिङ्गप्रापकौ **सुखकारकौ भवतः** । **त्वं ययोरग्नेरन्तः श्लेषः** मध्यप्रवेशः **असि, ताभ्यां द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी **कल्पेतां** समर्थेताम्, **आप ओषधयश्च कल्पन्तां** समर्थन्ताम् **सव्रताः** समाननियमाः **अग्नयः** पावकाः **पृथक् कल्पन्तां** समर्थन्ताम् ।

भाषार्थ—हे ईश्वर ! (मम) मेरी (ज्यैष्ठ्याय) श्रेष्ठता के लिए (तपः) ताप का हेतु माघ मास (च) और (तपस्यः) तप=धर्म, गर्मी से युक्त फाल्गुन मास हैं वह (शैशिरौ) शिशिर-सम्बन्धी (ऋतु) अपने लक्षणों को प्राप्त करने वाले, सुखकारक ऋतु हैं । तू जिनकी (अग्नेः) अग्नि के (अन्तःश्लेषः) मध्य में श्लिष्ट=प्रविष्ट (असि) है, उनसे—(द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (कल्पेताम्) समर्थ हों, (आपः) जल और (ओषधयः) ओषधियाँ (कल्पन्ताम्) समर्थ हों, (सव्रताः) समान नियम वाली (अग्नयः) अग्नियाँ (पृथक्) पृथक् (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।

ये **समनसः** समानमनोनिमित्ताः **अग्नयः** पावकाः **इमे द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी **अन्तरा** मध्ये **शैशिरौ** शिशिरऋतुसंपादकौ **ऋतू अभिकल्पमानाः** सम्पादयन्तः **सन्ति, तान् इन्द्रमिव** ऐश्वर्यमिव **देवाः** विद्वांसः **अभिसंविशन्तु** आभिमुख्येन सम्यक् प्रविशन्तु ।

(ये) जो (समनसः) समान रूप से मन की निमित्त (अग्नयः) अग्नियाँ हैं (इमे) ये (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के (अन्तरा) मध्य में (शैशिरौ) शिशिर (ऋतू) ऋतु को (अभिकल्पमानाः) सिद्ध करने वाली हैं, उन अग्नियों में (इन्द्रमिव) ऐश्वर्य के समान (देवाः) विद्वान् लोग (अभिसंविशन्तु) ज्ञान से प्रविष्ट हों ।

हे **स्त्रीपुरुषौ ! युवां तया देवतया** पूज्यतमया व्याप्तया ब्रह्माख्यया **सहाङ्गिरस्वत्** प्राणवद् **वर्त्तमानौ ध्रुवे** दृढे **द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी **इव सीदतं** सीदतः ।। १५ । ५७ ।।

हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों—(तया) उस (देवतया) पूज्यतम, व्याप्त, ब्रह्म नामक देवता के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान वर्तमान होकर (ध्रुवे) दृढ़ (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के समान (सीदतम्) स्थिर रहो ।। १५ । ५७ ।।

[हे ईश्वर ! मम ··· शैशिरावृतू सुखकारकौ भवतः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ।। मनुष्यैः प्रत्यृतुसुखमीश्वरादेव याचनीयम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ।। मनुष्य प्रत्येक ऋतु का सुख ईश्वर से ही मांगें ।

[त्वं ययोरग्नेरन्तः श्लेषोऽसि ताभ्यां द्यावापृथिवी कल्पेताम् —]

ईश्वरस्य विद्युदन्तःप्रविष्टत्वात् सर्वे पदार्थाः स्वस्वनियमेन समर्था भवन्ति ।

विद्युत् के अन्तःप्रविष्ट होने से ईश्वर के सब पदार्थ अपने-अपने नियम से समर्थ होते हैं ।

[इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु]

विद्वांसः सर्वपदार्थगतविद्युदग्नीनां गुणदोषान् विजानन्तु ।

विद्वान्—सब पदार्थों में व्याप्त विद्युत् रूप अग्नियों के गुण और दोषों को जानें ।

[हे स्त्रीपुरुषौ युवां ...ध्रुवे...सीदतम्]

स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे स्थिरमति शैशिरं सुखं भुञ्जाताम् ॥ १५ । ५७ ॥

स्त्री-पुरुष गृहाश्रम में स्थिर मति होकर शिशिर ऋतु के सुख को भोगें ॥ १५ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—अग्नेः=विद्युतः । कल्पेताम्=स्वस्वनियमेन समर्थौ भवेताम् । अभिसं-विशन्तु=विजानन्तु ॥

भाष्यसार—१. **शिशिर-ऋतु का वर्णन**—माघ और फाल्गुन मासों में शिशिर-ऋतु होती है । इस समय सर्दी कम होने लगती है और गर्मी बढ़ने लगती है । जीवन को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि इस ऋतु में यम-नियमादि व्रतों का पालन करना चाहिए, जिससे सभी ओषधियाँ, जल और प्रकाश सुखकारक हो सकें और जीवन स्वस्थ रहने से विद्वानों की तरह श्रेष्ठ बन सके ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । इन्द्र की तरह सब विद्वान् सब पदार्थों में विद्यमान विद्युदग्नि के गुण दोषों को जानें ॥ १५ । ५७ ॥

परमेष्ठी । **विदुषी**=स्पष्टम् । भुरिग् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

स्त्रिया किं कार्यमित्याह ॥

स्त्री को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् ।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**परमेष्ठी**) परम आकाशेऽभिव्याप्य स्थितः, (**त्वा**) (**सादयतु**) स्थापयतु (**दिवः**) प्रकाशस्य (**पृष्ठे**) उपरि (**ज्योतिष्मतीम्**) प्रशस्तानि ज्योतींषि=ज्ञानानि विद्यन्तेऽस्यां ताम् (**विश्वस्मै**) सर्वस्मै (**प्राणाय**) (**अपानाय**) (**व्यानाय**) (**विश्वम्**) सर्वम् (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**यच्छ**) (**सूर्य्यः**) सूर्य्य इव वर्त्तमानः (**ते**) तव (**अधिपतिः**) स्वामी (**तया**) पत्याख्यया (**देवतया**) दिव्यगुणयुक्तया (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवा**) दृढा (**सीद**) स्थिरा भव ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! परमेष्ठी ज्योतिष्मतीं त्वा दिवस्पृष्ठे विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय सादयतु त्वं विश्वं ज्योतिः सर्वाभ्यः स्त्रीभ्यो यच्छ यस्यास्ते तव सूर्य्य इवाधिपतिरस्ति तया देवतया सह वर्त्तमानाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **परमेष्ठी** परम आकाशेऽभिव्याप्य स्थितः **ज्योतिष्मतीं** प्रशस्तानि ज्योतींषि=ज्ञानानि विद्यन्तेऽस्यां तां, **त्वा** त्वां **दिवः** प्रकाशस्य **पृष्ठे** उपरि **विश्वस्मै** सर्वस्मै **प्राणायाऽपानाय व्यानाय सादयतु** स्थापयतु ।

भाषार्थ—हे स्त्री ! (परमेष्ठी) परम=आकाश में व्यापक होकर विद्यमान परमेश्वर—(ज्योतिष्मतीम्) प्रशस्त ज्योति=ज्ञानों वाली (त्वा) तुझको—(दिवः) प्रकाश के (पृष्ठे) ऊपर (विश्वस्मै) सब (प्राणाय) प्राण (अपानाय) अपान

(व्यानाय) और व्यान के लिए (सादयतु) स्थापित करे।

त्वं विश्वं सर्वं **ज्योतिः** प्रकाशं **सर्वाभ्यः स्त्रीभ्यो यच्छ । यस्यास्ते**=तव **सूर्य्य इव** सूर्य्य इव वर्त्तमानः **अधिपतिः** स्वामी **अस्ति, तया** पत्याख्यया **देवतया** दिव्यगुणयुक्तया **सह** वर्त्तमानाऽङ्गिरस्वत् **ध्रुवा** दृढा **सीद** स्थिरा भव ॥ १५ । ५८ ॥

तू—(विश्वम्) सब (ज्योतिः) प्रकाश को सब स्त्रियों को प्रदान कर। जो (ते) तेरा (सूर्यः) सूर्य के समान (अधिपतिः) स्वामी है, (तया) उस पति नामक (देवतया) दिव्य गुणों से युक्त देवता के साथ वर्तमान रहकर (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (ध्रुवा) दृढ़ होकर (सीद) स्थिर रह ॥ ५८ ॥

[हे स्त्रि ! परमेष्ठी······त्वा दिवस्पृष्ठे सादयतु, तया देवतया सह ध्रुवा सीद]

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ येन परमेश्वरेण यः शरद्दतू रचितस्तस्योपासना पुरस्सरं तं युक्त्या सेवित्वा स्त्रीपुरुषाः सुखं सदा वर्धयन्तु ॥ १५ । ५८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचक लुप्तोपमा अलङ्कार हैं॥ जिस परमेश्वर ने जो शरद् ऋतु रची है उसकी उपासनापूर्वक युक्ति से सेवा करके स्त्री-पुरुष सुख को सदा बढ़ावें ॥ १५ । ५८ ॥

भाष्यसार—१. **विदुषी स्त्री का कर्त्तव्य**—प्रशस्त ज्ञानों वाली स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह सब स्त्रियों को विद्या के प्रकाश से प्रकाशित किया करे और उन्हें प्राण, अपान तथा व्यान के लिए समर्थ बनावे। सूर्य के समान पति के साथ प्राणों की तरह स्थिर होकर रहे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है। विदुषी स्त्री सूर्य के समान पति के साथ स्थिर होकर रहे ॥ १५ । ५८ ॥

परमेष्ठी । **इन्द्राग्नी**=धनिविद्वांसौ । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥५९॥

पदार्थः—(**लोकम्**) इमं परं च (**पृण**) सुखय (**छिद्रम्**) (**पृण**) पिपूर्द्धि (**अथो**) (**सीद**) (**ध्रुवा**) निश्चला (**त्वम्**) (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रः=परमैश्वर्य्यश्चाग्निर्विज्ञाता च तौ (**त्वा**) त्वाम् (**बृहस्पतिः**) अध्यापकः (**अस्मिन्**) (**योनौ**) गृहाश्रमे (**असीषदन्**) सादयन्तु ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! त्वं लोकं पृण छिद्रं पृण ध्रुवा सीदाथो इन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चास्मिन् योनौ त्वाऽसीषदन् ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्त्रि ! त्वं लोकम्** इमं परं च **पृण** सुखय, **छिद्रं पृण** पिपूर्द्धि, **ध्रुवा** निश्चला **सीद** स्थिरा भव । **अथो इन्द्राग्नी** इन्द्रः=परमैश्वर्य्यश्चाऽग्निर्विज्ञाता च तौ **बृहस्पतिः** अध्यापकः **चास्मिन् योनौ** गृहाऽऽश्रमे **त्वा** त्वाम् **असीषदन्** सादयन्तु ॥ १५ । ५९ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री ! तू—(लोकम्) इस लोक और परलोक को (पृण) सुखी कर, (छिद्रम्) न्यूनता को (पृण) पूरा कर, (ध्रुवा) निश्चल होकर (सीद) स्थिर रह। (अथो) और—(इन्द्राग्नी) इन्द्र=परम ऐश्वर्यवान् और अग्नि=विद्वान् तथा (बृहस्पतिः) अध्यापक (अस्मिन्)

इस (योनौ) गृहाश्रम में (त्वा) तुझे (असीषदन्) स्थापित करें ॥ १५ । ५९ ॥

[हे स्त्रि !···इन्द्राग्नी बृहस्पतिश्चास्मिन् योनौ त्वासीषदन्]

भावार्थः—सुदक्षया स्त्रिया गृहकृत्यसाधनानि पूर्णानि कृत्वा कार्याणि साधनीयानि ।

भावार्थ—अति चतुर स्त्री—गृह-कार्य के साधनों को पूर्ण करके कार्यों को सिद्ध करे ।

[लोकं पृण, छिद्रं पृण, ध्रुवा सीद]

विदुषां विदुषीणां च गृहाश्रमकृत्येषु प्रीतिर्यथा स्यात् तथोपदेष्टव्यम् ॥ १५ । ५९ ॥

विद्वानों और विदुषियों की गृहाश्रम के कार्यों में जैसे प्रीति होवे वैसा उन्हें उपदेश करे ॥

भाष्यसार—**धनवान् और विद्वान् का कर्त्तव्य**—ऐश्वर्य सम्पन्न और विद्वान् अध्यापक मिल कर ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे गृहस्थी स्त्री पुरुषों की न्यूनताएँ पूरी हो जायें, और सभी साधनों से सम्पन्न होकर इस आश्रम में सुख से रहें ॥ १५ । ५९ ॥

प्रियमेधा । **आपः=प्रजाः** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ राजप्रजाधर्ममाह ॥

अब राजा और प्रजा के धर्म का उपदेश किया जाता है ॥

ता ऽ अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**ताः**) (**अस्य**) सभाध्यक्षस्य (**सूददोहसः**) सूदाः=पाककर्त्तारो दोहसः=प्रपूरकाश्च यासु ताः (**सोमम्**) सोमवल्याद्योषधिरसान्वितं पाकम् (**श्रीणन्ति**) पचन्ति (**पृश्नयः**) प्रष्ठ्यः (**जन्मन्**) जन्मनि (**देवानाम्**) विदुषाम् (**विशः**) या विशन्ति (**त्रिषु**) वेदरीत्या कर्मोपासनाज्ञानेषु (**आ**) (**रोचने**) प्रकाशने (**दिवः**) द्योतनात्मकस्य परमात्मनः ॥ ६० ॥

अन्वयः—या विद्यासुशिक्षान्विता देवानां जन्मन् पृश्नयः सूददोहसस्त्रिषु दिवो रोचने च प्रवर्त्तमाना विशः सन्ति ता अस्य सोममाश्रीणन्ति ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**या विद्यासुशिक्षाऽन्विता देवानां** विदुषां **जन्मन्** जन्मनि **पृश्नयः** प्रष्ठ्यः **सूददोहसः** सूदाः=पाककर्त्तारो दोहसः=प्रपूरकाश्च यासु ताः **त्रिषु** वेदरीत्या कर्मोपासनाज्ञानेषु **दिवः** द्योतनाऽऽत्मकस्य परमात्मनः **रोचने** प्रकाशने **च प्रवर्त्तमाना विशः** या विशन्ति **सन्ति, ता अस्य** सभाध्यक्षस्य **सोमं** सोमवल्ल्याद्योषधिरसान्वितं पाकम् **आ+श्रीणन्ति** पचन्ति ॥१५।६०॥

भाषार्थ—जो विद्या और सुशिक्षा से युक्त (देवानाम्) विद्वानों के (जन्मनि) जन्म के विषय में (पृश्नयः) पूछने वाली, (सूददोहसः) सूद=रसोईया और दूध दुहने का कार्य करने वाली, (त्रिषु) वेद-रीति से ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीनों में और (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के (रोचने) प्रकाशन में लगी हुई (विशः) प्रजा है, वह—(अस्य) इस सभाध्यक्ष के (सोमम्) सोमलता आदि ओषधियों के रस से युक्त पाक को (आ+श्रीणन्ति) पकाती है ॥ १५ । ६० ॥

[या विद्यासुशिक्षाऽन्विता ··विशः सन्ति ता अस्य सोममाश्रीणन्ति]

भावार्थः—प्रजापतिभिः सर्वाः प्रजाः

भावार्थ—प्रजापति=राजा सब प्रजा को

विद्यासुशिक्षाग्रहणे नियोजनीयाः, प्रजाश्च नियुञ्जन्तु । विद्या और सुशिक्षा के ग्रहण करने में लगावे, और प्रजा उक्त कार्य में लगे ।

[त्रिषु दिवो रोचने च प्रवर्त्तमानाः]

न ह्येतेन विना कर्मोपासनाज्ञानेश्वराणां यथार्थो बोधो भवितुमर्हति ॥ १५ । ६० ॥ क्योंकि—इसके विना ज्ञान, कर्म, उपासना और ईश्वर का यथार्थ बोध नहीं हो सकता ॥

भा० पदार्थः—विशः=प्रजाः ।

भाष्यसार—**प्रजा का कर्त्तव्य**—प्रजा विद्या और सुशिक्षा से सम्पन्न होकर विद्वानों से जन्मादि विभिन्न विषयों में प्रश्न पूछने में समर्थ हों । वेदोक्त कर्मों को करती हुई ज्ञान, कर्म और ईश्वर की उपासना में लगी हुई हों । ऐश्वर्य युक्त होकर सोमरसादि उत्तमोत्तम पदार्थों को पकाने वाली और गायादि पशुओं के दूध को दुहने वाली हों ॥ १५ । ६० ॥

मधुच्छन्दा । **इन्द्रः**=**सभेशः** ॥ निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रं॒ विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ । र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑नाꣳ॒ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्तं सभेशम् (**विश्वाः**) अखिलाः (**अवीवृधन्**) वर्धयन्तु (**समुद्रव्यचसम्**) समुद्रस्यान्तरिक्षस्य व्यचो=व्याप्तिर्यस्य तम् (**गिरः**) विद्यासुशिक्षान्विता वाण्यः (**रथीतमम्**) अतिशयितो रथी [**तम्**] । अत्र ईद्रथिनः ॥ ८ । २ । १७ ॥ इति वार्त्तिकेन ईकारादेशः (**रथीनाम्**) शूरवीराणां मध्ये अत्रान्येषामिति दीर्घः (**वाजानाम्**) विज्ञानवताम् (**सत्पतिम्**) सतां=व्यवहाराणां विदुषां वा पालकम् (**पतिम्**) स्वामिनम् ॥ ६१ ॥

प्रमाणार्थ—(**रथीतमम्**) यहाँ 'ईद्रथिनः' (८ । २ । १७) इस वार्त्तिक से ईकार-आदेश है । (**रथीनाम्**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—विश्वा गिरः समुद्रव्यचसं रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं प्रजानां पतिमिन्द्रमवीवृधन् ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—**विश्वाः** अखिलाः **गिरः** विद्यासुशिक्षाऽन्विता वाण्यः **समुद्रव्यचसं** समुद्रस्याऽन्तरिक्षस्य व्यचो=व्याप्तिर्यस्य तम् **रथीनां** शूरवीराणां मध्ये [**रथीतमं**]=अतिशयितो रथी [**तं**] **वाजानां** विज्ञानवतां **सत्पतिं** सतां व्यवहाराणां विदुषां वा पालकं **प्रजानां पतिं** स्वामिनम् **इन्द्रं** परमैश्वर्य्ययुक्तं सभेशम् **अवीवृधन्** वर्धयन्तु ॥ १५ । ६१ ॥

भाषार्थ—(विश्वाः) सब (गिरः) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणियाँ—(समुद्रव्यचसम्) समुद्र=आकाश के समान गुणों की व्याप्ति वाले, (रथीनाम्) शूर-वीरों के मध्य में (रथीतमम्) अत्यन्त शूर-वीर, (वाजानाम्) विज्ञानवान् जनों के एवं (सत्पतिम्) श्रेष्ठ व्यवहारों अथवा विद्वानों के पालक, प्रजा के (पतिम्) स्वामी (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त सभापति को (अवीवृधन्) बढ़ावें ॥ १५ । ६१ ॥

[विश्वा गिर'''इन्द्रमवीवृधन्]

भावार्थः—राजप्रजाजना राजधर्मयुक्तमीश्वरमिव वर्त्तमानं न्यायाधीशं सभापतिं सततं प्रोत्साहयन्तु। एवं सभापतिरेतांश्च ॥

भावार्थ—राजा और प्रजाजन राजधर्म से युक्त, ईश्वर के समान वर्तमान, न्यायाधीश सभापति को सदा प्रोत्साहित करें। और इसी प्रकार सभापति भी इन्हें प्रोत्साहित करे ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रम्=राजधर्मयुक्तमीश्वरमिव वर्त्तमानं न्यायाधीशं सभापतिम्। अवीवृधन्=प्रोत्साहयन्तु ॥

भाष्यसार—**सभापति कैसा हो?**—सभापति सभी प्रकार की विद्या और सुशिक्षा से सम्पन्न होना चाहिए। आकाश के समान सब गुणों में वर्तमान हो, शूरवीरों में अत्यन्त बलवान् और विद्वानों में प्रशस्य विद्या वाला हो। सब प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हो। विद्वानों और श्रेष्ठ व्यवहारों का पालन करने वाला हो। ऐसे गुणों से युक्त सभापति को प्रजा प्रोत्साहित करती है ॥ १५। ६१ ॥

वसिष्ठः। **अग्निः=राजा**। विराट्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के धर्म का फिर उपदेश किया है ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो ऽ अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**प्रोथत्**) पर्याप्नुयात् (**अश्वः**) वाजी (**न**) इव (**यवसे**) बुसाद्याय (**अविष्यन्**) रक्षणादिकं कुर्वन् (**यदा**) (**महः**) महतः (**संवरणात्**) आच्छादनात् (**वि**) (**अस्थात्**) तिष्ठेत् (**आत्**) (**अस्य**) (**वातः**) गन्ता (**अनु**) (**वाति**) गच्छति (**शोचिः**) प्रकाशः (**अध**) अथ (**स्म**) एव (**ते**) तव (**व्रजनम्**) गमनम् (**कृष्णम्**) कर्षकम् (**अस्ति**) ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे राजन्! भवान् यवसेऽश्वो न प्रजाः प्रोथत्। यदा महः संवरणादविष्यन् व्यस्थादादस्य ते तव व्रजनं कृष्णं शोचिरस्ति। अध स्मास्य तव वातोऽनुवाति ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन्! भवान् **यवसे** बुसाद्याय **अश्वः** वाजी **न** इव **प्रजाः प्रोथत्** पर्याप्नुयात्। **यदा महः** महतः **संवरणात्** आच्छादनाद् **अविष्यन्** रक्षणादिकं कुर्वन् **व्यस्थात्** तिष्ठेत्, **आदस्य ते=तव व्रजनं** गमनं **कृष्णं** कर्षकं **शोचिः** प्रकाशः **अस्ति। अध** अथ **स्म** एव **अस्य=तव वातः** गन्ता **अनुवाति** गच्छति ॥ १५। ६२ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! आप—(यवसे) भूसा आदि के लिए (अश्वः) घोड़े के (न) समान प्रजा को (प्रोथत्) सब ओर से प्राप्त करो। (यदा) जब (महः) महान् (संवरणात्) आच्छादन से (अविष्यन्) रक्षा आदि करते हुए (व्यस्थात्) विशेष रूप में स्थित होते हो (आत्) तब (अस्य) सो (ते) आपकी (व्रजनम्) गति और (कृष्णम्) आकर्षक (शोचिः) प्रकाश है। (अध) तत्पश्चात् (स्म) ही (अस्य) आपका (वातः) गतिशील भृत्य (अनुवाति) अनुगमन करता है, आपके पीछे चलता है ॥ १५। ६२ ॥

[हे राजन् ! भवान् यवसेऽश्वो न प्रजाः प्रोथत्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा पालनात् तुरङ्गा पुष्टा भूत्वा कार्यसिद्धिक्षमा भवन्ति, तथैव न्यायेन संपालिता प्रजा: सन्तुष्टा भूत्वा राज्यं वर्धयन्ति ॥ १५ । ६२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—पालन करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य-सिद्धि में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से पालित प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती है ॥ १५।६२ ॥

भा० पदार्थः—अश्वः=तुरङ्गः ॥

भाष्यसार—१. **राज-धर्म**—राजा को प्रजा का पालन इस प्रकार से करना चाहिए, जैसे घोड़े का स्वामी घोड़े को सब प्रकार से पुष्ट करता है। और उसे सुशिक्षित करके उससे कार्यसिद्धि करता है, वैसे ही प्रजा भी सुरक्षित होने से राज्य को बढ़ाती है। प्रजा को राजा नियमादि बनाकर सुव्यवस्था में रक्खे। प्रजा की गति वैसे ही आकर्षक तथा अनुशासित हो, जैसे उत्तम भृत्य अपने स्वामी का अनुगमन करता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। राजा न्याय से प्रजा का पालन करके घोड़े की तरह परिपुष्ट करे और राज्य का कार्य चलावे ॥ १५ । ६२ ॥

वसिष्ठः । **विदुषी**=स्पष्टम् । विराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विदुष्या किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

विदुषी स्त्री को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायायां समुद्रस्य हृदये ।
रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**आयोः**) न्यायानुगामिनो दीर्घजीवितस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सदने**) स्थाने (**सादयामि**) (**अवतः**) रक्षणादिकुर्वतः (**छायायाम्**) आश्रये (**समुद्रस्य**) (**हृदये**) मध्ये (**रश्मीवतीम्**) प्रशस्तविद्या-प्रकाशयुक्ताम्। **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** (**भास्वतीम्**) देदीप्यमानाम् (**आ**) (**या**) (**द्याम्**) प्रकाशम् (**भासि**) दीपयसि (**आ**) (**पृथिवीम्**) भूमिम् (**आ**) (**उरु**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् ॥ ६३ ॥

प्रमाणार्थ—(रश्मीवतीम्) यहाँ "अन्येषामपि दृश्यते" (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं द्यां पृथिवीमन्तरिक्षमुर्वाभासि तां रश्मीवतीं भास्वतीं त्वा त्वामायोः सदनेऽवतश्छायायामा सादयामि समुद्रस्य हृदयेऽहमा सादयामि ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! या त्वं **द्यां** प्रकाशं **पृथिवीं** भूमिम् **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **उर्वाभासि** दीपयसि, **तां रश्मीवतीं** प्रशस्तविद्या-प्रकाशयुक्तां **भास्वतीं** देदीप्यमानां **त्वा**=**त्वामायोः** न्यायाऽनुगामिनो दीर्घजीवितस्य **सदने** स्थाने **अवतः** रक्षणादिकुर्वतः **छायायाम्** आश्रये **आ+सादयामि** स्थापयामि। **समुद्रस्य हृदये** मध्ये **अहमासादयामि** स्थापयामि ॥ १५ । ६३ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री! जो तू—(द्याम्) प्रकाश, (पृथिवीम्) भूमि और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (उरु) बहुत (आभासि) प्रकाशित करती है, सो (रश्मीवतीम्) प्रशस्त विद्या-प्रकाश से युक्त, (भास्वतीम्) देदीप्यमान (त्वा) तुझको—(आयोः) न्याय के अनुगामी, दीर्घजीवी पुरुष के (सदने) घर में तथा (अवतः) रक्षा आदि करने वाले की (छायायाम्) छाया=आश्रय में (आ+सादयामि)

स्थापित करता हूँ। (समुद्रस्य) समुद्र के (हृदये) मध्य में मैं (आसादयामि) स्थापित करता हूँ।

[हे स्त्रि !...त्वा=त्वामायोः सदनेऽवतश्छायायामासादयामि, समुद्रस्य हृदयेऽहमासादयामि]

भावार्थः—हे स्त्रि ! सम्यक्पालकस्य पत्युः सदने तदाश्रये समुद्रवदक्षोभां हृद्यां त्वां स्थापयामि।

भावार्थ—हे स्त्री ! उत्तम रीति से पालन करने वाले पति के घर में एवं उसकी छाया=आश्रय में—समुद्र के समान क्षोभरहित, तुझ प्रिया को मैं स्थापित करता हूँ।

[त्वम्...उरु आभासि]

त्वं गृहाश्रमं प्रकाश्य पत्यादीन् सुखय, त्वां चैते सुखयन्तु ॥ १५ ॥ ६३ ॥

तू—गृहाश्रम को प्रकाशित करके पति आदि जनों को सुखी कर, और तुझे ये सुखी रखें ॥ १५ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—अवतः=सम्यक्पालकस्य पत्युः ॥

भाष्यसार—**विदुषी स्त्री का कर्त्तव्य**—विदुषी स्त्री का परम धर्म है कि वह अन्य स्त्रियों को अपनी प्रशस्त विद्या की किरणों से सूर्य-प्रकाश की तरह प्रकाशित करे, जिससे उसका प्रदीप्त यश सर्वत्र प्रसिद्ध हो सके। और न्याय के अनुगामी, दीर्घजीवी पति के घर में समुद्र की तरह क्षोभरहित और गम्भीर होकर निवास करे। अपने व्यवहार से क्षोभरहित पति के हृदय में अपना स्थान बनाने वाली हो ॥ १५ । ६३ ॥

वसिष्ठः । **परमात्मा**=स्पष्टम् । आकृतिः । पञ्चमः ॥

दम्पतीभ्यां कथं भवितव्यमित्याह ॥

स्त्री पुरुष परस्पर कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे व्यच॑स्वतीं॒ प्रथ॑स्वतीं॒ दिवं॑ यच्छ दिवं॑ दृꣳह दिवं॒ मा हिꣳसीः ।
विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नायो॑दा॒नाय॑ प्रति॒ष्ठायै॑ च॒रित्रा॑य ।
सूर्य॑स्त्वा॒भिपा॑तु म॒ह्या स्व॒स्त्या छ॒र्दिषा॒ शन्त॑मेन॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**परमेष्ठी**) परमात्मा (**त्वा**) त्वां सतीं स्त्रियम् (**सादयतु**) (**दिवः**) कमनीयस्य गृहस्थव्यवहारस्य (**पृष्ठे**) आधारे (**व्यचस्वतीम्**) प्रशस्तविद्याव्यापिकाम् (**प्रथस्वतीम्**) बहुः प्रथः=प्रख्यातिः प्रशंसा विद्यते यस्यां ताम् (**दिवम्**) न्यायप्रकाशम् (**यच्छ**) देहि (**दिवम्**) विद्यासूर्यम् (**दृंह**) (**दिवम्**) धर्मप्रकाशम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**विश्वस्मै**) समग्राय (**प्राणाय**) जीवनसुखाय (**अपानाय**) दुःखनिवृत्तये (**व्यानाय**) विविधविद्याव्याप्तये (**उदानाय**) उत्कृष्टबलाय (**प्रतिष्ठायै**) सर्वत्र सत्काराय (**चरित्राय**) सत्कर्मानुष्ठानाय (**सूर्यः**) चराचरात्मेश्वरः (**त्वा**) त्वाम् (**अभि**) सर्वतः (**पातु**) रक्षतु (**मह्या**) महत्या (**स्वस्त्या**) सत्क्रियया (**छर्दिषा**) सत्यासत्यदीप्तेन (**शन्तमेन**) अतिशयसुखेन (**तया**) (**देवतया**) (**अङ्गिरस्वत्**) (**ध्रुवे**) पुरुषः स्त्री च (**सीदतम्**) ॥ ६४ ॥

अन्वयः—हे स्त्रि ! परमेष्ठी विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय दिवस्पृष्ठे प्रथस्वतीं व्यचस्वतीं यां त्वा त्वां सादयतु सा त्वं दिवं यच्छ दिवं दृंह दिवं मा हिंसीः सूर्यो मह्या स्वस्त्या शन्तमेन छर्दिषा त्वाभिपातु सपतिस्त्वं च तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रि ! **परमेष्ठी** परमात्मा—**विश्वस्मै** समग्राय **प्राणाय** जीवन-सुखाय **अपानाय** दुःखनिवृत्तये **व्यानाय** विविध-विद्याव्याप्तये **उदानाय** उत्कृष्टबलाय **प्रतिष्ठायै** सर्वत्र सत्काराय **चरित्राय** सत्कर्माऽनुष्ठानाय **दिवः** कमनीयस्य गृहस्थव्यवहारस्य **पृष्ठे** आधारे **प्रथस्वतीं** बहुः प्रथः=प्रख्यातिः प्रशंसा विद्यते यस्यां तां **व्यचस्वतीं** प्रशस्तविद्याव्यापिकां **यां त्वा**=त्वां त्वां सतीं स्त्रियं **सादयतु** स्थापयतु । **सा त्वं दिवं** न्यायप्रकाशं **यच्छ** देहि, **दिवं** धर्म-प्रकाशं **दृंह**, **दिवं** विद्यासूर्य्यं **मा हिंसीः** हिंस्याः ।

सूर्य्यः चराचरात्मेश्वरः **मह्या** महत्या **स्वस्त्या** सत्क्रियया **शन्तमेन** अतिशयसुखेन **छर्दिषा** सत्यासत्यदीप्तेन **त्वा** त्वाम् **अभिपातु** सर्वतो रक्षतु ।

सत्पतिस्त्वं च तया देवतयाऽङ्गिरस्वत् ध्रुवे पुरुषः स्त्री च **सीदतम्** अवस्थापयतम् ।।

भाषार्थ—हे स्त्री ! (परमेष्ठी) परमात्मा—(विश्वस्मै) सम्पूर्ण (प्राणाय) जीवन-सुख, (अपानाय) दुःख-निवृत्ति, (व्यानाय) विविध विद्याओं की प्राप्ति, (उदानाय) उत्तम बल, (प्रतिष्ठायै) सर्वत्र प्रतिष्ठा=सत्कार और (चरित्राय) शुभ कर्मों के आचरण के लिए (दिवः) कामना करने योग्य गृहाश्रम के (पृष्ठे) आधार पर—(प्रथस्वतीम्) बहुत प्रसिद्धि एवं प्रशंसा वाली, (व्यचस्वतीम्) उत्तम विद्या से युक्त (त्वा) तुझ सती स्त्री को (सादयतु) स्थापित करे। सो तू—(दिवम्) न्याय-प्रकाश (यच्छ) प्रदान कर, (दिवम्) धर्म-प्रकाश को (दृंह) बढ़ा, (दिवम्) विद्या-सूर्य की (मा हिंसीः) हिंसा मत कर ।

(सूर्यः) चराचर का आत्मा ईश्वर (मह्या) महान् (स्वस्त्या) शुभ कर्म से, (शन्तमेन) अति सुख से और (छर्दिषा) सत्य-असत्य के प्रकाश से (त्वा) तेरी (अभिपातु) सब ओर से रक्षा करे।

और तू श्रेष्ठ पति (तया) उस (देवतया) दिव्य गुणों वाली स्त्री के साथ (अङ्गिरस्वत्) प्राणों के समान (ध्रुवे) स्त्री-पुरुष दृढ़ होकर (सीदतम्) अवस्थित रहें ।। १५ । ६४ ।।

[हे स्त्रि ! परमेष्ठी···प्राणाय···त्वा=त्वां सादयतु, सा त्वं दिवं यच्छ, दृंह मा हिंसीः]

भावार्थः—परमेश्वर आज्ञापयति—यथा शिशिरर्त्तुः सुखप्रदो भवति, तथा स्त्री-पुरुषौ परस्परं सन्तुष्टौ भूत्वा, सर्वाण्युत्तमानि कर्माण्यनुष्ठाय दुष्टानि त्यक्त्वा—

[सूर्यः···त्वाभिपातु]

परमेश्वरोपासनया च सततं प्रमोदेताम् ।।

भावार्थ—परमेश्वर आज्ञा देता है—जैसे शिशिर ऋतु सुखदायक है, वैसे स्त्री-पुरुष परस्पर सन्तुष्ट होकर, सब उत्तम कर्मों का अनुष्ठान करके, दुष्ट कर्मों का परित्याग कर—

परमेश्वर की उपासना से सदा प्रसन्न रहें ।।

भाष्यसार—**परमात्मा की उपासना का प्रयोजन**—परमात्मा की उपासना करने से परमात्मा गृहस्थव्यवहार के आधार, प्रशस्तविद्या तथा प्रशंसायुक्त न्यायप्रकाश, विद्याप्रकाश और धर्मप्रकाश को प्रदान करता है। वह परमात्मा अपने उपासकों के जीवन-सुख के लिए, दुःखों की निवृत्ति के लिए विविध विद्याओं को प्राप्त कराने के लिए, उत्कृष्ट बल, सर्वत्र सत्कार और सत्कर्मों के अनुष्ठान के लिए सदा रक्षा करता है ।। १५ । ६४ ।।

मधुच्छन्दाः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।।

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ।।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(**सहस्रस्य**) असंख्यपदार्थयुक्तस्य जगतः (**प्रमा**) प्रमाणं=यथार्थविज्ञानम् (**असि**) (**सहस्रस्य**) असंख्यपदार्थविशेषस्य (**प्रतिमा**) प्रतिमीयन्ते=परिमीयन्ते सर्वे पदार्था यया सा (**असि**) (**सहस्रस्य**) असंख्यातस्य स्थूलवस्तुनः (**उन्मा**) ऊर्ध्वं मिनोति यया तुलया तद्वत् (**असि**) (**साहस्रः**) सहस्रमसंख्याताः पदार्था विद्या वा विद्यन्ते यस्य सः (**असि**) (**सहस्राय**) असंख्यप्रयोजनाय (**त्वा**) त्वाम् ॥ ६५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् विदुषि वा यतस्त्वं सहस्रस्य प्रमेवासि सहस्रस्य प्रतिमेवासि सहस्रस्योन्मेवासि साहस्रोऽसि तस्मात्सहस्राय त्वा त्वां परमेष्ठी सत्ये व्यवहारे सादयतु ॥ ६५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् विदुषि वा ! **यतस्त्वं सहस्रस्य** असङ्ख्यपदार्थयुक्तस्य जगतः **प्रमा** प्रमाणं=यथार्थविज्ञानम् **इवासि**, **सहस्रस्य** असङ्ख्यपदार्थविशेषस्य **प्रतिमा** प्रतिमीयन्ते=परिमीयन्ते सर्वे पदार्था यया सा **इवासि**, **सहस्रस्य** असङ्ख्यातस्य स्थूलवस्तुनः **उन्मा** ऊर्ध्वं मिनोति यया तुलया तद्वद् (**इव**) **असि**। **साहस्रः** सहस्रमसङ्ख्याताः पदार्था विद्या वा विद्यन्ते यस्य सः **असि**, **तस्मात् सहस्राय** असङ्ख्यप्रयोजनाय **त्वा**=**त्वां परमेष्ठी** परमात्मा **सत्ये व्यवहारे सादयतु** ॥ १५ । ६५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् वा विदुषी ! जिससे तू—(सहस्रस्य) असंख्य पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) यथार्थ विज्ञान के समान (असि) है, (सहस्रस्य) असंख्य पदार्थ—विशेष के (प्रतिमा) परिमाण के समान (असि) है, (सहस्रस्य) असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा) तुला आदि साधन के समान (असि) है, (साहस्रः) असंख्य पदार्थों वा असंख्य विद्याओं वाला है (असि) है; अतः—(सहस्राय) असंख्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए (त्वा) तुझे (परमेष्ठी) परमात्मा सत्य-व्यवहार में (सादयतु) स्थिर करे ॥ १५ । ६५ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ पूर्वमन्त्रात् 'परमेष्ठी सादयतु', इति पदद्वयमनुवर्त्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ पूर्व मन्त्र से यहाँ 'परमेष्ठी' और 'सादयतु' इन दो पदों की अनुवृत्ति है ।

[हे विद्वन्···त्वं सहस्रस्य प्रमा, प्रतिमा, उन्मेवासि]

मनुष्याणां त्रिभिः साधनैर्व्यवहाराः सिध्यन्ति—एकं प्रमा—यद् यथार्थविज्ञानम्, द्वितीया प्रतिमा—यानि परिमाणसाधनानि पदार्थतोलनार्थानि, तृतीयमुन्मा—तुलादिकं चेति ॥ १५ । ६५ ॥

मनुष्यों के तीन साधनों से व्यवहार सिद्ध होते हैं एक—प्रमा=यथार्थविज्ञान, दूसरा—पदार्थों के तोलने के लिए परिमाण=बाट आदि, तीसरा—तुला=तराजू आदि ॥ १५ । ६५ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्रर्त्तुविद्याप्रतिपादनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ।

इस अध्याय में ऋतु-विद्या का प्रतिपादन होने से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ।

भा० पदार्थः—प्रतिमा=परिमाणसाधनं पदार्थतोलनार्थम् । उन्मा=तुलादिकम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**सहस्रस्य प्र०**) सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त ब्राह्मदिन और रात्रि की भी सहस्र संज्ञा ली जाती है क्योंकि यह मन्त्र सामान्य अर्थ में वर्त्तमान है सो हे परमेश्वर ! आप इस हजार चतुर्युगी का दिन और रात्रि के प्रमाण अर्थात् निर्माण करने वाले हो। (**ऋग्वेदादि० वेदोत्पत्ति०**)।

भाष्यसार—१. **विद्वान् का कर्त्तव्य**—मनुष्यों के असंख्य व्यवहारों को सिद्ध करने के लिए विद्वानों को तीन प्रकार के साधन अपनाने चाहिए—(१) प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ-विज्ञान जानना और दूसरों को सिखाना। (२) मनुष्यों के परस्पर पदार्थों के आदान-प्रदान के हेतु तोलने के साधन परिमाणों (बाटों) का निश्चय करना। (३) ऊपर उठाकर तोलने के साधन तुलादि (**तराजू आदि**) को शुद्ध रूप में रखना। परमात्मा विद्वानों को उपरोक्त सत्य-व्यवहार में सदा प्रेरणा देते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् मनुष्य प्रमा, प्रतिमा, उन्मादि के समान सत्य-व्यवहार का करने वाला है ॥ १५ । ६५ ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यकृते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे पञ्चमोऽध्यायः सम्पूर्णः ॥

॥ ओ३म् ॥

* अथ पञ्चदशाऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥
य० ३० । ३ ॥

परमेष्ठी कुत्सः । **रुद्रः=राजा** । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

अथ राजधर्म उपदिश्यते ॥

अब सोलहवें अध्याय का आरम्भ करते हैं ।

इसके प्रथम मन्त्र में राजधर्म का उपदेश किया है ॥

नम॑स्ते रुद्र म॒न्यव॑ऽउ॒तो त॒ऽइष॑वे॒ नमः॑ । बा॒हुभ्या॑मु॒त ते॒ नमः॑ ॥ १ ॥

पदार्थः—(**नमः**) वज्रम् । **नम इति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥** (**ते**) तवोपरि (**रुद्र**) दुष्टानां शत्रूणां रोदयितः । **कतमे ते रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा एकादश आत्मा । एकादश रुद्राः कस्मादेते रुद्रा यदस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति यत्तद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्राः ॥ इति शतपथब्राह्मणे ॥ रोदेर्णिलुक् च । अनेनोणादिगणसूत्रेण रोदिधातो रक् प्रत्ययो णिलुक् च** (**मन्यवे**) क्रोधयुक्ताय वीराय (**उतो**) अपि (**ते**) तव (**इषवे**) इष्णात्यभीक्ष्णं हिनस्ति शत्रून् येन तस्मै (**नमः**) अन्नम् । **नम इत्यन्नना० ॥ निघं० २ । ७ ।** (**बाहुभ्याम्**) भुजाभ्याम् (**उत**) अपि (**ते**) तव (**नमः**) वज्रम् ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**नमः**) वज्रम् । 'नमः' पद निघं० २ । २० में वज्र-नामों में पठित है । (**रुद्र**) शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि—वे रुद्र कौन से हैं? ये रुद्र दश हैं जो पुरुष में प्राण हैं, ग्यारहवाँ आत्मा है । इस प्रकार ग्यारह रुद्र हैं । ये रुद्र क्यों कहलाते हैं? इसलिए कि जब ये प्राणी के शरीर से निकलते हैं तब रुलाते हैं, जिससे रुलाते हैं इसलिए रुद्र कहलाते हैं । 'रोदेर्णिलुक् च' (**उणा० २ । २२**) इस उणादि सूत्र से 'रोदि' धातु से रक् प्रत्यय और णिच् का लुक् है । (**नमः**) अन्नम् । 'नमः' पद निघं० २ । ७ में अन्न-नामों में पठित है ।

अन्वयः—हे रुद्र! ते मन्यवे नमोस्तु । उतो इषवे ते नमोऽस्तु । उत ते बाहुभ्यां नमोऽस्तु ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र ! दुष्टानां शत्रूणां रोदयितः ! **ते** तवोपरि **मन्यवे** क्रोधयुक्ताय वीराय **नमः** वज्रम् **अस्तु** ।

उतो अपि **इषवे** इष्णात्यभीक्ष्णं हिनस्ति शत्रून् येन तस्मै **ते** तव **नमः** अन्नम् **अस्तु** ।

उत अपि **ते** तव **बाहुभ्यां** भुजाभ्यां **नमः** वज्रम् **अस्तु** ॥ १६ । १ ॥

भाषार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले राजन् ! (ते) तुझ पर (मन्यवे) क्रोध करने वाले वीर के लिए (नमः) वज्र (अस्तु) हो ।

(उतो) और—(इषवे) बार-बार शत्रुओं की हिंसा करने वाले (ते) आपके लिए (नमः) अन्न (अस्तु) हो ।

(उत) और—(ते) तेरी (भुजाभ्याम्) भुजाओं के लिए (वज्रम्) वज्र=बल (अस्तु) हों ॥ १६ ॥

[हे रुद्र !······ते बाहुभ्यां नमोऽस्तु, उतो—इषवे ते नमोऽस्तु]

भावार्थः—ये राज्यं चिकीर्षेयुस्ते बाहुबलं, युद्धशिक्षां, शस्त्रास्त्राणि च सम्पादयेयुः ॥ १ ॥

भावार्थ—जो राज्य करना चाहें वे बाहु-बल, युद्ध शिक्षा और शस्त्र-अस्त्रों को सिद्ध करें ॥

भा० पदार्थः—नमः=बलम् । इषवे=शस्त्रास्त्राय ।

अन्यत्र व्याख्यात—(**प्रश्न**) 'नमस्ते रुद्र मन्यवे'······इत्यादि वेद-प्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो ? (**उत्तर**) इन वचनों से शैवादि संप्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि 'रुद्र' परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है, जो क्रोधकर्त्ता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले परमात्मा को नमस्कार करना······चाहिए । (**सत्यार्थप्रकाश समु० ११**) ॥

भाष्यसार—**राजा कैसा होना चाहिए**—राजा रुद्र के समान शत्रुओं तथा दुष्टों को रुलाने वाला हो, शत्रु वर्ग पर विजय करने के लिए उत्तम वज्रादि अस्त्र-शस्त्रों वाला हो, जो वीर योद्धा शत्रुओं को मारने वाले हों, उनका अन्नादि से सदा सत्कार करने वाला हो और स्वयं भी भुजाओं में अमित बल रखने वाला हो । तब ही वह राज्य अच्छी प्रकार कर सकता है ॥ १६ । १ ॥

परमेष्ठी वा कुत्सः । **रुद्रः=शिक्षकः** ॥ आर्षी स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ शिक्षकशिष्यव्यवहारमाह ॥

अब शिक्षक और शिष्य के व्यवहार का उपदेश किया जाता है ॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूरघो॒राऽपा॑पकाशिनी । तया॑ नस्त॒न्वा॒ शन्त॑मया॒ गिरि॑शन्ता॒भि चा॑कशीहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(**या**) (ते) तव (**रुद्र**) दुष्टानां भयंकर श्रेष्ठानां सुखकर (**शिवा**) कल्याण-कारिणी (**तनूः**) शरीरं विस्तृतोपदेशनीतिर्वा (**अघोरा**) अविद्यमानो घोर=उपद्रवो यया सा (**अपापका-शिनी**) अपापान्सत्यधर्मान् काशितुं शीलमस्याः सा (**तया**) (नः) अस्मान् (**तन्वा**) विस्तृतया (**शन्तमया**) अतिशयेन सुखप्रापिकया (**गिरिशन्त**) यो गिरिणा=मेघेन सत्योपदेशेन वा शं=सुखं तनोति तत्सम्बुद्धौ । गिरिरिति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥ (**अभि**) सर्वतः (**चाकशीहि**) भृशं कश्व पुनः पुनः शाधि । अयं कश-धातोर्यङ्लुगन्तः प्रयोगः । वा छन्दसीति पित्त्वादीट् ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**गिरिशन्त**) 'गिरि' पद निघं० १ । १० में मेघ-नामों में पठित है । (**चाक-शीहि**) यह 'कश' धातु का यङ्लुगन्त प्रयोग है । 'वा छन्दसि' (३ । ४ । ८८) सूत्र से पित् होने से ईट्-आगम है ॥

अन्वयः—हे गिरिशन्त रुद्र ! या ते तवाघोराऽपापकाशिनी शिवा तनूरस्ति तया शन्तमया तन्वा नस्त्वमभिचाकशीहि ।। २ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **गिरिशन्त** यो गिरिणा=मेघेन सत्योपदेशेन वा शं=सुखं तनोति तत्सम्बुद्धौ **रुद्र** ! दुष्टानां भयङ्कर ! श्रेष्ठानां सुखकर ! **या ते**=**तवाघोरा** अविद्यमानो घोर=उपद्रवो यया सा **अपापकाशिनी** अपापान्=सत्यधर्मान् काशितुं शीलमस्याः सा **शिवा** कल्याणकारिणी **तनूः** शरीरं विस्तृतोपदेशनीतिर्वा **अस्ति**, **तया शन्तमया** अतिशयेन सुखप्रापिकया **तन्वा** विस्तृतया **नः** अस्मान् **त्वमभिचाकशीहि** सर्वतः भृशं कश्व=पुनः पुनः शाधि ।। १६ । २ ।।

भाषार्थ—हे (गिरिशन्त) गिरि अर्थात् मेघ वा सत्योपदेश से सुख को फैलाने वाले, (रुद्र) दुष्टों के लिए भयङ्कर एवं श्रेष्ठों के लिए सुखकारक शिक्षक ! (या) जो (ते) तेरी (अघोरा) उपद्रव रहित, (अपापकाशिनी) अपाप=सत्यधर्म को प्रकाशित करने वाली, (शिवा) कल्याणकारी (तनू) काया वा विस्तृत उपदेशनीति है, उससे—(शन्तमया) अत्यन्त सुख-प्रापक (तन्वा) विस्तृत उपदेश-नीति से (नः) हमें तू (अभिचाकशीहि) बार-बार उपदेश कर ।। १६ । २ ।।

[हे गिरिशन्त रुद्र !···शन्तमया तन्वा नस्त्वमभिचाकशीहि]

भावार्थः—शिक्षकाः शिष्येभ्यो धर्म्यां नीतिं शिक्षित्वा निष्पापान् कल्याणाचरणान् सम्पादयन्तु ।। १६ । २ ।।

भावार्थ—शिक्षक शिष्यों को धर्म-युक्त नीति सिखला कर उन्हें निष्पाप और कल्याणमय आचार वाले बनावें ।। १६ । २ ।।

भा० पदार्थः—रुद्र=शिक्षक ! । शन्तमया=धर्म्यया । तन्वा=नीत्या । अभिचाकशीहि=निष्पापान् कल्याणाचरणान् सम्पादय ।।

भाष्यसार—**शिक्षक का शिष्य के प्रति व्यवहार**—रुद्र=शिक्षक रुद्र की तरह दुःशील शिष्यों को दण्डित करने वाला और सुशील छात्रों से प्राणों की तरह स्नेह करने वाला हो, सत्योपदेश से सुख फैलाने वाला, सोम्यस्वभाव वाला, जिसको देखकर शिष्य भयभीत न होता हो, सद्विद्या के प्रकाश से सत्यधर्म का प्रकाश करने वाला हो, और सुख-प्रापक उपदेशों का सदा उपदेष्टा होना चाहिए ।। १६ । २ ।।

परमेष्ठी वा कुत्सः । **रुद्रः**=**राजा** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।।

अब राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ।।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे । शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ।। ३ ।।

पदार्थः—(**याम्**) (**इषुम्**) बाणावलिम् (**गिरिशन्त**) गिरिणा=मेघेन शं तनोति तत्सम्बुद्धौ (**हस्ते**) (**बिभर्षि**) धरसि (**अस्तवे**) असितुं=प्रक्षेप्तुम् । अत्र अस धातोस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः (**शिवाम्**) मङ्गलकारिणीम् (**गिरित्र**) गिरीन्=विद्योपदेशकान् मेघान् वा त्रायते=रक्षति तत्सम्बुद्धौ (**ताम्**) (**कुरु**) (**मा**) निषेधे (**हिंसीः**) हिंस्याः (**पुरुषम्**) पुरुषार्थयुक्तम् (**जगत्**) संसारम् ।। ३ ।।

प्रमाणार्थ—(**अस्तवे**) असितुम्=प्रक्षेप्तुम । यहाँ 'अस्' धातु से 'तुमर्थ' में तवेन् प्रत्यय है ।।

अन्वयः—हे गिरिशन्त सेनापते ! यतस्त्वमस्तवे यामिषुं हस्ते बिभर्षि । अतस्तां शिवां कुरु । हे गिरित्र ! त्वं पुरुषं जगन्मा हिंसीः ।। ३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **गिरिशन्त** != **सेनापते** गिरिणा=मेघेन शं तनोति तत्सम्बुद्धौ ! **यतस्त्वमस्तवे** असितुं=प्रक्षेप्तुं **यामिषुं** बाणावलिं **हस्ते बिभर्षि** धरसि, **अतस्तां शिवां** मङ्गलकारिणीं **कुरु** ।

हे **गिरित्र** ! गिरीन्=विद्योपदेशकान् मेघान् वा त्रायते=रक्षति तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं पुरुषं** पुरुषार्थ-युक्तं **जगत्** संसारं **मा न हिंसीः** हिंस्याः ।। १६। ३ ।।

भाषार्थ—हे (गिरिशन्त) गिरि=मेघ से शान्ति का विस्तार करने वाले सेनापति ! तू—(अस्तवे) फैंकने के लिए (याम्) जिस (इषु) बाणा-वली को (हस्ते) हाथ में (बिभर्षि) धारण करता है, उसे (शिवाम्) मङ्गलकारी (कुरु) कर ।

हे (गिरित्र) गिरि=विद्या के उपदेशकों वा मेघों के रक्षक सेनापति ! तू—(पुरुषम्) पुरुषार्थी (जगत्) संसार की (मा) मत (हिंसीः) हिंसा कर ।। १६ । ३ ।।

[**हे गिरिशन्त !**···**इषुं हस्ते बिभर्षि,** ··· **त्वं पुरुषं जगन्मा हिंसीः, शिवां कुरु**]

भावार्थः—राजपुरुषैर्युद्धविद्यां बुध्वा शस्त्राणि धृत्वा मनुष्यादयः श्रेष्ठाः प्राणिनो नो हिंसनीयाः, किन्तु मङ्गलाचारेण रक्षणीयाः ।।

भावार्थ—राजपुरुष, युद्ध-विद्या को जान कर, शस्त्रों को धारण करके मनुष्य आदि श्रेष्ठ प्राणियों की हिंसा न करें, किन्तु मङ्गल आचार से रक्षा करें ।। १६ । ३ ।।

भा० पदार्थः—इषुम्=शस्त्रम् । पुरुषम्=मनुष्यादिश्रेष्ठप्राणिनम् ।

भाष्यसार—**राज-धर्म**—रुद्र=राजा युद्ध-विद्या को जानने वाला हो, उसके बाणादि शस्त्रास्त्र का प्रयोग मेघ के समान सुखों की वर्षा, कल्याण तथा शान्ति के लिए हो, वह सत्यविद्या के उपदेशकों का पालक और पुरुषार्थी मनुष्यों का कभी विघात न करने वाला हो । किन्तु मंगलाचार से सदा रक्षा करने वाला हो ।। १६ । ३ ।।

परमेष्ठी । **रुद्रः=चिकित्सकः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ चिकित्सककृत्यमाह ।।

अब वैद्य के कृत्य का उपदेश किया जाता है ।।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि । यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमनाऽअसत् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**शिवेन**) कल्याणकारकेण (**वचसा**) वचनेन (**त्वा**) त्वाम् (**गिरिश**) यो गिरिषु=पर्वतेषु मेघेषु वा शेते तत्सम्बुद्धौ (**अच्छ**) सम्यक् । **निपातस्य चेति दीर्घः** (**वदामसि**) वदेम (**यथा**) (**नः**) अस्माकम् (**सर्वम्**) (**इत्**) एव (**जगत्**) मनुष्यादिकं जङ्गमं राज्यम् (**अयक्ष्मम्**) यक्ष्मादिरोगरहितम् (**सुमनाः**) शोभनं मनो यस्य सः (**असत्**) स्यात् ।। ४ ।।

प्रमाणार्थ—(**अच्छ**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से मन्त्र में दीर्घ है ।।

अन्वयः—हे गिरिश रुद्र वैद्यराज ! सुमनास्त्वं यथा नः सर्वं जगदयक्ष्ममसत् तथेच्छिवेन वचसा त्वा वयमच्छवदामसि ।। ४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **गिरिश** ! यो गिरिषु=पर्वतेषु मेघेषु वा शेते तत्सम्बुद्धौ **रुद्र**= **वैद्यराज** ! **सुमनाः** शोभनं मनो यस्य स **त्वं, यथा**

भाषार्थ—हे (गिरिश) गिरि=पर्वतों वा मेघों में शयन करने वाले (रुद्र) वैद्यराज ! (सुमनाः) उत्तम मन वाला तू है । (यथा) जैसे

नः अस्माकं **सर्वं जगत्** मनुष्यादिकं जङ्गमं राज्यम् **अयक्ष्मं** यक्ष्मादिरोगरहितम् **असत्** स्यात्, **तथेत्** एव **शिवेन** कल्याणकारकेण **वचसा** वचनेन **त्वा** त्वां **वयमच्छ** सम्यक् **वदामसि** वदेम ॥ १६ । ४ ॥

(नः) हमारा (सर्वम्) सब (जगत्) मनुष्य आदि चेतन राज्य (अयक्ष्मम्) यक्ष्मा आदि रोगों से रहित (असत्) हो वैसे (इत्) ही (शिवेन) कल्याण-कारक (वचसा) वचन से (त्वा) तुझे हम (अच्छ) अच्छे प्रकार (वदामसि) बोलें ॥

[हे गिरिश !····त्वं····सर्वं जगदयक्ष्ममसत्, शिवेन वचसा]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यो वैद्यकशास्त्रमधीत्य पर्वतादिषु स्थिता ओषधीरपो वा सुपरीक्ष्य, सर्वेषां कल्याणाय, निष्कपटित्वेन रोगान् निवार्य, प्रियस्वरूपया वाचा वर्त्तते—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जो वैद्यकशास्त्र को पढ़ कर पर्वत आदि पर स्थित ओषधियों वा जल की परीक्षा करके सबके कल्याण के लिए निष्कपट भाव से रोगों का निवारण कर प्रिय वाणी से वर्ताव करता है,

[त्वा वयमच्छ वदामसि]

तं वैद्यं सर्वे सत्कुर्युः ॥ १६ । ४ ॥

उस वैद्य का सब सत्कार करें ॥ १६ । ४ ॥

भा० पदार्थः—गिरिश=वैद्यकशास्त्रमधीत्य पर्वतादिषु स्थितानामोषधीनामपां वा सुपरीक्षक। शिवेन=प्रियस्वरूपया। वचसा=वाचा।

भाष्यसार—**१. चिकित्सक का कर्त्तव्य**—अच्छा चिकित्सक बनने के लिए वैद्यक शास्त्रों को पढ़ कर पर्वतादि ओषधि वाले प्रदेशों का भ्रमण करके उनके गुण-दोषों को जानना चाहिए। उसके वचन कल्याणकारी और मधुर हों, उसका मन उत्तम तथा हित चाहने वाला हो। उसका लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्राणी-मात्र यक्ष्मादि रोगों से रहित हो।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। वैद्य को रुद्र (प्राण) की तरह सब स्नेह करने वाले हों ॥ १६ । ४ ॥

बृहस्पतिः। **एकरुद्रः=वैद्यः**। भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वैद्य के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**अधि**) (**अवोचत्**) उपदिशेत् (**अधिवक्ता**) सर्वेषामुपर्य्यधिष्ठातृत्वेन वर्त्तमानः सन् वैद्यकशास्त्रस्याध्यापकः (**प्रथमः**) आदिमः (**दैव्यः**) देवेषु=विद्वत्सु भवः (**भिषक्**) निदानादिविज्ञानेन रोगनिवारकः (**अहीन्**) सर्पवत् प्राणान्तकान् रोगान् (**च**) (**सर्वान्**) अखिलान् (**जम्भयन्**) ओषधैर्निवारयन् (**सर्वाः**) (**च**) (**यातुधान्यः**) रोगकारिण्यो व्यभिचारिण्यश्च स्त्रियः (**अधराचीः**) या अधरान्=नीचानञ्चन्ति ताः (**परा**) दूरे (**सुव**) प्रक्षिप ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे रुद्र ! यः प्रथमो दैव्योऽधिवक्ता भिषग्भवान् सर्वानहीन् रोगांश्च जम्भयन्नध्यवोचत् स त्वं याश्च सर्वा यातुधान्योऽधराचीः सन्ति ताश्च परासुव ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र ! यः प्रथमः आदिमः **दैव्यः** देवेषु=विद्वत्सु भवः **अधिवक्ता** सर्वेषामुपर्य्यधिष्ठातृत्वेन वर्त्तमानः सन् वैद्यकशास्त्रस्याध्यापकः **भिषक्**निदानादिविज्ञानेन रोगनिवारकः **भवान् सर्वान्** अखिलान् **अहीन्=रोगान्** सर्पवत् प्राणान्तकान् रोगान् **च जम्भयन्** औषधैर्निवारयन् **अध्यवोचत्** उपदिशेत् ।

स त्वं **याश्च सर्वा यातुधान्यः** रोगकारिण्यो व्यभिचारिण्यश्च स्त्रियः **अधराचीः** या अधरान्=नीचानञ्चन्ति ताः **सन्ति, ताश्च परासुव** दूरे प्रक्षिप ॥ १६ । ५ ॥

भाषार्थ—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले वैद्य ! जो (प्रथमः) पहला, (दैव्यः) देव=विद्वानों में विराजमान, (अधिवक्ता) सबके ऊपर अधिष्ठाता होकर वैद्यक शास्त्र के अध्यापक (भिषक्) निदान आदि के विज्ञान से रोग के निवारक आप—(सर्वान्) सब (अहीन्) सर्प के समान प्राणों के घातक रोगों को (जम्भयन्) औषधों से निवारण करते हुए (अध्यवोचत्) उपदेश कीजिए ।

सो तू—जो (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) रोगकारी व्यभिचारिणी स्त्रियाँ (अधराचीः) नीचों का सत्कार करती हैं उन्हें (परासुव) दूर कर ॥

[यः प्रथमो दैव्योऽधिवक्ता भिषक् भवान् सर्वानहीन् च जम्भयन्]

भावार्थः—राजादिसभासदः सर्वेषामधिष्ठातारं मुख्यं धार्मिकं लब्धसर्वपरीक्षं वैद्यं राज्ये सेनायां च नियोज्य बलसुखनाशकान् रोगान्—

भावार्थ—राजा आदि सभासद् सब के अधिष्ठाता, मुख्य, धार्मिक, सब परीक्षाओं को प्राप्त वैद्य को राज्य और सेना में नियुक्त करके बल और सुख के नाशक रोगों को,

[याश्च······यातुधान्योऽधराचीः सन्ति ताश्च परासुव]

व्यभिचारिणो जनान् व्यभिचारिणीः स्त्रीश्च निवारयेयुः ॥ १६ । ५ ॥

व्यभिचारी पुरुषों और व्यभिचारिणी स्त्रियों को निवारण करें ॥ १६ । ५ ॥

भा० पदार्थः—प्रथमः=मुख्यः । दैव्यः=धार्मिकः । अधिवक्ता=सर्वेषामधिष्ठाता । अहीन्=बलसुखनाशकान् रोगान् । यातुधान्यः=व्यभिचारिणो जनाः, व्यभिचारिण्यः स्त्रियश्च । परासुव=निवारय ॥

भाष्यसार—**अच्छे वैद्य के कर्त्तव्य**—वैद्य को वैद्यक-शास्त्र का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए । अपनी विद्या में सर्वश्रेष्ठ होकर सर्वोपरि होकर रहे । अधूरा वैद्य सदा हानिकारक होता है । रोगों के कारणों को जानकर सर्पवत् प्राणान्तक रोगों को औषधियों से समूल नष्ट करने वाला हो, मधुर-भाषण, प्राणी-मात्र की मङ्गल-कामना आदि दिव्य गुणों वाला होकर रोगों को उत्पन्न करने वाले दुराचरणादि को सदुपदेश से दूर करने वाला हो ॥ १६ । ५ ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः=राजा** । निचृदार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनः स एव राजधर्मः प्रोच्यते ॥

उसी राजधर्म का फिर उपदेश किया जाता है ॥

असौ यस्ताम्रो ऽ अरुण ऽ उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳ रुद्रा ऽ अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ऽ ईमहे ॥ ६ ॥

पदार्थः—(असौ) श्रुतविषयः (यः) (ताम्रः) ताम्रमिव कठिनाङ्गः । **अत्र अमितम्योर्दीर्घश्च ॥ उ० २ । १६ ॥ अनेनायं सिद्धः** (अरुणः) अग्निरिव तीव्रतेजाः (उत) अपि (बभ्रुः) पिङ्गधूम्रवर्णः (सुमङ्गलः)

शोभनानि कल्याणकराणि कर्माणि यस्य सः (ये) (च) (एनम्) राजानम् (रुद्राः) शत्रूणां रोदयितारः शूरवीराः (अभितः) सर्वतः (दिक्षु) पूर्वादिषु (श्रिताः) सेवमानाः (सहस्रशः) असंख्याता=बहवः (अव) निषेधे (एषाम्) वीराणाम् (हेडः) अनादरकर्त्ता (ईमहे) याचामहे ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(ताम्रः) यहाँ 'अमितम्योदीर्घश्च' (उ० २ । १६) से यह रूप सिद्ध है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! योऽसौ ताम्रो हेडोऽरुणो बभ्रुरुत सुमङ्गलो भवेत् । ये च सहस्रशो रुद्रा अभितो दिक्ष्वेनं श्रिताः स्युरेषामाश्रयेण वयमवेमहे ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **योऽसौ** श्रुतविषयः **ताम्रः** ताम्रमिव कठिनाङ्गः, **हेडः** अनादरकर्त्ता **अरुणः** अग्निरिव तीव्रतेजाः, **बभ्रुः** पिङ्गधूम्रवर्णः **उत** अपि **सुमङ्गलः** शोभनानि कल्याणकराणि कर्माणि यस्य सः **भवेत्**, **ये च सहस्रशः** असंख्याता=बहवः **रुद्राः** शत्रूणां रोदयितारः शूरवीराः **अभितः** सर्वतः **दिक्षु** पूर्वादिषु **एनं** राजानं **श्रिताः** सेवमानाः **स्युरेषां** वीराणाम् **आश्रयेण वयमवेमहे** न याचामहे ॥ १६ । ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (असौ) वह राजा (ताम्रः) ताम्बे के समान कठिन अङ्गों वाला, (हेडः) अनादर करने वाला, (अरुणः) अग्नि के समान तीव्र तेज वाला, (बभ्रुः) भूरे वर्ण वाला, (उत) और—(सुमङ्गलः) उत्तम कल्याणकारी कर्म करने वाला हो, (ये च) और जो (सहस्रशः) असंख्य (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने वाले शूर वीर (अभितः) सब ओर से (दिक्षु) पूर्व आदि दिशाओं में (एनम्) इस राजा की (श्रिताः) सेवा करने वाले हों, (एषाम्) इन वीरों के आश्रय से हम (अव+ईमहे) याचना न करें ॥ १६ । ६ ॥

[हे मनुष्याः ! योऽसौ—अरुणः, बभ्रुः, सुमङ्गलः, ये च···एनं श्रिताः स्युः]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यो राजाऽग्निवद् दुष्टदाहकः, चन्द्रवच्छ्रेष्ठाह्लादको न्यायकारी, शुभलक्षणो, येऽस्येदृशा भृत्या राज्ये सर्वत्र वसन्तु, विचरन्तु वा समीपे वर्त्तन्ताम्,

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो राजा अग्नि के समान दुष्टों का दाहक, चन्द्र के समान श्रेष्ठों का आह्लादक, न्यायकारी, शुभ लक्षणों से युक्त हो और जो इसके ऐसे ही भृत्य राज्य में सर्वत्र निवास, विचरण वा समीप रहते हों,

[एषामाश्रयेण वयमवेमहे]

तेषां सत्कारेण तैर्दुष्टानां तिरस्कारं यूयं कारयत ॥ १६ । ६ ॥

उनके सत्कार से उनके द्वारा दुष्टों का तुम तिरस्कार कराओ ॥ १६ । ६ ॥

भा० पदार्थः—अरुणः=अग्निवद्दुष्टदाहकः (राजा) । बभ्रुः=चन्द्रवच्छ्रेष्ठाह्लादको न्यायकारी । सुमङ्गलः=शुभलक्षणः । अवेमहे+तिरस्कारं कारयामः ॥

भाष्यसार—राज-धर्म—रुद्रतुल्य राजा ताम्बे के समान दृढ़ अङ्गों वाला बभ्रु=भूरे वर्ण वाला, चन्द्रवत् श्रेष्ठों का आह्लादक, न्यायकारी, अग्नि के समान तेजस्वी, दुष्टों का अनादर करने वाला, सत्कर्मों का करने वाला हो । ऐसे गुण-विशिष्ट राजा का सब शूरवीर योद्धा सब ओर से आश्रय करके अनुशासन में रहते हैं ॥ १६ । ६ ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः**=सेनेशः ।। विराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ।।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा ऽ अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ।। ७ ।।

पदार्थः—(असौ) (यः) (अवसर्पति) दुष्टेभ्यो विरुद्धं गच्छति (नीलग्रीवः) नीलमणियुक्ता ग्रीवा यस्य सः (विलोहितः) विविधैः शुभगुणकर्मस्वभावै रोहितो=वृद्धः (उत) (एनम्) (गोपाः) रक्षका भृत्याः (अदृश्रन्) समीक्षेरन् (अदृश्रन्) पश्येयुः (उदहार्य्यः) या उदकं हरन्ति ताः (सः) (दृष्टः) स समीक्षितः (मृडयाति) सुखयतु (नः) अस्मान् सज्जनान् ।। ७ ।।

अन्वयः—योऽसौ नीलग्रीवो विलोहितो रुद्रः सेनेशोऽवसर्पति यमेनं गोपा अदृश्रन्नुताप्युदहार्य्योऽदृश्रन् स दृष्टः सन् नोऽस्मान् मृडयाति ।। ७ ।।

सपदार्थान्वयः—**योऽसौ नीलग्रीवः** नीलमणियुक्ता ग्रीवा यस्य सः **विलोहितः** विविधैः शुभगुणकर्मस्वभावै रोहितो=वृद्धः **रुद्रः सेनेशोऽवसर्पति** दुष्टेभ्यो विरुद्धं गच्छति, **यमेनं गोपाः** रक्षका भृत्याः **अदृश्रन्** समीक्षेरन् **उत=अप्युदहार्यः** या उदकं हरन्ति ताः **अदृश्रन्** पश्येयुः ।

स दृष्टः स समीक्षितः **सन् नः=अस्मान्** अस्मान् सज्जनान् **मृडयाति** सुखयतु ।। १६ । ७ ।।

भाषार्थ—(यः) जो (असौ) वह (नीलग्रीवः) नीलमणि से युक्त ग्रीवा=गर्दन वाला, (विलोहितः) विविध शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से वृद्ध (रुद्रः) सेनापति (अवसर्पति) दुष्टों से विरुद्ध चलता है, (एनम्) इसे (गोपाः) रक्षक भृत्य (अदृश्रन्) देखते हैं (उत) और—(उदहार्यः) पानी लाने वाली स्त्रियाँ (अदृश्रन्) देखें ।

(स दृष्टः) वह देख-भाल करता हुआ (नः) हम सज्जनों को (मृडयाति) सुखी करे ।।

[योऽसौ......रुद्रः=सेनेशोऽवसर्पति, यमेनं गोपा अदृश्रन्, सः......नोऽस्मान् मृडयाति]

भावार्थः—यो दुष्टानां विरोधी श्रेष्ठप्रियो दर्शनीयः सेनापतिः सर्वाः सेना रञ्जयेत्, स शत्रून् विजेतुं शक्नुयात् ।। १६ । ७ ।।

भावार्थ—जो दुष्टों का विरोधी, श्रेष्ठों का प्रिय, दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न रखे वह शत्रुओं पर विजय कर सकता है ।। ७ ।।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो**—सेनापति रुद्र की तरह शत्रुओं को रुलाने वाला, श्रेष्ठों के लिए प्राणवत् प्रिय हो, वह विविध शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाला, नीलमणि से युक्त गर्दन वाला हो । वह जब शत्रुओं के विरुद्ध चलने लगे, तब उसके अङ्गरक्षक उसकी सब ओर से रक्षा किया करें । पानी की तरह निरन्तर बढ़ने वाली सेनाएँ सेनापति की देख-भाल किया करें । ऐसा सेनापति शत्रुओं को जीतकर सबको सुख देता है ।। १६ । ७ ।।

प्रजापतिः । **रुद्रः**=सेनापतिः । देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ।।

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये ऽ अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**अस्तु**) भवतु (**नीलग्रीवाय**) शुद्धकण्ठस्वराय (**सहस्राक्षाय**) सहस्रेषु भृत्येष्वक्षिणी यस्य तस्मै (**मीढुषे**) वीर्यवते (**अथो**) अनन्तरम् (**ये**) (**अस्य**) सेनापतेरधिकारे (**सत्वानः**) सत्वगुणबलोपेताः (**अहम्**) प्रजासेनापालनाधिकारेऽधिकृतोऽमात्यः (**तेभ्यः**) (**अकरम्**) कुर्याम् (**नमः**) पुष्कलमन्नादिकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे सेनापतये मद्दत्तं नमोऽस्तु । अथो येऽस्य सत्वानः सन्ति तेभ्योपि नमोऽहमकरं निष्पादयेयम् ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—**नीलग्रीवाय** शुद्धकण्ठस्वराय **सहस्राक्षाय** सहस्रेषु भृत्येष्वक्षिणी यस्य तस्मै **मीढुषे** वीर्यवते **सेनापतये मद्दत्तं नमः** अन्नम् **अस्तु** भवतु ।

अथो अनन्तरं **येऽस्य** सेनापतेरधिकारे **सत्वानः** सत्त्वगुणबलोपेताः **सन्ति, तेभ्योऽपि नमः** पुष्कलमन्नादिकम् **अहं** प्रजासेनापालनाधिकारेऽधिकृतोऽमात्यः **अकरं=निष्पादयेयं** कुर्याम् ॥ १६ । ८ ॥

भाषार्थ—(नीलग्रीवाय) शुद्ध कण्ठ-स्वर वाले, (सहस्राक्षाय) असंख्य भृत्यों पर दृष्टि रखने वाले, (मीढुषे) वीर्यवान्=बलवान् सेनापति के लिए मेरा दिया हुआ (नमः) अन्न (अस्तु) हो ।

(अथो) और-(ये) जो (अस्य) इस सेनापति के अधिकार में (सत्वानः) सत्त्वगुण के बल से युक्त हैं, (तेभ्यः) उन्हें भी (नमः) पुष्कल अन्न आदि को (अहम्) मैं प्रजा और सेना के पालन-अधिकार में नियुक्त मन्त्री (अकरम्) सिद्ध करूँ ॥ १६ । ८ ॥

[नीलग्रीवाय...सेनापतये मद्दत्तं नमोऽस्तु,...येऽस्य सत्वानः...तेभ्योऽपि नमोऽहमकरम्]

भावार्थः—सभापत्यादिभिरन्नाद्येन यादृशः सत्कारः सेनापतेः क्रियते तादृगेव सेनास्थानां भृत्यानामपि कर्त्तव्यः ॥ १६ । ८ ॥

भावार्थ—सभापति आदि लोग अन्न आदि से जैसा सत्कार सेनापति का करते हैं वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करें ॥ १६ । ८ ॥

भा० पदार्थः—सत्वानः=सेनास्था भृत्याः ॥

भाष्यसार—**राज-धर्म का वर्णन**—राजा का मुख्य धर्म यह है जो शुद्ध-स्वर वाला, (जिसकी ध्वनि स्पष्ट तथा ऊँची हो असंख्य सैनिकों तथा भृत्यों पर जो समान दृष्टि रखकर उनकी सब चेष्टाओं को जानता हो, और बलवान् यशस्वी हो, ऐसे पुरुष को सेनापति पद पर नियुक्त करे और उसका तथा उसके सत्त्वगुण वाले भृत्यों का पुष्कल अन्नादि से सत्कार करे ॥ १६ । ८ ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः=सेनापतिः** । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त ऽ इषवः ऽ परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**प्र**) प्रकृष्टार्थे (**मुञ्च**) त्यज (**धन्वनः**) धनुषः (**त्वम्**) सेनेशः (**उभयोः**) (**आर्त्न्योः**) पूर्वापरयोः (**ज्याम्**) बाणसन्धानार्थम् (**याः**) (**च**) (**ते**) तव (**हस्ते**) करे (**इषवः**) बाणाः (**परा**) दूरे (**ताः**) (**भगवः**) ऐश्वर्ययुक्त (**वप**) निक्षिप ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे भगवः सेनापते ! ते तव हस्ते या इषवः सन्ति ता धन्वन उभयोरार्त्न्योर्ज्यामनुसन्धाय शत्रूणामुपरि त्वं प्रमुञ्च याश्च स्वोपरि शत्रुभिः प्रक्षिप्तास्ताः परा वप ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे भगवः=सेनापते ! ऐश्वर्ययुक्त ! ते=तव हस्ते करे या इषवः बाणाः सन्ति, ता धन्वनः धनुष उभयोरार्त्न्योः पूर्वापरयोः ज्यां बाणसन्धानार्थम् अनुसन्धाय शत्रूणामुपरि त्वं सेनेशः प्रमुञ्च प्रकृष्टं त्यज ।

याश्च स्वोपरि शत्रुभिः प्रक्षिप्तास्ताः परा+वप दूरे निक्षिप ॥ १६ । ९ ॥

भाषार्थ—हे (भगवः) ऐश्वर्य से युक्त सेनापति ! (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (याः) जो (इषवः) बाण हैं (ताः) उन्हें (धन्वनः) धनुष की (उभयोः) दोनों (आर्त्न्योः) पूर्व-अपर के (ज्याम्) बाणसन्धानी डोर को खोज कर शत्रुओं के ऊपर (त्वम्) तू (प्रमुञ्च) छोड़ ।

(याश्च) और जो अपने ऊपर शत्रुओं ने बाण फैंके हैं (ताः) उन्हें (परा+वप) दूर हटा ।

[हे······सेनापते ! ते······या इषवः सन्ति ता······शत्रूणामुपरि······प्रमुञ्च, याश्च······शत्रुभिः प्रक्षिप्तास्ताः परावप]

भावार्थः—सेनापत्यादिभिर्धनुषा प्रक्षिप्तैर्बाणैः शत्रवो विजेतव्याः, शत्रुक्षिप्ताश्च निवारणीयाः ॥ १६ । ९ ॥

भावार्थ—सेनापति आदि लोग धनुष से फैंके हुए बाणों से शत्रुओं को जीतें, शत्रुओं से छोड़े हुए बाणों को निवारण करें ॥ १६ । ९ ॥

भाष्यसार—**युद्ध के समय सेनापति का कर्त्तव्य**—सब प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न सेनापति युद्ध के समय दो बातों का विशेष ध्यान रक्खे—(१) शत्रु पर ठीक लक्ष्य बना कर बाणादि अस्त्रों को धनुष की प्रत्यञ्चा को पूरे बल से खींचकर छोड़े। (२) और शत्रु के छोड़े हुए बाणों को रोकने अथवा बीच में ही काटने का पूरा प्रयत्न करे। इस प्रकार शत्रु पर निश्चित विजय प्राप्त होती है ॥ १६ । ९ ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः=सेनापतिः** । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽउत। अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥१०॥

पदार्थः—(**विज्यम्**) विगता ज्या यस्मात्तत् (**धनुः**) (**कपर्द्दिनः**) प्रशंसितो जटाजूटो विद्यते यस्य तस्य (**विशल्यः**) विगतानि शल्यानि यस्य सः (**बाणवान्**) बहवो बाणा विद्यन्ते यस्य स (**उत**) यदि (**अनेशन्**) नश्येयुः । णश् अदर्शने । लुङि रूपम् । नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्यम् । अनेन वार्त्तिकेनात्रैत्वम् (**अस्य**) सेनापतेः (**याः**) (**इषवः**) बाणाः (**आभुः**) रिक्तः खड्गादिरहितः (**अस्य**) (**निषङ्गधिः**) निषङ्गानि=शस्त्रास्त्राणि धीयन्ते यस्मिन् सः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(अनेशन्) यह 'णश् अदर्शने' धातु का लुङ् लकार में रूप है । 'नशिमन्योरलिट्येत्वं वक्तव्यम्' (६ । ४ । १२०) इस वार्त्तिक से यहाँ एत्व है ।

अन्वयः—हे धनुर्वेदविदो जनाः ! अस्य कपर्दिनः सेनापतेर्धनुर्विज्यं मा भूदयं विशल्य आभुर्माभूत् । उतास्य शस्त्रास्त्रधारकस्य निषङ्गधिर्मृषा माभूत् । बाणवांश्चायं भवतु । या अस्येषवोऽनेशन् ता अस्मै नवा दत्त ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—हे धनुर्वेदविदो जनाः ! **अस्य** सेनापतेः **कपर्दिनः**=**सेनापतेः** प्रशंसितो जटाजूटो विद्यते यस्य तस्य **धनुर्विज्यं** विगता ज्या यस्मात्तत् **मा भूत्, अयं विशल्यः** विगतानि शल्यानि यस्य सः **आभुः** रिक्तः=खड्गादिरहितः **मा भूत्** ।

उत यदि **अस्य**=**शस्त्रास्त्रधारकस्य** सेनापतेः **निषङ्गधिः** निषङ्गानि=शस्त्रास्त्राणि धीयन्ते यस्मिन् **मृषा मा भूत् बाणवान्** बहवो बाणा विद्यन्ते यस्य स **चायं भवतु** ।

या अस्य सेनापतेः **इषवः** बाणाः **अनेशन्** नश्येयुः, **ता अस्मै नवा दत्त** ॥ १६ । १० ॥

भाषार्थ—हे धनुर्वेद के वेत्ता पुरुषो ! (अस्य) इस (कपर्दिनः) प्रशंसित जटाजूट वाले सेनापति का (धनुः) धनुष (विज्यम्) डोरी से वियुक्त (मा भूत्) न हो। यह (विशल्यः) शल्य से रहित तथा (आभुः) खड्ग आदि से रहित (मा भूत्) न हो।

(उत) यदि—(अस्य) शस्त्र-अस्त्र को धारण करने वाले इस सेनापति का (निषङ्गधिः) शस्त्र-अस्त्रों को धारण करने वाली तूणीर (मृषा) व्यर्थ (मा भूत्) न हो। और यह—(बाणवान्) बहुत बाणों वाला हो।

(याः) जो (अस्य) इस सेनापति के (इषवः) बाण (अनेशन्) नष्ट हो जावें तो (ताः) वे इसे नये दो ॥ १६ । १० ॥

[अस्य कपर्दिनः=सेनापतेः धनुर्विज्यं मा भूत्, अयं···आभुर्माभूत्]

भावार्थः—युयुत्सुना नरेण धनुर्ज्यादयो दृढा बहुबाणाश्च धार्याः ।

भावार्थ—युद्ध का इच्छुक नर धनुष की ज्या=डोरी आदि और बहुत से दृढ़ बाणों को धारण करे ।।

[या अस्येषवोऽनेशन्, ता अस्मै नवा दत्त]

सेनापत्यादिभिर्युध्यमानान् विलोक्य पुनश्च तेभ्यो बाणादीनि साधनानि देयानि ॥

सेनापति आदि युद्ध करने वालों को देखकर फिर उन्हें बाण आदि साधन प्रदान करें ॥

भाष्यसार—**राज-धर्म**—राजा को योग्य है कि वह प्राण-पण से युद्ध करते हुए रुद्र=सेनापति का, जिसका रूप युद्ध के समय प्रशंसा के योग्य होता है, इस प्रकार से ध्यान रक्खे कि उसका धनुष डोरी से रहित न हो, वह शल्य खड्गादि से रहित न हो, उसका तूणीर अपरिमित और प्रशस्त बाणों से सदा भरा रहे। युद्ध करते समय जो बाणादि अस्त्र नष्ट हो गये हों, उनके स्थान पर दूसरे नवीन अस्त्र यथासमय प्राप्त कराये जावें ॥ १६ । १० ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः**=**सेनापतिः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

सेनाधीशादयः कैः कथमुपदेश्या इत्युच्यते ॥

सेनापति आदि को कौन किस प्रकार उपदेश करें, यह उपदेश किया है।

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑ । तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑ भुज ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**या**) सेना (**ते**) तव (**हेतिः**) वज्रः । हेतिरिति वज्रना० ॥ निघं० ॥ २ । २० ॥ (**मीढुष्टम**) अतिशयेन वीर्यस्य सेचक सेनापते ! (**हस्ते**) (**बभूव**) भवेत् (ते) (धनुः) (तया) (**अस्मान्**) (**विश्वतः**) सर्वतः (**त्वम्**) (**अयक्ष्मया**) पराजयादिपीडानिवारकया (**परि**) समन्तात् (**भुज**) पालय ॥ ११ ॥

प्रमाणार्थ—(हेतिः) वज्रः । 'हेति' पद निघं० २ । २० ।। में वज्र नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे मीढुष्टम सेनापते ! या ते सेनाऽस्ति । यच्च ते हस्ते धनुर्हेतिश्च बभूव । तयाऽयक्ष्मया सेनया तेन चास्मान् प्रजासेनाजनान् त्वं विश्वतः परि भुज ।। ११ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मीढुष्टम !**= **सेनापते** अतिशयेन वीर्यस्य सेचक सेनापते ! **या सेना ते** तव **सेनाऽस्ति, यच्च ते हस्ते धनुर्हेतिः** वज्रः **च बभूव** भवेत्, **तयाऽयक्ष्मया** पराजयादिपीडानिवारकया **सेनया तेन चास्मान् प्रजासेनाजनान् त्वं विश्वतः** सर्वतः **परिभुज** समन्तात्पालय ।। ११ ।।

भाषार्थ—हे (मीढुष्टम) वीर्य का अत्यन्त सेचन करने वाले सेनापति ! (या) जो (ते) तेरी सेना है, और जो (ते) तेरे (हस्ते) हाथ में (धनुः) धनुष है और (हेतिः) वज्र (बभूव) है, उस (अयक्ष्मया) पराजय आदि पीड़ा का निवारण करने वाली सेना से तथा उस धनुष आदि से हम प्रजा और सेना-जनों का तू (विश्वतः) सब ओर से (परिभुज) परिपालन कर ।। १६ । ११ ।।

[हे मीढुष्टम=सेनापते !······अस्मान् प्रजासेनाजनान् त्वं विश्वतः परिभुज]

भावार्थः— विद्यावयोवृद्धैरुपदेशकैर्विद्वद्भिः सेनापत्यादय एवमुपदेष्टव्याः—

भवन्तो यावद्बलं तावता सर्वे श्रेष्ठाः सर्वथा रक्षणीया, दुष्टाश्च ताडनीया इति ।। १६ । ११ ।।

भावार्थ—विद्यावृद्ध एवं वयोवृद्ध उपदेशक विद्वान् सेनापति आदि जनों को इस प्रकार उपदेश करें—

आप—यथाशक्ति सब श्रेष्ठ जनों की सर्वथा रक्षा और दुष्टों का ताड़न करें ।। १६ । ११ ।।

भाष्यसार—**युद्धार्थ सन्नद्ध सेनापति को उपदेश**—हे सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न सेनापति ! तुम्हारे हाथों में धनुष और वज्रादि अपरिमित शक्ति वाले हों। तुम्हारी सेना ऐसी दृढ़ और अभेद्य हो, जो पराजय रूपी पीड़ाओं का निवारण करके शत्रुओं से हमारी सब प्रकार से रक्षा करने में समर्थ हो ।। १६ । ११ ।।

प्रजापतिः । **रुद्रः**=**सेनापतिः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

राजप्रजाजनैरितरेतरं किं कार्यमित्युपदिश्यते ।।

राजा और प्रजा के पुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो यऽइषुधिस्तवारेऽअस्मन्निधेहि तम् ।।१२।।

पदार्थः—(**परि**) (**ते**) तव (**धन्वनः**) (**हेतिः**) गतिः (**अस्मान्**) (**वृणक्तु**) परित्यजतु (**विश्वतः**) (**अथो**) आनन्तर्ये (**यः**) (**इषुधिः**) इषवो धीयन्ते यस्मिन् सः (**तव**) (**आरे**) समीपे दूरे वा (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**नि**) (**धेहि**) नितरान्धर (**तम्**) ।। १२ ।।

अन्वयः—हे सेनापते ! या ते धन्वनो हेतिरस्ति तथाऽस्मान् विश्वत आरे भवान् परिवृणक्तु । अथो यस्तवेषुधिरस्ति तमस्मच्चारे निधेहि ।। १२ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे सेनापते ! या ते** तव **धन्वनो हेतिः** गतिः **अस्ति, तयाऽस्मान् विश्वत आरे** समीपे दूरे वा **भवान् परिवृणक्तु** परित्यजतु ।

भाषार्थ—हे सेनापति ! जो (ते) तेरे (धन्वनः) धनुष की (हेतिः) गति है उससे (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब ओर से (आरे)

पास वा दूर आप (परिवृणक्तु) छोड़िए।

अथो अनन्तरं **यस्तवेषुधिः** इषवो धीयन्ते यस्मिन् सः **अस्ति, तमस्मद्** अस्माकं सकाशाद् **चाऽऽरे** समीपे दूरे **निधेहि** नितरान्धर ॥ १६ । १२ ॥

(अथो) और—(यः) जो (ते) तेरा (इषुधिः) बाणों को धारण करने वाला तूणीर है उसे (अस्मत्) हमारे (आरे) पास वा दूर (निधेहि) रखिए ॥ १६ । १२ ॥

[हे सेनापते !—यस्तवेषुधिरस्ति तमस्मदारे निधेहि]

भावार्थः— राजप्रजाजनैर्युद्धशस्त्राभ्यासं कृत्वा शस्त्रादिसामग्र्यः सदा समीपे रक्षणीयाः।

ताभिः परस्परस्य रक्षा कार्या, सुखं चोन्नेयम् ॥

भावार्थ—राजपुरुष और प्रजाजन युद्ध के शस्त्रों का अभ्यास करके शस्त्र आदि सामग्री को सदा समीप रखें।

उक्त सामग्री से एक-दूसरे की रक्षा करें और सुख को बढ़ावें ॥ १६ । १२ ॥

भा० पदार्थः—इषुधिः=शस्त्रादिसामग्री।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो**—सेनापति उसे बनाना चाहिए जो स्वयं धनुषादि अस्त्र-शस्त्रों को चलाने में प्रशिक्षित हो। वह धनुर्वेद आदि का ऐसा विद्वान् होना चाहिए कि किस प्रकार के शस्त्रास्त्र दूर से अथवा निकट से शत्रु पर प्रहार कर सकते हैं। जो बाणादि को चारों तरफ फेंकने में पूर्ण प्रशिक्षित हो, उसका तूणीर बाणों से सदा भरा हुआ साथ रहना चाहिए ॥ १६ । १२ ॥

प्रजापतिः। **रुद्रः=सेनाध्यक्षः**। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः स्वरः ॥

राजपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**अवतत्य**) विस्तार्य्य (**धनुः**) चापम् (**त्वम्**) (**सहस्राक्ष**) सहस्रेष्वसंख्यातेषु युद्धकार्येष्वक्षिणी यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतेषुधे**) शतमसंख्याः शस्त्रास्त्रप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ (**निशीर्य**) नितरां हिंसित्वा (**शल्यानाम्**) शस्त्राणां (**मुखा**) मुखानि (**शिवः**) मङ्गलकारी (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुमनाः**) सुहृद्भावः (**भव**) ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे सहस्राक्ष शतेषुधे सेनाध्यक्ष ! त्वं धनुः शल्यानां मुखा चावतत्य तैः शत्रून्निशीय नः सुमनाः शिवो भव ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सहस्राक्ष** सहस्रेष्वसंख्यातेषु युद्धकार्येष्वक्षिणी यस्य तत्सम्बुद्धौ **शतेषुधे** ! =**सेनाध्यक्ष** शतमसंख्याः शस्त्रास्त्रप्रकाशा यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं धनुः** चापं **शल्यानां** शस्त्राणां **मुखा** मुखानि **चावतत्य** विस्तार्य्य **तैः शत्रून् निशीर्य** नितरां हिंसित्वा **नः** अस्मभ्यं **सुमनाः** सुहृद्भावः **शिवः** मङ्गलकारी **भव** ॥ १६ । १३ ॥

भाषार्थ—हे (सहस्राक्ष) सहस्र=असंख्य युद्ध कार्यों पर दृष्टि रखने वाले, (शतेषुधे) शत=असंख्य शस्त्र-अस्त्रों के प्रकाश वाले, सेनाध्यक्ष ! तू—(धनुः) धनुष और (शल्यानाम्) शस्त्रों के (मुखा) मुखों को (अवतत्य) विस्तृत करके, उनसे शत्रुओं की (निशीर्य) सर्वथा हिंसा करके, (नः) हमारे लिए (सुमनाः) श्रेष्ठ मन वाला तथा

(शिवः) मङ्गलकारी (भव) हो ॥ १६ । १३ ॥

[हे सहस्राक्ष शतेषुधे=सेनापते ! त्वं धनुः, शल्यानां मुखा चावतत्य तैः शत्रून् निशीर्य नः सुमनाः शिवो भव]

भावार्थः—राजपुरुषाः सामदामदण्डभेदादिराजनीत्यवयवकृत्यानि सर्वतो विदित्वा, पूर्णानि शस्त्रास्त्राणि सम्पाद्य, तीक्ष्णीकृत्य च शत्रुषु दुर्मनसो दुःखप्रदाः, प्रजासु सोम्याः सुखप्रदाश्च सततं स्युः ॥ १६ । १३ ॥

भावार्थ—राजपुरुष साम, दाम, दण्ड, भेद आदि राजनीति के अवयव सम्बन्धी कार्यों को सब ओर से जानकर, पूर्ण शस्त्र-अस्त्रों को सिद्ध करके और उन्हें तीक्ष्ण करके, शत्रुओं के प्रति दुष्ट मन वाले, दुःखदायक हों तथा प्रजा के प्रति सोम्य-स्वभाव और सुखदायक सदा हों ॥

भा० पदार्थः—सहस्राक्ष=सर्वतो विदितसामदामदण्डभेदादिराजनीत्यवयवकृत्य । शतेषुधे=सम्पादितपूर्णशस्त्रास्त्र । सुमनाः=सोम्यः । शिवः=सुखप्रदः ।

भाष्यसार—**सेनापति के कर्त्तव्य**—सेनापति का मुख्य कर्त्तव्य यह है कि वह असंख्य युद्ध के कार्यों पर तथा योद्धाओं पर अपनी दृष्टि रक्खे । जिससे कोई कार्य पराजय का कारण न बन सके । असंख्य शस्त्रास्त्रों के चलाने में वह स्वयं भी प्रशिक्षित हो, और शस्त्रों के मुखों को विस्तृत=तीक्ष्ण करके शत्रुओं का संहारक बने । वह शत्रुओं के लिए दुर्मना और श्रेष्ठ प्रजा के लिए सुमना तथा कल्याणकारी होकर रहे ॥ १६ । १३ ॥

प्रजापतिः । **रुद्रः=सेनापतिः** । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नम॑स्त ऽ आयु॑धा॒याना॑तताय धृ॒ष्णवे॑ । उ॒भाभ्या॑मु॒त ते॒ नमो॑ बा॒हुभ्या॒ं तव॒ धन्व॑ने ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**नमः**) (**ते**) तुभ्यम् (**आयुधाय**) यः समन्ताद् युध्यते तस्मै । **अत्र इगुपधेति कः** (**अनातताय**) अविद्यमान आततो=विस्तारो यस्य तस्मै (**धृष्णवे**) यो धृष्णोति=धाष्टर्च्यं प्राप्नोति तस्मै (**उभाभ्याम्**) (**उत**) (**ते**) तुभ्यम् (**नमः**) (**बाहुभ्याम्**) बलवीर्य्याभ्याम् (तव) (धन्वने) ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**आयुधाय**) यहाँ 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (३ । १ । १३५) से क—प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे सभेश ! आयुधायानातताय धृष्णवे ते नमोऽस्तु उत ते **भोक्त्रे तुभ्यं नमः** प्रयच्छामि । तवोभाभ्यां बाहुभ्यां धन्वने नमो नियोजयेयम् ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश ! आयुधाय** यः समन्ताद् युध्यते तस्मै **अनातताय** अविद्यमान आततो=विस्तारो यस्य तस्मै **धृष्णवे** यो धृष्णोति=धाष्टर्च्यं प्राप्नोति तस्मै **ते** तुभ्यं **नमोऽस्तु, उत ते** तुभ्यं **भोक्त्रे तुभ्यं नमः प्रयच्छामि, तवोभाभ्यां बाहुभ्यां** बलवीर्य्याभ्यां **धन्वने नमो नियोजयेयम्** ॥ १६ । १४ ॥

भाषार्थ—हे सभापति ! (आयुधाय) सब ओर से युद्ध करने वाले, (अनातताय) विस्तार से रहित, (धृष्णवे) धृष्टता=दृढ़ता को प्राप्त हुए (ते) आपके लिए (नमः) अन्न हो । (उत) और (ते) तुझ भोक्ता के लिए (नमः) अन्न प्रदान करता हूँ । और (तव) तेरे (उभाभ्याम्) दोनों (बाहुभ्याम्) बल और वीर्य के लिए तथा (धन्वने)

धनुष के लिए (नमः) अन्न को लगाऊँ ॥ १६ । १४ ॥

[हे सभेश !......ते उभाभ्यां बाहुभ्यां धन्वने नमो नियोजयेयम्]

भावार्थः—सेनापत्याद्यधिकारिभिरुभयेभ्यो ऽध्यक्षयोद्धृभ्यः शस्त्राणि दत्त्वा शत्रुभिः सहैते निःशंकं सम्यग् योधनीयाः ॥ १६ । १४ ॥

भावार्थ—सेनापति आदि अधिकारी को अध्यक्ष और योद्धा दोनों के लिए शस्त्रों को देकर शत्रुओं के साथ निशंक होकर ठीक-ठीक युद्ध में प्रवृत्त करें ॥ १६ । १४ ॥

भाष्यसार--सेनापति कैसा हो--सेनापति शत्रुओं को चारों ओर से घेर कर युद्ध करने वाला हो । वह सेना का अनावश्यक विस्तार न करके दृढ़ता से शत्रुओं से युद्ध करे । उसकी दोनों भुजाओं में इतना बल हो कि वह शत्रुओं को बाधित=पराजित करने में समर्थ हो । ऐसे धनुषधारी सेनापति का सभापति आदि सभी राजपुरुष अन्नादि से सत्कार किया करें ॥ १६ । १४ ॥

कुत्सः । **रुद्रः=युद्धसेनाधिकृतविद्वान्** । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

राजजनैः किं न कार्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

मा नों म॒हान्त॑मु॒त मा नों ऽ अर्भ॒कं मा न॒ ऽ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ ऽ उक्षि॒तम् ॥
मा नों वधीः पि॒तर॒ मोत मा॒तर॒ मा न॑ः प्रि॒यास्त॒न्वो॒ रुद्र रीरिषः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(मा) निषेधार्थे (नः) अस्माकम् (**महान्तम्**) महागुणविशिष्टं पूज्यं जनम् (**उत**) अपि (**मा**) (नः) (**अर्भकम्**) अल्पं क्षुद्रम् (**मा**) (**नः**) (**उक्षन्तम्**) वीर्य्यसेक्तारम् (**उत**) (**मा**) (**नः**) (**उक्षितम्**) सिक्तम् (मा) (नः) (वधीः) हिंस्याः (**पितरम्**) पालकं जनकम् (**मा**) (**उत**) (**मातरम्**) मान्यप्रदां जननीम् (मा) (**नः**) (**प्रियाः**) स्त्र्यादेः प्रीत्युत्पादकानि (**तन्वः**) शरीराणि (**रुद्र**) युद्ध-सेनाधिकृतविद्वन् (**रीरिषः**) हिंस्याः । **अत्र लिङर्थे लुङडभावश्च ॥ १५ ॥**

प्रमाणार्थ—(**रीरिषः**) यहाँ लिङर्थ में लुङ् और अडागम का अभाव है ।

अन्वयः—हे रुद्र ! त्वं नो महान्तं मा वधीरुत नोऽर्भकं मा वधीर्न उक्षन्तं मा वधीरुत न उक्षितं मा वधीः । नः पितरं मा वधीरुत नो मातरं च मा वधीः । नः प्रियास्तन्वो मा रीरिषः ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र ! युद्धसेनाधिकृतविद्वन् । त्वं नः अस्माकं **महान्तं** महागुणविशिष्टं पूज्यं जनं **मा** न **वधीः** हिंस्याः, **उत** अपि **नः** अस्माकम् **अर्भकम्** अल्पं क्षुद्रं **मा** न **वधीः** हिंस्याः, **नः** अस्माकम् **उक्षन्तं** वीर्य्यसेक्तारं **मा** न वधीः हिंस्याः, **उत** अपि **नः** अस्माकम् **उक्षितं** सिक्तं **मा** न **वधीः** हिंस्याः, **नः** अस्माकं **पितरं**-पालकं जनकं **मा** न **वधीः** हिंस्याः, **उत** अपि **नः** अस्माकं **मातरं** मान्यप्रदां जननीं **च** **मा** न **वधीः** हिंस्याः ।

भाषार्थ—हे (रुद्र) युद्ध-सेना में अधिकृत विद्वान् ! तू—(नः) हमारे (महान्तम्) महान् गुणों से युक्त पूज्य जन का (मा वधीः) वध मत कर, (उत) और—(नः) हमारे (अर्भकम्) छोटे बच्चे का (मा वधीः) वध मत कर, (नः) हमारे (उक्षन्तम्) वीर्य सेचन में समर्थ युवा का (मा वधीः) वध मत कर, (उत) और—(नः) हमारे (उक्षितम्) गर्भ में सिक्त वीर्य का (मा वधीः) वध मत कर, (नः) हमारे (पितरम्) पालक पिता का (मा वधीः) वध मत कर, (उत) और—(नः)

हमारी (मातरम्) मान के योग्य जननी का (मा वधीः) वध मत कर,

नः अस्माकं **प्रियाः** स्त्र्यादेः प्रीत्युत्पादकानि **तन्वः** शरीराणि **मा न रीरिषः** हिंस्याः ॥१६।१५॥

और—(नः) हमारे (प्रियाः) स्त्री आदि के प्रीति-उत्पादक (तन्वः) शरीरों की (मा रीरिषः) हिंसा मत कर ॥ १६ । १५॥

[हे रुद्र ! त्वं नो महान्तं, अर्भकम्, उक्षन्तं उक्षितं, मातरं, पितरं च मा वधीः, नः प्रियास्तन्वो मा रीरिषः]

भावार्थः—योद्धृभिर्युद्धसमये कदाचिद् वृद्धा, बालका, अयोद्धारो युवानो, गर्भा, योद्धृणां मातरः पितरश्च, सर्वेषां स्त्रियः संप्रेक्षितारो, दूताश्च नो हिंसनीयाः, किन्तु—सदा शत्रुसम्बन्धिनो वशे स्थापनीयाः ॥ १६ । १५ ॥

भावार्थ—योद्धा लोग युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध न करने वाले युवकों, गर्भों, योद्धाओं के माता-पिता, सबकी स्त्रियों, दर्शकों और दूतों का कभी वध न करें; किन्तु—सदा शत्रुओं के सम्बन्धियों को वश में रखें ॥ १६ । १५ ॥

भा० पदार्थः—महान्तम्=वृद्धम् । अर्भकम्=बालकम् । उक्षन्तम्=अयोद्धारं युवानम् । उक्षितम्=गर्भम् । मातरम्=योद्धृणां मातरम् । पितरम्=योद्धृणां पितरम् । प्रियाः=सर्वेषां **स्त्रियः** ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् । ··· माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है । (**सत्यार्थ० समु० १०**) ॥

(ख) हे रुद्र ! (**दुष्टों को पाप के दुःखरूप फल को दे के रुलाने वाले परमेश्वर !**) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय बन्धु वर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिए प्रेरित मत कीजिए; ऐसे मार्ग से हमको चलाइए जिससे हम आप के दण्डनीय न हों ॥ **सत्यार्थ० समु० ७** ॥

भाष्यसार—**सेनापति युद्ध में किस किस को न मारे**—युद्ध के समय सेनापति आदि योद्धा गण शत्रुओं का संहार करें, किन्तु जो गुणों में महान् हैं, छोटे बच्चे हैं, युद्ध न करने वाले युवाजन हैं, गर्भस्थित जीव हैं, योद्धाओं के माता, पिता, स्त्रियां तथा इष्ट बन्धु हैं, और दूत का कार्य करने वाले हैं, उन पर कदापि प्रहार न करे । १६ । १५ ॥

कुत्सः । **रुद्रः=सेनेशः** । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

राजपुरुषों को क्या नहीं करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

मा नस्तोके तनये मा नऽआयुषि मा नो गोषु मा नोऽअश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**तोके**) सद्योजातेऽपत्ये (**तनये**) पञ्चमाद्वर्षादूर्ध्वं वयः प्राप्ते (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**आयुषि**) वयसि (**मा**) (**नः**) अस्माकम् (**गोषु**) गोऽजाव्यादिषु (**मा**) (**नः**) (**अश्वेषु**) तुरङ्गहस्त्युष्ट्रादिषु (**रीरिषः**) हिंसको भवेः (**मा**) (**नः**) (**वीरान्**) शूरान् (**रुद्र**) (**भामिनः**) क्रुद्धान् (**वधीः**) (**हविष्मन्तः**) बहूनि हवींषि=दातुमादातुं योग्यानि वस्तूनि विद्यन्ते येषां ते (**सदम्**) यो न्याये सीदति तम् (**इत्**) एव (**त्वा**) त्वाम् (**हवामहे**) स्वीकुर्महे ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे रुद्र सेनेश ! त्वं नस्तोके मा रीरिषो नस्तनये मा रीरिषो न आयुषि मा रीरिषो नो गोषु मा रीरिषो नोऽश्वेषु मा रीरिषः नो भामिनो वीरान् मा वधीरतो हविष्मन्तो वयं सदं त्वेद्धवामहे ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र ! =सेनेश ! **त्वं नः** अस्माकं **तोके** सद्योजातेऽपत्ये **मा रीरिषः** हिंसको भवेः, **नः** अस्माकं **तनये** पञ्चमाद्वर्षादूर्ध्वं वयः प्राप्ते **मा रीरिषः**, **न आयुषि** वयसि **मा रीरिषः**, **नो गोषु** गोऽजाव्यादिषु **मा रीरिषः नोऽश्वेषु** तुरङ्गहस्त्युष्ट्रादिषु **मा रीरिषः, नो भामिनः** क्रुद्धान् **वीरान्** शूरान् **मा वधीः**।

भाषार्थ—हे (रुद्र) सेनापति ! तू—(नः) हमारे (तोके) नवजात शिशु का (मा रीरिषः) हिंसक मत हो, (नः) हमारे (तनये) पाँच वर्ष से अधिक आयु के बालक का (मा रीरिषः) हिंसक मत हो, (नः) हमारी (आयुषि) आयु का (मा रीरिषः) हिंसक मत हो, (नः) हमारी (गोषु) गौ, बकरी भेड़ आदि के (मा रीरिषः) हिंसक मत हो, (नः) हमारे (अश्वेषु) घोड़े, हाथी, ऊँट आदि के (मा रीरिषः) हिंसक मत हो, (नः) हमारे (भामिनः) क्रुद्ध (वीरान्) शूर-वीरों को (मा वधीः) वध मत कर।

अतो हविष्मन्तः बहूनि हवींषि=दातुमादातुं योग्यानि वस्तूनि विद्यन्ते येषां ते **वयं सदं** यो न्याये सीदति तं **त्वा** त्वाम् **इत्** एव **हवामहे** स्वीकुर्महे ॥ १६ । १६ ॥

इसलिए-(हविष्मन्तः) बहुत देने-लेने योग्य वस्तुओं वाले हम लोग-(सदम्) न्यायाध्यक्ष (त्वा) तुझे (इत्) ही (हवामहे) स्वीकार करते हैं॥

[हे रुद्र=सेनेश ! त्वं नस्तोके, तनये, गोषु, अश्वेषु मा रीरिषः नो वीरान् मा वधीः]

भावार्थः—राजपुरुषैः कस्यापि प्रजास्थस्य स्वस्य वा बालकुमारगवाश्वादिवीरहत्या नैव कार्या,

भावार्थ—राजपुरुष–किसी प्रजा-जन के अथवा अपने बालक, कुमार, गौ, अश्व आदि पशु और वीर पुरुष की हत्या न करें।

[न आयुषि मा रीरिषः]

न बाल्यावस्थायां विवाहेन व्यभिचारेण चायुर्हिंसनीयम्।

और–बाल्यावस्था में विवाह करके व्यभिचार से आयु की हिंसा न करें।

[तात्पर्यमाह—]

गवादिपशूनां दुग्धादिप्रदानेन सर्वोपकारकत्वात् सदैवैतेषां वृद्धिः कार्या ॥ १६ । १६ ॥

गौ आदि पशु दुग्ध आदि देने के कारण सब के उपकारक हैं अतः सदैव इनकी वृद्धि करें॥

भा० पदार्थः—तोके=बाले । तनये=कुमारे । गोषु=गवादिषु । अश्वेषु=अश्वादिषु ।

भाष्यसार—**युद्ध में अवध्य प्राणियों का वर्णन**—युद्ध के समय सेनापति आदि योद्धा-गण, नवजात शिशुओं पर, अल्पवयस्क बालकों पर, गाय, बकरी, घोड़े आदि उपकारक पशुओं पर, युद्ध में रत क्रुद्ध वीरों पर कभी प्रहार न करें। ऐसे वध्यों का वध और अवध्यों की रक्षा करने वाले सेनापति का सब हृदय से स्वागत करते हैं॥ १६ । १६ ॥

कुत्सः । रुद्रः=सेनापतिः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ।।

राजप्रजाजनैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ।।

राजा और प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ।।

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**नमः**) वज्रः (**हिरण्यबाहवे**) हिरण्यं=ज्योतिरिव तीव्रतेजस्कौ बाहू यस्य तस्मै (**सेनान्ये**) यः सेनां नयति=शिक्षां प्रापयति तस्मै (**दिशाम्**) सर्वासु दिक्षु स्थितानां राज्यप्रदेशानाम् (**च**) (**पतये**) पालकाय । **अत्र षष्ठीयुक्तश्छन्दसि वेति घिसंज्ञा ।** (**नमः**) अन्नादिकम् (**नमः**) वज्रादिशस्त्रसमूहः (**वृक्षेभ्यः**) आम्रादिभ्यः (**हरिकेशेभ्यः**) हरयो=हरणशीलाः सूर्यरश्मयो येषु तेभ्यः (**पशूनाम्**) गवादीनाम् (**पतये**) रक्षकाय (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) (**शष्पिञ्जराय**) शडुत्प्लुतं पिञ्जरं=बन्धनं येन तस्मै (**त्विषीमते**) बह्वयस्त्विषयो=न्यायदीप्तयो विद्यन्ते यस्य तस्मै । **शरादीनां चेति दीर्घः ।** (**पथीनाम्**) मार्गे गन्तॄणाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) सत्करणमन्नं च (**नमः**) अन्नादिकम् (**हरिकेशाय**) हरिता केशा यस्य तस्मै (**उपवीतिने**) प्रशस्तमुपवीतं=यज्ञोपवीतं विद्यते यस्य तस्मै (**पुष्टानाम्**) अरोगाणाम् (**पतये**) रक्षकाय (**नमः**) सत्कारः ।। १७ ।।

प्रमाणार्थ—(**पतये**) यहाँ 'षष्ठीयुक्तश्छन्दसि—वा' (१।४।९) से घि—संज्ञा है । (**त्विषीमते**) यहाँ 'शरादीनां च' (६।३।१२०) से दीर्घ है ।।

अन्वयः—हे रुद्र सेनाधीश ! हिरण्यबाहवे सेनान्ये तुभ्यं नमोऽस्तु दिशां च पतये नमोऽस्तु त्वं हरिकेशेभ्यो वृक्षेभ्यो नमो गृहाण पशूनां पतये नमोऽस्तु शष्पिञ्जराय त्विषीमते नमोऽस्तु पथीनां पतये नमोऽस्तु हरिकेशायोपवीतिने नमोऽस्तु पुष्टानां पतये नमो भवतु ।। १७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे रुद्र=**सेनाधीश** ! **हिरण्यबाहवे** हिरण्यं=ज्योतिरिव तीव्रतेजस्कौ बाहू यस्य तस्मै **सेनान्ये** यः सेनां नयति=शिक्षां प्रापयति तस्मै **तुभ्यं नमः** वज्रः **अस्तु** ।

दिशां सर्वासु दिक्षु स्थितानां राज्यप्रदेशानां **च पतये** पालकाय **नमः** अन्नादिकम् **अस्तु** ।

त्वं हरिकेशेभ्यः हरयो=हरणशीलाः सूर्यरश्मयो येषु तेभ्यः **वृक्षेभ्यः** आम्रादिभ्यः **नमः** वज्रादिशस्त्रसमूहं **गृहाण**, **पशूनां** गवादीनां **पतये** रक्षकाय **नमः** सत्करणम् **अस्तु** ।

शष्पिञ्जराय शडुत्प्लुतं पिञ्जरं=बन्धनं येन

भाषार्थ—हे (रुद्र) सेनापति ! (हिरण्यबाहवे) हिरण्य=ज्योति के समान तीव्र तेज से युक्त बाहुओं वाले, (सेनान्ये) सेना को शिक्षा प्रदान करने वाले, आप के लिए (नमः) वज्र हो । (च) और—

(दिशाम्) सब दिशाओं में स्थित राज्य-प्रदेशों के (पतये) पालक के लिए (नमः) अन्न आदि हो ।

तू—(हरिकेशेभ्यः) हरि=हरणशील सूर्य किरणों से युक्त (वृक्षेभ्यः) आम आदि वृक्षों के लिए (नमः) वज्र आदि शस्त्र-समूह को ग्रहण कर, (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के (पतये) रक्षक का (नमः) सत्कार हो ।

(शष्पिञ्जराय) शट्=उछल-कूद पिञ्जर=

तस्मै **त्विषीमते** बह्व्यस्त्विषयो=न्यायदीप्तयो विद्यन्ते यस्य तस्मै **नमोऽस्तु**।

पथीनां मार्गे गन्तॄणां **पतये** पालकाय **नमः** सत्करणमन्नं च **अस्तु**।

हरिकेशाय हरिता केशा यस्य तस्मै **उपवीतिने** प्रशस्तमुपवीतं=यज्ञोपवीतं विद्यते यस्य तस्मै **नमः** अन्नादिकम् **अस्तु**।

पुष्टानाम् अरोगाणाम् **पतये** रक्षकाय **नमः** सत्कारः **भवतु** ॥ १६ । १७ ॥

बन्धन के हेतु (त्विषीमते) नाना न्यायप्रकाशवाले का (नमः) सत्कार हो।

(पथीनाम्) पथिकों के (पतये) पालक का (नमः) सत्कार और उसके लिए अन्न हो।

(हरिकेशाय) हरित=काले बालों वाले, (उपवीतिने) उत्तम यज्ञोपवीत वाले के लिए (नमः) अन्न आदि हो।

(पुष्टानाम्) नीरोगों के (पतये) रक्षक का (नमः) सत्कार हो ॥ १६ । १७ ॥

[हे रुद्र=सेनाधीश ! हिरण्यबाहवे सेनान्ये, दिशां च पतये, पशूनां पतये पथीनां पतये, उपवीतिने, पुष्टानां पतये नमो भवतु]

भावार्थः—मनुष्यैः श्रेष्ठानां सत्कारेण, बुभुक्षितानामन्नदानेन, चक्रवर्त्तिराज्यशासनेन, पशूनां पालनेन, गन्तुकानां दस्युचोरादिभ्यो रक्षणेन, यज्ञोपवीतधारणेन, पुष्ट्या च सहानन्दितव्यम् ॥ १६ । १७ ॥

भावार्थ—मनुष्य—श्रेष्ठों के सत्कार से भूखों को अन्न-दान से, चक्रवर्त्ती राज्य के शासन से, पशुओं के पालन से, पथिक-जनों की डाकू-चोर आदि से रक्षा करने से, यज्ञोपवीत के धारण करने से और पुष्टि=नीरोगता से सदा आनन्द में रहें ॥ १६ । १७ ॥

भा० पदार्थः—हिरण्यबाहवे=श्रेष्ठानां सत्कारकाय, बुभुक्षितानामन्नदात्रे। पथीनाम्=गन्तुकानाम्। पतये=दस्युचोरादिभ्यो रक्षकाय। उपवीतिने=यज्ञोपवीतधारकाय।

भाष्यसार—सेनापति के कर्त्तव्य—सेनापति की भुजाएँ बल से अत्यन्त तेजस्वी हों, वह सेना को शस्त्रास्त्र की सब प्रकार की विद्याएँ प्राप्त कराने वाला हो, हरणशील सूर्य की किरणों के समान तेज चलने वाले घोड़े आदि रखता हो, सब दिशाओं में प्रजा का पालक हो, शत्रुओं का छेदन करने वाले शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न हो, गायाश्वादि श्रेष्ठ पशुओं का रक्षक हो, सदा दुष्टों का बन्धन करके न्याय के प्रकाश से प्रकाशित हो, रास्ते में चलने वाले को लूटने वालों को दण्ड देकर पथिकों की रक्षा करता हो, रोगरहित स्वस्थ प्राणियों का रक्षक हो और स्वयं यज्ञोपवीतादि श्रेष्ठ चिह्नों को धारण करने वाला हो। ऐसे गुणों वाले सेनापति का सब प्रजा और राजपुरुष सब प्रकार से सत्कार किया करें ॥ १६ । १७ ॥ ●

कुत्सः। **रुद्राः=राजपुरुषाः** ॥ निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा के पुरुषों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो॑ बभ्लुशाय॑ व्या॒धिनेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॒ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सू॒तायाह॑न्त्यै वना॑नां॒ पत॑ये॒ नमः॑ ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**बभ्लुशाय**) यो बभ्लुषु=राज्यधारकेषु शेते तस्मै (**व्याधिने**) रोगिणे (**अन्नानाम्**) गोधूमादीनाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) सत्कारः (**नमः**) अन्नम् (**भवस्य**) संसारस्य

(**हेत्यै**) वृद्धचै (**जगताम्**) जङ्गमानां मनुष्यादीनाम् (**पतये**) स्वामिने (**नमः**) सत्कारः (**नमः**) अन्नम् (**रुद्राय**) शत्रूणां रोदकाय (**आततायिने**) समन्तात् ततं=विस्तृतं शत्रुदलं प्रेतुं शीलमस्य तस्मै (**क्षेत्राणाम्**) धान्योद्भवाधिकरणानाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**सूताय**) क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां जाताय वीराय प्रेरकाय वा (**अहन्त्यै**) या राजपत्नी कञ्चन न हन्ति तस्यै (**वनानाम्**) जङ्गलानाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) अन्नम् ॥ १८॥

अन्वयः—राजपुरुषादिमनुष्यैर्बभ्लुशाय व्याधिने नमोऽन्नानां पतये नमो भवस्य हेत्यै नमो जगतां पतये नमो रुद्रायाततायिने नमः क्षेत्राणां पतये नमः सूतायाहन्त्यै नमो वनानां पतये नमो देयं कार्यं च ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—**राजपुरुषादिमनुष्यैर्बभ्लुशाय** यो बभ्लुषु=राज्यधारकेषु शेते तस्मै **व्याधिने** रोगिणे **नमः** अन्नम्, **अन्नानां** गोधूमादीनां **पतये** पालकाय **नमः** सत्कारः, **भवस्य** संसारस्य **हेत्यै** वृद्धचै **नमः** अन्नम्, **जगतां** जङ्गमानां मनुष्यादीनां **पतये** स्वामिने **नमः** अन्नम् **रुद्राय** शत्रूणां रोदकाय **आततायिने** समन्तात् ततं=विस्तृतं शत्रुदलं प्रेतुं शीलमस्य तस्मै **नमः** अन्नं, **क्षेत्राणां** धान्योद्भवाधिकरणानां **पतये** पालकाय **नमः** अन्नं, **सूताय** क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां जाताय वीराय प्रेरकाय वा **अहन्त्यै** या राजपत्नी कञ्चन न हन्ति तस्यै **नमः** अन्नं, **वनानां** जङ्गलानां **पतये** पालकाय **नमः** अन्नं **देयं कार्यं च** ॥ १६ । १८ ॥

भाषार्थ—राजपुरुष आदि मनुष्य—(बभ्लुशाय) बभ्लु=राज्य के धारण करने वाले में स्थित (व्याधिने) रोगी को (नमः) अन्न दें, (अन्नानाम्) गेहूँ आदि अन्नों के (पतये) पालक का (नमः) सत्कार करें, (भवस्य) संसार की (हेत्यै) वृद्धि के लिए (नमः) अन्न दें, (जगताम्) जङ्गम=मनुष्य आदि (पतये) स्वामी के लिए (नमः) अन्न दें, (रुद्राय) शत्रुओं को रुलानेवाले (आततायिने) सब ओर विस्तृत शत्रुदल की ओर गति करने वाले के लिए (नमः) अन्न दें, (क्षेत्राणाम्) धान्य उत्पत्ति के आधारभूत खेतों के (पतये) पालक के लिए (नमः) अन्न दें, (सूताय) क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में उत्पन्न वीर वा प्रेरक पुरुष के लिए तथा (अहन्त्यै) किसी का हनन न करने वाली राज्यपत्नी के लिए (नमः) अन्न दें, (वनानाम्) जंगलों के (पतये) पालक के लिए (नमः) अन्न दें ॥ १६ । १८ ॥

[**अन्नानां पतये नमः**······]

भावार्थः—येऽन्नादिना सर्वान् प्राणिनः सत्कुर्वन्ति, ते जगति प्रशंसिता भवन्ति ॥ १८ ॥

भावार्थ—जो अन्न आदि से सब प्राणियों का सत्कार करते हैं वे जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥ १६ । १८ ॥

भाष्यसार—**राजपुरुषों के कर्त्तव्य**—राज्य में उच्च पद पर आसीन होकर राजपुरुष राजकर्मचारियों के रोगी होने पर अन्नादि से उनकी आवश्यकताओं को पूरा करें। जंगम प्राणियों के पालक गेहूँ आदि अन्नों के उत्पादक कृषक को राज्य की वृद्धि के लिए पुरस्कारादि से प्रोत्साहित किया करें। शत्रुओं को रुलाने वाले वीर योद्धाओं को अन्नादि से तृप्त रक्खें। इसी प्रकार किसी भी प्रकार से उत्तम प्रेरणा देने वाले सूत का, विधवा राजपत्नी का और वन-सम्पदा के पालकों का सदा अन्नादि से सत्कार किया करें ॥ १६ । १८ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=राजप्रजाजनाः । विराडतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**रोहिताय**) वृद्धिकराय (**स्थपतये**) तिष्ठन्ति यस्मिन्निति स्थं तस्य पतये पालकाय (**वृक्षाणाम्**) आम्रादीनाम् (**पतये**) स्वामिने (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**भुवन्तये**) यो भवत्याचारवांस्तस्मै (**वारिवस्कृताय**) वारिवस्सेवनं कृतं येन तस्मै । अत्र स्वार्थेऽण् (**ओषधीनाम्**) सोमादीनाम् (**पतये**) पालकाय वैद्याय (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्कारः (**मन्त्रिणे**) विचारकर्त्रे राजपुरुषाय (**वाणिजाय**) वणिजां व्यवहारेषु कुशलाय (**कक्षाणाम्**) गृहप्रान्तावयवेषु स्थितानाम् (**पतये**) रक्षकाय (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्कारः (**उच्चैर्घोषाय**) उच्चैर्घोषो यस्य तस्मै (**आक्रन्दयते**) यो दुष्टानाक्रन्दयते=रोदयति तस्मै न्यायाधीशाय (**पत्तीनाम्**) सेनाङ्गानाम् (**पतये**) रक्षकाय सेनाध्यक्षाय (**नमः**) सत्कारः ॥ १९ ॥

प्रमाणार्थ—(**वारिवस्कृताय**) यहाँ स्वार्थ में अण्-प्रत्यय है ॥

अन्वयः—राजप्रजाजनै रोहिताय स्थपतये नमो वृक्षाणां पतये नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय नम ओषधीनां पतये नमो मन्त्रिणे वाणिजाय नमः कक्षाणां पतये नम उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते नमः पत्तीनां पतये नमश्च देयं कार्यं च ॥ १९ ॥

सपदार्थान्वयः—**राजप्रजाजनै रोहिताय** वृद्धिकराय **स्थपतये** तिष्ठन्ति यस्मिन्निति स्थं तस्य पतये पालकाय **नमः** अन्नं, **वृक्षाणाम्** आम्रादीनां **पतये** स्वामिने **नमः** अन्नं, **भुवन्तये** यो भवत्याचारवांस्तस्मै **वारिवस्कृताय** वारिवस्सेवनं कृतं येन तस्मै **नमः** अन्नम् **ओषधीनां** सोमादीनां **पतये** पालकाय वैद्याय **नमः** अन्नं, **मन्त्रिणे** विचारकर्त्रे राजपुरुषाय **वाणिजाय** वणिजां व्यवहारेषु कुशलाय **नमः** सत्कारः, **कक्षाणां** गृहप्रान्तावयवेषु स्थितानां **पतये** रक्षकाय **नमः** अन्नम्, **उच्चैर्घोषाय** उच्चैर्घोषो यस्य तस्मै **आक्रन्दयते** यो दुष्टानाक्रन्दयते=रोदयति तस्मै न्यायाधीशाय **नमः** सत्कारः, **पत्तीनां** सेनाङ्गानां **पतये** रक्षकाय सेनाध्यक्षाय **नमः** सत्कारः **च देयं कार्यं च** ॥ १६ । १९ ॥

भाषार्थ—राजपुरुष और प्रजाजन—(रोहिताय) वृद्धि करने वाले (स्थपतये) स्थ=घर के पालक को (नमः) अन्न दें, (वृक्षाणाम्) आम आदि वृक्षों के (पतये) स्वामी को (नमः) अन्न दें, (भुवन्तये) आचारवान् बनने वाले तथा (वारिवस्कृताय) सेवा करने वाले को (नमः) अन्न दें, (ओषधीनाम्) सोम-लता आदि ओषधियों के (पतये) पालक वैद्य को (नमः) अन्न दें, (मन्त्रिणे) विचार-कर्त्ता राजपुरुष को तथा (वाणिजाय) वणिक्-जनों के व्यवहारों में कुशल पुरुष को (नमः) सत्कार करें, (कक्षाणाम्) घर के भागों में स्थित (पतये) रक्षक को (नमः) अन्न दें, (उच्चैर्घोषाय) ऊँचा घोष करने वाले तथा (आक्रन्दयते) दुष्टों को रुलाने वाले न्यायाधीश का (नमः) सत्कार करें, (पत्तीनाम्) सेना-अङ्गों के (पतये) रक्षक सेनाध्यक्ष का (नमः) सत्कार करें ॥ १६ । १९ ॥

[राजप्रजाजनैः ··· वृक्षाणां पतये नमः ··· देयं कार्यं च]

भावार्थः— मनुष्यैर्वनादिपालकेभ्योऽन्ना-

भावार्थ—मनुष्य—वन आदि के पालकों

दिकं दत्त्वा वृक्षौषध्याद्युन्नतिर्विधेया ॥ १६ । १९ ॥

को अन्न आदि देकर वृक्ष तथा ओषधि आदि की उन्नति करें ॥ १६ । १९ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा के कर्त्तव्य**—राजा और प्रजा उन्नति करने वाले घर के स्वामियों का अथवा गृहनिर्माण में कुशल शिल्पियों का वनपालकों का, सच्चरित्र प्रजा की सेवा करने वालों का, ओषधियों के ज्ञाता वैद्यों का, विचारशील राजपुरुषों का, व्यापार में कुशल वणिक् जनों का, घरों में जा जाकर यज्ञादि से पालन करने वाले पुरोहितों का, उच्च स्वर से निर्णय देने वाले तथा दुष्टों को भय-भीत करने वाले न्यायाधीशों का, सेना के सभी अङ्गों तथा सेनाध्यक्षों का सदा सामूहिक रूप से सत्कार किया करें और अन्नादि से प्रोत्साहित किया करें ॥ १६ । १९ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=**राजप्रजाजनाः** । अतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिनऽआव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**कृत्स्नायतया**) आयस्य=लाभस्य भाव आयता कृत्स्ना चासावायता कृत्स्नायता तया=संपूर्णलाभतया (**धावते**) इतस्ततो धावनशीलाय (**सत्वनाम्**) प्राप्तानां पदार्थानाम् (**पतये**) रक्षकाय (**नमः**) सत्कारः (**नमः**) अन्नम् (**सहमानाय**) बलयुक्ताय (**निव्याधिने**) नितरां व्यद्धुं=ताडयितुं शीलमस्य तस्मै (**आव्याधिनीनाम्**) समन्तात् शत्रुसेनाः व्यद्धुं शीलं यासां तासां स्वसेनानाम् (**पतये**) पालकाय सेनापतये (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**निषङ्गिणे**) प्रशस्ता निषङ्गा=बाणासिभुशुण्डीशतघ्नीतोमरादयः शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै (**ककुभाय**) प्रसन्नमूर्त्तये (**स्तेनानाम्**) अन्यायेन परस्वादायिनाम् (**पतये**) दण्डादिशोषकाय (**नमः**) वज्रम् (**नमः**) सत्करणम् (**निचेरवे**) यो नितरां पुरुषार्थे चरति तस्मै (**परिचराय**) यो धर्मं विद्यां मातापितरौ स्वामिमित्रादींश्च सेवते तस्मै (**अरण्यानाम्**) वनानाम् (**पतये**) पालकाय (**नमः**) अन्नादिकम् ॥ २० ॥

अन्वयः—मनुष्याः कृत्स्नायतया धावते नमः सत्वनां पतये नमः सहमानाय निव्याधिने नम आव्याधिनीनां पतये नमो निषङ्गिणे नमो निचेरवे परिचराय ककुभाय नमः स्तेनानां पतये नमोऽरण्यानां पतये नमो दद्युः कुर्युश्च ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—**मनुष्याः कृत्स्नायतया** आयस्य=लाभस्य भाव आयता कृत्स्ना चासावायता कृत्स्नायता तया=सम्पूर्णलाभतया **धावते** इतस्ततो धावनशीलाय **नमः** अन्नं, **सत्वनां** प्राप्तानां पदार्थानां **पतये** रक्षकाय **नमः** सत्कारः, **सहमानाय** बलयुक्ताय **निव्याधिने** नितरां व्यद्धुं=ताडयितुं शीलमस्य तस्मै **नमः** अन्नम, **आव्याधिनीनां** समन्तात् शत्रुसेनाः व्यद्धुं शीलं यासां तासां

भाषार्थ—सब मनुष्य—(कृत्स्नायतया) कृत्स्न=सम्पूर्ण आयता=लाभ की दृष्टि से (धावते) इधर-उधर भागने वाले को (नमः) अन्न दें, (सत्त्वनाम्) प्राप्त पदार्थों के (पतये) रक्षक का (नमः) सत्कार करें, (सहमानाय) बल-युक्त (निव्याधिने) सर्वथा ताड़न करने वाले को (नमः) अन्न दें, (आव्याधिनीनाम्) सब ओर से शत्रु-सेना को ताड़न करने वाली अपनी सेनाओं के

स्वसेनानां पतये पालकाय सेनापतये **नमः** सत्करणं, **निषङ्गिणे** प्रशस्ता निषङ्गा=बाणासि-भुशुण्डीशतघ्नीतोमरादयः शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै **नमः** अन्नं, **निचेरवे** यो नितरां पुरुषार्थे चरति तस्मै **परिचराय** यो धर्मं विद्यां माता-पितरौ स्वामिमित्रादींश्च सेवते तस्मै **ककुभाय** प्रसन्न-मूर्त्तये **नमः** सत्करणं, **स्तेनानाम्** अन्यायेन परस्वादायिनां **पतये** दण्डादिशोषकाय **नमः** वज्रम्, **अरण्यानां** वनानां **पतये** पालकाय **नमः** अन्नादिकं **दद्युः कुर्युश्च** ॥ १६ । २० ॥

(पतये) पालक सेनापति का (नमः) सत्कार करें, (निषङ्गिणे) उत्तम बाण, तलवार, बन्दूक, तोप, बर्छी आदि शस्त्रसमूह वाले को (नमः) अन्न दें, (निचेरवे) सर्वथा पुरुषार्थ में विचरण करने वाले, (परिचराय) धर्म, विद्या, माता-पिता, स्वामी और मित्र आदि की परिचर्या=सेवा करने वाले, (ककुभाय) प्रसन्न-मूर्त्ति पुरुष का (नमः) सत्कार करें, (स्तेनानाम्) अन्याय से परद्रव्य को हरने वाले चोरों को (पतये) दण्ड आदि से शोषण करने वाले को (नमः) वज्र दें, (अरण्यानाम्) वनों के (पतये) पालक को (नमः) अन्न आदि प्रदान करें ॥ १६ । २० ॥

[मनुष्याः कृत्स्नायतया धावते नमः, सत्त्वानां पतये नमः, निषङ्गिणे नमः, स्तेनानां पतये नमः परिचराय नमः, अरण्यानां पतये नमः]

भावार्थः—राजपुरुषैः पुरुषार्थिनामुत्साहाय सत्कारः, प्राणिनामुपरि दया, सुशिक्षितसेनारक्षणं चोरादीनां ताडनं, सेवकानां पालनं, वनानामच्छेदनं च कृत्वा राज्यं वर्द्धनीयम् ॥ १६ । २० ॥

भावार्थ—राजपुरुष—पुरुषार्थी जनों के उत्साह के लिए सत्कार, प्राणियों के ऊपर दया, सुशिक्षित सेना की रक्षा, चोर आदि का ताड़न, सेवकों का पालन और वनों का छेदन न करके राज्य को बढ़ावें ॥ १६ । २० ॥

भा० पदार्थः—धावते=पुरुषार्थिनामुत्साहाय । नमः=सत्कारः । सत्त्वनाम्=प्राणिनामुपरि । नमः=दया । स्तेनानाम्=चोरादीनाम् । नमः=ताडनम् । परिचराय=सेवकाय । नमः=पालनम् । नमः=अच्छेदनम् ॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा के कर्त्तव्य—राजा और प्रजा राज्य की समृद्धि के लिए, श्रेष्ठों के प्रोत्साहन तथा दुष्टों के ताडन के लिए माननीयों का मान और दण्डनीयों को दण्ड अवश्य दिया करें । राजा और प्रजा के लाभ की दृष्टि से भाग-दौड़ करने वाले व्यापारी वर्ग का, प्राप्त पदार्थों के रक्षकों का, बलवान् होकर शत्रु सेना का सर्वथा ताडन करने वालों का, उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्रों में प्रशिक्षण प्राप्त कर उनको धारण करने वालों का, धर्म विद्यादि के सेवकों का, चोरों को दण्ड देने वालों का और वन-सम्पदा के रक्षकों का सदा सम्मान किया करें ॥ १६ । २० ॥

कुत्सः । **रुद्राः=राजप्रजाजनाः** । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिणऽइषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**नमः**) वज्रप्रहारः (**वञ्चते**) छलेन परपदार्थानां हर्त्रे (**परिवञ्चते**) सर्वतः कापट्येन वर्त्तमानाय (**स्तायूनाम्**) चौर्येण जीवताम् (**पतये**) स्वामिने (**नमः**) वज्रादिशस्त्रप्रहरणम् (**नमः**) अन्नम् (**निषङ्गिणे**) राज्यपालने नित्यं सज्जिताय (**इषुधिमते**) प्रशस्तेषुधिधर्त्रे (**तस्कराणाम्**) स्तेयकर्मकर्तॄणाम् (**पतये**) पातयिष्णवे (**नमः**) वज्रप्रहरणम् (**नमः**) (**सृकायिभ्यः**) सृकेन=वज्रेण सज्जनानेत्तुं=प्राप्तुं शीलमेषां तेभ्यः । सृक इति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥ (**जिघांसद्भ्यः**) हन्तुमिच्छद्भ्यः (**मुष्णताम्**) स्तेयकर्मकारिणाम् (**पतये**) दण्डेन निपातयित्रे (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) वज्रप्रहरणम् (**असिमद्भ्यः**) प्रशस्ता असयः=खड्गानि विद्यन्ते येषां तेभ्यः (**नक्तम्**) रात्रौ (**चरद्भ्यः**) (**विकृन्तानाम्**) विविधोपायैर्ग्रन्थिं छित्वा परस्वापहर्त्तॄणाम् (**पतये**) विघातकाय (**नमः**) सत्कारः ॥ २१ ॥

प्रमाणार्थ—(सृकायिभ्यः) सृकेन=वज्रेण । 'सृक' पद निघं० २ । २० में वज्र-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—राजपुरुषा वञ्चते परिवञ्चते नमः स्तायूनां पतये नमो निषङ्गिणः इषुधिमते नमस्तस्कराणां पतये नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो नमो मुष्णतां पतये नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो नमो विकृन्तानां पतये नमोऽनुसंदधतु ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**राजपुरुषा वञ्चते** छलेन परपदार्थानां हर्त्रे **परिवञ्चते सर्वतः** कापट्येन वर्त्तमानाय **नमः** वज्रप्रहारः, **स्तायूनां** चौर्य्येण जीवतां **पतये** स्वामिने **नमः** वज्रादिशस्त्रप्रहरणम्, **निषङ्गिणे** राज्यपालने नित्यं सज्जिताय **इषुधिमते** प्रशस्तेषुधिधर्त्रे **नमः** अन्नम्, **तस्कराणां** स्तेयकर्मकर्त्तॄणां **पतये** पातयिष्णवे **नमः** वज्रप्रहरणम्, **सृकायिभ्यः** सृकेन=वज्रेण सज्जनानेतुं=प्राप्तुं शीलमेषां तेभ्यः **जिघांसद्भ्यः** हन्तुमिच्छद्भ्यः **नमः** वज्रप्रहरणम्, **मुष्णतां** स्तेयकर्मकारिणां **पतये** दण्डेन निपातयित्रे **नमः** सत्करणम्, **असिमद्भ्यः** प्रशस्ता असयः=खड्गानि विद्यन्ते येषां तेभ्यः **नक्तं** रात्रौ **चरद्भ्यो नमः** वज्रप्रहरणम्, **विकृन्तानां** विविधोपायैर्ग्रन्थिं छित्वा परस्वापहर्त्तॄणां **पतये** विघातकाय **नमः** सत्कारः **अनुसंदधतु** ॥ १६ । २१ ॥

भाषार्थ—राजपुरुष—(वञ्चते) छल से पर-पदार्थों को हरण करने वाले, (परिवञ्चते) सब ओर से कपट से वर्ताव करने वाले के लिए (नमः) वज्र-प्रहार करें; (स्तायूनाम्) चोरी से जीने वालों के (पतये) स्वामी के लिए (नमः) वज्र आदि शस्त्र-प्रहार करें, (निषङ्गिणे) राज्यपालन में नित्य तत्पर (इषुधिपते) (इषुधिमते) प्रशस्त इषुधि=तूणीर को धारण करने वाले के लिए (नमः) अन्न दें; (तस्कराणाम्) चोरी कर्म करने वालों को (पतये) गिराने वाले के लिए (नमः) वज्र दें, (सृकायिभ्यः) सृक=वज्र से सज्जनों को वश में लाने वाले (जिघांसद्भ्यः) हिंसकों के लिए (नमः) वज्र-प्रहार करें, (मुष्णताम्) चोरी कर्म करने वालों को (पतये) दण्ड से गिराने वाले का (नमः) सत्कार करें; (असिमद्भ्यः) प्रशस्त खड्ग वाले (नक्तंचरद्भ्यः) निशाचरों के लिए (नमः) वज्र-प्रहार करें, (विकृन्तानाम्) विविध उपायों से गांठ काटकर पर-द्रव्यों को अपहरण करने वालों के (पतये) घातक का (नमः) सत्कार करें ॥१६ । २१॥

[राजपुरुषा वञ्चते परिवञ्चते नमः······नक्तंचरद्भ्यो नमः······अनुसंदधतु]

भावार्थः—राजजनैः कपटव्यवहारेण छलयतां दिवा रात्रौ चानर्थकारिणां निग्रहं कृत्वा धार्मिकाणां च पालनं सततं विधेयम् ॥ १६ । २१ ॥

भावार्थ—राजपुरुष कपट-व्यवहार से छलने वाले, दिन और रात अनर्थ करने वालों को गिरफ्तार करके धार्मिक जनों का सदा पालन करें ॥

भा० पदार्थः—वञ्चते=छलयते। परिवञ्चते=कपटव्यवहारेण छलयते। नक्तं+चर्+भ्यः=रात्रावनर्थकारिभ्यः। नमः=निग्रहः॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा का कर्त्तव्य--राजा और प्रजा राज्य में धर्म की वृद्धि तथा अधर्म का नाश करने के लिए, छल से पर-पदार्थों का हरण करने वालों को, रिश्वतादि लेकर निर्वाह करने वालों को, सत्पुरुषों को वज्रादि से हिंसित करने वालों को और शस्त्रास्त्र लेकर हिंसावृत्ति से रात्रि में विचरण करने वालों को तीव्र दण्ड से दण्डित किया करें, और राज्य के रक्षक धनुषधारी वीरों का, चोरों को गिराने वालों का, अथवा परद्रव्यों के अपहर्त्ताओं के घातकों का सदा सम्मान किया करें ॥ १६ । २१ ॥

कुत्सः। **रुद्राः=राजप्रजाजनाः**। निचृदष्टिः। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

नम॑ऽ उष्णी॒षिणे॑ गिरिच॒राय॑ कुलु॒ञ्चानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ऽ इषु॒मद्भ्यो॑ धन्वा॒यिभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽ आतन्वा॒नेभ्यः॑ प्रति॒दधा॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽ आयच्छ॒द्भ्योऽस्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणम् (**उष्णीषिणे**) प्रशस्तमुष्णीषं=शिरोवेष्टनं विद्यते यस्य तस्मै ग्रामण्ये (**गिरिचराय**) यो गिरिषु=पर्वतेषु चरति तस्मै जाङ्गलाय (**कुलुञ्चानाम्**) ये कुशीलेन लुञ्चन्ति=अपनयन्ति परपदार्थास्तेषाम् (**पतये**) प्रपातकाय (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**इषुमद्भ्यः**) बहव इषवो विद्यन्ते येषां तेभ्यः (**धन्वायिभ्यः**) धनूनि=धनूंष्येतुं शीलमेषां तेभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्कारम् (**आतन्वानेभ्यः**) समन्तात् सुखविस्तारकेभ्यः (**प्रतिदधानेभ्यः**) ये शत्रून् प्रति शस्त्राणि दधति तेभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**आयच्छद्भ्यः**) निगृहीतृभ्यः (**अस्यद्भ्यः**) प्रक्षिपद्भ्यस्त्यजद्भ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) सत्करणम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—वयं राजप्रजाजना उष्णीषिणे गिरिचराय नमः कुलुञ्चानां पतये नम इषुमद्भ्यो नमो धन्वायिभ्यश्च वो नम आतन्वानेभ्यो नमः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नम आयच्छद्भ्यो नमोऽस्यद्भ्यश्च वो नमः कुर्मो दद्मश्च ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं **राजप्रजाजना उष्णीषिणे** प्रशस्तमुष्णीषं=शिरोवेष्टनं विद्यते यस्य तस्मै ग्रामण्ये **गिरिचराय** यो गिरिषु=पर्वतेषु चरति तस्मै जाङ्गलाय **नमः** सत्करणं, **कुलुञ्चानां** ये कुशीलेन लुञ्चन्ति=अपनयन्ति परपदार्थास्तेषां **पतये** प्रपातकाय **नमः** सत्करणम्, **इषुमद्भ्यः** बहव इषवो विद्यन्ते येषां तेभ्यः **नमः** अन्नं, **धन्वायिभ्यः** धनूनि=धनूंष्येतुं शीलमेषां तेभ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** अन्नम्, **आतन्वानेभ्यः** समन्तात् सुखविस्तारकेभ्यः **नमः** सत्कारं, **प्रतिदधानेभ्यः** ये शत्रून् प्रति

भाषार्थ—हम राजपुरुष और प्रजा-जन—(उष्णीषिणे) प्रशस्त उष्णीष=पगड़ी वाले ग्रामणी=ग्राम के नेता का और (गिरिचराय) पर्वतों में विचरण करने वाले जंगली का (नमः) सत्कार करते हैं; (कुलुञ्चानाम्) कुशीलता से पर-पदार्थों को लूटने वालों को (पतये) गिराने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं; (इषुमद्भ्यः) बहुत बाणों वालों को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (वः) तुम (धन्वायिभ्यः) धनुषों को प्राप्त करने वालों को (नमः) अन्न देते हैं; (आतन्वानेभ्यः) सब

शस्त्राणि दधति तेभ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** सत्करणम् **आयच्छद्‌भ्यः** निगृहीतृभ्यः **नमः** अन्नम्, **अस्यद्भ्यः** प्रक्षिपद्भ्यस्त्यजद्भ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** सत्करणं **कुर्मो दद्मश्च** ॥ १६ । २२ ॥

और सुख का विस्तार करने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (वः) तुम (प्रतिदधानेभ्यः) शत्रुओं के प्रति शस्त्र धारण करने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं; (आयच्छद्भ्यः) निग्रह गिरफ्तार करने वालों को (नमः) अन्न देते हैं, (च) और (वः) तुम (अस्यद्भ्यः) छोड़ने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं ॥ १६ । २२ ॥

[वयं राजाप्रजाजना उष्णीषिणे ··· नमः ··· कुर्मो दद्मश्च]

भावार्थः—राजप्रजाजनैः प्रधानपुरुषादयः वस्त्रान्नादिदानेन सत्करणीयाः ॥ १६ । २२ ॥

भावार्थ—राजपुरुष और प्रजा जन—प्रधान-पुरुष आदि का वस्त्र और अन्न आदि के दान से सत्कार करें ॥ १६ । २२ ॥

भा० पदार्थः—उष्णीषिणे=प्रधानपुरुषाय । नमः=वस्त्रान्नादिदानेन सत्कारः ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का कर्त्तव्य**—राजा और प्रजा राज्य के पगड़ी के समान उच्च चरित्रादि से सम्पन्न नेताओं का, पर्वतों में विचरण करने वाले तपस्वी मुनिवरों का, दस्युओं को गिराने वाले धनुषधारियों का, सब ओर सुखों का विस्तार करने वालों का और शस्त्र धारण करके दुष्टों का बन्धन और श्रेष्ठों का विस्तार करने वालों का सत्कार किया करें ॥ १६ । २२ ॥

कुत्सः । **रुद्राः=राजप्रजाजनाः** । निचृदतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो॑ विसृ॒जद्भ्यो॑ वि॒द्ध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स्व॒पद्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॒ शया॑नेभ्य॒ऽ आसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिकम् (**विसृजद्भ्यः**) शत्रूणामुपरि शस्त्रादिकं त्यजद्भ्यः (**विद्ध्यद्भ्यः**) शस्त्रैः दुष्टांस्ताडयद्भ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) वज्रम् (**स्वपद्भ्यः**) शयानेभ्यः (**जाग्रद्भ्यः**) प्रबुद्धेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**शयानेभ्यः**) प्राप्तनिद्रेभ्यः (**आसीनेभ्यः**) आसनोपरिस्थितेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**तिष्ठद्भ्यः**) स्थितेभ्यः (**धावद्भ्यः**) शीघ्रगामिभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) अन्नम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयमेवं सर्वेभ्य आज्ञापयत वयं विसृजद्भ्यो नमो विद्धयद्भ्यश्च वो नमः स्वपद्भ्यो नमो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः शयानेभ्यो नम आसीनेभ्यश्च वो नमस्तिष्ठद्भ्यो नमो धावद्भ्यश्च वो नमः प्रदास्याम इति ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयमेवं सर्वेभ्यः आज्ञापयत—वयं विसृजद्भ्यः** शत्रूणामुपरि शस्त्रादिकं त्यजद्भ्यः **नमः** अन्नादिकं, **विद्धयद्भ्यः** शस्त्रैः दुष्टांस्ताडयद्भ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** अन्नं, **स्वपद्भ्यः** शयानेभ्यः **नमः** वज्रं,

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार सबको आज्ञा करो—(विसृजद्भ्यः) शत्रुओं पर शस्त्र आदि छोड़ने वालों को (नमः) अन्न आदि देंगे, (च) और (वः) तुम (विद्धयद्भ्यः) शस्त्रों से दुष्टों का ताड़न करने वालों को (नमः) अन्न

जाग्रद्भ्यः प्रबुद्धेभ्यः **च वः नमः** अन्नं, **शयानेभ्यः** प्राप्तनिद्रेभ्यः **नमः** अन्नम्, **आसीनेभ्यः** आसनोपरि-स्थितेभ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** अन्नं, **तिष्ठद्भ्यः** स्थितेभ्यः **नमः** अन्नं, **धावद्भ्यः** शीघ्रगामिभ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** अन्नं **प्रदास्याम इति** ।।

देंगे, (स्वपद्भ्यः) सोने वालों पर (नमः) वज्र प्रहार करेंगे, (च) और (वः) तुम (जाग्रद्भ्यः) जागने वालों को (नमः) अन्न देंगे, (शयानेभ्यः) निद्रा को प्राप्त जनों को (नमः) अन्न देंगे, (च) और (वः) तुम (आसीनेभ्यः) आसन पर विराजमानों को (नमः) अन्न देंगे, (तिष्ठद्भ्यः) बैठे हुओं को (अन्नम्) अन्न देंगे, (च) और (वः) तुम (धावद्भ्यः) शीघ्रगामी जनों को (नमः) अन्न प्रदान करेंगे ।। १६ । २३ ।।

[हे मनुष्याः !···वयं विसृजद्भ्यो नमः···प्रदास्याम इति]

भावार्थः—गृहस्थैरानृशंस्यं प्रयोज्यान्नादिकं दत्त्वा सर्वे प्राणिनः सुखनीयाः ।।

भावार्थ—गृहस्थ लोग—उदारता का प्रयोग करके अन्न आदि के दान से सब प्राणियों को सुखी करें ।। १६ । २३ ।।

भाष्यसार—राजा और प्रजा का कर्त्तव्य—राजा और प्रजा दोनों ही दयार्द्र होकर पारस्परिक कार्यों को चलावें । किन्तु दुष्टों और प्रमादियों पर कभी दया न करें । जो शत्रुओं पर शस्त्र छोड़ते हों, जो अन्यायकारी दुष्टों का ताड़न करने वाले हों, जो सदा जागरूक होकर सावधानी से कार्य करते हों, जो समयानुसार शयन आसनादि दैनिक क्रिया करते हों और जो बुद्धि चातुर्य से शीघ्रता से उन्नति करने वाले हों, उनका सदा उदारता से अन्नादि के दान से सत्कार किया करें ।। १६ । २३ ।।

कुत्सः । **रुद्राः=राजप्रजाजनाः** । शक्वरी छन्दः । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणम् (**सभाभ्यः**) या न्यायादिप्रकाशेन सह वर्त्तन्ते ताभ्यः सभाभ्यः स्त्रीभ्यः (**सभापतिभ्यः**) सभानां पालकेभ्यो राजभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**अश्वेभ्यः**) हयेभ्यः (**अश्वपतिभ्यः**) अश्वानां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) अन्नम् (**आव्याधिनीभ्यः**) शत्रुसेनाताडनशीलाभ्यः स्वसेनाभ्यः (**विविध्यन्तीभ्यः**) शत्रुवीरान्निहन्त्रीभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नम् (**उगणाभ्यः**) विविधतर्कयुक्ता गणा यासु ताभ्यः (**तृंहतीभ्यः**) हन्त्रीभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नप्रदानम् ।। २४ ।।

अन्वयः—मनुष्यैः सर्वान् प्रत्येवं वक्तव्यं वयं सभाभ्यो नमः सभापतिभ्यश्च वो नमोऽश्वेभ्यो नमोऽश्वपतिभ्यश्च वो नम आव्याधिनीभ्यो नमो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नम उगणाभ्यो नमस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः कुर्याम दद्याम च ।। २४ ।।

सपदार्थान्वयः—**मनुष्यैः सर्वान् प्रत्येवं वक्तव्यं—वयं सभाभ्यः** या न्यायादिप्रकाशेन

भाषार्थ—मनुष्य सबको इस प्रकार कहें—हम (सभाभ्यः) न्याय प्रकाश के सहित वर्तमान

सह वर्त्तन्ते ताभ्यः सभाभ्यः स्त्रीभ्यः **नमः** सत्करणं, **सभापतिभ्यः** सभानां पालकेभ्यो राजभ्यः **च वः नमः** सत्करणम्, **अश्वेभ्यः** हयेभ्यः **नमः** अन्नम्, **अश्वपतिभ्यः** अश्वानां पालकेभ्यः **च वः नमः** अन्नम्, **आव्याधिनीभ्यः** शत्रुसेनाताडनशीलाभ्यः स्वसेनाभ्यः **नमः** अन्नं, **विविध्यन्तीभ्यः** शत्रुवीरान्निहन्त्रीभ्यः **च वः नमः** सत्करणम् **उगणाभ्यः** विविधतर्कयुक्ता गुणा यासु ताभ्यः **नमः** अन्नं, **तृंहतीभ्यः** हन्त्रीभ्यः **च वः नमः** अन्नप्रदानं **कुर्याम, दद्याम च** ॥ १६ ॥

स्त्रियों का (नमः) सत्कार करें; (च) और (वः) तुम (सभापतिभ्यः) सभाओं के पालक राजा का (नमः) सत्कार करें; (अश्वेभ्यः) घोड़ों को (नमः) अन्न दें; (च) और (वः) तुम (अश्वपतिभ्यः) घोड़ों के पालकों को (नमः) अन्न दें; (आव्याधिनीभ्यः) शत्रु सेना का ताड़न करने वाली अपनी सेनाओं को (नमः) अन्न दें; (च) और (वः) तुम (विविध्यन्तीभ्यः) शत्रु के वीरों का हनन करने वाली सेनाओं का (नमः) सत्कार करें; (उगणाभ्यः) विविध तर्क से गणों वाली सेनाओं को (नमः) अन्न दें, (तृंहतीभ्यः) शत्रुओं का हनन करने वाली सेनाओं को (नमः) अन्न प्रदान करें ॥ १६ । २४ ॥

[मनुष्यैः सर्वान् प्रत्येवं वक्तव्यं वयं सभाभ्यो नमः, सभापतिभ्यश्च वो नमः···कुर्याम, दद्याम च]

भावार्थः—मनुष्यैः सभया सभापतिभिश्चैव राज्यव्यवस्था कार्या, न खलु, कदाचिदेकराजाधीनत्वेन स्थातव्यं, यतो नैकेन बहूनां हिताहितसाधनं भवितुं शक्यमतः ॥ १६ । २४ ॥

भावार्थ—मनुष्य—सभा और सभापतियों के द्वारा राज्य की व्यवस्था करें, कभी एक राजा के अधीन होकर न रहें, क्योंकि एक राजा से बहुत जनों का हित-अहित सिद्ध नहीं हो सकता ॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा का सामूहिक कर्त्तव्य—प्रजा और राज्य की भलाई चाहने वाले राजा और प्रजा को चाहिए कि राज्य-व्यवस्था को चलाने के लिए एक के आश्रय न छोड़कर अच्छे योग्य अधिकारियों का चयन किया करें। और न्यायादि की प्रकाशिका सभा के निर्णयों का और सभापति का सदा सत्कार किया करें। अच्छे घोड़े और घोड़ों के पालकों का, और शत्रु सेना के दिग्गज-वीरों के संहारक वीरों का सदा हार्दिक सत्कार करें और अन्नादि से तृप्त रक्खें ॥ १६ । २४ ॥

कुत्सः । **रुद्राः=राजप्रजाजनाः** । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**गणेभ्यः**) सेवकेभ्यः (**गणपतिभ्यः**) गणानां=सेवकानां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**व्रातेभ्यः**) मनुष्येभ्यः। व्रात इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥ (**व्रातपतिभ्यः**) मनुष्याणां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) सत्करणम् (**गृत्सेभ्यः**) ये गृणन्ति=पदार्थगुणान् स्तुवन्ति तेभ्यो (विद्वद्भ्यः (**गृत्सपतिभ्यः**) मेधाविरक्षकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) सत्करणम् (**विरूपेभ्यः**) विविधानि रूपाणि येषां तेभ्यः (**विश्वरूपेभ्यः**) अखिलस्वरूपेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(व्रातेभ्यः) मनुष्येभ्यः । 'व्रात' पद निघं० २।३ में मनुष्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं गणेभ्यो नमो गणपतिभ्यश्च वो नमो व्रातेभ्यो नमो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो गृत्सेभ्यो नमो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो विरूपेभ्यो नमो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमो दद्याम कुर्य्याम च तथा युष्माभिरपि दातव्यं कर्त्तव्यं च ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा **वयं गणेभ्यः** सेवकेभ्यः **नमः** अन्नं, **गणपतिभ्यः** गणानां=सेवकानां पालकेभ्यः **च वो नमः** अन्नं, **व्रातेभ्यः** मनुष्येभ्यः **नमः** सत्करणं, **व्रातपतिभ्यः** मनुष्याणां पालकेभ्यः **च वो नमः** सत्करणं, **गृत्सेभ्यो** ये गृणन्ति=पदार्थगुणान् स्तुवन्ति तेभ्यो विद्वद्भ्यः **नमः** सत्करणं, **गृत्सपतिभ्यः** मेधाविरक्षकेभ्यः **च वो नमः** सत्करणं, **विरूपेभ्यः** विविधानि रूपाणि येषां तेभ्यः **नमः** सत्करणं **विश्वरूपेभ्यः** अखिलस्वरूपेभ्यः **च वो नमः** सत्करणं **दद्याम कुर्याम च, तथा युष्माभिरपि दातव्यं कर्त्तव्यं च** ॥ १६ । २५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—(गणेभ्यः) सेवकों को (नमः) अन्न देते हैं, (च) और (वः) तुम (गणपतिभ्यः) गण=सेवकों के पालकों को (नमः) अन्न देते हैं; (व्रातेभ्यः) मनुष्यों का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (वः) तुम (व्रातपतिभ्यः) मनुष्यों के पालकों का (नमः) सत्कार करते हैं; (गृत्सेभ्यः) पदार्थों के गुणों की स्तुति करने वाले विद्वानों का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (वः) तुम (गृत्सपतिभ्यः) मेधावी जनों के रक्षकों का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (वः) तुम (विरूपेभ्यः) अखिल स्वरूप वालों का (नमः) सत्कार करते हैं; वैसे तुम भी अन्न दो और सत्कार करो ॥ १६ । २५ ॥

[गणेभ्यः, गणपतिभ्यः, गृत्सेभ्यः, गृत्सपतिभ्यश्च वो नमः]

भावार्थः—सर्वे जना अखिलप्राण्युपकारं, विद्वत्सङ्गं, समग्रां श्रियं, विद्याश्च धृत्वा सन्तुष्यन्तु ॥ १६ । २५ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य–सब प्राणियों का उपकार, विद्वानों का सङ्ग, सम्पूर्ण ऐश्वर्य और विद्याओं को धारण करके प्रसन्न रहें ॥

भाष्यसार—राजा और प्रजा का सामूहिक कर्त्तव्य—विद्या और ऐश्वर्यों को चाहने वाले राजा और प्रजा का मुख्य कर्त्तव्य है कि वे अपने योग्य सेवक तथा योग्य अधिकारियों का, श्रेष्ठ मनुष्यों तथा मनुष्यों का सदुपदेशादि से पालन करने वालों का, सब पदार्थों के गुणों के जानने वालों तथा उनके मार्गप्रदर्शक मेधावी मनुष्यों का, और दूसरे कार्यकुशल कर्मचारियों का सदा अन्नादि से सत्कार किया करें ॥ १६ । २५ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=राजप्रजाजनाः । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा और प्रजा को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो ऽ अरथेभ्यश्च वो नमो नमः
क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो ऽ अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(नमः) सत्कारम् (सेनाभ्यः) सिञ्चन्ते=बध्नन्ति शत्रून्याभिस्ताभ्यः (सेनानिभ्यः) ये सेनां नयन्ति तेभ्यो नायकेभ्यः=प्रधानपुरुषेभ्यः । **अत्र वर्णव्यत्ययेन ईकारस्य इकारः** (च) (वः) (नमः)

अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**रथिभ्यः**) प्रशस्ता रथा विद्यन्ते येषां तेभ्यः (**अरथेभ्यः**) अविद्यमाना रथा येषां तेभ्यः पदातिभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्क्रियाम् (**नमः**) अन्नादिकम् (**क्षत्तृभ्यः**) शूद्रात् क्षत्रियायां जातेभ्यः (**संग्रहीतृभ्यः**) ये युद्धार्थास्सामग्रीः सम्यग् गृह्णन्ति तेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) सुसंस्कृतमन्नादिकम् (**महद्भ्यः**) महाशयेभ्यो=विद्यावयोभ्यां वृद्धेभ्यः पूज्येभ्यः (**अर्भकेभ्यः**) कनिष्ठेभ्यः=क्षुद्राशयेभ्यः शिक्षणीयेभ्यो विद्यार्थिभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**सेनानिभ्यः**) यहाँ वर्ण-व्यत्यय से दीर्घ ईकार के स्थान में ह्रस्व इकार है ॥

अन्वयः—हे राजप्रजाजनाः ! यथा वयं सेनाभ्यो नमो वः सेनानिभ्यो नमश्च रथिभ्यो नमो वोऽरेभ्यो नमश्च क्षत्तृभ्यो नमो वः संग्रहीतृभ्यो नमश्च महद्भ्यो नमो वोऽर्भकेभ्यो नमश्च सततं कुर्मो दद्मश्च तथैव यूयमपि पूज्येभ्यः कुरुत दत्त च ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे राजप्रजाजनाः ! यथा वयं सेनाभ्यः** सिञ्चन्ते=बध्नन्ति शत्रून्याभिस्ताभ्यः **नमः** सत्कारं **वः सेनानिभ्यः** ये सेनां नयन्ति तेभ्यो नायकेभ्यः=प्रधानपुरुषेभ्यः **नमः** अन्नं **च रथिभ्यः** प्रशस्ता रथा विद्यन्ते येषां तेभ्यः **नमः** सत्करणं **वोऽरथेभ्यः** अविद्यमाना रथा येषां तेभ्यः पदातिभ्यः **नमः** सत्क्रियां **च, क्षत्तृभ्यः** शूद्रात् क्षत्रियायां जातेभ्यः **नमः** अन्नादिकं **वः संग्रहीतृभ्यः** ये युद्धार्थास्सामग्रीः सम्यग् गृह्णन्ति तेभ्यः **नमः** सत्करणं **च, महद्भ्यः** महाशयेभ्यो=विद्यावयोभ्यां वृद्धेभ्यः पूज्येभ्यः **नमः**, सुसंस्कृतमन्नादिकं **वोऽर्भकेभ्यः** कनिष्ठेभ्यः=क्षुद्राशयेभ्यः शिक्षणीयेभ्यो विद्यार्थिभ्यः **नमः** सत्करणं **च, सततं कुर्मो दद्मश्च तथैव यूयमपि पूज्येभ्यः कुरुत दत्त च** ॥ १६ । २६ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुष और प्रजा-जनो ! जैसे हम—(सेनाभ्यः) शत्रुओं को बांधने वाली सेनाओं का (नमः) सत्कार करते हैं, (च) और (वः) तुम (सेनानिभ्यः) सेना के नायक प्रधान पुरुषों को (नमः) अन्न देते हैं, (रथिभ्यः) उत्तम रथ वालों का (नमः) सत्कार करते हैं, (च) और (वः) तुम (अरथेभ्यः) रथ से रहित पदाति=पैदल चलने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं, (क्षत्तृभ्यः) क्षत्ता=शूद्र से क्षत्रिया में उत्पन्न जनों को (नमः) अन्न आदि देते हैं, (च) और (वः) तुम (संग्रहीतृभ्यः) युद्ध के लिए सामग्री को संग्रह करने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं, (महद्भ्यः) महाशय=विद्या और आयु से वृद्ध पूज्य जनों को (नमः) उत्तम अन्न आदि देते हैं, (च) और (वः) तुम (अर्भकेभ्यः) कनिष्ठ, क्षुद्राशय, शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों को (नमः) सदा सत्कार करते हैं; वैसे ही तुम भी पूज्य-जनों का सत्कार करो और अन्न आदि प्रदान करो ॥ १६ । २६ ॥

[**वयं सेनाभ्यो नमः······सततं कुर्मो दद्मश्च**]

भावार्थः—राजपुरुषैः सर्वान् भृत्यान् सत्कृत्य सुशिक्ष्यान्नादिना वर्धयित्वा धर्मेण राज्यं पालनीयम् ॥ १६ । २६ ॥

भावार्थ—राजपुरुष—सब भृत्यों का सत्कार करके सुशिक्षा देकर, अन्न आदि से बढ़ाकर, धर्मपूर्वक राज्य का पालन करें ॥ १६ । २६ ॥

भाष्यसार—**राजा और प्रजा का सामूहिक कर्त्तव्य**—राजा और प्रजा मिलकर शत्रु-विजेत्री सेना और सेनापति का, महारथी और पदातियों का, युद्ध की सामग्री इकट्ठी करने वाले शूद्र से क्षत्रिया में उत्पन्न क्षत्ताओं का, युद्ध-विद्या के प्रशिक्षक और प्रशिक्षणार्थियों का सदा सत्कार करें और अन्न आदि से तृप्त किया करें ॥ १६ । २६ ॥

कुत्सः । रुद्राः=विद्वांसः । निचृच्छक्वरी धैवतः ।

विद्वद्भिः के सत्कर्त्तव्या इत्याह ॥

विद्वान् लोगों को किन का सत्कार करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ कुला॒लेभ्यः॑ क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ निषा॒देभ्यः॑ पु॒ञ्जिष्ठे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**तक्षभ्यः**) ये तक्ष्णुवन्ति=तनूकुर्वन्ति तेभ्यः (**रथकारेभ्यः**) ये रथान्=विमानादियानसमूहान् कुर्वन्ति तेभ्यः शिल्पिभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) वेतनादिदानेन सत्करणम् (**नमः**) अन्नादिकम् (**कुलालेभ्यः**) मृत्स्नापात्रादिरचकेभ्यः (**कर्मारेभ्यः**) असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिनिर्मातृभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नादिदानम् (**निषादेभ्यः**) ये वनपर्वतादिषु तिष्ठन्ति तेभ्यः (**पुञ्जिष्ठेभ्यः**) ये पुञ्जिषु=वर्णेषु भाषासु वा तिष्ठन्ति तेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् (**नमः**) अन्नादिदानम् (**श्वनिभ्यः**) ये शुनो नयन्ति=शिक्षयन्ति तेभ्यः (**मृगयुभ्यः**) य आत्मनो मृगान् कामयन्ते तेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) सत्करणम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं राजादयो वस्तक्षभ्यो नमो रथकारेभ्यो नमश्च वः कुलालेभ्यो नमः कर्मारेभ्यो नमश्च वो निषादेभ्यो नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो नमश्च वः श्वनिभ्यो नमो मृगयुभ्यो नमश्च दद्याम कुर्याम च तथा यूयमपि दत्त कुरुत च ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा वयं राजादयो वस्तक्षभ्यः** ये तक्ष्णुवन्ति=तनूकुर्वन्ति तेभ्यः **नमः** अन्नं, **रथकारेभ्यः** ये रथान्=विमानादियानसमूहान् कुर्वन्ति तेभ्यः शिल्पिभ्यः **नमः** वेतनादिदानेन सत्करणं **च वः, कुलालेभ्यः** मृत्स्नापात्रादिरचकेभ्यः **नमः** अन्नादिकं, **कर्मारेभ्यः** असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिनिर्मातृभ्यः **नमः** सत्करणं **च वो, निषादेभ्यः** ये वनपर्वतादिषु तिष्ठन्ति तेभ्यः **नमः** अन्नादिदानं, **पुञ्जिष्ठेभ्यः** ये पुञ्जिषु=वर्णेषु भाषासु वा तिष्ठन्ति तेभ्यः **नमः** सत्करणं **च वः, श्वनिभ्यः** ये शुनो नयन्ति=शिक्षयन्ति तेभ्यः **नमः** अन्नादिदानं, **मृगयुभ्यः** य आत्मनो मृगान् कामयन्ते तेभ्यः **नमः** सत्करणं **च [वः] दद्याम कुर्याम च तथा यूयमपि दत्त कुरुत च** ॥ १६ । २७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम राजा आदि लोग-(वः) तुम (तक्षभ्यः) तक्षक=तरखानों को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (वः) तुम (रथकारेभ्यः) रथ=विमान आदि यानों को बनाने वाले शिल्पी जनों का (नमः) वेतन आदि देकर सत्कार करते हैं; (कुलालेभ्यः) उत्तम मिट्टी से पात्र आदि के बनाने वालों को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (वः) तुम (कर्मारेभ्यः) तलवार, बन्दूक, तोप आदि के निर्माताओं का (नमः) सत्कार करते हैं; (निषादेभ्यः) वन, पर्वत आदि में रहने वालों को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (वः) तुम (पुञ्जिष्ठेभ्यः) वर्णों वा भाषाओं में स्थित जनों का (नमः) सत्कार करते हैं; (श्वनिभ्यः) श्वा=कुत्तों को शिक्षा करने वालों को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और [वः] तुम (मृगयुभ्यः) अपने मृगों की कामना करने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं वैसे तुम भी अन्न दो और सत्कार करो ॥ १६ । २७ ॥

[तक्षभ्यो नमः, रथकारेभ्यो नमः]

भावार्थः—ये पदार्थविद्ययाऽपूर्वाणि शिल्प-

भावार्थ—जो पदार्थ-विद्या के द्वारा

कृत्यानि साध्नुयुस्तान् पारितोषिकदानेन सत्कुर्युः ।

अपूर्व शिल्प-कार्यों को सिद्ध करें उन्हें पारितोषिक प्रदान से सत्कृत करें ।

[श्वनिभ्यो नमः]

ये श्वादिपशुभ्योऽन्नादिदानेन परिपाल्य सुशिक्ष्योपयोजयेयुस्तान् सुखानि प्रापयेयुः ॥

जो श्वा=कुत्ता आदि पशुओं का अन्न-आदि प्रदान से पालन कर तथा उन्हें सुशिक्षित करके उपयोग करें उन्हें राजपुरुष सुख पहुँचावें ॥

भा० पदार्थः—रथकारेभ्यः=पदार्थविद्याऽपूर्वशिल्पकृत्यसाधकेभ्यः । नमः=पारितोषिकदानेन सत्कारः । नमः=अन्नादिदानेन परिपालनम्, सुशिक्ष्योपयोगः ।

भाष्यसार—**विद्वान् किन का सत्कार करें**—विद्वान् मनुष्य विद्या की वृद्धि और अविद्या के नाश के लिए सदा सुपरीक्षा करके प्रयत्न किया करें । क्योंकि विद्वानों का अनुकरण दूसरे मनुष्य करते हैं । अतः विद्वान् लकड़ी के कार्यों में कुशल तक्षक, विमानादि यानों के आविष्कारक रथकार, मिट्टी के पात्र बनाने वाले कुम्भकार, बन्दूक तोपादि के निर्माता कर्मार, वनसम्पदा के रक्षक निषाद, भाषाओं के विशेषज्ञ, कुत्ते आदि पशुओं के प्रशिक्षक और मृगादि के पालकों का सदा अन्नादि से सत्कार करें ॥ १६ । २७ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=**मनुष्याः** । आर्षी जगती । निषादः ॥

मनुष्यैः केभ्यः कथमुपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

मनुष्य लोग किन से कैसा उपकार लेवें, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**श्वभ्यः**) कुक्कुरेभ्यः (**श्वपतिभ्यः**) शुनां पालकेभ्यः (**च**) (**वः**) (**नमः**) अन्नं सत्करणं च (**नमः**) सत्करणम् (**भवाय**) यः शुभगुणादिषु भवति तस्मै (**च**) (**रुद्राय**) दुष्टानां रोदकाय (**च**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**शर्वाय**) हिंसकाय (**च**) (**पशुपतये**) गवादिपशुपालकाय (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**नीलग्रीवाय**) नीलः=शोभनो वर्णो ग्रीवायां यस्य तस्मै (**च**) (**शितिकण्ठाय**) शितिस्तीक्ष्णीभूतः कृष्णो वा कण्ठो यस्य तस्मै (**च**) ॥ २८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं परीक्षकाः श्वभ्यो नमो वः श्वपतिभ्यो नमश्च भवाय नमश्च रुद्राय नमश्च शर्वाय नमश्च पशुपतये नमश्च नीलग्रीवाय नमश्च शितिकण्ठाय नमश्च दद्याम कुर्याम तथा यूयमपि दत्त कुरुत च ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं परीक्षकाः श्वभ्यः** कुक्कुरेभ्यः **नमः** अन्नं, **वः श्वपतिभ्यः** शुनां पालकेभ्यः **नमः** अन्नं सत्करणं **च**; **भवाय** यः शुभगुणादिषु भवति तस्मै **नमः** सत्करणं **च, रुद्राय** दुष्टानां रोदकाय **नमः** अन्नादिकं **च, शर्वाय** हिंसकाय **नमश्च, पशुपतये**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम परीक्षक लोग—(श्वभ्यः) श्वा=कुत्तों को (नमः) अन्न देते हैं, (च) और (वः) तुम (श्वपतिभ्यः) श्वा=कुत्तों के पालकों को (नमः) अन्न देते हैं, और उनका सत्कार करते हैं, (च) और (भवाय) शुभ गुण आदि में वर्तमान पुरुष का (नमः) सत्कार

गवादिपशुपालकाय **नमश्च**, **नीलग्रीवाय** नीला= शोभनो वर्णो ग्रीवायां यस्य तस्मै **नमश्च**, **शिति-कण्ठाय** शितिस्तीक्ष्णीभूतः कृष्णो वा कण्ठो यस्य तस्मै **नमः** अन्नं **च दद्याम, कुर्याम तथा यूयमपि दत्त कुरुत च** ॥ १६ । २८ ॥

करते हैं, (च) और—(शर्वाय) हिंसकजन पर (नमः) वज्रप्रहार करते हैं; (च) और—(पशुपतये) गौ आदि पशुओं के पालक को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और—(नीलग्रीवाय) सुन्दर वर्ण से युक्त ग्रीवा=गर्दन वाले को (नमः) अन्न देते हैं, (शिति-कण्ठाय) शिति=तीक्ष्ण वा कृष्ण कण्ठ वाले को (नमः) अन्न देते हैं वैसे तुम भी अन्न दो और सत्कार करो ॥ १६ । २८ ॥

[श्वभ्यो नमः, श्वपतिभ्यो नमः]

भावार्थः—मनुष्यैः श्वादिपशूनन्नादिदानेन वर्द्धयित्वा तैरुपकारो ग्राह्यः । पशुपालकादीनां सत्कारश्च कार्यः ॥ १६ । २८ ॥

भावार्थ—मनुष्य श्वा=कुत्ते आदि पशुओं को अन्न आदि प्रदान से बढ़ाकर उनसे उपकार ग्रहण करें। और—पशु-पालक आदि जनों का सत्कार करें ॥ १६ । २८ ॥

भा० पदार्थः—नमः=अन्नादिदानेन वर्द्धनम्, उपकारग्रहणम् ।

भाष्यसार—मनुष्य श्वादि से भी उपकार लेवें—मनुष्य अच्छी प्रकार परीक्षा करके और प्रशिक्षित करके कुत्ते आदि से भी उपकार के कार्य लेवें और कुत्ते, कुत्तों के पालक, शुभगुणों वाले, हिंसक जनों का वज्रादि से प्रहार करने वाले, गायादि के पशुओं के पालक, सुन्दर ग्रीवा और कृष्ण-कण्ठवाले वीर पुरुषों का सदा अन्नादि से सत्कार करें ॥ १६ । २८ ॥

कुत्सः । **रुद्रः=गृहस्थः** । भुरिगतिजगति । निषादः ॥

गृहस्थैः के सत्कर्त्तव्या इत्युच्यते ॥

गृहस्थ लोगों को किनका सत्कार करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो

गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**कपर्दिने**) जटिलाय ब्रह्मचारिणे (**च**) (**व्युप्तकेशाय**) विशेषतयो-प्ताश्छेदिताः केशा येन तस्मै संन्यासिने (**च**) संन्यासमिच्छवे वा (**नमः**) सत्करणम् (**सहस्राक्षाय**) सहस्रेष्वसंख्यातेषु शास्त्रविषयादिष्वक्षिणी यस्य तस्मै विदुषे ब्राह्मणाय (**च**) (**शतधन्वने**) धनुर्विद्याद्यसंख्य-शस्त्रविद्याशिक्षकाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**गिरिशयाय**) यो गिरिषु=पर्वतेषु श्रितः सन् शेते तस्मै वानप्रस्थाय (च) (**शिपिविष्टाय**) शिपिषु=पशुषु पालकत्वेन विष्टाय=प्रविष्टाय वैश्यभृतये (**च**) शूद्राय (**नमः**) सत्करणम् (**मीढुष्टमाय**) अतिशयेन वृक्षोद्यानक्षेत्रादिसेचकाय कृषीवलाद्याय (**च**) (**इषुमते**) प्रशस्ता इषवो=बाणा विद्यन्ते यस्य तस्मै वीराय (**च**) भृत्यवर्गाय ॥ २६ ॥

अन्वयः—गृहस्था मनुष्या नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च कुर्युः प्रदद्युश्च ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—गृहस्था मनुष्या नमः अन्नं **कपर्दिने** जटिलाय ब्रह्मचारिणे **च**

भाषार्थ—गृहस्थ लोग (कपर्दिने) जटा-धारी ब्रह्मचारी को (नमः) अन्न दें, (व्युप्तकेशाय)

व्युप्तकेशाय विशेषतयोप्ताश्छेदिताः केशा येन तस्मै संन्यासिने **च** संन्यासमिच्छवे वा **नमः** सत्करणं, **सहस्राक्षाय** सहस्रेष्वसंख्यातेषु शास्त्रविषयादिष्वक्षिणी यस्य तस्मै विदुषे ब्राह्मणाय **च, शतधन्वने** धनुर्विद्याद्यसंख्यशस्त्रविद्याशिक्षकाय **च नमः** सत्करणं, **गिरिशयाय** यो गिरिषु=पर्वतेषु श्रितः सन् शेते तस्मै वानप्रस्थाय **च शिपिविष्टाय** शिपिषु=पशुषु पालकत्वेन विष्टाय=प्रविष्टाय वैश्यभृतये **च** शूद्राय **नमः** संस्करणं, **मीढुष्टमाय** अतिशयेन वृक्षोद्यानक्षेत्रादिसेचकाय कृषीवलाद्याय **चेषुमते** प्रशस्ता इषवो=बाणा विद्यन्ते यस्य तस्मै वीराय **च** भृत्यवर्गाय **कुर्युः प्रदद्युश्च** ॥ १६ । २९ ॥

विशेष रूप से केशों का छेदन करने वाले संन्यासी का (च) वा संन्यास के इच्छुक का (नमः) सत्कार करें, (च) और—(सहस्राक्षाय) सहस्र=असंख्य शास्त्र-विषय आदि में दृष्टि रखने वाले विद्वान् ब्राह्मण का, (च) और (शतधन्वने) धनुर्विद्या आदि असंख्य शस्त्र विद्या के शिक्षक का (नमः) सत्कार करे; (च) और—(गिरिशयाय) गिरि=पर्वतों में शयन करने वाले वानप्रस्थ का (च) और (शिपिविष्टाय) शिपि=पशुओं में पालक-भाव से प्रविष्ट वैश्य का (च) और (शूद्राय) शूद्र का (नमः) सत्कार करें, (च) और (मीढुष्टमाय) वृक्ष, उद्यान, खेत आदि को खींचने वाले किसान आदि का और (इषुमते) उत्तम बाणों वाले वीर का (च) और भृत्य-वर्ग का सत्कार करें और अन्न दें ॥ २९ ॥

[गृहस्था मनुष्या नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः'''कुर्युः]

भावार्थः—गृहस्थैर्ब्रह्मचारिप्रभृतीन् सत्कृत्य विद्यादानं कर्त्तव्यं कारयितव्यं च, तथा—संन्यास्यादीन् संपूज्य विशिष्टविज्ञानं ग्राह्यम् ॥ १६ । २९ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग—ब्रह्मचारी आदि लोगों का सत्कार करके उन्हें विद्या-दान करें और करावें, तथा संन्यासी आदि लोगों की पूजा करके विशिष्ट विज्ञान को ग्रहण करें ॥ १६ । २९ ॥

भा० पदार्थः—नमः=सत्कृत्य विद्यादानम् । नमः=संपूज्य विशिष्टविज्ञानग्रहणम् ।

भाष्यसार—गृहस्थियों से सत्करणीय मनुष्य—गृहस्थी स्त्री-पुरुष विद्या और विज्ञान की उन्नति चाहें तो जटाधारी ब्रह्मचारी, विद्वान् संन्यासी, शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण, शस्त्रास्त्र विद्याओं में निपुण, शिक्षक, वनस्थ तपस्वी वानप्रस्थी, गायादि पशुओं के पालक, कृषि आदि से अन्नादि के उत्पादक कृषक, शरीर से सेवा में रत शूद्र, शस्त्रास्त्रधारी वीर और भृत्यवर्ग को सदा यथायोग्य मान दें और अन्नादि से तृप्त रक्खें ॥ १६ । २९ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=**गृहस्थाः** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

गृहस्थों को किनका सत्कार करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**ह्रस्वाय**) बालकाय (**च**) (**वामनाय**) वामं=प्रशस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य तस्मै । वाम इति प्रशस्तना० ॥ निघं० ३ । ८ ॥ अत्र पामादित्वान्नः ॥ अ० ५ । २ । १०० ॥ (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**बृहते**) महते (**च**) (**वर्षीयसे**) अतिशयेन विद्यावृद्धाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**वृद्धाय**) वयोऽधिकाय (**च**) (**सवृधे**) यः समानैः सह वर्धते तस्मै (**च**) सर्वमित्राय (**नमः**) सत्करणम्

(अग्रचाय) अग्रे भवाय=सत्कर्मसु पुरःसराय **(च)** **(प्रथमाय)** प्रख्याताय **(च)** ।। ३० ।।

प्रमाणार्थ—**(वामनाय)** 'वाम' पद निघं० ३ । ८ में प्रशस्त-नामों में पठित है । यहाँ 'लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' (५ । २ । १००) 'वाम' पद पामादि में पठित होने से 'न' प्रत्यय है ।

अन्वयः—ये गृहस्था मनुष्या ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्रचाय च प्रथमाय नमश्च ददति कुर्वन्ति च ते सुखिनो भवन्ति ।। ३० ।।

भा० पदार्थः—नमः=सत्कृत्य सद्व्यवहारोन्नयनम् ।

सपदार्थान्वयः—**ये गृहस्था मनुष्या ह्रस्वाय** बालकाय **च वामनाय** वामं=प्रशस्तं विज्ञानं विद्यते यस्य तस्मै **च नमः** अन्नं, **बृहते** महते **च वर्षीयसे** अतिशयेन विद्यावृद्धाय **च नमः** सत्करणम्, **वृद्धाय** वयोऽधिकाय **च सवृधे** यः समानैः सह वर्धते तस्मै **च** सर्वमित्राय **नमः** सत्करणं, **अग्रचाय** अग्रे भवाय=सत्कर्मसु पुरःसराय **च प्रथमाय** प्रख्याताय **नमः** सत्करणं **च ददति, कुर्वन्ति च ते सुखिनो भवन्ति** ।। १६ । ३० ।।

भाषार्थ—जो गृहस्थ लोग—(ह्रस्वाय) बालक को (च) और (वामनाय) वाम=प्रशस्त विज्ञान वाले पुरुष को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (बृहते) महान् पुरुष (च) और (वर्षीयसे) अत्यन्त विद्या-वृद्ध का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (वृद्धाय) वयोवृद्ध (च) और (सवृधे) साथियों के साथ बढ़ने वाले (च) और सबके पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (अग्रचाय) सत्कर्मों में अग्रसर तथा (प्रथमाय) प्रख्यात पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; वे सुखी रहते हैं ।।

[ह्रस्वाय च वामनाय च नमः]

भावार्थः—गुहस्थैर्मनुष्यैरन्नादिना बालकादीन् सत्कृत्य सद्व्यवहार उन्नेयः ।। १६ । ३० ।।

भावार्थ—गृहस्थ लोग—अन्न आदि से बालक आदिकों का सत्कार करके सद्व्यवहार को बढ़ावें ।। १६ । ३० ।।

अन्यत्र व्याख्यात—**(प्रश्न)**···'वामनाय च' इत्यादि वेद-प्रमाणों से शैव आदि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो । **(उत्तर)** इन वचनों से शैवादि सम्प्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि 'रुद्र' परमेश्वर प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है **(सत्यार्थ० समु० ११)** ।

भाष्यसार—**गृहस्थी किनका सत्कार करें**—गृहस्थाश्रम को सुखमय बनाने के लिए गृहस्थी स्त्री-पुरुष बालक, प्रशस्त ज्ञानवान्, चरित्रादि से महान्, विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध माता पितादि, उन्नति की ओर जाने वाले साथी, सत्कार्यों में महान् और प्रख्यात कीर्ति वाले मनुष्यों का अन्नादि से सदा सत्कार किया करें ।। १६ । ३० ।।

कुत्सः । **रुद्राः**=**मनुष्याः** । स्वराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

अथोद्योगः कथं कार्य इत्युपदिश्यते ।।

अब उद्योग कैसे करना चाहिए; यह उपदेश किया है ।।

नम॑ऽ आ॒शवे॑ चाजि॒राय॑ च॒ नमः॒ शीघ्र्या॑य च॒ शीभ्या॑य च॒ नम॒ऽ ऊर्म्या॑य चावस्व॒न्या॒य च॒ नमो॑ नादे॒या॑य च॒ द्वीप्या॑य च ।। ३१ ।।

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिकम् (**आशवे**) वायुरिवाध्वानं व्याप्तायाश्वाय (**च**) (**अजिराय**) अश्ववारं प्रक्षेप्त्रे (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**शीघ्रचाय**) शीघ्रगतौ साधवे (**च**) (**शीभ्याय**) शीभेषु=क्षिप्रकारिषु भवाय। शीभमिति क्षिप्रना० ॥ निघं० २ । १५ ॥ (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**ऊर्म्याय**) ऊर्मिषु=जलतरङ्गेषु भवाय वायुरिव वर्त्तमानाय (**च**) (**अवस्वन्याय**) अर्वाचीनेषु स्वनेषु भवाय (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**नादेयाय**) नद्यां भवाय (**च**) (**द्वीप्याय**) द्वीपेषु=द्विर्गतजलेषु देशेषु भवाय (**च**) ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(शीभ्याय) 'शीभ' पद निघं० २ । १५ में क्षिप्र-नामों में पठित है। क्षिप्र=शीघ्र ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यदि यूयमाशवे चाजिराय च नमः शीघ्रचाय शीभ्याय च नमश्चोर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च नमो दत्त तर्हि भवन्तोऽखिलानन्दान् प्राप्नुत ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यदि **यूयमाशवे** वायुरिवाध्वानं व्याप्तायाश्वाय **चाजिराय** अश्ववारं प्रक्षेप्त्रे **च नमः** अन्नादिकं, **शीघ्रचाय** शीघ्रगतौ साधवे **शीभ्याय** शीभेषु=क्षिप्रकारिषु भवाय **च नमः** अन्नं, **चोर्म्याय** ऊर्मिषु=जलतरङ्गेषु भवाय वायुरिव वर्त्तमानाय **चावस्वन्याय** अर्वाचीनेषु स्वनेषु भवाय **च नमः** अन्नं, **नादेयाय** नद्यां भवाय **च द्वीप्याय** द्वीपेषु=द्विर्गत जलेषु देशेषु भवाय **च नमः** अन्नं **दत्त तर्हि भवन्तोऽखिलानन्दान् प्राप्नुत** ॥ १६ । ३१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यदि तुम—(आशवे) वायु के समान मार्ग को शीघ्र व्याप्त करने वाले के लिए (च) और (अजिराय) घुड़सवार को फैंकने वाले घोड़े के लिए (नमः) अन्न आदि दो; (शीघ्रचाय) शीघ्र गति में श्रेष्ठ तथा (शीभ्याय) शीघ्रकारियों में वर्त्तमान जन को (नमः) अन्न दो; (च) और—(ऊर्म्याय) ऊर्मि=जल-तरङ्गों में विद्यमान एवं वायु के समान वर्तमान (च) और (अवस्वन्याय) अर्वाचीन शब्दों में विद्यमान जन को (नमः) अन्न दो, (च) और (नादेयाय) नदी में विद्यमान (द्वीप्याय) द्वीप=दोनों ओर जल वाले देशों में विद्यमान जन को (नमः) अन्न दो तो आप सब आनन्दों को प्राप्त करो ॥ १६ । ३१ ॥

[हे मनुष्याः ! यदि **यूयमाशवे···च नमः, शीघ्रचाय···च नमः, द्वीप्याय च नमो दत्त, तर्हि भवन्तो ऽखिलानानन्दान् प्राप्नुत**]

भावार्थः—ये क्रियाकौशलेन रचितैर्विमानादियानैरश्वादिभिश्च शीघ्रं गतिमन्तः सन्ति, ते कं कं द्वीपं देशं वाऽगत्वा राज्याय धनं च नाप्नुवन्ति, किन्तु—सर्वत्र गत्वा सर्वमाप्नुवन्ति ॥

भावार्थ—जो क्रियाकौशल से रचित विमान आदि यानों और घोड़े आदि से शीघ्र गति करने वाले हैं वे किस-किस द्वीप वा देश में न जाकर राज्य के लिए धन प्राप्त नहीं करते, अपितु—सर्वत्र जाकर सब कुछ प्राप्त करते हैं ॥

भाष्यसार—**रुद्र=मनुष्य उद्योग कैसे करें**—यदि मनुष्य घोड़ों, घुड़सवारों, शीघ्र गति करने वाले अन्य पशुओं, जल-तरङ्गों में वायु समान गति करने वाले पुरुषों, नदी और द्वीप-द्वीपान्तर में रहने वाले जनों को अन्न=भोजन प्रदान करें तो सब आनन्दों को प्राप्त कर सकते हैं। विमान आदि यानों की रचना से शीघ्र-गति होकर उद्योग को बढ़ावें ॥ १६ । ३१ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=मनुष्याः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्याः परस्परं कथं सत्कृता भवेयुरित्याह ॥

मनुष्य लोग परस्पर कैसे सत्कार करने वाले हों, यह उपदेश किया है ॥

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नमः॒ पूर्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्या॒य च बु॒ध्न्या॒य च ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणमन्नं वा (**ज्येष्ठाय**) अतिशयेन वृद्धाय (**च**) (**कनिष्ठाय**) अतिशयेन बालकाय (**च**) (**नमः**) सत्करणमन्नं वा (**पूर्वजाय**) पूर्वं जाताय=ज्येष्ठाय भ्रात्रे ब्राह्मणाय वा (**च**) (**अपरजाय**) अपरे जाताय=ज्येष्ठानुजायान्त्यजाय वा (**च**) (**नमः**) सत्कारादिकम् (**मध्यमाय**) मध्ये भवाय बन्धवे क्षत्रियाय वैश्याय वा (**च**) (**अपगल्भाय**) अपगतं=दूरीकृतं गल्भं=धाष्टर्यं येन तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**जघन्याय**) जघने=नीचकर्मणि भवाय शूद्राय म्लेच्छाय वा (**च**) (**बुध्न्याय**) बुध्ने=जलबन्धनेऽन्तरिक्षे भवाय मेघायेव वर्त्तमानाय दात्रे (**च**) ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च नमो दत्त ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं **ज्येष्ठाय** अतिशयेन वृद्धाय **च कनिष्ठाय** अतिशयेन बालकाय **च नमः** सत्करणमन्नं वा, **पूर्वजाय** पूर्वं जाताय=ज्येष्ठाय भ्रात्रे ब्राह्मणाय वा **च अपरजाय** अपरे जाताय=ज्येष्ठानुजायान्त्यजाय वा **च नमः** सत्करणमन्नं वा **मध्यमाय** मध्ये भवाय बन्धवे क्षत्रियाय वैश्याय वा **चाऽपगल्भाय** अपगतं=दूरीकृतं गल्भं=धाष्ट्र्यं येन तस्मै **च नमः** सत्करणं **जघन्याय** जघने=नीचकर्मणि भवाय शूद्राय म्लेच्छाय वा **च बुध्न्याय** बुध्ने=जलबन्धनेऽन्तरिक्षे भवाय मेघायेव वर्त्तमानाय दात्रे **च नमो दत्त**।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(ज्येष्ठाय) अति वृद्ध (च) और (कनिष्ठाय) अति बालक का (नमः) सत्कार करो वा अन्न दो, (पूर्वजाय) पूर्व उत्पन्न=बड़े भाई वा ब्राह्मण (च) और (अपरजाय) पश्चात् उत्पन्न=छोटे भाई वा अन्त्यज का (नमः) सत्कार करो वा अन्न दो; (मध्यमाय) मध्य में उपन्न बन्धु वा क्षत्रिय और वैश्य (च) और (अपगल्भाय) धाष्टर्य=ढीठपन से दूर रहने वाले का (नमः) सत्कार करो; (जघन्याय) जघन्य=नीच कर्म करने वाले शूद्र वा म्लेच्छ (च) और (बुध्न्याय) बुध्न्य=आकाश में विद्यमान मेघ के समान वर्त्ताव करने वाले दाता का (नमः) सत्कार करो वा अन्न दो ॥ १६ । ३२ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च, पूर्वजाय चापरजाय च, मध्यमाय च जघन्याय च नमो दत्त]

भावार्थः—सत्कारे कर्त्तव्ये 'नमस्ते' इति वाक्योच्चारणेन कनिष्ठैर्ज्येष्ठा, ज्येष्ठैः कनिष्ठा, नीचैरुत्तमा उत्तमैर्नीचाः, क्षत्रियाद्यैर्ब्राह्मणा, ब्राह्मणाद्यैः क्षत्रियाद्याश्च सततं सत्कर्त्तव्याः ।

भावार्थ—सत्कार के समय में--'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों का, बड़े छोटों का, नीच उत्तमों का, उत्तम नीचों का, क्षत्रिय आदि ब्राह्मणों का, ब्राह्मण क्षत्रिय आदि का सदा सत्कार करें ।

[शिष्टाचारे वेदोक्तप्रमाणमाह—]

एतेनैव वेदोक्तप्रमाणेन शिष्टाचारे सर्वत्र सर्वै-

इसी वेदोक्त प्रमाण से शिष्टाचार में सर्वत्र

रेतद्वाक्यं सम्प्रयोज्यान्योऽन्येषां सत्करणात्प्रसन्नैर्भवितव्यम् ॥ १६ । ३२ ॥

सब मनुष्य इस वाक्य का प्रयोग करके परस्पर के सत्कार से प्रसन्न रहें ॥ १६ । ३२ ॥

भाष्यसार—रुद्र=मनुष्य परस्पर कैसे सत्कार करें—बड़े-छोटे, ब्राह्मण-अन्त्यज, क्षत्रिय-वैश्य, निरभिमानी पुरुष, शूद्र वा म्लेच्छ, मेघ के समान दाता पुरुष ये सब सत्कार के समय इस वेद-मन्त्र के प्रमाण से 'नमस्ते' इस वाक्य से परस्पर सत्कार करें ॥ १६ । ३२ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=मनुष्याः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य परस्पर कैसे सत्कार करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**सोभ्याय**) सोभेष्वैश्वर्य्ययुक्तेषु भवाय (**च**) (**प्रतिसर्याय**) ये प्रतीते धर्मे सरन्ति तेषु भवाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**याम्याय**) यो यमेषु=न्यायकारिषु साधुस्तस्मै । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (**च**) (**क्षेम्याय**) क्षेमेषु=रक्षकेषु साधुस्तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**श्लोक्याय**) श्लोके=वेदवाण्यां साधवे । **श्लोक इति वाङ्ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**च**) (**अवसान्याय**) अवसानव्यवहारे साधवे (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**उर्वर्याय**) उरूणां=महतामर्याय=स्वामिने (**च**) (**खल्याय**) खले=संचयाधिकरणे साधवे (**च**) ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**याम्याय**) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है । (**श्लोक्याय**) श्लोके=वेदवाण्याम् । 'श्लोक' पद निघं० १ । ११ में वाक्-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च नमः प्रयोज्य दत्वा चैतान् भवन्त आनन्दयन्तु ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **सोभ्याय** सोभेष्वैश्वर्ययुक्तेषु भवाय **च प्रतिसर्याय** ये प्रतीते धर्मे सरन्ति तेषु भवाय **च नमः** अन्नम्, **याम्याय** यो यमेषु=न्यायकारिषु साधुस्तस्मै **च क्षेम्याय** क्षेमेषु=रक्षकेषु साधुस्तस्मै **च नमः** सत्करणं, **श्लोक्याय** श्लोके=वेदवाण्यां साधवे **चाऽवसान्याय** अवसानव्यवहारे साधवे **च नमः** सत्करणं, **उर्वर्याय** उरूणां=महतामर्याय=स्वामिने **च खल्याय** खले=संचयाधिकरणे साधवे **च नमः** प्रयोज्य, दत्त्वा चैतान् भवन्त आनन्दयन्तु ॥ १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (सोभ्याय) ऐश्वर्य-युक्तों में विद्यमान (च) और (प्रतिसर्याय) प्रसिद्ध धर्म में गतिशील पुरुष को (नमः) अन्न देकर; (याम्याय) न्यायकारियों में श्रेष्ठ (च) और (क्षेम्याय) रक्षकों में श्रेष्ठ पुरुष का (नमः) सत्कार करके, (श्लोक्याय) वेद-वाणी में श्रेष्ठ (च) और (अवसान्याय) अवसान-व्यवहार में श्रेष्ठ पुरुष का (नमः) सत्कार करके; (उर्वर्याय) महापुरुषों के स्वामी (च) और (खल्याय) संचय-अधिकरण में श्रेष्ठ पुरुष के लिए (नमः) 'नमस्ते' का प्रयोग करके और इन्हें अन्न देकर आप सब आनन्दित रहो ॥ १६ । ३३ ॥

[अनेकचकारप्रयोजनमाह—]

भावार्थः — अत्रानेकैश्चकारैरन्येऽप्युपयोगिनोऽर्थाः संग्राह्याः सत्कर्त्तव्याश्च ।

भावार्थ—यहाँ अनेक चकारों से अन्य भी उपयोगी अर्थों का ग्रहण करें, श्रेष्ठ जनों का सत्कार करना अभिप्राय है ।

[याम्याय च क्षेम्याय च नमः, उर्वर्याय च—नमः]

प्रजास्थैर्न्यायाधीशादीनां, न्यायाधीशाद्यैः प्रजास्थानां च सत्कारः, पत्याद्यैर्भार्याद्या भार्याद्यैः पत्यादयश्च प्रसादनीयाः ॥ १६ । ३३ ॥

प्रजा के लोग न्यायाधीश आदि का और न्यायाधीश आदि प्रजा-जनों का सत्कार करें, पति आदि भार्या=स्त्री आदि को, भार्या=स्त्री आदि पति आदि को प्रसन्न रखें ॥ १६ । ३३ ॥

भाष्यसार—रुद्र=मनुष्य परस्पर **कैसे सत्कार करें**—सब मनुष्य धनवान्, धार्मिक, न्यायकारी, रक्षक, वेद-वाणी के पालक, पूर्ति-व्यवहार में श्रेष्ठ, महापुरुषों के स्वामी, खल्य=खलिहानों में काम करने वाले किसान आदि जनों का 'नमस्ते' इस वाक्य से तथा अन्न=भोजन आदि से भी सत्कार करें । राजा-प्रजा तथा पति-पत्नी आदि भी परस्पर सत्कार करके प्रसन्न रहें ॥ १६ । ३३ ॥

प्रजापतिः । **रुद्राः=राजपुरुषाः** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राजपुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम ऽ आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**वन्याय**) वने=जङ्गले भवाय (**च**) (**कक्ष्याय**) कक्षासु भवाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**श्रवाय**) श्रोत्रे श्रवणहेतवे वा (**च**) (**प्रतिश्रवाय**) यः प्रतिशृणोति=प्रतिजानीते तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नदानम् (**आशुषेणाय**) आशु=शीघ्रगामिनी सेना यस्य तस्मै (**च**) (**आशुरथाय**) आशु=शीघ्रगामिनो रथा=यानानि यस्य तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्कारम् (**शूराय**) शत्रूणां हिंसकाय (**च**) (**अवभेदिने**) शत्रूनवभेत्तुं=विदारयितुं शीलाय (**च**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्या ! ये वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च नमः प्रदद्युः कुर्युस्ते सर्वत्र विजयिनो भवन्तु ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **ये वन्याय** वने=जङ्गले भवाय **च कक्ष्याय** कक्षासु भवाय **च नमः** अन्नम्, **श्रवाय** श्रोत्रे श्रवणहेतवे **च प्रतिश्रवाय** यः प्रतिशृणोति=प्रतिजानीते तस्मै **च नमः** सत्करणम्, **आशुषेणाय** आशु=शीघ्रगामिनी सेना यस्य तस्मै **च आशुरथाय** आशु=शीघ्रगामिनो रथा=यानानि यस्य तस्मै **च नमः** सत्कारम्, **शूराय** शत्रूणां हिंसकाय **च अवभेदिने**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(वन्याय) जङ्गल में विद्यमान (च) और (कक्ष्याय) कक्षाओं में विद्यमान पुरुष को (नमः) अन्न देते हैं; (श्रवाय) श्रोत्र वा सुनने के हेतु (च) और (प्रतिश्रवाय) प्रतिज्ञा करने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (आशुषेणाय) आशु=शीघ्रगामिनी सेना वाले (च) और (आशुरथाय) आशु=शीघ्रगामी रथ=यानों वाले का (नमः) सत्कार

शत्रूनवभेत्तुं=विदारयितुं शीलाय **च नमः प्रदद्युः कुर्युः, ते सर्वत्र विजयिनो भवन्तु** ॥ १६ । ३४ ॥

करते हैं, (च) और (शूराय) शत्रुओं के हिंसक (च) और (अवभेदिने) शत्रुओं का विदारण करने वाले को (नमः) अन्न देते और सत्कार करते हैं, वे सर्वत्र विजयी होते हैं ॥ १६ । ३४ ॥

[वन्याय, कक्ष्याय, श्रवाय, प्रतिश्रवाय, आशुषेणाय, आशुरथाय, अवभेदिने च नमः]

भावार्थः—राजपुरुषैः—वन-कक्षास्थाध्येतृ-अध्यापक—बलिष्ठसेना—तूर्णगामियानस्थ — वीर-दूतानन्नादिना सत्कारेण प्रोत्साह्य सदा विजयिभिर्भवितव्यम् ॥ १६ । ३४ ॥

भावार्थ—राजपुरुष—कक्षा में पढ़ने वाले छात्र, अध्यापक, बलिष्ठ सेना, शीघ्रगामी यान में स्थित वीर और दूतों को अन्न आदि से सत्कार के द्वारा प्रोत्साहित करके सदा विजयी होवें ॥ ३४ ॥

भा० पदार्थः—वन्याय=वनस्थाय । कक्ष्याय=कक्षास्थाय । श्रवाय=अध्येत्रे । प्रतिश्रवाय=अध्यापकाय । आशुषेणाय=बलिष्ठसेनाय । आशुरथाय=तूर्णगामियानस्थवीराय । अवभेदिने=दूताय । नमः=अन्नादिना सत्कारेण प्रोत्साहनम् ॥

भाष्यसार—रुद्र=राजपुरुष कैसे हों—जो राजपुरुष जङ्गली मनुष्यों तथा कक्षा में पढ़ने वाले छात्रों को अन्न=भोजन देते हैं, वेद-वाणी को सुनने-सुनाने वाले, उत्तम प्रतिज्ञा करने वाले, शीघ्रगामी सेना तथा रथ=यानों वाले, शत्रुओं के घातक तथा उनका विदारण करने वाले वीर जनों का सत्कार करते हैं वे सर्वत्र विजयी होते हैं ॥ १६ । ३४ ॥

कुत्सः । **रुद्राः=योद्धारः** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

योद्धॄणां रक्षा कथं कार्येत्याह ॥

योद्धाओं की रक्षा कैसे करनी चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च॒ वरू॒थिने॑ च नमः॑ श्रु॒ताय॑ च श्रु॒तसे॑नाय च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या॒य चाहन॒न्या॒य च ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणम् (**बिल्मिने**) प्रशस्तं बिल्मं धारणं वा विद्यते यस्य तस्मै (**च**) (**कवचिने**) सम्बद्धं कवचं=शरीररक्षासाधनं विद्यते यस्य तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**वर्मिणे**) बहूनि वर्माणि=शरीररक्षासाधनानि विद्यन्ते यस्य तस्मै (**च**) (**वरूथिने**) प्रशस्तानि वरूथानि=गृहाणि विद्यन्ते यस्य तस्मै । वरूथमिति गृहना० ॥ निघं० ३ । ४ ॥ (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**श्रुताय**) यः शुभगुणेषु श्रूयते तस्मै (**च**) (**श्रुतसेनाय**) श्रुता=प्रख्याता सेना यस्य तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**दुन्दुभ्याय**) दुन्दुभिषु=वादित्रेषु साधवे (**च**) (**आहनन्याय**) वीररसाय वादित्रवादनेषु साधवे (**च**) ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(**वरूथिने**) प्रशस्तानि वरूथानि=गृहाणि० । 'वरूथ' पद निघं० ३ । ४ में गृह-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे राजप्रजाजनाध्यक्षाः ! भवन्तो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमः कुर्युर्दद्युर्यतो युष्माकं पराजयः कदापि न स्यात् ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजप्रजाजना-

भाषार्थ—हे राजपुरुष और प्रजा-जनों के

ध्यक्षाः ! भवन्तो बिल्मिने प्रशस्तं बिल्मं धारणं वा विद्यते यस्य तस्मै **च कवचिने** सम्बद्धं कवचं=शरीररक्षासाधनं विद्यते यस्य तस्मै **च नमः** सत्करणं, **वर्मिणे** बहूनि वर्माणि=शरीर-रक्षासाधनानि विद्यन्ते यस्य तस्मै **च वरूथिने** प्रशस्तानि वरूथानि=गृहाणि विद्यन्ते यस्य तस्मै **च नमः** अन्नादिदानम्, **श्रुताय** यः शुभगुणेषु श्रूयते तस्मै **च श्रुतसेनाय** श्रुता=प्रख्याता सेना यस्य तस्मै **च नमः** सत्करणं, **दुन्दुभ्याय** दुन्दुभिषु=वादित्रेषु साधवे **च आहनन्याय** वीररसाय वादित्रवादनेषु साधवे **च नमः** सत्करणं **कुर्युः, दद्युर्यतो युष्माकं पराजयः कदापि न स्यात्** ॥ १६ । ३५ ॥

अध्यक्ष ! आप—(बिल्मिने) तोड़ फोड़ करने वा उत्तम वस्त्र आदि धारण करने वाले (च) और (कवचिने) सम्बद्ध शरीर रक्षा के साधन कवच वाले का (नमः) सत्कार करो; (च) और (वर्मिणे) नाना वर्म=शरीर-रक्षा के साधनों वाले को (च) और (वरूथिने) उत्तम घरों वाले को (नमः) अन्न आदि प्रदान करो; (च) और (श्रुताय) शुभ गुणों में प्रसिद्ध (च) और (श्रुत-सेनाय) प्रख्यात सेना वाले का (नमः) सत्कार करो, (च) और (दुन्दुभ्याय) दुन्दुभि=ढोल आदि बाजे बजाने में श्रेष्ठ (च) और (आहनन्याय) वीररस के लिए बाजे बजाने में उत्तम पुरुष का (नमः) सत्कार करो; जिससे तुम्हारा पराजय कभी न हो ॥ १६ । ३५ ॥

[हे राजप्रजाजनाध्यक्षाः ! भवन्तो···कवचिने, वरूथिने, श्रुतसेनाय, आहनन्याय च नमः कुर्युः, दद्युः]

भावार्थः—राजप्रजाजनैर्योद्धॄणां सर्वतो रक्षा, सर्वतः सुखप्रदानि गृहाणि, भोज्यपेयानि वस्तूनि, प्रशंसितजनानां सङ्गो, ऽत्युत्तमानि वादित्राणि च दत्त्वा स्वाभीष्टानि साधनीयानि ॥

भावार्थ—राजपुरुष और प्रजाजन योद्धाओं की सब ओर से रक्षा, सब ओर से सुख-दायक घर, भोज्य और पेय वस्तु श्रेष्ठ जनों का सङ्ग और अत्युत्तम बाजे देकर अपने अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें ॥ १६ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—वरूथिने=सर्वतः सुखप्रदानि गृहाणि यस्य तस्मै । आहनन्याय=अत्युत्तमानि वादित्राणि यस्य तस्मै ।

भाष्यसार—**रुद्र=योद्धाओं की रक्षा कैसे करें**—राजपुरुष और प्रजा-जनों के अध्यक्ष—तोड़-फोड़ करने वाले, उत्तम वस्त्रधारी, कवचधारी, उत्तम घर वाले, शुभ गुणों में प्रसिद्ध, विख्यात सेना वाले, वीर-रस के लिए श्रेष्ठ बाजे बजाने वाले योद्धाओं की अन्न=भोजन आदि से रक्षा करें । उनका यथोचित सत्कार करके भी उनकी रक्षा करें ॥ १६ । ३५ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=राजप्रजाजनाध्यक्षाः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योद्धाओं की रक्षा कैसे करनी चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिदानम् (**धृष्णवे**) यो धृष्णोति=दृढो निर्भयो भवति (**च**) (**प्रमृशाय**) प्रकृष्टविचारशीलाय (**च**) मृदुस्वभावजनाय (**नमः**) सत्करणम् (**निषङ्गिणे**) बहवो

निषङ्गाः=शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै **(च) (इषुधिमते)** प्रशस्तशस्त्रास्त्रकोशाय **(च) (नमः)** सत्करणम् **(तीक्ष्णेषवे)** तीक्ष्णास्तीव्रा इषवोऽस्त्रशस्त्राणि यस्य तस्मै **(च) (आयुधिने)** ये शतघ्न्यादिभिः समन्ताद्युध्यन्ते ते प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तस्मै **(च) (नमः)** अन्नदानम् **(स्वायुधाय)** शोभनानि आयुधानि यस्य तस्मै **(च) (सुधन्वने)** शोभनानि धन्वानि=धनूंषि यस्य तस्मै **(च)** तेषां रक्षकाय ॥ ३६ ॥

अन्वयः—ये राजप्रजाजनाध्यक्षा धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च नमः प्रदद्युः कुर्युश्च ते सदा विजयिनो भवन्तु ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये राजप्रजाजनाध्यक्षा धृष्णवे** यो धृष्णोति=दृढो निर्भयो भवति **च प्रमृशाय** प्रकृष्टविचारशीलाय **च** मृदुस्वभावजनाय **नमः** अन्नादिदानं, **निषङ्गिणे** बहवो निषङ्गाः=शस्त्रसमूहा विद्यन्ते यस्य तस्मै **चेषुधिमते** प्रशस्तशस्त्रास्त्रकोशाय **च नमः** सत्करणं, **तीक्ष्णेषवे** तीक्ष्णास्तीव्रा इषवोऽस्त्रशस्त्राणि यस्य तस्मै **चायुधिने** ये शतघ्न्यादिभिः समन्ताद्युध्यन्ते ते प्रशस्ता विद्यन्ते यस्य तस्मै **च नमः** सत्करणं, **स्वायुधाय** शोभनानि आयुधानि यस्य तस्मै **च सुधन्वने** शोभनानि धन्वानि=धनूंषि यस्य तस्मै **च** तेषां रक्षकाय **नमः** अन्नदानं, **प्रदद्युः कुर्युश्च ते सदा विजयिनो भवन्तु** ॥ १६ । ३६ ॥

भाषार्थ—जो राजा और प्रजा-जनों के अध्यक्ष—(धृष्णवे) दृढ़ एवं निर्भय, (च) और (प्रमृशाय) उत्तम विचारशील (च) और कोमल स्वभाव वाले पुरुष को (नमः) अन्न आदि प्रदान करते हैं, (च) और (निषङ्गिणे) नाना शस्त्रों वाले (च) और (इषुधिमते) उत्तम शस्त्र-अस्त्रों के कोश वाले पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (तीक्ष्णेषवे) तीक्ष्ण इषु=शस्त्र-अस्त्रों वाले (च) और (आयुधिने) शतघ्नी=तोप आदि से चारों ओर युद्ध करने वाले पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (स्वायुधाय) सुन्दर शस्त्र-अस्त्रों वाले (च) और (सुधन्वने) सुन्दर धनुषों वाले (च) और उनके रक्षक पुरुष को (नमः) अन्न प्रदान करते हैं; वे सदा विजयी होते हैं ॥

[ये···धृष्णवे च प्रमृशाय च नमः, निषङ्गिणे च···नमः प्रदद्युः कुर्युश्च ते सदा विजयिनो भवन्तु]

भावार्थः—मनुष्यैर्यत्किंचित् कर्मकार्यं, तत् सुविचारेण दृढोत्साहेनेति । नहि शरीरात्मबलमन्तरेण शस्त्रप्रहरणं शत्रुविजयश्च कर्त्तुं शक्यते, तस्मात् सततं सेना वर्द्धनीया ॥ १६ । ३६ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जो कोई कर्म करें उसे सुविचार और दृढ़ उत्साह से करें। शरीर और आत्मा के बल के बिना शस्त्र-प्रहार और शत्रुओं पर विजय प्राप्त नहीं किया जा सकता, अतः सदा सेना को बढ़ावें ॥ १६ । ३६ ॥

भा० पदार्थः—धृष्णवे=दृढोत्साहाय । प्रमृशाय=सुविचाराय ।

भाष्यसार—राजा और प्रजा के अध्यक्षों के कर्त्तव्य—विजय के इच्छुक राज्याध्यक्षों को योग्य है कि वे विचारशील, मृदुस्वभाव वाले, प्रशस्त शस्त्रास्त्रों के चलाने में निपुण और प्रशस्त धनुषधारियों का अन्नादि से सदा सत्कार किया करें ॥ १६ । ३६ ॥

कुत्सः । **रुद्राः=मनुष्याः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैरुदकेन कथमुपकर्त्तव्यमित्याह ॥

मनुष्य लोग जल से कैसे उपकार लेवें, यह उपदेश किया है ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नदानम् (**स्रुत्याय**) स्रुतौ=प्रस्रवणे भवाय (**च**) (**पथ्याय**) पथि भवाय गन्तुकाय (**च**) मार्गादिशोधकाय (**नमः**) सत्करणम् (**काट्याय**) काटेषु=कूपेषु भवाय । काट इति कूपना० ॥ निघं० ३ । २३ ॥ (**च**) (**नीप्याय**) नितरामापो यस्मिन् स नीपस्तत्र भवाय (**च**) तत्सहायिने (**नमः**) सत्करणम् (**कुल्याय**) कुल्यासु=नदीषु भवाय । कुल्या इति नदीना० ॥ निघं० १ । १३ ॥ (**च**) (**सरस्याय**) सरसि=तडागे भवाय (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**नादेयाय**) नदीषु भवाय (**च**) (**वैशन्ताय**) वेशन्तेषु=क्षुद्रेषु जलाशयेषु भवाय (**च**) ॥ ३७ ॥

प्रमाणार्थ—(**काट्याय**) 'काट' पद निघं० ३ । २३ में कूप-नामों में पठित है । (कुल्याय) 'कुल्या' पद निघं० १ । १३ में नदी-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—मनुष्यैः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय नमश्च नादेयाय च वेशन्ताय च नमो दत्वा दया प्रकाशनीया ॥ ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—**मनुष्यैः स्रुत्याय** स्रुतौ=प्रस्रवणे भवाय **च पथ्याय** पथि भवाय गन्तुकाय **च** मार्गादिशोधकाय **नमः** अन्नदानं, **काट्याय** काटेषु=कूपेषु भवाय **च नीप्याय** नितरामापो यस्मिन् स नीपस्तत्र भवाय **च** तत्सहायिने **नमः** सत्करणं, **कुल्याय** कुल्यासु=नदीषु भवाय **च सरस्याय** सरसि=तडागे भवाय **च नमः** सत्करणं **च**, **नादेयाय** नदीषु भवाय **च वैशन्ताय** वेशन्तेषु=क्षुद्रेषु जलाशयेषु भवाय **च नमः** अन्नादिदानं **दत्त्वा दया प्रकाशनीया** ॥ १६ । ३७ ॥

भाषार्थ—मनुष्य—(स्रुत्याय) स्रुति=झरने पर रहने वाले (च) और (पथ्याय) मार्ग चलने वाले पथिक को (च) और मार्ग आदि के शोधक पुरुष को (नमः) अन्न देकर, (काट्याय) कूओं पर रहने वाले (च) और (नीप्याय) नीप=विशाल जलाशय पर रहने वाले (च) और उसके सहायक पुरुष का (नमः) सत्कार करके; (कुल्याय) छोटी नदियों पर रहने वाले (च) और (सरस्याय) तालाब पर रहने वाले पुरुष का (नमः) सत्कार करके; (नादेयाय) बड़ी नदियों पर रहने वाले (च) और (वैशन्ताय) छोटे जलाशयों पर रहने वाले पुरुष को (नमः) अन्न आदि देकर दया को प्रकाशित करें ॥ १६ । ३७ ॥

[**मनुष्यैः स्रुत्याय, पथ्याय, काट्याय, नीप्याय, कुल्याय सरस्याय च नमः**]

भावार्थः—मनुष्यैः स्रोतसां मार्गाणां कूपानां जलप्रायदेशानां महदल्पसरसां च जलं चालयित्वा, यत्र कुत्र बद्ध्वा क्षेत्रादिषु पुष्कलान्यान्नफलवृक्षलतागुल्मादीनि संवर्धनीयानि ॥

भावार्थ—मनुष्य—स्रोत, मार्ग, कूए, जलप्राय देश और बड़े छोटे तालाबों के जल को चलाकर, उसे जहाँ-तहाँ बांधकर क्षेत्र आदि में पुष्कल अन्न, फल, वृक्ष, लता और गुल्म=झाड़ी आदि को बढ़ावें ॥ १६ । ३७ ॥

भा० पदार्थः—स्रुत्याय=स्रोतसां जलाय । पथ्याय=मार्गाणां जलाय । काट्याय=कूपानां जलाय । नीप्याय=जलप्रायदेशानां जलाय । सरस्याय=महदल्पसरसां जलाय ।

भाष्यसार—मनुष्य जलों का सदुपयोग करें—मनुष्यों को धन-धान्य की वृद्धि के लिए

झरनों, नदियों, तालाबों आदि के जलों का सदुपयोग किया करें। और जो मनुष्य परिश्रम करके नदियों आदि के जलों के मार्गों को बनाने वाले हों, उनका सदा सत्कार किया करें। १६। ३७॥

कुत्सः। **रुद्राः**=मनुष्याः। भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

मनुष्य जल से कैसे उपकार लेवें, यह उपदेश किया है॥

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च॥ ३८॥

पदार्थः—(नमः) अन्नादिकम् (**कूप्याय**) कूपे भवाय (**च**) **अवट्याय**) अवटेषु=गर्त्तेषु=भवाय (**च**) जङ्गलेषु भवाय (**नमः**) सस्यादिकम् (**वीध्र्याय**) विविधेषु ईधेषु=दीपनेषु भवाय। **अत्र विपूर्वकादिन्धिधातोरौणादिको रक् प्रत्ययः** (**च**) (**आतप्याय**) आतपेषु भवाय (**च**) कृष्यादेः प्रबन्धकर्त्रे (**नमः**) अन्नादिकम् (**मेघ्याय**) मेघेषु भवाय (**च**) (**विद्युत्याय**) विद्युति भवाय (**च**) अग्निविद्याविदे (**नमः**) सत्कारक्रियाम् (**वर्ष्याय**) वर्षासु भवाय (**च**) (**अवर्ष्याय**) अविद्यमानासु वर्षासु भवाय (**च**)॥ ३८॥

प्रमाणार्थ—(**वीध्र्याय**) यहाँ 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'इन्ध' धातु से औणादिक 'रक्' प्रत्यय है॥

अन्वयः—मनुष्याः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च नमो दत्वा कृत्वा चानन्दन्तु॥ ३८॥

सपदार्थान्वयः—मनुष्याः कूप्याय कूपे भवाय **चावट्याय** अवटेषु=गर्त्तेषु भवाय **च** जङ्गलेषु भवाय **नमः** अन्नादिकं, **वीध्र्याय** विविधेषु ईधेषु=दीपनेषु, भवाय **चातप्याय** आतपेषु भवाय **च** कृष्यादेः प्रबन्धकर्त्रे **नमः** सस्यादिकं, **मेघ्याय** मेघेषु भवाय **च विद्युत्याय** विद्युति भवाय **च** अग्नि-विद्याविदे **नमः** अन्नादिकं, **वर्ष्याय** वर्षासु भवाय **चावर्ष्याय** अविद्यमानासु वर्षासु भवाय **च नमः** सत्कारक्रियां **दत्वा कृत्वा चानन्दन्तु**॥ १६। ३८॥

भाषार्थ—मनुष्य—(कूप्याय) कूए पर रहने वाले (च) और (अवट्याय) गर्त्त=गड्ढों में रहने वाले (च) और जंगलों में रहने वाले पुरुष को (नमः) अन्न आदि देकर, (च) और (वीध्र्याय) विविध प्रकाशों में रहने वाले (च) और (आतप्याय) धूप में रहने वाले (च) और कृषि आदि के प्रबन्ध-कर्त्ता को (नमः) खेती आदि देकर, (च) और (मेघ्याय) मेघों में रहने वाले (च) और (विद्युत्याय) विद्युत् में रहने वाले (च) और अग्नि-विद्या के वेत्ता को (नमः) अन्न आदि देकर, (च) और (वर्ष्याय) वर्षा में रहने वाले (च) और (अवर्ष्याय) अनावृष्टि में रहने वाले पुरुष का (नमः) सत्कार करके आनन्दित रहें॥ १६। ३८॥

[मनुष्याः कूप्याय……च नमः……दत्वा कृत्वा चानन्दन्तु]

भावार्थः—यदि मनुष्याः कूपादिभ्यः कार्य-सिद्धये भृत्यान् सत्कुर्युस्तर्ह्यनेकान्युत्तमानि कार्याणि कर्त्तुं शक्नुयुः॥ १६। ३८॥

भावार्थ—यदि मनुष्य कूए आदि से कार्य-सिद्धि के लिए भृत्यों का सत्कार करें तो अनेक उत्तम कार्य कर सकते हैं॥ १६। ३८॥

भाष्यसार—मनुष्यों का कर्त्तव्य—ऐश्वर्य के इच्छुक मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे कृषि कार्य में तत्पर, कुए आदि से खेतों के सींचने वाले कृषकों का, अग्नि विद्या को जानकर यज्ञादि से वृष्टि कराने वाले विद्वान् पुरुषों का, और धूपादि में जंगलों में रहकर कठोर परिश्रम करने वाले भृत्यों का यथायोग्य सत्कार किया करें ॥ १६ । ३८ ॥

कुत्सः । **रुद्राः**=मनुष्याः । स्वराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथ मनुष्यैरन्येभ्यो जगत्स्थपदार्थेभ्यः कथमुपकारो ग्राह्य इत्युपदिश्यते ॥

अब मनुष्य जगत् के अन्य पदार्थों से कैसे उपकार लेवें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिकम् (**वात्याय**) वायुविद्यायां भवाय (**च**) (**रेष्म्याय**) रेष्मेषु=हिंसकेषु भवाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**वास्तव्याय**) वास्तुनि=निवासस्थाने भवाय (**च**) (**वास्तुपाय**) वास्तूनि=निवासस्थानानि पाति तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**सोमाय**) ऐश्वर्योपपन्नाय (**च**) (**रुद्राय**) दुष्टानां रोदकाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**ताम्राय**) यस्ताम्यति=ग्लायति तस्मै (**च**) (**अरुणाय**) प्रापकाय (**च**) ॥ ३९ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमो विदध्युस्ते श्रिया सम्पन्नाः स्युः ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मनुष्या वात्याय** वायुविद्यायां भवाय **च रेष्म्याय** रेष्मेषु=हिंसकेषु भवाय **च नमः** अन्नादिकं, **वास्तव्याय** वास्तुनि=निवासस्थाने भवाय **च वास्तुपाय** वास्तूनि=निवासस्थानानि पाति तस्मै **च नमः** सत्करणं, **सोमाय** ऐश्वर्योपपन्नाय **च रुद्राय** दुष्टानां रोदकाय **च नमः** अन्नादिकं, **ताम्राय** यस्ताम्यति=ग्लायति तस्मै **चारुणाय** प्रापकाय **च नमः** सत्करणं, **विदध्युस्ते श्रिया सम्पन्नाः स्युः** ॥ १६ । ३९ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(वात्याय) वायु-विद्या में रहने वाले (च) और (रेष्म्याय) हिंसक जनों में रहने वाले को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (वास्तव्याय) अपने निवास स्थान पर रहने वाले (च) और (वास्तुपाय) निवास-स्थानों के रक्षक का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (सोमाय) ऐश्वर्य-सम्पन्न (च) और (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (ताम्राय) अधर्म से ग्लानि करने वाले और (अरुणाय) धर्म को प्राप्त कराने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं वे लक्ष्मी से सम्पन्न होते हैं ॥३९ ॥

[ये मनुष्या वात्याय च......नमः......विदध्युस्ते श्रिया सम्पन्नाः स्युः]

भावार्थः—यदा मनुष्या वाय्वादिगुणान् विदित्वा व्यवहारेषु संप्रयुञ्जीरंस्तदाऽनेकानि सुखानि लभेरन् ॥ १६ । ३९ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य वायु आदि के गुणों को जानकर व्यवहारों में सम्प्रयोग करते हैं तब अनेक सुखों को प्राप्त होते हैं ॥ १६ । ३९ ॥

भाष्यसार—मनुष्यों का कर्त्तव्य—सुखों को चाहने वाले मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे वायु विद्या के विद्वानों, हिंसक जनों को रुलाने वालों, अधर्म से ग्लानि करने वाले धार्मिकों और निवास-स्थानों के रक्षकों का सदा सत्कार किया करें ॥ १६ । ३९ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**मनुष्याः** । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

मनुष्यैः कथं सन्तोष्टव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को कैसे संतोषी होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम ऽ उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नादिकम् (**शङ्गवे**) शं=सुखं गच्छति=प्राप्नोति तस्मै (**च**) (**पशुपतये**) गवादिपशूनां पालकाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**उग्राय**) तेजस्विने (**च**) (**भीमाय**) बिभेति यस्मात् तस्मै भयङ्कराय (**च**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**अग्रेवधाय**) योऽग्रे=पुरः शत्रून्बध्नाति हन्ति वा तस्मै (**च**) (**दूरेवधाय**)योऽरीन्दूरे बध्नाति तस्मै (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**हन्त्रे**) यो दुष्टान् हन्ति तस्मै (**च**) (**हनीयसे**) दुष्टानामतिशयेन हन्त्रे=विनाशकाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**वृक्षेभ्यः**) ये शत्रून् वृश्चन्ति=छिन्दन्ति तेभ्यः पादपेभ्यो वा (**हरिकेशेभ्यः**) हरयो=हरिताः केशा येषां तेभ्यो युवभ्यो वा (**नमः**) अन्नादिकम् (**ताराय**) दुःखात्सन्तारकाय ॥ ४० ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय नमोऽग्रे वधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय नमो दद्युः कुर्युस्ते सुखिनः स्युः ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मनुष्याः शङ्गवे** शं=सुखं गच्छति=प्राप्नोति तस्मै **च पशुपतये** गवादिपशूनां पालकाय **च नमः** अन्नादिकम्, **उग्राय** तेजस्विने **च भीमाय** बिभेति यस्मात् तस्मै भयङ्कराय **च नमः** सत्करणं, **अग्रेवधाय** योऽग्रे=पुरः शत्रून्बध्नाति हन्ति वा तस्मै **च दूरेवधाय** योऽरीन् दूरे बध्नाति तस्मै **च नमः** अन्नादिकं, **हन्त्रे** यो दुष्टान् हन्ति तस्मै **च हनीयसे** दुष्टानामतिशयेन हन्त्रे=विनाशकाय **च नमः** अन्नादिदानं, **वृक्षेभ्यः** ये शत्रून् वृश्चन्ति=छिन्दन्ति तेभ्यः पादपेभ्यो वा **हरिकेशेभ्यः** हरयो=हरिताः केशा येषां तेभ्यो युवभ्यो वा **नमः** सत्करणं, **ताराय** दुःखात्सन्तारकाय **नमः** अन्नादिकं **दद्युः कुर्युस्ते सुखिनः स्युः** ॥ १६ । ४० ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(शङ्गवे) सुख को प्राप्त करने वाले (च) और (पशुपतये) गौ आदि पशुओं के पालक को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (उग्राय) तेजस्वी (च) और (भीमाय) भयङ्कर पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (अग्रेवधाय) शत्रुओं का प्रथम बन्धन वा वध करने वाले (च) और (दूरेवधाय) शत्रुओं को दूर बाँधने वाले को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (हन्त्रे) दुष्टों के घातक (च) और (हनीयसे) दुष्टों के अत्यन्त विनाशक को (नमः) अन्न आदि देते हैं; तथा—(वृक्षेभ्यः) शत्रुओं के छेदक वा वृक्षों का (हरिकेशेभ्यः) हरित=काले बालों वाले वा युवकों का (नमः) सत्कार करते हैं; और (ताराय) दुःखों से तारने वाले को (नमः) अन्न आदि देते हैं वे सुखी रहते हैं ॥

[ये मनुष्याः शङ्गवे च पशुपतये च नमः······दद्युः कुर्युस्ते सुखिनः स्युः]

भावार्थः—मनुष्यैर्गवादिपशुपालनेन भयङ्करादिशान्तिकरणेन च सन्तोष्टव्यम् ॥

भावार्थ—मनुष्य—गौ आदि पशुओं के पालन और भयङ्कर आदि पुरुषों को शान्त करके सन्तुष्ट रहें ॥ १६ । ४० ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों का कर्त्तव्य**—सुखों के इच्छुक मनुष्य गायादि पशुओं के पालकों तेजस्वी और दुष्टों के लिए भयङ्कर पुरुषों शत्रुओं का हनन, बन्धनादि से विनाश करके दुःखों से रक्षा करने वाले बलवान् पुरुषों का सदा सत्कार किया करें ॥ १६ । ४० ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**मनुष्याः** । स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

जनैः कथं स्वाभीष्टं साध्यमित्याह ॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणम् (**शम्भवाय**) यः शं=सुखं भावयति तस्मै परमेश्वराय सेनाधीशाय वा । अत्रान्तर्भावितो ण्यर्थः (**च**) (**मयोभवाय**) मयः=सुखं भवति यस्मात्तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**शङ्कराय**) यः सर्वेषां सुखं करोति तस्मै (**च**) (**मयस्कराय**) यः सर्वेषां प्राणिनां मयः=सुखं करोति तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**शिवाय**) मङ्गलकारिणे (**च**) (**शिवतराय**) अतिशयेन मङ्गलस्वरूपाय (**च**) ॥ ४१ ॥

प्रमाणार्थ—(**शम्भवाय**) यः शं=सुखं भावयति ··· । यहाँ 'णिच्' प्रत्यय का अर्थ अन्तर्भावित है ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च नमः कुर्वन्ति ते कल्याणमाप्नुवन्ति ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मनुष्याः शम्भवाय** यः शं=सुखं भावयति तस्मै परमेश्वराय सेनाधीशाय वा **च मयोभवाय** मयः=सुखं भवति यस्मात्तस्मै **च नमः** सत्करणं, **शङ्कराय** यः सर्वेषां सुखं करोति तस्मै **च मयस्कराय** यः सर्वेषां प्राणिनां मयः=सुखं करोति तस्मै **च नमः** सत्करणं, **शिवाय** मङ्गलकारिणे **च शिवतराय** अतिशयेन मङ्गलस्वरूपाय **च नमः** सत्करणं **कुर्वन्ति ते कल्याणमाप्नुवन्ति** ॥१६।४१॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(शम्भवाय) शान्ति को उत्पन्न करने वाले परमेश्वर वा सेनापति का (च) और (मयोभवाय) सुख के हेतु पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (शङ्कराय) सबको शान्ति देने वाले (च) और (मयस्कराय) सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (शिवाय) मङ्गलकारी (च) और (शिवतराय) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप का (नमः) सत्कार करते हैं वे कल्याण को प्राप्त करते हैं ॥ १६ । ४१ ॥

[ये मनुष्याः ··· शिवाय च शिवतराय च नमः, मयस्कराय च नमः कुर्वन्ति ते कल्याणमाप्नुवन्ति]

भावार्थः—मनुष्यैः प्रेमभक्त्या सर्वमङ्गल-प्रदः परमेश्वर एवोपास्यो बलाध्यक्षश्च सत्कर्त्तव्यो, यतः स्वाभीष्टानि सिध्येयुः ॥ १६ । ४१ ॥

भावार्थ--मनुष्य-प्रेम-भक्ति से सर्वमङ्गल प्रदान करने वाले परमेश्वर की ही उपासना करें और सेनाध्यक्ष का सत्कार करें जिससे अपने अभीष्टों को सिद्ध करें ॥ १६ । ४१ ॥

भा० पदार्थः--शिवतराय=सर्वमङ्गलप्रदाय परमेश्वराय । नमः=उपासनम् । मयस्कराय=बलाध्यक्षाय ।

अन्यत्र व्याख्यात--(क) हे कल्याणस्वरूप कल्याणकर ! आप 'शंभव' हो, (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्ष सुख के करने वाले हो) आपको नमस्कार है । आप मयोभव' हो, सांसारिक सुख के करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप 'शंकर' हो, आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं । तथा 'मयस्कर' अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करने वाले आप ही हो । आप 'शिव' (**संगलमय**) हो । तथा आप 'शिवतर' (**अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक**) हो, इससे आपको हम लोग वारम्बार नमस्कार करते हैं (**नमोनम इति यज्ञः शतपथे**) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है, सो मंगलमय ही होता है (**आर्याभिविनय २ । २६**) ॥

(ख) 'नमः शम्भवाय च०' इससे परमात्मा को नमस्कार करे (**संस्कारविधि गृहाश्रम०**) ॥

(ग) (**नमः शम्भवाय च**) जो सुखस्वरूप (**मयोभवाय च**) संसार के उत्तम सुखों का देने वाला (**नमः शंकराय च**) कल्याण का कर्त्ता, मोक्षस्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला (**मयस्कराय च**) अपने भक्तों को सुख का देने वाला और धर्म-कामों में युक्त करने वाला (**नमः शिवाय च शिवतराय च**) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देनेहारा है उसको हमारा बारम्बार नमस्कार है ॥ (**पञ्चमहायज्ञविधि सन्ध्योपासन**) ॥

भाष्यसार--**अभीष्ट सिद्धि का उपाय**--सभी मनुष्य अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए शान्ति कारक, सुखों के दाता, अत्यन्त मङ्गलकारी परमेश्वर की उपासना और सब प्राणियों को सुख पहुँचाने वाले शान्ति कारक सेनापति का सत्कार किया करें ॥ १६ । ४१ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=मनुष्याः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को कैसे अपना अभीष्ट सिद्ध करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

पदार्थः--(**नमः**) सत्करणम् (**पार्याय**) दुःखेभ्यः पारे वर्त्तमानाय (**च**) (**अवार्याय**) अवारे=अर्वाचीने भागे भवाय (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**प्रतरणाय**) नौकादिना परतटादर्वाचीने तटे प्राप्ताय प्रापयित्रे वा (**च**) (**उत्तरणाय**) अर्वाचीनतटात्परतटं प्राप्नुवते प्रापयते वा (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**तीर्थ्याय**) तीर्थेषु=वेदविद्याध्यापकेषु सत्यभाषणादिषु च साधवे (**च**) (**कूल्याय**) कूलेषु=समुद्रनद्यादितटेषु साधवे (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**शष्प्याय**) शष्पेषु=तृणादिषु साधवे (**च**) (**फेन्याय**) फेनेषु=बुद्बुदाकारेषु साधवे (**च**) ॥ ४२ ॥

प्रमाणार्थ--(**क**) 'नमस्तीर्थ्याय च......' जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्मलक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना ॥ **सत्यार्थ० समु० ११** ॥

(ख)--(**नमस्तीर्थ्याय**) उक्त तीर्थों से प्राप्त होने वाला परमेश्वर भी तीर्थ है उसको हमारा नमस्कार है ॥ **ऋग्वेदादि० ग्रन्थप्रामाण्या०** ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः पार्य्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः कुर्वन्तु प्रदद्युश्च ते सुखं प्राप्नुयुः ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये मनुष्याः पार्य्याय** दुःखेभ्यः पारे वर्त्तमानाय **चाऽवार्याय** अवारे=अर्वाचीने भागे भवाय **च नमः** सत्करणं, **प्रतरणाय** नौकादिना परतटादर्वाचीने तटे प्राप्ताय प्रापयित्रे वा **चोत्तरणाय** अर्वाचीनतटात्परतटं प्राप्नुवते प्रापयते वा **च नमः** सत्करणं, **तीर्थ्याय** तीर्थेषु=वेदविद्याध्यापकेषु सत्यभाषणादिषु च साधवे **च कूल्याय** कूलेषु=समुद्रनद्यादितटेषु साधवे **च नमः** अन्नं, **शष्प्याय** शष्पेषु=तृणादिषु साधवे **च फेन्याय** फेनेषु=बुदबुदाकारेषु साधवे **च नमः** अन्नादिदानं **कुर्वन्तु प्रदद्युश्च ते सुखं प्राप्नुयुः** ॥ १६ । ४२ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(पार्य्याय) दुःखों से परे रहने वाले (च) और (अवार्याय) दुःखों से अवर-भाग में रहने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं, (च) और (प्रतरणाय) नौका आदि के द्वारा पर-तट से अवर-तट पर प्राप्त करने वा कराने वाले (च) और (उत्तरणाय) अवर-तट से पर-तट को प्राप्त करने वा कराने वाले का (नमः) सत्कार करते हैं; (च) और (तीर्थ्याय) तीर्थ=वेद-विद्या के अध्यापकों वा सत्यभाषण आदि व्रतों में श्रेष्ठ (च) और (कूल्याय) समुद्र और नदी आदि के तट पर विद्यमान पुरुष को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (शष्प्याय) तृण आदि के कार्यों में (च) और (फेन्याय) फेन=बुल-बुले आदि के व्यवहारों में प्रवीण पुरुष को (नमः) अन्न आदि देते हैं वे सुख को प्राप्त करते हैं ॥ १६ । ४२ ॥

[ये मनुष्याः पार्याय, अवार्याय, प्रतरणाय, उत्तरणाय, कूल्याय च……नमः कुर्वन्तु……ते सुखं प्राप्नुयुः]

भावार्थः—मनुष्यैर्यानेषु नौकादिषु सुशिक्षितान् कैवर्त्तकादीन् संस्थाप्य समुद्रादिपारावारौ गत्वाऽऽगत्य देशदेशान्तरद्वीपद्वीपान्तरव्यवहारेण धनं निष्पाद्याभीष्टं साधनीयम् ॥ १६ । ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्य नौका आदि यानों में सुशिक्षित मल्लाह आदि को रखकर, समुद्र आदि के अवार-पार जा-आकर, देशदेशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर के व्यवहार से धन को निष्पन्न करके अपने अभीष्ट को सिद्ध करें ॥ १६ । ४२ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य अभीष्ट-सिद्ध कैसे करें**—सुखों को चाहने वाले मनुष्य नदी समुद्रादि में नौकादि से पार करने वाले प्रशिक्षित नौचालकों का और वेद-विद्या के द्वारा अविद्या का विनाश करने वाले आचार्यादि का सदा सत्कार किया करें ॥ १६ । ४२ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=मनुष्याः** । जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**सिकत्याय**) सिकतासु साधवे (**च**) (**प्रवाह्याय**) ये प्रवोढुं

योग्यास्तेषु साधवे (च) (नमः) (किंशिलाय) किं=कुत्सितः शिलो=वृत्तिर्यस्य तस्मै (च) (क्षयणाय) निवासे वर्त्तमानाय (च) (नमः) अन्नम् (कपर्दिने) जटायुक्ताय जनाय (च) (पुलस्तये) महाकायक्षेप्त्रे। अत्र पुल महत्त्वे धातोर्बाहुलकादौणादिकः कस्तिः प्रत्ययः (च) (नमः) सत्करणम् (इरिण्याय) इरिण=ऊषरभूमौ साधवे (च) (प्रपथ्याय) प्रकृष्टेषु धर्मपथिषु साधवे (च) ॥ ४३ ॥

प्रमाणार्थ—(पुलस्तये) यहां 'पुल महत्त्वे' इस धातु से बहुल करके औणादिक 'कस्ति' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च नमो दद्युः कुर्युस्ते सर्वप्रिया जायेरन् ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—ये मनुष्याः **सिकत्याय** सिकतासु साधवे **च प्रवाह्याय** ये प्रवोढुं योग्यास्तेषु साधवे **च नमः** अन्नं, **किंशिलाय** किं=कुत्सितः शिलो=वृत्तिर्यस्य तस्मै **च क्षयणाय** निवासे वर्त्तमानाय **च नमः, कपर्दिने** जटायुक्ताय जनाय **च पुलस्तये** महाकायक्षेप्त्रे **च नमः** अन्नम्, **इरिण्याय** इरिण=ऊषरभूमौ साधवे **च प्रपथ्याय** प्रकृष्टेषु धर्मपथिषु साधवे **च नमः** सत्करणं **दद्युः कुर्युस्ते सर्वप्रिया जायेरन्** ॥ १६ । ४३ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(सिकत्याय) सिकता=बालू से सुवर्ण आदि निकालने में चतुर (च) और (प्रवाह्याय) भार ढोने वाले बैल आदि के चलाने में प्रवीण पुरुष को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (किंशिलाय) कुत्सित=निन्दित वृत्ति वाले अनाथ (च) और (क्षयणाय) निवास-स्थान में रहने वाले को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (कपर्दिने) जटाधारी (च) और (पुलस्तये) महा-काय प्राणियों को फैंकने वाले को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (इरिण्याय) ऊषर भूमि से उपयोग लेने में चतुर (च) और (प्रपथ्याय) उत्तम धर्म-मार्गों में प्रवीण पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं वे सबके प्रिय होते हैं ॥ १६ । ४३ ॥

[ये मनुष्याः सिकत्याय···किंशिलाय···च नमः दद्युः कुर्युस्ते सर्वप्रिया जायेरन्]

भावार्थः—मनुष्यैर्भूगर्भविद्यया सिकतादिषु भवान् सुवर्णादीन् धातून् निःसार्य महदैश्वर्य-मुन्नीयानाथाः पालनीयाः ॥ १६ । ४३ ॥

भावार्थ—मनुष्य—भूगर्भ विद्या से सिकता=बालू आदि में विद्यमान सुवर्ण आदि धातुओं को निकाल कर महान् ऐश्वर्य को उन्नत करके अनाथों का पालन करें ॥ १६ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—सिकत्याय=सिकतादिषु भवाय सुवर्णाय। किंशिलाय=अनाथाय।

भाष्यसार—**मनुष्यों के कर्त्तव्य**—ऐश्वर्य के अभिलाषी मनुष्य भूगर्भविद्या को जानकर बालू से सुवर्ण निकालने वालों का, बैलादि को प्रशिक्षित करके यानादि में चलाने वालों का, अनाथों का, जटाधारी ब्रह्मचारी अथवा संन्यासियों का और धर्म-मार्ग में चलने वालों का अन्नादि से सत्कार किया करें ॥ १६ । ४३ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः। **रुद्राः**=**मनुष्याः**। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

नमो॒ व्रज्या॑य च॒ गोष्ठ्या॑य च॒ नम॒स्तल्प्या॑य च॒ गेह्या॑य च॒ नमो॑ हृद॒य्या॒य च निवे॒ष्या॒य च॒ नमः॑ काट्या॑य च गह्वरे॒ष्ठाय॑ च ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(नमः) अन्नादिदानम् (**व्रज्याय**) व्रजिषु=क्रियासु भवाय (**च**) (**गोष्ठ्याय**) गोष्ठेषु=गवां स्थानेषु साधवे (**च**) (**नमः**) अन्नम् (**तल्प्याय**) तल्पे=शयने साधवे (**च**) (**गेह्याय**) गेहे नितरां भवाय (**च**) (**नमः**) सत्कृतिम् (**हृदय्याय**) हृदये साधवे (**च**) (**निवेष्याय**) नितरां व्याप्तौ साधवे (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**काट्याय**) कटेष्वावरणेषु भवाय (**च**) (**गह्वरेष्ठाय**) गह्वरेषु=गहनेषु तिष्ठति तत्र सुसाधवे (च) ॥ ४४ ॥

अन्वयः—ये मनुष्या व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमो दद्युस्ते सुखं भजेरन् ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—ये मनुष्या **व्रज्याय** व्रजिषु=क्रियासु भवाय **च गोष्ठ्याय** गोष्ठेषु=गवां स्थानेषु साधवे **च नमः** अन्नादिदानं **तल्प्याय** तल्पे=शयने साधवे **च गेह्याय** गेहे नितरां भवाय **च नमः** अन्नं **हृदय्याय** हृदये साधवे **च निवेष्याय** नितरां व्याप्तौ साधवे **च नमः** सत्कृतिं **काट्याय** कटेष्वावरेणषु भवाय **च गह्वरेष्ठाय** गह्वरेषु=गहनेषु तिष्ठति तत्र सुसाधवे **च नमः** अन्नादिदानं **दद्युस्ते सुखं भजेरन्** ॥ १६ । ४४ ।

भाषार्थ—जो मनुष्य—(व्रज्याय) क्रियाओं में वर्तमान (च) (गोष्ठ्याय) गोष्ठ=गोशालाओं के कार्यों में प्रवीण पुरुष को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (तल्प्याय) तल्प=शय्या आदि श्रेष्ठ भोगों वाले (च) और (गेह्याय) घर में निरन्तर रहने वाले को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (हृदय्याय) श्रेष्ठ हृदय वाले (च) और (निवेष्याय) सर्वथा धर्म-व्याप्ति में श्रेष्ठ पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं, (च) और (काट्याय) आवरणों में रहने वाले (च) और (गह्वरेष्ठाय) गहन कन्दराओं में रहने वाले में अतिश्रेष्ठ पुरुष को (नमः) अन्न आदि देते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १६ । ४४ ॥

[हे मनुष्या······गोष्ठचाय च नम······दद्युस्ते सुखं भजेरन्]

भावार्थः—ये मनुष्या मेघवृष्टिजन्यतृणादि-रक्षणेन गवादीन् वर्द्धयेयुस्ते पुष्कलं भोगं लभेरन् ॥ १६ । ४४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—मेघों के बरसने से उत्पन्न तृण आदि की रक्षा से गौ आदि पशुओं को बढ़ाते हैं वे पुष्कल भोग प्राप्त करते हैं ॥१६ । ४४॥

भा० पदार्थः—गोष्ठचाय=गवादिवर्द्धनाय । नमः=मेघवृष्टिजन्यतृणादिरक्षणम् ॥

भाष्यसार—**सुखों के अभिलाषी मनुष्यों के कर्त्तव्य**—जो मनुष्य अपने कर्त्तव्य में तत्पर गोपालनादि कार्यों में प्रवीण भृत्यवर्ग का, निष्कपट हृदय वाले धर्म कार्यों में संलग्न धार्मिक पुरुषों का, और कन्दराओं में रहकर योगाभ्यासादि में तत्पर योगियों का अन्नादि से सत्कार करते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं ॥ १६ । ४४ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=मनुष्याः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर उन मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऽ ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**नमः**) जलादिकम् (**शुष्क्याय**) शुष्केषु=नीरसेषु भवाय (**च**) (**हरित्याय**) हरितेषु=सरसेषु आर्द्रेषु भवाय (**च**) (**नमः**) मान्यम् (**पांसव्याय**) पांसुषु=धूलिषु भवाय (**च**) (**रजस्याय**) रजःसु=लोकेषु परमाणुषु वा भवाय (**च**) (**नमः**) मानम् (**लोप्याय**) लोपेषु=छेदनेषु साधवे (**च**) (**उलप्याय**) उलपे=उत्क्षेपणे साधवे । **अत्रोलश्चौरादिकाद्धातोरौणादिको डपन् प्रत्ययः** (**च**) (**नमः**) सत्क्रियाम् (**ऊर्व्याय**) ऊर्वौ=हिंसायां साधवे (**च**) (**सूर्व्याय**) सुष्ठु ऊर्वौ भवाय (**च**) ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**उलप्याय**) यहां चौरादिक 'उल्' धातु से औणादिक 'डपन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—ये मनुष्याः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च नमो दद्युः कुर्युस्तेषां कार्याणि सिध्येयुः ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—ये मनुष्याः **शुष्क्याय** शुष्केषु=नीरसेषु भवाय [**च**] **हरित्याय** हरितेषु=सरसेषु आर्द्रेषु भवाय **च नमः** जलादिकं, **पांसव्याय** पांसुषु=धूलिषु भवाय **च रजस्याय** रजःसु=लोकेषु परमाणुषु वा भवाय **च नमः** मान्यं, **लोप्याय** लोपेषु=छेदेनेषु साधवे **चोलप्याय** उलपे=उत्क्षेपणे साधवे **च नमः** मानम् **ऊर्व्याय** ऊर्वौ=हिंसायां साधवे **च सूर्व्याय** सुष्ठु ऊर्वौ भवाय **च नमः** सत्क्रियां **दद्युः कुर्युस्तेषां कार्याणि सिध्येयुः** ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य— (शुष्क्याय) शुष्क=नीरस पदार्थों में रहने वाले [च] और (हरित्याय) हरित=सरस पदार्थों में विद्यमान पुरुष को (नमः) जल आदि देते हैं; (च) और (पांसव्याय) पांसु=धूलि में रहने वाले (च) और (रजस्याय) रजः=लोक वा परमाणुओं में विद्यमान पुरुष का (नमः) मान करते हैं, (लोप्याय) छेदन करने में प्रवीण (च) और (उलप्याय) ऊपर फेंकने में कुशल पुरुष का (नमः) मान करते हैं; (च) और (ऊर्व्याय) दुष्टों की हिंसा में कुशल (च) और (सूर्व्याय) दुष्टों की उत्तम हिंसा में विद्यमान पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं उनके कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १६ । ४५ ॥

[ये मनुष्याः ! शुष्क्याय, हरित्याय च नमः···दद्युः कुर्युस्तेषां कार्याणि सिध्येयुः]

भावार्थः—मनुष्याः शोषणहरितत्वादिकारकान् वायून् विज्ञाय कार्यसिद्धिं कुर्युः ॥

भावार्थ—मनुष्य—शोषण और हरित=हरे बनाने वाले वायुओं को जानकर कार्य की सिद्धि करें ॥ १६ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—शुष्क्याय=शोषणकारकाय वायवे । हरित्याय=हरितत्वकारकाय वायवे ।

भाष्यसार—**मनुष्यों का कर्त्तव्य**—कार्य सिद्धि के लिए प्रयत्नशील मनुष्य ऐसे मनुष्यों का सदा आदर करें, जो वायुओं की शोषक अथवा सरस करने वाली गतियों के विशेषज्ञ हों, जो परमाणु आदि की पदार्थ विद्या को जानते हों, और जो दुष्टों को दण्ड देने के लिए सब प्रकार से समर्थ हों। तब सुखों की वृद्धि होती है ॥ १६ । ४५ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः। **रुद्राः**=मनुष्याः। स्वराट् प्रकृतिः। धैवतः॥

पुनस्तदेवाह॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

नमः पर्णायं च पर्णशुदायं च नमं उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नमं आखिदते चं प्रखिदते च नमं इषुकृद्भ्यों धनुष्कृद्भ्यंश्च वो नमो नमों वः किरिकेभ्यों देवानाछं हृदयेभ्यो नमों विचिन्वत्केभ्यो नमों विक्षिणत्केभ्यो नमं आनिर्हतेभ्यः॥ ४६॥

पदार्थः—(**नमः**) अन्नम् (**पर्णाय**) यः प्रतिपालयति तस्मै (**च**) (**पर्णशदाय**) यः पर्णानि शीयते=छिनत्ति तस्मै (**च**) (**नमः**) (**उद्गुरमाणाय**) य उत्कृष्टतया 'गुरत=उद्यच्छत्युद्यमं करोति तस्मै (**च**) (**अभिघ्नते**) य आभिमुख्येन हन्ति तस्मै (**च**) (**नमः**) सत्करणम् (**आखिदते**) आसमन्ताद्दीनायैश्वर्योपक्षीणाय (**च**) (**प्रखिदते**) प्रकृष्टतया क्षीणाय (**च**) (**नमः**) अन्नादिदानम् (**इषुकृद्भ्यः**) बाणनिर्मापकेभ्यः (**धनुष्कृद्भ्यः**) धनुषां निर्मातृभ्यः (**च**) (**वः**) युष्मभ्यम् (**नमः**) मान्यम् (**नमः**) अन्नादिदानम् (**वः**) युष्मभ्यम् (**किरिकेभ्यः**) विक्षेपकेभ्यः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**हृदयेभ्यः**) हृद्यवद्वर्त्तमानेभ्यः (**नमः**) सत्करणम् (**विचिन्वत्केभ्यः**) ये विचिन्वन्ति तेभ्यः (**नमः**) सत्कारम् (**विक्षिणत्केभ्यः**) ये शत्रून् विक्षयन्ति तेभ्यः (**नमः**) सत्कारम् (**आनिर्हतेभ्यः**) ये समन्तान्निर्हतास्तेभ्यः॥ ४६॥

अन्वयः—ये मनुष्याः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो नमो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो देवानां हृदयेभ्यः किरिकेभ्यो वो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यो नमो दद्युः कुर्युश्च ते सर्वत आढ्या जायन्ते॥

सपदार्थान्वयः—ये मनुष्याः **पर्णाय** यः प्रतिपालयति तस्मै **च पर्णशदाय** यः पर्णानि शीयते=छिनत्ति तस्मै **च नमः** अन्नम्, **उद्गुरमाणाय** य उत्कृष्टतया गुरत=उद्यच्छत्युद्यमं करोति तस्मै **चाभिघ्नते** य आभिमुख्येन हन्ति तस्मै **च नमः** [अन्नम्], **आखिदते** आसमन्ताद् दीनायैश्वर्योपक्षीणाय **च प्रखिदते** प्रकृष्टतया क्षीणाय **च नमः** सत्करणम्, **इषुकृद्भ्यः** बाणनिर्मापकेभ्यः **नमः** अन्नादिदानं, **धनुष्कृद्भ्यः** धनुषां निर्मातृभ्यः **च वः** युष्मभ्यं **नमः** मान्यं, **देवानां** विदुषां **हृदयेभ्यः** हृद्यवद्वर्त्तमानेभ्यः **किरिकेभ्यः** विक्षेपकेभ्यः **वः** युष्मभ्यं **नमः** अन्नादिदानं **विचिन्वत्केभ्यः** ये विचिन्वन्ति तेभ्यः **नमः** सत्करणं **विक्षिणत्केभ्यः** ये शत्रून् विक्षयन्ति तेभ्यः **नमः** सत्कारम्, **आनिर्हतेभ्यः** ये समन्तान्निर्हतास्तेभ्यः **नमः** सत्कारं **दद्युः कुर्युश्च ते सर्वत आढ्या जायन्ते**॥ १६। ४६॥

भावार्थ—जो मनुष्य—(पर्णाय) पालन करने वाले (च) और (पर्णशदाय) पत्तों को छेदने वाले पुरुष को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (उद्गुरमाणाय) उत्तम रीति से उद्यम करने वाले (च) और (अभिघ्नते) सम्मुख होकर दुष्टों का हनन करने वाले को (नमः) अन्न देते हैं; (च) और (आखिदते) सब ओर से दीन एवं ऐश्वर्य से हीन (च) और (प्रखिदते) सर्वथा क्षीण पुरुष का (नमः) सत्कार करते हैं; तथा-(इषुकृद्भ्यः) बाण बनाने वालों को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (च) और (वः) तुम (धनुष्कृद्भ्यः) धनुषों के निर्माताओं का (नमः) मान करते हैं; (देवानाम्) विद्वानों के (हृदयेभ्यः) मित्रों के समान वर्ताव करने वाले (वः) तुम (किरिकेभ्यः) दुर्गुणों को दूर फेंकने वालों को (नमः) अन्न आदि देते हैं; (विचिन्वत्केभ्यः) सद्गुणों को चुनने वालों का (नमः) सत्कार करते हैं; (विक्षिणत्केभ्यः) शत्रुओं का क्षय करने वालों

का (नमः) सत्कार करते हैं; (आनिर्हतेभ्यः) सब ओर तिरस्कृत जनों का (नमः) सत्कार करते हैं वे सब ओर से आढय=धनवान् होते हैं ।।

[ये मनुष्याः पर्णाय, पर्णशदाय च नमः, आनिर्हतेभ्यो नमो दद्युः, कुर्युश्च ते सर्वत आढया जायन्ते]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वौषधिभ्योऽन्नादिकं संगृह्यानाथमनुष्यादिप्राणिभ्यो दत्त्वा आनन्दयितव्याः ।। १६ । ४६ ।।

भावार्थ—मनुष्य—सब ओषधियों से अन्न आदि का संग्रह करके और उसे अनाथ मनुष्य आदि प्राणियों को देकर उन्हें आनन्दित करें ।।

भा० पदार्थः—आनिर्हतेभ्यः=अनाथमनुष्यादिप्राणिभ्यः । नमः=अन्नादिकम् ।।

भाष्यसार—**मनुष्यों के कर्त्तव्य**—जो शारीरिक श्रम करके दूसरों का पालन करते हैं, जो दुष्टों का विनाश करते हैं, जो धनादि से हीन दरिद्र हैं, जो बाण और धनुषादि अस्त्रों के निर्माता हैं, जो विद्वानों का हृदय से सत्कार करते हैं, जो गुणों का संग्रह करते रहते हैं और जो शत्रुओं का क्षय करके पतितों को आश्रय देते हैं, ऐसे पुरुषों का सब मनुष्यों को आदर करना चाहिए ।। १६ । ४६ ।। ●

प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=मनुष्याः** । भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

द्रापे ऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मो च नः किं चनाममत् ।। ४७ ।।

पदार्थः—(द्रापे) यो द्रः=कुत्साया गतेः पाति=रक्षति तत्संबुद्धौ (**अन्धसः**) अन्नादेः (**पते**) स्वामिन् (**दरिद्र**) यो दरिद्राति तत्सम्बुद्धौ (नीललोहित) यो नीलान् वर्णान् रोहयति तत्सम्बुद्धौ (**आसाम्**) प्रत्यक्षाणाम् (**प्रजानाम्**) मनुष्यादीनाम् (**एषाम्**) (**पशूनाम्**) गवादीनाम् (**मा**) (**भेः**) मा भयं प्रापयेः (**मा**) (**रोक्**) रोगं कुर्याः (**मो**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**किम्**) (**चन**) (**आममत्**) अम रोगे **अमागमः । लङि रूपम्** ।। ४७ ।।

प्रमाणार्थ—(**आममत्**) यहाँ 'अम रोगे' धातु से अम् का आगम है और लङ् लकार का रूप है ।।

अन्वयः—हे द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित राजप्रजाजन ! त्वमासां प्रजानामेषां पशूनां च सकाशान्मा भेः । मा रोक् नोऽस्मान् किञ्चन मो आममत् ।। ४७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **द्रापे** यो द्रः=कुत्साया गतेः पाति=रक्षति तत्सम्बुद्धौ **अन्धसः** अन्नादेः **पते** स्वामिन् **दरिद्र** यो दरिद्राति तत्सम्बुद्धौ **नीललोहित** यो नीलान् वर्णान् रोहयति तत्सम्बुद्धौ **राजप्रजाजन** ! **त्वमासां** प्रत्यक्षाणां **प्रजानां** मनुष्यादीनाम् **एषां पशूनां** गवादीनां **च सकाशान्मा**

भाषार्थ—हे (द्रापे) निन्दित गति से रक्षा करने वाले, (अन्धसः) अन्न आदि के (पते) स्वामी, (दरिद्र) दरिद्रता को प्राप्त, (नीललोहित) नील वर्णों को उत्पन्न करने वाले राजपुरुष वा प्रजाजन ! तू—(आसाम्) इन (पशूनाम्) गौ आदि पशुओं से (मा भेः) भय को प्राप्त मत हो; (मा

भेः मा भयं प्रापयेः, **मा रोक्** रोगं कुर्याः, **नः**= **अस्मान् किंचन मो आममन्** ॥ १६ । ४७ ॥

रोक्) रोग को मत प्राप्त कर; (नः) हमें (किञ्चन) कोई भी (मो आममत्) रोग न हो ॥ १६ । ४७ ॥

[हे द्रापे !]

भावार्थः—ये आढचास्ते दरिद्रान् पालयेयुः ।

भावार्थ—जो धनवान् हैं वे दरिद्रों का पालन करें ॥

[हे राजप्रजाजन ! त्वमासां प्रजानामेवां पशूनां सकाशान्मा भेः]

ये राजप्रजाजनास्ते प्रजापशुहिंसनं कदापि मा कुर्युः, यतः सर्वेषां सुखं वर्द्धेत ॥ १६ । ४७ ॥

जो राजपुरुष और प्रजाजन हैं वे प्रजा के पशुओं की हिंसा कभी न करें, जिससे सबका सुख बढ़े ॥ १६ । ४७ ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों के कर्त्तव्य**—राज पुरुष और प्रजा निन्दित मार्ग से हटकर धनधान्य के स्वामी बनें और दरिद्रों का पालन, तथा गायादि पशुओं की रक्षा सदा किया करें। और किसी प्रकार के रोग से पीड़ित न हो सकें, ऐसा सदा प्रयत्न किया करें ॥ १६ । ४७ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=विद्वांसः** । आर्षी जगती । निषादः ॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्युच्यते ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**इमाः**) प्रजाः (**रुद्राय**) शत्रुरोदकाय (**तवसे**) बलिष्ठाय (**कपर्दिने**) कृतब्रह्मचर्याय (**क्षयद्वीराय**) क्षयन्तो=दुष्टनाशका वीरा यस्य तस्मै (**प्र**) (**भरामहे**) धरामहे (**मतीः**) मेधाविनः । **मतय इति मेधाविना० ॥ निघं० ३ । १५ ॥** (**यथा**) (**शम्**) सुखम् (**असत्**) भवेत् (**द्विपदे**) मनुष्याद्याय (**चतुष्पदे**) गवाद्याय (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**पुष्टम्**) रोगरहितत्वेन बलिष्ठम् (**ग्रामे**) ब्रह्माण्डसमूहे (**अस्मिन्**) वर्त्तमाने (**अनातुरम्**) अदुःखितम् ॥ ४८ ॥

प्रमाणार्थ—(**मतीः**) 'मतयः' पद निघं० ३ । १५ में मेधावी-नामों में पठित है ॥

अन्वयः--हे वीर रुद्र ! यथाऽस्मिन् ग्रामेऽनातुरं पुष्टं विश्वं शमसत् तथा वयं द्विपदे चतुष्पदे तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय रुद्राय चेमा मतीः प्रभरामहे तथा त्वमस्मै प्रभर ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे वीर रुद्र ! यथाऽस्मिन्** वर्त्तमाने **ग्रामे** ब्रह्माण्डसमूहे **अनातुरम्** अदुःखितं **पुष्टं** रोगरहितत्वेन बलिष्ठं **विश्वं** सर्वं जगत् **शं** सुखं=**असत्** भवेत्, **तथा वयं द्विपदे** मनुष्याद्याय **चतुष्पदे** गवाद्याय **तवसे** बलिष्ठाय **कपर्दिने** कृतब्रह्मचर्य्याय **क्षयद्वीराय** क्षयन्तो=दुष्टनाशका वीरा यस्य तस्मै **रुद्राय** शत्रुरोदकाय **चेमाः** प्रजाः

भाषार्थ—हे वीर रुद्र ! जैसे—(अस्मिन्) इस (ग्रामे) ब्रह्माण्ड-समूह में (अनातुरम्) दुःख-रहित (पुष्टम्) रोगरहित होने से बलिष्ठ (विश्वम्) सब जगत् (शम्) सुखपूर्वक (असत्) रहे, वैसे हम—(द्विपदे) मनुष्य आदि, (चतुष्पदे) गौ आदि, (तवसे) बलिष्ठ (कपर्दिने) ब्रह्मचारी के लिए तथा (क्षयद्वीराय) दुष्ट-नाशक वीरों वाले (रुद्राय)

मतीः मेधाविनः **प्रभरामहे** धरामहे **तथा त्वमस्मै प्रभर** ॥ १६ । ४८ ॥

शत्रुओं को रुलाने वाले विद्वान् के लिए (इमाः) इस (मतीः) मेधावी प्रजा को (प्रभरामहे) धारण करते हैं वैसे तू इसे धारण कर ॥ १६ । ४८ ॥

[हे वीर रुद्र ! यथा ··· चेमा मतीः प्रभरामहे]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वद्भिर्यथा प्रजासु स्त्री-पुरुषा धीमन्तः स्युस्तथाऽनुष्ठाय—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ॥ विद्वान् लोग–जैसे प्रजा में स्त्री-पुरुष बुद्धिमान् हों, वैसा अनुष्ठान करके—

[द्विपदे चतुष्पदे, अस्मिन् ग्रामेऽनातुरं पुष्टं विश्वं शमसत्]

मनुष्यपश्वादियुक्तं राज्यं रोगरहितं पुष्टिमत् सुखि सततं सम्पादनीयम् ॥ १६ । ४८ ॥

मनुष्य और पशु आदि से युक्त राज्य को रोगरहित, पुष्टिमान् और सुखी सदा रखें ॥ १६ । ४८ ॥

भा० पदार्थः—मतीः=श्रीमन्तः । अनातुरम्=रोगरहितम् । पुष्टम्=पुष्टिमत् । शम्=सुखी ।

भाष्यसार—१. **विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वान् सदा ऐसा प्रयत्न किया करें जिससे सब प्रजा और पशु रोगरहित होकर बलवान् और मेधा सम्पन्न हो सकें । प्रजा में शत्रुओं को रुलाने वाले, ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके पूर्ण युवापुरुष उत्पन्न हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । विद्वानों की तरह सब मनुष्य रोगों से रहित होकर बलवान् बनने का प्रयास करें ॥ १६ । ४८ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=राजवैद्यादिविद्वांसः** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूः शि॒वा वि॒श्वाहा॑ भेष॒जी । शि॒वा रु॒तस्य॑ भेष॒जी तया॑ नो मृड जी॒वसे॑ ॥४९॥

पदार्थः—(**या**) (**ते**) तव (**रुद्र**) राजवैद्य (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**तनूः**) शरीरं विस्तृता नीतिर्वा (**शिवा**) प्रियदर्शना (**विश्वाहा**) सर्वाणि दिनानि (**भेषजी**) औषधानीव रोगनिवारिका (**शिवा**) सुखप्रदा (**रुतस्य**) रुग्णस्य । **अत्र पृषोदरादित्वाज्जलोपः** (**भेषजी**) आधिविनाशिनी (**तया**) (**नः**) अस्मान् (**मृड**) सुखाय (**जीवसे**) जीवितुम् ॥ ४९ ॥

प्रमाणार्थ—(**रुतस्य**) यहाँ पृषोदरादि से 'ज' का लोप है ॥

अन्वयः—हे रुद्र ! त्वं या ते शिवा तनूः शिवा भेषजी रुतस्य शिवा भेषज्यस्ति तया जीवसे विश्वाहा नो मृड ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **रुद्र** ! राजवैद्य ! **त्वं या ते** तव **शिवा** कल्याणकारिणी **तनूः** शरीरं विस्तृता नीतिर्वा, **शिवा** प्रियदर्शना **भेषजी** औषधानीव रोगनिवारिका, **रुतस्य** रुग्णस्य **शिवा** सुखप्रदा **भेषजी** आधिविनाशिनी **अस्ति, तया जीवसे** जीवितुं

भाषार्थः—हे (रुद्र) राजवैद्य ! तू—(या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याणकारी काया वा विशाल नीति है, (शिवा) देखने में प्रिय (भेषजी) औषधों के समान रोग-निवारक नीति है; (रुतस्य) रोग को (शिवा) सुख प्रदान करने वाली (भेषजी)

विश्वाहा सर्वाणि दिनानि नः अस्मान् मृड सुखय ॥ १६ । ४९ ॥

आधि=मानसिक रोगों का विनाश करने वाली है (तया) उससे (जीवसे) जीने के लिए (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमें (मृड) सुखी कर ॥ १६ । ४९ ॥

[हे रुद्र ! त्वं या ते शिवा तनूः······रुतस्य शिवा भेषजी अस्ति, तया······नो मृड]

भावार्थः—राजवैद्यादिविद्वद्भिर्धर्मनीत्यौषधिदानेन, हस्तक्रियाकौशलेन, शस्त्रैश्छित्त्वाभित्त्वा च रोगेभ्यो निवार्य सर्वाः सेनाः प्रजाश्च रञ्जनीयाः ॥ १६ । ४९ ॥

भावार्थ—राजवैद्य आदि विद्वान् धर्म-नीति से ओषधियाँ देकर हस्त-क्रियाकौशल से शस्त्रों के द्वारा छेदन और भेदन करके रोगों से निवृत्त कर सब सेना और प्रजा को रंजित करें ॥ १६ । ४९ ॥

भा० पदार्थः—रुद्र=राजवैद्यादिविद्वन् ! तनूः=धर्मनीतिः, हस्तक्रिया कौशलम्, शस्त्रैश्छेदनं भेदनं च । मृड=रञ्जय ॥

भाष्यसार—**राजवैद्य का कर्तव्य**—राजवैद्य रोगनाशक कल्याण करने वाली ओषधियों को जानकर प्रजा के शारीरिक तथा मानसिक रोगों को दूर करके धर्म पूर्वक व्यवहार से प्रजा को सुखी रखे । वैद्य का व्यवहार सब को प्रिय और कटुतादि से रहित हो ॥ १६ । ४९ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**सभेशादयः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राजपुरुषैः किं कार्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

परि॑ णो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्वृ॑णक्तु॒ परि॑ त्वे॒षस्य॑ दु॒र्म॒तिर॑घा॒योः ।
अव॑ स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृड ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**नः**) अस्मान् (**रुद्रस्य**) सभेशस्य (**हेतिः**) वज्रः (**वृणक्तु**) पृथक् करोतु (**परि**) (**त्वेषस्य**) क्रोधादिना प्रदीप्तस्य (**दुर्मतिः**) दुष्टबुद्धिः (**अघायोः**) आत्मनोऽघमिच्छोर्दुष्टाचारिणः (**अव**) (**स्थिरा**) निश्चला (**मघवद्भ्यः**) पूजितधनेभ्यः (**तनुष्व**) विस्तृणु (**मीढ्वः**) सुखसेचक (**तोकाय**) सद्यो जाताय बालकाय (**तनयाय**) कुमाराय (**मृड**) आनन्दय ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे मीढ्वः ! भवान् यो रुद्रस्य हेतिस्तेन त्वेषस्याघायोः सकाशान्नः परिवृणक्तु या दुर्मतिर्भवेत्तस्याश्चास्मान्परिवृणक्तु या च मघवद्भ्यः प्राप्ता स्थिरा मतिरस्ति तां तोकाय तनयाय परि तनुष्वैतया सर्वान् सततमवमृड ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मीढ्वः !** सुखसेचक ! **भवान् यो रुद्रस्य** सभेशस्य **हेतिः** वज्रः **तेन त्वेषस्य** क्रोधादिना प्रदीप्तस्य **अघायोः** आत्मनोऽघमिच्छोर्दुष्टाचारिणः **सकाशान्नः** अस्मान् **परिवृणक्तु** सर्वतः पृथक् करोतु । **या दुर्मतिः** दुष्टबुद्धिः **भवेत्तस्याश्चास्मान् परिवृणक्तु** सर्वतः पृथक् करोतु । **या च मघवद्भ्यः** पूजितधनेभ्यः **प्राप्ता स्थिरा** निश्चला **मतिरस्ति, तां तोकाय**

भाषार्थ—हे (मीढ्वः) सुख का सेचन करने वाले राजपुरुष ! आप—जो (रुद्रस्य) सभापति का (हेतिः) वज्र है उससे (त्वेषस्य) क्रोध आदि से प्रदीप्त (अघायोः) पाप के इच्छुक दुष्टाचारी से (नः) हमें (परिवृणक्तु) सब ओर से पृथक् कर । जो (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि है उससे हमें (परिवृणक्तु) सब ओर से पृथक् कर ! और जो (मघवद्भ्यः) पूज्य धनवानों से प्राप्त (स्थिरा)

सद्यो जाताय बालकाय **तनयाय** कुमाराय **परि+तनुष्व** सर्वतो विस्तृणु, **एतया सर्वान् सततमव-मृड** आनन्दय ॥ १६ । ५० ॥

निश्चल मति=बुद्धि है, उसे (तोकाय) सद्य उत्पन्न बालक एवं (तनयाय) कुमार के लिए (परि+तनुष्व) सब ओर से विस्तृत कर, इस मति से सबको सदा (अवमृड) आनन्दित कर ॥

[हे मीढ्वः ! भवान्```अघायोः सकाशान्नः परिवृणक्तु]

भावार्थः—राजपुरुषाणां तदेव धर्म्यं सामर्थ्यं येन प्रजारक्षणं, दुष्टानां हिंसनं च स्यात्,

भावार्थ—राजपुरुषों का यही धर्म-युक्त सामर्थ्य है कि जिससे प्रजा की रक्षा और दुष्टों की हिंसा हो,

[या च```स्थिरा मतिरस्ति तां तोकाय तनयाय परितनुष्व]

ततः सद्वैद्याः सर्वेषामारोग्यं स्वातन्त्र्यसुखोन्नतिं च कुर्युः,

और—सद्-वैद्य लोग सब के आरोग्य, स्वतन्त्रता और सुख की वृद्धि करें।

[एतया सर्वान् सततमवमृड]

येन सर्वे सुखिनो भवेयुः ॥ १६ । ५० ॥

जिससे सब सुखी रहें ॥ १६ । ५० ॥

भाष्यसार—**राजपुरुषों का कर्त्तव्य**—प्रजा को सुख से सेचन करने वाले राजपुरुष ऐसा प्रयत्न किया करें कि उनका क्रोधयुक्त वज्र दुष्टों के लिए ही हो, और पापबुद्धियों से प्रजा का त्राण किया करें। जो धनवान् पुरुषों के योग्य उत्तम स्थिर मति हो, उस से सब नवजात कुमारों और कुमारियों को सम्पन्न किया करें ॥ १६ । ५० ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=सभाध्यक्षादयः । निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

सभाध्यक्षादिभिः किं कार्यमित्याह ॥

सभाध्यक्षादिकों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

मीढुष्टम् शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष ऽ आयुधं निधाय कृत्तिं वसान ऽ आ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**मीढुष्टम**) योऽतिशयेन मीढ्वान्=वीर्यवाँस्तत्सम्बुद्धौ (**शिवतम**) अतिशयेन कल्याणकारिन् (**शिवः**) सुखकारी (**नः**) अस्मभ्यम् (**सुमनाः**) शोभनं मनो यस्य सः (**भव**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**वृक्षे**) व्रश्चनीये=छेदनीये शत्रुसैन्ये (**आयुधम्**) असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिकम् (**निधाय**) धृत्वा (**कृत्तिम्**) मृगचर्मादिमयीम् (**वसानः**) शरीरमाच्छादयन् (**आ**) (**चर**) (**पिनाकम्**) पाति=रक्षति **आत्मानं** येन तद्धनुर्वर्मादिकम् । पातेर्नुक् चेति पातेराकः प्रत्ययः ॥ उ० ४ । १५ ॥ (**बिभ्रत्**) धरन् (**आ**) (**गहि**) आगच्छ ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—(पिनाकम्) यहां 'पातेर्नुक् च' (उ० ४ । १५) से 'पा' धातु से 'आक' प्रत्यय और 'नुक्' का आगम है ॥

अन्वयः—हे मीढुष्टम शिवतम सभासेनेश ! त्वं नः सुमनाः शिवो भव । आयुधं निधाय कृत्तिं वसानः पिनाकं बिभ्रत्सन्नस्माकं रक्षणायागहि परमे वृक्ष आचर ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मीढुष्टम** योऽति-

भावार्थ—हे (मीढुष्टम) अत्यन्त वीर्य-

शयेन मीढ्वान्=वीर्य्यवांस्तत्सम्बुद्धौ **शिवतम**=**सभासेनेश** ! अतिशयेन कल्याणकारिन् ! **त्वं नः** अस्मभ्यं **सुमनाः** शोभनं मनो यस्य सः **शिवः** सुखकारी **भव** ।

आयुधम् असिभुशुण्डीशतघ्न्यादिकं **निधाय** धृत्वा, **कृत्तिं** मृगचर्मादिमयीं **वसानः** शरीरमाच्छादयन्, **पिनाकं** पाति=रक्षति आत्मानं येन तद्धनुर्वर्मादिकं **बिभ्रत्** धरन् **सन्नस्माकं रक्षणायागहि** आगच्छ **परमे** प्रकृष्टे **वृक्षे** व्रश्चनीये=छेदनीये शत्रुसैन्ये **आचर** ॥ १६ । ५१ ॥

वान्=बलवान्, (शिवतम) अत्यन्त कल्याणकारी सभापति और सेनापति ! तू—(नः) हमारे लिए (सुमनाः) प्रसन्न मन वाला तथा (शिवः) सुखकारी (भव) हो । और—

(आयुधम्) तलवार, बन्दूक, तोप आदि शस्त्रों को (निधाय) धारण करके, (कृत्तिम्) मृग-चर्म आदि से बनी अंगरखी से (वसानः) शरीर को आच्छादित करता हुआ, (पिनाकम्) शरीर की रक्षा करने वाले धनुष और कवच आदि को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ हमारी रक्षा के लिए (आगहि) आ; तथा—(परमे) बड़े (वृक्षे) छेदन करने योग्य शत्रु-सैन्य में (आ+चर) सर्वत्र विचरण कर ॥ १६ । ५१ ॥

[हे···शिवतम ! त्वं नः···शिवो भव]

भावार्थः—सभासेनेशादयः स्वप्रजासु मङ्गलाचारिणो दुष्टेषु चाग्निरिव दाहकाः स्युः,

भावार्थ—सभापति और सेनापति आदि अपनी प्रजा में मङ्गलाचारी और दुष्टों में अग्नि के समान दाहक हों।

[हेतुमाह—]

येन सर्वे धर्मपथं विहायाधर्मं कदापि नाचरेयुः ॥ १६ । ५१ ॥

जिससे सब धर्म-पथ को छोड़कर अधर्म का कभी आचरण न करें ॥ १६ । ५१ ॥

भा० पदार्थः—शिवः=मङ्गलाचारी ।

भाष्यसार—सेनापति कैसा हो ?—सब प्रकार से हृष्ट-पुष्ट, सबका कल्याण करने वाला सदा ईर्ष्यादि रहित होकर प्रसन्नचित्त रहने वाला, तलवारादि शस्त्रास्त्रों और कवचों को धारण करने वाला, शत्रु-सेना के छेदन करने में समर्थ और प्रजा की रक्षा करने वाला पुरुष ही सेनापति पद के योग्य होता है ॥ १६ । ५१ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=प्रजाजनाः** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

प्रजाजना राजजनैः सह कथं वर्तेरन्नित्युपदिश्यते ॥

प्रजा के पुरुष राजपुरुषों के साथ कैसे वर्त्तें, यह उपदेश किया है ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते ऽ अस्तु भगवः । यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—**(विकिरिद्र)** विशेषेण किरिः=सूकर इव द्रायति=शेते विशिष्टं किरिं द्राति निन्दति वा तत्संबुद्धौ **(विलोहित)** विविधान् पदार्थानारूढस्तत्सम्बुद्धौ **(नमः)** सत्कारः **(ते)** तुभ्यम् **(अस्तु)** **(भगवः)** ऐश्वर्यसम्पन्न **(याः)** **(ते)** तव **(सहस्रम्)** असंख्याताः **(हेतयः)** वृद्धयो वज्रा वा **(अन्यम्)** इतरम् **(अस्मत्)** अस्माकं सकाशात् **(नि)** **(वपन्तु)** छिन्दन्तु **(ताः)** ॥ ५२ ॥

अन्वयः—हे विकिरिद्र विलोहित भगवस्सभेश राजँस्ते नमोऽस्तु येन ते तव याः सहस्रं हेतयः सन्ति । ता अस्मदन्यं निवपन्तु ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विकिरिद्र** विशेषेण किरिः=सूकर इव द्रायति=शेते, विशिष्टं किरिं द्राति=निन्दति वा तत्सम्बुद्धौ **विलोहित** विविधान् पदार्थानारूढस्तत्सम्बुद्धौ **भगवः** !=**सभेश राजन्** ! ऐश्वर्यसम्पन्न ! **ते** तुभ्यं **नमः** सत्कारः **अस्तु** । **येन ते**=तव **याः सहस्रम्** असंख्याताः **हेतयः** वृद्धयो वज्रा वा **सन्ति**, **ता अस्मद्** अस्माकं सकाशाद् **अन्यम्** इतरं **निवपन्तु** छिदन्तु ॥

भाषार्थ—हे (विकिरिद्र) विशेष रूप से सूअर के समान सोने वाले, वा विशिष्ट सूअर को निन्दित=तिरस्कृत करने वाले, (विलोहित) विविध पदार्थों को प्राप्त, (भगवः) ऐश्वर्य से सम्पन्न सभापति राजन् ! (ते) तेरे लिए (नमः) सत्कार (अस्तु) हो । जिससे—(ते) तेरी जो (सहस्रम्) असंख्य (हेतयः) वृद्धियां वा वज्र हैं (ताः) वे (अस्मद्) हमसे (अन्यम्) भिन्न किसी अन्य का (निवपन्तु) सर्वथा छेदन करें ॥

[हे···भगवः !···या···हेतयः **सन्ति ता अस्मदन्यं निवपन्तु**]

भावार्थः--प्रजाजना राजजनान् प्रत्येवमुच्युः—

या युष्माकमुन्नतयः शस्त्रास्त्राणि च सन्ति, ता अस्मान् सुखे स्थापयन्त्वितरानस्मच्छत्रून् निवारयन्तु ॥ १६ । ५२ ॥

भावार्थः—प्रजा-जन राजा लोगों को ऐसे कहें—

जो हमारी उन्नतियां और शस्त्रास्त्र हैं वे हमें सुख में रखें, दूसरे हमारे शत्रुओं का निवारण करें ॥ १६ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—हेतयः=उन्नतयः शस्त्रास्त्राणि च । अन्यम्=इतरमस्मच्छत्रुम् । निवपन्तु=निवारयन्तु ॥

भाष्यसार—**प्रजा का राजपुरुषों के साथ व्यवहार**—प्रजा ऐसे श्रेष्ठ राजपुरुषों का सदा सत्कार किया करे, जो हिंसक पशुओं से प्रजा की रक्षा करते हैं, विविध उपायों से ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं, जिनके वज्रादि शस्त्र शत्रुओं का छेदन करने वाले हैं ॥ १६ । ५२ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**राजजनाः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

राजजनैः किं कार्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स॒हस्रा॑णि सहस्र॒शो बा॒ह्वोस्तव॑ हे॒तयः॑ । तासा॒मीशा॑नो भगवः प॒राचीना॒ मुखा॑ कृधि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**सहस्राणि**) (**सहस्रशः**) असंख्याताः (**बाह्वोः**) भुजयोः सम्बन्धिन्यः (**तव**)(**हेतयः**) प्रबला वज्रगतयः (**तासाम्**) (**ईशानः**) ईशनशीलः (**भगवः**) भाग्यवन् (**पराचीना**) पराचीनानि=दूरीभूतानि (**मुखा**) मुखानि (**कृधि**) कुरु ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे भगवः ! यास्तव बाह्वोः सहस्राणि हेतयः सन्ति तासामीशानः सन् सहस्रशः शत्रूणां मुखा पराचीना कृधि ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे भगवः ! भाग्यवन् ! **यास्तव बाह्वोः** भुजयोः सम्बन्धिन्यः **सहस्राणि**

भाषार्थ—हे (भगवः) भाग्यवान् राजपुरुष! जो (तव) तेरी (बाह्वोः) भुजाओं में (सहस्राणि)

हेतयः प्रबला वज्रगतयः **सन्ति, तासामीशानः** ईशनशीलः **सन् सहस्रशः** असंख्यातानि **शत्रूणां मुखा** मुखानि **पराचीना** पराचीनानि=दूरीभूतानि **कृधि** कुरु ॥ १६ । ५३ ॥

हजारों (हेतयः) प्रबल वज्र-गतियाँ हैं, (तासाम्) उनका (ईशानः) स्वामी होकर (सहस्रशः) असंख्य शत्रुओं के (मुखा) मुखों को (पराचीना) दूर (कृधि) कर ॥ १६ । ५३ ॥

[हे भगवः ! यास्तव बाह्वोः सहस्राणि हेतयः'''तासामीशानः सन्'''शत्रूणां मुखा पराचीना कृधि]

भावार्थः—राजपुरुषैर्बाहुबलेन राज्यं प्राप्यासंख्यशूरवीराः सेनाः संपाद्य सर्वे शत्रवः पराङ्मुखाः कार्याः ॥ १६ । ५३ ॥

भावार्थ—राजपुरुष बाहुबल से राज्य को प्राप्त करके असंख्य शूर-वीरों वाली सेनाओं को तैयार करके सब शत्रुओं को पराङ्मुख करें ॥१६॥

भाष्यसार—**राज-पुरुषों का कर्त्तव्य**—धन-धान्य से सम्पन्न राजपुरुष असंख्य शस्त्रास्त्रों के चलाने में प्रवीण होकर, शत्रुवर्ग को पराजित कर प्रजा की सर्वथा रक्षा किया करें ॥ १६ । ५३ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=प्राणादयो वायवः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् ।
गान्धारः ॥

मनुष्यैः कथमुपकारो ग्राह्य इत्युच्यते ॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽ अधि भूम्याम् । तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**असंख्याता**) संख्यारहितानि (**सहस्राणि**) (**ये**) (**रुद्राः**) सजीवाऽजीवाः प्राणादयो वायवः (**अधि**) उपरिभावे (**भूम्याम्**) पृथिव्याम् (**तेषाम्**) (**सहस्रयोजने**) सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् (**अव**) अर्वागर्थे (**धन्वानि**) धनूंषि (**तन्मसि**) विस्तारयेम ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं ये असंख्याता सहस्राणि रुद्रा भूम्यामधि सन्ति तेषां सकाशात्सहस्रयोजने धन्वान्यव तन्मसि तथा यूयमपि तनुत ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा वयं ये असंख्याता** संख्यारहितानि **सहस्राणि रुद्राः** सजीवाऽजीवाः प्राणादयो वायवः **भूम्यां** पृथिव्याम् **अधि** उपरि **सन्ति, तेषां सकाशात् सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम **तथा यूयमपि तनुत** ॥ १६ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—हम लोग (ये) जो (असंख्याता) असंख्य, (सहस्राणि) हजारों (रुद्राः) सजीव-निर्जीव प्राणादि वायु (भूम्याम्) पृथिवी (अधि) पर हैं, (तेषाम्) उनसे (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥ १६ । ५४ ॥

[ये असंख्याताः'''रुद्रा भूम्यामधि सन्ति तेषां सकाशात्'''धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—मनुष्यैः प्रतिशरीरं विभक्ता असंख्या भूमिसम्बन्धिनो जीवा वायवश्च वेद्याः, तैरुपकारो ग्राह्यस्तेषां कर्त्तव्यश्च ॥ १६ । ५४ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्रत्येक शरीर में विभक्त असंख्य भूमि सम्बन्धी जीव और वायुओं को जानें, उनसे उपकार ग्रहण करें तथा उनका भी उपकार करें ॥ १६ । ५४ ॥

भाष्यसार—**मनुष्य प्राणादि वायुओं को जानें**—पृथिवीस्थ सजीव-निर्जीव प्राणादि

वायुओं को जानकर उनसे उपकार ग्रहण करें। और अपने शरीरों को प्राण-वायु को नियमित करके विस्तृत तथा नीरोग करें ॥ १६ । ५४ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः—जीवा वायवश्च** । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य लोग कैसे उपकार ग्रहण करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा ऽ अधि । तेषांᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) (**महति**) व्यापकत्वादिमहागुणविशिष्टे (**अर्णवे**) बहून्यर्णांसि=जलानि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मिन्निव । **अर्ण इत्युदकनाम० ॥ निघं० १ । १२ ॥ अर्णसो लोपश्चेति सलोपो वप्रत्ययश्च** (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्षय=आकाशे (**भवाः**) वर्त्तमानाः (**अधि**) (**तेषाम्०**) इति पूर्ववत् ॥ ५५ ॥

प्रमाणार्थ—(**अर्णवे**) 'अर्ण' पद निघं० १ । १२ में उदक=जल-नामों में पठित है। 'अर्णसो लोपश्च' इससे 'स' का लोप और 'व' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं येऽस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा रुद्रा जीवा वायवश्च सन्ति तेषां प्रयोगं कृत्वा सहस्रयोजने धन्वान्यध्यवतन्मसि तथा यूयमपि कुरुत ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं येऽस्मिन् महति** व्यापकत्वादि महागुणविशिष्टे **अर्णवे** बहून्यर्णांसि=जलानि विद्यन्ते यस्मिँस्तस्मिन्निव **अन्तरिक्षे** अन्तरिक्षय=आकाशे **भवाः** वर्त्तमानाः **रुद्रा=जीवा, वायवश्च सन्ति, तेषां प्रयोगं कृत्वा सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुः-क्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **धन्वानि** धनूंषि **अध्यवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम **तथा यूयमपि कुरुत** ॥ १६ । ५५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—जो (अस्मिन्) इस (महति) व्यापकता आदि महान् गुणों से युक्त (अर्णवे) बहुत जलों वाले (अन्तरिक्षे) आकाश में (भवाः) विद्यमान (रुद्राः) जीव और वायु हैं, (तेषाम्) उनका प्रयोग करके (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) धनुषों को (अध्यवतन्मसि) विस्तृत करते हैं; वैसे तुम भी करो ॥ १६ । ५५ ॥

[**हे मनुष्याः !……येऽस्मिन्……अन्तरिक्षे……रुद्रा……सन्ति तेषां प्रयोगं कृत्वा……धन्वान्यध्यवतन्मसि**]

भावार्थः—मनुष्यैर्यथा भूमिस्थेभ्यो जीवेभ्यो वायुभ्यश्च कार्योपयोगः क्रियते, तथा ऽन्तरिक्षस्थेभ्यो-ऽपि कर्त्तव्यः ॥ १६ । ५५ ॥

भावार्थ—मनुष्य जैसे भूमिस्थ जीव और वायु से कार्यों में उपयोग ग्रहण करते हैं वैसे आकाश में स्थित जीव और वायु से भी उपयोग ग्रहण करें ॥ १६ । ५५ ॥

भाष्यसार—जीव और वायुओं से उपकार ग्रहण करें—जैसे पृथिवीस्थ जीवों और वायुओं के ज्ञान से मनुष्य उपकार ग्रहण करते हैं, वैसे ही अन्तरिक्षस्थ जीवों और वायुओं का ज्ञान करके अपने कार्यक्षेत्र को पर्याप्त विस्तृत किया करें ॥ १६ । ५५ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **बहुरुद्राः=जीवा वायवो वा** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे उपकार ग्रहण करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

नील॑ग्रीवाः शिति॒क॑ण्ठा॒ दिव॑ꣳ रु॒द्रा ऽ उप॑श्रिताः । तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**नीलग्रीवाः**) नीला ग्रीवा येषां ते (**शितिकण्ठाः**) शितयस्तीक्ष्णाः श्वेता वा कण्ठा येषां ते (**दिवम्**) सूर्यं विद्युदिव (**रुद्राः**) जीवा वायवो वा (**उपश्रिताः**) उपश्लेषतया श्रिताः । तेषामिति पूर्ववत् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवमुपश्रिता रुद्रा जीवा वा वायवः सन्ति तेषामुपयोगेन सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि तथा यूयमपि कुरुत ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं ये नीलग्रीवाः** नीला ग्रीवा येषां ते **शितिकण्ठाः** शितयस्तीक्ष्णाः श्वेता वा कण्ठा येषां ते **दिवं सूर्यं** विद्युदिव **उपश्रिताः** उपश्लेषतया श्रिताः **रुद्राः**=**वायवः**, जीवा वायवो वा **सन्ति, तेषामुपयोगेन सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग्विस्तारयेम **तथा यूयमपि कुरुत** ॥१६।५६॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम—जो (नीलग्रीवाः) नीली गर्दन वाले, (शितिकण्ठाः) तीक्ष्ण वा श्वेत कण्ठ वाले, (दिवम्) विद्युत् के समान सूर्य पर (उपश्रिताः) आश्रित (रुद्राः) जीव वा वायु हैं (तेषाम्) उनके उपयोग से (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) धनुषों को (अव+तन्मसि) विस्तृत करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥ १६ । ५६ ॥

[हे मनुष्याः !······ये······दिवमुपश्रिता रुद्राः सन्ति तेषामुपयोगेन······धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—विद्वद्भिर्वह्निस्थान् वायून्, जीवान् वा विज्ञायोपयुज्य आग्नेयास्त्रादीनि निष्पादनीयानि ॥ १६ । ५६ ॥

भावार्थ—विद्वान् लोग—अग्निस्थ वायु वा जीवों को जानकर, उपयोग करके आग्नेय—अस्त्र आदि को सिद्ध करें ॥ १६ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—धन्वानि=आग्नेयास्त्रादीनि ।

भाष्यसार—**अग्निस्थ जीवों और वायुओं का ज्ञान करें**—नीली गर्दन वाले और श्वेत कण्ठ वाले सूर्यादि में स्थित जीवों और वायुओं को जानकर आग्नेयास्त्रादि का विस्तार किया करें ॥ १६ । ५६ ॥ ●

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**वायवः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे उपकार ग्रहण करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

नील॑ग्रीवाः शिति॒क॑ण्ठाः श॒र्वा ऽ अ॒धः क्ष॑माच॒राः । तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**नीलग्रीवाः**) नीला ग्रीवा येषां ते (**शितिकण्ठाः**) शितिः=श्वेतः कण्ठो येषां ते (**शर्वाः**) हिंसकाः (**अधः**) अधोगामिनः (**क्षमाचराः**) ये क्षमायां=पृथिव्यां चरन्ति । तेषामिति पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः सन्ति तेषां सहस्रयोजने दूरीकरणाय धन्वानि वयमवतन्मसि ॥ ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ये**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(नीलग्रीवाः)

नीलग्रीवाः नीला ग्रीवा येषां ते **शितिकण्ठाः** शितिः=श्वेतः कण्ठो येषां ते **शर्वाः** हिंसकाः **अधः** अधोगामिनः **क्षमाचराः** ये क्षमायां=पृथिव्यां चरन्ति **सन्ति, तेषां सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुः कोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **दूरीकरणाय धन्वानि** धनूंषि **वयमवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम ॥ १६ । ५७ ॥

नीली गर्दन वाले, (शितिकण्ठाः) श्वेत कण्ठ वाले, (शर्वाः) हिंसक, (अधः) अधोगामी, (क्षमाचराः) पृथिवी पर विचरण करने वाले वायु हैं, (तेषाम्) उन्हें (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में दूर करने के लिए (धन्वानि) धनुषों को हम (अवतन्मसि) विस्तृत करते हैं ॥

[हे मनुष्याः ! ये···क्षमाचराः सन्ति तेषां···दूरीकरणाय धन्वानि वयमवतन्मसि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्ये वायवो भूमेरन्तरिक्षमन्तरिक्षाद् भूमिं च गच्छन्त्यागच्छन्ति, तत्र ये तेजोभूम्यादितत्त्वानामवयवाश्चरन्ति, तान् विज्ञायोपयुज्य कार्यं साध्यम् ॥ १६ । ५७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्य-जो वायु भूमि से आकाश और आकाश से भूमि पर जाती हैं, उनमें जो तेज और भूमि आदि तत्त्वों के अवयव घूमते हैं उन्हें जानकर और उनका उपयोग करके कार्य को सिद्ध करें ॥ १६ । ५७ ॥

भा० पदार्थः—क्षमाचराः=ये वायवो भूमेरन्तरिक्षमन्तरिक्षाद् भूमिं च गच्छन्त्यागच्छन्ति, तत्र ये तेजोभूम्यादितत्त्वानामवयवाश्चरन्ति ते ।

भाष्यसार—१. **पृथिवीस्थ वायुओं का ज्ञान करें**—नीली गर्दन वाले और श्वेत कण्ठ वाले पृथिवीस्थ वायुओं को जानकर उनको जीवनोपयोगी बनायें । ये वायु भूमि से अन्तरिक्ष की ओर, अन्तरिक्ष से भूमि की ओर जाती आती रहती हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ १६ । ५७ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=सर्पादयः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैः सर्पादयो दुष्टा निवारणीया इत्याह ॥

मनुष्य लोग सर्पादि दुष्टों का निवारण करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५८॥

पदार्थः—(ये) (वृक्षेषु) आम्रादिसमीपेषु (**शष्पिञ्जराः**) शड्ढिंसकः पिंजरो=वर्णो येषां ते (**नीलग्रीवाः**) नीलवर्णा निगरणकर्मोपेताः (**विलोहिताः**) विविधरक्तवर्णाः तेषामिति पूर्ववत् ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः सर्पादयः सन्ति तेषां सहस्रयोजने प्रक्षेपाय धन्वान्यवतन्मसि । तथा यूयमप्याचरत ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वयं ये वृक्षेषु** आम्रादिसमीपेषु **शष्पिञ्जराः** शड्ढिंसकः पिञ्जरो=वर्णो येषां ते **नीलग्रीवाः** नीलवर्णा निगरणकर्मोपेताः **विलोहिताः** विविधरक्तवर्णाः **सर्पादयः सन्ति, तेषां सहस्रयोजने** सहस्राण्य-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम-जो (वृक्षेषु) आम आदि के सदृश वृक्षों पर (शष्पिञ्जराः) शट्=हिंसक पिंजर=वर्ण वाले, (नीलग्रीवाः) नीले वर्ण वाले एवं निगलने वाले, (विलोहिताः) विविध रक्त=लाल वर्ण वाले सर्प आदि

संख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **प्रक्षेपाय धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम **तथा यूयमप्याचरत** ॥ १६ । ५८ ॥

हैं (तेषाम्) उन्हें (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में दूर हटाने के लिए (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करते हैं वैसे तुम भी करो ॥ १६ । ५८ ॥

[हे मनुष्याः !···ये वृक्षेषु···विलोहिताः सर्पादयः सन्ति तेषां···प्रक्षेपाय धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—मनुष्यैर्ये वृक्षादिषु वृद्धिजीवनाः सर्पादयो वर्तन्ते, तेऽपि यथासामर्थ्यं निवारणीयाः ॥ १६ । ५८ ॥

भावार्थ—मनुष्य–जो वृक्ष आदि पर वृद्धि पूर्वक जीने वाले सर्प आदि हैं उन्हें भी यथाशक्ति दूर हटावें ॥ १६ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—विलोहिताः=वृद्धिजीवनाः सर्पादयः ॥

भाष्यसार--**वृक्षादिस्थ सर्पादि से दूर रहें**—जो वृक्षादि पर हिंसक, वायु को निगरण करने वाले विविध रक्तादि वर्ण वाले सर्पादि हों, उनको जानकर उन का सदा निवारण करके जीवन की रक्षा करें ॥ १६ । ५८ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=परिव्राजो ब्रह्मचारिणश्च** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

जनैरध्यापनोपदेशौ कुतो ग्राह्यावित्याह ॥

मनुष्य लोग पढ़ना और उपदेश किससे ग्रहण करें, यह उपदेश किया है ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः । तेषाᳬं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥५९॥

पदार्थः—(ये) (**भूतानाम्**) प्राण्यप्राणिनाम् (**अधिपतयः**) अधिष्ठातारः पालकाः (**विशिखासः**) विगतशिखाः संन्यासिनः (**कपर्दिनः**) जटिला ब्रह्मचारिणः । तेषामिति पूर्ववत् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः संन्यासिनो ब्रह्मचारिणः सन्ति तेषां हिताय सहस्रयोजने वयं परिभ्रमामो धन्वान्यवतन्मसि तथा हे राजपुरुषाः ! यूयमपि पर्यटनं सदा कुरुत ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा ये भूतानां** प्राण्यप्राणिनाम् **अधिपतयः** अधिष्ठातारः पालकाः **विशिखासः कपर्दिनः=सन्न्यासिनो ब्रह्मचारिणः** [विशिखासः=विगतशिखाः संन्यासिनः, कपर्दिनः=जटिला ब्रह्मचारिणः] **सन्ति, तेषां हिताय सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **वयं परिभ्रमामो, धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम; **तथा—हे राजपुरुषा ! यूयमपि पर्यटनं सदा कुरुत** ॥ १६ । ५९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—जो (भूतानाम्) प्राणी और अप्राणी जगत् के (अधिपतयः) अधिष्ठाता पालक (विशिखासः) शिखारहित संन्यासी और (कपर्दिनः) जटाधारी ब्रह्मचारी हैं (तेषाम्) उनके हित के लिए (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में हम भ्रमण करते हैं तथा (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) फैलाते हैं; वैसे—हे राजपुरुषो ! तुम भी सदा पर्यटन=भ्रमण करो ॥ १६ । ५९ ॥

[हे मनुष्याः !······ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः······सन्ति, तेषां हिताय······वयं परिभ्रमामो, धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—मनुष्यैर्ये सूत्रात्मधनञ्जयादिवत्

भावार्थ--मनुष्य—जो सूक्ष्म धनंजय

परिव्राजो ब्रह्मचारिणश्च, सर्वेषां शरीरात्मपोषकाः सन्ति, तदध्ययनोपदेशाभ्यां बुद्धिदेहपुष्टिः सम्पादनीया ॥ १६ ॥। ५६ ॥

आदि के समान संन्यासी और ब्रह्मचारी हैं, वे शरीर और आत्मा के पोषक हैं, उनसे अध्ययन और उपदेश के द्वारा बुद्धि और शरीर की पुष्टि को सिद्ध करें ॥ १६ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—विशिखासः=परिव्राजः ।

भाष्यसार—**संन्यासी और ब्रह्मचारी सदुपदेश किया करें**—प्राणी और अप्राणी जगत् के अधिष्ठाता शिखारहित संन्यासी और जटाधारी ब्रह्मचारी संसार के हित के लिए घूम-घूम कर सद्विद्या का उपदेश करके बुद्धि और शरीर का विकास किया करें ॥ १६ । ५६ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=**वायवः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कार्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ये प॒थां प॑थि॒रक्ष॑य ऽ ऐलबृ॒दा ऽ आ॑यु॒र्युध॑ः । तेषा॑ᳬ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥६०॥

पदार्थः—(ये) (**पथाम्**) मार्गाणाम् (**पथिरक्षयः**) ये पथिषु विचरतां जनानां रक्षयो=रक्षकाः (**ऐलबृदाः**) इलायाः=पृथिव्या इमानि वस्तुजातानि ऐलानि तानि ये वर्धयन्ति ते । **अत्र वर्णव्यत्ययेन धस्य दः । इगुपधलक्षणः कश्च** (**आयुर्युधः**) ये आयुषा सह युध्यन्ते तेषामिति पूर्ववत् ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(ऐलबृदाः) यहां वर्ण-व्यत्यय से 'ध' के स्थान में 'द' तथा 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' (३ । १ । १३५) इससे इगुपध-लक्षण 'क' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—वयं ये पथां पथिरक्षय इव ऐलबृदा आयुर्युधो भृत्याः सन्ति तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—वयं ये पथां मार्गाणां **पथिरक्षयः** ये पथिषु विचरतां जनानां रक्षयो=रक्षकाः **इव ऐलबृदाः** इलायाः=पृथिव्या इमानि वस्तुजातानि ऐलानि तानि ये वर्धयन्ति ते **आयुर्युधः** ये आयुषा सह युध्यन्ते **भृत्याः सन्ति, तेषां सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम ॥ १६ । ६० ॥

भाषार्थ—हम-जो (पथाम्) मार्गों में (पथिरक्षयः) पथिकों की रक्षा करने वाले के समान, (ऐलबृदाः) इला=पृथिवी की वस्तुओं को बढ़ाने वाले, (आयुर्युधः) आयु के साथ युद्ध करने वाले भृत्य हैं, (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) विस्तृत करें ॥

[वयं पथां पथिरक्षय इव ऐलबृदा आयुर्युधः…सन्ति तेषां…धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—मनुष्यैर्यथा राजजना अहर्निशं प्रजाजनान् यथावद् रक्षन्ति तथा पृथिवीं जीवनादिकं च वायवो रक्षन्तीति वेद्यम् ॥

भावार्थ—मनुष्य-जैसे राजा लोग दिन-रात प्रजा-जनों की यथावत् रक्षा करते हैं वैसे पृथिवी और जीवन आदि की वायु रक्षा करती हैं, ऐसा समझें ॥ १६ । ६० ॥

भा० पदार्थः—पथिरक्षयः=राजजनाः । ऐलबृदाः=पृथिवीरक्षकाः वायवः । आयुर्युधः=जीवनादिरक्षका वायवः ॥

भाष्यसार—**जीवनोपयोगी वायुओं को जानें**—मार्गों में जीवन की रक्षा करने वाले प्राणपण से युद्ध करने वाले और पृथिवीस्थ पदार्थों को बढ़ाने वाले राजपुरुषों के तुल्य जीवन की रक्षा तथा वृद्धि करने वाले वायुओं को अवश्य जानें ॥ १६ । ६० ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=मनुष्याः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, फिर यह उपदेश किया है ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(ये) (**तीर्थानि**) यानि वेदाचार्य्यसत्यभाषणब्रह्मचर्यादिसुनियमादीन्यविद्यादुःखेभ्यस्तारयन्ति यद्वा यैः समुद्रादिभ्यस्तारयन्ति तानि (**प्रचरन्ति**) (**सृकाहस्ताः**) सृका=वज्राणि हस्तेषु येषां ते । **सृक इति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥** (**निषङ्गिणः**) प्रशस्तबाणकोशयुक्ताः । तेषामिति पूर्ववत् ॥

प्रमाणार्थ—(**सृकाहस्ताः**) 'सृक' पद निघं० २ । २० में वज्र-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—वयं ये सृकाहस्ता निषङ्गिण इव तीर्थानि प्रचरन्ति तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं ये सृकाहस्ताः सृका=वज्राणि हस्तेषु येषां ते **निषङ्गिणः** प्रशस्तबाणकोशयुक्ताः **इव तीर्थानि** यानि वेदाचार्य्य-सत्यभाषण – ब्रह्मचर्यादिसुनियमादीन्यविद्यादुःखेभ्यस्तारयन्ति यद्वा यैः समुद्रादिभ्यस्तारयन्ति तानि **प्रचरन्ति, तेषां सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् **धन्वानि** धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम ॥

भाषार्थ—हम-जो (सृकाहस्ताः) वज्रों को हाथ में धारण करने वाले, (निषङ्गिणः) उत्तम बाणकोश=तूणीर से युक्त पुरुषों के तुल्य (तीर्थानि) अविद्या-दुःखों से तारने वाले वेद, आचार्य, सत्यभाषण, ब्रह्मचर्य आदि उत्तम नियमों में अथवा समुद्र आदि से तारने वाले जल-यानों में (प्रचरन्ति) विचरण करते हैं, (तेषाम्) उन्हें-(सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) फैलाते हैं ॥ १६ । ६१ ॥

[ये'''तीर्थानि प्रचरन्ति]

भावार्थः—मनुष्याणां द्विविधानि तीर्थानि वर्त्तन्ते—तेष्वाद्यानि ब्रह्मचर्य-आचार्यसेवा-वेदाध्ययनाध्यापन-सत्संग—ईश्वरोपासना-सत्यभाषणादीनि-दुःखसागराज्जनान् पारं नयन्ति,

अपराणि—यैः समुद्रादिजलाशयेभ्यः पारावारं गन्तुं शक्याश्चेति ॥ १६ । ६१ ॥

भावार्थ—मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं—उनमें प्रथम ब्रह्मचर्य, आचार्य-सेवा, वेदादि का पठन-पाठन, सत्संग, ईश्वर की उपासना, सत्य-भाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं,

दूसरे—जिनसे समुद्र आदि जलाशयों से पार जा सकते हैं वे नौकादि भी तीर्थ हैं ॥ १६ । ६१ ॥

भा० पदार्थः—तीर्थानि=ब्रह्मचर्याचार्यसेवावेदाद्यध्ययनाध्यापनसत्संगेश्वरोपासनासत्य-भाषणादीनि दुःखसागराज्जनान् पारं नयन्ति तानि/यैः समुद्रादिजलाशयेभ्यः पारावारं गन्तुं शक्यास्तानि ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**सृकाहस्ताः**) जिनके सृका अर्थात् विज्ञान रूप हस्त तथा निषंग=संशय को काटने वाली उपदेश रूप तलवार है वे सत्य के उपदेशक भी रुद्र कहाते हैं तथा उपनिषदों से प्रतिपादन किया हुआ उपदेश करने योग्य जो परमेश्वर है उसको परम तीर्थ कहते हैं क्योंकि उसी की कृपा और प्राप्ति से जीव सब दुःखों से तर जाते हैं (**ऋग्वेदादि० ग्रन्थप्रामाण्य०**) ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों के दो ही सच्चे तीर्थ हैं**—जिनके पास विज्ञान रूप वज्र है, और जो संशय को काटने वाले सदुपदेश रूप प्रशस्त बाण वाले विद्वान् मनुष्य हैं और वेदाध्ययन, सत्संग, ईश्वरोपासना, सत्यभाषणादि अविद्यादि दुःखों से पार करने के कारण तीर्थ हैं। दूसरे वे जलयानादि तीर्थ हैं, जो समुद्र नदी आदि से पार करते हैं ॥ १६ । ६१ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=मनुष्याः** ॥ विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(ये) (**अन्नेषु**) अत्तव्येषु पदार्थेषु (**विविध्यन्ति**) बाणा इव साक्षात् कुर्वन्ति (**पात्रेषु**) पानसाधनेषु (पिबतः) पानं कुर्वतः (**जनान्**) मनुष्यादिप्राणिनः । तेषामिति पूर्ववत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—वयं येऽन्नेषु वर्त्तमानान् पात्रेषु पिबतो जनान् विविध्यन्ति तेषां प्रतिकाराय सहस्रयोजने धन्वान्यवतन्मसि ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—**वयं येऽन्नेषु** अत्तव्येषु पदार्थेषु **वर्त्तमानान् पात्रेषु** पानसाधनेषु **पिबतः** पानं कुर्वतः **जनान्** मनुष्यादिप्राणिनः **विविध्यन्ति** बाणा इव साक्षात् कुर्वन्ति **तेषां प्रतिकाराय सहस्रयोजने** सहस्राण्यसंख्यानि चतुःक्रोशपरिमितानि यस्मिन् देशे तस्मिन् धन्वानि धनूंषि **अवतन्मसि** अर्वाग् विस्तारयेम ॥ १६ । ६२ ॥

भाषार्थ—हम—जो (अन्नेषु) खाद्य-पदार्थों में वर्तमान, (पात्रेषु) पात्रों में (पिबतः) पान करने वाले (जनान्) मनुष्य आदि प्राणियों को (विविध्यन्ति) बाणों के समान साक्षात् करते हैं, (तेषाम्) उनके प्रतिकार के लिए (सहस्रयोजने) असंख्य एवं चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) धनुषों को (अवतन्मसि) फैलाते हैं ॥

[**ये ऽन्नेषु वर्तमानान्,……पिबतो जनान् विविध्यन्ति, तेषां प्रतिकाराय……धन्वान्यवतन्मसि**]

भावार्थः—येऽन्नाहारं जलादिपानं कुर्वतो विषादिना घ्नन्ति तेभ्यः सर्वैर्दूरे वसनीयम् ॥ ६२ ॥

भावार्थ—जो अन्नाहार एवं जल आदि का पान करने वालों का विष आदि से हनन करते हैं उनसे सब दूर रहें ॥ १६ । ६२ ॥

भा० पदार्थः—पिबतः=जलादिपानं कुर्वतः । विविध्यन्ति=विषादिना घ्नन्ति ॥

भाष्यसार—**दुष्ट मनुष्यों से सदा दूर रहें**—जो अन्नादि खाद्य पदार्थों के द्वारा, अथवा

दूधादि पेय पदार्थों के द्वारा विषादि से दूसरे मनुष्यों का वध करते हैं, उनको जानकर सदा पृथक् रहा करें ॥ १६ । ६२ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=जीवा वायवो वा** । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् ।
गान्धारः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, फिर यह उपदेश किया है ॥

य ऽ एतावन्तश्च भूयांꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(ये) (एतावन्तः) यावन्तो व्याख्याताः (**च**) (**भूयांसः**) तेभ्योऽप्यधिकाः (**च**) (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**रुद्राः**) प्राणजीवाः (**वितस्थिरे**) विविधतया तिष्ठन्ति (**तेषाम्**) (**सहस्रयोजने**) एतत्संख्या-परिमिते देशे (**अव**) विरोधार्थे (**धन्वानि**) अन्तरिक्षावयवान् । धन्वेत्यन्तरिक्षना० ॥ निघण्टौ १ । ३ ॥ (**तन्मसि**) ॥ ६३ ॥

प्रमाणार्थ—(**धन्वानि**) अन्तरिक्षावयवान् । 'धन्व' पद निघं० १ । ३ में अन्तरिक्ष-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—वयं य एतावन्तश्च भूयांसश्च रुद्रा दिशो वितस्थिरे तेषां सहस्रयोजने धन्वान्यव-तन्मसि ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—वयं य एतावन्तः यावन्तो व्याख्याताः **च भूयांसः** तेभ्योऽप्यधिकाः **च** रुद्राः प्राणजीवाः **दिशः** पूर्वाद्याः **वितस्थिरे** विविधतया तिष्ठन्ति, **तेषां सहस्रयोजने** एतत्संख्यापरिमिते देशे **धन्वानि** अन्तरिक्षावयवान् **अवतन्मसि** विरोधार्थे तन्मसि ॥ १६ । ६३ ॥

भाषार्थ—हम-(ये) जो (एतावन्तः) यहां व्याख्यात हैं वे (च) और (भूयांसः) उनसे भी अधिक (रुद्राः) प्राणधारी जीव हैं तथा (दिशः) पूर्व आदि दिशाएँ (वितस्थिरे) विविध रूप से स्थित हैं (तेषाम्) उनके (सहस्रयोजने) सहस्र योजन=चार कोस परिमाण वाले देश में (धन्वानि) आकाश के अवयवों को (अव+तन्मसि) विरुद्ध फैलाते हैं ॥ १६ । ६३ ॥

[रुद्रा दिशो वितस्थिरे, तेषां धन्वान्यवतन्मसि]

भावार्थः—ये मनुष्याः सर्वासु दिक्षु स्थितान् जीवान् वायून् वा यथावदुपयुञ्जते, तेषां सर्वकार्याणि सिद्धानि भवन्ति ॥ १६ । ६३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सब दिशाओं में स्थित जीवों वा वायुओं का यथावत् उपयोग करते हैं उनके सब कार्य सिद्ध होते हैं ॥ १६ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—दिशः=रुद्रा वायवो वा ।

भाष्यसार—**दिशाओं में विद्यमान जीव और वायुओं को जानें**—पूर्वादि दिशाओं में स्थित जीवों और वायुओं को जानकर मनुष्य यथायोग्य उपयोग में लायें । और आकाश के अवयवों को दूषित करने वाले जीवों और वायुओं का भी ज्ञान करें ॥ १६ । ६३ ॥

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=निचृद्धृतिः । ऋषभः ।।

पुनस्तदेवाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्क्रिया (**अस्तु**) भवतु (**रुद्रेभ्यः**) प्राणेभ्य इव वर्त्तमानेभ्यः (**ये**) (**दिवि**) सूर्यप्रकाशादाविव विद्याविनये वर्त्तमाना वीराः (**येषाम्**) (**वर्षम्**) वृष्टिरिव (**इषवः**) बाणाः (**तेभ्यः**) (**दश**) (**प्राचीः**) पूर्वा दिशः (**दश**) (**दक्षिणाः**) (**दश**) (**प्रतीचीः**) पश्चिमाः (**दश**) (**उदीचीः**) उत्तराः (**दश**) (**ऊर्ध्वाः**) उपरिस्थाः (**तेभ्यः**) (**नमः**) अन्नादिकम् (**अस्तु**) (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**मृडयन्तु**) सुखयन्तु (**ते**) (**यम्**) (**द्विष्मः**) अप्रीतिं कुर्याम (**यः**) (**च**) (**नः**) अस्मान् (**द्वेष्टि**) न प्रीणयति (**तम्**) (**एषाम्**) वायूनाम् (**जम्भे**) मार्जारमुखे मूषक इव पीडायाम् (**दध्मः**) निक्षिपाम ॥ ६४ ॥

अन्वयः—ये रुद्रा दिवि वर्त्तन्ते येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः प्राप्नुवन्ति तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु य एवं भूतास्ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।। ६४ ।।

सपदार्थान्वयः—**ये रुद्रा दिवि** सूर्यप्रकाशादाविव विद्याविनये वर्त्तमाना वीराः **वर्त्तन्ते, येषां वर्ष** वृष्टिरिव **इषवः** बाणाः **तेभ्यो रुद्रेभ्यः** प्राणेभ्य इव वर्त्तमानेभ्यः **अस्माकं नमः** सत्क्रिया **अस्तु** भवतु ।

ये दश प्राचीः पूर्वा दिशः **दश दक्षिणा दश प्रतीचीः** पश्चिमाः **दशोदीचीः** उत्तराः **दशोर्ध्वाः** उपरिस्थाः **प्राप्नुवन्ति, तेभ्यो रुद्रेभ्यः** प्राणेभ्य इव वर्त्तमानेभ्यः **अस्माकं नमः** अन्नादिकम् **अस्तु** भवतु ।

य एवं भूतास्ते नः अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु । **ते वयं यं द्विष्मः** अप्रीतिं कुर्याम, **यश्च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** न प्रीणयति, **तमेषां**

भावार्थ—(ये) जो रुद्र (दिवि) सूर्य-प्रकाश आदि के समान विद्या और विनय में वर्तमान वीर हैं, (येषाम्) जिनके (वर्षम्) वर्षा के समान (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणों के समान वीरों के लिए हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) हो ।

जो—(दश) दस (प्राचीः) पूर्व दिशाओं, (दश) दस (दक्षिणाः) दक्षिण दिशाओं, (दश) दस (प्रतीचीः) पश्चिम दिशाओं, (दश) दस (उदीचीः) उत्तर दिशाओं, (दश) दस (ऊर्ध्वाः) उपरिस्थ दिशाओं को प्राप्त होते हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणों के समान वीरों को हमारा (नमः) अन्न आदि (अस्तु) प्राप्त हो ।

जो इस प्रकार के वीर हैं (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें । (ते) सो हम (यम्) जिससे (द्विष्मः)

वायूनां जम्भे मार्जारमुखे मूषक इव पीडायां दध्मः निक्षिपाम ।। १६ । ६४ ।।

द्वेष=अप्रीति करते हैं (यश्च) और जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (तम्) उसे (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) बिलाव के मुख में चूहे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालते हैं ।। १६ । ६४ ।।

[ये रुद्रा दिवि वर्त्तन्ते, येषां वर्षमिषवः, ये दश प्राचीः······प्राप्नुवन्ति,······ते नोऽवन्तु]

भावार्थः—यथा वायूनां सकाशाद् वर्षा जायन्ते, तथा ये सर्वत्राधिष्ठातारः स्युस्ते वीराः पूर्वादिषु दिक्ष्वस्माकं रक्षकाः सन्तु ।

भावार्थ—जैसे वायुओं से वर्षा होती है, वैसे जो सर्वत्र अधिष्ठाता हैं वे वीर पूर्व आदि दिशाओं में हमारे रक्षक हैं ।

[वयं यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः]

वयं यं विरोधिनं जानीमस्तं सर्वत आवृत्य वायुवद् बन्धयेमेति ।। १६ । ६४ ।।

हम जिसे विरोधी जानें उसे सब ओर से घेर कर वायु के समान बांध डालें ।। १६ । ६४ ।।

भा० पदार्थः—द्विष्मः=विरोधिनं जानीमः ।

भाष्यसार—**रक्षक वीरों का सदा सत्कार करें**—जो सूर्य के समान विद्यावान्, प्राणों के समान बलवान्, वर्षा के समान बाण वाले वीर पुरुष हैं, जो सब दिशाओं में स्थित दुष्टों का संहार करके न्याय से शासन करते हैं, उनका सदा अन्नादि से सत्कार किया करें ।। १६ । ६४ ।।

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः**=शिल्पिनः । धृतिः । ऋषभः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात ऽइषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।। ६५ ।।

पदार्थः—(**नमः**) (**अस्तु**) (**रुद्रेभ्यः**) (**ये**) (**अन्तरिक्षे**) आकाशे (**येषाम्**) (**वातः**) (**इषवः**) (**तेभ्यः०**) इति पूर्ववत् ।। ६५ ।।

अन्वयः—ये विमानादिषु स्थित्वाऽन्तरिक्षे विचरन्ति येषां वात इवेषवः सन्ति तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा आशा व्याप्तवन्तस्तेभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं च यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे वशे दध्मः ।। ६५ ।।

सपदार्थान्वयः—ये विमानादिषु **स्थित्वाऽन्तरिक्षे** आकाशे **विचरन्ति, येषां वात इवेषवः सन्ति, तेभ्यो रुद्रेभ्यः** [प्राणेभ्य इव वर्त्तमानेभ्यः] **अस्माकं नमः** [सत्क्रिया] **अस्तु** [भवतु] ।

भाषार्थ—जो विमान आदि में बैठकर (अन्तरिक्षे) आकाश में विचरण करते हैं, (येषाम्) जिनके (वातः) वायु के समान (इषवः) बाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) प्राणों के समान वीरों को हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो ।

ये दश प्राचीः पूर्वाः दिशः **दश दक्षिणा दश प्रतीचीः** पश्चिमाः **दशोदीचीः** उत्तरा **दशोर्ध्वाः** उपरिस्था **आशा व्याप्तवन्तस्तेभ्यो नमः** अन्नादिकम् **अस्तु** भवतु ।

जो-(दश) दस (प्राचीः) पूर्व दिशाओं (दश) दस (दक्षिणाः) दक्षिण दिशाओं, (दश) दस (प्रतीचीः) पश्चिम दिशाओं (दश) दस (उदीचीः) उत्तर दिशाओं (दश) दस (ऊर्ध्वाः) उपरिस्थ दिशाओं में व्याप्त हैं (तेभ्यः) उन शिल्पियों को (नमः) अन्न आदि (अस्तु) प्राप्त हो ।

ते नः अस्मान् **अवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु । **ते वयं च यं द्विष्मः** अप्रीतिं कुर्याम, **यश्च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** न प्रीणयति, **तमेषां** वायूनां **जम्भे** मार्जारमुखे मूषक इव पीडायां **दध्मः** निक्षिपाम ।। १६ । ६५ ।।

(ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे (नमः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें। (ते) वे (वयं च) और हम (यम्) जिससे (द्विष्मः) द्वेष= अप्रीति करते हैं (यश्च) और जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (तम्) उसे (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) बिलाव के मुख में चूहे के समान पीड़ा में (दध्मः) डालते हैं ।। १६ । ६५ ।।

[ये विमानादिषु स्थित्वाऽन्तरिक्षे विचरन्ति···तेभ्यो रुद्रेभ्यो···नमोऽस्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्या आकाशस्थान् (शुद्धान्) शिल्पिनः सेवन्ते, तान्—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है ।। जो मनुष्य आकाशस्थ शुद्ध शिल्पियों की सेवा करते हैं, उन्हें

[ते नोऽवन्तु]

एते सर्वतो बलयित्वा शिल्पविद्याः शिक्षेरन् ।।

ये सब ओर से बल देकर शिल्प-विद्याओं को सिखलावें ।। १६ । ६५ ।।

भा० पदार्थः—रुद्रेभ्यः=शिल्पिभ्यः ।।

भाष्यसार—विमानादि के रचयिता शिल्पियों का सत्कार करें—जो विमानादि की रचना करके वीर पुरुषों को दूरस्थ स्थानों पर पहुँचा कर हमारी रक्षा करते हैं, अथवा सब दिशाओं में शीघ्र आने जाने में परम सहायक होते हैं, अथवा जो हमारे से शत्रुता करने वाले हैं, उनके संहार में सहायक होते हैं और हमें सुख के साधनों को प्राप्त कराते हैं, ऐसे शिल्पियों का सदा आदर किया करें ।। १६ । ६५ ।।

परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः । **रुद्राः=अन्नार्थिनः** । धृतिः । ऋषभः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो
द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।। ६६ ।।

पदार्थः—(**नमः**) (**अस्तु**) (**रुद्रेभ्यः**) (**ये**) (**पृथिव्याम्**) विस्तृतायां भूमौ (**येषाम्**) (**अन्नम्**) तण्डलादिकमत्तव्यमिव (**इषवः**) शस्त्रास्त्राणि । तेभ्य इति पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—ये भूविमानादिषु स्थित्वा पृथिव्यां विचरन्ति येषामन्नमिषवस्तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु ये दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वा व्याप्तवन्तः सन्ति तेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु ते नः सर्वतोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते वयं च यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥

सपदार्थान्वयः—ये **भूविमानादिषु स्थित्वा पृथिव्यां** विस्तृतायां भूमौ **विचरन्ति, येषामन्नं** तण्डुलादिकमत्तव्यमिव **इषवः** शस्त्रास्त्राणि **तेभ्यो रुद्रेभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु ।**

भाषार्थ—जो भूमि-विमान आदि में बैठकर (पृथिव्याम) विस्तृत भूमि पर विचरण करते हैं, (येषाम्) जिनका (अन्नम्) तण्डुल=चावल आदि भक्ष्य-पदार्थ समान (इषवः) शस्त्र-अस्त्र हैं, (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) अन्नार्थियों को हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो ।

ये दश प्राचीः पूर्वा दिशः **दश दक्षिणा दश प्रतीचीः** पश्चिमाः **दशोदीचीः** उत्तराः **दशोर्ध्वाः** उपरिस्थाः **व्याप्तवन्तः सन्ति, तेभ्योऽस्माकं नमः** अन्नादिकम् **अस्तु** भवतु ।

जो (दश) दस (प्राचीः) पूर्व दिशा, (दश) दस (दक्षिणाः) दक्षिण दिशा, (दश) दस (प्रतीचीः) पश्चिम दिशा, (दश) दस (उदीचीः) उत्तर दिशा, (दश) दस (ऊर्ध्वाः) ऊपर की दिशा में व्याप्त हैं (तेभ्यः) उन्हें हमारा (नमः) अन्न आदि (अस्तु) प्राप्त हो ।

ते नः अस्मान् **सर्वतोऽवन्तु** रक्षन्तु, **ते नः** अस्मान् **मृडयन्तु** सुखयन्तु ।

(ते) वे (नः) हमारी सब ओर से (अवन्तु) रक्षा करें, (ते) वे (नः) हमें (मृडयन्तु) सुखी करें ।

ते वयं च यं द्विष्मः अप्रीतिं कुर्याम, **यश्च नः** अस्मान् **द्वेष्टि** न प्रीणयति, **तमेषां** वायूनां **जम्भे** मार्जारमुखे मूषक इव पीडायां **दध्मः** निक्षिपाम ।

(ते) वे (वयं च) और हम (यम्) जिससे (द्विष्मः) द्वेष=अप्रीति करते हैं (यश्च) और जो (नः) हम से (द्वेष्टि) द्वेष करता है, (तम्) उसे (एषाम्) इन वायुओं के (जम्भे) बिलाव के मुख में चूहे के समान पीड़ा में (दध्मः) रखें ॥ १६ ॥

[ये···पृथिव्यां विचरन्ति, येषामन्नमिषवः, तेभ्यो रुद्रेभ्यो···नमोऽस्तु]

भावार्थः—ये पृथिव्यामन्नार्थिनस्तान् संपोष्य वर्द्धनीयाः ॥ १६ । ६६ ॥

भावार्थ—जो पृथिवी पर अन्नार्थी हैं उनका पोषण करके उन्हें बढ़ावें ॥

भाष्यसार—**अन्नार्थी वीर पुरुषों का सत्कार करें**—जो वीर योद्धा भूमि अथवा आकाश में विमानादि के द्वारा जाकर सर्वत्र विचरण करते हैं, जो दशों दिशाओं में जाकर हमारे से द्वेष करने वालों पर शासन करते हैं, ऐसे वीरों का अन्नादि से पोषण सब मनुष्य किया करें ॥ १६ । ६६ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अस्मिन्नध्याये वायुजीवेश्वरवीरगुणकृत्यवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह सङ्गतिरस्तीति वेद्यम् ॥ १६ । ६६ ॥

इस अध्याय में वायु, जीव, ईश्वर और वीर-पुरुष के गुण और कर्मों के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में प्रतिपादित अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥ १६ ॥

श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे षोडशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

॥ ओ३म् ॥

❋ अथ सप्तदशोऽध्यायारम्भः ❋

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्नऽआ सुव ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

मेधातिथिः । **मरुतः**=मनुष्याः । अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

अथ वृष्टिविद्योपदिश्यते ॥

अब सत्रहवें अध्याय का आरम्भ किया जाता है, इसके पहले मन्त्र में वर्षा की विद्या का उपदेश किया जाता है ॥

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्यऽओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो ऽ अधि सम्भृतं पयः । तां न ऽ इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा ऽ अश्मँस्ते क्षुन् मयि त ऽऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥

पदार्थः—(**अश्मन्**) अश्मनि=मेघे । **अश्मेति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥** (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**पर्वते**) पर्वताकारे (**शिश्रियाणाम्**) मेघावयवानां मध्ये स्थितां विद्युतम् (**अद्भ्यः**) जलाशयेभ्यः (**ओषधीभ्यः**) यवादिभ्यः (**वनस्पतिभ्यः**) अश्वत्थादिभ्यः (**अधि**) (**सम्भृतम्**) सम्यग् धृतं (**पयः**) रसयुक्तं जलम् (**ताम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इषम्**) अन्नम् (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**धत्त**) धरत (**मरुतः**) वायव इव क्रियाकुशला मनुष्याः (**संरराणाः**) सम्यग् रान्ति=ददति ते (**अश्मन्**) अश्मनि (**ते**) तव (**क्षुत्**) बुभुक्षा (**मयि**) (**ते**) तव (**ऊर्क्**) पराक्रमोऽन्नं वा (**यम्**) दुष्टम् (**द्विष्मः**) न प्रसादयेम (**तम्**) (**ते**) तव (**शुक्**) शोकः (**ऋच्छतु**) प्राप्नोतु ॥ १ ॥

प्रमाणार्थ—(**अश्मन्**) 'अश्मन्' शब्द निघण्टु १ । १० में मेघनामों में पठित है ।

अन्वयः—हे संरराणा मरुतः ! यूयं पर्वतेऽश्मन् शिश्रियाणामूर्जं नोऽधिधत्ताद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यः सम्भृतं पय इषमूर्जं च ताञ्च धत्त । हे मनुष्य ! तेऽश्मन्नूर्ग् वर्त्तते सा मय्यस्तु या ते क्षुत् सा मयि भवतु यं वयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे संरराणाः सम्यग् रान्ति=ददति ते **मरुतः** ! वायव इव क्रियाकुशला

भाषार्थ—हे (संरराणाः) उत्तम दान करने वाले, (मरुतः) वायु के समान क्रिया-कुशल

मनुष्याः ! **यूयं पर्वते** पर्वताकारे **अश्मन्** अश्मनि= मेघे **शिश्रियाणां** मेघावयवानां मध्ये स्थितां विद्युतम् **ऊर्जं** पराक्रमं **नः** अस्मभ्यम् **अधिधत्त** धरत। **अद्भ्यः** जलाशयेभ्यः **ओषधिभ्यः** यवादिभ्यः **वनस्पतिभ्यः** अश्वत्थादिभ्यः **सम्भृतं** सम्यग् धृतं **पयः** रसयुक्तं जलम् **इषम्** अन्नम् **ऊर्जं** पराक्रमं **च** **ताञ्च धत्त** धरत।

मनुष्यो ! तुम—(पर्वते) पर्वताकार (अश्मन्) मेघ में (शिश्रियाणाम्) एवं मेघ के अवयवों में स्थित विद्युत् को तथा (ऊर्जम्) पराक्रम को (नः) हमारे लिए (अधिधत्त) धारण करो। और—(अद्भ्यः) जलाशय, ओषधिभ्यः यव=जौ आदि ओषधियों, (वनस्पतिभ्यः) अश्वत्थ=पीपल आदि वनस्पतियों के लिए (सम्भृतम्) उत्तम रीति से धारण किए हुए (पयः) रसीले जल, (इषम्) अन्न तथा (ऊर्जम्) पराक्रम और (ताम्) उस विद्युत् को (धत्त) धारण करो।

हे **मनुष्य** ! **ते** तव **अश्मन्** अश्मनि **ऊर्क्** पराक्रमोऽन्नं वा **वर्त्तते, सा मय्यस्तु या ते** तव **क्षुत्** बुभुक्षा **सा मयि** भवतु, **यं** दुष्टं **वयं द्विष्मः** न प्रसादयेम, **तं ते** तव **शुक्** शोकः **ऋच्छतु** प्राप्नोतु॥ १७। १॥

हे मनुष्य ! (ते) तेरे (अश्मन्) मेघ मण्डल में जो (अर्क) पराक्रम वा अन्न है वह (मयि) मुझ में हो, और जो—(ते) तेरी (क्षुत्) भूख है वह (मयि) मुझ में हो, और—(यम्) जिस दुष्ट को (वयम्) हम (द्विष्मः) प्रसन्न नहीं रखते हैं (तम्) उसे (ते) तेरा (शुक्) शोक (ऋच्छतु) प्राप्त हो॥ १७। १॥

[हे......मरुतः ! यूयं......अद्भ्य ओषधिभ्यो वनस्पतिभ्यः सम्भृतं पयः, अश्मनि शिश्रियाणामूर्जं नोऽधिधत्त, इषं......धत्त]

भावार्थः—मनुष्यैर्यथा सूर्यो जलाशयौषध्यादिभ्यो रसं हृत्वा मेघमण्डले संस्थाप्य पुनर्वर्षयति ततोऽन्नादिकं जायते,

भावार्थ—मनुष्य—जैसे सूर्य जलाशय= तालाब और ओषधि आदि से रस को ग्रहण करके उसे मेघ-मण्डल में स्थापित करके फिर बरसाता है, उससे अन्न आदि उत्पन्न होता है,

[या ते क्षुत् सा मयि भवतु, यं वयं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु]

तदशनेन क्षुन्निवृत्त्या बलोन्नतिस्तया दुष्टानां निवृत्तिरेतया सज्जनानां शोकनाशो भवति, तथा समानसुखदुःखसेवनाः सुहृदो भूत्वा परस्परेषां दुखं विनाश्य सुखं सततमुन्नेयम्॥ १७। १॥

उसके खाने से जो भूख की निवृत्ति होती है उस से बल की वृद्धि, उससे दुष्टों की निवृत्ति, इससे सज्जनों के शोक का नाश होता है, वैसे समान रूप से सुख-दुख का सेवन करने वाले मित्र बनकर, पारस्परिक दुःख का विनाश करके, सुख को सदा बढ़ावें॥ १७। १॥

भा० पदार्थः—अश्मनि=मेघमण्डले।

भाष्यसार—मनुष्यों का प्रमुख कर्त्तव्य—सुखाभिलाषी मनुष्यों को योग्य है कि वे वृष्टि विद्या को भली-भाँति जानने का प्रयास करें। वायु के तुल्य क्रिया-कुशल मनुष्य मेघस्थ विद्युत् तथा उसके पराक्रम को अच्छी प्रकार जानें। क्योंकि सूर्य तालाब, ओषधी आदि के रस को लेकर मेघस्थ विद्युत् के आश्रय से स्थापित करता है। इसको जानने से और समय पर वृष्टि कराने से पर्याप्त अन्नादि उत्पन्न होता है॥ १७। १॥

मेधातिथिः । **अग्निः**=विद्वान् । निचृद्विकृतिः । मध्यमः ।।

अथेष्टकादिचयनदृष्टान्तेन गणितविद्योपदिश्यते ।।

अब इष्टका आदि चयन के दृष्टान्त से गणित विद्या का उपदेश किया है ।।

इमा मेऽ अग्न ऽ इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मेऽ अग्न ऽ इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥

पदार्थः—(इमाः) वक्ष्यमाणाः (मे) मम (अग्ने) विद्वन् (इष्टकाः) इष्टसुखं साधिकाः (धेनवः) दुग्धदात्र्यो गाव इव (सन्तु) (एका) (च) (दश) (च) (दश) (च) (शतम्) (च) (शतम्) (च) (सहस्रम्) (च) (सहस्रम्) (च) (अयुतम्) दश सहस्राणि (च) (अयुतम्) (च) (नियुतम्) लक्षम् (च) (च) (नियुतम्) (च) (प्रयुतम्) दश लक्षाणि प्रयुतमिति कोटेरप्युपलक्षकम् (च) (अर्बुदम्) दश कोटयः (च) (न्यर्बुदम्) अब्जम् । न्यर्बुदमिति खर्बनिखर्बमहापद्मशङ्कुसंख्यानामप्युपलक्षकम् (च) (समुद्रः) (च) (मध्यम्) (च) (अन्तः) (च) (परार्द्धः) (च) (एताः) (मे) मम (अग्ने) (इष्टकाः) (धेनवः) (सन्तु) (अमुत्र) परस्मिन् जन्मनि (अमुष्मिन्) परस्मिन् (लोके) द्रष्टव्ये ।। २ ।।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! या मे ममेमा इष्टका धेनव इव सन्तु तास्तवापि भवन्तु या एका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनव इवामुत्रामुष्मिल्लोकेऽस्मिन् परजन्मनि वा सन्तु ।। २ ।।

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने !=विद्वन् ! **या मे**=ममेमाः वक्ष्यमाणाः इष्टकाः इष्टसुखं साधिकाः **धेनवो** दुग्धदात्र्यो गावः **इव सन्तु तास्तवापि भवन्तु ।**

या एका च दश च, दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं दश सहस्राणि **चायुतं च नियुतं** लक्षं **च नियुतं च प्रयुतं** दश लक्षाणि प्रयुतमिति कोटेरप्युपलक्षकं, **चार्बुदं** दश कोटयः **च न्यर्बुदम्** अब्जम् न्यर्बुदमिति खर्बनिखर्बमहापद्मशंकुसंख्यानामप्युपलक्षकं, **च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे** मम **अग्ने ! इष्टका धेनव इवामुत्र** परस्मिन् जन्मनि **अमुष्मिन्** परस्मिन् लोके द्रष्टव्ये **अस्मिन् परजन्मनि वा सन्तु ।। १७ । २ ।।**

भावार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जो (मे) मेरी (इमाः) यह (इष्टकाः) इष्ट सुख की साधक ईंटें (धेनवः) दूध देने वाली गौवों के समान, (सन्तु) हों, वे तेरी भी होवें ।

जो—(एका च) एक, (दश च) दस, (दश च) दस का दस गुणा (शतं च) सौ, (शतं च) सौ का दस गुणा (सहस्रं च) हजार, (सहस्रं च) हजार का दस गुणा (अयुतं च) दस हजार, (अयुतं च) दस हजार का दस गुणा (नियुतं च) लाख, (नियुतं च) लाख का दस गुणा (प्रयुतम्) दस लाख, दस लाख का दस गुणा कोटि=करोड़, (अर्बुदं च) करोड़ का दस गुणा दस करोड़, (न्यर्बुदं च) दस करोड़ का दस गुणा खर्ब, खर्ब का दस गुणा निखर्व, निखर्ब का दस गुणा महापद्म, महापद्म का दस गुणा शंकु, (समुद्रश्च) शंकु का दस गुणा समुद्र, (मध्यं च) समुद्र का दस गुणा मध्य, (अन्तश्च) मध्य का दस गुणा अन्त, (परार्द्धश्च) अन्त का दस

गुणा परार्द्ध संख्या से युक्त (एता) ये (मे) मेरी—(अग्ने) हे विद्वान् ! (इष्टकाः) ईंटें (धेनवः) दुधारु गौवों के समान (अमुत्र) इस जन्म वा पर-जन्म एवं (अमुष्मिल्लोके) परलोक में सुखदायक हों ॥ १७ । २ ॥

[मे=ममेमा इष्टका धेनव इव सन्तु]

भावार्थः—यथा सुसेविता गावो दुग्धादिदानेन सर्वान् सन्तोषयन्ति तथैव वेद्यां सञ्चिता इष्टका वृष्टिहेतुका भूत्वा वृष्टचादिद्वारा सर्वानानन्दयन्ति ।

भावार्थ—जैसे उत्तम रीति से सेवा की हुई गौवें दुग्ध आदि देकर सबको सन्तुष्ट करती हैं वैसे ही वेदी में चयन की हुई ईंटें वर्षा का हेतु होकर वर्षा आदि के द्वारा सबको आनन्दित करती हैं ।

[एका च दश च, दश च शतं च, शतं च सहस्रं च, सहस्रं चायुतं च, अयुतं च नियुतं च, नियुतं च प्रयुतं च, अर्बुदं च न्यर्बुदं च, समुद्रश्च मध्यं च, अन्तश्च परार्द्धञ्च]

मनुष्यैरेका संख्या दशवारं गुणिता सती दश संज्ञां लभते, दश दशवारं संख्याता शतं, शतं दशवारं संख्यातं सहस्रं, सहस्रं दशवारं संख्यातमयुतमयुतं दशवारं संख्यातं नियुतं, नियुतं दशवारं संख्यातं प्रयुतं, प्रयुतं दशवारं संख्यातं कोटिः, कोटिर्दशवारं संख्याता दश कोटयस्ता दशवारं संख्याता खर्बः, खर्बो दशवारं संख्यातो निखर्बो, निखर्बो दशवारं संख्यातो महापद्मो, महापद्मो दशवारं संख्यातः शङ्कुः, शङ्कुर्दशवारं संख्यातः समुद्रः, समुद्रो दशवारं संख्यातो मध्यं, मध्यं दशवारं संख्यातमन्तरन्तो दशवारं संख्यातः परार्द्ध एताः संख्या उक्ता; उक्तैरनेकैश्चकारैरन्या अपि अङ्कबीजरेखाप्रभृतयो यथावद् विज्ञेयाः ।

एक (१) संख्या को दस से गुणा करने से दस (१०) संज्ञा को प्राप्त होती है। दस को दस से गुणा करने पर सौ, सौ को दस से गुणा करने पर हजार, हजार को दस से गुणा करने पर अयुत=दस हजार, अयुत को दस से गुणा करने पर नियुत=लाख, नियुत को दस से गुणा करने पर प्रयुत=दस लाख, प्रयुत को दस से गुणा करने पर कोटि=करोड़, करोड़ को दस से गुणा करने पर दस करोड़, दस करोड़ को दस से गुणा करने पर खर्ब, खर्ब को दस से गुणा करने पर निखर्ब, निखर्ब को दस से गुणा करने पर महापद्म, महापद्म को दस से गुणा करने पर शंकु, शंकु को दस से गुणा करने पर समुद्र, समुद्र को दस से गुणा करने पर मध्य, मध्य को दस से गुणा करने पर अन्त, अन्त को दस से गुणा करने पर परार्द्ध संख्या होती है। इन संख्याओं का उपदेश कर दिया है। मन्त्रोक्त अनेक चकारों से अन्य भी गणित सम्बन्धी अङ्क, बीज और रेखा आदि विद्याओं को यथावत् जान लेवें ।

[एता······अमुष्मिन् लोके सन्तु]

यथास्मिल्लोक इमाः संख्याः सन्ति तथान्येष्वपि लोकेषु वर्त्तन्ते ।

जैसे इस लोक में ये संख्याएँ हैं वैसे अन्य लोकों में भी हैं ।

[अग्न इष्टका धेनव इव]

यथात्रैतत्संख्याभिः संख्याता इष्टकाः सुशिल्पिभिश्चिता गृहाकारा भूत्वा शीतोष्णवर्षावाय्वादिभ्यो मनुष्यान् रक्षित्वाऽऽनन्दयन्ति तथैवाहुतयो जलवाय्वोषधीभिः संहत्य सर्वान्प्राणिन आनन्दयन्ति ॥ २ ॥

जैसे यहाँ इन संख्याओं से संख्यात=गिनी हुई ईंटें श्रेष्ठ शिल्पी जनों से चयन की हुई गृहाकार होकर शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यों की रक्षा करके उन्हें आनन्दित करती हैं वैसे यज्ञ में दी हुई आहुतियाँ जल, वायु और ओषधियों के साथ मिल कर सब प्राणियों को आनन्दित करती हैं ॥ १७ । २ ॥

भाष्यसार—विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य—विद्वान् पुरुष यज्ञ विद्या को पूर्ण रूप से जानकर अनावृष्टि से उत्पन्न दुःखों का विनाश करके उसी प्रकार प्रजा को सुखी रक्खें, जैसे अच्छे शिल्पी से बनाये गए घर मनुष्यों को सुख देते रहते हैं ॥ १७ । २ ॥

मन्त्रोक्त संख्या

१.	एक	१
२.	दश	१०
३.	शत	१००
४.	सहस्र	१०००
५.	अयुत	१००००
६.	नियुत	१०००००
७.	प्रयुत	१००००००
८.	कोटि	१०००००००
९.	दश कोटि	१००००००००
१०.	खर्ब	१०००००००००
११.	निखर्ब	१००००००००००
१२.	महापद्म	१०००००००००००
१३.	शंकु	१००००००००००००
१४.	समुद्र	१०००००००००००००
१५.	मध्य	१००००००००००००००
१६.	अन्त	१०००००००००००००००
१७.	परार्द्ध	१००००००००००००००००

मेधातिथिः । **अग्निः=विदुषी स्त्रियां** । विराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

स्त्रियः पत्यादिभिः सह कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

स्त्रियाँ पति आदि के साथ कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ऋतवं स्थ ऽ ऋतावृधं ऽ ऋतुष्ठा स्थं ऽ ऋतावृधंः ।
घृतश्च्युतों मधुश्च्युतों विराजो नामं कामदुघा ऽ अक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**ऋतवः**) यथा वसन्तादयस्तथा (**स्थ**) भवत (**ऋतावृधः**) या ऋतेन=जलेन नद्य इव सत्येन वर्द्धन्ते ताः । (**ऋतुष्ठाः**) या ऋतुषु वसन्तादिषु तिष्ठन्ति ताः (**स्थ**) भवत (**ऋतावृधः**) या ऋतं=सत्यं वर्धयन्ति ताः (**घृतश्च्युतः**) घृतमाज्यं श्च्युतं=निस्सृतं याभ्यस्ताः (**मधुश्च्युतः**) या मधुनो=मधुरात् रसात् प्राप्ताः (**विराजः**) विविधैर्गुणै राजमानाः=प्रकाशमानाः (**नाम**) प्रसिद्धाः (**कामदुघाः**) याः कामान् दुहन्ति=प्रपिपुरति ताः (**अक्षीयमाणाः**) क्षेतुमनर्हाः ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियः ! या यूयं ऋतवः स्थ या ऋतावृध ऋतुष्ठा ऋतावृधः स्थ याश्च यूयं घृतश्च्युतो मधुश्च्युतोऽक्षीयमाणा विराजः कामदुघा नाम धेनव इव स्थ ता अस्मान्सुखयत ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्त्रियः या यूयं ऋतवः** यथा वसन्तादयस्तथा **स्थ** भवत, **या ऋतावृधः** या ऋतेन=जलेन नद्य इव सत्येन वर्द्धन्ते ताः **ऋतुष्ठाः** या ऋतुषु वसन्तादिषु तिष्ठन्ति ताः **ऋतावृधः** या ऋतं=सत्यं वर्धयन्ति ताः **स्थ** भवत, **याश्च यूयं घृतश्च्युतः** घृतमाज्यं श्च्युतं=निस्सृतं याभ्यस्ताः **मधुश्च्युतः** या मधुनो=मधुरात् रसात् प्राप्ताः **अक्षीयमाणाः** क्षेतुमनर्हाः **विराजः** विविधैर्गुणै राजमानाः=प्रकाशमानाः **कामदुघा** याः कामान् दुहन्ति प्रपिपुरति ताः **नाम** प्रसिद्धा **धेनव इव स्थ** भवत, **ता अस्मान् सुखयत** ॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! जो तुम-(ऋतवः) वसन्त आदि ऋतुओं के समान (स्थ) हो, जो तुम—(ऋतावृधः) जल से नदियों के समान सत्य से बढ़ने वाली, (ऋतुष्ठाः) वसन्त आदि ऋतुओं में स्वस्थ रहने वाली और (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाली (स्थ) हो, जो तुम-(घृतश्च्युतः) घृत प्रदान करने वाली, (मधुश्च्युतः) मधुर रस=दूध के कारण प्राप्त हुई, (अक्षीयमाणाः) क्षय=ह्रास के अयोग्य, (विराजः) विविध गुणों से प्रकाशमान, (कामदुघाः) कामनाओं को पूरण करने वाली (नाम) प्रसिद्ध दुधारु गौवों के समान हो, सो हमें सुख प्रदान करो ॥ १७ । ३ ॥

[हे स्त्रियः ! या यूयं ऋतवः···धेनव इव स्थ, ता अस्मान् सुखयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा ऋतवो गावश्च स्वस्वसमयानुकूलतया सर्वान् प्राणिनः सुखयन्ति, तथैव सत्यस्त्रियः प्रतिसमयं स्वपत्यादीन् सर्वान् सन्तर्प्यानन्दयन्तु ॥ १७ । ३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक—लुप्तोपमा अलंकार है। जैसे—ऋतुएँ और गौवें अपने-अपने समय के अनुकूल सब प्राणियों को सुख प्रदान करती हैं वैसे ही श्रेष्ठ स्त्रियाँ प्रत्येक समय में अपने पति आदि सब श्रेष्ठ पुरुषों को तृप्त करके आनन्दित करें ॥ १७ । ३ ॥

भाष्यसार—१. **विदुषी स्त्रियों का व्यवहार**—विदुषी स्त्रियों में निम्न गुण होने चाहिए-(१) वसन्तादि ऋतुओं में स्वस्थ रहकर वसन्तादि ऋतुओं के समान पति आदि श्रेष्ठ पुरुषों को सुख देने वाली हों। (२) जैसे नदियाँ जल से बढ़ जाती हैं, वैसे ये सत्य के आश्रय से बढ़ने वाली हों।

(३) ऋतावृधः=सत्य को बढ़ाने वाली हों। (४) घृतश्च्युतः=घृतादि उत्तम पदार्थों को बढ़ाने वाली हों (५) मधुश्च्युतः=मधुर वाणी आदि के व्यवहार से मधुरता को बढ़ाने वाली हों। (६) निन्दादि से सदा दूर रह कर चिरजीवी होवें। (७) विराजः=विविध गुणों से प्रकाशमान हों। (८) कामदुघः=सब कामनाओं को पूरा करने वाली हों।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विदुषी स्त्रियाँ ऋतुओं और गायों के समान सबको सुख देने वाली हों ॥ १७ । ३ ॥

मेधातिथिः । **अग्निः**=**सभापतिः** । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

सभापतिना किं कार्यमित्युपदिश्यते ॥

सभापति को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स॒मु॒द्रस्य॑ त्वावक॒याग्ने॒ परि॑ व्ययामसि । पा॒व॒को ऽ अ॒स्मभ्य॑ᳬ शि॒वो भ॑व ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**समुद्रस्य**) अन्तरिक्षस्य मध्ये (**त्वा**) त्वाम् (**अवकया**) यया अवन्ति=रक्षन्ति तया क्रियया (**अग्ने**) अग्निवद् वर्त्तमानसभापते (**परि**) सर्वतः (**व्ययामसि**) प्राप्ताः स्मः (**पावकः**) पवित्रकारकः (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**भव**) ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! यथा वयं समुद्रस्यावकया सह वर्त्तमानं त्वा परिव्ययामसि तथा पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! अग्निवद् वर्त्तमानसभापते ! **यथा वयं समुद्रस्य** अन्तरिक्षस्य मध्ये **अवकया** यया अवन्ति=रक्षन्ति तया क्रियया **सह वर्त्तमानं त्वा** त्वां **परिव्ययामसि** सर्वतः प्राप्ताः स्मः, **तथा पावकः** पवित्रकारकः **त्वमस्मभ्यं शिवः** मङ्गलकारी **भव** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्ताव वाले सभापति ! जैसे हम—(समुद्रस्य) अन्तरिक्ष के मध्य में (अवकया) रक्षात्मक क्रिया से युक्त (त्वा) आपको (परिव्ययामसि) सब ओर से प्राप्त हैं, वैसे (पावकः) पवित्र करने वाले आप हमारे लिए (शिवः) मंगलकारी रहो ॥ १७ । ४ ॥

[हे अग्ने ! यथा वयं समुद्रस्यावकया सह वर्त्तमानं त्वा परिव्ययामसि, तथा पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा मनुष्याः समुद्रस्थान् जन्तून् रक्षित्वा सुखयन्ति तथा धार्मिको रक्षकः सभेशः स्वकीयाः प्रजाः संरक्ष्य सततं सुखयेत् ॥ १७ । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे मनुष्य समुद्रस्थ जन्तुओं की रक्षा करके सुख को प्राप्त करते हैं वैसे धार्मिक रक्षक सभापति अपनी प्रजा का संरक्षण करके सदा सुखी रखें ॥ १७ । ४ ॥

भा० पदार्थः—समुद्रस्य=समुद्रस्थान् जन्तून् । पावकः=धार्मिकः । शिवः=रक्षकः ॥

भाष्यसार—**१. सभापति का कर्त्तव्य**—अग्नि के तुल्य तेजस्वी, सबके साथ समान व्यवहार करने वाला, प्रजा का हितकारक, पवित्र करने वाला धार्मिक सभापति होना चाहिए।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे मनुष्य समुद्रस्थ जन्तुओं की रक्षा करके सुखों को प्राप्त करते हैं, वैसे ही सभापति प्रजा की रक्षा करके सुखी रहे ॥ १७ । ४ ॥

मेधातिथिः । **अग्निः**=सभेशः । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

सभापति को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परि व्ययामसि । पावको ऽ अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**हिमस्य**) शीतस्य (**त्वा**) त्वाम् (**जरायुणा**) जरायति येन जरायुस्तेन वस्त्रेणाग्निना वा (**अग्ने**) अग्निवत् तेजस्विन् (**परि**) सर्वतः (**व्ययामसि**) संवृणुमः (**पावकः**) पवित्रः (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) मङ्गलमयः (**भव**) ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे अग्ने सभेश ! वयं हिमस्य जरायुणा त्वा परिव्ययामसि पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** !=सभेश अग्निवत् तेजस्विन् ! **वयं हिमस्य** शीतस्य **जरायुणा** जरायति येन जरायुस्तेन वस्त्रेणाग्निना वा **त्वा** त्वां **परिव्ययामसि** सर्वतः [संवृणुमः], **पावकः** पवित्रः **त्वमस्मभ्यं शिवः** मङ्गलमयः **भव** ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी सभापति ! हम-(जरायुणा) जरा को दूर ले जाने वाले वस्त्र वा अग्नि से (त्वाम्) आपको (परिव्ययामसि) सब ओर से आच्छादित करते हैं, सो (पावकः) पवित्र करने वाले आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (शिवः) मङ्गलमय (भव) होवो ॥

[**हे अग्ने=सभेश ! वयं हिमस्य जरायुणा त्वा परिव्ययामसि**]

भावार्थः—हे सभेश ! यथाऽग्निर्वस्त्रं वा शीतातुरान् प्राणिनः शैत्याद् वियोज्य प्रसादयति—

भावार्थ—हे सभापति ! जैसे-अग्नि वा वस्त्र शीतातुर प्राणियों को शीत=सर्दी से वियुक्त करके प्रसन्न करता है,

[**पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव**]

तथैव त्वदाश्रिता वयं दुःखान्मुक्ताः सन्तः सुखभाजिनः स्याम ॥ १७ । ५ ॥

वैसे ही-उसके आश्रित हम लोग दुःख से मुक्त होकर सुखों का सेवन करने वाले होवें ॥

भाष्यसार—**सभापति का कर्त्तव्य**—स्वयं छल कपटादि मलों से रहित, तथा दूसरों को पवित्र भी करने से सभापति पावक (**अग्नि**) के समान पावक होता है। वह प्रजा का उसी प्रकार हित-सम्पादन करने वाला हो, जैसे अग्नि अथवा वस्त्र शीत पीड़ित प्राणी की सब ओर से ढककर रक्षा करता है ॥ १७ । ५ ॥ ●

मेधातिथिः । **अग्निः**=**विदुषी स्त्री** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ दम्पती कथं वर्त्तेयातामित्युपदिश्यते ॥

अब स्त्री पुरुष आपस में कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा ।
अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि ॥ ६ ॥

पदार्थः—(उप) (ज्मन्) ज्मनि=भूमौ । अत्र सुपां सुलुगिति सप्तम्येकवचनस्य लुक् । ज्मेति पृथिवीना० ॥ निघं० १ । १ ॥ (उप) (वेतसे) पदार्थविस्तारे (अव) (तर) (नदीषु) (आ) (अग्ने) वह्निरिव तेजस्विनि विदुषि ! (पित्तम्) तेजः (अपाम्) प्राणानां जलानां वा (असि) अस्ति (मण्डूकि) सुभूषिते (ताभिः) अद्भिः प्राणैर्वा (आ) (गहि) आगच्छ (सा) (इमम्) (नः) अस्माकम् (यज्ञम्) गृहाश्रमाख्यम् (पावकवर्णम्) अग्निवत्प्रकाशमानम् (शिवम्) कल्याणकारकम् (कृधि) कुरु ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ—(ज्मन्) यहाँ "सुपां सुलुक्०" सूत्र से सप्तमी एकवचन का लुक् हुआ है। निघण्टु १ । १ । में ज्मन् शब्द पृथिवी के नामों में पढ़ा है ।

अन्वयः—हे अग्ने वह्निरिव विदुषि मण्डूकि स्त्रि ! त्वं ज्मन् नदीषु वेतसेऽवतर यथाऽग्निरपां पित्तमसि तथा त्वं ताभिरुपागहि सा त्वं न इमं पावकवर्णं यज्ञं शिवमुपाकृधि ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=वह्निरिव **विदुषि** वह्निरिव तेजस्विनि विदुषि **मण्डूकि** सुभूषिते **स्त्रि** ! **त्वं ज्मन्** ज्मनि=भूमौ **नदीषु वेतसे** पदार्थविस्तारे **अवतर** ।

यथाऽग्निरपां प्राणानां जलानां वा **पित्तं** तेजः **असि** अस्ति, **तथा त्वं ताभिः** अद्भिः प्राणैर्वा **उपागहि** आगच्छ ।

सा त्वं नः अस्माकम् **इमं पावकवर्णम्** अग्निवत्प्रकाशमानं **यज्ञं** गृहाश्रमाख्यं **शिवं** कल्याणकारकम् **उपाकृधि** कुरु ॥ १७ । ६ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विनी विदुषी, (मण्डूकि) सुभूषित स्त्री ! तू—(ज्मन्) भूमि पर (नदीषु) नदियों में (वेतसे) पदार्थों के विस्तार के लिए (अवतर) उतर ।

जैसे—अग्नि (अपाम्) प्राणों वा जलों का (पित्तम्) तेज (असि) है, वैसे तू—(ताभिः) उन जल वा प्राणों के सहित (उपागहि) प्राप्त हो ।

सो तू—(नः) हमारे इस (पावकवर्णम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (यज्ञम्) गृहाश्रम रूप यज्ञ को (शिवम्) कल्याणकारक (उपाकृधि) बना ।

[हे अग्ने !···त्वं···यज्ञं शिवमुपाकृधि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ स्त्रीपुरुषौ गृहाश्रमे प्रयत्नेन सर्वाणि कार्याणि संसाध्य, शुद्धाचरणेन कल्याणं प्राप्नुयाताम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ स्त्री-पुरुष—गृहाश्रम में प्रयत्न से सब कार्यों को सिद्ध करके शुद्धाचरण से कल्याण को प्राप्त करें ॥

भा० पदार्थः—शिवम्=शुद्धाचरणं, कल्याणम् ।

भाष्यसार—१. **विदुषी स्त्रियों का धर्म**—अग्नि के समान तेजस्विनी, सद्गुणादि से अलंकृता नदियों की तरह कार्यों में गतिशीला (**प्रवाहयुक्ता**) होकर विदुषी स्त्रियाँ गृहस्थ रूपी यज्ञ को कल्याणकारी बनावें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विदुषी स्त्रियाँ अग्नि के समान होकर नदियों की भांति गृहस्थ के कार्यों को करें ॥ १७ । ६ ॥

मेधातिथिः । **अग्निः**=**विद्वान् गृहस्थः** । आर्षी बृहती । मध्यमः ।

गृहस्थेन किं कार्यमित्याह ॥

गृहस्थ को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अपामिदं न्ययनꣳ समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्याँस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानां प्राणानां वा (**इदम्**) अन्तरिक्षम् (**न्ययनम्**) निश्चितमयनं=स्थानम् (**समुद्रस्य**) सागरस्य (**निवेशनम्**) निविशन्ति यस्मिंस्तत् (**अन्यान्**) (**ते**) तव (**अस्मत्**) अस्माकं सकाशात् (**तपन्तु**) दुःखयन्तु (**हेतयः**) वज्रा वृद्धयो वा (**पावकः**) पवित्रकारी (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) सुखप्रदः (**भव**) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यदिदमपां न्ययनमस्ति तस्य समुद्रस्य निवेशनमिव गृहाश्रमं प्राप्य पावकः संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव ते हेतयोऽस्मदन्यांस्तपन्तु ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यदिदम्** अन्तरिक्षम् **अपां** जलानां प्राणानां वा **न्ययनं** निश्चितमयनं=स्थानम् **अस्ति, तस्य समुद्रस्य** सागरस्य **निवेशनं** निविशन्ति यस्मिंस्तद् **इव गृहाश्रमं प्राप्य पावकः** पवित्रकारी **संस्त्वमस्मभ्यं शिवः** सुखप्रदः **भव** ।

ते तव **हेतयः** वज्रा वृद्धयो वा **अस्मद्** अस्माकं सकाशाद् **अन्यांस्तपन्तु** दुःखयन्तु ॥ १७ । ७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (इदम्) यह अन्तरिक्ष=आकाश (अपाम्) जलों वा प्राणों का (न्ययनम्) निश्चित स्थान है, उस (समुद्रस्य) सागर के (निवेशनम्) घर के समान गृहाश्रम को प्राप्त करके, (पावकः) पवित्र करने वाला होकर तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शिवः) सुखदायक (भव) बन । और—

(ते) तेरे (हेतयः) वज्र वा वृद्धियाँ (अस्मद्) हमसे (अन्यान्) भिन्न दुष्टों को (तपन्तु) दुःख देवें ॥ १७ । ७ ॥

[अपां न्ययनं, समुद्रस्य निवेशनमिव गृहाश्रमं प्राप्य ··· शिवो भव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्या—यथाऽपामाधारः सागरः, समुद्रस्याधिष्ठानं भूमिः, भूमेरधिष्ठानमन्तरिक्षं तथा गार्हपत्यपदार्था-नामाधारं गृहं निर्माय मङ्गलमाचर्य,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचक-लुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्यों को चाहिए कि वे—जैसे जलों का आधार सागर है, समुद्र का आधार भूमि है, भूमि का आधार अन्तरिक्ष है, वैसे गृहस्थ के पदार्थों का आधार घर है उसका निर्माण कर, मङ्गलमय आचरण करके—

[ते हेतयोऽस्मदन्याँस्तपन्तु]

श्रेष्ठपालनं दस्युताडनं च कुर्वन्तु ॥ १७ । ७ ॥

श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों का ताड़न करें ।

भा० पदार्थः—अन्यान्=दस्यून् । तपन्तु=ताडनं कुर्वन्तु ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् गृहस्थ का कर्त्तव्य**—विद्वान् गृहस्थी ऐसे उन्नति के साधन, पवित्र और सुखदायक घर का निर्माण करें, जो गृहस्थ के सब पदार्थों का आधार होकर मंगलमय हो । और उसमें रहकर दुर्गुणों का त्याग और सुगुणों की वृद्धि किया करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे जलों का आधार सागर है, वैसे ही गृहस्थ के कार्यों का आधार घर होता है ॥ १७ । ७ ॥

वसुयुः । **अग्निः**=आप्तविद्वान् । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

आप्तैर्विद्वद्भिः किं कार्य्यमित्याह ॥

आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्याप्रकाशकोपदेशक (**पावक**) जनान्तःकरणशोधक ! (**रोचिषा**) प्रकाशेन (**मन्द्रया**) आनन्दसाधिकया (**देव**) कमनीय (**जिह्वया**) सत्यप्रियया वाचा (**आ**) (**देवान्**) विदुषो दिव्यगुणान् वा (**वक्षि**) उपदिशसि (**यक्षि**) संगच्छसे । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (**च**) ॥ ८ ॥

प्रमाणार्थ—(**यक्षि**) यहाँ 'बहुलं छन्दसि' सूत्र से शप् प्रत्यय का लुक् हुआ है ।

अन्वयः—हे पावक देवाग्ने ! त्वं मन्द्रया जिह्वया रोचिषा देवानावक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **पावक** ! जनान्तःकरणशोधक ! **देव** ! कमनीय ! **अग्ने** ! विद्याप्रकाशकोपदेशक ! **त्वं मन्द्रया** आनन्दसाधिकया **जिह्वया** सत्यप्रियया वाचा **रोचिषा** प्रकाशेन **देवान्** विदुषो दिव्यगुणान् वा **आवक्षि** उपदिशसि **यक्षि** सङ्गच्छसे **च** ॥ १७ । ८ ॥

भाषार्थ—हे (पावक) लोगों के अन्तःकरण को शुद्ध करने वाले, (देव) कामना करने योग्य, (अग्ने) विद्या के प्रकाशक और उपदेशक आप्त विद्वान् ! तू—(मन्द्रया) आनन्द की साधक (जिह्वया) सत्यप्रिय वाणी से, (रोचिषा) विद्या-प्रकाश से (देवान्) विद्वानों वा दिव्यगुणों का (आवक्षि) उपदेश करता है (च) और (यक्षि) संग करता है ॥ १७ । ८ ॥

[हे...अग्ने त्वं...देवानावक्षि यक्षि च]

भावार्थः—यथा सूर्यः स्वप्रकाशेन सर्वं जगद् रोचयति, तथैवाप्तोपदेशकाः सर्वान् जनान् प्रीणीयुः ॥ १७ । ८ ॥

भावार्थ—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही आप्त उपदेशक लोग सब जनों को तृप्त करें ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=सूर्य/उपदेशक ॥ देवान्=सर्वं जगत्/सर्वान् जनान् ।

भाष्यसार—**आप्त विद्वानों का परम कर्त्तव्य**—स्वयं पवित्र और दूसरों को पवित्र करने वाले, दिव्यगुणों से सम्पन्न, सूर्य की भाँति विद्या के प्रकाशक तथा उपदेष्टा आप्त पुरुष आनन्द-प्रद, सत्य तथा मधुर वाणी से और विद्या-प्रकाश से दिव्य गुणों का उपदेश किया करें ॥ १७ । ८ ॥

मेधातिथिः । **अग्निः**=आप्तविद्वान् । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

आप्त विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽ इहावह । उप यज्ञꣳ हविश्च नः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(सः) विद्वान् (नः) अस्मभ्यम् (**पावक**) पवित्र (**दीदिवः**) तेजस्विन् शत्रुदाहक वा । दीदयतिर्ज्वलतिकर्मा० ॥ निघं० १ । १६ ॥ अत्र तुजादीनामित्यभ्यासस्य दीर्घः (**अग्ने**) सत्यासत्यविभाजक

(**देवान्**) विदुषः (**इह**) (**आ**) (**वह**) (**उप**) (**यज्ञम्**) गृहाश्रमम् (**हविः**) हुतं द्रव्यम् (**च**) (**नः**) अस्मभ्यम् ॥ ६ ॥

प्रमाणार्थ--(दीदिवः) इसमें दीदयति धातु है और निघण्टु १ । १६ में ज्वलति क्रिया के अर्थ में पाठ किया है । यहाँ 'तुजादीनाम्' इस सूत्र से अभ्यास को दीर्घ हुआ है ।

अन्वयः—हे पावक दीदिवोऽग्ने ! स त्वं यथाऽयमग्निर्नो हविरावहति तथेह यज्ञं देवांश्च न उपावह ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **पावक** पवित्र **दीदिवः** तेजस्विन् शत्रुदाहक वा **अग्ने** ! सत्यासत्य-विभाजक ! **सः** विद्वान् **त्वं** **यथाऽयमग्निर्नः** अस्मभ्यं **हविः** हुतं द्रव्यम् **आवहति, तथेह यज्ञं** गृहाश्रमं **देवान्** विदुषः **च नः** अस्मभ्यम् **उप+आ-वह** ॥

भाषार्थ—हे (पावक) पवित्र, (दीदिवः) तेजस्वी वा शत्रुओं के दाहक, (अग्ने) सत्य और असत्य के विभाजक आप्त विद्वान् ! (सः) सो तू-जैसे यह अग्नि (नः) हमारे लिए (हविः) होम किए द्रव्य को (आवहति) प्राप्त कराती है, वैसे (इह) यहाँ (यज्ञम्) गृहाश्रम (च) और (देवान्) विद्वानों को (नः) हमारे लिए (उप+आवह) प्राप्त करा ॥ १७ । ६ ॥

[हे···अग्ने स त्वं यथा ऽयमग्निर्नो हविरावहति, तथेह यज्ञं देवाँश्च···उपावह]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा सूर्यादिरूपेणायमग्निः सर्वेभ्यो रसमूर्ध्वं नीत्वा वर्षयित्वा दिव्यानि सुखानि जनयति, तथैव विद्वांसो विद्यारसमुन्नतं कृत्वा सर्वाणि सुखानि जनयेयुः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे-सूर्य आदि के रूप में यह अग्नि सब मनुष्यों के लिए-रस को ऊपर ले जाकर वर्षा करके दिव्य सुखों को उत्पन्न करता है, वैसे ही आप्त विद्वान् विद्या-रस को उन्नत करके सब सुखों को उत्पन्न करें ॥ १७ । ६ ॥

भाष्यसार—१. **आप्त विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य**—पवित्रात्मा, तेजस्वी, अग्नि के समान सत्य और असत्य के निर्णायक आप्त पुरुष गृहस्थ आश्रम, दिव्य गुणों को उसी तरह प्राप्त करावें, जैसे अग्नि होम किये द्रव्यों को प्राप्त कराती है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । अग्नि के तुल्य विद्वान् विद्यारस को प्राप्त कराकर सुखों को बढ़ावें ॥ १७ । ६ ॥

भारद्वाजः । **अग्निः**=सेनापतिः । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

सेनापतिना कथम्भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

सेनापति को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच ऽ उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण ऽ आ यो घृणे न ततृषाणो ऽ अजरः ॥ १० ॥

पदार्थः—(**पावकया**) पवित्रकारिकया (**यः**) (**चितयन्त्या**) चेतनतायाः कर्त्र्या (**कृपा**) सामर्थ्येन (**क्षामन्**) क्षामनि=राज्यभूमौ । क्षामेति पृथिवीना० ॥ निघं० १ । १ ॥ (**रुरुचे**) रोचते (**उषसः**)

प्रभाताः (न) इव (भानुना) दीप्तया (तूर्वन्) हिंसन् (न) इव (यामन्) यामनि=मार्गे प्रहरे वा (एतशस्य) अश्वस्य सम्बन्धीनि बलानि । एतश इत्यश्वना० ॥ निघं० १ । १४ ॥ (नु) क्षिप्रम् । (रणे) (आ) (यः) (घृणे) प्रदीप्ते (न) इव (ततृषाणः) पिपासितः (अजरः) जरारहितः ॥ १० ॥

प्रमाणार्थ—(क्षामन्) यहाँ क्षामन् शब्द निघण्टु १ । १ में पृथिवी के नामों में पढ़ा है। (एतशस्य) यहाँ 'एतश' शब्द अश्ववाचक है । निघण्टु १ । १४ में इसका अश्व के नामों में पाठ है ।

अन्वयः—यः पावकया चितयन्त्या कृपा सह वर्त्तमानः सेनापतिर्भानुनोषसो न क्षामन् रुरुचे या वा यामन्नेतशस्य नु तूर्वन् न घृणे रणे ततृषाणो नाजर आरुरुचे स राज्यङ्कर्तुमर्हति ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—**यः पावकया** पवित्रकारिकया **चितयन्त्या** चेतनतायाः कर्त्र्या **कृपा** सामर्थ्येन **सह वर्त्तमानः सेनापतिर्भानुना** दीप्त्या **उषसः** प्रभाताः **न** इव **क्षामन्** क्षामनि=राज्यभूमौ **रुरुचे** रोचते,

यो वा यामन् यामनि=मार्गे प्रहरे वा **एतशस्य** अश्वस्य सम्बन्धीनि बलानि **नु** क्षिप्रं **तूर्वन्** हिंसन् **न** इव **घृणे** प्रदीप्ते **रणे ततृषाणः** पिपासितो **न** इव **अजरः** जरारहितः **आरुरुचे** रोचते, **स राज्यङ्कर्त्तुमर्हति** ॥ १७ । १० ॥

भाषार्थ—जो—(पावकया) पवित्र करने वाली, (चितयन्त्या) चेतना उत्पन्न करने वाली (कृपा) कृपा से युक्त सेनापति (भानुना) दीप्ति=तेज से (उषसः) प्रभात वेला के (न) समान (क्षामन्) राज्यभूमि में (रुरुचे) चमकता है,

अथवा जो—(यामन्) मार्ग वा उचित समय में (एतशस्य) अश्व सम्बन्धी सेनाओं का (नु) शीघ्र (तूर्वन्) हिंसन करने वाले व्यक्ति के (न) समान (घृणे) प्रचण्ड (रणे) रण में (ततृषाणः) प्यासे व्यक्ति के (न) समान, (अजरः) युवा पुरुष (आ+रुरुचे) सब ओर चमकता है वह राज्य कर सकता है ॥ १७ । १० ॥

[यः ··· सेनापतिर्भानुनोषसो न ··· रुरुचे]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा सूर्यश्चन्द्रश्च दीप्तया सुशोभेते, तथैवोत्तमया स्त्रिया सुपतिः, सेनया सेनापतिश्च सुप्रकाशते ॥१७।१०॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जैसे—सूर्य और चन्द्र दीप्ति से सुशोभित हैं वैसे ही उत्तम स्त्री के साथ श्रेष्ठ पति और सेना के साथ सेनापति सुशोभित होता है ॥ १७ । १० ॥

भाष्यसार—**१. सेनापति कैसा हो ?**—सेनापति पवित्रता तथा चेतना उत्पन्न करने वाली कृपा से युक्त होकर राज्य में और युद्धभूमि में शत्रुओं के अश्वादि को प्रचण्डवेग से मारता हुआ सब ओर चमकने वाला युवा पुरुष होना चाहिए ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । प्रभात वेला में सूर्य की तरह चमकने वाला, शत्रु के प्रति प्यासे के समान हिंसक होकर बढ़ने वाला हो ॥ १७ । १० ॥ ●

लोपामुद्रा । **अग्निः=सभापतिः (न्यायाधीशः)** ॥ भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

न्यायाधीशेन कथं भवितव्यमित्याह ॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽ अस्त्वर्चिषे ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यथं शिवो भव ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**नमः**) सत्करणम् (**ते**) तुभ्यम् (**हरसे**) यो दुःखं हरति तस्मै (**शोचिषे**) पवित्राय (**नमः**) (**ते**) (**अस्तु**) (**अर्चिषे**) पूज्याय (**अन्यान्**) भिन्नान् शत्रून् (**ते**) तव (**अस्मत्**) (**तपन्तु**) सन्तापयन्तु (**हेतयः**) वज्रादिशस्त्रास्त्रयुक्ताः सेनाः (**पावकः**) शोधकः (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) न्यायकारी (**भव**) ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे सभापते ! ते हरसेऽस्मत्कृतं नमोऽस्तु शोचिषेऽर्चिषे तेऽस्मत्प्रयुक्तं नमोऽस्तु यास्ते हेतयस्ता अस्मदन्याँस्तपन्तु पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सभापते ! **ते** तुभ्यं **हरसे** यो दुःखं हरति तस्मै **अस्मत्कृतं नमः** सत्करणम् **अस्तु**।

शोचिषे पवित्राय **अर्चिषे** पूज्याय **ते** तुभ्यं **अस्मत्प्रयुक्तं नमः** सत्करणम् **अस्तु**।

यास्ते तव **हेतयः** वज्रादिशस्त्रास्त्रयुक्ताः सेनाः **ता अस्मदन्यान्** भिन्नान् शत्रून् **तपन्तु** सन्तापयन्तु।

पावकः शोधकः **त्वमस्मभ्यं शिवः** न्यायकारी **भव** ॥ १७ । ११ ॥

भाषार्थ—हे सभापति ! (ते) तुझ (हरसे) दुःख को हरण करने वाले को हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) सत्कार प्राप्त हो। और—

(शोचिषे) पवित्र, (अर्चिषे) पूज्य (ते) तुझको हमारा (नमः) सत्कार (अस्तु) प्राप्त हो।

जो (ते) तेरी (हेतयः) वज्र आदि शस्त्र-अस्त्रों से युक्त सेनाएँ हैं वे (अस्मद्) हमसे (अन्यान्) भिन्न शत्रुओं को (तपन्तु) सन्ताप युक्त करें। और—

(पावकः) शुद्ध करने वाला तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शिवः) न्यायकारी (भव) हो ॥ १७ ॥

[हे सभापते !······**पावकस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव, ते हेतयो**······**अस्मदन्यान् तपन्तु**]

भावार्थः—मनुष्यैः पवित्रान् जनान् न्यायाधीशान् कृत्वा दुष्टान् निवार्य सत्यो न्यायः प्रकाशयितव्यः ॥ १७ । ११ ॥

भावार्थ—मनुष्य—पवित्र जनों को न्यायाधीश बनाकर, दुष्टों का निवारण कर, सच्चे न्याय को प्रकाशित करें ॥ १७ । ११ ॥

भा० पदार्थः—पावकः=पवित्रो जनः। अन्यान्=दुष्टान्।

भाष्यसार—**न्यायाधीश कैसा होना चाहिए ?**—न्यायाधीश स्वयं पवित्र, निष्पक्ष न्याय वितरण से सत्कार के योग्य, दुःखनिवारण की भावना से काम करने वाला, और न्यायकारी होना चाहिए। उसकी न्यायपूर्ण आज्ञाएँ दुष्टों का विघात करने वाली हों ॥ १७ । ११ ॥ ●

लोपामुद्रा। **अग्निः=सभेशः (न्यायाधीशः)**। निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

न्यायाधीश को कैसा होना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**नृषदे**) यो नायकेषु सीदति तस्मै (**वेट्**) यो न्यायासने विशति सः। **अत्र विशधातोरन्येभ्योऽपि दृश्यन्त इति विच् प्रत्ययः** (**अप्सुषदे**) यो जलेषु नौकादिषु सीदति तस्मै (**वेट्**) (**बर्हिषदे**) **यः** प्रजाया वर्धके व्यवहारे तिष्ठति तस्मै (**वेट्**) अधिष्ठाता (**वनसदे**) यो वनेषु सीदति तस्मै (**वेट्**) (**स्वर्विदे**) यः सुखं वेत्ति तस्मै (**वेट्**) ॥ १२ ॥

प्रमाणार्थ—(**वेट्**) यहाँ 'विश्' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' सूत्र से विच् प्रत्यय हुआ है।

अन्वयः—हे सभेश ! त्वं नृषदे वेड् भवाप्सुषदे वेड् भव । बर्हिषदे वेड् भव वनसदे वेड् भव स्वर्विदे च वेड् भव ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश ! त्वं नृषदे** यो नायकेषु सीदति तस्मै **वेड्** यो न्यायासने विशति सः **भव, अप्सुषदे** यो जलेषु=नौकादिषु सीदति तस्मै **वेड् भव, बर्हिषदे** यः प्रजाया वर्धके व्यवहारे तिष्ठति तस्मै **वेड्** अधिष्ठाता **भव, वनसदे** यो वनेषु सीदति तस्मै **वेड् भव, स्वर्विदे** यः सुखं वेत्ति तस्मै **वेड् भव** ॥ १७ । १२ ॥

भाषार्थ—हे सभापति ! तू—(नृषदे) नायकों में बैठने वाले पुरुष के लिए (वेट्) न्यायासन पर बैठने वाला=न्यायाधीश (भव) बन, (अप्सुषदे) नौका आदि में बैठने वाले के लिए (वेट्) न्यायाधीश (भव) बन, (बर्हिषदे) प्रजा के बढ़ाने वाले व्यवहार में विद्यमान पुरुष के लिए (वेट्) अधिष्ठाता=न्यायाधीश (भव) बन, (वनसदे) वनों में रहने वाले पुरुष के लिए (वेट्) न्यायाधीश (भव) बन, (स्वर्विदे) सुख के वेत्ता पुरुष के लिए (वेट्) न्यायाधीश (भव) बन ॥ १७ । १२ ॥

[हे सभेश ! त्वं वेट् अप्सुषदे, बर्हिषदे, वनसदे, नृषदे, स्वर्विदे वेड् भव]

भावार्थः—यस्मिन् देशे न्यायाधीश-नौयायि - प्रजावर्द्धक - अरण्यस्थ-नायक - सुखप्रापका विद्वांसो भवन्ति, तत्रैव सर्वाणि सुखानि वर्द्धन्ते ॥

भावार्थ—जिस देश में न्यायाधीश, नौका से यात्रा करने वाले, प्रजा के वर्द्धक, अरण्य में रहने वाले, नेता, सुखों के प्रापक विद्वान् होते हैं वहीं सब सुख बढ़ते हैं ॥ १७ । १२ ॥

भा० पदार्थः—वेट्=न्यायाधीशः । अप्सुषदे=नौयायिने **(विदुषे)** । बर्हिषदे=प्रजावर्द्धकाय । वनसदे=अरण्यस्थाय । नृषदे=नायकाय । स्वर्विदे=सुखप्रापकाय ।

भाष्यसार—**न्यायाधीश कैसा हो ?**—न्यायासन पर बैठने वाला न्यायाधीश वन में रहने वाली, नौकादि के द्वारा यात्रा करने वाली, और नगरों में निवास करने वाली प्रजा के व्यवहार में निष्पक्ष न्याय के कारण सबसे सम्मान प्राप्त होना चाहिए ॥ १७ । १२ ॥

लोपामुद्रा । **प्राणः=संन्यासी** । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

अथ संन्यासिभिः किं कार्यमित्याह ॥

अब संन्यासियों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये दे॒वा दे॒वानां॑ य॒ज्ञिया॑ य॒ज्ञिया॑नाᳫं संवत्स॒रीण॒मुप॑ भा॒गमास॑ते ।
अ॒हु॒ताद॑ो ह॒विषो॑ य॒ज्ञे ऽ अ॒स्मिन्त्स्व॒यं पि॑बन्तु मधु॑नो घृ॒तस्य॑ ॥ १३ ॥

पदार्थः—(ये) **(देवाः)** विद्वांसः **(देवानाम्)** विदुषाम् **(यज्ञियाः)** ये यज्ञमर्हन्ति ते **(यज्ञियानाम्)** यज्ञसम्पादनकुशलानाम् **(संवत्सरीणम्)** यः संवत्सरं भृतस्तम् । **संपरिपूर्वात् ख च ॥ अ० ५ । १ । ९२ ॥ इति भृतार्थे खः (उप) (भागम्)** सेवनीयम् **(आसते) (अहुतादः)** येऽहुतमदन्ति ते **(हविषः)** होतव्यस्य **(यज्ञे)** संगन्तव्ये **(अस्मिन्) (स्वयम्) (पिबन्तु) (मधुनः)** क्षौद्रस्य **(घृतस्य)** आज्यस्य जलस्य वा ॥ १७ । १३ ॥

प्रमाणार्थ—**(संवत्सरीणम्)** यहाँ 'संपरिपूर्वात् ख च' अ० ५ । १ । ९२ सूत्र से भृतार्थ में 'ख' प्रत्यय हुआ है ॥

अन्वयः—ये देवानां मध्येऽहुतादो देवा यज्ञियानां मध्ये यज्ञिया विद्वांसः संवत्सरीणं भागमुपासते तेऽस्मिन् यज्ञे मधुनो घृतस्य हविषो भागं स्वयं पिबन्तु ॥ १७ । १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये देवानां** विदुषां **मध्येऽहुतादः** येऽहुतमदन्ति ते **देवाः** विद्वांसः, **यज्ञियानां** यज्ञसम्पादनकुशलानां **मध्ये यज्ञियाः**=ये यज्ञमर्हन्ति ते **विद्वांसः**, **संवत्सरीणं** यः संवत्सरं भृतस्तं **भागं** सेवनीयम् **उपासते**, **तेऽस्मिन् यज्ञे** सङ्गन्तव्ये **मधुनः** क्षौद्रस्य **घृतस्य** आज्यस्य जलस्य वा **हविषः** होतव्यस्य **भागं** सेवनीयं **स्वयं पिबन्तु** ॥ १७ । १३ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों में (अहुतादः) विना होम के भोजन करने वाले (देवाः) विद्वान् संन्यासी हैं, तथा (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने वालों में कुशल लोगों में (यज्ञियाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् हैं वे (संवत्सरीणम्) वर्ष भर में तैयार हुए (भागम्) सेवन करने योग्य पदार्थों का (उपासते) सेवन करते हैं वे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (मधुनः) मधु (घृतस्य) घृत वा जल, (हविषः) होम के योग्य द्रव्य के (भागम्) भाग का (स्वयम्) आप (पिबन्तु) पान करें ॥ १७ । १३ ॥

[ये देवानां मध्येऽहुतादो देवा···]

भावार्थः—येऽस्मिन् संसारे अनग्नयोऽर्थादाहवनीय-गार्हपत्य-दक्षिणाग्निसम्बन्धिबाह्यकर्माणि विहायान्तरग्नयः संन्यासिनः सन्ति ते होमम‌कुर्वन्तो भुञ्जानाः, सर्वत्र विहृत्य सर्वान् जनान् वेदार्थान् बोधयेयुः ॥ १७ । १३ ॥

भावार्थ—जो इस संसार में अनग्नि अर्थात् आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि सम्बन्धी बाह्य कर्मों को छोड़कर अन्तरग्नि संन्यासी हैं, वे होम को न करते हुए भोजन करके सर्वत्र भ्रमण करके सब लोगों को वेदार्थ का बोध करावें ॥ १७ । १३ ॥

भा० पदार्थः—अहुतादः=होमम‌कुर्वन्तो भुञ्जानाः (**संन्यासिनः**) ॥

भाष्यसार—**संन्यासियों का कर्त्तव्य**—संन्यासी यज्ञ करने वाले विद्वानों से भी सम्माननीय होते हैं। वे स्वयं बाह्य होम न करते हुए, भ्रमण करके वेदार्थ का उपदेश करते हुए, हवनीय घृतादि पदार्थों का भोग किया करें ॥ १७ । १३ ॥

लोपामुद्रा । **प्राणः=उत्तमविद्वान्** । आर्षी जगती । निषादः ॥

अथोत्तमा विद्वांसः कीदृशा भवन्तीत्याह ॥

अब उत्तम विद्वान् लोग कैसे होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

ये दे॒वा दे॒वेष्वधि॑ दे॒व॒त्वमाय॒न्ये ब्रह्म॑णः पुरऽए॒तारो॑ ऽ अ॒स्य ।
येभ्यो॒ न ऽ ऋ॒ते पव॑ते॒ धाम॒ किं च॒न न ते दि॒वो न पृ॑थि॒व्या ऽ अधि॒ स्नुषु॑ ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**ये**) (**देवाः**) पूर्णविद्वांसः (**देवेषु**) विद्वत्सु (**अधि**) उपरि विराजमानाः (**देवत्वम्**) विदुषां कर्म भावं वा (**आयन्**) प्राप्नुवन्ति (**ये**) (**ब्रह्मणः**) परमेश्वरस्य (**पुरएतारः**) पूर्वं प्राप्तारः (**अस्य**) (**येभ्यः**) (**न**) निषेधे (**ऋते**) विना (**पवते**) पवित्रीभवति (**धाम**) दधति सुखानि यस्मिंस्तत् (**किम्**) (**चन**) (**न**) (**ते**) विद्वांसः (**दिवः**) सूर्यस्य (**न**) (**पृथिव्याः**) भूमेः (**अधि**) (**स्नुषु**) प्रान्तेषु ॥ १४ ॥

अन्वयः—ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् येऽस्य ब्रह्मणः पुरएतारः सन्ति येभ्य ऋते किं चन धाम न पवते ते न दिवः स्नुषु न च पृथिव्याः अधि स्नुष्वायन् नाधिवसन्तीति यावत् ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये देवाः** पूर्णविद्वांसः **देवेषु** विद्वत्सु **अधि** उपरि विराजमानाः **देवत्वं** विदुषां कर्म भावं वा **आयन्** प्राप्नुवन्ति, **येऽस्य ब्रह्मणः** परमेश्वरस्य **पुर एतारः** पूर्वं प्राप्तारः **सन्ति, येभ्य ऋते** विना **किं चन धाम** दधति सुखानि यस्मिंस्तत् **न पवते** पवित्री-भवति, ते विद्वांसः **न दिवः** सूर्यस्य **स्नुषु** प्रान्तेषु, **न च पृथिव्याः** भूमेः **अधि** उपरि विराजमानाः **स्नुषु** प्रान्तेषु **आयन्** प्राप्नुवन्ति, **नाधिवसन्तीति यावत्** ॥ १७ । १४ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (देवाः) पूर्ण विद्वान् (देवेषु) विद्वानों में (अधि) ऊपर विराजमान होकर (देवत्वम्) विद्वानों के कर्म वा भाव को (आयन्) प्राप्त करते हैं, (ये) जो (अस्य) इस (ब्रह्मणः) परमेश्वर को (पुर एतारः) पूर्व प्राप्त करने वाले हैं, (येभ्यः) जिनके (ऋते) विना (किंचन) कोई (धाम) सुख का स्थान (न) नहीं (पवते) पवित्र होता है, (ते) वे विद्वान् (न) नहीं (दिवः) सूर्य के (स्नुषु) प्रान्तों में (न च) और न ही (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर विराजमान (स्नुषु) प्रान्तों में (आयन्) प्राप्त होते हैं अर्थात् निवास नहीं करते, सर्वत्र विचरते हैं ॥ १७ । १४ ॥

[ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्]

भावार्थः—येऽत्र जगति विद्वत्तमाः,

भावार्थ—जो इस जगत् में अत्युत्तम विद्वान्,

[येऽस्य ब्रह्मणः पुर एतारः सन्ति]

योगाधिराजाः, याथातथ्येन परमेश्वरं जानन्ति,

योगिराज, यथार्थ रूप में परमेश्वर को जानते हैं,

[येभ्यः ऋते किंचन धाम न पवते]

ते निखिलजनशोधकाः सन्तः, जीवन्मुक्ति-दशायां परोपकारमाचरन्तः,

वे—सब लोगों को पवित्र करने वाले होकर, जीवन्मुक्ति की अवस्था में परोपकार करते हुए और—

[ते न दिवः स्नुषु, न च पृथिव्यां ···]

विदेहमुक्तिदशायां न सूर्यलोके न च पृथिव्यां नियतं वसन्ति, किन्तु ब्रह्मणि स्थित्वाऽव्याहतगत्या सर्वत्राभिविहरन्ति ॥ १७ । १४ ॥

विदेह-मुक्ति की अवस्था में न सूर्यलोक में और न ही पृथिवी पर नियत रूप में रहते हैं किन्तु ब्रह्म में स्थित होकर अव्याहत=अबाध गति से सर्वत्र विहार करते हैं ॥ १७ । १४ ॥

भा० पदार्थः—देवाः=विद्वत्तमाः । दिवः=सूर्यलोकस्य ।

भाष्यसार—**उत्तम विद्वान् कैसे होते हैं ?**—जो विद्वानों में भी श्रेष्ठ, सर्वोपरि विराजमान हैं, जिन्होंने परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है, वे ब्रह्मस्थित उत्तम विद्वान् सूर्यादि लोक-लोकान्तरों में अबाध-गति से भ्रमण करते हुए, सब स्थानों को पवित्र करते रहते हैं ॥ १७ । १४ ॥

लोपामुद्रा । **अग्निः**=**विद्वान्, राजा च** । विराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

विद्वद्राजानौ कीदृशौ स्यातामित्याह ॥

विद्वान् और राजा कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

प्राणदा ऽ अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽ अस्मभ्यᳫं शिवो भव ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**प्राणदाः**) याः प्राणं=जीवनं बलं च ददति ताः (**अपानदाः**) या अपानं=दुःख-दूरीकरणसाधनं प्रयच्छन्ति ताः (**व्यानदाः**) या व्याप्तिविज्ञानं ददति (**वर्चोदाः**) सकलविद्याध्ययनप्रदाः (**वरिवोदाः**) सत्यधर्मविद्वत्सेवाप्रापिकाः (**अन्यान्**) (**ते**) तव (**अस्मत्**) (**तपन्तु**) (**हेतयः**) वज्रवद्वर्त्तमानाः शस्त्रास्त्रोन्नतयः (**पावकः**) शुद्धिप्रचारकः (**अस्मभ्यम्**) (**शिवः**) (**भव**) ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् राजन् ! ते तव या अस्मभ्यं प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदा हेतयो भूत्वाऽस्मदन्यांस्तपन्तु ताभिः पावकः संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् राजन् ! **ते**=**तव या अस्मभ्यं प्राणदाः** याः प्राणं=जीवनं बलं च ददति ताः **अपानदाः** या अपानं=दुःखदूरीकरणसाधनं प्रयच्छन्ति ताः **व्यानदाः** या व्याप्तिविज्ञानं ददति **वर्चोदाः** सकलविद्याध्ययनप्रदाः **वरिवोदाः** सत्यधर्मविद्वत्सेवाप्रापिकाः **हेतयः** वज्रवद्वर्त्तमानाः शस्त्रास्त्रोन्नतयः **भूत्वाऽस्मदन्यांस्तपन्तु, ताभिः पावकः** शुद्धिप्रचारकः **संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव** ॥ १७ । १५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् राजन् ! (ते) तेरी (याः) जो (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (प्राणदाः) प्राण=जीवन और बल को देने वाली, (अपानदाः) अपान=दुःखों को दूर करने वाले साधन को प्रदान करने वाली, (व्यानदाः) व्याप्ति-विज्ञान को देने वाली, (वर्चोदाः) सकल विद्याध्ययन को देने वाली, (वरिवोदाः) सत्य धर्म और विद्वानों की सेवा को प्राप्त कराने वाली (हेतयः) वज्र के समान शस्त्र-अस्त्र की वृद्धियाँ होकर (अस्मत्) हमसे (अन्यान्) भिन्न शत्रु-जनों को (तपन्तु) तपावें, और उनसे (पावकः) शुद्धि का प्रचारक होकर तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (शिवः) सुखदायक (भव) हो ॥

[हे विद्वन् राजन् ! ते···हेतयो भूत्वा ऽस्मदन्याँस्तपन्तु, ताभिः पावकः संस्त्वमस्मभ्यं शिवो भव]

भावार्थः—स एव राजा यो न्यायस्य वर्द्धकः स्यात्, स एव विद्वान् यो विद्यया न्यायस्य विज्ञापको भवेत्, न स राजा यः प्रजाः पीडयेत्, न स विद्वान् यो ऽन्यान् विदुषो [न कुर्यात्], न ताः प्रजा या नीतिज्ञं राजानं न सेवेरन् ॥ १७ । १५ ॥

भावार्थ—वही राजा है जो न्याय का वर्द्धक हो, वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय का बोध कराने वाला हो, वह राजा नहीं है जो प्रजा को पीडित करे, वह विद्वान् नहीं जो दूसरों को विद्वान् न बनावे, वह प्रजा नहीं जो नीतिज्ञ राजा की सेवा न करे ॥ १७ । १५ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य**—विद्वान् का समृद्ध विद्याबल और राजा का समृद्ध शस्त्रास्त्र बल प्रजा की जीवन-शक्ति को, दुःखनाशक साधनों को विज्ञान, विद्या और सत्यधर्म को बढ़ाने वाले हों । और दोनों ही प्रकार के बल शत्रुओं को सन्तप्त करके प्रजा के लिए सुखप्रद हों ॥ १७ । १५ ॥

भारद्वाजः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह ॥

विद्वान् कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम्। अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) विद्युत् (**तिग्मेन**) तीव्रेण (**शोचिषा**) प्रकाशेन (**यासत्**) प्राप्नोति (**विश्वम्**) सर्वम् (**नि**) (**अत्रिणम्**) अत्तुं=भोक्तुं योग्यम् (**अग्निः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**वनते**) विभजति (**रयिम्**) द्रव्यम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यथाऽग्निस्तिग्मेन शोचिषा विश्वमत्रिणं यासत् यथाग्निर्विद्युन्नो रयिं निवनते तथा त्वमस्मदर्थं भव ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्! यथाऽग्निः** विद्युत् **तिग्मेन** तीव्रेण **शोचिषा** प्रकाशेन **विश्वं** सर्वम् **अत्रिणम्** अत्तुं=भोक्तुं योग्यं **यासत्** प्राप्नोति, **यथाग्निः**=विद्युत् **नः** अस्मभ्यं **रयिं** द्रव्यं **निवनते** विभजति, **तथा त्वमस्मदर्थं भव** ॥ १७।१६॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! जैसे—(अग्निः) विद्युत् (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से (विश्वम्) सब (अत्रिणम्) खाने योग्य पदार्थों को (यासत्) प्राप्त होता है, और—जैसे (अग्निः) विद्युत् (नः) हमारे लिए (रयिम्) द्रव्य को (निवनते) विभक्त करता है, वैसे तू हमारे लिए बन ॥ १७ । १६ ॥

[हे विद्वन्! यथाऽग्निस्तिग्मेन शोचिषा विश्वमत्रिणं यासत्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ विद्वद्भिर्यथा पावकः स्वतेजसा शुष्कमशुष्कं तृणादिकं दहति, तथाऽस्माकं सर्वान् दोषान् दग्ध्वा गुणाः प्रापणीयाः।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ विद्वान् लोग—जैसे अग्नि अपने तेज से सूखे एवं गीले तृण आदि को जलाता है, वैसे—हमारे सब दोषों को दग्ध करके गुणों को प्राप्त करावें।

[यथाऽग्निः=विद्युत् नो रयिं निवनते तथा त्वमस्मदर्थं भव]

यथा विद्युत् सर्वान् पदार्थान् सेवते, तथाऽस्मभ्यं सर्वां विद्यां सेवयित्वा वयमविद्यायाः पृथक् करणीयाः ॥ १७ । १६ ॥

जैसे—विद्युत् सब पदार्थों का सेवन करती है वैसे हमारे लिए सब विद्याओं का सेवन कराकर हमें अविद्या से पृथक् करें॥ १७ । १६ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=पावकः । शोचिषा=स्वतेजसा । अत्रिणम्=शुष्कमशुष्कं तृणादिकम्। रयिम्=सर्वं पदार्थम्। निवनते=सेवते।

भाष्यसार—१. **विद्वान् का कर्त्तव्य**—अग्नि के समान विद्वान् अविद्यादि दोषों से पृथक् रहकर, विद्यादि से प्रकाशमान रहें। और सब मनुष्यों को दोषों से दूर रख कर गुणों से सम्पन्न किया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे अग्नि सब को जला देती है इसी प्रकार विद्वान् पुरुष सब दोषों का दहन किया करें॥ १७ । १६ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=परमेश्वरः**। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अथेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते ॥

अब ईश्वर कैसा है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

य ऽ इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।

स ऽ आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽ आविवेश ॥ १७ ॥

पदार्थः—(यः) (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि (भुवनानि) (जुह्वत्) आददत् (ऋषिः) ज्ञाता (होता) दाताऽऽदाता वा (नि) (असीदत्) सीदति (पिता) पालकः (नः) अस्माकम् (सः) (आशिषा) आशीर्वादेन (द्रविणम्) धनम् (इच्छमानः) अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् (प्रथमच्छत्) यः प्रथमान्= विस्तृतान् छादयति (अवरान्) अर्वाचीनानाकाशादीन् (आ) समन्तात् (विवेश) विष्टोऽस्ति ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(इच्छमानः) यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य ऋषिर्होता नः पिता परमेश्वर इमा विश्वा भुवनानि न्यसीदत्सर्वाँल्लोकान् जुह्वत् स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवरानाविवेशेति यूयं विजानीत ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! य **ऋषिः** ज्ञाता **होता** दाताऽऽदाता वा **नः** अस्माकं **पिता** पालकः **परमेश्वर इमा** इमानि **विश्वा** विश्वानि **भुवनानि न्यसीदत्** सीदति **सर्वाँल्लोकान् जुह्वत्** आददत्, **स आशिषा** आशीर्वादेन **द्रविणं** धनम् **इच्छमानः प्रथमच्छद्** यः प्रथमान्=विस्तृतान् छादयति **अवरान्** अर्वाचीनानाकाशादीन् **आविवेश** समन्तात् विष्टोऽस्ति **इति यूयं विजानीत** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऋषिः) ज्ञाता, (होता) देने वा लेने वाला (नः) हमारा (पिता) पालक परमेश्वर–(इमा) इन (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकों में (न्यसीदत्) विद्यमान है, सब लोकों को (जुह्वत्) प्रलय काल में ग्रहण कर लेता है. (सः) वह–(आशिषा) आशीर्वाद से (द्रविणम्) धन (इच्छमानः) प्रदान करता हुआ (प्रथमच्छद्) विस्तृत लोकों को आच्छादित करता है तथा (अवरान्) अर्वाचीन आकाश आदि में (आविवेश) सब ओर प्रविष्ट है; ऐसा तुम जानो ॥

[हे मनुष्याः ! य···इमा विश्वा भुवनानि न्यसीदत्, सर्वाँल्लोकान् जुह्वत्]

भावार्थः—सर्वे मनुष्याः—यः सकलस्य जगतो रचको, धारकः, पालको, विनाशकः,

भावार्थ—सब मनुष्य–जो सकल जगत् का रचयिता, धारक, पालक और विनाशक–

[स आशिषा द्रविणमिच्छमानः]

सर्वेभ्यो जीवेभ्यः सर्ववस्तुप्रदः परमेश्वरः,

सब जीवों को सब वस्तु प्रदान करने वाला परमेश्वर है वह–

[प्रथमच्छदवरानाविवेश]

स्वव्याप्त्याऽऽकाशादिषु प्रविष्टोऽस्ति, तमेव सततमुपासीरन् ॥ १७ । १७ ॥

अपनी व्याप्ति से आकाश आदि में प्रविष्ट है, उसी की सदा उपासना करें ॥ १७ । १७ ॥

भा० पदार्थः—द्रविणम्=वस्तु । इच्छमानः=प्रयच्छन् । आविवेश=प्रविष्टोऽस्ति ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) कितने ही आजकल के आर्य और यूरोप देशवासी अर्थात् अंग्रेज आदि लोग इसमें ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है वे लोग यह भी कहते हैं कि पहिले आर्य लोग भूतों की पूजा करते थे फिर पूजते पूजते बहुत काल पीछे उन्होंने परमेश्वर को भी पूज्य जाना था, यह उनका कहना मिथ्या है क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त इन्द्र, वरुण और अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक ईश्वर की ही उपासना करते चले

आये हैं। इस विषय में अनेक प्रमाण हैं। उनमें से थोड़े से यहाँ भी लिखते हैं। ......। य इमा विश्वा भुवनानि०......॥ ८ ॥ **ऋग्वेदादि० वेदविषयविचारः ॥**

(ख) 'होता' उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेने वाला परमात्मा ही है। 'ऋषिः' सर्वज्ञ इन सब लोक-लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य कारण में होम **(प्रलय करके)** 'न्यसीदत्' नित्य अवस्थित रहता है, सो ही हमारा पिता है। फिर जब 'द्रविणम्' द्रव्य रूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है उस 'आशिषा' सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहज स्वभाव से रच देता है। इस चराचर 'प्रथमच्छत्' विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्त स्वरूप से आच्छादित करता है और अन्तर्यामी साक्षी रूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है। वह हमारा निश्चित पिता है। उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य पाषाणादि मूर्त्ति की सेवा करता है वह कृतघ्नत्वादि महादोष युक्त होके सदैव दुःखभागी होता है। और जो मनुष्य परम दयामय पिता की आज्ञा में रहता है वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ॥ **आर्याभिविनय०** २। ३०॥

भाष्यसार—परमेश्वर कैसा है ?—वह सब स्थानों पर विद्यमान है, सब लोकों को परमेश्वर आच्छादित किये हुए है, और प्रलय काल में सब को ग्रहण किये रहता है। वही सबका पालक है, सब का ज्ञाता है, और सब प्रकार के ऐश्वर्यों का दाता है ॥ १७। १७॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=परमेश्वरः।** भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

पुनस्तदेवाह ॥

ईश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है॥

किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ १८ ॥

पदार्थः—**(किम्)** प्रश्ने **(स्वित्)** वितर्के **(आसीत्)** **(अधिष्ठानम्)** अधितिष्ठन्ति यस्मिंस्तत् **(आरम्भणम्)** आरभते यस्मात्तत् **(कतमत्)** बहूनामुपादानानां मध्ये किमिति प्रश्ने **(स्वित्)** **(कथा)** केन प्रकारेण **(आसीत्)** अस्ति **(यतः)** **(भूमिम्)** **(जनयन्)** उत्पादयन् **(विश्वकर्मा)** विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्य परमेश्वरस्य सः **(वि)** विविधतया **(द्याम्)** सूर्यादिलोकम् **(और्णोत्)** ऊर्णुत आच्छादयति **(महिना)** स्वस्य महिम्ना। **अत्र छान्दसो वर्णलोप इति मकारलोपः** **(विश्वचक्षाः)** यो विश्वं=सर्वं जगच्चष्टे-पश्यति सः ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(महिना) स्वस्य 'महिम्ना' यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपः' इससे मकार का लोप है।

अन्वयः—हे विद्वन्नस्य जगतोऽधिष्ठानं किं स्विदासीत्। आरम्भणं कतमत् कथा स्विदासीत्। यतो विश्वकर्मा विश्वचक्षा जगदीश्वरो भूमिं द्यां च जनयन् महिना व्यौर्णोत् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! **अस्य जगतोऽधिष्ठानम्** अधितिष्ठन्ति यस्मिंस्तत् **किं** प्रश्ने **स्वित्** सवितर्कम् **आसीद्** अस्ति ? **आरम्भणम्** आरभते यस्मात्तत् **कतमत्** बहूनामुपादानां मध्ये किमिति प्रश्ने **कथा** केन प्रकारेण **स्वित्** सवितर्कम्

भाषार्थ—हे विद्वान्! इस जगत् का (अधिष्ठानम्) आधार (किं स्वित्) क्या (आसीत्) है ? (आरम्भणम्) इस कार्य जगत् की रचना का आरम्भ-कारण (कतमत्) बहुत उपादान कारणों में कौन सा कारण है ? (कथा स्वित्) किस प्रकार

आसीद् अस्ति ? **यतो विश्वकर्मा** विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्य परमेश्वरस्य सः **विश्वचक्षाः** यो विश्वं=सर्वं जगच्चष्टे=पश्यति सः **जगदीश्वरो भूमिं द्यां** सूर्यादिलोकं **च जनयन्** उत्पादयन् **महिना** स्वस्य महिम्ना **वि+और्णोत्** विविधतया ऊर्णुते=आच्छादयति ॥ १७ । १८ ॥

से है ? (यतः) जिससे (विश्वकर्मा) सब कर्मों वाला परमेश्वर, (विश्वचक्षाः) सब जगत् का द्रष्टा जगदीश्वर (भूमिम्) भूमि (द्यां च) और सूर्य आदि लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करके (महिना) अपनी महिमा से (वि+और्णोत्) विविध रूप से आच्छादित कर रहा है ॥ १७ । १८ ॥

[**हे विद्वन्नस्य जगतोऽधिष्ठानं किंस्विदासीत्, आरम्भणं कतमत् कथास्विदासीत्**]

भावार्थः—हे जनाः ! युष्माभिः—इदं जगत् क्व वसति ? किमारम्भणं चास्य ? किमर्थं जायते ? इति प्रश्नस्येदमुत्तरम्—

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—यह जगत् किसमें बसता है ? इसका आरम्भ करने वाला कौन है ? किसलिए उत्पन्न होता है ? इस प्रश्न का यह उत्तर है—

[**विश्वकर्मा ··· जगदीश्वरो भूमिं द्यां च जनयन् महिना व्यौर्णोत्**]

यो जगदीश्वरः कार्याख्यं जगदुत्पाद्य स्वव्याप्त्या सर्वमाच्छाद्य सर्वज्ञतया सर्वं पश्यति, सोऽधिष्ठानमारम्भणं चास्ति ।

जो जगदीश्वर कार्य रूप जगत् को उत्पन्न करके, अपनी व्याप्ति से सबको आच्छादित करके, सर्वज्ञता से सबको देखता है वह इसका अधिष्ठाता तथा आरम्भ=उत्पन्न करने वाला है ।

सर्वशक्तिमान्, रचनादिसामर्थ्ययुक्तोऽस्ति, जीवेभ्यः पापपुण्यफलदानाय भोजयितुं सर्वं रचितवानिति वेद्यम् ॥ १७ । १८ ॥

वह—सर्वशक्तिमान्, रचना आदि के सामर्थ्य से युक्त है, जीवों को पाप-पुण्य का फल देने तथा भोग के लिए सब जगत् रचा है, ऐसा जानें ।।१७।।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) पूर्वोक्त मन्त्र १७ । १७ की विधि से ही महर्षि ने इस मन्त्र को भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**वेदविषयविचार**) में प्रमाण रूप में उद्धृत किया है ॥

(ख) **प्रश्नोत्तरविद्या**—इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण तथा उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करने वाला अधिष्ठानादि क्या है ? तथा निमित्त कारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं ?

उत्तर—'यतः' जिसका विश्व (**जगत् कर्म**) किया हुआ है, उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है। वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है । उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जगत् को यथायोग्य रचा है और भूमि से लेके स्वर्ग पर्यन्त रचके अपनी महिमा से 'और्णोत्' आच्छादित कर रखा है। और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं । सबका भी उत्पादन, रक्षण, धारण आदि वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर 'विश्वचक्षाः' सब संसार का द्रष्टा है । उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा ॥ **आर्याभिविनय०** २ । ३२ ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर के कार्यों का वर्णन**—सब जगत् का द्रष्टा और पाप-पुण्य के फलों का दाता परमेश्वर है । वह ही इस संसार का रचयिता तथा आधार है । वह ही सूर्यादि लोकों की रचना करके सबको आच्छादित किये हुए है । वह अपने सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से सबको जानने वाला है ॥ १७ । १८ ॥ ●

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा**=परमात्मा। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तदेवाह॥

ईश्वर कैसा है? यह फिर उपदेश किया है॥

विश्वत॑श्चक्षुरु॒त विश्वतो॑मुखो॒ विश्वतो॑बाहुरु॒त विश्वत॑स्पात्।
सं बा॒हुभ्यां॒ धम॑ति॒ सं पत॑त्रै॒र्द्यावा॒भूमी॑ ज॒नय॑न्दे॒व ऽ एकः॑॥ १९॥

पदार्थः—(**विश्वतश्चक्षुः**) विश्वतः=सर्वस्मिञ्जगति चक्षुर्दर्शनं यस्य सः (**उत**) अपि (**विश्वतोमुखः**) विश्वतः=सर्वतो मुखमुपदेशनमस्य सः (**विश्वतोबाहुः**) सर्वतो बाहुर्बलं वीर्यं वा यस्य सः (**उत**) अपि (**विश्वतस्पात्**) विश्वतः=सर्वत्र पात्=गतिर्व्याप्तिर्यस्य सः (**सम्**) सम्यक् (**बाहुभ्याम्**) अनन्ताभ्यां बलवीर्य्याभ्याम् (**धमति**) प्राप्नोति। **धमतीति गतिकर्मा॰॥ निघं॰ २। १४॥** (**सम्**) (**पतत्रैः**) पतनशीलैः परमाण्वादिभिः (**द्यावाभूमी**) सूर्य्यपृथिवीलोकौ (**जनयन्**) कार्यरूपेण प्रकटयन् सन् (**देवः**) स्वप्रकाशः (**एकः**) अद्वितीयोऽसहायः॥ १७। १९॥

प्रमाणार्थ—(**धमति**) प्राप्नोति। 'धमति' यह पद निघं॰ २। १४ में गत्यर्थक धातुओं में पठित है। गति के तीन अर्थ हैं—ज्ञान, गमन और प्राप्ति॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पादेको देवः पतत्रैर्द्यावाभूमी संजनयन् सन् बाहुभ्यां सर्वं जगत्संधमति तमेवेष्टमुपास्यमभिरक्षकं परमेश्वरं जानीत॥ १७। १९॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वतश्चक्षुः** विश्वतः=सर्वस्मिञ्जगति चक्षुर्दर्शनं यस्य सः **उत** अपि **विश्वतोमुखः** विश्वतः=सर्वतो मुखमुपदेशनमस्य सः **विश्वतोबाहुः** सर्वतो बाहुर्बलं वीर्यं वा यस्य सः **उत** अपि **विश्वतस्पाद्** विश्वतः=सर्वत्र पात्=गतिर्व्याप्तिर्यस्य सः **एकः** अद्वितीयोऽसहायः **देवः** स्वप्रकाशः **पतत्रैः** पतनशीलैः परमाण्वादिभिः **द्यावाभूमी** सूर्य्यपृथिवीलोकौ **संजनयन्** कार्यरूपेण प्रकटयन् सन् **[सन्] बाहुभ्याम्** अनन्ताभ्यां बलवीर्य्याभ्यां **सर्वं जगत् संधमति** सम्यक् प्राप्नोति, **तमेवेष्टमुपास्यमभिरक्षकं परमेश्वरं जानीत**॥ १७। १९॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जो (विश्वतश्चक्षुः) सब जगत् पर चक्षुः=दृष्टि रखने वाला, (उत) और (विश्वतोमुखः) सब ओर से मुख=उपदेश करने वाला, (विश्वतोबाहुः) सब ओर बाहु=बल वा वीर्य वाला, (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र पात्=गति=व्याप्ति वाला, (एकः) अद्वितीय जिसे किसी के सहाय की अपेक्षा नहीं, (देवः) स्व प्रकाशस्वरूप है, वह—(पतत्रैः) गतिशील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य और पृथिवी लोक को (संजनयन्) कार्य रूप से प्रकट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल-वीर्य से सब जगत् को (संधमति) उत्तम रीति से प्राप्त हो रहा है उसे ही इष्ट, उपास्य, रक्षक परमेश्वर समझो॥ १७। १९॥

[हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वतश्चक्षुः, विश्वतोमुखः, विश्वतोबाहुः, विश्वतस्पात्, एको देवः पतत्रैर्द्यावा—पृथिवी संजनयन्, बाहुभ्यां सर्वं जगत् धमति]

भावार्थः—यः सूक्ष्मात्सूक्ष्मः, महतो महान्, निराकारः, अनन्तसामर्थ्यः, सर्वत्राभिव्याप्तः, देवः,

भावार्थ—जो सूक्ष्म से सूक्ष्म, महान् से महान्, निराकार, अनन्त सामर्थ्य वाला, सर्वत्र

अद्वितीयः परमात्माऽस्ति; स एवातिसूक्ष्मात् कारणात् स्थूलं कार्यं रचयितुं विनाशयितुं वा समर्थोऽस्ति।

व्यापक, देव=प्रकाश स्वरूप, अद्वितीय परमात्मा है, वही अति अति सूक्ष्म कारण=प्रकृति से स्थूल कार्य जगत् को रचने वा प्रलय करने में समर्थ है।

[तमेवेष्टमुपास्यमभिरक्षकं परमेश्वरं जानीत]

य एतस्योपासनं विहायान्यमुपास्ते, कस्तस्मादन्यो जगति दुर्भगोऽस्ति ॥ १७ । १९ ॥

जो इसकी उपासना को छोड़कर अन्य की उपासना करता है, उससे बढ़कर जगत् में और अभागा कौन है ॥ १७ । १९ ॥

भा० पदार्थः—विश्वतोबाहुः=अनन्तसामर्थ्यः। विश्वतस्पात्=सर्वत्राभिव्याप्तः। पतत्रैः=अतिसूक्ष्मात् कारणात्।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) पूर्वोक्त मन्त्र १७ । १७ की विधि से ही महर्षि ने इस मन्त्र को भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (**वेदविषयविचार**) में प्रमाण रूप में उद्धृत किया है ॥

(ख) विश्व (**सब जगत्**) में जिसका चक्षुः (**दृष्टि**) जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं तथा सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि हैं अर्थात् सर्वदृक्, सर्ववक्ता सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है, उसी से डरेगा तभी धर्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं। वही विश्वकर्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है। पृथिवी से ले के स्वर्ग पर्यन्त जगत् का कर्त्ता है। जिस जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया है उस उसको न्यायकारी दयालु जगत्-पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् 'पतत्रैः' प्राप्त होने वाले सुख-दुःख फल दान से प्राप्त सब जीवों को 'धमति' (**धमन=कम्पन**) यथायोग्य जन्म-मरण आदि को प्राप्त करा रहा है।

उसी निराकार अज, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिए। वही याचनीय, पूजनीय, हमारा प्रभु स्वामी इष्टदेव है। उसी से सुख हमको होगा; अन्य से कभी नहीं ॥ **आर्याभिविनय०** ॥ २ । ३४ ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर का स्वरूप**—एक अद्वितीय सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक परमेश्वर समस्त संसार का द्रष्टा है, वह ही प्राणीमात्र को शिक्षा देने के लिए वेदादि सत्य विद्या का उपदेष्टा है, वह स्वप्रकाशस्वरूप देव है, उसी की शक्तियाँ सर्वत्र व्यापक हैं, और परमाणु आदि में गति पैदा करके वह ही सूर्यादि का रचयिता है ॥ १७ । १९ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=जगदीश्वरः**। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

ईश्वर कैसा है ? यह फिर उपदेश किया है ॥

किᳪं स्विद्वनं क ऽ उ स वृक्ष ऽ आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥ २० ॥

पदार्थः—(**किम्**) (**स्वित्**) (**वनम्**) संभजनीयं कारणवनम् (**कः**) (**उ**) वितर्के (**सः**) परोक्षे (**वृक्षः**) यो वृश्च्यते=छिद्यते स संसारः (**आस**) अस्ति (**यतः**) यस्य प्रकृत्याख्यकारणस्य सकाशात् (**द्यावा-**

पृथिवी) विस्तृतौ सूर्यभूमिलोकौ (**निष्टतक्षुः**) नितरां ततक्ष । **अत्र वचनव्यत्ययः** (**मनीषिणः**) मनस ईषिणो=योगिनः (**मनसा**) विज्ञानेन (**पृच्छत**) (**इत्**) एव (**उ**) प्रसिद्धो (**तत्**) सः (**यत्**) यः (**अध्यतिष्ठत्**) अधिष्ठातृत्वेन वर्त्तते (**भुवनानि**) भवन्ति भूतानि येषु ताँल्लोकान् (**धारयन्**) वायुविद्युत्सूर्यादिना धारणं कारयन् ॥ २० ॥

प्रमाणार्थ—(**निष्टतक्षुः**) नितरां ततक्ष। यहां वचन व्यत्यय है। अर्थात् एकवचन के स्थान में बहुवचन का प्रयोग है ॥

अन्वयः—हे मनीषिणः ! यूयं मनसा विदुषः प्रति किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आसेति पृच्छत यतो द्यावापृथिवी को निष्टतक्षुः। यद्यो भुवनानि धारयन्नध्यतिष्ठत् तदिदु ब्रह्म विजानीतेत्युत्तरम् ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनीषिणः** ! मनस ईषिणो योगिनः **यूयं मनसा** विज्ञानेन **विदुषः प्रति किंस्विद्वनं** सम्भजनीयं कारणवनं, **क उ** सवितर्कं **स वृक्षः** यो वृश्च्यते=छिद्यते स संसारः **आस** अस्ति ? इति **पृच्छत। यतो** यस्य प्रकृत्याख्यकारणस्य सकाशाद् **द्यावापृथिवी** विस्तृतौ सूर्यभूमिलोकौ **को निष्टतक्षुः** नितरां ततक्ष ?

यद्=**यो भुवनानि** भवन्ति भूतानि येषु ताँल्लोकान् **धारयन्** वायुविद्युत्सूर्यादिना धारणं कारयन् **अध्यतिष्ठत्** अधिष्ठातृत्वेन वर्त्तते, **तत्** सः **इद्** एव **उ** प्रसिद्धं **ब्रह्म विजानीतेत्युत्तरम्** ॥

भाषार्थ—हे (मनीषिणः) मन के स्वामी योगि जनो ! तुम–(मनसा) विज्ञान के द्वारा विद्वानों से–(किंस्वित्) क्या (वनम्) सेवन करने योग्य कारण रूप वन है, (क उ) कौन सा (सः) वह (वृक्षः) छिन्न=नष्ट होने वाला संसार= कार्य जगत् (आस) है, यह पूछो। और (यतः) प्रकृति नामक कारण से (द्यावापृथिवी) विस्तृत सूर्य और भूमि लोक का (कः) कौन (निष्टतक्षुः) निर्माण करता है ?

(यत्) जो (भुवनानि) भूतों के निवास स्थान लोकों को (धारयन्) वायु, विद्युत् तथा सूर्य आदि से धारण करता हुआ (अध्यतिष्ठत्) उनका अधिष्ठाता है, (तत्) उसको (इद्) ही (उ) प्रसिद्ध ब्रह्म समझो, यह उत्तर है ॥ १७ । २० ॥

भावार्थः—अत्र पादत्रयेण प्रश्नः पादैकेनोत्तरम् ।

भावार्थ—यहाँ मन्त्र में तीन पादों से प्रश्न तथा अन्तिम एक पाद से उत्तर दिया गया है।

[वृक्ष-वनशब्दे विवृणोति]

वृक्षशब्देन कार्यं, वनशब्देन कारणं चोच्यते।

यहाँ वृक्ष शब्द से कार्य और वन शब्द से कारण का उपदेश किया है ।

[द्यावापृथिवी को निष्टतक्षुः···यो भुवनानि धारयन्नध्यतिष्ठत्]

यथा सर्ववस्तूनि पृथिवी, पृथिवीं सूर्यः, सूर्यं विद्युत्, विद्युतं वायुश्च धरति, तथैवैतान् जगदीश्वरो दधाति ॥ १७ । २० ॥

जैसे–सब वस्तुओं को पृथिवी, पृथिवी को सूर्य, सूर्य को विद्युत्, विद्युत् को वायु धारण करता है वैसे ही इन्हें जगदीश्वर धारण कर रहा है ॥

भा० पदार्थः—वृक्षः=कार्यम् । वनम्=कारणम् ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**प्रश्न**) विद्या क्या है ? वन और वृक्ष किसको कहते हैं ? (**उत्तर**)—जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसा तक्षा (**बढ़ई**) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ

रचता है वैसे ही स्वर्ग (**सुख विशेष**) और भूमि=मध्य (**सुखवाला लोक**) तथा नरक (**दुःख विशेष**) और सब लोकों को रचा है उसी को वन और वृक्ष आदि कहते हैं।

हे 'मनीषिणः' विद्वानो! जो सब भुवनों का धारण करके सब जगत् में और सबके ऊपर विराजमान हो रहा है उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो। 'मनसा' उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है; अन्यथा नहीं॥ **आर्याभिविनय॰** २। ३६॥

भाष्यसार--**ईश्वर कैसा है ?**—इस समस्त संसार का निमित्तकारण परमेश्वर और प्रकृति उपादान कारण है। पृथिवी आदि लोकों का स्रष्टा, धर्त्ता और संहर्त्ता एकमात्र परमेश्वर ही है। विद्वान् मनुष्यों को विज्ञान के आश्रय से उसका ज्ञान तथा उसकी उपासना करनी चाहिए॥ १७। २०॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=जगदीश्वरः**। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

ईश्वर कैसा है ? यह फिर उपदेश किया है॥

या ते धामा॑नि प॒रमा॒णि याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा।
शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॒ वृधा॒नः॥ २१॥

पदार्थः—(**या**) यानि। **अत्र शेर्लुक्** (**ते**) तव परमात्मनः (**धामानि**) दधति पदार्थान् येषु यैर्वा तानि जन्मस्थाननामानि (**परमाणि**) उत्तमानि (**या**) यानि (**अवमा**) कनिष्ठानि (**या**) यानि (**मध्यमा**) मध्यमानि मध्यस्थानि (**विश्वकर्मन्**) समग्रोत्तमकर्मकारिन् (**उत**) (**इमा**) इमानि (**शिक्ष**) शुभगुणानुपदिश। **अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** (**सखिभ्यः**) मित्रेभ्यः (**हविषि**) दातुमादातुमर्हे व्यवहारे (**स्वधावः**) बह्वन्नयुक्त (**स्वयम्**) आज्ञापालकेभ्यः (**यजस्व**) संगच्छस्व (**तन्वम्**) शरीरम् (**वृधानः**) वृद्धं कुर्वन्॥ २१॥

प्रमाणार्थ—(**या**) यानि। यहाँ 'शि' विभक्ति का लुक् है। (**शिक्ष**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६। ३। १३५) से मन्त्र में दीर्घ [**शिक्षा**] है॥

अन्वयः—हे स्वधावो विश्वकर्मन् जगदीश्वर! ते सृष्टौ या परमाणि याऽवमा या मध्यमा धामानि सन्ति तानीमा हविषि स्वयं यजस्व। उताप्यस्माकं तन्वं वृधानोऽस्मभ्यं सखिभ्यः शिक्ष॥ २१॥

सपदार्थान्वयः—**हे स्वधावः** बह्वन्नयुक्त **विश्वकर्मन्** समग्रोत्तमकर्मकारिन् **जगदीश्वर! ते** तव परमात्मनः **सृष्टौ या** यानि **परमाणि** उत्तमानि, **या** यानि **अवमा** कनिष्ठानि, **या** यानि **मध्यमा** मध्यमानि मध्यस्थानि **धामानि** दधति पदार्थान् येषु यैर्वा तानि जन्मस्थाननामानि **सन्ति, तानीमा** इमानि **हविषि** दातुमादातुमर्हे व्यवहारे **स्वयम्** आज्ञापालकेभ्यः **यजस्व** सङ्गच्छस्व।

भाषार्थ—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त, (विश्वकर्मन्) समग्र उत्तम कर्म करने वाले जगदीश्वर! (ते) तेरी सृष्टि में (या) जो (परमाणि) उत्तम, (या) जो (अवमा) कनिष्ठ, (या) जो (मध्यमा) मध्यस्थ (धामानि) पदार्थों को धारण करने वाले जन्म, स्थान और नाम हैं उन (इमा) इनको (हविषि) देन-लेन के व्यवहार में (स्वयम्) अपने आज्ञापालकों को (यजस्व) संयुक्त कर।

उत=अप्यस्माकं **तन्वं** शरीरं **वृधानः** वृद्धं कुर्वन् **अस्मभ्यं सखिभ्यः** मित्रेभ्यः **शिक्ष** शुभगुणानुपदिश ॥ १७ । २१ ॥

(उत) और—हमारे (तन्वम्) शरीर को (वृधानः) बढ़ाते हुए हमारे (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (शिक्ष) शुभ गुणों का उपदेश कर ॥ १७ ॥

[हे विश्वकर्मन्=जगदीश्वर ! ते सृष्टौ या परमाणि, याऽवमा, या मध्यमा धामानि सन्ति]

भावार्थः—यथेहेश्वरेण निकृष्टमध्यमोत्तमानि वस्तूनि स्थानानि च रचितानि तथैव सभापत्यादिभिस्त्रिविधानि स्थानानि रचयित्वा,

भावार्थ—जैसे यहाँ ईश्वर ने निकृष्ट, मध्यम और उत्तम वस्तुएँ और स्थान बनाए हैं वैसे ही सभापति आदि लोग तीन प्रकार के स्थान बनाकर,

[हविषि स्वयं यजस्व]

वस्तूनि प्राप्य,

वस्तुओं को प्राप्त करके,

[तन्वं वृधानोऽस्मभ्यं सखिभ्यः शिक्ष]

ब्रह्मचर्येण शरीरबलं वर्धयित्वा, मित्राणि सुशिक्ष्यैश्वर्ययुक्तैर्भवितव्यम् ॥ १७ । २१ ॥

ब्रह्मचर्य से शरीर के बल को बढ़ाकर, मित्रों को सुशिक्षित करके ऐश्वर्य से युक्त रहें ॥ १७ । २१ ॥

भा० पदार्थः—अवमा=निकृष्टानि । धामानि=वस्तूनि स्थानानि च । तन्वम्=ब्रह्मचर्येण शरीरबलम् । वृधानः=वर्द्धयित्वा । शिक्ष=सुशिक्ष्यैश्वर्ययुक्तो भव ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे सुरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को कर। यथार्थ विद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहें तथा इन लोकों के 'हविषि' दान और ग्रहण-व्यवहार में हम लोग चतुर हों।

हे 'स्वधावः' स्वसामर्थ्य आदि धारण करने वाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ाने वाले हैं। 'यजस्व' हमारे लिए विद्वानों का सत्कार सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो।

आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिए। किञ्च—हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं। सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं, इससे हमको स्वकृपा से सुखी करें ॥ **आर्याभिविनय०** २ । ३८ ॥

भाष्यसार—ईश्वर कैसा है ?—वह परमेश्वर अन्नादि को उत्पन्न कर समस्त संसार का पालन करता है। उसी ने संसार में निकृष्ट, मध्यम तथा उत्तम धामों को बनाया है। वह सत्पुरुषों को ऐश्वर्य से सम्पन्न तथा दुर्जनों को ऐश्वर्य से नियुक्त करता है। वह ही हमारे शरीरों को पुष्ट तथा बलिष्ठ बनाता है और शुभकार्यों की प्रेरणा देता है ॥ १७ । २१ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा**=जगदीश्वरः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर कैसा है ? यह फिर उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्येऽअभितः सपत्नाऽइहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ २२ ॥

पदार्थः—(विश्वकर्मन्) अखिलोत्तमकर्मकारिन् (हविषा) हवनेनोत्तमगुणादानेन (वावृधानः) वर्धमानः सन् (स्वयम्) (यजस्व) संगतं कुरु (पृथिवीम्) (उत) अपि (द्याम्) सूर्यादिलोकम् (मुह्यन्तु) (अन्ये) (अभितः) सर्वतः (सपत्नाः) शत्रवः (इह) (अस्माकम्) (मघवा) पूजितधनयुक्तः (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) ॥ १७ । २२ ॥

अन्वयः—हे विश्वकर्मन् ! हविषा वावृधानः सन् यथेश्वरः पृथिवीमुत द्यां संगमयति तथा त्वं स्वयं यजस्वेह मघवा सूरिरस्तु यतोऽस्माकमन्ये सपत्ना अभितो मुह्यन्तु ॥ १७ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विश्वकर्मन्** ! अखिलोत्तमकर्मकारिन् ! **हविषा** हवनेनोत्तमगुणदानेन **वावृधानः** वर्धमानः **सन् यथेश्वरः पृथिवीमुत** अपि **द्यां** सूर्यादिलोकं **सङ्गमयति तथा त्वं स्वयं यजस्व** सङ्गतं कुरु।

इह मघवा पूजितधनयुक्तः **सूरिः** विद्वान् **अस्तु, यतोऽस्माकमन्ये सपत्नाः** शत्रवः **अभितः** सर्वतः **मुह्यन्तु** ॥ १७ । २२ ॥

भाषार्थ—हे (विश्वकर्मन्) अखिल उत्तम कर्म करने वाले, (हविषा) हवन=उत्तम गुणों के दान से (वावृधानः) बढ़ता हुआ जैसे ईश्वर (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) सूर्य आदि लोक को संयुक्त करता है वैसे तू—(स्वयम्) अपने आप (यजस्व) संग कर।

(इह) यहाँ (मघवा) पूजित धन से युक्त (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हो, जिससे (अस्माकम्) हमसे (अन्ये) भिन्न (सपत्नाः) शत्रु (अभितः) सब ओर से (मुह्यन्तु) मोह को प्राप्त हों ॥ १७ । २२ ॥

[**यथेश्वरः पृथिवीमुत द्यां संगमयति तथा त्वं स्वयं यजस्व**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये मनुष्या ईश्वरेण यस्मै प्रयोजनाय यद् वस्तु रचितं तत् तथा विज्ञायोपकुर्वन्ति, तेषां—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य—ईश्वर ने जिस प्रयोजन के लिए जो वस्तु बनाई है उसे वैसा ही जानकर उपकार ग्रहण करते हैं, उनके—

[**इह मघवा सूरिरस्तु, सपत्ना अभितो मुह्यन्तु**]

दारिद्र्या-लस्यादिदोषक्षयाच्छत्रवः प्रलीयन्ते, ते स्वयं च विद्वांसो जायन्ते ॥ १७ । २२ ॥

दरिद्रता तथा आलस्य आदि दोषों के क्षय होने से शत्रुओं का प्रलय होता है और वे स्वयं विद्वान् हो जाते हैं ॥ १७ । २२ ॥

भा० पदार्थः—यजस्व=उपकुरु । मुह्यन्तु=प्रलीयन्ताम् ॥

भाष्यसार—**१. ईश्वर कैसा है ?**—वह सदा उत्तम कार्य करता है और उत्तम कार्य करने वालों को सदा प्रोत्साहित करता है । वह पृथिवी तथा सूर्यादि लोकों को बनाकर उनमें व्यापक भाव से संगति किये हुए है । उसकी रचना को देखकर ऐश्वर्ययुक्त विद्वान् और अविद्वान् सभी मोहित हो जाते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। मनुष्य सब पदार्थों के गुणों को जानकर ईश्वर की तरह सब पदार्थों का संग किया करें ॥ १७ । २२ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा**=राजा । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

किंभूतो जनो राज्याधिकारे नियोज्य इत्याह ॥

कैसा पुरुष राज्य के अधिकार पर नियुक्त करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽ अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**वाचस्पतिम्**) वाचो=वेदवाण्याः पालकम् (**विश्वकर्माणम्**) अखिलेषु कर्मसु कुशलम् (**ऊतये**) रक्षणाद्याय (**मनोजुवम्**) मनोवद्वेगवन्तम् (**वाजे**) संग्रामादौ कर्मणि (**अद्य**) अस्मिन् दिने । अत्र संहितायामिति दीर्घः (**हुवेम**) स्वीकुर्याम (**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**विश्वानि**) सर्वाणि (**हवनानि**) ग्राह्याणि कर्माणि (**जोषत्**) जुषताम् । अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् (**विश्वशम्भूः**) विश्वस्मै शं=सुखं भावुकः (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**साधुकर्मा**)धर्म्यकर्मानुष्ठाता ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**अद्य**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) से दीर्घ [**अद्या**] है। (**जोषत्**) यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! वयमूतये यं वाचस्पतिं मनोजुवं विश्वकर्माणं महात्मानं वाजे हुवेम स विश्वशम्भूः साधुकर्मा नोऽवसेऽद्य विश्वानि हवनानि जोषज्जुषताम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! वयमूतये** रक्षणाद्याय **यं वाचस्पतिं** वाचो=वेदवाण्याः पालकं **मनोजुवं** मनोवद् वेगवन्तं **विश्वकर्माणं**=अखिलेषु कर्मसु कुशलं **महात्मानं वाजे** सङ्ग्रामादौ कर्मणि **हुवेम** स्वीकुर्याम ।

स विश्वशम्भूः विश्वस्मै शं=सुखं भावुकः **साधुकर्मा** धर्म्यकर्मानुष्ठाता **नः** अस्माकम् **अवसे** रक्षणाद्याय **अद्य** अस्मिन् दिने **विश्वानि** सर्वाणि **हवनानि** ग्राह्याणि कर्माणि **जोषत्**=**जुषताम्** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! हम—(ऊतये) रक्षादि के लिए जिस (वाचस्पतिम्) वेदवाणी के पालक (मनोजुवम्) मन के समान वेगवान् (विश्वकर्माणम्) सब कर्मों में कुशल महात्मा को (वाजे) संग्राम आदि कर्म में (हुवेम) स्वीकार करें।

(सः) वह (विश्वशम्भूः) सबके लिए सुख उत्पन्न करने वाला, (साधुकर्मा) धर्मयुक्त कर्म करने वाला (नः) हमारी (अवसे) रक्षादि के लिए (अद्य) आज (विश्वानि) सब (हवनानि) ग्राह्य कर्मों का (जोषत्) सेवन करे ॥ १७ । २३ ॥

[**वयमूतये ··· वाचस्पतिं मनोजुवं विश्वकर्माणं महात्मानं ··· हुवेम**]

भावार्थः—मनुष्यैः—येन ब्रह्मचर्येणाखिला विद्याऽधीता, यो धार्मिकोऽनलसो भूत्वा पक्षपातं विहायोत्तमानि कर्माणि सेवते,

भावार्थ—मनुष्य—जिसने ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं का अध्ययन किया है, जो धार्मिक पुरुषार्थी होकर, पक्षपात छोड़कर उत्तम कर्मों का सेवन करता है,

[**विश्वशम्भूः**]

पूर्णशरीरात्मबलः, स सर्वस्याः प्रजाया रक्षणे सर्वाधिपती राजा विधेयः ॥ १७ । २३ ॥

शरीर और आत्मा से पूर्ण बलवान् है उसे सब प्रजा की रक्षा के लिए सर्वाधिपति राजा बनावें ॥

भा० पदार्थः—वाचस्पतिम्=येन ब्रह्मचर्येणाखिला विद्याऽधीता (तम्) । मनोजुवम्=अनलसम् । विश्वकर्माणम्=यो यः पक्षपातं विहायोत्तमानि कर्माणि सेवते (तम्) । विश्वशम्भूः=पूर्णशरीरात्मबलः ॥

भाष्यसार—**राजा के गुणों का वर्णन**—निम्नगुणों से सम्पन्न पुरुष ही राजा बनने योग्य होता है—(१) वेदवाणी का पालक। (२) मन के समान गतिवाला अर्थात् आलस्यादि से रहित। (३) सब कार्यों में कुशल। (४) सबको सुख देने वाला। (५) धार्मिक कार्यों में रुचि लेने वाला। (६) स्वयं ग्रहण करने योग्य कर्मों का करने वाला ॥ १७ । २३ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा=राजा** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः कीदृशो राजा मन्तव्य इत्याह ॥

मनुष्यों को कैसा पुरुष राजा मानना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मन्**) अखिलशुभकर्मसेविन् (**हविषा**) आदातव्येन (**वर्द्धनेन**) (**त्रातारम्**) रक्षकम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तं पुरुषम् (**अकृणोः**) कुरु (**अवध्यम्**) हन्तुमयोग्यम् (**तस्मै**) (**विशः**) प्रजाः (**सम्**) एकीभावे (**अनमन्त**) नमन्तु (**पूर्वीः**) पूर्वैर्न्यायाधीशैः प्रापिताः (**अयम्**) (**उग्रः**) हिंसने तीव्रः (**विहव्यः**) विविधैः साधनैरादातुमर्हः (**यथा**) (**असत्**) भवेत् ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विश्वकर्मन् सर्वसभेश ! त्वं हविषा वर्द्धनेन यमवध्यं त्रातारमिन्द्रं राजकार्ये सम्मतिप्रदं मन्त्रिणमकृणोस्तस्मै पूर्वीर्विशः समनमन्त यथाऽयमुग्रो विहव्योऽसत् तथा विधेहि ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विश्वकर्मन् ! अखिलशुभकर्मसेविन् **सर्वसभेश ! त्वं हविषा** आदातव्येन **वर्द्धनेन यमवध्यं** हन्तुमयोग्यं **त्रातारं** रक्षकम् **इन्द्रं=राजकार्ये सम्मतिप्रदं मन्त्रिणं** परमैश्वर्यवन्तं पुरुषं **अकृणोः** कुरु, **तस्मै पूर्वीः** पूर्वैर्न्यायाधीशैः प्रापिताः **विशः** प्रजाः **समनमन्त** एकीभावेन नमन्तु ।

यथाऽयमुग्रः हिंसने तीव्रः **विहव्यः** विविधैः साधनैरादातुमर्हः **असत्** भवेत् **तथा विधेहि ॥**

भाषार्थ—हे (विश्वकर्मन्) सब शुभ कर्मों का सेवन करने वाले, सर्व सभापति ! तू-(हविषा) ग्रहण करने योग्य (वर्द्धनेन) वृद्धि से जिस (अवध्यम्) वध के अयोग्य, (त्रातारम्) रक्षक, (इन्द्रम्) राजकार्य में सम्मति देने वाले परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को मन्त्री (अकृणोः) बनाता है, (तस्मै) उसके (पूर्वीः) पूर्व न्यायाधीशों से प्राप्त की हुई (विशः) प्रजा (समनमन्त) एक होकर सत्कार करे।

जैसे (अयम्) यह (उग्रः) हिंसा में प्रचण्ड, (विहव्यः) विविध साधनों के कारण ग्रहण करने योग्य (असत्) हो वैसा कर ॥

[हे विश्वकर्मन्=सर्वसभेश ! त्वं···यम्···इन्द्रम्···अकृणोः, तस्मै पूर्वीर्विशः समनमन्त]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ सर्वसभाधिष्ठात्रा सहिताः सभासदस्तस्मै राज्याधिकारं

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ सर्व सभापति के सहित सभासद् लोग उसे

दद्युः—यः पक्षपाती न स्यात्, [ये] पितृवत् प्रजा न पालयेयुस्ते प्रजाभिर्नो मन्तव्याः।

ये च पुत्रमिव न्यायेन प्रजाः पालयेयुस्तदनुकूलास्सततं स्युः ॥ १७ । २४ ॥

राज्याधिकार दें–जो पक्षपाती न हो, जो पिता के समान प्रजा का पालन न करें उसे प्रजा राजा न माने।

और जो–पुत्र के समान न्याय से प्रजा का पालन करें प्रजा उसके अनुकूल सदा रहे ॥

भा० पदार्थः—विश्वकर्मा=सर्वसभाधिष्ठाता।

भाष्यसार—१. **राजा कैसा होना चाहिए ?**—जो राजा अपने राजकार्यों के करने के लिए मन्त्री आदि को नियुक्त करते समय निम्न बातों का ध्यान रखता है, उसका सत्कार सब प्रजाएँ करती हैं। (१) सब कार्यों में कुशल पुत्रवत् प्रजा का पालक हो। (२) ग्राह्य पदार्थों की वृद्धि से राज्य का वर्धक हो। (३) ऐश्वर्य सम्पन्न हो। (४) निष्पक्ष होकर न्याययुक्त कर्मों का कर्त्ता। (५) अपने नियमों के पालन में दृढ़ हो। (६) शुभ व्यवहार के कारण जो प्रजा का अवध्य होने से सर्वप्रिय हो।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। राजा न्यायाधीश की तरह न्याय करने वाले मन्त्री आदि को नियुक्त करे ॥ १७ । २४ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=राजा**। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने ऽ अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता ऽ अददृहन्त पूर्व ऽ आदिद् द्यावापृथिवीऽअप्रथेताम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**चक्षुषः**) न्यायदर्शकस्य (**पिता**) पालकः (**मनसा**) योगाभ्यासेन शान्तान्तःकरणेन (**हि**) खलु (**धीरः**) धैर्य्यवान् (**घृतम्**) आज्यम् (**एने**) राजप्रजादले (**अजनत्**) प्रकटयेत् (**नम्नमाने**) ये नम्न इवाचरतस्ते। अत्राचारे क्विप् व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**यदा**) (**इत्**) एव (**अन्ताः**) अन्तावयवाः (**अददृहन्त**) वर्द्धेरन्। अत्र दृंह धातोर्लङि झादेशे कृते शपः श्लुस्ततो द्वित्वम् (**पूर्वे**) प्रथमतो वर्त्तमाने (**आत्**) अनन्तरम् (**इत्**) (**द्यावापृथिवी**) प्रकाशभूमी इव संगते (**अप्रथेताम्**) प्रख्याते भवेताम् ॥ २५ ॥

प्रमाणार्थ—(**नम्नमाने**) यहाँ 'आचार' अर्थ में क्विप् प्रत्यय तथा व्यत्यय से आत्मनेपद है। (**अददृहन्त**) यहाँ 'दृंह' धातु से लङ् लकार में 'झ' प्रत्यय के स्थान में आदेश करने पर 'शप्' प्रत्यय को श्लु करके द्वित्व हुआ है ॥

अन्वयः—हे प्रजाजनाः! भवन्तो यश्चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमजनत् तमधिकृत्य एने नम्नमाने पूर्वे द्यावापृथिवी अप्रथेतामिव यदेदन्ता इवाददृहन्त तदाऽऽदित्स्थिरराज्या भवेयुः ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **प्रजाजनाः !** **भवन्तो यश्चक्षुषः** न्यायदर्शकस्य **पिता** पालकः **मनसा** योगाभ्यासेन शान्तान्तःकरणेन **हि** खलु **धीरः** धैर्यवान् **घृतम्** आज्यम् **अजनत्** प्रकटयेत् **तमधिकृत्य एने** राजप्रजादले **नम्नमाने** ये नम्न

भाषार्थ—हे प्रजाजनो ! आप—जो (चक्षुषः) न्याय के दर्शक पुरुष का (पिता) पालक, (मनसा) योगाभ्यास के द्वारा शान्त अन्तःकरण के कारण (हि) ही (धीरः) धैर्यवान् है वह (घृतम्) घृत आदि पदार्थों को (अजनत्) उत्पन्न करे। उसे

इवाचरतस्ते **पूर्वे** प्रथमतो वर्त्तमाने **द्यावापृथिवी** प्रकाशभूमी इव सङ्गते **अप्रथेतां** प्रख्याते भवेताम् **इव, यदेद्** एव **अन्ताः** अन्तावयवाः **इवाददृहन्त** वर्द्धेरन्, **तदाऽऽद्** अनन्तरम् **इद्** एव **स्थिरराज्या भवेयुः** ॥ १७ । २५ ॥

अधिकार देकर (एने) ये राजदल और प्रजादल (नम्नमाने) झुके हुए से, (पूर्वे) पहले से विद्यमान, (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि के समान संगत होकर (अप्रथेताम्) प्रख्यात होवें। जब (इत्) ही (अन्ताः) अन्तिम अवयवों के समान (अददृहन्त) प्रजाजन वृद्धि को प्राप्त होते हैं उसके (आत्) पश्चात् (इद्) ही स्थिर राज्य वाले होते हैं ॥१७॥

[हे प्रजाजनाः ! भवन्तो यः ··· मनसा हि धीरो घृतमजनत् तमधिकृत्य द्यावापृथिवी अप्रथेतामिव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः॥ यदा मनुष्या राजप्रजाव्यंवहार एकसम्मतयो भूत्वा सदैव प्रयतेरंस्तदा सूर्यपृथिवीवत् स्थिरसुखा भवेयुः ॥ १७ । २५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जब मनुष्य राजा और प्रजा के व्यवहार में एक सम्मति वाले होकर सदैव प्रयत्न करें तभी सूर्य और पृथिवी के समान स्थिर सुख वाले होते हैं ॥ १७ । २५ ॥

भा० पदार्थः—द्यावापृथिवी=सूर्यपृथिवीवत्।

भाष्यसार—**१. राजा कैसा हो ?**—प्रजा ऐसे पुरुष को राजा बनावें कि जो न्याय करने वालों का पालक हो, योगाभ्यास के द्वारा शान्त मन वाला, परम धैर्यवान्, और उत्तमोत्तम पदार्थों का उत्पादक हो। ऐसे राजा का सब प्रजा सिर झुकाकर सत्कार करती है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। श्रेष्ठ प्रजा श्रेष्ठ राजा के साथ इस प्रकार संगत होकर रहे जैसे प्रकाश और भूमि संगत होकर रहते हैं ॥ १७ । २५ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=परमेश्वरः**। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ परमेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्युपदिश्यते ॥

अब परमेश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है॥

विश्वकर्म्मा विमना ऽ आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर ऽ एकमाहुः ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मा**) विश्वं=सर्वं जगत् कर्म=क्रियमाणं यस्य सः (**विमनाः**) विविधं मनो=विज्ञानं यस्य सः (**आद्**) आनन्तर्ये (**विहायाः**) विविधेषु पदार्थेषु व्याप्तः। **अत्रोहाङ् गतावित्यस्मादसुन् णित्कार्यं च** (**धाता**) धर्त्ता पोषको वा (**विधाता**) निर्माता (**परमा**) परमाणि=श्रेष्ठानि (**उत**) अपि (**सन्दृक्**) यः सम्यक् पश्यति (**तेषाम्**) (**इष्टानि**) सुखसाधकानि कर्माणि (**सम्**) (**इषा**) इच्छया (**मदन्ति**) हर्षन्ति (**यत्र**) **अत्र ऋचि तुनुघेति दीर्घः** (**सप्तऋषीन्**) सप्तप्राणादीन्। **प्राणादयः पञ्चसूत्रात्मा धनञ्जयश्चेति** (**परः**) सर्वोत्तमः (**एकम्**) अद्वितीयम् (**आहुः**) कथयन्ति ॥ २६ ॥

प्रमाणार्थ—(**विहायाः**) यहाँ 'ओहाङ् गतौ' इस धातु से असुन् प्रत्यय और णित्कार्य होकर यह रूप सिद्ध हुआ है। (**सप्त ऋषीन्**) प्राण आदि पाँच सूक्ष्म प्राण और एक धनंजय ये सप्त

ऋषि हैं। १. प्राण, २. अपान, ३. व्यान, ४. समान, ५. उदान—ये प्राणादि पाँच, छठा सूत्रात्मा और सातवां धनंजय ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! विश्वककर्मा यो विमना विहाया धाता विधाता संदृक् परोऽस्ति यमेकमाहुराद् यत्र सप्तऋषीन्प्राप्येषा जीवाः संमदन्त्युत यस्तेषां परमेष्टानि साध्नोति तं परमेश्वरं यूयमुपाध्वम् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **विश्वकर्मा** विश्वं=सर्वं जगत् कर्म=क्रियमाणं यस्य स **यो विमनाः** विविधं मनो=विज्ञानं यस्य सः **विहायाः** विविधेषु पदार्थेषु व्याप्तः **धाता** धर्त्ता पोषको वा **विधाता** निर्माता **सन्दृक्** यः सम्यक् पश्यति **परः** सर्वोत्तमः **अस्ति, यमेकम्** अद्वितीयम् **आहुः** कथयन्ति, **आद्** अनन्तरं **यत्र सप्तऋषीन्** सप्तप्राणादीन् **प्राप्येषा** इच्छया **जीवाः संमदन्ति** हर्षन्ति, **उत** अपि **यस्तेषां परमा** परमाणि=श्रेष्ठानि **इष्टानि** सुखसाधकानि कर्माणि **साध्नोति, तं परमेश्वरं यूयमुपाध्वम्** ॥ १७ । २६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(विश्वकर्मा) सब जगत् को बनाने वाला, जो (विमनाः) विविध विज्ञान वाला, (विहायाः) विविध पदार्थों में व्यापक, (धाता) धारण वा पोषण करने वाला, (विधाता) निर्माता, (सन्दृक्) सम्यक् द्रष्टा और (परः) सब से उत्तम है, तथा जिसे (एकम्) अद्वितीय (आहुः) कहते हैं, (आद्) और (यत्र) जहाँ (सप्तऋषीन्) सात प्राण आदि को प्राप्त करके (इषा) स्वेच्छापूर्वक जीव (संमदन्ति) हर्षित होते हैं, (उत) और—जो (तेषाम्) उन जीवों के (परमा) श्रेष्ठ (इष्टानि) सुख-साधक कर्मों को सिद्ध करता है उस परमेश्वर की तुम उपासना करो ॥ १७ । २६ ॥

[हे मनुष्या ! विश्वकर्मा, धाता, यमेकमाहुः...तं परमेश्वरं यूयमुपाध्वम्]

भावार्थः—मनुष्यैः सर्वस्य जगतः स्रष्टा, धर्त्ता, पालको, नाशकोऽद्वितीयः परमेश्वर एवेष्ट-साधनायोपासनीयः ॥ १७ । २६ ॥

भावार्थ—मनुष्य—सब जगत् के स्रष्टा, धर्त्ता, पालक, नाशक और अद्वितीय परमेश्वर की ही इष्ट-सिद्धि के लिए उपासना करें ॥

भा० पदार्थः—विश्वकर्मा=सर्वस्य जगतः स्रष्टा । धाता=धर्त्ता, पालकः ॥

अन्यत्र व्याख्यात—सर्वज्ञ, सर्व रचयिता ईश्वर विश्वकर्मा **(विविध जगदुत्पादक)** है; तथा "विमना" विविध (**अनन्त**) विज्ञान वाला है; तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार, अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है; वही सब जगत् का 'धाता' धारणकर्त्ता है; 'विधाता' विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है तथा "परम उत" सर्वोत्कृष्ट है; "सन्दृक्" यथावत् सबके पाप और पुण्यों को देखने वाला है।

जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार=पूजा करते हैं; उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते; उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं; औरों को नहीं। वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं, दुःख को नहीं प्राप्त होते।

वह परमात्मा एक=अद्वितीय है; जिस परमात्मा के सामर्थ्य से सप्त अर्थात् पञ्च प्राण, सूत्राऽऽत्मा और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं।

वही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के समय निर्विकार आनन्दस्वरूप रहता है। उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ **आर्याभिविनय०** २ । ४० ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर कैसा है**—सब संसार का रचयिता, धारणकर्त्ता और द्रष्टा परमेश्वर है। वह ही विभिन्न प्रकार के पदार्थों का अद्वितीय निर्माता है। वह विविध विज्ञानों का भण्डार सर्वोत्तम और सर्वत्र व्यापक है। परमेश्वर ही सब श्रेष्ठ कर्मों का साधक तथा सुखों का दाता है ॥ १७। २६ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा। **विश्वकर्मा=परमेश्वरः**। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा ऽ एक ऽ एव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**यः**) (**नः**) अस्माकम् (**पिता**) पालकः (**जनिता**) सर्वेषां पदार्थानां प्रादुर्भावयिता (**यः**) (**विधाता**) कर्मानुसारेण फलप्रदाता जगन्निर्माता (**धामानि**) जन्मस्थाननामानि (**वेद**) जानाति (**भुवनानि**) सर्वपदार्थाधिकरणानि (**विश्वा**) सर्वाणि (**यः**) (**देवानाम्**) विदुषां पृथिव्यादीनां वा (**नामधाः**) यः स्वविद्यया नामानि दधाति (**एकः**) अद्वितीयोऽसहायः (**एव**) (**तम्**) (**सम्प्रश्नम्**) सम्यक् पृच्छति यस्मिँस्तम् (**भुवना**) लोकस्थपदार्थाः (**यन्ति**) प्राप्नुवन्ति गच्छन्ति वा (**अन्या**) अन्यानि भुवनस्थानि ॥ १७। २७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यो नः पिता जनिता यो विधाता विश्वा भुवनानि धामानि वेद यो देवानां नामधा एक एवास्ति यमन्या भुवना यन्ति सम्प्रश्नं तं यूयं जानीत ॥ १७। २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः**? **यो नः** अस्माकं **पिता** पालकः **जनिता** सर्वेषां पदार्थानां प्रादुर्भावयिता, **यो विधाता** कर्मानुसारेण फलप्रदाता जगन्निर्माता **विश्वा** सर्वाणि **भुवनानि** सर्वपदार्थाधिकरणानि **धामानि** जन्मस्थाननामानि **वेद** जानाति, **यो देवानां** विदुषां पृथिव्यादीनां वा **नामधाः** यः स्वविद्यया नामानि दधाति **एकः** अद्वितीयो ऽसहायः **एवास्ति**।

यमन्या अन्यानि भुवनस्थानि **भुवना** लोकस्थपदार्थाः **यन्ति** प्राप्नुवन्ति गच्छन्ति वा **सम्प्रश्नं** सम्यक् पृच्छति यस्मिँस्तं **तं यूयं जानीत** ॥ २७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! (यः) जो (नः) हमारा (पिता) पालक (जनिता) सब पदार्थों को उत्पन्न करने वाला है, (यः) जो (विधाता) कर्मानुसार फल देने वाला जगत् का निर्माता है वह (विश्वा) सब (भुवनानि) सब पदार्थों के आधार (धामानि) जन्म, स्थान, नामों को (वेद) जानता है, (यः) जो (देवानाम्) देव=विद्वानों वा पृथिवी आदि का (नामधाः) अपनी विद्या से नामों को धारण करने वाला (एकः) अद्वितीय ईश्वर ही है।

(यम्) जिसे (अन्या) अन्य (भुवना) लोकों के पदार्थ (यन्ति) प्राप्त हैं, (सम्प्रश्नम्) उत्तम रीति से पूछने=जानने योग्य (तम्) उस परमेश्वर को तुम जानो ॥ १७। २७ ॥

[यो नः पिता······विश्वा भुवनानि धामानि वेद, यो······एक एवास्ति]

भावार्थः—यः सर्वस्य विश्वस्य पितृवत् पालकः, सर्वज्ञोऽद्वितीयः परमेश्वरो वर्त्तते,

भावार्थ—जो सब जगत् का पिता के समान पालक, सर्वज्ञ, अद्वितीय परमेश्वर है,

[यमन्या भुवना यन्ति संप्रश्नं तं यूयं जानीत]

तस्य, तत्सृष्टेश्च विज्ञानेनैव सर्वे मनुष्याः परस्परं मिलित्वा प्रश्नोत्तराणि कुर्वन्तु ॥ २७ ॥

उसके और उसकी सृष्टि के विज्ञान से ही सब मनुष्य परस्पर मिलकर प्रश्न-उत्तर करें ॥ २७ ॥

भा० पदार्थः—पिता=सर्वस्य विश्वस्य पितृवत् पालकः ।

अन्यत्र व्याख्यात—हे मनुष्यो ! जो अपना 'पिता' नित्य पालन करने वाला, 'जनिता' जनक, उत्पादक 'विधाता' सब मोक्ष-सुखादि कार्यों का विधायक (**सिद्धिकर्त्ता**), "विश्वा" सब भुवन=लोक-लोकान्तर धाम अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जानने वाला, सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है ।

जो दिव्य सूर्य्यादिलोक तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करने वाला एक=अद्वितीय वही है; अन्य कोई नहीं । वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है, इसमें शङ्का नहीं रखनी; तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणिमात्र प्राप्त हो रहे हैं । क्योंकि—

सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (**ज्ञान**) करना । उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है; अन्यथा नहीं । इसी हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिए ॥ **आर्याभिविनयः** ॥ २ । ४२ ॥

भाष्यसार—परमेश्वर कैसा है ?—वह परमेश्वर सब का निर्माता, पालक और कर्मानुसार फल देने वाला है । वह सबका आश्रय और सब जन्म, स्थान, नामों का जानने वाला है । वह ही पृथिवी आदि लोकों को धारण करने वाला है, अद्वितीय है, विद्वानों का एक मात्र आश्रय है । उसके सृष्टि के विज्ञान से ही जानने की इच्छा पैदा होती है ॥ १७ । २७ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा=परमेश्वरः** । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

त ऽ आयजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऽ ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**ते**) (**आ**) (**अयजन्त**) संगच्छेरन् (**द्रविणम्**) श्रियम् (**सम्**) (**अस्मै**) अस्येश्वरस्याज्ञापालनाय (**ऋषयः**) वेदवेत्तारः (**पूर्वे**) पूर्णविद्यया सर्वस्य पोषकाः (**जरितारः**) स्तावकाः (**न**) इव (**भूना**) भूमना । अत्र पृषोदरादित्वान्मकारलोपः (**असूर्त्ते**) अप्राप्ते परोक्षे । अत्र सृधातोः क्तान्तं निपातनम् । न सत्तनिषत्तेत्यनेन निपात्यते ॥ अ० ८ । २ । ६१ ॥ (**सूर्त्ते**) प्राप्ते प्रत्यक्षे (**रजसि**) लोके (**निषत्ते**) स्थिते स्थापिते वा (**ये**) (**भूतानि**) (**समकृण्वन्**) सम्यक् शिक्षितान् कुर्युः (**इमानि**) प्रत्यक्षविषयाणि ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**भूना**) भूमना । यहाँ 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६ । ३ । १०९) पृषोदरादि से मकार का लोप है । (**असूर्त्ते**) यहाँ 'सृ' धातु से 'क्त' प्रत्ययान्त निपातन है । 'नसत्तनिषत्त०' (८ । २ । ३१) से निपातित है ॥

अन्वयः—ये पूर्वे जरितारो न ऋषया भूनाऽसूर्त्ते सूर्त्ते निषत्ते रजसीमानि भूतानि साक्षात्समकृण्वन् तेऽस्मै द्रविणं समायजन्त ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये पूर्वे** पूर्णविद्यया सर्वस्य पोषकाः **जरितारः** स्तावकाः **न** इव **ऋषयः** वेदवेत्तारः **भूना** भूमना **असूर्त्ते** अप्राप्ते परोक्षे **सूर्त्ते** प्राप्ते प्रत्यक्षे **निषत्ते** स्थिते स्थापिते वा **रजसि** लोके **इमानि** प्रत्यक्षविषयाणि **भूतानि साक्षात् समकृण्वन्** सम्यक् शिक्षितान् कुर्युः **तेऽस्मै** अस्येश्वरस्याज्ञापालनाय **द्रविणं** श्रियं **सम्+आ-अयजन्त** सङ्गच्छेरन् ॥ १७ । २८ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (पूर्वे) पूर्णविद्या से सबके पोषक, (जरितारः) स्तुति करने वालों के (न) समान (ऋषयः) वेद के वेत्ता लोग (भूना) अधिकता से (असूर्त्ते) अप्राप्त=परोक्ष, (सूर्त्ते) प्राप्त=प्रत्यक्ष, (निषत्ते) स्थित वा स्थापित (रजसि) लोक में (इमानि) इन (भूतानि) भूतों को साक्षात् (समकृण्वन्) उत्तम रीति से शिक्षित करें (ते) वे (अस्मै) इस ईश्वर की आज्ञा-पालन के लिए (द्रविणम्) श्री=धन को (सम्+आ+अयजन्त) प्राप्त करें ॥ १७ । २८ ॥

[ये··· न ऋषयो···रजसि इमानि भूतानि साक्षात्समकृण्वन्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा विद्वांसोऽत्रजगति परेशाज्ञापालनाय सृष्टचनुक्रमेण तत्त्वं जानन्ति, तथैवान्य आचरन्तु ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जैसे विद्वान् लोग इस जगत् में परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए सृष्टि-क्रम से तत्त्व को जानते हैं, वैसे ही अन्य भी आचरण करें ।

[तेऽस्मै द्रविणं समायजन्त]

यथा धार्मिका धर्माचरणेन धनमुपार्जन्ति, तथैव सर्व उपार्जन्तु ॥ १७ । २८ ॥

जैसे धार्मिक लोग धर्माचरण से धन का उपार्जन करते हैं वैसे ही सब धनोपार्जन करें ॥ १७ । २८ ॥

भा० पदार्थः—ऋषयः=विद्वांसः । द्रविणम्=धनम् । समायजन्त=उपार्जयन् ॥

भाष्यसार—१. **परमेश्वर कैसा है ?**—जो पूर्ण विद्वान्, वेदवेत्ता पुरुष हैं, जिन्होंने संसार के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष लोकों के पदार्थों का साक्षात् कर लिया है, वे ईश्वर की आज्ञा-पालन से तथा उसकी स्तुति करने से सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । सब मनुष्य विद्वानों की तरह धर्माचरण, ईश्वराज्ञापालन तथा स्तुति आदि से धनों को प्राप्त करें ॥ १७ । २८ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा**=ब्रह्म । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

प॒रो दि॒वा प॒र ऽ ए॒ना पृ॑थि॒व्या प॒रो दे॒वेभि॒रसु॑रै॒र्यदस्ति॑ ।
कथ्ँ स्वि॒द् गर्भं॑ प्रथ॒मं द॑ध्र॒ आपो॒ यत्र॑ दे॒वाः स॒मप॑श्यन्त॒ पूर्वे॑ ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**परः**) प्रकृष्टः (**दिवा**) सूर्यादिना (**परः**) (**एना**) एनया (**पृथिव्या**) (**परः**) (**देवेभिः**) विद्वद्भिर्दिव्याभिः प्रकाशयुक्ताभिः प्रजाभिर्वा (**असुरैः**) अविद्वद्भिः, अन्तकरूपाभिः प्रजाभिर्वा (**यत्**) (**अस्ति**) (**कम्**) (**स्वित्**) (**गर्भम्**) ग्रहीतुं योग्यं वस्तु (**प्रथमम्**) विस्तृतम् (**दध्रे**) दधिरे (**आपः**) प्राणाः (**यत्र**) (**देवाः**) विद्वांसो जनाः (**समपश्यन्त**) सम्यक् पश्यन्ति (**पूर्वे**) अधीतपूर्णविद्याः ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य एना दिवा परः पृथिव्या परो देवेभिरसुरैः परोऽस्ति यत्रापः कं स्वित् प्रथमं गर्भं दध्रे यत्पूर्वे देवाः समपश्यन्त तद् ब्रह्मेति यूयं विजानीत ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! य एना एनया **दिवा** सूर्यादिना **परः** प्रकृष्टः **पृथिव्या परः** प्रकृष्टः **देवेभिः** विद्वद्भिर्दिव्याभिः प्रकाशयुक्ताभिः प्रजाभिर्वा **असुरैः** अविद्वद्भिः अन्तकरूपाभिः प्रजाभिर्वा **परः** प्रकृष्टः **अस्ति, यत्रापः** प्राणाः **कं स्वित् प्रथमं** विस्तृतं **गर्भं** ग्रहीतुं योग्यं वस्तु **दध्रे** दधिरे, **यत्पूर्वे** अधीतपूर्णविद्याः **देवा** विद्वांसो जनाः **समपश्यन्त** सम्यक् पश्यन्ति, **तद् ब्रह्मेति यूयं विजानीत** ॥ १७ । २९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (एना) इस (दिवा) सूर्य आदि से (परः) उत्तम, (पृथिव्या) पृथिवी से (परः) उत्तम, (देवेभिः) विद्वानों वा दिव्य=प्रकाशयुक्त प्रजा से, (असुरैः) अविद्वान् वा अन्तक=मृत्यु रूप प्रजा से (परः) उत्तम है; (यत्र) जहाँ (आपः) प्राण (कंस्वित्) किसी (प्रथमम्) विस्तृत (गर्भम्) ग्रहण करने योग्य वस्तु को (दध्रे) धारण करते हैं; जिसे (पूर्वे) पूर्ण विद्या वाले (देवाः) विद्वान् लोग (समपश्यन्त) सम्यक् देखते हैं; वह ब्रह्म है, ऐसा तुम जानो ॥ १७ । २९ ॥

[हे मनुष्याः ! य एना दिवा परः···अस्ति, यत्रापः···गर्भं दध्रे, यत्पूर्वे देवाः समपश्यन्त, तद् ब्रह्म यूयं विजानीत]

भावार्थः—मनुष्यैर्यत् सर्वेभ्यः सूक्ष्मं महत् परं सर्वधातृ विद्वद्विषयमनादि चेतनमस्ति, तदेव ब्रह्मोपासनीयं; नेतरत् ॥ १७ । २९ ॥

भावार्थ—मनुष्य-जो सबसे सूक्ष्म, महान्, पर=उत्तम, सबको धारण करने वाला, विद्वानों का विषय, अनादि एवं चेतन है, उसी ब्रह्म की उपासना करें, अन्य की नहीं ॥ १७ । २९ ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर कैसा है ?**—जिस परमेश्वर का सम्यक् दर्शन पूर्ण विद्वान् ही कर पाते हैं, वह ब्रह्म है और वह पृथिवी सूर्यादि लोकों से, उत्तम विद्वानों से और अविद्वान् मृत्युरूप प्रजा से श्रेष्ठ है। सब प्राणी उस ब्रह्म के आश्रय से ही प्राणादि को धारण किये हुए हैं ॥ १७ । २९ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा=परमेश्वरः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र ऽ आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**तम्**) (**इत्**) एव (**गर्भम्**) सर्वलोकानामुत्पत्तिस्थानं प्रकृत्याख्यम् (**प्रथमम्**) विस्तृतमनादि (**दध्रे**) दधिरे (**आपः**) कारणाख्याः प्राणा जीवा वा (**यत्र**) यस्मिन् ब्रह्मणि (**देवाः**)

दिव्यात्मान्तःकरणा योगविदः (**समगच्छन्त**) सम्यक् प्राप्नुवन्ति (**विश्वे**) सर्वे (**अजस्य**) अनुत्पन्नस्यानादेर्जीवस्याव्यक्तस्य च (**नाभौ**) मध्ये (**अधि**) अधिष्ठातृत्वेन सर्वोपरि विराजमानम् (**एकम्**) स्वयं सिद्धम् (**अर्पितम्**) प्रापितं=स्थितम् (**यस्मिन्**) (**विश्वानि**) अखिलानि (**भुवनानि**) लोकजातान्यधिकरणानि (**तस्थुः**) तिष्ठन्ति ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यत्रापः प्रथमं गर्भं दध्रे यस्मिन् विश्वे देवाः समगच्छन्त यदजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तमिदेव परमात्मानं यूयं बुध्यध्वम् ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यत्र** यस्मिन् ब्रह्मणि **आपः** कारणाख्याः प्राणा जीवा वा **प्रथमं** विस्तृतमन्नादि **गर्भं** सर्वलोकानामुत्पत्ति-स्थानं प्रकृत्याख्यं **दध्रे** दधिरे, **यस्मिन् विश्वे** सर्वे **देवा** दिव्यात्मान्तःकरणा योगविदः **समगच्छन्त** सम्यक् प्राप्नुवन्ति, **यदजस्य** अनुत्पन्नस्यानादेर्जीवस्याव्यक्तस्य च **नाभौ** मध्ये **अधि** अधिष्ठातृत्वेन सर्वोपरि विराजमानम् **एकं** स्वयं सिद्धम् **अर्पितं** प्रापितं=स्थितं **यस्मिन् विश्वानि** अखिलानि **भुवनानि** लोकजातान्यधिकरणानि **तस्थुः** तिष्ठन्ति, **तमिद्**=**एव परमात्मानं यूयं बुध्यध्वम्** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (**यत्र**) जिस ब्रह्म में (**आपः**) कारण रूप प्राण वा जीव (**प्रथमम्**) विस्तृत एवं अनादि (**गर्भम्**) सब लोकों के उत्पत्ति-स्थान प्रकृति रूप गर्भ को (**दध्रे**) धारण करते हैं; (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वे**) सब (**देवाः**) दिव्य आत्मा और अन्तःकरण वाले योगी लोग (**समगच्छन्त**) प्राप्त होते हैं; जो-(**अजस्य**) अनुत्पन्न, अनादि जीव और अव्यक्त=प्रकृति के (**नाभौ**) मध्य में (**अधि**) अधिष्ठाता रूप से सबके ऊपर विराजमान, (**एकम्**) स्वयं सिद्ध, (**अर्पितम्**) स्थित है; (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वानि**) सब (**भुवनानि**) आधार-भूत सब लोक (**तस्थुः**) स्थित हैं (**तम्**) उसे (**इत्**) ही तुम परमात्मा जानो ॥

[हे मनुष्याः ! यत्रापः प्रथमं गर्भं दध्रे, यस्मिन् विश्वे देवाः समगच्छन्त, यदजस्य नाभावध्येकमर्पितं, यस्मिन् भुवनानि तस्थुः]

भावार्थः—मनुष्यैः—यो जगत्-आधारः, योगिभिर्गम्यो, ऽन्तर्यामी, स्वयं स्वाधारः, सर्वत्र व्याप्तोऽस्ति, स एव सर्वैः सेवनीयः ॥ १७ । ३० ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—जो जगत् के आधार योगि-जनों से प्राप्त करने योग्य, अन्तर्यामी, स्वयं अपना आधार, सर्वत्र व्यापक परमात्मा है उसी का सेवन=उपासना करें ॥ १७ । ३० ॥

भाष्यसार—परमेश्वर कैसा है ?—जिस परमेश्वर के आश्रय से सब लोक-लोकान्तर स्थित हैं, जो अनुत्पन्न प्रकृति तथा जीवों का अधिष्ठाता है, जिस ब्रह्म में कारण रूप प्राण वा जीव अनादि प्रकृति को धारण करते हैं, उसी को सब दिव्यात्मा योगी पुरुष प्राप्त करते हैं ॥ १७ । ३० ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा=परमेश्वरः** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(न) निषेधे (तम्) परमात्मानम् (**विदाथ**) जानीथ। लेट्प्रयोगः (**यः**) (**इमा**) इमानि भूतानि (**जजान**) जनयति (**अन्यत्**) कार्यकारणजीवेभ्यो भिन्नं ब्रह्म (**युष्माकम्**) अधार्मिकाणामविदुषाम् (**अन्तरम्**) मध्ये स्थितमपि दूरस्थमिव (**बभूव**) भवति (**नीहारेण**) धूमाकारेण कुहकेनेवाज्ञानेन (**प्रावृताः**) प्रकृष्टतयाऽऽवृता=आच्छन्नाः सन्तः (**जल्प्या**) जल्पेषु=सत्यासत्यवादानुवादेषु भवाः। **अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेराकारादेशः** (**च**) (**असुतृपः**) येऽसुषु=प्राणेषु तृप्यन्ति ते (**उक्थशासः**) ये योगाभ्यासं विहाय उक्थानि=वचनानि शंसन्ति तेऽर्थात् शब्दार्थयोः खण्डने रताः (**चरन्ति**) व्यवहरन्ति ॥ १७। ३१॥

प्रमाणार्थ—(**विदाथ**) यह 'लेट्' लकार का प्रयोग है। (**जल्प्या**) यहाँ सुपां सुलुक् (७। १। ३९) से विभक्ति को आकार आदेश है॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथाऽब्रह्मविदो जना नीहारेण चाज्ञाने प्रावृता जल्प्या असुतृपश्चोक्थशासश्चरन्ति तथाभूता यूयं तं न विदाथ य इमा जजान यद् ब्रह्म युष्माकं सकाशादन्यदन्तरं बभूव तददतिसूक्ष्ममात्मन आत्मभूतं न विदाथ॥ १७। ३१॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽब्रह्मविदो जना नीहारेण** धूमाकारेण कुहकेनेवाज्ञानेन **चाऽज्ञानेन प्रावृताः** प्रकृष्टतयाऽऽवृताः=आच्छन्नाः सन्तः **जल्प्या** जल्पेषु=सत्यासत्यवादानुवादेषु भवाः **असुतृपः** येऽसुषु=प्राणेषु तृप्यन्ति ते **चोक्थशासः** ये योगाभ्यासं विहाय उक्थानि=वचनानि शंसन्ति तेऽर्थात् शब्दार्थयोः खण्डने रताः **चरन्ति** व्यवहरन्ति, **तथाभूता यूयं तं** परमात्मानं **न विदाथ** जानीथ। **य इमा** इमानि भूतानि **जजान** जनयति।

यद् ब्रह्म युष्माकं सकाशादन्यत् कार्यकारणजीवेभ्यो भिन्नं ब्रह्म **अन्तरं** मध्ये स्थितमपि दूरस्थमिव **बभूव** भवति, **तददतिसूक्ष्ममात्मन आत्मभूतं न विदाथ** जानीथ॥ १७। ३१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे ब्रह्म को न जानने वाले लोग (नीहारेण) धूमाकार कुहक=कोहरा के समान अज्ञान से (प्रावृताः) ढके हुए, (जल्प्याः) जल्प=सत्य-असत्य वाद-अनुवादों में विद्यमान, (असुतृपः) असु=प्राणों में तृप्त रहने वाले और (उक्थशासः) जो योगाभ्यास को छोड़ कर उक्त-वचनों की प्रशंसा करने वाले अर्थात् शब्द अर्थ के खण्डन में रत होकर (चरन्ति) व्यवहार करते हैं, ऐसे तुम लोग (तम्) उस परमात्मा को, (न) नहीं (विदाथ) जानते हो। (यः) जो (इमा) इन भूतों को (जजान) उत्पन्न करता है।

(यत्) जो ब्रह्म (युष्माकम्) तुमसे एवं (अन्यत्) कार्य, कारण और जीवों से भिन्न है (अन्तरम्) मध्य में स्थित हुआ भी दूर सा (बभूव) है, उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा ब्रह्म को (न) नहीं (विदाथ) जानते हो॥ १७। ३१॥

[हे मनुष्याः! यथाऽब्रह्मविदो जना नीहारेण चाज्ञाने प्रावृता······चोक्थशासश्चरन्ति, तथाभूता यूयं तं न विदाथ]

भावार्थः—ये ब्रह्मचर्यादिव्रताचारविद्या-योगाभ्यास-धर्मानुष्ठान—सत्संग—पुरुषार्थरहितास्तेऽज्ञानान्धकारावृताः सन्तो ब्रह्म ज्ञातुं न शक्नुवन्ति।

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य आदि व्रत, आचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, सत्संग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे अज्ञान-अन्धकार से ढके हुए ब्रह्म को नहीं जान सकते।

[यद् ब्रह्म युष्माकं सकाशादन्यत्······बभूव, तददतिसूक्ष्ममात्मन आत्मभूतं न विदाथ]

यद् ब्रह्म जीवादिभ्यो भिन्नमन्तर्यामि, सकल-

जो ब्रह्म जीव आदि से भिन्न, अन्तर्यामी,

नियन्तृ, सर्वत्र व्याप्तमस्ति, तज्ज्ञातुं पवित्रात्मान एवार्हन्ति; नेतरे ॥ १७ । ३१ ॥ सबका नियन्ता, सर्वत्र व्यापक है उसे पवित्र आत्मा ही जान सकते हैं; दूसरे नहीं ॥ १७ । ३१ ॥

भा० पदार्थः—नीहारेण=अज्ञानान्धकारेण । प्रावृताः=आवृताः । अन्यत्=जीवादिभ्यो भिन्नम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनाने वाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते हो । इसी हेतु से तुम "निहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत, मिथ्यावाद, नास्तिकत्व, बकवाद करते हो, इससे दुःख ही तुमको मिलेगा, सुख नहीं । तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राण पोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो । "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय-भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो, और जिसने ये सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो । अतएव उसको तुम नहीं जानते ।

प्रश्न—वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग, ये दोनों एक हैं वा नहीं ?

उत्तर—"यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है । जीव अविद्यादि दोष युक्त है, ब्रह्म अविद्यादि दोष-युक्त नहीं है । इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं । किंच व्याप्य-व्यापक, आधाराधेय, (**सेव्य सेवक आदि**) सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है । इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥ **आर्याभिविनयः** २ । ४४ ॥

भाष्यसार—परमेश्वर के न जानने से हानियाँ—जो परमात्मा कारण प्रकृति और जीव से भिन्न है, सबको पैदा करता है तथा सबके अन्दर अतिसूक्ष्म होने से व्याप्त है, उसको जो नहीं जानते, वे कोहरे के समान अज्ञान से ढके होने के कारण, स्वार्थरत होकर व्यर्थ के वाद-विवादों में लगे रहते हैं ॥ १७ । ३१ ॥

भुवनपुत्रो विश्वकर्मा । **विश्वकर्मा=परमेश्वरः** । स्वराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

परमेश्वर विषय का फिर उपदेश किया है ॥

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव ऽआदिद् गन्धर्वो ऽअभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मा**) विश्वानि=सर्वाणि शुभानि कर्माणि यस्य सः (**हि**) खलु (**अजनिष्ट**) जनितवान् (**देवः**) दिव्यस्वरूपः (**आत्**) (**इत्**) (**गन्धर्वः**) गां=पृथिवीं धरति स सूर्यः सूत्रात्मा वायुर्वा (**अभवत्**) भवति (**द्वितीयः**) द्वयोः संख्यापूरको धनञ्जयः (**तृतीयः**) त्रयाणां संख्यापूरकः प्राणादि-स्वरूपः (**पिता**) पालकः (**जनिता**) प्रसिद्धिकर्त्ताऽपां धर्त्ता पर्जन्यः (**ओषधीनाम्**) यवादीनाम् (**अपाम्**) जलानां प्राणानां वा (**गर्भम्**) धारणम् (**वि**) (**अदधात्**) दधाति (**पुरुत्रा**) यः पुरून्=बहून् त्रायते सः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! अत्र जगति विश्वकर्मा देवो वायुरादिम इदभवदादनन्तरं गन्धर्वो

ऽजनिष्टौषधीनामपां पिता हि द्वितीयो यो गर्भं व्यदधात् स पुरुत्रा जनिता पर्जन्यः तृतीयोऽभवदिति भवन्तो विदन्तु ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः । **अत्र जगति विश्वकर्मा** विश्वानि=सर्वाणि शुभानि कर्माणि यस्य स **देवः**=**वायुः** दिव्यस्वरूप **आदिम इदभवद्** भवति ।

आत्=**अनन्तरं गन्धर्वः** मां=पृथिवीं धरति स सूर्यः सूत्रात्मा वायुर्वा **अजनिष्ट** जनितवान्,

ओषधीनां यवादीनाम् **अपां** जलानां प्राणानां वा **पिता** पालकः **हि** खलु **द्वितीयः** द्वयोः संख्यापूरको धनञ्जयो **यो गर्भं** धारणं **व्यदधात्** दधाति ।

स पुरुत्रा यः पुरून्=बहून् त्रायते सः **जनिता**=**पर्जन्यः** प्रसिद्धिकर्त्ताऽपां धर्त्ता पर्जन्यः **तृतीयः** त्रयाणां संख्यापूरकः प्राणादिस्वरूपः **अभवद्** भवति **इति भवन्तो विदन्तु** ॥ १७ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! इस जगत् में (विश्वकर्मा) सब शुभ कर्मों वाला (देवः) दिव्य स्वरूप वाला आत्मा आदिम (इत्) ही (अभवत्) है ।

(आत्) तत्पश्चात् (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने वाला सूर्य वा सूक्ष्म वायु (अजनिष्ट) पैदा हुआ ।

(ओषधीनाम्) जौ आदि ओषधियों (अपाम्) जल वा प्राणों का (पिता) पालक (हि) ही (द्वितीयः) दूसरा धनञ्जय है जो (गर्भम्) धारण-शक्ति को (व्यदधात्) धारण कर रहा है ।

वह—(पुरुत्रा) बहुतों का पालक, (जनिता) प्रसिद्धि-कर्त्ता एवं जलों को धारण करने वाला बादल (तृतीय) तीसरा प्राण आदि स्वरूप है, ऐसा आप जानो ॥ १७ । ३२ ॥

[हे मनुष्याः ! अत्र जगति विश्वकर्मा देवो आदिम इदभवद्]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैरिह सकलकर्मसेवका जीवाः प्रथमाः,

भावार्थ—सब मनुष्य इस जगत् में सब कर्मों का सेवन करने वाले जीवों को प्रथम,

[आत्=अनन्तरं गन्धर्वो ऽजनिष्ट, ओषधीनामपां पिता हि द्वितीयः, यो गर्भं व्यदधात्]

विद्युत्-अग्नि-सूर्य-वायवः पृथिव्यादिधारका द्वितीयाः,

पृथिवी आदि को धारण करने वाले विद्युत्, अग्नि, सूर्य और वायु को द्वितीय,

[स···जनिता=पर्जन्यस्तृतीयो ऽभवदिति भवन्तो विदन्तु]

तृतीयाः पर्जन्यादयस्तेषां जीवा अजा, अन्ये सर्वे जाताः, तेऽपि कारणरूपेण नित्याश्चेति वेद्यम् ॥ १७ । ३२ ॥

और पर्जन्य=बादल आदि को तृतीय समझें । इनमें जीव अजन्मा हैं अन्य सब उत्पन्न हुए हैं । वे भी कारण रूप से नित्य हैं ऐसा समझें ॥

भा० पदार्थः—विश्वकर्मा=सकलकर्मसेवकः । देवः=जीवः । गन्धर्वः=विद्युत्, अग्निः, सूर्यः, वायुः । जनिता=पर्जन्यादि ॥

भाष्यसार—**परमेश्वर की सृष्टि का रचनाक्रम**—दिव्य स्वरूप, विश्वकर्मा परमात्मा जगत् में प्रथम विद्यमान रहता है, तत्पश्चात् पृथिवी को धारण करने वाले सूर्य और वायु पैदा हुए । तत्पश्चात् ओषधियों का जलों का, तथा प्राणों का पालक और धारण-शक्ति वाला धनञ्जय पैदा हुआ । तत्पश्चात् अन्नादि के उत्पादक होने से सबके पालक, जलों को धारण करने वाले मेघ पैदा हुए ॥ १७ । ३२॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=सेनापतिः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ सेनापतिकृत्यमुपदिश्यते ॥

अब सेनापति के कृत्य का उपदेश किया जाता है ॥

आ॒शुः शिशा॑नो वृष॒भो न भी॒मो घ॑नाघ॒नः क्षोभ॑णश्चर्षणी॒नाम् ।
सं॒क्रन्द॑नोऽनिमि॒ष ऽ एक॑वी॒रः श॒तꣳ सेना॑ ऽ अजयत्सा॒कमिन्द्रः॑ ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**आशुः**) शीघ्रकारी (**शिशानः**) तनूकर्त्ता (**वृषभः**) बलीवर्दः (न) इव (**भीमः**) भयंकरः (**घनाघनः**) अतिशयेन शत्रून् घातुकः । **हन्तेर्घत्वं चेति वार्त्तिकेनाचि प्रत्यये घत्वमभ्यासस्यागमश्च** (**क्षोभणः**) क्षोभकर्त्ता=संचालयिता (**चर्षणीनाम्**) मनुष्याणां तत्सम्बन्धिसेनानां वा । **चर्षणय इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥** (**संक्रन्दनः**) सम्यक् शत्रूणां रोदयिता (**अनिमिषः**) अहर्निशं प्रयतमानः (**एकवीरः**) एकश्चासौ वीरश्च (**शतम्**) असंख्याः (**सेनाः**) सिन्वन्ति=बध्नन्ति शत्रून् याभिस्ताः (**अजयत्**) जयति (**साकम्**) सार्द्धम् (**इन्द्रः**) शत्रूणां विदारयिता सेनेशः ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**घनाघनः**) यहाँ 'हन्तेर्घत्वं च' इस वार्त्तिक से अच् प्रत्यय करने पर 'घत्व' और अभ्यास को 'आक्' आगम है । (**चर्षणयः**) 'चर्षणयः' पद निघं० २ । ३ में मनुष्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! मनुष्या यूयं यश्चर्षणीनामाशुः शिशानो वृषभो ना भीमो घनाघनः क्षोभणः संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीर इन्द्रोऽस्माभिः साकं शतं सेना अजयत् तमेव सेनाधीशं कुरुत ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वांसो मनुष्याः! यूयं यश्चर्षणीनां** मनुष्याणां तत्सम्बन्धिसेनानां वा **आशुः** शीघ्रकारी, **शिशानः** तनूकर्त्ता, **वृषभः** बलीवर्दः **न** इव **भीमः** भयङ्करः **घनाघनः** अतिशयेन शत्रून् घातुकः **क्षोभणः** क्षोभकर्त्ता=संचालयिता, **संक्रन्दनः** सम्यक् शत्रूणां रोदयिता, **अनिमिषः** अहर्निशं प्रयतमानः, **एकवीरः** एकश्चासौ वीरश्च **इन्द्रः** शत्रूणां विदारयिता सेनेशः **अस्माभिः साकं** सार्द्धं **शतम्** असंख्याः **सेनाः** सिन्वन्ति बध्नन्ति शत्रून् याभिस्ताः **अजयत्** जयति, **तमेव सेनाधीशं कुरुत** ॥ १७ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम—जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों वा उनसे सम्बन्धित सेनाओं को (आशुः) शीघ्र बनाने वाला, (शिशानः) पदार्थों को सूक्ष्म करने वाला, (वृषभः) बैल के (न) समान (भीमः) भयंकर, (घनाघनः) अत्यन्त शत्रुओं का घातक, (क्षोभणः) संचालक, (संक्रन्दनः) शत्रुओं को सम्यक् रुलाने वाला (अनिमिषः) दिन-रात प्रयत्न करने वाला, (एकवीरः) एक वीर (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारक सेनापति हमारे (साकम्) साथ (शतम्) असंख्य (सेनाः) शत्रुओं को बांधने वाली सेनाओं को (अजयत्) जीतता है; उसे ही सेनापति बनाओ ॥ १७ । ३३ ॥

[हे ··· **मनुष्याः ! यूयं यः···वृषभो न भीमः,···इन्द्रोऽस्माभिः साकं शतं सेना अजयत्, तमेव न्यायाधीशं कुरुत**]

भावार्थः—मनुष्यैः—यो धनुर्वेदविद्, ऋग्वेदादिविद्, निर्भयः, सर्वविद्यः, बलिष्ठः, धार्मिकः, स्वराज्यानुरागी, जितेन्द्रियः, अरीणां विजेता, स्वसेनायाः शिक्षणे योधने च कुशलो वीरो भवेत्; स सेनाधीशाधिकारे स्थापनीयः ॥१७।३३॥

भावार्थ—मनुष्य—जो धनुर्वेद का वेत्ता, ऋग्वेद आदि का ज्ञाता, निर्भय, सब विद्याओं से युक्त, बलिष्ठ, धार्मिक, स्वराज्य का अनुरागी, जितेन्द्रिय, शत्रुओं का विजेता, अपनी सेना के शिक्षण और युद्ध कराने में कुशल वीर हो उसे सेनापति के अधिकार पर स्थापित करें ॥१७।३३॥

भा० पदार्थः—वृषभः=बलिष्ठः ॥

भाष्यसार—सेनापति कैसा हो ?—एकमात्र वीर, निरन्तर प्रयत्न करके शत्रु-सेनाओं को पराजित करने वाला तथा रुलाने वाला, आलस्य रहित होकर शीघ्र कार्य करने वाला, बैल की तरह भयानक, दुष्टों का घातक, अपनी सेनाओं का भली-भांति सञ्चालन करने वाला, और पदार्थों को बुद्धि-चातुर्य से सूक्ष्म करने वाला व्यक्ति सेनापति बनने का अधिकारी होता है ॥ १७ । ३३ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=**सेनापतिः** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**संक्रन्दनेन**) सम्यग् दुष्टानां रोदयित्रा (**अनिमिषेण**) निरन्तरं प्रयतमानेन (**जिष्णुना**) जयशीलेन (**युत्कारेण**) यो व्यूहैर्युतो=मिश्रितानमिश्रितान् भृत्यान् करोति तेन (**दुश्च्यवनेन**) यः शत्रुभिर्दुःखेन=कृच्छ्रेण च्यवते तेन (**धृष्णुना**) दृढोत्साहेन (**तत्**) तेन पूर्वोक्तेन (**इन्द्रेण**) परमैश्वर्य्यकारकेण (**जयत**) (**तत्**) शत्रुसैन्यं युद्धजन्यं दुःखं वा (**सहध्वम्**) (**युधः**) ये युध्यन्ते ते (**नरः**) नायकाः (**इषुहस्तेन**) इषवः=शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तेन (**वृष्णा**) वीर्यवता ॥ ३४ ॥

अन्वयः—हे युधो नरः ! यूयमनिमिषेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना युत्कारेण वृष्णेषुहस्तेन संक्रन्दनेन जिष्णुना तत्तेनेन्द्रेण सह वर्त्तमानाः सन्तः शत्रून् जयत तच्छत्रुसैन्यवेगं सहध्वम् ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **युधः** ये युध्यन्ते ते **नरः** ! नायकाः ! **यूयमनिमिषेण** निरन्तरं प्रयतमानेन **दुश्च्यवनेन** यः शत्रुभिर्दुःखेन=कृच्छ्रेण च्यवते तेन **धृष्णुना** दृढोत्साहेन **युत्कारेण** यो व्यूहैर्युतो=मिश्रितानमिश्रितान् भृत्यान् करोति तेन **वृष्णा** वीर्यवता **इषुहस्तेन** इषवः=शस्त्राणि हस्तयोर्यस्य तेन **संक्रन्दनेन** सम्यग् दुष्टानां रोदयित्रा **जिष्णुना** जयशीलेन **तत्**=**तेन** तेन पूर्वोक्तेन **इन्द्रेण** परमैश्वर्य्यकारकेण **सह वर्त्तमानाः सन्तः शत्रून् जयत**, **तत्**=शत्रुसैन्यवेगं शत्रुसैन्यं युद्धजन्यं दुःखं वा **सहध्वम्** ॥ १७ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे (युधः) युद्ध करने वाले (नरः) मनुष्यो ! तुम—(अनिमिषेण) निरन्तर प्रयत्न करने वाले, (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं को दुःख पहुँचाने वाले, (धृष्णुना) दृढ़ उत्साही, (युत्कारेण) व्यूहों से युक्त होकर भृत्यों को मिश्रित और अमिश्रित करने वाले, (वृष्णा) वीर्यवान्, (इषुहस्तेन) दोनों हाथों में शस्त्र धारण करने वाले, (संक्रन्दनेन) दुष्टों को सम्यक् रुलाने वाले, (जिष्णुना) जयशील (तत्) उस पूर्वोक्त (इन्द्रेण) परम ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले सेनापति के साथ वर्त्तमान रह कर शत्रुओं को जीतो और (तत्) उस शत्रुसेना वा युद्धजन्य दुःख को (सहध्वम्) सहन करो ॥ १७ । ३४ ॥

[हे युधो नरः ! यूयं ···युत्कारेण, वृष्णा, इषुहस्तेन, इन्द्रेण सह वर्तमानाः सन्तः शत्रून् जयत]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं युद्धविद्याकुशलं, सर्वशुभलक्षणान्वितं, बलपराक्रमाढ्यं, जनं

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—युद्ध-विद्या में कुशल, सब शुभ लक्षणों से युक्त, बल और

सर्वाधिष्ठातारं कृत्वा, तेन सहाधार्मिकान् शत्रून् जित्वा, — पराक्रम से भरपूर पुरुष को सबका अधिष्ठाता बनाकर, उसके साथ अधार्मिक शत्रुओं को जीत कर,

[तत्=शत्रुसैन्यवेगं सहध्वम्]

निष्कण्टकं चक्रवर्त्ति राज्यं संभुङ्ग्ध्वम् ॥ — निष्कण्टक, चक्रवर्त्ती राज्य को भोगो ॥

भा० पदार्थः—युत्कारेण=युद्धविद्याकुशलेन । वृष्णा=बलाढ्येन । इषुहस्तेन=पराक्रमाढ्येन ।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—स्वकर्त्तव्यों में दृढ़, उत्साही, विजयशील, वीर्यवान्, परमैश्वर्य को उत्पन्न करने वाले, अपने सेनाओं को व्यूह रूप में करके शत्रुओं को दुःख देने वाले, दोनों हाथों में शस्त्र लेकर शत्रुओं को रुलाने वाले और युद्ध कला में निपुण व्यक्ति को सेनापति बनाना चाहिए ॥ १७ । ३४ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

स ऽ इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध ऽ इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(**सः**) सेनापतिः (**इषुहस्तैः**) शस्त्रपाणिभिः सुशिक्षितैर्बलिष्ठैर्भृत्यैः (**सः**) (**निषङ्गिभिः**) निषङ्गाणि=भुशुण्डीशतघ्न्याग्नेयास्त्रादीनि बहूनि विद्यन्ते येषां तैः (**वशी**) जितेन्द्रियान्तःकरणः (**संस्रष्टा**) श्रेष्ठानां मनुष्याणां शस्त्रास्त्राणां वा संसर्गस्य कर्त्ता (**सः**) (**युधः**) यो युध्यते सः (**इन्द्रः**) शत्रूणां दारयिता (**गणेन**) सुशिक्षितभृत्यसमूहेन सैन्येन वा (**संसृष्टजित्**) यः संसृष्टान्=मिलिताञ्छत्रूञ्जयति सः (**सोमपाः**) यः सोममोषधिरसं पिबति सः (**बाहुशर्द्धी**) बाह्वोः शर्द्धी=बलं यस्य सः (**उग्रधन्वा**) उग्रं धनुर्यस्य (**प्रतिहिताभिः**) प्रत्यक्षेण धृताभिः (**अस्ता**) शस्त्रास्त्राणां प्रक्षेप्ता ॥ १७ । ३५ ॥

अन्वयः—स सेनापतिरिषुहस्तैर्निषङ्गिभिः सह वर्त्तमानः स संस्रष्टा वशी संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्द्ध्युग्रधन्वा स युधोऽस्तेन्द्रो गणेन प्रतिहिताभिश्च सह वर्त्तमानः सन् शत्रूञ्जयतु ॥ १७ । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**सः**=सेनापतिरिषु**हस्तैः** शस्त्रपाणिभिः सुशिक्षितैर्बलिष्ठैर्भृत्यैः **निषङ्गिभिः** निषङ्गाणि=भुशुण्डीशतघ्न्याग्नेयास्त्रादीनि बहूनि विद्यन्ते येषां तैः **सह वर्त्तमानः**; स **संस्रष्टा** श्रेष्ठानां मनुष्याणां शस्त्रास्त्राणां वा संसर्गस्य कर्त्ता **वशी** जितेन्द्रियान्तःकरणः **संसृष्टजित्** यः संसृष्टान्=मिलिताञ्छत्रूञ्जयति सः **सोमपा** यः सोममोषधिरसं पिबति स **बाहुशर्द्धी** बाह्वोः शर्द्धी=बलं यस्य स **उग्रधन्वा** उग्रं धनुर्यस्य; **स युधः** यो

भाषार्थ—(सः) वह सेनापति (इषुहस्तैः) शस्त्र हाथ में रखने वाले, सुशिक्षित, बलिष्ठ, (निषङ्गिभिः) निषङ्ग अर्थात् भुशुण्डी=बन्दूक, शतघ्नी=तोप आदि बहुत आग्नेय अस्त्रों वाले भृत्यों के साथ विद्यमान, (सः) वह (संस्रष्टा) श्रेष्ठ मनुष्यों वा शस्त्र-अस्त्रों का संसर्ग करने वाला, (वशी) इन्द्रियों और अन्तःकरण को वश में रखने वाला, (संसृष्टजित्) संसृष्ट=मिले हुए शत्रुओं को जीतने वाला, (सोमपाः) सोम=ओषधि-रस का

युध्यते सः **अस्ता** शस्त्रास्त्राणां प्रक्षेप्ता **इन्द्रः** शत्रूणां दारयिता **गणेन** सुशिक्षितभृत्यसमूहेन सैन्येन वा **प्रतिहिताभिः** प्रत्यक्षेण धृताभिः **च सह वर्त्तमानः सन् शत्रूञ्जयतु** ॥ १७ । ३५ ॥

पान करने वाला (बाहुशर्द्धी) बाहुओं में बल वाला (उग्रधन्वा) उग्र धनुष वाला, (स) वह (युधः) युद्ध करने वाला, (अस्ता) शस्त्र-अस्त्रों को चलाने वाला (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारक सेनापति (गणेन) सुशिक्षित भृत्यों वा सेनाओं और (प्रतिहिताभिः) प्रत्यक्ष धारण की हुई सेनाओं के साथ वर्तमान होकर शत्रुओं को जीते ॥ १७ । ३५ ॥

[सः=सेनापतिरिषुहस्तैर्निषङ्गिभिः सह वर्तमानः······इन्द्रो गणेन······सह······शत्रूञ्जयतु]

भावार्थः—सर्वेशो राजा सर्वसेनाधिपतिर्वा सुशिक्षितवीरभृत्यसेनया सह वर्तमानो दुर्जयानपि शत्रून् जेतुं यथा शक्नुयात्, तथा सर्वैर्विधेयम् ॥

भावार्थ—सब का ईश राजा वा सब सेनाओं का अधिपति सुशिक्षित वीर-भृत्यों एवं सेना के साथ वर्तमान होकर दुर्जय शत्रुओं को जैसे जीत सके वैसा सब आचरण करें ॥ १७ । ३५ ॥

भा० पदार्थः—इषुहस्तैः=सुशिक्षितभृत्यसेनाभिः । निषङ्गिभिः=सुशिक्षितवीरसेनाभिः । इन्द्रः=सर्वेशो राजा सर्वसेनाधिपतिर्वा ॥ १७ । ३५ ॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—शस्त्रास्त्र चलाने में प्रशिक्षित, जितेन्द्रिय, सोम का पान करने वाला, बलवान्, उग्र धनुष वाला, शत्रुओं का संहारक और युद्ध विद्या में चतुर सेनाओं से युक्त वीर मनुष्य सेनापति होना चाहिए ॥ १७ । ३५ । ●

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

बृह॑स्पते॒ परि॑ दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॑२ऽ अप॒बाध॑मानः ।
प्र॒भ॒ञ्जन्त्सेनाः॑ प्रमृ॒णो यु॒धा जय॑न्न॒स्माक॑मेध्यवि॒ता रथा॑नाम् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) बृहतां=धार्मिकाणां वृद्धानां सेनानां वा पतिस्तत्संबुद्धौ (**परि**) सर्वतः (**दीया**) क्षिणुहि । **अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम्** (**रथेन**) रमणीयेन यानसमूहेन (**रक्षोहा**) यो रक्षांसि=दुष्टान् हन्ति सः (**अमित्रान्**) न विद्यन्ते मित्राण्येषां तान् (**अपबाधमानः**) अपबाधते सः (**प्रभञ्जन्**) यः प्रभग्नान् करोति सः (**सेनाः**) (**प्रमृणः**) ये प्रकृष्टतया मृणन्ति=हिंसन्ति तान् (**युधा**) युद्धे (**जयन्**) उत्कर्षं प्राप्नुवन् (**अस्माकम्**) (**एधि**) भव (**अविता**) रक्षिता (**रथानाम्**) रमणीयानां यानानाम् ॥ १७ । ३६ ॥

प्रमाणार्थ—(**दीया**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङ' (६ । ३ । १३५) से दीर्घ है तथा व्यत्यय से आत्मनेपद है ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते ! यो रक्षोहाऽमित्रानपबाधमानः प्रमृणः सेनाः प्रभञ्जँस्त्वं रथेन युधा शत्रून् परिदीया स जयन्नस्माकं रथानामवितैधि ॥ १७ । ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे बृहस्पते !

भाषार्थ—हे (बृहस्पते) धार्मिक वृद्ध-जनों

बृहतां=धार्मिकाणां वृद्धानां सेनानां वा पतिस्तत्सम्बुद्धौ ! **यो रक्षोहा** यो रक्षांसि=दुष्टान् हन्ति, सः **अमित्रान्** न विद्यन्ते मित्राण्येषां तान् **अपबाधमानः** अपबाधते सः **प्रमृणः** ये प्रकृष्टतया मृणन्ति=हिंसन्ति तान् **सेनाः प्रभञ्जन्** यः प्रभग्नान् करोति सः त्वं **रथेन** रमणीयेन यानसमूहेन **युधा** युद्धे **शत्रून् परिदीया** सर्वतः क्षिणुहि, **स जयन्** उत्कर्षं प्राप्नुवन् **अस्माकं रथानां** रमणीयानां यानानाम् **अविता** रक्षिता **एधि** भव ।। १७ । ३६ ।।

वा सेनाओं के पति ! जो तू—(रक्षोहा) दुष्टों का हनन करने वाला, (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) दूर करने वाला, (प्रमृणः) उत्तमता से शत्रुओं को मारने वाला तथा उनकी (सेनाः) सेनाओं को (प्रभञ्जन्) भग्न=तोड़ने वाला होकर (रथेन) रमणीय यानों से (युधा) युद्ध में शत्रुओं को (परिदीया) सब ओर से क्षीण कर सो तू—(जयन्) उत्कर्ष को प्राप्त होकर (अस्माकम्) हमारे (रथानाम्) रमणीय यानों का (अविता) रक्षक (एधि) हो ।। १७ । ३६ ।।

[हे बृहस्पते ! यो रक्षोहाः······सेनाः प्रभञ्जन्······अस्माकम्······अविता एधि]

भावार्थः—राजा सेनापतिं स्वसेनां च वर्द्धयन्, शत्रुसेनां हिंसन्, धार्मिकीं प्रजां सततमुन्नयेत् ।। १७ । ३६ ।।

भावार्थ—राजा सेनापति और अपनी सेना को बढ़ाता हुआ, शत्रु-सेना का हनन करता हुआ धार्मिक प्रजा को सदा उन्नत करे ।।१७ । ३६।।

भा० पदार्थः—बृहस्पते=राजन् । सेनाः=शत्रुसेनाः । प्रभञ्जन्=हिंसन् ।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—दुष्टों का संहारक, सज्जनों का पालक, शत्रु सेना और उनके यानों को नष्ट करने वाला, उत्तम तथा दृढ़ यानों वाला होकर उत्कर्ष को प्राप्त करने वाला, प्रजा का रक्षक और यशस्वी मनुष्य सेनापति होना चाहिए ।। १७ । ३६ ।।

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

सेनापति के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ।।

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान ऽ उग्रः ।
अभिवीरो ऽ अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ।। ३७ ।।

पदार्थः—(**बलविज्ञायः**) यो बलं=बलयुक्तं सैन्यं कर्तुं जानाति सः (**स्थविरः**) वृद्धो=विज्ञातराजधर्मव्यवहारः (**प्रवीरः**) प्रकृष्टश्चासौ वीरश्च (**सहस्वान्**) सहो=बहुबलं विद्यते यस्य सः (**वाजी**) प्रशस्तो वाजः=शास्त्रबोधो विद्यते यस्य सः (**सहमानः**) यः सुखदुःखादिकं सहते (**उग्रः**) दुष्टानां वधे तीव्रतेजाः (**अभिवीरः**) अभीष्टा वीरा यस्य सः (**अभिसत्वा**) अभितः=सर्वतः सत्वानो=युद्धविद्वांसो रक्षका भृत्या वा यस्य सः (**सहोजाः**) सहसा=बलेन जातः=प्रसिद्धः (**जैत्रम्**) जेतृभिः परिवृतं रथम् (**इन्द्र**) युद्धस्य परमसामग्रीसहित (**रथम्**) रमणीयं भूसमुद्राकाशयानम् (**आ**) (**तिष्ठ**) (**गोवित्**) यो गा=वाचो धेनुः पृथिवीं वा विन्दति सः ।। ३७ ।।

अन्वयः—हे इन्द्र सेनापते ! बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रोऽभिवीरोऽभिसत्वा सहोजा गोवित्संस्त्वं युद्धाय जैत्रं रथमातिष्ठ ।। ३७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र=सेनापते !

भाषार्थ—हे (इन्द्र) युद्ध की परम सामग्री

युद्धस्य परमसामग्रीसहित ! **बलविज्ञायः** यो बलं=बलयुक्तं सैन्यं कर्तुं जानाति सः, **स्थविरः** वृद्धो=विज्ञातराजधर्मव्यवहारः, **प्रवीरः** प्रकृष्टश्चासौ वीरश्च, **सहस्वान्** सहो=बहुबलं विद्यते यस्य सः, **वाजी** प्रशस्तो वाजः=शास्त्रबोधो विद्यते यस्य सः, **सहमानः** यः सुखदुःखादिकं सहते, **उग्रः** दुष्टानां वधे तीव्रतेजाः, **अभिवीरः** अभीष्टा वीरा यस्य सः, **अभिसत्वा** अभितः सर्वतः सत्वानो=युद्धविद्वांसो रक्षका भृत्या वा यस्य सः, **सहोजाः** सहसा=बलेन जातः=प्रसिद्धः, **गोविद्** यो गा=वाचो धेनुः पृथिवीं वा विन्दति सः, **संस्त्वं युद्धाय जैत्रं** जेतृभिः परिवृतं रथं **रथं** रमणीयं भूसमुद्राऽऽकाशयानम् **आतिष्ठ** ॥ १७ । ३७ ॥

से युक्त सेनापति ! (बलविज्ञायः) बलयुक्त सेना का निर्माण जानने वाला, (स्थविरः) वृद्ध=राजधर्म के व्यवहार के ज्ञाता, (प्रवीरः) उत्तम वीर, (सहस्वान्) बहुत बल वाला, (वाजी) उत्तम वाज=शास्त्र-बोध वाला, (सहमानः) सुख-दुःख आदि को सहन करने वाला, (उग्रः) दुष्टों के वध में तीव्र तेज वाला, (अभिवीरः) अभीष्ट वीरों वाला, (अभिसत्वा) सब ओर युद्ध के विद्वान्, रक्षक वा भृत्यों वाला, (सहोजाः) बल के कारण प्रसिद्ध, (गोविद्) गौ=वाणी, गाय वा पृथिवी को प्राप्त करने वाला, होकर तू—युद्ध के लिए (जैत्रम्) विजेताओं से घिरे हुए (रथम्) रमणीय भू-यान, समुद्र-यान और आकाश-यान में (आतिष्ठ) बैठ ॥ १७ । ३७ ॥

[हे इन्द्र=सेनापते ! ··· त्वं युद्धाय जैत्रं रथमातिष्ठ]

भावार्थः—सेनापतिः सेनावीरा वा यदा शत्रुभिः योद्धुमिच्छेयुस्तदा परस्परं सर्वतो रक्षां, रक्षासाधनानि वा संगृह्य, बुद्धयुत्साहेन सह वर्त्तमाना अनलसाः सन्तः शत्रुविजयतत्परा भवेयुः ॥

भावार्थ—सेनापति वा सेना के वीर जब शत्रुओं के साथ युद्ध करना चाहें तब परस्पर सब ओर से रक्षा वा रक्षा-साधनों का संग्रह करके, बुद्धिपूर्वक उत्साह से युक्त होकर, पुरुषार्थी होकर शत्रुओं को विजय करने में तत्पर रहें ॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—राजधर्म का पूर्ण विद्वान्, शूरवीर, बलवान् सहनशील, दुष्टों के वध करने में उग्र स्वभाव वाला, वीरों से स्नेह करने वाला, सेना को प्रशिक्षणादि देने में चतुर वीरता के कारण प्रख्यात, युद्ध में सदा विजेता, सभी प्रकार के यानों वाला और गायादि उपकारक पशुओं को प्राप्त करने वाला मनुष्य सेनापति होना चाहिए ॥ १७ । ३७ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=**सेनापतिः** । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता ऽ अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायोऽअनु सꣳरभध्वम् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**गोत्रभिदम्**) यः शत्रूणां गोत्राणि भिनत्ति तम् (**गोविदम्**) योऽरीणां गां=भूमिं विन्दति तम् (**वज्रबाहुम्**) वज्राः=शस्त्राणि बाह्वोर्यस्य तम् (**जयन्तम्**) शत्रून् पराजयमानम् (**अज्म**) अजन्ति=प्रक्षिपन्ति शत्रून् येन यस्मिन् वा । अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक् । अज्मेति संग्रामना० ॥ निघं० २ । १७ ॥ (**प्रमृणन्तम्**) प्रकृष्टतया शत्रून् हिंसन्तम् (**ओजसा**) स्वस्य शरीरबुद्धिबलेन सैन्येन वा (**इमम्**) (**सजाताः**) समानदेशे जाता=उत्पन्नाः (**अनु**) पश्चादर्थे (**वीरयध्वम्**) विक्रमयध्वम् (**इन्द्रम्**)

शत्रुदलविदारकम् (**सखायः**) परस्परस्य सहायिनः सुहृदः सन्तः (**अनु**) आनुकूल्ये (**सम्**) सम्यक् (**रभध्वम्**) युद्धारम्भं कुरुत ।। ३८ ।।

प्रमाणार्थ—(**अज्म**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से विभक्ति का लुक् है । 'अज्म' निघं० २ । १७ में संग्राम-नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे सजाताः सखायः ! यूयमोजसा गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुँ प्रमृणन्तमज्म जयन्तेममिन्द्रं सेनापतिमनुवीरयध्वमनुसंरभध्वं च ।। ३८ ।।

सपदार्थान्वयः—**हे सजाताः** समानदेशे जाता=उत्पन्नाः **सखायः** ! परस्परस्य सहायिनः सुहृदः सन्तः ! **यूयमोजसा** स्वस्य शरीरबुद्धिबलेन सैन्येन वा **गोत्रभिदं** यः शत्रूणां गोत्राणि भिनत्ति तं **गोविदं** योऽरीणां गां=भूमिं विन्दति तं **वज्रबाहुम्** वज्राः=शस्त्राणि बाह्वोर्यस्य तं **प्रमृणन्तं** प्रकृष्टतया शत्रून् हिंसन्तम् **अज्म** अजन्ति=प्रक्षिपन्ति शत्रून् येन यस्मिन् वा **जयन्तं** शत्रून् पराजयमानम् **इममिन्द्रं**=**सेनापतिं** शत्रुदलविदारकम् **अनुवीरयध्वं** पश्चाद् विक्रमयध्वम् **अनुसंरभध्वं** आनुकूल्येन सम्यक् युद्धारम्भं कुरुत **च** ।। १७ । ३८ ।।

भाषार्थ—हे (सजाताः) एक देश=स्थान में उत्पन्न (सखायः) परस्पर के सहायक मित्रो ! तुम—(ओजसा) अपने शरीर और बुद्धि के बल से वा सेना से (गोत्रभिदम्) शत्रुओं के गोत्रों का भेदन करने वाले, (गोविदम्) शत्रुओं की गौ=भूमि को प्राप्त करने वाले, (वज्रबाहुम्) अपने हाथों में वज्र=शस्त्रों को रखने वाले, (प्रमृणन्तम्) उत्तमता से शत्रुओं का हनन करने वाले, (अज्म) शत्रुओं को दूर हटाने वाले, संग्राम को (जयन्तम्) जीतने वाले (इमम्) इस (इन्द्रम्) शत्रु-दल के विदारक सेनापति के (अनुवीरयध्वम्) अनुकूल वीरता दिखाओ तथा (अनुसंरभध्वम्) अनुकूल होकर सम्यक् युद्ध का आरम्भ करो ।।

[हे सजाताः सखायः ! यूयम् ··· इममिन्द्रं=सेनापतिमनुवीरयध्वम्, अनुसंरभध्वम्]

भावार्थः—सेनापतयो भृत्याश्च परस्परं सुहृदो भूत्वा ऽन्योऽन्यमनुमोद्य युद्धारम्भविजयौ कृत्वा शत्रुराज्यं लब्ध्वा, न्यायेन प्रजाः पालयित्वा, सततं सुखिनः स्युः ।। १७ । ३८ ।।

भावार्थ—सेनापति और भृत्य परस्पर मित्र होकर, एक दूसरे का अनुमोदन करके, युद्धारम्भ और विजय करके, शत्रुओं के राज्य को प्राप्त करके, न्याय से प्रजा का पालन करके सदा सुखी रहें ।। १७ । ३८ ।।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—स्वदेश में उत्पन्न, अपने शरीर तथा बुद्धि बल से शत्रुओं के वंश का विनाशक, शत्रुओं की भूमि और गायादि पशुओं को प्राप्त करने वाला, शस्त्रास्त्रों का सुचालक, शत्रुओं का संहार करता हुआ युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला, शत्रुओं का विध्वंस करके ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला और वीर-सेना को अनुकूल रखने में कुशल मनुष्य सेनापति होने योग्य है ।। १७ । ३८ ।।

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ।।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**अभि**) सर्वतः (**गोत्राणि**) शत्रुकुलानि (**सहसा**) बलेन (**गाहमानः**) विलोडनं कुर्वन् (**अदयः**) अविद्यमाना दया=करुणा यस्य सः (**वीरः**) शत्रूणां दरिता (**शतमन्युः**) शतधा मन्युः=क्रोधो यस्य सः (**इन्द्रः**) सेनेशः (**दुश्च्यवनः**) शत्रुभिर्दुःखेन च्योतुं योग्यः (**पृतनाषाट्**) यः पृतनां सहते (**अयुध्यः**) शत्रुभिर्योद्धुमयोग्यः (**अस्माकम्**) (**सेनाः**) (**अवतु**) रक्षतु (**प्र**) प्रयत्नेन (**युत्सु**) मिश्रितामिश्रितकरणेषु युद्धेषु ॥ १७ । ३९ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! यो युत्सु सहसा गोत्राणि प्रगाहमानोऽदयः शतमन्युर्दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्यो वीरोऽस्माकं सेना अभ्यवतु स इन्द्रः सेनापतिर्भवत्वित्याज्ञापयत ॥ १७ । ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यो **युत्सु** मिश्रितामिश्रितकरणेषु युद्धेषु **सहसा** बलेन **गोत्राणि** शत्रुकुलानि **प्रगाहमानः** प्रयत्नेन विलोडनं कुर्वन् **अदयः** अविद्यमाना दया=करुणा यस्य सः **शतमन्युः** शतधा मन्युः=क्रोधो यस्य सः **दुश्च्यवनः** शत्रुभिर्दुःखेन च्योतुं योग्यः **पृतनाषाड्** यः पृतनां सहते **अयुध्यः** शत्रुभिर्योद्धुमयोग्यः **वीरः** शत्रूणां दरिता **अस्माकं सेना अभ्यवतु** सर्वतः रक्षतु, **स इन्द्रः**=**सेनापतिः** सेनेशः **भवत्वित्याज्ञापयत** ॥३९॥

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जो—(युत्सु) मिश्रित-अमिश्रित करने वाले युद्धों में (सहसा) बल से (गोत्राणि) शत्रु-कुलों का (प्रगाहमानः) प्रयत्न से विलोडन करने वाला, (अदयः) दया=करुणा से रहित, (शतमन्युः) शत=सौ प्रकार के मन्यु=क्रोध वाला, (दुश्च्यवनः) शत्रुओं के द्वारा दुःख से प्राप्त करने योग्य, (पृतनाषाट्) पृतना=शत्रु सेना का मर्षण करने वाला, (अयुध्यः) जिससे शत्रु युद्ध नहीं कर सकते वह (वीरः) शत्रुओं का विदारक वीर (अस्माकम्) हमारी (सेनाः) सेनाओं की (अभ्यवतु) सब ओर से रक्षा करे; वह (इन्द्रः) सेनापति हो, ऐसी आज्ञा करो !! १७ । ३९ ॥

[हे विद्वांसः ! यो......अदयः, अस्माकं सेना अभ्यवतु, स इन्द्रः=सेनापतिर्भवत्वित्याज्ञापयत]

भावार्थः—[यो] धार्मिकेषु करुणाकरः, दुष्टेषु निर्दयः, सर्वाभिरक्षको नरो भवेत् स एव सेनापालनेऽधिकर्त्तव्यः ॥ १७ । ३९ ॥

भावार्थ—जो धार्मिकों पर करुणा करने वाला, दुष्टों पर निर्दयी, सबका रक्षक पुरुष हो वही सेना के पालन में अधिकारी है ॥ १७ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—अदयः=दुष्टेषु निर्दयः ।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—दुष्टों के प्रति दयाहीन, शत्रुओं के प्रति शतमन्यु, युद्ध में शक्ति से शत्रु-कुलों का विघातक, शत्रुओं से दुःख से प्राप्त होने वाला तथा शत्रु से अजेय, शत्रुसेना का विदारक और अपनी सेना का रक्षक मनुष्य सेनापति होने योग्य है ॥ १७ । ३९ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रं ऽ आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर ऽ एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) परमैश्वर्ययुक्तः सेनापतिः शिक्षकः (**आसाम्**) प्रत्यक्षाणाम् (**नेता**) नायकः (**बृहस्पतिः**) बृहतामधिकाराणामध्यक्षः (**दक्षिणा**) दक्षिणस्यां दिशि (**यज्ञः**) संगन्ता (**पुरः**) पूर्वम् (**एतु**) गच्छतु (**सोमः**) सेनाप्रेरकः (**देवसेनानाम्**) विदुषां सेनानाम् (**अभिभञ्जतीनाम्**) शत्रुसेनानामभितो मर्दनमाचरन्तीनाम् (**जयन्तीनाम्**) शत्रुविजयेनोत्कर्षन्तीनाम् (**मरुतः**) वायुवद् बलिष्ठाः शूरवीराः (**यन्तु**) गच्छन्तु (**अग्रम्**) ॥ ४० ॥

अन्वयः—युद्धेऽभिभञ्जतीनां जयन्तीनामासां देवसेनानां नेतेन्द्रः पश्चाद्यज्ञः पुरो बृहस्पतिर्दक्षिणा सोम उत्तरस्यां चैतु मरुतोऽग्रं यन्तु ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः— **युद्धेऽभिभञ्जतीनां** शत्रुसेनानामभितो मर्दनमाचरन्तीनां **जयन्तीनां** शत्रुविजयेनोत्कर्षन्तीनाम् **आसां** प्रत्यक्षाणां **देवसेनानां** विदुषां सेनानां **नेता** नायक **इन्द्रः** परमैश्वर्ययुक्तः सेनापतिः शिक्षकः **पश्चाद्, यज्ञः** सङ्गन्ता **पुरः** पूर्वं, **बृहस्पतिः** बृहतामधिकाराणामध्यक्षः **दक्षिणा** दक्षिणस्यां दिशि, **सोमः** सेनाप्रेरकः **उत्तरस्यां चैतु** ग[च्छ]तु, **मरुतः** वायुवद् बलिष्ठाः शूरवीरा **अग्रं यन्तु** गच्छन्तु, ॥ १७ । ४० ॥

भाषार्थ—युद्ध में (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रु-सेनाओं का सब ओर से मर्दन करने वाली (जयन्तीनाम्) शत्रु-विजय से उत्कर्ष को प्राप्त करती हुई, (आसाम्) इन (देवसेनानाम्) विद्वानों की सेनाओं के (नेता) नायक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य से युक्त सेनापति शिक्षक पश्चिम में, (यज्ञः) संगति करने वाला (पुरः) पूर्व में, (बृहस्पतिः) बृहत्=बड़े अधिकारों का अध्यक्ष (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में (सोमः) और सेना का प्रेरक उत्तर में (एतु) जावे । (मरुतः) वायु के समान बलिष्ठ शूरवीर (अग्रम्) आगे (यन्तु) जावें ॥ १७ । ४० ॥

[युद्धे···इन्द्रः पश्चाद् यज्ञः पुरो, बृहस्पतिः, दक्षिणा, सोमः उत्तरस्यां चैतु मरुतोऽग्रं यन्तु]

भावार्थः—यदा राजपुरुषाः शत्रुभिर्युयुत्सेयुस्तदा–सर्वासु दिक्ष्वध्यक्षान् शूरवीरानग्रतो, भीरूनन्तः संस्थाप्य, भोजन-आच्छादन-वहन-अस्त्र-शस्त्र-योगेन युध्येरन् ।

भावार्थ—जब राजपुरुष शत्रुओं से युद्ध करना चाहें तब—सब दिशाओं में अध्यक्षों को, शूरवीरों के आगे, भीरु=डरपोक लोगों को मध्य में स्थापित करके भोजन, वस्त्र, वहन=सवारी, अस्त्र-शस्त्रों की सहायता से युद्ध करें ।

तत्र विद्वत्सेनाधीना मूर्खसेनाः कार्याः ता विद्वांसो वक्तृत्वेनोत्साहयेयुः, अध्यक्षाश्च पद्मव्यूहादिभिर्योधयेयुः ॥ १७ । ४० ॥

वहाँ विद्वानों की सेनाओं के अधीन मूर्खों की सेनाओं को रखें । उन्हें विद्वान् उपदेश से उत्साहित करें, अध्यक्ष लोग पद्म-व्यूह आदि की रचना करके युद्ध करावें ॥ १७ । ४० ॥

भा० पदार्थः—मरुतः=अध्यक्षाः शूरवीराः ।

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—वायु के समान बलवान्, सेना को प्रशिक्षण देने वाला परमैश्वर्यवान् अपनी सेना को संघटित रखने वाला, महान् बड़े बड़े अधिकारों का सुपालक, विद्वानों में श्रेष्ठ, शत्रु सेना का मर्दन करने वाली अपनी सेना को सब दिशाओं में प्रेरणा करने वाला और परम यशस्वी मनुष्य सेनापति बनने योग्य है ॥ १७ । ४० ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=सेनापतिः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ ऽ आदित्यानां मरुताᳬं शर्द्ध ऽ उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) सेनापतेः (वृष्णः) वीर्य्यवतः (वरुणस्य) सर्वोत्कृष्टस्य (राज्ञः) न्यायविनयादिभिः प्रकाशमानस्य=सर्वाधिष्ठातुः (**आदित्यानाम्**) कृताष्टाचत्वारिंशद्वर्षप्रमितब्रह्मचर्य्याणाम् (**मरुताम्**) पूर्णविद्याबलयुक्तानां पुरुषाणाम् (**शर्द्धः**) बलं=सैन्यम् (**उग्रम्**) शत्रुभिः सोढुमशक्यम् (**महामनसाम्**) महान्ति मनांसि=विज्ञानानि येषां तेषाम् (**भुवनच्यवानाम्**) य भुवनान्युत्तमानि गृहाणि च्यवन्ते=प्राप्नुवन्ति तेषाम् (**घोषः**) शौर्योत्साहजनको विचित्रवादित्रस्वरालापशब्दः (**देवानाम्**) विदुषाम् (**जयताम्**) शत्रुन् विजेतुं समर्थानाम् (**उत्**) (**अस्थात्**) उत्तिष्ठतु ॥ ४१ ॥

अन्वयः—वृष्ण इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो भुवनच्यवानां महामनसां जयतामादित्यानां मरुतां देवानामुग्रं शर्द्धो घोषो युद्धारम्भात् पूर्वमुदस्थात् ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—**वृष्णः** वीर्यवतः **इन्द्रस्य** सेनापतेः **वरुणस्य** सर्वोत्कृष्टस्य **राज्ञः** न्यायविनयादिभिः प्रकाशमानस्य सर्वाधिष्ठातुः **भुवनच्यवानां** य भुवनान्युत्तमानि गृहाणि च्यवन्ते=प्राप्नुवन्ति तेषां **महामनसां** महान्ति मनांसि=विज्ञानानि येषां तेषां **जयतां** शत्रून् विजेतुं समर्थानाम् **आदित्यानां** कृताष्टाचत्वारिंशद्वर्षप्रमितब्रह्मचर्य्याणां **मरुतां** पूर्णविद्याबलयुक्तानां पुरुषाणां **देवानां** विदुषाम् **उग्रं** शत्रुभिः सोढुमशक्यं **शर्द्धः** बलं=सैन्यं **घोषः** शौर्योत्साहजनको विचित्रवादित्रस्वरालापशब्दः **युद्धारम्भात् पूर्वमुदस्थात्** उत्तिष्ठतु ॥ १७ । ४१ ॥

भाषार्थ—(वृष्णः) वीर्यवान्=बलवान्, (इन्द्रस्य) सेनापति, (वरुणस्य) सब से उत्कृष्ट (राज्ञः) न्याय, विनय आदि गुणों से प्रकाशमान सबके अधिष्ठाता राजा के (भुवनच्यवानाम्) उत्तम गृहों को प्राप्त करने वाले, (महामनसाम्) महान् विज्ञानों वाले, (जयताम्) शत्रुओं को जीतने में समर्थ, (आदित्यानाम्) ४८ अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, (मरुताम्) पूर्ण विद्या और बल से युक्त (देवानाम्) विद्वानों का-(शर्द्धः) बल=सैन्य एवं (घोषः) शौर्य तथा उत्साह को उत्पन्न करने वाला विचित्र वादित्र=बाजों का स्वरालाप आत्मक शब्द=घोष युद्ध आरम्भ होने से पूर्व (उदस्थात्) उठे ॥ १७ । ४१ ॥

[जयतामादित्यानां मरुतां देवानामुग्रं शर्द्धो घोषो युद्धारम्भात् पूर्वमुदस्थात्]

भावार्थः--सेनाध्यक्षैः शिक्षासमये युद्धसमये च मनोहरैर्निर्भयादिभावजनकैः शब्दितैर्वादित्रैर्वीरा हर्षणीयाः ।

भावार्थ--सेनाध्यक्ष लोग शिक्षा और युद्ध के समय में मनोहर, निर्भय आदि भावों को उत्पन्न करने वाले बाजे बजाकर वीरों को हर्षित करें ।

[वृष्ण इन्द्रस्य]

ये दीर्घब्रह्मचर्येणाधिकविद्यया शरीरात्मबलास्त एव युद्धसेनास्वधिकर्त्तव्याः ॥ १७ । ४१ ॥

जो—दीर्घ-ब्रह्मचर्य से अधिक विद्या के द्वारा शरीर और आत्मा से बलवान् हों उन्हें ही युद्ध-सेनाओं में अधिकारी बनावें ॥ १७ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—घोषः=मनोहरो निर्भयादिभावजनको वादित्रशब्दः । वृष्णः=दीर्घ-ब्रह्मचर्येणाधिकविद्यया शरीरात्मबलवतः ॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—सबसे उत्कृष्ट, बलवान्, न्यायादि गुणों से विख्यात, उत्तम गृहों को प्राप्त करने वाले, महान् विज्ञानों के ज्ञाता, शत्रुओं के विजेता, ब्रह्मचर्य के पालन से विद्या और बल से सम्पन्न सेनापतियों का युद्ध समय का घोष शौर्य और उत्साह को उत्पन्न करने वाला हो ॥ १७ । ४१ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=**सेनापतिः** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(उत्) (हर्षय) उत्कर्षय (**मघवन्**) प्रशस्तानि मघानि=धनानि विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**आयुधानि**) समन्ताद्युध्यन्ते यैस्तानि (**उत्**) (**सत्वनाम्**) सेनायां सीदतां प्राणिनाम् (**मामकानाम्**) मदीयानां वीराणाम् (**मनांसि**) अन्तःकरणानि (**उत**) (**वृत्रहन्**) मेघहन्ता=सूर्य इव शत्रुहन्तः सेनापते (**वाजिनाम्**) तुरङ्गाणाम् (**वाजिनानि**) शीघ्रगमनानि (**उत्**) (**रथानाम्**) (**जयताम्**) (**यन्तु**) गच्छन्तु (**घोषाः**) शब्दाः ॥ १७ । ४२ ॥

अन्वयः—सेनास्था जनाः स्वाधीशमेवं ब्रूयुः—हे वृत्रहन् ! मघवँस्त्वं मामकानां सत्वनामायुधान्युद्धर्षय । मामकानां सत्वानां मनांस्युद्धर्षय । मामकानां वाजिनां वाजिनान्युद्धर्षय । भवत्कृपातो मामकानां जयतां रथानां घोषा उद्यन्तु ॥ १७ । ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**सेनास्था जनाः स्वाधीशमेवं ब्रूयुः**—**हे वृत्रहन् !** मेघहन्ता सूर्य इव शत्रुहन्तः सेनापते ! **मघवन् !** प्रशस्तानि मघानि=धनानि विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं मामकानां** मदीयानां वीराणां **सत्वनां** सेनायां सीदतां प्राणिनां **आयुधानि** समन्ताद्युध्यन्ते यैस्तानि **उद्धर्षय** उत्कर्षय ।

मामकानां मदीयानां वीराणां **सत्वनां** सेनायां सीदतां प्राणिनां **मनांसि** अन्तःकरणानि **उद्धर्षय** उत्कर्षय ।

मामकानां मदीयानां वीराणां **वाजिनां** तुरङ्गाणां **वाजिनानि** शीघ्रगमनानि **उद्धर्षय** उत्कर्षय ।

भवत्कृपातो मामकानां मदीयानां वीराणां

भाषार्थ—सेना के लोग अपने सेनापति को ऐसा कहें—हे (वृत्रहन्) मेघों के हन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हन्ता (मघवन्) उत्तम धनों वाले सेनापति ! तू—(मामकानाम्) मेरे वीरों तथा (सत्वनाम्) सेना में विद्यमान प्राणियों के (आयुधानि) शस्त्र-अस्त्रों को (उद्धर्षय) उत्कृष्ट बना । और—

(मामकानाम्) मेरे वीरों के तथा (सत्वनाम्) सेना में विद्यमान प्राणियों के (मनांसि) अन्तः-करणों को (उद्धर्षय) उत्कृष्ट बना । और—

(मामकानाम्) मेरे वीरों तथा (वाजिनाम्) घोड़ों की (वाजिनानि) शीघ्र गतियों को (उद्धर्षय) उत्कृष्ट बना । और—

आपकी कृपा से (मामकानाम्) मेरे वीरों के

जयतां रथानां घोषाः शब्दाः **उद्यन्तु** उद्+गच्छन्तु ॥

(जयताम्) जीतने वाले (रथानाम्) रथों=यानों के (घोषाः) शब्द (उद्यन्तु) उठें ॥ १७ । ४२ ॥

[हे वृत्रहन् !······**मामकानां सत्वनां मनांसि उद्धर्षय, वाजिनां वाजिनान्युद्धर्षय, जयतां रथानां घोषा उद्यन्तु**]

भावार्थः—सेनापतिभिः शिक्षकैश्च योद्धृणां चित्तानि नित्यं हर्षणीयानि, सेनाङ्गानि सम्यगुन्नीय शत्रवो जेतव्याश्च ॥ १७ । ४२ ॥

भावार्थ—सेनापति और शिक्षक लोग योद्धाओं के चित्तों को नित्य हर्षित करें, सेना के अङ्गों को सम्यक् उन्नत करके शत्रुओं को जीतें ॥ १७ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—मनांसि=चित्तानि । उद्धर्षय=नित्यं हर्षय । वाजिनाम्=सेनाङ्गानाम् । उद्धर्षय=उन्नय ।

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—सूर्य के समान शत्रुरूप मेघों का हन्ता, उत्तमैश्वर्यवान् सेनापति सदा ऐसा प्रयत्न करे कि अपनी सेना के वीरों के शस्त्रास्त्र उत्कृष्ट हों, उनका मनोबल दृढ़ हो, सेना के घोड़े प्रशिक्षित हों, और सेना के रथादि यान उत्कृष्ट हों ॥ १७ । ४२ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥
पुनस्तमेव विषयमाह ॥
सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या ऽ इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा ऽ उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽ उ देवा ऽ अवता हवेषु ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**अस्माकम्**) (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यकारकः सेनेशः (**समृतेषु**) सम्यक् सत्यन्यायप्रकाशक-चिह्नेषु (**ध्वजेषु**) स्ववीरप्रतीतये रथाद्युपरि स्थापितेषु विजातीयचिह्नेषु (**अस्माकम्**) (**याः**) (**इषवः**) प्राप्ताः सेनाः (**ताः**) (**जयन्तु**) विजयिन्यो भवन्तु (**अस्माकम्**) (**वीराः**) (**उत्तरे**) विजयानन्तरसमये कुशला विद्यमानजीवनाः (**भवन्तु**) (**अस्मान्**) (**उ**) वितर्के (**देवाः**) विजिगीषवः (**अवत**) रक्षत (**हवेषु**) ह्वयन्ति=स्पर्द्धन्ते परस्परं येषु संग्रामेषु तेषु ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे देवाः ! विद्वांसो यूयमस्माकं समृतेषु ध्वजेष्वधोदेशे य इन्द्रोऽस्माकं या इषवः स ताश्च हवेषु जयन्त्वस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु । अस्मानु सर्वत्रावत ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे देवाः**=**विद्वांसः**! विजिगीषवः ! **यूयमस्माकं समृतेषु** सम्यक् सत्य-न्यायप्रकाशकचिह्नेषु **ध्वजेषु** स्ववीरप्रतीतये रथाद्युपरि स्थापितेषु विजातीयचिह्नेषु **अधोदेशे य इन्द्रः** ऐश्वर्यकारकः सेनेशः **अस्माकं या इषवः** प्राप्ताः सेनाः **स ताश्च हवेषु** ह्वयन्ति=स्पर्द्धन्ते परस्परं येषु संग्रामेषु तेषु **जयन्तु** विजयिन्यो भवन्तु ।

भाषार्थ—हे (देवाः) ! विजय के इच्छुक विद्वानो ! तुम—(अस्माकम्) हमारे (समृतेषु) सम्यक् सत्य और न्याय के प्रकाशक (ध्वजेषु) अपने वीरों की प्रतीति के लिए रथ आदि के ऊपर स्थापित विजातीय चिह्नों के नीचे जो (इन्द्रः) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला सेनापति है, और—(अस्माकम्) हमारी (याः) जो (इषवः) प्राप्त सेनाएं हैं; वह सेनापति और सेनाएं (हवेषु) संग्रामों में (जयन्तु) विजयी हों । और—

अस्माकं वीरा उत्तरे विजयानन्तरसमये कुशला विद्यमानजीवनाः भवन्तु ।

(अस्माकम्) हमारे (वीराः) वीर (उत्तरे) विजय के पश्चात् कुशलतापूर्वक जीवित (भवन्तु) रहें । और—

अस्मान् उ वितर्कपूर्वकम् **सर्वत्राऽवत** रक्षत ॥

(अस्मान्) हमारी (उ) विचारपूर्वक सर्वत्र (अवन्तु) रक्षा करो ॥ १७ । ४३ ॥

[समृतेषु ध्वजेषु]

भावार्थः—सेनाजनैः सेनापत्यादिभिः स्वस्वरथादिषु भिन्नं भिन्नं चिह्नं संस्थापनीयम्, यतोऽस्यायं रथादिरिति सर्वे जानीयुः ।

भावार्थ—सेना के लोग और सेनापति आदि अपने अपने रथों पर भिन्न-भिन्न चिह्न रखें, जिससे यह रथ आदि इसका है ऐसा सब जानें ॥

[अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु]

यथा वीराणामश्वानां चाधिकः क्षयो न स्यात् तथानुष्ठातव्यम् । कुतः ? परस्परस्य पराक्रमक्षयेण ध्रुवो विजयो न भवतीति विज्ञेयम् ॥ १७ । ४३ ॥

जैसे वीरों और घोड़ों का अधिक क्षय=विनाश न हो वैसा अनुष्ठान करें क्योंकि परस्पर पराक्रम के क्षय होने से निश्चित विजय नहीं होती, ऐसा समझें ॥ १७ । ४३ ॥

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—विजय के इच्छुक, सत्य और न्याय का प्रकाशक तथा रक्षक सेनापति सदा ऐश्वर्य को उत्पन्न करके बढ़ाने वाला हो । और रथादि पर लगे हुए वीरता तथा विजय के प्रतीक चिह्न ध्वजाओं के नीचे संघटित होकर सेनापति के आदेश का पालन करने वाली सेनाएँ संग्राम में विजय प्राप्त करें, वीर योद्धा विजय के बाद कुशलतापूर्वक जीवित रहें, और सदा रक्षा करने वाले हों ॥ १७ । ४३ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः**=**सेनापतिः** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**अमीषाम्**) परोक्षाणाम् (**चित्तम्**) स्वान्तम् (**प्रतिलोभयन्ती**) प्रत्यक्षे मोहयन्ती (**गृहाण**) (**अङ्गानि**) सेनावयवान् (**अप्वे**) याऽपवाति=शत्रुप्राणान् हिनस्ति तत्सम्बुद्धौ । **अपपूर्वाद्वातेरन्येभ्योऽपि दृश्यत इति क्विप् अकारलोपश्छान्दसः** (**परा**) (**इहि**) दूरं गच्छ (**अभि**) (**प्र**) (**इहि**) अभिप्रायं दर्शय (**निर्दह**) नितरां भस्मीकुरु (**हृत्सु**) हृदयेषु (**शोकैः**) (**अन्धेन**) आवरकेण (**अमित्राः**) शत्रवः (**तमसा**) रात्र्यन्धकारेण (**सचन्ताम्**) संयुञ्जन्तु ॥ १७ । ४४ ॥

प्रमाणार्थ—(अप्वे) यहाँ 'अप' पूर्वक 'वा' धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते (३ । २ । १७८) से 'क्विप्' प्रत्यय है और 'अकार' का लोप छान्दस है ॥

अन्वयः—हे अप्वे शूरवीरे राजस्त्रि क्षत्रिये ! अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती या स्वसेनास्ति तस्या अङ्गानि त्वं गृहाण । अधर्मात् परेहि स्वसेनामभिप्रेहि शत्रून् निर्दह यत इमेऽमित्रा हृत्सु शोकैरन्धेन तमसा सह सचन्तां संयुक्तास्तिष्ठन्तु ॥ १७ । ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्वे !**=शूरवीरे राजस्त्रि क्षत्रिये याऽपवाति=शत्रुप्राणान् हिनस्ति तत्सम्बुद्धौ ! **अमीषां** परोक्षाणां **चित्तं** स्वान्तं **प्रतिलोभयन्ती** प्रत्यक्षे मोहयन्ती **या स्वसेनास्ति, तस्या अङ्गानि** सेनावयवान् **त्वं गृहाण** ।

अधर्मात् परेहि दूरं गच्छ, **स्वसेनामभिप्रेहि** अभिप्रायं दर्शय, **शत्रून् निर्दह** नितरां भस्मीकुरु, **यत इमेऽमित्राः** शत्रवः **हृत्सु** हृदयेषु **शोकैरन्धेन** आवरकेण **तमसा** रात्र्यन्धकारेण **सह सचन्तां**= **संयुक्तास्तिष्ठन्तु** संयुञ्जन्तु ॥ १७ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (अप्वे) शत्रुओं के प्राणों का हिंसन करने वाली शूरवीर क्षत्रिया राजस्त्री ! तू—(अमीषाम्) उनके (चित्तम्) चित्त को (प्रति-लोभयन्ती) प्रत्यक्ष मोहित करने वाली जो अपनी सेना है उसके (अङ्गानि) अवयवों को (गृहाण) ग्रहण कर । और—अधर्म से (परेहि) दूर रह, अपनी सेना के प्रति अपना (अभिप्रेहि) अभिप्राय दिखा, शत्रुओं को (निर्दह) सर्वथा भस्म कर ।

जिससे—ये (अमित्राः) शत्रु (हृत्सु) हृदयों में (शोकैः) नाना शोक के कारण (अन्धेन) प्रकाश के आच्छादक (तमसा) रात्रि के अन्धकार से (सचन्ताम्) संयुक्त रहें ॥ १७ । ४४ ॥

[**हे अप्वे=शूरवीरे राजस्त्रि क्षत्रिये ! अमीषां चितं प्रतिलोभयन्ती या स्वसेनाऽस्ति, तस्या अङ्गानि त्वं गृहाण**]

भावार्थः—सभापत्यादिभिर्यथाऽतिप्रशंसिता हृष्टपुष्टा साङ्गोपाङ्गा पुरुषसेना स्वीकार्या, तथा स्त्री सेना च ।

भावार्थ—जैसे सभापति आदि लोग अत्यन्त प्रशंसनीय हृष्ट-पुष्ट साङ्गोपाङ्ग पुरुष-सेना को स्वीकार करें वैसे स्त्री-सेना को भी ।

[**अधर्मात् परेहि······शत्रून् निर्दह**]

यत्राऽव्यभिचारिण्यस्स्त्रियस्तिष्ठेयुस्तया सेनया शत्रवो वशे स्थापनीयाः ॥ १७ । ४४ ॥

जिसमें अव्यभिचारिणी स्त्रियाँ हों उस सेना से शत्रुओं को वश में रक्खें ॥ १७ । ४४ ॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—शत्रुओं के प्राणों का हिंसन करने वाली, शूरवीर क्षत्रिया राज-स्त्री भी ऐसी होनी चाहिए, जो अधर्म से अथवा शत्रु के छल-कपट युक्त व्यवहार से दूर रहने वाली, अपने गुणों से अपनी सेना को मोहित करने वाली, और शत्रु को नष्ट करके शत्रुओं के हृदयों में शोक को बढ़ाने वाली हो ॥ १७ । ४४ ॥

अप्रतिरथः । **इषुः=सेनापतिः** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते । गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥४५॥

पदार्थः—(**अवसृष्टा**) प्रेरिता (**परा**) (**पत**) याहि (**शरव्ये**) शरेषु-बाणेषु साध्वी स्त्री तत्सम्बुद्धौ (**ब्रह्मसंशिते**) ब्रह्मभिश्चतुर्वेदविद्भिः प्रशंसिते=शिक्षया सम्यक् तीक्ष्णीकृते (**गच्छ**) (**अमित्रान्**) शत्रून् (**प्र**) (**पद्यस्व**) प्राप्नुहि (**मा**) निषेधे (**अमीषाम्**) दूरस्थानां विरोधिनाम् (**कम्**) (**चन**) कंचिदपि (**उत्**) (**शिषः**) उद्धर्वं शिष्टं त्यजेत् ॥ १७ । ४५ ॥

अन्वयः—हे शरव्ये ब्रह्मसंशिते सेनानीपत्नि ! त्वमवसृष्टा सती परापतामित्रान् गच्छ

तेषां हननेन विजयं प्रपद्यस्वामीषां शत्रूणां मध्ये कञ्चन मोच्छिषो हननेन विना कञ्चिदपि मा त्यजेः ॥ १७ । ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **शरव्ये** शरेषु=बाणेषु साध्वी स्त्री तत्सम्बुद्धौ **ब्रह्मसंशिते**=ब्रह्मभिश्चतुर्वेदविद्भिः प्रशंसिते=शिक्षया सम्यक् तीक्ष्णीकृते ! **सेनानीपत्नि ! त्वमवसृष्टा** प्रेरिता **सती परापत** याहि **अमित्रान्** शत्रून् **गच्छ, तेषां हननेन विजयं प्रपद्यस्व** प्राप्नुहि ।

अमीषां दूरस्थानां विरोधिनां **शत्रूणां मध्ये कञ्चन** कंचिदपि **मा उच्छिषः** उदूर्ध्वं शिष्टं त्यजेत्, **हननेन विना कञ्चिदपि मा त्यजेः** ॥ १७ । ४५ ॥

भाषार्थ—हे (शरव्ये) बाण चलाने में कुशल (ब्रह्मशंसिते) ब्रह्मा=चारों वेदों के वेत्ता विद्वानों से प्रशंसित एवं शिक्षा से सम्यक् तीक्ष्ण की हुई सेनानी-पत्नी ! तू—(अवसृष्टाः) प्रेरित की हुई (परापत) दूर जा, (अमित्रान्) शत्रुओं को (गच्छ) प्राप्त कर, और उनका हनन करके विजय को (प्रपद्यस्व) प्राप्त कर । और—

(अमीषाम्) उन दूरस्थ शत्रुओं में से (कञ्चन) किसी को (मा+उच्छिषः) मारे विना मत छोड़ ॥ १७ । ४५ ॥

[हे······सेनानीपत्नि ! त्वमवसृष्टा सती परापत, अमित्रान् गच्छ, तेषां हननेन विजयं प्रपद्यस्व]

भावार्थः— सभापत्यादिभिर्यथा युद्धविद्यया पुरुषाः शिक्षणीयास्तथा स्त्रियश्च । यथा वीरपुरुषा युद्धं कुर्युस्तथा स्त्रियोऽपि कुर्वन्तु ।

भावार्थ—सभापति आदि लोग जैसे युद्ध-विद्या से पुरुषों को शिक्षित करें वैसे स्त्रियों को भी । जैसे वीरपुरुष युद्ध करें वैसे स्त्रियाँ भी करें ।

[अमीषां शत्रूणां मध्ये कञ्चन मोच्छिषः]

ये शत्रवो युद्धे हताः स्युस्तदवशिष्टाश्च शाश्वते बन्धने=कारागृहे स्थापनीयाः ॥ १७ । ४५ ॥

जो शत्रु युद्ध में मारे जावें उनसे बचे हुए शत्रुओं को निरन्तर कारागृह (जेल) में रखें ॥४५॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा हो ?**—पुरुष-सेनापति की तरह स्त्री-सेना का सेनापति भी बाणादि शस्त्रास्त्रों के चलाने में दक्षा, वेद के विद्वानों से प्रशंसिता तथा सुशिक्षिता होनी चाहिए । और वह शत्रुवर्ग का हनन करती हुई सदा विजय प्राप्त करने वाली हो । शत्रु को कहीं भी शेष न रहने दे, ऐसी यशस्विनी स्त्री को स्त्री-सेना का सेनापति बनाना चाहिए ॥ १७ । ४५ ॥

अप्रतिरथः । **योद्धा=सेनापतिः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

प्रेता जयता नर ऽ इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(प्र) (इत) शत्रून् प्राप्नुत । अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**जयत**) विजयध्वम् । अत्रान्येषामपि दृश्यते इति दीर्घः (**नरः**) नायकाः (**इन्द्रः**) शत्रूणां दारयिता सेनापतिः (वः) युष्मभ्यम् (**शर्म**) गृहम् (**यच्छतु**) ददातु (**उग्राः**) दृढाः (वः) युष्माकम् (**सन्तु**) (**बाहवः**) भुजाः (**अनाधृष्याः**) शत्रुभिर्धर्षितुमयोग्याः (**यथा**) (**असथ**) भवत ॥ ४६ ॥

प्रमाणार्थ—(इत) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६।३।१३५) से मन्त्र में दीर्घ है। (जयत) यहां 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३७) से मन्त्र में दीर्घ है॥

अन्वयः—हे नरः! यूयं यथा शत्रूनित जयत इन्द्रो वः शर्म प्रयच्छतु वो बाहव उग्राः सन्तु। अनाधृष्या असथ तथा प्रयतध्वम्॥ ४६॥

सपदार्थान्वयः—हे नरः! नायकाः **यूयं यथा शत्रूनित** शत्रून् प्राप्नुत, **जयत** विजयध्वम्, **इन्द्रः** शत्रूणां दारयिता सेनापतिः **वः** युष्मभ्यं **शर्म** गृहं **प्रयच्छतु** ददातु, **वः** युष्माकं **बाहवः** भुजाः **उग्राः** दृढाः **सन्तु**, **अनाधृष्याः** शत्रुभिर्धर्षितुमयोग्याः **असथ** भवत **तथा प्रयतध्वम्**॥ १७। ४६॥

भाषार्थ—हे (नरः) नायक लोगो! तुम—जैसे शत्रुओं को (इत) प्राप्त करते और उन्हें (जयत) जीतते हो, (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारक सेनापति (वः) तुम्हें (शर्म) घर (प्रयच्छतु) प्रदान करे, (वः) तुम्हारी (बाहवः) भुजाएँ (उग्राः) दृढ़ (सन्तु) हों, तुम (अनाधृष्याः) शत्रुओं से अधर्षणीय=न दबने योग्य (असथ) बनो; वैसा प्रयत्न करो॥ १७। ४६॥

[हे नरः! यूयं यथा शत्रूनित, जयत, इन्द्रो वः शर्म प्रयच्छतु]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः॥ ये शत्रूणां विजेतारो वीरास्स्युस्तान् सेनापतिर्धनान्नगृहवस्त्रादिभिः सततं सत्कुर्यात्।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जो शत्रुओं के विजेता वीर हों उन्हें सेनापति धन, अन्न, घर और वस्त्र आदि से सदा सत्कृत करे।

[वो बाहव उग्राः सन्तु, [यथा] अनाधृष्या असथ तथा प्रयतध्वम्]

सेनास्था जनाश्च यथा बलिष्ठाः स्युस्तथा व्यवहरेयुः॥ १७। ४६॥

और सेना के लोग जैसे बलिष्ठ हों वैसा व्यवहार=आचरण करें॥ १७। ४६॥

भा० पदार्थः—शर्म=धनान्नगृहवस्त्रादि। उग्राः=बलिष्ठाः।

भाष्यसार—**१. सेनापति कैसा हो?**—इन्द्र=शत्रुओं का विदारक और शत्रुओं से न दबने वाला सेनापति अपने अधीन नायकों तथा सैनिकों को इस प्रकार प्रोत्साहित किया करे कि वे शत्रु-वर्ग को दृढ़ भुजाओं से पराजित कर सकें। और उन वीर पुरुषों का धन, अन्न, गृहादि से सत्कार किया करे।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सेनापति युद्ध के समय इस प्रकार का व्यवहार सैनिकों के साथ किया करे जिससे वे निराश न होकर उत्साहयुक्त ही बने रहें॥ १७। ४६॥

अप्रतिरथः। **मरुतः**=सेनापतिः (विद्वान्)। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽ ओजसा स्पर्द्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी ऽअन्यो ऽअन्यन्न जानन्॥ ४७॥

पदार्थः—(**असौ**) (**या**) (**सेना**) (**मरुतः**) ऋत्विजो विद्वांसः (**परेषाम्**) शत्रूणाम् (**अभि**) आभिमुख्ये (**आ**) सर्वतः (**एति**) प्राप्नोति (**नः**) अस्माकम् (**ओजसा**) बलेन (**स्पर्द्धमाना**) ईर्ष्यन्ती (**ताम्**) (**गूहत**) संवृणुत (**तमसा**) अन्धकारेण शतघ्नयाद्युत्थधूमेन मेघपर्वताकारेणास्त्रादिधूमेन वा (**अपव्रतेन**) अनियमेन परुषकर्मणा (**यथा**) (**अमी**) (**अन्यः**) (**अन्यम्**) (**न**) निषेधे (**जानन्**) ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे मरुतः ! यूयं यासौ परेषां स्पर्द्धमाना सेनौजसा नोऽस्मानभ्यैति तामपव्रतेन तमसा गूहत । अमी शत्रुसेनास्था जना यथा अन्योऽन्यं न जानन् तथा विक्रमध्वम् ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मरुतः ! ऋत्विजो विद्वांसः **यूयं याऽसौ परेषां** शत्रूणां **स्पर्द्धमाना** ईर्ष्यन्ती **सेनौजसा** बलेन **नो=ऽस्मानभ्यैति** आभिमुख्येन सर्वतः प्राप्नोति **तामपव्रतेन** अनियमेन परुषकर्मणा **तमसा** अन्धकारेण=शतघ्न्याद्युत्थधूमेन मेघपर्वताकारेणास्त्रादिधूमेन वा **गूहत** संवृणुत ।

अमी शत्रुसेनास्था जना यथा अन्योऽन्यं न जानन् तथा विक्रमध्वम् ॥ १७ । ४७ ॥

भाषार्थ—हे (मरुतः) ऋत्विक् विद्वानो ! तुम—(या) जो (असौ) यह (परेषाम्) शत्रुओं से (स्पर्द्धमाना) ईर्ष्या करने वाली सेना (ओजसा) बल से (नः) हमें (अभि+आ+एति) सब ओर से प्राप्त होती है (ताम्) उसे (अपव्रतेन) कठोर कर्म से एवं (तमसा) अन्धकार अर्थात् शतघ्नी आदि के धूम से वा मेघ और पर्वताकार अस्त्र आदि के धूम से (संवृणुत) आच्छादित करो ।

ये शत्रु-सेना के लोग (यथा) जैसे (अन्योऽन्यम्) एक दूसरे को (न) न=(जानन्) जान सकें वैसा पराक्रम करो ॥ १७ । ४७ ॥

[हे मरुतः ! यूयं याऽसौ परेषां स्पर्द्धमाना सेनौजसा नो=ऽस्मानभ्यैति, तामपव्रतेन तमसा गूहत]

भावार्थः—यदा युद्धाय शत्रुसेनासु प्राप्तासु युद्धमाचरेत् तदा सर्वतः शस्त्रास्त्रप्रहारोत्थधूम-धूल्यादिना ता आच्छाद्य—

भावार्थ—जब युद्ध के लिए शत्रु-सेनाओं के प्राप्त होने पर युद्ध करे तब सब ओर से शस्त्र-अस्त्र के प्रहार से उत्पन्न धूम एवं धूलि आदि से उन्हें आच्छादित करके—

[अमी शत्रुसेनास्था जना यथाऽन्योऽन्यं न जानन् तथा विक्रमध्वम्]

यथैते परस्परमपि न जानीयुस्तथा सेनापत्या-दिभिर्विधेयम् ॥ १७ । ४७ ॥

जैसे ये सेना के लोग परस्पर भी न जान सकें वैसे सेनापति आदि लोग आचरण करें ॥१७।४७॥

भा० पदार्थः—तमसा=शस्त्रास्त्रप्रहारोत्थधूमधूल्यादिना । अन्योऽन्यम्=परस्परम् । जानन्=जानीयुः ।

भाष्यसार—**सेनापति का युद्ध में कर्त्तव्य**--जब शत्रु-सेना बहुत स्फूर्ति से वायु के समान बलवान् होकर सब ओर से घेर लेवे, उस समय सेनापति कठोर होकर शस्त्रास्त्रों की वर्षा से उत्पन्न धूम से अथवा विषैली गैस से इस प्रकार ढक देवे, जिससे वे परस्पर एक दूसरे को न जान सकें ॥ १७ । ४७ ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रबृहस्पत्यादयः**=**सेनापतिः** । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखाऽइव ।
तन्न ऽ इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्मं यच्छतु विश्वाहा शर्म्मं यच्छतु ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**यत्र**) यस्मिन् संग्रामे (**बाणाः**) ये बणन्ति=शब्दायन्ते ते शस्त्रास्त्रसमूहाः (**संपतन्ति**) (**कुमाराः**) अतिचपला वेगवन्तो बालकाः (**विशिखा**) **यथा** विगतशिखा विविधशिखा वा (**इव**) (**तत्**) तत्र (**नः**) अस्मभ्यम् (**इन्द्रः**) सेनापतिः (**बृहस्पतिः**) बृहत्याः सभायाः सेनाया वा पालकः (**अदितिः**) अखण्डिता=सभासदलङ्कृता सभा (**शर्म**) शरणं=सुखम् (**यच्छतु**) (**विश्वाहा**) सर्वाण्यहानि=दिनानि (**शर्म**) सुखसाधकं गृहम् (**यच्छतु**) ददातु ॥ १७ । ४८ ॥

अन्वयः—यत्र संग्रामे विशिखा कुमारा इव बाणाः संपतन्ति तद् बृहस्पतिरिन्द्रः शर्म यच्छत्वदितिश्च विश्वाहा नः शर्म यच्छतु ॥ १७ । ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—**यत्र**=**संग्रामे** यस्मिन् संग्रामे **विशिखाः** यथा विगतशिखा विविधशिखा वा **कुमाराः** अतिचपला वेगवन्तो बालकाः **इव बाणाः** ये बणन्ति=शब्दायन्ते ते शस्त्रास्त्रसमूहाः **सम्पतन्ति**, **तत्** तत्र **बृहस्पतिः** बृहत्याः सभायाः सेनाया वा पालकः **इन्द्रः** सेनापतिः **शर्म** शरणं=सुखं **यच्छतु**, **अदितिः** अखण्डिता=सभा-सदलङ्कृता सभा **च विश्वाहा** सर्वाण्यहानि=दिनानि **नः** अस्मभ्यं **शर्म** सुखसाधकं गृहं **यच्छतु** ददातु ॥ १७ । ४८ ॥

भाषार्थ—(**यत्र**) जिस संग्राम=युद्ध में (विशिखाः) शिखा-रहित वा नाना शिखा वाले, (कुमाराः) अति चपल वेगवान् बालकों के (इव) समान (बाणाः) शस्त्र-अस्त्र (सम्पतन्ति) एक साथ गिरते हैं (तत्) उस संग्राम में (बृहस्पतिः) बड़ी सभा वा सेना का पालक (इन्द्रः) सेनापति (शर्म) सुख (यच्छतु) प्रदान करें, और—(अदितिः) अखण्डित अर्थात् सभासदों से अलंकृत सभा (विश्वाहा) सब दिन (नः) हमारे लिए (शर्म) सुख-साधक घर (यच्छतु) प्रदान करे ॥ १७ । ४८ ॥

[यत्र संग्रामे······कुमारा इव बाणाः सम्पतन्ति]

भावार्थः—यथा बालका इतस्ततो धावन्ति, तथा युद्धसमये योद्धारोऽपि चेष्टन्ताम् ।

भावार्थ—जैसे बालक इधर-उधर दौड़ते हैं वैसे युद्ध के समय में योद्धा लोग भी चेष्टा करें ।

[तत्र बृहस्पतिरिन्द्रः शर्म यच्छतु]

ये युद्धे क्षताः क्षीणाः श्रान्ताः क्लान्ताश्छिन्न-भिन्नाङ्गा मूर्छिताश्च भवेयुस्तान् युद्धभूमेः सद्य उत्थाप्य सुखालयं नीत्वौषधादीनि कृत्वा स्वस्थान् कुर्युः ये च म्रियेरँस्तान् विधिवद् दहेयुः ।

जो युद्ध में घायल, निर्बल, श्रान्त=थके हुए, व्याकुल, छिन्न-भिन्न अंग वाले और मूर्छित हों उन्हें युद्ध-भूमि से तत्काल उठाकर, सुखालय में ले जाकर, औषध आदि करके स्वस्थ बनावें; और जो मर जावें उनकी विधिवत् अन्त्येष्टि करें ।

[अदितिश्च···नः शर्म यच्छतु]

राजजनास्तेषां मातृपितृस्त्रीबालकादीनां सदा रक्षां कुर्युः ॥ १७ । ४८ ॥

राजा लोग उनके माता, पिता, स्त्री, बालक आदि की सदा रक्षा करें ॥ १७ । ४८ ॥

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—संग्राम में घायल, छिन्न-भिन्न अंगों वाले वीर सैनिकों को ऐश्वर्यवान् सेनापति और पीछे प्रवन्ध करने वाली सभा औषधादि की सुव्यवस्था करके अन्न, वस्त्र और घरादि से सत्कृत करके सुख प्रदान किया करें ॥ १७ । ४८ ॥

अप्रतिरथः। **सोमवरुणदेवाः**=सेनापत्यादयः। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥ ४९॥

पदार्थः—(**मर्माणि**) यानि ताडितानि सन्ति सद्यो मरणजनकान्यङ्गानि (**ते**) तव (**वर्मणा**) देहरक्षकेन (**छादयामि**) अपवृणोमि (**सोमः**) सोम्यगुणैश्वर्यसंपन्नः (**त्वा**) त्वाम् (**राजा**) विद्यान्यायविनयादिभिः प्रकाशमानः (**अमृतेन**) सर्वरोगनिवारकेणामृतात्मकेनौषधेन (**अनु**) पश्चात् (**वस्ताम्**) आच्छादयताम् (**उरोः**) बहुगुणैश्वर्यात् (**वरीयः**) अतिशयितं बह्वैश्वर्यम् (**वरुणः**) सर्वत उत्कृष्टः (**ते**) तुभ्यम् (**कृणोतु**) (**जयन्तम्**) दुष्टान् पराजयन्तम् (**त्वा**) त्वाम् (**अनु**) (**देवाः**) विद्वांसः (**मदन्तु**) उत्साहयन्तु॥ ४९॥

अन्वयः—हे योद्धः शूरवीर! अहं ते मर्माणि वर्मणा छादयामि। अयं सोमो राजाऽमृतेन त्वानुवस्ताम्। वरुणस्त उरोर्वरीयः कृणोतु जयन्तं त्वा देवा अनु मदन्तु॥ ४९॥

सपदार्थान्वयः—हे योद्धः शूरवीर! अहं ते तव **मर्माणि** यानि ताडितानि सन्ति सद्यो मरणजनकान्यङ्गानि **वर्मणा** देहरक्षकेन **छादयामि** अपवृणोमि।

अयं **सोमः** सोम्यगुणैश्वर्यसम्पन्नः **राजा** विद्यान्यायविनयादिभिः प्रकाशमानः **अमृतेन** सर्वरोगनिवारकेणामृतात्मकेनौषधेन **त्वा** त्वाम् **अनुवस्तां** पश्चादाच्छादयताम्।

वरुणः सर्वत उत्कृष्टः **ते** तुभ्यम् **उरोः** बहुगुणैश्वर्यात् **वरीयः** अतिशयितं बह्वैश्वर्यं **कृणोतु**।

जयन्तं दुष्टान् पराजयन्तं **त्वा** त्वां **देवा** विद्वांसः **अनुमदन्तु** उत्साहयन्तु॥ १७। ४९॥

भाषार्थ—हे योद्धा शूरवीर! मैं—(ते) तेरे (मर्माणि) जिनके ताड़न से शीघ्र मृत्यु होता है उन अङ्गों को (वर्मणा) देह-रक्षक कवच से (छादयामि) ढकता हूँ।

यह (सोमः) सोम्य गुणों एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न, (राजा) विद्या, न्याय, विनय आदि गुणों से प्रकाशमान राजा (अमृतेन) सब रोगों के निवारक अमृतात्मक औषध से (त्वा) तुझे (अनुवस्ताम्) पीछे आच्छादित करे। और—

(वरुणः) सबसे उत्कृष्ट वरुण (ते) तेरे लिए (उरोः) बहुत गुणों वाले ऐश्वर्य से (वरीयः) अत्यन्त ऐश्वर्य को (कृणोतु) उत्पन्न करे और—

(जयन्तम्) दुष्टों को पराजित करते हुए (त्वा) तुझे (देवाः) विद्वान् लोग (अनुमदन्तु) उत्साहित करें॥ १७। ४९॥

[हे योद्धः शूरवीर! अहं ते मर्माणि वर्मणा छादयामि…जयन्तं त्वा देवा अनुमदन्तु]

भावार्थः—सेनापत्यादिभिः सर्वेषां योद्धृणां शरीरादिरक्षणं सर्वतः कृत्वैते सततं प्रोत्साहनीया अनुमोदनीयाश्च,

भावार्थ—सेनापति आदि—सब योद्धाओं के शरीर आदि की रक्षा सब ओर से करके इन्हें सदा प्रोत्साहित और अनुमोदित करें,

[हेतुमाह—]

यतो विश्वतो विजयं लभेरन् ॥ १७ । ४९ ॥

जिससे—सब ओर से विजय को प्राप्त करें ॥ १७ । ४९ ॥

भा० पदार्थः—अनुमदन्तु=प्रोत्साहयन्तु, अनुमोदयन्तु च ॥

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—वरुणः=सबसे उत्कृष्ट, विद्या न्यायादि गुणों से प्रकाशमान सेनापति का यह परम कर्त्तव्य है कि वह योद्धाओं के मर्म-स्थलों को कवचों से ढकता रहे, घायलों को ओषधादि की सुव्यवस्था करके सुखी रक्खे, और वीर योद्धाओं को पुरस्कारादि से प्रोत्साहित किया करे ॥ १७ । ४९ ॥

अप्रतिरथः । **अग्निः**=**सेनापतिः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳ सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ५० ॥

पदार्थः—(उत्) (एनम्) विजेतारम् (**उत्तराम्**) उत्कृष्टतया तरन्ति यया सेनया तां प्राप्तविजयाम् (**नय**) (**अग्ने**) प्रकाशमय (**घृतेन**) आज्येन (**आहुत**) तृप्ति प्राप्त (**रायः**) राज्यश्रियः (**पोषेण**) पोषणेन (**सम्**) सम्यक् (**सृज**) योजय (**प्रजया**) बहुसन्तानैः (**च**) (**बहुम्**) अधिकं कर्म (**कृधि**) कुरु ॥ १७ । ५० ॥

अन्वयः—हे घृतेनाहुताग्ने सेनापते ! त्वमेनमुत्तरामुन्नय रायस्पोषेण संसृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ १७ । ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **घृतेन** आज्येन **आहुत** तृप्ति प्राप्त **अग्ने** !=**सेनापते** प्रकाशमय ! त्वमेनं विजेतारम् **उत्तराम्** उत्कृष्टतया तरन्ति यया सेनया तां प्राप्तविजयाम् **उन्नय**, **रायः** राज्यश्रियः **पोषेण** पोषणेन **संसृज** सम्यग् योजय, **प्रजया** बहुसन्तानैः **च बहुम्** अधिकं कर्म **कृधि** कुरु ॥१७।५०॥

भाषार्थ—हे (घृतेन) घृत से (आहुत) तृप्ति को प्राप्त (अग्ने) प्रकाशमय सेनापति ! तू—(एवम्) इस विजेता को तथा (उत्तराम्) विजय को प्राप्त करने वाली सेना को (उन्नय) उन्नत कर, (रायः) राज्य-श्री के (पोषेण) पोषण से (संसृज) संयुक्त कर, (च) और—(प्रजया) बहुत सन्तानों से (बहुम्) अधिक कर्म (कृधि) कर ॥ १७ । ५० ॥

[हे······**अग्ने** !=**सेनापते** ! **त्वमेन मुत्तरामुन्नय**]

भावार्थः—यः सेनाधिकारी भृत्यो वा धर्म्येण युद्धेन दुष्टान् विजयेत,

भावार्थ—जो सेना-अधिकारी वा भृत्य धर्म-युक्त युद्ध से दुष्टों को जीते—

[**रायस्पोषेण संसृज**]

तं सभासेनापतयो धनादिना बहुधा सत्कुर्युः ॥

उसे सभापति और सेनापति धन आदि से बहुत सत्कृत करें ॥ १७ । ५० ॥

भाष्यसार—सेनापति का कर्त्तव्य—घृतादि पदार्थों से तृप्त और अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति विजय के पश्चात् वीरों को धनादि से पुरस्कृत तथा पदवृद्धि आदि से प्रोत्साहित किया करे ॥ १७ । ५० ॥

अप्रतिरथः । **इन्द्रः=सेनापतिः** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

सेनापति के कृत्य का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रेमं प्रतरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा ऽ असत् ॥५१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) सुखानां धारक (**इमम्**) विजयमानम् (**प्रतराम्**) प्रतरन्त्युल्लङ्घयन्ति शत्रुबलानि यया नीत्या ताम् (**नय**) प्रापय (**सजातानाम्**) समानजन्मनाम् (**असत्**) भवेत् (**वशी**) जितेन्द्रियः (**सम्**) सम्यक् (**एनम्**) (**वर्चसा**) विद्याप्रकाशेन (**सृज**) युङ्ग्धि (**देवानाम्**) विदुषां योद्धृणां मध्ये (**भागदाः**) अंशप्रदः (**असत्**) ॥ ५१ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! त्वं सजातानां देवानामिमं प्रतरां नय यतोऽयं वश्यसत् । एनं वर्चसा संसृज यतोऽयं भागदा असत् ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे इन्द्र** ! सुखानां धारक ! **त्वं सजातानां** समानजन्मनां **देवानां** विदुषां योद्धृणां मध्ये **इमं** विजयमानं **प्रतरां** प्रतरन्त्युल्लङ्घयन्ति शत्रुबलानि यया नीत्या तां **नय** प्रापय, **यतोऽयं वशी** जितेन्द्रियः **असत्** भवेत् ।

एनं वर्चसा विद्याप्रकाशेन **संसृज** सम्यग् युङ्ग्धि, **यतोऽयं भागदाः** अंशप्रदः **असत्** भवेत् ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सुखों को धारण करने वाले सेनापति ! तू—(सजातानाम्) अपने समान आयु वाले (देवानाम्) विद्वान् योद्धाओं के मध्य में (इमं) विजेता को (प्रतराम्) शत्रु-सेनाओं को पार कराने वाली नीति को (नय) प्राप्त करा, जिससे यह (वशी) जितेन्द्रिय (असत्) बने । और—

(एनम्) इसको (वर्चसा) विद्या के प्रकाश से (संसृज) संयुक्त कर, जिससे यह (भागदाः) अंश-दाता (असत्) बने ॥ १७ । ५१ ॥

[**हे इन्द्र ! त्वं···देवानामिमं···वर्चसा संसृज, यतो ऽयं भागदा असत्**]

भावार्थः—युद्धे भृत्याः शत्रूणां यान् पदार्थान् प्राप्नुयुस्तान् सर्वान् सभापती राजा न स्वीकुर्यात्, किन्तु—तेषां मध्याद् यथायोग्यं सत्काराय योद्धृभ्यो षोडशांशं प्रदद्याद्, यावतः पदार्थान् भृत्याः प्राप्नुयुस्तावतां षोडशांशं राज्ञे प्रदद्युः ।

भावार्थ—युद्ध में भृत्य लोग शत्रुओं के जिन पदार्थों को प्राप्त करें उन सबको सभापति राजा स्वीकार न करे, किन्तु—उनमें से यथायोग्य सत्कार के लिए योद्धाओं को सोलहवाँ भाग देवे, जितने पदार्थों को भृत्य लोग प्राप्त करें उनमें से सोलहवाँ भाग राजा को देवें ।

[**अयं वशी असत्**]

यदि सभेशादयो जितेन्द्रियाः स्युस्तर्हि—एतेषां कदापि पराजयो न स्यात् ।

यदि सभापति आदि जितेन्द्रिय हों तो—इनका कभी भी पराजय न हो ।

[भागदाः]

यदि सभेशः स्वहितं चिकीर्षेत् तर्हि योद्धृणामंशं स्वयं न स्वीकुर्यात् ॥ १७ । ५१ ॥

यदि सभापति अपना हित करना चाहे तो योद्धाओं के भाग को स्वयं स्वीकार न करे ॥

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—ऐश्वर्य सम्पन्न सेनापति अपने तुल्य बलवान् वीर योद्धाओं के साथ ऐसा सद्व्यवहार करे, जिससे शत्रुओं को प्राण-पण से जीतने का प्रयत्न करें। उनमें किसी प्रकार का भेद-भाव उत्पन्न न हो सके, वे संयम से रहें। और शत्रुओं के जीते गये पदार्थों को वीरों में वितरण कर सदा प्रोत्साहित किया करे ॥ १७ । ५१ ॥

अप्रतिरथः । **अग्निः**=पुरोहित-ऋत्विक्-यजमानाः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् ।
गान्धारः ॥

अथ पुरोहितर्त्विग्यजमानकृत्यमाह ॥

अब पुरोहित ऋत्विक् और यजमान के कृत्य का उपदेश किया है ॥

यस्यं कुर्मो गृहे हविस्तमंग्ने वर्द्धया त्वम् । तस्मैं देवा ऽ अधिं ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**यस्य**) राज्ञः (**कुर्मः**) सम्पादयामः (**गृहे**) (**हविः**) होमम् (**तम्**) (**अग्ने**) विद्वन् पुरोहित (**वर्द्धय**) **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** (**त्वम्**) (**तस्मै**) तं यजमानम् । **अत्र व्यत्ययेन चतुर्थी** (**देवाः**) दिव्यगुणा ऋत्विजः (**अधि**) (**ब्रुवन्**) अधिकं ब्रुवन्तु । लेट्प्रयोगोऽयम् (**अयम्**) (**च**) (**ब्रह्मणः**) वेदस्य (**पतिः**) पालको यजमानः ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—(**वर्द्धय**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है । (**तस्मै**) तं यजमानम् । यहाँ व्यत्यय से चतुर्थी विभक्ति है । (**ब्रुवन्**) यह 'लेट्' लकार का प्रयोग है ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! वयं यस्य गृहे हविष्कुर्मस्तं त्वं वर्धय देवास्तस्मा अधि ब्रुवन् । अयं ब्रह्मणस्पतिश्च तानधिब्रवीतु ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् पुरोहित ! **वयं यस्य** राज्ञः **गृहे हविः** होमं **कुर्मः** सम्पादयामः, **तं त्वं वर्धय** ।

देवाः दिव्यगुणा ऋत्विजः **तस्मै** तं यजमानम् **अधिब्रुवन्** अधिकं ब्रुवन्तु ।

अयं ब्रह्मणः वेदस्य **पतिः** पालको यजमानः **च तानधिब्रवीतु** ॥ १७ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पुरोहित ! हम—(यस्य) जिस राजा के (गृहे) घर में (हविः) होम (कुर्मः) करें, (तम्) उसे (त्वम्) तू (वर्धय) बढ़ा ।

(देवाः) दिव्य गुणों वाले ऋत्विक् लोग (तस्मै) उस यजमान को (अधिब्रुवन्तु) अधिक उपदेश करें ।

(च) और—(अयम्) यह (ब्रह्मणः) वेद का (पतिः) पालक यजमान उन्हें शिक्षा करे ॥

[**हे अग्ने ! वयं यस्य गृहे हविः कुर्मस्तं त्वं वर्धय**]

भावार्थः—पुरोहितस्य तत् कर्मास्ति यतो यजमानस्योन्नतिस्स्याद् ।

यो यस्य यादृशं यावच्च कर्म कुर्यात् तस्मै तादृशं तावदेव मासिकं वेतनं देयम् ।

भावार्थ—पुरोहित का वह काम है जिससे यजमान की उन्नति हो ।

जो जिसका जैसा और जितना काम करे उसे वैसा और उतना ही मासिक वेतन देना चाहिए ।

[देवास्तस्मा अधिब्रुवन्]

सर्वे विद्वांसः सर्वान् प्रति सत्यमुपदिशेयू राजा च ॥ १७ । ५२ ॥

सब विद्वान् और राजा सबको सत्य उपदेश करें ॥ १७ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—देवाः=विद्वांसः । अधिब्रुवन्=सत्यमुपदिशेयुः ॥

भाष्यसार—**पुरोहित का कर्त्तव्य**—विद्यादि सद्गुणों से युक्त ऋत्विक् पुरोहित जिस यजमान के घर यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य करवावें, उनकी सदा उन्नति के विषय में सोचें । और उन्हें आगे बढ़ावें, और यजमान को सदुपदेशों द्वारा शिक्षित करके वेदों का रक्षक बनाने का प्रयत्न करें ॥ १७ । ५२ ॥

अप्रतिरथः । **अग्निः**=**सभापतिः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ सभापतिविषयमाह ॥

अब सभापति के विषय को कहा है ॥

उदु॑ त्वा॒ विश्वे॑ दे॒वाऽअग्ने॒ भर॑न्तु॒ चित्ति॑भिः । स नो॑ भव शि॒वस्त्वꣳ सु॒प्रती॑को वि॒भाव॑सुः ॥५३॥

पदार्थः—(उत्) (उ) (त्वा) त्वाम् (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्ने**) विद्वन् (**भरन्तु**) धरन्तु (**चित्तिभिः**) संज्ञानैः (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**भव**) (**शिवः**) मङ्गलकारी (**त्वम्**) (**सुप्रतीकः**) सुष्ठु प्रतीकं=प्रतीतिकरं ज्ञानं यस्य (**विभावसुः**) यो विविधासु भासु विद्याप्रकाशेषु वा वसति सः ॥ १७ । ५३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! सभेश यं त्वा विश्वे देवाश्चित्तिभिरुद्भरन्तु स उ त्वं नः शिवः सुप्रतीको विभावसुर्भव ॥ १७ । ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** !=सभेश विद्वन् यं **त्वा** त्वां **विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः **चित्तिभिः** संज्ञानैः उद्भरन्तु धरन्तु, **स उ त्वं नः** अस्मभ्यं **शिवः** मङ्गलकारी **सुप्रतीकः** सुष्ठु प्रतीकं=प्रतीतिकरं ज्ञानं यस्य **विभावसुः** यो विविधासु भासु विद्याप्रकाशेषु वा वसति सः **भव** ॥ १७ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् सभापति ! (त्वा) तुझे (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् (चित्तिभिः) संज्ञान=उत्तम ज्ञान से (उद्भरन्तु) धारण करें, (सः) सो (उ) विचारपूर्वक (त्वम्) तू (नः) हमारे लिए (शिवः) मङ्गलकारी, (सुप्रतीकः) सुप्रसिद्धिकारक ज्ञान वाला, (विभावसुः) विविध दीप्ति वा विद्याप्रकाशों में रहने वाला (भव) बन ॥ ५३ ॥

[हे अग्ने=सभेश ! यं त्वा विश्वे देवाश्चित्तिभिरुद्भरन्तु स...त्वं नः शिवः...भव]

भावार्थः—ये येभ्यो विद्यां दद्युस्ते तेषां सेवकाः स्युः ॥ १७ । ५३ ॥

भावार्थ—जो जिन्हें विद्या प्रदान करें वे उनके सेवक रहें ॥ १७ । ५३ ॥

भाष्यसार—**सभापति कैसा हो ?**—वेदादि शास्त्रों का विद्वान् सभापति सदा विद्या की वृद्धि तथा अविद्या के नाश का प्रयत्न किया करे । विविध गुणों के कारण स्वयं प्रसिद्ध होकर सबका मङ्गलकारी बनने का प्रयत्न करे ॥ १७ । ५३ ॥

अप्रतिरथः । **दिग्**=**स्पष्टम्** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ स्त्रीपुरुषकृत्यमाह ॥

अब स्त्री पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे ऽ अधि यज्ञो ऽ अस्थात् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**पञ्च**) पूर्वादिचतस्रो मध्यस्था चैका (**दिशः**) आशाः (**दैवीः**) देवानामिमाः (**यज्ञम्**) सङ्गन्तव्यं सत्कर्त्तव्यं वा गृहाश्रमम् (**अवन्तु**) कामयन्ताम् (**देवीः**) दिव्या विदुष्यो ब्रह्मचारिण्यः स्त्रियः (**अप**) (**अमतिम्**) अज्ञानम् (**दुर्मतिम्**) दुष्टां प्रज्ञाम् (**बाधमानाः**) निस्सारयन्त्यः (**रायः**) धनस्य (**पोषे**) पोषणे (**यज्ञपतिम्**) राज्यपालकम् (**आभजन्तीः**) समन्तात् सेवमानाः (**रायः**) श्रियः (**पोषे**) पुष्टौ (**अधि**) (**यज्ञः**) गृहाश्रमः) (**अस्थात्**) तिष्ठेत् ॥ १७ । ५४ ॥

अन्वयः—अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना दैवीर्देवीः पञ्च दिश इव विस्तृता रायस्पोषे यज्ञपतिं स्वामिनमाभजन्तीर्यज्ञमवन्तु यतोऽयं यज्ञो रायस्पोषेऽध्यस्थादधितिष्ठेत् ॥ १७ । ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—**अपामतिम्** अज्ञानं **दुर्मतिं** दुष्टां प्रज्ञां **बाधमानाः** निस्सारयन्त्यः **दैवीः** देवानामिमाः **देवीः** दिव्या विदुष्यो ब्रह्मचारिण्यः स्त्रियः **पञ्च** पूर्वादिचतस्रो मध्यस्था चैका **दिशः** आशाः **इव विस्तृता रायस्पोषे** धनस्य पोषणे **यज्ञपतिं=स्वामिनं** राज्यपालकम् **आभजन्तीः** समन्तात् सेवमानाः **यज्ञं** सङ्गन्तव्यं सत्कर्त्तव्यं वा गृहाश्रमम् **अवन्तु** कामयन्ताम् ।

भाषार्थ—(अपामतिम्) अज्ञान (दुर्मतिम्) दुष्ट प्रज्ञा=बुद्धि को (बाधमानाः) निकालती हुई=दूर करती हुई (दैवीः) विद्वानों की (देवीः) विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्रियाँ—(पंच) पूर्व आदि चार और एक मध्य की पांच (दिशः) दिशाओं के समान विस्तृत होकर (रायस्पोषे) धन के पोषण में (यज्ञपतिम्) राज्य के पालक स्वामी की (आभजन्तीः) सब ओर से सेवा करती हुई (यज्ञम्) संग वा सत्कार के योग्य गृहाश्रम की (अवन्तु) कामना करें।

यतोऽयं **यज्ञः** गृहाश्रमः **रायः** श्रियः **पोषे** पुष्टौ **अध्यस्थाद्=अधितिष्ठेत्** ॥ १७ । ५४ ॥

जिससे—यह (यज्ञः) गृहाश्रम (रायः) धन की (पोषे) पुष्टि में (अध्यस्थाद्) स्थित रहे ॥ ५४ ॥

[**देवीः—यज्ञपतिमाभजन्तीर्यज्ञमवन्तु**]

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालङ्कारः। यत्र गृहाश्रमे धार्मिका विद्वांसः, प्रशंसिता विदुष्यः स्त्रियश्च सन्ति, तत्र दुर्व्यसनानि न जायन्ते।

भावार्थ—यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है ॥ जिस गृहाश्रम में धार्मिक विद्वान् और प्रशंसित विदुषी स्त्रियाँ हैं वहाँ दुर्व्यसन उत्पन्न नहीं होते।

[**पञ्चदिश इव विस्तृता……रायस्पोषे ऽध्यस्थात्=अधितिष्ठेत्**]

यदि सर्वासु दिक्षु प्रशंसिताः प्रजा भवेयुस्तर्हि—राज्ञः समीपे ऽन्येभ्योऽधिकैश्वर्यं स्यात् ॥ १७ । ५४ ॥

यदि सब दिशाओं में प्रशंसित प्रजा हो तो—राजा के पास दूसरों से अधिक ऐश्वर्य हो ॥ ५४ ॥

भा० पदार्थः—देवीः=धार्मिका विद्वांसः, प्रशंसिता विदुष्यास्स्त्रियः ।

भाष्यसार—१. **दिशास्थ प्रजा कैसी हो ?**—जैसे विदुषी स्त्रियाँ गृहाश्रम रूपी यज्ञ की रक्षा के लिए अज्ञान और बुरे विचारों को छोड़कर सुखी रहती हैं, इसी प्रकार पांचों दिशाओं में रहने वाली जिस राज्य में प्रजा शिक्षादि गुणों से सम्पन्न होती है, उस राजा का ऐश्वर्य सदा बढ़ता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्रियों की तरह सब प्रजा अविद्या तथा दुर्बुद्धि का परित्याग किया करे ॥ १७ ॥ ५४ ॥

अप्रतिरथः । **अग्निः**=यज्ञः । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ।।

यज्ञः कथं कर्त्तव्य इत्युपदिश्यते ।।

यज्ञ कैसे करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

समिद्धे ऽ अग्नावधि मामहान ऽ उक्थपत्र ऽ ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**समिद्धे**) सम्यक् प्रदीप्ते (**अग्नौ**) पावके (**अधि**) (**मामहानः**) अतिशयेन महान्=पूजनीयः (**उक्थपत्रः**) उक्थानि=वक्तुं योग्यानि वेदस्तोत्राणि पत्राणि=विद्यागमकानि यस्य सः (**ईड्यः**) ईडितुं=स्तोतुमध्येषितुं योग्यः (**गृभीतः**) गृहीतः (**तप्तम्**) तापान्वितम् (**घर्मम्**) अग्निहोत्रादिकं यज्ञम् । **घर्म इति यज्ञनाम० ।। निघं० ३ । १७ ।।** (**परिगृह्य**) सर्वतो गृहीत्वा (**अयजन्त**) यजन्तु (**ऊर्जा**) बलेन (**यत्**) यम् (**यज्ञम्**) अग्निहोत्रादिकम् (**अयजन्त**) यजन्ते (**देवाः**) विद्वांसः ।। ५५ ।।

प्रमाणार्थ--(**घर्मम्**) 'घर्म' यह पद निघं० ३ । १७ में यज्ञ-नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यथा देवा समिद्धेऽग्नौ यद्यं यजमयजन्त तथा योऽधिमामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतोऽस्ति तं तप्तं घर्ममूर्जा परिगृह्यायजन्त ।।

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यथा देवाः** विद्वांसः **समिद्धे** सम्यक् प्रदीप्ते **अग्नौ** पावके **यद्**=**यं यज्ञम्** अग्निहोत्रादिकम् **अयजन्त** यजन्ते, **तथा योऽधिमामहानः** अतिशयेन महान्=पूजनीय **उक्थपत्रः** उक्थानि=वक्तुं योग्यानि वेद-स्तोत्राणि पत्राणि=विद्यागमकानि यस्य सः **ईड्यः** ईडितुं=स्तोतुमध्येषितुं योग्यः **गृभीतः** गृहीतः **अस्ति, तं तप्तं** तापान्वितं **घर्म्मम्** अग्निहोत्रादिकं यज्ञम् **ऊर्जा** बलेन **परिगृह्य** सर्वतो गृहीत्वा **अयजन्त** यजन्तु ।। १७ । ५५ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जैसे (देवाः) विद्वान् लोग (समिद्ध) सम्यक् प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में (यत्) जिस (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि (अयजन्त) यज्ञ करते हैं वैसे—जो (अधिमामहानः) अत्यन्त महान् एवं पूजनीय, (उक्थपत्रः) उपदेश के योग्य वेद-स्तोत्रों से विद्या को प्राप्त कराने वाला, (ईड्यः) स्तुति एवं सत्कार के योग्य, (गृभीतः) ग्रहण किया हुआ है उस (तप्तम्) ताप से युक्त (घर्म्मम्) अग्निहोत्र आदि यज्ञ को (ऊर्जा) बल से (परिगृह्य) ग्रहण करके (अयजन्त) यज्ञ करो ।।

[हे मनुष्याः ! यूयं यथा देवाः······यद्=यं यज्ञमयजन्त,······तथा······तं घर्मम्······अयजन्त]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। मनुष्यैर्जगदुपकाराय यथा विद्वांसोऽग्निहोत्रादिकं यज्ञमनुतिष्ठन्ति तथाऽयमनुष्ठातव्यः ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ।। मनुष्य—जगत् के उपकार के लिए जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते हैं वैसे इसका अनुष्ठान करें ।। १७ । ५५ ।।

भाष्यसार—**१. यज्ञ कैसे करें** ?—अत्यन्त पूजनीय, वेद के स्तोत्रों से विद्या का दान देने वाले, स्तुति के योग्य विद्वान् पुरुष जैसे प्रदीप्त अग्नि में यज्ञ करते हैं, वैसे ही दूसरे भी उनका अनु-करण किया करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । विद्वानों की तरह दूसरे मनुष्य भी यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य किया करें ।। १७ । ५५ ।

अप्रतिरथः । **अग्निः=यज्ञः** । विराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथ यज्ञ कथं कर्त्तव्य इत्याह ॥

अब यज्ञ कैसे करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः ।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो ऽ अध्वर्य्यन्तो ऽ अस्थुः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**दैव्याय**) दिव्येषु गुणेषु भवाय (**धर्त्रे**) धारणशीलाय (**जोष्ट्रे**) जुषमाणाय (**देवश्रीः**) श्रीयते या सा श्रीर्देवेषु विद्यते यस्य सः (**श्रीमनाः**) श्रियि मनो यस्य सः (**शतपयाः**) शतानि पयांसि=दुग्धादीनि वस्तूनि यस्य सः (**परिगृह्य**) (**देवाः**) कामयमानाः (**यज्ञम्**) संगन्तव्यं गृहाश्रममग्निहोत्रादिकं वा (**आयन्**) प्राप्नुवन्तु (**देवाः**) विद्यादातारः (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**अध्वर्यन्तः**) आत्मनोऽध्वरमिच्छन्तः (**अस्थुः**) तिष्ठेयुः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽध्वर्यन्तो देवा विद्वांसो देवेभ्यो यज्ञेऽस्थुर्यथा दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे होत्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपया यजमानो वर्त्तते तथा देवा यूयं विद्याः परिगृह्य यज्ञमायन् ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथाऽध्वर्यन्तः** आत्मनोऽध्वरमिच्छन्तः **देवाः**=**विद्वांसः** कामयमानाः **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **यज्ञेऽस्थुः** तिष्ठेयुः,

यथा दैव्याय दिव्येषु गुणेषु भवाय **धर्त्रे** धारणशीलाय **जोष्ट्रे** जुषमाणाय **होत्रे देवश्रीः** श्रीयते या सा श्रीर्देवेषु विद्यते यस्य सः **श्रीमनाः** श्रियि मनो यस्य सः **शतपयाः** शतानि पयांसि=दुग्धादीनि वस्तूनि यस्य सः **यजमानो वर्त्तते, तथा देवाः** विद्यादातारः **यूयं विद्याः परिगृह्य यज्ञं** सङ्गन्तव्यं गृहाश्रममग्निहोत्रादिकं वा **आयन्** प्राप्नुत ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे-(अध्वर्यन्तः) अपने अध्वर=यज्ञ की इच्छा करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए यज्ञ में (अस्थुः) बैठें ।

जैसे—(दैव्याय) दिव्य गुणों में विद्यमान, (धर्त्रे) धारणशील, (जोष्ट्रे) प्रीति और सेवा करने वाले होता के लिए-(देवश्रीः) विद्वानों में श्री=लक्ष्मी वाला, (श्रीमनाः) श्री=लक्ष्मी में मन वाला, (शतपयाः) सैकड़ों दुग्ध आदि वस्तुओं वाला यजमान है, वैसे-(देवाः) विद्या-दाता तुम-विद्याओं को ग्रहण करके (यज्ञम्) संग के योग्य गृहाश्रम वा अग्निहोत्र आदि को (आयन्) प्राप्त करो ॥ १७ । ५६ ॥

[हे मनुष्याः ! यथा······देवश्रीः श्रीमना······यजमानो वर्त्तते तथा देवाः······यज्ञमायन्]

भावार्थः—मनुष्यैः श्रीप्राप्तय उद्योगः सदैव कर्त्तव्यः ।

यथा विद्वांसो धनलब्धये प्रयतेरंस्तद्वदनु प्रयतितव्यम् ॥ १७ । ५६ ॥

भावार्थ—मनुष्य श्री=लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सदा उद्योग करें ।

जैसे—विद्वान् धन की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें वैसे अन्य मनुष्य उनका अनुकरण करें ॥

भाष्यसार—**यज्ञ कैसे करें ?**—जैसे यज्ञ की इच्छा वाले विद्वान् पुरुष दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिए यज्ञ करते हैं और जैसे यजमान दिव्य गुणों वाले होता के लिए, प्रयत्न करके लक्ष्मी

का संग्रह करके घृत दूधादि पदार्थों का संग्रह करता है, वैसे ही दूसरे विद्यादि से शिक्षित होकर और ऐश्वर्यवान् होकर संगमनीय गृहाश्रम-यज्ञ को प्राप्त करें ।। १७ । ५६ ।।

अप्रतिरथः । **यज्ञः=अग्निहोत्रम्** । निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

यज्ञ कैसे करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

वीतꣳ हविः शमितꣳ शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति ।
ततो वाका ऽ आशिषा नो जुषन्ताम् ।। ५७ ।।

पदार्थः—(**वीतम्**) गमनशीलम् (**हविः**) होतव्यम् (**शमितम्**) उपशान्तम् (**शमिता**) उपशमादिगुणयुक्तः (**यजध्यै**) यष्टुम् (**तुरीयः**) चतुर्थः (**यज्ञः**) संगन्तव्यः (**यत्र**) (**हव्यम्**) (**एति**) गच्छति (**ततः**) तस्मात् (**वाकाः**) उच्यन्ते यास्ताः (**आशिषः**) इच्छासिद्धयः (**नः**) अस्मान् (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् ।। ५७ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः शमिता यजध्यै वीतं हविरग्नौ प्रक्षिपति यस्तुरीयो यज्ञोऽस्ति यत्र हव्यमेति ततो वाका आशिषश्च नो जुषन्तामितीच्छत ।। ५७ ।।

सपदार्थान्वयः— **हे मनुष्याः ! यः शमिता** उपशमादिगुणयुक्तः **यजध्यै** यष्टुं **वीतं** गमनशीलं **शमितम्** उपशान्तं **हविः** होतव्यम् **अग्नौ प्रक्षिपति, यस्तुरीयः** चतुर्थः **यज्ञः** सङ्गन्तव्यः **अस्ति, यत्र हव्यमेति** गच्छति, **ततः** तस्माद् **वाकाः** उच्यन्ते यास्ता **आशिषः** इच्छा-सिद्धयः **च नः** अस्मान् **जुषन्तां** सेवन्ताम् **इतीच्छत** ।। १७ । ५७ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(शमिता) उपशम=शान्ति आदि गुणों से युक्त यजमान—(यजध्यै) यज्ञ करने के लिए (वीतम्) गतिशील, (शमितम्) शान्त, (हविः) हवि को अग्नि में डालता है, जो (तुरीयः) चौथा (यज्ञः) संग के योग्य यज्ञ है जहाँ (हव्यम्) हवि (एति) पहुँचती है, (ततः) उससे (वाकाः) वेद की वाणियाँ और (आशिषः) इच्छा-सिद्धियाँ (नः) हमारी (जुषन्ताम्) सेवन करें अर्थात् हमें प्राप्त हो, ऐसी इच्छा करो ।। १७ । ५७ ।।

[हे मनुष्याः···यस्तुरीयो यज्ञो ऽस्ति]

भावार्थः—अग्निहोत्रादौ चत्वारः पदार्थाः सन्ति—पुष्कलं पुष्टिसुगन्धिमिष्टगुणयुक्तं रोगनाशकं हविः, तच्छोधनं, यज्ञकर्त्ता, वेद्यग्न्यादिकं चेति,

भावार्थ—अग्निहोत्र आदि में चार पदार्थ हैं—पुष्कल पुष्टिकारक, सुगन्धित, मिष्ट=मीठा गुणों से युक्त, रोगनाशक हवि, उसकी शुद्धि, यज्ञ-कर्त्ता=यजमान और वेदि की अग्नि आदि ।

[यत्र हव्यमेति, ततो···आशिषश्च नो जुषन्ताम्]

यथावद्धुतः पदार्थः आकाशं गत्वा पुनरा-वृत्येष्टसाधको भवतीति मनुष्यैर्मन्तव्यम् ।।

यथावत् होम किया हुआ पदार्थ आकाश में जाकर, फिर लौटकर अभीष्ट का साधक होता है, ऐसा मनुष्यों को मानना चाहिए ।।

भा० पदार्थः—आशिषः=इष्टसाधिकाः ।

भाष्यसार—यज्ञ करने की विधि और फल—यज्ञ करते समय शान्ति आदि गुणों से युक्त यजमान यज्ञ की अग्नि में रोगनाशक तथा पुष्टिकारक शान्त हवि को अग्नि में डाला करे और उस समय उच्चारण किये गये वेद-मन्त्रों से अपनी सत्य मनोकामनाओं को प्राप्त करे ॥ १७ । ५७ ॥

अप्रतिरथः । **अग्निः**=सूर्यलोकः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ सूर्य्यलोकस्वरूपमाह ॥

अब सूर्य्यलोक के स्वरूप का कथन किया जाता है ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ऽ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**सूर्यरश्मिः**) (**हरिकेशः**) हरितवर्णः (**पुरस्तात्**) प्रथमतः (**सविता**) सूर्यलोकः (**ज्योतिः**) द्युतिम् (**उत्**) (**अयान्**) (**अजस्रम्**) निरन्तरम् (**तस्य**) (**पूषा**) पुष्टिकर्त्ता (**प्रसवे**) प्रसूते जगति (**याति**) प्राप्नोति (**विद्वान्**) विद्यायुक्तः (**संपश्यन्**) सम्यक् प्रेक्षमाणः (**विश्वा**) सर्वान् (**भुवनानि**) लोकान् (**गोपाः**) पृथिव्यादयो जगद्रक्षकाः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः पुरस्तात् सविता ज्योतिः प्रयच्छति यस्मिन् हरिकेशः सूर्यरश्मिर्वर्तते यः प्रसवेऽजस्रं पूषाऽस्ति यं विद्वान् संपश्यन् सन् तद्विद्यां याति तस्य सकाशाद् गोपा विश्वा भुवनान्युदयान् स सूर्यमंडलोऽतिप्रकाशमय इति यूयं वित्त ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यः पुरस्तात्** प्रथमतः **सविता** सूर्यलोकः **ज्योतिः** द्युतिं **प्रयच्छति यस्मिन्** **हरिकेशः** हरितवर्णः **सूर्यरश्मिर्वर्तते, यः प्रसवे** प्रसूते=जगति **अजस्रं** निरन्तरं **पूषा** पुष्टिकर्त्ता **अस्ति, यं विद्वान्** विद्यायुक्तः **सम्पश्यन्** सम्यक् प्रेक्षमाणः **सन् तद्विद्यां याति** प्राप्नोति, **तस्य सकाशाद् गोपाः** पृथिव्यादयो जगद्रक्षकाः **विश्वा** सर्वे **भुवनानि** लोकाः **उदयान् स सूर्यमण्डलोऽतिप्रकाशमय इति यूयं वित्त** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(पुरस्तात्) प्रथम से (सविता) सूर्य-लोक (ज्योतिः) द्युति=प्रकाश प्रदान करता है, जिसमें (हरिकेशः) हरित वर्ण की (सूर्यरश्मिः) सूर्य-किरण है, जो—(प्रसवे) जगत् में (अजस्रम्) निरन्तर (पूषा) पुष्टि-कर्त्ता है, जिसे—(विद्वान्) विद्या से युक्त पुरुष (सम्पश्यन्) सम्यक् देखता हुआ सूर्य-विद्या को (याति) प्राप्त करता है, उस से (गोपाः) पृथिवी आदि जगत् के रक्षक (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक (उत्+अयान्) उदय होते हैं; वह सूर्य-मण्डल अति प्रकाशमय है; ऐसा तुम जानो ॥ १७ । ५८ ॥

[सविता···यस्मिन् हरिकेशः सूर्यरश्मिर्वर्तते, तस्य सकाशाद् गोपा विश्वा भुवनान्युदयान्]

भावार्थः—योऽयं सूर्यलोकस्तत्प्रकाशे शुक्लहरितादयोऽनेके किरणाः सन्ति, ये सर्वांल्लोकानभिरक्षन्ति, अतएव सर्वस्य सर्वथा सर्वदा रक्षणं भवतीति वेद्यम् ॥ १७ । ५८ ॥

भावार्थ—जो यह सूर्य-लोक है उसके प्रकाश में शुक्ल, हरित आदि रंग की अनेक किरणें हैं, जो सब लोकों की रक्षा करती हैं इसी लिए ही सबकी सब प्रकार से सर्वदा रक्षा होती है; ऐसा समझें ॥ १७ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—हरिकेशः=शुक्लहरितादयोऽनेके किरणाः । गोपाः=सर्वलोकाभिरक्षकाः ।

भाष्यसार—**सूर्य लोक का स्वरूप वर्णन**—गोपाः=पृथिवी आदि जगत् का रक्षक, सूर्य-मण्डल अत्यन्त प्रकाशमय है। पूषा=संसार के पदार्थों को उत्पन्न करके निरन्तर पोषण करने के कारण सूर्य का पूषा नाम है। सूर्य की अनेक वर्णों वाली किरणों में से एक किरण हरित वर्ण की है, जो संसार की अधिक रक्षा करती है ॥ १७ । ५८ ॥

विश्वावसुः । **आदित्यः**=सूर्यः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरेण किमर्थः सूर्यो निर्मित इत्युपदिश्यते ॥

अब ईश्वर ने किसलिए सूर्य का निर्माण किया है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

विमान॑ऽ एष दि॒वो मध्य॑ऽ आस्त ऽ आपप्रि॒वान्रोद॑सी ऽ अ॒न्तरि॑क्षम् ।
स वि॒श्वाची॑र॒भिच॑ष्टे घृ॒ताची॑रन्त॒रा पूर्व॒मप॑रं च के॒तुम् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**विमानः**) विमानमिव स्थितः (**एषः**) सूर्यः (**दिवः**) प्रकाशस्य (**मध्ये**) (**आस्ते**) तिष्ठति (**आपप्रिवान्**) स्वतेजसा व्याप्तवान् (**रोदसी**) प्रकाशभूमी (**अन्तरिक्षम्**) अवकाशम् (**सः**) (**विश्वाचीः**) या विश्वमञ्चन्ति=प्राप्नुवन्ति ता द्युतीः (**अभि**) (**चष्टे**) पश्यति । **चष्ट इति पश्यतिकर्मा ॥ निघं० ३ । ११ ॥** (**घृताचीः**) या घृतमुदकमञ्चन्ति ताः (**अन्तरा**) द्वयोर्मध्ये (**पूर्वम्**) (**अपरम्**) (**च**) (**केतुम्**) प्रज्ञापकं तेजः ॥ १७ । ५९ ॥

प्रमाणार्थ—(**चष्टे**) पश्यति । 'चष्टे' यह पद निघं० ३ । ११ में पश्यति-अर्थक क्रियाओं में पठित है ॥

अन्वयः—विद्वान् य एष दिवो मध्ये विमानो रोदसी अन्तरिक्षमापप्रिवान् सन्नास्ते स विश्वाचीर्घृताचीर्द्युतीर्विस्तारयति पूर्वमपरमन्तरा च केतुमभिचष्टे तं विजानीयात् ॥ १७ । ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—**विद्वान् य एषः** सूर्यः **दिवः** प्रकाशस्य **मध्ये विमानः** विमानमिव स्थितः, **रोदसी** प्रकाशभूमी **अन्तरिक्षम्** अवकाशम् **आपप्रिवान्** स्वतेजसा व्याप्तवान् **सन्नास्ते** तिष्ठति, **स विश्वाचीः** या विश्वमञ्चन्ति=प्राप्नुवन्ति ता द्युतीः **घृताचीः** या घृतमुदकमञ्चन्ति ताः **द्युतीर्विस्तारयति, पूर्वमपरमन्तरा** द्वयोर्मध्ये **च केतुं** प्रज्ञापकं तेजः **अभिचष्टे** पश्यति, **तं विजानीयात्** ॥ ५९ ॥

भाषार्थ—विद्वान् पुरुष—जो (एषः) यह सूर्य (दिवः) प्रकाश के मध्य में (विमानः) विमान के समान स्थित, (रोदसी) प्रकाश और भूमि को तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आपप्रिवान्) अपने तेज से व्याप्त (आस्ते) कर रहा है, (सः) वह—(विश्वाचीः) विश्व को प्राप्त होने वाला एवं (घृताचीः) घृत=जल को प्राप्त कराने वाली द्युति=ज्योतियों का विस्तार करता है, (पूर्वम्) पहले (अपरम्) पीछे और (अन्तरा) मध्य में (केतुम्) प्रज्ञापक तेज को (अभिचष्टे) प्रकाशित करता है—उसे जाने ॥ १७ । ५९ ॥

[**विद्वान् य एष दिवो मध्ये रोदसी अन्तरिक्षमापप्रिवान् सन्नास्ते, स विश्वाचीः**]

भावार्थः—यः सूर्यलोको ब्रह्माण्डमध्ये

भावार्थ—जो सूर्यलोक ब्रह्माण्ड के मध्य में

स्थितः सन् स्वप्रकाशेन सर्वमभिव्याप्नोति, स सर्वाभिकर्षको वर्तत इति मनुष्यैर्वेद्यम् ॥ १५ । ५६ ॥

स्थित होकर अपने प्रकाश से सबको व्याप्त कर रहा है वह सबका आकर्षक है; ऐसा मनुष्यों को जानना योग्य है ॥ १७ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—दिवः=ब्रह्माण्डस्य । आपप्रिवान्=स्वप्रकाशेन सर्वमभिव्याप्तवान् । विश्वाचीः=सर्वाभिकर्षकः ॥

भाष्यसार—सूर्य के निर्माण का प्रयोजन—यह प्रकाशमय सूर्य द्युलोक और पृथिवीलोक के मध्य आकाश में स्थित है । यह अपनी किरणों से घृताचीः=पृथिवीस्थ जलों का आकर्षण करके वृष्टि का कारण बनता है, और विश्वाचीः=पृथिवी आदि का आकर्षण किये हुए है । और अपने तेज से सबको प्रकाशित करता है ॥ १७ । ५६ ॥

अप्रतिरथः । **आदित्यः**=सूर्यः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर ने किस लिए सूर्य का निर्माण किया, यह फिर उपदेश किया है ॥

उ॒क्षा स॑मु॒द्रो ऽ अ॑रु॒णः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरावि॑वेश ।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑तः॒ पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**उक्षा**) वृष्ट्या सेचकः (**समुद्रः**) सम्यग् द्रवन्त्यापो यस्मात्सः (**अरुणः**) आरक्तः (**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि=पालनानि यस्मात् (**पूर्वस्य**) पूर्णस्य (**योनिम्**) कारणम् (**पितुः**) उत्पादिकाया विद्युतः (**आ**) (**विवेश**) प्रविशति (**मध्ये**) (**दिवः**) प्रकाशमयस्य (**निहितः**) ईश्वरेण स्थापितः (**पृश्निः**) विचित्रवर्णः सूर्य्यः (**अश्मा**) अश्नुते=व्याप्नोति स मेघः । **अश्मेति मेघना० ॥ निघं० १ । १० ॥** (**वि**) (**चक्रमे**) विविधतया क्रमते (**रजसः**) लोकान् (**पाति**) रक्षति (**अन्तौ**) बन्धने ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(**अश्मा**) यह पद निघं० १ । १० में मेघ-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य ईश्वरेण दिवो मध्ये निहित उक्षा समुद्रोऽरुणः सुपर्णः पृश्निरश्मा मेघश्च रजसोऽन्तौ विचक्रमे पाति च पूर्वस्य पितुर्योनिमाविवेश स सम्यगुपयोक्तव्यः ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! य ईश्वरेण दिवः** प्रकाशमयस्य **मध्ये निहितः** ईश्वरेण स्थापितः, **उक्षा** वृष्टया सेचकः, **समुद्रः** सम्यग् द्रवन्त्यापो यस्मात्सः, **अरुणः** आरक्तः **सुपर्णः** शोभनानि पर्णानि=पालनानि यस्मात्, **पृश्निः** विचित्रवर्णः सूर्य्यः **अश्मा=मेघश्च** अश्नुते=व्याप्नोति स मेघः **च रजसः** लोकान् **अन्तौ** बन्धने **विचक्रमे** विविधतया क्रमते **पाति** रक्षति **च, पूर्वस्य** पूर्णस्य **पितुः** उत्पादिकाया विद्युतः **योनिं** कारणम् **आविवेश**, प्रविशति **स सम्यगुपयोक्तव्यः** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर से—(दिवः) प्रकाशमय द्युलोक के (मध्ये) मध्य में (निहितः) स्थापित किया हुआ, (उक्षा) वृष्टि से सींचने वाला, (समुद्रः) जलों को द्रवित करने वाला, (अरुणः) थोड़ा लाल रंग वाला, (सुपर्णः) उत्तम पालन का हेतु, (पृश्निः) विचित्र वर्ण वाला सूर्य और (अश्मा) आकाश को व्याप्त करने वाला मेघ (रजसः) लोकों को (अन्ते) बन्धन में (विचक्रमते) विविध गति देता है और उनकी (पाति) रक्षा करता है, तथा—(पूर्वस्य) पूर्ण, (पितुः) उत्पादक विद्युत् के (योनिम्) कारण में (आ-

विवेश) प्रविष्ट है, उसका ठीक उपयोग करना चाहिए ॥ १७ । ६० ॥

[हे मनुष्याः ! य ईश्वरेण दिवो मध्ये निहितः'''सुपर्णः पृश्निरश्मा च रजसोऽन्तौ विचक्रमे, पाति च]

भावार्थः—मनुष्यैरीश्वरस्यानेके धन्यवादा वाच्याः, कुतः ? येन स्वविज्ञापनाय जगत्पालन-निमित्तः सूर्यादिदृष्टान्तः प्रदर्शितः । स कथं न सर्व-शक्तिमान् भवेत् ? ॥ १७ । ६० ॥

भावार्थ—मनुष्य ईश्वर को अनेक धन्यवाद दें, क्योंकि—जिसने अपने विज्ञापन के लिए जगत् के पालन का निमित्त सूर्य आदि का दृष्टान्त प्रदर्शित किया है, वह कैसे सर्वशक्तिमान् न हो ? ॥ १७ । ६० ॥

भा० पदार्थः—सुपर्णः=जगत्पालननिमित्तः ।

भाष्यसार—**सूर्य के निर्माण का प्रयोजन**—द्युलोक में विद्यमान सूर्य अश्मा=सब आकाश को प्रकाश से व्याप्त कर लेता है । उक्षा=सूर्य जलों को द्रवित करके वृष्टि कराता है । अरुणः=यह लाल किरण से रोगादि का निवारण करके सबको पालता है । यह पृथिवी चन्द्रादि लोकों का आकर्षण करता है, विविध प्रकार की गति देता है । और विद्युत् के कारण जल में प्रवेश करता है ॥ १७ । ६० ॥

मधुच्छन्दाः सुतजेता । **इन्द्रः=ईश्वरः** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्जगत्स्रष्टुरीश्वरस्य गुणानाह ॥

फिर जगत् बनाने वाले ईश्वर के गुणों का उपदेश किया है ॥

इन्द्रं विश्वा॑ऽ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ । र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमात्मानम् (**विश्वाः**) सर्वाः (**अवीवृधन्**) वर्धयन्तु (**समुद्रव्यचसम्**) समुद्रस्यान्तरिक्षस्य व्यचा=व्याप्तिरिव व्याप्तिर्यस्य तम् (**गिरः**) वाचः (**रथीतमम्**) प्रशस्ता रथा=सुखहेतवः पदार्था विद्यन्ते यस्मिन्सोऽतिशयितस्तम् (**रथीनाम्**) प्रशस्तरथयुक्तानाम् (**वाजानाम्**) ज्ञानादि-गुणयुक्तानां जीवानाम् (**सत्पतिम्**) सदविनाशी चासौ पतिः=पालकश्च यद्वा सतामविनाशिनां कारणानां जीवानां च पालकस्तम् (**पतिम्**) स्वामिनम् ॥ १७ । ६१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यं समुद्रव्यचसं रथीनां रथीतमं वाजानां पतिं सत्पतिमिन्द्रं परमात्मानं विश्वा गिरोऽवीवृधँस्तं सततमुपाध्वम् ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यं समुद्रव्यचसं** समुद्रस्यान्तरिक्षस्य व्यचा=व्याप्तिरिव व्याप्तिर्यस्य तं, **रथीनां** प्रशस्तरथयुक्तानां **रथीतमं** प्रशस्ता रथा=सुखहेतवः पदार्था विद्यन्ते यस्मिन्सोऽतिशयितस्तं, **वाजानां** ज्ञानादिगुणयुक्तानां जीवानां **पतिं** स्वामिनं, **सत्पतिं** सदविनाशी चासौ पतिः=पालकश्च यद्वा सतामविनाशिनां कारणानां जीवानां च पालकस्तं **इन्द्रं**=**परमात्मानं विश्वाः** सर्वाः **गिरः** वाचः **अवीवृधन्** वर्धयन्तु, तं **सततमुपाध्वम्** ॥६१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस (समुद्रव्यचसम्) समुद्र=आकाश की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले, (रथीनाम्) प्रशस्त रथ=सुख से युक्त पदार्थों में (रथीतमम्) अत्यन्त सुख-दायक, (वाजानाम्) ज्ञान आदि गुणों से युक्त जीवों के (पतिम्) स्वामी, (सत्पतिम्) सत्=अविनाशी और पति=पालक अथवा—सत्=अवि-नाशी कारण [प्रकृति] और जीवों का पालक (इन्द्रम्) परमात्मा को (विश्वाः) सब (गिरः) वेद-

वाणियाँ (अवीवृधन्) स्तुति करती हैं; उसकी सदा उपासना करो ॥ १७ । ६१ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं यम्……इन्द्रं=परमात्मनं विश्वा गिरोऽवीवृधन्, तं सततमुपाध्वम्]

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः—यं सर्वे वेदाः प्रशंसन्ति, यं योगिन उपासते, यं प्राप्य मुक्ता आनन्दं भुञ्जते, स एव उपास्य इष्टो देवो मन्तव्यः ॥ १७ । ६१ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य—जिसकी सब वेद प्रशंसा करते हैं, जिसकी योगी लोग उपासना करते हैं, जिसको प्राप्त करके मुक्त लोग आनन्द को भोगते हैं; उसे ही उपास्य इष्ट देव मानें ॥ ६१ ॥

भा० पदार्थः—गिरः=वेदाः ।

भाष्यसार—**ईश्वर के गुण का वर्णन**—ईश्वर आकाश के समान सब स्थानों पर व्यापक है, रमणीय, प्रशस्त तथा सुख देने वाले पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है, ज्ञान और बलों का रक्षक है, अविनाशी जगत् के कारण रूपी प्रकृति तथा जीवों का पालक है। उस परमेश्वर की सब वेद वाणियाँ स्तुति करती हैं ॥ १७ । ६१ ॥

विधृतिः । **यज्ञः=ईश्वरः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

फिर ईश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ ऽआ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ२ऽआ च वक्षत् ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(देवहूः) देवान्=विदुष आह्वयति सः (**यज्ञः**) पूजनीयः (**आ**) (**च**) (**वक्षत्**) प्रापयेत् (**सुम्नहूः**) यः सुम्नानि=सुखान्याह्वयति सः (**यज्ञः**) संगन्तव्यः (**आ**) (**च**) (**वक्षत्**) (**यक्षत्**) यजेद्द्यात् (**अग्निः**) स्वयंप्रकाशः (**देवः**) सकलसुखदातेश्वरः (**देवान्**) दिव्यान् गुणान् भोगान् वा (**आ**) (**च**) (**वक्षत्**) प्रापयेत् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो देवहूर्यज्ञ ईश्वरोऽस्मान् सत्यमावक्षत् । चादसत्यादुद्धरेत् । यः सुम्नहूर्यज्ञोऽस्मभ्यं सुखान्यावक्षत् । दुःखानि च नाशयेत् । योऽग्निर्देवोऽस्मान् देवान् यक्षदावक्षच्च तं भवन्तः सततं सेवन्ताम् ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यो **देवहूः** देवान्=विदुष आह्वयति सः **यज्ञः=ईश्वरः** पूजनीयः **अस्मान् सत्यमावक्षत्** प्रापयेत्, **चादसत्यादुद्धरेत्** ।

यः सुम्नहूः यः सुम्नानि=सुखान्याह्वयति सः **यज्ञः** सङ्गन्तव्यः **अस्मभ्यं सुखान्यावक्षत्** प्रापयेत्, **दुःखानि च नाशयेत्** ।

योऽग्निः स्वयंप्रकाशः देवः सकलसुखदातेश्वरः **अस्मान् देवान्** दिव्यान् गुणान् भोगान् वा **यक्षद्**

भाषार्थ—हे मनुष्यो—जो (देवहूः) विद्वानों का आह्वान करने वाला (यज्ञः) पूजनीय ईश्वर है वह हमें सत्य को (आवक्षत्) प्राप्त करावे (च) और असत्य से निकाले ।

जो (सुम्नहूः) सुम्न=सुखों को प्राप्त कराने वाला (यज्ञः) संग के योग्य ईश्वर है वह हमें सुख (अवक्षत्) प्राप्त करावे (च) और दुःखों का नाश करे ।

जो (अग्निः) प्रकाशस्वरूप (देवः) सकल सुखदाता ईश्वर है वह हमें (देवान्) दिव्य गुणों वा

यजेद्द्यात् **आवक्षत्** प्रापयेत् **च, तं भवन्तः सततं सेवन्ताम्** ॥ १७ । ६२ ॥

भोगों को (यक्षत्) प्रदान करे, और (आवक्षत्) प्राप्त करावे; उसे आप निरन्तर सेवन करो ॥ १७ । ६२ ॥

[हे मनुष्याः ! यो देवहूर्यज्ञः, यः सुम्नहूः, यो···देवोऽस्मान् देवान् ··· आवक्षत्···तं भवन्तः सततं सेवन्ताम्]

भावार्थः—आप्तैर्विद्वद्भिरुपास्यते, यश्च सुखस्वरूपः, मङ्गलप्रदः, परमेश्वरोऽस्ति; तं समाधियोगेन मनुष्या उपासीरन् ॥ १७ । ६२ ॥

भावार्थ—जिसकी आप्त विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जो सुखस्वरूप, मङ्गलप्रद परमेश्वर है उसकी मनुष्य समाधि योग से उपासना करें ॥ १७ । ६२ ॥

भा० पदार्थः—देवहूः=आप्तैर्विद्वद्भिरुपास्यते यः सः । सुम्नहूः=सुखस्वरूपः । देवः=मङ्गलप्रदः । यज्ञः=परमेश्वरः ॥

भाष्यसार—**ईश्वर के गुणों का वर्णन**—देवहू !=सब दिव्यगुणों का प्रापक यज्ञ रूप ईश्वर सत्य को प्राप्त कराता है और असत्य से पृथक् करता है, सब मोक्षादि सुखों का प्रापक उपासनीय ईश्वर सुखों को देता है और दुःखों से पृथक् करता है । वह प्रकाशस्वरूप है, देवों का भी देव है और सब दिव्य गुणों और भोगों को प्रदान करता है ॥ १७ । ६२ ॥

विधृतिः । **इन्द्रः=ईश्वरः—सेनापतिः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर कैसा है, यह फिर उपदेश किया है ॥

वाजस्य मा प्रसव ऽ उद्ग्राभेणोदग्रभीत् । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽ अकः ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**वाजस्य**) विज्ञानस्य (**मा**) माम् (**प्रसवः**) उत्पादकः (**उद्ग्राभेण**) उत्कृष्टतया गृह्णाति येन तेन (**उत्**) (**अग्रभीत्**) (**अध**) अथ । **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः** । (**सपत्नान्**) शत्रून् (**इन्द्रः**) पतिः (**मे**) मम (**निग्राभेण**) निग्रहेण (**अधरान्**) अधःपतितान् (**अकः**) कुर्यात् ॥ ६३ ॥

प्रमाणार्थ—(**अध**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथेन्द्रो वाजस्य प्रसवो मा मामुद्ग्राभेणोदग्रभीत् । तथाऽधाऽथ यो मे मम सपत्नान् निग्राभेणाधरानकस्तं यूयमपि सेनापतिं कुरुत ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथेन्द्रः पतिः **वाजस्य** विज्ञानस्य **प्रसवः** उत्पादकः **मा**=मामुद्ग्राभेण उत्कृष्टतया गृह्णाति येन तेन **उदग्रभीत्**, तथा ऽध=ऽथ **यो मे**=मम **सपत्नान्** शत्रून् **निग्राभेण** निग्रहेण **अधरान्** अधःपतितान् **अकः** कुर्यात्, **तं यूयमपि सेनापतिं कुरुत** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(इन्द्रः) पति=ईश्वर (वाजस्य) विज्ञान का (प्रसवः) उत्पादक (मा) मुझे (उद्ग्राभेण) ग्रहण करने की उत्तम रीति से (उदग्रभीत्) ग्रहण करता है वैसे (अध) और—जो (मे) मेरे (सपत्नान्) शत्रुओं को (निग्राभेण) निग्रह=गिरफ्तार करके (अधरान्) अपने अधीन (अकः) करे उसे तुम सेनापति बनाओ ॥ १७ । ६३ ॥

[हे मनुष्याः ! यथेन्द्रः'''मा=मामुद्ग्राभेणोदग्रभीत् मे=मम सपत्नान् निग्राभेणाधरानकः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथेश्वरस्तथा ये मनुष्याः पालनाय धार्मिकान् मनुष्यान् संगृह्णन्ति, ताडनाय दुष्टाँश्च निगृह्णन्ति,

[तं'''सेनापतिं कुरुत]

त एव राज्यं कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥ १७ । ६३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसा ईश्वर है वैसे जो मनुष्य पालन के लिए धार्मिक मनुष्यों को ग्रहण करते हैं और ताडन के लिए दुष्टों को वश में करते हैं—

वे ही राज्य कर सकते हैं ॥ १७ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रः=ईश्वरः।

भाष्यसार—**ईश्वर और सेनापति का समान कर्म**—जैसे परमैश्वर्य-सम्पन्न विज्ञान का उत्पादक ईश्वर सज्जनों का ग्रहण=पालन, और दुष्टों का निग्रह करके दण्ड देता है, वैसे ही सेनापति ऐश्वर्य सम्पन्न होकर, विज्ञान के आश्रय से शस्त्रास्त्रों का निर्माण करके, शत्रुओं का बन्धन करके धार्मिक-प्रजा की रक्षा किया करे ॥ १७ । ६३ ॥

विधृतिः। **इन्द्राग्नी**=सभासेनापती। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनरग्रे राजधर्म उपदिश्यते ॥

फिर आगे राजधर्म का उपदेश किया जाता है ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा ऽअवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**उद्ग्राभम्**) उत्कृष्टतया ग्रहणम् (**च**) (**निग्राभम्**) निग्रहम् (**च**) (**ब्रह्म**) धनम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अवीवृधन्**) वर्धयन्तु (**अध**) अथ। **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः** (**सपत्नान्**) अरीन् (**इन्द्राग्नी**) विद्युत्पावकान्ताविव सेनापती (**मे**) मम (**विषूचीनान्**) विरुद्धमाचरतः (**वि**) (**अस्यताम्**) ॥ ६४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अध**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—देवा उद्ग्राभं च निग्राभं च कृत्वा ब्रह्मावीवृधन्। अधाथ सेनापती इन्द्राग्नी इव मे विषूचीनान्सपत्नान् व्यस्यतामुत्क्षिपताम् ॥ ६४ ॥

सपदार्थान्वयः—**देवाः** विद्वांसः **उद्ग्राभम्** उत्कृष्टतया ग्रहणम् **च निग्राभं** निग्रहं **च कृत्वा ब्रह्म** धनम् **अवीवृधन्** वर्धयन्तु।

अध=**अथ सेनापती इन्द्राग्नी** विद्युत्पावकान्ताविव सेनापती **इव मे** मम **विषूचीनान्** विरुद्धमाचरतः **सपत्नान्** अरीन् **व्यस्यताम्**=**उत्क्षिपताम्** ॥ १७ । ६४ ॥

भाषार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (उदग्राभम्) धार्मिकों का ग्रहण (च) और (निग्राभम्) दुष्टों का निग्रह करके (ब्रह्म) धन को (अवीवृधन्) बढ़ावें।

(अध) और—(इन्द्राग्नी) अन्त करने वाले विद्युत् और पावक=अग्नि के तुल्य सेनापति और सभापति के समान (मे) मेरे (विषूचीनान्) विरुद्ध आचरण करने वाले (सपत्नान्) शत्रुओं को (व्यस्यताम्) दूर फैंक देवें ॥ १७ । ६४ ॥

[देवा उद्ग्राभं च निग्राभं च कृत्वा ब्रह्मावीवृधन्]

भावार्थः—ये मनुष्याः सज्जनान् सत्कृत्य, दुष्टान् निहत्य ब्रह्म वर्द्धयित्वा निष्कण्टकं राज्यं संपादयन्ति, त एव प्रशंसिताः ।

भावार्थ—जो मनुष्य सज्जनों का सत्कार, दुष्टों की हत्या, और ब्रह्म=धन को बढ़ा कर राज्य को निष्कंटक बनाते हैं, वे ही प्रशंसनीय हैं ।

[सेनापती इन्द्राग्नी इव```सपत्नान् व्यस्यताम्]

यो राजा राष्ट्रवासिनः सज्जनान् सत्कृत्य, दुष्टान् निरस्यैश्वर्यं वर्धयति, तस्यैव सभासेनापती शत्रुनाशं कर्तुं शक्नुयाताम् ॥ १७ । ६४ ॥

जो राजा राष्ट्रवासी सज्जनों का सत्कार कर, दुष्टों को दूर हटाकर ऐश्वर्य को बढ़ाता है उस के ही सभापति और सेनापति शत्रुओं का नाश कर सकते हैं ॥ १७ । ६४ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्राग्नी=सभासेनापती । सपत्नान्=दुष्टान् ॥

भाष्यसार—**सभापति और सेनापति का समान कर्त्तव्य**—धार्मिक श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करके और दुष्टों का बन्धन करके वेद विद्या रूपी धन को बढ़ाना सभापति और सेनापति का मुख्य कर्म है। और जो वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले शत्रु हों, उनको विद्युत् अथवा अग्नि के समान तेजस्वी होकर नष्ट कर देवें ॥ १७ । ६४ ॥

विधृतिः । **अग्निः=राजपुरुषः** । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

क्रम॑ध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्य॒ꣳ हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः । दि॒वस्पृ॒ष्ठꣳ स्व॑र्ग॒त्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राध्वम् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(क्रमध्वम्) पराक्रमं कुरुत (**अग्निना**) विद्युता (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखम् (उख्यम्) उखायां संस्कृतं भक्ष्यमोदनादिकम् । **अत्र शूलोखाद्यत् ॥ अ० ४ । २ । १६ ॥ अनेन संस्कृतं भक्षा इत्यर्थे यत्** (**हस्तेषु**) (**बिभ्रतः**) धरन्तः (**दिवः**) न्यायविनयादिप्रकाशजातस्य (**पृष्ठम्**) ज्ञीप्सितम् (**स्वः**) सुखम् (**गत्वा**) प्राप्य (**मिश्राः**) मिलिताः (**देवेभिः**) विद्वद्भिः (**आध्वम्**) उपविशत ॥ ६५ ॥

प्रमाणार्थ—(**उख्यम्**) यहाँ 'शूलोखाद्यत्' (४ । २ । १६) से 'संस्कृतं भक्षाः' इस अर्थ में यत् प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे वीराः ! यूयमग्निना नाकमुख्यं च हस्तेषु बिभ्रतो धरन्तः क्रमध्वं देवेभिर्मिश्राः सन्तो दिवस्पृष्ठं स्वर्गत्वाध्वम् ॥ १७ । ६५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वीराः ! यूय**मग्निना** विद्युता **नाकम्** अविद्यमानदुःखम् **उख्यम्** उखायां संस्कृतं भक्ष्यमोदनादिकं **च हस्तेषु बिभ्रतः**=धरन्तः **क्रमध्वं** पराक्रमं कुरुत ।

देवेभिः विद्वद्भिः **मिश्राः** मिलिताः **सन्तो दिवः** न्यायविनयादिप्रकाशजातस्य **पृष्ठं** ज्ञीप्सितं **स्वः**

भावार्थ—हे वीरो ! तुम—(अग्निना) विद्युत् से (नाकम्) सुखकारक (उख्यम्) और उखा=स्थाली में संस्कृत भक्ष्य ओदन आदि को (हस्तेषु) हाथों में (बिभ्रतः) धारण करते हुए (क्रमध्वम्) पराक्रम करो । और—

(देवेभिः) विद्वानों से (मिश्राः) मिलकर (दिवः) न्याय, विनय आदि प्रकाश के (पृष्ठम्) जानने के

सुखं **गत्वा** प्राप्य **आध्वम्** उपविशत ॥ १७ । ६५ ॥

योग्य (स्वः) सुखको (गत्वा) प्राप्त करके (आध्वम्) बैठो ॥ १७ । ६५ ॥

[हे वीराः ! यूयमग्निना···क्रमध्वम्, देवैर्भिमिश्राः सन्तः]

भावार्थः—राजपुरुषा विद्वद्भिः सह संप्रयोगेणाग्नेयास्त्रादिना शत्रुषु पराक्रमन्ताम् ।

भावार्थ—राजपुरुष विद्वानों के साथ मिल कर आग्नेय-अस्त्र आदि से शत्रुओं पर पराक्रम करें ।

[स्वर्गत्वाऽऽध्वम्]

स्थिरं सुखं प्राप्य पुनः पुनः प्रयतेरन् ॥१७।६५॥

स्थिर सुखको प्राप्त करके पुनः प्रयत्न करें ॥ १७ । ६५ ॥

भा० पदार्थः—अग्निना=आग्नेयास्त्रादिना । क्रमध्वम्=पराक्रमध्वम् । स्वः=स्थिरं सुखम् । आध्वम्=पुनः पुनः प्रयतध्वम् ॥

भाष्यसार—राज-धर्म का वर्णन—युद्ध के समय वीर सैनिक इतने शत्रुओं से सतर्क रहें कि भोजन हाथों में लेकर, घोड़े आदि की पीठ पर बैठकर ही खाते हुए युद्ध करते रहें और विद्वानों के सहयोग से न्यायादि गुणों का विस्तार करके सुखों की वृद्धि किया करे ॥ १७ । ६५ ॥

विधृतिः । **अग्निः=सभेशः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहिं विद्वानग्नेरग्ने पुरो ऽ अग्निर्भवेह ।
विश्वा ऽ आशा दीद्यानो विभाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(**प्राचीम्**) पूर्वाम् (**अनु**) (**प्रदिशम्**) प्रकृष्टां दिशम् (**प्र**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**विद्वान्**) (**अग्नेः**) आग्नेयास्त्रादियोगात् (**अग्ने**) शत्रुदाहक (**पुरोअग्निः**) अग्रगन्ता पावक इव (**भव**) (**इह**) अस्मिन् राज्यकर्मणि (**विश्वाः**) अखिलाः (**आशाः**) दिशः । आशा इति दिङ्ना० ॥ निघं० १ । ६ ॥ (**दीद्यानः**) देदीप्यमानः सूर्य्य इव (**वि, भाहि**) प्रकाशय (**ऊर्ज्जम्**) अन्नादिकम् (**नः**) अस्माकम् (**धेहि**) (**द्विपदे**) मनुष्याद्याय (**चतुष्पदे**) गवाद्याय ॥ १७ । ६६ ॥

प्रमाणार्थ—(आशाः) दिशः । 'आशा' यह पद निघं० १ । ६ में दिशा-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे अग्ने सभेश ! त्वं प्राचीं प्रदिशमनुप्रेहि त्वमिहाग्नेः पुरो अग्निरिव विद्वान् भव । विश्वा आशा दीद्यानः सन् नोऽस्माकं द्विपदे चतुष्पदे ऊर्ज्जं धेहि विद्याविनयपराक्रमैरभयं विभाहि ॥ ६६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=सभेशः शत्रुदाहक ! **त्वं प्राचीं** पूर्वां **प्रदिशं** प्रकृष्टां दिशम् **अनुप्रेहि** प्राप्नुहि ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) ! शत्रुओं के दाहक= जलाने वाले सभापति ! तू—(प्राचीम्) पूर्व की (प्रदिशम्) उत्तम दिशा को (अनुप्रेहि) प्राप्त कर ।

त्वमिह अस्मिन् राज्यकर्मणि **अग्नेः** आग्नेया-

तू (इह) इस राज्य-कर्म में (अग्नेः) आग्नेय

स्त्रादियोगात् **पुरो अग्निः** अग्रगन्ता पावकः **इव विद्वान् भव।**

विश्वाः अखिलाः **आशाः** दिशः **दीद्यानः** देदीप्यमानः सूर्य्य इव **सन् नो**=ऽस्माकं **द्विपदे** मनुष्याद्याय **चतुष्पदे** गवाद्यायं **ऊर्ज्जम्** अन्नादिकं **धेहि, विद्याविनयपराक्रमैरभयं विभाहि** प्रकाशय ॥ १७ । ६६ ॥

अस्त्र आदि के योग से (पुरो अग्निः) अग्रगामी अग्नि के समान विद्वान् बन।

(विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (दीद्यानः) सूर्य के समान देदीप्यमान करता हुआ (नः) हमारे (द्विपदे) मनुष्य आदि तथा (चतुष्पदे) गौ आदि के लिए (ऊर्ज्जम्) अन्न आदि को (धेहि) धारण कर; विद्या, विनय और पराक्रम से अभय को (विभाहि) प्रकाशित कर॥ १७ । ६६ ॥

[हे अग्ने !······त्वमिह······अग्निरिव विद्वान् भव, विश्वा आशा दीद्यानः······द्विपदे चतुष्पदे ऊर्जं धेहि]

भावार्थः—ये पूर्णेन ब्रह्मचर्येण सर्वा विद्या अभ्यस्य, युद्धविद्यां विदित्वा, सर्वासु दिक्षु स्तूयन्ते, ते मनुष्याणां पश्वादीनां च भक्ष्यभोज्यमुन्नीय, रक्षां विधायानन्दिता भवन्तु ॥ १७ । ६६ ॥

भावार्थ—जो पूर्ण ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं का अभ्यास करके, युद्ध-विद्या को जानकर सब दिशाओं में स्तुति को प्राप्त होते हैं वे मनुष्यों के भक्ष्य पदार्थ और पशुओं के भोज्य पदार्थों को बढ़ा, तथा रक्षा करके आनन्दित रहें ॥ १७ । ६६ ॥

भा० पदार्थः—विश्वाः=सर्वाः । दीद्यानः=स्तूयमानः । ऊर्जम्=भक्ष्यभोज्यम् ॥

भाष्यसार—सभापति का कर्त्तव्य—अग्नि के समान शत्रुओं का दाहक बनकर सभापति अस्त्रादि से सम्पन्न होने के कारण सब दिशाओं में प्रकाशित रहे, सभी राज्य के कार्यों में अग्नि के समान आगे चलने वाला हो, सब दिशाओं को, सूर्य के समान विद्या, विनय और पराक्रम से प्रकाशित होकर अभय से युक्त करे, और दो पैर वाले मनुष्यादि तथा चार पैर वाले गायादि प्राणियों के लिए पर्याप्त मात्रा में अन्नादि को धारण करने वाला हो॥ १७ । ६६ ॥

विधृतिः । **अग्निः=योगी** । पिपीलिकामध्या बृहती । मध्यमः ॥

पुनर्योगिगुणा उपदिश्यन्ते ॥

फिर योगियों के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

पृथिव्या ऽ अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥

पदार्थः—(**पृथिव्याः**) भूमेर्मध्ये (**अहम्**) (**उत्**) (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**आ**) (**अरुहम्**) रोहेयम् (**अन्तरिक्षात्**) आकाशात् (**दिवम्**) प्रकाशमानं सूर्यम् (**आ**) (**अरुहम्**) समन्ताद्रोहेयम् (**दिवः**) द्योतमानस्य (**नाकस्य**) सुखनिमित्तस्य (**पृष्ठात्**) समीपात् (**स्वः**) सुखम् (**ज्योतिः**) ज्ञानप्रकाशम् (**अगाम्**) प्राप्नुयाम् (**अहम्**) ॥ ६७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा कृतयोगाङ्गानुष्ठानसंयमसिद्धोऽहं पृथिव्या अन्तरिक्षमुदारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहं नाकस्य दिवः पृष्ठात् स्वर्ज्योतिश्चाहमगां तथा यूयमप्याचरत ॥ ६७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः !

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—योगाङ्गों

यथा कृतयोगाङ्गानुष्ठानसंयमसिद्धोऽहं **पृथिव्याः** भूमेर्मध्ये **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **उद्-आ-अरुहं** रोहेयम्, **अन्तरिक्षाद्** आकाशाद् **दिवं** प्रकाशमानं सूर्यम् **आ-अरुहं** समन्ताद्रोहेयं, **नाकस्य** सुखनिमित्तस्य **दिवः** द्योतमानस्य **पृष्ठात्** समीपात् **स्वः** सुखं **ज्योतिः** ज्ञानप्रकाशं **चाहमगां** प्राप्नुयां, **तथा यूयमप्याचरत** ॥ १७ । ६७ ॥

के अनुष्ठान एवं संयम से सिद्ध योगी मैं—(पृथिव्याः) पृथिवी से (अन्तरिक्षम्) आकाश में (उद्+आ+अरुहम्) आरोहण करूँ, (अन्तरिक्षात्) आकाश से (दिवम्) प्रकाशमान सूर्य में (आ+अरुहम्) आरोहण करता हूँ; (नाकस्य) सुख के निमित्त (दिवः) प्रकाशमान द्युलोक के (पृष्ठात्) समीप से (स्वः) सुख और (ज्योतिः) ज्ञान-प्रकाश को (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त करूँ वैसे तुम भी करो ॥ १७ । ६७ ॥

[कृतयोगाङ्गानुष्ठानसंयमसिद्धोऽहं पृथिव्या अन्तरिक्षमुदारुहम्......]

भावार्थः—यदा मनुष्यः स्वात्मना सह परमात्मानं युङ्क्ते तदाऽणिमादयः सिद्धयः प्रादुर्भवन्ति, ततो ऽव्याहतगत्याभीष्टानि स्थानानि गन्तुं शक्नोति; नान्यथा ॥ १७ । ६७ ॥

भावार्थ—जब मनुष्य अपने आत्मा के साथ परमात्मा को युक्त करता है तब अणिमा आदि सिद्धियाँ प्रकट होती हैं, उससे अव्याहत-गति से अभीष्ट स्थानों में जा सकता है; अन्यथा नहीं ॥ १७ । ६७ ॥

भाष्यसार—**योगी के गुणों का वर्णन**—जब योगाभ्यास के द्वारा योगी अपनी आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से कर लेता है तो वह अणिमादि के द्वारा पृथिवी लोक तथा पृथिवीस्थ पदार्थों से उठकर अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को प्राप्त कर लेता है, तत्पश्चात् द्युलोक को प्राप्त करता है । इस प्रकार तीनों लोकों को सम्यक् जानकर सुखस्वरूप तथा परम ज्योति परमात्मा को प्राप्त करके आनन्द में रहता है ॥ १७ । ६७ ॥

विधृतिः । **अग्निः**=**योगी** । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी के गुणों का फिर उपदेश किया है ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त ऽ आ द्याᳫं रोहन्ति रोदसी । यज्ञं ये विश्वतोधारᳫंसुविद्वाᳫंसो वितेनिरे ॥६८॥

पदार्थः—(**स्वः**) सुखम् (**यन्तः**) उपयन्तः (**न**) इव (**अप**) (**ईक्षन्ते**) समालोकन्ते (**आ**) समन्तात् (**द्याम्**) प्रकाशमयीं योगविद्याम् (**रोहन्ति**) (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**यज्ञम्**) संगन्तव्यम् (**ये**) (**विश्वतोधारम्**) विश्वतः=सर्वतो धाराः=सुशिक्षिता वाचो यस्मिंस्तम् (**सुविद्वांसः**) शोभनाश्च ते योगिनः (**वितेनिरे**) विस्तृतं कुर्वन्ति ॥ ६८ ॥

अन्वयः—ये सुविद्वांसो यन्तो न स्वरपेक्षन्ते रोदसी आरोहन्ति द्यां विश्वतोधारं यज्ञं वितेनिरे तेऽक्षयं सुखं लभन्ते ॥ ६८ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये सुविद्वांसः** शोभनाश्च ते योगिनः **यन्तः** उपयन्तः **न** इव **स्वः** सुखम् **अपेक्षन्ते** समालोकन्ते, **रोदसी** द्यावापृथिव्यौ **आ**-

भाषार्थ—(ये) जो (सुविद्वांसः) उत्तम योगी लोग (यन्तः) परमात्मा के पास जाते हुए (न) से (स्वः) सुख को (अपेक्षन्ते) देखते हैं,

रोहन्ति, **द्यां** प्रकाशमयीं योगविद्यां **विश्वतोधारं** विश्वतः सर्वतो धाराः=सुशिक्षिता वाचो यस्मिंस्तं **यज्ञं** सङ्गन्तव्यं **वितेनिरे** विस्तृतं कुर्वन्ति, तेऽक्षयं सुखं लभन्ते ॥ १७ । ६८ ॥

(रोदसी) द्युलोक और पृथिवी लोक पर (आ+रोहन्ति) आरोहण करते हैं, (द्याम्) प्रकाशमयी योगविद्या को तथा (विश्वतोधारम्) सर्वत्र सुशिक्षिता वाणी वाले, (यज्ञम्) संग के योग्य यज्ञ को (वितेनिरे) विस्तृत करते हैं वे अक्षय सुख को प्राप्त करते हैं ॥ १७ । ६८ ॥

[सुविद्वांसो यन्तो न स्वरपेक्षन्ते, यज्ञं वितेनिरे]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा सारथिरश्वान् सुशिक्ष्याभीष्टे मार्गे चालयित्वा सुखेनाभीष्टं स्थानं सद्यो गच्छति, तथैव शोभना विद्वांसो योगिनो जितेन्द्रिया भूत्वा संयमेन स्वेष्टं परमात्मानं प्राप्यानन्दं विस्तारयन्ति ॥ १७ । ६८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे सारथि घोड़ों को सुशिक्षित करके मार्ग पर चलाकर सुख से अभीष्ट स्थान पर शीघ्र चला जाता है, वैसे ही उत्तम विद्वान् योगी लोग जितेन्द्रिय होकर संयम से अपने इष्ट परमात्मा को प्राप्त करके आनन्द का विस्तार करते हैं ॥ १७ । ६८ ॥

भा० पदार्थः—सुविद्वांसः=शोभना विद्वांसो योगिनः । यन्तः=सारथिः । स्वः=स्वेष्टं परमात्मानम् । यज्ञम्=आनन्दम् । वितेनिरे=विस्तारयन्ति ॥

भाष्यसार—**१. योगी के गुणों का वर्णन**—जो विद्वान् योगी प्रकाशमयी योगविद्या को जानकर द्युलोक और पृथिवी लोक पर स्वेच्छा से विचरण करते हैं, और जितेन्द्रिय होकर विश्व के आधारभूत संग करने योग्य जीवन-यज्ञ को विस्तृत करते हैं, वे उत्तम योगी होते हैं ।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे सारथि घोड़ों को सुशिक्षित करके सन्मार्ग पर चलाता है, वैसे ही योगी इन्द्रियों को वश में करके परम सुख को प्राप्त करता है ॥ १७ । ६८ ॥

विधृतिः । **अग्निः=विद्वान्** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्विद्वद्व्यवहार उपदिश्यते ॥

फिर विद्वान् के व्यवहार का उपदेश किया जाता है ॥

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**प्र**) (**इहि**) प्राप्नुहि (**प्रथमः**) आदिमः (**देवयताम्**) कामयमानानाम् (**चक्षुः**) दर्शकम् (**देवानाम्**) विदुषाम् (**उत**) अपि (**मर्त्यानाम्**) अविदुषाम् (**इयक्षमाणाः**) यज्ञं चिकीर्षमाणाः (**भृगुभिः**) परिक्वविज्ञानैर्विपश्चिद्भिः (**सजोषाः**) समानप्रीतिसेवनाः (**स्वः**) सुखम् (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**यजमानाः**) सर्वेभ्यः सुखदातारः (**स्वस्ति**) कल्याणम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! देवयतां मध्ये प्रथमः पूर्वं प्रेहि यतो देवानामुत मर्त्यानां त्वं चक्षुरसि यथेयक्षमाणाः सजोषा यजमाना भृगुभिः सह स्वस्ति स्वर्यन्तु तथा त्वमपि भव ॥ ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! विद्वन् **देवयतां** कामयमानानां **मध्ये प्रथमः**=**पूर्वम्** आदिमः

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! तू—(देवयताम्) कामना करने योग्य विद्वानों में

प्रेहि प्राप्नुहि **यतो देवानां** विदुषाम् **उत** अपि **मर्त्यानाम्** अविदुषां **त्वं चक्षुः** दर्शकम् **असि** ।

(प्रथमः) प्रथम (प्रेहि) प्राप्त हो । क्योंकि—(देवानाम्) विद्वानों (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों का तू (चक्षुः) नेत्र है ।

यथेयक्षमाणाः यज्ञं चिकीर्षमाणाः **सजोषाः** समानप्रीतिसेवनाः **यजमानाः** सर्वेभ्यः सुखदातारः **भृगुभिः** परिपक्वविज्ञानैर्विपश्चिद्भिः **सह स्वस्ति** कल्याणं **स्वः** सुखं **यन्तु** प्राप्नुवन्तु **तथा त्वमपि भव** ॥ १७ । ६९ ॥

जैसे—(इयक्षमाणाः) यज्ञ करने के इच्छुक, (सजोषाः) समान रूप से प्रीति और सेवा करने वाले (यजमानाः) सबको सुख देने वाले यजमान लोग (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (स्वस्ति) कल्याण एवं (स्वः) सुख को (यन्तु) प्राप्त करें; वैसे तू भी प्राप्त कर ॥

[हे अग्ने !···यथा···यजमाना भृगुभिः सह···स्वं यन्तु तथा त्वमपि भव]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! विद्वद्भिरविद्वद्भिश्च सह प्रीत्योपदेशेन यूयं सुखं प्राप्नुत ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—विद्वान् और अविद्वानों के साथ प्रीतिपूर्वक उपदेश से सुख को प्राप्त करो ॥ १७ । ६९ ॥

भा० पदार्थः—भृगुभिः=विद्वद्भिः ॥

भाष्यसार—**विद्वानों का व्यवहार कैसा हो ?**—अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित और सब विद्वानों में मुख्य विद्वान् की सब कामना करते हैं । वह विद्वान् संग करने के इच्छुक, समान रूप से प्रीति करने वाले अविद्वानों और परिपक्व ज्ञान वाले विद्वानों के साथ कल्याण तथा सुख को प्राप्त करे ॥ १७ । ६९ ॥

कुत्सः । **अग्निः**=**विद्वान् मनुष्यः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मोऽ अन्तर्विभाति देवाऽ अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ॥ ७० ॥

पदार्थः—(**नक्तोषासा**) रात्र्युषसाविव (**समनसा**) समानं मनो=विज्ञानं ययोस्ते (**विरूपे**) विरुद्धस्वरूपे (**धापयेते**) पाययतः (**शिशुम्**) बालकमिव वर्त्तमानं जगत् (**एकम्**) असहायम् (**समीची**) ये एकीभावमिच्छतस्ते (**द्यावाक्षामा**) (**रुक्मः**) देदीप्यमानोऽग्निः (**अन्तः**) मध्ये (**वि, भाति**) विशेषेण प्रकाशते (**देवाः**) विद्वांसः (**अग्निम्**) (**धारयन्**) अधारयन् । **अत्राडभावः** (**द्रविणोदाः**) द्रव्यप्रदातारः ॥

प्रमाणार्थ—(**धारयन्**) अधारयन् । यहाँ 'अट्' आगम का अभाव है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यथा समनसा समीची विरूपे मातृधात्र्यौ वैकं शिशुमिव नक्तोषासा जगद्धापयेते यथा वा द्यावाक्षामान्तो रुक्मो विभाति द्रविणोदा देवा तमग्निं धारयँस्तथा वर्त्तध्वम् ॥ ७० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं यथा समनसा** समानं मनो=विज्ञानं ययोस्ते

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जैसे (समनसा) समान मन=विज्ञान वाली, (समीची)

समीची ये एकीभावमिच्छतस्ते **विरूपे** विरुद्धस्वरूपे **मातृधात्र्यौ वैकम्** असहायं **शिशुं** बालकमिव वर्त्तमानं जगत् **इव नक्तोषासा** रात्र्युषसाविव **जगद्धापयेते** पाययतः, **यथा वा द्यावाक्षामाऽन्तः** मध्ये **रुक्मः** देदीप्यमानोऽग्निः **वि+भाति** विशेषेण प्रकाशते, **द्रविणोदाः** द्रव्यप्रदातारः **देवाः** विद्वांसः **तमग्निं धारयन्** अधारयन् **तथा वर्त्तध्वम्** ॥

एकता चाहने वाली, (विरूपे) विरुद्ध स्वरूप वाली रात्रि और उषा अथवा माता और धात्री (एकम्) एक (शिशुम्) बालक के समान (नक्तोषासा) रात्रि और उषा के जगत् का (धापयेते) पोषण करती हैं। अथवा जैसे—(द्यावाक्षामा) द्युलोक और पृथिवी के (अन्तः) मध्य में (रुक्मः) देदीप्यमान अग्नि (वि+भाति) चमकता है, और-(द्रविणोदाः) द्रव्यों के दाता (देवाः) विद्वान् लोग उस अग्नि को (धारयन्) धारण करते हैं, वैसा वर्त्ताव करो ॥

[हे मनुष्या ! यथा···विरूपे नक्तोषासा जगद्धापयेते]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ मनुष्यैः-जगति यथा रात्र्युषसौ विरुद्धैरूपैर्वर्तेते,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ मनुष्यों को चाहिए कि वे-जैसे जगत् में रात्रि और उषा विरुद्ध रूपों से वर्तमान हैं,

[यथा वा द्यावाक्षामाऽन्तो रुक्मो विभाति]

यथा च विद्युत् सर्वपदार्थेषु व्याप्ता, यथा वा द्यावाभूमी अतिसहनशीले वर्त्तेते तद्वत्—

और जैसे—विद्युत् सब पदार्थों में व्याप्त है, अथवा जैसे-द्युलोक और पृथिवी अति सहनशील हैं वैसे—

[देवास्तमग्निं धारयन्]

विवेचकैः शुभगुणेषु व्यापकैर्भूत्वा पुत्रवज्जगत् पालनीयम् ॥ १७ । ७० ॥

विवेचक लोग शुभ गुणों में व्यापक होकर पुत्र के समान जगत् का पालन करें ॥ १७ । ७० ॥

भा० पदार्थः—विरूपे=विरुद्धरूपे । नक्तोषासा=रात्र्युषसौ । द्यावाक्षामा=द्यावाभूमी । रुक्मः=विद्युत् । देवाः=विवेचकाः । धारयन्=अपालयन् ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों का पारस्परिक व्यवहार**—जैसे विरुद्ध रूप वाली रात्रि और उषा समान भाव जगत् का पोषण करती है और जैसे माता और धात्री समान भाव से बालक का दूधादि से पालन करती हैं, इसी प्रकार सब मनुष्य परस्पर पुत्र के तुल्य स्नेह करते हुए व्यवहार करें ।

और जैसे अग्नि द्युलोक और पृथिवी लोक के बीच में प्रकाशित होकर उत्तम धनों को प्राप्त कराती है, वैसे ही विद्यादि गुणों से प्रकाशित होकर दूसरों को भी विद्यादि धनों को दिया करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । सब मनुष्य रात्रि और उषा की तरह, और माता धात्री की तरह परस्पर व्यवहार किया करें ॥ १७ । ७० ॥

कुत्सः । **अग्निः=योगी** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्योगिकर्मफलमुपदिश्यते ॥

फिर योगी के कर्मों के फलों का उपदेश किया जाता है ॥

अग्ने॑ सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छ॒तं ते॑ प्रा॒णाः स॒हस्रं॑ व्या॒नाः ।
त्वꣳ सा॑ह॒स्रस्य॑ रा॒यऽ ई॑शिषे॒ तस्मै॑ ते विधेम॒ वाजा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ७१ ॥

पदार्थः--(**अग्ने**) पावक इव प्रकाशमय (**सहस्राक्ष**) सहस्रेष्वसंख्यातेषु व्यवहारेष्वक्षिविज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतमूर्द्धन्**) शतेष्वसंख्यातेषु मूर्द्धा=मस्तकं यस्य तत्सम्बुद्धौ (**शतम्**) असंख्याताः (**ते**) तव (**प्राणाः**) जीवसाधनाः (**सहस्रम्**) असंख्याः (**व्यानाः**) चेष्टानिमित्ताः सर्वशरीरस्था वायवः (**त्वम्**) (**साहस्रस्य**) सहस्राणामसंख्यातानामिदमधिकरणं जगत् तस्य (**रायः**) धनस्य (**ईशिषे**) ईशोऽसि (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**विधेम**) परिचरेम (**वाजाय**) विज्ञानवते (**स्वाहा**) सत्यया वाचा ॥ १७ । ७१ ॥

अन्वयः--हे सहस्राक्ष शतमूर्द्धन्नग्ने योगिराज ! यस्य ते शतं प्राणाः सहस्रं व्यानाः सन्ति यस्त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे तस्मै वाजाय ते वयं स्वाहा विधेम ॥ १७ । ७१ ॥

सपदार्थान्वयः--हे **सहस्राक्ष** सहस्रेष्वसंख्यातेषु व्यवहारेष्वक्षि=विज्ञानं यस्य तत्सम्बुद्धौ **शतमूर्द्धन्** शतेष्वसंख्यातेषु मूर्द्धा=मस्तकं यस्य तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** ! पावक इव प्रकाशमय ! **योगिराज ! यस्य ते** तव **शतम्** असंख्याताः **प्राणाः** जीवसाधनाः **सहस्रम्** असंख्याः **व्यानाः** चेष्टानिमित्ताः सर्वशरीरस्था वायवः **सन्ति, यस्त्वं साहस्रस्य** सहस्राणामसंख्यातानामिदमधिकरणं जगत् तस्य **रायः** धनस्य **ईशिषे** ईशोऽसि, **तस्मै वाजाय** विज्ञानवते **ते** तुभ्यं **वयं स्वाहा** सत्यया वाचा **विधेम** परिचरेम ॥ १७ । ७१ ॥

भाषार्थ--हे (सहस्राक्ष) सहस्र=असंख्य व्यवहारों में अक्षि=विज्ञान वाले, (शतमूर्द्धन्) शत=असंख्य मूर्द्धा=मस्तक वाले, (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमय योगिराज ! (ते) तेरे (शतम्) असंख्य (प्राणाः) जीव के साधन प्राण तथा (सहस्रम्) असंख्य (व्यानाः) चेष्टा के निमित्त, सबके शरीर में स्थित व्यान नामक वायु हैं; और--जो (त्वम्) तू (साहस्रस्य) सहस्र=असंख्य पदार्थों के आधार जगत् के (रायः) धन का (ईशिषे) स्वामी है; (तस्मै) उस (वाजाय) विज्ञानवान् (ते) तेरे लिए हम--(स्वाहा) सत्य वाणी से (विधेम) सेवा करें ॥ १७ । ७१ ॥

[हे सहस्राक्ष !......अग्ने=योगिराज ! यस्य ते शतं प्राणाः सहस्रं व्यानाः सन्ति]

भावार्थः--यो योगी तप-आदिसाधनैर्योगबलं प्राप्यासंख्यप्राणिशरीराणि प्रविश्यानेकनेत्रादिभिरङ्गैर्दर्शनादिकार्याणि कर्त्तुं शक्नोति ।

भावार्थ--जो योगी तप आदि साधनों से योगबल को प्राप्त करके असंख्य प्राणियों के शरीरों में प्रविष्ट होकर अनेक नेत्र आदि अङ्गों से दर्शन आदि कार्य कर सकता है ।

[यस्त्वं साहस्रस्य राय ईशिषे, तस्मै वाजाय ते वयं स्वाहा विधेम]

अनेकेषां पदार्थानां धनानां च स्वामी भवति, सोऽस्माभिरवश्यं परिचरणीयः ॥ १७ । ७१ ॥

अनेक पदार्थों और धनों का स्वामी होता है, उसकी हमें अवश्य परिचर्या=सेवा करनी चाहिए ॥ १७ । ७१ ॥

भा० पदार्थः -- सहस्राक्ष !=असंख्यप्राणिशरीराणिप्रविश्यानेकनेत्रादिभिरङ्गैर्दर्शनादि-कार्याणि कर्तुं समर्थ ! । अग्ने=तप-आदि-साधनैर्योगबलं प्राप्तो योगिन् ! । साहस्रस्य=अनेकेषां पदार्थानाम् । रायः=धनस्य । ईशिषे=स्वामी भवसि ।

भाष्यसार--**योगी के कर्मों का फल**--अग्नि के समान योगविद्या से प्रकाशित योगी योग बल से प्राण और व्यान पर संयम करके असंख्य प्राणियों के शरीरों में प्रवेश करने के कारण असंख्य नेत्रों और असंख्य मूर्धा वाला हो जाता है । वह सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करने के सामर्थ्य वाला होने के कारण सब धनों का स्वामी बन जाता है ॥ १७ । ७१ ॥

कुत्सः । **अग्निः**=विद्वान् । निचृदार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्विद्वान् कीदृशः स्यादित्याह ॥

फिर विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

सुपर्णोऽसि गुरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश ऽ उद्दृꣳह ॥ ७२ ॥

पदार्थः—(**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि=पूर्णानि शुभलक्षणानि यस्य सः (**असि**) (**गरुत्मान्**) गुर्वात्मा (**पृष्ठे**) उपरि (**पृथिव्याः**) (**सीद**) (**भासा**) प्रकाशेन (**अन्तरिक्षम्**) आकाशम् (**आ**) समन्तात् (**पृण**) सुखय (**ज्योतिषा**) न्यायप्रकाशेन (**दिवम्**) प्रकाशमयम् (**उत्**) ऊर्ध्वम् (**स्तभान**) (**तेजसा**) तीक्ष्णीकरणेन (**दिशः**) (**उत्**) (**दृंह**) उद्वर्धय ॥ ७२ ॥

अन्वयः—हे विद्वान् योगिंस्त्वं भासा सुपर्णो गरुत्मानसि यथा सवितान्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तते तथा पृथिव्याः पृष्ठे सीद । वायुरिव प्रजा आपृण, सविता ज्योतिषा दिवमन्तरिक्षमिव राज्यमुत्तभान, अग्निस्तेजसा दिश इव प्रजा उद्दृंह ॥ ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वान् योगिन् ! **त्वं भासा** प्रकाशेन **सुपर्णः** शोभनानि पर्णानि=पूर्णानि शुभलक्षणानि यस्य सः **गरुत्मान्** गुर्वात्मा **असि** ।

भाषार्थ—हे विद्वान् योगी ! तू—(भासा) प्रकाश से (सुपर्णः) उत्तम पूर्ण शुभ लक्षणों वाला, (गरुत्मान्) गुरु-आत्मा=महात्मा (असि) है ।

यथा सवितान्तरिक्षस्य मध्ये वर्त्तते तथा पृथिव्याः पृष्ठे उपरि **सीद** ।

जैसे सूर्य आकाश के मध्य में वर्तमान है वैसे (पृथिव्याः) पृथिवी के (पृष्ठे) ऊपर (सीद) विराजमान हो ।

वायुरिव प्रजा आपृण समन्तात् सुखय ।

वायु के समान प्रजा को (अपृण) सब ओर से सुखी कर ।

सविता ज्योतिषा न्यायप्रकाशेन **दिवं** प्रकाशमयम् **अन्तरिक्षम्** आकाशम् **इव राज्यमुत्तभान** ।

सूर्य के समान (ज्योतिषा) न्याय के प्रकाश से (दिवम्) प्रकाशमय (अन्तरिक्षम्) आकाश के तुल्य राज्य का (उत्तभान) उत्थान कर ।

अग्निस्तेजसा तीक्ष्णीकरणेन **दिश इव प्रजा उद्दृंह** उद्वर्धय ॥ १७ । ७२ ॥

अग्नि के समान (तेजसा) तेज से (दिशः) दिशाओं के तुल्य प्रजा को (उद्दृंह) बढ़ा ॥

[हे विद्वान् योगिंस्त्वं भासा सुपर्णो गरुत्मानसि···]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यदा मनुष्यो रागद्वेषरहितः परोपकारीश्वर इव प्राणिभिः सह वर्तेत, तदा सिद्धिं लभेत ॥ १७।७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जब मनुष्य रागद्वेष से रहित, परोपकारी ईश्वर के समान प्राणियों के साथ वर्ताव करता है तब सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ १७।७२ ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् मनुष्य का कर्त्तव्य**—विद्या और शुभ लक्षणों से प्रकाशमान महान् आत्मा वाला विद्वान् पृथिवी पर पृथिवीस्थ मनुष्यों से ऊपर रहता हुआ, सब प्राणियों को वायु के

समान सुख दाता, सूर्य के समान विद्या-प्रकाश से प्रकाशित करने वाला और अग्नि के समान स्वकीय तेज से सबकी उन्नति किया करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् मनुष्य वायु, सूर्य और अग्नि के समान सबको सुख दिया करे ॥ १७ । ७२ ॥

कुत्सः । **अग्निः**=**विद्वान् (योगी)**। आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्विद्वांसः कीदृशाः स्युरित्याह ॥

फिर विद्वान् गुणी जन कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया ।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ७३ ॥

पदार्थः—(**आजुह्वानः**) सत्कारेणाहूतः (**सुप्रतीकः**) प्राप्तशुभगुणः (**पुरस्तात्**) प्रथमतः (**अग्ने**) योगाभ्यासेन प्रकाशितात्मन् (**स्वम्**) स्वकीयम् (**योनिम्**) परमात्माख्यं गृहम् (**आ**) (**सीद**) समन्तात् स्थिरो भव (**साधुया**) श्रेष्ठैः कर्मभिः (**अस्मिन्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अधि**) उपरिभावे (**उत्तरस्मिन्**) (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) दिव्यात्मानो योगिनः (**यजमानः**) योगप्रद आचार्यः (**च**) (**सीदत**) ॥ १७ । ७३ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! पुरस्तादाजुह्वानः सुप्रतीको यजमानस्त्वं साधुयास्मिन् सधस्थे स्वं योनिमासीद । हे विश्वे देवाः ! यूयं साधुयोत्तरस्मिन् सधस्थे चाधि सीदत ॥ ७३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने !** योगाभ्यासेन प्रकाशितात्मन् ! **पुरस्तात्** प्रथमतः **आजुह्वानः** सत्कारेणाहूतः **सुप्रतीकः** प्राप्तशुभगुणः **यजमानः** योगप्रद आचार्यः **त्वं साधुया** श्रेष्ठैः कर्मभिः **अस्मिन् सधस्थे** सहस्थाने **स्वं** स्वकीयं **योनिं** परमात्माख्यं गृहम् **आसीद** समन्तात् स्थिरो भव ।

हे विश्वे सर्वे **देवाः** ! दिव्यात्मनो योगिनः ! **यूयं साधुया** श्रेष्ठैः कर्मभिः **उत्तरस्मिन् सधस्थे** सहस्थाने **चाधि+सीदत** ॥ १७ । ७३ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) योगाभ्यास से प्रकाशित आत्मा वाले योगी ! (पुरस्तात्) प्रथम से (आजुह्वानः) सत्कार पूर्वक निमन्त्रित, (सुप्रतीकः) शुभ गुणों को प्राप्त, (यजमानः) योग की शिक्षा देने वाला आचार्य तू—(साधुया) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मिन्) इस (सधस्थे) लोक में (स्वम्) अपने (योनिम्) परमात्मा नामक घर में (आसीद) सब ओर से स्थिर हो।

हे (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा योगी लोगो ! तुम—(साधुया) श्रेष्ठ कर्मों से (उत्तरस्मिन्) पर (सधस्थे) लोक में (अधि+सीदत) ऊँची स्थिति में रहो ॥ १७ । ७३ ॥

[**हे अग्ने ! ··· त्वं साधुयाऽस्मिन् सधस्थे ··· आसीद**]

भावार्थः—ये साधूनि कर्माणि कृत्वा कृतयोगाभ्यासस्य विदुषः सङ्गप्रीतिभ्यां परस्परं संवादं कुर्वन्ति ते—

भावार्थ—जो साधु=श्रेष्ठ कर्म करके योगाभ्यासी विद्वान् के सङ्ग और प्रीति से परस्पर संवाद करते हैं वे—

[उत्तरस्मिन् सधस्थे चाधिसीदत]

सर्वाधिष्ठानमीशं प्राप्य सिद्धा जायन्ते ॥ ७३ ॥

सर्वाधार ईश्वर को प्राप्त करके सिद्ध बनते हैं ॥ १७ । ७३ ॥

भा० पदार्थः—साधुया=साधूनि कर्माणि कृत्वा ।

भाष्यसार—**विद्वान् योगी का कर्त्तव्य**—योग विद्या से और शुभगुणों से प्रकाशमान विद्वान् सत्कारपूर्वक बुलाने पर योग की शिक्षा दिया करे । और स्वयं शरीर धारण करते हुए और श्रेष्ठ कर्म करते हुए परमात्मा में स्थिर रहे । और श्रेष्ठ कर्मों से उन्नति करते हुए उत्तरोत्तर ऊँची स्थिति को प्राप्त करने का प्रयत्न किया करे । क्योंकि दूसरे मनुष्य अपने से उन्नत से शिक्षा ग्रहण करते हैं ॥ १७ । ७३ ॥

कण्वः । **सविता**=ईश्वरः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ क ईश्वरं प्राप्तुं शक्नोतीत्याह ॥

अब कौन ईश्वर को पा सकता है, यह उपदेश किया है ॥

ताᳬं सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् ।
यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाᳬं सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ॥ ७४ ॥

पदार्थः—(**ताम्**) वक्ष्यमाणाम् (**सवितुः**) योगैश्वर्य्यसंप्रदस्येश्वरस्य (**वरेण्यस्य**) वरितुमर्हस्य (**चित्राम्**) अद्भुतविषयाम् (**आ**) (**अहम्**) (**वृणे**) स्वीकुर्वे (**सुमतिम्**) शोभनां यथाविषयां प्रज्ञाम् (**विश्वजन्याम्**) या विश्वमखिलं जगज्जनयति=प्रकटयति ताम् (**याम्**) (**अस्य**) (**कण्वः**) मेधावी (**अदुहत्**) परिपूरयति (**प्रपीनाम्**) प्रवृद्धाम् (**सहस्रधाराम्**) सहस्रमसंख्यानर्थान् धरति तां सर्वज्ञानप्रदाम् (**पयसा**) अन्नादिना (**महीम्**) महतीम् (**गाम्**) वाचम् । **गौरिति वाङ्ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥ ७४ ॥**

प्रमाणार्थ—(**गाम्**) वाचम् । 'गौ' यह पद निघं० १ । ११ में वाणी-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—यथा कण्वोऽस्य वरेण्यस्य सवितुरीश्वरस्य यां चित्रां विश्वजन्यां प्रपीनां सहस्रधारां सुमतिं पयसा महीं गां चादुहत् तथा तामहमावृणे ॥ ७४ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा कण्वः** मेधावी **अस्य वरेण्यस्य** वरितुमर्हस्य **सवितुः**=**ईश्वरस्य** योगैश्वर्य्यसंप्रदस्येश्वरस्य **यां चित्राम्** अद्भुत-विषयां **विश्वजन्यां** या विश्वमखिलं जगज्जनयति=प्रकटयति तां **प्रपीनां** प्रवृद्धां **सहस्रधारां** सहस्रमसंख्यानर्थान् धरति तां सर्वज्ञानप्रदां **सुमतिं** शोभनां यथाविषयां प्रज्ञां **पयसा** अन्नादिना **महीं** महतीं **गां** वाचं **चाऽदुहत्** परिपूरयति, **तथा तां** वक्ष्य-माणाम् **अहमावृणे** स्वीकुर्वे ॥ १७ । ७४ ॥

भाषार्थ—जैसे-(कण्वः) मेधावी पुरुष—इस (वरेण्यस्य) वरण करने योग्य, (सवितुः) योग-ऐश्वर्य के प्रदाता ईश्वर की जिस (चित्राम्) अद्भुत, (विश्वजन्याम्) अखिल जगत् को प्रकट करने वाली, (प्रपीनाम्) बढ़ी हुई, (सहस्रधाराम्) सहस्र=असंख्य अर्थों को धारण करने वाली एवं सब ज्ञान को प्रदान करने वाली (सुमतिम्) उत्तम प्रज्ञा को (पयसा) अन्न आदि से; और (महीम्) महान् (गाम्) वेदवाणी को (अदुहत्) दुहता है—वैसे (ताम्) उसे (अहम्) मैं (आवृणे) स्वीकार करता हूँ ॥ १७ । ७४ ॥

[यथा कण्वोऽस्य ... सवितुः=ईश्वरस्य ... गां चादुहत्, तथा तामहमावृणे]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा मेधावी जगदीश्वरस्य विद्यां प्राप्यैधते, तथैवैतां लब्ध्वाऽन्येनापि विद्यायोगवृद्धचै भवितव्यम् ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे मेधावी पुरुष जगदीश्वर की विद्या को प्राप्त करके बढ़ता है वैसे ही इसे प्राप्त करके अन्य भी विद्या और योग की वृद्धि के लिए प्रयत्न करें ॥ १७ । ७४ ॥

भा० पदार्थः—सवितुः=जगदीश्वरस्य । गाम्=विद्याम् । अदुहत्=एधते ।

भाष्यसार—१. **कौन ईश्वर को प्राप्त करने का अधिकारी है ?**—जो मेधावी मनुष्य सर्वोत्कृष्ट, सब के उत्पादक परमेश्वर की, संसार के समस्त पदार्थों की विद्या को बताने से अद्भुत, समस्त ज्ञान को प्राप्त कराने वाली श्रेष्ठ बुद्धि को ज्ञानामृत से बढ़ाने वाली वेद-विद्या को प्राप्त कर लेता है, वह ईश्वर को जानने तथा प्राप्त करने में समर्थ होता है, अन्य नहीं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । वेद के विद्वान् के समान दूसरे भी वेद-विद्या को प्राप्त करके उन्नति किया करें ॥ १७ । ७४ ॥

गृत्सः । **अग्निः=योगी** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है, यह फिर उपदेश किया है ॥

वि॒धेम॑ ते पर॒मे जन्म॑न्नग्ने वि॒धेम॒ स्तोमै॑र॒वरे॑ स॒धस्थे॑ ।
यस्मा॒द्योने॑रु॒दारि॑था॒ यजे॒ तं प्र त्वे ह॒वीᳬषि॑ जुहु॒रे समि॑द्धे ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(**विधेम**) परिचरेम (**ते**) तव (**परमे**) सर्वोत्कृष्टे योगसंस्कारजे (**जन्मन्**) जन्मनि । अत्र सुपां सुलुगिति ङेर्लुक् । (**अग्ने**) योगसंस्कारेण दुष्टकर्मदाहक (**विधेम**) सेवेमहि (**स्तोमैः**) स्तुतिभिः (**अवरे**) अर्वाचीने (**सधस्थे**) सहस्थाने (**यस्मात्**) (**योनेः**) स्थानात् (**उदारिथ**) उत्कृष्टैः साधनैः प्राप्नुहि । अत्रान्येषामपीति दीर्घः । (**यजे**) संगच्छे (**तम्**) (**प्र**) (**त्वे**) त्वयि (**हवींषि**) होतव्यानि (**जुहुरे**) जुह्वति (**समिद्धे**) सम्यक् प्रदीप्ते ॥ १७ । ७५ ॥

प्रमाणार्थ—(**जन्मन्**) यहाँ 'सुपां सुलुक्' (७ । १ । ३९) से 'ङि' विभक्ति का लुक् है । (उदारिथ) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे अग्ने योगिन् ! ते तव परमे जन्मन् त्वे वर्त्तमानेऽवरे सधस्थे वर्त्तमाना वयं स्तोमैर्विधेम त्वमस्मान् यस्माद्योनेरुदारिथ तं योनिमहं प्रयजे यथा होतारः समिद्धे अग्नौ हवींषि जुहुरे तथा योगाग्नौ दुःखसमूहस्य होमं विधेम ॥ १७ । ७५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने !=योगिन् ! योगसंस्कारेण दुष्टकर्मदाहक ! **ते=तव परमे** सर्वोत्कृष्टे योगसंस्कारजे **जन्मन्** जन्मनि **त्वे** त्वयि **वर्त्तमाने अवरे** अर्वाचीने **सधस्थे** सहस्थाने **वर्त्तमाना वयं स्तोमैः** स्तुतिभिः **विधेम** परिचरेम ।

भाषार्थ—हे (अग्ने) योग-संस्कार से दुष्ट कर्मों के दाहक योगी ! (ते) तेरे (परमे) योग-संस्कार से उत्पन्न सबसे उत्कृष्ट (जन्मन्) जन्म में (त्वे) तेरे विद्यमान होने पर—(अवरे) नवीन (सधस्थे) लोक में वर्त्तमान हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (विधेम) सेवा करें ।

यस्माद्योनेः स्थानाद् **उदारिथ** उत्कृष्टैः साधनैः प्राप्नुहि. **तं योनिमहं प्रयजे** सङ्गच्छे ।

(यस्मात्) जिस (योनेः) स्थान से (उदारिथ) उत्कृष्ट साधनों सहित तू प्राप्त होता है उस स्थान का मैं (प्रयजे) संग करता हूँ ।

यथा होतारः समिद्धे सम्यक् प्रदीप्ते **अग्नौ हवींषि** होतव्यानि **जुहुरे** जुह्वति, **तथा योगाग्नौ दुःखसमूहस्य होमं विधेम** सेवेमहि ॥ १७ । ७५ ॥

जैसे होता लोग—(समिद्धे) प्रदीप्त अग्नि में (हवींषि) होम के योग्य पदार्थों का (जुहुरे) होम करते हैं वैसे योग-अग्नि में दुःखों का (विधेम) होम करें ॥ १७ । ७५ ॥

[हे अग्ने !=योगिन् ! ते=तव परमे जन्मन्]

भावार्थः—इह यस्य योगसंस्कारयुक्तस्य जीवस्य पवित्रोपचितं जन्म जायते, स संस्कारबलात् योगजिज्ञासुरेव भवति ।

भावार्थ—इस लोक में जिस योग-संस्कार से युक्त जीव का पवित्रता से युक्त जन्म होता है वह संस्कार-बल से योग-जिज्ञासु ही होता है ।

[वयं स्तोमैर्विधेम,""यथा होतारः समिद्धेऽग्नौ हवींषि जुहुरे तथा योगाग्नौ दुःखसमूहस्य होमं विधेम]

ये तं सेवन्ते तेऽपि योगजिज्ञासवो भवन्ति । सर्व एतेऽग्निरिन्धनानीव सर्वामशुद्धिं योगेन दहन्ति ॥

जो उसकी सेवा करते हैं वे भी योग जिज्ञासु होते हैं । ये सब जैसे अग्नि इन्धन को जलाती है, वैसे सब अशुद्धि को योग से दहन करते हैं ॥ ७५॥

भा० पदार्थः—अग्ने=योगसंस्कारयुक्त ! । हवींषि=इन्धनानि ।

भाष्यसार—योगी की परमावस्था का वर्णन—जब योगी अत्यन्त पुरुषार्थ तथा तपस्या से कामों की वासनाओं को भी दग्ध कर देता है, तब उसके क्लेश उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे प्रदीप्त अग्नि में हवनीय पदार्थों के डालने से सूक्ष्म से सूक्ष्म रोगों के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं । ऐसा योगी उस परम पिता परमेश्वर की गोद में स्थिर हो जाता है । तब संसार के सब मनुष्य उस योगी की श्रद्धा से सेवादि करते हैं ॥ १७ । ७५ ॥ ●

वसिष्ठः । **अग्निः=योगी** । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है, यह फिर उपदेश किया है ॥

प्रेद्धोऽ अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वाᳪं शश्वन्तऽ उपयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(**प्रेद्धः**) प्रकृष्टतया प्रदीप्तः (**अग्ने**) अग्निरिव दुःखदाहक योगिन् (**दीदिहि**) कामयस्व (**पुरः**) प्रथमम् (**नः**) अस्मान् (**अजस्रया**) अनुपक्षीणया (**सूर्म्या**) ऐश्वर्येण (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**त्वाम्**) (**शश्वन्तः**) निरन्तरं वर्त्तमानाः (**उप, यन्ति**) प्राप्नुवन्तु (**वाजाः**) विज्ञानवन्तो जनाः ॥७६॥

अन्वयः—हे यविष्ठाग्ने ! त्वं पुरः प्रेद्धः सन्नजस्रया सूर्म्या नोऽस्मान् दीदिहि शश्वन्तो वाजास्त्वामुपयन्ति ॥ ७६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यविष्ठ** अतिशयेन युवन् **अग्ने** ! अग्निरिव दुःखदाहक योगिन् ! त्वं **पुरः** प्रथमं **प्रेद्धः** प्रकृष्टतया प्रदीप्तः **सन्नजस्रया**

भाषार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक, (अग्ने) अग्नि के समान दुःखों के दाहक योगी ! तू—(पुरः) पहले (प्रेद्धः) प्रदीप्त होकर (अजस्रया)

अनुपक्षीणया **सूर्म्या** ऐश्वर्येण **नो=ऽस्मान् दीदिहि** कामयस्व ।

शश्वन्तः निरन्तरं वर्त्तमानाः **वाजाः** विज्ञानवन्तो जनाः **त्वामुपयन्ति** प्राप्नुवन्तु ।। १७ । ७६ ।।

अक्षय (सूर्म्या) ऐश्वर्य से (नः) हमारी (दीदिहि) कामना कर । और—

(शश्वन्तः) निरन्तर रहने वाले (वाजाः) विज्ञानवान् लोग (त्वा) तुझे (उपयन्ति) प्राप्त हों ।। १७ । ७६ ।।

[हे···अग्ने ! त्वं···प्रेद्धः सन्···नोऽस्मान् दीदिहि]

भावार्थः—यदा मनुष्याः शुद्धात्मानो भूत्वा ऽन्यानुपकुर्वन्ति, तदा तेऽपि सर्वत्रोपकृता भवन्ति ।। १७ । ७६ ।।

भावार्थ—जब मनुष्य शुद्ध आत्मा होकर दूसरों का उपकार करते हैं तब वे भी सर्वत्र उपकार को प्राप्त होते हैं ।। १७ । ७६ ।।

भा० पदार्थः—प्रेद्धः=शुद्धात्मा । दीदिहि=उपकुरु ।।

भाष्यसार—**योगी ईश्वर को कब प्राप्त करता है ?**—अग्नि के समान योग विद्या से योगी जब समस्त क्लेशों का दहन कर लेता है, तब योगी शुद्धात्मा होकर अत्यन्त प्रदीप्त हो जाता है । वह अणिमादि सिद्धियों के द्वारा अक्षय ऐश्वर्य को प्राप्त करके, निरन्तर दूसरे जिज्ञासुओं को भी योग की विद्या सिखाता रहता है, ऐसा परोपकार-रत पवित्रात्मा परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।। १७।७६।। ●

परमेष्ठी । **अग्निः=विद्वान्** । आर्षी गायत्री । षड्जः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है, यह फिर उपदेश किया है ।।

अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा त ऽ ओहैः ।। ७७ ।।

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् (**तम्**) पूर्वमन्त्रोक्तम् (**अद्य**) (**अश्वम्**) तुरङ्गम् (**न**) इव (**स्तोमैः**) स्तुतिभिः (**क्रतुम्**) प्रज्ञानम् (**न**) इव (**भद्रम्**) भजनीयं कल्याणकरम् (**हृदिस्पृशम्**) यो हृदये स्पृशति तम् (**ऋध्याम**) वर्धेम । **अत्रान्येषामिति दीर्घः** (**ते**) तव (**ओहैः**) रक्षणादिभिः ।। ७७ ।।

प्रमाणार्थ—(**ऋध्याम**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! विद्युत्सदृशपराक्रमिन्नश्वं न क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशं तं त्वां स्तोमैरद्य प्राप्य ते तवौहैर्वयं सततमृध्याम ।। ७७ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=विद्युत्सदृशपराक्रमिन्** विद्वन् ! **अश्वं** तुरङ्गं **न** इव, **क्रतुं** प्रज्ञानं **न** इव, **भद्रं** भजनीयं कल्याणकरं, **हृदिस्पृशं** यो हृदये स्पृशति तं तं पूर्वमन्त्रोक्तं **त्वां स्तोमैः** स्तुतिभिः **अद्य प्राप्य ते=तवौहैः** रक्षणादिभिः **वयं सततमृध्याम** वर्धेम ।। १७ । ७७ ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्युत् के समान पराक्रमी विद्वान् ! (अश्वम्) घोड़े के (न) समान, (क्रतुम्) प्रकृष्ट ज्ञान के (न) समान, (भद्रम्) सेवा करने योग्य एवं कल्याणकारी, (हृदिस्पृशम्) हृदय स्पर्श करने वाले (तम्) पूर्व मन्त्र में कथित तुझको—(स्तोमैः) स्तुतियों से आज प्राप्त करके (ते) तेरे (ओहैः) रक्षण आदि से हम सदा (ऋध्याम) वृद्धि को प्राप्त हों ।। १७ । ७७ ।।

[हे अग्ने=विद्युत्सदृशपराक्रमिन् ! अश्वं न, क्रतुं न भद्रं ··· ते=तव ओहैर्वयं सततमृध्याम]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा शरीरस्थेन विद्युदादिना वृद्धिवेगौ प्रजासुखानि च वर्धेरँस्तथा विद्वच्छिक्षारक्षादिभिर्मनुष्यादयो वर्द्धन्ते ॥ १७ । ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे—शरीर में विद्यमान विद्युत् आदि से वृद्धि, वेग और प्रज्ञा-सुख बढ़ते हैं वैसे—विद्वानों की शिक्षा तथा रक्षा आदि से मनुष्य आदि वृद्धि=उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ १७ । ७७ ॥

भा० पदार्थः—अश्वम्=वृद्धिं वेगं च । क्रतुम्=प्रज्ञाम् । भद्रम्=सुखम् । ओहैः=विद्वच्छिक्षारक्षणादिभिः ॥

भाष्यसार—१. विद्वान् के कर्त्तव्य—विद्युत् के समान पराक्रम-युक्त विद्वान् मार्ग को व्याप्त करने वाले घोड़े के समान अपने उत्तम ज्ञान से सेवा करने की भद्र-भावना के द्वारा दूसरों को शिक्षित करके बढ़ाया करे । वह ज्ञान दूसरों के हृदय-तल को छूने वाला हो, क्योंकि विद्वान् की शिक्षाओं से सबकी उन्नति होती है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे शरीरस्थ अग्नि से मनुष्यों की उन्नति है, वैसे ही विद्वान् की शिक्षाओं से ॥ १७ । ७७ ॥

वसिष्ठः । **विश्वकर्मा**=जगदीश्वरः । विराडतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है, यह फिर उपदेश किया है ॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा ऽ इहागमन्वीतिहोत्रा ऽ ऋतावृधः ।
पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यꣳ हविः ॥ ७८ ॥

पदार्थः—(**चित्तिम्**) चिन्वन्ति यया ताम् (**जुहोमि**) गृह्णामि (**मनसा**) विज्ञानेन (**घृतेन**) आज्येन (**यथा**) (**देवाः**) कामयमाना विद्वांसः (**इह**) (**आगमन्**) आगच्छन्ति (**वीतिहोत्राः**) वीतिः=सर्वतः प्रकाशितो होत्रा=यज्ञो येषां ते (**ऋतावृधः**) ये ऋतेन=सत्येन वर्धन्ते । **अत्रान्येषामपीति पूर्वपदस्य दीर्घः ।** (**पत्ये**) पालकाय (**विश्वस्य**) समग्रस्य=जगतः (**भूमनः**) बहुरूपस्य (**जुहोमि**) ददामि (**विश्वकर्मणे**) विश्वं कर्म=क्रियमाणं कृतं येन तस्मै (**विश्वाहा**) सर्वाणि दिनानि (**अदाभ्यम्**) अहिंसनीयम् (**हविः**) होतव्यं=शुद्धं सुखकरं द्रव्यम् ॥ ७८ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋतावृधः**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से पूर्वपद को दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं मनसा घृतेन चित्तिं जुहोमि यथेह वीतिहोत्रा ऋतावृधो देवा भूमनो विश्वस्य विश्वकर्मणे पत्ये जगदीश्वरायादाभ्यं हविर्विश्वाहा होतुमागमन्नहं हविर्जुहोमि तथा यूयमप्याचरत ॥ ७८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं **मनसा** विज्ञानेन **घृतेन** आज्येन **चित्तिं** चिन्वन्ति यया तां **जुहोमि** गृह्णामि ।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—(मनसा) विज्ञान से तथा (घृतेन) घृत से (चित्तिम्) काष्ठों में चयन की हुई अग्नि को (जुहोमि) ग्रहण करता हूँ ।

यथेह वीतिहोत्राः वीतिः=सर्वतः प्रकाशितो होत्रा=यज्ञो येषां ते **ऋतावृधः ये** ऋतेन=सत्येन वर्धन्ते **देवाः** कामयमाना विद्वांसः **भूमनः** बहुरूपस्य **विश्वस्य** समग्रस्य जगतः **विश्वकर्मणे** विश्वं कर्म=क्रियमाणं कृतं येन तस्मै **पत्ये=जगदीश्वराय** पालकाय **अदाभ्यम्** अहिंसनीयं **हविः** होतव्यं शुद्धं सुखकरं द्रव्यं **विश्वाहा** सर्वाणि दिनानि **होतुमागमन्** आगच्छन्ति, **अहं हविः** होतव्यं शुद्धं सुखकरं द्रव्यं **जुहोमि** ददामि, **तथा यूयमप्याचरत** ॥

(यथा) जैसे (इह) यहाँ (वीतिहोत्राः) सब ओर से प्रकाशित यज्ञ वाले, (ऋतावृधः) ऋत=सत्य से बढ़ने वाले, (देवाः) कामना करने योग्य विद्वान् लोग—(भूमनः) बहुत रूप वाले (विश्वस्य) सकल जगत् के—(विश्वकर्मणे) सब क्रियमाण कर्मों को करने वाले (पत्ये) पालक जगदीश्वर के लिए—(अदाभ्यम्) अहिंसनीय (हविः) होम करने योग्य, शुद्ध, सुखकारी द्रव्य का (विश्वाहा) सब दिन होम करने के लिए (आगमन्) आते हैं; और—मैं (हविः) होम करने योग्य, शुद्ध, सुखकारी द्रव्य का (जुहोमि) दान करता हूँ—वैसे तुम भी करो ॥ १७ । ७८ ॥

[यथाऽहं मनसा घृतेन चित्तिं जुहोमि]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा काष्ठचितोऽग्निराज्येन वर्द्धते तथा विज्ञानेनाहं वर्द्धेयम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे काष्ठों में चयन किया हुआ अग्नि घृत से बढ़ता है वैसे, विज्ञान से मैं बढ़ूँ=उन्नत होऊँ ।

[यथेह—ऋतावृधो देवा···विश्वस्य···पत्ये···हविः···होतुमागमन्]

यथेश्वरोपासका विद्वांसश्च जगतः कल्याणाय प्रयतन्ते तथाहमपि प्रयतेयम् ॥ १७ । ७८ ॥

जैसे ईश्वर के उपासक और विद्वान् लोग जगत् के कल्याण के लिए प्रयत्न करते हैं वैसे मैं भी प्रयत्न करूँ ॥ १७ । ७८ ॥

भा० पदार्थः—चित्तिम्=काष्ठचितमग्निम् । ऋतावृधः=ईश्वरोपासकाः ।

भाष्यसार—**१. परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन**—वह परमेश्वर भूमनाः=बहुत रूपों वाला है, देवाः=दिव्य स्वरूप तथा कामना करने योग्य, ऋतावृधः=सत्य से बढ़ाने वाला, और सब श्रेष्ठ कर्मों का पालक है । उसको यज्ञकर्त्ता विद्वान् मनुष्य अहिंसनीय हवि से प्रतिदिन होम करके प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे समिधाओं से तथा घृत से अग्नि बढ़ती है, वैसे ही विज्ञान से सब मनुष्य बढ़ें ॥ १७ । ७८ ॥

सप्तऋषयः । **अग्निः**=**विद्वान्** । आर्षी जगती । निषादः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

ईश्वर को कौन प्राप्त कर सकता है, यह फिर उपदेश किया है ॥

सप्त तेऽ अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्तऽ ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि ।
सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥ ७९ ॥

पदार्थः—(सप्त) सप्त संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि (ते) तव (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् (समिधः) प्रदीपकाः (सप्त, जिह्वाः) काल्यादयः सप्त संख्याका ज्वालाः (सप्त, ऋषयः) प्राणादयः पञ्च

देवदत्तधनंजयौ च (**सप्त, धाम**) जन्मनामस्थानधर्मार्थकाममोक्षाख्यानि धामानि (**प्रियाणि**) (**सप्त, होत्राः**) सप्त ऋत्विजः (**सप्तधा**) सप्तभिः प्रकारैः (**त्वा**) त्वाम् (**यजन्ति**) संगच्छन्ते (**सप्त, योनीः**) चितीः (**आ**) (**पृणस्व**) सुखी भव (**घृतेन**) आज्येन (**स्वाहा**) ।। १७ । ७९ ।।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यथाग्नेः सप्त समिधः सप्त जिह्वाः सप्तर्षयः सप्त प्रियाणि धाम सप्त होत्राश्च सन्ति तथा ते तव सन्तु, यथा विद्वांसस्तमग्निं सप्तधा यजन्ति तथा त्वा यजन्तु, यथाऽयमग्निर्घृतेन स्वाहा सप्त योनीरापृणते तथा त्वमापृणस्व ।। १७ । ७९ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=विद्वान्** ! तेजस्विन् विद्वन् ! **यथाग्नेः सप्त** संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि **समिधः** प्रदीपकाः, **सप्त जिह्वाः** काल्यादयः सप्त संख्याका ज्वालाः **सप्तर्षयः** प्राणादयः पञ्च देवदत्तधनञ्जयौ च, **सप्त प्रियाणि धाम** जन्मनामस्थानधर्मार्थकाममोक्षाख्यानि धामानि **सप्त होत्राः** सप्त ऋत्विजः **च सन्ति, तथा ते=तव सन्तु** ।

यथा विद्वांसस्तमग्निं सप्तधा सप्तभिः प्रकारैः **यजन्ति** सङ्गच्छन्ते, **तथा त्वा** त्वां **यजन्तु** ।

यथाऽयमग्निर्घृतेन आज्येन **स्वाहा सप्त योनीः** चितीः **आपृणते तथा त्वमापृणस्व** सुखी भव ।। ७९ ।।

भाषार्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी विद्वान् ! जैसे—(अग्नेः) अग्नि के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (समिधः) प्रदीपक हैं, (सप्त) सात (जिह्वाः) काली, कराली आदि ज्वालाएँ हैं, (सप्तर्षयः) प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान तथा देवदत्त और धनञ्जय सात ऋषि हैं, (सप्त) सात (प्रियाणि) प्रिय (धाम) जन्म, नाम, स्थान, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष धाम हैं, (सप्त) सात (होत्राः) ऋत्विक् हैं; वैसे (ते) तेरे हों ।

जैसे विद्वान् उस अग्नि का (सप्तधा) सात प्रकार से (यजन्ति) संग करते हैं वैसे (त्वा) तेरा संग करें ।

जैसे यह अग्नि (घृतेन) घृत से, (स्वाहा) उत्तम वाणी (सप्त) सात (योनीः) चितियों को सुख देती है वैसे तू (आपृणस्व) सुखी हो ।।१७ । ७९।।

[हे अग्ने ! =विद्वन् ! यथाग्नेः सप्त समिधः······सन्ति, तथा ते=तव सन्तु]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ।।

[यथाऽयमग्निर्घृतेन······आपृणते तथा त्वमापृणस्व]

यथेन्धनैरग्निर्वर्धते तथा विद्यादिशुभगुणैः सर्वे मनुष्या वर्धन्ताम् ।

यथा विद्वांसोऽग्नौ घृतादिकं हुत्वा जगदुपकुर्वन्ति तथा वयमपि कुर्याम ।। १७ । ७९ ।।

जैसे—इन्धन से अग्नि बढ़ता है वैसे विद्या आदि शुभ गुणों से सब मनुष्य वृद्धि को प्राप्त हों ।

जैसे—विद्वान् लोग अग्नि में घृत आदि पदार्थों का होम करके जगत् का उपकार करते हैं, वैसे हम भी करें ।। १७ । ७९ ।।

भा० पदार्थः—समिधः=इन्धनानि/विद्यादिशुभगुणाः ।। आपृणते=जगदुपकरोति ।।

भाष्यसार—**१. विद्वानों का परम कर्त्तव्य**—विद्वान् अग्नि के समान होता है । जैसे अग्नि की गायत्री आदि छन्द समिधाएँ हैं, काली आदि सात जिह्वाएँ हैं, वैसे ही प्राणापानादि सात ऋषि इस शरीर के होता हैं, 'विद्वान् इनके द्वारा आत्माग्नि को घृत के समान उत्तम वाणी आदि से बढ़ाया करें । और अग्नि के समान सबको विद्यादि से प्रकाशित किया करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे इन्धन घृतादि से अग्नि बढ़ता है, वैसे मनुष्य विद्यादि तथा परोपकार से उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥ १७ । ७६ ॥

सप्तऋषयः । **मरुतः**=मनुष्याः । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अथेश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

अब ईश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

शुक्रज्यो॑तिश्च चि॒त्रज्यो॑तिश्च स॒त्यज्यो॑तिश्च॒ ज्योति॑ष्माँश्च । शु॒क्रश्च॑ऽऋत॒पाश्चात्य॑ꣳहाः ॥ ८० ॥

पदार्थः—(**शुक्रज्योतिः**) शुक्रं=शुद्धं ज्योतिर्यस्य सः (**च**) (**चित्रज्योतिः**) चित्रमद्भुतं ज्योतिर्यस्य सः च (**च**) (**सत्यज्योतिः**) सत्यमविनाशि ज्योतिः=प्रकाशो यस्य सः (**च**) (**ज्योतिष्मान्**) बहूनि ज्योतींषि=प्रकाशा विद्यन्ते यस्य सः (**च**) (**शुक्रः**) शीघ्रकर्त्ता युद्धस्वरूपो वा (**च**) (**ऋतपाः**) य ऋतं=सत्यं पाति (**च**) (**अत्यंहाः**) अतिक्रान्तमंहो=दुष्कृतं येन सः ॥ ८० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्मांश्च शुक्रश्चात्यंहा ऋतपाश्चेश्वरोऽस्ति तथा यूयं भवत ॥ ८० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा शुक्रज्योतिः** शुक्रं=शुद्धं ज्योतिर्यस्य सः **च, चित्रज्योतिः** चित्रमद्भुतं ज्योतिर्यस्य सः **च, सत्यज्योतिः** सत्यमविनाशि ज्योतिः=प्रकाशो यस्य सः **च ज्योतिष्मान्** बहूनि ज्योतींषि=प्रकाशा विद्यन्ते यस्य सः **च शुक्रः** शीघ्रकर्त्ता शुद्धस्वरूपो वा **चात्यंहाः** अतिक्रान्तमंहो=दुष्कृतं येन सः **ऋतपाः** य ऋतं=सत्यं पाति **चेश्वरोऽस्ति, तथा यूयं भवत** ॥१७।८०॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(शुक्रज्योतिः) शुक्र=शुद्ध-ज्योति वाला, (च) और (चित्रज्योतिः) चित्र=अद्भुत ज्योति वाला, (च) और—(सत्यज्योतिः) सत्य=अविनाशी ज्योति=प्रकाश वाला, (च) और (ज्योतिष्मान्) नाना प्रकाश वाला, (च) और (शुक्रः) शीघ्रकारी या शुद्धस्वरूप, (च) और (अत्यंहाः) पाप से दूर, (च) और (ऋतपाः) ऋत=सत्य का रक्षक ईश्वर है; वैसे तुम होवो ॥ १७ । ८० ॥

[हे मनुष्याः ! यथा शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च, सत्यज्योतिश्च···ईश्वरोऽस्ति, तथा यूयं भवत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथेह विद्युत्सूर्यादीन् प्रभाकरान् शुद्धिकरान् पदार्थान् निर्मायेश्वरेण जगच्छोध्यते, तथैव—शुचिः सत्य-विद्योपदेशक्रियाभिर्मनुष्यादयो विद्वद्भिः शोधनीयाः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे यहाँ—विद्युत्, सूर्य आदि प्रकाशक, शुद्धिकारक पदार्थों को बनाकर ईश्वर ने जगत् को शुद्ध किया है, वैसे—शुचि=पवित्रता, सत्य, विद्या, उपदेश और क्रिया=आचरण से विद्वान् लोग मनुष्यों को शुद्ध करें ।

[अनेकचकारतात्पर्यमाह—]

अत्रानेकेषां चकाराणां पाठात् सर्वेषामुपरि प्रीत्यादयोऽपि विधेयाः ॥ १७ । ८० ॥

यहाँ अनेक चकारों के पाठ का तात्पर्य है कि सबके ऊपर प्रीति आदि भी करें ॥ १७ । ८० ॥

भा० पदार्थः—शुक्रज्योतिः=विद्युत् । चित्रज्योतिः=सूर्यः । सत्यज्योतिः=सत्योपदेशः ।

भाष्यसार—१. **मनुष्यों का परम पुरुषार्थ**—जिस प्रकार परमेश्वर शुद्ध, अद्भुत तथा

अविनाशी ज्योति वाला, सबका प्रकाशक, शीघ्रकारी, शुद्धस्वरूप, पापों का हनन करने वाला और सत्य की रक्षा करने वाला है, उसी प्रकार सब मनुष्यों को उसकी स्तुति करके उन्हीं गुणों को धारण करना चाहिए।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे परमेश्वर सूर्यादि को बनाकर संसार की शुद्धि करता है, वैसे ही सब मनुष्यों को सत्योपदेशादि से अपनी तथा दूसरों की शुद्धि करनी चाहिए ।। १७ । ८० ।।

सप्तऋषयः । **मरुतः**=मनुष्याः । आर्षी गायत्री । षड्जः ।।

पुनर्विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह ।।

फिर विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ।।

ई॒दृङ् चा॑न्या॒दृङ् च॑ स॒दृङ् च॒ प्रति॑सदृङ् च । मि॒तश्च॒ संमि॑तश्च॒ सभ॑राः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(**ईदृङ्**) अन्येन तुल्यः (**च**) (**अन्यादृङ्**) अन्येन समानः (**च**) (**सदृङ्**) समानं पश्यति स सदृङ् (**च**) (**प्रतिसदृङ्**) तं तं प्रति सदृशं पश्यति (**च**) (**मितः**) मानं प्राप्तः (**च**) (**सम्मितः**) सम्यक् परिमितः (**च**) (**सभराः**) समानं बिभ्रतीति सभराः ।। १७ । ८१ ।।

अन्वयः—ये पुरुषा ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च मितश्च संमितश्च सभराश्च वर्त्तन्ते ते व्यावहारिकीं कार्यसिद्धिं कर्त्तुं शक्नुवन्ति ।। १७ । ८१ ।।

सपदार्थान्वयः—**ये पुरुषा ईदृङ्** अन्येन तुल्यः **चान्यादृङ्** अन्येन समानः **च सदृङ्** समानं पश्यति स सदृङ् **च प्रतिसदृङ्** तं तं प्रति सदृशं पश्यति **च मितः** मानं प्राप्तः **च सम्मितः** सम्यक् परिमितः **च सभराः** समानं बिभ्रतीति सभराः **च वर्त्तन्ते, ते व्यावहारिकीं कार्यसिद्धिं कर्त्तुं शक्नुवन्ति** ।। १७ । ८१ ।।

भाषार्थ—जो पुरुष—(ईदृङ्) इसके तुल्य, (च) और (अन्यादृङ्) दूसरे के समान, (च) और (सदृङ्) समान देखने वाला, (च) और (प्रतिसदृङ्) उस उस के प्रति समान देखने वाला, (च) और (मितः) मान को प्राप्त हुआ, (च) और (सम्मितः) परिमित (च) और (सभराः) प्रत्येक का धारण-पोषण करने वाले हैं—वे व्यावहारिक कार्य-सिद्धि को कर सकते हैं ।। १७ । ८१ ।।

[ये पुरुषा ईदृङ्......सभराश्च वर्तन्ते]

भावार्थ—यो मनुष्य ईश्वरतुल्य उत्तमः, तदनुकरणं कृत्वा सत्यं धरत्यसत्यं त्यजति, स एव योग्योऽस्ति ।। १७ । ८१ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर के तुल्य उत्तम हैं उसका अनुकरण करके सत्य को धारण करता और असत्य को छोड़ता है वही योग्य है ।।१७।८१।।

भा० पदार्थः—ईदृङ्=ईश्वरतुल्य उत्तमः । सभराः=ये सत्यं धरन्त्यसत्यं त्यजन्ति ते ।।

भाष्यसार—**उत्तम मनुष्य का लक्षण**—जो मनुष्य ईश्वर के समान असत्यादि व्यवहारों को छोड़कर सत्यादि को धारण करता है, जो दूसरे विद्वानों के समान श्रेष्ठ आचरण वाला है, जो सबको, जो जो उसके सम्पर्क में आयें, समदृष्टि से देखता है, जो अपने सद्व्यवहार से सबसे समादर भाव को प्राप्त है, जो अपने परिमित परिवार के समान सब में बन्धुत्व की भावना से व्यवहार करता है और समानता से धारण-पोषण करता है, वह उत्तम मनुष्य है ।। १७ । ८१ ।।

सप्त ऋषयः । **मरुतो**=मनुष्याः । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनरीश्वरः कीदृशोऽस्तीत्याह ॥

फिर ईश्वर कैसा है, यह उपदेश किया है ॥

ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च । धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः ॥ ८२ ॥

पदार्थः—(**ऋतः**) सत्यज्ञानः (**च**) (**सत्यः**) सत्सु साधुः (**च**) (**ध्रुवः**) दृढनिश्चयः (**च**) (**धरुणः**)आधारः (**च**) (**धर्त्ता**) (च) (**विधर्त्ता**) (**च**) (**विधारयः**) यो विशेषेण धारयति सः ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च धर्त्ता च विधर्त्ता च विधारयः परमात्माऽस्ति तमेव सर्वं उपासीरन् ॥ ८२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! य ऋतः** सत्यज्ञानः **च, सत्यः** सत्सु साधुः **च ध्रुवः** दृढनिश्चयः **च, धरुणः** आधारः **च धर्त्ता च, विधर्त्ता च विधारयः=परमात्मा** यो विशेषेण धारयति सः **अस्ति; तमेव सर्वं उपासीरन्** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो-(ऋतः) सत्य ज्ञान वाला (च) और (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (च) और (ध्रुवः) दृढ़ निश्चय वाला (च) और (धरुणः) सबका आधार (च) और (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) और (विधर्त्ता) धारकों का धारक (च) और (विधारयः) सब व्यवहारों को धारण कराने वाला है; उसकी ही सब उपासना करें ॥

[य ऋतश्च सत्यश्च···विधारयः···अस्ति]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्योत्साहसत्सङ्ग-पुरुषार्थैः सत्यविज्ञाने धृत्वा सुशीलतां धरन्ति, त एव सुखिनो भवितुमन्याँश्च कर्त्तुं शक्नुवन्ति ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—विद्या, उत्साह, सत्संग और पुरुषार्थ से सत्य और विज्ञान को धारण करके सुशीलता को धारण करते हैं वे ही स्वयं सुखी हो सकते हैं तथा अन्यों को भी सुखी कर कर सकते हैं ॥ १७ । ८२ ॥

भा० पदार्थः—ऋतः=विज्ञानधर्त्ता । सत्यः=सत्यधर्ता । विधारयः=ये सुशीलतां धरन्ति ते ॥

भाष्यसार—ईश्वर का स्वरूप वर्णन—ऋतः=वह ईश्वर सत्य ज्ञान वाला है, सत्यः=वह अविनाशी सत् पदार्थों में वर्त्तमान रहता है, वह श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ है, उसके नियम शाश्वत हैं अतः वह ध्रुव कहलाता है, वह सब सूर्यादि लोकों का आधार है, वह स्वानन्त सामर्थ्य से सबको धारण किये हुए है, वह पृथिवी आदि के धारण करने वाले सूर्यादि का भी धारण करने वाला है और सब पदार्थों के विज्ञान को धारण करने वाला है ॥ १७ । ८२ ॥

सप्त ऋषयः । **मरुतः**=मनुष्याः । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ विद्वांसः कीदृशा भवेयुरित्युच्यते ॥

अब विद्वान् लोग कैसे हों, यह उपदेश किया है ॥

ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च । अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(ऋतजित्) य ऋतं=विज्ञानमुत्कर्षति सः (च) (सत्यजित्) सत्यं=कारणं धर्मं चोन्नयति (च) (सेनजित्) यः सेनां जयति सः (च) (सुषेणः) शोभना सेना यस्य सः (च) (अन्तिमित्रः) अन्तौ=समीपे मित्राः=सहायकारिणो यस्य सः (च) (दूरे अमित्रः) दूरे अमित्राः=शत्रवो यस्य सः (च) (गणः) गणनीयः ॥ ८३ ॥

अन्वयः—य ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनाजिच्च सुषेणश्चान्तिमित्रश्च दूरेऽमित्रश्च भवेत् स एव गणो गणनीयो जायते ॥ ८३ ॥

सपदार्थान्वयः—य ऋतजित् य ऋतं=विज्ञानमुत्कर्षति स **च सत्यजित्** सत्यं=कारणं धर्मं चोन्नयति **च सेनजित्** यः सेनां जयति सः **च सुषेणः** शोभना सेना यस्य सः **चान्तिमित्रः** अन्तौ=समीपे मित्राः=सहायकारिणो यस्य सः **च दूरे अमित्रः** दूरे अमित्राः=शत्रवो यस्य सः **च भवेत्, स एव गणः=गणनीयो जायते** ॥

भाषार्थ—जो (ऋतजित्) ऋत=विज्ञान को उन्नत करने वाला (च) और (सत्यजित्) सत्य=कारण और धर्म को उन्नत करने वाला (च) और (सेनजित्) सेना को जीतने वाला (च) और (सुषेणः) उत्तम सेना वाला (च) और (अन्तिमित्रः) मित्र=सहायकों को समीप रखने वाला, (च) और (दूरे अमित्रः) अमित्र=शत्रुओं से दूर रहने वाला हो वही (गणः) गणनीय=प्रशंसनीय होता है ॥ १७ । ८३ ॥

[य ऋतजितच्च, सत्यजिच्च''अन्तिमित्रश्च दूरेऽमित्रश्च भवेत्]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्यासत्यादीनि कर्माण्युन्नयेयुः, मित्रसेविनः शत्रुद्वेषिणश्च भवेयुः,

भावार्थ—जो मनुष्य विद्या और सत्य आदि कर्मों को उन्नत करते हैं और मित्रों की सेवा तथा शत्रुओं से द्वेष करने वाले हैं,

[स एव गणो=गणनीयो जायते]

त एव लोके प्रशंसनीयाः स्युः ॥

वे ही लोक में प्रशंसनीय होते हैं ॥

भा० पदार्थः—ऋतजित्=यो विद्याकर्मोन्नयति सः । सत्यजित्=यः सत्यकर्मोन्नयति सः । अन्तिमित्रः=मित्रसेवी । दूरेऽमित्रः=शत्रुद्वेषी । गणः=प्रशंसनीयः ॥

भाष्यसार—विद्वान् मनुष्यों के कर्त्तव्य—विद्वान् मनुष्य सब पदार्थों के सत्य विज्ञान की उन्नति, धर्म की उन्नति, शत्रुओं की सेना का मर्दन करने वाले वीर शूरवीरों की उन्नति, अपनी सेना की वृद्धि करते हुए अपने शत्रुओं से दूर और मित्रों के समीप रह कर प्रशंसनीय होकर सदा सुखी रहते हैं ॥ १७ । ८३ ॥

सप्तऋषयः । **मरुतः=विद्वांसो मनुष्याः** । निचृदार्षी जगती । निषादः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् लोग कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

ईदृक्षास ऽ एतादृक्षास ऽ ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास ऽ एतन ।
मितासश्च सम्मितासो नो ऽ अद्य सभरसो मरुतो यज्ञे ऽ अस्मिन् ॥ ८४ ॥

पदार्थः—(**ईदृक्षासः**) एतल्लक्षणसहिताः (**एतादृक्षासः**) एतैः पूर्वोक्तैस्सदृशाः (**उ**) वितर्के (**सु**) सुष्ठु (**नः**) अस्मान् (**सदृक्षासः**) पक्षपातं विहाय समानदृष्टयः (**प्रतिसदृक्षासः**) आप्तसदृशाः (**आ**) (**इतन**) समन्तात्प्राप्नुत (**मितासः**) परिमितविज्ञानाः (**च**) (**सम्मितासः**) तुलावत् सत्यविवेचकाः (**नः**) अस्मान् (**अद्य**) (**सभरसः**) स्वसमानपोषकाः (**मरुतः**) ऋत्विजो विद्वांसः (**यज्ञे**) संगन्तव्ये व्यवहारे (**अस्मिन्**) ॥ ८४ ॥

अन्वयः—हे मरुतो विद्वांसो य ईदृक्षास एतादृक्षासस्सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासो नोऽस्मान् स्वेतन उ मितासः सम्मितासश्चास्मिन् यज्ञे सभरसो भवताऽद्य नो रक्षत तान् वयमपि सततं सत्कुर्याम ॥ ८४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मरुतः**=**विद्वांस** ऋत्विजो विद्वांसः **य ईदृक्षासः** एतल्लक्षणसहिताः **एतादृक्षासः** एतैः पूर्वोक्तैस्सदृशाः **सदृक्षासः** पक्षपातं विहाय समानदृष्टयः **प्रतिसदृक्षासः** आप्तसदृशाः **नः**=**अस्मान् सु+आ+इतन** सुष्ठु समन्तात्प्राप्नुत, **उ** सवितर्क **मितासः** परिमितविज्ञानाः **सम्मितासः** तुलावत् सत्यविवेचकाः **चास्मिन् यज्ञे** सङ्गन्तव्ये व्यवहारे **सभरसः** स्वसमानपोषकाः **भवताऽद्य नः** अस्मान् **रक्षत, तान् वयमपि सततं सत्कुर्याम** ॥

भाषार्थ—हे (मरुतः) ऋत्विक् विद्वानो ! जो (ईदृक्षासः) इन लक्षणों से युक्त, (एतादृक्षासः) इन पूर्वोक्तों के सदृश, (सदृक्षासः) पक्षपात को छोड़ कर समान दृष्टि वाले, (आप्तसदृक्षासः) आप्त जनों के सदृश, (नः) हमें (सु+आ+इतन) उत्तम रीति से सब ओर से प्राप्त होते हो, और—(उ) विचार-पूर्वक (मितासः) परिमित विज्ञान वाले, (सम्मितासः) (च) और तुला के समान सत्य के विवेचक तुम—(अस्मिन्) इस (यज्ञे) संग के योग्य व्यवहार में (सभरसः) अपने समान पोषक बनो, (अद्य) आज (नः) हमारी रक्षा करो, आप का हम भी सदा सत्कार करें ॥ १७ । ८४ ॥

[हे **मरुतः**=विद्वांसः ! ··· **नोऽस्मान् स्वेतन,** ··· **अस्मिन् यज्ञे सभरसो भवत,**···**तान्**···**सततं सत्कुर्याम**]

भावार्थः—यदा धार्मिका विद्वांसः क्वापि मिलेयुः, यानुपागच्छेयुरध्यापयेयुः सुशिक्षेरँश्च तदेमे सर्वैः सत्कर्त्तव्याः ॥ १७ । ८४ ॥

भावार्थ—जब धार्मिक विद्वान् कहीं भी मिलें, जिनके पास जावें, पढ़ावें और सुशिक्षा करें तब इनका सब सत्कार करें ॥ १७ । ८४ ॥

भा० पदार्थः—मरुतः==धार्मिका विद्वांसः ।

भाष्यसार—**विद्वानों का सद्व्यवहार**—मरुतः=यथायोग्य संगमनीय व्यवहार करने वाले विद्वान् पक्षपातरहित होकर सबके साथ समता का व्यवहार किया करें । तुला की तरह सत्यासत्य के विवेचक विज्ञान-सम्पन्न आप्त पुरुषों का जैसा व्यवहार हो, वैसा बनाने का प्रयत्न किया करें । स्वाश्रित भृत्यादि का भरण-पोषण अपने समान ही करें ॥ १७ । ८४ ॥

सप्तऋषयः । चातुर्मास्या **मरुतः**=**गृहस्थाः** । स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्स विद्वान् कीदृशो भवेदित्याह ॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो, यह उपदेश किया है ॥

स्वतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च । क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥

पदार्थः—(**स्वतवान्**) यः स्वान्=तौति वर्द्धयति सः । अत्र तु धातोरौणादिक आनिः प्रत्ययः (**च**) (**प्रघासी**) बहवः प्रकृष्टा घासा=भोज्यानि विद्यन्ते यस्य सः (**च**) (**सान्तपनः**) सम्यक् शत्रून् तापयति

तस्यायम् (**च**) (**गृहमेधि**) प्रशस्तो गृहे मेधः=संगमोऽस्यास्तीति सः (**च**) (**क्रीडी**) अवश्यं क्रीडितुं शीलः (**च**) (**शाकी**) अवश्यं शक्तुं शीलः (**च**) (**उज्जेषी**) उत्कृष्टतया जेतुं शीलः ॥ १७ । ८५ ॥

प्रमाणार्थ—(**स्वतवान्**) यहाँ वृद्धि-अर्थक 'तु' धातु से औणादिक 'आनि' प्रत्यय है ॥

अन्वयः--यः स्वतवांश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी च भवेत् स उज्जेषी स्यात् ॥ १७ । ८५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः स्वतवान्** यः स्वान् तौति=वर्द्धयति स **च, प्रघासी** बहवः प्रकृष्टा घासा=भोज्यानि विद्यन्ते यस्य स **च, सान्तपनः** सम्यक् शत्रून् तापयति तस्यायं **च, गृहमेधी** प्रशस्तो गृहे मेधः=सङ्गमोऽस्यास्तीति स **च, क्रीडी** अवश्यं क्रीडितुं शीलः **च, शाकी** अवश्यं शक्तुं शीलः **च भवेत्, स उज्जेषी** उत्कृष्टतया जेतुं शीलः **स्यात्** ॥

भाषार्थ—जो (स्वतवान्) अपनों को बढ़ाने वाला (च) और (प्रघासी) बहुत उत्तम घास= भोज्य पदार्थों वाला (च) और (सान्तपनः) अच्छे प्रकार शत्रुओं को तपाने वाला (च) और (गृहमेधी) घर में उत्तम सङ्गम वाला (च) और (क्रीडी) खिलाड़ी (च) और (शाकी) सर्वथा समर्थ हो वह (उज्जेषी) उत्तम रीति से जीतने वाला हो ॥ ८५ ॥

[यः···प्रघासी···गृहमेधी···शाकी च भवेत् स उज्जेषी स्यात्]

भावार्थः—यो बहुबलान्नसामर्थ्यो गृहस्थो भवति, स सर्वत्र विजयमाप्नोति ॥ १७ । ८५ ॥

भावार्थ—जो बहुत बल, अन्न और सामर्थ्य वाला गृहस्थ है वह सर्वत्र विजय को प्राप्त करता है ॥ १७ । ८५ ॥

भा० पदार्थः—प्रघासी=बहु-अन्नसामर्थ्यः । गृहमेधी=गृहस्थः । शाकी=बहुबल-सामर्थ्यः ।

भाष्यसार—गृहस्थ-धर्म—उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थों से सम्पन्न गृहस्थ अपने परिवार तथा आश्रितों का पोषण करके उन्नति को प्राप्त कराये । शाकी=सब प्रकार के सामर्थ्य वाला होकर सज्जनों की संगति किया करे । शारीरिक और मानसिक क्लेशों के निवारणार्थ क्रीडाशील होकर अपने विरोधियों को सन्तप्त करने वाला हो । ऐसा गृहस्थी सदा उत्कर्ष को प्राप्त करता है ॥ १७ । ८५ ॥

सप्तऋषयः । **मरुतः=राजप्रजाः ऋत्विजो विद्वांसः** । निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

पुना राजप्रजाः कथं परस्परं वर्तेरन्नित्याह ॥

फिर राजा और प्रजा कैसे परस्पर वर्तें, यह उपदेश किया है ॥

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् ।
एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्तं धार्मिकं राजानम् (**दैवीः**) देवानां=विदुषामिमाः (**विशः**) प्रजाः (**मरुतः**) ऋत्विजो विद्वांसः (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूलो वर्त्मा=मार्गो येषां ते (**अभवन्**) भवन्तु (**यथा**) येन प्रकारेण (**इन्द्रम्**) अखिलैश्वर्यं परमेश्वरम् (**दैवीः**) (**विशः**) (**मरुतः**) प्राणा इव प्रियाः (**अनुवर्त्मानः**) अनुकूलाचरणाः (**अभवन्**) (**एवम्**) (**इमम्**) (**यजमानम्**) विद्यासुशिक्षाभ्यां सुखदातारम् (**दैवीः**) (**च**) (**विशः**) (**मानुषीः**) मानुषाणामविदुषामिमाः (**च**) (**अनुवर्त्मानः**) (**भवन्तु**) ॥ ८६ ॥

अन्वयः—हे राजँस्त्वं तथा वर्त्तस्व यथेमा दैवीर्विशो मरुतश्चेन्द्रमनुवर्त्मानोऽभवन् यथा मरुतो दैवीर्दिव्या विशश्चेन्द्रमनुवर्त्मानोऽभवन् । एवं दैवीश्च विशो मानुषीश्च विश इमं यजमानमनुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजन्! त्वं तथा वर्त्तस्व, यथा येन प्रकारेण इमा दैवीः देवानां=विदुषामिमा विशः प्रजा मरुतः ऋत्विजो विद्वांसः चेन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तं धार्मिकं राजानम् अनुवर्त्मानः अनुकूलो वर्त्मा=मार्गो येषां ते अभवन् भवन्तु ।

यथा येन प्रकारेण **मरुतः** प्राणा इव प्रियाः **दैवीः=दिव्या** देवानां=विदुषामिमाः **विशः** प्रजाः **चेन्द्रम्** अखिलैश्वर्यं परमेश्वरम् **अनुवर्त्मानः** अनुकूलाचरणाः **अभवन्** भवन्तु ।

एवं दैवीः देवानां=विदुषामिमाः **च विशः** प्रजाः **मानुषीः** मानुषाणामविदुषामिमाः **च विशः** प्रजाः **इमं यजमानं** विद्यासुशिक्षाभ्यां सुखदातारम् **अनुवर्त्मानो भवन्तु** ॥ १७ । ८६ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! तू वैसा वर्त्ताव कर (यथा) जिस प्रकार से ये (दैवीः) देवों=विद्वानों की (विशः) प्रजा और (मरुतः) ऋत्विक् विद्वान् (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य से युक्त धार्मिक राजा का (अनुवर्त्मानः) अनुसरण करने वाले (अभवन्) हों ।

(यथा) जिस प्रकार से (मरुतः) प्राणों के समान प्रिय (दैवीः) देवों=विद्वानों की (विशः) प्रजा (इन्द्रम्) सकल ऐश्वर्य वाले परमेश्वर के (अनुवर्त्मानः) अनुकूल आचरण वाले (अभवन्) हों ।

इस प्रकार—(दैवीः) देवों=विद्वानों की (विशः) प्रजा (च) और (मानुषीः) मानवी (विशः) प्रजा (इमम्) इस (यजमानम्) विद्या और सुशिक्षा से सुख के दाता का (अनुवर्त्मानः) अनुसरण करने वाली हों ॥ १७ । ८६ ॥

[हे राजँस्त्वं तथा वर्तस्व यथेमा...विशः...इन्द्रमनुवर्त्मानोऽभवन्]

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यथा प्रजा राजादीनां राजपुरुषाणामनुकूला वर्त्तेरँस्तथैतेऽपि प्रजानुकूला वर्त्तन्ताम् ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे—प्रजा राजा आदि राजपुरुषों के अनुकूल वर्ताव करें वैसे ये भी प्रजा के अनुकूल रहें ।

[विश इमं यजमानमनुवर्त्मानो भवन्तु]

यथाऽध्यापकोपदेशकाः सुखाय प्रयतेरँस्तथैव सर्व एतेषां सुखाय प्रयतन्ताम् ॥ १७ । ८६ ॥

जैसे अध्यापक और उपदेशक सुख के लिए प्रयत्न करें वैसे सब इनके सुख के लिए प्रयत्न करें ॥ १७ । ८६ ॥

भा० पदार्थः—यजमानम्=अध्यापकमुपदेशकम् ।

भाष्यसार—१. **राजा-प्रजा का व्यवहार**—जैसे विद्वानों की दैवी प्रजा=संयमित इन्द्रियादि परमेश्वर के आदेश के अनुकूल आचरण करती है, वैसे ही विद्वान् तथा ऋत्विजों की प्रजाएँ उस राजा का अनुसरण करती हैं, जो समस्त ऐश्वर्य वाला होता है। इसी प्रकार दूसरे मनुष्य भी विद्या सुशिक्षा से सम्पन्न विद्वानों का अनुसरण किया करें ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमा तथा वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं। जैसे विद्वान् ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं, वैसे ही सब प्रजाएँ राजा और विद्वानों का अनुसरण किया करें ॥ १७ । ८६ ॥

सप्तऋषयः । **अग्निः**=**मनुष्यः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्तितव्यमित्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

इमꣳ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमाविशस्व ॥ ८७ ॥

पदार्थः—(**इमम्**) (**स्तनम्**) दुग्धाधारम् (**ऊर्जस्वन्तम्**) प्रशस्तबलकारकम् (**धय**) पिब (**अपाम्**) जलानाम् (**प्रपीनम्**) प्रकृष्टतया स्थूलम् (**अग्ने**) पावक इव वर्त्तमान (**सरिरस्य**) बहोः । **सरिरमिति बहुना० । निघं० ३ । १ ॥** (**मध्ये**) (**उत्सम्**) उन्दन्ति येन तं कूपम् । **उत्समिति कूपना० ॥ निघं० ३ । २३ ॥** (**जुषस्व**) सेवस्व (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तं मधु=माधुर्यं विद्यते यस्मिँस्तम् (**अर्वन्**) अश्व इव वर्त्तयन् (**समुद्रियम्**) सागरे भवम् (**सदनम्**) सीदन्ति=गच्छन्ति यत्तत् (**आ**) (**विशस्व**) **अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदम् ॥ ८७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**सरिरस्य**) बहोः । 'सरिर' पद निघं० १३ । १ में बहु-नामों में पठित है । (**उत्सम्**) 'उत्स' पद निघं० ३ । २३ में कूपनामों में पठित है । (**विशस्व**) यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद हुआ है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! पालक त्वं प्रपीनं स्तनमिवेममूर्जस्वन्तमपां रसं धय सरिरस्य मध्ये मधुमन्तमुत्सं जुषस्व । हे अर्वँस्त्वं समुद्रियं सदनमाविशस्व ॥ ८७ ॥

विनियोग—स्त्री के दोनों स्तन किंचित् उष्ण सुगन्धित, जल से प्रक्षालन कर पोंछ के—'ओम्–इमं स्तन०' इस मन्त्र को पढ़ के दक्षिण स्तन प्रथम बालक के मुख में देवें (**संस्कारविधि जातकर्म**) ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! पावक इव वर्त्तमान ! पालक **त्वं प्रपीनं** प्रकृष्टतया स्थूलं **स्तनं** दुग्धाधारम् **इवेममूर्जस्वन्तं** प्रशस्तबलकारकम् **अपां** जलानां **रसं धय** पिब; **सरिरस्य** बहोः **मध्ये मधुमन्तं** प्रशस्तं मधु=माधुर्यं विद्यते यस्मिँस्तम् **उत्सम्** उन्दन्ति येन तं कूपं **जुषस्व** सेवस्व ।

हे अर्वन् ! अश्व इव वर्त्तयन् ! **त्वं समुद्रियं** सागरे भवं **सदनं** सीदन्ति=गच्छन्ति यत्तद् **आ-विशस्व** ॥ १७ । ८७ ॥

[**हे अग्ने ! त्वं···स्तनं···धय**]

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान पालक ! तू—(प्रपीनम्) अति स्थूल (स्तनम्) दुग्ध के आधार=स्तन के समान (इमम्) इस (ऊर्जस्वन्तम्) उत्तम बलकारक (अपाम्) जलों के रस को (धय) पी । और—(सरिरस्य) बहुतों के मध्य में विद्यमान (मधुमन्तम्) प्रशस्त माधुर्य वाले (उत्सम्) कूए का (जुषस्व) सेवन कर ।

हे (अर्वन्) अश्वः=घोड़े के समान वर्त्ताव वाले पुरुष तू—(समुद्रियम्) सागर में विद्यमान (सदनम्) घर=नौका आदि में (आविशस्व) प्रविष्ट हो ॥

[**हे अर्वन् ! त्वम्···आविशस्व**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा बालका वत्साश्च स्तनदुग्धं पीत्वा वर्द्धन्ते, यथा वाऽश्वः शीघ्रं धावति तथा मनुष्या युक्ताहारविहारेण वर्धमाना, वेगेन गच्छन्तु ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—बालक और बछड़े स्तन के दूध को पीकर बढ़ते हैं, अथवा—जैसे घोड़ा शीघ्र दौड़ता है वैसे मनुष्य युक्त आहार-विहार से बढ़ते हुए वेग से गति करें ।

[हे अर्वन् ! त्वं समुद्रियं सदमाविशस्व]

यथाऽद्भिः पूर्णे समुद्रे नौकायां स्थित्वा गच्छन्तः सुखेन पारावारे यान्ति, तथैव सुसाधनैर्व्यवहारस्य पारावारौ प्राप्नुवन्तु ॥ १७ । ८७ ॥

जैसे—जल से भरे समुद्र में नौका में बैठकर चलते हुए सुख से अवार पार जाते हैं वैसे ही उत्तम साधनों से व्यवहार के पार-अवार को प्राप्त करें ॥

भाष्यसार—१. **मनुष्यों की वृद्धि का उपाय**—जैसे नौकादि से समुद्रादि को शीघ्र ही पार किया जाता है, वैसे ही शीघ्र वृद्धि चाहने वाले मनुष्य ऐसे पदार्थों का सेवन करें जो दूध के समान पौष्टिक हों, जो माधुर्य-युक्त रस के स्रोत हों।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे घोड़ा मार्ग को और नौकादि से समुद्र को शीघ्र पार किया जाता है, वैसे ही दूधादि पौष्टिक भोजन से मनुष्य की वृद्धि होती है ॥ १७ । ८७ ॥

गृत्समदः । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैरग्निः क्व क्वान्वेषणीय इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को अग्नि कहाँ कहाँ खोजना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ८८ ॥

पदार्थः—(**घृतम्**) उदकम् (**मिमिक्षे**) सिञ्चितुमिच्छ (**घृतम्**) जलम् (**अस्य**) (**योनिः**) गृहम् (**घृते**) (**श्रितः**) (**घृतम्**) उदकम् (**उ**) वितर्के (**अस्य**) पावकस्य (**धाम**) अधिकरणम् (**अनुष्वधम्**) स्वधान्तस्यानुकूलम् (**आ**) (**वह**) प्रापय (**मादयस्व**) हर्षयस्व (**स्वाहाकृतम्**) वेदवाणीनिष्पादितम् (**वृषभ**) यो वर्षति तत्सम्बुद्धौ (**वक्षि**) कामयसे प्राप्नोषि वा (**हव्यम्**) होतुमादातुमर्हम् ॥ ८८ ॥

अन्वयः—हे समुद्रयायिन् ! त्वं घृतं मिमिक्षे उ अस्याग्नेर्घृतं योनिरस्ति यो घृते श्रितो घृतमस्य धाम तमग्निमनुष्वधमावह । हे वृषभः ! त्वं यतः स्वाहाकृतं हव्यं वक्षि तेनास्मान् मादयस्व ॥८८॥

सपदार्थान्वयः—हे समुद्रयायिन् ! त्वं **घृतम्** उदकं **मिमिक्षे** सिञ्चितुमिच्छ, **उ** सवितर्कम् **अस्याग्नेर्घृतं** जलं **योनिः** गृहम् **अस्ति**। **यो घृते श्रितो घृतम्** उदकम् **अस्य** पावकस्य **धाम** अधिकरणं **तमग्निमनुष्वधम्** स्वधान्तस्यानुकूलम् **आवह** प्रापय ।

हे **वृषभ** ! यो वर्षति तत्सम्बुद्धौ ! त्वं **यतः स्वाहाकृतं** वेदवाणीनिष्पादितं **हव्यं** होतुमादातुमर्हं **वक्षि** कामयसे प्राप्नोषि वा, **तेनास्मान् मादयस्व** हर्षयस्व ॥ १७ । ८८ ॥

भाषार्थ—हे समुद्र से यात्रा करने वाले तू—(घृतम्) जल को (मिमिक्षे) सींचने की इच्छा कर, (उ) विचार कर कि (अस्य) इस अग्नि का (घृतम्) जल (योनिः) घर है। जो (घृते) जल के (श्रितः) आश्रित है, (घृतम्) जल (अस्य) इस अग्नि का (धाम) आधार है, इस अग्नि के (अनुस्वधम्) अनुकूल स्वधा को (आवह) प्राप्त कर।

हे (वृषभ) बरसने वाले ! तू—जिससे (स्वाहाकृतम्) वेदवाणी से निष्पादित (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थ की (वक्षि) कामना करता है वा प्राप्त करता है, सो हमें (मादयस्व) हर्षित कर ॥ ८८ ॥

[घृतमस्य धाम, तमग्निम्'''आवह]

भावार्थः—यावानग्निर्जलेऽस्ति तावान् जलाधिकरण उच्यते।

भावार्थ—जितनी अग्नि जल में है उतनी समुद्र में बतलाई जाती है।

[अस्याग्नेर्घृतं योनिरस्ति]

यथाज्येन वह्निर्वर्धते तथा जलेन सर्वे पदार्था वर्धन्ते।

जैसे घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे जल से सब पदार्थ बढ़ते हैं।

[त्वं''''''हव्यं वक्षि तेनास्मान् मादयस्व]

अन्नमनुकूलमाज्यं चानन्दकारि जायते, तस्मात् सर्वैरेतत् कमनीयम् ॥ १७ । ८८ ॥

अन्न अनुकूल और घृत आनन्दकारक होता है अतः सब इसकी कामना करें ॥ १७ । ८८ ॥

भा० पदार्थः—घृतम्=आज्यम्। हव्यम्=अन्नमनुकूलमाज्यं च।

भाष्यसार—**विद्युदग्नि का अन्वेषण**—शिल्पी जन सबकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए जल में रहने वाली विद्युदग्नि की खोज करके विभिन्न प्रकार के कलायन्त्रों में प्रयोग किया करें। इस अग्नि का जल ही कारण है, और जल से यह उसी प्रकार बढ़ती है जैसे घृत से भौतिकाग्नि तीव्र हो जाती है। इस अग्नि को अपने अनुकूल करने से स्वधा=अन्नादि की यथेष्ट प्राप्ति होती है॥ १७।८८॥

वामदेवः। **अग्निः=मनुष्यः**। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनर्मनुष्यैः कथं वर्तितव्यमित्याह॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्ताव रखना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ२ऽ उदारदुपाꣳशुना सममृतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः॥ ८९॥

पदार्थः—(**समुद्रात्**) अन्तरिक्षात् (**ऊर्मिः**) तरङ्गः (**मधुमान्**) मधुरगुणयुक्तः (**उत्**) (**आरत्**) उदूर्ध्वं प्राप्नोति (**उप**) (**अंशुना**) किरणसमूहेन (**सम्**) (**अमृतत्वम्**) अमृतस्य भावम् (**आनट्**) समन्ताद् व्याप्नोति (**घृतस्य**) जलस्य (**नाम**) संज्ञा (**गुह्यम्**) रहस्यम् (**यत्**) (**अस्ति**) (**जिह्वा**) वाणी (**देवानाम्**) विदुषाम् (**अमृतस्य**) मोक्षस्य (**नाभिः**) स्तम्भनं स्थिरीकरणं प्रबन्धनम्॥ ८९॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! भवन्तो यत्समुद्रादंशुना मधुमानूर्मिरुदारत् सममृतत्वमुपानट् यद् घृतस्य गुह्यं नामास्ति या देवानां जिह्वाऽमृतस्य नाभिरस्ति तत्सर्वं सेवन्ताम्॥ ८९॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! भवन्तो यत्समुद्राद्** अन्तरिक्षाद् **अंशुना** किरणसमूहेन **मधुमान्** मधुरगुणयुक्तः **ऊर्मिः** तरङ्ग **उद्+आरद्** उदूर्ध्वं प्राप्नोति, **सम्+अमृतत्वम्** अमृतस्य भावम् **उपानट्** समन्ताद् व्याप्नोति, **यद् घृतस्य** जलस्य **गुह्यं** रहस्यं **नाम** संज्ञा **अस्ति, या देवानां** विदुषां **जिह्वा** वाणी **अमृतस्य** मोक्षस्य

भाषार्थ—हे मनुष्यो! आप—जो (समुद्रात्) आकाश से (अंशुना) किरणों के द्वारा (मधुमान्) मधुर गुण से युक्त (ऊर्मिः) तरङ्ग (उद्+आरद्) ऊपर पहुँचती है; (सम्+अमृतत्वम्) अमृत भाव को (उपानट्) सब ओर से व्याप्त करती है, जो (घृतस्य) जल का (गुह्यम्) गुप्त (नाम) नाम है; जो (देवानाम्) विद्वानों की वाणी

नाभिः स्तम्भनं स्थिरीकरणं प्रबन्धनम् **अस्ति, तत्सर्वं सेवन्ताम्** ॥ १७ । ८९ ॥

(अमृतस्य) मोक्ष का (नाभिः) स्तम्भ है, उस सब का सेवन करो ॥ १७ । ८९ ॥

[हे मनुष्याः !···**यत्समुद्रादंशुना मधुमानूर्मिरुदारत् सममृतत्वमुपानट्**]

भावार्थः— यथाऽग्निर्मिलितयोर्जलभूम्योर्विभागेन मेघमण्डलं प्रापय्य मधुरं जलं सम्पादयति,

भावार्थ—जैसे अग्नि मिले हुए जल और भूमि के विभाग से मेघमण्डल को प्राप्त करके मधुर जल को सिद्ध करता है,

[**यद् घृतस्य गुह्यं नामास्ति, या देवानां जिह्वाऽमृतस्य नाभिः**]

यत्कारणाख्यमपां नाम तद् गुह्यमस्ति, मोक्षश्चैतत्सर्वमुपदेशेनैव लभ्यमिति वेद्यम् ॥

जो कारण रूप जलों का नाम गुप्त है, और मोक्ष है, यह सब उपदेश से ही प्राप्य है, ऐसा समझें ॥ १७ । ८९ ॥

भा० पदार्थः—सममृतत्वम्=मधुरं जलम् ।

भाष्यसार—**मनुष्यों का परमसुखप्रद जल**—जो जल सूर्य की किरणों से भूमि से अन्तरिक्ष में जाकर मेघरूप में हो जाता है, वह मधुरतादि गुणों से युक्त होता है, अतः वह जल अमृत कहलाता है। जैसे देवताओं के दुःख मोक्ष=प्राप्त करने पर दूर हो जाते हैं, वैसे ही मेघ रूप जल दुर्भिक्षादि दुःखों का निवारक होने से अमृतस्य नाभिः=मोक्ष का स्तम्भ कहलाता है ॥ १७ । ८९ ॥ ●

वामदेवः । **अग्निः=मनुष्यः** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुःशृङ्गोऽवमीद् गौर ऽ एतत् ॥ ९०

पदार्थः—(**वयम्**) (**नाम**) पदार्थानां संज्ञाम् (**प्र, ब्रवाम**) उपदिशेम (**घृतस्य**) आज्यस्य जलस्य वा (**अस्मिन्**) (**यज्ञे**) गृहाश्रमव्यवहारे (**धारयाम**) **अत्रान्येषामपीति दीर्घः** । (**नमोभिः**) अन्नादिभिः (**उप**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**शृणवत्**) शृणुयात् (**शस्यमानम्**) प्रशंसितं सत् (**चतुःशृङ्गः**) चत्वारो वेदाः शृङ्गवदुत्तमा यस्य सः (**अवमीत्**) उपदिशेत् (**गौरः**) यो वेदविद्यावाचि रमते स एव (**एतत्**) ॥९०॥

प्रमाणार्थ—(**धारयाम**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—यच्चतुःशृङ्गो गौरो ब्रह्माऽवमीदुपशृणवत्तद् घृतस्य शस्यमानं गुह्यं नामास्त्येतद्वयमन्यान् प्रति प्रब्रवामास्मिन् यज्ञे नमोभिर्धारयाम च ॥ ९० ॥

सपदार्थान्वयः—**यच्चतुःशृङ्गः** चत्वारो वेदाः शृङ्गवदुत्तमा यस्य सः **गौरः** यो वेदविद्यावाचि रमते स एव **ब्रह्मा** चतुर्वेदविद् **अवमीत्** उपदिशेद् **उपशृणवत्** शृणुयात्, **तद् घृतस्य** आज्यस्य जलस्य वा **शस्यमानं** प्रशंसितं सद् **गुह्यं नाम** पदार्थानां संज्ञा **अस्ति** ।

भाषार्थ—जो—(चतुःशृङ्गः) शृङ्ग के समान उत्तम चार वेदों वाला, (गौरः) गौ=वेदविद्या की वाणी में रमण करने वाला, (ब्रह्मा) चारों वेदों का वेत्ता=ब्रह्मा (अवमीत्) उपदेश करे, (उपशृणवत्) सुनावे, वह (घृतस्य) घृत वा जल का (शस्यमानम्) प्रशंसित गुप्त (नाम) नाम है।

एतद्वयमन्यान् प्रति प्रब्रवाम उपदिशेम, **अस्मिन् यज्ञे** गृहाश्रमव्यवहारे **नमोभिः** अन्नादिभिः **धारयाम च** ॥ १७ । ६० ॥

इस नाम का हम अन्यों को (प्रब्रवाम) उपदेश करें, (अस्मिन्) इस (यज्ञे) गृहाश्रम के व्यवहार में (नमोभिः) अन्न आदि से अन्यों को (धारयाम) धारण करें ॥ १७ । ६० ॥

[घृतस्य शस्यमानं गुह्यं नामास्ति, एतद् वयमन्यान् प्रति प्रब्रवाम]

भावार्थः—मनुष्या मनुष्यदेहं प्राप्य सर्वेषां पदार्थानां नामान्यर्थांश्चाध्यापकेभ्यः श्रुत्वान्येभ्यो ब्रूयुः ।

भावार्थ—मनुष्य—मानव देह को प्राप्त करके सब पदार्थों के नाम और अर्थों को अध्यापकों से सुनकर अन्यों को उपदेश करें ।

[अस्मिन् यज्ञे नमोभिर्धारयाम]

एतैः सृष्टिस्थैः पदार्थैः सर्वाणि कार्याणि च साधयेयुः ॥ १७ । ६० ॥

इन सृष्टि के पदार्थों से सब कार्यों को सिद्ध करें ॥ १७ । ६० ॥

भा० पदार्थः—नमोभिः=सृष्टिस्थैः पदार्थैः । धारयाम=सर्वाणि कार्याणि साधयेम ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ मनुष्यों का कर्त्तव्य**—वेद-विद्या में रमण करने वाला वेदों का वेत्ता विद्वान् जो उपदेश देता है, वह प्रशंसा के योग्य घृत या जल की तरह जीवनप्रद होता है । गृहस्थी मनुष्य इस उपदेश को सुनकर दूसरों को वैसे ही तृप्त करें, जैसे अन्नादि से तृप्ति होती है ॥ १७ । ६० ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः=यज्ञः शब्दो वा** । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ यज्ञादिगुणानाह ॥

अब यज्ञ के गुणों और शब्दशास्त्र के गुणों का उपदेश किया जाता है ॥

चत्वारि शृङ्गा त्रयो ऽ अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो ऽ अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२ ऽ आविवेश ॥ ९१ ॥

पदार्थः—(**चत्वारि**) (**शृङ्गा**) शृङ्गाणीव चत्वारो वेदा नामाख्यातोपसर्गनिपाता वा (**त्रयः**) प्रातर्मध्यसायं सवनानि, भूतभविष्यद्वर्त्तमानाः काला वा (**अस्य**) यज्ञस्य शब्दस्य वा (**पादाः**) अधिगम-साधनानि (**द्वे**) (**शीर्षे**) शिरसी प्रायणीयोदयनीये, नित्यः कार्यश्च शब्दात्मानौ वा (**सप्त**) एतत्संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि, विभक्तयो वा (**हस्तासः**) हस्तेन्द्रियमिव (**अस्य**) (**त्रिधा**) त्रिभिः प्रकारैर्मन्त्रब्राह्मण-कल्पैः, उरसि कण्ठे शिरसि वा (**बद्धः**) (**वृषभः**) सुखानामभिवर्षकः (**रोरवीति**) ऋग्वेदादिना सवनक्रमेण वा शब्दायते (**महः**) महान् (**देवः**) संगमनीयः प्रकाशको वा (**मर्त्यान्**) मनुष्यान् (**आ, विवेश**) आविशति । अत्राहुर्नैरुक्ताः—चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादा इति सवनानि त्रीणि, द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये, सप्तहस्तासः सप्त छन्दांसि, त्रिधा बद्धस्त्रेधाबद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैर्वृषभो रोरवीति । रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति । महो देव इत्येष हि महान् देवो यद्यज्ञो मर्त्यां आ विवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय ॥ निरु० अ० १३ । खं० ७ ॥ पक्षान्तरं पतञ्जलिमुनिरेवमाह—चत्वारि शृङ्गाणि । चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च ॥ त्रयो अस्य पादाः । त्रयः काला भूतभविष्यद्वर्त्त-मानाः ॥ द्वे शीर्षे । द्वौ शब्दात्मानौ नित्यः कार्यश्च ॥ सप्तहस्तासो अस्य सप्तविभक्तयः ॥ त्रिधा बद्धः=त्रिषु स्थानेषु बद्ध उरसि कण्ठे शिरसीति ॥ वृषभो वर्षणात् ॥ रोरवीति शब्दं करोति ॥ कुत एतत् ? रौतिः शब्दकर्मा । महो

देवो मर्त्याँ आविवेशेति । महान्देवः शब्दो मर्त्या मरणधर्माणो मनुष्यास्तानाविवेश ॥ महाभा० अ० १ । पा० १ । आ० १ ॥ ६१ ॥

प्रमाणार्थ—इस मन्त्र की व्याख्या निरुक्तकार ने निरुक्त में अ० १३ । खं० ७ में इस प्रकार की है—यज्ञ के वेद ही चार शृङ्ग हैं, इसके तीन सवन पाद हैं, प्रायणीय उदयनीय दो शिर हैं, सात छन्द सात हाथ हैं, मन्त्र ब्राह्मण और कल्प से तीन तरह से यज्ञ बंधा हुआ है, यह यज्ञ-वृषभ सवन क्रम से शब्द करता है अर्थात् ऋग्वेद की ऋचाओं से यज्ञ की प्रशंसा, यजुर्वेद के मन्त्रों से यज्ञ और सामवेद से स्तुति करना ही शब्द करना है । यज्ञ ही महान् देव है, क्योंकि यह यजन करने के लिए मनुष्यों में प्रविष्ट है ।

इस मन्त्र की शब्दपरक व्याख्या पतञ्जलि मुनि ने महाभाष्य में (**अ० १ पा० १ आ० १**) में इस प्रकार की है—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात ये चार प्रकार के पद चार शृङ्ग हैं । भूत, भविष्यत् तथा वर्त्तमान तीन काल इसके पाद हैं । नित्य और कार्य शब्द दो शिर हैं । सात विभक्तियाँ ही सात हाथ हैं । उरस्, कण्ठ और शिर तीन स्थानों पर बन्धा हुआ है । यह वर्षा करने से वृषभ है । रोरवीति का अर्थ शब्द करना है । क्योंकि 'रु' धातु शब्दार्थक है । यह महान् देव शब्द मरण-धर्मा मनुष्यों में प्रविष्ट है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं यस्यास्य त्रयः पादाश्चत्वारि शृङ्गा द्वे शीर्षे यस्यास्य सप्त हस्तासः सन्ति यस्त्रिधा बद्धो महो देवो वृषभो यज्ञः शब्दो वा रोरवीति मर्त्यानाविवेश तमनुष्ठायाभ्यस्य च सुखिनो विद्वांसो भवत ॥ १७ । ६१ ॥

[प्रथम पक्ष शब्द विषयक]

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं यस्याऽस्य** शब्दस्य **त्रयः** भूतभविष्यद्वर्त्तमानाः कालाः **पादाः** अधिगमसाधनानि **चत्वारि शृङ्गा** शृङ्गाणीव चत्वारो नामाऽऽख्यातोपसर्गनिपाताः **द्वे शीर्षे** शिरसी नित्यः कार्यश्च शब्दात्मानौ **यस्याऽस्य** शब्दस्य **सप्त** एतत्संख्याका विभक्तयः **हस्तासः** हस्तेन्द्रियमिव **सन्ति; यस्त्रिधा** त्रिभिः प्रकारैरुरसि, कण्ठे, शिरसि **बद्धो महः** महान् **देवः** प्रकाशकः **वृषभः**=**शब्दः** सुखानामभिवर्षकः **रोरवीति** ऋग्वेदादिना शब्दायते; **मर्त्यान्** मनुष्यान् **आविवेश** आविशति; **तमभ्यस्य सुखिनो विद्वांसो भवत** ॥ १७ । ६१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस (अस्य) इस शब्द के (त्रयः) तीन भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल (पादाः) प्राप्ति के साधन हैं, (चत्वारि शृंङ्गाः) शृङ्गों के समान चार नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात हैं, (द्वे शीर्षे) दो शिर नित्य और कार्य शब्द के स्वरूप हैं, जिस (अस्य) इस शब्द की (सप्त) सात विभक्तियाँ (हस्तासः) हाथ के समान हैं, जो (त्रिधा) तीन प्रकार से उरः, कण्ठ और शिर में (बद्धः) बंधा हुआ, (महः) महान् (देवः) प्रकाशक (वृषभः) सुखों को बरसाने वाला शब्द (रोरवीति) ऋग्वेद आदि के द्वारा शब्द करता है; (मर्त्यान्) मनुष्यों में (आविवेश) प्रविष्ट है; उसका अभ्यास करके सुखी विद्वान् बनो ॥ १७ । ६१ ॥

[द्वितीय पक्ष यज्ञ विषयक]

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यूयं यस्याऽस्य** यज्ञस्य **त्रयः** प्रातर्मध्यसायं सवनानि, **पादाः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जिस (अस्य) इस यज्ञ के (त्रयः) तीन—प्रातः, मध्य और सायं

अधिगमसाधनानि **चत्वारि शृङ्गा** शृङ्गाणीव चत्वारो वेदाः **द्वे शीर्षे** शिरसी प्रायणीयोदयनीये, **यस्याऽस्य** यज्ञस्य **सप्त** एतत्संख्याकानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि, **हस्तासः** हस्तेन्द्रियमिव **सन्ति, यस्त्रिधा** त्रिभिः प्रकारैर्मन्त्रब्राह्मणकल्पैः, **बद्धो महः** महान् **देवः** सङ्गमनीयः **वृषभो**=**यज्ञः** सुखानामभिवर्षकः **रोरवीति** सवनक्रमेण शब्दायते, **मर्त्यान्** मनुष्यान् **आ+विवेश** आविशति, **तमनुष्ठाय सुखिनो विद्वांसो भवत** ॥ १७ । ९१ ॥

सवन (पादाः) प्राप्ति के साधन हैं, (चत्वारि शृङ्गा) शृङ्गों के समान चार वेद हैं, (द्वे शीर्षे) प्रायणीय और उदयनीय दो शिर हैं, जिस (अस्य) इस यज्ञ के (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (हस्तासः) हस्त इन्द्रिय के समान हैं, जो (त्रिधा) मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प तीन प्रकार से (बद्धः) बंधा हुआ (महः) महान् (देवः) संग के योग्य (वृषभः) सुखों को बरसाने वाला यज्ञ (रोरवीति) सवन-क्रम से शब्द करता है एवं (मर्त्यान्) मनुष्यों में (आ+विवेश) प्रविष्ट है, उसका अनुष्ठान करके सुखी विद्वान् बनो ॥ १७ । ९१ ॥

भावार्थः—अत्रोभयोक्त्या रूपकः श्लेषाऽलङ्कारश्च ॥

भावार्थ—यहाँ उभय-उक्ति से रूपक और श्लेष अलङ्कार है।

[हे मनुष्याः ! यूयं यस्यास्य त्रयः पादाः'''सन्ति, यः'''वृषभः=यज्ञः शब्दो वारोरवीति,'''तमनुष्ठायाभ्यस्य च'''विद्वांसो भवत]

ये मनुष्या यज्ञविद्यां शब्दविद्यां च जानन्ति ते महाशया विद्वांसो भवन्ति ॥ १७ । ९१ ॥

जो मनुष्य यज्ञ-विद्या और शब्द-विद्या को जानते हैं वे महाशय विद्वान् होते हैं ॥ १७ । ९१ ॥

भा० पदार्थः—वृषभः=यज्ञविद्या, शब्दविद्या।

भाष्यसार—**यज्ञ और शब्द के जानने का फल**—यज्ञ-प्रक्रिया और शब्द-विद्या को जानने से सुखों की वृद्धि होती है। क्योंकि ये दोनों महान् देवता हैं और सुखों को प्राप्त कराने से वृषभ कहलाते हैं। जब इनको जानकर मनुष्य तन्मय हो जाते हैं तब ही सुख-प्राप्ति के अधिकारी होते हैं ॥ १७ । ९१ ॥

वामदेवः। **यज्ञपुरुषः=मनुष्यः**। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

अथ मनुष्यैः कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

अब मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र ऽ एकꣳ सूर्य ऽ एकं जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ९२ ॥

पदार्थः—(**त्रिधा**) त्रिभिः प्रकारैः (**हितम्**) स्थितम् (**पणिभिः**) व्यवहारज्ञैः स्तावकैः (**गुह्यमानम्**) रहसि स्थितम् (**गवि**) वाचि (**देवासः**) विद्वांसः (**घृतम्**) प्रदीप्तं विज्ञानम् (**अनु**) (**अविन्दन्**) लभन्ते (**इन्द्रः**) विद्युत् (**एकम्**) (**सूर्यः**) सविता (**एकम्**) (**जजान**) जनयति (**वेनात्**) कमनीयात् मेधाविनः। वेन इति मेधाविना० ॥ निघं० ३। १५ ॥ (**एकम्**) विज्ञानम् (**स्वधया**) स्वेन धारितया क्रियया (**निः**) नितराम् (**ततक्षुः**) तनूकुर्य्युः ॥ ९२ ॥

प्रमाणार्थ—(**वेनात्**) कमनीयात् मेधाविनः। 'वेन' पद निघं० ३। १५ में मेधावी नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा देवासः पणिभिस्त्रिधा हितं गवि गुह्यमानं घृतमन्वविन्दन् यदीन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनाच्च स्वधयैकं निष्टतक्षुस्तथा यूयमप्याचरत ॥ ९२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा देवासः** विद्वांसः **पणिभिः** व्यवहारज्ञैः स्तावकैः **त्रिधा** त्रिभिः प्रकारैः **हितं** स्थितं **गवि** वाचि **गुह्यमानं** रहसि स्थितं **घृतं** प्रदीप्तं विज्ञानम् **अन्वविन्दन्** लभन्ते, **यदीन्द्रः** विद्युत् **एकं सूर्यः** सविता **एकं** विज्ञानं **जजान** जनयति, **वेनात्** कमनीयात् मेधाविनः **च स्वधया** स्वेन धारितया क्रियया **एकं** विज्ञानं **निष्टतक्षुः** नितरां तनूकुर्य्युः **तथा यूयमप्याचरत** ॥ १७ । ९२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(देवासः) विद्वान् लोग (पणिभिः) व्यवहार के ज्ञाता, स्तुति-कर्त्ताओं के द्वारा (त्रिधा) तीन प्रकार से (हितम्) स्थित, (गवि) वाणी में (गुह्यमानम्) छुपे हुए (घृतम्) प्रदीप्त विज्ञान को (अन्वविन्दन्) प्राप्त करते हैं, यदि—(इन्द्रः) विद्युत् (एकम्) एक विज्ञान को, (सूर्यः) सूर्य (एकम्) एक विज्ञान को (जजान) प्रकट करता है और (वेनात्) कमनीय मेधावी विद्वान् से (स्वधया) स्वयं धारण की हुई क्रिया=आचरण से (एकम्) एक विज्ञान को (निष्टतक्षुः) प्राप्त करते हैं, वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १७ । ९२ ॥

[हे मनुष्याः ! यथा देवासः···त्रिधा हितं···घृतमन्वविन्दन्, यदीन्द्र एकं सूर्य एकं जजान, वेनाच्च स्वधया निष्टतक्षुः]

भावार्थः—त्रिप्रकारकं स्थूलसूक्ष्मकारण-विज्ञापकं तद् विद्युत्सूर्यप्रकाशमिव प्रकाशितमाप्तेभ्यो ये मनुष्याः प्राप्नुयुस्ते स्वकीयं ज्ञानं व्याप्तं कुर्युः ॥ १७ । ९२ ॥

भावार्थ—तीन प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म और कारण के विज्ञापक, विद्युत् सूर्य के प्रकाश के समान प्रकाशित उस विज्ञान को आप्त-जनों से जो मनुष्य प्राप्त करते हैं वे अपने ज्ञान को व्यापक बनाते हैं ॥ १७ । ९२ ॥

भा० पदार्थः—त्रिधा=त्रिप्रकारकं स्थूलसूक्ष्मकारणविज्ञापकम् । **(ज्ञानम्)**। वेनात्=आप्तजनात् । निष्टतक्षुः=व्याप्तं कुर्युः ॥

भाष्यसार—**मनुष्यों का परम पुरुषार्थ**—वेद के वेत्ता विद्वानों की वाणी में स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण को बताने वाला ज्ञान छुपा हुआ होता है। सब मनुष्य इन्द्र=विद्युत् और सूर्य के समान प्रकाश करने वाले ज्ञान को मेधावी विद्वान् से स्वधया=श्रद्धा से प्राप्त करें ॥ १७ । ९२ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः=मनुष्यः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्मनुष्यैः कीदृशी वाक् प्रयोज्येत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

एता ऽ अर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा ऽ अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य ऽ आसाम् ॥ ९३ ॥

पदार्थः—(एताः) **(अर्षन्ति)** गच्छन्ति=निस्सरन्ति **(हृद्यात्)** हृदये भवात् **(समुद्रात्)** अन्तरिक्षात् **(शतव्रजाः)** शतमसंख्याता व्रजा=मार्गा यासां ताः **(रिपुणा)** शत्रुणा स्तेनेन । रिपुरिति

स्तेनना० ॥ निघं० ३ । २४ ॥ (**न**) निषेधे (**अवचक्षे**) अवख्यातव्याः (**घृतस्य**) आज्यस्य (**धाराः**) (**अभि**) (**चाकशीमि**) सर्वतोऽनुशास्मि (**हिरण्ययः**) तेजःस्वरूपः (**वेतसः**) कमनीयः (**मध्ये**) (**आसाम्**) वेदधर्मयुक्तवाणीनाम् ॥ ९३ ॥

प्रमाणार्थ—(**रिपुणा**) शत्रुणा स्तेनेन । 'रिपु' पद निघं० ३ । २४ में स्तेन-नामों में पठित है । स्तेन=चोर ॥

अन्वयः—या रिपुणा नावचक्षे शतव्रजा एता वाचो हृद्यात्समुद्रादर्षन्त्यासां मध्ये या अग्नौ घृतस्य धारा इव जनेषु पतिताः प्रकाशन्ते ता हिरण्ययो वेतसोऽहमभिचाकशीमि ॥ ९३ ॥

सपदार्थान्वयः—**या रिपुणा** शत्रुणा स्तेनेन **न** नहि **अवचक्षे** अवख्यातव्याः, **शतव्रजाः** शतमसंख्याता व्रजा=मार्गा यासां ताः **एताः**=**वाचो हृद्यात्** हृदये भवात् **समुद्राद्** अन्तरिक्षाद् **अर्षन्ति** गच्छन्ति=निस्सरन्ति, **आसां** वेदधर्मयुक्तवाणीनां **मध्ये या अग्नौ घृतस्य** आज्यस्य **धारा इव जनेषु पतिताः प्रकाशन्ते, ता-हिरण्ययः** तेजःस्वरूपः **वेतसः** कमनीयः **अहमभिचाकशीमि** सर्वतोऽनुशास्मि ॥ १७ । ९३ ॥

भाषार्थ—जो (रिपुणा) शत्रु एवं चोर के द्वारा (न+अवचक्षे) अखण्डचः (शतव्रजाः) शत=असंख्य व्रज=मार्गों वाली (एताः) ये वाणियां (हृद्यात्) हृदय में विद्यमान (समुद्रात्) आकाश से (अर्षन्ति) निकलती हैं, (आसाम्) इन वेद और धर्मयुक्त वाणियों में से जो अग्नि में पड़ी (घृतस्य) घृत की (धाराः) धाराओं के समान मनुष्यों में पड़ी हुई प्रकाशित होती हैं, उन वाणियों का—(हिरण्ययः) तेजःस्वरूप (वेतसः) कमनीय मैं—(अभिचाकशीमि) सब ओर से उपदेश करता हूँ ॥ १७ । ९३ ॥

[**या रिपुणा नावचक्षे, शतव्रजा एता वाचो···अर्षन्ति, या अग्नौ घृतस्य धारा इव··· प्रकाशन्ते, ता···अहमभिचाकशीमि**

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथोपदेशका विद्वांसो—याः पवित्रा, विज्ञानयुक्ता, अनेकमार्गा, शत्रुभिरखण्डचा, घृतस्य प्रवाहोऽग्निमिव श्रोतॄन् प्रसादयन्ति, ता वाचः प्राप्नुवन्ति, तथा सर्वे मनुष्याः प्रयत्नेनैताः प्राप्नुयुः ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे उपदेशक विद्वान् लोग—जो पवित्र, विज्ञान से युक्त, अनेक मार्गों वाली, शत्रुओं से अखण्डनीय, जैसे घृत का प्रवाह अग्नि को प्रसन्न करता है वैसे श्रोताओं को जो प्रसन्न करती हैं, उन वाणियों को प्राप्त करते हैं; वैसे सब मनुष्य प्रयत्न से इन्हें प्राप्त करें ॥ १७ । ९३ ॥

भा० पदार्थः—शतव्रजाः=अनेकमार्गाः (**वाचः**) । अवचक्षे=खण्डचाः । धारा=प्रवाहाः ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसी वाणियों का प्रयोग करें**—जो सच्ची वाणियाँ हृदय से निकलती हैं, वे अग्नि में पड़ी घृत की धाराओं के समान प्रकाशित होती हैं और अनेक कार्यों की साधिका होती हैं । ऐसी तेजःस्वरूप वाली वाणियाँ विरोधियों के द्वारा अखण्डनीय होती हैं । अतः मनुष्यों को सत्य से पूत हृदय से अभिव्यक्त वाणियों का ही सदा प्रयोग करना चाहिए ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । मनुष्य विद्वानों की तरह पवित्र, तथा मधुर वाणियों का प्रयोग किया करें ॥ १७ । ९३ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः**=मनुष्यः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽ अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते ऽ अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥ ९४ ॥

पदार्थः—(**सम्यक्**) (**स्रवन्ति**) क्षरन्ति (**सरितः**) नद्यः । सरित इति नदीना० ॥ निघं० १ । १३ ॥ (**न**) इव (**धेनाः**) वाचः । धेनेति वाङ्ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥ (**अन्तः**) शरीरान्तर्व्यवस्थितेन (**हृदा**) विषयहारकेण (**मनसा**) शुद्धान्तःकरणेन (**पूयमानाः**) पवित्राः सत्यः (**एते**) (**अर्षन्ति**) गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति (**ऊर्मयः**) तरङ्गाः (**घृतस्य**) प्रकाशितस्य विज्ञानस्य (**मृगा इव**) (**क्षिपणोः**) हिंसकस्य भयात् (**ईषमाणाः**) भयात्पलायमानाः ॥ ९४ ॥

प्रमाणार्थ—(**सरितः**) नद्यः । 'सरितः' पद निघं० १ । १३ में नदी-नामों में पठित है । (**धेनाः**) वाचः । 'धेनाः' पद निघं० १ । ११ में वाक्-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या अन्तर्हृदा मनसा पूयमाना धेनाः सरितो न सम्यक् स्रवन्ति ता ये चैते घृतस्योर्मयः क्षिपणोरीषमाणा मृगा इवार्षन्ति तांश्च यूयं विजानीत ॥ ९४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! या अन्तः** शरीरान्तर्व्यवस्थितेन **हृदा** विषयहारकेण **मनसा** शुद्धान्तःकरणेन **पूयमानाः** पवित्राः सत्यः **धेनाः** वाचः **सरितः** नद्यः **न** इव **सम्यक् स्रवन्ति** क्षरन्ति, **ता ये चैते घृतस्य** प्रकाशितस्य विज्ञानस्य **ऊर्मयः** तरङ्गाः **क्षिपणोः** हिंसकस्य भयात् **ईषमाणा** भयात्पलायमानाः **मृगा इवार्षन्ति** । गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति **तांश्च यूयं विजानीत** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(अन्तः) शरीर के अन्दर व्यवस्थित, (हृदा) विषय—हारक, (मनसा) शुद्ध अन्तःकरण से (पूयमानाः) पवित्र हुई (धेनाः) वाणियाँ (सरितः) नदियों के (न) समान उत्तम रीति से (स्रवन्ति) बहती हैं, और उन्हें जो ये—(घृतस्य) प्रकाशित विज्ञान की (ऊर्मयः) तरंगें (क्षिपणोः) हिंसक के (ईषमाणाः) भय से पलायन करने वाले (मृगाः) मृगों के समान (अर्षन्ति) प्राप्त करते हैं, उन्हें तुम जानो ॥ १७ । ९४ ॥

[या···धेनाः सरितो न सम्यक् स्रवन्ति]

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ यथा नद्यः समुद्रान् गच्छन्ति, तथैवान्तरिक्षस्थाच्छब्दसमुद्राद् वाचो विचरन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार हैं ॥ जैसे—नदियाँ समुद्रों को प्राप्त होती हैं वैसे ही अन्तरिक्ष में स्थित शब्द—समुद्र से वाणियाँ विचरण करती हैं ।

[घृतस्य ऊर्मयः]

यथा समुद्रस्य तरङ्गाश्चलन्ति,

जैसे—समुद्र की ततरंगें चलती हैं,

[क्षिपणोरीषमाणा मृगा इवार्षन्ति, अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः]

यथा च व्याधाद् भीता मृगा धावन्ति तथैव

और—जैसे व्याध=शिकारी से भयभीत

सर्वेषां प्राणिनां शरीरस्थेन विज्ञानेन पवित्राः सत्यो वाण्यः प्रचरन्ति ।

मृग दौड़ते हैं वैसे ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित विज्ञान से पवित्र हुई वाणियाँ प्रकट होती हैं ।

[तात्पर्यमाह—]

ये शास्त्राभ्याससत्यवचनादिभिर्वाचः पवित्रयन्ति, ता एव शुद्धा जायन्ते ॥ १७ । ९४ ॥

जो शास्त्र-अभ्यास तथा सत्यभाषण आदि से वाणियों को पवित्र करते हैं, वे ही शुद्ध होते हैं ॥ १७ । ९४ ॥

भा० पदार्थः—क्षिपणोः=व्याधात् । ईषमाणाः=भीताः । अर्षन्ति=धावन्ति । अन्तः=शरीरस्थेन । मनसा=विज्ञानेन ॥

भाष्यसार—**१. मनुष्यों की सफल वाणियाँ**—जो वाणियाँ पवित्र हृदय से निकलती हैं, और शास्त्रादि के विज्ञान से प्रकाशित होती हैं, वे नदियों के समान सदा प्रवाहशील होकर सुखों को प्राप्त कराती हैं । जैसे हिंसक शिकारी के भय से मृग पलायन करते हैं, वैसे ही शुद्धान्तःकरण वालों की वाणियाँ सर्वत्र अबाध गति से विचरण करती रहती हैं और इष्ट-कामनाओं की पूर्ति कराती हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । शुद्ध वाणियाँ नदियों के समान, अथवा भागते हुए मृगों की तरह सर्वत्र विचरण करती हैं ॥ १७ । ९४ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः**=मनुष्यः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

सिन्धो॑रिव प्राध्व॒ने शू॑घ॒नासो॒ वात॑प्रमियः पतयन्ति य॒ह्वाः ।
घृ॒तस्य॒ धारा॑ऽ अरु॒षो न वा॒जी काष्ठा॑ भि॒न्दन्नू॒र्मिभिः॒ पिन्व॑मानः ॥ ९५ ॥

पदार्थः—(**सिन्धोरिव**) नद्या इव (**प्राध्वने**) प्रकृष्टश्चासावध्वा च तस्मिन् । सप्तम्यर्थे चतुर्थी (**शूघनाशः**) क्षिप्रगमनाः । शूघनास इति क्षिप्रना० ॥ निघं० २ । १५ ॥ (**वातप्रमियः**) वातेन प्रमातुं=ज्ञातुं योग्याः (**पतयन्ति**) पतन्ति=गच्छन्ति चुरादित्वात् स्वार्थे णिच् (**यह्वाः**) महत्यः । यह्व इति महन्ना० ॥ निघं० ३ । ३ ॥ (**घृतस्य**) विज्ञानस्य (**धाराः**) वाचः (**अरुषः**) य ऋच्छत्यध्वानं सः (**न**) इव (**वाजी**) वेगवानश्वः (**काष्ठाः**) संग्रामप्रदेशान् । काष्ठा इति संग्रामना० ॥ निघं० २ । १७ ॥ (**भिन्दन्**) विदारयन् (**ऊर्मिभिः**) शत्रुभेदनोत्थश्रमस्वेदोदकैः (**पिन्वमानः**) सिञ्चन् ॥ १७ । ९५ ॥

प्रमाणार्थ—(**शूघनासः**) क्षिप्रगमनाः । 'शूघनास' पद निघं० २ । १५ में क्षिप्र-नामों में पठित है । क्षिप्र=शीघ्र । (**यह्वाः**) महत्यः । 'यह्व' पद निघं० ३ । ३ में महत्-नामों में पठित है । (**काष्ठाः**) संग्रामप्रदेशान् । 'काष्ठाः' पद निघं० २ । १७ में संग्राम-नामों में पठित है ॥ (**प्राध्वने**) यहाँ सप्तमी के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है । (**पतयन्ति**) यहाँ चुरादि 'पत्' धातु से स्वार्थ में 'णिच्' प्रत्यय हुआ है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! प्राध्वने सिन्धोरिव शूघनासा वातप्रमियः काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिर्भूमिं पिन्वमानोऽरुषो वाजी न याः यह्वा घृतस्य धाराः पतयन्ति ता यूयं विजानीत ॥ १७ । ९५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **प्राध्वने** प्रकृष्टश्चासावध्वा च तस्मिन् **सिन्धोरिव** नद्या इव **शूघनासः** क्षिप्रगमनाः **वातप्रमियः** वातेन प्रमातुं=ज्ञातुं योग्याः **काष्ठाः** संग्रामप्रदेशान् **भिन्दन्** विदारयन् **ऊर्मिभिः** शत्रुभेदनोत्थश्रमस्वेदोदकैः **पिन्वमानः** सिञ्चन् **अरुषः** य ऋच्छत्यध्वानं स **वाजी** वेगवानश्वः **न** इव **या यह्वाः** महत्यः **घृतस्य** विज्ञानस्य **धाराः** वाचः **पतयन्ति** पतन्ति=गच्छन्ति, **ता यूयं विजानीत** ॥ १७ । ९५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो!—(प्राध्वने) उत्तम मार्ग में (सिन्धोरिव) नदियों के समान (शूघनासः) शीघ्रगामी, (वातप्रमियः) वायु के द्वारा जानने योग्य, (काष्ठाः) संग्राम के प्रदेशों का (भिन्दन्) विदारण करते हुए, (ऊर्मिभिः) शत्रुओं के भेदन से उत्पन्न श्रम के स्वेद-जल से (पिन्वमानः) सींचे हुए, (अरुषः) मार्ग को प्राप्त होने वालों (वाजी) वेगवान् अश्व के (न) समान जो (यह्वाः) महान् (घृतस्य) विज्ञान की (धाराः) वाणियाँ (पतयन्ति) प्राप्त होती हैं, उन्हें तुम जानो ॥ १७ । ९५ ॥

[सिन्धोरिव शूघनासः, वाजी न, काष्ठा भिन्दन् न, या यह्वा घृतस्य धाराः पतयन्ति]

भावार्थः—अत्राप्युपमाद्वयम् ॥ ये नदीवत् कार्यसिद्धये तूर्णगामिनो ऽश्ववद् वेगवन्तः, सर्वासु दिक्षु प्रवृत्तकीर्त्तयो जनाः परोपकारायोपदेशेन महान्ति दुःखानि सहन्ते ते, तेषां श्रोतारश्च जगत्स्वामिनो भवन्ति; नेतरे ॥ १७ । ९५ ॥

भावार्थ—यहाँ भी दो उपमाएँ हैं ॥ जो नदी के समान—कार्यसिद्धि के लिए शीघ्रगामी, घोड़े के समान वेगवान्, सब दिशाओं में कीर्तिमान् मनुष्य परोपकार के लिए उपदेश के कारण महान् दुःखों को सहन करते हैं वे और उनके श्रोता लोग जगत् के स्वामी होते हैं; दूसरे नहीं ॥ १७ । ९५ ॥

भा० पदार्थः—सिन्धोरिव=नदीवत् । शूघनासः=तूर्णगामिनः । वाजी=अश्ववद् वेगवान् ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसी वाणियों का प्रयोग करें**—सब मनुष्य नदियों की तरह सन्मार्ग पर चलने वाली, प्राणधारियों से सरलता से जानने योग्य, संग्राम में व्याप्तशील अश्व की तरह पूरे अर्थ को बताने में समर्थ, और सारयुक्त होने से महत्त्व वाली तेजस्विनी वाणियों का प्रयोग किया करें। ऐसी वाणी दूसरों पर अत्यन्त प्रभावशील होती हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। विद्वान् मनुष्य नदियों की तरह शीघ्र गति (**ज्ञान**) वाली और घोड़े की तरह अर्थ बोध में समर्थ वाणी का प्रयोग किया करें ॥ १७ । ९५ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः=मनुष्यः** । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो ऽअग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥ ९६ ॥

पदार्थः—(**अभि**) (**प्रवन्त**) गच्छन्ति । लङ्यडभावः । (**समनेव**) समानं मनो यासां ता इव । सुपां सुलुगिति विभक्तेर्डादेशः (**योषाः**) स्त्रियः (**कल्याण्यः**) कल्याणाचरणशीलाः (**स्मयमानासः**) किञ्चिद्धासेन प्रसन्नताकारिण्यः (**अग्निम्**) तेजस्विनं विद्वांसम (**घृतस्य**) शुद्धस्य ज्ञानस्य (**धाराः**) वाचः (**समिधः**) शब्दार्थसम्बन्धैः सम्यग् दीपिताः (**नसन्त**) प्राप्नुवन्ति । नसत इति गतिकर्मा ॥ निघं० २ । १४ ॥

(ताः) (जुषाणः) सेवमानः **(हर्यति)** कामयते । **हर्यतीति कान्तिकर्मा० ॥ निघं० २ । ६ ॥ (जातवेदाः)** जातं वेदो=विज्ञानं यस्य सः ॥ ९६ ॥

प्रमाणार्थ—**(प्रवन्त)** यहाँ लङ् लकार में अट्-आगम का अभाव है । **(समनेव)** यहाँ 'सुपां सुलुक्०' से (७ । १ । ३९) से विभक्ति को डा-आदेश है । **(नसन्त)** प्राप्नुवन्ति । यह क्रिया निघं० २ । १४ में गति-अर्थक धातुओं में पठित है । **(हर्यति)** कामयते । यह क्रिया निघं० २ । ६ में कान्ति-अर्थक धातुओं में पठित है । कान्ति=कामना ॥

अन्वयः—स्मयमानासः कल्याण्यः समनेव योषा याः समिधो घृतस्य धारा अग्निमभिप्रवन्त नसन्त च ता जुषाणो जातवेदा हर्यति ॥ ९६ ॥

सपदार्थान्वयः — **स्मयमानासः** किञ्चिद्धासेन प्रसन्नताकारिण्यः **कल्याण्यः** कल्याणाचरणशीलाः **समनेव** समानं मनो यासां ता इव **योषाः** स्त्रियः, **याः समिधः** शब्दार्थ-सम्बन्धैः सम्यग् दीपिताः **घृतस्य** शुद्धस्य ज्ञानस्य **धाराः** वाचः **अग्नि** तेजस्विनं विद्वांसम् **अभिप्रवन्त** गच्छन्ति **नसन्त** प्राप्नुवन्ति **च, ता जुषाणः** सेवमानः **जातवेदाः** जातं वेदो=विज्ञानं यस्य सः **हर्यति** कामयते ॥ १७ । ९६ ॥

भाषार्थ—(स्मयमानासः) थोड़ा हंसकर प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, (कल्याण्यः) कल्याण-मय आचरण वाली (समनेव) एक मन वाली (योषाः) स्त्रियों के समान जो (समिधः) शब्द, अर्थ और सम्बन्ध से प्रकाशित, (घृतस्य) शुद्ध ज्ञान की (धाराः) वाणियाँ (अग्निम्) तेजस्वी विद्वानों के पास (अभिप्रवन्त) जाती हैं और (नसन्त) प्राप्त होती हैं उनकी (जुषाणः) सेवक (जातवेदाः) विज्ञानवान् विद्वान् (हर्यति) कामना करता है ॥ १७ । ९६ ॥

[स्मयमानासः कल्याण्यः समनेव योषाः]

भावार्थः--अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा प्रसन्नचित्ता हर्षं प्राप्ताः सौभाग्यवत्यः स्त्रियः स्व-स्वपतीन् प्राप्नुवन्ति, तथैव—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे—प्रसन्न चित्त वाली, हर्ष को प्राप्त, सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों को प्राप्त करती हैं, वैसे ही—

[समिधो घृतस्य धारा अग्नि``` नसन्त]

विद्याविज्ञानाभरणभूषिता वाचो विद्वांसं प्राप्नुवन्ति ॥ १७ । ९६ ॥

विद्या और विज्ञान के आभूषणों से विभूषित वाणियाँ विद्वान् को प्राप्त होती हैं ॥

भा० पदार्थः—स्मयमानासः=प्रसन्नचित्ताः । कल्याण्यः=सौभाग्यवत्यः । समना=हर्षं प्राप्ताः । समिधः=विद्याविज्ञानाभरणभूषिताः **(वाचः)** ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसी वाणी का प्रयोग करें ?**—विज्ञानवान् मनुष्य शब्द अर्थ और सम्बन्ध से प्रकाशित, दूसरों को प्रसन्न करने वाली, कल्याण करने वाली, छल कपट से रहित और ज्ञान से शुद्ध वाणी का प्रयोग किया करें । ऐसी वाणियाँ सदा तेजस्विनी होने के कारण कामनाओं की पूर्ति करती हैं ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे स्त्रियाँ पतियों को मधुरादि गुणों से प्रसन्न करती हैं, वैसे ही मनुष्य वाणी का प्रयोग किया करें ॥ १७ । ९६ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः**=मनुष्यः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का प्रयोग करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

कन्याऽइव वहतुमेतवा ऽ उँ ऽ अञ्ज्यञ्जाना ऽ अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा ऽ अभि तत्पवन्ते ॥ ९७ ॥

पदार्थः—(**कन्याऽइव**) कुमार्य्य इव (**वहतुम्**) वहति=प्राप्नोति स्त्रियमिति वहतुर्भर्त्ता तम् (**एतवै**) प्राप्तुम् (**उ**) वितर्के (**अञ्जि**) कमनीयरूपम् (**अञ्जानाः**) ज्ञापयन्त्यः (**अभि**) (**चाकशीमि**) पुनः पुनः प्राप्नोमि (**यत्र**) (**सोमः**) ऐश्वर्यसमूहः (**सूयते**) उत्पद्यते (**यत्र**) (**यज्ञः**) (**घृतस्य**) विज्ञानस्य (**धाराः**) (**अभि**) सर्वतः (**तत्**)(**पवन्ते**) पवित्रीभवन्ति ॥ १७ । ९७ ॥

अन्वयः—अञ्ज्यञ्जाना वहतुमेतवै कन्या इव यत्र सोमः सूयते उ यत्र च यज्ञस्तद्या घृतस्य धारा अभिपवन्ते ता अहमभि चाकशीमि ॥ १७ । ९७ ॥

सपदार्थान्वयः—**अञ्जि** कमनीयरूपम् **अञ्जानाः** ज्ञापयन्त्यः **वहतुं** वहति=प्राप्नोति स्त्रियमिति वहतुर्भर्त्ता तम् **एतवै** प्राप्तुं **कन्या इव** कुमार्य इव **यत्र सोमः** ऐश्वर्यसमूहः **सूयते** उत्पद्यते, **उ** सवितर्कं **यत्र च यज्ञस्तद्या घृतस्य** विज्ञानस्य **धारा अभिपवन्ते** सर्वतः पवित्रीभवन्ति, **ता अहमभिचाकशीमि** पुनः पुनः प्राप्नोमि ॥ १७ । ९७ ॥

भाषार्थ—(अञ्जि) सुन्दर रूप को (अञ्जानाः) प्रकट करती हुई, (वहतुम्) स्त्री को प्राप्त करने वाले=भर्ता को (एतवै) प्राप्त करने के लिए (कन्या इव) कुमारियों के समान (यत्र) जहाँ (सोमः) ऐश्वर्य का समूह (सूयते) उत्पन्न होता है, और (यत्र) जिसमें (यज्ञः) यज्ञ विद्यमान है (तत्) तथा—जो (घृतस्य) विज्ञान की (धाराः) वाणियाँ (अभिपवन्ते) सब ओर से पवित्र कर रही हैं उन्हें मैं—(अभिचाकशीमि) बार-बार प्राप्त करता हूँ ॥ १७ । ९७ ॥

[वहतुमेतवै कन्या इव]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। यथा कन्याः स्वयंवरविधानेन स्वाभीष्टान् पतीन् स्वीकृत्य शोभन्ते तथा—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जैसे—कन्याएँ स्वयंवर करके अपने अभीष्ट पतियों को स्वीकार करके शोभा पाती हैं वैसे—

[यत्र सोमः सूयते, यत्र च यज्ञस्तद् या घृतस्य धारा अभिपवन्ते]

ऐश्वर्योत्पत्त्यवसरे यज्ञसमृद्धौ च विदुषां वाचः पवित्रास्सत्यः शोभन्ते ॥ १७ । ९७ ॥

ऐश्वर्य की उत्पत्ति के अवसर पर और यज्ञ की समृद्धि में विद्वानों की वाणियाँ पवित्र होकर शोभा पाती हैं ॥ १७ । ९७ ॥

भा० पदार्थः—वहतुम्=स्वाभीष्टं पतिम् । धाराः=विदुषां वाचः ।

भाष्यसार—**१. मनुष्य कैसी वाणी बोलें ?**—जैसे रूपवती कन्याएँ ऐश्वर्य के **(सौभाग्य)** लिए अभीष्ट पतियों को प्राप्त करती हैं, वैसे ही मनुष्य संगमनीय व्यवहार की सिद्धि के लिए तथा ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए ज्ञान-पूत वाणियों का प्रयोग किया करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। विद्वानों की वाणियाँ उसी प्रकार शोभा पाती हैं, जैसे कन्याएँ स्वयंवर करके अभीष्ट पतियों से शोभा पाती हैं ॥ १७ । ९७ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः**=मनुष्यः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विवाहितैः स्त्रीपुरुषैः किं कार्यमित्याह ॥

विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ९८ ॥

पदार्थः—(**अभि**) सर्वतः (**अर्षत**) प्राप्नुत (**सुष्टुतिम्**) शोभनां प्रशंसाम् (**गव्यम्**) गवि=वाचि भवं बोधं धेनौ भवं दुग्धादिकं वा (**आजिम्**) अजन्ति=जानन्ति सुकर्माणि येन तं संग्रामम् । इणजादिभ्य इतीण् प्रत्ययः । (**अस्मासु**) (**भद्रा**) कल्याणकराणि (**द्रविणानि**) (**धत्त**) (**इमम्**) (**यज्ञम्**) संगन्तव्यं गृहाश्रमव्यवहारम् (**नयत**) प्रापयत (**देवता**) विद्वांसः । अत्र सुपां सुलुगिति जसो लुक् । (**नः**) अस्मान् (**घृतस्य**) प्रदीप्तस्य विज्ञानस्य सम्बन्धिन्यः (**धाराः**) सुशिक्षिता वाचः (**मधुमत्**) बहु मधु विद्यते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा (**पवन्ते**) प्राप्नुवन्ति ॥ ९८ ॥

प्रमाणार्थ—(**आजिम्**) यहाँ 'इणजादिभ्यः' इससे इण् प्रत्यय है । (**देवता**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । ३ । ३९) से 'जस्' प्रत्यय का लुक् है ॥

अन्वयः—हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयमुत्तमाचारेण सुष्टुतिमाजिं गव्यं चाभ्यर्षत देवताऽस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त न इमं यज्ञं नयत या घृतस्य धारा विदुषो मधुमत्पवन्ते ता अस्मान्नयत ॥ ९८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रीपुरुषाः** ! **यूयमुत्तमाचारेण सुष्टुतिं** शोभनां प्रशंसाम् **आजिम्** अजन्ति=जानन्ति सुकर्माणि येन तं सङ्ग्रामं **गव्यं** गवि=वाचि भवं बोधं धेनौ भवं दुग्धादिकं वा **चाभ्यर्षत** सर्वतः प्राप्नुत ।

देवता विद्वांसः **अस्मासु भद्रा** कल्याणकराणि **द्रविणानि धत्त** । **नः** अस्मान् **इमं यज्ञं** सङ्गन्तव्यं गृहाश्रमव्यवहारं **नयत** प्रापयत ।

या घृतस्य प्रदीप्तस्य विज्ञानस्य सम्बन्धिन्यः **धाराः** सुशिक्षिता वाचः **विदुषो मधुमत्** बहु मधु विद्यते यस्मिंस्तद् यथा स्यात्तथा **पवन्ते** प्राप्नुवन्ति, **ता अस्मान्नयत** ॥ १७ । ९८ ॥

भाषार्थ—हे स्त्री-पुरुषो ! तुम—उत्तम आचार से (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को, (आजिम्) सुकर्मों को जनाने वाले संग्राम को, और (गव्यम्) गौ=वाणी में विद्यमान बोध को अथवा गौ=धेनु में विद्यमान दुग्ध आदि को (अभ्यर्षत) सब ओर से प्राप्त करो ।

(देवता) विद्वान् लोग (अस्मासु) हम में (भद्राः) कल्याणकारी (द्रविणानि) पदार्थों को (धत्त) स्थापित करें । और—(नः) हमें (इमम्) इस (यज्ञम्) संग के योग्य गृहाश्रम के व्यवहार को (नयत) प्राप्त करावें ।

जो (घृतस्य) प्रदीप्त विज्ञान से सम्बन्धित (धाराः) सुशिक्षित वाणियाँ (विदुषः) विद्वानों को (मधुमत्) अत्यन्त मधुमती होकर (पवन्ते) प्राप्त होती हैं; उन्हें हमें प्राप्त कराओ ॥१७।९८॥

[हे स्त्रीपुरुषाः ! यूयमुत्तमाचारेण सुष्टुतिम्'''अभ्यर्षत]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषैः सखिभिर्भूत्वा जगति प्रख्यातैर्भवितव्यम् ।

भावार्थ—स्त्री-पुरुष सखा होकर जगत् में प्रसिद्ध हों ।

[देवता अस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त]

यथा स्वेभ्यस्तथाऽन्येभ्योऽपि कल्याणकारकाणि द्रव्याण्युन्नेयानि ।

जैसे अपने लिए वैसे दूसरों के लिए भी कल्याणकारक पदार्थों को उन्नत करें ।

[न इमं यज्ञं नयत]

परमपुरुषार्थेन गृहाश्रमस्य शोभा कर्त्तव्या ।

परम पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा बढ़ावें ।

[या घृतस्य धारा विदुषो'''पवन्ते, ता अस्मान् नयत]

वेदविद्या सततं प्रचारणीया च ॥

और—वेद-विद्या का निरन्तर प्रचार करें ॥

भा० पदार्थः—सुष्टुतिम्=प्रख्यातिम् । द्रविणानि=द्रव्याणि । धत्त=उन्नयत । धाराः=वेदविद्याः ।

भाष्यसार—**स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य**—गृहस्थी स्त्री-पुरुष सदाचारी होकर सुकर्मों में ही रत रहें, उनकी वाणियाँ ज्ञानयुक्त हों, उनके घरों में गायादि दुधारु पशु हों । गृहस्थाश्रम में सुखों की वृद्धि के लिए विद्वान् पुरुष कल्याणकारी व्यवहारों को तथा पदार्थों को बढ़ावें, और विद्वानों के समान वाणियों में मधुरतादि गुण हों तथा उनकी वाणियों में तेज विद्यमान रहे ॥ १७ । ९८ ॥

वामदेवः । **यज्ञपुरुषः=ईश्वरो राजा च** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथेश्वरराजविषयमाह ॥

अब ईश्वर और राजा विषय का उपदेश किया है ॥

धाम॑न्ते॒ विश्वं॒ भुव॑न॒मधि॒ श्रि॒तम॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्य॒न्तरायु॑षि ।
अ॒पामनी॑के समि॒थे य ऽ आभृ॑त॒स्तम॑श्याम॒ मधु॑मन्तं त ऽ ऊ॒र्मिम् ॥ ९९ ॥

पदार्थः—(**धामन्**) दधाति यस्मिंस्तस्मिन् (ते) तव (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) भवन्ति भूतानि यस्मिन् (**अधि**) (**श्रितम्**) (**अन्तः**) मध्ये (**समुद्रे**) आकाशमिव व्याप्तस्वरूपे (**हृदि**) हृदये (**अन्तः**) मध्ये (**आयुषि**) जीवनहेतौ (**अपाम्**) प्राणानाम् (**अनीके**) सैन्ये (**समिथे**) संग्रामे (यः) संभारः (**आभृतः**) समन्ताद्धृतः (**तम्**) (**अश्याम**) प्राप्नुयाम (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तमधुरादिगुणोपेतम् (ते) तव (**ऊर्मिम्**) बोधम् ॥ ९९ ॥

अन्वयः—हे जगदीश ! यस्य ते धामन्नन्तः समुद्रे विश्वं भुवनमधिश्रितं तद्वयमश्याम । हे सभापते ! तेऽपामन्तर्हृद्यायुष्यपामनीके समिथे यः सम्भार आभृतस्तं मधुमन्तमूर्मिं च वयमश्याम ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश ! **यस्य ते** तव **धामन्** दधाति यस्मिंस्तस्मिन् **अन्तः** मध्ये **समुद्रे** आकाशमिव व्याप्तस्वरूपे **विश्वं** सर्वं **भुवनं** भवन्ति भूतानि यस्मिन् **अधिश्रितं तद् वयमश्याम** प्राप्नुयाम ।

भाषार्थ—हे जगदीश ! (ते) तेरे (धामन्) धाम=सृष्टि के (अन्तः) मध्य में एवं (समुद्रे) आकाश के समान व्यापक स्वरूप में (विश्वम्) सब (भुवनम्) लोक (अधिश्रितम्) विद्यमान हैं सो आपको हम (अश्याम) प्राप्त करें ।

हे **सभापते** ! **ते** तव **अपां** प्राणानाम् **अन्तः** मध्ये **हृदि** हृदये **आयुषि** जीवनहेतौ **अपां** प्राणानाम् **अनीके** सैन्ये **समिथे** सङ्ग्रामे **यः**=**सम्भार आभृतः** समन्ताद्धृतः **तं मधुमन्तं** प्रशस्तमधुरादिगुणोपेतम् **ऊर्मि** बोधं **च वयमश्याम** प्राप्नुयाम ॥

हे सभापति ! (ते) तेरे (अपाम्) प्राणों के (अन्तः) मध्य में, (हृदि) हृदय में, (आयुषि) आयु=जीवन में (अपाम्) प्राणियों की (अनीके) सेना में तथा (समिथे) संग्राम में (यः) जो संभार=सामग्री (आभृतः) सब ओर विद्यमान है उसे (मधुमन्तम्) उत्तम मधुर आदि गुणों से युक्त संभार को और (ऊर्मिम्) बोध=ज्ञान को हम (अश्याम) प्राप्त करें ॥ १७ । ९९ ॥

[हे जगदीश ! यस्य ते धामन्नन्तः समुद्रे विश्वं भुवनमधिश्रितं तद् वयमश्याम]

भावार्थः—मनुष्यैर्जगदीश्वरसृष्टौ परमप्रयत्नेन सख्युन्नतिः कार्या,

भावार्थ—मनुष्य जगदीश्वर की सृष्टि में सखा=मित्रों की उन्नति करें ।

[आयुषि···यः सम्भार आभृतस्तं मधुमन्तमूर्मि च वयमश्याम]

सर्वाः सामग्रीर्धृत्वा युक्ताहारविहारेण शरीरारोग्यं सन्तत्य स्वेषामन्येषां चोपकारः कार्य इति शम् ॥ १७ । ९९ ॥

सब सामग्री को धारण करके युक्त आहार-विहार से शरीर को नीरोग करके अपनों और दूसरों का उपकार करें ॥ इति शम् ॥ १७ । ९९ ॥

भा० पदार्थः—धामन्=सृष्टौ । आयुषि=युक्ताहारविहारेण शरीरारोग्यसन्ताने ॥

भाष्यसार—ईश्वर और श्रेष्ठ राजा को प्राप्त करें—ईश्वर आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है, उसी में सब लोकों का निवास है, उसी को सब मनुष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करें ।

और जो राजा अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण सबके मनों को प्रिय है और जो संग्राम में सब शस्त्रास्त्रों से संपन्न होकर प्राणियों की रक्षा करता है, उसकी संगति सब मनुष्य किया करें ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र सूर्यमेघगृहाश्रमगणितविद्येश्वरादिपदार्थविद्यावर्णनादेतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोद्धव्यमिति ॥

यहाँ सूर्य, मेघ, गृहाश्रम, गणित विद्या, ईश्वर आदि पदार्थ विद्या के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है; ऐसा समझें । इति ॥

श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे
अष्टादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

॥ ओ३म् ॥

ॐ अथ अष्टादशोऽध्यायारम्भः ॐ

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दु॒रि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं त॒न्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

देवाः । **अग्निः**=यज्ञः । शक्वरी । धैवतः ॥

तत्रादौ मनुष्यैर्यज्ञेन किं किं साधनीयमित्याह ॥

अब अठारहवें अध्याय का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को यज्ञ=ईश्वर वा धर्मानुष्ठानादि से क्या-क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्वर॑श्च मे॒ श्लोक॑श्च मे श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व॒श्च मे॒ य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

पदार्थः—(**वाजः**) अन्नम् (**च**) विज्ञानादिकम् (**मे**) मम (**प्रसवः**) ऐश्वर्यम् (**च**) तत्साधनानि (**मे**) (**प्रयतिः**) प्रयतते येन सः । **अत्र सर्वधातुभ्य० इत्यौणादिक इ-प्रत्ययः ।** (**च**) तत्साधनम् (**मे**) (**प्रसितिः**) प्रबन्धः (**च**) रक्षणम् (**मे**) (**धीतिः**) धारणा (**च**) ध्यानम् (**मे**) (**क्रतुः**) प्रज्ञा (**च**) उत्साहः (**मे**) (**स्वरः**) स्वयं राजमानं स्वातन्त्र्यम् (**च**) परं तपः (**मे**) (**श्लोकः**) प्रशंसिता शिक्षिता वाक् । **श्लोक इति वाङ्ना० ॥ निघं० १ । ११ ॥** (**च**) वक्तृत्वम् (**मे**) (**श्रवः**) श्रवणम् (**च**) श्रावणम् (**मे**) (**श्रुतिः**) शृण्वन्ति सकला विद्या यया सा वेदाख्या (**च**) तदनुकूला स्मृतिः (**मे**) (**ज्योतिः**) विद्याप्रकाशः (**च**) अन्यस्मै विद्याप्रकाशनम् (**मे**) (**स्वः**) सुखम् (**च**) परमसुखम् (**मे**) (**यज्ञेन**) पूजनीयेन परमेश्वरेण जगदुपकारकेण व्यवहारेण वा (**कल्पन्ताम्**) समर्था भवन्तु ॥ १८ । १ ॥

प्रमाणार्थ—(**प्रयतिः**) यहाँ 'सर्वधातुभ्य 'इः' इससे औणादिक 'इ' प्रत्यय है । (**श्लोकः**) यह पद निघं० १ । ११ में वाक्-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—मे वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ । १ ॥

सपदार्थान्वयः—मे वाजः अन्नं च

भाषार्थ—(मे) मेरा (वाजः) अन्न (च)

विज्ञानादिकं, **मे** मम **प्रसवः** ऐश्वर्यं **च** तत्साधनानि, **मे** मम **प्रयतिः** प्रयतते येन सः **च** तत्साधनं, **मे** मम **प्रसितिः** प्रबन्धः **च** रक्षणं, **मे** मम **धीतिः** धारणा **च** ध्यानं, **मे** मम **क्रतुः** प्रज्ञा **च** उत्साहः, **मे** मम **स्वरः** स्वयं राजमानं स्वातन्त्र्यं **च** परं तपः, **मे** मम **श्लोकः** प्रशंसिता शिक्षिता वाक् **च** वक्तृत्वं, **मे** मम **श्रवः** श्रवणं **च** श्रावणं, **मे** मम **श्रुतिः** शृण्वन्ति सकला विद्या यया सा वेदाख्या **च** तदनुकूला स्मृतिः, **मे** मम **ज्योतिः** विद्याप्रकाशः **च** अन्यस्मै विद्याप्रकाशनं, **मे** मम **स्वः** सुखं **च** परमसुखं, **यज्ञेन** पूजनीयेन परमेश्वरेण जगदुपकारकेण व्यवहारेण वा **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु ।। १८ । १ ।।

और विज्ञान आदि, (मे) मेरा (प्रसवः) ऐश्वर्य (च) और उसके साधन, (मे) मेरा (प्रयतिः) प्रयत्न (च) और उसके साधन, (मे) मेरा (प्रसितिः) प्रबन्ध और रक्षा, (मे) मेरी (धीतिः) धारणा (च) और ध्यान, (मे) मेरी (क्रतुः) प्रज्ञा (च) और उत्साह, (मे) मेरी (स्वरः) स्वतन्त्रता (च) और महान् तप, (मे) मेरी (श्लोकः) प्रशंसित शिक्षित वाणी (च) और वक्तृता, (मे) मेरा (श्रवः) सुनना (च) और सुनाना (मे) मेरी (श्रुतिः) वेद-विद्या (च) और उसके अनुकूल स्मृति, (मे) मेरा (ज्योतिः) विद्याप्रकाश (च) और दूसरों के लिए विद्या का प्रकाशन, (मे) मेरा (स्वः) सुख (च) और परम सुख (यज्ञेन) पूजनीय परमेश्वर वा जगत् के उपकारक व्यवहार से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ।।१८।१।।

[मे वाजश्च···यज्ञेनकल्पन्ताम्]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! युष्माभिरन्नाद्येन सर्वसुखाय यज्ञ उपासनीयः साधनीयश्च यतः सर्वेषां मनुष्यादीनामुन्नतिर्भवेत् ।। १८ । १ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—अन्न आदि से सबके सुख के लिए यज्ञ की उपासना करो और उसे सिद्ध करो जिससे मनुष्य आदि की उन्नति हो ।। १८ । १ ।।

अन्यत्र व्याख्यात—(**वाजश्च मे०**) इत्यादि शुक्ल यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में मन्त्र, ईश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करने के ही विधान में हैं अर्थात् सबसे उत्तम मोक्ष-सुख से ले के अन्न, जल पर्यन्त सब पदार्थों की याचना मनुष्यों को केवल ईश्वर ही से करनी चाहिए (**ऋग्वेदादि० उपासना विषय**) ।।

भाष्यसार—**यज्ञ से लाभ**—यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की संगति और उपकारक व्यवहार से सांसारिक अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति होती ही है और यज्ञ से मनुष्यों के प्रयत्न उत्साहित होने से उन्नति करते हैं। प्रज्ञा, तप, विद्या, ऐश्वर्य, सुख आदि बढ़ जाते हैं। यज्ञ से वाणी प्रशंसा को प्राप्त करती है ।। १८ । १ ।।

देवाः । **प्रजापतिः=धर्मः** । अतिजगती । निषादः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को यज्ञ=धर्मानुष्ठान से क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। २ ।।

पदार्थः—(**प्राणः**) हृदिस्थो वायुः (**च**) उदानः कण्ठदेशस्थः पवनः (**मे**) (**अपानः**) नाभेरधोगामी वातः (**च**) समानो नाभिसंस्थितो वायुः (**मे**) (**व्यानः**) शरीरस्य सर्वेषु संधिषु व्याप्तः पवनः (**च**)

धनञ्जयः (मे) (असुः) नागादिर्मरुत् (च) अन्ये वायवः (मे) (चित्तम्) स्मृतिः (च) बुद्धिः (मे) (आधीतम्) समन्ताद्धृतिर्निश्चयवृत्तिः (च) रक्षितम् (मे) (वाक्) वाणी (च) श्रवणम् (मे) (मनः) संकल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः (च) अहङ्कारः (मे) (चक्षुः) चक्षे=पश्यामि येन तन्नेत्रम् (च) प्रत्यक्षप्रमाणम् (मे) (श्रोत्रम्) शृणोमि येन तत् (च) आगमप्रमाणम् (मे) (दक्षः) चातुर्य्यम् (च) सामयिकं भानम् (मे) (बलम्) (च) पराक्रमः (मे) (यज्ञेन) धर्मानुष्ठानेन (कल्पन्ताम्) ॥ २ ॥

अन्वयः—मे प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च यज्ञेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे** प्राणः हृदिस्थो वायुः **च** उदानः कण्ठदेशस्थः पवनः, **मेऽपानः** नाभेरधोगामी वातः **च** समानो नाभिसंस्थितो वायुः, **मे व्यानः** शरीरस्य सर्वेषु सन्धिषु व्याप्तः पवनः **च** धनञ्जयः, **मेऽसुः** नागादिर्मरुत् **च** अन्ये वायवः, **मे चित्तं** स्मृतिः **च** बुद्धिः, **म आधीतं** समन्ताद्धृतिर्निश्चयवृत्तिः **च** रक्षितं, **मे वाक्** वाणी **च** श्रवणं, **मे मनः** संकल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः **च** अहङ्कारः, **मे चक्षुः** चक्षे=पश्यामि येन तन्नेत्रं **च** प्रत्यक्षप्रमाणं, **मे श्रोत्रं** शृणोमि येन तत् **च** आगमप्रमाणं **मे दक्षः** चातुर्य्यं **च** सामयिकं भानं, **मे बलं च** पराक्रमः **यज्ञेन** धर्मानुष्ठानेन **कल्पन्तां**=**समर्था भवन्तु** ॥ १८ । २ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (प्राणः) हृदय में स्थित वायु (च) और कण्ठदेश में स्थित पवन, (मे) मेरा (अपानः) नाभि से अधोगामी वायु (च) और समान नाभि में स्थित वायु, (मे) मेरा (व्यानः) शरीर की सब सन्धियों में व्याप्त वायु (च) और धनञ्जय, (मे) मेरा (असुः) नाग आदि वायु (च) और अन्य वायु, (मे) मेरा (चित्तम्) स्मृति (च) और बुद्धि, (मे) मेरी (आधीतम्) निश्चयवृत्ति (च) और रक्षा, (मे) मेरी (वाक्) वाणी (च) और उसको सुनना (मे) मेरा (मनः) संकल्प विकल्प आत्मक वृत्ति (च) और अहंकार, (मे) मेरा (चक्षुः) नेत्र (च) और प्रत्यक्ष प्रमाण, (मे) मेरा (श्रोत्रम्) श्रोत्र=कान (च) और आगम प्रमाण, (मे) मेरी (दक्षः) चतुरता (च) सामयिक प्रतिभा, (मे) मेरा (बलम्) बल (च) और पराक्रम (यज्ञेन) धर्माचरण से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १८ । २ ॥

[मे प्राणश्च···यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्याः ससाधनान् प्राणादीन् धर्मानुष्ठानाय नियोजयन्तु ॥ १८ । २ ॥

भावार्थ—मनुष्य साधनों सहित प्राण आदिकों को धर्माचरण के लिए लगावें ॥

भाष्यसार—**धर्म मनुष्यों की उन्नति का साधन**—मनुष्यों को यज्ञ=धर्मानुष्ठान करने से प्राण-शक्ति, स्मृति, बुद्धि, वाणी, श्रवण-शक्ति, नेत्र-शक्ति और सब प्रकार का ज्ञान वृद्धि को प्राप्त करना है ॥ १८ । २ ॥

देवाः । **प्रजापतिः**=**ईश्वरः** । स्वराडतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=ईश्वर से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

ओज॑श्च मे॒ सह॑श्च म ऽ आ॒त्मा च॑ मे त॒नूश्च॑ मे॒ शर्म॑ च मे॒ वर्म॑ च॒ मेऽङ्गा॑नि च॒ मेऽस्थी॑नि च मे॒ परू॑ꣳषि च मे॒ शरी॑राणि च म॒ऽआयु॑श्च मे ज॒रा च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**ओजः**) शरीरस्थं तेजः (**च**) सेना (**मे**) (**सह**) शरीरं बलम् (**च**) मानसम् (**मे**) (**आत्मा**) स्वस्वरूपम् (**च**) स्वसामर्थ्यम् (**मे**) (**तनूः**) शरीरम् (**च**) सम्बन्धिनः (**मे**) (**शर्म**) गृहम् (**च**) गृह्याः पदार्थाः (**मे**) (**वर्म**) रक्षकं कवचम् (**च**) शस्त्रास्त्राणि (**मे**) (**अङ्गानि**) (**च**) उपाङ्गानि (**मे**) (**अस्थीनि**) (**च**) अन्यान्तरङ्गानि (**मे**) (**परूंषि**) मर्मस्थलानि (**च**) जीवन-निमित्तानि (**मे**) (**शरीराणि**) मत्सम्बन्धिनां देहाः (**च**) सूक्ष्मा देहावयवाः (**मे**) (**आयुः**) जीवनम् (**च**) जीवनसाधनानि (**मे**) (**जरा**) वृद्धावस्था (**च**) युवावस्था (**मे**) (**यज्ञेन**) सत्कर्त्तव्येन परमातमना (**कल्पन्ताम्**) ॥ १८ । ३ ॥

अन्वयः—मे ओजश्च मे सहश्च म आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूंषि च मे शरीराणि च मे आयुश्च मे जरा च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ । ३ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे ओजः** शरीरस्थं तेजः **च** सेना, **मे सहः** शारीरं बलं **च** मानसं, **म आत्मा** स्वस्वरूपं **च** स्वसामर्थ्यं, **मे तनूः** शरीरं **च** सम्बन्धिनः, **मे शर्म** गृहं **च** गृह्याः पदार्थाः, **मे वर्म** रक्षकं कवचं **च** शस्त्रास्त्राणि, **मेऽङ्गानि च** उपाङ्गानि, **मेऽस्थीनि च** अन्यान्तरङ्गानि, **मे परूंषि** मर्मस्थलानि **च** जीवननिमित्तानि, **मे शरीराणि** मत्सम्बन्धिनां देहाः **च** सूक्ष्मा देहावयवाः, **मे आयुः** जीवनं **च** जीवनसाधनानि, **मे जरा** वृद्धावस्था **च** युवावस्था **यज्ञेन** सत्कर्त्तव्येन परमात्मना **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । ३ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (ओजः) शरीर में स्थित तेज (च) और सेना, (मे) मेरा (सहः) शारीरिक (च) और मानसिक बल, (मे) मेरा (आत्मा) आत्मा=अपना स्वरूप (च) और अपना सामर्थ्य, (मे) मेरा (तनूः) शरीर (च) और सम्बन्धी, (मे) मेरा (शर्म) घर (च) और घरके पदार्थ, (मे) मेरा (वर्म) रक्षक कवच (च) और शस्त्र-अस्त्र, (मे) मेरे (अङ्गानि) अङ्ग (च) और उपाङ्ग (मे) मेरी (अस्थीनि) हड्डियाँ (च) और अन्य आन्तरिक अङ्ग, (मे) मेरे (परूंषि) मर्म स्थल, (च) और जीवन के हेतु, (मे) मेरे (शरीराणि) सम्बन्धियों के शरीर (च) और शरीर के सूक्ष्म अवयव, (मे) मेरा (आयुः) जीवन, (च) और जीवन के साधन, (मे) मेरी (जरा) वृद्धावस्था (च) और युवावस्था (यज्ञेन) सत्कार के योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥ १८ । ३ ॥

[**मे ओजश्च······यज्ञेन कल्पन्ताम्**]

भावार्थः—राजपुरुषैः सबलाः सेनादयो धार्मिकरक्षणाय दुष्टताडनाय प्रवर्त्तनीयाः ॥१८।३॥

भावार्थ—राजपुरुष—सबल सेना आदि को धार्मिक की रक्षा और दुष्टों के ताड़न के लिए लगावें ॥ १८ । ३ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर की उपासना से लाभ**—यज्ञ=ईश्वर की संगति करने से शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बलों की वृद्धि होती है। अतः मनुष्यों को प्रत्येक अवस्था में जीवन के हेतु ओजादि को बढ़ाकर उन्नति करने के लिए ईश्वर की उपासना करनी चाहिए ॥ १८ । ३ ॥

देवाः । **प्रजापतिः**=धर्मः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=धर्मपालन आदि से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

ज्यैष्ठ्यं च म॒ऽआधिपत्यं च मे म॒न्युश्च मे॒ भामश्च॒ मेऽमश्च॒ मेऽम्भश्च मे जे॒मा च॑ मे महि॒मा च॑ मे वरि॒मा च॑ मे प्रथि॒मा च॑ मे वर्षि॒मा च॑ मे द्राघि॒मा च॑ मे वृ॒द्धं च॑ मे॒ वृद्धिश्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**ज्यैष्ठ्यम्**) प्रशस्यस्य भावः (**च**) उत्तमानि वस्तूनि (**आधिपत्यम्**) अधिपतेर्भावः (**च**) अधिपतिः (**मे**) (**मन्युः**) अभिमानः (**च**) शान्तिः (**मे**) (**भामः**) क्रोधः । **भाम इति क्रोधना० ॥ निघं० २ । १३ ॥** (**च**) सुशीलम् (**मे**) (**अमः**) न्यायेन प्राप्तो गृहादिपदार्थः (**च**) प्राप्तव्यः (**मे**) (**अम्भः**) उदकम् । **अम्भ इत्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**च**) दुग्धादिकम् (**मे**) (**जेमा**) जेतुर्भावः (**च**) विजयः (**मे**) (**महिमा**) महतो भावः (**च**) प्रतिष्ठा (**मे**) (**वरिमा**) वरस्य=श्रेष्ठस्य भावः (**च**) उत्तमाचरणम् (**मे**) (**प्रथिमा**) पृथोर्भावः (**च**) विस्तीर्णाः पदार्थाः (**मे**) (**वर्षिमा**) वृद्धस्य भावः (**च**) बाल्यम् (**मे**) (**द्राघिमा**) दीर्घस्य भावः (**च**) ह्रस्वत्वम् (**मे**) (**वृद्धम्**) प्रभूतं=बहुरूपं धनादिकम् (**च**) स्वल्पमपि (**मे**) (**वृद्धिः**) वर्द्धन्ते यया सत्क्रियया सा (**च**) तज्जन्यं सुखम् (**मे**) (**यज्ञेन**) धर्मपालनेन (**कल्पन्ताम्**) समर्था भवन्तु ॥ ४ ॥

प्रमाणार्थ—(**भामः**) क्रोधः । यह पद निघं० २ । १३ में क्रोध-नामों में पठित है । (**अम्भः**) उदकम् । यह पद निघं० १ । १२ में उदक=जल—नामों में पठित है ॥

अन्वयः—मे ज्यैष्ठ्यं च म आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे ज्यैष्ठ्यं** प्रशस्यस्य भावः **च** उत्तमानि वस्तूनि, **म आधिपत्यम्** अधिपतेर्भावः **च** अधिपतिः, **मे मन्युः** अभिमानः **च** शान्तिः, **मे भामः** क्रोधः **च** सुशीलं, **मेऽमः** न्यायेन प्राप्तो गृहादिपदार्थः **च** प्राप्तव्यः, **मेऽम्भः** उदकं **च** दुग्धादिकं, **मे जेमा** जेतुर्भावः **च** विजयः, **मे महिमा** महतो भावः **च** प्रतिष्ठा, **मे वरिमा** वरस्य=श्रेष्ठस्य भावः **च** उत्तमाचरणं, **मे प्रथिमा** पृथोर्भावः **च** विस्तीर्णाः पदार्था, **मे वर्षिमा** वृद्धस्य भावः **च** बाल्यं, **मे द्राघिमा** दीर्घस्य भावः **च** ह्रस्वत्वं, **मे वृद्धं** प्रभूतं=बहुरूपं धनादिकं **च** स्वल्पमपि, **मे वृद्धिः** वर्द्धन्ते यया सत्क्रियया सा **च** तज्जन्यं सुखं **यज्ञेन** धर्मपालनेन **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु ॥१८ । ४॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (ज्यैष्ठ्यम्) प्रशंसनीयता (च) और उत्तम वस्तुएँ, (मे) मेरा (आधिपत्यम्) स्वामित्व (च) और अधिपति, (मे) मेरा (मन्युः) अभिमान (च) और शान्ति, (मे) मेरा (भामः) क्रोध (च) और सुशीलता, (मे) मेरे (अमः) न्याय से प्राप्त गृह आदि पदार्थ (च) और प्राप्त करने योग्य पदार्थ, (मे) मेरा (अम्भः) जल (च) और दुग्ध आदि पदार्थ, (मे) मेरा (जेमा) जेतृत्व (च) और विजय, (मे) मेरा (महिमा) महिमा (च) और प्रतिष्ठा, (मे) मेरी (वरिमा) श्रेष्ठता (च) और उत्तम आचरण, (मे) मेरी (प्रथिमा) विशालता (च) और विस्तृत पदार्थ, (मे) मेरा (वर्षिमा) बड़प्पन (च) और बचपन, (मे) मेरी (द्राघिमा) दीर्घता (च) और ह्रस्वता, (मे) मेरा (वृद्धम्)

बहुत रूप वाला धन आदि (च) और अल्प धन आदि, (मे) मेरी (वृद्धिः) वृद्धि का हेतु सत्क्रिया (च) और उससे उत्पन्न सुख (यज्ञेन) धर्म के पालन से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १८ । ४ ॥

[मे ज्यैष्ठ्यं च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—हे सखायो जनाः ! यूयं यज्ञ-सिद्धये, सर्वस्य जगतो हिताय च प्रशंसितानि वस्तूनि संयुङ्ध्वम् ॥ १८ । ४ ॥

भावार्थ—हे मित्र लोगो ! तुम—यज्ञ की सिद्धि और सब जगत् के हित के लिए प्रशंसित वस्तुओं को प्राप्त करो ॥ १८ । ४ ॥

भाष्यसार—**धर्मानुष्ठान से प्रापणीय गुण**—यज्ञ=प्रजापति धर्म है। धर्मानुष्ठान करने में मनुष्यों में प्रशंसनीय गुणों की प्राप्ति होती है, सर्वत्र विजय को प्राप्त करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है। चारों तरफ धर्मात्मा पुरुष की प्रशंसा होती है, उसकी महिमा बढ़ जाती है। वह सांसारिक सुखों के साधन दुग्धादि और घरादि को प्राप्त कर लेता है ॥ १८ । ४ ॥

देवाः । **प्रजापतिः=धर्मः** । अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=धर्मपालन से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

स॒त्यं च॑ मे श्र॒द्धा च॑ मे॒ जग॑च्च मे॒ धनं॑ च मे॒ विश्वं॑ च मे॒ मह॑श्च मे क्री॒डा च॑ मे॒ मोद॑-श्च मे जा॒तं च॑ मे जनि॒ष्यमा॑णं च॑ मे सू॒क्तं च॑ मे सुकृ॒तं च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**सत्यम्**) यथार्थम् (**च**) सर्वहितम् (**मे**) (**श्रद्धा**) श्रत्=सत्यं दधाति यया सा। श्रदिति सत्यना० ॥ निघं० ३ । १० ॥ (**च**) एतत् साधनानि (**मे**) (**जगत्**) यद् गच्छति तत् (**च**) एतत्स्थाः सर्वे पदार्थाः (**मे**) (**धनम्**) सुवर्णादिकम् (**च**) धान्यम् (**मे**) (**विश्वम्**) सर्वम् (**च**) अखिलोपकरणम् (**मे**) (**महः**) महत्त्वयुक्तं पूज्यं वस्तु (**च**) सत्कारः (**मे**) (**क्रीडा**) विहारः (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**मोदः**) हर्षः (**च**) परमानन्दः (**मे**) (**जातम्**) यावदुत्पन्नम् (**च**) यावदुत्पद्यते तावत् (**मे**) (**जनिष्यमाणम्**) उत्पत्स्यमानम् (**च**) यावत्तत्सम्बन्धि (**मे**) (**सूक्तम्**) सुष्ठुकथितम् (**च**) सुविचारितम् (**मे**) (**सुकृतम्**) पुण्यात्मकं सुष्ठुनिष्पादितं कर्म (**च**) एतत्साधनानि (**मे**) (**यज्ञेन**) सत्यधर्मोन्नतिकरणोपदेशाख्येन (**कल्पन्ताम्**) ॥ ५ ॥

प्रमाणार्थ—(श्रद्धा) 'श्रत्' यह पद निघं० ३ । १० में सत्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—मे सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनश्च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातश्च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे सत्यं** यथार्थं **च** सर्वहितं, **मे श्रद्धा** श्रत्=सत्यं दधाति यया सा **च** एतत्साधनानि, **मे जगत्** यद् गच्छति तत् **च** एतत्स्थाः सर्वे पदार्था, **मे धनं** सुवर्णादिकं **च** धान्यं, **मे विश्वं** सर्वं **च** अखिलोपकरणं, **मे महः** महत्त्व-

भाषार्थ—(मे) मेरा (सत्यम्) सत्य (च) और सबका हित, (मे) मेरी (श्रद्धा) श्रद्धा (च) और उसके साधन, (मे) मेरा (जगत्) जगत् (च) और जगत् के सब पदार्थ, (मे) मेरा (धनम्) सुवर्ण आदि धन (च) और धान्य, (मे) मेरा (विश्व) सब

युक्तं पूज्यं वस्तु **च** सत्कारः, **मे क्रीडा** विहारः **च** एतत्साधनं, **मे मोदः** हर्षः **च** परमानन्दः, **मे जातं** यावदुत्पन्नं **च** यावदुत्पद्यते तावत्, **मे जनिष्यमाणम्** उत्पत्स्यमानं **च** यावत्तत्सम्बन्धि, **मे सूक्तं** सुष्ठु-कथितं **च** सुविचारितं, **मे सुकृतं** पुण्यात्मकं सुष्ठु-निष्पादितं कर्म **च** एतत्साधनानि **यज्ञेन** सत्य-धर्मोन्नतिकरणोनोपदेशाख्येन **कल्पन्ताम्** ॥१८।५॥

(च) और सब उपकरण, (मे) मेरी (महः) महत्त्व से युक्त पूज्य वस्तु (च) और सत्कार, (मे) मेरी (क्रीडा) क्रीडा=विहार (च) और इसके साधन, (मे) मेरा (मोदः) हर्ष (च) और परम आनन्द, (मे) मेरा (जातम्) जितना उत्पन्न हुआ (च) और जितना उत्पन्न हो रहा है, (मे) मेरा (जनिष्य-माणम्) जितना उत्पन्न होगा (च) और जितना तत्सम्बन्धी पदार्थसमूह, (मे) मेरा (सूक्तम्) उत्तम वचन (च) और उत्तम विचार, (मे) मेरा (सुकृतम्) पुण्य रूप उत्तम रीति से किया हुआ कर्म (च) और इसके साधन (यज्ञेन) सत्यधर्म की उन्नति करने वाले उपदेश से (कल्पन्ताम्) समर्थ होवें ॥ १८ । ५ ॥

[ये सूक्तं च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्याध्ययनाध्यापन-श्रवणोपदेशान् कुर्वन्ति कारयन्ति च ते नित्यमुन्नता जायन्ते ॥ १८ । ५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्याध्ययन अध्यापन श्रवण और उपदेश करते और कराते हैं वे मनुष्य नित्य उन्नत होते हैं ॥ १८ । ५ ॥

भा० पदार्थः—सूक्तम्=विद्याध्ययनाध्यापनश्रवणोपदेशः ॥

भाष्यसार—**धर्म-पालन से क्या क्या प्राप्त होता है**—यज्ञ अर्थात् धर्मानुष्ठान करने से जीवन सर्वहितकारक सत्य को प्राप्त करता है, शुभ कर्मों के प्रति श्रद्धा पैदा होती है, संसार के सुवर्णादि धन तथा सब प्रकार के धान्यों की प्राप्ति से चिन्तारहित जीवन व्यतीत होता है। उसका सब सत्कार करते हैं। उसके मनोरञ्जन के साधनों की वृद्धि से हर्ष की वृद्धि होती है। उसकी वाणी में श्रेष्ठता, विचारों में पवित्रता और पुण्यकर्मों में रुचि बढ़ती है ॥ १८ । ५ ॥

देवाः । **प्रजापतिः=सत्यभाषणादिः** । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=सत्यभाषणादि से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**ऋतम्**) यथार्थविज्ञानम् (**च**) एतत्साधकम् (**मे**) (**अमृतम्**) स्वस्वरूपं मुक्तिसुखं यज्ञशिष्टमन्नं वा (**च**) पेयम् (**मे**) (**अयक्ष्मम्**) यक्ष्मादिरोगरहितं शरीरादिकम् (**च**) एतत्साधकं कर्म (**मे**) (**अनामयत्**) रोगादिरहितम् (**च**) एतत्साधकमौषधम् (**मे**) (**जीवातुः**) येन जीवन्ति यज्जीवयति वा (**च**) पथ्यादिकम् (**मे**) (**दीर्घायुत्वम्**) चिरायुषो भावः (**च**) ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिकम् (**मे**) (**अनमित्रम्**) अविद्यमानशत्रुः (**च**) पक्षपातरहितं कर्म (**मे**) (**अभयम्**) भयराहित्यम् (**च**) शौर्यम् (**मे**) (**सुखम्**) परमानन्दः प्रसन्नता (**च**) एतत्साधकं कर्म (**मे**) (**शयनम्**) (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**सूषाः**) शोभना उषा

यस्मिन् स कालः (**च**) एतत्संबन्धि कर्म (**मे**) (**सुदिनम्**) शोभनम् च तद्दिनं च तत् (**च**) एतदुपयोगि कर्म (**मे**) (**यज्ञेन**) सत्यभाषणादिव्यवहारेण (**कल्पन्ताम्**) समर्था भवन्तु ॥ १८ । ६ ॥

अन्वयः—मे ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे ऋतं** यथार्थविज्ञानं **च** एतत्साधकं, **मेऽमृतं** स्वस्वरूपं मुक्तिसुखं यज्ञशिष्टमन्नं वा **च** पेयं, **मेऽयक्ष्मं** यक्ष्मादिरोगरहितं शरीरादिकं **च** एतत्साधकं कर्म, **च मेऽनामयत्** रोगादिरहितं **च** एतत्साधकमौषधं, **मे जीवातुः** येन जीवन्ति यज्जीवयति वा **च** पथ्यादिकं, **मे दीर्घायुत्वं** चिरायुषो भावः **च** ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियत्वादिकं, **मेऽनमित्रम्** अविद्यमानशत्रुः **च** पक्षपातरहितं कर्म, **मेऽभयं** भयराहित्यं **च** शौर्यं, **मे सुखं** परमानन्दः प्रसन्नता **च** एतत्साधकं कर्म, **मे शयनं च** एतत्साधनं, **मे सूषाः** शोभना उषा यस्मिन् स कालः **च** एतत्सम्बन्धि कर्म, **मे सुदिनं** शोभनं च तद्दिनं च तत् **च** एतदुपयोगि कर्म, **यज्ञेन** सत्यभाषणादिव्यवहारेण **कल्पन्तां** समर्था भवन्तु ॥ १८ । ६ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (ऋतम्) यथार्थ विज्ञान (च) और इसके साधक, (मे) मेरा (अमृतम्) अपना स्वरूप, मुक्तिसुख और यज्ञ से अवशिष्ट अन्न (च) और पेय पदार्थ, (मे) मेरा (अयक्ष्मम्) यक्ष्मा आदि रोग से रहित शरीर आदि (च) और इसका साधक कर्म, (मे) मेरा (अनामयत्) रोग आदि रहित (च) और इसका साधक औषध, (मे) मेरा (जीवातुः) जीवन का हेतु (च) और पथ्य आदि (मे) मेरा (दीर्घायुत्वम्) चिर आयु (च) और ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रियता आदि, (मे) मेरा (अनमित्रम्) अविद्यमान शत्रु (च) और पक्षपात रहित कर्म, (मे) मेरी (अभयम्) निर्भयता (च) और शौर्य, (मे) मेरा (सुखम्) परमानन्द एवं प्रसन्नता (च) और इसके साधक कर्म, (मे) मेरा (शयनम्) सोना (च) और इसके साधक कर्म, (मे) मेरा (सूषाः) सुन्दर उषा वाला समय (च) और इस सम्बन्धी कर्म, (मे) मेरा (सुदिनम्) सुन्दर दिन (च) और इसका उपयोगी कर्म (यज्ञेन) सत्यभाषण आदि व्यवहार से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हो ॥ १८ । ६ ॥

[मे ऋतं च……यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये मनुष्याः सत्यभाषणादीनि कर्माणि कुर्वन्ति, ते सर्वदा सुखिनो भवन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सत्यभाषण आदि कर्म करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥ १८ । ६ ॥

भा० पदार्थः—यज्ञेन=सत्यभाषणादिकर्मणा ।

भाष्यसार—**सत्यभाषणादि से सुख की प्राप्ति**—यज्ञ अर्थात् सत्यभाषणादि कर्मों से यथार्थ ज्ञान होकर अमृतम्=मुक्तिसुख की प्राप्ति होती है । यज्ञ से बचे हुए अन्नादि पदार्थों के खाने से शरीर नीरोग रहता है, उससे आयु बढ़ती है । जितेन्द्रियतादि गुणों की प्राप्ति से शत्रु रहित होने से निर्भय हो जाता है, उसके कर्म पक्षपात रहित होते हैं, अतः वह सुखी रहता है । उस मनुष्य को संसार के सभी पदार्थ प्राप्त होने से उसका समय सुख से बीतता है ॥ १८ । ६ ॥

देवाः । **प्रजापतिः**=सुनियमः । निचृद् भुरिगतिजगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

जो मनुष्य यज्ञ=सुनियमों के अनुष्ठान से क्या प्राप्त करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**यन्ता**) नियमकर्ता (**च**) नियतः (**मे**) (**धर्त्ता**) धारकः (**च**) धृतः (**मे**) (**क्षेमः**) रक्षणम् (**च**) रक्षकः (**मे**) (**धृतिः**) धरन्ति यया सा (**च**) क्षमा (**मे**) (**विश्वम्**) अखिलं जगत् (**च**) एतदनुकूला क्रिया (**मे**) (**महः**) महत् (**च**) महान् (**मे**) (**संवित्**) प्रतिज्ञा (**च**) विज्ञातम् (**मे**) (**ज्ञात्रम्**) जानामि येन (**च**) ज्ञातव्यम् (**मे**) (**सूः**) या सुवति=प्रेरयति सा (**च**) उत्पन्नम् (**प्रसूः**) या प्रसूतम् उत्पादयति सा (**च**) प्रसवः (**मे**) (**सीरम्**) कृषिसाधकं हलादिकम् (**च**) कृषीवलाः (**मे**) (**लयः**) लीयन्ते यस्मिन्सः (**च**) लीनम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सुनियमानुष्ठानाख्येन (**कल्पन्ताम्**) ॥ ७ ॥

अन्वयः—मे यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रं च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे यन्ता** नियमकर्त्ता **च** नियतः, **मे धर्त्ता** धारकः **च** धृतः **मे क्षेमः** रक्षणं **च** रक्षकः, **मे धृतिः** धरन्ति यया सा **च** क्षमा, **मे विश्वम्** अखिलं जगत् **च** एतदनुकूला क्रिया, **मे महः** महत् **च** महान्, **मे संवित्** प्रतिज्ञा **च** विज्ञातं, **मे ज्ञात्रं** जानामि येन **च** ज्ञातव्यं, **मे सूः** या सुवति=प्रेरयति सा **च** उत्पन्नं, **मे प्रसूः** या प्रसूतं उत्पादयति सा **च** प्रसवः, **मे सीरं** कृषिसाधकं हलादिकं **च** कृषीवलाः, **मे लयः** लीयन्ते यस्मिन्सः **च** लीनं **यज्ञेन** सुनियमानुष्ठानाख्येन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । ७ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (यन्ता) नियन्ता (च) और किया हुआ नियम, (मे) मेरा (धर्त्ता) धारण करने वाला (च) और धारण किया हुआ, (मे) मेरी (क्षेमः) रक्षा (च) और रक्षक, (मे) मेरा (धृतिः) धैर्य (च) और क्षमा, (मे) मेरा (विश्वम्) सब जगत् (च) और इसके अनुकूल आचरण (मे) मेरा (महः) महान् कर्म (च) और महान् व्यवहार (मे) मेरी (संवित्) प्रतिज्ञा (च) और ज्ञान, (मे) मेरा (ज्ञात्रम्) ज्ञान का साधन (च) और (ज्ञेय) पदार्थ, (मे) मेरी (सूः) प्रेरणा (च) और प्रेरणा से उत्पन्न कर्म, (मे) प्रसूत=बालक को उत्पन्न करने वाली स्त्री (च) और प्रसव, (मे) मेरा (सीरम्) कृषि के साधक हल आदि (च) और किसान, (मे) मेरा (लयः) घर (च) और घर के द्रव्य (यज्ञेन) उत्तम नियमों के आचरण रूप यज्ञ से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । ७ ॥

[मे यन्ता च···यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये शमदमादिगुणान्विताः सुनियमान् पालयेयुस्ते स्वाभीष्टानि साधयेयुः ॥१८।७॥

भावार्थ—जो शम, दम आदि गुणों से युक्त होकर उत्तम नियमों का पालन करते हैं वे अपने अभीष्टों को सिद्ध करते हैं ॥ १८ । ७ ॥

भा० पदार्थः—यन्ता=शमदमादिगुणान्वितः ॥ यज्ञेन=सुनियमपालनेन । कल्पन्ताम्=स्वाभीष्टानि साधयन्तु ॥

भाष्यसार—सुनियमों के पालन से इष्टप्राप्ति—इन्द्रियादि को संयम में रखने वाले नियमों का पालन करने से निम्न गुणों की प्राप्ति होती है—(१) यन्ता=इन्द्रियों का वश में होना। (२) धर्त्ता=श्रेष्ठगुणों का धारण करना। (३) क्षेम=शरीरादि की रोगादि से रहित होने से रक्षा होना। (४) धृति=विपत्ति में धैर्य धारण करना। (५) सब प्राणियों के अनुकूल व्यवहार की प्राप्ति। (६) संवित्=सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति। (७) उत्तम कर्मों में प्रेरणा। (८) अन्नादि भोग्य पदार्थों की उत्पत्ति के साधनों की प्राप्ति ॥ १८ । ७ ॥

देवाः । **आत्मा**=मनुष्यः । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=ईश्वर से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**शम्**) कल्याणम् (**च**) (**मे**) (**मयः**) ऐहिकं सुखम् (**च**) (**मे**) (**प्रियम्**) प्रीतिकारकम् (**च**) (**मे**) (**अनुकामः**) धर्मानुकूला कामना (**च**) (**मे**) (**कामः**) काम्यते येन यस्मिन् वा (**च**) (**मे**) (**सौमनसः**) शोभनं च तन्मनः सुमनस्तस्य भावः (**च**) (**मे**) (**भगः**) ऐश्वर्य्यसंघातः (**च**) (**मे**) (**द्रविणम्**) बलम् (**च**) (**मे**) (**भद्रम्**) भन्दनीयं सुखम् (**च**) (**मे**) (**श्रेयः**) मुक्तिसुखम् (**च**) (**मे**) (**वसीयः**) अतिशयेन वस्तृ वसीयः (**च**) (**मे**) (**यशः**) कीर्तिः (**च**) (**मे**) (**यज्ञेन**) सुखसिद्धिकरेणेश्वरेण (**कल्पन्ताम्**) ॥ १८ । ८ ॥

अन्वयः—मे शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—मे शं कल्याणं **च, मे मयः** ऐहिकं सुखं **च, मे प्रियं** प्रीतिकारकं **च, मेऽनुकामः** धर्मानुकूला कामना **च, मे कामः** काम्यते येन यस्मिन् वा **च, मे सौमनसः** शोभनं च तन्मनः सुमनस्तस्य भावः **च, मे भगः** ऐश्वर्यसंघातः **च, मे द्रविणं** बलं **च, मे भद्रं** भन्दनीयं सुखं **च, मे श्रेयः** मुक्तिसुखं **च, मे वसीयः** अतिशयेन वस्तृ वसीयः **च, मे यशः** कीर्तिः **च यज्ञेन** सुखसिद्धिकरेणेश्वरेण **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । ८ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (शम्) कल्याण, (च) और (मे) मेरा (मयः) इस लोक का सुख (च) और (मे) मेरा (प्रियम्) प्रीति करने वाला, (च) और (मे) मेरी (अनुकामः) धर्मानुकूल कामना, (च) और (मे) मेरा (कामः) काम, (च) और (मे) मेरा (सौमनसः) उत्तम मन, (च) और (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य का समूह, (च) और (मे) मेरा (द्रविणम्) बल, (च) और (मे) मेरा (भद्रम्) कल्याणकारी सुख, (च) और (मे) मेरा (श्रेयः) मुक्ति-सुख, (च) और (मे) मेरा (वसीयः) अत्यन्त वसने वाला, (च) और (मे) मेरी (यशः) कीर्ति (यज्ञेन) सुख की सिद्धि करने वाले ईश्वर से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । ८ ॥

[मे शं च ······ यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्यैर्येन कर्मणा सुखादयो वर्द्धेरँस्तदेव कर्म सततं सेवनीयम् ॥ १८ । ८ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जिस कर्म से सुख आदि बढ़ें वह उसी कर्म का सदा सेवन करें ॥ १८ । ८॥

भाष्यसार—**मनुष्य ईश्वर से किन गुणों को प्राप्त करें ?**—यज्ञ अर्थात् सुखों की सिद्धि करने वाले परमात्मा के सहाय से मनुष्य कल्याण करने वाली प्रिय, तथा सुख देने वाली धर्मानुकूल कामनाओं को प्राप्त करें । और मनादि इन्द्रियों को संयमित करके कीर्ति, सांसारिक सुख और मुक्ति सुखों को प्राप्त किया करें ॥ १८ । ८ ॥

देवाः । **आत्मा**=**मनुष्यः** । शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=रस-पदार्थों के वर्द्धक कर्म से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

ऊर्क् च॑ मे सू॒नृता॑ च मे॒ पय॑श्च मे॒ रस॑श्च मे घृ॒तं च॑ मे॒ मधु॑ च मे॒ सग्धि॑श्च मे॒ सपी॑तिश्च मे कृ॒षिश्च॑ मे॒ वृष्टि॑श्च मे॒ जैत्रं॑ च म॒ ऽऔद्भि॑द्यं च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**ऊर्क्**) सुसंस्कृतमन्नम् (**च**) सुगन्ध्यादियुक्तम् (**मे**) (**सूनृता**) प्रिया वाक् (**च**) सत्या (**मे**) (**पयः**) दुग्धम् (**च**) उत्तमं पक्वमौषधम् (**मे**) (**रसः**) सर्वद्रव्यसारः (**च**) महौषधीभ्यो निष्पादितः (**मे**) (**घृतम्**) आज्यम् (**च**) सुसंस्कृतम् (**मे**) (**मधु**) क्षौद्रम् (**च**) शर्करादिकम् (**मे**) (**सग्धिः**) समानभोजनम् (**च**) भक्ष्यादिकम् (**मे**) (**सपीतिः**) समाना पीतिः=पानं यस्यां सा (**च**) चूष्यम् (**मे**) (**कृषिः**) भूमिकर्षणम् (**च**) शस्यविशेषाः (**मे**) (**वृष्टिः**) जलवर्षणम् (**च**) आहुतिभिः संस्क्रिया (**मे**) (**जैत्रम्**) जेतुं शीलम् (**च**) सुशिक्षितं सेनादिकम् (**मे**) (**औद्भिद्यम्**) उद्भिदां=पृथिवीं भित्त्वा जातानां भावम् (**च**) फलादिकम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सर्वरसपदार्थवर्द्धकेन कर्मणा (**कल्पन्ताम्**) ॥ ९ ॥

अन्वयः—म ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतञ्च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च म औद्भिद्यं च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—**म ऊर्क्** सुसंस्कृत-मन्नं **च** सुगन्ध्यादियुक्तं, **मे सूनृता** प्रिया वाक् **च** सत्या, **मे पयः** दुग्धं **च** उत्तमं पक्वमौषधं, **मे रसः** सर्वद्रव्यसारः **च** महौषधीभ्यो निष्पादितः, **मे घृतम्** आज्यं **च** सुसंस्कृतं, **मे मधु** क्षौद्रं **च** शर्करादिकं, **मे सग्धिः** समानभोजनं **च** भक्ष्यादिकं, **मे सपीतिः** समाना पीतिः=पानं यस्यां सा **च** चूष्यं, **मे कृषिः** भूमिकर्षणं **च** शस्यविशेषाः, **मे वृष्टिः** जलवर्षणं **च** आहुतिभिः संस्क्रिया, **मे जैत्रं** जेतुं शीलं **च** सुशिक्षितं सेनादिकं, **म औद्भिद्यं** उद्भिदां=पृथिवीं भित्त्वा जातानां भावं **च** फलादिकं **यज्ञेन** सर्वरस-पदार्थवर्द्धकेन कर्मणा **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । ९ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (ऊर्क्) उत्तम रीति से संस्कृत=शुद्ध अन्न (च) और सुगन्धि आदि से युक्त अन्न, (मे) मेरी (सूनृता) प्रिय (च) और सत्य वाणी, (मे) मेरा (पयः) दूध (च) और उत्तम पकी हुई औषध, (मे) मेरा (रसः) सब द्रव्यों का सार (च) और महौषधियों से तैयार किया रस, (मे) मेरा (घृतम्) घृत (च) और उत्तम रीति से संस्कृत शुद्ध घृत, (मे) मेरा (मधु) मधु=शहद (च) और शक्कर आदि, (मे) मेरा (सग्धिः) समान भोजन (च) और भक्ष्य आदि, (मे) मेरा (सपीतिः) समान पान (च) और चूष्य पदार्थ, (मे) मेरी (कृषिः) कृषि (च) और

खेती विशेष, (मे) मेरा (वृष्टिः) वर्षा (च) और आहुतियों से जौ का संस्कार, (मे) मेरा (जैत्रम्) जीतने का शील=स्वभाव (च) और सुशिक्षित सेना आदि, (मे) मेरा (औद्भिद्यम्) पृथिवी का भेदन करके उत्पन्न होना (च) और पृथिवी के फल आदि, (यज्ञेन) सब रस-पदार्थों को बढ़ाने वाले कर्म से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । ९ ॥

[मे रसश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्याः सर्वानुत्तमरसयुक्तान् पदार्थान् संचित्य, तान् यथाकालं होमाद्युत्तमेषु व्यवहारेषु नियोजयेयुः ॥ १८ । ९ ॥

भावार्थ—मनुष्य—सब उत्तम रसयुक्त पदार्थों का संचय करके उन्हें यथाकाल होम आदि उत्तम व्यवहारों में लगावें ॥ १८ । ९ ॥

भा० पदार्थः—रसः=उत्तमरसयुक्तः पदार्थः ।

भाष्यसार—**मनुष्यों का परम पुरुषार्थ**—सब मनुष्य वायु आदि की शुद्धि के लिए संस्कृत तथा सुगन्धयुक्त अन्नादि से, उत्तम ओषधियों के रस से संस्कृत घृत से, मधु आदि मधुर पदार्थों से सत्य वाणी (**वेद मन्त्रों**) से यज्ञ किया करें। और इन पदार्थों से सब मिलकर सग्धि=समान भोजन तथा सपीति=समान-पान किया करें। जिससे यथासमय में हुई वर्षा से कृषि और मनुष्यों में सुशीलतादि गुणों की वृद्धि होकर सुखों की वृद्धि हो सके ॥ १८ । ९ ॥

देवाः । **आत्मा=मनुष्यः** । निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ—ईश्वर से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च॒ मे कुय॑वं च॒ मेऽक्षि॑तं च॒ मेऽन्नं॑ च॒ मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

पदार्थः—(रयिः) विद्याश्रीः (**च**) पुरुषार्थः (**मे**) (**रायः**) प्रशस्तलक्ष्म्यः (**च**) पक्वान्नादिकम् (**मे**) (**पुष्टम्**) (**च**) आरोग्यम् (**मे**) (**पुष्टिः**) पुष्टिकरणम् (**च**) (**सुपथ्यम्**) (**मे**) (**विभु**) अखिलविषयेषु व्याप्तं मन आदि (**च**) परमात्मध्यानम् (**मे**) (**प्रभु**) समर्थम् (**च**) सर्वसामर्थ्यम् (**मे**) (**पूर्णम्**) अलङ्कारि (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**पूर्णतरम्**) अतिशयेन पूर्णमाभरणादिकम् (**च**) सर्वमुपकरणम् (**मे**) (**कुयवम्**) कुत्सितैर्यवैर्वियुक्तम् (**च**) व्रीह्यादिकम् (**मे**) (**अक्षितम्**) क्षयरहितम् (**च**) (**तृप्तिः**) (**मे**) (**अन्नम्**) अत्तुं योग्यम् (**च**) व्यञ्जनम् (**मे**) (**अक्षुत्**) क्षुधो-राहित्यम् (**च**) तृषादिराहित्यम् (**मे**) (**यज्ञेन**) प्रशस्तधनप्रापकेणेश्वरेण (**कल्पन्ताम्**) ॥ १० ॥

अन्वयः—मे रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—मे रयिः विद्याश्रीः च पुरुषार्थः, मे रायः प्रशस्तलक्ष्म्यः च पक्वान्ना-

भाषार्थ—मेरा (रयिः) विद्या-धन (च) और पुरुषार्थ, (मे) मेरी (रायः) प्रशस्त लक्ष्मियाँ

दिकं, **मे पुष्टं च** आरोग्यं, **मे पुष्टिः** पुष्टिकरणं **च** सुपथ्यं, **मे विभु** अखिलविषयेषु व्याप्तं मन आदि **च** परमात्मध्यानं, **मे प्रभु** समर्थं **च** सर्वसामर्थ्यं, **मे पूर्णम्** अलंकारि **च** एतत्स्थानं, **मे पूर्णतरम्** अतिशयेन पूर्णमाभरणादिकं **च** सर्वमुपकरणं, **मे कुयवं** कुत्सितैर्यवैर्वियुक्तं **च** व्रीह्यादिकं, **मेऽक्षितं** क्षयरहितं **च** तृप्तिः, **मेऽन्नम्** अत्तुं योग्यं **च** व्यञ्जनं, **मेऽक्षुत्** क्षुधो राहित्यं **च** तृषादिराहित्यं **यज्ञेन** प्रशस्तधनप्रापकेणेश्वरेण **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १० ॥

(च) और पका हुआ अन्न आदि, (मे) मेरा (पुष्टम्) पुष्ट होना (च) और आरोग्य, (मे) (पुष्टिः) पुष्टि करना (च) और उत्तम पथ्य, (मे) मेरा (विभु) सब विषयों में व्याप्त मन आदि (च) और परमात्मा का ध्यान, (मे) मेरा (प्रभु) समर्थ होना (च) और सब सामर्थ्य, (मे) मेरा (पूर्णम्) अलंकृत होना (च) और इसका स्थान, (मे) मेरा (पूर्णतरम्) अत्यन्त पूर्ण और आभरण=भूषण आदि (च) और सबका उपकार (मे) मेरा (कुयवम्) कुत्सित यव=जौ से पृथक् अन्न (च) और व्रीहि=चावल आदि, (मे) मेरा (अक्षितम्) अक्षय पदार्थ (च) और तृप्ति, (मे) मेरा (अन्नम्) अन्न (च) और व्यञ्जन=मसाला आदि, (मे) मेरी (अक्षुत्) क्षुधा का अभाव (च) और तृषा=प्यास आदि का अभाव (यज्ञेन) प्रशस्त धन के प्रापक ईश्वर से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥

[मे रयिश्च···यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्यैः परमपुरुषार्थेन जगदीश्वरभक्तिप्रार्थनाभ्यां च विद्यादिकं धनं लब्ध्वा सर्वोपकारः साधनीयः ॥ १८ । १० ॥

भावार्थ—मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि परम पुरुषार्थ से परमात्मा की भक्ति व प्रार्थना करें व विद्यादि धन प्राप्त करके सर्वोपकार सिद्ध करें।

भा० पदार्थः—रयिः=विद्याधनम् । च=परमपुरुषार्थः । यज्ञेन=जगदीश्वरभक्तिप्रार्थनाभ्याम् ।

भाष्यसार—**मनुष्य ईश्वर के सहाय से धन प्राप्त करें**—यज्ञ अर्थात् ऐश्वर्यवान् परमात्मा की उपासना से विद्या धन को और परम पुरुषार्थ से पुष्टिकारक प्रशस्त धनों की प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयत्न किया करें। और पूर्ण विद्यादि गुणों से अलंकृत होकर, मनादि को परमात्मा में लगा कर अन्नादि पदार्थों को पाकर, सब प्राणियों का उपकार किया करें ॥ १८ । १० ॥

देवाः । **श्रीमद्वात्मा**=**शमादिश्रीयुक्तो योगी** । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=शमादियुक्त योगाभ्यास से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऽ ऋद्धं च म ऽ ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**वित्तम्**) विचारितम् (**च**) विचारः (**मे**) (**वेद्यम्**) विचार्य्यम् (**च**) विचारकर्त्ता (**मे**) (**भूतम्**) अतीतम् (**च**) वर्त्तमानम् (**मे**) (**भविष्यत्**) आगामि (**च**) सर्वसामयिकम् (**मे**) (**सुगम्**) सुष्ठु गच्छन्ति यस्मिँस्तत् (**च**) उचितं कर्म (**मे**) (**सुपथ्यम्**) शोभनस्य पथो भावम् (**च**) निदानम् (**मे**)

(**ऋद्धम्**) समृद्धम् (**च**) सिद्धयः (**मे**) (**ऋद्धिः**) योगेन प्राप्ता समृद्धिः (**च**) तुष्टयः (**मे**) (**क्लृप्तम्**) समर्थितम् (**च**) कल्पना (**मे**) (**क्लृप्तिः**) समर्थोहा (**च**) तर्कः (**मे**) (**मतिः**) मननम् (**च**) विवेचनम् (**मे**) (**सुमतिः**) शोभना प्रज्ञा (**च**) उत्तमा निष्ठा (**मे**) (**यज्ञेन**) शमदमादियुक्तेन योगाभ्यासेन (**कल्पन्ताम्**) ॥ ११ ॥

अन्वयः—मे वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे वित्तं** विचारितं **च** विचारः, **मे वेद्यं** विचार्य्यं **च** विचारकर्त्ता, **मे भूतम्** अतीतं **च** वर्त्तमानं, **मे भविष्यत्** आगामि **च** सर्वसामयिकं, **मे सुगं** सुष्ठु गच्छन्ति यस्मिँस्तत् **च** उचितं कर्म, **मे सुपथ्यं** शोभनस्य पथो भावं **च** निदानं, **मे ऋद्धं** समृद्धं **च** सिद्धयः, **म ऋद्धिः** योगेन प्राप्ता समृद्धिः **च** तुष्टयः, **मे क्लृप्तं** समर्थितं **च** कल्पना, **मे क्लृप्तिः** समर्थोहा **च** तर्कः, **मे मतिः** मननं **च** विवेचनं, **मे सुमतिः** शोभना प्रज्ञा **च** उत्तमा निष्ठा, **यज्ञेन** शमदमादियुक्तेन योगाभ्यासेन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । ११ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (वित्तम्) विचार किया हुआ (च) और विचार (मे) मेरा (वेद्यम्) विचार करने योग्य (च) और विचार करने वाला, (मे) मेरा (भूतम्) भूत (च) और वर्तमान, (मे) मेरा (भविष्यत्) भविष्यत् (च) सार्वकालिक, (मे) मेरा (सुगम्) सुगम मार्ग (च) और उचित कर्म, (मे) मेरा (सुपथ्यम्) उत्तम पथ्य (च) और निदान, (मे) मेरा (ऋद्धम्) समृद्ध पदार्थ (च) और सिद्धियाँ, (मे) मेरी (ऋद्धिः) योग से प्राप्त समृद्धि (च) और तुष्टि, (मे) मेरा (क्लृप्तम्) समर्थित कार्य (च) और कल्पना, (मे) मेरी (क्लृप्तिः) समर्थ ऊहा (च) और तर्क (मे) मेरा (मतिः) मनन (च) और विवेचन, (मे) मेरी (सुमतिः) उत्तम प्रज्ञा=बुद्धि (च) और उत्तम निष्ठा, (यज्ञेन) शम, दम आदि से युक्त योगाभ्यास से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । ११ ॥

[ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये शमादियुक्ताः संयता योगमभ्यस्यन्त्यृद्धिसिद्धिसहिताश्च भवन्ति, तेऽन्यानपि समर्द्धयितुं शक्नुवन्ति ॥ १८ । ११ ॥

भावार्थ—जो शम, दम आदि से युक्त एवं संयत होकर योगाभ्यास करते हैं ऋद्धि और सिद्धि से युक्त होते हैं वे अन्यों को भी समृद्धि-युक्त कर सकते हैं ॥ १८ । ११ ॥

भाष्यसार—**योगी का परम लक्ष्य**—यज्ञ अर्थात् यम नियमादि योगाङ्गों के निरन्तर अनुष्ठान से योगी के विचार पवित्र हो जाते हैं, उसके त्रैकालिक कर्मों तथा उनके संस्कारों की शुद्धि हो जाती है तब वह अपने जानने योग्य परमात्मा की ओर बढ़ता हुआ विभिन्न सिद्धियों तथा तुष्टियों को प्राप्त करता है। उस समय योग के प्रति उसकी निष्ठा=श्रद्धा अधिक बढ़ जाती है ॥ १८ । ११ ॥

देवाः । **धान्यदा आत्मा**=सर्वान्नप्रदः परमात्मा । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=सर्वान्नप्रद परमात्मा से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**व्रीहयः**) तण्डुलाः (**च**) षष्टिकाः (**मे**) (**यवाः**) (**च**) आढक्यः (**मे**) (**माषाः**) (**च**) कलायः (**मे**) (**तिलाः**) (**च**) नारिकेलाः (**मे**) (**मुद्गाः**) (**च**) तत्संस्काराः (**मे**) (**खल्वाः**) चणकाः (**च**) तत्साधनम् (**मे**) (**प्रियङ्गवः**) धान्यविशेषाः (**च**) अन्यानि क्षुद्रान्नानि (**मे**) (**अणवः**) सूक्ष्मतण्डुलाः (**च**) तत्पाकः (**मे**) (**श्यामाकाः**) (**च**) (**मे**) (**नीवाराः**) विना वपनेनोत्पन्नाः (**च**) एतत्संस्करणम् (**मे**) (**गोधूमाः**) (**च**) एतत्संस्करणम् (**मे**) (**मसूराः**) (**च**) एतत्सम्बन्धि (**मे**) (**यज्ञेन**) सर्वान्निप्रदेन परमात्मना (**कल्पन्ताम्**) ॥ १८ । १२ ॥

अन्वयः—मे व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे व्रीहयः** तण्डुलाः **च** षष्टिकाः, **मे यवाश्च** आढक्यः, **मे माषाश्च** कलायः, **मे तिलाश्च** नारिकेलाः **मे मुद्गाश्च** तत्संस्काराः, **मे खल्वाः** चणकाः **च** तत्साधनं, **मे प्रियङ्गवः** धान्यविशेषाः **च** अन्यानि क्षुद्रान्नानि, **मेऽणवः** सूक्ष्मतण्डुलाः **च** तत्पाकः, **मे श्यामाकाश्च, मे नीवाराः** विना वपनेनोत्पन्नाः **च** एतत्संस्करणं, **मे गोधूमाश्च** एतत्संस्करणं, **मे मसूराश्च** एतत्सम्बन्धि **यज्ञेन** सर्वान्निप्रदेन परमात्मना **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १२ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरे (व्रीहयः) तण्डुल=चावल (च) और साठी के धान, (मे) मेरे (यवाः) यव=जौ, (च) और आढकी=अरहर, (मे) मेरे (माषाः) उड़द (च) और मटर, (मे) मेरे (तिलाः) तिल (च) और नारियल, (मे) मेरे (मुद्गाः) मूंग (च) और उसके संस्कार=शुद्धियाँ, (मे) मेरे (खल्वाः) चणे (च) और उनका साधन, (मे) मेरे (प्रियङ्गु) मालकांगनी, राई धान्य विशेष (च) और अन्य छोटे अन्न, (मे) मेरे (अणवः) छोटे तण्डुल=चावल (च) और उनका पाक, (मे) मेरे (श्यामाकाः) साँवाँ (च) और इनका संस्कार, (मे) मेरे (नीवाराः) बिना बोये उत्पन्न अन्न (च) और इनका संस्कार (मे) मेरे (गोधूमाः) गेहूँ (च) और इनका संस्कार, (मे) मेरे (मसूराः) मसूर (च) इनका सम्बन्धी अन्य अन्न (यज्ञेन) सब अन्नों के दाता परमात्मा से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १२ ॥

[मे व्रीहयश्च ... यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्यैर्व्रीह्यादिभ्यः सुसंस्कृतानोदनादीन् संपाद्य तेऽग्नौ होतव्या, भोक्तव्या, अन्ये भोजयितव्याश्च ॥ १८ । १२ ॥

भावार्थ—मनुष्य—व्रीहि=चावल आदि से सुसंस्कृत ओदन=भात आदि को सिद्ध करके उनका अग्नि में होम करें, स्वयं खावें तथा अन्यों को खिलावें ॥ १८ । १२ ॥

भाष्यसार—**परमात्मा ही विभिन्न अन्नों का दाता है**—सभी मनुष्य परमेश्वर के वेद-ज्ञान को जानकर विभिन्न प्रकार के जीवन के साधन चावलादि अन्नों की उत्पत्ति बढ़ावें। और उन अन्नों का संस्कार करके और यज्ञमय अर्थात् हवनादि में डालकर तत्पश्चात् स्वयं खावें और दूसरों को खिलावें ॥ १८ । १२ ॥

देवाः । **रत्नवान्धनवानात्मा**=धनवान् मनुष्यः । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=संगतिकरण से क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अश्मा॑ च मे॒ मृत्ति॑का च मे गि॒रय॑श्च मे॒ पर्व॑ताश्च मे॒ सिक॑ताश्च मे॒ वन॒स्पत॑यश्च मे॒ हिर॑ण्यं च॒ मेऽय॑श्च मे श्या॒मं च॑ मे लो॒हं च॑ मे॒ सीसं॑ च मे॒ त्रपु॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**अश्मा**) पाषाणः (**च**) हीरकादीनि रत्नानि (**मे**) (**मृत्तिका**) प्रशंसिता मृत् (**च**) साधारणा मृत् (**मे**) (**गिरयः**) मेघाः (**च**) अन्नादि (**मे**) (**पर्वताः**) ह्रस्वा महान्तः शैलाः (**च**) सर्वधनम् (**मे**) (**सिकताः**) सूक्ष्मा बालुकाः (**च**) तत्रस्थाः पदार्थाः (**मे**) (**वनस्पतयः**) वटादयः (**च**) आम्रादयो वृक्षाः (**मे**) (**हिरण्यम्**) (**च**) रजतादि (**मे**) (**अयः**) (**च**) शस्त्राणि (**मे**) (**श्यामम्**) श्याममणिः (**च**) शुक्त्यादि (**मे**) (**लोहम्**) सुवर्णम् । **लोहमिति सुवर्णना० ॥ निघं० १ । २ ॥** (**च**) कान्तिसारादिः (**मे**) (**सीसम्**) (**च**) जतु (**मे**) (**त्रपु**) (**च**) रङ्गम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणयोग्येन (**कल्पन्ताम्**) ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—(लोहम्) सुवर्णम् । यह पद निघं० १ । २ में सुवर्ण-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—मेऽश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—**मेऽश्मा** पाषाणः **च** हीरकादीनि रत्नानि, **मे मृत्तिका** प्रशंसिता मृत् **च** साधारणा मृत्, **मे गिरयः** मेघाः **च** अन्नादि, **मे पर्वताः** ह्रस्वा महान्तः शैलाः **च** सर्वधनं, **मे सिकताः** सूक्ष्मा बालुकाः **च** तत्रस्थाः पदार्थाः, **मे वनस्पतयः** वटादयः **च** आम्रादयो वृक्षाः, **मे हिरण्यं च** रजतादि **मेऽयश्च** शस्त्राणि, **मे श्यामं** श्याममणिः **च** शुक्त्यादि, **मे लोहं** सुवर्णं **च** कान्तिसारादिः, **मे सीसं च** जतु, **मे त्रपु च** रङ्गं **यज्ञेन** सङ्गतिकरणयोग्येन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १३ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (अश्मा) पाषाण=पत्थर (च) और हीरे आदि रत्न, (मे) मेरी (मृत्तिका) अच्छी मिट्टी (च) और साधारण मिट्टी, (मे) मेरे (गिरयः) मेघ=बादल (च) और अन्न आदि, (मे) मेरे (पर्वताः) छोटे-बड़े पहाड़ (च) और सब धन, (मे) मेरी (सिकताः) सूक्ष्म बालू (च) और उसमें विद्यमान पदार्थ, (मे) मेरे (वनस्पतयः) वट=बड़ आदि (च) और आम आदि वृक्ष, (मे) मेरा (हिरण्यम्) सोना (च) और रजत=चाँदी आदि, (मे) मेरा (अयः) लोहा (च) और शस्त्र, (मे) मेरी (श्यामम्) नीलमणि (च) और शुक्ति=सीप आदि (मे) मेरा (लोहम्) सोना (च) और कान्तिसार आदि, (मे) मेरा (सीसम्) सीसा (च) और जतु=लाख, (मे) मेरा (त्रपु) जस्त (च) और रांग (यज्ञेन) संगति करने योग्य यज्ञ से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १३ ॥

[मेऽश्मा च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्याः पृथिवीस्थान् पदार्थान् सुपरिक्ष्यैतेभ्यो रत्नानि धातूंश्च प्राप्य सर्वहितायोपयुञ्जीरन् ॥ १८ । १३ ॥

भावार्थ—मनुष्य पृथिवी के पदार्थों की सुपरीक्षा करके इनसे रत्न और धातुओं को प्राप्त करके सबके लिए उपयोग करें ॥ १८ । १३ ॥

भाष्यसार—धनवान् मनुष्यों का कर्त्तव्य—धन के अभिलाषी मनुष्य पृथिवी के गर्भ में विद्यमान विभिन्न पदार्थों की खानों की खोज करें। बालू रेती आदि में से और चांदी के कणों को संग्रह करावें। इसी प्रकार पर्वतों पर विद्यमान विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति का संग्रह करके धनवान् बनें और उसे परोपकारार्थ यज्ञादि कार्यों में व्यय करके पुण्य के भागी बनें ॥ १८। १३॥

देवाः। **अग्न्यादियुक्त आत्मा**=पाकविद्यावेत्ता मनुष्यः। भुरिगष्टिः। मध्यमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=संगति से क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च म॒ऽओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मेऽकृष्ट॒प॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ऽआर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तञ्च॑ मे॒ वीत्ति॑श्च मे भू॒तञ्च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) वह्निः (**च**) विद्युदादिः (**मे**) (**आपः**) जलानि (**च**) जलरत्नानि (**मे**) (**वीरुधः**) गुल्मविशेषाः (**च**) तृणशाकादि (**मे**) (**ओषधयः**) यवसोमलताद्याः (**च**) सर्वौषधादि (**मे**) (**कृष्टपच्याः**) याः कृष्टेषु=क्षेत्रेषु पच्यन्ते ताः (**च**) उत्तमानि शस्यादीनि (**मे**) (**अकृष्टपच्याः**) या अकृष्टेषु=जङ्गलादिषु पच्यन्ते ताः (**च**) पर्वतादिषु पक्तव्याः (**मे**) (**ग्राम्याः**) ग्रामे भवाः (**च**) नगरस्थाः (**मे**) (**पशवः**) गवाद्याः (**आरण्याः**) अरण्ये वने भवा मृगादयः (**च**) सिंहादयः (**मे**) (**वित्तम्**) लब्धम् (**च**) सर्वं धनम् (**मे**) (**वित्तिः**) प्राप्तिः (**च**) प्राप्तव्यम् (**मे**) (**भूतम्**) रूपम् (**च**) नानाविधम् (**मे**) (**भूतिः**) ऐश्वर्यम् (**च**) एतत्साधनम् (**मे**) (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणयोग्येन (**कल्पन्ताम्**) ॥ १८। १४॥

अन्वयः—मेऽग्निश्च मे आपश्च मे वीरुधश्च म ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे आरण्याश्च पशवो मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४॥

सपदार्थान्वयः—**मेऽग्निः** वह्निः **च** विद्युदादिः, **मे आपः** जलानि **च** जलरत्नानि, **मे वीरुधः** गुल्मविशेषाः **च** तृणशाकादि, **म ओषधयः** यवसोमलताद्याः **च** सर्वौषधादि, **मे कृष्टपच्याः** याः कृष्टेषु=क्षेत्रेषु पच्यन्ते ताः **च** उत्तमानि शस्यादीनि, **मेऽकृष्टपच्याः** या अकृष्टेषु=जङ्गलादिषु पच्यन्ते ताः **च** पर्वतादिषु पक्तव्याः, **मे ग्राम्याः** ग्रामे भवाः **च** नगरस्थाः, **मे आरण्याः** अरण्ये=वने भवा मृगादयः **च** सिंहादयः **पशवः** गवाद्याः, **मे वित्तं** लब्धं **च** सर्वं धनं **मे वित्तिः** प्राप्तिः **च** प्राप्तव्यं **मे भूतं** रूपं **च** नानाविधं **मे भूतिः** ऐश्वर्यं **च** एतत्साधनं **यज्ञेन** सङ्गतिकरणयोग्येन **कल्पन्ताम्** ॥ १८। १४॥

भाषार्थ—(मे) मेरी (अग्निः) अग्नि (च) और विद्युत् आदि (मे) मेरे (आपः) जल (च) और जल-रत्न, (मे) मेरे (वीरुधः) लता, गुल्म=झाड़ी आदि (च) और तृण-शाक आदि (मे) मेरी (ओषधयः) यव=जौ, सोमलता आदि, ओषधियाँ (च) और सर्वौषध आदि, (मे) मेरी (कृष्टपच्याः) खेतों में पके हुए अन्न (च) और उत्तम शस्य=खेती आदि (मे) मेरी (अकृष्टपच्याः) जंगल आदि में पके हुए अन्न (च) और पर्वत आदि में पके हुए अन्न, (मे) मेरे (ग्राम्याः) ग्राम में विद्यमान (च) और नगर में विद्यमान, (मे) मेरे (आरण्याः) अरण्य=वन में विद्यमान मृग आदि (च) और सिंह आदि पशु, (मे) मेरा (वित्तम्) प्राप्त पदार्थ (च) और सब धन, (मे) मेरी (वित्तिः) प्राप्ति (च) और प्राप्त करने योग्य वस्तु, (मे) मेरा (भूतम्)

रूप (च) और नाना प्रकार के रूप, (मे) मेरा (भूतिः) ऐश्वर्य (च) और इसके साधन (यज्ञेन) संगति के योग्य यज्ञ से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १४ ॥

[मेऽग्निश्च···मे भूतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये मनुष्याः पावकादिविद्यया सङ्गन्तव्यं शिल्पयज्ञं साध्नुवन्ति त ऐश्वर्यं लभन्ते ॥ १८ । १४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पाक आदि विद्या से संग करने योग्य शिल्प-यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥ १८ । १४ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=पावकविद्या । यज्ञेन=संगन्तव्येन शिल्पयज्ञेन ।

भाष्यसार—**विद्वान् मनुष्य का कर्त्तव्य**—विद्वान् मनुष्यों के द्वारा अग्नि वा विद्युदादि से संचालित जलयन्त्रादि कृषि से उत्पन्न होने वाले अन्न तथा फल, वन में उत्पन्न होने वाली ओषधियाँ, फलादि और ग्रामीण तथा वन्य पशु आदि सभी पदार्थ संगति करने के योग्य हों, ऐसा सब प्रयत्न किया करें। विद्वानों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे सब पदार्थों का ज्ञान करके परोपकार के योग्य बनावें ॥ १८ । १४ ॥

देवाः । **धनादियुक्त आत्मा=धनवान् मनुष्यः** । निचृदार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=पुरुषार्थ से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म ऽ एमश्च म ऽ इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

पदार्थः—(वसु) वस्तु (च) प्रियम् (मे) (वसतिः) यत्र वसन्ति सा (च) सामन्ता (मे) (कर्म) अभीप्सिततमा क्रिया (च) कर्त्ता (मे) (शक्तिः) सामर्थ्यम् (च) प्रेम (मे) (अर्थः) सकलपदार्थ-सञ्चयः (च) सञ्चेता (मे) (एमः) एति येन स प्रयत्नः (च) बोधः (मे) (इत्या) एमि=जानामि यया रीत्या सा (च) युक्तिः (मे) (गतिः) गमनम् (च) उत्क्षेपणादि कर्म (मे) (यज्ञेन) पुरुषार्थानुष्ठानेन (कल्पन्ताम्) ॥ १५ ॥

अन्वयः—मे वसु च मे वसतिश्च मे कर्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च म एमश्च म इत्या च मे गतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—मे वसु वस्तु **च** प्रियं, **मे वसतिः** यत्र वसन्ति सा **च** सामन्ता, **मे कर्म** अभीप्सिततमा क्रिया **च** कर्त्ता, **मे शक्तिः** सामर्थ्यं **च** प्रेम, **मेऽर्थः** सकलपदार्थसञ्चयः **च** सञ्चेता, **म एमः** एति येन स प्रयत्नः **च** बोधः, **म इत्या** एमि=जानामि यया रीत्या सा **च** युक्तिः, **मे गतिः** गमनं **च** उत्क्षेपणादि कर्म **यज्ञेन** पुरुषार्थानुष्ठानेन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १५ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरी (वसु) वस्तु (च) और प्रिय वस्तु, (मे) मेरी (वसतिः) बस्ती (च) और पड़ोस की बस्ती, (मे) मेरा (कर्म) अभीष्ट कर्म (च) और कर्त्ता, (मे) मेरा (शक्तिः) सामर्थ्य (च) और प्रेम, (मे) मेरा (अर्थः) सकल पदार्थों का संचय (च) और संचय-कर्त्ता, (मे) मेरा (एमः) प्रयत्न (च) और ज्ञान (मे) मेरी (इत्या) सब व्यवहारों को जानने की रीति (च) और युक्ति, (मे) मेरी

(गतिः) गति (च) और उत्क्षेपण आदि कर्म, (यज्ञेन) पुरुषार्थ के अनुष्ठान से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १५ ॥

[मे शक्तिश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! ये जनाः सर्वं सामर्थ्यादिकं सर्वहितायैव कुर्वन्ति, त एव प्रशंसिता भवन्ति ॥ १८ । १५ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य सब सामर्थ्य आदि को सबके हित के लिए सिद्ध करते हैं वे ही प्रशंसित होते हैं ॥ १८ । १५ ॥

भाष्यसार—मनुष्य का ऐश्वर्य यज्ञमय हो--यज्ञ=पुरुषार्थ करके सब मनुष्य वसु=ऐश्वर्य की सिद्धि किया करें। सभी मनुष्यों के कर्म, व्यवहार, जानने की रीतियों और पारस्परिक स्नेह पुरुषार्थमय हों। तब ही मानव-जीवन सुखमय बन सकता है ॥ १८ । १५ ॥

देवाः । **अग्न्यादिविद्याविदात्मा=अग्नि-आदिविद्यावेत्ता मनुष्यः** ।

निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ऽ इन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ऽ इन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) सूर्यः प्रसिद्धस्वरूपः (**च**) भौमः (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) वायुः (**मे**) (**सोमः**) सोम्यगुणसंपन्नो जनः पदार्थो वा (**च**) वृष्टिः (**मे**) (**इन्द्रः**) अन्यायविदारकः सभेशः (**च**) सभ्याः (**मे**) (**सविता**) ऐश्वर्य्ययुक्तः (**च**) एतत्साधनानि (**मे**) (**इन्द्रः**) सकलाऽविद्याछेदकोऽध्यापकः (**च**) विद्यार्थिनः (**मे**) (**सरस्वती**) प्रशस्तबोधः शिक्षायुक्ता वाणी वा (**च**) सत्यवक्ता (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्यार्थिनो जाड्यविच्छेदक उपदेशकः (**च**) श्रोतारः (**मे**) (**पूषा**) पोषकः (**च**) युक्ताहारविहारौ (**मे**) (**इन्द्रः**) यः पुष्टिकरणविद्यायां रमते (**च**) वैद्यः (**म**) (**बृहस्पतिः**) बृहतां व्यवहाराणां रक्षकः (**च**) राजा (**मे**) (**इन्द्रः**) सकलैश्वर्यवर्द्धकः (**च**) सेनेशः (**मे**) (**यज्ञेन**) विद्यैश्वर्य्योन्नतिकरणेन (**कल्पन्ताम्**) ॥ १६ ॥

अन्वयः—मेऽग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे सविता च म इन्द्रश्च मे सरस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**मेऽग्निः** सूर्यः प्रसिद्ध-स्वरूपः **च** भौमः, **म इन्द्रः** विद्युत् **च** वायुः, **मे सोमः** सोम्यगुणसम्पन्नो जनः पदार्थो वा **च** वृष्टिः, **म इन्द्रः** अन्यायविदारकः सभेशः **च** सभ्याः, **मे सविता** ऐश्वर्ययुक्तः **च** एतत्साधनानि, **म इन्द्रः** सकला-ऽविद्याछेदकोऽध्यापकः **च** विद्यार्थिनः, **मे सरस्वती** प्रशस्तबोधः शिक्षायुक्ता वाणी वा **च** सत्यवक्ता,

भाषार्थ—(मे) मेरा (अग्निः) प्रसिद्ध स्वरूप वाला सूर्य रूप अग्नि (च) और भूमि की अग्नि, (मे) मेरी (इन्द्रः) विद्युत् (च) और वायु, (मे) मेरा (सोमः) सोम्य गुण से युक्त पुरुष वा पदार्थ (च) और वर्षा, (मे) मेरा (इन्द्रः) अन्याय का विदारक सभापति (च) और सभ्य=सभा में विद्यमान पुरुष, (मे) मेरा (सविता) ऐश्वर्य से

म इन्द्रः विद्यार्थिनो जाड्यविच्छेदक उपदेशकः **च** श्रोतारः, **मे पूषा** पोषकः **च** युक्ताहारविहारौ, **म इन्द्रः** यः पुष्टिकरणविद्यायां रमते **च** वैद्यः, **मे बृहस्पतिः** बृहतां व्यवहाराणां रक्षकः **च** राजा, **म इन्द्रः** सकलैश्वर्यवर्द्धकः **च** सेनेशः **यज्ञेन** विद्यैश्वर्योन्नतिकरणेन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १६ ॥

सम्पन्न पुरुष (च) और इसके साधन, (मे) मेरा (इन्द्रः) सकल अविद्या का छेदक अध्यापक (च) और विद्यार्थी लोग, (मे) मेरा (सरस्वती) प्रशस्त बोध=ज्ञान अथवा शिक्षायुक्त वाणी, (च) और सत्य-वक्ता, (मे) मेरा (इन्द्रः) विद्यार्थियों की जड़ता का छेदक उपदेशक (च) और श्रोता लोग, (मे) मेरा (पूषा) पोषक (च) और युक्त आहार-विहार, (मे) मेरा (इन्द्रः) पुष्टिकारक विद्या में रमण करने वाला पुरुष (च) और वैद्य (मे) मेरा (बृहस्पतिः) बड़े व्यवहारों का रक्षक पुरुष (च) और राजा, (मे) मेरा (इन्द्रः) सकल ऐश्वर्य का वर्द्धक पुरुष (च) और सेनापति (यज्ञेन) विद्या और ऐश्वर्य की उन्नति से (कल्पन्ताम्) समर्थ हों ॥

[मेऽग्निश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! युष्माभिः सुविचारेण स्वकीयाः सर्वे पदार्थाः श्रेष्ठपालनाय दुष्टशिक्षणाय च सततं योजनीयाः ॥ १८ । १६ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम-उत्तम विचार से अपने सब पदार्थों को श्रेष्ठों के पालन और दुष्टों के शिक्षण में सदा लगाओ ॥ १८ । १६ ॥

भाष्यसार—विद्वान् मनुष्य का कर्त्तव्य—विद्युदादि पदार्थों के गुणों को जानकर विद्वान् मनुष्य सोम्य गुण वाला बने और ऐश्वर्य सम्पन्न होकर इन्द्र=अन्याय का विदारण करे। प्रशस्त विद्या तथा सत्य वाणी से युक्त होकर अविद्या का विनाश किया करें। युक्ताहार-विहार वाला होकर और पुष्टिकारक पदार्थों के सेवन से स्वस्थ होकर अच्छे व्यवहारों का रक्षक बने और अपने समस्त ऐश्वर्य को यज्ञमय बनाने का प्रयत्न करे ॥ १८ । १६ ॥

देवाः । **मित्रैश्वर्य्यसहित आत्मा=मित्रैश्वर्यवान् मनुष्यः** । स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=वायुविद्या से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

मित्रश्च॑ म॒ ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ धा॒ता च॑ म॒ ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ ऽ इन्द्र॑श्च मे॑ म॒रुत॑श्च म॒ ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ विश्वे॑ च मे दे॒वाऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**मित्रः**) प्राणः (**च**) समानः (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्युत् (**च**) तेजः (**मे**) (**वरुणः**) उदानः । प्राणोदानौ मित्रावरुणौ ॥ श० ३ । १ । १३ ॥ (**च**) व्यानः (**मे**) (**इन्द्रः**) सूर्य्यः (**च**) धृतिः (**मे**) (**धाता**) धर्त्ता (**च**) धैर्य्यम् (**मे**) (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य्यप्रापकः (**च**) न्यायः (**मे**) (**त्वष्टा**) विच्छेदकोऽग्निः (**च**) पुरुषार्थः (**मे**) (**इन्द्रः**) शत्रुविदारको राजा (**च**) शिल्पम् (**मे**) (**मरुतः**) ब्रह्माण्डस्था अन्ये वायवः (**च**) शारीरा धातवः (**मे**) (**इन्द्रः**) सर्वाभिव्यापिका तडित् (**च**) एतत्प्रयोगः (**मे**) (**विश्वे**) सर्वे (**च**) सर्वस्वम् (**मे**) (**देवाः**) दिव्यगुणाः पृथिव्यादयः (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यदाता (**च**) एतदुपयोगः (**मे**) (**यज्ञेन**) वायुविद्याविधानेन (**कल्पन्ताम्**) ॥ १७ ॥

प्रमाणार्थ—(वरुणः) उदानः। शतपथ ब्राह्मण ३। १। १३ के प्रमाण से मित्र का अर्थ प्राण और वरुण का अर्थ उदान है ॥

अन्वयः—मे मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विश्वे च देवा म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः— **मे मित्रः** प्राणः **च** समानः, **म इन्द्रः** विद्युत् **च** तेजः, **मे वरुणः** उदानः **च** व्यानः, **म इन्द्रः** सूर्य्यः **च** धृतिः, **मे धाता** धर्त्ता **च** धैर्यं, **म इन्द्रः** परमैश्वर्यप्रापकः **च** न्यायः, **मे त्वष्टा** विच्छेदकोऽग्निः **च** पुरुषार्थः **म इन्द्रः** शत्रुविदारको राजा **च** शिल्पं, **मे मरुतः** ब्रह्माण्डस्था अन्ये वायवः **च** शारीरा धातवः, **म इन्द्रः** सर्वाभिव्यापिका तडित् **च** एतत्प्रयोगः, **मे विश्वे** सर्वे **च** सर्वस्वं **देवाः** दिव्यगुणाः पृथिव्यादयः, **म इन्द्रः** परमैश्वर्य्यदाता **च** एतदुपयोगः **यज्ञेन** वायुविद्याविधानेन **कल्पन्ताम्** ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (मित्रः) प्राण (च) और समान, (मे) मेरी (इन्द्रः) विद्युत् (च) और तेज, (मे) मेरा (वरुणः) उदान (च) और व्यान, (मे) मेरा (इन्द्रः) सूर्य (च) और धृति, (मे) मेरा (धाता) धारण करने वाला (च) और धैर्य, (मे) मेरा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का प्रापक पुरुष (च) और न्याय, (मे) मेरा (त्वष्टा) छेदक अग्नि (च) और पुरुषार्थ, (मे) मेरा (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारक राजा (च) और शिल्प, (मे) मेरा (मरुतः) ब्रह्माण्ड में स्थित अन्य वायु (च) और शरीर की धातु, (मे) मेरी (इन्द्रः) सब में व्यापक तडित्=बिजली (च) और इसका प्रयोग, (मे) मेरे (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य गुणों वाले पृथिवी आदि पदार्थ (च) और सर्वस्व, (मे) मेरा (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का दाता (च) और इसका उपयोग (यज्ञेन) वायु-विद्या के विधान से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १७ ॥

[मे मित्रश्च, म इन्द्रश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्याः प्राणविद्युद्विद्यां विज्ञायैतयोः सर्वत्राभिव्याप्तिं च ज्ञात्वा दीर्घजीवनं सम्पादयेयुः ॥ १८ । १७ ॥

भावार्थ—मनुष्य प्राण-विद्या और विद्युत्-विद्या को जानकर और इनकी सर्वत्र व्याप्ति को समझ कर दीर्घ-जीवन को सिद्ध करें ॥ १८ । १७ ॥

भा० पदार्थः—मित्रः=प्राणविद्या। इन्द्रः=विद्युद्विद्या ॥

भाष्यसार—**प्राणादि विद्या के विद्वान् का कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुष शरीर में व्याप्त प्राणादि विभिन्न वायुओं के कार्यों को जानकर उनको समान रखने का प्रयत्न करे। प्राणादि के ठीक रहने से तेज, धृति आदि गुणों को धारण करके ऐश्वर्यवान् बने। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में व्यापक वायु, विद्युत् आदि को जानकर ऐश्वर्य का संग्रह करे और उसे यज्ञमय बनाने का प्रयत्न करे ॥ १८ । १७ ॥

देवाः। **राज्यैश्वर्यादियुक्तात्मा**=राज्यैश्वर्यादियुक्तो मनुष्यः।
भुरिक् शक्वरी। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=पृथिवी के काल-विज्ञापक से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

पृथिवी चं म ऽ इन्द्रंश्च मे ऽन्तरिक्षं च म ऽइन्द्रंश्च मे द्यौश्चं ऽ म इन्द्रंश्च मे समाश्च म ऽ इन्द्रंश्च मे नक्षत्राणि च म ऽ इन्द्रंश्च मे दिशश्च म ऽ इन्द्रंश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**पृथिवी**) विस्तीर्णा भूमिः (**च**) अत्रस्थाः पदार्थाः (**मे**) (**इन्द्रः**) विद्युत्क्रिया (**च**) बलप्रदा (**मे**) (**अन्तरिक्षम्**) अक्षयमाकाशकम (**च**) अत्रस्थाः पदार्थाः (**मे**) (**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्याधारः (**च**) एतत् प्रयोगः (**मे**) (**द्यौः**) प्रकाशकर्मा (**च**) एतत् साधकाः पदार्थाः (**मे**) (**इन्द्रः**) सकलपदार्थ-विच्छेत्ता (**च**) विच्छेद्याः पदार्थाः (**मे**) (**समाः**) सँवत्सराः (**च**) क्षणादयः (**मे**) (**इन्द्रः**) कालज्ञाननिमित्तः (**च**) गणितम् (**मे**) (**नक्षत्राणि**) यानि कारणरूपेण न क्षीयन्ते तानि भुवनानि (**च**) एतत् सम्बन्धिनः (**मे**) (**इन्द्रः**) लोके लोकान्तरस्था विद्युत् (**च**) (**मे**) (**दिशः**) पूर्वाद्याः (**च**) एतत्स्थानि वस्तूनि (**मे**) (**इन्द्रः**) दिग्ज्ञापकः (**च**) ध्रुवतारा (**मे**) (**यज्ञेन**) पृथिवीकालविज्ञापकेन (**कल्पन्ताम्**) ॥ १८ ॥

अन्वयः—मे पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च म इन्द्रश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—मे पृथिवी विस्तीर्णा भूमिः **च** अत्रस्थाः पदार्थाः, **म इन्द्रः** विद्युत्क्रिया **च** बलप्रदा, **मेऽन्तरिक्षम्** अक्षयमाकाशकं **च** अत्रस्थाः पदार्थाः, **म इन्द्रः** सर्वैश्वर्याधारः **च** एतत्प्रयोगः, **मे द्यौः** प्रकाशकर्मा **च** एतत् साधकाः पदार्थाः, **मे इन्द्रः** सकलपदार्थ-विच्छेत्ता **च** विच्छेद्याः पदार्थाः, **मे समाः** सँवत्सराः **च** क्षणादयः, **म इन्द्रः** कालज्ञाननिमित्तः **च** गणितं, **मे नक्षत्राणि** यानि कारणरूपेण न क्षीयन्ते तानि भुवनानि **च** एतत्सम्बन्धिनः, **मे इन्द्रः** लोक-लोकान्तरस्था विद्युत् **च**, **मे दिशः** पूर्वाद्याः **च** एतत्-स्थानि वस्तूनि, **म इन्द्रः** दिग्ज्ञापकः **च** ध्रुवतारा **यज्ञेन** पृथिवीकालविज्ञापकेन **कल्पन्ताम्** ॥

भाषार्थ—(मे) मेरी (पृथिवी) विस्तीर्ण भूमि (च) और इसमें स्थित पदार्थ, (मे) मेरी, (इन्द्रः) विद्युत् की क्रिया (च) और बलप्रद विद्युत् (मे) मेरा (अन्तरिक्षम्) अक्षय आकाश (च) और इसमें स्थित पदार्थ, (मे) मेरा (इन्द्रः) सब ऐश्वर्य का आधार (च) और इसका प्रयोग, (मे) मेरा (द्यौः) प्रकाश करने वाला द्युलोक (च) और इसके साधक पदार्थ, (मे) मेरा (इन्द्रः) सकल पदार्थों का छेदक विद्युत् (च) और छेद्य पदार्थ, (मे) मेरे (समाः) संवत्सर=वर्ष (च) और क्षण आदि, (मे) मेरा (इन्द्रः) काल ज्ञान का निमित्त सूर्य (च) और गणित, (मे) मेरे (नक्ष-त्राणि) कारण रूप से क्षीण न होने वाले भुवन=लोक (च) और इनके सम्बन्धी लोक, (मे) मेरी (इन्द्रः) लोक-लोकान्तर में स्थित विद्युत् (च) और इसका उपयोग, (मे) मेरी (दिशः) पूर्व आदि दिशाएं (च) और इनमें स्थित वस्तुएँ, (मे) मेरा (इन्द्रः) दिशाओं का ज्ञापक पुरुष (च) और ध्रुवतारा (यज्ञेन) पृथिवी के काल-विज्ञापक पुरुष से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १८ ॥

[मे पृथिवी च, म इन्द्रश्च···म इन्द्रश्च···यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—मनुष्याः पृथिव्यादिपदार्था-स्तत्रस्थां विद्युतं च यावन्न जानन्ति, तावदैश्वर्यं न ह्याप्नुवन्ति ॥ १८ । १८ ॥

भावार्थ—मनुष्य पृथिवी आदि पदार्थों और उनमें स्थित विद्युत् को जब तक नहीं जानते हैं तब तक ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं होते ॥ १८ । १८ ॥

भाष्यसार—विद्वान् ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए क्या क्या करे ?—विद्वान् मनुष्य पृथिवी और पृथिवीस्थ पदार्थों के, आकाश और आकाशस्थ पदार्थों के, बलप्रदविद्युत् के, द्युलोक और द्युलोकस्थ पदार्थों के, सब दिशाओं में स्थित पदार्थों के गुणों को और काल के ज्ञापक सूर्य नक्षत्रादि को जानकर ऐश्वर्य को प्राप्त करे और उसे यज्ञमय बनावे ।। १८ । १८ ।।

देवाः । **पदार्थविद्वात्मा**=पदार्थवेत्ता मनुष्यः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को यज्ञ=अग्नि पदार्थ के उपयोग से क्या प्राप्त करना चाहिए,
यह उपदेश किया है ।।

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च म ऽ उपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒म-श्च॑ म ऽ ऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म ऽ आ॒श्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ।। १९ ।।

पदार्थः—(**अंशुः**) व्याप्तिमान् सूर्यः । अत्राशूङ्व्याप्तावित्यास्माद्बाहुलकेनौणादिक उः प्रत्ययो नुगागमश्च (**च**) प्रतापः (**मे**) (**रश्मिः**) येनाश्नाति सः । अत्राश भोजने धातोर्बाहुलकान् मिः प्रत्ययो रशादेशश्च ।। उ० ४ । ४६ ।। (**च**) विविधम् (**मे**) (**अदाभ्यः**) उपक्षयरहितः (**च**) रक्षकः (**मे**) (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**च**) अध्यस्तम् (**मे**) (**उपांशुः**) उपगता अंशवो यत्र स उपांशुर्जपः (**च**) रहस्यविचारः (**मे**) (**अन्तर्यामः**) योऽन्तर्मध्ये याति स वायुः (**च**) बलम् (**मे**) (**ऐन्द्रवायवः**) इन्द्रो=विद्युद्वायुश्च तयोरयं सम्बन्धी (**च**) जलम् (**मे**) (**मैत्रावरुणः**) प्राणोदानयोरयं सहचारी (**च**) व्यानः (**मे**) (**आश्विनः**) अश्विनोः=सूर्याचन्द्रमसोरयं मध्यवर्त्ती (**च**) प्रभावः (**मे**) (**प्रतिप्रस्थानः**) यः प्रस्थानं=गमनं प्रति वर्त्तते सः (**च**) भ्रमणम् (**मे**) (**शुक्रः**) शुद्धस्वरूपः (**च**) वीर्यकरः (**मे**) (**मन्थी**) मथितुं शीलः (**च**) पयः काष्ठादिः (**मे**) (**यज्ञेन**) अग्निपदार्थोपयोगेन (**कल्पन्ताम्**) ।। १९ ।।

प्रमाणार्थ—(**अंशुः**) यहाँ 'अशूङ् व्याप्तौ' इस धातु से बहुल करके औणादिक 'उ' प्रत्यय और 'नुक्' का आगम है । (**रश्मिः**) यहाँ 'अश भोजने' इस धातु से बहुल करके 'मि' प्रत्यय और धातु को रश्-आदेश है (उ० ४ । ४६) ।।

अन्वयः—मेंऽशुश्च मे रश्मिश्च मेऽदाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपांशुश्च मेऽन्तर्यामश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मैत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च यज्ञेन कल्पन्ताम् ।। १९ ।।

सपदार्थान्वयः—**मेंऽशुः** व्याप्तिमान् सूर्यः **च** प्रतापः, **मे रश्मिः** येनाऽश्नाति सः **च** विविधं, **मेऽदाभ्यः** उपक्षयरहितः **च** रक्षकः, **मेऽधिपतिः** अधिष्ठाता **च** अध्यस्तं, **म उपांशुः** उपगता अंशवो यत्र स उपांशुर्जपः **च** रहस्यविचारः, **मेऽन्तर्यामः** योऽन्तर्मध्ये याति स वायुः **च** बलं **म ऐन्द्रवायवः** इन्द्रो=विद्युद्वायुश्च तयोरयं सम्बन्धी

भाषार्थ—(मे) मेरा (अंशुः) व्यापक सूर्य (च) और प्रताप, (मे) मेरा (रश्मिः) भोजन का साधन (च) और विविध भोजन, (मे) मेरा (अदाभ्यः) क्षयरहित पुरुष (च) और रक्षक, (मे) मेरा (अधिपतिः) अधिष्ठाता (च) और उसका स्थान, (मे) मेरा (उपांशुः) जप (च) और रहस्य-विचार, (मे) मेरा (अन्तर्यामः) मध्य में गति वाला

च जलं, **मे मैत्रावरुणः** प्राणोदानयोरयं सहचारी **च** व्यानः, **म आश्विनः** अश्विनोः=सूर्याचन्द्रमसोरयं मध्यवर्त्ती **च** प्रभावः, **मे प्रतिप्रस्थानः** यः प्रस्थानं=गमनं प्रति वर्त्तते सः **च** भ्रमणं, **मे शुक्रः** शुद्धस्वरूपः **च** वीर्यकरः, **मे मन्थी** मथितुं शीलः **च** पयः काष्ठादिः **यज्ञेन** अग्निपदार्थोपयोगेन **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । १९ ॥

वायु (च) और बल, (मे) मेरा (ऐन्द्रवायवः) इन्द्र=विद्युत् और वायु का सम्बन्धी अग्नि (च) और जल, (मे) मेरा (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान का सहचारी वायु (च) और व्यान, (मे) मेरा (आश्विनः) सूर्य और चन्द्रमा के मध्य में रहने वाला तेज (च) और प्रभाव, (मे) मेरा (प्रतिप्रस्थानः) प्रस्थान=गमन के प्रति विद्यमान अर्थात् गतिशील वायु (च) और भ्रमण, (मे) मेरा (शुक्रः) शुद्ध स्वरूप (च) और बलकारी पदार्थ, (मे) मेरा (मन्थी) मन्थन करने वाला (च) और दूध और काष्ठ=रई आदि (यज्ञेन) अग्नि पदार्थ के उपयोग से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । १९ ॥

[मेंऽशुश्च...यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—यदि मनुष्याः सूर्यप्रकाशादिभ्यो ऽप्युपकारं गृह्णीयुस्तर्हि विद्वांसो भूत्वा क्रियाकौशलं कुतो न प्राप्नुयुः ॥ १८ । १९ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य सूर्य-प्रकाश आदि से भी उपकार ग्रहण करें तो विद्वान् होकर क्रिया-कौशल को क्यों न प्राप्त हों ॥ १८ । १९ ॥

भा० पदार्थः—अंशुः=सूर्यप्रकाशः ।

भाष्यसार—**विद्या के विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य**—उपांशु अर्थात् सूर्य की किरणों के विज्ञान को जानकर विद्वान् पुरुष भोजनादि के पकाने में प्रयोग करें । इसी प्रकार विद्युत् और वायु का ज्ञान करके विभिन्न प्रयोग किया करें । प्राण तथा उदान के सहचारी वायु और सूर्य तथा चन्द्रमा के समीप रहने वाले विभिन्न वायुओं के प्रभावों को जानकर सर्वत्र भ्रमण किया करें ॥ १८ । १९ ॥ ●

देवाः । **यज्ञानुष्ठानात्मा**=यज्ञानुष्ठाता पुरुषः । स्वराडतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=संगति से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऽ ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

पदार्थः—(**आग्रयणः**) मार्गशीर्षादिमासनिष्पन्नो यज्ञविशेषः (**च**) (**मे**) (**वैश्वदेवः**) विश्वेषां देवानामयं सम्बन्धी (**च**) (**मे**) (**ध्रुवः**) निश्चलः (**च**) (**मे**) (**वैश्वानरः**) विश्वेषां=सर्वेषां नराणामयं सत्कारः (**च**) (**मे**) (**ऐन्द्राग्नः**) इन्द्रो=वायुरग्निर्विद्युच्च ताभ्यां निवृत्तः (**च**) (**मे**) (**महावैश्वदेवः**) महतां विश्वेषां=सर्वेषां देवानामयं व्यवहारः (**च**) (**मे**) (**मरुत्वतीयाः**) मरुतां सम्बन्धिनो व्यवहाराः (**च**) (**मे**) (**निष्केवल्याः**) नितरां केवलं=सुखं यस्मिंस्तस्मिन् भवाः (**च**) (**मे**) (**सावित्रः**) सवितुः=सूर्यस्यायं प्रभावः (**च**) (**मे**) (**सारस्वतः**) सरस्वत्या=वाण्या अयं सम्बन्धी (**च**) (**मे**) (**पात्नीवतः**) प्रशस्ता पत्नी यज्ञसम्बन्धिनी तद्वतोऽयम् (**च**) (**मे**) (**हारियोजनः**) हरीणामश्वानां योजयिता तस्यायमनुक्रमः (**च**) (**मे**) (**यज्ञेन**) संगतिकरणेन (**कल्पन्ताम्**) ॥ २० ॥

अन्वयः—म आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—**म आग्रयणः** मार्गशीर्षादिमासनिष्पन्नो यज्ञविशेषः **च, मे वैश्वदेवः** विश्वेषां देवानामयं सम्बन्धी **च, मे ध्रुवः** निश्चलः **च, मे वैश्वानरः** विश्वेषां=सर्वेषां नराणामयं सत्कारः **च, म ऐन्द्राग्नः** इन्द्रो=वायुरग्निर्विद्युच्च ताभ्यां निर्वृत्तः **च, मे महावैश्वदेवः** महतां विश्वेषां=सर्वेषां देवानामयं व्यवहारः **च, मे मरुत्वतीयाः** मरुतां सम्बन्धिनो व्यवहाराः **च, मे निष्केवल्याः** नितरां केवलं=सुखं यस्मिंस्तस्मिन् भवाः **च; मे सावित्रः** सवितुः=सूर्यस्यायं प्रभावः **च, मे सारस्वतः** सरस्वत्या=वाण्या अयं सम्बन्धी **च, मे पात्नीवतः** प्रशस्ता पत्नी यज्ञसम्बन्धिनी तद्वतोऽयं **च, मे हारियोजनः** हरीणामश्वानां योजयिता तस्यायमनुक्रमः **च यज्ञेन** सङ्गतिकरणेन **कल्पन्ताम्** ॥ २० ॥

भाषार्थ—(च) और—(मे) मेरा (आग्रयणः) मार्गशीर्ष आदि मास में निष्पन्न यज्ञविशेष, (च) और (वैश्वदेवः) सब विद्वानों का संग करने वाला पुरुष, (च) और (मे) मेरा (ध्रुवः) निश्चल व्यवहार, (च) और (मे) मेरा (वैश्वानरः) सब नरों का सत्कार, (च) और (मे) मेरा (ऐन्द्राग्नः) इन्द्र=वायु और अग्निविद्युत् से बना पदार्थ, (च) और (मे) मेरा (महावैश्वदेवः) सब महान् विद्वानों का व्यवहार, (मे) मेरे (मरुत्वतीयाः) मरुत् वायु सम्बन्धी व्यवहार, (च) और (मे) मेरे (निष्केवल्याः) सर्वथा केवल=सुख में रहने वाले पुरुष, (च) और (मे) मेरा (सावित्रः) सूर्य का प्रभाव, (च) और (मे) मेरा (सारस्वतः) सरस्वती=वाणी का सम्बन्धी=विद्वान्, (च) और (मे) मेरा (पात्नीवतः) प्रशस्त यज्ञसंगिनी पत्नी वाले का व्यवहार, (च) और (मे) मेरा (हारियोजनः) हरि=घोड़ों को रथ आदि में जोड़ने वाले का अनुक्रम (यज्ञेन) विद्वानों की संगति करने से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । २० ॥

[म आग्रयणश्च ··· मे पात्नीवतश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये मनुष्यास्सामयिकीं क्रियां, विद्वत्संगं चाश्रित्य विवाहित-स्त्रीव्रता भवेयुस्ते पदार्थविद्यां कुतो न जानीयुः ॥ १८ । २० ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सामयिक क्रिया और विद्वानों के संग को प्राप्त करके विवाहित स्त्री-व्रत होते हैं वे पदार्थ विद्या को क्यों न जानें ? ॥ २० ॥

भा० पदार्थः—आग्रयणः=सामयिकी क्रिया । पात्नीवतः=विवाहितस्त्रीव्रतः । यज्ञेन=विद्वत्संगेन ॥

भाष्यसार—**यज्ञानुष्ठाता मनुष्य की संगति से लाभ**—सारस्वतः=पूर्ण विद्वान्, निष्कैवल्यः=केवल सुखों में वर्तमान और सावित्रः=सूर्य के समान तेजस्वी आग्रयणादि यज्ञों के करने वाले विद्वान् पुरुषों की संगति से सब सामयिक क्रियाओं, पदार्थ विद्या, और विद्वानों के सदृश सद् व्यवहार को सब मनुष्य सीखें ॥ १८ । २० ॥

देवाः । **यज्ञाङ्गवानात्मा**=यज्ञाङ्गवान् मनुष्यः । विराड्धृतिः । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=हवन आदि से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽ आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**स्रुचः**) जुह्वादयः (**च**) तच्छुद्धिः (**मे**) (**चमसाः**) होमभोजनपात्राणि (**च**) उपकरणानि (**मे**) (**वायव्यानि**) वायुषु साधूनि (**च**) पवनशुद्धिकराणि (**मे**) (**द्रोणकलशः**) द्रोणश्चासौ कलशश्च पात्रविशेषः (**च**) परिमाणविशेषाः (**मे**) (**ग्रावाणः**) शिलाफलकादयः (**च**) मुशलोलूखले (**मे**) (**अधिषवणे**) सोमलताद्योषधिसाधके (**च**) कुट्टनपेषणक्रिया (**मे**) (**पूतभृत्**) येन पूतं बिभर्त्ति तच्छुद्धिकरं शूर्पादिकम् (**च**) मार्जन्यादिकम् (**मे**) (**आधवनीयः**) आधवनसाधनपात्रविशेषः (**च**) मल्लिकादयः (**मे**) (**वेदिः**) यत्र हूयते (**च**) चतुष्कादिः (**मे**) (**बर्हिः**) उपवर्धको दर्भसमूहः (**च**) तद्योग्यम् (**मे**) (**अवभृथः**) यज्ञान्तःस्नानादिकम् (**च**) सुगन्धलेपनम् (**मे**) (**स्वगाकारः**) येन स्वान् पदार्थान् गाते तं करोतीति (**च**) पवित्रीकरणम् (**मे**) (**यज्ञेन**) हवनादिना (**कल्पन्ताम्**) समर्थयन्तु ॥ २१ ॥

अन्वयः—मे स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च **यज्ञेन** कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे स्रुचः** जुह्वादयः **च** तच्छुद्धिः, **मे चमसाः** होमभोजनपात्राणि **च** उपकरणानि, **मे वायव्यानि** वायुषु साधूनि **च** पवनशुद्धिकराणि, **मे द्रोणकलशः** द्रोणश्चासौ कलशश्च पात्रविशेषः **च** परिमाणविशेषाः, **मे ग्रावाणः** शिलाफलकादयः **च** मुशलोलूखले, **मे ऽधिषवणे** सोमलताद्योषधिसाधके **च** कुट्टनपेषणक्रिया, **मे पूतभृत्** येन पूतं बिभर्त्ति तच्छुद्धिकरं शूर्पादिकं **च** मार्जन्यादिकं, **म आधवनीयः** आधवनसाधनपात्रविशेषः **च** मल्लिकादयः, **मे वेदिः यत्र** हूयते **च** चतुष्कादिः, **मे बर्हिः** उपवर्धको दर्भसमूहः **च** तद्योग्यं, **मेऽवभृथः** यज्ञान्तःस्नानादिकं **च** सुगन्धलेपनं, **मे स्वगाकारः** येन स्वान् पदार्थान् **गाते तं करोतीति च** पवित्रीकरणं **यज्ञेन** हवनादिना **कल्पन्ताम्** समर्थयन्तु ॥ १८ । २१ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरे (स्रुचः) जुहू=स्रुवा आदि (च) और उनकी शुद्धि, (मे) मेरे (चमसाः) भोजन के पात्र (च) और उपकरण, (मे) मेरे (वायव्यानि) वायुओं में सुखद (च) और पवन को शुद्ध करने वाले पदार्थ, (मे) मेरा (द्रोणकलशः) द्रोण=२० सेर परिमाण का पात्र विशेष कलश (च) और परिमाण विशेष, (मे) मेरे (ग्रावाणः) शिलाफलक=पत्थर आदि (च) और मूसल=ऊखल, (मे) मेरे (अधिषवणे) सोमलता आदि ओषधियों के साधक पदार्थ (च) और कूटना-पीसना, (मे) मेरा (पूतभृत्) पूत=शुद्ध को धारण करने वाला शुद्धिकर शूर्प=छाज आदि, (च) मार्जनी आदि, (मे) मेरा (आधवनीयः) धोने का पात्र विशेष (च) और मल्लिका=दीवट आदि, (मे) मेरी (वेदिः) होम करने की वेदि (च) और चतुष्क=चार खंभों वाली यज्ञशाला, (मे) मेरा (बर्हिः) दर्भ का समूह (च) और यज्ञ के योग्य पदार्थ (मे) मेरा (अवभृथः) यज्ञान्त स्नान आदि (च) और सुगन्ध चन्दन आदि का अनुलेपन (मे) मेरा (स्वगाकारः) अपने पदार्थों की प्राप्ति के साधनों का निर्माता (च) और उनकी पवित्रता (यज्ञेन) हवन आदि से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥

[मे स्रुचश्च मे चमसाश्च'''यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—त एव मनुष्या यज्ञं कर्त्तुं शक्नुवन्ति ये साधनोपसाधनसामग्रीरलंकुर्वन्ति ॥

भावार्थ—वे ही मनुष्य यज्ञ कर सकते हैं जो साधन-उपसाधन सामग्री से अलंकृत हैं ॥

भाष्यसार—**यज्ञ के साधन और यज्ञ से लाभ**—यज्ञ करने का इच्छुक यजमान स्रुवा, भोजन के पात्र, द्रोणकलश, शिलाफलक (**पत्थर**) मूसल ऊखलादि कूटने के साधन, शूर्प (छाज), धोने के पात्र विशेष, दीवट, चार खम्बों वाली यज्ञशाला और दर्भासनादि साधनों का संग्रह करे ।

यज्ञ करने से वायु जल की शुद्धि, दुर्गन्ध का नाश होने से रोगों का दूरीकरण, शरीरों की पुष्टि तथा वृष्टि आदि अनेक लाभ होते हैं ॥ १८ । २१ ॥

देवाः । **यज्ञवानात्मा**=यज्ञानुष्ठाता मनुष्यः । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=संगति करने योग्य परमात्मा से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावकः (**च**) तत्प्रयोगः (**मे**) (**घर्मः**) तापः (**च**) शान्तिः (**मे**) (**अर्कः**) पूजनीयसामग्रीविशेषः (**च**) एतच्छुद्धिकरो व्यवहारः (**मे**) (**सूर्यः**) सविता (**च**) जीविकाहेतुः (**मे**) (**प्राणः**) जीवनहेतुः (**च**) बाह्यो वायुः (**मे**) (**अश्वमेधः**) राष्ट्रम् (**च**) राजनीतिः (**मे**) (**पृथिवी**) भूमिः (**च**) एतत्स्थाः सर्वपदार्थाः (**मे**) (**अदितिः**) अखण्डिता नीतिः (**च**) जितेन्द्रियत्वम् (**मे**) (**दितिः**) अखण्डिता सामग्री (**च**) अनित्यं जीवनं शरीरादिकं वा (**मे**) (**द्यौः**) धर्मप्रकाशः (**च**) अहर्निशम् (**मे**) (**अंगुलयः**) अङ्गन्ति=प्राप्नुवन्ति याभिस्ताः (**शक्वरयः**) शक्तयः (**दिशः**) (**च**) उपदिशः (**मे**) (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणयोग्येन परमात्मना (**कल्पन्ताम्**) ॥ २२ ॥

अन्वयः—मेऽग्निश्च मे घर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

सपदार्थान्वयः—**मेऽग्निः** पावकः **च** तत्प्रयोगः, **मे घर्मः** तापः **च** शान्तिः, **मेऽर्कः** पूजनीयसामग्रीविशेषः **च** एतच्छुद्धिकरो व्यवहारः, **मे सूर्यः** सविता **च** जीविकाहेतुः, **मे प्राणः** जीवनहेतुः **च** बाह्यो वायुः, **मेऽश्वमेधः** राष्ट्रं **च** राजनीतिः, **मे पृथिवी** भूमिः **च** एतत्स्थाः सर्वपदार्थाः, **मेऽदितिः** अखण्डिता नीतिः **च** जितेन्द्रियत्वं, **मे दितिः** अखण्डिता सामग्री **च** अनित्यं जीवनं शरीरादिकं वा, **मे द्यौः** धर्मप्रकाशः **च** अहर्निशं, **मेऽङ्गुलयः** अङ्गन्ति=प्राप्नुवन्ति याभिस्ताः **शक्वरयः** शक्तयः **दिशश्च** उपदिशः **यज्ञेन** सङ्गतिकरणयोग्येन परमात्मना **कल्पन्ताम्** ॥ १८ । २२ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरी (अग्निः) अग्नि (च) और उसका प्रयोग, (मे) मेरा (घर्मः) ताप (च) और शान्ति, (मे) मेरी (अर्कः) पूजा के योग्य सामग्री विशेष (च) और इसे शुद्ध रखने वाला व्यवहार, (मे) मेरा (सूर्यः) सूर्य (च) और जीविका का निमित्त, (मे) मेरा (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (च) और बाह्य वायु, (मे) मेरा (अश्वमेधः) राष्ट्र (च) और राजनीति, (मे) मेरी (पृथिवी) भूमि (च) और इसमें स्थित सब पदार्थ, (मे) मेरी (अदितिः) अखण्डित नीति (च) और जितेन्द्रियता, (मे) मेरी (दितिः) अखण्डित सामग्री (च) और अनित्य जीवन वा शरीर आदि, (मे) मेरा (द्यौः)

धर्म का प्रकाश (च) और दिन-रात, (मे) मेरी (अङ्गुलयः) पदार्थों को प्राप्त करने वाली अंगुलियाँ, (शक्वरयः) शक्तियाँ (दिशः) दिशाएँ (च) और उपदिशाएँ (यज्ञेन) संगति करने योग्य परमात्मा से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । २२ ॥

[मेऽग्निश्च ··· मे प्राणश्च ··· यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये प्राणिसुखाय यज्ञमनुतिष्ठन्ति ते महाशयाः सन्तीति वेद्यम् ॥ १८ । २२ ॥

भावार्थ—जो प्राणियों के सुख के लिए यज्ञ करते हैं वे महाशय हैं; ऐसा समझें ॥१८।२२॥

भाष्यसार—यज्ञों से विभिन्न लाभ—यज्ञ अर्थात् परमेश्वर की संगति से धर्म-प्रकाश जीवन में जितेन्द्रियता, जीवन का हेतु प्राण-शक्ति की प्राप्ति, अग्नि के समान तेजस्विता सूर्य के तुल्य ज्ञानाग्नि से प्रकाशयुक्तादिगुणों की प्राप्ति होती है। भौतिकयज्ञ से विद्वानों की संगति से शुद्ध व्यवहार, अंगुली आदि शरीराङ्गों का पोषण, बाह्य वायु की शुद्धि और अश्वमेधादि यज्ञों से राजनीति में दृढ़तादि गुणों की प्राप्ति होती है ॥ १८ । २२ ॥

देवाः । **कालविद्याविदात्मा**=कालविद्यावेत्ता मनुष्यः । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को यज्ञ=काल विद्या के ज्ञान से क्या प्राप्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

व्रतं च म ऽ ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऽ ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

पदार्थः—(व्रतम्) सत्याचरणनियमपालनम् (च) सत्यकथनं सत्योपदेशश्च (मे) (ऋतवः) वसन्ताद्याः (च) अयनम् (मे) (तपः) प्राणायामो धर्मानुष्ठानं वा (च) शीतोष्णादिद्वन्द्वसहनम् (मे) (संवत्सरः) द्वादशभिर्मासैरलंकृतः (च) कल्पमहाकल्पादि (मे) (अहोरात्रे) (ऊर्वष्ठीवे) ऊरू चाष्ठीवन्तौ च ते। अत्र अचतुरवि० ॥ अ० ५ । ४ । ७७ ॥ इति निपातितः। (बृहद्रथन्तरे) बृहच्च रथन्तरं च ते (च) वोढॄन् (मे) (यज्ञेन) कालचक्रज्ञानधर्माद्यनुष्ठानेन (कल्पन्ताम्) ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(ऊर्वष्ठीवे) यह पद 'अचतुर विचतुर०' (अ० ५ । ४ । ७७) में निपातित है ॥

अन्वयः—मे व्रतं च म ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

सपदार्थान्वयः—मे व्रतं सत्याचरणनियमपालनं च सत्यकथनं सत्योपदेशश्च, म ऋतवः वसन्ताद्याः च अयनं, मे तपः प्राणायामो धर्मानुष्ठानं वा च शीतोष्णादिद्वन्द्वसहनं, मे संवत्सरः द्वादशभिर्मासैरलंकृतः च कल्पमहाकल्पादि, मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे ऊरू चाष्ठीवन्तौ च ते बृहद्रथन्तरे

भाषार्थ—(मे) मेरा (व्रतम्) सत्याचरण एवं नियमपालन (च) और सत्यभाषण और सत्य उपदेश, (मे) मेरी (ऋतवः) वसन्त आदि ऋतु (च) और अयन=दक्षिणायन, उत्तरायण, (मे) मेरा (तपः) प्राणायाम वा धर्माचरण (च) और शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों का सहन, (मे) मेरा

बृहच्च रथन्तरं च ते च वोढ़न् यज्ञेन कालचक्र-ज्ञानधर्माद्यनुष्ठानेन कल्पन्ताम् ॥ १८ । २३ ॥

(संवत्सरः) बारह मासों से अलंकृत वर्ष (च) और कल्प, महाकल्प आदि, (मे) मेरे (अहोरात्रे) दिन-रात, (बृहद्रथन्तरे) बृहत् और रथन्तर (च) और घोड़े बैल आदि (यज्ञेन) काल चक्र और धर्मादि के आचरण से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । २३ ॥

[ऋतवश्च मे तपश्च मे⋯यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये नियतसमये कार्याणि सततं धर्म चा चरन्ति, ते ऽभीष्टसिद्धिमाप्नुवन्ति ॥

भावार्थ—जो लोग नियत समय पर कार्य और निरन्तर धर्माचरण करते हैं वे अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १८ । २३ ॥

भा० पदार्थः—तपः=सततं धर्माचरणम् ।

भाष्यसार—**काल-चक्रवेत्ता मनुष्य का व्यवहार**—वसन्तादि ऋतुओं, दिन-रात, आदि समयों के अनुसार कार्य करने वाला मनुष्य शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों को सहने से तपस्वी, सत्यभाषणादि व्रतों का पालक और धर्माचरणादि शुभ कार्यों में रुचि रखने वाला हो जाता है ॥ १८ । २३ ॥

देवाः । **विषमाङ्कगणितविद्याविद्वात्मा**=विषम-अङ्कगणितविद्यावेत्ता मनुष्यः । पूर्वार्द्धस्य संकृतिश्छन्दः । एकविꣳशतिश्चेत्युत्तरस्य विराट् संकृतिश्छन्दः । गान्धारः ॥

अथ गणितविद्याया मूलमुपदिश्यते ॥

अब गणितविद्या के मूल का उपदेश किया है ॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽ एकादश च म ऽ एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽ एकविꣳशतिश्च म ऽ एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च म ऽ एकत्रिꣳशच्च म ऽ एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(एका) एकत्वविशिष्टा संख्या (च) (मे) (तिस्रः) त्रित्वविशिष्टा संख्या (च) (मे) (तिस्रः) (च) (मे) (पञ्च) पञ्चत्वविशिष्टा गणना (च) (मे) (पञ्च) (च) (मे) (सप्त) सप्तत्वविशिष्टा गणना (च) (मे) (सप्त) (च) (मे) (नव) नवत्वविशिष्टा संख्या (च) (मे) (नव) (च) (मे) (एकादश) एकाधिका दश (च) (मे) (एकादश) (च) (मे) (त्रयोदश) त्र्यधिका दश (च) (मे) (त्रयोदश) (च) (मे) (पञ्चदश) पञ्चोत्तरा दश (च) (मे) (पञ्चदश) (च) (मे) (सप्तदश) सप्ताधिका दश (च) (मे) (सप्तदश) (च) (मे) (नवदश) नवोत्तरा दश (च) (मे) (नवदश) (च) (मे) एकविंशतिः) एकाधिका विंशतिः (च) (मे) (एकविंशतिः) (च) (मे) (त्रयोविंशतिः) त्र्य-धिका विंशतिः (च) (मे) (त्रयोविंशतिः) (च) (मे) (पञ्चविंशतिः) पञ्चाधिका विंशतिः (च) (मे)

(**पञ्चविंशतिः**) (**च**) (**मे**) (**सप्तविंशतिः**) सप्ताधिका विंशतिः (**च**) (**मे**) (**सप्तविंशतिः**) (**च**) (**मे**) (**नवविंशतिः**) नवाधिका विंशतिः (**च**) (**मे**) (**नवविंशतिः**) (**च**) (**मे**) (**एकत्रिंशत्**) एकाधिका त्रिंशत् (**च**) (**मे**) (**एकत्रिंशत्**) (**च**) (**मे**) (**त्रयस्त्रिंशत्**) (**च**) (**मे**) त्र्यधिकास्त्रिंशत् (**च**) (**मे**) (**यज्ञेन**) संगतिकरणेन योगेन दानेन वियोगेन वा (**कल्पन्ताम्**) ॥ २४ ॥

अन्वयः—यज्ञेन सङ्गतिकरणेन म एका संख्या च–द्वे, मे तिस्रः, च–पुनर्मे तिस्रश्च–द्वे मे पञ्च, च-पुनर्मे पञ्च च-द्वे मे सप्त, च-पुनर्मे सप्त च-द्वे मे नव, च-पुनर्मे नव च-द्वे मे एकादश, च-पुनर्मे एकादश च-द्वे मे त्रयोदश, च-पुनर्मे त्रयोदश च-द्वे मे पञ्चदश, च-पुनर्मे पञ्चदश च-द्वे मे सप्तदश, च-पुनर्मे सप्तदश च-द्वे मे नवदश, च-पुनर्मे नवदश च-द्वे म एकविंशतिः, च-पुनर्म एकविंशतिश्च-द्वे मे त्रयोविंशतिः, च-पुनर्मे त्रयोविंशतिश्च-द्वे मे पञ्चविंशतिः, च-पुनर्मे पञ्चविंशतिश्च-द्वे मे सप्तविंशतिः, च-पुनर्मे सप्तविंशतिश्च-द्वे म नवविंशतिः च-पुनर्मे नवविंशतिश्च-द्वे म एकत्रिंशच्च-पुनर्म एकत्रिंशच्च-द्वे मे त्रयस्त्रिंशच्चादग्रेऽप्येवं संख्याः कल्पन्ताम् ॥ इत्येको योगपक्षः ॥ २४ ॥

अथ द्वितीयः पक्षः

यज्ञेन योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोगमार्गेण विपरीताः संगृहीताश्चान्यान्या संख्या द्वयोर्वियोगेन यथा मे कल्पन्तां तथा मे त्रयस्त्रिंशच्च–द्वयोर्दानेन वियोगेन म एकत्रिंशत्, च पुनर्मे ममैकत्रिंशच्च-द्वयोर्वियोगेन मे नवविंशतिः, च-पुनर्मे नवविंशतिश्च-द्वयोर्वियोगेन मे सप्तविंशतिरेवं सर्वत्र ॥ इति वियोगेनान्तरेण द्वितीयः पक्षः ॥२४ ॥

अथ तृतीयः

म एका च मे तिस्रश्च, मे तिस्रश्च मे पञ्च च, मे पञ्च च मे सप्त च, मे सप्त च मे नव च, मे नव च म एकादश चैवंविधाः संख्या अग्रेऽपि तिस्रश्च यज्ञेन=उक्तः पुनःपुनर्योगेन गुणनेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु ॥ इति गुणनविषये तृतीयः पक्षः ॥ २४ ॥

[अथ प्रथमः पक्षः]

सपदार्थान्वयः— **यज्ञेन** = **सङ्गतिकरणेन** सङ्गतिकरणेन=योगेन, **म एका**=सकलविशिष्टा **संख्या च-द्वे मे तिस्रः** त्रित्वविशिष्टा संख्या, **च=पुनर्मे तिस्रश्च-द्वे मे पञ्च** पञ्चत्वविशिष्टा गणना, **च=पुनर्मे पञ्च च-द्वे मे सप्त** सप्तत्वविशिष्टा गणना, **च-पुनर्मे सप्त च-द्वे मे नव** नवत्वविशिष्टा संख्या, **च=पुनर्मे नव च-द्वे मे एकादश** एकाधिका दश, **च=पुनर्मे एकादश च-द्वे मे त्रयोदश** त्र्यधिका दश, **च=पुनर्मे त्रयोदश च-द्वे मे पञ्चदश** पञ्चोत्तरा दश, **च=पुनर्मे पञ्चदश च-द्वे मे सप्तदश** सप्ताधिका दश, **च=पुनर्मे सप्तदश च-द्वे मे नवदश** नवोत्तरा दश, **च=पुनर्मे नवदश च-द्वे मे एकविंशतिः** एकाधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे**

[प्रथम पक्ष]

भाषार्थ—(यज्ञेन) संगतिकरण=योग से (मे) मेरी (एका) एक संख्या (च) और दो (मे) मेरी (तिस्रः) तीन (च) और (मे) मेरी (तिस्रः) तीन (च) और दो (मे) मेरी (पञ्च) पांच, (च) और (मे) मेरी (पंच) पांच (च) और दो (मे) मेरी (सप्त) सात, (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात (च) और दो (मे) मेरी (नव) नौ, (च) और (मे) मेरी (नव) नौ (च) और दो (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह, (च) और (मे) मेरी (एकादश) ग्यारह (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह, (च) और (मे) मेरी (त्रयोदश) तेरह (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह, (च) और (मे) मेरी (पञ्चदश) पन्द्रह (च) और दो (मे) मेरी

एकविंशतिश्च-द्वे मे त्रयोविंशतिः त्र्यधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे त्रयोविंशतिश्च-द्वे मे पञ्चविंशतिः** पञ्चाधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे पञ्चविंशतिश्च-द्वे मे सप्तविंशतिः** सप्ताधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे सप्तविंशतिश्च-द्वे मे नवविंशतिः** नवाधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे नवविंशतिश्च-द्वे मे एकत्रिंशत्** एकाधिका त्रिंशत्, **च=पुनर्मे एकत्रिंशच्च-द्वे मे त्रयस्त्रिंशत्** त्र्यधिकात्रिंशत्, **चादग्रेऽप्येवं संख्याः कल्पन्ताम्** ।। **इत्येको योगपक्षः** ।।

(सप्तदश) सतरह (च) और (मे) मेरी (सप्तदश) सतरह (च) और दो मेरी (नवदश) उन्नीस, (च) और (मे) मेरी (नवदश) उन्नीस (च) और दो (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस, (च) और (मे) मेरी (एकविंशतिः) इक्कीस (च) और दो (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस, (च) और (मे) मेरी (त्रयोविंशतिः) तेईस (च) और दो (मे) मेरी (पञ्चविंशतिः) पच्चीस, (च) और (मे) मेरी (पंचविंशतिः) पच्चीस (च) और दो (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सताईस, (च) और (मे) मेरी (सप्त-विंशतिः) सताईस (च) और दो (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनत्तीस, (च) और (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनत्तीस (च) और दो (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकत्तीस, (च) और (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकत्तीस (च) और दो मेरी (त्रयस्त्रि-शत्) तेंतीस संख्या है, (च) 'च' पद से आगे भी इस प्रकार संख्याओं को (कल्पन्ताम्) सिद्ध करें ।। यह योग पक्ष में मन्त्र का प्रथम अर्थ है।

[अथ द्वितीयः पक्षः]

यज्ञेन=योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोग-मार्गेण दानेन=वियोगेन **विपरीताः संगृहीताश्चा-ऽन्यान्याः संख्या द्वयोर्वियोगेन यथा मे कल्पन्ताम्, तथा मे त्रयस्त्रिंशत्** त्र्यधिकास्त्रिंशत् **च-द्वयोर्दानेन=वियोगेन म एकत्रिंशत्** एकाधिकात्रिंशत्, **च=पुनर्मे ममैकत्रिंशच्च द्वयोर्वियोगेन मे नवविंशतिः** नवाधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे नवविंशतिश्च द्वयोर्वियोगेन मे सप्तविंशतिः** सप्ताधिका विंशतिः, **एवं सर्वत्र इति वियोगेन अन्तरेण द्वितीयः पक्षः** ।।

[द्वितीय पक्ष]

(यज्ञेन) योग से विपरीत दान रूप वियोग=[घटा] के मार्ग से—विपरीत और संगृहीत दूसरी दूसरी संख्याएँ दो के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों वैसे-(मे) मेरी (त्रयस्त्रिंशत्) तेंतीस (च) दो के दान=वियोगे [घटा] से (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकत्तीस, (च) और (मे) मेरी (एकत्रिंशत्) इकत्तीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनत्तीस, (च) और (मे) मेरी (नवविंशतिः) उनत्तीस (च) दो के वियोग से (मे) मेरी (सप्तविंशतिः) सत्ताईस संख्या सिद्ध होती है, इस प्रकार सर्वत्र समझें ।। यह वियोग पक्ष में मन्त्र का दूसरा अर्थ है ।।

[अथ तृतीयः पक्षः]

म एका एकत्वविशिष्टा संख्या **च, मे तिस्रः** त्रित्वविशिष्टा संख्या **च मे तिस्रश्च, मे पञ्चत्व-**विशिष्टा गणना **च मे पञ्च च, मे सप्त** सप्तत्व-विशिष्टा गणना **च मे सप्त च, मे नव** नवत्व-

[तृतीय पक्ष]

(च) और (मे) मेरी (एका) एक, (च) और (मे) मेरी (तिस्रः) तीन, (च) और (मे) मेरी (तिस्रः) तीन, (च) और (मे) मेरी (पंच) पाँच (च) और (मे) मेरी (पंच) पांच, (च) और (मे)

विशिष्टा गणना **च मे नव च, म एकादश** एकाऽधिका दश **च, एवंविधा संख्याः अग्रेऽपि यज्ञेन=उक्तपुनः पुनर्योगेन=गुणनेन कल्पन्ताम्=समर्था भवन्तु ॥ इति गुणनविषये तृतीयः पक्षः ॥ २४ ॥**

मेरी (सप्त) सात (च) और (मे) मेरी (सप्त) सात (च) और (मे) मेरी (नव) नौ (च) और (मे) मेरी (नव) नौ, (च) और (एकादश) ग्यारह—इस प्रकार की संख्याएँ आगे भी (यज्ञेन) उक्त पुनः पुनः योग=गुणा करने से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों। यह गुणा पक्ष में मन्त्र का तीसरा अर्थ है। [३×३, ५×५, ७×७, ६×६] ॥ १८। २४ ॥

[एका च मे······यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—अस्मिन् मन्त्रे यज्ञेनेति पदेन योगवियोगौ गृह्येते कुतो यजधातोर्हि यः सङ्गतिकरणार्थस्तेन सङ्गतिकरणं कस्याश्चित् संख्यायाः कयाचिद्योगकरणं यश्च दानार्थस्तेनैवं संभाव्यं कस्याश्चिद्दानं व्ययीकरणमिदमेवान्तरमेवं गुणन-भाग-वर्ग वर्गमूल-घन-घनमूल-भागजाति-प्रभागजातिप्रभृतयो ये गणितभेदाः सन्ति ते योगवियोगाभ्यामेवोत्पद्यन्ते कुतः कांचित् संख्यां कयाचित् संख्यया सकृत् संयोजयेत् स योगो भवति यथा २+४=६ द्वयोर्मध्ये चत्वारो युक्ताः षट् संपद्यन्ते। इत्थमनेकवारं चेत् संख्यायां संख्या योजयेत्तर्हि तद्गुणनमाहुः। यथा २×४=८ अर्थात् द्विरूपां संख्यां चतुर्वारं पृथक् पृथग् योजयेद्वा द्विरूपां संख्यां चतुर्भिर्गुणयेत्तदाष्टौ जायन्ते। एवं चत्वारश्चतुर्वारं युक्ता वा चतुर्भिर्गुणितास्तदा चतुर्णां वर्गः षोडश संपद्यन्ते, इत्थमन्तरेण भाग-वर्गमूल-घनमूलाद्याः क्रिया निष्पद्यन्ते। अर्थात् यस्यां कस्यांचित्संख्यायां कांचित्संख्यां योजयेद्वा केनचित्प्रकारान्तरेण वियोजयेदित्यनेनैव योगेन वियोगेन वा बुद्धिमतां यथामतिकल्पनया व्यक्ताव्यक्ततराः सर्वा गणितक्रिया निष्पद्यन्तेऽतोऽत्र मन्त्रे द्वयोर्योगेनोत्तरोत्तरा द्वयोर्वियोगेन वा पूर्वा पूर्वा विषमसंख्या प्रदर्शिता तथा गुणनस्यापि कश्चित् प्रकारः प्रदर्शित इति वेदितव्यम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में 'यज्ञेन' इस पद से योग=जमा और वियोग=घटा अर्थ ग्रहण किया जाता है क्योंकि 'यज' धातु का जो 'संगतिकरण' अर्थ है उससे किसी संख्या को किसी संख्या से मिलाना, और जो उक्त धातु का 'दान' अर्थ है उससे यह समझें कि किसी संख्या का दान अर्थात् व्यय करना यही अन्तर है, इस प्रकार--गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल, भागजाति, प्रभागजाति आदि जो गणित के भेद हैं वे योग=जमा और वियोग=घटा से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि—किसी संख्या को किसी संख्या से योग बार मिला देवे तो यह योग कहाता है। जैसे—२+४=६ दो में चार जोड़ने से छः बनते हैं। इस प्रकार यदि अनेक बार संख्या में संख्या को जोड़ देवे तो उसे गुणा कहते हैं। जैसे—२×४=८ अर्थात् दो संख्या को चार बार पृथक् पृथक् जोड़े अथवा दो संख्या को चार से गुणा करे तब आठ बनते हैं। इस प्रकार—चार को चार बार जोड़े अथवा चार से गुणा करे तब चार का वर्ग १६ बनते हैं, इस प्रकार अन्तर से भाग, वर्गमूल, घनमूल आदि क्रियाएँ निष्पन्न होती हैं। अर्थात्—जिस किसी संख्या में किसी संख्या को जोड़े अथवा किसी प्रकारान्तर से घटावे इस योग=जमा अथवा वियोग=घटा से बुद्धिमानों की यथामति कल्पना से व्यक्त, और अव्यक्ततर सब गणित-क्रियाएँ सिद्ध होती हैं। इसलिए इस मन्त्र में दो संख्या के योग से उत्तर-उत्तर संख्या अथवा दो संख्या के वियोग से पूर्व-पूर्व विषम संख्या दिखलाई है, वैसे गुणा का भी एक प्रकार दिखलाया है, यह जानना चाहिए ॥ २४ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(**एका च मे०**) इन मन्त्रों में यही प्रयोजन है कि अंक, बीज और रेखा भेद से जो तीन प्रकार की गणितविद्या सिद्ध की है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या है (१) सो दो बार गणने से दो की वाचक होती है। जैसे—१+१=२, ऐसे ही एक के आगे एक, तथा एक के आगे दो, वा दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना। इसी प्रकार एक के साथ तीन जोड़ने से ४, तथा तीन को तीन के साथ जोड़ने से ६, अथवा तीन को तीन से गुणा करने से ३×३=९ हुए ॥ १ ॥

इसी प्रकार चार के साथ चार, पाँच के साथ पाँच, छः के साथ छः, आठ के साथ आठ इत्यादि जोड़ने वा गुणने तथा सब मन्त्रों के आशय को फैलाने से सब गणित विद्या निकलती है। जैसे—पाँच के साथ पाँच, (५५) वैसे ही पांच २, छः २ (५५) (६६) इत्यादि जान लेना चाहिए। ऐसे ही इन मन्त्रों के अर्थों को आगे योजना करने से अंकों से अनेक प्रकार की गणितविद्या सिद्ध होती है, क्योंकि—इन मन्त्रों के अर्थ और अनेक प्रकार के प्रयोगों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की गणितविद्या अवश्य जाननी चाहिए, और जो वेदों का अंग ज्योतिषशास्त्र कहाता है, उसमें भी इसी प्रकार के मन्त्रों के अभिप्राय से गणित-विद्या सिद्ध की है, और अंकों से जो गणित-विद्या निकलती है वह निश्चित और असंख्यात पदार्थों में युक्त होती है, और अज्ञात पदार्थों की संख्या जानने के लिए जो बीजगणित होता है सो भी (**एका च मे०**) इत्यादि मन्त्रों ही से सिद्ध होता है। जैसे—(अ²+क²) (अ²—क²) (क²÷अ²) इत्यादि संकेत से निकलता है। यह भी वेदों ही से ऋषि मुनियों ने निकाला है, और इसी प्रकार से तीसरा भाग जो रेखागणित है सो भी वेदों ही से सिद्ध होता है ॥ २ ॥ (**ऋग्वेदादि० गणितविद्याविषयः**)

भाष्यसार—**गणित-विद्या के विद्वान् का कर्त्तव्य**—गणित-विद्या के जिज्ञासु और विद्वानों का कर्त्तव्य है कि यज्ञ अर्थात् विषम संख्याओं के योग=जोड़ से, और यज्ञ=दान अर्थात् वियोग से जोड़, घटा, गुणादि से गणित विद्या का विस्तार किया करें और सबको सिखाने का प्रयत्न किया करें ॥ १८ । २४ ॥ ●

पूर्वदेवाः । **समाङ्कगणितविद्याविद्वात्मा**=**सम-अङ्क-गणितविद्यावेत्ता मनुष्यः**। पङ्क्तिश्छन्दः । चतुर्विꣳशतिश्चेत्युत्तरस्याकृतिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ समाङ्कगणितविषयमाह ॥

अब सम अङ्कों के गणित विषय का उपदेश किया है ॥

चत॑स्रश्च मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ऽष्टौ च॑ मे द्वाद॑श च मे॒ द्वाद॑श च मे॒ षोड॑श च मे॒ षोड॑श च मे विꣳश॒तिश्च॑ मे विꣳश॒तिश्च॑ मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ऽष्टावि॑ꣳशतिश्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ द्वात्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे॒ षट्त्रि॑ꣳशच्च मे चत्वारि॒ꣳशच्च॑ मे चत्वारि॒ꣳशच्च॑ मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ऽष्टाच॑त्वारिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**चतस्रः**) चतुष्ट्वविशिष्टा संख्या (**च**) (**मे**) (**अष्टौ**) अष्टत्वविशिष्टा संख्या (**च**) (**मे**) (**अष्टौ**) (**च**) (**मे**) (**द्वादश**) द्व्यधिका दश (**च**) (**मे**) (**द्वादश**) (**च**) (**मे**) (**षोडश**) षडधिका दश (**च**) (**मे**) (**षोडश**) (**च**) (**मे**)(**विंशतिः**) (**च**) (**मे**) (**विंशतिः**) (**च**) (**मे**) (**चतुर्विंशतिः**)

चतुरधिका विंशतिः (च) (मे) (चतुर्विंशतिः) (च) (मे) (अष्टाविंशतिः) अष्टाधिका विंशतिः (च) (मे) (अष्टाविंशतिः) (च) (मे) (द्वात्रिंशत्) द्वचधिकात्रिंशत् (च) (मे) (द्वात्रिंशत्) (च) (मे) (षट्त्रिंशत्) षडुत्तरात्रिंशत् (च) (मे) (षट्त्रिंशत्) (च) (मे) (चत्वारिंशत्) (च) (मे) (चत्वारिंशत्) (च) (मे) (चतुश्चत्वारिंशत्) चतुरधिकाचत्वारिंशत् (च) (मे) (चतुश्चत्वारिंशत्) (च) (मे) (अष्टाचत्वारिंशत्) अष्टाधिकाचत्वारिंशत् (च) (मे) (यज्ञेन) योगेन वियोगेन वा (कल्पन्ताम्) समर्था भवन्तु ॥ २५ ॥

अन्वयः—यज्ञेन सङ्गतिकरणेन मे चतस्रः-चतुःसंख्या च-चतस्रो मेऽष्टौ, च-पुनर्मे अष्टौ-च-चतस्रो मे द्वादश, च-पुनर्मे द्वादश च-चतस्रो मे षोडश, च-पुनर्मे षोडश च-चतस्रो मे विंशतिः, च-पुनर्मे विंशतिश्च-चतस्रो मे चतुर्विंशतिः, च पुनर्मे चतुर्विंशतिश्च-चतस्रो मेऽष्टाविंशतिः, च-पुनर्मेऽष्टाविंशतिश्च-चतस्रो मे द्वात्रिंशत्, च-पुनर्मे द्वात्रिंशच्च-चतस्रो मे षट्त्रिंशच्च-पुनर्मे षट्त्रिंशच्च-चतस्रो मे चत्वारिंशत्, च-पुनर्मे चत्वारिंशच्च-चतस्रो मे चतुश्चत्वारिंशत्, च पुनर्मे चतुश्चत्वारिंशच्च-चतस्रो मेऽष्टाचत्वारिंशत् चादग्रेऽपि पूर्वोक्तविधिना संख्याः कल्पन्ताम् ॥ इत्येको योगपक्षः ॥ २५ ॥

अथ द्वितीयः—

यज्ञेन योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोगमार्गेण विपरीताः संगृहीताश्चान्यान्यासंख्याश्चतुर्णां वियोगेन यथा मे कल्पन्तां तथा मेऽष्टाचत्वारिंशच्च-चतुर्णां दानेन वियोगेन मे चतुश्चत्वारिंशत् च-पुनर्म चतुश्चत्वारिंशच्च-चतुर्णां वियोगेन मे चत्वारिंशत् च-पुनर्मे चत्वारिंशच्च चतुर्णां वियोगेन मे षट्त्रिंशत् च-पुनर्मे षट्त्रिंशच्च-चतुर्णां वियोगेन मे द्वात्रिंशदेवं सर्वत्र ॥ इति वियोगेन द्वितीयः पक्षः ॥ २५ ॥

अथ तृतीयः—

मे चतस्रश्च मेऽष्टौ च, मेऽष्टौ च मे द्वादश च, मे द्वादश च मे षोडश च, मे षोडश च मे विंशतिश्चैवं विधाः संख्या अग्रेऽपि यज्ञेन उक्तः पुनः पुनर्योगेन गुणनेन कल्पन्तां समर्था भवन्तु । इति गुणनविषयेण तृतीयः पक्षः ॥ २५ ॥

[प्रथमः पक्षः]

सपदार्थान्वयः— **यज्ञेन=सङ्गतिकरणेन** योगेन **मे चतस्रः=चतुः संख्या** चतुष्ट्वविशिष्टा संख्या **च=चतस्रो मेऽष्टौ** अष्टत्वविशिष्टा संख्या, **च-पुनर्मे अष्टौ-च-चतस्रो मे द्वादश** द्वचधिका दश, **च-पुनर्मे द्वादश च=चतस्रो मे षोडश** षडधिका दश, **च=पुनर्मे षोडश च-चतस्रो मे विंशतिः, च=पुनर्मे विंशतिश्च चतस्रो मे चतुर्विंशतिः** चतुरधिका विंशतिः, **च=पुनर्मे चतुर्विंशतिश्च-चतस्रो मेऽष्टाविंशतिः** अष्टाधिका विंशतिः **च=पुनर्मेऽष्टाविंशतिश्च-चतस्रो मे द्वात्रिंशत्** द्वचधिकात्रिंशत्, **च=पुनर्मे द्वात्रिंशच्च-चतस्रो मे षट्त्रिंशत्** षडुत्तरात्रिंशत् **च=पुनर्मे षट्त्रिंशच्च-चतस्रो मे चत्वारिंशत्, च=पुनर्मे**

[प्रथम पक्ष]

भाषार्थ—(यज्ञेन) संगतिकरण=योग से (मे) मेरी (चतस्रः) चार (च) और चार (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या, (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और चार (मे) मेरी (द्वादश) बारह संख्या, (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और चार (मे) मेरी (षोडश) सोलह संख्या, (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और चार (मे) मेरी (विंशतिः) बीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (विंशतिः) बीस (च) और चार (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (चतुर्विंशतिः) चौबीस (च) और चार (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अठाईस संख्या, (च) और (मे) मेरी (अष्टाविंशतिः) अठाईस (च) और चार (मे)

चत्वारिंशच्च-चतस्रो मे चतुश्चत्वारिंशत् चतुरधिकाचत्वारिंशत्, **च=पुनर्मे चतुश्चत्वारिंशच्च चतस्रो मेऽष्टाचत्वारिंशत्** अष्टाधिकाचत्वारिंशत् **चादग्रेऽपि पूर्वोक्तविधिना संख्याः कल्पन्तां** समर्था भवन्तु। **इत्येको योगपक्षः ।**

मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस (च) और चार (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस (च) चार (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस संख्या, (च) और (मे) (चत्वारिंशत्) चालीस (च) और चार (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) और चार (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस संख्या होती है, 'च' पद से आगे भी पूर्वोक्त विधि से संख्याएँ (कल्पन्ताम्) सिद्ध करें ॥ यह योग पक्ष में मन्त्र का पहला अर्थ है ॥

[अथ द्वितीयः]

यज्ञेन=योगतो विपरीतेन दानरूपेण वियोगमार्गेण विपरीताः संगृहीताश्चान्यान्या संख्याश्चतुर्णां वियोगेन यथा मे कल्पन्तां समर्था भवन्तु **तथा मेऽष्टाचत्वारिंशत्** अष्टाधिका चत्वारिंशत् **च-चतुर्णां दानेन=वियोगेन मे चतुश्चत्वारिंशत्** चतुरधिकाचत्वारिंशत्, **च=पुनर्मे चतुश्चत्वारिंशत् च-चतुर्णां वियोगेन मे चत्वारिंशत्, च=पुनर्मे चत्वारिंशत् च=चतुर्णां वियोगेन मे षट्त्रिंशत्** षडुत्तरात्रिंशत्, **च=पुनर्मे षट्त्रिंशत् च-चतुर्णां वियोगेन मे द्वात्रिंशत्** द्व्यधिकात्रिंशत् **एवं सर्वत्र ॥ इति वियोगेन द्वितीयः पक्षः ॥**

[द्वितीय पक्ष]

(यज्ञेन) योग से विपरीत दानरूप वियोग के मार्ग से विपरीत और संगृहीत अन्य-अन्य संख्याएँ चार के वियोग से जैसे (मे) मेरी (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों वैसे (मे) मेरी (अष्टाचत्वारिंशत्) अड़तालीस (च) और चार के दान=वियोग से (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (चतुश्चत्वारिंशत्) चवालीस (च) चार के वियोग से (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस संख्या, (च) और (मे) मेरी (चत्वारिंशत्) चालीस (च) चार के वियोग से (मे) मेरी (षट्त्रिंशत्) छत्तीस संख्या, (च) और चार के वियोग से (मे) मेरी (द्वात्रिंशत्) बत्तीस संख्या होती है। इस प्रकार सर्वत्र जानें। यह वियोग पक्ष में मन्त्र का दूसरा अर्थ है ॥

[अथ तृतीयः]

मे चतस्रः चतुष्ट्वविशिष्टा संख्या **च मे अष्टौ** अष्टत्वविशिष्टा संख्या **च, मेऽष्टौ च मे द्वादश** द्व्यधिका दश **च, मे द्वादश च मे षोडश** षडधिका दश **च, मे षोडश च मे विंशतिश्च=एवंविधाः संख्या अग्रेऽपि यज्ञेन**=उक्तपुनः पुनर्योगेन गुणनेन **कल्पन्ताम्**=समर्था **भवन्तु । इति गुणनविषयेण तृतीयः पक्षः ॥ १८ । २५ ॥**

[तृतीय पक्ष]

(च) और (मे) मेरी (चतस्रः) चार (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ संख्या, (च) और (मे) मेरी (अष्टौ) आठ (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह संख्या, (च) और (मे) मेरी (द्वादश) बारह (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह संख्या, (च) और (मे) मेरी (षोडश) सोलह (च) और (विंशतिः) बीस संख्या, इस प्रकार की

संख्याएँ आगे भी (यज्ञेन) उक्त बार-बार योग= गुणा से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों। यह गुणा पक्ष में मन्त्र का तीसरा अर्थ है ॥ १८ । २५ ॥

[चतस्रश्च मे ऽष्टौ च मे······यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—पूर्वस्मिन्नेकां संख्यां संगृह्य द्वयोर्योगवियोगाभ्यां विषमाः संख्याः प्रतिपादिताः। अतः पूर्वत्र क्रमेणागतैकद्वित्रिसंख्या विहायात्र मन्त्रे चतसृणां योगेन वियोगेन वा चतुःसंख्यामारभ्य समसंख्याः प्रतिपादिताः। अनेन मन्त्रद्वयेन विषमसंख्यानां समसंख्यानाञ्च भेदान् विज्ञाय यथाबुद्धिकल्पनया सर्वा गणितविद्या विज्ञातव्याः ॥ २५ ॥

भावार्थ—पहले मन्त्र में एक संख्या को लेकर दो संख्या के योग और वियोग से विषम संख्याएँ सिद्ध की हैं। अतः पहले मन्त्र में प्रतिपादित क्रम से एक, दो और तीन संख्याओं को छोड़कर इस मन्त्र में चार संख्या के योग वा वियोग से चार संख्या से लेकर सम-संख्याएँ प्रतिपादित की हैं। इन दो मन्त्रों से विषम और सम संख्याओं के भेदों को जानकर यथाबुद्धि कल्पना से सब गणित विद्याओं को जानें ॥ १८ । २५ ॥

भाष्यसार—गणित-विद्या के वेत्ता का कर्त्तव्य—गणित-विद्या के विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे २, ४, ६, आदि सम संख्याओं के यज्ञ=जोड़ से, और यज्ञ=वियोग से जो जोड़, घटा, गुणादि विद्या का विस्तार करने सबको गणित-विद्या सिखा कर अभीष्ट-सिद्धि किया करें ॥ १८ । २५ ॥

देवाः। **पशुविद्याविद्वात्मा**=पशु-विद्यावेत्ता मनुष्यः। ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

अथ पशुपालनविषयमाह ॥

अब पशुपालन विषय का उपदेश किया जाता है ॥

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**त्र्यविः**) तिस्रोऽवयो यस्य सः (**च**) अतो भिन्ना सामग्री (**मे**) (**त्र्यवी**) तिस्रोऽवयो यस्याः सा (**च**) एतज्जन्यं घृतादि (**मे**) (**दित्यवाट्**) दितौ=खण्डितायां क्रियायां भवा दित्यास्तान्यो वहति=पृथक् करोति सः (**च**) एतत्पालनम् (**मे**) (**दित्यौही**) तत्स्त्री (**च**) अन्यदपि (**मे**) (**पञ्चाविः**) पञ्चावयो यस्य सः (**च**) एतद्रक्षणम् (**मे**) (**पञ्चावी**) [तत्] स्त्री (**च**) एतत्पालनम् (**मे**) (**त्रिवत्सः**) त्रयो वत्सा यस्य सः (**च**) एतच्छिक्षणम् (**मे**) (**त्रिवत्सा**) त्रयो वत्सा यस्याः सा (**च**) एतस्या रक्षा (**मे**) (**तुर्यवाट्**) यस्तुर्यं=चतुर्थं वर्षं वहति=प्राप्नोति स वृषभादिः। यस्य त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि जातानि चतुर्थः प्रविष्टः स इत्यर्थः (**च**) अस्य शिक्षणम् (**मे**) (**तुर्य्यौही**) पूर्वोक्तसदृशी गौः (**च**) अस्याः शिक्षा (**मे**) (**यज्ञेन**) पशुपालनविधिना (**कल्पन्ताम्**) समर्थयन्तु ॥ २६ ॥

अन्वयः—मे त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—मे त्र्यविः तिस्रोऽवयो यस्य सः च अतो भिन्ना सामग्री मे त्र्यवी

भाषार्थ—(मे) मेरा (त्र्यविः) तीन अवि=भेड़ों वाला (च) और इससे भिन्न सामग्री,

तिस्रोऽवयो यस्याः सा **च** एतज्जन्यं घृतादि **मे दित्यवाट्** दितौ=खण्डितायां क्रियायां भवा दित्यास्तान् यो वहति=पृथक् करोति सः **च** एतत्पालनं **मे दित्यौही** तत्स्त्री **च** अन्यदपि **मे पञ्चाविः** पञ्चावयो यस्य सः **च** एतद्रक्षणं **मे पञ्चावी** स्त्री **च** एतत्पालनं **मे त्रिवत्सः** त्रयो वत्सा यस्य सः **च** एतच्छिक्षणं **मे त्रिवत्सा** त्रयो वत्सा यस्याः सा **च** एतस्या रक्षा **मे तुर्यवाट्** यस्तुर्यं=चतुर्थं वर्षं वहति=प्राप्नोति स वृषभादिः । यस्य त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि जातानि चतुर्थः प्रविष्टः स इत्यर्थः **च** अस्य शिक्षणं **मे तुर्यौही** पूर्वोक्तसदृशी गौः **च** अस्याः शिक्षा **यज्ञेन** पशुपालनविधिना **कल्पन्तां** समर्थयन्तु ॥ १८ । २६ ॥

(मे) मेरी (त्र्यवी) तीन अवि=भेड़ों वाली स्त्री (च) और इनका घृत आदि, (मे) दिति=खण्डित क्रिया में विद्यमान जनों को प्राप्त करने वाला पुरुष (च) और इसका पालन, (मे) मेरी (दित्यौही) उक्त पुरुष की स्त्री (च) अन्य भी, (मे) मेरा (पञ्चाविः) पाँच अवि=भेड़ों वाला पुरुष (च) और इसकी रक्षा, (मे) मेरी (पञ्चावी) पाँच अवि=भेड़ों वाली स्त्री (च) और इसका पालन, (मे) मेरा (त्रिवत्सः) तीन वत्स=बछड़ों वाला पुरुष (च) और इसका शिक्षण, (मे) मेरी (त्रिवत्सा) तीन वत्स=बछड़ों वाली स्त्री (च) और इसकी रक्षा, (मे) मेरा (तुर्यवाट्) जिसके तीन वर्ष पूरे हो चुके, चौथा चालू है ऐसा तुर्य=चतुर्थ वर्ष को प्राप्त करने वाला वृषभ=बैल आदि (च) और इसका शिक्षण, (मे) मेरी (तुर्यौही) पूर्वोक्त बैल के सदृश गौ (च) और इसकी शिक्षा (यज्ञेन) पशुपालन की विधि से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । २६ ॥

[मे त्र्यविश्च······यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—अत्र गोऽजाऽविग्रहणमुपलक्षणार्थम् । ये मनुष्याः पशून् वर्द्धयन्ति, ते रसाढ्या जायन्ते ॥ १८ । २६ ॥

भावार्थ—यहाँ, गौ, बकरी, भेड़ का ग्रहण उपलक्षण के लिए है। जो मनुष्य पशुओं को बढ़ाते हैं वे रसाढ्य होते हैं ॥ १८ । २६ ॥

भाष्यसार—पशु-विद्या के विद्वान् का कर्त्तव्य—यज्ञ अर्थात् पशुपालन की विद्या के विद्वान् का कर्त्तव्य है कि वह भेड़, बकरी और गाय आदि उपकारक पशु और उनके पालने के साधनों को जान कर दूसरों को प्रशिक्षित करे। जिससे वे पशुओं की अवस्था के अनुसार उनका पालन और यथासमय प्रशिक्षण भी दे सकें ॥ १८ । २६ ॥

देवाः । **पशुपालनविद्याविदात्मा**=पशुपालन-विद्यावेत्ता **मनुष्यः** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पशुपालन विषय का फिर उपदेश किया है ॥

पृष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म ऽ उक्षा च मे वशा च म ऽ ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

पदार्थः—(पष्ठवाट्) यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति स हस्त्युष्ट्रादिः (च) तत्सम्बन्धी (मे) (पष्ठौही) वडवादिः (च) हस्तिन्यादिभिरुत्थापिताः पदार्थाः (मे) (उक्षा) वीर्यसेचकः (च) वीर्यधारिकाः

(मे) (वशा) वन्ध्या गौः (च) वीर्यहीनः (मे) (ऋषभः) बलिष्ठः (च) बलवती (मे) (वेहत्) यस्य वीर्यं यस्या गर्भो वा विहन्यते स सा च (च) सामर्थ्यहीनः (मे) (अनड्वान्) हलशकटादिवहनसमर्थः (च) शकटवाही जनः (मे) (धेनुः) दुग्धदात्री (च) दोग्धा (मे) (यज्ञेन) पशुशिक्षाख्येन (कल्पन्ताम्) समर्थयन्तु ॥ २७ ॥

अन्वयः—मे पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—**मे पष्ठवाड्** यः पष्ठेन=पृष्ठेन वहति स हस्त्युष्ट्रादिः **च** तत्सम्बन्धी **मे पष्ठौही** वडवादिः **च** हस्तिन्यादिभिरुत्थापिताः पदार्थाः **मे उक्षा** वीर्यसेचकः **च** वीर्यधारिकाः **मे वशा** वन्ध्या गौः **च** वीर्यहीनः **म ऋषभः** बलिष्ठः **च** बलवती **मे वेहद्** यस्य वीर्यं यस्या गर्भो वा विहन्यते स सा च **च** सामर्थ्यहीनः, **मेऽनड्वान्** हल-शकटादिवहनसमर्थः **च** शकटवाही जनः **मे धेनुः** दुग्धदात्री **च** दोग्धा **यज्ञेन** पशुशिक्षाख्येन **कल्पन्तां** समर्थयन्तु ॥ १८ । २७ ॥

भाषार्थ—(मे) मेरा (पष्ठवाट्) पष्ठ=पीठ से वहन करने वाले हाथी, ऊँट आदि (च) और उसका सम्बन्धी पदार्थ, (मे) मेरी (पष्ठौही) पष्ठ=पीठ से वहन करने वाली वडवा=घोड़ी आदि, (च) और हथिनी आदि से उठाए पदार्थ, (मे) मेरा (उक्षा) वीर्य का सेचक सांड (च) और वीर्य को धारण करने वाली गौवें, (मे) मेरी (वशा) बन्ध्या गौ (च) और वीर्य से हीन सांड, (मे) मेरा (ऋषभः) बलिष्ठ बैल (च) बलवती गौ, (मे) मेरा (वेहत्) वीर्य-पात वाला सांड अथवा गर्भ-पात वाली गौ (च) और सामर्थ्यहीन सांड, (मे) मेरा (अनड्वान्) हल, शकट=गाड़ी आदि के वहन में समर्थ बैल (च) और शकट=गाड़ी को ले जाने वाला मनुष्य, (मे) मेरी (धेनुः) दूध देने वाली गौ (च) दूध दूहने वाला पुरुष (यज्ञेन) पशु-शिक्षा नामक यज्ञ से (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों ॥ १८ । २७ ॥

[मे पष्ठवाट् च······यज्ञेन कल्पन्ताम्]

भावार्थः—ये पशून् सुशिक्ष्य कार्येषु संयुञ्जते ते सिद्धार्था जायन्ते ॥ १८ । २७ ॥

भावार्थ--जो मनुष्य पशुओं को सुशिक्षित करके कार्यों में संयुक्त करते हैं वे कृतार्थ होते हैं ॥ १८ । २७ ॥

भाष्यसार—**पशु-विशेषज्ञ किन-किन पशुओं को पालें**—यज्ञ अर्थात् पशु-पालन विधि के विद्वान् मनुष्य पीठ से भार वहन करने वाले हाथी, ऊँट, घोड़े आदि पशुओं को, बलवान् सांड, गाड़ी में जुड़ने वाले बैल और गायादि अन्न, दूधादि देने वाले पशुओं का पालन करें और उनसे यथाशक्ति उपकार ग्रहण करें ॥ १८ । २७ ॥

देवाः । **संग्रामादिविदात्मा**=**संग्रामादि-वेत्ता मनुष्यः** । पूर्वस्य निचृदतिशक्वरी । पञ्चमः । इयमित्युत्तरस्यार्ची बृहती । ऋषभः ॥

अथ कीदृशी वाक् स्वीकार्येत्याह ॥

अब कैसी वाणी को स्वीकार करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ऽह॒र्पत॑ये॒ स्वाहाह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॑ वैनꣳशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ꣳशिन॑ऽआन्त्याय॒नाय॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑। इ॒यं ते॒ राण्मि॒त्राय॑ य॒न्तासि॒ यम॑न॒ऽऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जाना॒ं त्वाधि॑पत्याय ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**वाजाय**) संग्रामाय (**स्वाहा**) सत्या क्रिया (**प्रसवाय**) ऐश्वर्याय सन्तानोत्पादनाय वा (**स्वाहा**) पुरुषार्थबलयुक्ता सत्या वाक् (**अपिजाय**) स्वीकाराय (**स्वाहा**) साध्वी क्रिया (**क्रतवे**) विज्ञानाय (**स्वाहा**) योगाभ्यासादिक्रिया (**वसवे**) वासाय (**स्वाहा**) धनप्रापिका क्रिया (**अहर्पतये**) अह्नां पालकाय (**स्वाहा**) कालविज्ञापिता क्रिया (**अह्ने**) दिनाय (**मुग्धाय**) प्रापितमोहाय (**स्वाहा**) वैराग्ययुक्ता क्रिया (**मुग्धाय**) मोहं प्राप्ताय (**वैनंशिनाय**) विनष्टुं शीलं यस्य तस्यायं बोधस्तस्मै (**स्वाहा**) सत्योपदेशिका वाक् (**विनंशिने**) विनष्टुं शीलाय (**आन्त्यायनाय**) अन्ते भवमयनं यस्य स आन्त्यायनः स एव तस्मै (**स्वाहा**) सत्या वाणी (**आन्त्याय**) अन्ते भवायान्त्याय (**भौवनाय**) भुवनानामयं सम्बन्धी तस्मै (**स्वाहा**) सुष्ठूपदेशः (**भुवनस्य**) भवन्ति भूतानि यस्मिन् तस्य (**पतये**) स्वामिने (**स्वाहा**) उत्तमा वाक् (**अधिपतये**) पतीनां=पालकानामधिष्ठात्रे (**स्वाहा**) राजव्यवहारसूचिका क्रिया (**प्रजापतये**) प्रजारक्षकाय (**स्वाहा**) राजधर्मद्योतिका नीतिः (**इयम्**) नीतिः (**ते**) तव (**राट्**) या राजते सा (**मित्राय**) सुहृदे (**यन्ता**) नियामकः (**असि**) (**यमनः**) यस्सद्गुणान् यच्छति सः (**ऊर्ज्जे**) पराक्रमाय (**त्वा**) त्वाम् (**वृष्टचै**) वर्षणाय (**त्वा**) त्वाम् (**प्रजानाम्**) पालनीयानाम् (**त्वा**) त्वाम् (**आधिपत्याय**) अधिष्ठातृत्वाय ॥

अन्वयः—येन विदुषा वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा वैनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा स्वीक्रियते यस्य ते तवेयं राडस्ति यो यमनस्त्वं मित्राय यन्तासि तं त्वा त्वामूर्जे त्वा वृष्टचै त्वा प्रजानामाधिपत्याय च वयं स्वीकुर्वीमहि ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**येन विदुषा वाजाय** संग्रामाय **स्वाहा** सत्या क्रिया, **प्रसवाय** ऐश्वर्याय सन्तानोत्पादनाय वा **स्वाहा** पुरुषार्थबलयुक्ता सत्या वाक्, **अपिजाय** स्वीकाराय **स्वाहा** साध्वी क्रिया, **क्रतवे** विज्ञानाय **स्वाहा** योगाभ्यासादिक्रिया, **वसवे** वासाय **स्वाहा** धनप्रापिका क्रिया, **अहर्पतये** अह्नां पालकाय **स्वाहा** कालविज्ञापिता क्रिया, **अह्ने** दिनाय **मुग्धाय** प्रापितमोहाय **स्वाहा** वैराग्ययुक्ता क्रिया, **मुग्धाय** मोहं प्राप्ताय **वैनंशिनाय** विनष्टुं शीलं यस्य तस्यायं बोधस्तस्मै **स्वाहा**, सत्योपदेशिका वाक् **वैनंशिने** विनष्टुं शीलाय **आन्त्यायनाय** अन्ते भवमयनं यस्य स आन्त्यायनः स एव तस्मै **स्वाहा** सत्या वाणी, **आन्त्याय** अन्ते भवायान्त्याय **भौवनाय** भुवनाना-

भावार्थ—जो विद्वान्–(वाजाय) संग्राम के लिए (स्वाहा) सत्याचरण, (प्रसवाय) ऐश्वर्य वा सन्तान की उत्पत्ति के लिए (स्वाहा) पुरुषार्थ और बल से युक्त वाणी, (अपिजाय) स्वीकार करने के लिए (स्वाहा) उत्तम आचरण, (क्रतवे) विज्ञान के लिए (स्वाहा) योगाभ्यास आदि का अनुष्ठान, (वसवे) निवास के लिए (स्वाहा) धन-प्रापक आचरण, (अहर्पतये) दिनों के पालक के लिए (स्वाहा) काल-विज्ञापित क्रिया, (अह्ने) प्रतिदिन (मुग्धाय) मोह को प्राप्त कराने वाले के लिए (स्वाहा) वैराग्य-युक्त आचरण, (मुग्धाय) मोह को प्राप्त (वैनंशिने) विनाशी के बोध के लिए (स्वाहा) सत्य का उपदेश करने वाली वाणी, (वैनंशिने) विनाशी (आन्त्यायनाय) अन्त्य

मयं सम्बन्धी तस्मै **स्वाहा** सुष्ठूपदेशः **भुवनस्य** भवन्ति भूतानि यस्मिन् तस्य **पतये** स्वामिने **स्वाहा** उत्तमा वाक्, **अधिपतये** पतीनां=पालिकानामधिष्ठात्रे **स्वाहा** राजव्यवहारसूचिका क्रिया, **प्रजापतये** प्रजारक्षकाय **स्वाहा** राजधर्मद्योतिका नीतिः **स्वीक्रियते, यस्य ते**=तवेयं नीतिः **राट्** या राजते सा **अस्ति, यो यमनः** यस्सद्गुणान् यच्छति सः **त्वं मित्राय** सुहृदे **यन्ता** नियामकः **असि, तं त्वा**=त्वामूर्जे पराक्रमाय **त्वा** त्वां **वृष्टचै** वर्षणाय **त्वा** त्वां **प्रजानां** पालनीयानां **आधिपत्याय** अधिष्ठातृत्वाय **च वयं स्वीकुर्वीमहि** ॥ १८ । २८ ॥

अयन=निवास वाले पुरुष के लिए (स्वाहा) सत्यवाणी, (आन्त्याय) अन्त में विद्यमान (भौवनाय) भुवनों वाले के लिए (स्वाहा) उत्तम उपदेश, (भुवनस्य) भुवन के (पतये) स्वामी के लिए (स्वाहा) उत्तम वाणी, (अधिपतये) पति=पालकों के अधिष्ठाता के लिए (स्वाहा) राजव्यवहार का सूचक आचरण, (प्रजापतये) प्रजा के रक्षक के लिए (स्वाहा) राजधर्म की प्रकाशक नीति को स्वीकार करता है—और जो (ते) तेरी (इयम्) यह नीति (राट्) प्रकाशमान है, जो (यमनः) सद्गुणों का दाता तू–(मित्राय) मित्र के लिए (यन्ता) नियामक (असि) है सो (त्वा) तुझे, (ऊर्जे) पराक्रम के लिए (त्वा) तुझे, (वृष्टचै) वर्षा के लिए (त्वा) तुझे और (प्रजानाम्) प्रजा के (आधिपत्याय) स्वामित्व के लिए तुझे हम स्वीकार करते हैं ॥२८॥

[प्रसवाय स्वाहा]

भावार्थः—ये मनुष्या धर्म्यवाक्क्रियाभ्यां सह प्रवर्तन्ते, ते सुखानि लभन्ते ।

भावार्थ—जो मनुष्य धर्मयुक्त वाणी और आचरण से वर्ताव करते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं ।

[यो यमनस्त्वं······तं त्वा···आधिपत्याय···स्वीकुर्वीमहि]

ये जितेन्द्रियास्ते राज्यं रक्षितुं शक्नुवन्ति ॥

जो जितेन्द्रिय हैं वे राज्य की रक्षा कर सकते हैं ॥ १८ । २८ ॥

भा० पदार्थः=स्वाहा=धर्म्यवाक् । धर्म्यक्रिया ॥ यमनः=जितेन्द्रियः ॥

भाष्यसार—युद्ध विद्या में कुशल मनुष्य की योग्यता—प्रजा का पालन करने के लिए सेनापति आदि वीर पुरुषों में सत्याचरण, पुरुषार्थ, सत्यवाणी, इन्द्रियों के संयमार्थ योगाभ्यास, समयानुसार कार्य करने की योग्यता, राजनीति में कुशलता, मित्रों का नियम करने की योग्यता, वीरतादि गुणों का होना परमावश्यक है ॥ १८ । २८ ॥

देवाः । **यज्ञानुष्ठातात्मा**=यज्ञानुष्ठाता मनुष्यः । पूर्वस्य स्वराड्विकृतिः । पञ्चमः । स्तोमश्चेत्यस्य ब्राह्मचुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अथ किं किं यज्ञसिद्धये नियोजनीयमित्याह ॥

अब क्या-क्या यज्ञ की सिद्धि के लिए युक्त करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताꣳ चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेनं कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेनं कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऽ ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च। स्वर्देवा ऽ अगन्मामृता ऽ अभूम प्रजापतेः प्रजा ऽ अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**आयुः**) एति जीवनं येन तत् (**यज्ञेन**) परमेश्वरस्य विदुषां च सत्कारेण (**कल्पताम्**) समर्थं भवतु (**प्राणः**) जीवनहेतुः (**यज्ञेन**) सङ्गतिकरणेन (**कल्पताम्**) (**चक्षुः**) नेत्रम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**श्रोत्रम्**) श्रवणेन्द्रियम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**वाक्**) वक्ति यया सा वाणी (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**मनः**) अन्तःकरणम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**आत्मा**) अतति=शरीरमिन्द्रियाणि प्राणांश्च व्याप्नोति सः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदविद्विद्वान् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**ज्योतिः**) न्यायप्रकाशः (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**स्वः**) सुखम् (**यज्ञेन**) (**कल्पताम्**) (**पृष्ठम्**) ज्ञातुमिच्छा (**यज्ञेन**) अध्ययनाख्येन (**कल्पताम्**) (**यज्ञः**) सङ्गन्तव्यो धर्मः (**यज्ञेन**) सत्यव्यवहारेण (**कल्पताम्**) (**स्तोमः**) स्तुवन्ति यस्मिन् सोऽथर्ववेदः (**च**) (**यजुः**) यजति येन स यजुर्वेदः (**च**) (**ऋक्**) ऋग्वेदः (**च**) (**साम**) सामवेदः (**च**) (**बृहत्**) महत् (**च**) (**रथन्तरम्**) सामस्तोत्रविशेषः (**च**) (**स्वः**) मोक्षसुखम् (**देवाः**) विद्वांसः (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**अमृताः**) जन्ममरणदुःखरहिताः सन्तः (**अभूम**) भवेम (**प्रजापतेः**) सकलसंसारस्य स्वामिनो=जगदीश्वरस्य (**प्रजाः**) पालनीयाः (**अभूम**) भवेम (**वेट्**) सत्क्रियया (**स्वाहा**) सत्यया वाण्या ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! ते तव प्रजानामाधिपत्यायायुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पतां श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पतां स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च यज्ञेन कल्पताम्। हे देवा विद्वांसो यथा वयममृताः स्वरगन्म प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहायुक्ताश्चाभूम तथा यूयमपि भवत ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्य ! ते= **तव प्रजानामाधिपत्यायायुः** एति जीवनं येन तत् **यज्ञेन** परमेश्वरस्य विदुषां च सत्कारेण **कल्पतां** समर्थं भवतु, **प्राणः** जीवनहेतुः **यज्ञेन** सङ्गतिकरणेन **कल्पतां** समर्थो भवतु, **चक्षुः** नेत्रं **यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु, **श्रोत्रं** श्रवणेन्द्रियं **यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु, **वाग्** वक्ति यया सा वाणी **यज्ञेन कल्पतां** समर्था भवतु, **मनः** अन्तःकरणं **यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु, **आत्मा** अतति=शरीरमिन्द्रियाणि प्राणांश्च व्याप्नोति सः **यज्ञेन कल्पतां** समर्थो भवतु, **ब्रह्मा** चतुर्वेदविद्विद्वान् **यज्ञेन कल्पतां** समर्थो भवतु, **ज्योतिः** न्यायप्रकाशः **यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु, **स्वः** सुखं **यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु, **पृष्ठं** ज्ञातुमिच्छा **यज्ञेन** अध्ययनाख्येन **कल्पतां** समर्थं भवतु, **यज्ञः** सङ्गन्तव्यो

भाषार्थ—हे मनुष्य ! (ते) तेरी प्रजा के आधिपत्य के लिए (आयुः) आयु (यज्ञेन) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार से (कल्पताम्) समर्थ हो, (प्राणः) जीवन का हेतु प्राण (यज्ञेन) संगति करने से (कल्पताम्) समर्थ हो, (चक्षुः) नेत्र (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (श्रोत्रम्) श्रवण इन्द्रिय=कान (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (वाक्) वाणी (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (मनः) अन्तःकरण (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (आत्मा) शरीर, इन्द्रियाँ और प्राणों को व्याप्त करने वाला आत्मा (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (ब्रह्मा) चारों वेदों का वेत्ता विद्वान् (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (ज्योतिः) न्याय का प्रकाश (यज्ञेन)

धर्मो **यज्ञेन** सत्यव्यवहारेण **कल्पतां** समर्थो भवतु, **स्तोमः** स्तुवन्ति यस्मिन् सोऽथर्ववेदः **च यजुः** यजति येन स यजुर्वेदः **च ऋग्** ऋग्वेदः **च साम** सामवेदः **च बृहद्** महत् च **रथन्तरं** सामस्तोत्रविशेषः **च यज्ञेन कल्पतां** समर्थं भवतु ।

संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (स्वः) सुख (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो, (पृष्ठम्) जिज्ञासा (यज्ञेन) अध्ययन नामक यज्ञ से (कल्पताम्) समर्थ हो, (यज्ञः) संग करने योग्य धर्म (यज्ञेन) सत्य-व्यवहार से (कल्पताम्) समर्थ हो, (च) और (स्तोमः) स्तुति का आधार अथर्ववेद (च) और (यजुः) यज्ञ का साधन यजुर्वेद (च) और (ऋक्) ऋग्वेद (च) और (साम) सामवेद (च) और (बृहद्) बड़ी वस्तु, (च) और (रथन्तरम्) साम का स्तोत्र विशेष (यज्ञेन) संगति से (कल्पताम्) समर्थ हो ।

हे **देवाः**=विद्वांसः ! **यथा वयममृताः** जन्मरण-दुःखरहिताः सन्तः **स्वः** मोक्षसुखम् **अगन्म** प्राप्नुयाम, **प्रजापतेः** सकलसंसारस्य स्वामिनो=जगदीश्वरस्य **प्रजाः** पालनीयाः **अभूम** भवेम, **वेट्** सत्क्रियया **स्वाहा** सत्यया वाण्या **युक्ताश्चाभूम तथा यूयमपि** भवत ॥ १८ । २९ ॥

हे (देवाः) विद्वानो ! जैसे—हम (अमृताः) जन्म-मरण के दुःख से रहित होकर (स्वः) मोक्ष सुख को (अगन्म) प्राप्त करें, (प्रजापतेः) सकल संसार के स्वामी जगदीश्वर की (प्रजाः) प्रजा (अभूम) बनें, और (वेट्) सत्याचरण एवं (स्वाहा) सत्य-वाणी से युक्त हों वैसे तुम भी बनो ॥ २९ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ पूर्वमन्त्रात्—'ते' 'आधिपत्याय' इति पदद्वयमनुवर्तते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ पूर्व मन्त्र से 'ते' और 'आधिपत्याय' इन दो पदों की अनुवृत्ति है ।

[आयुर्यज्ञेन कल्पताम्, प्रजापतेः प्रजा अभूम, अमृताः स्वरगन्म]

मनुष्या धार्मिकविद्वदनुकरणेन यज्ञाय सर्वं समर्प्य, परमेश्वरं न्यायाधीशं राजानं च मत्वा सततं न्याय-परायणा भूत्वा सुखिनः स्युः ॥ १८।२९ ॥

मनुष्य—धार्मिक विद्वानों के अनुकरण से यज्ञ के लिए सब समर्पित करके, परमेश्वर को न्यायाधीश राजा मानकर सदा न्याय-परायण होकर सुखी रहें ॥ १८ । २९ ॥

भा० पदार्थः—प्रजापतेः=परमेश्वरस्य न्यायाधीशस्य राज्ञः ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) यज्ञ नाम विष्णु का है जो कि सब जगत् में व्यापक हो रहा है, उसी परमेश्वर के अर्थ सब चीज समर्पण कर देना चाहिए । इस विषय में यह मन्त्र है कि सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उसकी आज्ञापालन में समर्पित करें--(**प्राणो०**) अर्थात् अपना प्राण भी ईश्वर के अर्थ कर देवें (**चक्षु०**) जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आँख (**श्रोत्रं०**) जो श्रवणविद्या और शब्द प्रमाणादि (**वाक्०**) वाणी (**मनो०**) मन और विज्ञान (**आत्मा०**) जीव (**ब्रह्मा**) तथा चारों वेद को पढ़ के जो पुरुषार्थ किया है (**ज्योतिः**) जो प्रकाश (**स्वर्यं०**) जो सब सुख (**पृष्ठं०**) जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान (**यज्ञो०**) जो कि पूर्वोक्त तीन प्रकार का यज्ञ किया जाता है ये सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना अवश्य है (**स्तोमश्च०**) जो स्तुति का समूह (**साम च०**) सब गान करने की विद्या (**चकारात्०**) अथर्ववेद (**बृहच्च०**) बड़े-बड़े सब पदार्थ और (**रथन्तरं च०**) शिल्पविद्या आदि के

फलों में से जो जो फल अपने आधीन हों, वे सब परमेश्वर के समर्पण कर देवें क्योंकि सब वस्तु ईश्वर ही की बनाई हैं। इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चीजें परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है उसके लिए परम कारुणिक परमात्मा सब सुख देता है इसमें सन्देह नहीं। (**स्वर्देवा०**) अर्थात् परमात्मा की कृपा की लहर और परम प्रकाशस्वरूप विज्ञान-प्राप्ति में शुद्ध होके तथा सब संसार के बीच में कीर्तिमान् होके हम लोग परमानन्दस्वरूप मोक्ष को (**अगन्म०**) सब दिन के लिए प्राप्त हों। (**प्रजापतेः**) तथा हम सब मनुष्य लोगों को उचित है कि किसी एक मनुष्य को अपना राजा न मानें क्योंकि ऐसा अभागा कौन मनुष्य है कि जो सर्वज्ञ, न्यायकारी, सबके पिता एक परमेश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना करे और राजा माने। इसलिए हम लोग उसी को अपना राजा मान के सत्य न्याय को प्राप्त हों अर्थात् वही सब मनुष्यों का न्याय करने में समर्थ है; अन्य कोई नहीं। (बेट् स्वाहा) अर्थात् हम लोग सर्वज्ञ, सत्य स्वरूप, सत्य न्याय करने वाले परमेश्वर राजा की अपने सत्य भाव से प्रजा होके यथावत् सत्य मानने, सत्य बोलने और सत्य करने में समर्थ होवें। सब मनुष्यों को परमेश्वर से इस प्रकार की आशा करना उचित है कि हे कृपानिधे ! आप की आज्ञा और भक्ति से हम लोग परस्पर विरोधी कभी न हों किन्तु आप और सब के साथ सदा पिता-पुत्र के समान प्रेम से वर्त्तें ॥ (**ऋग्वेदादि० उपासना विषयः**) ॥

(ख) (**यज्ञो वै विष्णुः, यज्ञो वै ब्रह्म इत्याद्यैतरेयशतपथ ब्राह्मणश्रुतेः**)— यज्ञ=यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके हेतु (उसके अर्थ तथा उसके संग) अति श्रद्धा से यज्ञ जो परमात्मा है; उसके लिए सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करें। यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! जो यह आप की आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें, इस कारण हम लोग आयुः=उमर, प्राण, चक्षु=आँख, कान, वाणी, मन, आत्मा=जीव, ब्रह्मा=वेदविद्या और विद्वान्, ज्योति=सूर्यादि लोक यथा अग्न्यादि पदार्थ, स्वर्ग=सुखसाधन, पृष्ठ=पृथिव्यादि सब लोक आधार, पुरुषार्थ, यज्ञ=जो अच्छा काम हम लोग करते हैं, स्तोम=स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, चकार से अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं। हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं। जैसी आप की इच्छा हो, वैसा हमारे लिए आप कीजिए। परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से (**स्वरगन्म**) उत्तम सुख को प्राप्त हों। जब तक जीवें, तब तक सदा चक्रवर्त्ति राज्यादि भोग से सुखी रहें और मरणानन्तर भी हम सुखी ही रहें। हे महादेवामृत ! हम देव= परमविद्वान् हों तथा अमृत=मोक्ष जो आप की प्राप्ति उसको प्राप्त होके जन्म-मरण रहित अमृतस्वरूप सदैव रहें। (**वेट् स्वाहा**) आपकी आज्ञा-पालन और आपकी प्राप्ति में उद्योगी हों जिससे, उस क्रिया में सदा तत्पर रहें तथा जो अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो, वैसा ही सदा भाषण करें, इससे विपरीत कभी नहीं। हे कृपानिधे ! हम लोगों का योग-क्षेम=सब निर्वाह आप ही सदा करो। आपके सहाय से सर्वत्र हमको विजय और सुख मिले ॥ **आर्याभिविनय० २ । १३ ॥**

भाष्यसार—प्रजा-पालक का जीवन यज्ञमय हो—परमेश्वर की तरह प्रजा का पालक भी सत्याचरण, सत्यवाणी आदि गुणों वाला हो, उसके प्राण, चक्षु आदि इन्द्रियां, आत्मा, न्यायप्रकाश, यज्ञादि सत्क्रियाएँ, चारों वेदों का ज्ञानादि विद्वानों की संगति से यज्ञमय=परोपकारार्थ होने चाहिएँ। तब ही वह प्रजापति कहलाने के योग्य है ॥ १८ । २९ ॥

देवाः । **राज्यवानात्मा**=राज्यवान् मनुष्यः । स्वराड्जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैः कस्य कथमुपासना कार्येत्याह ॥

फिर मनुष्यों को कैसे किसकी उपासना करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒वे मा॒तरं॑ म॒हीमदि॑तिं॒ नाम॒ वच॑सा करामहे ।
यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्यां॑ नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्म॑ साविषत् ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**वाजस्य**) विविधोत्तमस्यान्नस्य (**नु**) एव (**प्रसवे**) उत्पादने (**मातरम्**) मान्यनिमित्तम् (**महीम्**) महतीं भूमिम् (**अदितिम्**) कारणरूपेण नित्याम् (**नाम**) प्रसिद्धौ (**वचसा**) वचनेन (**करामहे**) कुर्य्याम् । अत्र विकरणव्यत्ययेन शप् (**यस्याम्**) पृथिव्याम् (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**विश्वम्**) सर्वम् (**भुवनम्**) भवन्ति यस्मिँस्तत्स्थूलं जगत् (**आविवेश**) आविष्टमस्ति (**तस्याम्**) (**नः**) अस्माकम् (**देवः**) शुद्धस्वरूपः (**सविता**) सकलैश्वर्ययुक्त ईश्वरः (**धर्म**) धारणाम् (**साविषत्**) सुवतु ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(करामहे) यहाँ विकरण-व्यत्यय से 'शप्' विकरण है ॥

अन्वयः—वाजस्य प्रसवे नु वर्त्तमाना वयं मातरमदितिं महीं नाम वचसा करामहे यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां सविता देवो नो धर्म साविषत् ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—**वाजस्य** विविधोत्तमस्यान्नस्य **प्रसवे** उत्पादने **नु** एव **वर्त्तमाना वयं मातरं** मान्यनिमित्ताम् **अदितिं** कारणरूपेण नित्यां **महीं** महतीं भूमिं **नाम** प्रसिद्धौ **वचसा** वचनेन **करामहे** कुर्य्याम ।

यस्यां पृथिव्याम् **इदं** प्रत्यक्षं **विश्वं** सर्वं **भुवनं** भवन्ति यस्मिँस्तत् स्थूलं जगत् **आविवेश** आविष्टमस्ति, **तस्यां सविता** सकलैश्वर्ययुक्त ईश्वरः **देवः** शुद्धस्वरूपः **नः** अस्माकं **धर्म** धारणां **साविषत्** सुवतु ॥ १८ । ३० ॥

भाषार्थ—(वाजस्य) विविध उत्तम अन्न की (प्रसवे) उत्पत्ति में (नु) ही वर्त्तमान हम लोग—(मातरम्) मान्य की हेतु, (अदितिम्) कारण रूप से नित्य (महीम्) महान् भूमि को (नाम) प्रसिद्धिपूर्वक (वचसा) वचन से (करामहे) स्वीकार करें ।

(यस्याम्) जिस पृथिवी में (इदम्) यह (विश्वम्) सब (भुवनम्) स्थूल जगत् (आविवेश) प्रविष्ट है, वहाँ (सविता) सकल ऐश्वर्य से युक्त (देवः) शुद्ध स्वरूप ईश्वर (नः) हमारी (धर्म) धारणा को (साविषत्) उत्पन्न करे ॥ १८ । ३० ॥

[यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश, तस्यां सविता देवो नो धर्म साविषत्]

भावार्थः—येन जगदीश्वरेण सर्वस्याधिकरणं या भूमिर्निर्मिता सा सर्वं धरति, स एव सर्वैर्मनुष्यैरुपासनीयः ॥ १८ । ३० ॥

भावार्थ—जिस जगदीश्वर ने सबका आधार जो भूमि बनाई है वह सबको धारण करती है, अतः सब मनुष्य उसी जगदीश्वर की उपासना करें ॥ १८ । ३० ॥

भाष्यसार—**राज्य के स्वामी भी ईश्वर की उपासना करें**—जो पृथिवी सब प्रकार के अन्नों को पैदा करने से माता कहलाती है । अदिति=कारण रूप नित्य है, जिसमें समस्त स्थूल जगत् प्रवेश करता है, उस भूमि को जिसने बनाया है, उसकी महिमा को सब स्वीकार करें । और वह ईश्वर ऐसी सत्प्रेरणा करें कि भूमि आदि के स्वामी होकर भी ईश्वरोपासना को न छोड़ें ॥ १८ । ३० ॥

देवाः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । निचृदार्षी । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथ प्राणिनां कर्त्तव्यमुपदिश्यते ।।

अब प्राणियों के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ।।

विश्वे॑ऽ अ॒द्य म॒रुतो॒ विश्व॑ऽ ऊ॒ती विश्वे॑ भवन्त्व॒ग्नय॒: समि॑द्धाः ।
विश्वे॑ नो दे॒वा ऽ अव॒साग॑मन्तु॒ विश्व॑मस्तु॒ द्रवि॑णं॒ वाजो॑ ऽ अ॒स्मे ।। ३१ ।।

पदार्थः—(विश्वे) सर्वे (अद्य) (मरुतः) वायवः (विश्वे) (ऊती) ऊत्या रक्षणादिना सह । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः (विश्वे) (भवन्तु) (अग्नयः) पावका इव (समिद्धाः) सम्यक् प्रदीप्ताः (विश्वे) (नः) अस्माकं (देवाः) विद्वांसः (अवसा) पालनादिना (आ) समन्तात् (गमन्तु) गच्छन्तु । अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (विश्वम्) अखिलम् (अस्तु) प्राप्तं भवतु (द्रविणम्) धनम् (वाजः) अन्नम् (अस्मे) अस्मभ्यम् ।। ३१ ।।

प्रमाणार्थ—(ऊती) ऊत्या । यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से पूर्व सवर्ण आदेश है । (गमन्तु) गच्छन्तु । यहां 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७३) से 'शप्' विकरण का लुक् है ।।

अन्वयः—अस्यां पृथिव्यामद्य विश्वे मरुतो विश्वे प्राणिनः पदार्थाश्च विश्वे समिद्धा अग्नय इव न ऊती भवन्तु विश्वे देवा अवसाऽऽगमन्तु यतोऽस्मे विश्वं द्रविणं वाजश्चास्तु ।। ३१ ।।

सपदार्थान्वयः—अस्यां **पृथिव्यामद्य** **विश्वे** सर्वे **मरुतः** वायवः **विश्वे** सर्वे **प्राणिनः** **पदार्थाश्च** **विश्वे** सर्वे **समिद्धाः** सम्यक् प्रदीप्ताः **अग्नयः** पावका **इव** **नः** अस्माकम् **ऊती** ऊत्या=रक्षणादिना सह **भवन्तु** ।

विश्वे सर्वे **देवाः** विद्वांसः **अवसा** पालनादिना **आगमन्तु** समन्ताद् गच्छन्तु **यतोऽस्मे** अस्मभ्यं **विश्वम्** अखिलं **द्रविणं** धनं **वाजः** अन्नं **चास्तु** प्राप्तं भवतु ।। १८ । ३१ ।।

भाषार्थ—इस पृथिवी पर (अद्य) आज (विश्वे) सब (मरुतः) वायु, (विश्वे) सब प्राणी और पदार्थ, (विश्वे) सब (समिद्धाः) सम्यक् प्रदीप्त (अग्नयः) अग्नि के समान विद्वान् (नः) हमारी (ऊती) रक्षा आदि से युक्त (भवन्तु) हों । और—

(विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (अवसा) पालन आदि के निमित्त (आगमन्तु) आवें जिनसे (अस्मे) हमें (विश्वम्) सब (द्रविणम्) धन और (वाजः) अन्न (अस्तु) प्राप्त हो ।। १८ । ३१ ।।

[विश्वे देवा अवसाऽऽगमन्तु, अस्मे विश्वं द्रविणं वाजश्चास्तु]

भावार्थः—ये मनुष्या आलस्यं विहाय विदुषः सङ्गत्य, पृथिव्यां प्रयतन्ते, ते समग्रानुत्तमान् पदार्थान् प्राप्नुवन्ति ।। १८ । ३१ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य आलस्य को छोड़कर, विद्वानों का संग करके पृथिवी पर प्रयत्न करते हैं वे समग्र उत्तम पदार्थों को प्राप्त करते हैं ।। ३१ ।।

भा० पदार्थः—विश्वम्=समग्रम् । द्रविणम्=उत्तमं पदार्थम् ।

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—अग्नयः=अग्नि के समान ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त विद्वान् मरुतः=वायु की तरह सब प्राणियों के पालक और ऊती=रक्षक होने चाहिए । और सब प्राणियों के जीवन के आधारभूत अन्न और धन की वृद्धि का प्रयत्न करें ।। १८ । ३१ ।।

देवाः । **अन्नवान् विद्वान्**=स्पष्टम् । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ विद्वान् प्रजाश्च कथं वर्त्तेरन्नित्याह ।।

अब विद्वान् और प्रजाजन कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ।।

वाजो॑ नः स॒प्त प्र॒दिश॒श्चत॑स्रो वा परा॒वतः॑ । वाजो॑ नो॒ विश्वै॑र्दे॒वैर्धन॑साताव॒िहाव॑तु ।। ३२ ।।

पदार्थः—(वाजः) अन्नादिः (नः) अस्मान् (सप्त) (**प्रदिशः**) प्रदिश्यन्ते ताः (**चतस्रः**) पूर्वाद्या दिशः (वा) चार्थे (**परावतः**) दूरस्थाः (**वाजः**) शास्त्रबोधो वेगो वा (नः) अस्माकम् (**विश्वैः**) अखिलैः (देवैः) विद्वद्भिः (**धनसातौ**) धनानां संविभक्तौ (**इह**) अस्मिँल्लोके (**अवतु**) रक्षतु प्राप्नोतु वा ।।

अन्वयः—हे विद्वांसो यथा विश्वैर्देवैः सह वर्त्तमानो वाज इह धनसातौ नोऽवतु वा नो वाजः सप्त प्रदिशः परावतश्चतस्रो दिशोऽवतु तथैता यूयं सततं रक्षत ।! ३२ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! **यथा विश्वैः** अखिलैः **देवैः** विद्वद्भिः **सह वर्त्तमानो वाजः** अन्नादिः इह अस्मिँल्लोके **धनसातौ** धनानां संविभक्तौ **नः** अस्मान् **अवतु** रक्षतु प्राप्नोतु वा, **वा** च **नः** अस्माकं **वाजः** शास्त्रबोधो वेगो वा **सप्त प्रदिशः** प्रदिश्यन्ते ताः **परावतः** दूरस्थाः **चतस्रः** पूर्वाद्या **दिशोऽवतु** रक्षतु प्राप्नोतु वा **तथैता यूयं सततं रक्षत** ।। १८ । ३२ ।।

भाषार्थ—हे विद्वानो ! जैसे—(विश्वैः) सब (देवैः) विद्वानों के साथ विद्यमान (वाजः) अन्न आदि (इह) इस लोक में (धनसातौ) धनों के संविभाग में (नः) हमारी (अवतु) रक्षा करे वा हमें प्राप्त हो । (वा) और—(नः) हमारा (वाजः) शास्त्र-बोध वा वेग (सप्त) सात (प्रदिशः) प्रदिशाओं तथा (परावतः) दूरस्थ (चतस्रः) पूर्व आदि दिशाओं की (अवतु) रक्षा करे वा उन्हें प्राप्त हो—वैसे इनकी तुम भी सदा रक्षा करो ।।

[हे विद्वांसो ! यथा···वाज इह···नोऽवतु, वा नः···चतस्रो दिशोऽवतु, तथैता यूयं सततं रक्षत]

भावार्थः—मनुष्यैः पुष्कलान्नेन स्वेषां पालनमस्यां पृथिव्यां सर्वासु दिक्षु सत्कीर्तिः स्यादिति सज्जना आदर्त्तव्याः ।। १८ । ३२ ।।

भावार्थ—मनुष्य-पुष्कल अन्न से अपने लोगों का पालन हो तथा इस पृथिवी पर सब दिशाओं में सत्कीर्ति हो, इस लिए सज्जनों का आदर करें ।। १८ । ३२ ।।

भा० पदार्थः—वाजः=पुष्कलमन्नम् ।

भाष्यसार—अन्नादि से सम्पन्न विद्वान् का कर्त्तव्य—पर्याप्त अन्नादि खाद्य सामग्री से सम्पन्न विद्वान् देवों की तरह सब दिशाओं और उपदिशाओं में निवास करने वाले प्राणियों को अन्नादि देकर रक्षा किया करें । धनसातौ=धनादि का समान वितरण करके सबकी रक्षा करें ।। १८ । ३२ ।।

देवाः । **अन्नपतिः**=अन्नवान् । त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुनर्मनुष्यैः किं किमभीप्सितव्यमित्याह ।।

फिर मनुष्यों को क्या क्या चाहने योग्य है, यह उपदेश किया है ।।

वाजो नो ऽ अद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभिः कल्पयाति ।
वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा ऽ आशा वाजपतिर्जयेयम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**वाजः**) अन्नम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**अद्य**) अस्मिन्दिने (**प्र**) (**सुवाति**) प्रेरयेत् (**दानम्**) (**वाजः**) (**देवान्**) विदुषो दिव्यान्गुणान् वा (**ऋतुभिः**) वसन्तादिभिः (**कल्पयाति**) समर्थयेत् (**वाजः**) (**हि**) खलु (**मा**) माम् (**सर्ववीरम्**) सर्वे वीरा यस्मात् तम् (**जजान**) जनयतु । अत्र लोडर्थे लिट् (**विश्वाः**) समग्राः (**आशाः**) दिशः (**वाजपतिः**) अन्नाद्यधिष्ठाता (**जयेयम्**) उत्कर्षेयम् ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**जजान**) जनयतु । यहाँ लोट्-लकार के अर्थ में लिट् लकार है ॥

अन्वयः--हे मनुष्याः ! यथाऽद्य यद्वाजो नो दानं प्रसुवाति वाज ऋतुभिर्देवान् कल्पयाति यद्धि वाजः सर्ववीरं मा जजान तेनाहं वाजपतिर्भूत्वा विश्वा आशा जयेयम् । तथा यूयमपि जयत ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः! यथाऽद्य** अस्मिन्दिने **यद्वाजः** अन्नं **नः** अस्मभ्यं **दानं प्रसुवाति** प्रेरयेत् **वाजः** अन्नम् **ऋतुभिः** वसन्तादिभिः **देवान्** विदुषो दिव्यान् गुणान् वा **कल्पयाति** समर्थयेत्, **यद्धि** खलु **वाजः** अन्नं **सर्ववीरं** सर्वे वीरा यस्मात् तं **मा** मां **जजान** जनयतु, तेनाहं **वाजपतिः** अन्नाद्य-धिष्ठाता **भूत्वा विश्वाः** समग्राः **आशाः** दिशः **जयेयम्** उत्कर्षेयं **तथा यूयमपि जयत** ॥ १८ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(अद्य) आज जो (वाजः) अन्न (नः) हमें (दानम्) दान करने को (प्रसुवाति) प्रेरित करे, जो (वाजः) अन्न (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (देवान्) विद्वानों वा दिव्य गुणों को (कल्पयाति) समर्थ बनावे, जो (हि) ही (वाजः) अन्न (सर्ववीरम्) सब वीरों का हेतु (मा) मुझे (जजान) बनावे इसलिए मैं (वाजपतिः) अन्न आदि का अधिष्ठाता होकर (विश्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (जयेयम्) जीतूँ एवं उत्कृष्ट बनाऊँ वैसे तुम भी जीतो ॥३३॥

[**वाजः सर्ववीरं मा जजान, तेनाहं वाजपतिर्भूत्वा विश्वा आशा जयेयम्**]

भावार्थः—यावन्तीह खलु वस्तूनि सन्ति तावतामन्नमेव श्रेष्ठमस्ति, यतो ऽन्नवान् सर्वत्र विजयी जायते ॥ १८ । ३३ ॥

भावार्थ—जितनी यहाँ वस्तुएँ हैं उनमें अन्न ही श्रेष्ठ है जिससे अन्नवान्-अन्नपति सर्वत्र विजयी होता है ॥ १८ । ३३ ॥

भा० पदार्थः—वाजपतिः=अन्नवान् ।

विनियोग—पकाए हुए भात की आहुति नीचे लिखे हुए मन्त्रों से देवे ··· ··· ॥ १ ॥ वाजोनोऽद्य० ॥ २ ॥ (**संस्कारविधि अन्नप्राशन०**) ॥

भाष्यसार—**अन्नपति की सर्वत्र विजय होती है**—वाजपतिः=अन्नादि श्रेष्ठ पदार्थों से सम्पन्न विद्वान् सब ऋतुओं में अन्नादि का दान देकर दूसरों को भी दान के लिए प्रेरणा किया करें। क्योंकि अन्न ही दिव्य गुणों और सब वीरों का कारण है और अन्नवान् मनुष्य सब दिशाओं में उत्कर्ष को प्राप्त होता है ॥ १८ । ३३ ॥

देवाः । **अन्नपतिः=अन्नवान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अन्नमेव सर्वान्पालयतीत्याह ॥

अन्न ही सबकी रक्षा करता है, यह उपदेश किया है ॥

वाजः॑ पु॒रस्ता॑दु॒त म॑ध्य॒तो नो॒ वाजो॑ दे॒वान् ह॒विषा॑ वर्द्धयाति।
वाजो॒ हि मा॒ सर्व॑वीरं च॒कार॒ सर्वा॒ ऽ आशा॒ वाज॑पतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**वाजः**) अन्नम् (**पुरस्तात्**) प्रथमतः (**उत**) अपि (**मध्यतः**) (**नः**) अस्मान् (**वाजः**) अन्नम् (**देवान्**) दिव्यान् गुणान् (**हविषा**) दानेनादानेन च (**वर्द्धयाति**) वर्द्धयेत् (**वाजः**) (**हि**) किल (**मा**) माम् (**सर्ववीरम्**) सर्वे वीरा यस्य तम् (**चकार**) करोति (**सर्वाः**) (**आशाः**) दिशः (**वाजपतिः**) अन्नादिरक्षकः (**भवेयम्**) ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यद्वाजो हविषा पुरस्तादुत मध्यतो नो वर्द्धयाति यद्वाजो देवाँश्च वर्द्धयाति यद्धि वाजो मा सर्ववीरं चकार तेनाहं वाजपतिर्भवेयं सर्वा आशा जयेयं च ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—यद्वाजः अन्नं **हविषा** दानेनादानेन च **पुरस्तात्** प्रथमतः **उत** अपि **मध्यतो नः** अस्मान् **वर्द्धयाति** वर्द्धयेत्, **यद्वाजः** अन्नं **देवान्** दिव्यान् गुणान् **च वर्द्धयाति** वर्द्धयेत्, **यद्धि** किल **वाजः** अन्नं **मा** मां **सर्ववीरं** सर्वे वीरा यस्य तं **चकार** करोति, **तेनाहं वाजपतिः** अन्नादिरक्षकः **भवेयं, सर्वा आशाः** दिशः **जयेयं च** ॥ १८ । ३४ ॥

भाषार्थ—जो (वाजः) अन्न (हविषा) देने और लेने से (पुरस्तात्) प्रथम से (उत) तथा (मध्यतः) मध्य से (नः) हमें (वर्द्धयाति) बढ़ाता है और जो (वाजः) अन्न (देवान्) दिव्य गुणों को (वर्द्धयाति) बढ़ाता है, जो (हि) ही (वाजः) अन्न (मा) मुझे (सर्ववीरम्) सब वीरों वाला (चकार) बनाता है, इसलिए मैं—(वाजपतिः) अन्न आदि का रक्षक (भवेयम्) बनूँ और (सर्वाः) सब (दिशः) दिशाओं को जीतूँ ॥ १८ । ३४ ॥

[वाजो देवान् वर्द्धयाति]

भावार्थः—अन्नमेव सर्वान् प्राणिनो वर्द्धयति ।

भावार्थ—अन्न ही सब प्राणियों को बढ़ाता है ।

[तेनाहं सर्वा आशा जयेयम्]

अन्नेनैव प्राणिनः सर्वासु दिक्षु भ्रमन्ति ।

अन्न से ही प्राणी सब दिशाओं में भ्रमण करते हैं ।

[वाजो मा सर्ववीरं चकार]

अन्नेन विना किमपि कर्त्तुं न शक्नुवन्ति ॥

अन्न के विना कुछ भी नहीं कर सकते ॥ ३४ ॥

भा० पदार्थः—देवान्=सर्वान् प्राणिनः ।

भाष्यसार—अन्नवान् मनुष्य सदा बढ़ता है—जो वाजपति=अन्नवान् विद्वान् अन्नादि खाद्य पदार्थों का दान करता है, वह दिव्यगुणों के बढ़ने से सदा बढ़ता है। वह अन्नादि से वीरतादि गुणों वाला होकर सब दिशाओं को जीत लेता है ॥ १८ । ३४ ॥

देवाः । **स्वर्विद्याविद्विद्वान्=स्पष्टम्** । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्य्युरित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्य क्या करें, यह उपदेश किया है ॥

सं मा॑ सृजामि॒ पय॑सा पृथि॒व्याः सं मा॑ सृजाम्य॒द्भिरोष॑धीभिः ।
सो॒ऽहं वाज॑ꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(सम्) एकीभावे (मा) माम् (सृजामि) संबध्नामि (पयसा) रसेन (पृथिव्याः) (सम्) (मा) (सृजामि) (अद्भिः) संसाधितैर्जलैः (ओषधीभिः) सोमलतादिभिः (सः) (अहम्) (वाजम्) अन्नम् (सनेयम्) संभजेयम् (अग्ने) विद्वन् ॥ ३५ ॥

अन्वयः--हे अग्ने रसविद्याविद्विद्वन् ! योऽहं पृथिव्याः पयसा मा संसृजामि । अद्भिरोषधीभिः सह च मा संसृजामि सोऽहं वाजं सनेयमेवं त्वमप्याचर ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अग्ने=रसविद्याविद्विद्वन् ! योऽहं पृथिव्याः पयसा रसेन मा मां सम्+सृजामि एकीभावेन सम्बध्नामि, अद्भिः संसाधितैर्जलैः ओषधीभिः सोमलतादिभिः **सह च मा** मां **सम्+सृजामि** एकीभावेन संबध्नामि, **सोऽहं वाजम्** अन्नं **सनेयं** संभजेयम् **एवं त्वमप्याचर** ॥ १८।३५ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) रस-विद्या के वेत्ता विद्वान् ! जो मैं—(पृथिव्याः) पृथिवी के (पयसा) रस से (मा) स्वयं को (सम्+सृजामि) संसृष्ट=संयुक्त करता हूँ, (अद्भिः) सिद्ध किए जलों से और (ओषधीभिः) सोमलता आदि ओषधियों से (मा) स्वयं को (सम्+सृजामि) संसृष्ट=संयुक्त करता हूँ, सो मैं—(वाजम्) अन्न का (सनेयम्) सेवन करता हूँ, इस प्रकार तू भी कर ॥ १८ । ३५ ॥

[हे अग्ने ! ··· योऽहं···पयसा मा संसृजामि···सोऽहं वाजं सनेयम्, एवं त्वमप्याचर]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ हे मनुष्याः ! यथाऽहं वैद्यकशास्त्ररीत्याऽन्नपानादिकं कृत्वा सुखी भवामि, तथा यूयमपि प्रयतध्वम् ॥ १८ । ३५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे मैं वैद्यक-शास्त्र की रीति से अन्न, पान आदि करके सुखी रहता हूँ, वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥ १८ । ३५ ॥

भाष्यसार—**१. रस विद्या का विद्वान् ही अन्नपति बन सकता है**—जो विद्वान् रस विद्या को जानता है, वह अन्नादि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न कर सकता है। रस विद्या में पृथिवीस्थ जल को यन्त्रादि से निकालना, यज्ञादि से शुद्ध किए गए वृष्टि के द्वारा यथासमय जल प्राप्त करना, और सोमलतादि ओषधियों के रोगनिवारक रस को प्राप्त करनादि आते हैं।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जैसे वैद्यक शास्त्रानुसार सोमलतादि के सेवन से मनुष्य स्वास्थ्य-लाभ करता है, वैसे ही रस विद्या के द्वारा अन्नादि प्राप्त करके सुखी बनना चाहिए ॥ १८ । ३५ ॥

देवाः । **रसविद्विद्वान्**=स्पष्टम् । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्याः जलरसविदः स्युरित्याह ॥

मनुष्य जल के रस को जानने वाले हों, यह उपदेश किया है ॥

पयः॑ पृथि॒व्यां पय॒ऽओष॑धीषु॒ पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑ धाः ।
पय॑स्वतीः प्र॒दिशः॑ सन्तु॒ मह्य॑म् ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(पयः) जलरसश्च (पृथिव्याम्) (पयः) (ओषधीषु) (पयः) (दिवि) शुद्धे प्रकाशे (अन्तरिक्षे) सूर्यपृथिव्योर्मध्ये (पयः) रसम् (धाः) दधीथाः (पयस्वतीः) पयो=बहुरसो विद्यते यासु ताः (प्रदिशः) प्रकृष्टा दिशः (सन्तु) (मह्यम्) ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं पृथिव्यां यत्पय ओषधीषु यत्पयो दिव्यन्तरिक्षे यत्पयो धास्तत्सर्वं पयोऽहमपि धरामि । याः प्रदिशः पयस्वतीस्तुभ्यं सन्तु ता मह्यमपि भवन्तु ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं **पृथिव्यां यत्पयः** जलरसश्च **ओषधीषु यत्पयः** जलरसश्च **दिवि** शुद्धे प्रकाशे **अन्तरिक्षे** सूर्यपृथिव्योर्मध्ये **यत्पयः** रसं **धाः** दधीथाः, **तत्सर्वं पयः** रसम् **अहमपि धरामि** ।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(पृथिव्याम्) पृथिवी में जिस (पयः) जल एवं रस, (ओषधीषु) ओषधियों में जिस (पयः) जल एवं रस, (दिवि) शुद्ध प्रकाश में (अन्तरिक्षे) सूर्य और पृथिवी के मध्यवर्ती आकाश में जिस (पयः) रस को (धाः) धारण करता है, उस सब (पयः) रस को मैं भी धारण करूँ । और—

याः प्रदिशः प्रकृष्टा दिशः **पयस्वतीः** पयो=बहुरसो विद्यते यासु ताः **तुभ्यं सन्तु, ता मह्यमपि भवन्तु** ॥ १८ । ३६ ॥

जो (प्रदिशः) उत्तम दिशाएँ (पयस्वतीः) बहुत रस वाली तेरे लिए हों वे मेरे लिए भी हों ॥

[हे विद्वंस्त्वं पृथिव्यां यत्पयः···तत्सर्वं पयोऽहमपि धरामि]

भावार्थः—ये मनुष्या जलादिसंयुक्तेभ्यः पृथिव्यादिभ्य उत्तमानन्नान् रसाँश्च संगृह्य खादन्ति, पिबन्ति च तेऽरोगा भूत्वा—

भावार्थ—जो मनुष्य जल आदि से संयुक्त पृथिवी आदि से उत्तम अन्नों और रसों को संगृहीत करके खाते हैं और पीते हैं वे नीरोग होकर—

[प्रदिशः पयस्वतीस्तुभ्यं सन्तु]

सर्वासु दिक्षु कार्यं साद्धुं गन्तुमागन्तुं वा शक्नुवन्ति, दीर्घायुषश्च जायन्ते ॥ १८ । ३६ ॥

सब दिशाओं में कार्य को सिद्ध करने के लिए जा वा आ सकते हैं और दीर्घायु होते हैं ॥१८।३६॥

भा० पदार्थः—पयः=उत्तमान्नं रसश्च । प्रदिशः=सर्वा दिशः ॥

भाष्यसार—**रस विद्या का विद्वान् सबको होना चाहिए**—अन्नादि की प्राप्ति के लिए पयस्वतीः=बहुत तथा प्रशस्त रस विद्या का ज्ञान सब मनुष्यों को होना चाहिए । रस की प्राप्ति पृथिवी से, ओषधियों से और सूर्य की किरणों से आकृष्ट आकाश में विद्यमान मेघादि से विज्ञान के द्वारा हो सकती है ॥ १८ । ३६ ॥

देवाः । **सम्राड् राजा=स्पष्टम्** । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ।

पुनर्मनुष्याः कीदृशं राजानं मन्येरन्नित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्य कैसे व्यक्ति को राजा मानें, यह उपदेश किया है ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) स्वप्रकाशस्येश्वरस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्यप्रापकस्य (**प्रसवे**) प्रसूते जगति (**अश्विनोः**) सूर्याचन्द्रमसोः प्रतापशीतलत्वाभ्यामिव (**बाहुभ्याम्**) भुजाभ्याम् (**पूष्णः**) प्राणस्य धारणाकर्षणाभ्यामिव (**हस्ताभ्याम्**) कराभ्याम् (**सरस्वत्यै**) सरो=विज्ञानं विद्यते यस्यास्तस्याः। **अत्र षष्ठ्यर्थे चतुर्थी** (**वाचः**) वाण्याः (**यन्तुः**) नियन्तुः (**यन्त्रेण**) कलाकौशलतयोत्पादितेन (**अग्नेः**) विद्युदादेः (**साम्राज्येन**) यः समग्राया भूमेर्मध्ये सम्यक् राजते स सम्राट् तस्य भावेन सार्वभौमत्वेन (**अभिषिञ्चामि**) ।। ३७ ।।

प्रमाणार्थ—(**सरस्वत्यै**) यहाँ षष्ठी-विभक्ति के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है ।।

अन्वयः—हे विद्वन् राजन् ! यथाऽहं त्वा सवितुर्देवस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम् पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुरग्नेर्यन्त्रेण साम्राज्येनाभिषिञ्चामि तथा भवान्सुखेन मामभिषिञ्चतु ।।३७।।

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् राजन् ! यथाऽहं त्वा** त्वां **सवितुः** सकलैश्वर्यप्रापकस्य **देवस्य** स्वप्रकाशस्येश्वरस्य **प्रसवे** प्रसूते जगति **अश्विनोः** सूर्याचन्द्रमसोः प्रतापशीतलत्वाभ्यामिव **बाहुभ्यां** भुजाभ्यां **पूष्णः** प्राणस्य धारणाकर्षणाभ्यामिव **हस्ताभ्यां** कराभ्याम् **सरस्वत्यै** सरो=विज्ञानं विद्यते यस्यास्तस्याः **वाचो** वाण्याः **यन्तुः** नियन्तुः **अग्नेः** विद्युदादेः **यन्त्रेण** कलाकौशलतयोत्पादितेन **साम्राज्येन** यः समग्राया भूमेर्मध्ये सम्यक् राजते स सम्राट् तस्य भावेन सार्वभौमत्वेन **अभिषिञ्चामि, तथा भवान् सुखेन मामभिषिञ्चतु** ।। १८ । ३७ ।।

भाषार्थ—हे विद्वान् राजन् ! जैसे मैं—(त्वा) तुझे (सवितुः) सकल ऐश्वर्य के प्रापक, (देवस्य) स्वप्रकाश स्वरूप ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किए जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के प्रताप और शीतलता के समान (बाहुभ्याम्) भुजाओं से, (पूष्णः) प्राण के धारण-आकर्षण के समान (हस्ताभ्याम्) हाथों से, (सरस्वत्यै) विज्ञान वाली सरस्वती की (वाचः) वाणी से, (यन्तुः) नियन्ता के (यन्त्रेण) कला-कौशल से उत्पादित यन्त्र से, (अग्नेः) विद्युत् आदि के (साम्राज्येन) समग्र भूमि पर राजमान सम्राट् की सार्वभौमता से (अभिषिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूँ, वैसे—आप सुख से मुझे सींचो ।। १८ । ३७ ।।

[हे विद्वन् राजन् !...**अहं त्वा**...**सरस्वत्यै वाचो**...**अग्नेः साम्राज्येन अभिषिञ्चामि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। मनुष्यैः सर्वविद्याविद्भिर्भूत्वा सूर्यादिगुणकर्मसदृशस्वभावो राजा मन्तव्यः ।। १८ । ३७ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ।। मनुष्य—सब विद्याओं के वेत्ता होकर सूर्य आदि के गुण कर्म के सदृश स्वभाव वाले पुरुष को राजा मानें ।। १८ । ३७ ।।

भा० पदार्थः—अग्नेः=सूर्यादिगुणकर्मसदृशस्वभावस्य ।

भाष्यसार—**१. राजा कैसा होना चाहिए**—अश्विनोः—सूर्य के समान प्रतापी, चन्द्र के समान सोम्यतादि गुणवाला, अपनी दृढ़ भुजाओं के बल से प्राण के समान सबको आकृष्ट करने वाला, विज्ञानयुक्त वाणी से सबका नियन्ता और कला-कौशल की वृद्धि से सर्वत्र प्रसिद्ध पुरुष ही राजा होने योग्य है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । सूर्य चन्द्रादि के गुणों के समान राजा होना चाहिए ।। १८ । ३७ ।।

देवा: । **ऋतुविद्याविद्विद्वान्**=स्पष्टम् । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

पुना राजा किं कुर्य्यादित्याह ।।

फिर राजा क्या करे, यह उपदेश किया है ।।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौऽषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स नं ऽ इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।। ३८ ।।

पदार्थः—(ऋताषाट्) य ऋतं=सत्यं व्यवहारं सहते सः (**ऋतधामा**) ऋतं=यथार्थं धाम=स्थित्यर्थं स्थानं यस्य सः (**अग्निः**) पावकः (**गन्धर्वः**) यो गां=पृथिवीं धरति सः (**तस्य**) (**ओषधयः**) (**अप्सरसः**) या अप्सु सरन्ति ताः (**मुदः**) मोदन्ते यासु ताः (**नाम**) ख्यातिः (**सः**) (**नः**) अस्माकम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) ब्रह्मवित् कुलम् (क्षत्रम्) राजन्यकुलम् (**पातु**) रक्षतु (**तस्मै**) (**स्वाहा**) सत्या वाणी (**वाट्**) येन वहति सः (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**) सत्या क्रिया ।। ३८ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य ऋताषाडृतधामा गन्धर्वोऽग्निरिवास्ति तस्यौषधयोऽ प्सरसो मुदो नाम सन्ति स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहाऽस्तु ।। ३८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **य ऋताषाड्** य ऋतं=सत्यं व्यवहारं सहते सः **ऋतधामा** ऋतं=यथार्थं धाम=स्थित्यर्थं स्थानं यस्य सः **गन्धर्वः** यो गां=पृथिवीं धरति सः **अग्निः** पावकः **इवास्ति**, **तस्यौषधयोऽप्सरसः** या अप्सु सरन्ति ताः **मुदः** मोदन्ते यासु ताः **नाम** ख्यातिः **सन्ति**, **स नः** अस्माकम् **इदं ब्रह्म** ब्रह्मवित् कुलं **क्षत्रं** राजन्यकुलं **च पातु** रक्षतु, **तस्मै स्वाहा** सत्या वाणी **वाट्** येन वहति सः **ताभ्यः स्वाहा** सत्या क्रिया **अस्तु** ।। १८ । ३८ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो–(ऋताषाट्) ऋत=सत्य व्यवहार करने वाला, (ऋतधामा) ऋत=यथार्थ धाम=स्थान वाला, (गन्धर्वः) गौ=पृथिवी को धारण करने वाला, (अग्निः) अग्नि के समान पुरुष है उसकी (ओषधयः) ओषधियाँ (अप्सरसः) जल में गति करने वाली, (मुदः) प्रमोद प्रदान करने वाली (नाम) ख्याति रूप हैं, सो आप--(नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञ-कुल की और (क्षत्रम्) क्षत्रिय-कुल की (पातु) रक्षा करो । (तस्मै) सो आप के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी हो, (वाट्) सुख प्राप्त करने वाला पुरुष (ताभ्यः) उन ओषधियों के लिए (स्वाहा) सत्य आचरण करे ।। १८ । ३८ ।।

[य···**अग्निरिवास्ति, तस्यौषधयो···मुदो नाम सन्ति, स नः···क्षत्रं···पातु**]

भावार्थः—यो जनोऽग्निवच्छत्रुदाहक ओषधिवदानन्दकारी भवेत्, स एव सर्वं राज्यं रक्षितुं शक्नोति ।। १८ । ३८ ।।

भावार्थ—जो पुरुष अग्नि के समान शत्रुओं का दाहक तथा ओषधियों के समान आनन्द-कारी हो वही सब राज्य की रक्षा कर सकता है ।।

भा० पदार्थः — अग्निः=अग्निवच्छत्रुदाहकः । मुदः=आनन्दकारी । क्षत्रम्=सर्वं राज्यम् ।।

विनियोग—'ओम ऋताषाड्' इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी **(संस्कार-विधि विवाह०)** ।।

भाष्यसार—**राज-धर्म का वर्णन**—ऋताषाट्=सत्य व्यवहार करने वाला, अग्नि के समान तेजस्वी राजा गन्धर्वः=पृथिवी को धारण करने वाला हो। ओषधियों की तरह दुष्ट गुणादि को दूर करके सबको आनन्द देने वाला हो। ब्रह्मज्ञ तथा क्षत्रिय कुलों की राजा को सर्वतः रक्षा करनी चाहिए ॥ १८। ३८ ॥

देवाः। **सूर्यः**=**सविता**। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा क्या करे, यह फिर उपदेश किया है।

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस ऽ आयुवो नाम।
स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**सꣳहितः**) सर्वैर्भूतैर्द्रव्यैः सत्पुरुषैर्वा सह मिलितः (**विश्वसामा**) विश्वं=सर्वं साम सन्निधौ=समीपे यस्य सः (**सूर्यः**) सविता (**गन्धर्वः**) यो गां=पृथिवीं धरति सः (**तस्य**) (**मरीचयः**) किरणाः। **मृकणिभ्यामीचिः ॥ उ० ४। ७०॥** (**अप्सरसः**) या अप्स्वन्तरिक्षे सरन्ति=गच्छन्ति ताः (**आयुवः**) समन्तात् संयोजका वियोजकाश्च (**नाम**) ख्यातिः (**सः**) (**नः**) (**इदम्**) वर्त्तमानम् (**ब्रह्म**) विद्वत्-कुलम् (**क्षत्रम्**) शूरवीर-कुलम् (**पातु**) रक्षतु (**तस्मै**) (**स्वाहा**) सत्यां क्रियाम् (**वाट्**) वहनम् (**ताभ्यः**) अप्सरोभ्यः (**स्वाहा**) सुष्ठु क्रियया ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(**मरीचयः**) यहाँ 'मृकणिभ्यामीचिः' (उ० ४। ७०) इस उणादि सूत्र से 'मृङ्' धातु से 'ईचि' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! भवान् यः संहितो सूर्यो गन्धर्वोऽस्ति तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम सन्ति ताभ्यो विश्वसामा स्वाहा कार्यसिद्धिं करोतु यस्त्वं तस्मै स्वाहा प्रयुङ्क्षे स भवान् न इदं ब्रह्म क्षत्रं च वाट् पातु ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! भवान् यः सꣳहितः** सर्वैर्भूतद्रव्यैः सत्पुरुषैर्वा सह मिलितः **सूर्यः** सविता **गन्धर्वः** यो गां=पृथिवीं धरति सः **अस्ति, तस्य मरीचयः** किरणाः **अप्सरसः** या अप्स्वन्तरिक्षे सरन्ति=गच्छन्ति ता **आयुवः** समन्तात् संयोजका वियोजकाश्च **नाम** ख्यातिः **सन्ति, ताभ्यः** अप्सरोभ्यः **विश्वसामा** विश्वं=सर्वं साम सन्निधौ=समीपे यस्य सः **स्वाहा** सत्यां क्रियां **कार्यसिद्धिं करोतु।**

यस्त्वं तस्मै स्वाहा सुष्ठु क्रियया **प्रयुङ्क्षे, स भवान् न इदं** वर्त्तमानं **ब्रह्म** विद्वत्कुलं **क्षत्रं** शूरवीर-कुलं **च वाट्** वहनं **पातु** रक्षतु ॥ १८। ३९ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! आप—जो (संहितः) सब भौतिक द्रव्यों वा सत्पुरुषों के साथ मिला हुआ (सूर्यः) सूर्य (गन्धर्वः) गौ=पृथिवी को धारण करने वाला है, (तस्य) उसकी (मरीचयः) किरणें (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में गति करने वाली, (आयुवः) चारों ओर संयोजक और वियोजक (नाम) ख्याति रूप हैं; (ताभ्यः) उन किरणों से (विश्वसामा) सब साम=शान्ति को समीप रखने वाला पुरुष (स्वाहा) सत्य आचरण एवं कार्य-सिद्धि करे।

जो तू—उसके लिए (स्वाहा) उत्तम आचरण से प्रयोग=व्यवहार करता है सो आप (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) विद्वानों के कुल की और

(क्षत्रम्) शूरवीरों के कुल की (वाट्) प्राप्तिपूर्वक (पातु) रक्षा करो ॥ १८ । ३९ ॥

[हे विद्वन् ! भवान् यः'''सूर्यः'''ग्रस्ति तस्य मरीचयः'''सन्ति, ताभ्यः'''स्वाहा]

भावार्थः—मनुष्याः सूर्यकिरणान् युक्त्या सेवित्वा,

भावार्थ—मनुष्य—सूर्य-किरणों को युक्तिपूर्वक सेवन करके—

[ब्रह्म क्षत्रं च वाट् पातु]

विद्याशौर्ये वर्द्धयित्वा स्वप्रयोजनं साधयेयुः ॥

विद्या और शौर्य को बढ़ाकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करें ॥ १८ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=युक्त्या सेवनम् । ब्रह्म=विद्या । क्षत्रम्=शौर्यम् ॥

विनियोग—'ओं संहितो०' इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी (**संस्कारविधि विवाह०**) ॥

भाष्यसार—**राजधर्म का उपदेश**—संहितः=सत्पुरुषों की संगति करने वाला, सूर्य के समान पृथिवी को धारण करने वाला, और विश्वसामा=सबको शान्ति देने वाला राजा सत्याचरण करता हुआ, किरणों की तरह अच्छे पुरुषों को मिलावे और दुष्टों को वियुक्त किया करें और अपने राज्य में विद्वानों के कुल की और क्षत्रियों के कुल की सदा रक्षा किया करे ॥ १८ । ३९ ॥

देवाः । **चन्द्रमाः**=स्पष्टम् । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

पुनर्मनुष्यैश्चन्द्रादिभ्य उपकारो ग्राह्य इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को चन्द्र आदि लोकों से उपकार लेना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम ।
स नऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**सुषुम्णः**) सुशोभनं सुम्नं=सुखं यस्मात्सः (**सूर्यरश्मिः**) सूर्यस्य रश्मयः=किरणा दीप्तयो यस्मिन् सः (**चन्द्रमाः**) यस्सर्वान् चन्दत्याह्लादयति सः (**गन्धर्वः**) यो गाः=सूर्यकिरणान् धरति सः (**तस्य**) (**नक्षत्राणि**) अश्विन्यादीनि (**अप्सरसः**) आकाशगताः किरणाः (**भेकुरयः**) या भां=दीप्तिं कुर्वन्ति ताः । पृषोदरादिनाऽभीष्टरूपसिद्धिः (**नाम**) प्रसिद्धिः (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) अध्यापककुलम् (**क्षत्रम्**) दुष्टनाशकं कुलम् (**पातु**) रक्षतु (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**) ॥ ४० ॥

प्रमाणार्थ—(**भेकुरयः**) यहाँ 'पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्' (६ । ३ । १०९) से पृषोदर आदि से अभीष्ट रूप की सिद्धि करें ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः सूर्यरश्मिः सुषुम्णो गन्धर्वश्चन्द्रमा अस्ति यास्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम सन्ति स यथा न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तथा विधाय तस्मै वाट् स्वाहा ताभ्यः स्वाहा युष्माभिः संप्रयोज्या ॥ ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यः सूर्यरश्मिः सूर्यस्य रश्मयः किरणाः=दीप्तयो

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(सूर्यरश्मिः) सूर्य की रश्मि=किरण=दीप्ति वाला, (सुषुम्णः)

यस्मिन् सः **सुषुम्णः** सु=शोभनं सुम्नं=सुखं यस्मात्सः **गन्धर्वः** यो गाः=सूर्यकिरणान् धरति सः **चन्द्रमाः** यस्सर्वान् चन्दत्याह्लादयति सः **अस्ति, यास्तस्य नक्षत्राणि** अश्विन्यादीनि **अप्सरसः** आकाशगताः किरणाः **भेकुरयः** या भां=दीप्ति कुर्वन्ति ताः **नाम** प्रसिद्धिरूपाः **सन्ति, स यथा नः** अस्मभ्यम् **इदं ब्रह्म** अध्यापककुलं **क्षत्रं** दुष्टनाशकं कुलं **पातु** रक्षतु, **तथा विधाय तस्मै वाट् स्वाहा ताभ्यः स्वाहा युष्माभिः संप्रयोज्या** ॥ १८ । ४० ॥

उत्तम सुख का हेतु, (गन्धर्वः) गौ=सूर्य की किरणों को धारण करने वाला (चन्द्रमाः) सबको आह्लादित करने वाला चन्द्रमा है, जो (तस्य) उसके (नक्षत्राणि) अश्विनी आदि नक्षत्र तथा (अप्सरसः) आकाश-गत किरणें (भेकुरयः) भा=दीप्ति=प्रकाश करने वाली (नाम) प्रसिद्धि रूप हैं, जैसे वह (नः) हमारे लिए (इदम्) इस (ब्रह्म) अध्यापककुल की तथा (क्षत्रम्) दुष्टनाशक कुल की (पातु) रक्षा करे वैसा आचरण करके (तस्मै) उसके लिए (वाट्) सुख प्राप्ति के निमित्त (स्वाहा) सत्य वाणी तथा (ताभ्यः) उन ओषधियों के लिए (स्वाहा) सत्य क्रिया का तुम प्रयोग करो ॥ ४० ॥

[हे मनुष्याः ! यः···चन्द्रमा अस्ति···स···न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु]

भावार्थः—मनुष्यैश्चन्द्रादिभ्योऽपि तद्-विद्यया सुखं साधनीयम् ॥ १८ । ४० ॥

भावार्थ—मनुष्य चन्द्रमा आदि से भी उनकी विद्या के द्वारा सुख को सिद्ध करें ॥ ४० ॥

विनियोग—'ओं सुषुम्ण०' इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी (**संस्कारविधि** विवाह०) ॥

भाष्यसार—मनुष्य चन्द्र-गुणों का ज्ञान करें—गन्धर्व=सूर्य की सुषुम्णा नामक किरण को धारण करने वाला चन्द्रमा सुखों का हेतु है। और अपने शीतलतादि गुणों से सब को प्रसन्न करता है। उसकी आकाशगत किरणें ओषधियों को रस दान करती हैं। मनुष्यों को इन चन्द्र के गुणों को जान कर ब्रह्मबल शिक्षकादि और दुष्टों का नाश करने वाले क्षत्रबल की वृद्धि एवं रक्षा करनी चाहिए ॥ १८ । ४० ॥

देवाः । **वातः**=वायुः । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनर्मनुष्यैर्वातादिभ्य उपकारा ग्राह्या इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को पवन आदि से उपकार लेने चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो ऽ अप्सरस ऽ ऊर्जो नाम ।
स नं ऽ इदं ब्रह्मं क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**इषिरः**) येनेच्छन्ति सः (**विश्वव्यचाः**) विश्वस्मिन्=सर्वस्मिञ्जगति व्यचो=व्याप्तिर्यस्य सः (**वातः**) वाति=गच्छतीति (**गन्धर्वः**) यः पृथिवीं किरणांश्च धरति सः (**तस्य**) (**आपः**) जलानि प्राणा वा (**अप्सरसः**) य अन्तरिक्षे जलादौ च सरन्ति=गच्छन्ति ताः (**ऊर्जः**) बलपराक्रमप्रदाः (**नाम**) संज्ञा (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) सर्वेषां सत्योपदेशेन वर्द्धकं ब्रह्मकुलम् (**क्षत्रम्**) विद्यावर्धकं राजकुलम् (**पातु**) रक्षतु (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**) ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य इषिरो विश्वव्यचा गन्धर्वो वातोऽस्ति तस्य या आपोऽप्सरस

ऊर्जो नाम वर्त्तन्ते यथा स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु तथा यूयमाचरत तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा संप्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! य **इषिरः** येनेच्छन्ति सः **विश्वव्यचाः** विश्वस्मिन्=सर्वस्मिञ्जगति व्यचो=व्याप्तिर्यस्य सः **गन्धर्वः** यः पृथिवीं किरणांश्च धरति सः **वातः** वाति=गच्छतीति **अस्ति, तस्य या आपः** जलानि प्राणा वा **अप्सरसः** य अन्तरिक्षे जलादौ च सरन्ति=गच्छन्ति ताः **ऊर्जः** बलपराक्रमप्रदाः **नाम** संज्ञा **वर्त्तन्ते ।**

यथा स नः अस्मभ्यम् **इदं ब्रह्म** सर्वेषां सत्योपदेशेन वर्द्धकं ब्रह्मकुलं **क्षत्रं** विद्यावर्धकं राजकुलं **च पातु** रक्षतु, **तथा यूयमाचरत, तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा संप्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥ १८ । ४१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(इषिरः) इच्छा=कामना करने योग्य, (विश्वव्यचाः) विश्व=सब जगत् में व्याप्त, (गन्धर्वः) गौ=पृथिवी और किरणों को धारण करने वाला (वातः) गतिशील वायु है, (तस्य) उसके जो (आपः) जल वा प्राण (अप्सरसः) अन्तरिक्ष और जल आदि में गति करने वाले (ऊर्जः) बल और पराक्रम के प्रदाता (नाम) नाम हैं।

जैसे—(सः) वह (नः) हमारे लिए (इदम्) इस (ब्रह्म) सबको सत्य-उपदेश से बढ़ाने वाले ब्रह्म-कुल की और (क्षत्रम्) विद्या के वर्द्धक राजकुल की (पातु) रक्षा करे वैसे तुम भी करो, =और (तस्मै) उस वायु के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी तथा (वाट्) सुख प्राप्ति के निमित्त (ताभ्यः) उन जल वा प्राण आदि के लिए (ताभ्यः) सत्य आचरण का प्रयोग करो ॥ १८ । ४१ ॥

[हे मनुष्याः ! य······गन्धर्वो वातोऽस्ति तस्य या आपोऽप्सरस ऊर्जो नाम वर्त्तन्ते]

भावार्थः—शरीरे यावन्तश्चेष्टाबलपराक्रमा जायन्ते तावन्तो वायोः सकाशादेव जायन्ते ।

वायव एव प्राणरूपा गन्धर्वाः=सर्वधराः सन्तीति मनुष्यैर्वेद्यम् ॥ १८ । ४१ ॥

भावार्थ—शरीर में जितने चेष्टा, बल और पराक्रम उत्पन्न होते हैं वे सब वायु से ही उत्पन्न होते हैं ॥

वायु ही प्राणरूप गन्धर्व अर्थात् सबको धारण करने वाले हैं, ऐसा सब मनुष्यों का जानना योग्य है ॥ १८ । ४१ ॥

भा० पदार्थः—गन्धर्वः=सर्वधरः । वातः=वायुः । आपः=प्राणरूपाः । अप्सरसः=चेष्टानां जनकाः । ऊर्जः=बलपराक्रमयोर्जनकाः ।

विनियोग—'ओम् इषिरो०' इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी (**संस्कारविधि विवाह०**) ॥

भाष्यसार—**वायु के कार्य तथा उपकार**—गन्धर्वः=पृथिवी और किरणों को धारण करने वाला सर्वत्र व्याप्त वायु जल में तथा अन्तरिक्ष में गति कराने वाला है और सब प्रकार के बलों का दाता होने से इषिरः=कामना करने योग्य है। सत्याचरणादि के द्वारा वायु से प्राप्त बल और बलयुक्त मनुष्य सत्योपदेश से विद्या के वर्धक ब्रह्मकुल की और विद्यावर्धक क्षत्रकुल की रक्षा करें ॥ १८ । ४१ ॥ ●

देवाः । **यज्ञः**=**अग्निहोत्रम्** । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

मनुष्या यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्त्वित्याह ॥

मनुष्य यज्ञ का अनुष्ठान करें, यह उपदेश किया है ॥

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणाऽ अप्सरसं स्तावा नाम ।
स नं ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**भुज्युः**) भुज्यते सुखानि यस्मात्सः (**सुपर्णः**) शोभनानि पर्णानि=पालनानि यस्मात्सः (**यज्ञः**) य इज्यते=संगम्यते सः (**गन्धर्वः**) यो गां=वाणीं धरति सः (**तस्य**) (**दक्षिणाः**) दक्षन्ते=दीयन्ते सुपात्रेभ्यस्ताः (**अप्सरसः**) या अप्सु=प्राणेषु सरन्ति=प्राप्नुवन्ति ताः (**स्तावाः**) या स्तूयन्ते=प्रशस्यन्ते ताः (**नाम**) प्रसिद्धौ (**सः**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**इदम्**) (**ब्रह्म**) ब्राह्मणं=विद्वांसम् (**क्षत्रम्**) चक्रवर्त्तिनं राजानम् (**पातु**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**) ॥ ४२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो भुज्युः सुपर्णो गन्धर्वो यज्ञोऽस्ति तस्य या दक्षिणा अप्सरसः स्तावा नाम सन्ति स यथा न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु तथा यूयमप्यनुतिष्ठत तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा च प्रयुङ्ग्ध्वम् ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यो भुज्युः** भुज्यते सुखानि यस्मात्सः **सुपर्णः** शोभनानि पर्णानि=पालनानि यस्मात्सः **गन्धर्वः** यो गां=वाणीं धरति सः **यज्ञः** य इज्यते=संगम्यते सः **अस्ति, तस्य या दक्षिणाः** दक्षन्ते=दीयन्ते सुपात्रेभ्यस्ताः **अप्सरसः** या अप्सु=प्राणेषु सरन्ति=प्राप्नुवन्ति ताः **स्तावाः** या स्तूयन्ते=प्रशस्यन्ते ताः **नाम** प्रसिद्धौ **सन्ति** ।

स यथा नः अस्मभ्यम् **इदं ब्रह्म** ब्राह्मणं=विद्वांसं **क्षत्रं** चक्रवर्त्तिनं राजानं **च पातु, तथा यूयमप्यनुतिष्ठत । तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा च प्रयुङ्ग्ध्वम्** ॥ १८ । ४२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(भुज्युः) सुखों के भोग का निमित्त, (सुपर्णः) उत्तम पर्ण=पालन का हेतु, (गन्धर्वः) गौ=वाणी को धारण करने वाला, (यज्ञः) अग्निहोत्र आदि है, (तस्य) उसके जो (दक्षिणाः) सुपात्रों को दी जाने वाली दक्षिणाएँ (अप्सरसः) प्राणों में प्राप्त होने वाली (स्तावाः) प्रशंसा के योग्य (नाम) प्रसिद्ध हैं ।

जैसे—(सः) वह (नः) हमारे लिए (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण=विद्वान् की और (क्षत्रम्) चक्रवर्ती राजा की (पातु) रक्षा करे वैसा तुम भी अनुष्ठान=आचरण करो । (तस्मै) उस यज्ञ के लिए (स्वाहा) सत्यवाणी तथा (वाट्) सुख प्राप्ति के निमित्त (ताभ्यः) उन दक्षिणाओं के लिए (स्वाहा) सत्य आचरण का प्रयोग=व्यवहार करो ॥ १८ । ४२ ॥

[य ··· यज्ञोऽस्ति ··· स ··· न इदं ब्रह्म च पातु]

भावार्थः—ये मनुष्या अग्निहोत्रादियज्ञान् प्रत्यहं कुर्वन्ति ते सर्वस्य संसारस्य सुखानि वर्द्धयन्तीति बोध्यम् ॥ १८ । ४२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रतिदिन करते हैं वे सब संसार के सुखों को बढ़ाते हैं, ऐसा सबको जानना योग्य है ॥ १८ । ४२ ॥

भा० पदार्थः—यज्ञः=अग्निहोत्रादिः ।

विनियोग—'ओं भुज्युः सुपर्णः०' इन १२ बारह मन्त्रों से १२ बारह आज्याहुति देनी (**संस्कार-विधि विवाह**) ॥

भाष्यसार—यज्ञानुष्ठान से सुखों की प्राप्ति—गन्धर्वः=वाणी को धारण करने वाला सुपर्ण=उत्तम पालक, भुज्युः=सुखों के भोग का निमित्त यज्ञ है। उस यज्ञ में सुयोग्य विद्वानों को दक्षिणा दी जाती है, उससे ब्रह्म बल तथा क्षत्रबल की रक्षा होती है। अतः यज्ञानुष्ठान के लिए सत्यवाणी और सत्याचरण करना चाहिए ॥ १८ । ४२ ॥ ●

देवाः। **विश्वकर्मा=पुरुषार्थी जनः**। विराडार्षी जगती। निषादः ॥

पुनर्जनैः कथं भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्य कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऽ ऋक्सामान्यप्सरसऽएष्टयो नाम ।
स नं ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**विश्वकर्मा**) विश्वानि=सर्वाणि कर्माणि यस्य सः (**मनः**) ज्ञानसाधनमन्तःकरणम् (**गन्धर्वः**) येन वागादीन् धरति सः (**तस्य**) (**ऋक्सामानि**) ऋक् च सामानि च तानि (**अप्सरसः**) या अप्सु=व्याप्येषु प्राणादिपदार्थेषु सरन्ति=गच्छन्ति ताः (**एष्टयः**) समन्तादिष्टयो=विद्वत्पूजा सत्सङ्गो विद्यादानं च याभ्यस्ताः (**नाम**) संज्ञा (**सः**) (**नः**) (**इदम्**) (**ब्रह्म**) वेदम् (**क्षत्रम्**) धनुर्वेदम् (**पातु**) (**तस्मै**) (**स्वाहा**) (**वाट्**) (**ताभ्यः**) (**स्वाहा**) ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वकर्मा प्रजापतिर्मनुष्योऽस्ति तस्य मनो गन्धर्वऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम सन्ति यथा स न इदं ब्रह्म क्षत्रं च पातु तथा तस्मै स्वाहा सत्या वाणी वाट् धर्मप्रापणं ताभ्यः स्वाहा सत्यया क्रिययोपकारं च कुरुत ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यूयं यो विश्वकर्मा विश्वानि=सर्वाणि कर्माणि यस्य सः **प्रजापतिः** प्रजायाः स्वामी **मनुष्योऽस्ति, तस्य मनः** ज्ञानसाधनमन्तःकरणं **गन्धर्वः** येन वागादीन् धरति सः **ऋक्सामानि** ऋक् च सामानि च तानि **अप्सरसः** या अप्सु=व्याप्येषु प्राणादिपदार्थेषु सरन्ति=गच्छन्ति ताः **एष्टयः** समन्तादिष्टयो=विद्वत्पूजा सत्सङ्गो विद्यादानं च याभ्यस्ताः **नाम** संज्ञाः **सन्ति**।

यथा स न इदं ब्रह्म वेदं **क्षत्रं** धनुर्वेदं **च पातु, तथा तस्मै स्वाहा**=सत्या वाणी, **वाट्**=धर्मप्रापणं, **ताभ्यः स्वाहा**=सत्यया **क्रिययोपकारं च कुरुत** ॥ १८ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम—जो (विश्वकर्मा) सब कर्मों वाला, (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी मनुष्य है, (तस्य) उसके (मनः) ज्ञान का साधन अन्तःकरण, (गन्धर्वः) वाणी आदि को धारण करने वाला, (ऋक्सामानि) ऋक् और साम, (अप्सरसः) प्राण आदि पदार्थों में गति करने वाला, (एष्टयः) सब ओर से इष्टि=विद्वानों की पूजा, सत्सङ्ग और विद्यादान करने वाला (नाम) नाम हैं।

जैसे—(सः) वह (नः) हमारे लिए (इदम्) इस (ब्रह्म) वेद की और (क्षत्रम्) धनुर्वेद की (पातु) रक्षा करे, वैसे—(तस्मै) उस मनुष्य के लिए (स्वाहा) सत्य वाणी तथा (वाट्) धर्म-प्राप्ति पूर्वक (ताभ्यः) उसके मन आदि के लिए (स्वाहा) सत्य आचरण से उपकार करो ॥ १८ । ४३ ॥

[यो विश्वकर्मा···मनुष्योऽस्ति तस्य मनः, गन्धर्व···नाम सन्ति]

भावार्थः—ये मनुष्याः पुरुषार्थिनो मनस्विनो वेदविदो जायन्ते त एव जगद्भूषणाः सन्तीति वेद्यम् ॥ १८ । ४३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थी, मनस्वी और वेदज्ञ होते हैं वे ही जगत् के भूषण हैं; ऐसा समझें ॥ १८ । ४३ ॥

भा० पदार्थः—विश्वकर्मा=पुरुषार्थी । मनः=मनस्वी । गन्धर्वः=वेदविद् ॥

विनियोग—'ओं विश्वकर्मा' इन बारह मन्त्रों से बारह आज्याहुति देनी । (संस्कारविधि विवाह०)

भाष्यसार—**पुरुषार्थी मनुष्यों का कर्त्तव्य**—गन्धर्वः—वाणी (वेदज्ञान) आदि को धारण करने वाला, प्रजापतिः=प्रजा=सन्तान का पालक, विश्वकर्मा=पुरुषार्थी मनुष्य होता है । वह जितेन्द्रिय, ज्ञानवान् तथा सर्वत्र गति करने वाला होकर विद्वानों का सत्कार, उनका सत्सङ्ग और विद्या का दाता होता है । वह वेद-ज्ञान और धनुर्वेद का रक्षक होता है । अतः सत्याचरण करते हुए पुरुषार्थी बनने का सब प्रयत्न करें ॥ १८ । ४३ ॥

देवाः । **प्रजापतिः=गृहस्थः** । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

स नौ भुवनस्य पते प्रजापते यस्यं त ऽ उपरि गृहा यस्यं वेह ।
अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**सः**) विद्वान् (**नः**) अस्माकम् (**भुवनस्य**) गृहस्य (**पते**) स्वामिन् (**प्रजापते**) प्रजापालक (**यस्य**) (**ते**) तव (**उपरि**) ऊर्ध्वमुत्कृष्टे व्यवहारे (**गृहाः**) ये गृह्णन्ति ते गृहस्थादयः (**यस्य**) (**वा**) (**इह**) अस्मिन्संसारे (**अस्मै**) (**ब्रह्मणे**) वेदेश्वरविदे जनाय (**अस्मै**) (**क्षत्राय**) राजधर्मनिष्ठाय (**महि**) महत् (**शर्म**) गृहं सुखं वा (**यच्छ**) देहि (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे भुवनस्य पते प्रजापते ! इह यस्य ते तवोपरि गृहा वा यस्य सर्वाः शुभाः क्रियाः सन्ति स त्वं नोऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय स्वाहा महि शर्म यच्छ ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **भुवनस्य** गृहस्य **पते** स्वामिन् **प्रजापते** ! प्रजापालक ! **इह** अस्मिन् संसारे **यस्य ते**=**तवोपरि** ऊर्ध्वमुत्कृष्टे व्यवहारे **गृहाः** ये गृह्णन्ति ते गृहस्थादयः **वा यस्य सर्वाः शुभाः क्रियाः सन्ति, सः** विद्वान् **त्वं नः** अस्माकम् **अस्मै ब्रह्मणे** वेदेश्वरविदे जनाय **अस्मै क्षत्राय** राजधर्मनिष्ठाय **स्वाहा** सत्यया क्रियया **महि** महत् **शर्म** गृहं सुखं वा **यच्छ** देहि ॥ १८ । ४४ ॥

भाषार्थ—हे (भुवनस्य) घर के (पते) स्वामी (प्रजापते) प्रजा के पालक मनुष्य ! (इह) इस संसार में (ते) तेरे (उपरि) ऊर्ध्व=उत्कृष्ट व्यवहार में (गृहाः) गृहस्थ आदि या जिनकी सब शुभ क्रियाएँ=चेष्टाएँ हैं, (सः) वह विद्वान् तू—(नः) हमारे (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) वेद और ईश्वर के ज्ञाता तथा (अस्मै) इस (क्षत्राय) राजधर्म में निष्ठ पुरुष के लिए (स्वाहा) सत्य आचरण से (महि) महान् (शर्म) घर वा सुख (यच्छ) प्रदान कर ॥ १८ । ४४ ॥

[हे ··· प्रजापते ! ··· त्वम् ··· अस्मै ब्रह्मणे, अस्मै क्षत्राय स्वाहा, महि शर्म यच्छ]

भावार्थः—ये मनुष्या विद्वत्कुलं राजकुलं

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों के कुल और

च नित्यं वर्द्धयन्ति ते महत्सुखमाप्नुवन्ति ॥१८।४४॥ राजकुल को नित्य बढ़ाते हैं वे महान् सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १८ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—ब्रह्मणे=विद्वत्कुलाय । क्षत्राय=राजकुलाय । स्वाहा=नित्यं वर्द्धय ।

भाष्यसार—सद्गृहस्थ के कर्तव्य—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके प्रजा=सन्तान का पालक गृहस्थ स्त्री पुरुषों की सभी चेष्टाएँ सर्वोत्कृष्ट हों । वे सत्याचरणादि क्रियाओं से सब प्रकार के सुखों को बढ़ावें और वेद के विद्वान्, ईश्वर के भक्त तथा राजधर्म में कुशल पुरुषों को सब प्रकार के सुख देकर उनकी वृद्धि किया करें ॥ १८ । ४४ ॥ ●

शुनःशेपः । **प्रजापतिः**=**विद्वान्** । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्य कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**समुद्रः**) समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिन्त्सः (**असि**) (**नभस्वान्**) बहु नभो=जलं विद्यते यस्मिन् सः । नभ इत्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**आर्द्रदानुः**) य आर्द्राणां=गुणानां दानुर्दाता सः (**शंभूः**) यः शं=सुखं भावयति सः (**मयोभूः**) यो मय=आनन्दं भावयति सः (**अभि**) आभिमुख्ये (**मा**) माम् (**वाहि**) प्राप्नुहि (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**मारुतः**) मरुतां=पवनानामयं सम्बन्धी ज्ञाता (**असि**) (**मरुताम्**) विदुषाम् (**गणः**) समूहः (**शम्भूः**) शं=कल्याणं भावयति सः (**मयोभूः**) सुखं भावुकः (**अभि**) (**मा**) (**वाहि**) (**स्वाहा**) (**अवस्यूः**) आत्मनोऽव इच्छुः (**असि**) (**दुवस्वान्**) दुवः=प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः (**शंभूः**) (**मयोभूः**) (**अभि**) (**मा**) (**वाहि**) (**स्वाहा**) ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**नभस्वान्**) 'नभ' पद निघं० १ । १२ में उदक=जल-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं नभस्वानार्द्रदानुः समुद्र इवासि स स्वाहा शंभूर्मयोभूः सन्माभिवाहि यस्त्वं मारुतो मरुतां गण इवासि स स्वाहा शम्भूर्मयोभूस्सन्माभिवाहियस्त्वं दुवस्वानवस्यूरिवासि स तस्मात्स्वाहा शम्भूर्मयोभूः सन्माभिवाहि ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं **नभस्वान्** बहु नभो=जलं विद्यते यस्मिन् सः **आर्द्रदानुः** य आर्द्राणां गुणानां दानुर्दाता सः **समुद्रः** समुद्द्रवन्त्यापो यस्मिन्त्सः **इवासि, स स्वाहा** सत्यया क्रियया **शंभूः** यः शं=सुखं भावयति सः **मयोभूः** यो मय=आनन्दं भावयति सः **सन्मा** माम् **अभिवाहि** आभिमुख्येन प्राप्नुहि ।

यस्त्वं मारुतः मरुतां=पवनानामयं सम्बन्धी ज्ञाता **मरुतां** विदुषां **गणः** समूहः **इवासि, स स्वाहा**

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो तू—(नभस्वान्) बहुत नभः=जल वाले, (आर्द्रदानुः) आर्द्रता आदि गुणों के दाता (समुद्रः) समुद्र के समान (असि) है, सो तू—(स्वाहा) सत्य आचरण से (शम्भूः) शम्=सुख का उत्पादक (मयोभूः) मय=आनन्द का उत्पादक होकर (मा) मुझे (अभिवाहि) प्राप्त हो ।

जो तू—(मारुतः) मरुत्=पवनों का ज्ञाता, (मरुताम्) विद्वानों के (गणः) समूह के समान

सत्यया क्रियया **शम्भूः** शं=कल्याणं भावयति सः **मयोभूः** सुखं भावुकः **सन्मा माम् अभिवाहि** आभिमुख्येन प्राप्नुहि ।

(असि) है, सो तू—(स्वाहा) सत्य आचरण से (शम्भूः) शम्=कल्याण को उत्पन्न करने वाला, (मयोभूः) मय=सुख को उत्पन्न करने वाला होकर (मा) मुझे (अभिवाहि) प्राप्त हो ।

यस्त्वं दुवस्वान् दुवः=प्रशस्तं परिचरणं विद्यते यस्य सः **अवस्यूः** आत्मनोऽव इच्छुः **इवासि, स तस्मात् स्वाहा** सत्यया क्रियया **शम्भूर्मयोभूः सन्मा माम् अभिवाहि** आभिमुख्येन प्राप्नुहि ॥

जो तू-(दुवस्वान्) दुव=प्रशस्त सेवा वाला, (अवस्यूः) अपनी रक्षा के इच्छुक पुरुष के समान (असि) है, सो तू इसलिए (स्वाहा) सत्य आचरण से (शम्भूः) कल्याणकारी (मयोभूः) सुखकारी होकर (मा) मुझे (अभिवाहि) प्राप्त हो ॥

[हे विद्वंस्त्वं ... आर्द्रदानुः समुद्र इवासि, त्वं मारुतो मरुतां गण इवासि, अवस्यूरसि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये मनुष्याः समुद्रवद् गंभीरा रत्नाढ्या ऋजवो, वायुवद् बलिष्ठा, विद्वद्वत् परोपकारिणः, स्वात्मवत् सर्वेषां रक्षकास्सन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य समुद्र के समान गम्भीर रत्नाढ्य, ऋजु=सरल, वायु के समान बलिष्ठ, विद्वानों के समान परोपकारी, अपने समान सबके रक्षक हैं—

[स ... शम्भूर्मयोभूः सन् माऽभिवाहि]

त एव सर्वेषां कल्याणं सुखं च कर्तुं शक्नुवन्ति ॥ १८ । ४५ ॥

वे ही सबका कल्याण और सुख कर सकते हैं ॥ १८ । ४५ ॥

भा० पदार्थः—आर्द्रदानुः=ऋजुः । समुद्रः=समुद्रवद् गम्भीरो रत्नाढ्यः । मारुतः=वायुवद् बलिष्ठः । अवस्यूः=स्वात्मवत् सर्वेषां रक्षकः । शम्भूः=कल्याणकारी । मयोभूः=सुखकारी ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुष ही सच्चे सुख का दाता है**—नभस्वान्=प्रशस्त शान्ति आदि गुण युक्त, दयार्द्र, समुद्र के समान गम्भीर, वायु-विद्या का वेत्ता, और दूसरों की सेवा करने की इच्छा वाला विद्वान् पुरुष सत्याचरणादि शुभ कार्य करता हुआ सुखोत्पादक और आनन्दोत्पादक होता है। अतः आत्म-रक्षा के इच्छुक मनुष्य विद्वानों का संग किया करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। समुद्र की तरह गम्भीर, वायु के समान बलवान्, और अपने समान सब के रक्षक विद्वान् ही सुखों को बढ़ाते हैं ॥ १८ । ४५ ॥

शुनःशेपः । **अग्निः=विद्वान्** । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्विदुषा किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

यास्ते ऽ अग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः ।
ताभिर्नो ऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(याः) (ते) तव (अग्ने) परमेश्वर विद्वन् वा (सूर्ये) सवितरि प्राणे वा (रुचः) दीप्तयः प्रीतयो वा (दिवम्) प्रकाशम् (आतन्वन्ति) सर्वतो विस्तृणन्ति (रश्मिभिः) (ताभिः) रुग्भिः (नः) अस्मान् (अद्य) (सर्वाभिः) (रुचे) प्रीतिकराय (जनाय) (नः) अस्मान् (कृधि) कुरु ॥ ४६ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! याः सूर्ये रुचः सन्ति या रश्मिभिर्दिवमातन्वन्ति ताभिः सर्वाभिस्ते रुग्भिरद्य नः संयोजय रुचे जनाय च नस्कृधि ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**!=**विद्वन्** परमेश्वर विद्वन् वा ! **याः सूर्ये** सवितरि प्राणे वा **रुचः** दीप्तयः प्रीतयो वा **सन्ति, या रश्मिभिर्दिवं** प्रकाशम् **आतन्वन्ति** सर्वतो विस्तृणन्ति, **ताभिः** रुग्भिः **सर्वाभिस्ते रुग्भिरद्य नः** अस्मान् **संयोजय; रुचे** प्रीतिकराय **जनाय च नः** अस्मान् **कृधि** कुरु ॥ १८ । ४६ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) परमेश्वर वा विद्वान् ! जो (सूर्ये) सूर्य वा प्राण में (रुचः) दीप्तियाँ वा प्रीतियाँ हैं, जो (रश्मिभिः) किरणों से (दिवम्) प्रकाश को (आतन्वन्ति) सब ओर फैलाती हैं, (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब दीप्तियों वा प्रीतियों से (अद्य) आज (नः) हमें संयुक्त कर, और (रुचे) प्रीति करने वाले पुरुष के लिए (नः) हमें (कृधि) समर्थ बना ॥ १८ । ४६ ॥

[हे अग्ने=विद्वन् ! याः सूर्ये रुचः सन्ति ··· ताभिर्नः संयोजय]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यथा परमेश्वरः सूर्यादीनां प्रकाशकानामपि प्रकाशकोऽस्ति, तथाऽनूचानो विद्वान् विदुषामपि विद्याप्रदो भवति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जैसे—परमेश्वर सूर्य आदि प्रकाशकों का भी प्रकाशक है, वैसे अनूचान विद्वान् विद्वानों को भी विद्या प्रदान करने वाला होता है ।

[रुचे जनाय ··· नस्कृधि]

यथेश्वरोऽत्र जगति सर्वेषां सत्ये रुचिमसत्येऽरुचिं जनयति, तथा विद्वानप्याचरेत् ॥ १८ । ४६ ॥

जैसे—ईश्वर इस जगत् में सबकी सत्य में रुचि और असत्य में अरुचि उत्पन्न करता है वैसे विद्वान् भी आचरण करे ॥ १८ । ४६ ॥

भा० पदार्थः—रुचे=सत्ये रुचिजनकाय ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य**—अग्ने=अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् विद्या से प्रकाशमान होकर सूर्य के प्रकाश की तरह सबको प्रकाशित करे, और विद्या के प्रकाश से अविद्या के विनाश के लिए सदा पुरुषार्थ किया करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । अग्नि शब्द के परमेश्वर और विद्वान् दो अर्थ होने से श्लेषालङ्कार है ॥ १८ । ४६ ॥

शुनःशेपः । **बृहस्पतिः=ईश्वरो/विद्वान् वा** । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत्त बृहस्पते ॥४७॥

पदार्थः—(याः) (वः) युष्माकम् (देवाः) विद्वांसः (**सूर्ये**) चराचरात्मनि जगदीश्वरे (**रुचः**) प्रीतयः (**गोषु**) किरणेन्द्रियेषु दुग्धादिदात्रीषु वा (**अश्वेषु**) वह्नितुरङ्गादिषु (**याः**) (**रुचः**) प्रीतयः (**इन्द्राग्नी**) इन्द्रः प्रसिद्धो विद्युदग्निः पावकश्च (**ताभिः**) सर्वाभिः (**रुचम्**) प्रीतिम् (**नः**) अस्माकं **मध्ये** (**धत्त**) धरत (**बृहस्पते**) बृहतां पदार्थानां पते=पालकेश्वर ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे बृहस्पते ! देवा या वस्सूर्ये रुचो या गोष्वश्वेषु रुचः सन्ति या वैतेष्विन्द्राग्नी वर्तेते तौ च ताभिस्सर्वाभी रुग्भिर्नो रुचं धत्त ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे बृहस्पते !** बृहतां पदार्थानां पते=पालकेश्वर **देवाः** विद्वांसः **या वः** युष्माकं **सूर्ये** चराचरात्मनि जगदीश्वरे **रुचः** प्रीतयः **या गोषु** किरणेन्द्रियेषु दुग्धादिदात्रीषु वा **अश्वेषु** वह्नितुरङ्गादिषु **रुचः** प्रीतयः **सन्ति, या वैतेष्विन्द्राग्नी** इन्द्रः प्रसिद्धो विद्युदग्निः पावकश्च **वर्तेते तौ च ताभिः सर्वाभी रुग्भिर्नः** अस्माकं मध्ये **रुचं** प्रीतिं **धत्त** धरत ॥ १८ । ४७ ॥

भाषार्थ—हे (बृहस्पते) बड़े पदार्थों के पति=पालक ईश्वर ! (देवाः) विद्वान् लोग—जो (वः) तुम्हारी (सूर्ये) चराचर के आत्मा जगदीश्वर में (रुचः) प्रीतियाँ हैं, जो (गोषु) किरण, इन्द्रियाँ वा दुग्ध देने वाली गौओं में तथा (अश्वेषु) वह्नि=अग्नि और घोड़े आदि में (रुचः) प्रीतियाँ हैं, अथवा जो इन में (इन्द्राग्नी) इन्द्र=प्रसिद्ध विद्युत् और अग्नि हैं वे दोनों (ताभिः) उन (सर्वाभिः) सब दीप्तियों और प्रीतियों से (नः) हम में (रुचम्) प्रीति को (धत्त) स्थापित करे ॥ १८ । ४७ ॥

[हे बृहस्पते ! विद्वांसो या वः सूर्ये रुचः, या गोष्वश्वेषु रुचः सन्ति,···ताभि···नो रुचं धत्त]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः ॥ यथा परमेश्वरो गवादिपालने पदार्थविद्यायां च सर्वान् मनुष्यान् प्रेरयति, तथैव विद्वांसोऽप्याचरेयुः ॥ ४७॥

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलङ्कार है ॥ जैसे—परमेश्वर गौ आदि के पालन और पदार्थ-विद्या में सब मनुष्यों को प्रेरित करता है, वैसे ही विद्वान् भी आचरण करें ॥ १८ । ४७ ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य**—जैसे सब का पालक परमेश्वर चर और अचर जगत् का सूर्य=प्रेरक है, वैसे ही विद्वान् पुरुष गाय, घोड़े आदि पशुओं के पालन करने की, इन्द्रियों के संयम करने की, ज्ञानाग्नि से प्रदीप्त करके सबको रुचि पैदा करे ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । गो शब्द के गाय, इन्द्रियादि और बृहस्पति शब्द के परमेश्वर तथा विद्वान् अर्थ हैं ॥ १८ । ४७ ॥

शुनःशेपः । **बृहस्पतिः**=ईश्वरः/विद्वान् । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥४८॥

पदार्थः—(**रुचम्**) प्रेम (**नः**) अस्माकम् (**धेहि**) धर (**ब्राह्मणेषु**) ब्रह्मवित्सु (**रुचम्**) प्रीतिम् (**राजसु**) क्षत्रियेषु राजपुत्रेषु (**नः**) अस्माकम् (**कृधि**) कुरु (**रुचम्**) (**विश्येषु**) विक्षु=प्रजासु भवेषु वणिग्जनेषु (**शूद्रेषु**) सेवकेषु (**मयि**) (**धेहि**) (**रुचा**) प्रीत्या (**रुचम्**) प्रीतिम् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर वा विद्वँस्त्वं नो ब्राह्मणेषु रुचा रुचं धेहि नो राजसु रुचा रुचं कृधि विश्येषु शूद्रेषु रुचा रुचं मयि च रुचा रुचं धेहि ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः--हे जगदीश्वर वा **विद्वन् ! त्वं नः** अस्माकं **ब्राह्मणेषु** ब्रह्मवित्सु **रुचा**

भाषार्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! तू—(नः) हमारे (ब्राह्मणेषु) ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों में

प्रीत्या **रुचं** प्रेम **धेहि** धर। **नः** अस्माकं **राजसु** क्षत्रियेषु राजपुत्रेषु **रुचा** प्रीत्या **रुचं** प्रीतिं **कृधि** कुरु। **विश्येषु** विक्षु=प्रजासु भवेषु वणिग्जनेषु **शूद्रेषु** सेवकेषु **रुचा** प्रीत्या **रुचं मयि च रुचा** प्रीत्या **रुचं** प्रीतिं धेहि धर ॥ १८ । ४८ ॥

(रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रेम को (धेहि) स्थापित कर। (नः) हमारे (राजसु) क्षत्रिय राजपुत्रों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रेम को (कृधि) उत्पन्न कर। (विश्येषु) प्रजा में विद्यमान वणिक्=वैश्य जनों में तथा (शूद्रेषु) सेवक लोगों में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रेम को, और (मयि) मुझ में (रुचा) प्रीति से (रुचम्) प्रेम को (धेहि) स्थापित कर॥

[हे जगदीश्वर वा विद्वँस्त्वं नो ब्राह्मणेषु···रुचारुचं धेहि]

भावार्थः—अत्र श्लेषालङ्कारः। यथा परमेश्वरः पक्षपातं विहाय ब्राह्मणादिवर्णेषु समानां प्रीतिं करोति, तथैव विद्वांसोऽपि तुल्यां प्रीतिं कुर्युः।

भावार्थ—इस मन्त्र में श्लेष अलंकार है॥ जैसे—परमेश्वर पक्षपात को छोड़कर ब्राह्मण आदि वर्णों में तुल्य प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् भी तुल्य प्रीति करें।

[के नीचा इत्याह—]

ये हीश्वरगुणकर्मस्वभावाद् विरुद्धा वर्त्तन्ते ते सर्वे नीचास्तिरस्करणीया भवन्ति ॥ १८ । ४८ ॥

जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध वर्ताव करते हैं वे सब नीच तिरस्कार के योग्य हैं॥ १८ । ४८ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य**—विद्वान् पुरुष परमेश्वर की तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के प्रति निष्पक्ष होकर समान प्रीति किया करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। पूर्व मन्त्र से 'बृहस्पते' पद की अनुवृत्ति आती है, जिसके परमेश्वर और विद्वान् दो अर्थ हैं॥ १८ । ४८ ॥

शुनःशेपः। **बृहस्पतिः**=आप्तविद्वान्। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

मनुष्यैर्विद्वद्वदाचरणीयमित्याह॥

मनुष्यों को विद्वानों के तुल्य आचरण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है॥

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न ऽ आयुः प्रमोषीः॥ ४९॥

पदार्थः—(**तत्**) (**त्वा**) त्वाम् (**यामि**) प्राप्नोमि (**ब्रह्मणा**) वेदेन (**वन्दमानः**) स्तुवन् सन् (तत्) प्रेम (**आ**) (**शास्ते**) इच्छति (**यजमानः**) यो यजते सः (**हविर्भिः**) होतुमर्हैः संस्कृतैर्द्रव्यैः (**अहेडमानः**) सत्कृतः (**वरुण**) वर (**इह**) (**बोधि**) बुध्यस्व (**उरुशंस**) य उरून्=बहून् शंसति तत्सम्बुद्धौ (**मा**) निषेधे (**नः**) अस्मान् (**आयुः**) (**प्र**) (**मोषीः**) चोरयेः॥ ४९॥

अन्वयः—हे उरुशंस वरुण! ब्रह्मणा वन्दमानो यजमानोऽहेडमानो हविर्भिर्यदाशास्ते तदहं यामि यदुत्तममायुस्त्वाञ्चित्वाहं यामि तत्त्वमपि प्राप्नुहि त्वमिह तद्बोधि त्वं नोऽस्माकं तदायुर्मा प्रमोषीः॥ ४९॥

सपदार्थान्वयः—हे **उरुशंस**! य

भाषार्थ—हे (उरुशंस) उरु=बहुतों की

उरून्=बहून् शंसति तत्सम्बुद्धौ **वरुण** वर ! **ब्रह्मणा** वेदेन **वन्दमानः** स्तुवन् सन् **यजमानः** यो यजते सः **अहेडमानः** सत्कृतः **हविर्भिः** होतुमर्हैः संस्कृतैर्द्रव्यैः **यदाशास्ते** इच्छति **तदहं यामि** प्राप्नोमि ।

यदुत्तमायुस्त्वाञ्चित्वाऽहं यामि प्राप्नोमि **तत् त्वमपि प्राप्नुहि, त्वमिह तद् बोधि** बुध्यस्व, **त्वं नः**=**अस्माकं** अस्मान् **तदायुः मा न प्र+मोषीः** चोरयेः ॥ १८ । ४९ ॥

प्रशंसा करने वाले, (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् ! (ब्रह्मणा) वेद के द्वारा (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (यजमानः) यजमान (अहेडमानः) सत्कृत होकर (हविर्भिः) होम के योग्य संस्कृत=शुद्ध द्रव्यों से जो (आशास्ते) इच्छा करता है (तत्) उसे मैं (यामि) प्राप्त करूँ।

जिस उत्तम (आयुः) आयु को (त्वा) तेरी पूजा करके मैं (यामि) प्राप्त करता हूँ उसे तू भी प्राप्त कर, तू (इह) इस संसार में उस आयु को (बोधि) समझ, तू (नः) हमारी उस आयु को (मा) मत (प्र+मोषीः) चुरा ॥ १८ । ४९ ॥

[हे उरुशंस !···यदाशास्ते तदहं यामि]

भावार्थः—आप्ता विद्वांसो यदिच्छेयुस्तदेव मनुष्यैरेषितव्यम् ।

भावार्थ—आप्त विद्वान् लोग जिसकी इच्छा करें उसी की मनुष्य भी कामना करें ।

[अहेडमानः]

न केनापि केषाञ्चिद् विदुषामनादरः कार्यः ।

किसी पुरुष को किसी विद्वान् का अनादर नहीं करना चाहिए ।

[यदुत्तममायुः [त्वा] त्वां चित्वाहं यामि, तत् त्वमपि प्राप्नुहि]

न खलु स्त्रीपुरुषैरब्रह्मचर्यायुक्ताहारविहार-व्यभिचारातिविषयासक्त्यादिभिरायुः कदापि ह्रसनीयम् ॥ १८ । ४९ ॥

स्त्री और पुरुष—अब्रह्मचर्य, अयुक्त आहार-विहार, व्यभिचार, अत्यन्त विषयासक्ति आदि से आयु का कदापि ह्रास न करें ॥ १८ । ४९ ॥

भाष्यसार—**आप्त विद्वानों का सदाचार ही अनुकरणीय है**—सबसे प्रशंसा के योग्य, वेद के उत्तम विद्वान् जैसे यज्ञ के द्वारा जो-जो इच्छाएँ करते हैं, श्रेष्ठ कर्मों से सर्वत्र सत्कृत होकर उत्तम आयु को प्राप्त करते हैं और यजमान अर्थात् विद्वानों का आदर, ईश्वर की उपासना, सत्सङ्ग करके अच्छे कार्यों से आयु को क्षीण नहीं करते, वैसे ही सब मनुष्य आचरण किया करें ॥ १८ । ४९ ॥

शुनःशेपः । **सूर्यः**=**स्पष्टम्** । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

कीदृशा जनाः पदार्थान् शुन्धन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे लोग पदार्थों को शुद्ध करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स्व॒र्ण घ॒र्मः स्वाहा॑ । स्व॒र्णार्कः स्वाहा॑ । स्व॒र्ण शु॒क्रः स्वाहा॑ ।
स्व॒र्ण ज्योति॒ः स्वाहा॑ । स्व॒र्ण सूर्य॒ः स्वाहा॑ ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**स्वः**) सुखम् (**न**) इव (**घर्मः**) तापः (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**स्वः**) (**न**) इव (**अर्कः**) अग्निः (**स्वाहा**) (**स्वः**) (**न**) इव (**शुक्रः**) वायुः (**स्वाहा**) (**स्वः**) (**न**) इव (**ज्योतिः**) विद्युतो दीप्तिः (**स्वाहा**) (**स्वः**) (**न**) इव (**सूर्यः**) (**स्वाहा**) ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा स्वाहा स्वर्न घर्म स्वाहा स्वर्नार्कः स्वाहा स्वर्न शुक्रः स्वाहा स्वर्न ज्योतिः स्वाहा स्वर्न सूर्यः स्यात्तथा यूयमप्याचरत ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा **स्वाहा** सत्यया क्रियया **स्वः** सुखं **न** इव **घर्मः** तापः, **स्वाहा** सत्यया क्रियया **स्वः** सुखं **न** इव **अर्कः** अग्निः, **स्वाहा** सत्यया क्रियया **स्वः** सुखं **न** इव **शुक्रः** वायुः, **स्वाहा** सत्यया क्रियया **स्वः** सुखं **न** इव **ज्योतिः** विद्युतो दीप्तिः, **स्वाहा** सत्यया क्रियया **स्वः** सुखं **न** इव **सूर्यः स्यात्तथा यूयमप्याचरत** ॥ १८ । ५० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(स्वाहा) सत्य क्रिया=आचरण से (स्वः) सुख के (न) समान (घर्मः) ताप हो, (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के समान (अर्कः) अग्नि हो, (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (शुक्रः) वायु हो, (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (ज्योतिः) विद्युत् की दीप्ति=चमक हो, (स्वाहा) सत्य क्रिया से (स्वः) सुख के (न) समान (सूर्यः) सूर्य हो वैसा तुम भी आचरण करो ॥५०॥

[हे मनुष्याः ! यथा स्वाहा ··· स्वर्न शुक्रः ··· स्यात् तथा ··· आचरत]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यज्ञकारिणो मनुष्याः सुगन्धादिद्रव्यहोमैः सर्वान् वाय्वादिपदार्थान् शुद्धान् कर्त्तुं शक्नुवन्ति, येन रोगराहित्येन दीर्घायुः स्यात् ॥ १८ । ५० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। यज्ञ करने वाले मनुष्य सुगन्ध आदि द्रव्यों के होम से सब वायु आदि पदार्थों को शुद्ध कर सकते हैं, जिससे रोग-रहित होकर दीर्घ आयु हो ॥ १८।५० ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=सुगन्धादिद्राव्यहोमेन ।

भाष्यसार—१. **विद्वान् पुरुषों का कर्त्तव्य**—सूर्य के समान विद्यादि गुणों से प्रकाशमान और सबको सत्कर्मों में प्रेरणा देने वाले विद्वान् पुरुष स्वाहा=सुगन्धादि द्रव्यों के होम से ताप, अग्नि, वायु, विद्युत् की दीप्ति तथा सूर्य के प्रकाश को शुद्ध करके नीरोग रहते हैं और सुखों को भोगते हैं।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सब मनुष्य सूर्यादि की तरह सबको प्रकाशित करें और परोपकारादि श्रेष्ठ कार्य करें ॥ १८ । ५० ॥ ●

शुनःशेपः । **अग्निः**=**स्पष्टम्** । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृशा नराः सुखिनो भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे नर सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम् ।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳस्वो रुहाणा ऽ अधि नाकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) पावकम् (**युनज्मि**) सुगन्धैर्द्रव्यैर्युक्तं करोमि (**शवसा**) बलेन (**घृतेन**) आज्येन (**दिव्यम्**) दिवि=शुद्धगुणे भवम् (**सुपर्णम्**) सुष्ठुपालनपूर्त्तिकरम् (**वयसा**) व्याप्त्या (**बृहन्तम्**) महान्तम् (**तेन**) (**वयम**) (**गमेम**) गच्छेम । **अत्र बहुलम् छन्दसीति शपो लुक्** (**ब्रध्नस्य**) महतः (**विष्टपम्**) विष्टान्=प्रविष्टान् पाति येन तत् (**स्वः**) सुखम् (**रुहाणाः**) रोहन्तः (**अधि**) उपरिभावे (**नाकम्**) अविद्यमानदुःखम् (**उत्तमम्**) श्रेष्ठम् ॥ ५१ ॥

प्रमाणार्थ—(**गमेम**) गच्छेम । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७३) से 'शप्' विकरण-प्रत्यय का लुक् है ॥

अन्वयः—अहं वयसा बृहन्तं दिव्यं सुपर्णमग्निं शवसा घृतेन युनज्मि तेन स्वो रुहाणा वयं ब्रध्नस्य विष्टपमुत्तमं नाकमधिगमेम ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—**अहं वयसा** व्याप्त्या **बृहन्तं** महान्तं **दिव्यं** दिवि=शुद्धगुणे भवं **सुपर्णं** सुष्ठुपालनपूर्त्तिकरम् **अग्निं** पावकं **शवसा** बलेन **घृतेन** आज्येन **युनज्मि** सुगन्धैर्द्रव्यैर्युक्तं करोमि ।

तेन स्वः सुखं **रुहाणाः** रोहन्तः **वयं ब्रध्नस्य** महतः **विष्टपं** विष्टान्=प्रविष्टान् पाति येन तत् **उत्तमं** श्रेष्ठं **नाकम्** अविद्यमानदुःखम् **अधिगमेम** उपरिभावेन गच्छेम ॥ १८ । ५१ ॥

भाषार्थ—मैं—(वयसा) व्याप्ति से (बृहन्तम्) महान्, (दिव्यम्) शुद्धगुण में वर्तमान, (सुपर्णम्) उत्तम पालन और पूर्त्ति करने वाले (अग्निम्) पावक=अग्नि को (शवसा) बलदायक (घृतेन) घृत से (युनज्मि) एवं सुगन्ध द्रव्यों से युक्त करता हूँ ।

(तेन) उससे—(स्वः) सुख को (रुहाणाः) बढ़ाते हुए हम लोग—(ब्रध्नस्य) महान् (विष्टपम्) प्रविष्टों के रक्षक, (उत्तमम्) श्रेष्ठ (नाकम्) दुःख-रहित मोक्ष को (अधिगमेम) प्राप्त करें ॥ ५१ ॥

[**अहम् ··· अग्निं घृतेन युनज्मि**]

भावार्थः—ये मनुष्या अग्नौ सुसंस्कृतानि सुगन्ध्यादियुक्तानि द्रव्याणि प्रक्षिप्य वाय्वादिशुद्धिः द्वारा सर्वान् सुखयन्ति—

[**उत्तमं नाकमधिगमेम**]

तेऽत्युत्तमं सुखमाप्नुवन्ति ॥ १८ । ५१ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अग्नि में सुसंस्कृत=विशुद्ध, सुगन्धि आदि से युक्त द्रव्यों को डालकर वायु आदि की शुद्धि के द्वारा सबको सुखी करते हैं—

ते—अति-उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥

भा० पदार्थः—घृतेन=सुसंस्कृतेन सुगन्ध्यादियुक्तेन द्रव्येण । उत्तमम्=अत्युत्तमम् । नाकम्=सुखम् । अधिगमेम=आप्नुयाम ॥

भाष्यसार—**यज्ञ-कर्त्ता ही मोक्ष के अधिकारी**—जो यज्ञ विद्या के ज्ञाता, सुपर्ण=उत्तम पालन और पूर्त्ति करने वाले महान् अग्नि को पौष्टिक घृतादि पदार्थों से बढ़ाते हैं, वे सुखों और सुखों के साधनों को बढ़ाते हुए श्रेष्ठ दुःखरहित मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥ १८ । ५१ ॥

शुनःशेपः । **अग्निः**=**तेजस्वी विद्वान्** । विराडार्षी जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसे लोग सुखी होते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्या॒ᳪ रक्षाᳪस्यपहᳪस्यग्ने ।
ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऽ ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**इमौ**) (**ते**) तव (**पक्षौ**) परिग्रहौ कार्यकारणरूपौ (**अजरौ**) अविनाशिनौ (**पतत्रिणौ**) पतत्राण्यूर्ध्वगमनानि सन्ति ययोस्तौ (**याभ्याम्**) (**रक्षांसि**) दुष्टान् दोषान्वा (**अपहंसि**) दूरे प्रक्षिपसि (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमान तेजस्विन् विद्वन् (**ताभ्याम्**) (**पतेम**) गच्छेम (**सुकृताम्**) शोभनम-

कार्षुस्ते सुकृतस्तेषाम् (उ) वितर्के (**लोकम्**) द्रष्टव्यमानन्दम् (**यत्र**) (**ऋषयः**) वेदार्थविदः (**जग्मुः**) गतवन्तः (**प्रथमजाः**) प्रथमे=विस्तीर्णे ब्रह्मणि जाताः=प्रसिद्धाः (**पुराणाः**) पुरा अध्ययनसमये नवीनाः ॥ ५२॥

अन्वयः—हे अग्ने ! ते याविमौ पतत्रिणावजरौ पक्षौ स्तो याभ्यां रक्षांस्यपहंसि ताभ्यामु तं सुकृतां लोकं वयं पतेम यत्र प्रथमजाः पुराणा ऋषयो जग्मुः ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! अग्निरिव वर्त्तमान तेजस्विन् विद्वन् ! **ते** तव **याविमौ पतत्रिणौ** पतत्राण्यूद्र्ध्वगमनानि सन्ति ययोस्तौ **अजरौ** अविनाशिनौ **पक्षौ** परिग्रहौ कार्य्यकारणरूपौ **स्तः**, **याभ्यां रक्षांसि** दुष्टान् दोषान्वा **अपहंसि** दूरे प्रक्षिपसि, **ताभ्यामु** वितर्कपूर्वकं **तं सुकृतां** शोभनमकार्षुस्ते सुकृतस्तेषां **लोकं** द्रष्टव्यमानन्दं **वयं पतेम** गच्छेम । **यत्र प्रथमजाः** प्रथमे=विस्तीर्णे ब्रह्मणि जाताः=प्रसिद्धाः **पुराणाः** पुरा=अध्ययनसमये नवीनाः **ऋषयः** वेदार्थविदः **जग्मुः** गन्तवन्तः ॥ १८ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् ! (ते) तेरे जो (इमौ) ये (पतत्रिणौ) ऊपर की ओर गमन करने वाले (अजरौ) अविनाशी (पक्षौ) कार्य-कारण रूप दो पंख हैं, जिनसे (रक्षांसि) दुष्टों वा दोषों को (अपहंसि) तू दूर हटाता है, (ताभ्याम्) उनसे (उ) विचारपूर्वक उस (सुकृताम्) शुभकर्म करने वालों के (लोकम्) आनन्द को हम (पतेम) प्राप्त करें। (यत्र) जहाँ (प्रथमजाः) प्रथम=विस्तीर्ण ब्रह्म में प्रसिद्ध (पुराणाः) पुरा=पहले अध्ययन समय में नवीन (ऋषयः) वेदार्थ-वेत्ता लोग (जग्मुः) गए हैं ॥५२॥

[**हे अग्ने !···रक्षांसि अपहंसि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथाऽऽप्ता विद्वांसो दोषान् हत्वा धर्मादिसद्गुणान् गृहीत्वा—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—आप्त विद्वान् लोग दोषों को दूर कर धर्म आदि सद्गुणों को ग्रहण करके—

[**सुकृतां लोकं वयं पतेम**]

ब्रह्म प्राप्यानन्दन्ति, तथैतान् प्राप्य मनुष्यैरपि सुखयितव्यम् ॥ १८ । ५२ ॥

ब्रह्म को प्राप्त कर आनन्द करते हैं, वैसे इन्हें प्राप्त करके मनुष्य भी सुखी रहें ॥ १८ । ५२ ॥

भा० पदार्थः—लोकम्=ब्रह्म ।

भाष्यसार—१. **तेजस्वी विद्वान् शुभ लोकों को प्राप्त करते हैं**—अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित विद्वान्, प्रत्येक पदार्थ के कार्य-कारण भाव को जानकर दोषों का परित्याग करके, सुख-प्राप्ति के कारण शुभ-कर्मों को करते हुए आनन्द देने वाले उन लोकों को प्राप्त करते हैं, जहाँ पूर्वज वेदार्थ-वेत्ता प्राप्त होते रहे हैं ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। सब मनुष्य विद्वानों की तरह दोषों का परित्याग करें और शुभ कर्मों को करके सुख प्राप्त किया करें ॥ १८ । ५२ ॥

शुनःशेपः । **इन्दुः=विद्वान्** । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

विद्वद्भिः किं कार्यमित्याह ॥

विद्वानों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

इन्दुर्दक्षः श्येन ऽ ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः ।
महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽ आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसीः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**इन्दुः**) चन्द्र इव आर्द्रस्वभावः (**दक्षः**) बलचातुर्ययुक्तः (**श्येनः**) श्येन इव पराक्रमी (**ऋतावा**) ऋतस्य=सत्यस्य सम्बन्धो विद्यते यस्य सः । अत्रान्येषामपीति दीर्घः । सुपां सुलुगिति डादेशः (**हिरण्यपक्षः**) हिरण्यस्य=सुवर्णस्य पक्षः=परिग्रहो यस्य सः (**शकुनः**) शक्तिमान् (**भुरण्युः**) भर्त्ता (**महान्**) (**सधस्थे**) सह स्थाने (**ध्रुवः**) निश्चलः (**आ**) समन्तात् (**निषत्तः**) नितरां स्थितः (**नमः**) सत्करणम् (**ते**) तुभ्यम् (**अस्तु**) (**मा**) माम् (**मा**) निषेधे (**हिंसीः**) ताडयेः ॥ ५३ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋतावा**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ तथा 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से डा–आदेश है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! सभेश यस्त्वमिन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युर्महान् सधस्थ आनिषत्तो ध्रुवः सन्मा मा हिꣳसीस्तस्मै तेऽस्माकं नमोऽस्तु ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् सभेश ! **यस्त्वमिन्दुः** चन्द्र इव आर्द्रस्वभावः, **दक्षः** बलचातुर्ययुक्तः **श्येनः** श्येन इव पराक्रमी **ऋतावा** ऋतस्य=सत्यस्य सम्बन्धो विद्यते यस्य सः **हिरण्यपक्षः** हिरण्यस्य=सुवर्णस्य पक्षः=परिग्रहो यस्य सः **शकुनः** शक्तिमान् **भुरण्युः** भर्त्ता **महान् सधस्थे** सहस्थाने **आनिषत्तः** समन्तान्नितरां स्थितः **ध्रुवः** निश्चलः **सन्मा मां मा** न **हिंसीः** ताडयेः, **तस्मै ते** तुभ्यम् **अस्माकं नमः** सत्यकरणम् **अस्तु** ॥ १८ । ५३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् सभापति ! जो तू—(इन्दुः) चन्द्र के समान आर्द्र=कोमल स्वभाव वाला, (दक्षः) बल और चतुरता से युक्त, (श्येनः) श्येन=बाज पक्षी के समान पराक्रमी, (ऋतावा) ऋत=सत्य से सम्बन्ध रखने वाला, (हिरण्यपक्षः) हिरण्य=सुवर्ण को पक्ष=स्वीकार करने वाला, (शकुनः) शक्तिमान्, (भुरण्युः) भर्त्ता, (महान्) महान् है, (सधस्थे) सभा-स्थल में (आनिषत्तः) विराजमान (ध्रुवः) एवं निश्चल होकर (मा) मुझे (मा) मत (हिंसीः) ताडित कर, सो (तस्मै) तेरे लिए हमारा (नमः) नमस्कार=सत्कार (अस्तु) हो ॥ १८ । ५३ ॥

[हे विद्वन् ! ··· यस्त्वम्···सधस्थ आनिषत्तो ध्रुवः सन् मा मा हिंसीः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ इह जगति विद्वांसः स्थिरा भूत्वा सर्वान् विद्यार्थिनः सुशिक्षितान् कुर्युः, यतस्ते हिंसका न भवेयुः ॥१८॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ इस जगत् में विद्वान् लोग स्थिर=दृढ़ होकर सब विद्यार्थियों को सुशिक्षित करें, जिससे वे हिंसक न बनें ॥ १८ । ५३ ॥

भा० पदार्थः—ध्रुवः=स्थिरः ।

भाष्यसार—१. **विद्वद्धर्म का उपदेश**—इन्दुः=चन्द्र के समान सोम्यस्वभाव वाला सब प्रकार के सामर्थ्य वाला, कार्य करने में चतुर और सत्याचरण वाला विद्वान् हिरण्य=हितकारक पदार्थों को ग्रहण करते हुए निश्चल भाव से विद्यादि गुणों से विद्यार्थियों को इस प्रकार सुशिक्षित करें, जिससे वे विना ताडनादि के शिक्षा प्राप्त कर सकें और उनका विद्यार्थी सदा सत्कार किया करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् पुरुष चन्द्र के समान आर्द्र-स्वभाव वाले और श्येन के समान सामर्थ्य वाले होकर सदा दूसरों को शिक्षित किया करें ॥१८।५३॥

गालवः। **इन्दुः**=**विद्वान्**। भुरिगार्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

किं भूतो जनो दीर्घायुर्भवतीत्युपदिश्यते॥

कैसा मनुष्य दीर्घायु होता है, इस विषय का उपदेश किया है॥

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्। विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे॥ ५४॥

पदार्थः—(**दिवः**) प्रकाशस्य (**मूर्द्धा**) शिर इव वर्त्तमानः (**असि**) (**पृथिव्याः**) (**नाभिः**) बन्धनमिव (**ऊर्क्**) रसः (**अपाम्**) जलानाम् (**ओषधीनाम्**) (**विश्वायुः**) पूर्णायुः (**शर्म**) शरणम् (**सप्रथाः**) प्रथसा=प्रख्यया सह वर्त्तमानः (**नमः**) अन्नम् (**पथे**) मार्गाय॥ ५४॥

अन्वयः—हे विद्वन्! यस्त्वं दिवो मूर्द्धा पृथिव्या नाभिरपामोषधीनामूर्गिव विश्वायुः सप्रथा असि स त्वं पथे नमः शर्म च प्राप्नुहि॥ ५४॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन्! यस्त्वं दिवः** प्रकाशस्य **मूर्द्धा** शिर इव वर्त्तमानः, **पृथिव्याः नाभिः** बन्धनमिव, **अपां** जलानाम् **ओषधीनामूर्ग्** रसः **इव**, **विश्वायुः** पूर्णायुः **सप्रथाः** प्रथसा=प्रख्यया सह वर्त्तमानः **असि, स त्वं पथे** मार्गाय **नमः** अन्नं **शर्म** शरणं **च प्राप्नुहि**॥ १८। ५४॥

भाषार्थ—हे विद्वान्! जो तू—(दिवः) प्रकाश के (मूर्द्धा) शिर के समान है, (पृथिव्याः) पृथिवी की (नाभिः) नाभि=बन्धन के समान है, (अपाम्) जलों तथा (ओषधीनाम्) ओषधियों के (ऊर्क्) रस के समान है; (विश्वायुः) पूर्ण आयु वाला तथा (सप्रथाः) ख्याति सहित (असि) है, सो तू—(पथे) मार्ग के लिए (नमः) अन्न और (शर्म) शरण=आश्रय को प्राप्त कर॥ १८। ५४॥

[हे विद्वन्! **यस्त्वं दिवो मूर्द्धा, पृथिव्या नाभिः, अपामोषधीनामूर्ग् इव विश्वायुः**···**असि**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यो मनुष्यो न्यायवान्, क्षमावान्, औषधसेवी, युक्ताहारविहारो जितेन्द्रियो भवति, स शतायुर्जायते॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जो मनुष्य न्यायवान्, क्षमावान्, औषधों का सेवन करने वाला, युक्त आहार-विहार वाला और जितेन्द्रिय होता है वह सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है॥ १८। ५४॥

भा० पदार्थः—विश्वायुः=शतायुः।

भाष्यसार—**१. विद्वान् का कर्त्तव्य**—विद्वान् मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्णायु प्राप्त करने के लिए न्यायादि गुणों से सब से उत्कृष्ट, पृथिवी के समान सहनशील, जल की तरह शान्त स्वभाव वाले और ओषधियों के रस का सेवन करते हुए खान-पान में उचित व्यवहार करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। विद्वान् पुरुष शिर के समान उत्कृष्ट और पृथिवी आदि के समान क्षमावान् आदि गुणों वाला होकर शतायु होता है॥ १८। ५४॥

गालवः। **इन्दुः**=**विद्वान्**। आर्षी जगती। निषादः॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त ।
दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(विश्वस्य) सर्वस्य जगतः (मूर्द्धन्) मूर्द्धनि (अधि) उपरि (तिष्ठसि) (श्रितः) (समुद्रे) अन्तरिक्षवद् व्याप्ते परमेश्वरे (ते) तव (हृदयम्) (अप्सु) प्राणेषु (आयुः) जीवनम् (अपः) प्राणान् (दत्त) ददासि (उदधिम्) उदकधारकं सागरम् (भिन्त) भिनत्सि (दिवः) प्रकाशात् (पर्जन्यात्) मेघात् (अन्तरिक्षात्) आकाशात् (पृथिव्याः) भूमेः (ततः) तस्मात् (नः) (वृष्ट्या) (अव) रक्ष ॥ ५५ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं विश्वस्य मूर्द्धन् श्रितः सूर्य इवाधितिष्ठसि यस्य ते समुद्रे हृदयमप्स्वायुरस्ति स त्वमपो दत्तोदधिं भिन्त यतः सूर्यो दिवोऽन्तरिक्षात्पर्जन्यात्पृथिव्या वृष्ट्या सर्वानवति ततो नोऽस्मानव ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वं **विश्वस्य** सर्वस्य जगतः **मूर्द्धन्** मूर्द्धनि **श्रितः सूर्य इवाधि+तिष्ठसि, यस्य ते** तव **समुद्रे** अन्तरिक्षवद्व्याप्ते परमेश्वरे **हृदयमप्सु** प्राणेषु **आयुः** जीवनम् **अस्ति, स त्वमपः** प्राणान् **दत्त** ददासि, **उदधिं** उदकधारकं सागरं **भिन्त** भिनत्सि ।

यतः सूर्यो दिवः प्रकाशाद् **अन्तरिक्षाद्** आकाशात् **पर्जन्यात्** मेघात् **पृथिव्याः** भूमेः **वृष्ट्या सर्वानवति, ततः** तस्मात् **नः**=**अस्मानव** रक्ष ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो तू—(विश्वस्य) सब जगत् के (मूर्द्धन्) शिर पर (श्रितः) स्थित होकर सूर्य के समान (अधि+तिष्ठसि) ऊपर विराजमान है, जो (ते) तेरा—(समुद्रे) आकाश के समान व्याप्त परमेश्वर में (हृदयम्) हृदय है, (अप्सु) प्राणों में (आयुः) जीवन है, सो तू (अपः) प्राणों को (दत्त) देता है, (उदधिम्) उदक=जल के धारक सागर का (भिनत्सि) भेदन करता है ।

जिससे सूर्य—(दिवः) प्रकाश से (अन्तरिक्षात्) आकाश से (पर्जन्यात्) मेघ=बादल से (पृथिव्याः) भूमि से (वृष्ट्या) वर्षा से सबकी रक्षा करता है (ततः) उससे (नः) हमारी (अव) रक्षा कर ॥

[हे विद्वन् ! यतस्त्वं···सूर्य इवाधितिष्ठसि, यतः सूर्यो···वृष्ट्या सर्वानवति, ततो नो=ऽस्मानव]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः सूर्यवत् सुखवर्षका उत्तमाचारिणो भवन्ति, ते सर्वान् सुखिनः कर्तुं शक्नुवन्ति ॥ ५५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य सूर्य के समान सुखों की वर्षा करने वाले और उत्तम आचरण वाले होते हैं वे सबको सुखी कर सकते हैं ॥ १८ । ५५ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् ही सब सुखों के दाता हैं**—जो विद्वान् सूर्य के समान विद्यादि गुणों से सर्वोपरि हैं, परमेश्वर के उपासक हैं, प्राण-शक्ति से सम्पन्न हैं, वे उसी प्रकार दूसरों को प्राण-शक्ति तथा सुख देते हैं, जैसे सूर्य प्रकाश से और आकाशस्थ मेघ के द्वारा वर्षा से सबको सुख देता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । सूर्य के समान सुखों की वर्षा करने वाले विद्वान् सबको सुखी कर सकते हैं ॥ १८ । ५५ ॥

गालवः । **यज्ञः=विद्वान्** । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

इ॒ष्टो य॒ज्ञो भृगु॑भिराशी॒र्दा वसु॑भिः । तस्य॑ न ऽ इ॒ष्टस्य॑ प्री॒तस्य॑ द्रवि॑णे॒हाग॑मेः ।। ५६ ।।

पदार्थः—(**इष्टः**) कृतः (**यज्ञः**) यष्टुमर्हः (**भृगुभिः**) परिपक्वविज्ञानैः (**आशीर्दा**) य इच्छासिद्धिं ददाति (**वसुभिः**) प्राथमकल्पिकैर्विद्वद्भिः (**तस्य**) (**नः**) अस्माकम् (**इष्टस्य**) (**प्रीतस्य**) कमनीयस्य (**द्रविण**) धनम् । **अत्र सुपां सुलुगिति विभक्तेर्लुक्** (**इह**) संसारे (**आ, गमेः**) समन्ताद् गच्छ । **वाच्छन्दसि सर्वे विधयो भवन्तीति छत्वाभावः ।। ५६ ।।**

प्रमाणार्थ—(**द्रविण**) धनम् । यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) इस सूत्र से विभक्ति का लुक् है । (**आ, गमेः**) समन्ताद् गच्छ । 'वा छन्दसि सर्वे विधयो भवन्ति' इस नियम से यहाँ 'छत्व' का अभाव है ।।

अन्वयः—हे विद्वन् ! यो वसुभिर्भृगुभिराशीर्दा यज्ञ इष्टस्तस्येष्टस्य प्रीतस्य यज्ञस्य सकाशादिह त्वन्नो द्रविण आ गमेः ।। ५६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यो **वसुभिः** प्राथमकल्पिकैर्विद्वद्भिः **भृगुभिः** परिपक्वविज्ञानैः **आशीर्दाः** य इच्छासिद्धिं ददाति **यज्ञः** यष्टुमर्हः **इष्टः** कृतः **तस्येष्टस्य प्रीतस्य** कमनीयस्य यज्ञस्य **सकाशादिह** संसारे **त्वन्नः** अस्माकं **द्रविण** धनं **आ-गमेः** समन्ताद् गच्छ ।। १८ । ५६ ।।

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो—(वसुभिः) प्रथम कोटि के विद्वानों (भृगुभिः) तथा परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों के द्वारा (आशीर्दाः) इच्छा-सिद्धि को देने वाला (यज्ञः) यज्ञ (इष्टः) किया है, उस (इष्टस्य) किए हुए (प्रीतस्य) कामना करने योग्य यज्ञ से (इह) इस संसार में तू (नः) हमारे (द्रविण) धन को (आ+गमेः) प्राप्त कर ।। ५६ ।।

[**हे विद्वन् ! ··· यज्ञस्य सकाशादिह त्वं नो द्रविण आगमेः**]

भावार्थः—ये विद्वद्वत् प्रयतन्ते त इह पुष्कलां श्रियमाप्नुवन्ति ।। १८ । ५६ ।।

भावार्थ—जो विद्वानों के समान प्रयत्न करते हैं वे यहाँ पुष्कल श्री=धन को प्राप्त होते हैं ।। १८ । ५६ ।।

भा० पदार्थः—द्रविण=पुष्कलां श्रियम् । आगमेः=आप्नुहि ।

भाष्यसार—**विद्वान् का व्यवहार इष्ट-सुखों का दाता है**—जो प्रथम कोटि के विद्वान् हैं, जिनका ज्ञान पूर्ण परिपक्व है, वे कामनाओं को पूर्ण करने वाले, सबसे कामना करने योग्य यज्ञादि शुभ कार्य करते हैं । उनसे श्रेष्ठ-धनों की प्राप्ति होने से इष्टसुख प्राप्त होता है । इसी प्रकार सब मनुष्य शुभ आचरण करके पर्याप्त धन को प्राप्त करें ।। १८ । ५६ ।।

गालवः । **अग्निः=विद्वान्, पावको वा** । निचृदार्षी गायत्री । ऋषभः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ।।

इ॒ष्टो ऽ अ॒ग्निराहु॑तः पिपर्त्तु न ऽ इ॒ष्टꣳ ह॒विः । स्व॒गेदं दे॒वेभ्यो॒ नमः॑ ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**इष्टः**) सत्कृत आहुतिभिर्वर्धितो वा (**अग्निः**) सभाद्यध्यक्षो विद्वान् पावको वा (**आहुतः**) समन्तात् तर्पितो हुतो वा (**पिपर्त्तु**) पालयतु पूरयतु वा (**नः**) अस्मानस्माकं वा (**इष्टम्**) सुखं तत्साधनं वा (**हविः**) हविषा=संस्कृतद्रव्येण विभक्तिव्यत्ययः (**स्वगा**) यत्स्वान् गच्छति=प्राप्नोति तत् स्वगा । अत्र विभक्तेः सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**इदम्**) (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**नमः**) अन्नं सत्कारो वा ॥ ५७ ॥

प्रमाणार्थ—(**हविः**) हविषा । यहाँ विभक्ति का व्यत्यय है अतः तृतीया के अर्थ में प्रथमा है । (**स्वगा**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से विभक्ति को आकार आदेश है ॥

अन्वयः—हविराहुत इष्टोऽग्निर्न इष्टं पिपर्त्तु नः पिपर्त्तु वा इदं स्वगा नमो देवेभ्योऽस्तु ॥

(विद्वत्पक्षे)

सपदार्थान्वयः—हविः हविषा=संस्कृतद्रव्येण **आहुतः** समन्तात् तर्पितः **इष्टः** सत्कृतः **अग्निः** सभाध्यक्षो विद्वान् **नः** अस्मान् **इष्टं** सुखं **पिपर्त्तु** पालयतु **इदं स्वगा** यत्स्वान् गच्छति=प्राप्नोति तत् स्वगा **नमः** अन्नं **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **अस्तु** ॥ १८ । ५७ ॥

भाषार्थ—(हविः) हवि=संस्कृत द्रव्य के द्वारा (आहुतः) सब ओर से तृप्त किया हुआ (इष्टः) सत्कृत किया गया (अग्निः) सभादि का अध्यक्ष विद्वान् (नः) हमारा (इष्टम्) सुखपूर्वक (पिपर्त्तु) पालन करे तथा (इदम्) यह (स्वगा) स्व=अपने जनों को प्राप्त होने वाला (नमः) उत्तम अन्न (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (अस्तु) हो ॥ १८ । ५७ ॥

(पावक-पक्षे)

सपदार्थान्वयः—हविः हविषा=संस्कृतद्रव्येण **आहुतः** समन्ताद् हुतः **इष्टः** आहुतिभिर्वर्धितः **अग्निः** पावकः **नः** अस्माकम् **इष्टं** सुखसाधनं **पिपर्त्तु** पूरयतु **इदं स्वगा** यत्स्वान् गच्छति=प्राप्नोति तत् स्वगा **नमः** सत्कारो **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **अस्तु** ॥ १८ । ५७ ॥

भाषार्थ—(हविः) हविः=संस्कृत द्रव्य के द्वारा (आहुतः) सब प्रकार से आहुति दिया गया (इष्टः) आहुतियों से बढ़ाया गया (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे (इष्टम्) सुख के साधनों को (पिपर्त्तु) पूर्ण करे तथा (इदम्) यह (स्वगा) अपने जनों को प्राप्त होने वाला (नमः) सत्कार (देवेभ्यः) विद्वानों के लिए (अस्तु) हो ॥ १८ । ५७ ॥

[आहुत···अग्निर्न इष्टं पिपर्त्तु]

भावार्थः—मनुष्यैरग्नौ यत् सुसंस्कृतं द्रव्यं हूयते,

भावार्थ—मनुष्य जिस उत्तम संस्कृत=शुद्ध द्रव्य का अग्नि में होम करते हैं,

[नमो देवेभ्योऽस्तु]

यदिह बह्वन्नकारि जायतेऽतस्तेन विद्वदादीनां सत्कारः कर्त्तव्यः ॥ १८ । ५७ ॥

जो यहाँ बहुत अन्न उत्पन्न करने वाला होता है, अतः उस अन्न से विद्वानों का सत्कार करें ॥५७॥

भाष्यसार—**विद्वानों का कर्त्तव्य**—विद्वान् मनुष्य संस्कृत द्रव्यों के द्वारा यज्ञादि करके प्रभूत-मात्रा में अन्नादि सुखद पदार्थों को उत्पन्न किया करें और अन्नादि पदार्थों से सदा विद्वानों का सत्कार किया करें ॥ १८ । ५७ ॥

विश्वकर्मा । **अग्निः**=विद्वान् । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

अथ विद्वद्विषये सत्यनिर्णयमाह ॥

विद्वान् सत्य का निर्णय कैसे करें, यह उपदेश किया है ॥

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा ।

तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽ ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(यत्) (आकूतात्) उत्साहात् (समसुस्रोत्) सम्यक् प्राप्नुयात् । अत्र बहुलं छन्दसीति शपः श्लुः (हृदः) आत्मनः (वा) प्राणात् (मनसः) संकल्पविकल्पात्मकात् (वा) बुद्ध्यादेः (संभृतम्) सम्यग् धृतम् (चक्षुषः) प्रत्यक्षादेरिन्द्रियोत्पन्नात् (वा) श्रोत्रादिभ्यः (तत्) (अनुप्रेत) आनुकूल्येन प्राप्नुत (सुकृताम्) मुमुक्षूणाम् (उ) (लोकम्) दर्शनसुखसंघातं मोक्षपदं वा (यत्र) यस्मिन् (ऋषयः) वेदविद्यापुरस्सराः परमयोगिनः (जग्मुः) गताः (प्रथमजाः) अस्मदादौ जाताः (पुराणाः) अस्मदपेक्षायां प्राचीनाः ॥ ५८ ॥

प्रमाणार्थ—(समसुस्रोत्) सम्यक् प्राप्नुयात । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७३) से 'शप्' प्रत्यय को 'श्लु' आदेश है ॥

अन्वयः—हे सत्यासत्यजिज्ञासवो जनाः ! यूयं यदाकूताद्धृदो वा मनसो वा चक्षुषो वा संभृतमस्ति तत्समसुस्रोदतः प्रथमजाः पुराणा ऋषयो यत्र जग्मुस्तं सुकृतामु लोकमनुप्रेत ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे सत्यासत्यजिज्ञासवो जनाः ! यूयं यदाकूताद् उत्साहाद् हृदः आत्मनः वा प्राणात् मनसः संकल्पविकल्पात्मकात् वा बुद्ध्यादेः चक्षुषः प्रत्यक्षादेरिन्द्रियोत्पन्नाद् वा श्रोत्रादिभ्यः सम्भृतं सम्यग् धृतम् अस्ति, तत्समसुस्रोत् सम्यक् प्राप्नुयात । अतः प्रथमजाः अस्मदादौ जाताः पुराणाः अस्मदपेक्षायां प्राचीनाः ऋषयः वेदविद्यापुरस्सराः परमयोगिनः यत्र यस्मिन् जग्मुः गताः, तं सुकृतां मुमुक्षूणाम् उ लोकं दर्शनसुखसंघातं मोक्षपदं वा अनुप्रेत आनुकूल्येन प्राप्नुत ॥ १८ । ५८ ॥

भाषार्थ—हे सत्य और असत्य के जिज्ञासु लोगो ! तुमने (यत्) जो (आकूतात्) उत्साह से, (हृदः) आत्मा से, (वा) अथवा प्राण से, (मनसः) संकल्प-विकल्प आत्मक मन से, (वा) अथवा बुद्धि आदि से, (चक्षुषः) इन्द्रियों से उत्पन्न प्रत्यक्ष आदि से (वा) अथवा श्रोत्र आदि से (सम्भृतम्) सम्यक् धारण किया है, (तत्) उसको (समसुस्रोत्) उत्तम रीति से प्राप्त करो, इससे—(प्रथमजाः) हमसे प्रथम उत्पन्न (पुराणाः) हमारी अपेक्षा प्राचीन, (ऋषयः) वेद-विद्या के वेत्ता परम योगी लोग (यत्र) जहाँ (जग्मुः) गए हैं उस (सुकृताम्) मुमुक्षु लोगों के (उ) ही (लोकम्) दर्शन-सुख के समूह वा मोक्ष-पद को (अनुप्रेत) सुखपूर्वक प्राप्त करो ॥ १८।५८ ॥

[हे सत्यासत्यजिज्ञासवो जनाः ! यूयं ··· ऋषयो यत्र जग्मुस्तं सुकृतामु लोकमनुप्रेत]

भावार्थः—यदा मनुष्याः सत्यासत्यनिर्णयं जिज्ञासेयुस्तदा यद्यदीश्वरगुणकर्मस्वभावात् सृष्टिक्रमात्—

भावार्थ—जब मनुष्य सत्य और असत्य का निर्णय जानना चाहें तब जो जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव, सृष्टिक्रम,—

[चक्षुषो वा, ऋषयः, हृदो वा मनसो वा]

प्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्यः, आप्ताचाराद्, आत्म-

प्रत्यक्ष आदि प्रमाण, आप्त जनों का आचरण,

मनोभ्यामनुकूलं स्यात्, तत् सत्यमितरदसत्यमिति निश्चिनुयुः ।

आत्मा और मन के अनुकूल हो उसे सत्य और दूसरा असत्य है ऐसा निश्चय करें ॥

[तात्पर्यमाह—]

य एवं धर्मं परीक्ष्याचरन्ति तेऽतिसुखं प्राप्नुवन्ति ॥ १८ । ५८ ॥

जो इस प्रकार धर्म की परीक्षा करके आचरण करते हैं वे अति-सुख को प्राप्त होते हैं ॥१८ । ५८॥

भा० पदार्थः—चक्षुषः=प्रत्यक्षादिप्रमाणेभ्यः ।

भाष्यसार—विद्वान् सत्याऽसत्य का निर्णय कैसे करें—विद्वान् मनुष्य उत्साह से जैसा आत्मा, हृदय, मन और नेत्रादि इन्द्रियों से जाना अथवा देखा हो, उसे वैसा ही कहें और स्वीकार करें । इससे सत्य और असत्य का निर्णय हो सकता है । और चक्षुषः=प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्य असत्य का निर्णय किया करें । और जैसे पूर्वज विद्वान् ऋषियों ने माना हो, वैसा ही सदा मानें ॥ १८ । ५८ ॥

विश्वकर्मा । **प्रजापतिः**=ईश्वरः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् सत्य का निर्णय कैसे करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः ।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽ अत्र तꣳ स्म जानीत परमे व्योमन् ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**एतम्**) पूर्वोक्तम् (**सधस्थ**) समानस्थान (**परि**) सर्वतः (**ते**) तुभ्यम् (**ददामि**) (**यम्**) (**आवहात्**) समन्तात्प्राप्नुयात् (**शेवधिम्**) शेवं=सुखं धीयते यस्मिँस्तं निधिम् (**जातवेदाः**) जातप्रज्ञो=वेदार्थवित् (**अन्वागन्ता**) धर्ममन्वागच्छति (**यज्ञपतिः**) यज्ञस्य पालक इव वर्तमानः (**वः**) युष्मभ्यम् (**अत्र**) (**तम्**) (**स्म**) एव (**जानीत**) (**परमे**) प्रकृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्न्याकाशे ॥ ५९ ॥

अन्वयः—हे ईश्वर जिज्ञासवो मनुष्याः ! हे सधस्थ ! च जातवेदा यज्ञपतिर्यं शेवधिमावहादेतमत्र परमे व्योमन् व्याप्तं परमात्मानमहं ते यथा परिददाम्यन्वागन्ताऽहं यं वो युष्मभ्यमुपदिशानि स्म तं यूयं विजानीत ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे ईश्वर-जिज्ञासवो **मनुष्याः** ! हे **सधस्थ** ! समानस्थान ! **च** **जातवेदाः** जातप्रज्ञो=वेदार्थवित् **यज्ञपतिः** यज्ञस्य पालक इव वर्तमानः **यं शेवधिं** शेवं=सुखं धीयते यस्मिँस्तं निधिम् **आवहात्** समन्तात्प्राप्नुयात्, **एतं** पूर्वोक्तम् **अत्र परमे** प्रकृष्टे **व्योमन्** व्योम्न्याकाशे **व्याप्तं परमात्मानमहं ते** तुभ्यं **यथा परि+ददामि** (सर्वतो ददामि) **अन्वागन्ता** धर्ममन्वागच्छति [सः] **अहं यं वः**=**युष्मभ्यमुपदिशामि**, **स्म** एव **तं यूयं विजानीत** ॥ १८ । ५९ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर के जिज्ञासु लोगो ! और हे (सधस्थ) समान स्थान में रहने वाले पुरुष ! (जातवेदाः) वेदार्थ का ज्ञाता, (यज्ञपतिः) यज्ञ के पालक के समान व्यवहार वाला पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) शेव=सुख की निधि ईश्वर को (आवहात्) प्राप्त करे (एतम्) इस (अत्र) यहाँ (परमे) विशाल (व्योमन्) आकाश में व्याप्त परमात्मा को मैं (ते) तेरे लिए जैसे (परि+ददामि) प्रदान करता हूँ तथा (अन्वागन्ता) धर्म का अनुगामी मैं—जिसका (वः) तुम्हें उपदेश करता (स्म) ही हूँ, उसे तुम जानो ॥ १८ । ५९ ॥

[हे ईश्वरजिज्ञासवो मनुष्याः !······अत्र परमे व्योमन् व्याप्तं परमात्मानमहं ते यथा परिददामि···वः=युष्मभ्यमुपदिशानि···तं यूयं विजानीत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ ये मनुष्या विद्वदनुकूलमाचरन्ति, ते सर्वव्यापिनमन्तर्यामिणमीश्वरं प्राप्तुमर्हन्ति ॥ १८ । ५९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य विद्वानों के अनुकूल आचरण करते हैं वे सर्वव्यापक, अन्तर्यामी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं ॥ १८ । ५९ ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर को कौन जान सकता है ?**—जो जातवेदा=वेदार्थ का पूर्ण रूप से ज्ञाता है, जो यज्ञपति=यज्ञ का पालक अथवा संगमनीय व्यवहारों का पालक है, और जो अन्वागन्ता=धर्म का अनुयायी है, वह आकाश के समान व्यापक, सुख के भण्डार ईश्वर को जान सकता है।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जो विद्वानों के अनुसार आचरण करते हैं, वे ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं ॥ १८ । ५९ ॥

विश्वकर्मा । **प्रजापतिः**=ईश्वरः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्स एव विषय उपदिश्यते ॥

विद्वान् सत्य का निर्णय कैसे करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य ।
यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्त्ते कृणवाथाविरस्मै ॥ ६० ॥

पदार्थः—(एतम्) परमात्मानम् (**जानाथ**) विजानीत । लेट् प्रयोगोऽयम् (**परमे**) (**व्योमन्**) (**देवाः**) विद्वांसः (**सधस्थाः**) सहस्थानाः (**विद**) बुद्ध्यध्वम् (**रूपम्**) सच्चिदानन्दस्वरूपम् (**अस्य**) (**यत्**) (**आगच्छात्**) समन्तात् प्राप्नुयात् (**पथिभिः**) मार्गैः (**देवयानैः**) देवा=धार्मिका विद्वांसो गच्छन्ति येषु तैः (**इष्टापूर्ते**) इष्टं=श्रौतं कर्म च पूर्त्तं=स्मार्त्तं कर्म च ते (**कृणवाथ**) कुरुथ (**आविः**) प्राकट्ये (**अस्मै**) परमात्मने ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(**जानाथ**) यह 'लेट्' लकार का प्रयोग है ॥

अन्वयः—हे सधस्था देवाः ! यूयं परमे व्योमन् व्याप्तमेतं जानाथास्य रूपं विद यद्देवयानैः पथिभिरागच्छादस्मै परमात्मने इष्टापूर्त्ते आविः कृणवाथ ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सधस्थाः** सहस्थानाः **देवाः** ! विद्वांसः ! **यूयं परमे व्योमन्** व्याप्तमेतं परमात्मानं **जानाथ** विजानीत, **अस्य रूपं** सच्चिदानन्दस्वरूपं **विद** बुद्ध्यध्वम् ।

यद्देवयानैः देवाः=धार्मिका विद्वांसो गच्छन्ति येषु तैः **पथिभिः** मार्गैः **आगच्छात्** समन्तात्प्राप्नुयात् **अस्मै**=**परमात्मने इष्टापूर्ते** इष्टं=श्रौतं कर्म च, पूर्तं=स्मार्तं कर्म च ते **आविः** प्रकटं **कृणवाथ** कुरुथ ॥ १८ । ६० ॥

भाषार्थ—हे (सधस्थाः) साथ बैठे हुए (देवाः) विद्वानो ! तुम—(परमे) विशाल (व्योमन्) आकाश में व्याप्त (एतम्) इस परमात्मा को (जानाथ) जानो । (अस्य) इसके (रूपम्) सच्चिदानन्दस्वरूप को (विद) समझो ।

(यत्) जो (देवयानैः) धार्मिक विद्वान् जिन पर चलते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (आगच्छात्) प्राप्त होता है (अस्मै) इस परमात्मा के लिए (इष्टापूर्ते) इष्ट=श्रौतकर्म और पूर्तं=स्मार्त्त कर्म को (आविः) प्रसिद्ध (कृणवाथ) करो ॥६०॥

[हे···देवाः ! यूयं परमे व्योमन् व्याप्तमेतं जानाथ, यद् देवयानैः पथिरागच्छात्]

भावार्थः—सर्वे मनुष्या विद्वत्सङ्ग-योगाभ्यासधर्माचारैः परमेश्वरमवश्यं जानीयुः ।

भावार्थ—सब मनुष्य विद्वानों के संग और योगाभ्यास से परमेश्वर को अवश्य जानें ।

[इष्टापूर्ते आविः कृणवाथ]

नो चेदिष्टापूर्त्ते साधयितुं न शक्नुयुः ।

नहीं तो—श्रौत और स्मार्त्त कर्मों को सिद्ध नहीं कर सकते ।

[अस्य रूपं विद]

न च मुक्तिं प्राप्नुयुः ॥ १८ । ६० ॥

और न ही मुक्ति को प्राप्त हो सकते हैं ॥६०॥

भा० पदार्थः—देवयानैः=विद्वत्सङ्गयोगाभ्यासधर्माचारैः ।

भाष्यसार—**ईश्वर को जानने के उपाय**—जो विद्वान् मनुष्य देवयानैः=धार्मिक विद्वानों के मार्ग पर अर्थात् योगाभ्यासादि करते हैं, उनके अनुसार अपना आचरण बना लेते हैं, और जो परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप को जानने के लिए इष्ट=श्रौतकर्म, पूर्त्त=स्मार्त्त कर्मों को करते हैं, वे सर्वव्यापक परमात्मा को जान सकते हैं ॥ १८ । ६० ॥

गालवः । **प्रजापतिः**=**विद्वान्** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्स एव विषयः प्रोच्यते ॥

विद्वान् सत्य का निर्णय कैसे करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽ अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(उत्) ऊर्ध्वम् (**बुध्यस्व**) जानीहि (**अग्ने**) अग्निरिव वर्त्तमान पुरुष (**प्रति**) (**जागृहि**) यजमानं प्रबोधयाविद्यानिद्रां पृथक्कृत्य विद्यायां जागरूकं कुरु (**त्वम्**) (**इष्टापूर्त्ते**) इष्टं च पूर्त्तं च ते (**सम्**) संसर्गे (**सृजेथाम्**) निष्पादयेताम् (**अयम्**) ब्रह्मविद्योपदेष्टा (**च**) (**अस्मिन्**) (**सधस्थे**) सहस्थाने (**अधि**) उपरि (**उत्तरस्मिन्**) उत्तमासने (**विश्वे**) समग्राः (**देवाः**) विद्यायाः कामयितारः (**यजमानः**) विद्याप्रदाता यज्ञकर्त्ता (**च**) (**सीदत**) तिष्ठत ॥ ६१ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वमुद्बुध्यस्व प्रति जागृहि त्वं चायं इष्टापूर्त्ते संसृजेथां हे विश्वेदेवा कृतेष्टापूर्त्तो यजमानश्च यूयं सधस्थेऽस्मिन्नुत्तरस्मिन्नधि सीदत ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने !** अग्निरिव वर्त्तमान पुरुष ! **त्वमुद् बुध्यस्व** ऊर्ध्वं जानीहि, **प्रति जागृहि** यजमानं प्रबोधयाविद्यानिद्रां पृथक्कृत्य विद्यायां जागरूकं कुरु, **त्वं चायं** ब्रह्मविद्योपदेष्टा **इष्टापूर्त्ते** इष्टं च पूर्तं च ते **संसृजेयां** संसर्गेण निष्पादयेताम् ।

भावार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्ताव वाले पुरुष ! तू—(उद्बुध्यस्व) उद्बुद्ध हो, (प्रतिजागृहि) यजमान को प्रबुद्ध कर अर्थात् अविद्या-निद्रा को हटाकर विद्या में जागरूक कर, तू और (अयम्) यह ब्रह्म-विद्या का उपदेष्टा पुरुष (इष्टापूर्ते) इष्ट और पूर्त को (संसृजेथाम्) विद्वानों के संसर्ग से सिद्ध करो ।

हे विश्वेदेवाः ! समग्राः विद्यायाः कामयितारः ! **कृतेष्टापूर्त्तौ यजमानः** विद्याप्रदाता यज्ञकर्त्ता **च यूयं सधस्थे** सहस्थाने **अस्मिन्नुत्तरस्मिन्** उत्तमासने **अधि+सीदत** उपरि तिष्ठत ॥ १८ । ६१ ॥

हे (विश्वेदेवाः) समग्र विद्या की कामना करने वाले विद्वानो एवं इष्ट और पूर्त्त को सिद्ध करने वाला (यजमानः) विद्या का दाता यजमान तुम—(अस्मिन्) इस (सधस्थे) सभा-भवन में (उत्तरस्मिन्) उत्तम आसन पर (अधि+सीदत) बैठो ॥ १८ । ६१ ॥

[हे अग्ने ! त्वमुद्बुध्यस्व]

भावार्थः—ये सचेतना धीमन्तो विद्यार्थिनः स्युस्ते ऽध्यापकैः सम्यगध्यापनीयाः स्युः ।

भावार्थ—जो चेतना वाले बुद्धिमान् विद्यार्थी हों उन्हें अध्यापक लोग उत्तम रीति से पढ़ावें ।

[प्रति जागृहि, त्वं चायमिष्टापूर्त्ते संसृजेथाम्]

ये विद्याभीप्सवोऽध्यापकानुकूलाचरणाः स्युः, ये च तदधीना अध्यापकास्ते परस्परं प्रीत्या सततं विद्योन्नतिं कुर्युः ।

जो विद्या प्राप्ति कराने के इच्छुक अध्यापक के अनुकूल आचरण करने वाले मुख्याध्यापक हों और जो उनके अधीन अध्यापक हों वे परस्पर प्रीति से सदा विद्या को उन्नत करें ।

[हे विश्वेदेवाः···यूयं···उत्तरस्मिन्नधिसीदत]

येऽतोऽन्ये प्रशस्ता विद्वांसः स्युस्त एतेषां सततं परीक्षां कुर्युः, यत एते विद्यावर्द्धने सततं प्रयतेरन्,

जो इनसे भिन्न प्रशस्त विद्वान् हों वे इनकी सदा परीक्षा करें जिससे ये विद्या-वृद्धि में सदा प्रयत्न करें ।

[यजमानश्च०···]

तथा—ऋत्विग्यजमानादयो भवेयुः ॥१८।६१॥

ऋत्विक् और यजमान आदि भी वैसे ही हों ॥ १८ । ६१ ॥

भा० पदार्थः—अग्ने=अध्यापक ! ॥ विश्वेदेवाः=प्रशस्ता विद्वांसः ॥

भाष्यसार—**विद्वद्धर्म का उपदेश**—सभा-भवन में उत्तम आसन पर बैठ कर पूर्ण विद्वान् अविद्या अन्यायादि को समाप्त करने के लिए ब्रह्मविद्या के उपदेश से दूसरों को प्रबुद्ध करें । इसी प्रकार यजमान-अध्यापक भी श्रेष्ठ विद्या से विद्यार्थियों को प्रबुद्ध करें और इष्ट तथा पूर्त्त की सिद्धि के लिए सदा यत्न किया करें ॥ १८ । ६१ ॥

देवश्रवदेववातौ । **विश्वकर्माग्निर्वा**=विद्वान् । निचृदार्ष्यनुष्टुप् गान्धारः ॥

पुनः स एव विषयः प्रकाश्यते ॥

विद्वान् सत्य का निर्णय कैसे करें, यह फिर उपदेश किया है ॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम् । तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॑र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**येन**) अध्यापनेन (**वहसि**) प्राप्नोषि (**सहस्रम्**) असंख्यमतुलं बोधम् (**येन**) अध्ययनेन (**अग्ने**) अध्यापकाध्येतर्वा (**सर्ववेदसम्**) सर्वे वेदसो=वेदा विज्ञायन्ते यस्मिँस्तम् (**तेन**) (**इमम्**)

वक्ष्यमाणम् (**यज्ञम्**) अध्ययनाध्यापनाख्यम् (**नः**) अस्मान् (**नय**) प्राप्नुहि प्रापय वा (**स्वः**) सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु गुणेषु विद्वत्सु वा (**गन्तवे**) गन्तुं=प्राप्तुम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! त्वं येन सहस्रं सर्ववेदसं वहसि प्राप्नोषि येन च प्रापयसि तेनेमं यज्ञं नो देवेषु स्वर्गन्तवे नय ॥ ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने !** अध्यापकाध्येतर्वा **त्वं येन** अध्ययनेन **सहस्रम्** असंख्यमतुलं बोधं **सर्ववेदसं** सर्वे वेदसो=वेदा विज्ञायन्ते यस्मिँस्तं **वहसि**=प्राप्नोषि, **येन** अध्यापनेन **च प्रापयसि, तेनेमं** वक्ष्यमाणं **यज्ञम्** अध्ययनाध्यापनाख्यं **नः** अस्मान् **देवेषु** दिव्येषु गुणेषु विद्वत्सु वा **स्वः** सुखं **गन्तवे** गन्तुं=प्राप्तुं **नय** प्राप्नुहि प्रापय वा ॥ १८ । ६२ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) अध्यापक वा अध्येता=पढ़ने वाले ! तू—(येन) जिस अध्ययन से (सहस्रम्) असंख्य=अतुल बोध को तथा (सर्ववेदसम्) सब वेदों को जनाने वाले विज्ञान को (वहसि) प्राप्त करता है, और (येन) जिस अध्यापन से प्राप्त कराता है (तेन) उससे (इमम्) इस (यज्ञम्) अध्ययन-अध्यापन नामक यज्ञ को (नः) हमें (देवेषु) दिव्यगुणों वा विद्वानों में (स्वः) सुख को (गन्तवे) प्राप्त करने के लिए (नय) प्राप्त कर वा प्राप्त करा ॥ १८ । ६२ ॥

[हे अग्ने ! त्वं येन ... सर्ववेदसं वहसि ... तेनेमं यज्ञं ... स्वर्गन्तवे नय]

भावार्थः—ये धर्माचरणनिष्कपटत्वाभ्यां विद्यां प्रयच्छन्ति गृह्णन्ति च त एव सुखभागिनो भवन्ति ॥ १८ । ६२ ॥

भावार्थ—जो लोग धर्माचरण और निष्कपटता से विद्या देते और लेते हैं वे ही सुखभागी होते हैं ॥ १८ । ६२ ॥

भाष्यसार—**विद्वद्धर्म का उपदेश**—अग्ने=अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे अध्ययन-अध्यापन रूप यज्ञ को सदा निष्कपटता से प्रचलित रक्खें। क्योंकि इससे सुख के साधन दिव्य गुणों की प्राप्ति और सब प्रकार का ज्ञान तथा विज्ञान प्राप्त होता है ॥ १८ । ६२ ॥

विश्वामित्रः । **यज्ञः=अग्निहोत्रादिः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्यैः क्रियायज्ञः कथं साधनीय इत्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्यों को क्रियायज्ञ कैसे सिद्ध करना चाहिए, यह उपदेश किया जाता है ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा । ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**प्रस्तरेण**) आसनेन (**परिधिना**) यः परितः=सर्वतो धीयते तेन (**स्रुचा**) येन यज्ञः साध्यते (**वेद्या**) यस्यां हूयते तथा (**च**) (**बर्हिषा**) उत्तमेन कर्मणा (**ऋचा**) स्तुत्या ऋग्वेदादिना वा (**इमम्**) पदार्थमयम् (**यज्ञम्**) अग्निहोत्रादिकम् (**नः**) अस्मान् (**नय**) (**स्वः**) सांसारिकं सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु पदार्थेषु विद्वत्सु वा (**गन्तवे**) गन्तुं=प्राप्तुम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—हे विद्वंस्त्वं वेद्या स्रुचा बर्हिषा प्रस्तरेण परिधिनर्चा चेमं यज्ञं देवेषु गन्तवे स्वर्नो नय ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं **वेद्या** यस्यां हूयते तया **स्रुचा** येन यज्ञः साध्यते **बर्हिषा** उत्तमेन कर्मणा **प्रस्तरेण** आसनेन **परिधिना** यः परितः=सर्वतो धीयते तेन **ऋचा** स्तुत्या ऋग्वेदादिना वा **चेमं** पदार्थमयं **यज्ञम्** अग्निहोत्रादिकं **देवेषु** दिव्येषु पदार्थेषु विद्वत्सु वा **गन्तवे** गन्तुं=प्राप्तुं **स्वः** सांसारिकं सुखं **नः** अस्मान् **नय** ॥ १८ । ६३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—(वेद्या) जिसमें होम किया जाता है उस वेदी से, (स्रुचा) जिससे यज्ञ सिद्ध किया जाता है उस स्रुवा से, (बर्हिषा) उत्तम कर्म से, (प्रस्तरेण) आसन से, (परिधिना) सब ओर से धारण करने योग्य परिधि से, और (ऋचा) स्तुति वा ऋग्वेदादि से (इमम्) इस पदार्थमय (यज्ञम्) अग्निहोत्र आदि को (देवेषु) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों में (गन्तवे) पहुँचाने के लिए (स्वः) सांसारिक सुख (नः) हमें (नय) प्राप्त करा ॥ १८ । ६३ ॥

[हे विद्वंस्त्वं वेद्या स्रुचा बर्हिषा प्रस्तरेण···ऋचा चेमं यज्ञं०—]

भावार्थः—ये मनुष्या धर्मेण प्राप्तैर्द्रव्यैर्वेदरीत्या च साङ्गोपाङ्गं यज्ञं साध्नुवन्ति, ते सर्वप्राण्युपकारिणो भवन्ति ॥ १८ । ६३ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्म से प्राप्त द्रव्यों के द्वारा और वेद-रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं ॥ १८ । ६३ ॥

भा० पदार्थः—वेद्या, स्रुचा, बर्हिषा, प्रस्तरेण=धर्मेण प्राप्तैर्द्रव्यैः ॥ ऋचा=वेदरीत्या । यज्ञम्=साङ्गोपाङ्गं यज्ञम् ।

भाष्यसार—**अग्निहोत्र के साधन और उससे लाभ**—भौतिक यज्ञ से दिव्यगुणों की प्राप्ति तथा सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है। अतः इस यज्ञ के साधनों को अर्थात् वेदी, स्रुवा, आसनादि को धर्म-पूर्वक प्राप्त करें और ऋग्वेदादि के स्तुति करने योग्य मन्त्रों का ज्ञान करके अग्निहोत्र की सिद्धि अवश्य करें । इससे सब प्राणियों का उपकार होता है ॥ १८ । ६३ ॥

विश्वकर्मा । **यज्ञः**=क्रियायज्ञः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

क्रियायज्ञ का फिर उपदेश किया है ॥

यद्दत्तं यत्प॑रा॒दान॒ं यत्पू॒र्त्तं याश्च॒ दक्षि॑णाः । तद॒ग्निर्वै॑श्वकर्म॒णः स्व॑र्दे॒वेषु॑ नो दधत् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**दत्तम्**) सुपात्रेभ्यः समर्पितम् (**यत्**) (**परादानम्**) परेभ्य आदानम् (**यत्**) (**पूर्त्तम्**) पूर्णां सामग्रीम् (**याः**) (**च**) (**दक्षिणाः**) कर्मानुसारेण दानानि (**तत्**) (**अग्निः**) पावक इव गृहस्थो विद्वान् (**वैश्वकर्मणः**) विश्वानि=समग्राणि कर्माणि यस्य स एव (**स्वः**) ऐन्द्रियं सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु धर्म्येषु व्यवहारेषु (**नः**) अस्मान् (**दधत्**) दधातु ॥ १८ । ६४ ॥

अन्वयः—हे गृहस्थ ! त्वया यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणा दीयन्ते तत्स्वश्च वैश्वकर्मणोऽग्निरिव भवान् देवेषु नो दधत् ॥ १८ । ६४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थ ! त्वया **यद्दत्तं** सुपात्रेभ्यः समर्पितं **यत् परादानं** परेभ्य

भाषार्थ—हे गृहस्थ पुरुष ! तुझसे—(यत्) जो (दत्तम्) सुपात्रों को पदार्थों का समर्पण, (यत्)

आदानं **यत्पूर्त्तं** पूर्णा सामग्री **याश्च दक्षिणाः** कर्मानुसारेण दानानि **दीयन्ते, तत्स्वः** ऐन्द्रियं सुखं **च वैश्वकर्मणः** विश्वानि=समग्राणि कर्माणि यस्य, स एव **अग्निः** पावक इव गृहस्थो विद्वान् **इव भवान् देवेषु** दिव्येषु धर्म्येषु व्यवहारेषु **नः** अस्मान् **दधत्** दधातु ॥ १८ । ६४ ॥

जो (परादानम्) दूसरों से पदार्थों का ग्रहण, (यत्) जो (पूर्त्तम्) पूर्ण सामग्री (याश्च) और जो (दक्षिणाः) कर्मानुसार नाना दान दिए जाते हैं, (तत्) उसे और (स्वः) इन्द्रिय-सम्बन्धी सुख को (वैश्वकर्मणः) विश्व=सब कर्मों वाले (अग्निः) अग्नि के तुल्य गृहस्थ विद्वान् के समान आप (देवेषु) दिव्य धर्मयुक्त व्यवहारों में (नः) हमें (दधत्) स्थापित कर ॥ १८ । ६४ ॥

[हे गृहस्थ ! त्वया...यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणा दीयन्ते तत्...अग्निरिव भवान् देवेषु नो दधत्]

भावार्थः—ये याश्च गृहाश्रमं चिकीर्षेयुस्ते पुरुषास्ताः स्त्रियश्च विवाहात् प्राक् प्रागल्भ्यादि-सामग्रीं कृत्वैव युवावस्थायां स्वयंवरं विवाहं कृत्वा—

भावार्थ—जो गृहाश्रम करने की इच्छा करें वे पुरुष और स्त्रियाँ विवाह से पहले प्रागल्भ्य=प्रौढ़ता आदि सामग्री को सिद्ध करके युवावस्था में स्वयंवर विवाह कर—

[यद्दत्तं यत् परादानं...याश्च दक्षिणाः]

दानादानमानादिव्यवहारं कुर्युः ॥ १८ । ६४ ॥

दान, आदान=लेना और मान आदि व्यवहार करें ॥ १८ । ६४ ॥

भा० पदार्थः—पूर्त्तम्=प्रागल्भ्यसामग्रीम् । दत्तम्=दानम् । परादानम्=आदानम् । दक्षिणाः=मानादिव्यवहाराः ॥

भाष्यसार—**अग्निहोत्र से लाभ**—अग्नि=गृहस्थ विद्वानों का कर्तव्य है कि वे स्व=इन्द्रिय-सम्बन्धी सुखों के लिए और दिव्य धर्मयुक्त व्यवहारों की सिद्धि के लिए यज्ञ की पूर्ण सामग्री से अग्निहोत्र करें और दक्षिणादि से विद्वानों का उचित सत्कार सदा किया करें ॥ १८ । ६४ ॥

विश्वकर्मा । **यज्ञः=क्रियायज्ञः** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

यत्र धारा ऽ अनपेता मधोर्घृतस्य च याः । तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(**यत्र**) यज्ञे (**धाराः**) प्रवाहाः (**अनपेताः**) नापेताः=पृथग्भूताः (**मधोः**) मधुर-गुणान्वितस्य द्रव्यस्य (**घृतस्य**) आज्यस्य (**च**) (**याः**) (**तत्**) ताभिः (**अग्निः**) पावकः (**वैश्वकर्मणः**) विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात् स एव (**स्वः**) सुखम् (**देवेषु**) दिव्येषु व्यवहारेषु (**नः**) अस्मभ्यम् (**दधत्**) दधाति । **दधातेर्लेटो रूपम्** ॥ ६५ ॥

प्रमाणार्थ—(**दधत्**) यह 'धा' धातु का लेट् का रूप है ॥

अन्वयः—यत्र मधोर्घृतस्य च या अनपेता धारा विद्वद्भिः क्रियन्ते तद्वैश्वकर्मणोऽग्निर्नो देवेषु स्वर्दधत् ॥ ६५ ॥

सपदार्थान्वयः—यत्र यज्ञे **मधोः** मधुरगुणान्वितस्य द्रव्यस्य **घृतस्य** आज्यस्य **च या अनपेताः** नापेताः=पृथग्भूताः **धाराः** प्रवाहाः **विद्वद्भिः क्रियन्ते, तत्** ताभिः **वैश्वकर्मणः** विश्वान्यखिलानि कर्माणि यस्मात् स एव **अग्निः** पावकः **नः** अस्मभ्यं **देवेषु** दिव्येषु व्यवहारेषु **स्वः** सुखं **दधत्** दधाति ॥ १८ । ६५ ॥

भाषार्थ—(यत्र) जिस यज्ञ में (मधोः) मधुर गुण से युक्त द्रव्य की और (घृतस्य) घृत की जो (अनपेताः) पृथक्-पृथक् (धाराः) धाराएँ विद्वान् लोग बनाते हैं, (तत्) उनसे (वैश्वकर्मणः) सब कर्मों का निमित्त (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे लिए (देवेषु) दिव्य व्यवहारों में (स्वः) सुख को (दधत्) धारण करता है ॥ १८ । ६५ ॥

[यत्र मधोर्घृतस्य च···धारा विद्वद्भिः क्रियन्ते]

भावार्थः—ये मनुष्या वेद्यादिकं निर्माय सुगन्धिमिष्टादियुक्तं बहुघृतमग्नौ जुह्वति ते—

भावार्थ—जो मनुष्य वेदी आदि को बनाकर सुगन्धि और मिष्ट=मीठा आदि से युक्त बहुत घृत का अग्नि में होम करते हैं, वे—

[**वैश्वकर्मणोऽग्निर्नो देवेषु स्वर्दधत्**]

सर्वान् रोगान् निहत्यातुलं सुखं जनयन्ति ॥

सब रोगों को दूर कर अतुल सुख उत्पन्न करते हैं ॥ १८ । ६५ ॥

भा० पदार्थः—मधोः=सुगन्धिमिष्टादियुक्तस्य । वैश्वकर्मणः=सर्वरोगनिहन्ता । स्वः=अतुलं सुखम् ॥

भाष्यसार—**अग्निहोत्र से लाभ**—भौतिक-यज्ञ में मधुर-गुणयुक्त और घृतादि पौष्टिक पदार्थों के डालने से सब प्रकार के कर्मों की सिद्धि, दिव्य व्यवहारों की सिद्धि और रोगनिवृत्ति होने से सांसारिक-सुखों की प्राप्ति होती है ॥ १८ । ६५ ॥

देवश्रवो देववातौ । **अग्निः**=भौतिकोऽग्निः । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

यज्ञेन किं जायत इत्याह ॥

यज्ञ से क्या होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म ऽ आ॒सन् ।
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानोऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑ ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(**अग्निः**) पावक इव (**अस्मि**) (**जन्मना**) प्रादुर्भावेन (**जातवेदाः**) यो जातेषु विद्यते सः (**घृतम्**) आज्यम् (**मे**) मह्यम् (**चक्षुः**) दर्शकं=प्रकाशकम् (**अमृतम्**) अमृतात्मकं भोज्यं वस्तु (**मे**) मम (**आसन्**) आस्ये (**अर्कः**) सर्वान् प्राणिनोऽर्चन्ति येन सः (**त्रिधातुः**) त्रयो धातवो यस्मिन् सः (**रजसः**) लोकसमूहस्य (**विमानः**) विमानयानमिव धर्त्ता (**अजस्रः**) अजस्रं गमनं विद्यते यस्य सः । अत्रार्शआदिभ्योऽजित्यच् (**घर्मः**) जिघ्रति येन सः प्रकाश इव यज्ञः (**हविः**) होतव्यं द्रव्यम् (**अस्मि**) (**नाम**) ख्यातिः ॥ १८ । ६६ ॥

प्रमाणार्थ—(अजस्रः) यहाँ 'अर्शआदिभ्योऽच्' (५ । २ । १२७) से 'अच्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—अहं जन्मना जातवेदा अग्निरिवास्मि यथाऽग्नेर्घृतं चक्षुरस्ति तथा मेऽस्तु यथा पावकं संस्कृतं हविर्हुतं सदमृतं जायते तथा म आसन् मुखेऽस्तु यथा त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मोऽर्को यस्य नाम संशोधितं हविश्चास्ति तथाऽहमस्मि ॥ १८ । ६६ ॥

सपदार्थान्वयः--**अहं** जन्मना प्रादुर्भावेन **जातवेदाः** यो जातेषु विद्यते सः **अग्निः** पावकः **इवास्मि** ।

यथाऽग्नेर्घृतम् आज्यं **चक्षुः** दर्शकं=प्रकाशकम् **अस्ति, तथा मे** मह्यम् **अस्तु** ।

यथा पावके संस्कृतं हविः होतव्यं द्रव्यं **हुतं सदमृतम्** अमृतात्मकं भोज्यं वस्तु **जायते, तथा मे** मम **आसन्**=**मुखे** आस्ये **अस्तु** ।

यथा त्रिधातुः त्रयो धातवो यस्मिन् सः **रजसः** लोकसमूहस्य **विमानः** विमानयानमिव धर्त्ता **अजस्रः** अजस्रं गमनं विद्यते यस्य सः **घर्मः** जिघ्रति येन सः प्रकाश इव यज्ञः **अर्कः** सर्वान् प्राणिनोऽर्चन्ति येन सः **यस्य नाम** ख्यातिः **संशोधितं हविः** होतव्यं द्रव्यं **चास्ति, तथाऽहमस्मि** ॥ १८ । ६६ ॥

भाषार्थ–मैं (जन्मना) जन्म से (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (अग्निः) अग्नि के समान (अस्मि) हूँ ।

जैसे—अग्नि का (घृतम्) घृत (चक्षुः) प्रकाशक है वैसे (मे) मेरे लिए हो ।

जैसे—अग्नि में, शुद्ध (हविः) होम के योग्य द्रव्य, होम किया हुआ (अमृतम्) अमृत रूप भोज्य वस्तु बन जाता है, वैसे (मे) मेरे (आसन्) आस्य=मुख में (अस्तु) हो ।

जैसे—(त्रिधातुः) तीन धातुओं से युक्त, (रजसः) लोक-समूह को (विमानः) विमान-यान के समान धारण करने वाला, (अजस्रः) निरन्तर गति से युक्त, (घर्मः) प्रकाश के समान, (अर्कः) सब प्राणियों का अर्चा=पूजा का साधन यज्ञ है, और जिसका (नाम) नाम संशोधित (हविः) हवि=होम के योग्य द्रव्य है, वैसा मैं हूँ ॥ १८ । ६६ ॥

[अहम्...अग्निरिवास्मि]

भावार्थः– अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

यथाऽग्निर्हुतं हविर्वायौ प्रसार्य दुर्गन्धं निवार्य, सुगन्धं प्रकटय्य, रोगान् समूलघातं निहत्य, सर्वान् प्राणिनः सुखयति, तथैव मनुष्यैर्भवितव्यम् ॥ ६६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥

जैसे—अग्नि होम किए हुए हवि को वायु में फैलाकर, दुर्गन्ध का निवारण कर, सुगन्ध को प्रकट कर, रोगों को समूल नष्ट करके सब प्राणियों को सुखी करता है, वैसे ही मनुष्यों को भी करना चाहिए ॥ १८ । ६६ ॥

भाष्यसार—**१. भौतिकाग्नि में यज्ञ से लाभ**—भौतिकाग्नि को प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान होने से जातवेदा कहते हैं। अग्नि घृतादि पदार्थों से प्रदीप्त हो जाती है। अग्नि में जो घृतादि पौष्टिक पदार्थ, और शुद्ध किये हुए रोगनाशक द्रव्य डाले जाते हैं, वे वायु की शुद्धि करके रोगनाशक हो जाते हैं, अतः अमृत हो जाते हैं। अतः दीर्घ जीवन के इच्छुक मनुष्यों को यज्ञ अवश्य करने चाहिए ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। जैसे हवि डालने से अग्नि सब प्राणियों को अमृत प्रदान करती है, वैसे ही सब मनुष्य सब का उपकार सदा किया करें ॥ १८ । ६६ ॥

देवश्रवो देववातौ । **अग्निः**=**अग्निहोत्रादियज्ञः** । आर्षी जगती । निषादः ॥

अथर्गादिवेदाध्ययनेन किं कार्यमित्युपदिश्यते ॥

अब ऋग्वेद आदि को पढ़ के क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

ऋचो नामांस्मि यजूंꣳषि नामांस्मि सामांनि नामांस्मि ।
ये ऽ अग्नयः पाञ्चंजन्या ऽ अस्यां पृथिव्यामधि
तेषांमसि त्वमुत्तमः प्र नों जीवातंवे सुव ॥ ६७ ॥

पदार्थः—(**ऋचः**) ऋग्वेदश्रुतयः (**नाम**) प्रसिद्धो (**अस्मि**) भवामि (**यजूंषि**) यजुर्मन्त्राः (**नाम**) (**अस्मि**) (**सामानि**) सामवेदमन्त्रगानानि (**नाम**) (**अस्मि**) (**ये**) (**अग्नयः**) आहवनीयादयः पावकाः (**पाञ्चजन्याः**) पञ्चजनेभ्यो हिताः । पञ्चजना इति मनुष्यना० ॥ निघं० २ । ३ ॥ (**अस्याम्**) (**पृथिव्याम्**) (**अधि**) उपरि (**तेषाम्**) (**असि**) (**त्वम्**) (**उत्तमः**) (**प्र**) (**नः**) अस्माकम् (**जीवातवे**) जीवनाय (**सुव**) प्रेरय ॥ ६७ ॥

प्रमाणार्थ—(पाञ्चजन्याः) 'पंचजनाः' यह पद निघं० (२ । ३) में मनुष्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! योऽहमृचो नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि तस्मान्मत्तो वेदविद्यां गृहाण । येऽस्यां पृथिव्यां पाञ्चजन्या अग्नयोऽधिषन्ति तेषां मध्ये त्वमुत्तमोऽसि स त्वं नो जीवातवे शुभकर्मसु प्रसुव ॥ ६७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! योऽहमृचः ऋग्वेदश्रुतयः **नाम** प्रसिद्धः **अस्मि** भवामि, **यजूंषि** यजुर्मन्त्राः **नाम** प्रसिद्धः **अस्मि** भवामि, **सामानि** सामवेदमन्त्रगानानि **नाम** प्रसिद्धः **अस्मि** भवामि, **तस्मान्मत्तो वेदविद्यां गृहाण** ।

येऽस्यां पृथिव्यां पाञ्चजन्याः पञ्चजनेभ्यो हिताः **अग्नयः** आहवनीयादयः पावकाः **अधिषन्ति** (उपरि सन्ति) तेषां **मध्ये त्वमुत्तमोऽसि, स त्वं नः** अस्माकं **जीवातवे** जीवनाय **शुभकर्मसु प्रसुव** प्रेरय ॥ १८ । ६७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो मैं—(ऋचः) ऋग्वेद (नाम) नाम से प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ, (यजूंषि) यजुर्वेद (नाम) नाम से प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ, (सामानि) सामवेद (नाम) नाम से प्रसिद्ध (अस्मि) हूँ इसलिए मुझसे वेद-विद्या को ग्रहण कर ।

(ये) जो (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (पांचजन्याः) पाँच जन=सब मनुष्यों के लिए हितकारी (अग्नयः) आहवनीय आदि अग्नियाँ (अधि+षन्ति) हैं उनमें तू उत्तम है, सो तू—(नः) हमारे (जीवातवे) उत्तम जीवन के लिए शुभ कर्मों में (प्रसुव) प्रेरित कर ॥ १८ । ६७ ॥

[हे विद्वन् ! योऽहमृचो नामास्मि, यजूंषि नामास्मि, सामानि नामास्मि]

भावार्थः—यो मनुष्य ऋग्वेदमधीते स ऋग्वेदी, यो यजुर्वेदमधीते स यजुर्वेदी, यः सामवेदमधीते स सामवेदी, योऽथर्ववेदमधीते सोऽथर्ववेदी, यो द्वौ वेदावधीते स द्विवेदी, यस्त्रीन् वेदानधीते स त्रिवेदी, यश्चतुरो वेदानधीते स चतुर्वेदी, यश्च कमपि वेदं नाधीते स कामपि संज्ञां न लभते ।

भावार्थ—जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ता है वह ऋग्वेदी, जो यजुर्वेद को पढ़ता है वह यजुर्वेदी, जो सामवेद को पढ़ता है वह सामवेदी, जो अथर्ववेद को पढ़ता है वह अथर्ववेदी नाम से प्रसिद्ध होता है । जो दो वेदों को पढ़ता है वह द्विवेदी, जो तीन वेदों को पढ़ता है वह त्रिवेदी, जो चारों वेदों को पढ़ता है वह चतुर्वेदी कहलाता है । जो किसी भी वेद को नहीं पढ़ता वह कोई भी संज्ञा=नाम को प्राप्त नहीं करता ।

[ये ''' पाञ्चजन्या अग्नयः ''' तेषाम् ''' उत्तमोऽसि]

ये वेदविदस्तेऽग्निहोत्रादियज्ञैः सर्वहितं सम्पादयेयुर्यत उत्तमा कीर्तिः स्यात् ।

जो वेदज्ञ हैं वे अग्निहोत्र आदि यज्ञों से सबका हित करें जिससे उत्तम कीर्ति हो ।

[स त्वं नो जीवातवे शुभकर्मसु प्रसुव]

सर्वे प्राणिनो दीर्घायुषश्च भवेयुः ॥

और—सब प्राणी दीर्घ आयु वाले हों ॥

भा० पदार्थः—पाञ्चजन्याः=सर्वेभ्यो हिताः । अग्नयः=अग्निहोत्रादियज्ञाः । जीवातवे=दीर्घायुषे ॥

भाष्यसार—**अग्निहोत्र से दीर्घ जीवन की प्राप्ति**—सब मनुष्यों का हितकारी होने से अग्नि का नाम पाञ्चजन्य है । जो इस अग्नि में चारों वेदों का ज्ञान प्राप्त करके शुद्ध हवि से यज्ञ करते हैं, वे दीर्घजीवन और उत्तम-जीवन को प्राप्त करते हैं और पृथिवी पर सर्वोपरि होकर उत्तम कीर्त्ति को प्राप्त करते हैं ॥ १८ । ६७ ॥ ●

इन्द्रः । **अग्निः**=**विद्वान् सूर्यः** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

सेनाध्यक्षः कथं विजयी भवेदित्याह ॥

सेनाध्यक्ष कैसे विजयी हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(**वार्त्रहत्याय**) विरुद्धभावेन वर्त्ततेऽसौ वृत्रः, वृत्र एव वार्त्रः । वार्त्रस्य=वर्त्तमानस्य शत्रोर्हत्या=हननं तत्र साधुस्तस्मै (**शवसे**) बलाय (**पृतनाषाह्याय**) ये मनुष्या पृतनाः सहन्ते ते पृतनासाहस्तेषु साधवे । (**च**) (**इन्द्र**) परमैश्वर्य्ययुक्त सेनेश (**त्वा**) त्वाम् (**आ**) समन्तात् (**वर्त्तयामसि**) प्रवर्त्तयामः ॥ १८ । ६८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! यथा वयं वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय तेनान्येन योग्यसाधनेन च त्वाऽऽवर्त्तयामसि तथा त्वं वर्तस्व ॥ १८ । ६८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र ! परमैश्वर्य्ययुक्त सेनेश ! **यथा वयं वार्त्रहत्याय** विरुद्धभावेन वर्त्ततेऽसौ वृत्रः, वृत्र एव वार्त्रः, वार्त्रस्य=वर्त्तमानस्य शत्रोर्हत्या=हननं, तत्र साधुस्तस्मै **शवसे** बलाय **पृतनाषाह्याय** ये मनुष्या पृतनाः सहन्ते ते पृतनासाहस्तेषु साधवे **तेनान्येन योग्यसाधनेन च त्वा** त्वाम् **आवर्त्तयामसि** समन्तात् प्रवर्त्तयामः **तथा त्वं वर्तस्व** ॥ १८ । ६८ ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य से युक्त सेनापति ! जैसे हम—(वार्त्रहत्याय) विरुद्ध भाव से वर्ताव करने वाला वृत्र कहलाता है, उस वृत्र की हत्या करने में कुशल पुरुष के लिए, (शवसे) बल प्राप्ति के लिए, (पृतनाषाह्याय) पृतना=शत्रु सेना को सहन=मर्षण करने वालों में कुशल पुरुष के लिए उस पूर्वोक्त अग्नि और अन्य योग्य साधन से (त्वा) तुझे (आवर्त्तयामसि) सब ओर से प्रवृत्त करते हैं; वैसे तू प्रवृत्त हो ॥ १८ । ६८ ॥

[हे इन्द्र ! वयं वार्त्रहत्याय ''' पृतनाषाह्याय ''' त्वा आवर्तयामसि]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा

यो विद्वान्, सूर्यो मेघमिव शत्रून् हन्तुं शूरवीरसेनां सत्करोति, स सततं विजयी भवति ॥ १८ । ६८ ॥

अलङ्कार है ॥ जो विद्वान् पुरुष—मेघ-हन्ता सूर्य के समान शत्रुओं के हनन के लिए शूरवीर—सेना का सत्कार करता है, वह सदा विजयी होता है ॥ ६८ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् सेनापति के विजय का उपाय-वर्णन**—जैसे सूर्य वृत्र अर्थात् शत्रुभाव से वर्त्ताव करने वाले मेघ को छिन्न-भिन्न करने के लिए बलवती किरणरूपी सेना से शत्रु-सेना का संहार करता है, वैसे ही ऐश्वर्यसम्पन्न सेनापति शत्रुसेना का प्रतिरोध करने में समर्थ सेना का संघटन करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त किया करें ॥

२. **अलङ्कार**—सेनापति सूर्य की भाँति तेजस्वी होकर शत्रु-सेना का विघात करके सदा विजय को प्राप्त किया करे ॥ १८ । ६८ ॥

इन्द्रविश्वामित्रौ । **इन्द्रः**=सेनेशः । सभेशः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥
पुनर्जनैः कथम्भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(**सहदानुम्**) यः सहैव ददाति तम् (**पुरुहूत**) बहुभिस्सज्जनैः सत्कृत (**क्षियन्तम्**) गच्छन्तम् (**अहस्तम्**) अविद्यमानौ हस्तौ यस्य तम् (**इन्द्र**) शत्रुविदारक सेनेश (**सम्**) (**पिणक्**) पिनष्टि (**कुणारुम्**) शब्दयन्तम् । **अत्र "क्वण शब्दे" इत्यस्माद्धातोरौणादिक आरुः प्रत्ययः ।** (**अभि**) (**वृत्रम्**) मेघमिव (**वर्द्धमानम्**) (**पियारुम्**) पानकारकम् (**अपादम्**) पादेन्द्रियरहितम् (**इन्द्र**) सभेश (**तवसा**) बलेन । **तव इति बलना० ॥ निघं० २ । ९ ॥** (**जघन्थ**) जहि ॥ १८ । ६९ ॥

प्रमाणार्थ—(**कुणारुम्**) यहाँ 'क्वण शब्दे' इस धातु से औणादिक 'आरु' प्रत्यय है । (**तवसा**) बलेन । 'तव' यह पद निघं० (२ । ९) में बल-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे पुरुहूतेन्द्र ! यथा सूर्यः सहदानुं क्षियन्तं कुणारुमहस्तं पियारुमपादमभिवर्द्धमानं वृत्रं सम्पिणक् तथा हे इन्द्र ! शत्रूँस्तवसा जघन्थ ॥ १८ । ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **पुरुहूत** बहुभिस्सज्जनैः सत्कृत **इन्द्र** शत्रुविदारक सेनेश ! **यथा सूर्यः सहदानुं** यः सहैव ददाति तं **क्षियन्तं** गच्छन्तं **कुणारुं** शब्दयन्तम् **अहस्तम्** अविद्यमानौ हस्तौ यस्य तं **पियारुं** पानकारकम् **अपादं** पादेन्द्रियरहितम् **अभिवर्द्धमानं वृत्रं** मेघमिव **सम्पिणक्** पिनष्टि, **तथा**—हे **इन्द्र** ! सभेश ! **शत्रूँस्तवसा** बलेन **जघन्थ** जहि ॥ १८ । ६९ ॥

भाषार्थ—हे (पुरुहूत) पुरु=बहुत सज्जनों के द्वारा सत्कृत, (इन्द्र) शत्रु-विदारक-सेनापति ! जैसे सूर्य—(सहदानुम्) एक साथ जल को देने वाले, (क्षियन्तम्) गतिशील, (कुणारुम्) शब्द करने वाले, (अहस्तम्) हाथों से रहित, (पियारुम्) जल पान कराने वाले, (अपादम्) पाद=पाँव इन्द्रिय से रहित (अभिवर्द्धमानम्) सब ओर बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघ=बादल को (सम्पिणक्) पीस देता है, वैसे—हे (इन्द्र) सेनापति ! तू—शत्रुओं को (तवसा) बल से (जघन्थ) मार ॥ १८ । ६९ ॥

[हे'''इन्द्र ! यथा सूर्यः'''वृत्रं सम्पिणक् तथा'''शत्रूँस्तवसा जगन्थ]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये मनुष्याः सूर्यवत् प्रतापिनो भवन्ति, तेऽजातशत्रवो जायन्ते ।। १८ । ६९ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जो मनुष्य सूर्य के समान प्रतापी होते हैं वे अजातशत्रु बनते हैं ।। १८ । ६९ ।।

भाष्यसार—१. **इन्द्र=सेनापति का कर्त्तव्य**—जैसे इन्द्र=सूर्य हाथ पैर से रहित जल देने वाले वृत्र=मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है, वैसे ही श्रेष्ठ-पुरुषों से सत्कृत, और शत्रुओं का विदारक सेनापति तवसा=सब प्रकार के बलों का संग्रह करके बढ़ते हुए अपने विरोधियों का विनाश करके राज्य में सुख-शान्ति की सदा वृद्धि किया करे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । जो सेनापति सूर्य की भाँति प्रतापी होते हैं, उनके विरोधी विरोध ही नहीं करते, यदि करते हैं तो बुरी तरह पिस जाते हैं ।। १८ । ६९ ।।

शासः । **इन्द्रः=सेनेशः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ सेनापतिः कीदृशो भवेदित्युपदिश्यते ।।

अब सेनापति कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ।।

वि नं ऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।

यो ऽ अस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ।। ७० ।।

पदार्थः—(वि) (नः) अस्माकम् (इन्द्र) सेनेश (मृधः) मर्धन्त्यद्रीर्भवन्ति येषु तान् संग्रामान् । मृध इति संग्रामना० ।। निघं० २ । १७ ।। (जहि) (नीचा) न्यग्भूतान्नम्रान् । अत्र सुपां सुलुगित्याकारः (यच्छ) निगृह्णीहि (पृतन्यतः) आत्मनः पृतनां=सेनामिच्छतः (यः) विरोधी (अस्मान्) (अभिदासति) अभिमुखेनोपक्षयति (अधरम्) अधोगतिम् (गमय) प्रापय । अत्रान्येषामपीति दीर्घः (तमः) अन्धकारं कारागृहम् ।। ७० ।।

प्रमाणार्थ—(मृधः) संग्रामान् । 'मृधः' यह पद निघं० (२ । १७) में संग्राम-नामों में पठित है । (नीचा) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से विभक्ति को आकार आदेश है । (गमय) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ।।

अन्वयः—हे इन्द्र सेनेश ! त्वं मृधो वि जहि पृतन्यतो नः शत्रून्नीचा यच्छ योऽस्मानभिदासति तमधरं तमो गमय ।। ७० ।।

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र != सेनेश ! त्वं मृधः मर्धन्त्यद्रीर्भवन्ति येषु तान् संग्रामान् वि+जहि, पृतन्यतः आत्मनः पृतनां= सेनामिच्छतः नः अस्माकं **शत्रून् नीचा** न्यग्भूतान्नम्रान् **यच्छ** निगृह्णीहि, **यो** विरोधी **अस्मानभिदासति** अभिमुखेनोपक्षयति, **तमधरम्** अधोगतिं **तमः** अन्धकारं कारागृहं **गमय** प्रापय ।। १८ । ७० ।।

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सेनापति ! तू—(मृधः) रक्त से आर्द्र करने वाले संग्रामों को (वि+जहि) विनष्ट कर, (पृतन्यतः) अपनी सेना की इच्छा करने वाले (नः) हमारे शत्रुओं को (नीचा) नम्र बनाकर (यच्छ) पकड़, (यः) जो विरोधी=शत्रु (अस्मान्) हमें (अभिदासति) क्षीण करता है उसे (अधरम्) अधोगति को एवं (तमः) अन्धकारमय कारागार में (गमय) पहुँचा ।। १८ । ७० ।।

[हे इन्द्र=सेनेश ! त्वं मृधो विजहि]

भावार्थः—सेनेशेन संग्रामा जेतव्याः, **भावार्थ**—सेनापति संग्रामों को जीते।

[नः शत्रून् नीचा यच्छ]

तेन नीचकर्मकारिणां निग्रहः कर्त्तव्यः, वह नीच कर्म करने वालों को निग्रह=गिरफ्तार करे।

[यो ऽस्मानभिदासति तमधरं तमो गमय]

राजप्रजाविरोधकारयिता भृशं दण्डनीयश्च ॥ १८ । ७० ॥ और राजा तथा प्रजा के विरोध करने वाले पुरुष को अधिक दण्ड देवे ॥ १८ । ७० ॥

भा० पदार्थः—विजहि=जेतव्यः । नीचा=नीचकर्मकारिणः । अभिदासति=विरोधं करोति ॥

भाष्यसार—**सेनापति का कर्त्तव्य**—इन्द्र=सब ऐश्वर्यों से सम्पन्न और शत्रुओं के विदारक सेनापति का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह विरोधी जनों के संघटन को सदा छिन्न-भिन्न किया करे, जिससे शत्रुओं की शक्ति न बढ़ सके। और राज्य में नीच कार्यों में प्रवृत्त हों, उनको पकड़ करके अन्धकार मय कारागार में रक्खे और उन्हें यथोचित दण्ड भी अवश्य देवे ॥ १८ । ७० ॥ ●

जयः । **इन्द्रः**=सेनाध्यक्षः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

राजजनैः कीदृशैर्भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत ऽआजगन्था परस्याः ।
सृकꣳ सꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ७१ ॥

पदार्थः—(**मृगः**) मृगेन्द्रः=सिंहः (**न**) इव (**भीमः**) बिभेत्यस्मात् सः (**कुचरः**) यः कुत्सितां गतिं चरति सः (**गिरिष्ठाः**) यो गिरौ तिष्ठति सः (**परावतः**) दूरदेशात् (**आ**) समन्तात् (**जगन्थ**) गच्छ। अत्र पुरुषव्यत्ययः । अन्येषामपीति दीर्घश्च (**परस्याः**) शत्रूणां सेनाया उपरि (**सृकम्**) वज्रतुल्यं शस्त्रम्। सृक इति वज्रना० ॥ निघं० २ । २० ॥ (**संशाय**) सम्यक् सूक्ष्मबलान् कृत्वा (**पविम्**) पुनातु दुष्टान् दण्डयित्वा येन तम् (**इन्द्र**) सेनाध्यक्ष (**तिग्मम्**) तीक्ष्णीकृतम् (**वि**) (**शत्रून्**) (**ताढि**) आजहि (**वि**) (**मृधः**) (**नुदस्व**) ॥ १८ । ७१ ॥

प्रमाणार्थ—(**जगन्थ**) गच्छ। यहाँ पुरुष-व्यत्यय है तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से संहिता=मन्त्र में दीर्घ है। (**सृकम्**) वज्रतुल्यं शस्त्रम्। 'सृक' पद निघं० (२ । २०) में वज्र-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! त्वं कुचरो गिरिष्ठा भीमो मृगो न परावत आ जगन्थ परस्यास्तिग्मं पविं सृकं संशाय शत्रून् विताढि मृधो विनुदस्व च ॥ १८ । ७१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र! सेनाध्यक्ष! त्वं **कुचरः** यः कुत्सितां गतिं चरति सः **गिरिष्ठाः**

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सेनाध्यक्ष ! तू—(कुचरः) कुत्सित गति करने वाले, (गिरिष्ठाः)

यो गिरौ तिष्ठति सः **भीमः** बिभेत्यस्मात् सः **मृगः** मृगेन्द्रः=सिंहः **न** इव **परावतः** दूरदेशात् **आजगन्थ** समन्तात् गच्छ ।

परस्याः शत्रूणां सेनाया उपरि **तिग्मं** तीक्ष्णीकृतं **पविं** पुनातु दुष्टान् दण्डयित्वा येन तं **सृकं** वज्रतुल्यं शस्त्रं **संशाय** सम्यक् सूक्ष्मबलान् कृत्वा **शत्रून् वि+ताढि** आजहि **मृधो विनुदस्व च** ॥ १८ । ७१ ॥

गिरि=पर्वत पर रहने वाले, (भीमः) भयंकर, (मृगः) मृगेन्द्र=सिंह के (न) समान (परावतः) दूर देश से (आजगन्थ) सब ओर जा ।

(परस्याः) शत्रु-सेनाओं के ऊपर (तिग्मम्) तीक्ष्ण किए हुए, (पविम्) दुष्टों को दण्ड देकर पवित्र करने वाले (सृकम्) वज्र के तुल्य शस्त्र को (संशाय) सूक्ष्म करके शत्रु का (वि+ताढि) हनन कर, और (मृधः) संग्रामों को (विनुदस्व) दूर हटा ॥ १८ । ७१ ॥

[हे इन्द्र ! त्वं···मृगो न···आजगन्थ, परस्यास्तिग्मं···सृकं संशाय शत्रून् विताढि, मृधो विनुदस्व च]

भावार्थः—ये सेनापुरुषाः सिंहवत् पराक्रम्य तीक्ष्णैः शस्त्रैः शत्रुसेनाङ्गानि च्छित्त्वा संग्रामान् विजयन्ते, तेऽतुलां प्रशंसां प्राप्नुवन्ति; नेतरे क्षुद्राशया भीरवः ॥ १८ । ७१ ॥

भावार्थ—जो सेना के पुरुष सिंह के समान पराक्रम करके तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रु के सेना-अङ्गों का छेदन करके संग्रामों को जीतते हैं वे अतुल प्रशंसा को प्राप्त करते हैं; दूसरे क्षुद्राशय भीरु लोग नहीं ॥ १८ । ७१ ॥

भा० पदार्थः—मृधः=संग्रामान् । विनुदस्व=विजयस्व ।

भाष्यसार—**सेनाध्यक्ष कैसा होना चाहिए ?**—इन्द्रः=शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला सेना का अध्यक्ष पर्वतों में अथवा वनों में विचरण करने वाले सिंह के समान पराक्रमशाली तथा स्फूर्ति वाला हो । वह अपने विरोधी शत्रुओं को तीक्ष्ण शस्त्रादि से दण्ड देने वाला हो, और अपने प्रभाव से शत्रुओं को डराकर संग्रामों को ही दूर हटा देने वाला हो ॥ १८ । ७१ ॥

विश्वामित्रः । **अग्निः=सूर्यः** । आर्षी गायत्री । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

वैश्वानरो न ऽ ऊतय ऽ आ प्र यातु परावतः । अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

पदार्थः—**(वैश्वानरः)** विश्वेषु नरेषु यो राजते स एव **(नः)** अस्माकम् **(ऊतये)** रक्षाद्याय **(आ) (प्र) (यातु)** प्राप्नोतु **(परावतः)** दूरदेशात् **(अग्निः)** सूर्यः **(नः)** अस्माकम् **(सुष्टुतीः)** या शोभनाः स्तुतयस्ताः **(उप)** ॥ ७२ ॥

अन्वयः—हे सेनेश सभेश ! यथा वैश्वानरोऽग्निः सूर्यः परावतः सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोति तथा भवानूतये न आ प्र यातु यथाऽग्निर्विद्युत् संहितास्ति तथा त्वं नः सुष्टुतीरुपशृणु ॥ ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सेनेश सभेश ! यथा वैश्वानरः** विश्वेषु नरेषु यो राजते स एव **अग्निः=सूर्यः परावतः** दूरदेशात् **सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोति, तथा भवानूतये** रक्षाद्याय **नः** अस्माकम्

भाषार्थ—हे सेनापति एवं सभापति ! जैसे—(वैश्वानरः) सब नरों में राजमान=प्रकाशमान (अग्निः) सूर्य (परावतः) दूर देश से सब पदार्थों को प्राप्त होता है, वैसे आप (ऊतये) रक्षा

आ+प्र+यातु प्राप्नोतु ।

यथाऽग्निः=विद्युत् संहितास्ति तथा त्वं नः अस्माकं **सुष्टुतीः** या शोभनाः स्तुतयस्ताः **उपशृणु** ॥ १८ । ७२ ॥

आदि के लिए (नः) हमें (आ+प्र+यातु) सब ओर से प्राप्त होओ ।

जैसे—(अग्निः) विद्युत् संन्निकट है वैसे तू (नः) हमारी (सुष्टुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उपशृणु) सुन ॥ १८ । ७२ ॥

[हे सेनेश सभेश ! यथा वैश्वानरोऽग्निः=सूर्यः परावतः सर्वान् पदार्थान् प्राप्नोति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यः सूर्यवद् दूरस्थोऽपि न्यायेन सर्वान् पदार्थान् प्रकाशयति, यथा च दूरस्थोऽपि सद्गुणाढ्यो जनः प्रशस्यते तथा राजपुरुषैर्भवितव्यम् ॥ १८ । ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो सूर्य के समान दूर होकर भी न्याय से सब पदार्थों को प्रकाशित करता है, और जैसे दूर स्थित, सद्गुणों से भरपूर पुरुष प्रशंसित होता है वैसे राजपुरुष भी बनें ॥ १८ । ७२ ॥

भा० पदार्थः—वैश्वानरः=सद्गुणाढ्यो जनः ।

भाष्यसार—१. **राजपुरुष सूर्य के समान हों**—जैसे वैश्वानरः=सब पदार्थों में प्रकाशमान सूर्य बहुत दूर होता हुआ भी सब प्राणियों की रक्षा के निमित्त सबको प्राप्त होता है, वैसे ही सूर्यवत् प्रतापी राजपुरुष ऐसे प्रभावशाली हों, जो दूर होते हुए भी अपने प्रभाव से सबकी रक्षा करने वाले हों और प्रजा की बातों को सुनने वाले भी हों ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । दूरस्थ सूर्य के समान राजपुरुष न्यायादि से सब को प्रकाशित किया करें ॥ १८ । ७२ ॥

कुत्सः । **अग्निः=भौतिकाग्निः** । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजपुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

पृष्टो दिवि पृष्टो ऽ अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ऽ ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो ऽ अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥ ७३ ॥

पदार्थः—((**पृष्टः**) ज्ञातुमिष्टः (**दिवि**) सूर्ये (**पृष्टः**) (**अग्निः**) प्रसिद्धः पावकः (**पृथिव्याम्**) (**पृष्टः**) (**विश्वाः**) अखिलाः (**ओषधीः**) सोमयवाद्याः (**आ**) (**विवेश**) विष्टोऽस्ति (**वैश्वानरः**) विश्वस्य नेता स एव (**सहसा**) बलेन (**पृष्टः**) (**अग्निः**) विद्युत् (**सः**) (**नः**) अस्मान् (**दिवा**) दिवसे (**सः**) (**रिषः**) हिंसकात् (**पातु**) रक्षतु (**नक्तम्**) रात्रौ ॥ ७३ ॥

अन्वयः—मनुष्यैर्यो दिवि पृष्टोऽग्निः पृथिव्यां पृष्टोऽग्निर्जले वायौ च पृष्टोऽग्निः सहसा वैश्वानरः पृष्टोऽग्निर्विश्वा ओषधीराविवेश स दिवा स च नक्तं यथा पाति तथा सेनेशो भवान्नोऽस्मान् रिषः सततं पातु ॥ ७३ ॥

सपदार्थान्वयः—**मनुष्यैर्यो दिवि** सूर्ये **पृष्टः** ज्ञातुमिष्टः **अग्निः** प्रसिद्धः पावकः **पृथिव्यां पृष्टः** ज्ञातुमिष्टः **अग्निर्जले वायौ च**

भाषार्थ—मनुष्य—जो (दिवि) सूर्य में (पृष्टः) जानने योग्य (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि, (पृथिव्याम्) पृथिवी में (पृष्टः) जानने योग्य अग्नि,

पृष्टः ज्ञातुमिष्टः **अग्निः** विद्युत् **सहसा** बलेन **वैश्वानरः** विश्वस्य नेता स एव **पृष्टः** ज्ञातुमिष्टः **अग्निः** विद्युत् **विश्वाः** अखिलाः **ओषधीः** सोमयवाद्याः **आविवेश** विष्टोऽस्ति [इति वेद्यम] ।

जल और वायु में (पृष्टः) जानने योग्य (अग्निः) विद्युत्, (सहसा) बल से (वैश्वानरः) विश्व का नेता (पृष्टः) जानने योग्य (अग्निः) विद्युत् (विश्वाः) सब (ओषधीः) सोम, यव=जौ आदि ओषधियों में (आविवेश) प्रविष्ट है [ऐसा समझें] ।

स दिवा दिवसे **स च नक्तं** रात्रौ **यथा पाति तथा सेनेशो भवान्नो**=ऽस्मान् **रिषः** हिंसकात् **सततं पातु** रक्षतु ।। १८ । ७३ ।।

(सः) वह (दिवा) दिन में और (सः) वह (नक्तम्) रात में जैसे रक्षा करता है वैसे आप सेनापति (नः) हमारी (रिषः) हिंसक पुरुष से सदा (पातु) रक्षा करो ।। १८ । ७३ ।।

[यो दिवि पृष्टोऽग्निः, पृथिव्यां पृष्टोऽग्निः, अग्निर्विश्वा ओषधीराविवेश]

भावार्थः—ये मनुष्या आकाशस्थं सूर्यं, पृथिवीस्थं ज्वलितं, सर्वपदार्थव्यापिनं विद्युदग्निं च विद्वद्भ्यो निश्चित्य कार्येषु संयुञ्जते—

भावार्थ—जो मनुष्य आकाश में स्थित सूर्य को, पृथिवी में स्थित अग्नि को, और सब पदार्थों में व्यापक विद्युत् रूप अग्नि को विद्वानों से निश्चित जानकर कार्यों में संयुक्त करते हैं—

[स···नोऽस्मान् रिषः···पातु]

ते शत्रुभ्यो निर्भया जायन्ते ।। १८ । ७३ ।।

वे शत्रुओं से निर्भय रहते हैं ।। १८ । ७३ ।।

भाष्यसार—**अग्नि के समान राजपुरुषों का कर्त्तव्य**—जैसे वैश्वानरः=सब का नेता अग्नि द्युलोक में सूर्य के रूप में, वायु में विद्युद्रूप में, और पृथिवी तथा सब ओषधियों में भौतिकाग्नि के रूप में विद्यमान होकर सब प्राणियों की रक्षा करता है, वैसे ही जो राजपुरुष इस अग्नि को जानकर इस का उपयोग हिंसक वृत्ति वालों से रक्षा करने में करते हैं, वे सदा निर्भय रहते हैं ।। ७३ ।।

भरद्वाजः । **अग्निः**=**सेनेशः** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ।।

अथ प्रजाराजजनैरितरेतरं किं कार्यमित्याह ।।

अब प्रजा और राजपुरुषों को परस्पर क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती ऽ अ॒श्याम॑ र॒यिꣳ र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जराज॒रं ते ।। ७४ ।।

पदार्थः—(**अश्याम**) प्राप्नुयाम (**तम्**) (**कामम्**) (**अग्ने**) युद्धविद्यावित्सेनेश (**तव**) (**ऊती**) रक्षाद्यया क्रियया । **अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णः** (**अश्याम**) (**रयिम्**) राज्यश्रियम् (**रयिवः**) प्रशस्ता रययो विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ । **अत्र छन्दसीर इति मस्य वः** (**सुवीरम्**) शोभना वीराः प्राप्यन्ते यस्मात्तम् (**अश्याम**) (**वाजम्**) संग्रामविजयम् (**अभि**) (**वाजयन्तः**) संग्रामयन्तो=योधयन्तः (**अश्याम**) (**द्युम्नम्**) यशो धनं वा (**अजर**) जरादोषरहित (**अजरम्**) जरादोषरहितम् (**ते**) तव ।। १८ । ७४ ।।

प्रमाणार्थ—(**ऊती**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से पूर्व सवर्ण आदेश है । (**रयिवः**) यहाँ 'छन्दसीरः' (८ । २ । १५) से 'मतुप्' के 'म' के स्थान में 'व' आदेश है ।।

अन्वयः—हे अग्ने ! वयं तवोती तं काममश्याम । हे रयिवः सुवीरं रयिमश्याम वाजयन्तो वयं वाजमभ्यश्याम । हे अजर ! तेऽजरं द्युम्नमश्याम ॥ १८ । ७४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! युद्धविद्यावित्सेनेश ! **वयं तवोती** रक्षाद्यया क्रियया **तं काममश्याम** प्राप्नुयाम ।

हे **रयिवः** ! प्रशस्ता रययो विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ ! **सुवीरं** शोभना वीराः प्राप्यन्ते यस्मात्तं **रयिं** राज्यश्रियम् **अश्याम** प्राप्नुयाम ।

वाजयन्तः संग्रामयन्तो=योधयन्तः **वयं वाजं** संग्रामविजयम् **अभ्यश्याम** प्राप्नुयाम ।

हे **अजर** ! जरादोषरहित !=**ते** तव **अजरं** जरादोषरहितं **द्युम्नं** यशो धनं वा **अश्याम** प्राप्नुयाम ॥ १८ । ७४ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) युद्ध विद्या के वेत्ता सेनापति ! हम लोग—(तव) तेरी (ऊती) रक्षादि क्रिया से (तम्) अपनी अभीष्ट (कामम्) कामना को (अश्याम) प्राप्त करें ।

हे (रयिवः) प्रशस्त रयि=धनों वाले राजन् ! हम लोग—(सुवीरम्) उत्तम वीरों की प्राप्ति के निमित्त (रयिम्) राज्य-लक्ष्मी को (अश्याम) प्राप्त करें ।

(वाजयन्तः) संग्राम=युद्ध करते हुए हम लोग—(वाजम्) संग्राम में विजय को (अभ्यश्याम) प्राप्त करें ।

हे (अजर) जरा दोष से रहित राजन् ! हम (ते) तेरे (अजरम्) जरा दोष से रहित (द्युम्नम्) यश वा धन को (अश्याम) प्राप्त करें ॥१८ । ७४॥

[हे अग्ने ! वयं तवोती तं काममश्याम]

भावार्थः—प्रजास्थैर्मनुष्यै राजपुरुषरक्षया, राजपुरुषैः प्रजाजनरक्षणेन च परस्परं सर्वे कामाः प्राप्तव्याः ॥ १८ । ७४ ॥

भावार्थ—प्रजा के मनुष्य—राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजा जनों के रक्षण से परस्पर सब कामनाओं को प्राप्त करें ॥१८ । ७४ ॥

भाष्यसार—**सेनापति कैसा होना चाहिए ?**—अग्ने=युद्ध विद्या की कलाओं का वेत्ता, रयिवः=प्रशस्त ऐश्वर्यों वाला, अजर=बुढ़ापे से रहित नवयुवक, निष्कलङ्क यश से प्रसिद्ध प्रजा की रक्षा करने वाला और श्रेष्ठ-पुरुषों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला सेनापति होना चाहिए । तब ही संग्राम में विजय और ऐश्वर्य की वृद्धि निरन्तर होती रहती है ॥ १८ । ७४ ॥

उत्कीलः । **अग्निः**=विद्वान् । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुरुषार्थेन किं साध्यमित्याह ॥

पुरुषार्थ से क्या सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वयं ते ऽ अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्त्रेधता मन्मना विप्रो ऽ अग्ने ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(वयम्) (ते) तव (**अद्य**) अस्मिन्दिने (**ररिम**) दद्मः । रा दाने लिट् । अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः । (हि) खलु (**कामम्**) (**उत्तानहस्ताः**) उत्तानावूर्ध्वंगतावभयदातारौ हस्तौ येषां ते (**नमसा**) सत्कारेण (**उपसद्य**) सामीप्यं प्राप्य (**यजिष्ठेन**) अतिशयेन यष्टृ=संगन्तृ तेन (**मनसा**) विज्ञानेन (**यक्षि**) यजसि (**देवान्**) विदुषः (**अस्त्रेधता**) इतस्ततो गमनरहितेन=स्थिरेण (**मन्मना**) येन मन्यते=विजानाति तेन (**विप्रः**) मेधावी (**अग्ने**) विद्वन् ॥ १८ । ७५ ॥

प्रमाणार्थ—(ररिम) यहाँ 'रा दाने' धातु से लिट् लकार है। तथा 'अन्येषामपि दृश्यते' (६।३।१३७) से संहिता=मन्त्र में दीर्घ है॥

अन्वयः—हे अग्ने! उत्तानहस्ता वयं ते नमसोपसद्याद्य कामं हि ररिम यथा विप्रोऽस्रेधता मन्मना यजिष्ठेन मनसा देवान् यजति संगच्छते यथा च त्वं यक्षि तथा वयमपि यजेम॥ १८।७५॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**! विद्वान्! **उत्तानहस्ताः** उत्तानावूर्ध्वगतावभयदातारौ हस्तौ येषां ते **वयं ते** तव **नमसा** सत्कारेण **उपसद्य** सामीप्यं प्राप्य **अद्य** अस्मिन्दिने **कामं हि** खलु **ररिम** दद्मः।

यथा विप्रः मेधावी **अस्रेधता** इतस्ततो गमन-रहितेन=स्थिरेण **मन्मना** येन मन्यते=विजानाति तेन **यजिष्ठेन** अतिशयेन यष्टृ=सङ्गन्तृ तेन **मनसा** विज्ञानेन **देवान्** विदुषः **यजति**=सङ्गच्छते, **यथा च त्वं यक्षि** यजसि, **तथा वयमपि यजेम**॥१८।७५॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान्! (उत्तान-हस्ताः) ऊपर को किए अभय-दाता हाथों वाले (वयम्) हम लोग—(ते) तेरे (नमसा) सत्कार से (उपसद्य) समीप होकर (अद्य) आज (कामम्) इच्छा को (हि) निश्चय से (ररिम) प्रदान करते हैं।

जैसे—(विप्रः) मेधावी पुरुष (अस्रेधता) इधर-उधर गति से रहित अर्थात् स्थिर (मन्मना) मनन=ज्ञान के साधन, (यजिष्ठेन) अत्यन्त यष्टा=संगन्ता (मनसा) विज्ञान-युक्त मन से (देवान्) विद्वानों का (यजति) संग करता है, और जैसे तू—(यक्षि) संग करता है वैसे हम भी विद्वानों का संग करें॥ १८।७५॥

[हे अग्ने…वयं…कामं हि ररिम, विप्र…देवान् यजति=सङ्गच्छते]

भावार्थः—ये मनुष्याः पुरुषार्थेनालङ्कामाः स्युस्ते विद्वत्संगेनैतत् प्राप्तुं शक्नुयुः॥ १८।७५॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थ से कामना को पूर्ण करना चाहें वे विद्वानों के संग से उसे प्राप्त कर सकते हैं॥ १८।७५॥

भाष्यसार—**विद्वद्धर्म का वर्णन**—विप्रः=मेधा-सम्पन्न विद्वान् मनुष्य स्थिर-चित्त होकर विज्ञान-युक्त मन से विद्वानों की संगति से सदा उन्नति किया करें। और दूसरे मनुष्य भी विद्वानों की संगति से और पुरुषार्थ से अपनी-अपनी कामनाओं की पूर्ति सदा किया करें॥ १८।७५॥ ●

उत्कीलः। **विश्वेदेवाः**=सर्वे विद्वांसः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

अथ सर्वविद्वत्कर्त्तव्यमाह॥

अब सब विद्वानों के कर्त्तव्य का उपदेश किया है॥

धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः। सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे॥७६॥

पदार्थः—(**धामच्छत्**) यो धामानि छादयति=संवृणोति सः (**अग्निः**) विद्वान् (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् (**ब्रह्मा**) चतुर्वेदवित् (**देवः**) विद्यादाता (**बृहस्पतिः**) अध्यापकः (**सचेतसः**) ये चेतसा=प्रज्ञया सह वर्त्तन्ते (**विश्वे**) सर्वे (**देवाः**) विद्वांसः (**यज्ञम्**) उक्तम् (**प्र**) (**अवन्तु**) कामयन्ताम् (**नः**) अस्माकम् (**शुभे**) कल्याणाय॥ ७६॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! देवो धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा बृहस्पतिश्चेमे सचेतसो विश्वेदेवाः नः शुभे यज्ञं प्रावन्तु॥ ७६॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! देवः विद्यादाता **धामच्छद्** यो धामानि छादयति=संवृणोति सः **अग्निः** विद्वान् **इन्द्रः** परमैश्वर्यवान् **ब्रह्मा** चतुर्वेदविद् **बृहस्पतिः** अध्यापकः **चेमे सचेतसः** ये चेतसा=प्रज्ञया सह वर्त्तन्ते **विश्वे** सर्वे **देवाः** विद्वांसः **नः** अस्माकं **शुभे** कल्याणाय **यज्ञम्** उक्तं **प्रावन्तु** कामयन्ताम् ॥ १८ । ७६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (देवः) विद्या का दाता, (धामच्छद्) धामों को आच्छादित करने वाला, (अग्निः) विद्वान्, (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य वाला, (ब्रह्मा) चारों वेदों का वेत्ता और (बृहस्पतिः) अध्यापक ये (सचेतसः) चेत=प्रज्ञा से युक्त (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिए (यज्ञम्) पूर्वोक्त संग की (प्रावन्तु) कामना करें ॥ १८ । ७६ ॥

[**विश्वे देवा नः शुभे यज्ञं प्रावन्तु**]

भावार्थः—सर्वे विद्वांसः सर्वेषां सुखाय सततं सत्योपदेशान् कुर्वन्तु ॥ १८ । ७६ ॥

भावार्थ—सब विद्वान् लोग सब के सुख के लिए सत्य उपदेश करें ॥ १८ । ७६ ॥

भा० पदार्थः—शुभे=सुखाय । यज्ञम्=सत्योपदेशम् ॥

भाष्यसार—**विद्वद्धर्म का वर्णन**—देवाः=विद्यावृद्धि की कामना करने वाले, सचेतसः=प्रज्ञा सम्पन्न अग्नि के तुल्य विद्या से प्रदीप्त चारों वेदों के विद्वान् और अध्यापन कार्य में रत शिक्षक सब प्राणियों की भलाई के लिए यज्ञ=विद्वानों का सत्कार, संगति और सद्विद्यादि का दान सदा किया करें ॥ १८ । ७६ ॥

उशना । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ सभेशसेनेशयोः कर्त्तव्यमाह ॥

अब सभापति तथा सेनापति के कर्त्तव्य का उपदेश किया है ॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(**त्वम्**) सभेशः (**यविष्ठ**) अतिशयेन युवन् (**दाशुषः**) विद्यादातॄन् (**नॄन्**) अध्यापकान्मनुष्यान् (**पाहि**) (**शृणुधि**) **अत्रान्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः** । (**गिरः**) विदुषां विद्यासुशिक्षिता वाचः (**रक्ष**) **अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः** । (**तोकम्**) पुत्रादिकम् (**उत**) (**त्मना**) आत्मना ॥ ७७ ॥

प्रमाणार्थ—(**शृणुधि**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से संहिता=मन्त्र में दीर्घ है । (रक्ष) यहाँ द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से संहिता=मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे यविष्ठ राजन् ! त्वं दाशुषो नॄन् पाह्येतेषां गिरः शृणुधि यो वीरो युद्धे म्रियेत तस्य तोकं त्मना रक्षोतापि स्त्रियादिकं च ॥ ७७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **यविष्ठ** != **राजन्** ! अतिशयेन युवन् ! त्वं सभेशः **दाशुषः** विद्यादातॄन् **नॄन्** अध्यापकान्मनुष्यान् **पाहि**, **एतेषां गिरः** विदुषां विद्या-सुशिक्षिता वाचः **शृणुधि** ।

यो वीरो युद्धे म्रियेत तस्य तोकं पुत्रादिकं

भाषार्थ—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवक राजन् ! (त्वम्) तू सभापति होकर (दाशुषः) विद्या के दाता (नॄन्) अध्यापक लोगों की (पाहि) रक्षा कर; इन (गिरः) विद्वानों की विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणियों को (शृणुधि) सुन ।

जो वीर पुरुष युद्ध में मर जावे उसके (तोकम्)

त्मना आत्मना रक्षोत=अपि स्त्रियादिकं च ॥

पुत्र आदि की (त्मना) आत्मा से (रक्ष) रक्षा कर (उत) और उसकी स्त्री आदि की भी रक्षा कर ॥

[हे यविष्ठ=राजन् त्वं दाशुषो नॄन् पाहि, एतेषां गिरः शृणुधि]

भावार्थः—सभेशसेनेशयोर्द्वे कर्मणी अवश्यं कर्त्तव्ये स्तः—एकं-विदुषां पालनं तदुपदेशश्रवणं च,

भावार्थ—सभापति और सेनापति को दो कार्य अवश्य करने चाहिए—पहला विद्वानों का पालन और उनके उपदेश का श्रवण,

[यो वीरो युद्धे म्रियेत तस्य तोकं त्मना रक्ष, उत=अपि स्त्रियादिकं च]

द्वितीयं—युद्धे हतानामपत्यस्त्र्यादिपालनं च, एवं समाचरतां पुरुषाणां सदा विजयः, श्रीः सुखानि च भवन्तीति विद्वद्भिर्ध्येयम् ॥ १८ । ७७ ॥

दूसरा—युद्ध में मरे वीरों के पुत्र और स्त्री आदि का पालन करे। इस प्रकार करने वाले पुरुषों को सदा विजय, श्री=लक्ष्मी और सुख प्राप्त होते हैं, ऐसा विद्वानों को जानने योग्य है ॥

भा० पदार्थः—यविष्ठ=सभेश, सेनेश। दाशुषः=विदुषः। गिरः=उपदेशः। तोकम्=अपत्यम् ।

भाष्यसार—विद्वान् सभापति तथा सेनापति का कर्त्तव्य—सभापति आदि राजपुरुषों का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे दाशुषः=विद्या के दाता अध्यापक अथवा उपदेशकों की सदा रक्षा किया करें। और उनकी दी गई शिक्षाओं को ध्यान से सुनें। और दूसरा कर्त्तव्य यह है कि युद्ध में मारे गये पुरुषों की सन्तानादि की रक्षा अपनी सन्तान की तरह किया करें। इससे राज्य में सदा ऐश्वर्य की वृद्धि और शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है। १८। ७७ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह]

अत्र गणितविद्याराजप्रजापठकपाठककर्मादि-वर्णनादेतदध्यायोक्तार्थानां पूर्वाध्यायोक्तार्थैः सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥ १८ । ७७ ॥

इस अध्याय में गणित-विद्या, राजा, प्रजा, पढ़ने-पढ़ाने वालों के कर्म आदि के वर्णन से इस अध्याय में प्रतिपादित अर्थों की पूर्व अध्याय में प्रतिपादित अर्थों के साथ संगति है; ऐसा जानें ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे अष्टादशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

॥ ओ३म् ॥

❋ अथैकोनविंशोऽध्यायारम्भः ❋

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व ॥ १ ॥

य० ३० । ३ ॥

प्रजापतिः । **ओम्ः**=ऐश्वर्य्ययुक्तो वैद्यः । निचृच्छक्वरी । धैवतः ॥

मनुष्यैर्धर्मार्थकाममोक्षसिद्धये किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अब उन्नीसवें अध्याय का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

स्वा॒द्वीं त्वा॑ स्वा॒दुना॑ ती॒व्रां ती॒व्रेणा॒मृता॑म॒मृते॑न । मधु॑मतीं॒ मधु॑मता सृ॒जामि॒ सꣳसोमे॑न ।
सोमो॒ऽस्य॒श्विभ्यां॑ पच्यस्व॒ सर॑स्वत्यै पच्य॒स्वेन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ पच्यस्व ॥ १ ॥

पदार्थः—(**स्वाद्वीम्**) सुस्वादुयुक्ताम् (**त्वा**) त्वाम् (**स्वादुना**) मधुरादिना (**तीव्राम्**) तीक्ष्णस्वभावाम् (**तीव्रेण**) आशुकारिगुणेन (**अमृताम्**) अमृतात्मिकाम् (**अमृतेन**) सर्वरोगप्रहारकेण गुणेन (**मधुमतीम्**) प्रशस्तमधुरगुणयुक्ताम् (**मधुमता**) स्वादिष्ठगुणेन (**सृजामि**) निष्पादयामि (**सम्**) (**सोमेन**) सोमलताद्योषधिसमूहेन (**सोमः**) ऐश्वर्य्ययुक्तः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) व्याप्तविद्याभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्याम् (**पच्यस्व**) परिपक्वां कुरु (**सरस्वत्यै**) विद्यासुशिक्षितवाणीयुक्तायै स्त्रियै (**पच्यस्व**) (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्ययुक्ताय पुरुषाय (**सुत्राम्णे**) यः सर्वान् दुःखेभ्यः सुष्ठु त्रायते तस्मै (**पच्यस्व**) ॥ १ ॥

अन्वयः—हे वैद्य यस्त्वं ! सोमोऽसि तं त्वौषधीविद्यायां संसृजामि यथाऽहं यां स्वादुना सह स्वाद्वीं तीव्रेण सह तीव्राममृतेन सहाऽमृतां मधुमता सोमेन सह मधुमतीमोषधीं संसृजामि तथैतां त्वमश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्व सुत्राम्ण इन्द्राय पच्यस्व ॥ १ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वैद्य ! यस्त्वं **सोमः** ऐश्वर्ययुक्तः **असि, तं त्वा** त्वाम् **ओषधिविद्यायां सम्+सृजामि** निष्पादयामि ।

यथाऽहं यां स्वादुना मधुरादिना **सह स्वाद्वीं**

भावार्थ—हे वैद्य ! जो तू—(सोमः) ऐश्वर्य से युक्त है सो (त्वा) तुझे ओषधि विद्या में (सम्+सृजामि) निष्पन्न करता हूँ ।

जैसे मैं जिस—(स्वाद्वीम्) उत्तम स्वाद से

सुस्वादुयुक्तां **तीव्रेण** आशुकारिगुणेन **सह तीव्रां** तीक्ष्णस्वभावाम् **अमृतेन** सर्वरोगप्रहारकेण गुणेन **सहाऽमृताम्** अमृतात्मिकां **मधुमता** स्वादिष्ठगुणेन **सोमेन** सोमलताद्योषधिसमूहेन **सह मधुमतीं** प्रशस्त-मधुरगुणयुक्ताम् **ओषधीं संसृजामि** निष्पादयामि, **तथैतां त्वमश्विभ्यां** व्याप्तविद्याभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्यां **पच्यस्व** परिपक्वां कुरु, **सरस्वत्यै** विद्यासुशिक्षित-वाणीयुक्तायै स्त्रियै **पच्यस्व** परिपक्वां कुरु, **सुत्राम्णे** यः सर्वान् दुःखेभ्यः सुष्ठु त्रायते तस्मै **इन्द्राय** ऐश्वर्य-युक्ताय पुरुषाय **पच्यस्व** परिपक्वां कुरु ॥ १९ । १ ॥

युक्त, (तीव्रेण) शीघ्रकारी गुण से युक्त (तीव्राम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाली, (अमृतेन) सब रोगों के हारक गुण से युक्त (अमृताम्) अमृत रूप, (मधुमता) स्वादिष्ठ (सोमेन) सोम-लता आदि ओषधियों सहित (मधुमतीम्) प्रशस्त मधुर गुण वाली ओषधि को (संसृजामि) सिद्ध करता हूँ; वैसे इसे तू—(अश्विभ्याम्) विद्या में व्याप्त स्त्री-पुरुषों के लिए (पच्यस्व) पका, (सरस्वत्यै) विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी वाली विदुषी स्त्री के लिए (पच्यस्व) पका, (सुत्राम्णे) सब की दुःखों से रक्षा करने वाले, (इन्द्राय) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के लिए (पच्यस्व) पका ॥ १९ । १ ॥

[हे वैद्य !......त्वौषधीविद्यायां संसृजामि । यथाहं यां स्वादुना सह स्वाद्वीं......ओषधीं संसृजामि तथैतां त्वमश्विभ्यां पच्यस्व]

भावार्थः—मनुष्यैर्वैद्यकशास्त्ररीत्याऽनेकानि मधुरादिप्रशस्तस्वादयुक्तान्यौषधानि निर्माय तत्सेवनेनारोग्यं सम्पाद्य धर्मार्थकाममोक्षसिद्धये सततं प्रयतितव्यम् ॥ १९ । १ ॥

भावार्थ—मनुष्य-वैद्यक शास्त्र की रीति से अनेक मधुर आदि प्रशस्त स्वाद से युक्त ओषधों का निर्माण करके, उसके सेवन से आरोग्य को सिद्ध करके, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए सदा प्रयत्न करें ॥ १९ । १ ॥

भाष्यसार—**वैद्यों का कर्त्तव्य**—सोम=ऐश्वर्य सम्पन्न वैद्य अश्विभ्याम्=विद्या-सम्पन्न स्त्री पुरुषों के सुत्राम्णे=रोगादि दुःखों से रक्षा करने के लिए तीव्र स्वभाव वाली, रोगी को समूल नष्ट करने वाली सोमलतादि ओषधियों के गुणों को जान कर स्वादिष्ठ और मधुर ओषधों को सिद्ध किया करें ॥ १९ । १ ॥ ●

भारद्वाजः । **सोमः**=**ओषधिसारम्** । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए क्या करना चाहिए,
यह फिर उपदेश किया है ॥

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य ऽ उत्तमꣳ हविः ।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

पदार्थः—(**परि**) सर्वतः (**इतः**) प्राप्तः (**सिञ्चत**) अत्राऽन्येषामपीति दीर्घः । (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**सोमः**) प्रेरको विद्वान् (**यः**) (**उत्तमम्**) (**हविः**) अत्तुमर्हम् (**दधन्वान्**) धरन् सन् (**यः**) (**नर्यः**) नरेषु साधुः (**अप्सु**) जलेषु (**अन्तः**) मध्ये (**आ**) (**सुषाव**) निष्पादयेत् (**सोमम्**) ओषधिसारम् (**अद्रिभिः**) मेघैः ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**सिञ्चत**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से मन्त्र में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! य उत्तमं हविः सोम इतः स्याद्यो नर्यो दधन्वानप्स्वन्तरासुषाव तमद्रिभिः सुतं सोमं यूयं परिसिञ्चत ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! य उत्तमं हविः** अत्तुमर्हं **सोमः** प्रेरको विद्वान् **इतः** प्राप्तः **स्याद् यो नर्यः** नरेषु साधुः **दधन्वान्** धरन् सन् **अप्सु** जलेषु **अन्तः** मध्ये **आसुषाव** निष्पादयेत्, **तमद्रिभिः** मेघैः **सुतं** निष्पन्नं **सोमम्** ओषधिसारं **यूयं परि+सिञ्चत** (सर्वतः सिञ्चत) ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (उत्तमम्) उत्तम (हविः) भोज्य पदार्थ को (सोमः) शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाला विद्वान् (इतः) प्राप्त होवे, जो (नर्यः) नरों में श्रेष्ठ विद्वान् (अप्सु) जलों के (अन्तः) मध्य में ओषधियों को (दधन्वान्) रख कर (आसुषाव) आसव को सिद्ध करे उस (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) निष्पन्न (सोमम्) ओषधियों के सार को तुम (परि+सिञ्चत) सब ओर सींचो ॥ १६ । २ ॥

[हे मनुष्याः ! य उत्तमं हविः सोमः···अप्स्वन्तरासुषाव, तं···सोमं यूयं परि+सिञ्चत]

भावार्थः—मनुष्यैरुत्तमा ओषधीर्जले संस्थाप्य मथित्वा ऽऽसवं निस्सार्यनिन यथायोग्यं जाठराग्निं सेवित्वा बलारोग्ये वर्द्धनीये ॥ १६ । २ ॥

भावार्थ—मनुष्य उत्तम ओषधियों को जल में स्थापित करके, उनका मन्थन कर, आसव निकाल कर इससे यथायोग्य जाठराग्नि की सेवा करके बल और आरोग्य को बढ़ावें ॥ १६ । २ ॥

भा० पदार्थः—हविः=ओषधीः । आसुषाव=आसवं निस्सारयेत् ।

भाष्यसार—**ओषधियों का सेवन कैसे करें**—सोम=ओषधि-विज्ञान के वेत्ता श्रेष्ठ वैद्य जल में ओषधियों का मन्थन करके सोमम्=ओषधियों के सारभूत आसव को सिद्ध करें । उस आसव का सेवन करके सब मनुष्य स्वास्थ्य प्राप्त करें ॥ १६ । २ ॥

आभूतिः । **सोमः=ओषधिः** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो ऽ अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो ऽ अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**वायोः**) पवनात् (**पूतः**) शुद्धः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरेण (**प्रत्यङ्**) यः प्रत्यक्षमञ्चति=प्राप्नोति सः (**सोमः**) सोमलताद्योषधिगणः (**अतिद्रुतः**) योऽतिद्रवति सः (**इन्द्रस्य**) इन्द्रियस्वामिनो जीवस्य (**युज्यः**) युक्तः (**सखा**) मित्रमिव (**वायोः**) शुद्धाच्छुद्धिनिमित्तात् (**पूतः**) निर्मलः (**पवित्रेण**) शुद्धिकरेण कर्मणा (**प्राङ्**) प्रकृष्टतयाऽञ्चति सः (**सोमः**) निष्पादितौषधिरसः (**अतिद्रुतः**) अत्यन्तं शीघ्रकारी (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य राज्ञः (**युज्यः**) समाधातुमर्हः (**सखा**) सुहृदिव ॥ १६ । ३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यः सोमः प्राङतिद्रुतो वायोः पवित्रेण पूत इन्द्रस्य युज्यः सखेवास्ति यश्च सोमः प्रत्यङ्ङतिद्रुतो वायोः पवित्रेण पूत इन्द्रस्य युज्यः सखेवास्ति तं यूयं सततं सेवध्वम् ॥ १६।३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः! यः सोमः** सोमलताद्योषधिगणः **प्राङ्** प्रकृष्टतयाऽञ्चति **सः अतिद्रुतः** योऽतिद्रवति सः **वायोः** पवनात् **पवित्रेण** शुद्धिकरेण **पूतः** शुद्धः **इन्द्रस्य** इन्द्रियस्वामिनो जीवस्य **युज्यः** युक्तः **सखा** मित्रम् **इवास्ति, यश्च सोमः** निष्पादितौषधिरसः **प्रत्यङ्** यः प्रत्यक्षमञ्चति=प्राप्नोति सः **अतिद्रुतः** अत्यन्तं शीघ्रकारी **वायोः** शुद्धाच्छुद्धिनिमित्तात् **पवित्रेण** शुद्धिकरेण कर्मणा **पूतः** निर्मलः **इन्द्रस्य** परमैश्वर्ययुक्तस्य राज्ञः **युज्यः** समाधातुमर्हः **सखा** सुहृद् **इवास्ति, तं यूयं सततं सेवध्वम्** ॥ १९ । ३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (सोमः) सोमलता आदि ओषधि-गण—(प्राङ्) प्रकृष्ट गति वाला, (अतिद्रुतः) अत्यन्त द्रवशील, (वायोः) वायु के (पवित्रेण) पवित्र होने से (पूतः) शुद्ध, (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव का (युज्यः) युक्त=उचित (सखा) मित्र के समान है, और जो—(सोमः) निष्पादित तैयार किया हुआ ओषधियों का रस (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष प्राप्त होने वाला, (अतिद्रुतः) अत्यन्त शीघ्रकारी, (वायोः) शुद्धि के निमित्त वायु के (पवित्रेण) शुद्धिकारक यज्ञ कर्म से (पूतः) निर्मल, (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य से युक्त राजा का (युज्यः) युक्त (सखा) मित्र के समान है, उसका तुम सदा सेवन करो ॥ १९ । ३ ॥

[हे मनुष्याः ! यः सोमः प्राङ्/प्रत्यङ् अतिद्रुतो ··· वायोः पवित्रेण पूत इन्द्रस्य युज्यः सखेवास्ति]

भावार्थः—या ओषधयः शुद्धे स्थले जले वायौ चोत्पद्यन्ते पूर्वापरान् रोगान् शीघ्रं निस्सारयन्ति च ता मनुष्यैर्मित्रवत् सदा सेवनीयाः ॥ १९ । ३ ॥

भावार्थ—जो ओषधियाँ शुद्ध स्थल, जल और वायु में उत्पन्न होती हैं, जो पूर्व-अपर रोगों को शीघ्र निकाल देती हैं उनका मनुष्य मित्र के तुल्य सदा सेवन करें ॥ १९ । ३ ॥

भाष्यसार—कैसी ओषधियाँ शीघ्र गुणकारी होती हैं ?—जो ओषधियाँ शुद्ध स्थल में शुद्ध जल और वायु से पवित्र होती हैं और जो वायु को शुद्ध करने वाले यज्ञकर्म से पवित्र होती हैं, वे शीघ्र लाभ करने वाली और इन्द्रस्य=जीवों के लिए मित्र की तरह उपकारक होती हैं ॥ १९ । ३ ॥

आभूतिः । **सोमः=ओषधिः** । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह

मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिए क्या करना चाहिए,
यह फिर उपदेश किया है ॥

पुनाति॑ ते परि॒स्रुत॒ꣳ सोम॒ꣳ सूर्य॑स्य दु॒हि॒ता । वारे॑ण॒ शश्व॑ता॒ तना॑ ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**पुनाति**) पवित्रीकरोति (**ते**) तव (**परिस्रुतम्**) सर्वतः प्राप्तम् (**सोमम्**) ओषधिरसम् (**सूर्य्यस्य**) (**दुहिता**) पुत्रीवोषा (**वारेण**) वरणीयेन (**शश्वता**) सनातनेन गुणेन (**तना**) विस्तृतेन प्रकाशेन ॥ ४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्य ! या तना सूर्यस्य दुहितेवोषा शश्वता वारेण ते परिस्रुतं सोमं पुनाति तस्यां त्वमोषधिरसं सेवस्व ॥ ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्य ! या तना** विस्तृतेन प्रकाशेन **सूर्य्यस्य दुहिता=इवोषा** पुत्रीवोषा **शश्वता** सनातनेन गुणेन **वारेण**

भाषार्थ—हे मनुष्य ! जो (तना) विस्तृत प्रकाश से (सूर्यस्य) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के तुल्य उषा (शश्वता) सनातन (वारेण) वरण

वरणीयेन **ते** तव **परिस्रुतं** सर्वतः प्राप्तं **सोमम्** ओषधिरसं **पुनाति** पवित्रीकरोति, **तस्यां त्वमोषधिरसं सेवस्व** ॥ १९ । ४ ॥

करने योग्य गुण से (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब ओर से प्राप्त (सोमम्) ओषधि-रस को (पुनाति) पवित्र करती है, उस उषा-काल में तू ओषधि-रस का सेवन कर ॥ १९ । ४ ॥

[हे मनुष्य ! या···सूर्यस्य दुहितेवोषा···सोमं पुनाति, तस्यां त्वमोषधिरसं सेवस्व]

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्योदयात् प्राक् शौचं विधाय यथानुकूलमौषधं सेवन्ते, तेऽरोगा भूत्वा सुखिनो जायन्ते ॥ १९ । ४ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्योदय से पूर्व शौच=शुद्धि करके यथानुकूल औषध का सेवन करते हैं वे नीरोग रहकर सुखी होते हैं ॥ १९।४॥

भाष्यसार—**औषध सेवन का समय**—सूर्योदय से पूर्व, जब सूर्य की पुत्री की तरह उषा का आगमन-समय हो, उस समय औषध-सेवन से शरीरादि की रोगों की निवृत्ति होने से पवित्रता होती है। इस समय में औषध-सेवन से वरण करने योग्य गुणों की प्राप्ति होती है ॥ १९ । ४ ॥

आभूतिः । **सोमः**=**ओषधिः** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज ऽ इन्द्रियꣳ सुरया सोमः सुत ऽ आसुतो मदाय ।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**ब्रह्म**) विद्वत्कुलम् (**क्षत्रम्**) न्यायकारिक्षत्रियकुलम् (**पवते**) पवित्रीकरोति (**तेजः**) प्रागल्भ्यम् (**इन्द्रियम्**) मनआदिकम् (**सुरया**) या सूयते सा सुरा तया (**सोमः**) ओषधिरसः (**सुतः**) संपादितः (**आसुतः**) समन्ताद्रोगनिवारणे सेवितः (**मदाय**) हर्षाय (**शुक्रेण**) आशु शुद्धिकरेण (**देव**) सुखप्रदातः (**देवताः**) देवा एव देवतास्ताः (**पिपृग्धि**) प्रीणीहि (**रसेन**) (**अन्नम्**) भोज्यम् (**यजमानाय**) सुखप्रदात्रे (**धेहि**) धर ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे देव विद्वन् ! यः शुक्रेण मदाय सुरया सुत आसुतः सोमस्तेज इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्रं च पवते तेन रसेनान्नं यजमानाय धेहि देवताः पिपृग्धि ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव !=विद्वन् ! सुखप्रदातः ! **यः शुक्रेण** आशु शुद्धिकरेण **मदाय** हर्षाय **सुरया** या सूयते सा सुरा तया **सुतः** सम्पादितः **आसुतः** समन्ताद्रोगनिवारणे सेवितः **सोमः** ओषधिरसः **तेजः** प्रागल्भ्यम् **इन्द्रियं** मनआदिकं **ब्रह्म** विद्वत्कुलं **क्षत्रं** न्यायकारिक्षत्रियकुलं **च पवते** पवित्रीकरोति, **तेन रसेनान्नं** भोज्यं **यजमानाय** सुखप्रदात्रे **धेहि** धर, **देवताः** देवा एव देवतास्ताः **पिपृग्धि** प्रीणीहि ॥ १९ । ५ ॥

भाषार्थ—हे (देव) सुखों के दाता विद्वान् ! जो—(शुक्रेण) शीघ्र शुद्धि करने वाले यज्ञ से (मदाय) हर्ष-प्राप्ति के लिए (सुरया) सुरा के द्वारा (सुतः) सम्पादित किया हुआ, (आसुतः) सब ओर से रोग-निवारण में सेवन किया हुआ (सोमः) ओषधि-रस (तेजः) तेज को (इन्द्रियम्) मन आदि इन्द्रियों को (ब्रह्म) विद्वानों के कुल को, और (क्षत्रम्) न्यायकारी क्षत्रिय-कुल को (पवते) पवित्र करता है, उस रस से (अन्नम्) भोजन को (यजमानाय) सुखदाता यजमान के लिए (धेहि)

धारण कर, (देवताः) देवताओं=विद्वानों को (पिपृग्धि) तृप्त कर ॥ १९ । ५ ॥

[हे देव=विद्वन् ! यः'''सोमस्तेज इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्रं च पवते तेन रसेनान्नं यजमानाय धेहि]

भावार्थः—नात्र केनचिन्मनुष्येण नीरसमन्नमत्तव्यम्, सदा विद्या-शौर्य-बल-बुद्धिवर्द्धनाय महौषधिसारास्सेवनीयाः ॥ १९ । ५ ॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिए कि नीरस अन्न का सेवन न करें अपितु सदा विद्या, शौर्य, बल व बुद्धि-वर्द्धक औषधियों के सार का ही सेवन करें।

भा० पदार्थः—सोमः=महौषधिसारः । तेजः=शौर्यम् । इन्द्रियम्=बुद्धिः । ब्रह्म=विद्या । क्षत्रम्=बलम् ॥

भाष्यसार—**ओषधियों के रस से लाभ**—विद्वान् वैद्यों के उपदेशानुसार स्वास्थ्य लाभ के लिए शुद्धि करने वाले, सिद्ध किए गए ओषधियों के आसव के सेवन से तेज, ब्रह्म-शक्ति, क्षत्र-बल की प्राप्ति और इन्द्रियों की शुद्धि होती है ॥ १९ । ५ ॥ ●

आभूतिः । **इन्द्रः**=राजपुरुषः । विराट् प्रकृतिः । धैवतः ॥

राजपुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

राजपुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे। एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

पदार्थः—(कुवित्) बलम् । कुविदिति बलना० ॥ निघं० ३ । १ ॥ (**अङ्ग**) मित्र (**यवमन्तः**) बहवो यवा विद्यन्ते येषां ते (**यवम्**) यवादिधान्यम् (**चित्**) अपि (**यथा**) (**दान्ति**) छिन्दन्ति (**अनुपूर्वम्**) अनुकूलं प्रथमम् (**वियूय**) विभज्य (**इहेह**) अस्मिन् संसारे व्यवहारे च (**एषाम्**) कृषीवलानाम् (**कृणुहि**) कुरु (**भोजनानि**) पालनाभ्यवहरणानि वा (**ये**) (**बर्हिषः**) अन्नादिप्रापकाः (**नमउक्तिम्**) नमसामन्नादीनामुक्तिं=वृद्धय उपदेशम् (**यजन्ति**) ददति (**उपयामगृहीतः**) कर्षकादिभिः स्वीकृतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) द्यावापृथिवीभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**सरस्वत्यै**) कृषिकर्मप्रचारकायै वाचे (**त्वा**) (**इन्द्राय**) शत्रुविदारणाय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठुरक्षित्रे (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) कारणम् (**तेजसे**) प्रागल्भ्याय (**त्वा**) (**वीर्याय**) पराक्रमाय (**त्वा**) (**बलाय**) (**त्वा**) ॥ १९ । ६ ॥

प्रमाणार्थ—(**कुवित्**) 'कुवित्' यह पद निघं० ३ । १ में बल-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे अङ्ग ! ये बर्हिषो यवमन्तः कृषीवला नमउक्तिं यजन्त्येषां पदार्थानामिहेह त्वं भोजनानि कृणुहि यथैते यवं चिद्वियूयानुपूर्वं दान्ति तथा त्वमेषां विभावेन कुवित् प्रापय यस्य ते तवैष योनिरस्ति तं त्वाऽश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय सुत्राम्णे त्वा तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय ये यजन्ति यैर्वा त्वमुपयामगृहीतोऽसि तैस्त्वं विहर ॥ १९ । ६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अङ्ग** ! मित्र ! **ये बर्हिषः** अन्नादिप्रापकाः **यवमन्तः**=कृषीवला बहवो यवा विद्यन्ते येषां ते **नमउक्तिं** नमसामन्नादी-

भाषार्थ—हे (**अङ्ग**) मित्र ! जो (**बर्हिषः**) अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले (**यवमन्तः**) बहुत यव=जौ वाले किसान लोग (**नम उक्तिम्**) नमः=

नामुक्तिः=वृद्धय उपदेशं **यजन्ति** ददति, **एषां**=**पदार्थानां** कृषीवलानाम् **इहेह** अस्मिन् संसारे व्यवहारे च **त्वं भोजनानि** पालनाभ्यवहरणानि वा **कृणुहि** कुरु ।

अन्न आदि की उक्ति=वृद्धि के लिए उपदेश (यजन्ति) देते हैं (एषाम्) इनके पदार्थों एवं किसानों के—(इहेह) इस संसार में और व्यवहार में तू (भोजनानि) पालन वा खान-पानों को (कृणुहि) सिद्ध कर ।

यथैते यवं यवादिधान्यं **चिद्** अपि **वियूय** विभज्य **अनुपूर्वम्** अनुकूलं प्रथमं **दान्ति** छिन्दन्ति, **तथा त्वमेषां विभावेन कुवित्** बलं प्रापय ।

जैसे ये—(यवम्) जौ आदि धान्य को (चिद्) भी (वियूय) विभक्त करके (अनुपूर्वम्) अनुकूलता से प्रथम (दान्ति) छेदन करते हैं वैसे तू इनके धन से (कुवित्) बल को प्राप्त करा ।

यस्य ते=**तवैष योनिः** कारणम् **अस्ति, तं त्वा** त्वाम् **अश्विभ्यां** द्यावापृथिवीभ्यां **त्वा** त्वां **सरस्वत्यै** कृषिकर्मप्रचारकायै वाचे **त्वा** त्वाम् **इन्द्राय** शत्रुविदारणाय **सुत्राम्णे** सुष्ठुरक्षित्रे **त्वा** त्वां **तेजसे** प्रागल्भ्याय **त्वा** त्वां **वीर्याय** पराक्रमाय **त्वा** त्वां **बलाय ये यजन्ति** ददति, **यैर्वा त्वमुपयामगृहीतः** कर्षकादिभिः स्वीकृतः **असि, तैस्त्वं विहर** ।। १९।६।।

(ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) कारण है, सो (त्वा) तुझे (अश्विभ्याम्) द्युलोक और पृथिवी के लिए, (त्वा) तुझे (सरस्वत्यै) कृषि-कर्म की प्रचारक वाणी के लिए, (त्वा) तुझे (इन्द्राय) शत्रुओं के विदारण के लिए तथा (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक के लिए, (त्वा) तुझे (तेजसे) तेज के लिए, (त्वा) तुझे (वीर्याय) पराक्रम के लिए, (त्वा) तुझे (बलाय) बल के लिए जो (यजन्ति) दान करते हैं, अथवा जिन कृषक आदि के तू (उपयामगृहीतः) स्वीकार किया गया (असि) है उनके साथ तू विहार कर ।। १९ । ६ ।।

[ये···यवमन्त नमउक्ति यजन्ति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ।। ये राजपुरुषाः कृष्यादिकर्मकर्तॄन्, राज्ये करदातॄन्, परिश्रमिणो जनाँश्च प्रीत्या रक्षन्त्युपदिशन्ति तेऽस्मिन् संसारे सौभाग्यवन्तो भवन्ति ।। १९ । ६ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ।। जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने वाले, राज्य में कर देने वाले, परिश्रमी लोगों की प्रीतिपूर्वक रक्षा करते हैं, और उन्हें उपदेश देते हैं वे इस संसार में सौभाग्यशाली होते हैं ।। १९ । ६ ।।

भा० पदार्थः—यवमन्तः=कृष्यादिकर्मकर्तारः, राज्ये करदातारः, परिश्रमिणो जनाः ।

भाष्यसार—**१. राज-धर्म**—जो यवादि अन्नों को पैदा करके बढ़ाते हैं, उन कृषकों का सब प्रकार से पालन तथा प्रोत्साहनादि से सम्वर्धन करना राजा का मुख्य धर्म है । अन्नादि पदार्थों के बढ़ने से उत्तम रक्षा, ऐश्वर्य, पराक्रम तथा तेज की वृद्धि होती है ।

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । जैसे कृषक अन्नादि पदार्थों से सब की रक्षा करते हैं, वैसे ही राजादि भी कृषकों की रक्षा, तथा उनको कृषि-कर्म के लिए जलादि से सदा सहायता किया करें ।। १९ । ६ ।।

आभूतिः । **सोमः**=महौषधिगणः । विराड् जगती । निषादः ॥

राजप्रजे कथं स्यातामित्युपदिश्यते ॥

राजा और प्रजा कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया जाता है ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् ।
सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम ऽ एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

पदार्थः—(**नाना**) अनेकप्रकारेण (**हि**) किल (**वाम्**) युवाभ्याम् (**देवहितम्**) देवेभ्यः प्रियम् (**सदः**) स्थानम् (**कृतम्**) (**मा**) (**सं, सृक्षाथाम्**) संसर्गं कुरुतम् (**परमे**) उत्कृष्टे (**व्योमन्**) व्योम्नि=बुद्ध्यवकाशे (**सुरा**) सोमवल्ल्यादिलता । अत्र षुञ् अभिषवे इत्यस्माद्धातोरौणादिको रः प्रत्ययः ॥ (**त्वम्**) सा (**असि**) अस्ति (**शुष्मिणी**) बहु शुष्म=बलं यस्यामस्ति सा (**सोमः**) महौषधिगणः (**एषः**) (**मा**) माम् (**मा**) (**हिंसीः**) हिंस्याः (**स्वाम्**) स्वकीयाम् (**योनिम्**) कारणम् (**आविशन्ती**) समन्तात् प्रविशन्ती ॥ ७ ॥

प्रमाणार्थ—(सुरा) यहाँ 'षुञ् अभिषवे' इस धातु से औणादिक 'र' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे राजप्रजाजनौ ! नाना सदस्कृतं देवहितं वां प्राप्नोतु या हि स्वां योनिमाविशन्ती शुष्मिणी सुरास्ति त्वं परमे व्योमन् वर्तमानाऽसि तां युवां प्राप्नुतम् । मादकद्रव्याणि मा संसृक्षाथाम् । विद्वन् एष सोमोऽस्ति तं मा च त्वं मा हिंसीः ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजप्रजाजनौ ! **नाना** अनेकप्रकारेण **सदः** स्थानं **कृतं देवहितं** देवेभ्यः प्रियं **वां** युवाभ्यां **प्राप्नोतु** ।

या हि किल **स्वां** स्वकीयां **योनिं** कारणम् **आविशन्ती** समन्तात् प्रविशन्ती **शुष्मिणी** बहु शुष्म=बलं यस्यामस्ति सा **सुरा** सोमवल्ल्यादिलता **अस्ति, त्वं** सा **परमे** उत्कृष्टे **व्योमन्** व्योम्नि=बुद्ध्यवकाशे **वर्तमानाऽसि** अस्ति, **तां युवां प्राप्नुतम् । मादकद्रव्याणि मा संसृक्षाथाम्** संसर्गं कुरुतम् ।

विद्वन् ! एष सोमः महौषधिगणः **अस्ति, तं मा मां च त्वं मा हिंसीः** हिंस्याः ॥ १९ । ७ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुष और प्रजा-जनो ! (नाना) अनेक प्रकार से (सदः) स्थान (कृतम्) बनाया हुआ (देवहितम्) जो देवों को प्रिय है वह (वाम्) तुम्हें प्राप्त हो ।

जो (हि) निश्चय ही (स्वाम्) अपने (योनिम्) कारण में (आविशन्ती) आविष्ट होती हुई (शुष्मिणी) बहुत शुष्म=बल देने वाली (सुरा) सोमवल्ली आदि लता है । (त्वम्) वह (परमे) उत्कृष्ट (व्योमन्) बुद्धि-अवकाश में विद्यमान (असि) है, उसे तुम प्राप्त करो । मादक-द्रव्यों का संसर्ग मत करो ।

हे विद्वान् ! (एषः) यह (सोमः) महौषधियों का गण है उसे और (माम्) मुझे तू (मा हिंस्याः) नष्ट मत कर ॥ १९ । ७ ॥

[हे राजप्रजाजनौ !···या शुष्मिणी सुराऽस्ति···तां युवां प्राप्नुतम्, मादकद्रव्याणि मा संसृक्षाथाम्]

भावार्थः—ये राजप्रजास्थमनुष्या बुद्धिबलारोग्यायुर्वर्द्धकानोषधिरसान् सततं सेवन्ते, प्रमादकरांश्च, त्यजन्ति तेऽत्र परत्र च धर्मार्थकाममोक्षसाधका भवन्ति ॥ १९ । ७ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष और प्रजा-जन बुद्धि, बल, आरोग्य और आयु के वर्द्धक ओषधिरसों का सदा सेवन करते हैं और प्रमादक द्रव्यों का त्याग करते हैं वे इस लोक और परलोक में

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ॥ १९ । ७ ॥

भा० पदार्थः—शुष्मिणी=बुद्धिबलारोग्यायुर्वर्द्धिका । सुरा=ओषधिरसः ।

भाष्यसार—**कैसी ओषधियां सेवनीय हैं ?**—जो ओषधियाँ देवहितम्=विद्वानों को प्रिय तथा दिव्य गुणों को प्राप्त कराने वाली हों, शुष्मिणी=रोगनिवारक होने से शरीरस्थ धातुओं का पोषण करती हों, व्योमन्=बुद्धि को बढ़ाने वाली हों, वे सोम-लता आदि श्रेष्ठ ओषधियाँ सदा सेवनीय हैं और जो नशादि दुर्गुणों को प्राप्त करावें, उनका सदा परित्याग करना चाहिए ॥ १९ । ७ ॥

आभूतिः । **सोमः=सूर्यवत्तेजस्वी विद्वान्** । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्मनुष्यैः किं कर्त्तव्यमित्युपदिश्यते ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् ।
एष ते योनिर्मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे त्वा ॥ ८ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) उपगतैर्धर्म्यैर्यामैर्यमसम्बन्धिभिर्नियमैर्गृहीतः संयुतः (**असि**) (**आश्विनम्**) अश्विनोः=सूर्याचन्द्रमसोरिदम् (**तेजः**) प्रकाशः (**सारस्वतम्**) सरस्वत्या=वेदवाण्या इदम् (**वीर्यम्**) पराक्रमः (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रस्य=विद्युत इदम् (**बलम्**) (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) गृहम् (**मोदाय**) हर्षाय (**त्वा**) त्वाम् (**आनन्दाय**) परमसुखाय (**त्वा**) (**महसे**) महते सत्काराय (**त्वा**) ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे राजप्रजाजन ! यस्त्वमुपयामगृहीतोऽसि यस्य ते एष योनिरस्ति तस्य त आश्विनमिव तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रमिव बलञ्चास्तु तं त्वा मोदाय त्वानन्दाय त्वा महसे च सर्वे स्वीकुर्वन्तु ॥ ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे राजप्रजाजन ! **यस्त्वमुपयामगृहीतः** उपगतैर्धर्म्यैर्यामैर्यमसम्बन्धिभिर्नियमैर्गृहीतः संयुतः **असि, यस्य ते** तव **एषः योनिः** गृहम् **अस्ति, तस्य ते** तव **आश्विनम्** अश्विनोः=सूर्याचन्द्रमसोरिदम् **इव तेजः** प्रकाशः **सारस्वतं** सरस्वत्या=वेदवाण्या इदं **वीर्यं** पराक्रमः **ऐन्द्रम्** इन्द्रस्य=विद्युत इदम् **इव बलञ्चास्तु, तं त्वा** त्वां **मोदाय** हर्षाय **त्वा** त्वाम् **आनन्दाय** परमसुखाय **त्वा** त्वां **महसे** महते सत्काराय **च सर्वे स्वीकुर्वन्तु** ॥ १९ । ८ ॥

भाषार्थ—हे राजपुरुष और प्रजा-जन ! जो तू—(उपयामगृहीतः) धर्म-युक्त याम=यम सम्बन्धी नियमों से संयुक्त (असि) है, जो (ते) तेरा (एषः) यह (योनिः) घर है, सो (ते) तेरा (आश्विनम्) सूर्य और चन्द्रमा के समान (तेजः) प्रकाश, (सारस्वतम्) वेदवाणी के समान (वीर्यम्) पराक्रम, (ऐन्द्रम्) और इन्द्र=विद्युत् के समान (बलम्) बल हो, सो (त्वा) तुझे (मोदाय) हर्ष के लिए, (त्वा) तुझे (आनन्दाय) परम सुख के लिए और (त्वा) तुझे (महसे) महान् सत्कार के लिए सब स्वीकार करें ॥ १९ । ८ ॥

[हे राजप्रजाजन !···ते अश्विनमिव तेजः, सारस्वतं वीर्यम्, ऐन्द्रमिव बलं चास्तु]

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यचन्द्रवत्तेजस्विनो, विद्यापराक्रमा, विद्युद्बलिष्ठा भूत्वा—

भावार्थ—जो मनुष्य सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी, विद्या के तुल्य पराक्रमी, विद्युत् के समान बलिष्ठ होकर—

[तं त्वां मोदाय, आनन्दाय, महसे च सर्वे स्वीकुर्वन्तु]

स्वयमानन्दिनोऽन्येभ्यो ह्यानन्दं प्रददति, तेऽत्र परमानन्दभोगिनो भवन्ति ॥ १९ । ८ ॥

स्वयं आनन्दी होकर अन्यों को आनन्द प्रदान करते हैं वे यहाँ परमानन्द का भोग करने वाले होते हैं ॥ १९ । ८ ॥

भाष्यसार—तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य—आश्विनम्=सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी, सबको प्रसन्न करने वाला, विद्यादि गुणों से सम्पन्न, वेद-ज्ञान से प्रकाशमान और विद्युत् के समान स्फूर्ति से कार्य करने में कुशल विद्वान् पुरुष सबसे अधिक पूजनीय होता है। और वह स्वयं यमनियमों के अनुसार चलता हुआ दूसरों को भी धर्मयुक्त कार्यों में प्रेरित किया करे ॥ १९ । ८ ॥

आभूतिः । **सोमः**=शुभगुणकरो राजा । शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

पदार्थः—(तेजः) प्रागल्भ्यम् (असि) अस्ति । अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (तेजः) (मयि) (धेहि) (वीर्यम्) सर्वाङ्गस्फूर्तिः (असि) (वीर्यम्) (मयि) (धेहि) (बलम्) सर्वाङ्गदृढत्वम् (असि) (बलम्) (मयि) (धेहि) (ओजः) महाप्राणवत्वम् (असि) (ओजः) (मयि) (धेहि) (मन्युः) क्रोधः (असि) (मन्युम्) (मयि) (धेहि) (सहः) सहनम् (असि) (सहः) (मयि) (धेहि) ॥ १९ । ९ ॥

प्रमाणार्थ—(असि) अस्ति । यहाँ सर्वत्र पुरुष-व्यत्यय है ॥

अन्वयः—हे शुभगुणकर राजन् ! यत्त्वयि तेजोस्यस्ति तत्तेजो मयि धेहि यत्त्वयि वीर्यमसि तद्वीर्यं मयि धेहि यत्त्वयि बलमसि तद्बलं मयि धेहि यत्त्वय्योजोऽसि तदोजो मयि धेहि यस्त्वयि मन्युरसि तम्मन्युं मयि धेहि यस्त्वयि संहोसि तत्सहो मयि धेहि ॥ १९ । ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शुभगुणकर राजन् ! यत्त्वयि तेजः प्रागल्भ्यम् असि=अस्ति, तत्तेजः प्रागल्भ्यं मयि धेहि ।

यत्त्वयि वीर्यं सर्वाङ्गस्फूर्तिः **असि** अस्ति **तद्वीर्यं** सर्वाङ्गस्फूर्तिः **मयि धेहि** ।

यत्त्वयि बलं सर्वाङ्गदृढत्वम् **असि** अस्ति **तद्बलं** सर्वाङ्गदृढत्वं **मयि धेहि** ।

यत्त्वय्योजः महाप्राणवत्त्वम् **असि** अस्ति **तदोजः** महाप्राणवत्त्वं **मयि धेहि** ।

भाषार्थ—हे शुभगुणों को उत्पन्न करने वाले राजन् ! जो तुझ में (तेजः) तेज (असि) है उस (तेजः) तेज को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ।

जो (त्वयि) तुझ में (वीर्यम्) सब अङ्गों में स्फूर्ति (असि) है उस (वीर्यम्) स्फूर्ति को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ।

जो (त्वयि) तुझ में (बलम्) सब अङ्गों की दृढ़ता (असि) है वह (बलम्) सब अङ्गों की दृढ़ता को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ।

जो (त्वयि) तुझ में (ओजः) महाप्राणवत्ता (असि) है वह (ओजः) महाप्राणवत्ता (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ।

यस्त्वयि मन्युः क्रोधः **असि** अस्ति **तम्मन्युं** क्रोधं **मयि धेहि ।**

जो (त्वयि) तुझ में (मन्युः) क्रोध (असि) है उस (मन्युम्) क्रोध को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर।

यस्त्वयि सहः सहनम् **असि** अस्ति **तत्सहः** सहनं **मयि धेहि** ॥ १९ । ९ ॥

जो (त्वयि) तुझ में (सहः) सहनशक्ति (असि) है उसे (सहः) सहनशक्ति को (मयि) मुझ में (धेहि) धारण कर ॥ १९ । ९ ॥

[हे शुभगुणकर राजन् !···यस्त्वयि मन्युरसि=अस्ति तम्मन्युं मयि धेहि]

भावार्थः—सर्वान् मनुष्यान् प्रतीयमीश्वरस्याज्ञाऽस्ति—यान् शुभगुणकर्मस्वभावान् विद्वांसो धरेयुस्तानन्येष्वपि धारयेयुः ।

भावार्थ—सब मनुष्यों के लिए ईश्वर की यह आज्ञा है—जिन शुभ गुण, कर्म, स्वभावों को विद्वान् लोग धारण करें उन्हें अन्यों में भी धारण करावें।

यथा—दुष्टाचाराणामुपरि क्रोधं कुर्युस्तथा धार्मिकेषु प्रीतिं सततं कुर्युः ॥ १९ । ९ ॥

जैसे—दुष्टाचारियों पर क्रोध करें वैसे धार्मिकों पर सदा प्रीति करें ॥ १९ । ९ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) आप प्रकाश स्वरूप हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये। आप अनन्त पराक्रम युक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपा कटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये। आप अनन्त-बल युक्त हैं इसलिये मुझ में भी बल धारण कीजिये। आप अनन्त सामर्थ्य युक्त हैं मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये। आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुझ को भी वैसा ही कीजिए। आप निन्दा, स्तुति और स्व-अपराधियों को सहन करने वाले हैं कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिए। **(सत्यार्थ० सप्तमसमुल्लास)** ॥

(ख) **(तेजोऽसि०)** अर्थात् हे परमेश्वर ! आप प्रकाशरूप हैं मेरे हृदय में भी कृपा से विज्ञान रूप प्रकाश कीजिये **(वीर्यमसि०)** हे जगदीश्वर ! आप अनन्त पराक्रम वाले हैं मुझ को भी पूर्ण पराक्रम दीजिये **(बलमसि)** हे अनन्त बल वाले महेश्वर ! आप अपने अनुग्रह से मुझ को भी शरीर और आत्मा में पूर्ण बल दीजिये। **(ओजो०)** हे सर्वशक्तिमान् ! आप सब सामर्थ्य के निवास-स्थान हैं अपनी करुणा से यथोचित सामर्थ्य का निवास-स्थान मुझको भी कीजिये **(मन्युरसि०)** हे दुष्टों पर क्रोध करने हारे ! आप दुष्ट कामों और दुष्ट जीवों पर क्रोध करने का स्वभाव मुझ में भी रखिये। **(सहोऽसि०)** हे सब के सहन करने हारे ईश्वर ! आप जैसे पृथिवी आदि लोकों के धारण और नास्तिकों के दुष्ट व्यवहारों को सहते हैं वैसे ही सुख-दुःख, हानि-लाभ, सरदी-गरमी, भूख-प्यास और युद्ध आदि का सहने वाला मुझको भी कीजिये अर्थात् सब शुभ गुण मुझ को देके अशुभ गुणों से सदा अलग रखिये ॥ **ऋग्वेदादि० प्रार्थनायाचनासमर्पणविषयः** ॥

(ग) हे स्वप्रकाश ! अनन्त-तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किञ्च सत्य विज्ञान तेजःस्वरूप हो। आप कृपा-दृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो; जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊँ। हे अनन्तवीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो; आप सर्वोत्तम बल मुझ में भी स्थिर रखें। हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः=पराक्रमस्वरूप हो; सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो। हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ। हे अनन्त-सहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहन-सामर्थ्य धारण करो, अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी

मुझ में से दूर न हों। जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूँ और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूँ ॥ **आर्याभिविनय** २ । ६ ॥

भाष्यसार—राजा कैसा हो ?—जो परम तेजस्वी है, जिसके अङ्गों में स्फूर्ति है, जिसके सब शरीर के अवयव हृष्ट-पुष्ट हैं, जो प्राणशक्ति से सम्पन्न है और जो अन्याय करने वाले और शत्रुओं के प्रति क्रोध करने वाला हो, वह राजा होने योग्य है। राजा भी इन गुणों को दूसरे मनुष्यों में धारण करावे ॥ १९ । ९ ॥

हैमवर्चिः । **सोमः=राजा** । आर्ष्युष्णिक् । धैवतः ॥

पुनः स्त्रीपुरुषौ कथं वर्त्तेयातामित्याह ॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

या व्या॒घ्रं विषू॑चिको॒भौ वृकं॑ च॒ रक्ष॑ति । श्ये॒नं प॑त॒त्रिण॑ᳬ सि॒ᳬहᳬ सेमं पा॒त्वᳬह॑सः ॥ १० ॥

पदार्थः—(या) विदुषी स्त्री (**व्याघ्रम्**) यो विशेषेणाजिघ्रति तम् (**विषूचिका**) या विविधानर्थान् सूचयति सा (**उभौ**) (**वृकम्**) अजादीनां हन्तारम् (**च**) (**रक्षति**) (**श्येनम्**) यः शीघ्रं धावित्वान्यान् पक्षिणो हन्ति तम् (**पतत्रिणम्**) पतत्रः=शीघ्रं गन्तुं बहुवेगो यस्यास्ति तम् (**सिंहम्**) यो हस्त्यादीनपि हिनस्ति तम् (**सा**) (**इमम्**) (**पातु**) रक्षतु (**अंहसः**) मिथ्याचारात् ॥ १० ॥

अन्वयः—या विषूचिका व्याघ्रं वृकमुभौ पतत्रिणं श्येनं सिंहं च हत्वा प्रजां रक्षति सेमं राजानमंहसः पातु ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—या विदुषी स्त्री **विषूचिका** या विविधानर्थान् सूचयति सा **व्याघ्रं** यो विशेषेणाजिघ्रति तं **वृकम्** अजादीनां हन्तारम् **उभौ, पतत्रिणं** पतत्रः=शीघ्रं गन्तुं बहुवेगो यस्यास्ति तं **श्येनं** यः शीघ्रं धावित्वान्यान् पक्षिणो हन्ति तं **सिंहं** यो हस्त्यादीनपि हिनस्ति तं **च हत्वा प्रजां रक्षति, सेमं=राजानमंहसः** मिथ्याचारात् **पातु** रक्षतु ॥ १९ । १० ॥

भाषार्थ—(या) जो (विषूचिका) विविध अर्थों को सूचित करने वाली विदुषी स्त्री है वह—(व्याघ्रम्) विशेष घ्राणशक्ति वाले बाघ को, (वृकम्) अजा=बकरी आदि के घातक भेड़ियों (उभौ) इन दोनों को, (पतत्रिणम्) शीघ्र गति करने वाले पक्षी को, (श्येनम्) शीघ्र दौड़ कर अन्य पक्षियों को मारने वाले बाज को और (सिंहम्) हस्ती आदि के घातक सिंह को मारकर प्रजा की रक्षा करती है, वह रानी (इमम्) इस राजा को (अंहसः) मिथ्याचरण से (पातु) बचावे ॥ १९ । १० ॥

[या ··· व्याघ्रं वृकं ··· पतत्रिणं श्येनं सिंहं च हत्वा प्रजां रक्षति, सेमं राजानमंहसः पातु]

भावार्थः—यथा शूरवीरो राजा स्वयं व्याघ्रादिकं हन्तुं, न्यायेन प्रजा रक्षितुं स्वस्त्रियं प्रसादयितुं च शक्नोति तथैव राज्ञी भवेत्।

भावार्थ—जैसे शूरवीर राजा स्वयं व्याघ्र आदि को मारने, न्याय से प्रजा की रक्षा करने और स्व-स्त्री को प्रसन्न करने में समर्थ होता है वैसी ही रानी होवे।

यथा सुप्रियाचारेण राज्ञी स्वपतिं प्रमादात्

जैसे—उत्तम प्रियाचरण से रानी स्व-पति को

पृथक्कृत्य प्रसादयति, तथैव राजाऽपि तां सदा प्रसादयेत् ॥ १९ । १० ॥

प्रमाद से पृथक् करके प्रसन्न करती है वैसे ही राजा भी उसे सदा प्रसन्न करे ॥ १९ । १० ॥

भाष्यसार—**राज-प्रजा धर्म**—राजा का यह परम-धर्म है कि व्याघ्रादि हिंसक प्राणियों का वध करके प्रजा की सर्वथा रक्षा किया करे। प्रजा का धर्म यह है कि वह राजा को मिथ्याचरण से बचावे ॥ १९ । १० ॥

हैमवर्चिः । **अग्निः**=**विद्वान्** । शक्वरी । धैवतः ॥

सन्तानैः पितृभ्यां सह कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

सन्तानों को अपने माता पिता के साथ कैसे वर्तना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने ऽ अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ॥ ११ ॥

पदार्थः—(**यत्**) यः (**आपिपेष**) समन्तात् पिनष्टि (**मातरम्**) जननीम् (**पुत्रः**) (**प्रमुदितः**) प्रकृष्टत्वेन हर्षितः (**धयन्**) दुग्धं पिबन् (**एतत्**) वर्त्तमानं सुखम् (तत्) (**अग्ने**) विद्वन् (**अनृणः**) अविद्यमानम् ऋणं यस्य सः (**भवामि**) (**अहतौ**) न हतौ=हिंसितौ (**पितरौ**) माता पिता च द्वौ (**मया**) अपत्येन (**संपृचः**) ये सम्पृचन्ति ते (**स्थ**) भवत (**सम्**) (**मा**) माम् (**भद्रेण**) भजनीयेन व्यवहारेण (**पृङ्क्त**) बध्नीत (**विपृचः**) ये वियुञ्जते वियुक्ता भवन्ति ते (**स्थ**) (**वि**) (**मा**) (**पाप्मना**) पापेन (**पृङ्क्त**) संसर्गं कुरुत ॥ ११ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यद्यः प्रमुदितः पुत्रो दुग्धं धयन् मातरमापिपेष तेन पुत्रेणानृणो भवामि यतो मे पितरावहतौ मया भद्रेण सह वर्त्तमानौ च स्याताम् । हे मनुष्याः ! यूयं संपृचः स्थ मा भद्रेण सम्पृङ्क्त पाप्मना विपृचः स्थ माप्येतेन विपृङ्क्त तदेतत् सुखं प्रापयत ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** !=**विद्वन्** ! **यद्**=**यः प्रमुदितः** प्रकृष्टत्वेन हर्षितः **पुत्रो दुग्धं धयन्** पिबन् **मातरं** जननीम् **आपिपेष** समन्तात् पिनष्टि, **तेन पुत्रेणानृणः** अविद्यमानम् ऋणं यस्य सः **भवामि, यतो मे पितरौ** माता पिता च द्वौ **अहतौ** न हतौ=हिंसितौ **मया** अपत्येन **भद्रेण** भजनीयेन व्यवहारेण **सह वर्त्तमानौ च स्याताम्** ।

हे मनुष्याः ! **यूयं सम्पृचः** ये सम्पृचन्ति ते **स्थ** भवत, **मा** मां **भद्रेण** भजनीयेन व्यवहारेण **सम्पृङ्क्त** संबध्नीत । **पाप्मना** पापेन **विपृचः** ये वियुञ्जते वियुक्ता भवन्ति ते **स्थ** भवत, **मा माम् अप्येतेन वि+पृङ्क्त** विरुद्धं संसर्गं कुरुत **तदेतत्**=**सुखं** वर्त्तमानं सुखं **प्रापयत** ॥ १९ । ११ ॥

भावार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (यत्) जो (प्रमुदितः) अति हर्षित पुत्र (धयन्) दूध पीता हुआ (मातरम्) जननी को (आपिपेष) सब ओर से पीसता है उस पुत्र से (अनृणः) अनृण (भवामि) होता हूँ। जिससे मेरे (पितरौ) माता और पिता दोनों (अहतौ) अहिंसित होकर (मया) मुझ सन्तान से (भद्रेण) भद्र व्यवहारपूर्वक वर्ताव करने वाले हों।

हे मनुष्यो ! तुम—(सम्पृचः) धर्म से संयुक्त (स्थ) हो, (मा) मुझे (भद्रेण) भद्र व्यवहार से (सम्पृङ्क्त) सम्बद्ध करो। तुम—(पाप्मना) पाप से (विपृचः) वियुक्त हो (मा) मुझे भी इससे (विपृङ्क्त) वियुक्त करो और (तत्) उस (एतत्) इस वर्तमान सुख को प्राप्त कराओ ॥ १९ । ११ ॥

[हे अग्ने=विद्वन् ! यद्=यः ··· पुत्रो दुग्धं धयन् मातरमापिपेव तेन पुत्रेणानृणो भवामि]

भावार्थः—यथा मातापितरौ पुत्रं पालयतस्तथा पुत्रेण मातापितरौ सेवनीयौ, सर्वैरत्रेदं ध्येयं वयं मातापितरौ सेवित्वा पितृऋणान्मुक्ता भवेमेति ।

भावार्थ—जैसे माता-पिता पुत्र को पालते हैं वैसे पुत्र माता-पिता की सेवा करे । सबको यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि हम माता-पिता की सेवा करके पितृऋण से मुक्त होवें ।

[यूयं ··· मा भद्रेण सम्पृङ्क्त, पाप्मना विपृचः स्थ मा अप्येतेन विपृङ्क्त]

यथा विद्वांसौ धार्मिकौ पितरौ स्वापत्यानि पापाचरणाद् वियोज्य धर्माचरणे प्रवर्त्तयेतां, तथा सन्ताना अपि पितॄनेवं वर्त्तयेरन् ॥ १९ । ११ ॥

जैसे विद्वान् धार्मिक माता-पिता अपने सन्तानों को पापाचरण से पृथक् करके धर्माचरण में प्रवृत्त करते हैं वैसे—सन्तान भी माता-पिता के साथ इसी प्रकार वर्त्ताव करें ॥ १९ । ११ ॥

भा० पदार्थः—अनृणः=ऋणान्मुक्तः । भद्रेण=धर्माचरणेन ॥

भाष्यसार—**विद्वान् मनुष्य का कर्त्तव्य**—अनृणः=पितृ-ऋण से मुक्त होने के लिए यह अत्यावश्यक है कि विद्वान् मनुष्य माता-पिता की श्रद्धा से सेवा करे । उनके साथ सदा भद्र-व्यवहार करके उनको सर्वथा प्रसन्न रखे । जिससे माता-पिता किसी भी प्रकार से दुःखानुभव न करें ।

ऐसा ही माता-पिता भी अपनी सन्तान को भद्र धर्माचरण में प्रवृत्त करावें और पापाचरण से पृथक् रक्खें ॥ १९ । ११ ॥

हैमवर्चिः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मातापित्रपत्यानि परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

माता पिता और सन्तान परस्पर कैसे वर्तें, यह उपदेश किया है ॥

दे॒वा य॒ज्ञम॑तन्वत भेष॒जं भि॒षजा॒श्विना॑ । वा॒चा सर॑स्वती भि॒षगिन्द्रा॑येन्द्रि॒याणि॒ दध॑तः ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**देवाः**) विद्वांसः (**यज्ञम्**) सुखप्रदम् (**अतन्वत**) विस्तृतं कुरुत (**भेषजम्**) रोगप्रणाशकमोषधरूपम् (**भिषजा**) आयुर्वेदविदौ (**अश्विना**) आयुर्वेदांगव्यापिनौ (**वाचा**) तदानुकूल्यया वाण्या (**सरस्वती**)सरः=प्रशस्त आयुर्वेदबोधो विद्यते यस्याः सा (**भिषक्**) चिकित्साद्यङ्गवित् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**इन्द्रियाणि**) चक्षुरादीनि धनानि वा (**दधतः**) ॥ १२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथेन्द्रियाणि दधतो भिषक् सरस्वती भिषजाऽश्विना च देवा वाचेन्द्राय भेषजं यज्ञमतन्वत तथैव यूयं कुरुत ॥ १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथेन्द्रियाणि** चक्षुरादीनि धनानि वा **दधतो भिषक्** चिकित्साद्यङ्गवित् **सरस्वती** सरः=प्रशस्त आयुर्वेदबोधो विद्यते यस्याः सा **भिषजा** आयुर्वेदविदौ **अश्विना** आयुर्वेदाङ्गव्यापिनौ **च देवाः** विद्वांसः **वाचा** तदानुकूल्यया वाण्या **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **भेषजं** रोगप्रणाशकमौषधरूपं **यज्ञं** सुख-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(इन्द्रियाणि) चक्षु आदि इन्द्रियों वा धनों को (दधतः) धारण करने वाला (भिषक्) चिकित्सा आदि अङ्गों का वेत्ता वैद्य, (सरस्वती) आयुर्वेद का प्रशस्त बोध रखने वाली स्त्री, (भिषजा) आयुर्वेद के वेत्ता दो पुरुष और (अश्विना) आयुर्वेद के अङ्गों में व्यापक दो व्यक्ति तथा (देवाः) विद्वान् लोग

प्रदम् **अतन्वत** विस्तृतं कुरुत, **तथैव यूयं कुरुत** ॥ १९ । १२ ॥

(वाचा) आयुर्वेदानुकूल वाणी से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए (भेषजम्) रोगनाशक औषध रूप (यज्ञम्) सुखप्रद यज्ञ को (अतन्वत) विस्तृत करते हैं वैसे ही तुम करो ॥ १९ । १२ ॥

[हे मनुष्याः ! यथा···देवा वाचा इन्द्राय भेषजं यज्ञमतन्वत, तथैव यूयं कुरुत]

भावार्थः—यावन्मनुष्याः पथ्यौषधिब्रह्मचर्यसेवनेन शरीरारोग्यबलबुद्धीर्न वर्द्धयन्ते, तावत् सर्वाणि सुखानि प्राप्तुं नं शक्नुवन्ति ॥ १९ । १२ ॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य पथ्य, ओषधि, और ब्रह्मचर्य के सेवन से शरीर, आरोग्य, बल और बुद्धि को नहीं बढ़ाते हैं तब तक सब सुखों को प्राप्त नहीं कर सकते ॥ १९ । १२ ॥

भा० पदार्थः—भेषजम्=पथ्यौषधिब्रह्मचर्यसेवनम् । इन्द्राय=शरीरारोग्यबलबुद्धिवर्द्धनाय । यज्ञम्=सर्वं सुखम् ॥

भाष्यसार—**विद्वान् मनुष्यों का कर्त्तव्य**—भिषजा देवाः=आयुर्वेद विद्या के ज्ञाता विद्वान् स्त्री-पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि वे इन्द्रियादियुक्त शरीर को रोगमुक्त करने वाली भेषजम्=ओषधियों के ज्ञान रूप सुखप्रद यज्ञ का सदा विस्तार किया करें और दूसरों को भी इस विद्या का उपदेश किया करें ॥ १९ । १२ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशा जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह ॥

कैसे मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दी॒क्षायै॑ रू॒पꣳ शष्पा॑णि प्राय॒णीय॑स्य॒ तोक्मा॑नि ।

क्र॒यस्य॑ रू॒पꣳ सोम॑स्य ला॒जाः सो॑मा॒ꣳशवो॒ मधु॑ ॥ १३ ॥

पदार्थः—**(दीक्षायै)** यज्ञसाधननियमपालनाय **(रूपम्)** **(शष्पाणि)** आहत्य संशोध्य ग्राह्याणि धान्यानि **(प्रायणीयस्य)** प्रकृष्टं सुखं यन्ति येन व्यवहारेण तत्र भवस्य **(तोक्मानि)** अपत्यानि । तोक्मेत्यपत्यना० ॥ निघं० २ । २ ॥ **(क्रयस्य)** द्रव्यविक्रयस्य **(रूपम्)** **(सोमस्य)** ओषधीरसस्य **(लाजाः)** प्रफुल्लिता व्रीहयः **(सोमांशवः)** सोमस्यांशाः **(मधु)** क्षौद्रम् ॥ १३ ॥

प्रमाणार्थ—**(तोक्मानि)** अपत्यानि । 'तोक्म' पद निघं० २ । २ में अपत्य **(सन्तान)** नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यानि प्रायणीयस्य दीक्षायै रूपं तोक्मानि क्रयस्य रूपं शष्पाणि सोमस्य लाजाः सोमांशवो मधु च सन्ति तानि यूयमतन्वत ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यानि **प्रायणीयस्य** प्रकृष्टं सुखं यन्ति येन व्यवहारेण तत्र भवस्य **दीक्षायै** यज्ञसाधननियमपालनाय **रूपं** **तोक्मानि** अपत्यानि **क्रयस्य** द्रव्यविक्रयस्य **रूपं** **शष्पाणि** आहत्य=संशोध्य ग्राह्याणि धान्यानि

भाषार्थ—हे मनुष्यो !—जो (प्रायणीयस्य) उत्तम सुख को प्राप्त कराने वाले व्यवहार में विद्यमान पुरुष का (दीक्षायै) यज्ञ के साधन एवं नियमों के पालन के लिए (रूपम्) रूप है, (तोक्मानि) सन्तान हैं, (क्रयस्य) द्रव्य बेचने का

सोमस्य ओषधीरसस्य **लाजाः** प्रफुल्लिताः व्रीहयः **सोमांशवः** सोमस्यांशाः **मधु** क्षौद्रं **च सन्ति, तानि यूयमतन्वत** ॥ १९ । १३ ॥

(रूपम्) रूप है, (शष्पाणि) शुद्ध करके ग्रहण करने योग्य धान्य हैं, (सोमस्य) ओषधियों के रस से युक्त (लाजाः) फूले हुए चावल=खीलें हैं, (सोमांशवः) सोम के अंश और (मधु) मधु=शहद है उन्हें तुम (अतन्वत) विस्तृत करो=बढ़ाओ ॥ १९ । १३ ॥

[अनुवृत्तिमाह—]

भावार्थः—अत्रातन्वतेति क्रियापदं पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते ।

भावार्थ—यहां 'अतन्वत' इस पद की पूर्व मन्त्र से अनुवृत्ति है ।

[हे मनुष्याः ! यानि ··· तोक्मानि, शष्पाणि, लाजाः, सोमांशवो मधु च सन्ति तानि यूयमतन्वत]

ये मनुष्या यज्ञाऽर्हाण्यपत्यानि वस्तूनि च सम्पादयन्ति, तेऽत्र सुखं लभन्ते ॥ १९ । १३ ॥

जो मनुष्य यज्ञ के योग्य सन्तान और वस्तुओं को सिद्ध करते हैं वे यहाँ सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥

भा० पदार्थः—तोक्मानि=यज्ञार्हाण्यपत्यानि ।

भाष्यसार—विद्वान् यजनीय वस्तुओं का ही विस्तार करें—विद्वान् मनुष्य उत्तम सुख प्राप्त करने के लिए दीक्षा=यज्ञ के नियमों तथा यज्ञ के घृत मधु आदि साधनों को बढ़ावें। यज्ञ के साधन सर्वथा शुद्ध किए हुए और ओषधियों के रस से परिपूत होने चाहिए ॥ १९ । १३ ॥

हैमवर्चिः । **आतिथ्यादयो लिङ्गोक्ताः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशा जना यशस्विनो भवन्तीत्याह ॥

कैसे लोग यशस्वी होते हैं, यह उपदेश किया है ॥

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः । रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**आतिथ्यरूपम्**) अतिथीनां भावः कर्म्म वाऽऽतिथ्यं तद्रूपं च तत् (**मासरम्**) येनाऽतिथयो मासेषु रमन्ते तत् (**महावीरस्य**) महांश्चासौ वीरश्च तस्य (**नग्नहुः**) यो नग्नान् जुहोत्यादत्ते (**रूपम्**) सुरूपकरणम् (**उपसदाम्**) य उपसीदन्ति तेषामतिथीनाम् (**एतत्**) (**तिस्रः**) (**रात्रीः**) (**सुरा**) सोमरसः (**आसुता**) समन्तान्निष्पादिता ॥ १९ । १४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यानि मासरमातिथ्यरूपं महावीरस्य नग्नहू रूपमुपसदां तिस्रो रात्रीर्निवासनमेतद्रूपं सुता सुराऽऽसुता च सन्ति तानि यूयं गृह्णीत ॥ १९ । १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यानि मासरं येनाऽतिथयो मासेषु रमन्ते तत् **आतिथ्यरूपम्** अतिथीनां भावः कर्म्म वाऽऽतिथ्यं तद्रूपं च तत् **महावीरस्य** महांश्चासौ वीरश्च तस्य **नग्नहुः** यो नग्नान् जुहोत्यादत्ते **रूपं** सुरूपकरणम्, **उपसदां** य उपसीदन्ति तेषामतिथीनां **तिस्रो रात्रीर्निवासनमेतद्रूपं, सुता, सुरा** सोमरसः **आसुता** समन्तान्नि-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(मासरम्) जिससे अतिथि लोग मासों में रमण करते हैं वह (आतिथ्यरूपम्) अतिथि सत्कार रूप व्यवहार, (महावीरस्य) महान् वीर पुरुष का (नग्नहुः) नंगों को वस्त्र आदि देकर (रूपम्) सुरूप बनाना, (उपसदाम्) अतिथि जनों का (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रात निवास करना, और निचोड़ा हुआ (सुरा)

ष्पादिता **च सन्ति; तानि यूयं गृह्णीत** ॥१६ । १४॥ सोम-रस (आसुता) तैयार है, उन्हें तुम ग्रहण करो ॥ १६ । १४ ॥

[आतिथ्यरूपम्]

भावार्थः—ये मनुष्या धार्मिकाणां विदुषामतिथीनां सत्कारसङ्गोपदेशान्,

भावार्थ—जो मनुष्य धार्मिक विद्वान् अतिथि जनों का सत्कार, संग और उपदेश, और—

[महावीरस्य नग्नहू रूपम्]

वीराणां च मान्यं, दरिद्रेभ्यो वस्त्रादिदानं,

वीर पुरुषों का मान, दरिद्रों को वस्त्र आदि का दान,

[उपसदां तिस्रो रात्रीर्निवासनमेतद्रूपम्]

स्वभृत्यानामुत्तमं निवासदानं,

अपने भृत्यों=सेवकों को उत्तम निवास, और—

[सुराऽऽसुता च]

सोमरससिद्धिं च सततं कुर्वन्ति ते यशस्विनो जायन्ते ॥ १६ । १४ ॥

सोम-रस की सिद्धि सदा करते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥ १६ । १४ ॥

भाष्यसार—**आतिथ्य करने से यश की प्राप्ति**—जो विद्वान् मनुष्य मासरम्=मासादि कालों में परोपकारार्थ भ्रमण करते रहते हैं, जो महावीर हैं और जो वस्त्रादि से हीन दरिद्र हैं, उनके अचानक घर पर आ जाने पर कम से कम तीन रात तक सोमरसादि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार किया करें। ऐसा करने से उत्तम यशादि की प्राप्ति होती है ॥ १६ । १४ ॥

हैमवर्चिः । **सोमः**=ओषधिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कुमारीभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

कुमारी कन्याओं को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सोम॑स्य रू॒पं क्री॒तस्य॑ परि॒स्रुत्परि॑षिच्यते ।
अ॒श्विभ्यां॑ दु॒ग्धं भे॑ष॒जमिन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सर॑स्वत्या ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**सोमस्य**) सोमलताद्योषधिसमूहस्य (**रूपम्**) उत्तमस्वरूपम् (**क्रीतस्य**) गृहीतस्य (**परिस्रुत्**) यः परितः=सर्वतः स्रवति=प्राप्नोति स रसः (**परि**) सर्वतः (**सिच्यते**) (**अश्विभ्याम्**) वैद्यकविद्याव्यापिभ्यां विद्वद्भ्याम् (**दुग्धम्**) गवादिभ्यः पयः (**भेषजम्**) सर्वौषधम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्येच्छुकाय (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रो=विद्युद्देवता यस्य तद् विज्ञानम् (**सरस्वत्या**) प्रशस्तविद्याविज्ञानयुवतया पत्न्या ॥ १५ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियो ! यथा सरस्वत्या विदुष्या क्रीतस्य सोमस्य परिस्रुद्रूपमश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रं परिषिच्यते तथा यूयमप्याचरत ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रियः ! यथा सरस्वत्या=विदुष्या प्रशस्तविद्याविज्ञानयुक्तया

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे—(सरस्वत्या) प्रशस्त विद्या और विज्ञान से युक्त विदुषी पत्नी के

पत्न्या **क्रीतस्य** गृहीतस्य **सोमस्य** सोमलताद्योषधिसमूहस्य **परिस्रुत्** यः परितः=सर्वतः स्रवति=प्राप्नोति स रसः **रूपम्** उत्तमस्वरूपम् **अश्विभ्यां** वैद्यकविद्याव्यापिभ्यां विद्वद्भ्यां **दुग्धं** गवादिभ्यः पयः **भेषजं** सर्वौषधम् **इन्द्राय** ऐश्वर्येच्छुकाय **ऐन्द्रम्** इन्द्रो=विद्युद्देवता यस्य तद् विज्ञानं, **परिषिच्यते** तथा यूयमप्याचरत ॥ १९ । १५ ॥

द्वारा (क्रीतस्य) ग्रहण किए हुए (सोमस्य) सोमलता आदि ओषधियों को (परिस्रुत्) सब ओर से स्रवित होने वाला रसात्मक (रूपम्) उत्तम स्वरूप, (अश्विभ्याम्) वैद्यक विद्या में व्याप्त दो विद्वानों के द्वारा (दुग्धम्) गौ आदि से दुहा हुआ दूध रूप (भेषजम्) सब का औषध तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य के इच्छुक पुरुष के लिए (ऐन्द्रम्) इन्द्र=विद्युत् देवता वाला विज्ञान (परि+षिच्यते) सब सींचा जाता है, वैसा तुम भी आचरण करो ॥ १९ । १५ ॥

[हे स्त्रियः ! यथा सरस्वत्या=विदुष्या क्रीतस्य सोमस्य परिस्रुद् रूपम्, अश्विभ्यां दुग्धं भेषजम्, इन्द्रायैन्द्रं परिषिच्यते, तथा यूयमप्याचरत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। सर्वाभिः कुमारीभिर्ब्रह्मचर्येण व्याकरणधर्मविद्यायुर्वेदादीनधीत्य, स्वयंवरं विवाहं कृत्वा, प्रशस्तान्यौषधान्यौऽषधवदन्नव्यञ्जनानि च परिपच्य, सुरसैः संयोज्य, पत्यादीन् संभोज्य, स्वयं च भुक्त्वा, बलारोग्योन्नतिः सततं कार्या ॥ १९ । १५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ सब कुमारियाँ ब्रह्मचर्य पूर्वक व्याकरण, धर्म, विद्या, आयुर्वेद आदि को पढ़कर स्वयंवर विवाह करके, उत्तम औषध, औषध के तुल्य अन्न और व्यञ्जनों को पकाकर, उत्तम रसों से संयुक्त करके, पति आदि को खिलाकर और स्वयं खाकर बल और आरोग्य को सदा बढ़ावें ॥ १९ । १५ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वत्या=ब्रह्मचर्येण अधीतव्याकरणधर्मविद्यायुर्वेदविदुष्या । सोमस्य=प्रशस्तौषधस्य, अन्नव्यञ्जनस्य च । परिस्रुद्=सुरसः ।

भाष्यसार—**१. स्वास्थ्य-लाभ के लिए ओषधियों को जानें**—जैसे प्रशस्त वैद्य उत्तम-स्वास्थ्य के लिए सोमलतादि ओषधियों का सेवन कराकर और दूधादि पदार्थों के योग से शरीरों को पुष्ट करता है। इसी प्रकार प्रशस्त विद्या के विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री ओषधियों तथा दुग्धादि पदार्थों के सेवन से सदा नीरोग रहें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में इवादि उपमावाचक पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ १९ । १५ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=कार्यम् । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्येण कथं कार्य्यं साध्यमित्युपदिश्यते ॥

मनुष्य को कैसे कार्य्य सिद्ध करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी ।
अन्तर ऽ उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ॥ १६ ॥

पदार्थः—(**आसन्दी**) समन्तात्सन्यते=सेव्यते या सा । "**सन्**" धातोरौणादिको दप्रत्ययस्ततो ङीष् (**रूपम्**) सुक्रिया (**राजासन्द्यै**) राजानः सीदन्ति यस्यां तस्यै (**वेद्यै**) विदन्ति सुखानि यया तस्यै (**कुम्भी**)

धान्यादिपदार्थाऽऽधारा (**सुराधानी**) सुरा=सोमरसो धीयते यस्यां सा गर्गरी (**अन्तरः**) येनानिति=प्राणिति सः (**उत्तरवेद्याः**) उत्तरा चासौ वेदी च तस्याः (**रूपम्**) (**कारोतरः**) कर्मकारी (**भिषक्**) वैद्यः ॥ १६ ॥

प्रमाणार्थ—(आसन्दी) यहाँ 'सन्' धातु से औणादिक द प्रत्यय होकर स्त्रीलिंग में ङीष् प्रत्यय है ।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्यज्ञायासन्दी रूपं राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधान्युत्तरवेद्या अन्तरो रूपं कारोतरो भिषक् चैतानि संग्राह्याणि ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिर्यज्ञायासन्दी** समन्तात्सन्यते=सेव्यते या सा **रूपं** सुक्रिया **राजासन्द्यै** राजानः सीदन्ति यस्यां तस्यै **वेद्यै** विदन्ति सुखानि यया तस्यै **कुम्भी** धान्यादि-पदार्थाऽऽधारा **सुराधानी** सुरा=सोमरसो धीयते यस्यां सा गर्गरी **उत्तरवेद्याः** उत्तरा चासौ वेदी च तस्याः **अन्तरः** येनानिति=प्राणिति सः **रूपं** सुक्रिया **कारोतरः** कर्मकारी **भिषक्** वैद्यः **चैतानि सङ्ग्राह्याणि** ॥ १९ । १६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—यज्ञ के लिए (आसन्दी) सब ओर से सेवन करने योग्य चौकी, (रूपम्) उत्तम क्रिया, (राजासन्द्यै) राजा लोग जिस पर बैठते हैं उस (वेद्यै) सुखद वेदी के लिए (कुम्भी) धान्य आदि पदार्थ रखने का घड़िया, (सुराधानी) सुरा=सोम-रस की सुराही (उत्तर-वेद्याः) उत्तर वेदी का (अन्तरः) प्राणहेतु अन्न, (रूपम्) उत्तम क्रिया, (कारोतरः) कर्मचारी और (भिषक्) वैद्य इन सबका संग्रह करो ॥ १९ । १६ ॥

[हे मनुष्याः ! युष्माभिर्यज्ञायासन्दी, भिषक् चैतानि संग्राह्याणि]

भावार्थः—मनुष्यो यद्यत्कार्यं कर्त्तुमिच्छेत् तस्य सकलसाधनानि सञ्चिनुयात् ॥ १९ । १६ ॥

भावार्थ—मनुष्य जो जो कार्य करना चाहे उसके सब साधनों का संचय करे ॥ १९ । १६ ॥

भाष्यसार—**यज्ञादि कर्मों के लिए साधनों का संग्रह करें**—सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि यज्ञादि कार्यों के लिए उत्तम आसन, सुखद वेदी, कुम्भी आदि सोमरसादि के रखने के पात्र और प्राण-प्रद अन्नादि साधनों का संग्रह अवश्य करें ॥ १९ । १६ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=**कार्यम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

केषां कार्य्याणि सिध्यन्तीत्याह ॥

किन जनों के कार्य्य सिद्ध होते हैं, यह विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूप ऽ आप्यते प्रणीतो ऽ अग्निरग्निना ॥ १७ ॥

पदार्थः—(**वेद्या**) यज्ञसामग्रया (**वेदिः**) यज्ञभूमिः (**सम्**) सम्यक् (**आप्यते**) प्राप्यते (**बर्हिषा**) महता पुरुषार्थेन (**बर्हिः**) वृद्धम् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**यूपेन**) मिश्रितामिश्रितेन व्यवहारेण (**यूपः**) मिश्रितो व्यवहारयत्नोदयः (**आप्यते**) (**प्रणीतः**) प्रकृष्टतया सम्मिलितः (**अग्निः**) पावकः (**अग्निना**) विद्युदादिना ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा विद्वद्भिर्वेद्या वेदिर्बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियं समाप्यते यूपेन यूपोऽग्निना प्रणीतोऽग्निराप्यते तथैव यूयं साधनैः साधनानि संमेल्य सर्वं सुखमाप्नुत ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यथा विद्वद्भिर्वेद्या यज्ञसामग्रचा वेदिः यज्ञभूमिः **बर्हिषा** महता पुरुषार्थेन **बर्हिः** वृद्धम् **इन्द्रियं** धनं **समाप्यते** सम्यक् प्राप्यते, **यूपेन** मिश्रितामिश्रितेन व्यवहारेण **यूपः** मिश्रितो व्यवहारयत्नोदयः, **अग्निना** विद्युदादिना **प्रणीतः** प्रकृष्टतया सम्मिलितः **अग्निः** पावकः आप्यते तथैव यूयं साधनैः साधनानि संमेल्य सर्वं सुखमाप्नुत ।। १६ । १७ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—विद्वान् लोग— (वेद्या) यज्ञ की सामग्री से (वेदिः) यज्ञभूमि को, (बर्हिषा) महान् पुरुषार्थ से (बर्हिः) बढ़े हुए (इन्द्रियम्) धन को (समाप्यते) प्राप्त करते हैं, (यूपेन) मिश्रित और अमिश्रित व्यवहार से (यूपः) मिश्रित रूप व्यवहार-यत्न के उदय को, (अग्निना) विद्युत् आदि से (प्रणीतः) अत्यन्त सम्मिलित (अग्निः) अग्नि को प्राप्त करते हैं वैसे तुम साधनों से साधनों को मिला कर सब सुख प्राप्त करो ।। १६ । १७ ।।

[हे मनुष्याः ! यथा विद्वद्भिर्वेद्या वेदिः······समाप्यते······तथैव यूयं साधनैः साधनानि संमेल्य सर्वं सुखमाप्नुत]

भावार्थः--अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। ये मनुष्याः साधकतमेन साधनेन साध्यं कार्य्यं साद्धुमिच्छन्ति, त एव सिद्धसाध्या जायन्ते ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जो मनुष्य साधकतम साधन से साध्य कार्य को सिद्ध करना चाहते हैं वे ही साध्य को सिद्ध करने वाले होते हैं ।। १६ । १७ ।।

भाष्यसार—**१. यज्ञ ही सब कार्यों का साधक है**—विद्वान् मनुष्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए यजनीय पदार्थों से यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सदा किया करें, विद्युदादि के यज्ञ=संयोग से सुख के साधनों को बढ़ावें, और अपने श्रेष्ठों के साथ मिश्रित व्यवहार से तथा दुष्टों के साथ अमिश्रित व्यवहार से अपने कार्यों को बढ़ावें ।।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। १६ । १७ ।।

हैमवर्चिः । **गृहपतिः=गृहस्थः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

स्त्रीपुरुषाभ्यां किं कार्य्यमित्याह ।।

स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

ह॒वि॒र्धान॒ं यद॒श्विनाग्नी॑ध्रं॒ यत्सर॑स्वती । इन्द्रा॑यै॒न्द्रꣳ सद॑स्कृ॒तं पत्नी॒शाल॒ं गार्ह॑पत्यः ।। १८ ।।

पदार्थः—(**हविर्धानम्**) हवींषि=ग्राह्याणि देयानि वा संस्कृतानि वस्तूनि धीयन्ते यस्मिन् (**यत्**) (**अश्विना**) स्त्रीपुरुषौ (**आग्नीध्रम्**) अग्नीध्र=ऋत्विजः शरणम् (**यत्**) (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**इन्द्राय**) ऐश्वर्यसुखप्रदाय पत्ये (**ऐन्द्रम्**) इन्द्रस्यैश्वर्यस्येदम् (**सदः**) सीदन्ति यस्मिँस्तत् (**कृतम्**) निष्पन्नम् (**पत्नीशालम्**) पत्न्याः शाला पत्नीशालम् (**गार्हपत्यः**) गृहपतिना संयुक्तः ।। १६ । १८ ।।

अन्वयः—हे गृहस्थाः स्त्रीपुरुषाः ! यथा विद्वांसावश्विना यद्धविर्धानं कृतवन्तौ यच्च सरस्वती आग्नीध्रं कृतवती इन्द्रायैन्द्रं सदः पत्नीशालं च विद्वद्भिः कृतं तदिदं सर्वं गार्हपत्यो धर्म एवास्ति तथा तत् सर्वं यूयमपि कुरुत ।। १६ । १८ ।।

सपदार्थान्वयः—हे गृहस्थाः स्त्रीपुरुषाः ! **यथा विद्वांसावश्विना** स्त्रीपुरुषौ **यद्धविर्धानं** हवींषि=ग्राह्याणि देयानि वा संस्कृतानि वस्तूनि धीयन्ते यस्मिन् **कृतवन्तौ, यच्च सरस्वती** विदुषी स्त्री **आग्नीध्रम्** अग्नीध्र=ऋत्विजः शरणं **कृतवती, इन्द्राय** ऐश्वर्यसुखप्रदाय पत्ये **ऐन्द्रम्** इन्द्रस्यैश्वर्यस्येदं **सदः** सीदन्ति यस्मिँस्तं **पत्नीशालं** पत्न्याः शाला पत्नीशालं **च विद्वद्भिः कृतं** निष्पन्नं, **तदिदं सर्वं गार्हपत्यः** गृहपतिना संयुक्तः **धर्म एवास्ति, तथा तत् सर्वं यूयमपि कुरुत** ॥ १६ । १८ ॥

भाषार्थ—हे गृहस्थ स्त्री-पुरुषो ! जैसे—(अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषों ने (यत्) जिस (हविर्धानम्) लेने वा देने योग्य संस्कृत=शुद्ध वस्तुओं के पात्र को बनाया है, और (यत्) जिस (सरस्वती) विदुषी स्त्री ने (आग्नीध्रम्) ऋत्विजों की शरण यजमान को बनाया है, (इन्द्राय) ऐश्वर्य और सुख प्रदान करने वाले पति के लिए (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य-सम्पन्न (सदः) घर को और (पत्नीशालम्) पत्नी-शाला को विद्वानों ने (कृतम्) तैयार किया है, वह सब (गार्हपत्यः) गृहपति से संयुक्त=सम्बद्ध धर्म ही है, वैसा वह सब तुम भी करो ॥१६ । १८॥

[हे गृहस्थाः स्त्रीपुरुषाः ! **यथा विद्वांसावश्विनौ यद्धविर्धानं कृतवन्तौ···यच्च···पत्नीशालं···कृतं तदिदं सर्वं गार्हपत्यो धर्मः**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । हे मनुष्याः ! यथा—ऋत्विजः सम्भारान् संचित्य यज्ञमलङ्कुर्वन्ति, तथा प्रीतियुक्तौ स्त्रीपुरुषौ गृह-कृत्यानि सततं साध्नुतम् ॥ १६ । १८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा-अलङ्कार है ॥ हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विक् लोग सामग्री को संचित करके यज्ञ को अलंकृत करते हैं वैसे प्रीति से युक्त स्त्री-पुरुष गृह-कृत्यों को सदा सिद्ध करें ॥ १६ । १८ ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थ धर्म का वर्णन**—अश्विना=विद्वान् गृहस्थी स्त्री-पुरुष उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए ऐश्वर्यसम्पन्न घर का और ऋत्विजों के बैठने के लिए हविर्धानम्=यज्ञ-वेदी का निर्माण अवश्य करें ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में इवादि उपमावाचक पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । ऋत्विजों की तरह सब गृहस्थी यज्ञ अवश्य किया करें ॥ १६ । १८ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः=विद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशो विद्वान् सुखमाप्नोतीत्युच्यते ॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**प्रैषेभिः**) प्रैषणकर्मभिः (**प्रैषान्**) प्रेषणीयान् भृत्यान् (**आप्नोति**) (**आप्रीभिः**) याः समन्तात् प्रीणन्ति ताभिः (**आप्रीः**) सर्वथा प्रीत्युत्पादिका परिचारिकाः (**यज्ञस्य**) (**प्रयाजेभिः**) प्रयजन्ति यैस्तैः (**अनुयाजान्**) अनुकूलान् यज्ञपदार्थान् (**वषट्कारेभिः**) कर्मभिः (**आहुतीः**) याः आहूयन्ते=प्रदीयन्ते ताः ॥ १६ ॥

अन्वयः—यो विद्वान् प्रैषेभिः प्रैषानाप्रीभिराप्रीः प्रयाजेभिरनुयाजान् यज्ञस्य वषट्कारेभिराहुतीश्चाप्नोति स सुखी जायते ॥ १६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो विद्वान् प्रैषेभिः**

भाषार्थ—जो विद्वान्—(प्रैषेभिः) प्रैषण=

प्रेषणकर्मभिः **प्रैषान्** प्रेषणीयान् भृत्यान्, **आप्रीभिः** याः समन्तात् प्रीणन्ति ताभिः **आप्रीः** सर्वथा प्रीत्युत्पादिका परिचारिकाः, **प्रयाजेभिः** प्रयजन्ति यैस्तैः **अनुयाजान्** अनुकूलान् यज्ञपदार्थान्, **यज्ञस्य वषट्कारेभिः** कर्मभिः **आहुतीः** या आहूयन्ते=प्रदीयन्ते ताः **चाप्नोति, स सुखी जायते** ॥ १६ । १६ ॥

आज्ञा देना आदि कर्मों से (प्रैषान्) आज्ञा देने योग्य भृत्यों को, (आप्रीभिः) सब ओर से तृप्त करने वाली क्रियाओं से (आप्रीः) सर्वथा प्रीति को उत्पन्न करने वाली परिचारिका=सेविकाओं को, (प्रयाजेभिः) उत्तम यज्ञ-साधनों से (अनुयाजान्) अनुकूल यज्ञ-पदार्थों को, और (यज्ञस्य) यज्ञ के (वषट्कारेभिः) कर्मों से (आहुतीः) आहुतियों को प्राप्त करता है वह सुखी होता है ॥ १६ । १६ ॥

[यो विद्वान् प्रैषेभिः प्रैषान् ··· आप्रीः ···यज्ञस्य वषट्कारेभिराहुतीश्चाप्नोति स सुखी जायते]

भावार्थः—यस्सुशिक्षितसेवकसेविकः साधनोपसाधनयुक्तः श्रेष्ठानि कार्याणि करोति स सुखयितुं शक्नोति ॥ १६ । १६ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् सुशिक्षित सेवक और सेविकाओं वाला, साधन-उपसाधनों से युक्त होकर श्रेष्ठ कार्य करता है वह सबको सुखी कर सकता है ॥ १६ । १६ ॥

भा० पदार्थः—प्रैषान्=सुशिक्षितसेवकान् । आप्रीः=सुशिक्षितसेविकाः । वषट्कारेभिः=श्रेष्ठकार्यैः ।

भाष्यसार—यज्ञादि उत्तम कर्म ही सुख के हेतु—जो विद्वान् अपने सेवकादि को यज्ञ सद्व्यवहार से प्रसन्न रखता है, उनको आदेश ऐसे देता है जिनसे उनमें आत्मीयता के भाव उत्पन्न हों, और यजनीय साधनों से यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को करता है, वह सदा सुखी रहता है ॥ १६ । १६ ॥

हैमवर्चिः । **यजमानः**=विद्वान् । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसा विद्वान् सुख को प्राप्त होता है, यह फिर उपदेश किया है ॥

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवींषि । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

पदार्थः—(**पशुभिः**) गवादिभिः (**पशून्**) गवादीन् (**आप्नोति**) (**पुरोडाशैः**) पचनक्रियासंस्कृतैः (**हवींषि**) होतुमर्हाणि वस्तूनि (**आ**) (**छन्दोभिः**) प्रज्ञापकैर्गायत्र्यादिभिः (**सामिधेनीः**) सम्यगिध्यन्ते याभिस्ताः सामिधेनीः (**याज्याभिः**) याभिः क्रियाभिरिज्यन्ते ताभिः (**वषट्कारान्**) ये वषट्धर्म्यां क्रियां कुर्वन्ति तान् ॥ २० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सद्गृहस्थः पशुभिः पशून् पुरोडाशैर्हवींषि छन्दोभिस्सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारानाप्नोति तथैतान् यूयमाप्नुत ॥ २० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा सद्गृहस्थः पशुभिः** गवादिभिः **पशून्** गवादीन्, **पुरोडाशैः** पचनक्रियासंस्कृतैः **हवींषि** होतुमर्हाणि वस्तूनि, **छन्दोभिः** प्रज्ञापकैर्गायत्र्यादिभिः **सामिधेनीः** सम्यगिध्यन्ते याभिस्ताः सामिधेनीः, **याज्याभिः**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे सद्गृहस्थ पुरुष--(पशुभिः) गौ आदि पशुओं से (पशून्) गौ आदि पशुओं को, (पुरोडाशैः) पचन-क्रिया से संस्कृत=शुद्ध हुए पदार्थों से (हवींषि) होम के योग्य वस्तुओं को, (छन्दोभिः) प्रज्ञापक गायत्री

याभिः क्रियाभिरिज्यन्ते ताभिः **वषट्कारान्** ये वषट्=धर्म्यां क्रियां कुर्वन्ति तान् **आ-आप्नोति;** तथैतान् **यूयमाप्नुत** ॥ १९ । २० ॥

आदि छन्दों से (सामिधेनीः) उत्तम समिधाओं को, (याज्याभिः) यज्ञ-क्रियाओं से (वषट्कारान्) वषट्=धर्मयुक्त आचरण करने वालों को (आ-आप्नोति) सर्वथा प्राप्त करता है वैसे इन्हें तुम प्राप्त करो ॥ १९ । २० ॥

[सद्गृहस्थः पशुभिः पशून्, पुरोडाशैर्हवींषि, छन्दोभिः सामिधेनीः, याज्याभिर्वषट्कारान्, आप्नोति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। योऽत्र बहु पशुः, हविर्भुक्, वेदवित्, सत्क्रियो मनुष्यो भवेत् स प्रशंसामाप्नोति ॥ १९ । २० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो यहाँ बहुत पशुओं वाला, होम करके भोजन करने वाला, वेदज्ञ, श्रेष्ठ आचरण वाला मनुष्य होता है वह प्रशंसा को प्राप्त करता है ॥ १९ । २० ॥

भा० पदार्थः—वषट्कारान्=सत्क्रियान् मनुष्यान् ।

भाष्यसार—१. **यजमान ही उत्तम सुखों का अधिकारी**—जो विद्वान् गायादि पशुओं के दूध, घृतादि शुद्ध किये हुए पदार्थों से, गायत्री आदि मन्त्रों से उत्तम समिधाओं से यज्ञ क्रियाएँ सम्पादित करता रहता है, वह धर्मयुक्त आचरण होने से सुखों को प्राप्त करता है ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि शब्द के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ १९ । २० ॥

हैमवर्चिः । **सोमः**=ओषधिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

के पदार्था हविष्या इत्याह ॥

कौन पदार्थ होम के योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

धानाः क॒र॒म्भः स॒क्तवः॑ परीवा॒पः पयो॒ दधि॑ । सोम॑स्य रू॒पꣳ ह॒विष॑ऽआ॒मिक्षा॑ वा॒जिनं॒ मधु॑ ॥ २१ ॥

पदार्थः—(**धानाः**) भृष्टयवादयः (**करम्भः**) करोति मथनं येन सः (**सक्तवः**) (**परीवापः**) परितः=सर्वतो वापो=बीजारोपणं यस्मिन् सः (**पयः**) दुग्धम् (**दधि**) (**सोमस्य**) अभिषोतुमर्हस्य (**रूपम्**) (**हविषः**) होतुमर्हस्य (**आमिक्षा**) दधिदुग्धमिष्टैर्निर्मिता (**वाजिनम्**) वाजः=प्रशस्तान्यन्नानि विद्यन्ते येषु तेषामिदं सारं वस्तु (**मधु**) मधुरम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं हविषस्सोमस्य रूपं धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दध्यामिक्षा वाजिनं मधु च विजानीत ॥ २१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यूयं** हविषः होतुमर्हस्य **सोमस्य** अभिषोतुमर्हस्य **रूपं, धानाः** भृष्टयवादयः **करम्भः** करोति मथनं येन सः **सक्तवः परीवापः** परितः=सर्वतो वापो=बीजारोपणं यस्मिन् सः **पयः** दुग्धं **दध्यामिक्षा** दधिदुग्धमिष्टैर्निर्मिता **वाजिनं** वाजः=प्रशस्तान्यन्नानि

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—(हविषः) होम करने योग्य (सोमस्य) सोम-रस के (रूपम्) वरूप, (धानाः) भूने हुए यव=जौ आदि, (करम्भः) मथने का साधन, (सक्तवः) सत्तू, (परीवापः) जिनमें सब ओर बीजारोपण किया जाता है वह क्षेत्र, (पयः) दूध, (दधि) दही,

विद्यन्ते येषु तेषामिदं सारं वस्तु **मधु** मधुरं **च विजानीत** ॥ १९ । २१ ॥

(आमिक्षा) दही, दूध और मीठे से बना पदार्थ विशेष, (वाजिनम्) प्रशस्त अन्न जिनमें हैं उनकी सारभूत वस्तु और (मधु) शहद, इन पदार्थों को जानो ॥ १९ । २१ ॥

[हे मनुष्या ! यूयं हविषो रूपं ··· विजानीत]

भावार्थः—ये पदार्थाः पुष्टि-सुगन्ध-मधुर-रोगनाशकत्वगुणयुक्तास्सन्ति ते हविः संज्ञकाः सन्ति ॥ १९ । २१ ॥

भावार्थ—जो पदार्थ पुष्टिकारक, सुगन्धित, मधुर और रोगनाशक हैं वे 'हवि' कहलाते हैं ॥ १९ । २१ ॥

भाष्यसार—**कैसी ओषधियाँ हवनीय हैं ?**—जो सोमलतादि रोगनाशक और पौष्टिक ओषधियाँ हैं, जो यवादि अन्न, और जो घृत दूधादि सारभूत पौष्टिक पदार्थ हैं, और जो शहदादि मधुर गुण युक्त पदार्थ हैं, ये होम करने योग्य हैं ॥ १९ । २१ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=अन्नानां सुरूपकरणम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कीदृशा जनाः नीरोगा भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे मनुष्य नीरोग होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

धानानाᳬं रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः । सक्तूनाᳬं रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

पदार्थः—(**धानानाम्**) भृष्टयवाद्यन्नानाम् (**रूपम्**) (**कुवलम्**) कोमलं बदरीफलमिव (**परीवापस्य**) पिष्टादेः (**गोधूमाः**) (**सक्तूनाम्**) (**रूपम्**) (**बदरम्**) बदरीफलवद्वर्णयुक्तम् (**उपवाकाः**) उपगताः=प्राप्ता यवाः (**करम्भस्य**) दधिसंसृष्टस्य सक्तुनः ॥ १९ । २२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यूयं धानानां कुवलं रूपं परीवापस्य गोधूमा रूपं सक्तूनां बदरं रूपं करम्भस्योपवाका रूपमस्तीति विजानीत ॥ १९ । २२ ॥

सपदार्थान्वयः— **हे मनुष्याः ! यूयं धानानां** भृष्टयवाद्यन्नानां **कुवलं** कोमलं बदरीफलमिव **रूपं, परीवापस्य** पिष्टादेः **गोधूमा रूपं, सक्तूनां बदरं** बदरीफलवद्वर्णयुक्तं **रूपं, करम्भस्य** दधि-संसृष्टस्य सक्तुनः **उपवाकाः** उपगताः=प्राप्ता यवाः **रूपमस्तीति विजानीत** ॥ १९ । २२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (धानानाम्) भूने हुए यव=जौ आदि अन्नों का (कुवलम्) बेर के समान कोमल (रूपम्) रूप है, (परीवापस्य) पिष्ट=चूर्ण आदि का (गोधूमाः) गेहूँ (रूपम्) रूप है, (सक्तूनाम्) सत्तुओं का (बदरम्) बदरी=बेर फल के रंग के तुल्य (रूपम्) रूप है, (करम्भस्य) दही से युक्त सत्तु का (उपवाकाः) यव=जौ (रूपम्) रूप है; ऐसा जानो ॥ १९ । २२ ॥

[हे मनुष्याः ! यूयं धानानां कुवलं रूपं······विजानीत]

भावार्थः—ये मनुष्याः सर्वेषामन्नानां सुरूपं कृत्वा भुञ्जते भोजयन्ति च त एव आरोग्य-माप्नुवन्ति ॥ १९ । २२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्नों को सुरूप बनाकर खाते और खिलाते हैं वे ही आरोग्य को प्राप्त होते हैं ॥ १९ । २२ ॥

भाष्यसार—**अन्नों का सुरूपकरण ही आरोग्यप्रद है**—मनुष्य यवादि अन्नों को, बेर के

समान कोमल फलों को और गेहूँ आदि के चूर्ण रूप सत्तुओं को संस्कृत करके सुरूप बनाकर ही सेवन करें। जिससे वे आरोग्यवर्धक होकर शरीर को नीरोग रक्खें ॥ १९ । २२ ॥

हैमवर्चिः । **सोमः**=ओषधिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कैसे मनुष्य नीरोग होते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य रूपं वाजिनᳯं सौम्यस्य रूपमामिक्षा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(**पयसः**) दुग्धस्य=जलस्य (**रूपम्**) (**यत्**) ये (**यवाः**) (**दध्नः**) (**रूपम्**) (**कर्कन्धूनि**) कर्कन्धुफलानि=स्थूलानि पक्वानि बदरीफलानीव (**सोमस्य**) (**रूपम्**) (**वाजिनम्**) बह्वन्नसाररूपम् (**सौम्यस्य**) सोमानामोषधिसाराणां भावस्य (**रूपम्**) (**आमिक्षा**) मधुराम्लादिसंयोग-युक्ता ॥ १९ । २३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यद्यवास्तान् पयसो रूपं कर्कन्धूनीव दध्नो रूपं वाजिनमिव सोमस्य रूपमामिक्षेव सौम्यस्य रूपं सम्पादयत ॥ १९ । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यत्** ये **यवास्तान् पयसः** दुग्धस्य जलस्य **रूपं**, **कर्कन्धूनि** कर्कन्धुफलानि=स्थूलानि पक्वानि बदरीफलानि इव **दध्नो रूपं**, **वाजिनं** बह्वन्नसाररूपम् **इव सोमस्य रूपमामिक्षा** मधुराम्लादिसंयोगयुक्ता **इव सौम्यस्य** सोमानामोषधिसाराणां भावस्य **रूपं सम्पाद-यत** ॥ १९ । २३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (यवाः) यव=जौ हैं उनके समान (पयसः) दुग्ध=जल के (रूपम्) रूप को (कर्कन्धूनि) स्थूल पके हुए बदरी फलों के समान (दध्नः) दही के (रूपम्) रूप को (वाजिनम्) बहुत अन्नों के सार-रूप के समान (सोमस्य) सोम ओषधि के (रूपम्) रूप को, (आमिक्षा) मधुर और अम्ल=खट्टा आदि के संयोग से युक्त पदार्थ के समान (सौम्यस्य) ओषधि-सारों के तत्त्व रूप को सिद्ध करो ॥ १९ । २३ ॥

[हे मनुष्याः । यत् यवास्ते पयसो रूपं······सम्पादयत]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्यस्य यस्यान्नस्य सुन्दरं रूपं यथा स्यात्, तस्य रूपं तथा सदा सम्पादनीयम् ॥ १९ । २३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ मनुष्य—जिस-जिस अन्न का सुन्दर रूप जैसे हो सके उसका रूप वैसे सदा सिद्ध करें ॥ १९ । २३ ॥

भाष्यसार—**१. संस्कृत ओषधियाँ सेवनीय हैं**—सब मनुष्यों को उचित है वे यवादि अन्नों को, पके हुए बदरी की तरह सुरूप वाले फलों को, दही आदि दूध के विकारों को, पौष्टिक सोमलतादि ओषधियों को संस्कृत करके सेवन करें। तब ही ये पूर्ण लाभप्रद होती हैं ॥ ॥ १९ । २३ ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पद लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। बदरी के समान कोमल तथा सुरूप वाले फलों का प्रयोग करें, यह उपमा है ॥ १९ । २३ ॥

हैमर्वचिः । **विद्वान्**=स्पष्टम् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कथं विद्वांसो भवन्तीत्युपदिश्यते ॥

कैसे विद्वान् होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आ श्रा॒वयेति॑ स्तो॒त्रियाः॑ प्रत्याश्रा॒वो॑ऽनु॒रूपः॑ । यजेति॑ धाय्यारू॒पं प्र॑गा॒था ये॑ यजाम॒हाः ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**आ**) समन्तात् । (**श्रावय**) विद्योपदेशान् कुरु (**इति**) प्रकारार्थे (**स्तोत्रियाः**) ये स्तोत्राण्यर्हन्ति ते (**प्रत्याश्रावः**) यः प्रतिश्राव्यते सः (**अनुरूपः**) अनुकूलः (**यजा इति**) (**धाय्यारूपम्**) या धेयमर्हा तस्या रूपम् (**प्रगाथाः**) ये प्रकर्षेण गीयन्ते ते (**ये यजामहाः**) ये भृशं यजन्ति ते ॥ २४ ॥

अन्वयः—हे विद्वँस्त्वं विद्यार्थिनः आश्रावय । ये स्तोत्रियास्तान् प्रत्याश्रावोऽनुरूप इति ये यजामहाः प्रगाथा इति यजेति धाय्यारूपं यथा**था**त् जानीहि ॥ २४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! त्वं **विद्यार्थिन आश्रावय** समन्ताद् विद्योपदेशान् कुरु ।

ये स्तोत्रियाः ये स्तोत्राण्यर्हन्ति ते **तान् प्रत्याश्रावः** यः प्रतिश्राव्यते सः **अनुरूपः** अनुकूलः **इति, ये यजामहाः** ये भृशं यजन्ति ते **प्रगाथाः** ये प्रकर्षेण गीयन्ते ते **इति, यजेति धाय्यारूपं** या धेयमर्हा तस्या रूपं **यथावत् जानीहि** ॥ १९ । २४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! तू—विद्यार्थियों को (आश्रावय) सब ओर से विद्या-उपदेश कर ।

जो (स्तोत्रियाः) स्तुति करने वाले हैं उनके प्रति (प्रत्याश्रावः) सुनने-सुनाने योग्य विद्या-विषय (अनुरूपः) अनुकूल हो (इति) ऐसा; (ये यजामहाः) जो अधिक यज्ञ करने वाले हैं वे (प्रगाथाः) उत्तम रीति से गाए जाते हैं (इति) ऐसा; (यजेति) यज्ञ कर (इति) यह (धाय्यारूपम्) धारण करने योग्य आज्ञा का रूप है, उसे यथावत् जान ॥ १९ । २४ ॥

[हे विद्वँस्त्वं विद्यार्थिन आश्रावय]

भावार्थः—ये परस्परं प्रीत्या विद्याविषयान् शृण्वन्ति श्रावयन्ति च, ते विद्वांसो जायन्ते ॥ २४॥

भावार्थ—जो परस्पर प्रीति से विद्या-विषयों को सुनते और सुनाते हैं वे विद्वान् हो जाते हैं ॥ १९ । २४ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् कैसे बनते हैं ?**—जो विद्वानों की संगति से उनकी बातों को ध्यान से सुनते हैं, गुरुजनों के गुणों की सदा प्रशंसा करते हैं, जो पढ़कर दूसरों को सिखाते हैं और जो पढ़ी हुई बातों को जीवन में धारण करते हैं, वे श्रवण, मनन आदि उपायों से विद्वान् हो जाते हैं ॥ १९ । २४ ॥

हैमर्वचिः । **सोमः**=रसविशेषः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कथमध्यापकैर्भवितव्यमित्युपदिश्यते ॥

अध्यापकों को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒र्ध॒ऽऋ॒चैरु॒क्थानां॑ꣳ रू॒पं प॒दैरा॑प्नोति नि॒विदः॑ । प्र॒ण॒वैः श॒स्त्राणा॑ꣳ रू॒पं पय॑सा॒ सोम॑ऽआप्यते ॥ २५ ॥

पदार्थः—(**अर्द्धऽऋचैः**) ऋचामर्द्धान्यर्द्धर्चास्तैर्मन्त्रभागैः (**उक्थानाम्**) स्तोत्रविशेषाणाम् (**रूपम्**) (**पदैः**) विभक्त्यन्तैः (**आप्नोति**) (**निविदः**) ये निश्चयेन विन्दन्ति तान् (**प्रणवैः**) ओङ्कारैः (**शस्त्राणाम्**) शंसन्ति यैस्तेषाम् (**रूपम्**) (**पयसा**) उदकेन (**सोमः**) रसविशेषः (**आप्यते**) प्राप्यते ॥ २५ ॥

अन्वयः—यो विद्वानर्द्धऽऋचैरुक्थानां रूपं पदैः प्रणवैः शस्त्राणां रूपं निविदश्चाप्नोति येन विदुषा पयसा सोम आप्यते स वेदवित्कथ्यते ॥ २५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो विद्वानर्द्धऽऋचैः** ऋचामर्द्धान्यर्द्धर्चास्तैर्मन्त्रभागैः **उक्थानां** स्तोत्रविशेषाणां **रूपं पदैः** विभक्त्यन्तैः **प्रणवैः** ओङ्कारैः **शस्त्राणां** शंसन्ति यैस्तेषां **रूपं निविदः** ये निश्चयेन विन्दन्ति तान् **चाप्नोति, येन विदुषा पयसा** उदकेन **सोमः** रसविशेषः **आप्यते** प्राप्यते, **स वेदवित्कथ्यते** ॥ १९ । २५ ॥

भाषार्थ—जो विद्वान् (अर्द्धऽऋचैः) आधी ऋचाएँ अर्थात् मन्त्र-भागों के द्वारा (उक्थानाम्) उक्थ=स्तोत्र-विशेषों के (रूपम्) रूप को, (पदैः) विभक्ति-अन्त पदों से एवं (प्रणवैः) ओङ्कारों से (शस्त्राणाम्) शस्त्रों के (रूपम्) रूप को, और (निविदः) निश्चय से विद्या-प्राप्त करने वाले जिज्ञासुओं को (आप्नोति) प्राप्त करता है, और जिस विद्वान् के द्वारा (पयसा) जल से (सोमः) रस-विशेष (आप्यते) प्राप्त किया जाता है, वह विद्वान् वेदवित्=वेदज्ञ कहलाता है ॥ १९ । २५

[यो विद्वानर्द्धऽऋचैरुक्थानां रूपं, पदैः शस्त्राणां रूपं, निविदश्चाप्नोति ''स वेदवित्कथ्यते]

भावार्थः—ये विदुषः सकाशादधीत्य वेदस्थानां पदवाक्यमन्त्रविभागशब्दार्थसम्बन्धानां यथार्थं विज्ञानं कुर्वन्ति, तेऽत्राध्यापका भवन्ति ॥

भावार्थ—जो विद्वानों से पढ़कर वेदस्थ पद, वाक्य, मन्त्रविभाग, शब्द, अर्थ और सम्बन्ध को यथार्थ जान लेते हैं वे यहाँ अध्यापक बनते हैं ॥ १९ । २५ ॥

भाष्यसार—**विशेष आनन्द की प्राप्ति किसे होती है ?**—जो मनुष्य वेद के मन्त्रों के एक-एक पद के शब्दार्थ सम्बन्ध को वेद के स्तोत्रविशेषों के विभक्ति सहित पदों को और ओङ्कारों से दुर्गुणों को नष्ट करने वाले सुविचारों को जानकर दूसरों को सिखाते रहते हैं, वे विशेष-आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । २५ ॥ ●

हैमवर्चिः । **यज्ञः=जगदुपकारः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥
सत्पुरुषैः कथं भवितव्यमित्याह ॥

सत्पुरुषों को कैसा होना चाहिए, यह उपदेश किया है ॥

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम् । वैश्वदेवꣳ सरस्वत्या तृतीयमाप्तꣳ सवनम् ॥ २६ ॥

पदार्थः—(**अश्विभ्याम्**) सूर्याचन्द्रमोभ्याम् (**प्रातस्सवनम्**) प्रातःकाले सवनं=यज्ञक्रिया-प्रेरणम् (**इन्द्रेण**) विद्युता (**ऐन्द्रम्**) ऐश्वर्यकारकम् (**माध्यन्दिनम्**) मध्याह्ने भवम् (**वैश्वदेवम्**) विश्वेषां देवानामिदम् (**सरस्वत्या**) सत्यया वाचा (**तृतीयम्**) त्रयाणां पूरकम् (**आप्तम्**) व्याप्तं=प्राप्तम् (**सवनम्**) आरोग्यकरं होमादिकम् ॥ १९ । २६ ॥

अन्वयः—यैरश्विभ्यां प्रथमं प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं द्वितीयं माध्यन्दिनं सवनं सरस्वत्या वैश्वदेवं तृतीयं सवनमाप्तन्ते जगदुपकारकाः सन्ति ॥ १९ । २६ ॥

सपदार्थान्वयः—**यैरश्विभ्यां** सूर्याचन्द्रमोभ्यां **प्रथमं प्रातःसवनं** प्रातःकाले सवनं=

भाषार्थ—जिन्होंने (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा प्रथम (प्रातःसवनम्) प्रातः

यज्ञक्रियाप्रेरणम्, **इन्द्रेण** विद्युता **ऐन्द्रम्** ऐश्वर्यकारकं **द्वितीयं माध्यन्दिनं** मध्याह्ने भवं **सवनम्** आरोग्यकरं होमादिकं, **सरस्वत्या** सत्यया वाचा **वैश्वदेवं** विश्वेषां देवानामिदं **तृतीयं** त्रयाणां पूरकं **सवनम्** आरोग्यकरं होमादिकम् **आप्तं** व्याप्तं=प्राप्तं **ते जगदुपकारकाः सन्ति** ॥ १९ । २६ ॥

काल यज्ञकर्म की प्रेरणा को, (इन्द्रेण) विद्युत् के द्वारा (ऐन्द्रम्) ऐश्वर्य कारक, द्वितीय (माध्यन्दिनम्) मध्याह्न के (सवनम्) आरोग्यकारी होम आदि को, (सरस्वत्या) सत्य वाणी के द्वारा (तृतीयम्) तृतीय (सवनम्) आरोग्यकारी होम आदि को (आप्तम्) प्राप्त किया है; वे जगत् के उपकारक होते हैं ॥ २६॥

[यैरश्विभ्यां प्रथमं प्रातःसवनं······आप्तं ते जगदुपकारकाः सन्ति]

भावार्थः—ये त्रिषु कालेषु सार्वजनिकहितमाचरन्ति, तेऽत्र सत्पुरुषास्सन्ति ॥ १९ । २६ ॥

भावार्थ—जो तीनों कालों में सार्वजनिक हित करते हैं वे यहाँ सत्पुरुष होते हैं ॥ १९ । २६ ॥

भाष्यसार—यज्ञ करने वाले ही सत्पुरुष हैं—जो श्रेष्ठ मनुष्य सूर्य और चन्द्र की तरह विद्यादि गुणों से अज्ञानान्धकार का विनाश करते हैं, श्रेष्ठ कार्यों में सूर्य की तरह सब को प्रेरित करते हैं, और चन्द्र की तरह सबको आह्लादित करते हैं, वे प्रातःसवन रूप यज्ञ के कर्ता हैं। जो विद्युदादि के द्वारा ऐश्वर्य-प्राप्ति के साधनों को विज्ञान के द्वारा प्राप्त कराते हैं, वे माध्यन्दिन-सवन के कर्त्ता हैं। और जो सत्य-वाणी के द्वारा न्यायाचरण करते हैं, वे तृतीय सवन के कर्ता हैं ॥ १९ । २६ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः=अन्नसंस्कारक्रिया** । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

विदुषा कथं भवितव्यमित्याह ॥

विद्वान् को कैसा होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् ।
कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**वायव्यैः**) वायुषु भवैर्वायुदेवताकैर्वा (**वायव्यानि**) वायुषु भवानि वायुदेवताकानि वा (**आप्नोति**) (**सतेन**) विभक्तेन कर्मणा (**द्रोणकलशम्**) द्रोणश्च कलशश्च तत् (**कुम्भीभ्याम्**) धान्यजलाधाराभ्याम् (**अम्भृणौ**) अपो बिभर्ति याभ्यां तौ (**सुते**) निष्पादिते । **लिङ्गव्यत्ययश्छान्दसः** (**स्थालीभिः**) यासु पदार्थान् स्थापयन्ति पाचयन्ति वा ताभिः (**स्थालीः**) (**आप्नोति**) ॥ २७ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुते**) निष्पादिते । यहाँ लिङ्ग का व्यत्यय छान्दस है ॥

अन्वयः—यो विद्वान् वायव्यैर्वायव्यानि सतेन द्रोणकलशमाप्नोति कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभिः स्थालीराप्नोति स आढ्यो जायते ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—यो विद्वान् वायव्यैः वायुषु भवैर्वायुदेवताकैर्वा **वायव्यानि** वायुषु भवानि देवताकानि वा **सतेन** विभक्तेन कर्मणा **द्रोणकलशं** द्रोणश्च कलशश्च तद् **आप्नोति, कुम्भीभ्यां** धान्यजलाधाराभ्याम् **अम्भृणौ** अपो बिभर्ति याभ्यां तौ **सुते** निष्पादिते **स्थालीभिः** यासु पदार्थान् स्थापयन्ति

भाषार्थ—जो विद्वान्—(वायव्यैः) वायु में विद्यमान वा वायु-देवता वाले पदार्थों से (वायव्यानि) वायु में विद्यमान वा वायु-देवता वाले गुणों एवं कर्मों को, (सतेन) विभक्त कर्म से (द्रोणकलशम्) द्रोण परिमाण और कलश को (आप्नोति) प्राप्त करता है, (कुम्भीभ्याम्) धान्य और जल के दो

पाचयन्ति वा ताभिः **स्थालीराप्नोति, स आढ्यो जायते** ॥ १९ । २७ ॥

पात्रों से (अम्भृणौ) जल को धारण करने वाले दो पात्रों एवं (सुते) तैयार किए हुए दो रसों को, (स्थालीभिः) पदार्थों को रखने वा पकाने के पात्रों से (स्थालीः) पदार्थों को रखने और पकाने को (आप्नोति) प्राप्त करता है; वह आढ्य=सम्पन्न हो जाता है ॥ १९ । २७ ॥

[यो विद्वान् वायव्यैर्वायव्यानि]

भावार्थः—कश्चिदपि मनुष्यो वायुकार्याण्यविदित्वा,

भावार्थ—कोई भी मनुष्य वायु के कार्यों को न जानकर,

[सतेन द्रोणकलशम्]

एतत्कारणेन विना परिमाणविद्याम्,

इसके कारण-ज्ञान के विना परिमाण-विद्या को,

[कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते]

अनया विना पाकविद्यां,

इसके विना पाक-विद्या को,

[स्थालीभिः स्थालीराप्नोति]

तामन्तरान्तसंस्कारक्रियां च प्राप्तुं न शक्नोति ॥ १९ । २७ ॥

और उसके विना अन्न-संस्कार की क्रिया को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १९ । २७ ॥

भाष्यसार—अन्न-संस्कार करने का प्रकार—वायु को शुद्ध करने वाले पदार्थों से वायु की शुद्धि करके अन्नों को संस्कृत करें। अन्नों को भक्षण योग्य बनाने के लिए कलशादि पात्रों में धान्य और जल का संयोग करके प्रक्षालन क्रिया से संस्कृत करे। इसी प्रकार पकाने के स्थाली आदि पात्रों को प्राप्त करके अन्न को संस्कृत करें ॥ १९ । २७ ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=वेदाभ्यासः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

सर्वे वेदमभ्यस्येयुरित्याह ॥

सब लोग वेद का अभ्यास करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः । छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथऽआप्यते ॥ २८ ॥

पदार्थः—(**यजुर्भिः**) यजन्ति=सङ्गच्छन्ते यैर्यजुर्वेदविद्यावयवैस्तैः (**आप्यन्ते**) (**ग्रहाः**) यैः सर्वं क्रियाकाण्डं गृह्णन्ति ते व्यवहाराः (**ग्रहैः**) (**स्तोमाः**) पदार्थगुणप्रशंसाः (**च**) (**विष्टुतीः**) विविधाश्च ताः स्तुतयश्च ताः (**छन्दोभिः**) गायत्र्यादिभिर्विद्वद्भिः स्तोतृभिर्वा । छन्द इति स्तोतृना० ॥ निघं० ३ । १६ ॥ (**उक्थाशस्त्राणि**) उक्थानि च तानि शस्त्राणि च । अत्रान्येषामपीति पूर्वपदस्य दीर्घः । (**साम्ना**) सामवेदेन (**अवभृथः**) शोधनम् (**आप्यते**) प्राप्यते ॥ २८ ॥

प्रमाणार्थ—(**छन्दोभिः**) 'छन्द' यह पद निघं० (३ । १६) में स्तोतृ-नामों में पठित है ॥ (**उक्थाशस्त्राणि**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से पूर्वपद को दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! युष्माभिर्यैर्यजुर्भिर्ग्रहाः ग्रहैः स्तोमा विष्टुतीश्च छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि चाप्यन्ते साम्नावभृथ आप्यते तेषामुपयोगो यथावत्कर्त्तव्यः ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **युष्माभिर्यैर्यजुर्भिः** यजन्ति=सङ्गच्छन्ते यैर्यजुर्वेद-विद्यावयवैस्तैः **ग्रहाः** यैः सर्वं क्रियाकाण्डं गृह्णन्ति ते व्यवहाराः, **ग्रहैः स्तोमाः** पदार्थगुणप्रशंसाः, **विष्टुतीः** विविधाश्च ताः स्तुतयश्च ताः **च छन्दोभिः** गायत्र्यादिभिर्विद्वद्भिः स्तोतृभिर्वा, **उक्थाशस्त्राणि** उक्थानि च तानि शस्त्राणि च **चाप्यन्ते साम्ना** सामवेदेन **अवभृथः** शोधनम् **आप्यते** प्राप्यते, **तेषामुपयोगो यथावत्कर्त्तव्यः** ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुमसे—जिन (यजुर्भिः) संगतिकरण के साधन यजुर्वेदविद्या के अवयवों से (ग्रहाः) सब क्रियाकाण्ड को ग्रहण करने हारे व्यवहार, (ग्रहैः) उक्त व्यवहारों से (स्तोमाः) पदार्थों के गुणों की प्रशंसाएँ और (विष्टुतीः) विविध स्तुतियाँ; (छन्दोभिः) गायत्री आदि छन्द, विद्वानों वा स्तोताओं से (उक्था-शस्त्राणि) उत्तम वचन और शस्त्र (आप्यन्ते) प्राप्त किए जाते हैं; और—(साम्ना) सामवेद से (अवभृथः) शोधन (आप्यते) प्राप्त किया जाता है—उनका उपयोग यथावत् करो ॥ १९ । २८ ॥

[यजुर्भिर्ग्रहा···चाप्यन्ते, साम्ना ऽवभृथ आप्यते]

भावार्थः—कश्चिदपि मनुष्यो वेदाभ्यासेन विना अखिलाः साङ्गोपाङ्गविद्याः प्राप्तुं नार्हति ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के विना सब साङ्गोपाङ्ग विद्याओं को प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १९ । २८ ॥

भाष्यसार—**वेदाभ्यास से विद्या की प्राप्ति**—यजुर्वेद से सब मनुष्य संगति करने योग्य सद्व्यवहारों को, सद्व्यवहारों से सब पदार्थों के गुण-विज्ञान तथा स्तुतियों को उत्तम वचन तथा, शस्त्रविद्या की शिक्षा ऋग्वेद के छन्दोबद्ध मन्त्रों से सीखें और सामवेद के मन्त्रों से उपासना करके मन, आत्मादि की शुद्धि सदा किया करें ॥ १९ । २८ ॥

हैमवर्चिः । **इडा**=पृथिवी । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

गृहस्थैः पुरुषैः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

गृहस्थ पुरुषों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः । शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा सꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**इडाभिः**) पृथिवीभिः । इडेति पृथिवीना० ॥ निघं० १ । १ ॥ (**भक्षान्**) भक्षितुमर्हान् भोज्यान् पदार्थान् (**आप्नोति**) (**सूक्तवाकेन**) सुष्ठूच्यते तत् सूक्तवाकन्तेन (**आशिषः**) इच्छाः (**शंयुना**) सुखमयेन (**पत्नीसंयाजान्**) ये पत्न्या सह समिज्यन्ते तान् (**समिष्टयजुषा**) सम्यगिष्टं येन भवति तेन (**संस्थाम्**) सम्यक् तिष्ठन्ति यस्यां ताम् ॥ २९ ॥

प्रमाणार्थ—(इडाभिः) पृथिवीभिः । 'इडा' पद निघं० (१ । १) में पृथिवी-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—यो विद्वान् इडाभिर्भक्षान् सूक्तवाकेनाशिषः शंयुना पत्नीसंयाजान् समिष्टयजुषा संस्थामाप्नोति स सुखी कथं न स्यात् ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—यो विद्वानिडाभिः पृथिवीभिः **भक्षान्** भक्षितुमर्हान् भोज्यान् पदार्थान्,

भाषार्थ—जो विद्वान्—(इडाभिः) पृथिवी से (भक्षान्) भक्षण करने योग्य भोज्य पदार्थों को

सूक्तवाकेन सुष्ठूच्यते तत् सूक्तवाकन्तेन **आशिषः** इच्छाः; **शंयुना सुखमयेन पत्नीसंयाजान्** ये पत्न्या सह समिज्यन्ते तान्, **समिष्टयजुषा** सम्यगिष्टं येन भवति तेन **संस्थां** सम्यक् तिष्ठन्ति यस्यां ताम्, **आप्नोति; स सुखी कथं न स्यात्** ॥ १९ । २९ ॥

(सूक्तवाकेन) उत्तम वचन से (आशिषः) इच्छाओं को, (शंयुना) सुखमय व्यवहार से (पत्नीसंयाजान्) पत्नी के साथ यजन करने वालों को, (समिष्टयजुषा) उत्तम यज्ञ के साधन से (संस्थाम्) उत्तम स्थिति को (आप्नोति) प्राप्त करता है, वह सुखी क्यों न हो ॥ १९ । २९ ॥

[यो विद्वानिडाभिर्भक्षान्—आशिष··· संस्थामाप्नोति स सुखी कथं न स्यात्]

भावार्थः—गृहस्था वेदविज्ञानेनैव पृथिवी-राज्यभोगेच्छां तत्सिद्धिं संस्थितिं चाप्नुवन्तु ॥ २९ ॥

भावार्थ—गृहस्थ लोग वेद के विज्ञान से ही पृथिवी के राज्य को भोगने की इच्छा, उसकी सिद्धि और संस्थिति को प्राप्त करें ॥ १९ । २९ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ पुरुषों के कर्त्तव्य**—इडाभिः=पृथिवी पर घर बनाकर रहने वाले गृहस्थ पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे भक्षणीय श्रेष्ठ अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति का सदा प्रयत्न किया करें। मधुर तथा सत्य वचनों से बड़ों के आशीर्वाद को, सुखप्रद व्यवहारों से गृहस्थसुख को और यज्ञादि से लोक में उत्तम स्थिति को प्राप्त करें ॥ १९ । २९ ॥ ●

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=व्रतादि-समूहः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

मनुष्यैः सत्यं ग्राह्यमसत्यञ्च त्याज्यमित्याह ॥

मनुष्यों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**व्रतेन**) सत्यभाषणब्रह्मचर्य्यादिनियमेन (**दीक्षाम्**) ब्रह्मचर्य्यविद्यादिसुशिक्षा-प्रज्ञाम् (**आप्नोति**) (**दीक्षया**) (**आप्नोति**) (**दक्षिणाम्**) प्रतिष्ठां श्रियं वा (**दक्षिणा**) दक्षिणया । अत्र विभक्तिलोपः । (**श्रद्धाम्**) श्रत्सत्यं दधाति ययेच्छया ताम् । श्रदिति सत्यना० ॥ निघं० ३ । १० ॥ (**आप्नोति**) (**श्रद्धया**) (**सत्यम्**) सत्सु=नित्येषु पदार्थेषु व्यवहारेषु वा साधुस्तं परमेश्वरं धर्मं वा (**आप्यते**) प्राप्यते ॥ ३० ॥

अन्वयः—यो बालकः कन्यका मनुष्यो वा व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षया दक्षिणामाप्नोति दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति तथा श्रद्धया वा येन सत्यमाप्यते स सुखी भवति ॥ ३० ॥

प्रमाणार्थ—(**श्रद्धाम्**) श्रत्=सत्यं० । 'श्रत्' पद निघं० (३ । १०) में सत्य-नामों में पठित है ॥

सपदार्थान्वयः—**यो बालकः कन्यका मनुष्यो वा व्रतेन** सत्यभाषणब्रह्मचर्य्यादिनियमेन **दीक्षां** ब्रह्मचर्य्यविद्यादिसुशिक्षाप्रज्ञाम् **आप्नोति, दीक्षया दक्षिणां** प्रतिष्ठां श्रियं वा **आप्नोति, दक्षिणा** दक्षिणया **श्रद्धां** श्रत्=सत्यं दधाति ययेच्छया ताम् **आप्नोति तथा श्रद्धया वा**

भाषार्थ—जो बालक, कन्या वा मनुष्य—(व्रतेन) सत्यभाषण एवं ब्रह्मचर्य आदि के नियम से (दीक्षाम्) ब्रह्मचर्य, विद्यादि, सुशिक्षा और प्रज्ञा को (आप्नोति) प्राप्त करता है, (दीक्षया) उक्त दीक्षा से (दक्षिणाम्) प्रतिष्ठा वा श्री को (आप्नोति) प्राप्त करता है, (दक्षिणा) दक्षिणा

धेन सत्यं सत्सु=नित्येषु पदार्थेषु व्यवहारेषु वा साधुः स परमेश्वरो धर्मो वा आप्यते प्राप्यते; स सुखी भवति ॥ १९ । ३० ॥

से (श्रद्धाम्) सत्य को धारण करने की इच्छा को (आप्नोति) प्राप्त करता है; वैसे (श्रद्धया) श्रद्धा से जिसके द्वारा (सत्यम्) सत्=नित्य पदार्थों वा व्यवहारों में श्रेष्ठ परमेश्वर वा धर्म को (आप्यते) प्राप्त किया जाता है; वह सुखी होता है ॥ ३० ॥

[मनुष्यो···व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षया दक्षिणां, दक्षिणा श्रद्धां, श्रद्धया···सत्यमाप्यते]

भावार्थः—कश्चिदपि मनुष्यो विद्या-सुशिक्षा-श्रद्धाभिर्विना सत्यान् व्यवहारान् प्राप्तुमसत्यांश्च त्यक्तुं न शक्नोति ॥ १९ । ३० ॥

भावार्थ—कोई भी मनुष्य विद्या, सुशिक्षा और श्रद्धा के विना सत्य व्यवहारों को प्राप्त और असत्य व्यवहारों का त्याग नहीं कर सकता ॥३०॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) जब मनुष्य ब्रह्मचर्यादि तथा सत्यभाषणादि व्रत अर्थात् नियम धारण करता है तब उस (**व्रतेन**) व्रत से उत्तम प्रतिष्ठा रूप (**दीक्षाम्**) दीक्षा को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है (**दीक्षया**) ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के नियम पालन से (**दक्षिणाम्**) सत्कार पूर्वक धनादि को (**आप्नोति**) प्राप्त होता है और (**श्रद्धया**) सत्य धार्मिक जनों में प्रीति से (**सत्यम्**) सत्य विज्ञान वा सत्य पदार्थ मनुष्य को (**आप्यते**) प्राप्त होता है। इसलिए श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम का अनुष्ठान करके वानप्रस्थ आश्रम अवश्य करना चाहिए ॥ **संस्कारविधि वानप्रस्थ०** ॥

(ख) (**व्रतेन दी०**) इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जब मनुष्य धर्म को जानने की इच्छा करता है तभी सत्य को जानता है उसी सत्य में मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिए असत्य में कभी नहीं। (**व्रतेन०**) जो मनुष्य सत्य के आचरण को दृढ़ता से करता है तब वह दीक्षा अर्थात् उत्तम अधिकार के फल को प्राप्त होता है (**दीक्षयाप्नोति**) जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है तब सब लोग सब प्रकार से उसका सत्कार करते हैं क्योंकि धर्म आदि शुभ गुणों से ही उस दक्षिणा को मनुष्य प्राप्त होता है, अन्यथा नहीं (**दक्षिणा श्र०**) जब ब्रह्मचर्य आदि सत्य व्रतों से अपना और दूसरे मनुष्यों का अत्यन्त सत्कार होता है तब उसी में दृढ़ विश्वास होता है क्योंकि सत्य धर्म का आचरण ही मनुष्यों का सत्कार कराने वाला है (**श्रद्धया०**) फिर सत्य के आचरण में जितनी-जितनी अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती है उतना-उतना ही मनुष्य लोग व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होते जाते हैं अधर्माचरण से नहीं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि सत्य की प्राप्ति के लिए सब दिन श्रद्धा और उत्साह आदि पुरुषार्थ को मनुष्य लोग बढ़ाते ही जायें जिससे सत्यधर्म की यथावत् प्राप्ति हो ॥ **ऋग्वेदादि० वेदोक्तधर्मविषयः** ॥

भाष्यसार—यज्ञादि श्रेष्ठ व्रतों से ही सत्य की प्राप्ति होती है—मनुष्य सत्यभाषणादि व्रतों से दीक्षा=सुशिक्षा को दीक्षा से दक्षिणा=प्रतिष्ठा को और दक्षिणा से श्रद्धा को प्राप्त करता है। श्रद्धा से सत्य=श्रेष्ठ व्यवहार, परमेश्वर, और धर्म की प्राप्ति होती है ॥ १९ । ३० ॥

हैमवर्चिः । **यज्ञः**=अग्निहोत्रम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनर्मनुष्याः किं कुर्युरित्याह ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**एतावत्**) एतत् परिमाणमस्य तत् (**रूपम्**) स्वरूपम् (**यज्ञस्य**) यजनकर्मणः

(यत्) (देवैः) विद्वद्भिः (ब्रह्मणा) परमेश्वरेण वेदचतुष्टयेन वा (कृतम्) निष्पादितं प्रकाशितं वा (तत्) परोक्षम् (एतत्) प्रत्यक्षम् (सर्वम्) (आप्नोति (यज्ञे) (सौत्रामणी) सूत्राणि=यज्ञोपवीतादीनि मणिना= ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिँस्तस्मिन् (सुते) सम्पादिते ॥ १९ । ३१ ॥

अन्वयः—यो मनुष्यो यद्देवैर्ब्रह्मणा यज्ञस्यैतावद् रूपं कृतं तदेतत् सर्वं सौत्रामणी सुते यज्ञ आप्नोति स द्विजत्वारम्भं करोति ॥ १९ । ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—यो मनुष्यो यद् देवैः विद्वद्भिः **ब्रह्मणा** परमेश्वरेण वेदचतुष्टयेन वा **यज्ञस्य** यजनकर्मणः **एतावद्** एतत्परिमाणमस्य तत् **रूपं** स्वरूपं **कृतं** निष्पादितं प्रकाशितं वा **तत्** परोक्षम् **एतत्** प्रत्यक्षं **सर्वं सौत्रामणी** सूत्राणि= यज्ञोपवीतादीनि मणिना=ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिँस्तस्मिन् **सुते** सम्पादिते **यज्ञ आप्नोति, स द्विजत्वारम्भं करोति** ॥ १९ । ३१ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—जो (देवैः) विद्वानों के द्वारा (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा चारों वेदों से (यज्ञस्य) यज्ञ कर्म का (एतावद्) इतना (रूपम्) स्वरूप (कृतम्) निष्पन्न वा प्रकाशित किया है (तत्) उस (एतत्) इस (सर्वम्) सबको—(सौत्रामणी) सूत्र=यज्ञोपवीत आदि मणि=ग्रन्थि से युक्त जिसमें धारण किए जाते हैं उस (सुते) सम्पादित (यज्ञे) यज्ञ में (आप्नोति) प्राप्त करता है वह द्विजत्व को आरम्भ करता है ॥ १९ । ३१ ॥

[यो मनुष्यो यद् देवैः···यज्ञस्यैतावद् रूपं कृतं, तदेतत् सर्वं······यज्ञ आप्यते]

भावार्थः—विद्वद्भिर्मनुष्यैर्यावद् यज्ञानुष्ठानानुसन्धानं क्रियेत तावदेवानुष्ठाय महोत्तमं यज्ञफलमाप्तव्यम् ॥ १९ । ३१ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य—जितना यज्ञानुष्ठान का अनुसन्धान कर सकें उतना करके अत्युत्तम यज्ञ-फल को प्राप्त करें ॥ १९। ३१ ॥

भाष्यसार—**यज्ञ करना प्रमुख कर्तव्य है**—चारों वेदों के विद्वानों ने यज्ञ का जो स्वरूप प्रकाशित किया है, जिस यज्ञ के करने का अधिकार यज्ञोपवीत आदि श्रेष्ठ व्रत धारण करने पर मिलता है। उसको करने से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है ॥ १९ । ३१ ॥

हैमवर्चिः । **निचृदतिजगती**ः=**परमैश्वर्ययुक्तो जनः** । इन्द्रः । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुरावन्तं बर्हिषदँ सुवीरं यज्ञँ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(**सुरावन्तम्**) सुराः=प्रशस्ताः सोमा विद्यन्ते यस्मिंस्तम् (**बर्हिषदम्**) यो बर्हिष्याकाशे सीदति तम् (**सुवीरम्**) शोभना वीराः=शरीरात्मबलयुक्ता यस्मात्तम् (**यज्ञम्**) (**हिन्वन्ति**) वर्धयन्ति (**महिषाः**) महान्तः=पूजनीयाः (**नमोभिः**) अन्नैः (**दधानाः**) धरन्तः (**सोमम्**) ऐश्वर्य्यम् (**दिवि**) शुद्धे व्यवहारे (**देवतासु**) विद्वत्सु (**मदेम**) हर्षेम (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्ययुक्तञ्जनम् (**यजमानाः**) ये यजन्ति ते विद्वांसः (**स्वर्काः**) शोभना अर्का=अन्नादयः पदार्था येषान्ते ॥ ३२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये महिषास्स्वर्का यजमाना नमोभिः सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति ते दिवि देवतासु सोममिन्द्रं दधानाः सन्तो वयञ्च मदेम ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! ये **महिषाः** महान्तः पूजनीयाः, **स्वर्काः** शोभना अर्का=अन्नादयः पदार्था येषान्ते, **यजमानाः** ये यजन्ति ते विद्वांसः, **नमोभिः** अन्नैः **सुरावन्तं** सुराः=प्रशस्ताः सोमा विद्यन्ते यस्मिंस्तं **बर्हिषदं** यो बर्हिष्याकाशे सीदति तं **सुवीरं** शोभना वीराः=शरीरात्मबलयुक्ता यस्मात्तं **यज्ञं हिन्वन्ति** वर्धयन्ति, **ते दिवि** शुद्धे व्यवहारे **देवतासु** विद्वत्सु **सोमम्** ऐश्वर्यम् **इन्द्रं** परमैश्वर्ययुक्तञ्जनं **दधानाः** धरन्तः **सन्तो वयञ्च मदेम** हर्षेम ॥ १९ । ३२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (महिषाः) महान् पूजनीय, (स्वर्काः) उत्तम अर्क=अन्न आदि पदार्थों वाले, (यजमानाः) यज्ञ करने वाले विद्वान् लोग (नमोभिः) अन्नों से (सुरावन्तम्) प्रशस्त सोम वाले, (बर्हिषदम्) आकाश में स्थित होने वाले, (सुवीरम्) उत्तम वीरों को शरीर और आत्मा के बल से युक्त करने वाले (यज्ञम्) यज्ञ को (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं; वे—(दिवि) शुद्ध व्यवहार में (देवतासु) विद्वानों में (सोमम्) ऐश्वर्य को (इन्द्रम्) परम-ऐश्वर्य से युक्त पुरुष को (दधानाः) धारण करते हुए हर्षित होते हैं, और हम भी (मदेम) प्रसन्न होवें ॥ १९ । ३२ ॥

[ये—यजमाना नमोभिः—यज्ञं हिन्वन्ति ते दिवि देवतासु सोममिन्दुं दधानाः सन्तो वयं च मदेम]

भावार्थः—ये मनुष्या अन्नाद्यैश्वर्यं सञ्चित्य, तेन विदुषः सन्तोष्य, सद्विद्याः सुशिक्षाः संगृह्य सर्वहितैषिणः स्युस्तेऽत्र पुत्रकलत्रानन्दमाप्नुवन्तु ॥ १९ । ३२ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न आदि ऐश्वर्य का संचय करके, उससे विद्वानों को सन्तुष्ट कर, सद्विद्या और सुशिक्षाओं को ग्रहण करके सबके हितैषी होते हैं, वे यहाँ पुत्र और कलत्र=स्त्री सम्बन्धी आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥ १९ । ३२ ॥

भा० पदार्थः—मदेम=पुत्रकलत्रानन्दमाप्नुयाम ।

भाष्यसार—परमैश्वर्य की प्राप्ति के साधन—जो मनुष्य स्वर्काः=उत्तम अन्नादि पदार्थों से सम्पन्न हैं, यजनशील हैं, शारीरिक और आत्मिक बल की प्राप्ति के लिए विविध यज्ञों को बढ़ाते हैं, उत्तम ओषधियों के प्रशस्त सोम का पान करके सर्वोपरि रहते हैं और विद्वानों का सत्कार करके उत्तम शिक्षाओं को प्राप्त करते रहते हैं, वे मनुष्य परमैश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । ३२ ॥ ●

हैमवर्चिः । **इन्द्रः=ऐश्वर्यवान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

किम्भूता जना धन्या इत्याह ॥

कैसे पुरुष धन्यवाद के योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यस्ते रसः सम्भृत ऽ ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(यः) (ते) तव (रसः) आनन्दः (सम्भृतः) सम्यग्धृतः (**ओषधीषु**) सोमलतादिषु (**सोमस्य**) अंशुमदादिसंज्ञस्य चतुर्विंशतिधा भिद्यमानस्य (**शुष्मः**) शुष्मं=बलं विद्यते यस्मिन् सः (**सुरया**) शोभनदानशीलया स्त्रिया (**सुतस्य**) निष्पादितस्य (तेन) (**जिन्व**) प्रीणीहि (**यजमानम्**) सर्वेभ्यः सुखं ददमानम् (**मदेन**) आनन्दप्रदेन (**सरस्वतीम्**) प्रशस्तविद्यायुक्तां स्त्रियम् (**अश्विनौ**) विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्ययुक्तं सभासेनेशम् (**अग्निम्**) पावकवच्छत्रुदाहकं योद्धारम् ॥ १९ । ३३ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त ओषधीषु वर्त्तमानस्य सुतस्य सोमस्य सुरया सम्भृतः शुष्मो रसोऽस्ति तेन मदेन यजमानं सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निञ्च जिन्व ॥ १९ । ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यस्ते** तव **ओषधीषु** सोमलतादिषु **वर्त्तमानस्य सुतस्य** निष्पादितस्य **सोमस्य** अंशुमदादिसंज्ञस्य चतुर्विंशतिधा भिद्यमानस्य **सुरया** शोभनदानशीलया स्त्रिया **सम्भृतः** सम्यग्धृतः **शुष्मः** शुष्मं=बलं विद्यते यस्मिन् सः **रसः** आनन्दः **अस्ति, तेन मदेन** आनन्दप्रदेन **यजमानं** सर्वेभ्यः सुखं ददमानं **सरस्वतीं** प्रशस्तविद्यायुक्तां स्त्रियम् **अश्विनौ** विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ **इन्द्रम्** ऐश्वर्ययुक्तं सभासेनेशम् **अग्नि** पावकवच्छत्रुदाहकं योद्धारं **च जिन्व** प्रीणीहि ॥ १९ । ३३ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो (ते) तेरा—(ओषधीषु) सोमलता आदि ओषधियों में वर्तमान (सुतस्य) सवन किए हुए (सोमस्य) अंशुमान् आदि नाम से २४ चौबीस प्रकार के सोम का—(सुरया) उत्तम दानशील स्त्री के द्वारा (सम्भृतः) ठीक रखा हुआ (शुष्मः) बलकारी (रसः) आनन्ददायक रस है; (तेन) उस (मदेन) आनन्दप्रद रस से (यजमानम्) सबको सुख देने वाले पुरुष को, (सरस्वतीम्) प्रशस्त विद्या से युक्त स्त्री को, (अश्विनौ) विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक को, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य से युक्त सभापति और सेनापति को और (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुओं के दाहक योद्धा को (जिन्व) तृप्त कर ॥ १९ । ३३ ॥

(**[हे विद्वन् ! यस्त ओषधिषु सोमरसस्य······सुरया सम्भृतः······रसोऽस्ति तेन मदेन······जिन्व]**

भावार्थः—ये विद्वांसो जना महौषधिसारं स्वयं संसेव्यान्यान् सेवयित्वा सततमानन्दं वर्द्धयेयुस्ते धन्याः सन्ति ॥ १९ । ३३ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष—महौषधि के सार को स्वयं सेवन करके एवं अन्यों को सेवन कराकर सदा आनन्द को बढ़ाते हैं वे धन्य हैं । ॥ १९ । ३३ ॥

भाष्यसार—कौन ऐश्वर्यवान् धन्य है ?—जो मनुष्य ऐश्वर्यसम्पन्न होकर ओषधियों के सेवन किये गये बलकारी आनन्दप्रद विविध सोमरसों से परोपकारी विद्वान् तथा विदुषी स्त्रियों को अध्यापक और उपदेशकों को और सभापति तथा वीर सेनापति को तृप्त करते हैं, वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥ १९ । ३३ ॥ ●

हैमवर्चिः । **सोमः**=ओषधिरसः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कीदृशाः जनाः सुखिनो भवन्तीत्याह ॥

कैसे पुरुष सुखी होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं तꣳ शुक्रं मधुमन्तमिन्दुꣳ सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(यम्) (**अश्विना**) सभासेनेशौ (**नमुचेः**) यो जलं न मुञ्चति तस्मात् (**आसुरात्**) असुरस्य=मेघस्यायं तस्मात् (**अधि**) (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**असुनोत्**) सुनोति (**इन्द्रियाय**) धनायेन्द्रियबलाय वा (**इमम्**) (**तम्**) (**शुक्रम्**) शीघ्रं बलकरम् (**मधुमन्तम्**) प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्तम् (**इन्दुम्**) परमैश्वर्यकारकम् (**सोमम्**) पुरुषार्थे प्रेरकम् (**राजानम्**) प्रकाशमानम् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**भक्षयामि**) भुञ्जे भोजयामि वा ॥ १९ । ३४ ॥

अन्वयः—मनुष्याः ! इहेन्द्रियाय यं नमुचेरासुरादधि शुक्रं मधुमन्तमिन्दुं राजानं सोमं सरस्वत्यसुनोदश्विना सुनुतां तमिममहं भक्षयामि ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! इह अस्मिन् संसारे **इन्द्रियाय** धनायेन्द्रियबलाय वा **यं नमुचेः** यो जलं न मुञ्चति तस्माद् **आसुराद्** असुरस्य=मेघस्यायं तस्माद् **अधि शुक्रं** शीघ्रं बलकरं **मधुमन्तं** प्रशस्तमधुरादिगुणयुक्तम् **इन्दुं** परमैश्वर्यकारकं **राजानं** प्रकाशमानं **सोमं** पुरुषार्थे प्रेरकं **सरस्वती** विदुषी स्त्री **असुनोत्** सुनोति, **अश्विना** सभासेनेशौ **सुनुतां**, **तमिममहं भक्षयामि** भुञ्जे-भोजयामि वा ॥ १९ । ३४ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (इह) इस संसार में (इन्द्रियाय) धन वा इन्द्रिय-बल के लिए (यम्) जिस (नमुचेः) जल को मुक्त न करने वाले (आसुरात्) मेघ से (अधि) अधिक (शुक्रम्) शीघ्र बलकारी (मधुमन्तम्) प्रशस्त मधुर आदि गुणों से युक्त (इन्दुम्) परम ऐश्वर्य कारक (राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) पुरुषार्थ में प्रेरक सोम को (सरस्वती) विदुषी स्त्री (असुनोत्) निचोड़ती है, (अश्विना) सभापति और सेनापति भी निचोड़ें, उसका मैं (भक्षयामि) भक्षण करूँ और कराऊँ ॥

[इहेन्द्रियाय...सोमम्...असुनोत्...तमिममहं भक्षयामि]

भावार्थः—ये मनुष्याः सारान्नरसभोजिनो भवन्ति ते बलिष्ठेन्द्रियाः सन्तः सदानन्दं भुञ्जते ॥

भावार्थ—जो मनुष्य—सार, अन्न, रस का भोजन करने वाले होते हैं वे बलिष्ठ इन्द्रियों वाले होकर सदा आनन्द भोगते हैं ॥ १९ । ३४ ॥

भाष्यसार—सोम-पानकर्त्ता सदा स्वस्थ रहता है—जो सोम=ओषधियों का रस शीघ्र बलप्रद है, मधुरतादि गुणों से सम्पन्न है, परमैश्वर्य-कारक है, सर्वथा प्रशस्त होने से प्रकाशमान है, और पुरुषार्थ का प्रेरक है, उसका पान करने से इन्द्रियों का बल बढ़ता है और मनुष्य सदा स्वस्थ रहता है ॥ १९ । ३४ ॥

हैमवर्चिः । **सोमः**=ओषधिरसः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैः सर्व आनन्दयितव्य इत्याह ॥

मनुष्यों को चाहिए कि सबको आनन्द करें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो ऽ अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि ॥ ३५ ॥

पदार्थः—(यत्) (अत्र) अस्मिन् संसारे (**रिप्तम्**) लिप्तं=प्राप्तम् । **अत्र लकारस्य रेफादेशः** (**रसिनः**) प्रशस्तो रसो विद्यते यस्मिंस्तस्य (**सुतस्य**) निष्पादितस्य (**यत्**) यम् (**इन्द्रः**) सूर्यः (**अपिबत्**) (**शचीभिः**) क्रियाभिः । **शचीति कर्मना० ॥ निघं० २ । १ ॥** (**अहम्**) (**तत्**) तम् (**अस्य**) (**मनसा**) (**शिवेन**) मङ्गलमयेन (**सोमम्**) ओषधीरसम् (**राजानम्**) देदीप्यमानम् (इह) (**भक्षयामि**) ॥ ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(रिप्तम्) लिप्तं=प्राप्तम् । यहाँ लकार के स्थान में रेफ आदेश है । (**शचीभिः**) क्रियाभिः । 'शची' पद निघं० (२ । १) में कर्म-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाहमिहास्य सुतस्य रसिनो यदत्र रिप्तमस्तीन्द्रश्शचीभिर्यदपिबत्तद् राजानं सोमं च शिवेन मनसा भक्षयामि तथा यूयमपि भक्षयत ॥ ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथाहमिहास्य सुतस्य** निष्पादितस्य **रसिनः** प्रशस्तो रसो विद्यते यस्मिंस्तस्य **यदत्र** अस्मिन् संसारे **रिप्तं** लिप्तं=प्राप्तम् **अस्ति, इन्द्रः** सूर्यः **शचीभिः** क्रियाभिः **यद्** यम् **अपिबत्तद्** तं **राजानं** देदीप्यमानं **सोमम्** ओषधीरसं **च शिवेन** मङ्गलमयेन **मनसा भक्षयामि तथा यूयमपि भक्षयत** ।। ३५ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—यहाँ इस (सुतस्य) तैयार किए हुए (रसिनः) उत्तम रस वाले पदार्थ का—(यद्) जो (अत्र) इस संसार में (रिप्तम्) प्राप्त है, (इन्द्रः) सूर्य (शचीभिः) क्रियाओं से (यत्) जिसको (अपिबत्) पीता है (तत्) उस (राजानम्) देदीप्यमान राजाओं (सोमम्) ओषधिरस का (शिवेन) मङ्गलमय (मनसा) मन से (भक्षयामि) भक्षण करता हूँ वैसे तुम भी भक्षण करो ।। १९ । ३५ ।।

[हे मनुष्याः ! यथा···इन्द्रः शचीभिर्यदपिबत् तद्···सोमं च···भक्षयामि]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यथा सूर्यः स्वकिरणैर्जलान्याकृष्य, वर्षित्वा सर्वान् सुखयति तथैवानुकूलाभिः क्रियाभी रसान् संसेव्य, बलमुन्नीय, यशोवृष्टया सर्वान् यूयमानन्दयत ।। १९ । ३५ ।।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—सूर्य अपनी किरणों से जलों का आकर्षण करके, वर्षा करके सबको सुख पहुँचाता है वैसे ही अनुकूल क्रियाओं से रसों का सेवन करके, बल को उन्नत करके, यश की वर्षा से सबको तुम आनन्दित करो ।। ३५ ।।

भा० पदार्थः—शचीभिः=अनुकूलाभिः क्रियाभिः ।

भाष्यसार—**ओषधिरस परम कल्याणकारक है**—सब मनुष्यों को उचित है कि वे ओषधि-विज्ञान को जानकर रोगनाशक, ओषधियों के रस का ही पान किया करें । तभी कल्याण तथा सुखों की वर्षा होती है । यह सोमरस शिवेन मनसा अर्थात् परिश्रम से सिद्ध किया गया हो, चोरी आदि कर्मों से दूसरों को दुःख देकर नहीं, तभी परम यशस्वी होता है ।। १९ । ३५ ।। ●

प्रजापतिः । **पितरः**=पितृ-आदयः । निचृदष्टि त्रिष्टुप् । मध्यमः ।।

पित्रपत्यादिभिरितरेतरं कथं वर्त्तितव्यमित्याह ।।

माता पिता पुत्रादि को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः । स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।।३६।।

पदार्थः—(**पितृभ्यः**) पालकेभ्यो जनकाध्यापकादिभ्यः (**स्वधायिभ्यः**) ये स्वधामुदकमन्नं वैतुं=प्राप्तुं शीलास्तेभ्यः । स्वधेत्युदकना० ।। निघं० १ । १२ ।। स्वधेत्यन्नना० ।। निघं० २ । ७ ।। (**स्वधा**) अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**पितामहेभ्यः**) ये पितॄणां पितरस्तेभ्यः (**स्वधायिभ्यः**) (**स्वधा**) स्वान् दधाति यया सा क्रिया (**नमः**) नमनम् (**प्रपितामहेभ्यः**) ये पितामहानां पितरस्तेभ्यः (**स्वधायिभ्यः**) (**स्वधा**) स्वेन धारिता सेवा (**नमः**) अन्नादिकम् (**अक्षन्**) अदन्तु । योऽद्धातोः स्थाने घस्लृआदेशस्तस्य लुङि रूपम् (**पितरः**) ज्ञानिनः (**अमीमदन्त**) अतिशयेन हर्षयत (**पितरः**) (**अतीतृपन्त**) अतिशयेन तर्पयत (**पितरः**) (**पितरः**) (**शुन्धध्वम्**) पवित्रीकुरुत ।। १९ । ३६ ।।

प्रमाणार्थ—(स्वधायिभ्यः) स्वधा शब्द निघं० (१ । १२) में उदक=जल—नामों में पठित

है और निघं० (२ । ७) में अन्न-नामों में पठित है। (अक्षन्) अदन्तु। यह 'अद्' धातु के स्थान में जो 'घस्लृ' आदेश होता है उसका यह लुङ् लकार में रूप है ॥

अन्वयः—अस्माभिः पुत्रशिष्यादिमनुष्यैर्येभ्यः स्वधायिभ्यः पितृभ्यः स्वधा नमः स्वधायिभ्यः पितामहेभ्यः स्वधा नमः स्वधायिभ्यः प्रपितामहेभ्यः स्वधा नमः क्रियते। हे पितरस्ते भवन्तोऽस्मत्सुसंस्कृतान्यन्नादीन्यक्षन्। हे पितरो! यूयमानन्दिता भूत्वाऽस्मानमीमदन्त। हे पितरो! यूयं तृप्ता भूत्वास्मानतीतृपन्त। हे पितरो! यूयं शुद्धा भूत्वाऽस्मान् शुन्धध्वम् ॥ १६। ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—अस्माभिः पुत्रशिष्यादिमनुष्यैर्येभ्यः **स्वधायिभ्यः** ये स्वधामुदकमन्नं वैतुं=प्राप्तुं शीलास्तेभ्यः **पितृभ्यः** पालकेभ्यो जनकाध्यापकादिभ्यः **स्वधा** अन्नं **नमः** सत्करणम्, **स्वधायिभ्यः** ये स्वधामुदकमन्नं वैतुं=प्राप्तुं शीलास्तेभ्यः **पितामहेभ्यः** ये पितॄणां पितरस्तेभ्यः **स्वधा** स्वान् दधाति यया सा क्रिया **नमः** नमनम्, **स्वधायिभ्यः** ये स्वधामुदकमन्नं वैतुं=प्राप्तुं शीलास्तेभ्यः **प्रपितामहेभ्यः** ये पितामहानां पितरस्तेभ्यः **स्वधा** स्वेन धारिता सेवा **नमः** अन्नादिकं **क्रियते**।

हे पितरः ज्ञानिनः! **ते भवन्तोऽस्मत्सुसंस्कृतान्यन्नादीन्यक्षन्** अदन्तु।

हे पितरः! ज्ञानिनः! **यूयमानन्दिता भूत्वाऽस्मानमीमदन्त** अतिशयेन हर्षयत।

हे पितरः! ज्ञानिनः! **यूयं तृप्ता भूत्वास्मानतीतृपन्त** अतिशयेन तर्पयत।

हे पितरः! ज्ञानिनः! **यूयं शुद्धा भूत्वाऽस्मान् शुन्धध्वम्** पवित्रीकुरुत ॥ १६। ३६ ॥

भाषार्थ—हम पुत्र, शिष्य आदि मनुष्य—जिन (स्वधायिभ्यः) स्वधा=जल वा अन्न को प्राप्त करने वाले (पितृभ्यः) पालक पिता और अध्यापक आदि के लिए (स्वधा) अन्न प्रदान एवं (नमः) सत्कार करते हैं; (स्वधायिभ्यः) स्वधा=जल वा अन्न को प्राप्त करने वाले (पितामहेभ्यः) पिता के पिता अर्थात् दादा जनों के लिए (स्वधा) स्वजनों का धारण-पोषण एवं (नमः) नमस्कार करते हैं, (स्वधायिभ्यः) स्वधा=जल वा अन्न को प्राप्त करने वाले (प्रपितामहेभ्यः) पितामहों के भी पिता अर्थात् परदादा जनों के लिए (स्वधा) सेवा (नमः) अन्न आदि प्रदान करते हैं—

हे (पितरः) ज्ञानी पितर लोगो! सो आप हमारे उत्तम रीति से संस्कृत अन्न आदि को (अक्षन्) खाओ।

हे (पितरः) ज्ञानी पितर लोगो! आप—आनन्दित होकर हमें (अमीमदन्त) अत्यन्त हर्षित करो।

हे (पितरः) ज्ञान पितर लोगो! तुम—तृप्त होकर हमें (अतीतृपन्त) अत्यन्त तृप्त करो।

हे (पितरः) ज्ञानी पितर लोगो! तुम—शुद्ध होकर हमें (शुन्धध्वम्) पवित्र करो ॥ १६। ३६ ॥

[अस्माभिः पुत्रशिष्यादिमनुष्यैर्येभ्यः स्वधायिभ्यः पितृभ्यः स्वधा, नमः ··· क्रियते]

भावार्थः—हे पुत्रशिष्यस्नुषादयो जनाः। यूयमुत्तमैरन्नादिभिः पित्रादीन् वृद्धान् सततं सत्कुरुत।

भावार्थ—हे पुत्र, शिष्य, स्नुषा=पुत्रवधू आदि लोगो! तुम—अन्न आदि पदार्थों से पिता आदि वृद्ध जनों का सदा सत्कार करो।

[हे पितरः! यूयं···अस्मानमीमदन्त]

पितरो युष्मानप्यानन्दयेयुः।

पितर लोग तुम्हें भी आनन्दित करें।

[हे पितरः ! यूयं तृप्ता भूत्वाऽस्माननतीतृपन्त]

यथा मातापित्रादयो बाल्यावस्थायां युष्मान् सेवन्ते तथैव यूयं वृद्धावस्थायां तेषां सेवां यथावत् कुरुत ॥ १९ ॥ ३६ ।	जैसे—माता-पिता आदि बाल्य अवस्था में तुम्हारी सेवा करते हैं वैसे ही—तुम वृद्धावस्था में उनकी सेवा यथावत् करो ॥ १९ । ३६ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (पितृभ्यः स्वधा०) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्याश्रम से विद्या पढ़के सबको पढ़ाते हैं उन पितरों को हमारा नमस्कार है, (पितामहेभ्यः०) जो चवालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्याश्रम से वेदादि विद्याओं को पढ़के सबके उपकारी और अमृत रूप ज्ञान के देने वाले होते हैं, (प्रपितामहेभ्यः०) जिन्होंने अड़तालीस वर्ष पर्यन्त जितेन्द्रियता के साथ सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़के, हस्तक्रियाओं से भी विद्या के दृष्टान्त साक्षात् देख के दिखलाते और जो सबके सुखी होने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते हैं उनका मान भी सब लोगों को करना उचित है ।

पिताओं का नाम वसु है क्योंकि वे सब विद्याओं में वास करने के लिए योग्य होते हैं । ऐसे ही पितामहों का नाम रुद्र है क्योंकि वे वसु-संज्ञक पितरों से दूनी अथवा शतगुणी विद्या और बल वाले होते हैं, तथा प्रपितामहों का नाम आदित्य है क्योंकि वे सब विद्याओं और सब गुणों में सूर्य के समान प्रकाशमान होके सब विद्या और लोगों को प्रकाशमान करते हैं । इन तीनों का नाम वसु, रुद्र और आदित्य इसलिए है कि वे किसी प्रकार की दुष्टता मनुष्यों में रहने नहीं देते । इसमें—(पुरुषो वाव यज्ञः०) यह छान्दोग्योपनिषद् प्रमाण लिख दिया है, सो देख लेना ।

(अक्षन् पितरः) हे पितर लोगो ! तुम—विद्या रूप यज्ञ को फैला के सुख भोगो तथा (अमीमदन्त पितरः) हमारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न रहो (अतीतृपन्त पितरः) हमारी सेवा से तृप्त होकर हमको भी आनन्दित और तृप्त करते रहो तथा जिस पदार्थ को तुम चाहो अथवा हम आपकी सेवा में भूलें तो आप लोग हमको शिक्षा करो । (पितरः शुन्धध्वम्) हे पितर लोगो ! आप हमको धर्मोपदेश और सत्य विद्याओं से शुद्ध करें कि जिससे हम लोग आपके साथ मिलके सनातन परमात्मा की भक्ति अपनी शुद्धि के अर्थ प्रेम से करें ॥ ऋग्वेदादि० बलिवैश्व० ॥

(ख) 'पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः' इत्यादि मन्त्र पिता, पितामह, प्रपितामहादिकों के··· सत्कार में प्रमाण हैं ॥ पंचमहा० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**माता पितादि पितरों का कर्त्तव्य**—माता-पिता, दादा और परदादा का सन्तान के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वे उत्तम संस्कृत अन्नादि को खाकर सदा प्रसन्न रहें और अपनी सन्तान को भी तृप्त रक्खें । और अपने धर्माचरण से सन्तानादि को भी पवित्राचरण वाला बनावें ।

इसी प्रकार सन्तानादि का अपने पितरों के प्रति यह धर्म है कि वे पितरों को अन्नादि भोज्य पदार्थों से सदा तृप्त रक्खें और उनकी आज्ञा में रह कर उनका सदा सम्मान किया करें ॥ १९ । ३६ ॥

प्रजापतिः । **सरस्वती**=सुशिक्षा । भुरिगष्टिः । मध्यमः ॥

पुनस्तदेवाह ॥

माता पिता पुत्रादि को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा ।
पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**पुनन्तु**) अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु (**मा**) माम् (**पितरः**) ज्ञानप्रदानेन पालकाः (**सोम्यासः**) सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा (**पुनन्तु**) (**मा**) (**पितामहाः**) (**पुनन्तु**) (**प्रपितामहाः**) (**पवित्रेण**) शुद्धाचरणयुक्तेन (**शतायुषा**) शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन (**पुनन्तु**) (**मा**) (**पितामहाः**) (**पुनन्तु**) (**प्रपितामहाः**) (**पवित्रेण**) ब्रह्मचर्य्यादिधर्माचरणयुक्तेन (**शतायुषा**) (**विश्वम्**) पूर्णम् (**आयुः**) जीवनम् (**वि**) विविधार्थे (**अश्नवै**) प्राप्नुयाम् । लेट्प्रयोगोऽयम् ।। ३७ ।।

प्रमाणार्थ—(**अश्नवै**) प्राप्नुयाम् । यह 'लेट्' लकार का प्रयोग है ।।

अन्वयः—सोम्यासः पितरः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः पितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु, सोम्यासः पितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु सोम्यासः प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु यतोऽहं विश्वमायुर्व्यश्नवै प्राप्नुयाम् ।। ३७ ।।

सपदार्थान्वयः—**सोम्यासः** सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा **पितरः** ज्ञानप्रदानेन पालकाः **पवित्रेण** शुद्धाचरणयुक्तेन **शतायुषा** शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन **मा** मां **पुनन्तु** अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु ।

सोम्यासः सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा **पितामहाः पवित्रेण** शुद्धाचरणयुक्तेन **शतायुषा** शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन **मा** मां **पुनन्तु** अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु ।

सोम्यासः सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा **प्रपितामहाः पवित्रेण** शुद्धाचरणयुक्तेन **शतायुषा** शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन **मा** मां **पुनन्तु** अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु ।

सोम्यासः सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा **पितामहाः पवित्रेण** ब्रह्मचर्यादिधर्माचरणयुक्तेन **शतायुषा** शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन **मा** मां **पुनन्तु** अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु ।

सोम्यासः सोमे=ऐश्वर्ये भवाः सोमवच्छान्ता वा **प्रपितामहाः पवित्रेण** ब्रह्मचर्य्यादिधर्माचरण-

भाषार्थ—(सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य में वर्तमान वा सोम के समान शान्त, (पितरः) ज्ञान-प्रदान करके पालन करने वाले पितर लोग—(पवित्रेण) शुद्ध आचरण से युक्त (शतायुषा) सौ वर्ष वाली आयु से (मा) मुझे (पुनन्तु) अशुद्ध व्यवहार से हटा कर शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करके पवित्र करें ।

(सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य में वर्तमान वा सोम के समान शान्त (पितामहाः) दादा लोग (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से युक्त (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझे (पुनन्तु) अशुद्ध व्यवहार से हटाकर शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करके पवित्र करें ।

(सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य में वर्तमान वा सोम के समान शान्त (प्रपितामहाः) परदादा लोग (पवित्रेण) शुद्ध आचरण से युक्त (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझे (पुनन्तु) अशुद्ध व्यवहार से हटाकर शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करके पवित्र करें ।

(सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य में वर्तमान वा सोम के समान शान्त (पितामहाः) दादा लोग (पवित्रेण) ब्रह्मचर्य आदि धर्माचरण से युक्त (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझे (पुनन्तु) अशुद्ध व्यवहार से हटा कर शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करके पवित्र करें ।

(सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य में वर्तमान वा सोम के समान शान्त (प्रपितामहाः) परदादा लोग

युक्तेन **शतायुषा** शतं वर्षाणि यस्मिन्नायुषि तेन **मा पुनन्तु** अशुद्धाद् व्यवहारान्निवर्त्य शुद्धे प्रवर्त्य पवित्रीकुर्वन्तु ।

(पवित्रेण) ब्रह्मचर्य आदि धर्माचरण से युक्त (शतायुषा) सौ वर्ष की आयु से (मा) मुझे (पुनन्तु) अशुद्ध व्यवहार से हटाकर शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करके पवित्र करें ।

यतोऽहं विश्वं पूर्णम् **आयुः** जीवनं **व्यश्नवै**= **प्राप्नुयां** विविधतया प्राप्नुयाम् ॥ १९ । ३७ ॥

जिससे मैं—(विश्वम्) पूर्ण (आयुः) आयु को (व्यश्नवै) प्राप्त होऊँ ॥ १९ । ३७ ॥

[पितरः पवित्रेण शतायुषा मा पुनन्तु]

भावार्थः—पितृपितामहप्रपितामहैः स्वकन्याः पुत्राश्च ब्रह्मचर्यसुशिक्षा धर्मोपदेशेन संयोज्य विद्यासुशीलयुक्ताः कार्याः । सन्तानैः सेवानुकूलाचरणाभ्यां सर्वे नित्यं सेवनीयाः । एवं परस्परोपकारेण गृहाश्रमे आनन्देन वर्त्तितव्यम् ॥ १९ । ३७ ॥

भावार्थ—पिता, दादा परदादा लोग—अपनी कन्याओं और पुत्रों को ब्रह्मचर्य, सुशिक्षा और धर्म के उपदेश से संयुक्त करके उन्हें विद्या और सुशीलता से युक्त करें । सन्तान सेवा और अनुकूल आचरण से सब की नित्य सेवा करें । इस प्रकार परस्पर उपकार से गृहाश्रम में आनन्द से रहें ॥ १९ । ३७ ॥

भाष्यसार—**पितादि सन्तान को सुशिक्षा से युक्त करें**—सोम्यासः=ऐश्वर्यादि से सम्पन्न ज्ञानी माता-पितादि पवित्र धर्माचरण वाले होकर अपनी सन्तान को अशुद्ध व्यवहार से हटाकर पवित्राचरण वाला बनावें । क्योंकि शुद्धाचार वाली सन्तान ही पूर्णायु का भोग करने वाली होकर माता-पितादि को भी वृद्धावस्था में सुखी रखती है । वह सन्तान बहुत सौभाग्यशाली होती है, जिसके पितर धार्मिक हों । क्योंकि माता-पितादि में से एक के भी अधार्मिक होने से सन्तान बिगड़ जाती है ॥ १९ । ३७ ॥ ●

वैखानसः । **इन्द्रः**=**विद्वान् पिता** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता, पुत्रादि को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अग्न॒ऽ आयूँ॑षि पवस॒ऽ आ सु॒वोर्ज॒मिषं॑ च नः । आ॒रे बा॑धस्व दु॒च्छुना॑म् ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**अग्ने**) विद्वन् पितः पितामह प्रपितामह (**आयूंषि**) अन्नादीनि (**पवसे**) पवित्रीकुर्याः । लेट्प्रयोगोऽयम् (**आ**) समन्तात् (**सुव**) प्रेर्ष्व (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**इषम्**) इच्छासिद्धिम् (**च**) (**नः**) अस्माकम् (**आरे**) दूरे निकटे (**बाधस्व**) निवर्त्तय (**दुच्छुनाम्**) दुतो=दुष्टाश्वान इव वर्त्तमानास्तेषाम् ॥ ३८ ॥

प्रमाणार्थ—(**पवसे**) पवित्री कुर्याः । यह 'लेट्' लकार का प्रयोग है ।

अन्वयः—हे अग्ने ! यस्त्वं न आयूंषि पवसे स त्वमूर्ज्जमिषं चासुव आरे दुच्छुनां संगं बाधस्व ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अग्ने** ! विद्वन् पितः ! पितामह ! प्रपितामह ! **यस्त्वं नः** अस्मा-

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् पिता, दादा और परदादा ! जो तू—(नः) हमारे (आयूंषि)

कम् **आयूंषि** अन्नादीनि **पवसे** पवित्रीकुर्याः, **स त्वमूर्ज्जं** पराक्रमम् **इषम्** इच्छासिद्धिं **चासुव** समन्तात् प्रेर्ष्व ।

आरे दूरे निकटे **दुच्छुनां** दुतो=दुष्टाश्श्वान इव वर्त्तमानास्तेषां **सङ्गं बाधस्व** निवर्त्तय ॥ ३८ ॥

आयु के निमित्त=अन्न आदि को (पवसे) पवित्र करता है, सो तू—(ऊर्ज्जम्) पराक्रम और (इषम्) इच्छा-सिद्धि को (आसुव) प्रदान कर। और—

(आरे) दूर वा निकट (दुच्छुनाम्) दुत्=दुष्ट श्वानों के समान वर्ताव करने वाले पुरुषों के सङ्ग को (बाधस्व) हटा ॥ १९ । ३८ ॥

[हे अग्ने !···त्वं न आयूंषि, ऊर्जम्, इषं चासुव, दुच्छुनां सङ्गं बाधस्व]

भावार्थः—पित्रादयोऽपत्येषु दीर्घायुः-पराक्रम-शुभेच्छा धारयित्वा स्वसन्तानान् दुष्टानां सङ्गान्निवार्य श्रेष्ठानां सङ्गे प्रवर्त्य धार्मिकान् दीर्घायुषः कुर्वन्तु,

भावार्थ—पिता आदि लोग सन्तानों में दीर्घायु, पराक्रम और शुभ-इच्छा को धारण कराके अपने सन्तानों को दुष्टों के सङ्ग से हटाकर श्रेष्ठों के सङ्ग में प्रवृत्त करके धार्मिक एवं दीर्घायु बनावें।

[हेतुमाह—]

यतस्ते वृद्धावस्थायामप्यप्रियाचरणं कदाचिन्न कुर्युः ॥ १९ । ३८ ॥

जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रिय आचरण कभी न करें ॥ १९ । ३८ ॥

भा० पदार्थः—आयूंषि=दीर्घायुः । इषम्=शुभेच्छाम् । दुच्छुनाम्=दुष्टानाम् ।

भाष्यसार—माता-पिता का कर्त्तव्य—अग्ने=विद्वान् माता-पितादि पितरों का यह कर्त्तव्य है कि वे सन्तान की आयु बढ़ाने के लिए पवित्र आहार ही देवें। जिससे सन्तान बलवान् होकर सब कामनाओं को पूरा करने वाली बन सके और माता पिता सन्तान की कुत्ते आदि पशुओं की तरह बुरी आदतों को दूर करने का पूर्ण प्रयत्न किया करें ॥ १९ । ३८ ॥

वैखानसः । **विद्वांसः=स्पष्टम्** ॥ अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता, पुत्रादि को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ ३९ ॥

पदार्थः—हे (पुनन्तु) (मा) (देवजनाः) देवा=विद्वांसश्च ते जना धर्मे प्रसिद्धाश्च (पुनन्तु) (मनसा) विज्ञानेन (धियः) बुद्धीः (पुनन्तु) (विश्वा) सर्वाणि (भूतानि) (जातवेदः) जातेषु=जनेषु ज्ञानिन्=विद्वन् (पुनीहि) (मा) माम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—हे जातवेदो विद्वन् ! यथा देवजना मनसा मां पुनन्तु मम धियश्च पुनन्तु मम विश्वाभूतानि मा पुनन्तु तथा त्वं मा पुनीहि ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **जातवेदः**=विद्वन् ! जातेषु=जनेषु ज्ञानिन्=विद्वन् **यथा देवजनाः** देवा=विद्वांसश्च ते जना धर्मे प्रसिद्धाश्च **मनसा** विज्ञानेन [**मा**]=मां **पुनन्तु**, **मम धियः**

भाषार्थ—हे (जातवेदः) जात=उत्पन्न हुए जनों में ज्ञानी विद्वान् ! जैसे—(देवजनाः) देव अर्थात् विद्वान् और धर्मात्मा लोग (मनसा) विज्ञान से [मा] मुझे (पुनन्तु) पवित्र करें, और मेरी

बुद्धीः **च पुनन्तु, मा विश्वा** सर्वाणि **भूतानि मा** मां **पुनन्तु, तथा त्वं मा** मां **पुनीहि** ॥ १९ । ३९ ॥

(धियः) बुद्धियों को (पुनन्तु) पवित्र करें, मेरे (विश्वा) सब (भूतानि) प्राणी (मा) मुझे (पुनन्तु) पवित्र करें, वैसे तू (मा) मुझे (पुनीहि) पवित्र कर ॥ १९ । ३९ ॥

[देवजना मनसा [मा]=मां पुनन्तु]

भावार्थः—विदुषां विदुषीणां चेदमेव मुख्यं कृत्यमस्ति यत्—पुत्राः पुत्र्यश्च ब्रह्मचर्यसुशिक्षाभ्यां विद्वांसः विदुष्यश्च सुशीलाः सततं संपादनीया इति ॥ १९ । ३९ ॥

भावार्थ—विद्वानों और विदुषियों का यही मुख्य कार्य है कि—वे पुत्रों और पुत्रियों को ब्रह्मचर्य तथा सुशिक्षा से उन्हें विद्वान् और विदुषी एवं सुशील सदा बनावें ॥ १९ । ३९ ॥

भा० पदार्थः—देवजनाः=विद्वांसः/विदुष्यः । मनसा=ब्रह्मचर्येण, सुशिक्षया । पुनन्तु=सुशीलं सम्पादयन्तु ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (पुनन्तु०) हे जातवेद परमेश्वर ! आप सब प्रकार से मुझे पवित्र कीजिए और जो आपके उपासक आप की आज्ञा पालते हैं अथवा जो कि विद्वान् ज्ञानी पुरुष कहाते हैं वे मुझको विद्या-दान से पवित्र करें और आपके दिए विशेष ज्ञान वा आपके विषय के ध्यान से हमारी बुद्धियाँ पवित्र हों तथा—(पुनन्तु विश्वा भूतानि०) सब संसारी जीव आप की कृपा से पवित्र होकर आनन्द में रहें ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

(ख) (पुनन्तु) हे जातवेद परमेश्वर ! आप सब प्रकार से मुझको पवित्र करें । जिनका चित्त आप में है तथा जो आप की आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ, ज्ञानी पुरुष भी विद्या-दान से मुझको पवित्र करें । उसी प्रकार आप का दिया जो विशेष ज्ञान वा आपके विषय का ध्यान है उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो । (पुनन्तु विश्वा भूतानि) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों ॥ (पञ्चमहायज्ञ० पितृयज्ञ०) ॥

भाष्यसार—विद्वान् माता-पिता का कर्त्तव्य—देवजनाः=विद्वान् और धर्मात्मा माता-पिता का यह परम कर्त्तव्य है कि वे विज्ञान से सन्तान की बुद्धियों को पवित्र करें । इसी प्रकार विद्वान् मनुष्य सब प्राणियों को सुशिक्षित करके पवित्र करें ॥ १९ । ३९ ॥

वैखानसः । **अग्निः=पित्रादिः** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता पुत्रादि को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ऽ रनु ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**पवित्रेण**) शुद्धेन (**पुनीहि**) (**मा**) (**शुक्रेण**) वीर्येण=पराक्रमेण (**देव**) विद्यादातः (**दीद्यत्**) प्रकाशमान (**अग्ने**) विद्वन् (**क्रत्वा**) क्रतुना=प्रज्ञया कर्मणा वा (**क्रतून्**) प्रज्ञाः कर्माणि वा (**अनु**) ॥ ४० ॥

अन्वयः—हे दीद्यद्देवाग्ने ! त्वं पवित्रेण शुक्रेण स्वयं पवित्रो भूत्वा मा माञ्चंतेनानुपुनीहि स्वस्य क्रत्वा प्रज्ञया कर्मणा वा स्वां प्रज्ञां स्वं कर्म च पवित्रीकृत्यास्माकं क्रतूननु पुनीहि ॥४०॥

सपदार्थान्वयः—हे दीद्यत् प्रकाशमान देव विद्यादातः **अग्ने** ! विद्वन् ! **त्वं पवित्रेण** शुद्धेन **शुक्रेण** वीर्येण=पराक्रमेण **स्वयं पवित्रो भूत्वा मा**=माञ्चैतेनानुपुनीहि, **स्वस्य क्रत्वा**=**प्रज्ञया कर्मणा वा** क्रतुना प्रज्ञया कर्मणा वा स्वां **प्रज्ञां स्वं कर्म च पवित्रीकृत्यास्माकं क्रतून्** प्रज्ञाः कर्माणि वा **अनुपुनीहि** ॥ १९ । ४० ॥

भाषार्थ—हे (दीद्यत्) प्रकाशमान (देव) विद्या के दाता (अग्ने) विद्वान् ! तू—(पवित्रेण) शुद्ध (शुक्रेण) वीर्य=पराक्रम से स्वयं पवित्र होकर (मा) मुझे इससे पवित्र कर, अपनी (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से अपनी प्रज्ञा और अपने कर्म को पवित्र करके हमारे (क्रतून्) प्रज्ञा वा कर्मों को पवित्र कर ॥ १९ । ४० ॥

[हे······देव ! अग्ने ! त्वं पवित्रेण शुक्रेण स्वयं पुत्रो भूत्वा मा=मां चैतेनानुपुनीहि]

भावार्थः—पित्रध्यापकोपदेशकाः स्वयं धार्मिका विद्वांसो भूत्वा स्वसन्तानानपीदृशानेव योग्यान् धार्मिकान् विदुषः कुर्युः ॥ १९ । ४० ॥

भावार्थ—पिता, अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक विद्वान् होकर अपने सन्तानों को भी ऐसे ही योग्य धार्मिक विद्वान् बनावें ॥४०॥

भा० पदार्थः—अग्ने=पितृ-अध्यापक-उपदेशक ! ।

भाष्यसार—**माता-पिता का कर्त्तव्य**—विद्यादि गुणों से प्रकाशमान, देव=सन्तानादि को सुशिक्षा देने वाले माता-पिता अपने पवित्र आचरण तथा कर्मों से सन्तान के कर्मों और बुद्धि को पवित्र बनावें ॥ १९ । ४० ॥ ●

वैखानसः । **अग्निः**=ईश्वरः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

जनैः कथं शुद्धैर्भवितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को कैसे शुद्ध होना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

यत्ते॑ प॒वित्र॑म॒र्चिष्यग्ने॒ वित॑तमन्त॒रा । ब्रह्म॒ तेन॑ पुनातु॒ मा ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**यत्**) (**ते**) तव (**पवित्रम्**) शुद्धम् (**अर्चिषि**) अर्चितुं योग्ये शुद्धे तेजसि (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर (**विततम्**) व्याप्तम् (**अन्तरा**) (**ब्रह्म**) बृहद्विद्यं वेदचतुष्टयम् (**तेन**) (**पुनातु**) (**मा**) माम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे अग्ने ! ते तवार्चिष्यन्तरा यत् विततं पवित्रं ब्रह्मास्ति तेन मा मां भवान् पुनातु ॥ ४१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने** ! स्वप्रकाशस्वरूपेश्वर ! **ते**=**तवार्चिषि** अर्चितुं योग्ये शुद्धे तेजसि **अन्तरा यत् विततं** व्याप्तं **पवित्रं** शुद्धं **ब्रह्म** बृहद्विद्यं वेदचतुष्टयम् अस्ति, **तेन मा**=**मां** भवान् **पुनातु** ॥ १९ । ४१ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर ! (ते) तेरे (अर्चिषि) अर्चा=पूजा के योग्य शुद्ध तेज के (अन्तरा) मध्य में (यत्) जो (विततम्) व्याप्त (पवित्रम्) शुद्ध (ब्रह्म) बृहत् विद्या वाला वेद-चतुष्टय है (तेन) उससे (मा) मुझे आप (पुनातु) पवित्र करो ॥ १९ । ४१ ॥

[हे अग्ने ! ते···यद् विततं पवित्रं ब्रह्मास्ति, तेन मा=मां भवान् पुनातु]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! यूयं देवानां देवः, पवित्राणां पवित्रो, व्याप्तेषु व्याप्तोऽन्तर्यामीश्वर-

भावार्थ—हे मनुष्यो ! तुम—जो देवों का देव, पवित्रों में पवित्र, व्याप्तों में व्याप्त अन्तर्यामी

स्तद्विद्या वेदश्चाऽस्ति, तदनुकूलाचरणेन सततं पवित्रा भवत ॥ १९ । ४१ ॥

ईश्वर है, और उसकी विद्या वेद है, उसके अनुकूल आचरण से सदा पवित्र रहो ॥ १९ । ४१ ॥

भाष्यसार—**ईश्वरीय वेद-ज्ञान ही पवित्र बनाता है**—जो मनुष्य स्वप्रकाशस्वरूप ईश्वर की पवित्र हृदय से उपासना करते हैं, उन्हें ब्रह्म=वेद-ज्ञान की प्राप्ति होती है। और वेद-ज्ञान से परम-पवित्रता की प्राप्ति होती है ॥ १९ । ४१ ॥

वैखानसः । **सोमः**=ईश्वरः । गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्मनुष्यैः पुत्रादयः कथं पवित्राः करणीया इत्याह ॥

फिर मनुष्यों को पुत्रादि कैसे पवित्र करने चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पवमानः सो ऽ अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः । यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

पदार्थः—(**पवमानः**) पवित्रः (**सः**) (**अद्य**) (**नः**) अस्माकं मध्ये (**पवित्रेण**) शुद्धाचरणेन (**विचर्षणिः**) विविधविद्याप्रद ईश्वरः (**यः**) (**पोता**) पवित्रकर्त्ता (**सः**) (**पुनातु**) (**मा**) माम् ॥ १९ । ४२ ॥

अन्वयः—यो नो मध्ये पवित्रेण पवमानो विचर्षणिरस्ति सोऽद्यास्माकं पवित्रकर्त्तोपदेशकश्चास्ति स पोता मा पुनातु ॥ १९ । ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो नः** अस्माकं **मध्ये पवित्रेण** शुद्धाचरणेन **पवमानः** पवित्रः **विचर्षणिः** विविधविद्याप्रदः ईश्वरः **अस्ति, सोऽद्यास्माकं पवित्रकर्त्तोपदेशकश्चास्ति, स पोता** पवित्रकर्त्ता **मा** मां **पुनातु** ॥ १९ । ४२ ॥

भाषार्थ—(यः) जो (नः) हमारे मध्य में—(पवित्रेण) शुद्ध आचरण से (पवमानः) पवित्र (विचर्षणिः) विविध विद्याओं का दाता ईश्वर है, (सः) वह (अद्य) आज हमारा पवित्र करने वाला और उपदेशक है, (सः) वह (पोता) पवित्र करने वाला ईश्वर (मा) मुझे (पुनातु) पवित्र करे ॥ १९ । ४२ ॥

[यो ''' पवमानो विचर्षणिरस्ति ''' स पोता मा पुनातु]

भावार्थः—मनुष्या ईश्वरवद् धार्मिका भूत्वा स्वसन्तानान् धर्मात्मनः कुर्युरीदृशानन्तराऽन्यानपि ते पवित्रयितुं न शक्नुवन्ति ॥ १९ । ४२ ॥

भावार्थ—मनुष्य ईश्वर के समान धार्मिक होकर अपने सन्तानों को धार्मिक बनावें, ऐसे सन्तानों के विना अन्यों को भी वे पवित्र नहीं कर सकते ॥ १९ । ४२ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर ही परम पवित्र कर्त्ता है**—वह परमेश्वर विचर्षणिः=विविध ज्ञान-विज्ञानों का देने वाला है, वह पवित्र आचरण करने से सबको पापों से त्राण करके पवित्र करता है। अतः सब मनुष्यों को ईश्वर के सहाय से पवित्र होकर दूसरों को भी पवित्र करना चाहिए ॥ १९ । ४२ ॥

वैखानसः । **सविता**=ईश्वरः । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

मनुष्यैरधर्मात्कथं भेतव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को अधर्म से कैसे डरना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च । मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—**(उभाभ्याम्)** विद्यापुरुषार्थाभ्याम् **(देव)** सुखप्रदातः **(सवितः)** सत्कर्मसु प्रेरकेश्वर **(पवित्रेण)** शुद्धाचरणेन **(सवेन)** ऐश्वर्येण **(च)** **(मा)** माम् **(पुनीहि)** **(विश्वतः)** सर्वतः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—हे देव सवितर्जगदीश्वर ! त्वं पवित्रेण सवेन चोभाभ्यां विश्वतो मां पुनीहि ॥ ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे देव सुखप्रदातः ! सवितः=जगदीश्वर सत्कर्मसु प्रेरकेश्वर ! **त्वं पवित्रेण** शुद्धाचरणेन **सवेन** ऐश्वर्येण **चोभाभ्यां** विद्यापुरुषार्थाभ्यां **विश्वतः** सर्वतः **[मा]**=मां **पुनीहि** ॥ १९ । ४३ ॥

भाषार्थ—हे (देव) सुखों के दाता (सवितः) सत्कर्मों में प्रेरणा करने वाले जगदीश्वर ! तू—(पवित्रेण) शुद्ध आचरण से, (सवेन) ऐश्वर्य से और (उभाभ्याम्) विद्या तथा पुरुषार्थ से (विश्वतः) सब ओर से [मा] मुझे (पुनीहि) पवित्र कर ॥ १९ । ४३ ॥

[हे—सवितः ··· त्वं ··· विश्वतो [मा]=मां पुनीहि]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! य ईश्वरः सर्वान् शुद्धिं धर्मं च ग्राहयति, तमाश्रित्याऽधर्माचरणात् सदा भयं कुरुत ॥ १९ । ४३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर सबको शुद्धि और धर्म का ग्रहण कराता है उसका आश्रय करके अधर्माचरण से सदा भय करो ॥ १९ । ४३ ॥

भाष्यसार—**ईश्वर की अनुकम्पा ही पापों से रक्षा करती है**—जो ईश्वर देव=सुखों का दाता है, सवितः – शुभ कार्यों में प्रेरणा करने वाला है, अपने शुद्ध वेद-ज्ञान और धर्मैश्वर्य से सबको पवित्र करता है, वह परमात्मा ही विद्या और पुरुषार्थ के द्वारा सब पापों से बचाकर पवित्र करता है ॥ १९ । ४३ ॥ ●

वैखानसः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

कथं राज्ञा राज्यं वर्द्धनीयमित्याह ॥

राजा को कैसे राज्य बढ़ाना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है।

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयᳬ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—**(वैश्वदेवी)** विश्वासां देवीनां=विदुषीणां मध्य इयं विदुषी **(पुनती)** पवित्रतां कुर्वती **(देवी)** सकलविद्याधर्माचरणेन प्रकाशमाना **(आ)** सर्वतः **(अगात्)** प्राप्नुयात् **(यस्याम्)** **(इमाः)** **(बह्व्यः)** अनेकाः **(तन्वः)** विस्तृतविद्याः **(वीतपृष्ठाः)** विविधानि इतानि=विदितानि पृष्ठानि=प्रच्छनानि याभिस्ताः **(तया)** **(मदन्तः)** हृष्यन्तः **(सधमादेषु)** सहस्थानेषु **(वयम्)** **(स्याम)** **(पतयः)** **(रयीणाम्)** धनानाम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या वैश्वदेवी पुनती देव्यध्यापिका ब्रह्मचारिणी कन्यास्मानागात् यस्यां सत्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः स्युस्तथा सुशिक्षिता भार्य्याः प्राप्य वयं सधमादेषु मदन्तो रयीणां पतयः स्याम ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! या **वैश्वदेवी** विश्वासां देवीनां=विदुषीणां मध्य इयं

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(वैश्वदेवी) सब देवी=विदुषियों में विदुषी (पुनती) पवित्र

विदुषी **पुनती** पवित्रतां कुर्वती **देवी**=**अध्यापिका ब्रह्मचारिणी कन्या** सकलविद्याधर्माचरणेन प्रकाशमाना **अस्मान् आ-अगात्** सर्वतः प्राप्नुयात् ।

यस्यां सत्यामिमा बह्वयः अनेकाः **तन्वः** विस्तृतविद्याः **वीतपृष्ठाः** विविधानि इतानि=विदितानि पृष्ठानि=प्रच्छनानि याभिस्ताः **स्युः**, **तया सुशिक्षिता** भार्याः **प्राप्य वयं सधमादेषु** सहस्थानेषु **मदन्तः** हृष्यन्तः **रयीणां** धनानां **पतयः स्याम** ॥ १६ । ४४ ॥

करने वाली (देवी) सकल विद्या और धर्माचरण से प्रकाशमान अध्यापिका ब्रह्मचारिणी कन्या हमें (आ-अगात्) सब ओर से प्राप्त हो ।

जिसके होने पर ये (बह्वयः) अनेक (तन्वः) विस्तृत विद्या वाली (वीतपृष्ठः) विविध पृष्ठ=प्रश्नों को जानने वाली हों, उससे सुशिक्षित भार्याओं को प्राप्त करके हम लोग (सधमादेषु) सभाओं में (मदन्तः) हर्षित होकर (रयीणाम्) धनों के (पतयः) पति (स्याम) होवें ॥ १६ । ४४ ॥

[याः······देवी=अध्यापिका······तथा सुशिक्षिता भार्याः प्राप्य वयं सधमादेषु मदन्तो रयीणां पतयः स्याम]

भावार्थः—यथा राजा सर्वकन्याऽध्यापनाय पूर्णविद्यावतीः स्त्रीर्नियोज्य सर्वा बालिकाः पूर्णविद्यासुशिक्षायुक्ताः कुर्यात् तथैव बालकानपि कुर्याद्, यदैते यौवनस्थाः स्युस्तदैव स्वयंवरं विवाहं कारयेदेवं राज्यवृद्धिं सदा कुर्यात् ॥ १६ । ४४ ॥

भावार्थ—जैसे राजा सब कन्याओं को पढ़ाने के लिए पूर्ण विद्यावती स्त्रियों को नियुक्त करके सब बालिकाओं को पूर्ण विद्या और सुशिक्षा से युक्त करे वैसे ही बालकों को भी करे, जब ये यौवन से पूर्ण हों तभी स्वयंवर विवाह करावे, इस प्रकार राज्य की वृद्धि सदा करे ॥ १६ । ४४ ॥

भा० पदार्थः—देवी=पूर्णविद्यावती स्त्री ।

भाष्यसार—**श्रेष्ठ विद्वान् ही ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं**—जो सब विद्या और धर्माचरण से प्रकाशमान, विस्तृत विद्या वाले होकर विविध प्रश्नों के द्वारा ज्ञानार्जन में संलग्न हैं, वे पवित्र आचरण करने वाले विद्वान् और विदुषियाँ विद्वानों की सभा में अत्यन्त प्रसन्न होकर ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं ॥ १६ । ४४ ॥

वैखानसः । **पितरः=प्रजापालकाः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

कुत्र जनाः सुखं निवसन्तीत्याह ॥

कहाँ मनुष्य सुखपूर्वक निवास करते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑ । तेषाँ॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**ये**) (**समानाः**) सदृशाः (**समनसः**) समानं मनो=विज्ञानं येषां ते (**पितरः**) प्रजापालकाः (**यमराज्ये**) यमस्य=सभाधीशस्य राष्ट्रे (**तेषाम्**) (**लोकः**) सभादर्शनं वा (**स्वधा**) अन्नम् (**नमः**) सत्करणम् (**यज्ञः**) संगन्तव्यो न्यायः (**देवेषु**) विद्वत्सु (**कल्पताम्**) समर्थितोऽस्तु ॥ ४५ ॥

अन्वयः—ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये सन्ति तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञश्च देवेषु कल्पताम् ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये समानाः** सदृशाः **समनसः** समानं मनो=विज्ञानं येषां ते **पितरः**

भाषार्थ—(ये) जो (समानाः) सदृश (समनसः) तुल्य मन=विज्ञान वाले (पितरः) प्रजा

प्रजापालकाः **यमराज्ये** यमस्य=सभाधीशस्य राष्ट्रे **सन्ति, तेषां लोकः** सभादर्शनं वा **स्वधा** अन्नं **नमः** सत्करणं **यज्ञः** सङ्गन्तव्यो न्यायः **च देवेषु** विद्वत्सु **कल्पतां** समर्थितोऽस्तु ॥ १९ । ४५ ॥

के पालक लोग (यमराज्ये) यम=सभाधीश के राष्ट्र में हैं (तेषाम्) उनकी (लोकः) सभा वा दर्शन, (स्वधा) अन्न, (नमः) सत्कार, (यज्ञः) और संग करने योग्य न्याय (देवेषु) विद्वानों में (कल्पताम्) समर्थित हो ॥ १९ । ४५ ॥

[ये ··· पितरो यमराज्ये सन्ति तेषां लोकः, स्वधा, नमः, यज्ञश्च देवेषु कल्पताम्]

भावार्थः—यत्र बहुदर्शिनमन्नाद्यैश्वर्ययुक्तानां, सज्जनैः सत्कृतानां, धर्मैकनिष्ठानां विदुषां सभा सत्यं न्यायं करोति तत्रैव सर्वे मनुष्या ऐश्वर्ये सुखे च निवासं कुर्वन्ति ॥ १९ । ४५ ॥

भावार्थ—जहाँ बहुदर्शी, अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त, सज्जनों से सत्कृत, धर्म-एक-निष्ठ विद्वानों की सभा सत्य न्याय करती है वहीं सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख में निवास करते हैं ॥४५॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क) 'ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये' इत्यादि मन्त्र यमराजों ··· ··· की सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं ॥ पञ्चमहायज्ञ० पितृयज्ञ० ॥

(ख) (ये समाना०) जो पितर अर्थात् विद्वान् लोग यमराज्य अर्थात् परमेश्वर के इस राज्य में सभासद वा न्यायाधीश हो के न्याय करने वाले और (समनसः पितरः) सब सृष्टि के हित करने में समान बुद्धि हैं (तेषां लोकः स्वधाः) जिनका लोक अर्थात् देश सत्य न्याय को प्राप्त होके सुखी रहता है (नमः) उनको हम लोग नमस्कार करते हैं क्योंकि वे पक्षपात रहित होके सत्य व्यवस्था में चलके अपने दृष्टान्त से औरों को भी उसी मार्ग में चलाने वाले हैं (यज्ञो देवेषु कल्पताम्) यह सत्य धर्म सम्बन्धी प्रजापालनरूप जो अश्वमेध यज्ञ है सो परमात्मा की कृपा से विद्वानों के बीच में सत्य व्यवस्था की उन्नति के लिए सदा समर्थ अर्थात् प्रकाशमान बना रहे ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**श्रेष्ठ पितर ही सत्करणीय हैं**—जो यमराज्ये=न्यायसभा में समान ज्ञान-विज्ञान वाले विद्वान् पितरः=प्रजापालक होते हैं, वे लोक-व्यवहार में संग करने योग्य होते हैं। सब मनुष्य उन श्रेष्ठ न्यायाधीशों का अन्नादि से सत्कार करते हैं ॥ १९ । ४५ ॥

वैखानसः । **श्रीः**=धनम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पितृसन्तानाः परस्परं कथं वर्त्तेरन्नित्याह ॥

माता, पिता और सन्तान आपस में कैसे वर्त्तें, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये स॒मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॒ माम॒काः । तेषा॒ᳬ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳬ समाः ॥४६॥

पदार्थः—**(ये) (समानाः)** सदृग्गुणकर्मस्वभावाः **(समनसः)** समाने धर्मे मनो येषान्ते **(जीवाः)** ये जीवन्ति ते **(जीवेषु) (मामकाः)** मदीयाः **(तेषाम्) (श्रीः)** राज्यलक्ष्मीः **(मयि) (कल्पताम्) (अस्मिन्) (लोके) (शतम्) (समाः)** संवत्सराः ॥ १९ । ४६ ॥

अन्वयः—येऽस्मिँल्लोके जीवेषु समानाः समनसो मामका जीवास्सन्ति तेषां श्रीर्मयि शतं समाः कल्पताम् ॥ १९ । ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—**येऽस्मिँल्लोके जीवेषु समानाः** सदृग्गुणकर्मस्वभावाः **समनसः** समाने धर्मे मनो येषान्ते **मामकाः** मदीया **जीवाः** ये जीवन्ति

भाषार्थ—(ये) जो (अस्मिन्) इस (लोके) लोक में (जीवेषु) जीवों में (समानाः) सदृश गुण, कर्म, स्वभाव वाले, (समनसः) समान धर्म में मन

ते सन्ति, तेषां श्रीः राज्यलक्ष्मीः मयि शतं समाः संवत्सराः कल्पताम् ॥ १९ । ४६ ॥

रखने वाले (मामकाः) मेरे सम्बन्धी (जीवाः) जीव हैं—(तेषाम्) उनकी (श्रीः) राज्य-लक्ष्मी (मयि) मुझ में (शतम्) सौ (समाः) वर्ष (कल्पताम्) समर्थित हो ॥ १९ । ४६ ॥

[येऽस्मिँल्लोके जीवेषु···मामका जीवाः सन्ति तेषां श्रीर्मयि शतं समाः कल्पताम्]

भावार्थः—सन्ताना यावत् पितरो जीवेयुस्तावत् तान् सेवन्ताम् ।

पुत्रा यावत् पितृसेवकाः स्युस्तावत् ते सत्कर्त्तव्याः स्युः ।

यत् पितॄणां धनादिवस्तु तत् पुत्राणां, यत् पुत्राणां तत् पितॄणां चास्तु ॥ १९ । ४६ ॥

भावार्थ—सन्तान जब तक पितर लोग जीवें तब तक उनकी सेवा करें ।

पुत्र जितने पिता के सेवक हों उतने ही वे सत्कार के योग्य हों ।

पितरों की जो धन आदि वस्तु है वह पुत्रों की और जो पुत्रों की है वह पितरों की है ॥१९ । ४६॥

भा० पदार्थः—श्रीः=धनादिवस्तु ।

भाष्यसार—**आयु और लक्ष्मी की प्राप्ति का उपाय**—इस संसार में वे मनुष्य ही सब प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हैं, तथा वे ही पूर्णायु का भोग कर सकते हैं, जो परस्पर समान गुण, कर्म, स्वभाव वाले होकर स्नेह से रहते हैं। ईर्ष्यावश कलहादि से दूर रहते हैं और समान धर्म का आचरण करने से समान मन होकर रहते हैं ॥ १९ । ४६ ॥

वैखानसः । **पितरः**=जनकादयः । स्वराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ।

जीवानां द्वौ मार्गौ स्त इत्याह ॥

जीवों के दो मार्ग हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

द्वे सृती ऽ अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(द्वे) (सृती) सरन्ति=गच्छन्त्याऽऽगच्छन्ति जीवा ययोस्ते (**अशृणवम्**) शृणोमि (**पितॄणाम्**) जनकादीनाम् (**अहम्**) (**देवानाम्**) आचार्य्यादीनां विदुषाम् (**उत**) अपि (**मर्त्यानाम्**) मनुष्याणाम् (**ताभ्याम्**) (**इदम्**) (**विश्वम्**) सर्वं जगत् (**एजत्**) चलत्सत् (**सम्**) (**एति**) गच्छति (**यत्**) (**अन्तरा**) मध्ये (**पितरम्**) जनकम् (**मातरम्**) जननीम् (**च**) ॥ ४७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! अहं ये पितॄणां मर्त्यानां देवानां च द्वे सृती अशृणवं शृणोमि ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेत्युत यत् पितरं मातरमन्तरा शरीरान्तरेणान्यौ मातापितरौ प्राप्नोति तदेतद् यूयं विजानीत ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! अहं **ये पितॄणां** जनकादीनां **मर्त्यानां** मनुष्याणां **देवानाम्** आचार्यादीनां विदुषां **च द्वे सृती सरन्ति** गच्छन्त्याऽऽगच्छन्ति जीवा ययोस्ते **अशृणवं** शृणोमि, ताभ्या-

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! मैं जो-(पितॄणाम्) जनक आदि पितरों की, (मर्त्यानाम्) मनुष्यों की, और (देवानाम्) आचार्य आदि विद्वानों की (द्वे) दो (सृती) जीव जिसमें जाते और आते हैं ऐसे

मिदं विश्वं सर्वं जगद् एजत्, चलत्सत् समेति गच्छति । उत अपि=यत् पितरं जनकं मातरं जननीम् अन्तरा=शरीरान्तरेणान्यौ मातापितरौ प्राप्नोति, तदेतद् यूयं विजानीत ।। १९ । ४७ ।।

मार्गों को (अशृणवम्) सुनता हूँ । (ताभ्याम्) उन दो मार्गों से (इदम्) यह (विश्वम्) सब जगत् (एजत्) चलता हुआ (समेति) गति कर रहा है । (उत) और—(यत्) जो (पितरम्) जनक एवं (मातरम्) जननी को तथा (अन्तरा) शरीरान्तर से अन्य माता-पिता को प्राप्त करता है उसे तुम जानो ।। १९ । ४७ ।।

[अहं ···मर्त्यानां···द्वे सृती अशृणवम्]

भावार्थः—द्वे एव जीवानां गती वर्त्तेते ।

भावार्थ—दो ही जीवों की गति हैं ।

[पितरं मातरमन्तरा शरीरान्तरेणान्यौ मातापितरौ प्राप्नोति]

एका—मातापितृभ्यां जन्म प्राप्य संसारे विषयसुखभोगरूपा ।

द्वितीया—विद्वत्संगादिना मुक्तिसुखभोगाख्याऽस्ति ।

एक—माता-पिता से जन्म प्राप्त करके संसार में विषय-सुखों का भोग करना,

दूसरी—विद्वानों के संग आदि से मुक्ति-सुख को भोगना,

[ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति]

आभ्यां सहैव सर्वे प्राणिनश्चरन्ति ।।१९।४७।।

इन दो गतियों के साथ ही सब प्राणी विचरण करते हैं ।। १९ । ४७ ।।

भा० पदार्थः—सृती=गती ।

अन्यत्र व्याख्यात—(द्वे सृती०) इस संसार में दो प्रकार के जन्मों को (अशृणवम्) सुनते हैं, एक मनुष्य शरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष आदि का होना । इनमें मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं—एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़के विद्वान् होना, तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य शरीर का धारण करना । इनमें प्रथम गति अर्थात् मनुष्य शरीर पुण्यात्माओं और पुण्य पाप तुल्य वालों का होता है, और दूसरा जो जीव अधिक पाप करते हैं उनके लिए हैं (ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति) इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने-अपने पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं (यदन्तरा मातरं पितरं च) जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना, पुनः शरीर का छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना—वारंवार होता है ।। ऋग्वेदादि० पुनर्जन्म० ।।

भाष्यसार—**पितर सन्तान को कैसा उपदेश करें**—माता-पिता आदि पितर अपनी सन्तान को धर्म आचरण का उपदेश सदा किया करें । सांसारिक सुख और मुक्ति सुखों को प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के मार्गों का उपदेश किया करें । एक माता-पिता से जन्म ग्रहण करके सांसारिक सुखों को प्राप्त करना और दूसरा विद्वानों की संगति से विज्ञान सीखकर मुक्ति-सुख प्राप्त करना ।। १९ । ४७ ।।

वैखानसः । **अग्निः**=पतिः । निचृदष्टिः । मध्यमः ।।

सन्तानैः किं कर्त्तव्यमित्याह ।।

सन्तानों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ।।

इ॒दं ह॒विः प्र॒जन॑नं मे ऽ अस्तु॒ दश॑वीर॒ꣳ सर्व॑गण॒ꣳ स्व॒स्तये॑ ।
आ॒त्म॒सनि॑ प्र॒जा॒सनि॑ पशु॒सनि॑ लोक॒स॒न्य॒भ॒य॒सनि॑ ।
अ॒ग्निः प्र॒जां ब॑हु॒लां मे॑ क॒रोत्वन्नं॒ पयो॒ रेतो॑ ऽ अ॒स्मासु॑ धत्त ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(इदम्) (हविः) होतुमर्हम् (**प्रजननम्**) प्रजनयन्ति येन तत् (**मे**) मम (**अस्तु**) (**दशवीरम्**) दश वीराः=पुत्रा यस्मात् तत् (**सर्वगणम्**) सर्वे गणाः=गण्याः प्रशंसनीयाः पदार्था यस्मात् (**स्वस्तये**) सुखाय (**आत्मसनि**) आत्मानं सनति=सम्भजति येन तत् (**प्रजासनि**) प्रजाः सनति येन तत् (**पशुसनि**) पशून् सनति=सम्भजति येन (**लोकसनि**) लोकान् सनति=सम्भजति येन (**अभयसनि**) अभयं सनति=सम्भजति येन (**अग्निः**) अग्निरिव देदीप्यमानः पतिः (**प्रजाम्**) पुत्रपौत्रप्रभृतिम् (**बहुलाम्**) बहूनि सुखानि ददाति या ताम् (**मे**) मह्यम् (**करोतु**) (**अन्नम्**) (**पयः**) दुग्धम् (**रेतः**) वीर्यम् (**अस्मासु**) (**धत्त**) ॥ १९ । ४८ ॥

अन्वयः—अग्निर्मे बहुलां प्रजां करोतु मे यदिदं प्रजननं हविर्दशवीरं सर्वगणमात्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसन्यपत्यं करोतु तत् स्वस्तयेऽस्तु । हे मातापित्रादयो यूयमस्मासु प्रजामन्नं पयो रेतो धत्त ॥ १९ । ४८ ॥

सपदार्थान्वयः—**अग्निः** अग्निरिव देदीप्यमानः पतिः **मे** मह्यं **बहुलां** बहूनि सुखानि ददाति या तां **प्रजां** पुत्रपौत्रप्रभृतिं **करोतु** ।

मे मम **यदिदं प्रजननं** प्रजनयन्ति येन तद् **हविः** होतुमर्हं **दशवीरं** दश वीराः पुत्रा यस्मात् तत् **सर्वगणं** सर्वे गणाः=गण्याः प्रशंसनीयाः पदार्था यस्माद् **आत्मसनि** आत्मानं सनति=सम्भजति येन तत् **प्रजासनि** प्रजाः सनति येन तत् **पशुसनि** पशून् सनति=सम्भजति येन **लोकसनि** लोकान् सनति=सम्भजति येन **अभयसनि** अभयं सनति=सम्भजति येन **अपत्यं करोतु, तत् स्वस्तये** सुखाय **अस्तु** ।

हे मातापित्रादयः ! यूयमस्मासु प्रजां पुत्रपौत्र-प्रभृतिम् **अन्नं पयः** दुग्धं **रेतः** वीर्यं **धत्त** ॥१९।४८॥

भाषार्थ—(अग्निः) अग्नि के समान देदीप्यमान पति (मे) मेरे लिए (बहुलाम्) बहुत सुखों को देने वाली (प्रजाम्) पुत्र-पौत्र आदि प्रजा को (करोतु) उत्पन्न करे ।

(मे) मेरा जो (इदम्) यह (प्रजननम्) प्रजनन है वह (हविः) होम करने वाला, (दशवीरम्) दस वीर पुत्रों वाला, (सर्वगणम्) सब गण=प्रशंसनीय पदार्थों वाला, (आत्मसनि) आत्मा की सेवा करने वाला, (प्रजासनि) प्रजा की सेवा करने वाला, (पशुसनि) पशुओं की सेवा करने वाला, (लोकसनि) लोकों की सेवा करने वाला (अभयसनि) निर्भयता का सेवन करने वाला (अपत्यम्) पुत्र को उत्पन्न करे, वह (स्वस्तये) सुख के लिए (अस्तु) हो ।

हे माता-पिता आदि पुरुषो ! तुम—(अस्मासु) हममें (प्रजाम्) पुत्र-पौत्र आदि प्रजा, (अन्नम्) अन्न (पयः) दूध और (रेतः) वीर्य को (धत्त) धारण करो ॥ १९ । ४८ ॥

[अग्निम...प्रजां करोतु, मे यदिदम्...अपत्यं करोतु तत् स्वस्तयेऽस्तु]

भावार्थः—ये स्त्रीपुरुषाः पूर्णेन ब्रह्मचर्येण सर्वा विद्याशिक्षाः सङ्गृह्य परस्परं प्रीत्या स्वयंवरं विवाहं कृत्वा, ऋतुगामिनो भूत्वा विधिवत् प्रजा-

भावार्थ—जो स्त्री-पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य से सब विद्या और शिक्षा को ग्रहण करके, परस्पर प्रीतिपूर्वक स्वयंवर विवाह करके, ऋतुगामी

मुत्पादयन्ति तेषां सा प्रजा शुभगुणयुक्ता भूत्वा पितॄन् सततं सुखयति ॥ १९ । ४८ ॥

होकर विधिवत् प्रजा को उत्पन्न करते हैं, उनकी वह प्रजा शुभ गुणों से युक्त होकर सदा सुख देती है ॥ १९ । ४८ ॥

भाष्यसार—पति कैसी सन्तान की कामना करे ?—ब्रह्मचर्य के पालन से अग्नि के समान देदीप्यमान पति गृहस्थाश्रम में प्रवेश पाकर ऐसी सन्तान की कामना किया करें, जो उत्तम गुणों के कारण प्रशंसनीय हो, आत्मिक शक्ति वाली हो, प्रजा की सेविका हो, गायादि उत्तम पशुओं की पालिका हो, लोकस्थ प्राणियों की रक्षिका हो और भयादि से रहित हो ॥ १९ । ४८ ॥

शङ्खः । **पितरः**=पालकाः (पितृ-आदयः) ॥ स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पितृभिः किम्भूतैः किं कार्य्यमित्याह ॥

पिता आदि को कैसे होकर क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

उदीरतामवर ऽ उत्परास ऽ उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ऽ ईयुरवृका ऽ ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**उत्**) (**ईरताम्**) प्रेरताम् (**अवरे**) अर्वाचीनाः (**उत्**) (**परासः**) प्रकृष्टाः (**उत्**) (**मध्यमाः**) मध्ये भवाः (**पितरः**) पालकाः (**सोम्यासः**) सौम्यगुणसम्पन्नाः (**असुम्**) प्राणम् (**ये**) (**ईयुः**) प्राप्नुयुः (**अवृकाः**) अविद्यमाना वृकाश्चौरा येषु ते, (**ऋतज्ञाः**) ये ऋतं=सत्यं जानन्ति (**ते**) (**नः**) अस्मान् (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**पितरः**) रक्षितारः (**हवेषु**) संग्रामादिषु व्यवहारेषु ॥ ४९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! येऽवृका ऋतज्ञाः पितरो हवेष्वसुमुदीयुस्ते न उदवन्तु ये सोम्यासोऽवरे परासो मध्यमाः पितरस्सन्ति तेऽस्मान् हवेषूदीरताम् ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! ये-ऽवृकाः** अविद्यमाना वृकाश्चौरा येषु ते, **ऋतज्ञाः** ये ऋतं=सत्यं जानन्ति **पितरः** पालकाः **हवेषु** संग्रामादिषु व्यवहारेषु **असुं** प्राणम् **उदीयुः** प्राप्नुयुः, **ते नः** अस्मान् **उदवन्तु** रक्षन्तु ।

ये सोम्यासः सौम्यगुणसम्पन्नाः **अवरे** अर्वाचीनाः **परासः** प्रकृष्टाः **मध्यमाः** मध्ये भवाः **पितरः** रक्षितारः **सन्ति, तेऽस्मान् हवेषु** संग्रामादिषु व्यवहारेषु **उदीरतां** प्रेरताम् ॥ १९ । ४९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(अवृकाः) वृक=चोरों से रहित, (ऋतज्ञाः) ऋत=सत्य को जानने वाले, (पितरः) पालक, (हवेषु) संग्राम आदि व्यवहारों में (असुम्) प्राण को (उदीयुः) प्राप्त करते हैं (ते) वे (नः) हमारी (उदवन्तु) रक्षा करें ।

(ये) जो (सोम्यासः) सौम्य गुणों से सम्पन्न (अवरे) अर्वाचीन=नवीन, (परासः) प्रकृष्ट=उत्तम, (मध्यमाः) मध्यमः (पितरः) रक्षक पितर लोग हैं वे हमें (हवेषु) संग्राम आदि व्यवहारों में (उदीरताम्) प्रेरित करें ॥ १९ । ४९ ॥

[ये ··· अवरे, परासः, मध्यमाः, अवृकाः, ऋतज्ञाः, पितरः ··· ते न उदवन्तु]

भावार्थः—ये जीवन्तो निकृष्टमध्यमोत्तमाः स्तेयादिदोषरहिताः, विदितवेदितव्या अधिगत-याथातथ्या विद्वांसस्सन्ति, ते विद्याभ्यासोपदेशाभ्यां

भावार्थ—जीवित, निकृष्ट, मध्यम, उत्तम, चोरी आदि दोषों से रहित, सब जानने योग्य जिन्होंने जान लिया है, सत्यासत्य को जिन्होंने

सत्यधर्मग्राहकत्वेन बाल्यावस्थायां विवाहनिषेधेन सर्वाः प्रजाः पालयन्तु ॥ १९ । ४९ ॥

पहचान लिया है ऐसे जो विद्वान् हैं वे विद्याभ्यास और उपदेश से सत्य-धर्म को ग्रहण कराने वाले बनकर बाल्यावस्था में विवाह का निषेध करके, सब प्रजा का पालन करें ॥ १९ । ४९ ॥

भा० पदार्थः—अवरे=निकृष्टाः । परासः=उत्तमाः । अवृकाः=स्तेयादिदोषरहिताः । ऋतज्ञाः=विदितवेदितव्या अधिगतयाथातथ्याः । उदवन्तु=पालयन्तु ॥

अन्यत्र व्याख्यात—जो विद्वान् लोग (अवरे) कनिष्ठ, (उन्मध्यमाः) मध्यम और (उत्परासः) उत्तम (पितरः सोम्यासः) चन्द्रमा के समान सब प्रजाओं को आनन्द कराने वाले (असुं य ईयुः) प्राण-विद्या-निधान, (अवृकाः) शत्रुरहित अर्थात् सबके प्रिय, पक्षपात को छोड़ के सत्य-मार्ग में चलने वाले तथा (ऋतज्ञाः) जो कि ऋत अर्थात् ब्रह्म, यथार्थ-धर्म और सत्य-विद्या के जानने वाले हैं; (ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु) वे पितर लोग युद्धादि व्यवहारों में हमारे साथ होके अथवा उनको विद्या देके हमारी रक्षा करें ॥ ऋग्वेदादि, पितृयज्ञ०) ॥

भाष्यसार—**पितर प्रेरणा करने वाले हों**—जो पितर अवृकाः=चोरी आदि दोषों से रहित हों, ऋतज्ञाः=सत्य ज्ञान को जानते हों, सोम्यासः=सरल तथा शान्त स्वभाव वाले हों, ऐसे उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार के पितर सन्तान को संग्रामादि व्यवहारों में सत्प्रेरणा दिया करें ॥ १९ । ४९ ॥

शङ्खः । **पितरः=पालकाः (पितृ-आदयः)** । निचृत्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पितृसन्तानैरितरेतरं कथं वर्त्तितव्यमित्याह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

आङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽ अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**अङ्गिरसः**) सर्वविद्यासिद्धान्तविदः (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) पालकाः (**नवग्वाः**) (**अथर्वाणः**) अहिंसकाः (**भृगवः**) परिपक्वविज्ञानाः (**सोम्यासः**) ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते (**तेषाम्**) (**वयम्**) (**सुमतौ**) शोभना चासौ मतिश्च तस्याम् (**यज्ञियानाम्**) ये यज्ञमर्हन्ति तेषाम् (**अपि**) (**भद्रे**) कल्याणकरे (**सौमनसे**) शोभनं मनः सुमनस्तस्य भावे (**स्याम**) भवेम ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! ये नोऽङ्गिरसो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः पितरः सन्ति तेषां यज्ञियानां सुमतौ भद्रे सौमनसे वयं प्रवृत्तास्स्यामैवं यूयमपि भवत ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **ये नः** अस्माकम् **अङ्गिरसः** सर्वविद्यासिद्धान्तविदः **नवग्वा अथर्वाणः** अहिंसकाः **भृगवः** परिपक्वविज्ञानाः **सोम्यासः** ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते **पितरः** पालकाः **सन्ति, तेषां यज्ञियानां** ये यज्ञमर्हन्ति तेषां **सुमतौ** शोभना चासौ मतिश्च तस्यां **भद्रे**

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नः) हमारे (अङ्गिरसः) सब विद्याओं के सिद्धान्तों के वेत्ता, (नवग्वाः) नवीन विज्ञान का उपदेश करने वाले, (अथर्वाणः) अहिंसक, (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले (सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य से सम्पन्न (पितरः) पालक पितर लोग हैं; (तेषाम्) उन

कल्याणकरे **सौमनसे** शोभनं मनः सुमनस्तस्य भावे **वयं प्रवृत्तास्स्याम** भवेम एवं **यूयमपि भवत** ॥ ५० ॥

(यज्ञियानाम्) यज्ञ करने वाले विद्वानों की (सुमतौ) सुमति में एवं (भद्रे) कल्याणकारक (सौमनसे) उत्तम मन=विज्ञान में (वयम्) हम लोग प्रवृत्त (स्याम) हों; इस प्रकार तुम भी होवो ॥ १९ । ५० ॥

[ये नः'''पितरः सन्ति तेषां'''सुमतौ भद्रे सौमनसे वयं प्रवृत्तास्स्याम]

भावार्थः—अपत्यैर्यद्यत् पितॄणां धर्म्यं कर्म तत् तत् सेवनीयं, यद् यदधर्म्यं तत् तत् त्यक्तव्यम् । पितृभिरप्येवं समाचरणीयम् ॥ १९ । ५० ॥

भावार्थ—सन्तान—पितरों का जो-जो धर्म-युक्त कर्म हो, उस-उस का सेवन करें और जो-जो अधर्मयुक्त कर्म हो उस-उस को छोड़ देवें । पितर लोग भी ऐसा ही आचरण करें ॥ ५० ॥

भा० पदार्थः—भद्रे=धर्म्ये कर्मणि ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(अङ्गिरसो नः) जो ब्रह्माण्ड भर के पृथिव्यादि सब अङ्गों की मर्म-विद्या के जानने वाले (नवग्वाः) नवीन नवीन विद्याओं के ग्रहण करने और कराने वाले (अथर्वाणः) अथर्ववेद और धनुर्वेद-विद्या में चतुर तथा दुष्ट, शत्रु और दोषों के निवारण करने में प्रवीण (भृगवः) परिपक्व ज्ञानी और तेजस्वी (सोम्यासः) जो परमेश्वर की उपासना और अपनी विद्या के गुणों में शान्ति-स्वरूप (तेषां वयं सुमतौ०) तथा यज्ञ के जानने और करने वाले (पितरः) जो पितर हैं, तथा जिस कल्याणकारक विद्या से उनकी सुमति (भद्रे) कल्याण और (सौमनसे) मन की शुद्धि होती है, उसमें (अपि-स्याम) हम लोग भी स्थिर हों, कि जिसके बोध से व्यवहार और परमार्थ के सुखों को प्राप्त हो के सदा आनन्दित रहें ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**कैसे पितरों का अनुसरण करें ?**—सन्तान ऐसे पितरों के धर्मयुक्त कर्मों का अनुसरण करें, जो अङ्गिरसः=सब विद्याओं के विद्वान् हों, नवग्वाः=नवीन विज्ञान के उपदेष्टा हों, अथर्वाणः=हिंसादि दोषों से रहित हों, भृगवः=परिपक्व बुद्धि वाले हों, और जो सोम्यासः=शान्त-स्वभाव वाले हों ॥ १९ । ५० ॥

शङ्खः । **पितरः=ज्ञानिनो जनकाः** । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(ये) (नः) (पूर्वे) पूर्वजाः (पितरः) ज्ञानिनो जनकाः (**सोम्यासः**) सोमगुणानर्हन्तः (**अनूहिरे**) अनु वहन्ति=पुनः पुनः प्राप्नुवन्ति च (**सोमपीथम्**) सोमपानम् (**वसिष्ठाः**) येऽतिशयेन धनिनः (**तेभिः**) तैः (**यमः**) न्यायी संयमी सन्तानः (**संरराणः**) सम्यक्सुखानि राति=ददाति सः (**हवींषि**) अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि (**उशन्**) कामयमानः (**उशद्भिः**) कामयमानैः (**प्रतिकामम्**) कामं कामं प्रतीति प्रतिकामम् (**अत्तु**) भुङ्क्ताम् ॥ १९ । ५१ ॥

अन्वयः—ये नः सोम्यासो वसिष्ठाः पूर्वे पितरः सोमपीथमनूहिरे तेभिरुशद्भिः सह हवींष्युशन् संरराणो यमः प्रति काममत्तु ॥ १९ । ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये नः सोम्यासः** सोमगुणानर्हन्तः **वसिष्ठाः** येऽतिशयेन धनिनः **पूर्वे** पूर्वजाः **पितरः** ज्ञानिनो जनकाः **सोमपीथं** सोमपानम् **अनूहिरे** अनु वहन्ति=पुनः पुनः प्राप्नुवन्ति च, **तेभिः** तैः **उशद्भिः** कामयमानैः **सह हवींषि** अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि **उशन्** कामयमानः **संरराणः** सम्यक्सुखानि राति=ददाति सः **यमः** न्यायी संयमी सन्तानः **प्रतिकामं** कामं कामं प्रतीति प्रतिकामम् **अत्तु** भुङ्क्ताम् ॥ १९ । ५१ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (नः) हमारे (सोम्यासः) सोम्य गुणों वाले (वसिष्ठाः) अत्यन्त धनी, (पूर्वे) पूर्वज (पितरः) ज्ञानी जनक=पिता (सोमपीथम्) सोमपान को (अनूहिरे) पुनः पुनः प्राप्त करते हैं; (तेभिः) उन (उशद्भिः) कामना करने वाले पितृ-जनों के साथ (हवींषि) भोज्य अन्न आदि की (उशन्) कामना करने वाला, (संरराणः) सम्यक् सुखों का दाता, (यमः) न्यायकारी, संयमी सन्तान (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना का (अत्तु) भोग करे ॥ १९ । ५१ ॥

[ये नः···पितरः सोमपीथमनूहिरे, तेभिः···सह···यमः प्रतिकाममत्तु]

भावार्थः—पितृभिः पुत्रैः सह, पुत्रैः पितृभिः सह च सर्वे सुखदुःखभोगाः कार्याः, प्रतिक्षणं सुखं वर्द्धनीयं, दुःखं च ह्रासनीयम् ॥ १९ । ५१ ॥

भावार्थ—पिता पुत्रों के साथ और पुत्र पिता के साथ सब सुख-दुःखों का भोग करें, प्रतिक्षण सुख को बढ़ावें और दुःख का ह्रास करें ॥ १९ । ५१ ॥

भा० पदार्थः—सोमपीथम्=सुखभोगम् । यमः=पुत्रः । प्रतिकामम्=प्रतिक्षणं सुखम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (ये नः पूर्वे पितरः) जो कि हमारे पूर्व पितर अर्थात् पिता, पितामह और अध्यापक लोग शान्तात्मा तथा (अनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः) जो सोमपान के करने, कराने और वसिष्ठ अर्थात् सब विद्या में रमण करने वाले हैं (तेभिर्यमः सꣳ र०) ऐसे महात्माओं के साथ समागम करके विद्या होने से यम अर्थात् न्यायकारी, अन्तर्यामी परमेश्वर निस्सन्देह जाना जाता है (हविः) जो सत्यभक्ति आदि पदार्थों की कामना और (उशद्भिः प्रतिका०) सब कामों के बीच में सत्य-सेवन करने वाले तथा जिनका आधारभूत परमेश्वर ही है। हे मनुष्य लोगो! ऐसे धर्मात्मा पुरुषों के सत्संग से तुम भी उसी परमात्मा के आनन्द से तृप्त हो। इसमें निरुक्तकार का प्रमाण अ० ११ खं० १९ निरुक्त में लिखा है—(अंगिरसो नवगतयो० इत्यादि) वहाँ देख लेना ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

(ख) 'ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः' इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं ॥ पंचमहा० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**ज्ञानी पितरों के साथ सन्तान का वर्त्ताव**—जो सोम्य गुण वाले, ऐश्वर्य-सम्पन्न ज्ञानवान् पिता, पितामह प्रपितामहादि पितर हैं, उनको यमः=न्यायकारी, संयमी संरराणः=सुखों को देने वाले=पुत्रादि भोज्य अन्नादि पदार्थों से तृप्त रखें। और यथाशक्ति सुखों की वृद्धि तथा दुःखों को नष्ट किया करें ॥ १९ । ५१ ॥

शङ्खः । **पितरः=पालकाः (पितृ-आदयः)** । स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्वꣳ सो॑म॒ प्रचि॑कितो मनी॒षा त्वꣳ रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म् ।
तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ नः ऽ इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**त्वम्**) (**सोम**) विविधैश्वर्ययुक्त (**प्र**) (**चिकितः**) प्राप्तविज्ञान (**मनीषा**) सुसंस्कृतया प्रज्ञया । अत्र वा च्छन्दसीत्येकाराऽऽदेशो न । (**त्वम्**) (**रजिष्ठम्**) अतिशयेन ऋजु=कोमलम् (**अनु**) (**नेषि**) नयसि । अत्र बहुलं छन्दसीति शबभावः (**पन्थाम्**) पन्थानम् (**तव**) (**प्रणीती**) प्रकृष्टा चासौ नीतिश्च तया । अत्र सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णादेशः । (**पितरः**) पालकाः (**नः**) अस्मभ्यम् (**इन्दो**) इन्दुश्चन्द्र इव वर्त्तमान (**देवेषु**) विद्वत्सु (**रत्नम्**) (**अभजन्त**) भजन्तु (**धीराः**) ध्यानवन्तः ॥ ५२ ॥

प्रमाणार्थ—(**मनीषा**) यहाँ 'वा च्छन्दसि' (६ । १ । १०६) से एकार-आदेश नहीं है । (**नेषि**) नयसि । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७३) से शप्-विकरण का अभाव है । (**प्रणीती**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से पूर्व सवर्ण-आदेश है ।

अन्वयः—हे सोम ! प्रचिकितस्त्वं मनीषा यं रजिष्ठं पन्थां नेषि तं त्वं मामनुनय । हे इन्दो ये तव प्रणीती धीराः पितरो देवेषु नो रत्नमभजन्त तेऽस्माभिर्नित्यं सेवनीयाः सन्तु ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सोम** विविधैश्वर्य-युक्त **प्रचिकितः** प्राप्तविज्ञान ! **त्वं मनीषा** सुसंस्कृतया प्रज्ञया **यं रजिष्ठम्** अतिशयेन ऋजु=कोमलं **पन्थां** पन्थानं **नेषि** नयसि, **तं त्वं मामनुनय** ।

हे इन्दो ! इन्दुश्चन्द्र इव वर्त्तमान ! **ये तव प्रणीती** प्रकृष्टा चासौ नीतिश्च तया **धीराः** ध्यान-वन्तः **पितरः** पालका **देवेषु** विद्वत्सु **नः** अस्मभ्यं **रत्नमभजन्त** भजन्तु, **तेऽस्माभिर्नित्यं सेवनीयाः सन्तु** ॥ १९ । ५२ ॥

भाषार्थ—हे (सोम) विविध ऐश्वर्य से युक्त (प्रचिकितः) विज्ञान को प्राप्त पिता ! तू—(मनीषा) सुसंस्कृत प्रज्ञा से जिस (रजिष्ठम्) अत्यन्त ऋजु=सरल एवं कोमल (पन्थाम्) पथ को (नेषि) प्राप्त करता है, उसे तू मुझे प्राप्त करा ।

हे (इन्दो) इन्दु=चन्द्र के तुल्य पिता ! जो (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम नीति से (धीराः) धीर (पितरः) पालक पितर लोग (देवेषु) विद्वानों में (नः) हमारे लिए (रत्नम्) रत्न का (अभजन्त) सेवन करें उनकी हम नित्य सेवा करें ॥ १९ । ५२ ॥

[हे सोम ! त्वं मनीषा यं रजिष्ठं पन्थां, नेषि तं त्वं मामनुनय०]

भावार्थः—ये सन्तानाः पितृसेवकाः सन्तो विद्याविनयाभ्यां धर्ममनुतिष्ठन्ति ते स्वजन्मसाफल्यं कुर्वन्ति ॥ १९ । ५२ ॥

भावार्थ—जो सन्तान पिता के सेवक होकर विद्या और विनय से धर्म का अनुष्ठान करते हैं वे अपने जन्म को सफल करते हैं ॥ १९ । ५२ ॥

भाष्यसार—**माता-पितादि का सन्तान के प्रति कर्त्तव्य**—सोम=विविध ऐश्वर्य सम्पन्न, इन्दो=चन्द्र के समान विद्यादिगुणों से प्रकाशमान तथा आह्लादक माता-पितादि पितर स्वयं सुसंस्कृत बुद्धि वाले होकर छल-कपट रहित मार्ग से चलें और धैर्य-युक्त होकर पारस्परिक उत्तम व्यवहार रखें। इसी प्रकार अपनी सन्तान को सुशिक्षित तथा सुशील बनाने का प्रयत्न करें । सन्तान भी माता-पिता के श्रेष्ठ कर्मों का सदा अनुकरण किया करे ॥ १९ । ५२ ॥

शङ्खः । **पितरः**=पितृ-अध्यापकादयः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्वया हि नः पितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रुः पवमान धीराः ।
वन्वन्नवातः परिधीँ २ऽ रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**त्वया**) विदुषा (**हि**) खलु (**नः**) अस्माकम् (**पितरः**) पित्रध्यापकादयः (**सोम**) ऐश्वर्यसम्पन्न (**पूर्वे**) प्राचीना वृद्धाः (**कर्माणि**) (**चक्रुः**) कृतवन्तः (**पवमान**) पवित्र शुद्धकारक (**धीराः**) धीमन्तः (**वन्वन्**) धर्मं सेवमानः (**अवातः**) अविद्यमानो वातो=हिंसनं यस्य (**परिधीन्**) यत्र परितः= सर्वतो धीयन्ते तान् (**अप**) दूरीकरणे (**ऊर्णु**) आच्छादय (**वीरेभिः**) वीरैः (**अश्वैः**) तुरङ्गैः (**मघवा**) प्रशंसितधनयुक्तः (**भव**) **अत्र द्वयचोऽतस्तिङ इति दीर्घः ।** (**नः**) अस्माकम् ॥ ५३ ॥

प्रमाणार्थ—(**भव**) यहाँ 'द्वयचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से संहिता में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे पवमान सोम त्वया सह नः पूर्वे धीराः पितरो यानि धर्म्याणि कर्माणि चक्रुस्तानि हि वयमप्यनुतिष्ठेम । अवातो वन्वन् त्वं वीरेभिरश्वैश्च सह नः शत्रून् परिधीनपोर्णु मघवा च भव ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः— **हे पवमान** पवित्र शुद्धकारक **सोम** ऐश्वर्यसम्पन्न ! **त्वया** विदुषा सह **नः** अस्माकं **पूर्वे** प्राचीना वृद्धाः **धीराः** धीमन्तः **पितरः** पित्रध्यापकादयः **यानि धर्म्याणि कर्माणि चक्रुः** कृतवन्तः **तानि हि** खलु **वयमप्यनुतिष्ठेम ।**

भाषार्थ—हे (पवमान) पवित्र एवं शुद्ध करने वाले (सोम) ऐश्वर्य से सम्पन्न पिता ! (त्वया) तुझ विद्वान् के साथ (नः) हमारे (पूर्वे) प्राचीन वृद्ध, (धीराः) बुद्धिमान्, (पितरः) अध्यापक आदि पितर लोग जिन धर्म-युक्त (कर्माणि) कर्मों को (चक्रुः) करते थे उन्हें (हि) निश्चय से हम भी करें ।

अवातः अविद्यमानो वातो=हिंसनं यस्य **वन्वन्** धर्मं सेवमानः त्वं **वीरेभिः** वीरैः **अश्वैः** तुरङ्गैः **च सह नः** अस्माकं **शत्रून् परिधीन्** यत्र परितः= सर्वतो धीयन्ते तान् **अपोर्णु** दूरमाच्छादय **मघवा** प्रशंसितधनयुक्तः **च भव** ॥ १९ । ५३ ॥

(अवातः) वात=हिंसा से रहित, (वन्वन्) धर्म का सेवक होकर तू—(वीरेभिः) वीरों और (अश्वैः) घोड़ों के साथ (नः) हमारे (परिधीन्) सब ओर से पकड़ने योग्य शत्रुओं को (अपोर्णु) दूर आँखों से ओझल कर और (मघवा) प्रशंसित धन वाला (भव) बन ॥ १९ । ५३ ॥

[हे···सोम ! त्वया सह नः···पितरो यानि धर्म्याणि कर्माणि चक्रुस्तानि हि वयमप्यनुतिष्ठेम]

भावार्थः—मनुष्याः स्वेषां धार्मिकाणां पितॄणामनुकरणं कृत्वा—

भावार्थ—मनुष्य अपने धार्मिक पितर जनों का अनुकरण करके—

[वीरेभिरश्वैश्च सह नः शत्रून्···अपोर्णु, मघवा च भव]

शत्रून् निवार्य स्वसेनाङ्गप्रशंसायुक्तास्सन्तः सुखिनः स्युः ॥ १९ । ५३ ॥

शत्रुओं का निवारण करके, अपने सेना के अङ्गों की प्रशंसा वाले होकर सुखी रहें ॥ ५३ ॥

भाष्यसार—**सन्तान माता-पिता के शुभ कर्मों का अनुकरण करे**—पवमान=पवित्राचरण वाले, ऐश्वर्य सम्पन्न, बुद्धिमान् माता-पिता, अध्यापक, उपदेशकादि, पितर जिन धर्मयुक्त कर्मों को करते हैं, पुत्रादि उन्हीं का अनुकरण किया करें । और हिंसा रहित धर्म का आचरण करते हुए वीरतादि गुणों से अपने शत्रुओं को समाप्त करके ऐश्वर्य-सम्पन्न बनें ॥ १९ । ५३ ॥

शङ्खः । **साम्यः**=सुसन्तानः । चन्द्रलोकः । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्वꣳ सो॑म पि॒तृभिः॑ संवि॒दा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी ऽ आ त॑तन्थ ।
तस्मै॑ त ऽ इन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम् ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(**त्वम्**) (**सोम**) सोमवद्वर्त्तमान (**पितृभिः**) ज्ञानयुक्तैः (**संविदानः**) प्रतिजानन् (**अनु**) (**द्यावापृथिवी**) सूर्यश्च पृथिवी च ते (**आ**) (**ततन्थ**) विस्तृणीहि (**तस्मै**) (**ते**) तुभ्यम् (**इन्दो**) चन्द्रवत्प्रियदर्शन (**हविषा**) दातुमादातुमर्हेण पदार्थेन (**विधेम**) परिचरेम (**वयम्**) (**स्याम**) भवेम (**पतयः**) अधिष्ठातारः (**रयीणाम्**) राज्यश्रियादीनाम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे सोम सुसन्तान ! पितृभिः सह संविदानो यस्त्वमनुद्यावापृथिवी सुखमाततन्थ । हे इन्दो ! तस्मै ते वयं हविषा सुखं विधेम यतो रयीणां पतयः स्याम ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सोम**/सुसन्तान सोमवद्वर्त्तमान ! **पितृभिः** ज्ञानयुक्तैः **सह संविदानः** प्रतिजानन् **यस्त्वमनुद्यावापृथिवी** सूर्यश्च पृथिवी च ते **सुखम् आ-ततन्थ** विस्तृणीहि ।

हे इन्दो ! चन्द्रवत्प्रियदर्शन ! **तस्मै ते** तुभ्यं **वयं हविषा** दातुमादातुमर्हेण पदार्थेन **सुखं विधेम** परिचरेम, **यतो रयीणां** राज्यश्रियादीनां **पतयः** अधिष्ठातारः **स्याम** भवेम ॥ १९ । ५४ ॥

भाषार्थ—हे (सोम) सोम के तुल्य उत्तम सन्तान ! (पितृभिः) ज्ञानयुक्त पितर जनों के साथ (संविदानः) प्रतिज्ञा करता हुआ तू—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी के (अनु) अनुसार सुख को (आ-ततन्थ) विस्तृत कर ।

हे (इन्दो) इन्दु=चन्द्र के तुल्य प्रियदर्शन पिता (तस्मै) सो (तुभ्यम्) तेरी (वयम्) हम (हविषा) देने-लेने योग्य पदार्थ से सुखपूर्वक (विधेम) परिचर्या=सेवा करें जिससे (रयीणाम्) राज्य-लक्ष्मी आदि के (पतयः) अधिष्ठाता (स्याम) बनें ॥ १९ । ५४ ॥

[हे सोम ! ··· पितृभिः संविदानो यस्त्वमनु द्यावापृथिवी सुखमाततन्थ]

भावार्थः—हे सन्तानाः ! यूयं यथा चन्द्रलोकः पृथिवीमभितो भ्रमन् सन् सूर्यमनुभ्रमति तथैव पित्रध्यापकादीननुचरत,

भावार्थ—हे सन्तानो ! तुम—जैसे चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर घूमता हुआ सूर्य का अनुभ्रमण करता है वैसे ही पिता एवं अध्यापक आदि का अनुचरण करो,

[यतो रयीणां पतयः स्याम]

यतो यूयं श्रीमन्तो भवत ॥ १९ । ५४ ॥

जिससे तुम श्रीमान् होवो ॥ १९ । ५४ ॥

भाष्यसार—**सुसन्तान का कर्त्तव्य**—सोम=सोम्य गुणों से सम्पन्न सन्तान उत्तम प्रतिज्ञाओं को करती हुई अपने पूर्वजों के साथ श्रेष्ठ व्यवहारों से सुखों की वृद्धि किया करें । अपने चन्द्र तुल्य माता-पितादि पूर्वजों की श्रद्धा से सेवा करके ऐश्वर्य के स्वामी बनें ॥ १९ । ५४ ॥

शङ्खः । **पितरः**=पालकाः (पितृ-आदयः) । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्ताव करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

बर्हिषदः पितर ऽ ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त ऽ आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**बर्हिषदः**) ये बर्हिषि=उत्तमायां सभायां सीदन्ति (**पितरः**) न्यायेन पालकाः (**ऊती**) ऊत्या=रक्षणादिक्रियया (**अर्वाक्**) पश्चात् (**इमा**) इमानि (**वः**) युष्मभ्यम् (**हव्या**) अत्तुमर्हाणि (**चकृम**) संस्कृतानि कुर्याम । **अन्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः ।** (**जुषध्वम्**) सेवध्वम् (**ते**) (**आ**) (**गत**) गच्छत (**अवसा**) रक्षाद्येन (**शन्तमेन**) अतिशयितं शं=सुखं तेन (**अथ**) **अत्र निपातस्य चेति दीर्घः ।** (**नः**) अस्मभ्यम् (**शम्**) सुखम् (**योः**) दूरीकरणे (**अरपः**) अविद्यमानं पापं यस्मिन् तत् सत्याचरणम् । **रपो रिप्रमिति पापनामनी भवतः ॥ निरु० अ० ४ । २१ ॥** (**दधात**) ॥ १९ । ५५ ॥

प्रमाणार्थ—(**चकृम**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से संहिता में दीर्घ है । (**अथ**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ । १३६) से संहिता में दीर्घ है । (**अरपः**) निरुक्त अ० ४ । २१ के प्रमाण से 'रप' और 'रिप्र' पाप के नाम हैं ॥

अन्वयः—हे बर्हिषदः पितरः ! वयमर्वाग्येभ्यो व ऊतीमा हव्या चकृम तानि यूयं जुषध्वं शन्तमेनावसा सहागत । अथ नः शमरपश्च दधात दुःखं च योः ॥ १९ । ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **बर्हिषदः** ये बर्हिषि=उत्तमायां सभायां सीदन्ति **पितरः** न्यायेन पालकाः ! **वयमर्वाक्** पश्चाद् **येभ्यो वः** युष्मभ्यम् **ऊती** ऊत्या=रक्षणादिक्रियया **इमा** इमानि **हव्या** अत्तुमर्हाणि **चकृम** संस्कृतानि कुर्याम, **तानि यूयं जुषध्वं** सेवध्वं **शन्तमेन** अतिशयितं शं=सुखं तेन **अवसा** रक्षाद्येन **सह आ-गत** आ+गच्छत ।

अथ नः अस्मभ्यं **शं** सुखम् **अरपः** अविद्यमानं पापं यस्मिन् तत् सत्याचरणं **च दधात, दुःखं च योः** दूरी कुरुत ॥ १९ । ५५ ॥

भाषार्थ—हे (बर्हिषदः) बर्हिः=उत्तम सभा में विराजमान, (पितरः) न्याय से सबके पालक पितर लोगो ! हम—(अर्वाक्) पश्चात् (वः) तुम्हारे लिए (ऊती) रक्षा आदि से (इमा) इन (हव्या) भोज्य पदार्थों को (चकृम) संस्कृत=शुद्ध करें, उन्हें तुम (जुषध्वम्) सेवन करो; (शन्तमेन) अत्यन्त शम्=सुख के निमित्त (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आ-गत) आओ ।

(अथ) और—(नः) हमारे लिए (शम्) सुख, (अरपः) रप=पाप से रहित सत्याचरण को (दधात) धारण करो, और दुःख को (योः) दूर करो ॥ १९ । ५५ ॥

[हे···पितरो येभ्यो वः···इमा हव्या चकृम तानि यूयं जुषध्वम्, व शन्तमेनावसा सहागत]

भावार्थः—येषां पितॄणां सेवां सन्तानाः कुर्युस्ते स्वापत्येषु सुशिक्षया सुशीलतां धारयेयुः ॥ १९ । ५५ ॥

भावार्थ—जिन पितृ-जनों की सेवा सन्तान करें वे अपने सन्तानों के प्रति सुशिक्षा से सुशीलता को धारण करें ॥ १९ । ५५ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(बर्हिषदः पि०) जो ब्रह्म और सत्य-विद्या में स्थित पितर लोग हैं वे हमारी रक्षा के लिए सदा तत्पर रहें, इस प्रकार से कि हम लोग तो उनकी सेवा करें और वे लोग

हमको प्रीतिपूर्वक विद्यादि दान से प्रसन्न कर देवें, (त आगतावसा०) हे पितर लोगो ! हम आकांक्षा करते हैं कि जब-जब आप हमारे वा हम आपके पास आवें-जावें तब-तब (इमा हव्या०) हम लोग उत्तम-उत्तम पदार्थों से आप लोगों की सेवा करें और आप लोग भी उनको प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें (अवृ०) अर्थात् हम लोग तो अन्नादि पदार्थों से और आप लोग (शन्त०) हमारे कल्याणकारी गुणों के उपदेश से (अथा नः शंयो०) इसके पीछे हमारे कल्याण के विधान से (अरपः) अर्थात् जिससे हम लोग पाप न करें ऐसी बातों को धारण कराइये ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**माता-पिता और सन्तान का पारस्परिक वर्ताव**—उत्तम सभाओं में बैठने वाले, न्यायाचरण से सन्तान का पालन करने वाले माता-पितादि पितरों के शरीरादि की रक्षा के लिए सन्तान शुद्ध भोज्य पदार्थों को दिया करें और पितादि पितर सन्तान को सुखी करने के लिए सदा सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करें ॥ १९ । ५५ ॥ ●

शङ्खः । **पितरः**=पितृ-आदयः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आहं पि॒तॄन्त्सु॑वि॒दत्राँ॑२ऽ अवित्सि॒ नपा॑तं च वि॒क्रम॑णं च॒ विष्णोः॑ ।

ब॒र्हि॒षदो॒ ये स्व॒धया॑ सु॒तस्य॒ भज॑न्त पि॒त्वस्त ऽ इ॒हाग॑मिष्ठाः ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**अहम्**) (**पितॄन्**) जनकान् (**सुविदत्रान्**) सुष्ठु विविधानां सुखानां दातॄन् (**अवित्सि**) वेद्मि (**नपातम्**) न विद्यते पातो यस्य तम् (**च**) (**विक्रमणम्**) विक्रमन्ते यस्मिन् जगति तत् (**च**) (**विष्णोः**) वेवेष्टि चराचरं जगत् तस्येश्वरस्य (**बर्हिषदः**) उत्तम आसने सीदन्ति ते (**ये**) (**स्वधया**) अन्नेन (**सुतस्य**) निष्पादितस्य (**भजन्त**) भजन्ते=सेवन्ते (**पित्वः**) सुरभिपानम् (**ते**) (**इह**) (**आगमिष्ठाः**) आगच्छन्तु । **अत्र लोडर्थे लुङ् पुरुषवचनव्यत्ययः** ॥ ५६ ॥

प्रमाणार्थ—(**आगमिष्ठाः**) यहाँ लोट् लकार के अर्थ में लुङ् लकार तथा पुरुष और वचन का व्यत्यय है ॥

अन्वयः—ये बर्हिषदः पितर इह स्वधया सुतस्य पित्वश्चाभजन्त सेवन्ते त आगमिष्ठा आगच्छन्तु य इह विष्णोर्नपातं विक्रमणं च विदन्ति तान् सुविदत्रान् पितॄनहमवित्सि ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये बर्हिषदः** उत्तम आसने सीदन्ति ते **पितर इह स्वधया** अन्नेन **सुतस्य** निष्पादितस्य **पित्वः** सुरभिपानं **चाभजन्त**=**सेवन्ते** भजन्ते=सेवन्ते **ते आगमिष्ठाः**=**आगच्छन्तु** ।

य इह विष्णोः वेवेष्टि चराचरं जगत् तस्येश्वरस्य **नपातं** न विद्यते पातो यस्य तं **विक्रमणं** विक्रमन्ते यस्मिन् जगति तत् **च विदन्ति तान् सुविदत्रान्** सुष्ठु विविधानां सुखानां दातॄन् **पितॄन्** जनकान्

भाषार्थ—(ये) जो (बर्हिषदः) उत्तम आसन पर विराजमान पितर लोग (इह) यहाँ (स्वधया) अन्न से (सुतस्य) निष्पादित (पित्वः) सुगन्धित पान का (अभजन्त) सेवन करते हैं वे (आगमिष्ठाः) आवें ।

(ये) जो (इह) यहाँ (विष्णोः) चराचर जगत् में व्यापक ईश्वर के (नपातम्) पात=विनाश-रहित (विक्रमणम्) गतिशील जगत् को जानते हैं, उन (सुविदत्रान्) उत्तम रीति से विविध सुखों के

ग्रहमवित्सि वेद्मि ॥ १९ । ५६ ॥

दाता (पितॄन्) पितृ-जनों को (ग्रहम्) मैं (ग्रवित्सि) जानता हूँ ॥ १९ । ५६ ॥

[सुविदत्रान् पितॄनहमवित्सि]

भावार्थः—ये पितरो विद्यासुशिक्षां कुर्वन्ति कारयन्ति च ते, पुत्रैः कन्याभिश्च सम्यक् सेवनीयाः ॥ १९ । ५६ ॥

भावार्थ—जो पितर लोग विद्या ग्रौर उत्तम शिक्षा कराते ग्रौर कराते हैं उनकी पुत्र ग्रौर कन्याएँ ठीक सेवा करें ॥ १९ । ५६ ॥

भा० पदार्थः—सुविदत्रान्=ये पितरो विद्यासुशिक्षां कुर्वन्ति कारयन्ति च तान् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(ग्रहं पितॄन्०) मैं जानता हूँ कि पितर लोग ग्रपनी उत्तम विद्या ग्रौर उपदेश से सुख देने वाले हैं। (न पातं च विक्रमणं च विष्णोः) जो मैं सबमें व्यापक परमेश्वर का विक्रमण ग्रर्थात् सृष्टि का रचन ग्रौर न पात ग्रर्थात् उसके ग्रविनाशी पद को भी (ग्रा+ग्रवित्सि) ठीक-ठीक जानता हूँ। (बर्हिषदो ये०) यह ज्ञान मुझ को उन्हीं पितर लोगों की कृपा से हुग्रा है, जिनको देवयान कहते हैं ग्रौर जिसकी प्राप्ति से जीव पुनः दुःख में कभी नहीं गिरता तथा जिसमें पूर्ण सुख प्राप्त होता है, उन दोनों मार्गों को भी मैं विद्वानों के ही सङ्ग से जानता हूँ। (स्वधा०) जो विद्वान् ग्रपने ग्रमृत रूप उपदेश से पुत्र की भावना के साथ विद्या-दान करते हैं तथा उसमें ग्राप भी (पित्वः) ग्रानन्दित होकर संसार में सब सुखों के देने वाले होते हैं। वे सर्व-हितकारी पुरुष हमारे पास भी सदा ग्राया करें कि जिससे हम लोगों में नित्य ज्ञान की उन्नति हुग्रा करे ॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पितृयज्ञविषयः १२ ॥

भाष्यसार—**माता-पितादि पितरों के प्रति सन्तान का कर्त्तव्य**—जब-जब उत्तम ग्रासनों पर बैठने योग्य, विनाशरहित सर्वव्यापक ईश्वर के नियमों को जानने वाले माता-पितादि पितर घर पर ग्रावें तब-तब सन्तान उनको भोज्य पदार्थों से ग्रौर फलों से रसों से तृप्त किया करे। उनका सदा उत्तम रीति से सत्कार करके ग्रानन्द से रहें ॥ १९ । ५६ ॥

शङ्खः । **पितरः=जनकादयः** । निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता ग्रौर सन्तानों को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त ऽ आ गमन्तु त ऽ इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**उपहूताः**) समीप ग्राहूताः (**पितरः**) जनकादयः (**सोम्यासः**) ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते (**बर्हिष्येषु**) बर्हिःषूत्तमेषु साधुषु (**निधिषु**) धनकोशेषु (**प्रियेषु**) प्रीतिकारकेषु (**ते**) (**ग्रा**) (**गमन्तु**) । ग्रत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् (**ते**) (**इह**) (**श्रुवन्तु**) ग्रत्र विकरणव्यत्ययेन शः । (**ग्रधि**) ग्राधिक्ये (**ब्रुवन्तु**) (**ते**) (**ग्रवन्तु**) रक्षन्तु (**ग्रस्मान्**) ॥ १९ । ५७ ॥

प्रमाणार्थ—(**गमन्तु**) गच्छन्तु । यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७६) से शप्—विकरण का लुक् है । (**श्रुवन्तु**) यहाँ विकरण—व्यत्यय से श—विकरण है ॥

अन्वयः—ये सोम्यासः पितरो बर्हिष्येषु प्रियेषु निधिषूपहूतास्त इहागमन्तु तेऽस्मद्वचांसि श्रुवन्तु तेऽस्मानधिब्रुवन्तु तेऽवन्तु ॥ १९ । ५७ ॥

सपदार्थान्वयः—ये सोम्यासः ये सोममैश्वर्यमर्हन्ति ते **पितरः** जनकादयः **बर्हिष्येषु** बर्हिःषूत्तमेषु साधुषु **प्रियेषु** प्रीतिकारकेषु **निधिषु** धनकोशेषु **उपहूताः** समीप आहूताः **त इहागमन्तु** आ-गच्छन्तु, **तेऽस्मद् वचांसि श्रुवन्तु, तेऽस्मानधि ब्रुवन्तु** (अधिकं ब्रुवन्तु), **तेऽवन्तु** रक्षन्तु ॥ ५७ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (सोम्यासः) सोम=ऐश्वर्य वाले (पितरः) जनक आदि पितर लोग—(बर्हिष्येषु) उत्तमों में साधु=श्रेष्ठ, (प्रियेषु) प्रीतिकारक (निधिषु) धन के खजानों में (उपहूताः) बुलाए हुए (ते) वे (इह) यहाँ (आ-गमन्तु) आवें, (ते) वे हमारे वचनों=बातों को (श्रवन्तु) सुनें, (ते) वे हमें (अधि—ब्रुवन्तु) उपदेश करें, (ते) वे हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ॥ १९ । ५७ ॥

[ये…पितरो…उपहूतास्त इहागमन्तु]

भावार्थः—ये विद्यार्थिनोऽध्यापकानुपहूय सत्कृत्यैतेभ्यो विद्यां जिघृक्षेयुस्तांस्ते प्रीत्याऽध्यापयेयुः,

भावार्थ—जो विद्यार्थी अध्यापकों को बुलाकर, उनका सत्कार करके इनसे विद्या को ग्रहण करना चाहें उन्हें वे प्रीतिपूर्वक पढ़ावें,

[तेऽस्मानधिब्रुवन्तु तेऽवन्तु]

सर्वतो विषयासक्त्यादिभ्यो दुष्कर्मभ्यः पृथग् रक्षेयुश्च ॥ १९ । ५७ ॥

और उन्हें सब ओर से विषयासक्ति आदि दुष्कर्मों से पृथक् रखें ॥ १९ । ५७ ॥

भाष्यसार—**पितरों का सन्तान के प्रति कर्त्तव्य**—ऐश्वर्य-सम्पन्न माता-पितादि पितर सन्तान द्वारा श्रेष्ठ और प्रीतिकारक यज्ञादि कार्यों में बुलाने पर आवें । और उनके प्रश्नों तथा जिज्ञासाओं को ध्यान से सुनकर उपदेश करें और सन्मार्ग बताकर कुमार्ग से सन्तान को बचावें ॥ १९ । ५७ ॥

शङ्खः । **पितरः**=जनकादयः । विराट्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

पदार्थः—**(आ) (यन्तु)** आगच्छन्तु **(नः)** अस्माकम् **(पितरः)** अन्नविद्यादानेन पालका जनकाध्यापकोपदेशकाः **(सोम्यासः)** सोमइव शमदमादिगुणान्विताः **(अग्निष्वात्ताः)** गृहीताग्निविद्याः **(पथिभिः)** मार्गैः **(देवयानैः)** देवा=आप्ता विद्वांसो यान्ति यैस्तैः **(अस्मिन्)** वर्त्तमाने **(यज्ञे)** उपदेशाध्यापनाख्ये **(स्वधया)** अन्नाद्येन **(मदन्तः)** आनन्दन्तः **(अधि)** अधिष्ठातृभावे **(ब्रुवन्तु)** उपदिशन्त्वध्यापयन्तु वा **(ते) (अवन्तु)** रक्षन्तु **(अस्मान्)** पुत्रान् विद्यार्थिनश्च ॥ १९ । ५८ ॥

अन्वयः—ये सोम्यासोऽग्निष्वात्ता नः पितरः सन्ति ते देवयानैः पथिभिरायन्त्वस्मिन्यज्ञे वर्त्तमाना भूत्वा स्वधया मदन्तः सन्तोऽस्मानधिब्रुवन्त्वस्मानवन्तु ॥ १९ । ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये सोम्यासः** सोम इव शमदमादिगुणान्विताः **अग्निष्वात्ताः** गृहीताग्नि-विद्याः **नः** अस्माकं **पितरः** अन्नविद्यादानेन

भाषार्थ—(ये) जो (सोम्यासः) सोम के समान शम-दम आदि गुणों से युक्त, (अग्नि-ष्वात्ताः) अग्नि-विद्या के ज्ञाता, (नः) हमारे

पालकाः=जनकाध्यापकोपदेशकाः **सन्ति, ते देवयानैः** देवाः=आप्ता विद्वांसो यान्ति यैस्तैः **पथिभिः** मार्गैः **आ-यन्तु** आगच्छन्तु, **अस्मिन्** वर्त्तमाने **यज्ञे** उपदेशाध्यापनाख्ये **वर्त्तमाना भूत्वा स्वधया** अन्नाद्येन **मदन्तः** आनन्दन्तः **सन्तोऽस्मान्** पुत्रान् विद्यार्थिनश्च **अधिब्रुवन्तु** अधिष्ठातृभावेन-उपदिशन्त्वध्यापयन्तु वा **अस्मान्** पुत्रान् विद्यार्थिनश्च **अवन्तु** रक्षन्तु ॥ १९ । ५८ ॥

(पितरः) अन्न और विद्या के दान से पालक—जनक=पिता, अध्यापक और उपदेशक हैं (ते) वे—(देवयानैः) देव=आप्त विद्वान् लोग जिन मार्गों से जाते हैं उन (पथिभिः) मार्गों से (आ-यन्तु) आवें; (अस्मिन्) इस (यज्ञे) उपदेश और अध्यापन रूप यज्ञ में वर्त्तमान होकर (स्वधया) अन्न आदि से (मदन्तः) आनन्दित होकर (अस्मान्) हम पुत्रों और विद्यार्थियों को (अधिब्रुवन्तु) अधिष्ठाता होकर उपदेश करें वा पढ़ावें, (अस्मान्) हम पुत्रों और विद्यार्थियों की (अवन्तु) रक्षा करें ॥ ५८ ॥

[ये···नः पितरः सन्ति ते देवयानैः पथिभिरायन्तु, अस्मानधिब्रुवन्तु, अस्मानवन्तु]

भावार्थः— विद्यार्थिभिर्विद्यावयोवृद्धेभ्यो विद्यां रक्षां च प्राप्याप्तमार्गेण गत्वागत्य सर्वेषां रक्षा विधेया ॥ १९ । ५८ ॥

भावार्थ—विद्यार्थी लोग विद्या-वृद्ध और वयोवृद्ध पितर लोगों से विद्या और रक्षा को प्राप्त करके आप्त लोगों के मार्ग से चलकर सबकी रक्षा करें ॥ १९ । ५८ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=विद्यावयोवृद्धाः ।

भाष्यसार—पितरों का सन्तान के प्रति कर्त्तव्य—जो सोम्यासः=सोम्य शम-दमादि गुणों से सम्पन्न, अग्नि-विद्या के विद्वान् माता-पिता अध्यापकादि पितर अन्न और विद्या के दान से सन्तान को पालते हैं, वे यज्ञे=उपदेश और अध्यापन रूप यज्ञ के द्वारा विद्वानों से बताये मार्ग से स्वयं चलते हुए सन्तान को भी चलावें। और सुशिक्षादि के द्वारा दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा बुरे विचारों से सन्तान की रक्षा करें ॥ १९ । ५८ ॥

शङ्खः । **पितरः=विद्वांस उपदेशकाः** । निचृज्जगती । निषादः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पितर और गृहस्थों के परस्पर व्यवहार का फिर उपदेश किया है ॥

अग्निष्वात्ताः पितर॒ऽ एह ग॑च्छत॒ सदः॑सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अ॒त्ता ह॒वीᳬषि॒ प्रय॑तानि ब॒र्हिष्यथा॑ र॒यिᳬ सर्वं॑वीरं दधातन ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**अग्निष्वात्ताः**) अधीताग्निविद्याः (**पितरः**) पालकाः (**आ**) (**इह**) अस्मिन् वर्त्तमाने काले विद्याप्रचाराय (**गच्छत**) (**सदःसदः**) सीदन्ति यस्मिन् यस्मिन् तत्तद्गृहम् (**सदत**) (**सुप्रणीतयः**) शोभना प्रगता नीतिर्न्यायो येषान्ते (**अत्ता**) अत्र द्व्यचोऽतस्तिङ इति दीर्घः (**हवींषि**) अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि (**प्रयतानि**) प्रयत्नेन साधितानि (**बर्हिषि**) उत्तमे व्यवहारे (**अथ**) अत्र निपातस्य चेति दीर्घः । (**रयिम्**) धनम् (**सर्ववीरम्**) सर्वे वीरा यस्मात्प्राप्यन्ते तम् (**दधातन**) धरत ॥ ५९ ॥

प्रमाणार्थ—(**अत्ता**) यहाँ 'द्व्यचोऽतस्तिङः' (६ । ३ । १३५) से संहिता में दीर्घ है । (**अथ**) यहाँ 'निपातस्य च' (६ । ३ १३६) से संहिता में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे सुप्रणीतयोऽग्निष्वात्ताः पितरो यूयमिहागच्छत सदःसदः सदत प्रयतानि हवींष्यत्ताऽथ बर्हिषि स्थित्वाऽस्मदर्थं सर्ववीरं रयिं दधातन ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सुप्रणीतयः** शोभना प्रगता नीतिर्न्यायो येषान्ते, **अग्निष्वात्ताः** अधीताग्निविद्याः, **पितरः** पालकाः **यूयमिह** अस्मिन् वर्त्तमाने काले विद्याप्रचाराय **आ-गच्छत** ।

भाषार्थ—(सुप्रणीतयः) उत्तम प्रसिद्ध नीति=न्याय वाले, (अग्निष्वात्ताः) अग्नि-विद्या के ज्ञाता (पितरः) पालक पितर लोगो ! तुम—(इह) इस समय विद्या-प्रचार के लिए (आ-गच्छत) आओ।

सदःसदः सीदन्ति यस्मिन् यस्मिन् तत्तद् गृहं **सदत**, **प्रयतानि** प्रयत्नेन साधितानि **हवींषि** अत्तुमर्हाण्यन्नादीनि **अत्त**,

(सदःसदः) प्रत्येक घर में (सदत) बैठो, (प्रयतानि) प्रयत्न से सिद्ध किए हुए (हवींषि) भोज्य अन्न आदि पदार्थों को (अत्त) खाओ।

अथ-बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे **स्थित्वाऽस्मदर्थं सर्ववीरं** सर्वे वीरा यस्मात्प्राप्यन्ते तं **रयिं** धनं **दधातन** धरत ॥ १९ । ५९ ॥

(अथ) और—(बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में स्थित होकर हमारे लिए (सर्ववीरम्) सब वीरों के प्राप्ति-निमित (रयिम्) धन को (दधातन) धारण करो ॥ १९ । ५९ ॥

[हे··· पितरो यूयमिहागच्छत, सदः सदः सदत, प्रयतानि हवींष्यत्त]

भावार्थः—ये विद्वांस उपदेशाय गृहंगृहं प्रति गत्वाऽऽगत्य च सत्यं धर्मं प्रचारयन्ति, ते गृहस्थैः श्रद्धया दत्तान्यन्नपानादीनि सेवन्ताम् ।

भावार्थ—जो विद्वान् लोग उपदेश के लिए प्रत्येक घर में गमन-आगमन करके सत्य धर्म का प्रचार करते हैं वे गृहस्थों से श्रद्धापूर्वक दिए हुए अन्न आदि का सेवन करें ।

[अस्मदर्थं सर्ववीरं रयिं दधातन]

सर्वाञ्छरीरात्मबलयोग्यान् पुरुषार्थिनः कृत्वा श्रीमन्तः कुर्वन्तु ॥ १९ । ५९ ॥

सबको शरीर और आत्मा के बल में योग्य, एवं पुरुषार्थी बनाकर श्रीमान् करें ॥ १९ । ५९ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=विद्वांस उपदेशकाः । सदःसदः=गृहं गृहम् प्रयतानि=श्रद्धया दत्तानि । हवींषि=अन्नपानादीनि । सर्ववीरम्=शरीरात्मबलयोग्यं पुरुषार्थिनम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् उपदेशकों का कर्त्तव्य**—अग्निष्वात्ताः=अग्नि विद्या के दाता, श्रेष्ठ नीतियों से सम्पन्न उपदेशक गृहस्थियों के घरों में जावें, उनको सदुपदेश देकर उनका ऐसा धर्म युक्त ऐश्वर्य बढ़ावें, जिससे सन्तान वीरतादि गुणों वाली हो। और उनके घरों में ही श्रद्धा से दिए गये भोज्य पदार्थों को ग्रहण करें ॥ १९ । ५९ ॥ ●

शङ्खः । **पितरः=विद्वांसः** । स्वराट्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यैरीश्वरः कथं प्रार्थनीय इत्याह ॥

मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना कैसे करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

ये ऽ अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्ता ये ऽ अन॑ग्निष्वात्ता॒ मध्ये॑ दि॒वः स्व॒धया॑ मा॒दय॑न्ते ।
तेभ्यः॑ स्व॒राड॑सु॒नीति॑मे॒तां य॑थाव॒शं त॒न्वं॑ कल्पयाति ॥ ६० ॥

पदार्थः—(ये) (**अग्निष्वात्ताः**) सम्यग्गृहीताऽग्निविद्याः (ये) (**अनग्निष्वात्ताः**) अविद्यमानाग्निविद्याग्रहणा ज्ञाननिष्ठाः पितरः (**मध्ये**) (**दिवः**) विज्ञानादिप्रकाशस्य (**स्वधया**) स्वकीयपदार्थधारणक्रियया (**मादयन्ते**) आनन्दन्ति (**तेभ्यः**) पितृभ्यः (**स्वराट्**) यः स्वयं राजतेऽसौ परमात्मा (**असुनीतिम्**) या असून्=प्राणान् नयति=प्राप्नोति ताम् (**एताम्**) (**यथावशम्**) वशं=कामनामनतिक्रम्य करोतीति (**तन्वम्**) (**कल्पयाति**) कल्पयेत्=समर्थं कुर्य्यात् ॥ ६० ॥

अन्वयः—येऽग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता दिवो मध्ये स्वधया मादयन्ते तेभ्यः स्वराडेतामसुनीतिं तन्वं यथावशं कल्पयाति ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—ये **अग्निष्वात्ताः** सम्यग्गृहीताऽग्निविद्याः, **ये अनग्निष्वात्ताः** अविद्यमानाग्निविद्याग्रहणा ज्ञाननिष्ठाः पितरः **दिवः** विज्ञानादिप्रकाशस्य **मध्ये स्वधया** स्वकीयपदार्थधारणक्रियया **मादयन्ते** आनन्दन्ति; **तेभ्यः** पितृभ्यः **स्वराट्** यः स्वयं राजतेऽसौ परमात्मा **एतामसुनीतिं** या असून्=प्राणान् नयति=प्राप्नोति तां **तन्वं यथावशं** वशं=कामनामनतिक्रम्य करोतीति **कल्पयति** कल्पयेत्=समर्थं कुर्य्यात् ॥६०॥

भाषार्थ—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) उत्तम रीति से अग्नि-विद्या के ज्ञाता, (ये) जो (अनग्निष्वात्ताः) अग्नि-विद्या के ग्रहण से रहित, ज्ञानी पितर लोग—(दिवः) विज्ञान आदि प्रकाश के (मध्ये) मध्य में (स्वधया) अपने पदार्थों की धारण-क्रिया से (मादयन्ते) आनन्द करते हैं, (तेभ्यः) उन पितर जनों के लिए (स्वराट्) स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा (एताम्) इस (असुनीतिम्) असु=प्राणों को प्राप्त करने वाले (तन्वम्) शरीर को (यथावशम्) वश=कामना के अनुसार (कल्पयाति) समर्थ बनावे ॥ ६० ॥

[**ये अग्निष्वात्ता, ये अनग्निष्वात्ता···स्वधया मादयन्ते, तेभ्यः स्वराड्···तन्वं कल्पयाति**]

भावार्थः—हे परमेश्वर ! येऽग्न्यादिपदार्थविद्यां विज्ञाय प्रवर्तयन्ति, ये च ज्ञाननिष्ठा विद्वांसः स्वेनैव पदार्थेन तुष्टा भवन्ति तेषां शरीराणि दीर्घायूंषि सम्पादय, इति प्रार्थनीयः ॥

भावार्थ—हे परमेश्वर ! जो अग्नि-आदि पदार्थ-विद्या को जानकर उसका प्रचार करते हैं, और जो ज्ञानी विद्वान् अपने ही पदार्थ से सन्तुष्ट रहते हैं उनके शरीरों को दीर्घायु कर, यह प्रार्थना है ॥ १९ । ६० ॥

भा० पदार्थः—अग्निष्वात्ताः=येऽग्न्यादिपदार्थविद्यां विज्ञाय प्रवर्तयन्ति ते विद्वांसः । अनग्निष्वात्ताः=ज्ञाननिष्ठा विद्वांसः । स्वधया=स्वेनैव पदार्थेन । मादयन्ते=तुष्टा भवन्ति । तन्वं=शरीरं, दीर्घायुः । कल्पयाति=सम्पादयेत् ॥

भाष्यसार—सन्तान पितरों की दीर्घायु के लिए प्रार्थना करें—जो अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से युक्त ज्ञानी पितर हैं, और जो अग्नि-विद्या से अनभिज्ञ हैं, जो विज्ञानादि के प्रकाश से तथा श्रेष्ठ गुणों के धारण करने से आनन्द करते हैं, उन पितरों की स्वप्रकाश स्वरूप परमेश्वर दीर्घायु करें, ऐसी प्रार्थना सन्तान सदा किया करे ॥ १९ । ६० ॥

शङ्खः । **पितरः=विद्यावयोवृद्धाः पित्रादयः**। निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पितृसन्तानैरितरेतरं किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अ॒ग्नि॒ष्वा॒त्ता॒नृ॒तु॒मतो॑ हवामहे नाराश॒ꣳसे सो॑मपी॒थं य ऽ आ॒शुः ।
ते नो॒ विप्रा॑सः सु॒हवा॑ भवन्तु व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाम् ॥ ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**अग्निष्वात्तान्**) सुष्ठु गृहीताऽग्निविद्यान् (**ऋतुमतः**) प्रशस्ता वसन्तादय ऋतवो विद्यन्ते येषां तान् (हवामहे) (**नाराशंसे**) नराणां प्रशंसामये सत्कारव्यवहारे (**सोमपीथम्**) सोमपानम् (**ये**) (**आशुः**) अश्नीयुः (ते) (नः) अस्मभ्यम् (**विप्रासः**) मेधाविनः (**सुहवाः**) सुष्ठुदानाः (**भवन्तु**) (**वयम्**) (**स्याम**) (**पतयः**) स्वामिनः (**रयीणाम्**) धनानाम् ॥ ६१ ॥

अन्वयः—ये सोमपीथमाशुर्यानृतुमतोऽग्निष्वात्तान् पितॄन् वयं नाराशंसे हवामहे ते विप्रासो नः सुहवा भवन्तु वयं च तत्कृपातो रयीणां पतयः स्याम ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये सोमपीथं** सोमपानम् **आशुः** अश्नीयुः, **यान् ऋतुमतः** प्रशस्ता वसन्तादय ऋतवो विद्यन्ते येषां तान् **अग्निष्वात्तान्** सुष्ठु गृहीताग्निविद्यान् **पितॄन् वयं नाराशंसे** नराणां प्रशंसामये सत्कारव्यवहारे **हवामहे, ते विप्रासः** मेधाविनः **नः** अस्मभ्यं **सुहवाः** सुष्ठुदानाः **भवन्तु, वयं च तत्कृपातो रयीणां** धनानां **पतयः** स्वामिनः **स्याम** ॥ १९ । ६१ ॥

भाषार्थ—(ये) जो (सोमपीथम्) सोम-पान का (आशुः) सेवन करते हैं, जिन—(ऋतुमतः) वसन्त आदि ऋतुओं के ज्ञाता, (अग्निष्वात्तान्) उत्तम रीति से अग्नि-विद्या के वेत्ता, पितर लोगों को हम (नाराशंसे) नरों के प्रशंसामय सत्कारपूर्ण व्यवहार से (हवामहे) बुलाते हैं; (ते) वे (विप्रासः) मेधावी लोग (नः) हमारे लिए (सुहवाः) उत्तम पदार्थों के दाता (भवन्तु) हों, और हम उनकी कृपा से (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ १९ । ६१ ॥

[अग्निष्वात्तान्, ऋतुमतः, ये सोमपीथमाशुः, [तान्] पितॄन् वयं नाराशंसे हवामहे]

भावार्थ—सन्तानः, पदार्थविद्याविदो देश-कालज्ञान् प्रशस्तौषधिरससेवकान् विद्यावयोवृद्धान् पित्रादीन् सत्कारार्थमाहूय—

भावार्थ—सन्तान-पदार्थ-विद्या के वेत्ता, देश और काल के ज्ञाता, प्रशस्त ओषधियों के रस का सेवन करने वाले, विद्यावृद्ध और वयोवृद्ध पिता आदि लोगों को सत्कार के लिए बुलाकर,

[तत्कृपातो रयीणां पतयः स्याम]

तत्सहायेन धनाद्यैश्वर्यवन्तो भवन्तु ॥१९।६१॥

उनके सहाय से धन आदि ऐश्वर्य वाले बनें ॥ १९ । ६१ ॥

भा० पदार्थः—अग्निष्वात्तान्=पदार्थविद्याविदः । ऋतुमतः=देशकालज्ञान् । सोमपीथम्=प्रशस्तौषधिरसम् । पितॄन्=विद्यावयोवृद्धान् पित्रादीन् । नाराशंसे=सत्कारे । रयीणाम्=धनाद्यैश्वर्याणाम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(अग्निष्वात्तानृतुमतो०) हे मनुष्य लोगो ! जैसे हम लोग अग्नि-विद्या और समय-विद्या के जानने वाले पितरों को मान से बुलाते हैं वैसे ही तुम लोग भी उनके पास जाते और उनको अपने पास सदा बुलाते रहो, जिससे तुम्हारी सब दिन विद्या बढ़ती रहे । (नाराशंसे सोमपीथं य आशुः) जो सोमलता आदि ओषधियों के रस-पान तथा रक्षा से मनुष्यों को श्रेष्ठ करने वाले हैं, उनसे हम लोग सत्य शिक्षा लेके आनन्दित हों। (ते नो विप्राः सुहवाः) वे विद्वान् लोग हमको सत्य विद्या का

ग्रहण प्रीतिपूर्वक सदा कराते रहें। (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) जिससे कि हम लोग सुविधा से चक्रवर्त्ती राज्य की श्री आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त तथा उनकी रक्षा और उन्नति करने में भी समर्थ हों ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**कैसे पितर सम्माननीय होते हैं**—जो माता-पितादि पितर विप्रासः=मेधावी, ऋतुमताः=ऋतुओं के अनुसार खान-पान करने वाले सोमपीथम्=ओषधियों के रसादि के सेवन से नीरोग अग्निष्वात्तान्=पूर्ण विद्वान् हैं और सन्तानादि के द्वारा प्रशंसनीय यज्ञादि में बुलाने पर उत्तम सन्मति देकर ऐश्वर्य बढ़ाते हैं, वे सदा सम्मान के योग्य हैं ॥ १६ । ६१ ॥

शङ्खः । **पितरः=ज्ञानप्रदाः पितृ-आदयः** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता, पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंᳬसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽ आगः पुरुषता कराम ॥ ६२ ॥

पदार्थः—(**आच्य**) अधो निपात्य (**जानु**) (**दक्षिणतः**) दक्षिणपार्श्वतः (**निषद्य**) समास्य (**इमम्**) (**यज्ञम्**) सत्काराख्यम् (**अभि**) आभिमुख्ये (**गृणीत**) प्रशंसत (**विश्वे**) सर्वे (**मा**) (**हिंसिष्ट**) (**पितरः**) ज्ञानप्रदाः (**केन**) (**चित्**) (**नः**) अस्माकम् (**यत्**) (**वः**) (**आगः**) अपराधम् (**पुरुषता**) पुरुषस्य भावः (**कराम**) कुर्याम । **अत्र विकरणव्यत्ययेन शप्** ॥ १६ । ६२ ॥

प्रमाणार्थ—(**कराम**) कुर्याम । यहाँ विकरण व्यत्यय से शप्—विकरण है ॥

अन्वयः—हे विश्वे पितरः ! यूयं केनचिद्धेतुना नो या पुरुषता तां मा हिंसिष्ट यतो वयं सुखं कराम यद्व आगस्तत् त्याजयेम यूयमिमं यज्ञमभिगृणीत वयमाच्य जानु दक्षिणतो निषद्य युष्मान् सततं सत्कुर्याम ॥ १६ । ६२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विश्वे** सर्वे **पितरः** ज्ञानप्रदाः ! **यूयं केनचिद्धेतुना नः** अस्माकं **या पुरुषता** पुरुषस्य भावः **तां मा हिंसिष्ट, यतो वयं सुखं कराम** कुर्याम ।

यद्व आगः अपराधं **तत् त्याजयेम** ।

यूयमिमं यज्ञं सत्काराख्यम् **अभिगृणीत** आभिमुख्येन प्रशंसत ।

वयमाच्य अधो निपात्य **जानु दक्षिणतः** दक्षिणपार्श्वतः **निषद्य** समास्य **युष्मान् सततं सत्कुर्याम** ॥ १६ । ६२ ॥

भाषार्थ—हे (विश्वे) सब (पितरः) ज्ञानप्रदाता पितर लोगो ! तुम—(केनचित्) किसी भी कारण से (नः) हमारी जो (पुरुषता) पुरुषता है उसे (मा हिंसिष्ट) मत नष्ट करो, जिससे हम सुख को (कराम) प्राप्त करें।

(यत्) जो (वः) तुम्हारा (आगः) अपराध है उसे छुड़ावें ।

तुम—(इमम्) इस (यज्ञम्) सत्कार नामक यज्ञ की (अभिगृणीत) सर्वत्र प्रशंसा करो ।

हम—(आच्य) नीचे रख कर (जानु) घुटने को, (दक्षिणतः) दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ कर तुम्हारा सदा सत्कार करें ॥ १६ । ६२ ॥

[हे···पितरः !···वयमाच्य जानु दक्षिणतो निषद्य युष्मान् सततं सत्कुर्याम]

भावार्थः—येषां पितरो यदा सामीप्यमागच्छेयुः, स्वयं वैतेषां निकटे समभिगच्छेयुस्तदा भूमौ जानुनी निपात्य नमस्कृत्यैतान् प्रसादयेयुः, पितरश्चाशीर्विद्या सुशिक्षोपदेशेन स्वसन्तानान् प्रसन्नान् कृत्वा सततं रक्षेयुः ॥ १९ । ६२ ॥

भावार्थ—जिनके पितर लोग उनके समीप आवें, अथवा जब स्वयं इनके निकट जावें, तब भूमि पर घुटनों को रख कर, नमस्कार करके इन्हें प्रसन्न करें, और पितर लोग आशीर्वाद, विद्या तथा सुशिक्षा के उपदेश से अपने सन्तानों को प्रसन्न करके सदा रक्षा करें ॥ १९ । ६२ ॥

भाष्यसार—**माता-पिता और सन्तान का कर्त्तव्य**--पितरः=ज्ञान-प्रदाता माता-पितादि पितर इस बात का विशेष ध्यान रक्खें कि मानवता (मानवीय गुणों) का विनाश न हो। सन्तान को अवगुणों से पृथक् रक्खें। परस्पर एक दूसरे का यथायोग्य सत्कार किया करें। इसी प्रकार सन्तान भी घुटने टेककर माता-पितादि का सदा सम्मान किया करे ॥ १९ । ६२ ॥

शङ्खः । **पितरः**=वृद्धाः । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आसीनासो ऽ अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽ इहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**आसीनासः**) उपस्थिताः सन्तः (**अरुणीनाम्**) अरुणवर्णानां स्त्रीणाम् (**उपस्थे**) उत्संगे (**रयिम्**) श्रियम् (**धत्त**) (**दाशुषे**) दात्रे (**मर्त्याय**) मनुष्याय (**पुत्रेभ्यः**) (**पितरः**) (**तस्य**) (**वस्वः**) वसुनो=धनस्य (**प्र**) (**यच्छत**) (**ते**) (**इह**) (**ऊर्जम्**) पराक्रमम् (**दधात**) दधीरन् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—हे पितरः ! यूयमिहारुणीनामुपस्थ आसीनासः सन्तः पुत्रेभ्यो दाशुषे मर्त्याय च रयिं धत्त तस्य वस्वोंऽशान्प्रयच्छत यतस्त ऊर्जं दधात ॥ ६३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे पितरः ! यूयमिहारुणीनाम् अरुणवर्णानां स्त्रीणाम् **उपस्थे** उत्सङ्गे **आसीनासः** उपस्थिताः **सन्तः**, **पुत्रेभ्यो दाशुषे** दात्रे **मर्त्याय** मनुष्याय **च रयिं** श्रियं **धत्त तस्य वस्वः** वसुनो=धनस्य **अंशान् प्रयच्छत, यतस्त ऊर्जं** पराक्रमं **दधात** दधीरन् ॥ १९ । ६३ ॥

भाषार्थ—हे पितर लोगो ! तुम (इह) यहाँ (अरुणीनाम्) अरुण वर्ण वाली स्त्रियों के (उपस्थे) गोदी में (आसीनासः) बैठे हुए—(पुत्रेभ्यः) अपनी सन्तान और (दाशुषे) दान-पात्र (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (रयिम्) श्री=धन को (धत्त) धारण करो, (तस्य) उस (वस्वः) धन के अंशों को (प्रयच्छत) प्रदान करो, जिससे (ते) वे (ऊर्जम्) पराक्रम को (दधात) धारण करें ॥ १९ । ६३ ॥

[हे पितरः ! यूयमिहारुणीनामुपस्थ आसीनासः सन्तः, पुत्रेभ्यो दाशुषे मर्त्याय च रयिं धत्त]

भावार्थः—त एव वृद्धाः सन्ति ये स्वस्त्रीव्रताः, स्वपत्नीनां सत्कर्तारो, ऽपत्येभ्यो यथायोग्यं दायं, सत्पात्रेभ्यो दानं च सदा ददति; ते च सन्तानैर्माननीयाः सन्ति ॥ १९ । ६३ ॥

भावार्थ—वे ही वृद्ध पितर हैं जो अपनी स्त्री के व्रती, अपनी पत्नी का सत्कार करने वाले, सन्तानों को दायभाग और सत्पात्रों को सदा दान देते हैं। और वे ही सन्तानों के माननीय हैं ॥६३॥

भा० पदार्थः—पितरः=वृद्धाः । अरुणीनाम्=स्वपत्नीनाम् । पुत्रेभ्यः=अपत्येभ्यः । दाशुषे=सत्पात्राय । रयिम्=दायं, दानं च ।

भाष्यसार—माता-पिता का सन्तान के प्रति कर्त्तव्य—पितरः=विद्वान् माता-पिता अपने-अपने कर्त्तव्य में लगे हुए जो धन-सञ्चय करें, उसको अपनी योग्य सन्तान और दान योग्य श्रेष्ठ-विद्वानों को दिया करें । इससे धन का सदुपयोग होने के कारण बल-पराक्रम की वृद्धि होती है ॥ १९ । ६३ ॥ ●

शङ्खः । **अग्निः**=विद्वान् पित्रादिः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।
तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**यम्**) (**अग्ने**) अग्निरिव प्रकाशमान विद्वन् (**कव्यवाहन**) यः कविषु साधूनि वस्तूनि वहति=प्रापयति तत्सम्बुद्धौ (**त्वम्**) (**चित्**) अपि (**मन्यसे**) (**रयिम्**) ऐश्वर्यम् (**तम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**गीर्भिः**) (**श्रवाय्यम्**) श्रावयितुमर्हम् । **श्रुदक्षीत्यादिना आय्य प्रत्ययः ॥ उ० ३ । ९६ ॥** (**देवत्रा**) देवेषु=विद्वत्सु (**पनय**) देहि । **अत्रान्येषामपीति दीर्घः ।** (**युजम्**) योक्तुमर्हम् ॥ १९ । ६४ ॥

प्रमाणार्थ—(**श्रवाय्यम्**) यहाँ 'श्रुदक्षि०' इत्यादि उणा० (३ । ९६) से 'आय्य' प्रत्यय है । (**पनय**) यहाँ अन्येषामपि दृश्यते (६ । ३ । १३७) से दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे कव्यवाहनाऽग्ने ! त्वं गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा युजं यं रयिं मन्यसे तं चिन्नः पनय ॥ १९ । ६४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **कव्यवाहन** यः कविषु साधूनि वस्तूनि वहति=प्रापयति तत्सम्बुद्धौ **अग्ने** ! अग्निरिव प्रकाशमान विद्वन् ! **त्वं गीर्भिः श्रवाय्यं** श्रावयितुमर्हं **देवत्रा** देवेषु=विद्वत्सु **युजं** योक्तुमर्हं **यं रयिम्** ऐश्वर्यं **मन्यसे**, **तं चिद्** अपि **नः** अस्मभ्यं **पनय** देहि ॥ १९ । ६४ ॥

भाषार्थ—हे (कव्यवाहन) कव्य=कवियों में श्रेष्ठ वस्तुओं को प्राप्त कराने वाले (**अग्ने**) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! तू—(**गीर्भिः**) वाणियों के द्वारा (श्रवाय्यम्) सुनाने योग्य, (देवत्रा) विद्वानों में (युजम्) लगाने योग्य जिस (रयिम्) ऐश्वर्य को (मन्यसे) मानता है (तम्) उसको (चित्) भी (नः) हमें (पनय) प्रदान कर ॥ १९ । ६४ ॥

[हे···**अग्ने ! त्वं गीर्भिः श्रवाय्यं, देवत्रा युजं···रयिं···नः पनय**]

भावार्थः—पितृभिः पुत्रेभ्यस्सत्पात्रेभ्यश्च प्रशंसनीयं धनं सञ्चेयम् । तेनैतान् विदुषो गृहीत्वा सत्यधर्मोपदेशकान् कारयित्वा विद्याधर्मौ प्रचारणीयौ ॥ १९ । ६४ ॥

भावार्थ—पितर लोग पुत्रों और सत्पात्रों के लिए प्रशंसनीय धन संचित करें । उससे इन विद्वानों को ग्रहण करके, सत्य धर्म के उपदेशक बनाकर विद्या और धर्म का प्रचार करें ॥१९।६४॥

भा० पदार्थः—देवत्रा=सत्पात्रेषु । युजम्=प्रशंसनीयम् । रयिम्=धनम् ॥

भाष्यसार—**माता-पिता का सन्तान के प्रति कर्त्तव्य**—अग्ने=अग्नि के समान विद्यादि गुणों से प्रकाशमान कव्यवाहन=विद्वानों के कर्मों के अनुसार श्रेष्ठ कार्य करने वाले माता-पितादि पितर ऐसे प्रशंसनीय धनों का सन्तान के लिए संग्रह करें, जो विद्यादि गुणों को बढ़ाने के कारण विद्वानों में सुनाने योग्य हो ॥ १९ । ६४ ॥

शङ्खः । **अग्निः**=विद्वान् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर क्या करना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

यो ऽअग्निः कव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्यऽआ ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(यः) (**अग्निः**) अग्निरिव विद्यासु प्रकाशमानः (**कव्यवाहनः**) यः कव्यानि=कवीनां प्रशस्तानि कर्माणि प्रापयति सः (**पितॄन्**) जनकादीन् (**यक्षत्**) सत्कुर्यात् (**ऋतावृधः**) य ऋतेन=वेदविज्ञानेन वर्द्धन्ते । **अत्रान्येषामपीति दीर्घः ।** (**प्र**) (**इत्**) एव (**उ**) वितर्के (**हव्यानि**) आदातुमर्हाणि विज्ञानानि (**वोचति**) वदति । **वचेर्लेटचट् वच उमित्युमागमः ।** (**देवेभ्यः**) विद्वद्भ्यः (**च**) (**पितृभ्यः**) जनकादिभ्यः (**आ**) समन्तात् ॥ १९ । ६५ ॥

प्रमाणार्थ—(**ऋतावृधः**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से ऋत-शब्द में दीर्घ है । (**वोचति**) यहाँ 'वच्' धातु से लेट्-लकार में अट् का आगम और 'वच उम्' (७ । ४ । २०) से उम्-आगम है ॥

अन्वयः—यः कव्यवाहनोऽग्निर्विद्वान् ऋतावृधः पितॄन्यक्षत्स इदु देवेभ्यः पितृभ्यश्च हव्यानि प्रावोचति ॥ १९ । ६५ ॥

सपदार्थान्वयः—यः **कव्यवाहनः** यः कव्यानि=कवीनां प्रशस्तानि कर्माणि प्रापयति सः **अग्निः**=**विद्वान्** अग्निरिव विद्यासु प्रकाशमानः **ऋतावृधः** य ऋतेन=वेदविज्ञानेन वर्द्धन्ते [तान्] **पितॄन्** जनकादीन् **यक्षत्** सत्कुर्यात् । **स इद्** एव **उ** सवितर्कं **देवेभ्यः** विद्वद्भ्यः **पितृभ्यः** जनकादिभ्यः **च** **हव्यानि** आदातुमर्हाणि विज्ञानानि **प्र-आ-वोचति** समन्ताद् वदति ॥ १९ । ६५ ॥

भाषार्थ—जो (कव्यवाहनः) कव्य=कवियों के प्रशस्त कर्मों को प्राप्त करने वाला (अग्निः) अग्नि के समान विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान्—(ऋतावृधः) ऋत=वेद-विज्ञान से वृद्ध (पितॄन्) जनक आदि पितर लोगों का (यक्षत्) सत्कार करता है, वह (इत्) ही (उ) विचार-पूर्वक (देवेभ्यः) विद्वानों और (पितृभ्यः) जनक आदि पितर लोगों के लिए (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य विज्ञानों का (प्र-आ-वोचति) उपदेश करता है ॥ १९ । ६५ ॥

[यः···अग्निः=विद्वान्···स इदु देवेभ्यः पितृभ्यश्च हव्यानि प्रावोचति]

भावार्थः—ये ब्रह्मचर्येण पूर्णविद्या भवन्ति ते विद्वत्सु विद्वांसः, पितृषु पितरश्च गण्यन्ते ॥ ६५ ॥

भावार्थ—जो ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या वाले होते हैं वे विद्वानों में विद्वान् और पितरों में पितर गिने जाते हैं ॥ १९ । ६५ ॥

भा० पदार्थः—अग्निः=ब्रह्मचर्येण पूर्णविद्यः ॥ १९ । ६५ ॥

भाष्यसार—विद्वान् पुत्र का कर्त्तव्य—अग्निः=अग्नि के समान प्रकाशमान। ब्रह्मचर्यादि व्रतों के पालन से ऋतावृधः=वेद-ज्ञान से समृद्ध, कव्यवाहनः=विद्वानों के बताये प्रशस्त कर्मों को करने वाला पुत्र माता-पितादि पितरों और विद्वानों के लिए विविध-विज्ञानों का उपदेश किया करे। क्योंकि विद्यावृद्ध ही वृद्ध माने जाते हैं ॥ १९ । ६५ ॥

शङ्खः । **अग्निः=विद्वान् पुत्रः** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

माता-पिता और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

त्वमग्न ऽ ईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते ऽ अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६६ ॥

पदार्थः—(त्वम्) (अग्ने) पावक इव पवित्र (ईडितः) प्रशंसितः (**कव्यवाहन**) कवीनां प्रागल्भ्यानि कर्माणि प्राप्त (**अवाट्**) वहसि (**हव्यानि**) अत्तुमर्हाणि (**सुरभीणि**) सुगन्धादियुक्तानि (**कृत्वी**) कृत्वा । स्नात्व्यादयश्च ॥ अ० ७ । १ । ४९ ॥ (**प्र**) (**अदाः**) प्रदेहि (**पितृभ्यः**) (**स्वधया**) अन्नेन सह (**ते**) (**अक्षन्**) अदन्तु (**अद्धि**) भुङ्क्ष्व (**त्वम्**) (**देव**) दातः (**प्रयता**) प्रयत्नेन साधितानि (**हवींषि**) आदातुमर्हाणि ॥ ६६ ॥

प्रमाणार्थ—(**कृत्वी**) कृत्वा । यहाँ 'स्नात्व्यादयश्च' (७ । १ । ४९) इस सूत्र से निपातन से ईकार-आदेश है ॥

अन्वयः—हे कव्यवाहनाग्ने विद्वन् ! पुत्र ! ईडितस्त्वं सुरभीणि हव्यानि कृत्व्यवाट् तानि पितृभ्यः प्रादास्ते पितरः स्वधया सहैतान्यक्षन् । हे देव ! त्वं प्रयता हवींष्यद्धि ॥ ६६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **कव्यवाहन** कवीनां प्रागल्भ्यानि कर्माणि प्राप्त **अग्ने!=विद्वन् पुत्र** पावक इव पवित्र ! **ईडितः** प्रशंसितः **त्वं सुरभीणि** सुगन्धादियुक्तानि **हव्यानि** अत्तुमर्हाणि **कृत्वी** कृत्वा **अवाट्** वहसि, **तानि पितृभ्यः प्रादाः** प्रदेहि, **ते पितरः स्वधया** अन्नेन **सहैतान्यक्षन्** अदन्तु ।

हे **देव** दातः ! **त्वं प्रयता** प्रयत्नेन साधितानि **हवींषि** आदातुमर्हाणि **अद्धि** भुङ्क्ष्व ॥ १९ । ६६ ॥

भाषार्थ—हे (कव्यवाहन) कव्य=कवियों के श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त (अग्ने) अग्नि के समान पवित्र विद्वान् पुत्र ! (ईडितः) प्रशंसा को प्राप्त तू—(सुरभीणि) सुगन्ध आदि से युक्त पदार्थों को (हव्यानि) खाने के योग्य (कृत्वी) बनाकर (अवाट्) प्राप्त करता है, उन्हें तू (पितृभ्यः) पितर लोगों को (प्रादाः) प्रदान कर, (ते) वे पितर लोग (स्वधया) अन्न के साथ इन्हें (अक्षन्) खावें।

हे (देव) दाता ! तू—(प्रयता) प्रयत्न से सिद्ध किए हुए (हवींषि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों का (अद्धि) भक्षण कर ॥ १९ । ६६ ॥

[हे···अग्ने=विद्वन् पुत्र ! ···त्वं सुरभीणि हव्यानि···पितृभ्यः प्रादाः, ते पितरः स्वधया सहैतान्यक्षन्, त्वम्··· अद्धि]

भावार्थः—पुत्रादय, सर्वे सुसंस्कृतैः

भावार्थ—पुत्र आदि सब लोग उत्तम रीति

सुगन्धादियुक्तैरन्नपानैः पितॄन् भोजयित्वा स्वयमेतानि भुञ्जीरन्नियमेव पुत्राणां योग्यताऽस्ति।

से संस्कृत, सुगन्ध आदि से युक्त, अन्न और पान से पितर लोगों को भोजन कराकर स्वयं उक्त पदार्थों का भोजन करें। यही पुत्रों को योग्य है।

[फलमाह—]

ये सुसंस्कृतान्नपाने कुर्वन्ति तेऽरोगाः शतायुषो भवन्ति॥ १९। ६६॥

जो उत्तम रीति से संस्कृत अन्न और पान का सेवन करते हैं वे नीरोग और शतायु होते हैं॥ १९। ६६॥

भा० पदार्थः—सुरभीणि=सुसंस्कृतानि। हव्यानि=अन्नपानानि॥

भाष्यसार—विद्वान्-पुत्र का कर्त्तव्य—अग्नि के समान पवित्र, सबसे प्रशंसनीय, और कव्यवाहन=विद्वानों के सदृश कार्य करने वाला विद्वान् पुत्र अपने पूर्वज पितरों को सुगन्धित भोज्य पदार्थों को खिलावे और स्वयं भी सुसंस्कृत अन्नादि का सेवन करके नीरोग तथा दीर्घायु होवे॥ १९। ६६॥

शङ्खः। **पितरः=विद्वांसोऽध्यापका उपदेशकाः।** स्वराट्पंक्तिः। पञ्चमः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

पितरों और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व॥ ६७॥

पदार्थः—(ये) (च) (इह) (पितरः) (ये) (च) (न) (इह) (यान्) (च) (विद्म) जानीमः (यान्) (उ) वितर्के (च) (न) (प्रविद्म) (त्वम्) (वेत्थ) (यति) या सङ्ख्या येषान्तान् (ते) (जातवेदः) जाता वेदः=प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ, हे विद्वन्! (स्वधाभिः) (यज्ञम्) (सुकृतम्) सुष्ठु कर्माणि क्रियन्ते यस्मिन् (जुषस्व) सेवस्व॥ ६७॥

अन्वयः—हे जातवेदः! ये चेह पितरो ये चेह न सन्ति वयं यांश्च विद्म यांश्च न प्रविद्म तान् यति यावतस्त्वं वेत्थ उ ते त्वां विदुस्तत् सेवामयं सुकृतं यज्ञं स्वधाभिर्जुषस्व॥ ६७॥

सपदार्थान्वयः—हे जातवेदः जाता वेदः=प्रज्ञा यस्य तत्सम्बुद्धौ, हे विद्वन्! **ये चेह पितरो, ये चेह न सन्ति, वयं यांश्च विद्मः** जानीमः **यांश्च न प्रविद्म, तान् यति=यावतः** या संङ्ख्या येषान्तान् **त्वं वेत्थ, उ** सवितर्के **ते त्वां विदुः तत्सेवामयं सुकृतं** सुष्ठु कर्माणि क्रियन्ते यस्मिन् **यज्ञं स्वधाभिर्जुषस्व** सेवस्व॥ १९। ६७॥

भाषार्थ—हे (जातवेदः) उत्पन्न वेद=प्रज्ञा वाले विद्वान्! (ये) जो (च-इह) यहाँ (पितरः) पितर लोग हैं, (च), और (ये) जो (इह) यहाँ (न) नहीं हैं (च) और हम—(यान्) जिन्हें (विद्मः) जानते हैं (च) और (यान्) जिन्हें (न) नहीं (प्रविद्म) जानते हैं, उन (यति) जितनों को (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता है, (उ) विचारपूर्वक (ते) वे तुझे जानें। उनके सेवामय (सुकृतम्) उत्तम कर्मों से युक्त यज्ञ का (स्वधाभिः) अन्न आदि से (जुषस्व) सेवन कर॥ १९। ६७॥

[हे जातवेदः ! ये चेह पितरो, ये चेह न सन्ति ··· तत्सेवामयं ··· यज्ञं स्वधाभिर्जुषस्व]

भावार्थः—हे मनुष्याः ! प्रत्यक्षा वा येऽप्रत्यक्षा विद्वांसोऽध्यापका उपदेशकाश्च सन्ति, तान् सर्वानाहूया ऽन्नादिभिस्सदा सत्कुरुत,

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष विद्वान्, अध्यापक और उपदेशक हैं उन सबको बुलाकर, अन्न आदि से सदा सत्कार करो।

[हेतुमाह —]

येन स्वयं सत्कृता भवत ॥ १९ । ६७ ॥

जिससे स्वयं सत्कार को प्राप्त होओ ॥१९।६७॥

भा० पदार्थः—पितरः=विद्वांसोऽध्यापका उपदेशकाश्च । स्वधाभिः=अन्नादिभिः । जुषस्व=सत्कुरु ।

अन्यत्र व्याख्यात—(ये चेह पितरो०) हे जातवेद परमेश्वर ! जो पितर लोग हमारे समीप और दूर देश में हैं, (याँश्च विद्म) जिनको समीप होने से हम लोग जानते और (याँश्च न प्रविद्म) जिनको दूर होने के कारण नहीं भी जानते हैं (यति ते०) जो इस संसार के बीच में वर्त्तमान हैं (त्वं वेत्थ) उन सबको आप यथावत् जानते हैं। कृपा करके उनका और हमारा परस्पर सम्बन्ध सदा के लिए कीजिए। (स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं०) और आप अपनी धारणा-शक्तियों से व्यवहार और परमार्थ रूप श्रेष्ठ यज्ञों को प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिए कि जिससे हम लोगों को सब सुख प्राप्त होते रहें ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार--**विद्वान् पितर और सन्तान का वर्त्ताव**—जो पितरः=अध्यापक अथवा उपदेशक जातवेदः=उत्कृष्ट बुद्धि वाले हैं, जिनसे हमारा परिचय है अथवा नहीं है, उनको सन्तान यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में श्रद्धा से बुलावे और अन्नादि से सत्कार करें ॥ १९ । ६७ ॥ ●

शङ्खः । **पितरः**=**प्रजाशोधका वृद्धाः** । स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पितरों और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

इदं पितृभ्यो नमो ऽ अस्त्वद्य ये पूर्वासो य ऽ उपरास ऽ ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनꣳ सुवृजनासु विक्षु ॥ ६८ ॥

पदार्थः—(**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**पितृभ्यः**) जनकादिभ्यः (**नमः**) सुसंस्कृतमन्नम् (**अस्तु**) (**अद्य**) इदानीम् (**ये**) (**पूर्वासः**) अस्मत्तो वृद्धाः (**ये**) (**उपरासः**) वानप्रस्थसंन्यासाश्रममाप्ता गृहाश्रमविषयभोगेभ्य उपरताः (**ईयुः**) प्राप्नुयुः (**ये**) (**पार्थिवे**) पृथिव्यां विदिते (**रजसि**) लोके (**आ**) (**निषत्ताः**) कृतनिवासाः (**ये**) (**वा**) (**नूनम्**) निश्चितम् (**सुवृजनासु**) शोभना वृजनाः=गतयो यासां तासु (**विक्षु**) प्रजासु ॥ ६८ ॥

अन्वयः—ये पितरः पूर्वासो य उपरास ईयुर्ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता वा नूनं ये सुवृजनासु विक्षु प्रयतन्ते तेभ्यः पितृभ्योऽद्येदं नमोऽस्तु ॥ १९ । ६८ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये पितरः पूर्वासः** अस्मत्तो वृद्धाः, **ये उपरासः** वानप्रस्थसंन्यासाश्रममाप्ता गृहाश्रमविषयभोगेभ्य उपरताः **ईयुः** प्राप्नुयुः, **ये पार्थिवे** पृथिव्यां विदिते **रजसि** लोके **आ-निषत्ताः**

भाषार्थ—(ये) जो पितर लोग (पूर्वासः) हमसे वृद्ध हैं, (ये) जो (उपरासः) वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम को प्राप्त, गृहाश्रम के विषय भोगों से उपरत पितर लोग (ईयुः) प्राप्त होवें; (ये) जो

कृतनिवासाः, **वा-नूनं** निश्चितं **ये सुवृजनासु** शोभना वृजनाः=गतयो यासां तासु **विक्षु** प्रजासु **प्रयतन्ते, तेभ्यः पितृभ्यः** जनकादिभ्यः **अद्य** इदानीम् **इदं** प्रत्यक्षं **नमः** सुसंस्कृतमन्नम् **अस्तु** ॥ १९ । ६८ ॥

(पार्थिवे) पृथिवी पर विदित=प्रसिद्ध (रजसि) लोक=स्थान में (आ-निषत्ताः) निवास करने वाले हैं, (वा) अथवा—(नूनम्) निश्चित रूप से (ये) जो (सुवृजनासु) उत्तम वृजना=गति वाली (विक्षु) प्रजा में प्रयत्न करते हैं; उन (पितृभ्यः) जनक आदि पितर लोगों के लिए (अद्य) अब (इदम्) यह (नमः) सुगन्धित अन्न (अस्तु) हो ॥ १९ । ६८ ॥

[ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ताः पितरः...सुवृजनासु विक्षु प्रयतन्ते, पूर्वासः, उपरासः,...तेभ्यः पितृभ्यः...नमोऽस्तु]

भावार्थः—अस्मिन् संसारे ये प्रजाशोधकाः, अस्मत्तो वरा, विरक्ताश्रमं प्राप्ताः, पित्रादयस्सन्ति ते पुत्रादिभिः सदा सेवनीया; नो चेत् कियती हानिः ॥ १९ । ६८ ॥

भावार्थ—इस संसार में जो प्रजा के शोधक, हमसे श्रेष्ठ, विरक्त-आश्रम (वानप्रस्थ, संन्यास) को प्राप्त पितर आदि हैं उनकी पुत्र आदि लोग सदा सेवा करें; नहीं तो कितनी ही हानि है ॥ १९ । ६८ ॥

भा० पदार्थः—पार्थिवे रजसि=अस्मिन् संसारे । पूर्वासः=अस्मत्तो वराः । उपरासः=विरक्ताश्रमं प्राप्ताः ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(इदं पितृभ्यो न०) हम लोग उन सब पितर लोगों को नमस्कार करते हैं (अद्य पूर्वासो य उपरास ईयुः) जो कि प्रथम आप विद्वान् होके हम लोगों को भी विद्या देते हैं अथवा—जो कि विरक्त और संन्यासी होके सर्वत्र विचरते हुए उपदेश करते हैं, तथा (ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ताः) जो कि पार्थिव अर्थात् भूगर्भ-विद्या और सूर्यादि लोकों के जानने वाले हैं, तथा (ये वा नूनं सु०) जो कि निश्चय करके प्रजाओं के हित में उद्यत और उत्तम सेनाओं के बीच में बड़े चतुर हैं उन सब को हम लोग नमस्कार करते हैं, इसलिए कि वे सब दिन हमारी उन्नति करते रहें ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**सन्तान विरक्त पितरों का सम्मान करे**—जो पितर=पिता, पितामह आदि विरक्त होकर गृहस्थ के सुखों को छोड़कर संन्यासादि आश्रम में प्रवेश कर चुके हैं, जो श्रेष्ठ आचरण के कारण पृथिवी पर श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर चुके हैं और जो अच्छी गति वाली प्रजा की भलाई के सदा प्रयत्न करते हैं, उनका सन्तान अन्नादि पदार्थों से सम्मान किया करे ॥ १९ । ६८ ॥ ●

शङ्खः । **पितरः**=जनकादयः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पितरों और सन्तानों को परस्पर कैसे बर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो ऽ अग्न ऽ ऋतमाशुषाणाः ।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो ऽ अरुणीरप व्रन् ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(अध) अथ । अत्र वर्णव्यत्ययेन थस्य धः । (यथा) (नः) अस्माकम् (पितरः) (परासः) प्रकृष्टाः (प्रत्नासः) प्राचीनाः (अग्ने) विद्वन् (ऋतम्) सत्यम् (आशुषाणाः) प्राप्नुवन्तः (शुचि)

पवित्रम् (इत्) एव (अयन्) प्राप्नुवन्ति (दीधितिम्) विद्याप्रकाशम् (उक्थशासः) य उक्थानि=वक्तुं योग्यानि वचनानि शंसन्ति (क्षामा) निवासभूमिम्। **अत्र विभक्तेर्लुक्** (**भिन्दन्तः**) विदारयन्तः (**अरुणीः**) सुशीलतया प्रकाशमयाः स्त्रियः (**अध**) (**व्रन्**) दूरीकुर्वन्ति ॥ ६९ ॥

प्रमाणार्थ—(**अध=अथ**) यहाँ वर्णव्यत्यय से थकार के स्थान पर धकारादेश हुआ है। (**क्षामा**) यहाँ विभक्ति का लुक् हुआ है।

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! यथा नः परासः प्रत्नास उक्थशासः शुचि ऋतमाशुषाणाः पितरो दीधितिमरुणीः क्षामा चायन्नधाऽथाऽविद्यां भिन्दन्त इदावरणान्यपव्रँस्तांस्त्वं तथा सेवस्व ॥ ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने=विद्वन्** ! **यथा नः** अस्माकं **परासः** प्रकृष्टाः **प्रत्नासः** प्राचीनाः **उक्थशासः** य उक्थानि=वक्तुं योग्यानि वचनानि शंसन्ति **शुचि** पवित्रम् **ऋतं** सत्यम् **आशुषाणाः** प्राप्नुवन्तः, **पितरो दीधितिं** विद्याप्रकाशम्, **अरुणीः** सुशीलतया प्रकाशमयाः स्त्रियः **क्षामा** निवासभूमिं **चायन्** प्राप्नुवन्ति,

अध=अथाऽविद्यां भिन्दन्तः विदारयन्तः **इत्** एव **आवरणान्यपव्रन्** दूरीकुर्वन्ति, **ताँस्त्वं तथा सेवस्व** ॥ १९ । ६९ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! (यथा) जैसे (नः) हमारे (परासः) प्रकृष्ट=उत्तम, (प्रत्नासः) प्राचीन=पुराने, (उक्थशासः) कथनीय वचनों की प्रशंसा करने वाले, (शुचि) पवित्र (ऋतम्) सत्य को (आशुषाणाः) प्राप्त करने वाले पितर लोग—(दीधितिम्) विद्या-प्रकाश, (अरुणीः) सुशीलता से प्रकाशमय स्त्रियों, और (क्षामा) निवास-भूमि को (अयन्) प्राप्त करते हैं।

(अथ) और अविद्या को (भिन्दन्तः) तोड़ते हुए (इत्) ही अन्धकार को (अपव्रन्) दूर करते हैं, उनकी तू उस प्रकार से सेवा कर ॥ १९ । ६९ ॥

[हे अग्ने=विद्वन् ! यथा नः—पितरो दीधितिं—आयन्, अधा=अथाऽविद्यां भिन्दन्त इदावरणान्यपव्रँस्ताँस्त्वं तथा सेवस्व]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः। ये जनकादयो विद्यां प्रापय्याऽविद्यां निवर्तयन्ति तेऽत्र सर्वैस्सत्कर्त्तव्याः सन्तु ॥ १९ । ६९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है। जो जनक=पिता आदि विद्या को प्राप्त कराकर अविद्या को हटाते हैं वे यहाँ सब के सत्करणीय हों ॥ १९ । ६९ ॥

भा० पदार्थः—पितरः=जनकादयः।

भाष्यसार—१. **धार्मिक पितरों की सन्तान सेवा करे**—जिन पितरों के वचन प्रशंसा के योग्य हैं, जिनका आचरण पवित्र है, जो सत्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं जो विद्यादि सद्गुणों और सुशीलतादि गुणों से सम्पन्न स्त्रियों को प्राप्त करते हैं, जो अविद्या के विनाश का सदा प्रयत्न करते हैं, ऐसे पूर्वजों का सन्तान सदा सम्मान करे।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है—सन्तान अपना आचरण पूर्वजों के समान बनावें ॥ १९ । ६९ ॥

शङ्खः। **पितरः**=विद्वांसोऽध्यापकाः। निचृत् त्रिष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

पितरों और सन्तानों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

उ॒शन्त॑स्त्वा॒ नि धी॑मह्युश॒न्तः समि॑धीमहि । उ॒शन्नु॑श॒त ऽ आ व॑ह पि॒तॄन्ह॒विषे॒ ऽ अत्त॑वे ॥ ७० ॥

पदार्थः—(उशन्तः) कामयमानाः (त्वा) त्वाम् (नि) (धीमहि) धरेम । **अत्र बहुलं छन्दसीति शपो लुक् छन्दस्युभयथेत्यार्द्धधातुकसंज्ञा घुमास्थेत्यादिना ईत्वम् ।** (उशन्तः) (सम्) एकीभावे (इधीमहि) दीपयेम (उशन्) कामयमानः (उशतः) कामयमानान् (आ) (वह) प्राप्नुहि (पितॄन्) जनकादीन् (हविषे) हविर्दातुमर्हम् । **अत्र व्यत्ययेन द्वितीयास्थाने चतुर्थी** (अत्तवे) अत्तुं=भोक्तुम् ॥ १९ । ७० ॥

प्रमाणार्थ—(धीमहि) यहाँ 'बहुलं छन्दसि' (२ । ४ । ७३) से शप्—विकरण का लुक् है और 'छन्दस्युभयथा' (३ । ४ । ११७) से आर्धधातुक संज्ञा तथा 'घुमास्था०' (६ । ४ । ६६) से ईत्व है ॥ (हविषे) यहाँ द्वितीया विभक्ति के स्थान में चतुर्थी विभक्ति है ॥

अन्वयः—हे विद्यार्थिन्पुत्र वा त्वामुशन्तो वयं त्वा निधीमह्युशन्तः सन्तः समिधीमहि । उशंस्त्वं हविषेऽत्तवे उशतोऽस्मान् पितॄनावह ॥ १९ । ७० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्यार्थिन् पुत्र ! वा [त्वा]=त्वामुशन्तः कामयमानाः वयं त्वा त्वां निधीमहि धरेम, उशन्तः कामयमानाः सन्तः समिधीमहि एकीभावेन दीपयेम ।

उशन् कामयमानः त्वं **हविषे** हविर्दातुमर्हम् **अत्तवे** अत्तुं=भोक्तुं **उशतः** कामयमानान् **अस्मान् पितॄन्** जनकादीन् **आवह** प्राप्नुहि ॥ १९ । ७० ॥

भाषार्थ—हे विद्यार्थी ! वा पुत्र ! [त्वा] तुझे (उशन्तः) चाहते हुए हम लोग—(त्वा) तुझे (निधीमहि) धारण करें, (उशन्तः) कामना करते हुए (समिधीमहि) एक होकर प्रकाशित करें।

(उशन्) कामना करता हुआ तू—(हविषे) ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (अत्तवे) खाने के लिए (उशतः) कामना करने वाले हम (पितॄन्) जनक आदि पितर लोगों को तू (आवह) प्राप्त कर ॥७०॥

[हे विद्यार्थिन् !···त्वामुशन्तो वयं त्वा निधीमहि]

भावार्थः—यथा विद्वांसो धीमन्तो जितेन्द्रियान् कृतज्ञान् परिश्रमिणो विचारशीलान् विद्यार्थिनो नित्यं कामयेरन्,

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग—बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय कृतज्ञ, परिश्रमी, विचारशील विद्यार्थियों की नित्य कामना करें,

[उशंस्त्वं हविषेऽत्तवे···अस्मान् पितॄनावह]

तथा—विद्यार्थिनोऽपीदृशानध्यापकान् विदुषः संसेव्य विद्वांसो भवन्तु ॥ १९ । ७० ॥

वैसे—विद्यार्थी भी ऐसे अध्यापक विद्वानों की सेवा करके विद्वान् बनें ॥ १९ । ७० ॥

भा० पदार्थः—पितॄन्=अध्यापकान् विदुषः ।

अन्यत्र व्याख्यात—(उशन्तस्त्वा निधीमहि) हे अग्ने परमेश्वर ! हम लोग आपकी प्राप्ति की कामना करके आपको अपने हृदय में निहित अर्थात् स्थापित और (उशन्तः समिधीमहि) आपका ही सर्वत्र प्रकाश करते रहें, (उशन्नुशत आवह पितॄन्) हे भगवन् ! आप हमारे कल्याण के अर्थ पूर्वोक्त पितरों को नित्य प्राप्त कीजिए कि (हविषे अत्तवे) हम लोग भी उनकी सेवा में विद्या लेने के लिए स्थिर रहें ॥ ऋग्वेदादि० पितृयज्ञ० ॥

भाष्यसार—**पितरों और सन्तान का वर्त्ताव**—पितर=विद्वान् अध्यापक जैसे श्रेष्ठ विद्यार्थी की कामना करता हुआ अपने पास रखकर, विद्यादि गुणों से प्रदीप्त करता है, वैसे ही माता-पितादि सन्तान को उत्तम गुणों से प्रदीप्त किया करें।

और जैसे अच्छे विद्यार्थी विद्वान् अध्यापक का भोज्य पदार्थादि से श्रद्धा से सन्मान करते हैं, वैसे ही सन्तान भी अपने पितरों की सेवा किया करें ॥ १९ । ७० ॥

शङ्खः । **इन्द्रः=सेनेशः** । गायत्री । षड्जः ॥

अथ सेनेशः कीदृशः स्यादित्याह ॥

अब सेनापति कैसा हो, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अपां फेनेन नमुचेः शिर ऽ इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥ ७१ ॥

पदार्थः—(**अपाम्**) जलानाम् (**फेनेन**) वर्द्धनेन (**नमुचेः**) योऽपः स्वस्वरूपं न मुञ्चति तस्य मेघस्य (**शिरः**) घनाकारमुपरिभागम् (**इन्द्र**) सूर्य इव वर्त्तमान सेनेश (**उत्**) (**अवर्तयः**) ऊर्ध्वं वर्त्तय (**विश्वाः**) अखिलाः (**यत्**) याः (**अजयः**) जय (**स्पृधः**) याः स्पर्द्धन्ते ताः शत्रुसेनाः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! यथा सूर्योऽपां फेनेन नमुचेर्मेघस्य शिरश्छिनत्ति तथैव त्वं स्वकीयाः सेना उदवर्त्तयो यद्या विश्वाः स्पृधः सन्ति ता अजयः ॥ ७१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र सूर्य इव वर्त्तमान सेनेश ! **यथा सूर्योऽपां** जलानां **फेनेन** वर्द्धनेन **नमुचेः=मेघस्य** योऽपः स्वस्वरूपं न मुञ्चति तस्य मेघस्य शिरः घनाकारमुपरिभागं **छिनत्ति, तथैव त्वं स्वकीयाः सेना उदवर्त्तय** ऊर्ध्वं वर्त्तय, **यद्=या विश्वा** अखिलाः **स्पृधः** याः स्पर्द्धन्ते ताः शत्रुसेनाः **सन्ति, ता अजयः** जय ॥ १९ । ७१ ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्वी सेनापते । जैसे सूर्य—(अपाम्) जलों को (फेनेन) बढ़ाने से (नमुचेः) जल-स्वरूप को न छोड़ने वाले बादल के (शिरः) घनाकार उपरि भाग का छेदन करता है, वैसे तू—अपनी सेनाओं को (उदवर्त्तय) उन्नत कर, (यत्) जो (विश्वाः) सब (स्पृधः) स्पर्द्धा करने वाली शत्रु-सेनाएँ हैं उन्हें (अजयः) जीत ॥ १९ । ७१ ॥

[हे इन्द्र ! **यथा सूर्योऽपां फेनेन नमुचेः=मेघस्य शिरश्छिनत्ति, तथैव त्वं स्वकीयाः सेना उदवर्त्तय**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा—सूर्येणाच्छादितोऽपि मेघः पुनः पुनरुत्तिष्ठति तथैव ते शत्रवोऽपि पुनः पुनरुत्थानं कुर्वन्ति । ते यावत् स्वं बलं न्यूनं परेषामधिकं च पश्यन्ति तावच्छान्ता वर्तन्ते ॥ १९ । ७१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे सूर्य से आच्छादित किया हुआ भी बादल बार-बार उठता है वैसे ही वे शत्रु भी बार-बार उठते हैं । वे जब तक अपने बल को कम और दूसरों के बल को अधिक देखते हैं तब तक शान्त रहते हैं ॥ १९ । ७१ ॥

भाष्यसार—**१. सेनापति कैसा हो ?**—जो इन्द्र=सूर्य के समान तेजस्वी, अपने बल को बढ़ाकर शत्रुओं का विदारण करने में समर्थ और स्पर्द्धा करने वाली शत्रुओं की सेनाओं को जीतने वाला हो, वह सेनापति बनने योग्य है ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा वाचक इवादि पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे सूर्य मेघ का छेदन करता है, वैसे ही सेनापति शत्रु-सेना का विनाश करे ॥ १९ । ७१ ॥

शङ्खः । **सोमः**=ऐश्वर्यवान्, प्रेरको जनः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

के मुक्तिमाप्नुवन्तीत्याह ॥

कौन पुरुष मुक्ति को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सोमो राजामृतꣳ सुत ऽ ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

पदार्थः—(**सोमः**) ऐश्वर्यवान् प्रेरकः (**राजा**) देदीप्यमानः (**अमृतम्**) अमृतात्मकं ब्रह्म ओषधेः सारं वा (**सुतः**) (**ऋजीषेण**) सरलभावेन (**अजहात्**) जह्यात् (**मृत्युम्**) (**ऋतेन**) सत्येन-ब्रह्मणा (**सत्यम्**) सत्सु साधु (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गम् (**विपानम्**) विविधं पानं यस्मात् तत् (**शुक्रम्**) आशु कार्य्यकरम् (**अन्धसः**) अन्नस्य (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियम्**) धनम् (**इदम्**) जलम् । **इदमित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥** (**पयः**) दुग्धम् (**अमृतम्**) एतत्स्वरूपमानन्दम् (**मधु**) क्षौद्रम् ॥ १९ । ७२ ॥

प्रमाणार्थ—(**इदम्**) जलम् । यह पद निघं० (१ । १२) में उदक (**जल**) नामों में पठित है ॥

अन्वयः—य ऋतेनान्धसः सत्यं विपानं शुक्रमिन्द्रियमिन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु च सङ्गृह्णीयात्सोऽमृतं प्राप्तः सन् सुतस्सोमो राजर्जीषेण मृत्युमजहात् ॥ १९ । ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः ऋतेन** सत्येन ब्रह्मणा **अन्धसः** अन्नस्य **सत्यं** सत्सु साधु **विपानं** विविधं पानं यस्मात् तत्, **शुक्रम्** आशु कार्यकरम् **इन्द्रियम्** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गम्, **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **इन्द्रियं** धनम्, **इदं** जलं **पयः** दुग्धम् **अमृतम्** एतत्स्वरूपमानन्दं **मधु** क्षौद्रं **च सङ्गृह्णीयात्, सोऽमृतम्** अमृतात्मकं ब्रह्म ओषधेः सारं वा **प्राप्तः सन् सुतस्सोमः** ऐश्वर्यवान् प्रेरकः **राजा** देदीप्यमानः **ऋजीषेण** सरलभावेन **मृत्युमजहात्** जह्यात् ॥ ७२ ॥

भाषार्थ—जो (ऋतेन) सत्य ब्रह्म के संग से—(अन्धसः) अन्न के (सत्यम्) सज्जनों में श्रेष्ठ माने हुए (विपानम्) विविध प्रकार के पान, (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने वाले स्वभाव, (इन्द्रियम्) इन्द्र=जीव के लक्षण, (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के (इन्द्रियम्) धन, (इदम्) जल, (पयः) दूध, (अमृतम्) इस ब्रह्म के स्वरूप आनन्द और (मधु) मधु को ग्रहण करता है; वह (अमृतम्) अमृत-आत्मक ब्रह्म वा ओषधि-रस को प्राप्त होकर—(सुतः) उत्पन्न (सोमः) ऐश्वर्यवान् प्रेरक (राजा) देदीप्यमान राजा (ऋजीषेण) सरल-भाव से (मृत्युम्) मृत्यु दुःख को (अजहात्) छोड़ता है ॥ १९ । ७२ ॥

[य ऋतेन'''अमृतं सङ्गृह्णीयात्, सोऽमृतं प्राप्तः सन्'''ऋजीषेण मृत्युमजहात्]

भावार्थः—ये सुशीलेन विद्वत्सङ्गात् सर्वाणि शुभलक्षणानि प्राप्नुवन्ति, ते मृत्युदुःखं हित्वा मोक्ष-सुखं गृह्णन्ति ॥ १९ । ७२ ॥

भावार्थ—जो सुशील होकर विद्वानों के संग से सब शुभ लक्षणों को प्राप्त करते हैं, वे मृत्यु-दुःख को छोड़ कर मोक्ष-सुख को ग्रहण करते हैं ॥ १९ । ७२ ॥

भा० पदार्थः—ऋतेन=विद्वत्संगेन । अमृतम्=मोक्षसुखम् । संगृह्णीयात्=गृह्णाति । मृत्युम्=मृत्युदुःखम् ॥

भाष्यसार—**मुक्ति कैसे प्राप्त होती है ?**—जब मनुष्य ऋतेन=विद्वानों की संगति से पवित्र आहार करता है, ओषधियों के रस के सेवन से नीरोग रहता है, श्रेष्ठ पुरुषों के सङ्ग से छल-कपटादि से रहित होकर ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को जान लेता है, विद्यादि गुणों से राजा=प्रकाशमान होकर सोमः=ऐश्वर्यवान् हो जाता है, तब वह मृत्यु दुःख से छूटकर मुक्ति को प्राप्त करता है ॥ १६ । ७२ ॥

शङ्खः । **आङ्गिरसः**=विद्वान् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

के जना विज्ञानमाप्नुवन्तीत्याह ॥

कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानंꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७३ ॥

पदार्थः—(**अद्भ्यः**) जलेभ्यः (**क्षीरम्**) दुग्धम् (**वि**) (**अपिबत्**) पिबेत् (**क्रुङ्**) यथा पक्षी अल्पमल्पं पिबति तथा (**आङ्गिरसः**) आङ्गिरसा=विदुषा कृतो विद्वान् (**धिया**) कर्मणा (**ऋतेन**) यथार्थेन=योगाभ्यासेन (**सत्यम्**) अविनश्वरम् (**इन्द्रियम्**) दिव्यां वाचम् (**विपानम्**) विविधशब्दार्थ-सम्बन्धयुक्ताम् (**शुक्रम्**) पवित्राम् (**अन्धसः**) अन्नादियोगात् (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्ययुक्तस्य (**इन्द्रियम्**) दिव्यं श्रोत्रम् (**इदम्**) प्रत्यक्षम् (**पयः**) रसम् (**अमृतम्**) रोगनाशकम् (**मधु**) मधुरम् ॥ ७३ ॥

अन्वयः—य आङ्गिरसो धियाऽद्भ्यः क्षीरं क्रुङ् व्यपिबत्स ऋतेनेन्द्रस्यान्धसः सकाशादिदं सत्यं विपानं शुक्रमिन्द्रियं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं च प्राप्नुयात् ॥ ७३ ॥

सपदार्थान्वयः—य आङ्गिरसः आङ्गिरसा=विदुषा कृतो विद्वान् **धिया** कर्मणा **अद्भ्यः** जलेभ्यः **क्षीरं** दुग्धं **क्रुङ्** यथा पक्षी अल्पमल्पं पिबति तथा **व्यपिबत्** पिबेत्, **स ऋतेन** यथार्थेन योगाभ्यासेन **इन्द्रस्य** परमैश्वर्ययुक्तस्य **अन्धसः** अन्नादियोगात् **सकाशादिदं** प्रत्यक्षं **सत्यम्** अविनश्वरं **विपानं** विविधशब्दार्थसम्बन्धयुक्तां **शुक्रं** पवित्राम् **इन्द्रियं** दिव्यां वाचं, **पयः** रसम् **अमृतं** रोगनाशकं **मधु** मधुरम्, **इन्द्रियं** दिव्यं श्रोत्रं **च प्राप्नुयात्** ॥ १६ । ७३ ॥

भाषार्थ—जो (आङ्गिरसः) अङ्गिरा=विद्वान् के द्वारा बनाया हुआ विद्वान् (धिया) कर्म के द्वारा (अद्भ्यः) जलों से (क्षीरम्) दूध का (क्रुङ्) जैसे पक्षी थोड़ा-थोड़ा पान करता है वैसे (व्यपिबत्) पान करता है (सः) वह (ऋतेन) यथार्थ योगाभ्यास से (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य से युक्त पुरुष के (अन्धसः) अन्न आदि से (इदम्) इस (सत्यम्) अविनाशी (विपानम्) विविध शब्द, अर्थ, सम्बन्ध से युक्त (शुक्रम्) पवित्र (इन्द्रियम्) दिव्य वाणी को, (पयः) रस, (अमृतम्) रोगनाशक पदार्थ, (मधु) मधु और (इन्द्रियम्) दिव्य श्रोत्र को प्राप्त करता है ॥ १६ । ७३ ॥

[य आङ्गिरसः ··· क्षीरं क्रुङ् व्यपिबत्, स ऋतेन सत्यम् इन्द्रियं—प्राप्नुयात्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा

ये सत्याऽऽचरणैर्वैद्यकशास्त्रविधानात् युक्ताहार-विहारं कुर्वन्ति ते सत्यं बोधं विज्ञानञ्च यान्ति ॥ १९ । ७३ ॥

अलंकार है ॥ जो सत्य आचरणों से वैद्यक शास्त्र की विधि से युक्त आहार-विहार करते हैं वे सत्य बोध और विज्ञान को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । ७३ ॥

भा० पदार्थः—ऋतेन=सत्याऽऽचरणेन । इन्द्रियम्=बोधं विज्ञानं च ।

भाष्यसार—**१. विज्ञान की प्राप्ति का उपाय**—जो मनुष्य विज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं, वे आङ्गिरसः=विद्वान् वैद्यों के द्वारा निर्दिष्ट विधि से दूधादि पदार्थों का, रोगनाशक ओषधियों का और पौष्टिक अन्नादि पदार्थों का सदा सेवन करें । और ऋतेन=सत्याचरण के द्वारा ही विविध ऐश्वर्य का संग्रह करें । इस प्रकार नीरोगी मनुष्य ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर ही विज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे क्रुङ्=पक्षी जलादि धीरे-धीरे पीते हैं, वैसे ही मनुष्य आहारादि शनैः शनैः ही करें ॥ १९ । ७३ ॥

शङ्खः । **सोमः=सोमलतादिमहौषधिसारः** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

कौन पुरुष विज्ञान को प्राप्त होते हैं, यह फिर उपदेश किया है ॥

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत् ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

पदार्थः—(**सोमम्**) सोमलतादिमहौषधिसारम् (**अद्भ्यः**) सुसंस्कृतेभ्यो जलेभ्यः (**वि**) (**अपिबत्**) (**छन्दसा**) स्वच्छन्दतया (**हंसः**) यो हन्ति दुःखानि सः (**शुचिषत्**) यः पवित्रेषु विद्वत्सु सीदति सः (**ऋतेन**) सत्येन=वेदविज्ञानेन (**सत्यम्**) सत्सु=परमेश्वरादिपदार्थेषु साधु (**इन्द्रियम्**) प्रज्ञानम् (**विपानम्**) विविधरक्षान्वितम् (**शुक्रम्**) शुद्धिकरम् (**अन्धसः**) सुसंस्कृतस्यान्नस्य (**इन्द्रस्य**) योगजन्यस्य परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियम्**) जीवेन जुष्टम् (**इदम्**) प्रत्यक्षप्रत्ययालम्बम् (**पयः**) उत्तमरसम् (**अमृतम्**) मोक्षम् (**मधु**) मधुविद्यासमन्वितम् ॥ १९ । ७४ ॥

अन्वयः—यः शुचिषद्धंसो विवेकी जनश्छन्दसाऽद्भ्यः सोमं व्यपिबत्स ऋतेनाऽन्धसो दोषनिवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियमिन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाप्तुमर्हति स एवाखिलानन्दं प्राप्नोति ॥ १९ । ७४ ॥

सपदार्थान्वयः—यः **शुचिषद्** यः पवित्रेषु विद्वत्सु सीदति सः, हंसः=**विवेकी जनः** यो हन्ति दुःखानि सः, **छन्दसा** स्वच्छन्दतया **अद्भ्यः** सुसंस्कृतेभ्यो जलेभ्यः **सोमं** सोमलतादिमहौषधिसारं **व्यपिबत्, स ऋतेन** सत्येन वेदविज्ञानेन **अन्धसः** सुसंस्कृतस्यान्नस्य **दोषनिवर्तकं शुक्रं** शुद्धिकरं **विपानं** विविधरक्षान्वितं **सत्यं** सत्सु=परमेश्वरादि-पदार्थेषु साधु **इन्द्रियं** प्रज्ञानम्, **इन्द्रस्य** योगजन्यस्य

भाषार्थ—जो (शुचिषद्) पवित्र विद्वानों में बैठने वाला, (हंसः) दुःखों का हनन करने वाला विवेकी पुरुष—(छन्दसा) स्वच्छन्दता से (अद्भ्यः) सुगन्धित जलों से (सोमम्) सोमलता आदि महौषधियों के सार का (व्यपिबत्) विविध प्रकार से पान करता है; वह (ऋतेन) सत्य वेद-विज्ञान से (अन्धसः) सुगन्धित अन्न के दोष निवारक, (शुक्रम्) शुद्धिकारक, (विपानम्) विविध रक्षा से युक्त गुण,

परमैश्वर्यस्य **प्रापकमिदं** प्रत्यक्षप्रत्ययालम्बं **पयः** उत्तमरसम्, **अमृतं** मोक्षं, **मधु** मधुविद्यासमन्वितम् **इन्द्रियं** जीवेन जुष्टं **चाप्तुमर्हति, स एवाखिलानन्दं प्राप्नोति** ॥ १९ । ७४ ॥

(सत्यम्) परमेश्वर आदि पदार्थों में श्रेष्ठ सत् पदार्थ, (इन्द्रियम्) प्रकृष्ट ज्ञान, (इन्द्रस्य) योगजन्य परम ऐश्वर्य के प्रापक (इदम्) इस प्रत्यक्ष ज्ञान के आलम्बन, (पयः) उत्तम रस, (अमृतम्) मोक्ष, (मधु) मधु-विद्या और (इन्द्रियम्) जीव से सेवन करने योग्य शुभ कर्म को प्राप्त कर सकता है वही अखिल आनन्द को प्राप्त करता है ॥ १९ । ७४ ॥

[यः···सोमं व्यपिबत्, स ऋतेन···सत्यमिन्द्रियं, इन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं···चाप्तुमर्हति स एवाखिलानन्दं प्राप्नोति]

भावार्थः—ये युक्ताहारविहारा, वेदानधीत्य, योगमभ्यस्या, ऽविद्यादिक्लेशान् निवर्त्य, योगसिद्धीः प्राप्य, तदभिमानमपि विहाय कैवल्यमाप्नुवन्ति ते ब्रह्मानन्दं भुञ्जते ॥ १९ । ७४ ॥

भावार्थ—जो युक्त आहार-विहार करने वाले लोग वेदों को पढ़कर, योगाभ्यास करके, अविद्या आदि क्लेशों को हटाकर, योग सिद्धियों को प्राप्त करके, उनके अभिमान को छोड़कर, कैवल्य को प्राप्त करते हैं, वे ब्रह्मानन्द को भोगते हैं ॥ १९ । ७४ ॥

भा० पदार्थः—अमृतम्=कैवल्यम् ॥

भाष्यसार—**विज्ञान-प्राप्ति का उपाय**—जो मनुष्य शुचिषद्=पवित्र विद्वानों की संगति करता है हंसः=दुःखों से बचने के लिए विवेक से कार्य करता है, अपने पवित्र आहार में ओषधियों के सार-भूत पदार्थों को ग्रहण करता है, वेद-विज्ञान के द्वारा शरीर के लिए हितकारक पवित्र अन्नादि का युक्ताहार करता है, और सत्य स्वरूप परमेश्वर का प्रकष्ट ज्ञान करता है, वह संसार के पदार्थों का विशेष ज्ञान कर सकता है ॥ १९ । ७४ ॥ ●

शङ्खः । **प्रजापतिः**=**राजा** । भुरिगति जगती । निषादः ॥

कथं राज्यमुन्नेयमित्याह ॥

कैसे राज्य की उन्नति करनी चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(**अन्नात्**) यवादेः (**परिस्रुतः**) सर्वतः स्रुतः=पक्वात् (**रसम्**) सारभूतम् (**ब्रह्मणा**) अधीतचतुर्वेदेन (**वि**) (**अपिबत्**) गृह्णीयात् (**क्षत्रम्**) क्षत्रियकुलम् (**पयः**) दुग्धमिव (**सोमम्**) ऐश्वर्ययुक्तम् (**प्रजापतिः**) प्रजापालकः सभेशो राजा (**ऋतेन**) विद्याविनययुक्तेन न्यायेन (**सत्यम्**) सत्सु=व्यवहारेषु साधु (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण दत्तम् (**विपानम्**) विविधं पानं=रक्षणं यस्मात् तत् (**शुक्रम्**) वीर्यकरम् (**अन्धसः**) अन्धकाररूपस्याऽन्यायस्य निवर्तकम् (**इन्द्रस्य**) समग्रैश्वर्यप्रदस्य राज्यस्य (**इन्द्रियम्**) इन्द्रै राजभिर्जुष्टं न्यायाऽऽचरणम् (**इदम्**) (**पयः**) पातुमर्हम् (**अमृतम्**) अमृतमिव सुखप्रदम् (**मधु**) माधुर्यगुणोपेतम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—यो ब्रह्मणा सह प्रजापतिः परिस्रुतोऽन्नान्निःसृतं पयः सोमं रसं क्षत्रं च व्यपिबत्

स ऋतेनाऽन्धसो निवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियमिन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं च प्राप्नुयात् स सदा सुखी भवेत् ॥ ७५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो ब्रह्मणा** अधीतचतुर्वेदेन **सह प्रजापतिः** प्रजापालकः सभेशो राजा **परिस्रुतः** सर्वतः स्रुतः=पक्वात् **अन्नाद्** यवादेः **निःसृतं पयः** दुग्धमिव **सोमम्** ऐश्वर्ययुक्तं **रसं** सारभूतं **क्षत्रं** क्षत्रियकुलं **च व्यपिबत्** गृह्णीयात्, **स ऋतेन** विद्याविनययुक्तेन न्यायेन **अन्धसः** अन्धकाररूपस्याऽन्यायस्य **निवर्त्तकं शुक्रं** वीर्यकरं **विपानं** विविधं पानं=रक्षणं यस्मात् तत् **सत्यं** सत्सु व्यवहारेषु साधु **इन्द्रियम्** इन्द्रेणेश्वरेण दत्तम् **इन्द्रस्य** समग्रैश्वर्यप्रदस्य राज्यस्य **प्रापकमिदं पयः** पातुमर्हम् **अमृतम्** अमृतमिव सुखप्रदं **मधु** माधुर्यगुणोपेतम् **इन्द्रियम्** इन्द्रै राजभिर्जुष्टं न्यायाऽऽचरणं **च प्राप्नुयात्, स सदा सुखी भवेत्** ॥ १९ । ७५ ॥

भाषार्थ—जो (ब्रह्मणा) चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के साथ (प्रजापतिः) प्रजा का पालक सभापति राजा—(परिस्रुतः) सब ओर से पके हुए (अन्नात्) यव=जौ आदि अन्न से निकले हुए (पयः) दूध के समान पदार्थ, (सोमम्) ऐश्वर्य से युक्त पदार्थ, (रसम्) सारभूत पदार्थ और (क्षत्रम्) क्षत्रियकुल को (व्यपिबत्) ग्रहण करता है; वह—(ऋतेन) विद्या और विनय से युक्त न्याय से (अन्धसः) अन्धकार रूप अन्याय के निवर्त्तक पुरुष, (शुक्रम्) वीर्य को उत्पन्न करने वाले पदार्थ, (विपानम्) विविध प्रकार के रक्षण, (सत्यम्) सद्व्यवहारों में श्रेष्ठ पुरुष, (इन्द्रियम्) इन्द्र=ईश्वर से प्रदत्त पदार्थ, (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्य के प्रदाता राज्य के प्रापक पुरुष, (इदम्) इस (पयः) पेय दूध, (अमृतम्) अमृत के समान सुखदायक पदार्थ, (मधु) माधुर्य गुण से युक्त पदार्थ और (इन्द्रिय) इन्द्र=राजाओं से सेवित न्यायाचरण को प्राप्त करता है, वह सदा सुखी होता है ॥ १९ । ७५ ॥

[यो ब्रह्मणा सह प्रजापतिः ···क्षत्रं···व्यपिबत् स ऋतेनान्धसो निवर्तकम् ··· इन्द्रियं चाप्नुयात्]

भावार्थः—ये विद्वदनुमत्या राज्यं वर्द्धितुमिच्छन्ति तेऽन्यायं निवर्तयितुं, राज्यं वर्द्धयितुं च शक्नुवन्ति ॥ १९ । ७५ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाना चाहते हैं वे अन्याय को हटाने और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं ॥ १९ । ७५ ॥

भा० पदार्थः—ब्रह्मणा=विद्वदनुमत्या । क्षत्रम्=राज्यम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है ··· 'शुक्रमन्धसः' । ६ । शुक्र ··· ॥ ग्रहों के वाचक नहीं । अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े हैं ॥ सत्यार्थप्रकाश समु० ११ ॥

(ख) (क्षत्रं) जो राजकर्म अथवा क्षत्रिय है वह सदा न्याय से (ब्रह्मणा) वेदवित् पुरुषों के साथ मिलकर ही राज्यपालन करे । इसी प्रकार (पयः) जो अमृतरूप (सोमम्) सोमलता आदि ओषधियों का सार तथा (रसम्) जो बुद्धि, आनन्द, शूरता, धीरज, बल और पराक्रम आदि उत्तम गुणों का बढ़ाने वाला है, उनको (व्यपिबत्) जो राजपुरुष अथवा प्रजास्थ लोग वैद्यकशास्त्र की रीति से पीते हैं वे सभासद् और प्रजास्थ मनुष्य लोग (ऋतेन) वेदविद्या को यथावत् जान के (सत्यम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (इन्द्रियम्) शुद्धविद्यायुक्त शान्तस्वरूप मन (विपानम्) यथावत् प्रजा का रक्षण (शुक्रम्) शीघ्र सुख करनेहारा (अन्धसः) शुद्ध अन्न की इच्छायुक्त (पयः) सब पदार्थों का सार विज्ञान सहित (अमृतम्) मोक्ष के ज्ञानादि साधन (मधु) मधुरवाणी और शीलता आदि जो श्रेष्ठ गुण हैं, उन सबसे परिपूर्ण होकर (इन्द्रस्य)

परमैश्वर्ययुक्त व्यापक ईश्वर की कृपा से (इन्द्रियम्) विज्ञान को प्राप्त होते हैं; (प्रजापतिः) इसलिए परमेश्वर सब मनुष्यों और राजपुरुषों को आज्ञा देता है कि तुम लोग पूर्वोक्त व्यवहार और विज्ञान-विद्या को प्राप्त होके धर्म से प्रजा का पालन किया करो और (अन्नात्परिस्रुतः) उक्त अमृत स्वरूप रस को उत्तम भोजन के पदार्थों के साथ मिलाकर सेवन किया करो कि जिससे प्रजा में पूर्ण सुख की सिद्धि हो ।। ऋग्वेदादि० ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः ।।

भाष्यसार—**राजा राज्य की उन्नति कैसे करे**—चारों वेदों के विद्वानों की अनुमति से कार्य करने वाला जो राजा पूर्ण पके हुए जौ आदि अन्नों के सार-भूत तत्त्व का सेवन करके शारीरिक और आत्मिक शक्तियों को प्राप्त कर लेता है, वह ऋतेन=विद्या, विनय तथा न्याय के द्वारा अविद्या तथा अन्याय को दूर कर सकता है। वह राजा सद्व्यवहारों को बढ़ाता है और राज्य के समग्र ऐश्वर्य-प्रद पदार्थों को बढ़ाकर राज्य की उन्नति करने में समर्थ होता है । १९ । ७५ ।।

शङ्खः । **इन्द्रः**=**जीवः** । भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ।।

शरीरात्कथं वीर्य्यमुत्पद्यत इत्याह ।।

शरीर से वीर्य्य कैसे उत्पन्न होता है, इस विषय का उपदेश किया है ।।

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृत ऽ उल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(रेतः) वीर्यम् (**मूत्रम्**) प्रस्रावः (**वि**) (**जहाति**) (**योनिम्**) जन्मस्थानम् (**प्रविशत्**) प्रवेशं कुर्वत् सत् (**इन्द्रियम्**) उपस्थः=पुरुषलिङ्गम् (**गर्भः**) यो गृह्यते सः (**जरायुणा**) बहिराच्छादनेन (**आवृतः**) (**उल्वम्**) आवरणम् (**जहाति**) त्यजति (**जन्मना**) प्रादुर्भावेन (**ऋतेन**) बहिस्थेन वायुना सह (**सत्यम्**), वर्त्तमाने साधु (**इन्द्रियम्**) जिह्वादिकम् (**विपानम्**) विविधं पानं येन तत् (**शुक्रम्**) पवित्रम् (**अन्धसः**) आवरणस्य (**इन्द्रस्य**) जीवस्य (**इन्द्रियम्**) धनम् (**इदम्**) (**पयः**) रसवत् (**अमृतम्**) नाशरहितम् (**मधु**) येन मन्यते तत् ।। १९ । ७६ ।।

अन्वयः—इन्द्रियं योनिं प्रविशत्सद् रेतो विजहाति । अतोऽन्यत्र मूत्रं विजहाति । तज्जरायुणावृतो गर्भो जायते जन्मनोल्वं जहाति स ऋतेनान्धसो निवर्तकं विपानं शुक्रं सत्यमिन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चैति ।। १९ । ७६ ।।

सपदार्थान्वयः—**इन्द्रियम्** उपस्थः= पुरुषलिङ्गं **योनिं** जन्मस्थानं **प्रविशत्** प्रवेशं कुर्वत् **सद् रेतः** वीर्यं **विजहाति, अतोऽन्यत्र मूत्रं** प्रस्रावः **विजहाति** ।

तज्जरायुणा बहिराच्छादनेन **आवृतो गर्भः** यो गृह्यते सः **जायते, जन्मना** प्रादुर्भावेन **उल्वम्** आवरणं **जहाति** ।

भाषार्थ—(इन्द्रियम्) उपस्थ अर्थात् पुरुष का लिङ्ग (योनिम्) योनि में (प्रविशत्) प्रविष्ट होकर (रेतः) वीर्य को (विजहाति) छोड़ता है, इससे अन्यत्र (मूत्रम्) मूत्र को (विजहाति) छोड़ता है ।

वह वीर्य—(जरायुणा) बाह्य आच्छादन जरायु से (आवृतः) आच्छादित (गर्भः) गर्भ उत्पन्न होता है, (जन्मना) जन्म से (उल्वम्) आवरण को (जहाति) छोड़ देता है ।

स ऋतेन बहिस्थेन वायुना सह **अन्धसः** आवरणस्य **निवर्तकं विपानं** विविधं पानं येन तत् **शुक्रं** पवित्रं **सत्यं** वर्त्तमाने साधु **इन्द्रस्य** जीवस्य **इन्द्रियं** जिह्वादिकम् **इदं पयः** रसवत् **अमृतं** नाशरहितं **मधु** येन मन्यते तद् **इन्द्रियं** धनम् **चैति** ॥ १९ । ७६ ॥

वह—(ऋतेन) बाह्य वायु के साथ (अन्धसः) आवरण को हटाने वाले पदार्थ, (विपानम्) विविध प्रकार के पान, (शुक्रम्) पवित्रता, (सत्यम्) वर्त्तमान में श्रेष्ठ पदार्थ, (इन्द्रस्य) जीव के (इन्द्रियम्) जिह्वा आदि इन्द्रिय, (इदम्) इस (पयः) रसीले पदार्थ, (अमृतम्) नाश रहित अमृत (मधु) मधु और (इन्द्रियम्) धन को प्राप्त करता है ॥ ७६ ॥

[इन्द्रियं योनिं प्रविशत् सद् रेतो विजहाति, अतोऽन्यत्र मूत्रं विजहाति]

भावार्थः—प्राणिना यत् किंचिद् भुज्यते तत् परम्परया शुक्रं भूत्वा शरीरकारणं जायते। पुरुषस्योपस्थेन्द्रियं स्त्रीसंयोगेन शुक्रं मुञ्चति, अतोऽन्यत्र मूत्रं त्यजति, तेन ज्ञायते शरीरे मूत्रस्थानादन्यत्र रेतस्तिष्ठति।

भावार्थ—प्राणी जो कुछ खाता है वह परम्परा से शुक्र=वीर्य बनकर शरीर का कारण बनता है। पुरुष का उपस्थ इन्द्रिय स्त्री-संग से वीर्य को छोड़ता है, इससे अन्यत्र मूत्र को छोड़ता है, इससे ज्ञात होता है कि शरीर में मूत्र-स्थान से अन्यत्र वीर्य स्थित है।

[तज्जरायुणावृतो गर्भो जायते'''इन्द्रस्येन्द्रियं'''चैति]

तद् यस्मात् सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य उत्पद्यते तस्मात् सर्वाङ्गाकृतिर्जायते। अत एव यस्य शरीराद् वीर्यमुत्पद्यते तदाकृतिरेव सन्तानो जायते ॥ १९ । ७६ ॥

वह वीर्य क्योंकि सब अङ्गों से उत्पन्न होता है अतः सब अङ्गों की आकृति वाला होता है। इस लिए ही जिसके शरीर से वीर्य उत्पन्न होता है उसकी आकृति वाला सन्तान उत्पन्न होता है ॥ १९ । ७६ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रियम्=पुरुषस्योपस्थेन्द्रियम्। रेतः=शुक्रम्, शरीरकारणम् ॥

विनियोग—'रेतो मूत्रं०'······इन ९ मन्त्रों से नव आज्य और मोहन भोग की आहुति दें॥ संस्कारविधि गर्भाधान० ॥

भाष्यसार—**वीर्योत्पत्ति का वर्णन**—इन्द्रः=जीव जो पयः=रसीले पदार्थ और मधु आदि पदार्थ भोगता है, उसका सारभूत तत्त्व वीर्य कहलाता है। पवित्र भोजन से पवित्र शुक्र की उत्पत्ति होती है। और यह शुक्र ही सन्तान के शरीरादि का कारण है ॥ १९ । ७६ ॥

शङ्खः। **प्रजापतिः**=**ईश्वर**। अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

अथ धर्माधर्मौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

अब धर्म अधर्म कैसे हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(**दृष्ट्वा**) संप्रेक्ष्य (**रूपे**) निरूपिते (**वि**) (**आ**) (**अकरोत्**) करोति (**सत्यानृते**) सत्यं चानृतं च ते (**प्रजापतिः**) प्रजायाः पालकः (**अश्रद्धाम्**) अप्रीतिम् (**अनृते**) अविद्यमानमृतं यस्मिँस्त-

स्मिन्नधर्मे (**अदधात्**) दधाति (**श्रद्धाम्**) श्रत्=सत्यं दधाति यया ताम् (**सत्ये**) सत्सु भवे (**प्रजापतिः**) परमेश्वरः (**ऋतेन**) यथार्थेन (**सत्यम्**) (**इन्द्रियम्**) चित्तम् (**विपानम्**) विविधरक्षणम् (**शुक्रम्**) शुद्धिकरम् (**अन्धसः**) अधर्माऽऽचरणस्य नाशकम् (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवतो धर्मस्य प्रापकम् (**इन्द्रियम्**) विज्ञानसाधकम् (**इदम्**) (**पयः**) सुखप्रदम् (**अमृतम्**) मृत्युरोगात् पृथक्करम् (**मधु**) मन्तव्यम् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—यः प्रजापतिर्ऋतेन स्वकीयेन सत्येन विज्ञानेन सत्यानृते रूपे दृष्ट्वा व्याकरोत् योऽनृतेऽश्रद्धामदधात् सत्ये श्रद्धां च यश्चाऽन्धसो निवर्तकं शुक्रं विपानं सत्यमिन्द्रियं यश्चेन्द्रस्य प्रापकमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाऽदधात् स एव प्रजापतिः सर्वैरुपासनीयः ॥ ७७ ॥

सपदार्थान्वयः—यः प्रजापतिः प्रजायाः पालकः **ऋतेन**=**स्वकीयेन सत्येन विज्ञानेन** यथार्थेन **सत्यानृते** सत्यं चानृतं च ते **रूपे** निरूपिते **दृष्ट्वा** संप्रेक्ष्य **व्याकरोत्** करोति, **योऽनृते** अविद्यमानमृतं यस्मिँस्तस्मिन्नधर्मे **अश्रद्धाम्** अप्रीतिम् **अदधात्** दधाति, **सत्ये** सत्सु भवे **श्रद्धां** श्रत्=सत्यं दधाति यया तां **च**।

यश्चाऽन्धसः अधर्माऽऽचरणस्य **निवर्तकं, शुक्रं** शुद्धिकरं **विपानं** विविधरक्षणं **सत्यमिन्द्रियं** चित्तं, **यश्चेन्द्रस्य** परमैश्वर्यवतो धर्मस्य **प्रापकमिदं पयः** सुखप्रदम् **अमृतं** मृत्युरोगात् पृथक्करं **मधु** मन्तव्यम् **इन्द्रियं** विज्ञानसाधकं **चाऽदधात्** दधाति, **स एव प्रजापतिः** परमेश्वरः **सर्वैरुपासनीयः** ॥ १९ । ७७ ॥

भाषार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक ईश्वर—(ऋतेन) अपने सत्य विज्ञान से (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) रूपों को (दृष्ट्वा) देखकर (व्याकरोत्) उत्पन्न करता है; जो (अनृते) ऋत=सत्य से रहित अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति को (अदधात्) धारण करता है और (सत्ये) सत्पुरुषों में विद्यमान सत्य में (श्रद्धाम्) सत्य को धारण कराने वाली प्रीति को धारण करता है।

और जो—(अन्धसः) अधर्माचरण को हटाने वाले पुरुष, (शुक्रम्) शुद्धिकारक पदार्थ, (विपानम्) विविध प्रकार की रक्षा, (सत्यम्) सत्य, (इन्द्रियम्) चित्त को, और जो—(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् धर्म के प्रापक पुरुष, (इदम्) इस (पयः) सुखप्रद दूध, (अमृतम्) मृत्युरोग से पृथक् करने वाले मोक्ष, (मधु) मन्तव्य और (इन्द्रियम्) विज्ञान-साधक इन्द्रिय को (अदधात्) धारण करता है; वही (प्रजापतिः) परमेश्वर सबका उपासनीय है ॥७७॥

[यः प्रजापतिर्ऋतेन ··· सत्यानृते रूपे दृष्ट्वा व्याकरोत्]

भावार्थः—ये मनुष्या ईश्वराज्ञापितं धर्ममाचरन्ति, अधर्मं न सेवन्ते ते सुखं लभन्ते। यदीश्वरो धर्माऽधर्मौ न ज्ञापयेत् तर्हि तयोः स्वरूपविज्ञानं कस्यापि न स्यात्।

भावार्थ—जो मनुष्य ईश्वर से आज्ञा किए हुए धर्म का आचरण करते हैं, अधर्म का सेवन नहीं करते वे सुखको प्राप्त करते हैं। यदि ईश्वर धर्म और अधर्म को न बतलावे तो इनके स्वरूप का विज्ञान किसी को भी न हो।

[योऽनृतेऽश्रद्धामदधात् सत्ये श्रद्धां च]

य आत्मानुकूलमाचरणं कुर्वन्ति प्रतिकूलं च त्यजन्ति ते हि धर्माधर्मबोधयुक्ता भवन्ति; नेतरे ॥ १९ । ७७ ॥

जो आत्मा के अनुकूल आचरण करते हैं और प्रतिकूल को छोड़ देते हैं वे ही धर्म-अधर्म के बोध से युक्त होते हैं; अन्य नहीं ॥ १९ । ७७ ॥

भा० पदार्थः—सत्यानृते=धर्माधर्मौ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) (प्रजापतिः) सकल सृष्टि का उत्पत्ति और पालन करने हारा सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, न्यायकारी, अद्वितीय, स्वामी, परमात्मा (सत्यानृते) सत्य और अनृत (रूपे) भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले धर्म-अधर्म को (दृष्ट्वा) अपनी सर्वज्ञता से यथावत् देखके (व्याकरोत्) भिन्न-भिन्न निश्चित करता है (अनृते) मिथ्याभाषणादि अधर्म में (अश्रद्धाम्) अप्रीति करो और (प्रजापतिः) वही परमात्मा (सत्ये) सत्यभाषण आदि लक्षणयुक्त न्याय पक्षपात रहित धर्म में तुम्हारी (श्रद्धाम्) प्रीति को (अदधात्) धारण कराता है, वैसा ही तुम करो ॥ संस्कारविधि गृहाश्रम० ॥

(ख) (दृष्ट्वा०) इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति परमेश्वर जो सब जगत् का स्वामी अर्थात् मालिक है, वह सब मनुष्यों के लिए धर्म का उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को सब प्रकार से सब काल में सत्य में ही प्रीति करनी चाहिए, असत्य में कभी नहीं (प्रजापतिः) सब प्रजा का अध्यक्ष जो ईश्वर है सो (सत्याऽनृते) सत्य जो धर्म और असत्य जो अधर्म है जिनके प्रकट और गुप्त लक्षण हैं (व्याकरोत्) उनको ईश्वर ने अपनी सर्वज्ञ विद्या के ठीक-ठीक विचार से देख के सत्य और झूठ को अलग-अलग किया है सो इस प्रकार से हैं कि (अश्रद्धाम०) हे मनुष्य लोगो ! तुम सब दिन अनृत अर्थात् झूठ=अन्याय के करने में (अश्रद्धाम्) अर्थात् प्रीति कभी मत करो, वैसा ही (श्रद्धाम्) सत्य अर्थात् जो वेदशास्त्रोक्त और जिसकी प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परीक्षा की गई हो, वा की जाय, वही पक्षपात से अलग न्यायरूप धर्म है; उसके आचरण में सब दिन प्रीति रखो। और जो-जो तुम लोगों के लिए मेरी आज्ञा है, उस-उस में अपनी आत्मा, प्राण और मन को सब पुरुषार्थ तथा कोमल स्वभाव से युक्त करके सदा सत्य ही में प्रवृत्त करो ॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदोक्तधर्मविषयः ॥

भाष्यसार—**ईश्वर की उपासना क्यों करें ?**—प्रजापतिः=ईश्वर अपने सत्य वैदिक विज्ञान से सत्य और असत्य का स्वरूप बतलाता है। वह असत्य कार्यों में अप्रीति और सत्य कार्यों में प्रीति उत्पन्न कराता है। वह अन्धसः=अधर्माचरण से पृथक् रहने वाले को विविध ऐश्वर्य और भोज्य अन्नादि पदार्थों को प्रदान करता है। और वह मृत्यु-रोग से बचाकर मोक्ष-सुख का दाता है अतः सबका उपासनीय है ॥ १९ । ७७ ॥ ●

शङ्खः । **प्रजापतिः**=**प्रजापालको जीवः (वेदवित्)** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ वेदज्ञाः कीदृशा इत्युपदिश्यते ॥

अब वेद के जानने वाले कैसे होते हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

वेदे॑न रू॒पे व्य॑पिबत्सुतासु॒तौ प्र॒जाप॑तिः ।
ऋ॒तेन॑ स॒त्यमि॑न्द्रि॒यं वि॒पान॑ꣳ शु॒क्रमन्ध॑स॒ ऽ इन्द्र॑स्येन्द्रि॒यमि॒दं पयो॒ऽमृतं॒ मधु॑ ॥ ७८ ॥

पदार्थः—(वेदेन) ईश्वरप्रकाशितेन वेदचतुष्टयेन (**रूपे**) सत्यानृतस्वरूपे (**वि**) (**अपिबत्**) गृह्णीयात् (**सुतासुतौ**) प्रेरिताप्रेरितौ धर्माधर्मौ (**प्रजापतिः**) प्रजापालको जीवः (**ऋतेन**) सत्यविज्ञानयुक्तेन (**सत्यम्**) सत्सु=धर्माचरणेषु साधु (**इन्द्रियम्**) धनम् (**विपानम्**) विविधपाननिमित्तम् (**शुक्रम्**) पराक्रमप्रदम् (**अन्धसः**) अन्नादेः (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्ययुक्तस्य=जीवस्य (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण दत्तं ज्ञानम् (**इदम्**) जलादि (**पयः**) दुग्धादि (**अमृतम्**) मृत्युधर्मरहितं विज्ञानम् (**मधु**) माधुर्यगुणोपेतम् ॥ १९ । ७८ ॥

अन्वयः—यः प्रजापतिर्ऋतेन वेदेन सुतासुतौ रूपे व्यपिबत् स इन्द्रस्यान्धसो विपानं शुक्रं सत्यमिन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियं चाप्नुयात् ॥ १९ । ७८ ॥

सपदार्थान्वयः—यः **प्रजापतिः** प्रजापालको जीवः **ऋतेन** सत्यविज्ञानयुक्तेन **वेदेन** ईश्वरप्रकाशितेन वेदचतुष्टयेन **सुतासुतौ** प्रेरिताप्रेरितौ=धर्माधर्मौ **रूपे** सत्यानृतस्वरूपे **व्यपिबत्** गृह्णीयात् **स इन्द्रस्य** ऐश्वर्ययुक्तस्य जीवस्य **अन्धसः** अन्नादेः **विपानं** विविधपाननिमित्तं **शुक्रं** पराक्रमप्रदं **सत्यं** सत्सु=धर्माचरणेषु साधु **इन्द्रियं** धनम् **इदं** जलादि**पयः** दुग्धादि **अमृतं** मृत्युधर्मरहितं विज्ञानं **मधु** माधुर्यगुणोपेतम् **इन्द्रियम्** इन्द्रेणेश्वरेण दत्तं ज्ञानं **चाप्नुयात्** ॥ १९ । ७८ ॥

भाषार्थ—जो (प्रजापतिः) प्रजा का पालक जीव (ऋतेन) सत्य विज्ञान से युक्त, (वेदेन) ईश्वर-प्रकाशित चार वेदों से (सुतासुतौ) धर्म और अधर्म के (रूपे) सत्य और अनृत स्वरूप को (व्यपिबत्) ग्रहण करता है, वह--(इन्द्रस्य) ऐश्वर्य से युक्त जीव के (अन्धसः) अन्न आदि के (विपानम्) विविध प्रकार के पान, (शुक्रम्) पराक्रम के प्रदाता वीर्य, (सत्यम्) धर्माचरणों में श्रेष्ठ कर्म, (इन्द्रियम्) धन, (इदम्) जल आदि, (पयः) दूध आदि, (अमृतम्) मृत्यु-धर्म से रहित विज्ञान, (मधु) मधुर गुण से युक्त पदार्थ और (इन्द्रियम्) इन्द्र=ईश्वर से प्रदत्त ज्ञान को प्राप्त होता है ॥ १९ । ७८ ॥

[यः प्रजापतिर्ऋतेन वेदेन सुतासुतौ रूपे व्यपिबत्०…]

भावार्थः—वेदविद एव धर्माधर्मौ ज्ञातुं धर्माचरणेनाऽधर्मत्यागेन च सुखिनो भवितुं शक्नुवन्ति ॥ १९ । ७८ ॥

भावार्थ—वेद के ज्ञाता ही धर्म-अधर्म को जानने और धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी हो सकते हैं ॥ १९ । ७८ ॥

भाष्यसार—**प्रजापति कैसे बनता है?**--जो मनुष्य वेद का ज्ञान प्राप्त करके सुतासुतौ=धर्म और अधर्म के स्वरूप को, सत्य और असत्य के निर्णय को जान लेता है, वह पवित्राचरण करने से अमृत=दुःखों से छूट जाता है और ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर प्रजापति बन जाता है ॥ १९ । ७८ ॥

शङ्खः । **प्रजापतिः**=**प्रजायाः स्वामी** । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

कीदृग्जनो बलमुन्नेतुं शक्नोतीत्याह ॥

कैसा जन बल बढ़ा सकता है, इस विषय का उपदेश किया है ॥

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः ।
ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

पदार्थः—(**दृष्ट्वा**) पर्यालोच्य (**परिस्रुतः**) सर्वतः प्राप्तः (**रसम्**) विद्यानन्दम् (**शुक्रेण**) शुद्धेन भावेन (**शुक्रम्**) शीघ्रं सुखकरम् (**वि**) (**अपिबत्**) पिबेत् (**पयः**) पातुमर्हम् (**सोमम्**) महौषधिरसम् (**प्रजापतिः**) प्रजायाः स्वामी (**ऋतेन**) यथार्थेन (**सत्यम्**) सतीष्वोषधीषु भवम् (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेण=विदुषा जुष्टम् (**विपानम्**) विशिष्टेन पानेन युक्तम् (**शुक्रम्**) वीर्यवत् (**अन्धसः**) संस्कृतस्यान्नादेः (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियम्**) इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टम् (**इदम्**) (**पयः**) सुरसम् (**अमृतम्**) मृत्युनिमित्तरोगनिवारकम् (**मधु**) ज्ञातं सत् ॥ १९ । ७९ ॥

अन्वयः—यः परिस्रुतः प्रजापतिर्ऋतेन सत्यं दृष्ट्वा शुक्रेण शुक्रं पयः सोमं रसं व्यपिबत् सोऽन्धसः प्रापकं विपानं शुक्रमिन्द्रियमिन्द्रस्येदं पयोऽमृतं मध्विन्द्रियञ्च प्राप्नुयात् ॥ १९ । ७९ ॥

सपदार्थान्वयः—यः परिस्रुतः सर्वतः प्राप्तः **प्रजापतिः** प्रजायाः स्वामी **ऋतेन** यथार्थेन **सत्यं** सतीष्वोषधीषु भवं **दृष्ट्वा** पर्यालोच्य **शुक्रेण** शुद्धेन भावेन **शुक्रं** शीघ्रं सुखकरं **पयः** पातुमर्हं **सोमं** महौषधिरसं **रसं** विद्यानन्दं **व्यपिबत्** पिबेत्, **सोऽन्धसः** संस्कृतस्यान्नादेः **प्रापकं** **विपानं** विशिष्टेन पानेन युक्तं **शुक्रं** वीर्यवत् **इन्द्रियम्** इन्द्रेण=विदुषा जुष्टम् **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **इदं पयः** सुरसम् **अमृतं** मृत्युनिमित्तरोगनिवारकं **मधु** ज्ञातं सत् **इन्द्रियम्** इन्द्रेणेश्वरेण सृष्टं **च प्राप्नुयात्** ॥ १९ । ७९ ॥

भाषार्थ—जो (परिस्रुतः) सब ओर प्राप्त, (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी—(ऋतेन) यथार्थता से (सत्यम्) ओषधियों में विद्यमान तत्त्व को (दृष्ट्वा) देखकर (शुक्रेण) शुद्ध होने से (शुक्रम्) शीघ्र सुखकारी पदार्थ, (पयः) पेय दूध, (सोमम्) महौषधियों के रस और (रसम्) विद्या के आनन्द को (व्यपिबत्) पीता है, वह—(अन्धसः) शुद्ध अन्न आदि के प्रापक पुरुष, (विपानम्) विशिष्ट पान से युक्त पदार्थ, (शुक्रम्) बलकारी पदार्थ, (इन्द्रियम्) इन्द्र=विद्वान् से सेवित पदार्थ, (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य वाले पुरुष के (इदम्) इस (पयः) उत्तम रस, (अमृतम्) मृत्यु के निमित्त रोगों के निवारक ओषध, (मधु) ज्ञान और (इन्द्रियम्) इन्द्र=ईश्वर के रचे जगत् को प्राप्त करता है ॥ १९ । ७९ ॥

[यः···प्रजापतिर्ऋतेन···सोमं रसं व्यपिबत्, सो···शुक्रमिन्द्रियं···च प्राप्नुयात्]

भावार्थः—यो वैद्यकशास्त्ररीत्योत्तमानोषधिरसान्निर्माय यथाकालं यथायोग्यं पिबेत्, स रोगेभ्यः पृथग् भूत्वा शरीरात्मबलं वर्द्धयितुं शक्नुयात् ॥ १९ । ७९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से उत्तम ओषधिरसों का निर्माण करके यथासमय, यथायोग्य पान करता है, वह रोगों से पृथक् होकर शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा सकता है ॥ १९ । ७९ ॥

भा० पदार्थः—ऋतेन=यथाकालं यथायोग्यम् । सोमम्=उत्तममोषधिरसम् । शुक्रम्=शरीरबलम् । इन्द्रियम्=आत्मबलम् ॥

भाष्यसार—**प्रजापति कैसा बनता है ?**—प्रजा का स्वामी बनने के लिए आवश्यक है कि वह आत्मिक और शारीरिक बलों से सम्पन्न हो । इसके लिए शीघ्र गुण करने वाले ओषधियों के रसों का सेवन करके और पवित्र तथा पौष्टिक अन्नादि पदार्थों से नीरोग होकर बलवान् होवे और विद्वानों के अनुसार आचरण करके ऐश्वर्य की प्राप्ति करे ॥ १९ । ७९ ॥

शङ्खः । **सविता**=**विद्याव्यवहारेषु प्रेरको विद्वान्** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वद्वदन्यैराचरणीयमित्याह ॥

विद्वानों के तुल्य अन्यों को भी आचरण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ऽ ऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति ।
अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्वती॒न्द्रस्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥ ८० ॥

पदार्थः—(सीसेन) सीसकधातुपात्रेणेव (तन्त्रम्) कुटुम्बधारणमिव तन्त्रकलानिर्माणम् (मनसा) अन्तःकरणेन (मनीषिणः) मेधाविनः (ऊर्णासूत्रेण) ऊर्णाकम्बलेनेव (कवयः) विद्वांसः (वयन्ति)

निर्मिमते (**अश्विना**) विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ (**यज्ञम्**) संगन्तुमर्हं व्यवहारम् (**सविता**) विद्याव्यवहारेषु प्रेरकः (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**रूपम्**) स्वरूपम् (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**भिषज्यन्**) चिकित्सुः सन् ॥ ८० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा कवयो मनीषिणः सीसेनोर्णसूत्रेण मनसा तन्त्रं वयन्ति यथा सविता सरस्वत्यश्विना च यज्ञं कुरुतो यथा भिषज्यन् वरुण इन्द्रस्य रूपं विदधाति तथा यूयमप्याचरत ॥ ८० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथा-कवयः** विद्वांसः **मनीषिणः** मेधाविनः **सीसेन** सीसकधातुपात्रेणेव **ऊर्णसूत्रेण** ऊर्णाकम्बलेनेव **मनसा** अन्तःकरणेन **तन्त्रं** कुटुम्बधारणमिव तन्त्रकलानिर्माणं **वयन्ति** निर्मिमते, **यथा-सविता** विद्याव्यवहारेषु प्रेरकः **सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानयुक्ता **स्त्री** **अश्विना** विद्याव्याप्तावध्यापकोपदेशकौ **च यज्ञं** सङ्गन्तुमर्हं व्यवहारं **कुरुतः**; **यथा-भिषज्यन्** चिकित्सुः सन् **वरुणः** श्रेष्ठः **इन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **रूपं** स्वरूपं **विदधाति तथा यूयमप्याचरत** ॥ १९ । ८० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(कवयः) विद्वान् (मनीषिणः) मेधावी लोग—(सीसेन) सीसक धातु के पात्र के समान, (ऊर्णसूत्रेण) ऊन के कम्बल के समान (मनसा) अन्तःकरण से (तन्त्रम्) कुटुम्ब के धारण पोषण के तुल्य तन्त्रकला का (वयन्ति) निर्माण करते हैं; जैसे—(सविता) विद्या-व्यवहारों में विद्वान् (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त स्त्री और (अश्विना) विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक (यज्ञम्) संगन्तव्य व्यवहार करते हैं; जैसे—(भिषज्यन्) चिकित्सा का इच्छुक (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के (रूपम्) स्वरूप को धारण करता है वैसे तुम भी आचरण करो ॥ १९ । ८० ॥

[हे मनुष्याः ! यथा—**कवयः**—**सीसेनोर्णसूत्रेण—तन्त्रं वयन्ति**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा विद्वांसोऽनेकैर्धातुभिः साधनविशेषैर्वस्त्रादीनि निर्माय कुटुम्बं पालयन्ति,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे विद्वान् लोग अनेक धातुओं एवं साधन-विशेषों से वस्त्र आदि बनाकर कुटुम्ब का पालन करते हैं,

[**अश्विना च यज्ञं कुरुतः, भिषज्यन् वरुणः—रूपं विदधाति तथा यूयमप्याचरत**]

यज्ञं च कृषत्वौषधानि च दत्त्वा ऽरोगयन्ति, शिल्पक्रियाभिः प्रयोजनानि साध्नुवन्ति; तथाऽन्यैरप्यनुष्ठेयम् ॥ १९ । ८० ॥

और यज्ञ करके तथा औषध देकर रोग-निवारण करते हैं, शिल्प क्रियाओं से प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं, वैसे अन्य पुरुष भी आचरण करें ॥ १९ । ८० ॥

भा० पदार्थः—सीसेन=अनेकधातुभिः । ऊर्णसूत्रेण=साधनविशेषेण । भिषज्यन्=औषधानि दत्त्वाऽरोगयन् ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् पुरुषों का आचरण**—कवयः=विद्वान् पुरुष और अश्विना=अध्यापक तथा उपदेशक मेधा-सम्पन्न होकर इस प्रकार का आचरण बनावें, जो सविता=दूसरों को प्रेरणा करने वाला हो । अपने परिवार और समाज निर्वाह के लिए प्रशस्त-विज्ञान प्राप्त करके सीसकादि धातुओं से और ऊनादि से विविध प्रकार के जीवनोपयोगी साधनों का आविष्कार करें । यज्ञ=अपने संगमनीय व्यवहार से विविध ऐश्वर्यों को प्राप्त करके जीवन को सुखी बनावें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक इवादि पद के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है—सीसक और ऊर्णा (ऊन) की तरह विविध साधन बनावे ॥ १९ । ८० ॥

शङ्खः । **वरुणः=विद्वान्** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

के यज्ञमर्हन्तीत्याह ॥

कौन पुरुष यज्ञ करने योग्य हैं, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तद॑स्य रू॒पम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वताः॑ सꣳर॒रा॒णाः ।
लोमा॑नि॒ शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भि॒स्त्वग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥ ८१ ॥

पदार्थः—(**तत्**) पूर्वोक्तं सत्यादिकम् (**अस्य**) यज्ञस्य (**रूपम्**) स्वरूपम् (**अमृतम्**) नाशरहितम् (**शचीभिः**) प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा (**तिस्रः**) अध्यापकाऽध्येतृपरीक्षकाः (**दधुः**) दध्युः (**देवताः**) देवा=विद्वांसः (**संरराणा**) सम्यग्दातारः (**लोमानि**) रोमाणि (**शष्पैः**) दीर्घैर्लोमभिः (**बहुधा**) बहुप्रकारैः (**न**) (**तोक्मभिः**) बालकैः (**त्वक्**) (**अस्य**) (**मांसम्**) (**अभवत्**) भवेत् (**न**) निषेधार्थे (**लाजाः**) ॥ १९ । ८१ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यं संरराणास्तिस्रो देवताः शचीभिर्बहुधा यं यज्ञं शष्पैः सह लोमानि च दधुस्तदस्यामृतं रूपं यूयं विजानीत । अयं तोक्मभिर्नानुष्ठेयः । अस्य मध्ये त्वङ्मांसं लाजा वा हविर्ना भवदिति च वित्त ॥ १९ । ८१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यं संरराणाः** सम्यग्दातारः **तिस्रः** अध्यापकाऽध्येतृपरीक्षकाः **देवताः** देवाः=विद्वांसः **शचीभिः** प्रज्ञाभिः कर्मभिर्वा **बहुधा** बहुप्रकारैः **यं यज्ञं शष्पैः** दीर्घैर्लोमभिः **सह लोमानि** रोमाणि **च दधुः** दध्युः, **तत्** पूर्वोक्तं सत्यादिकम् **अस्य** यज्ञस्य **अमृतं** नाशरहितं **रूपं** स्वरूपं **यूयं विजानीत ।**

अयं तोक्मभिः बालकैः **न अनुष्ठेयः । अस्य** यज्ञस्य **मध्ये त्वङ्मांसं लाजा वा हविर्नाभवद्** भवेद् **इति च वित्त** ॥ १९ । ८१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिसको (संरराणाः) उत्तम रीति से दान करने वाले (तिस्रः) तीन—अध्यापक, छात्र और परीक्षक (देवताः) देव=विद्वान्, (शचीभिः) प्रज्ञा वा कर्मों के द्वारा (बहुधा) बहुत प्रकार से जिस यज्ञ को (शष्पैः) दीर्घ लोमों के साथ (लोमानि) लघु रोमों को (दध्युः) धारण करते हैं, (तत्) उस पूर्वोक्त सत्य आदि को (अस्य) इस यज्ञ का (अमृतं) नाश रहित (रूपम्) स्वरूप तुम समझो ।

यह यज्ञ (तोक्मभिः) बालकों से (न) अनुष्ठान करने योग्य नहीं है। (अस्य) इस यज्ञ के मध्य में (त्वक्) त्वचा, (मांसम्) मांस, वा (लाजाः) भूना हुआ सूखा अन्न होम के योग्य (न, अभवत्) नहीं है, ऐसा भी जानो ॥ १९ । ८१ ॥

[हे मनुष्याः !···तिस्रो देवता···यं यज्ञं शष्पैः सह लोमानि च दधुः, तदस्यामृतं रूपं यूयं विजानीत अयं तोक्मभिर्नानुष्ठेयः]

भावार्थः—ये दीर्घसमयावधि जटिला ब्रह्मचारिणो वा पूर्णविद्या जितेन्द्रिया भद्रा जनाः सन्ति, त एव यजधातोरर्थं ज्ञातुमर्हन्ति, न बाला अविद्वांसो वा ।

भावार्थ—जो दीर्घकाल से जटिल अथवा ब्रह्मचारी लोग—पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय, श्रेष्ठ पुरुष हैं, वे ही 'यज' धातु के अर्थ को जान सकते हैं; बालक वा अविद्वान् नहीं ।

[अस्य मध्ये त्वङ्मांसं लाजा वा हविर्नाभवदिति च वित्त]

स होमाख्यो यज्ञो, यत्र मांसक्षाराम्लतिक्त-गुणादिरहितं किन्तु सुगन्धिपुष्टमिष्टं रोगनाशकादि-गुणसहितं हविः स्यात्, तदेव होतव्यं च स्यात् ॥ १६ । ८१ ॥

वह होम नामक यज्ञ है जिसमें मांस, क्षार, अम्ल, तिक्त आदि गुणों से रहित किन्तु सुगन्धित, पुष्टि, मधुर, रोगनाशक आदि गुणों से युक्त हवि दी जाती है। और सुगन्धि आदि गुणों से युक्त उक्त पदार्थ ही होम के योग्य हैं ॥ १६ । ८१ ॥

भाष्यसार—पूर्ण विद्वान् ही यज्ञ के कर्ता हैं—जो विद्वान् मनुष्य उत्तम रीति से दान कर सकते हैं, वे देवताः=दिव्य गुण वाले पुरुष ही अमृत-स्वरूप यज्ञ को कर सकते हैं। जो तोक्म=बालक (अल्पायु) हैं, उन्हें यज्ञ का अधिकार नहीं और यज्ञ में त्वचा, मांसादि दुर्गन्ध करने वाले और भूने हुए अन्नों से यज्ञ कभी न करें ॥ १६ । ८१ ॥ ●

शङ्खः । **अश्विनौ=विद्याव्यापिनौ वैद्यौ** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विदुषीभिः किं कर्त्तव्यमित्याह ॥

विदुषी स्त्रियों को क्या करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम् ।
अस्थि॑ म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॒ त्व॒चि ॥ ८२ ॥

पदार्थः—(तत्) पूर्वोक्तं हविः (**अश्विना**) विद्याव्यापिनौ (**भिषजा**) वैद्यकशास्त्रविदौ (**रुद्रवर्तनी**) रुद्रस्य=प्राणस्य वर्तनिरिव वर्त्तनिर्मार्गो ययोस्तौ (**सरस्वती**) प्रशस्तज्ञानयुक्ता पत्नी (**वयति**) सन्तनोति (पेशः) (**अन्तरम्**) मध्यस्थम् (**अस्थि**) (**मज्जानम्**) (**मासरैः**) परिपक्वौषधिसंस्रावैः (**कारोतरेण**) कूपेनेव । कारोतर इति कूपनामसु० ॥ निघं० ३ । २३ ॥ (**दधतः**) धरतः (**गवाम्**) पृथिव्यादीनाम् (**त्वचि**) उपरि भागे ॥ ८२ ॥

प्रमाणार्थ—(**कारोतर**) कूपेनेव । 'कारोतर' यह पद निघं० (३-२३) में कूप-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—यत्सरस्वती वयति तत्पेशोऽस्थि मज्जानमन्तरं मासरैः कारोतरेण गवां त्वचि रुद्रवर्त्तनी भिषजाऽश्विना दधतो दध्याताम् ॥ ८२ ॥

सपदार्थान्वयः—यत् **सरस्वती** प्रशस्तज्ञानयुक्ता पत्नी **वयति** सन्तनोति **तत्** पूर्वोक्तं हविः **पेशोऽस्थि मज्जानमन्तरं** मध्यस्थं **मासरैः** परिपक्वौषधिसंस्रावैः **कारोतरेण** कूपेनेव **गवां** पृथिव्यादीनां **त्वचि** उपरि भागे **रुद्रवर्तनी** रुद्रस्य=प्राणस्य वर्तनिरिव वर्त्तनिर्मार्गो ययोस्तौ **भिषजा** वैद्यकशास्त्रविदौ **अश्विना** विद्याव्यापिनौ **दधतः**=**दध्यातां** धरतः ॥ १६ । ८२ ॥

भाषार्थ—जिसे (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान से युक्त पत्नी (वयति) विस्तृत करती है (तत्) उस पूर्वोक्त हवि को, (पेशः) सुन्दर रूप, (अस्थि) हड्डी (मज्जानम्) मज्जा और (अन्तरम्) शरीर के मध्य में स्थित अन्य अवयव को (मासरैः) परिपक्व ओषधिरसों से—(कारोतरेण) कूए के समान (गवाम्) पृथिवी आदि के (त्वचि) उपरि भाग में—(रुद्रवर्तनी) रुद्र=प्राण के मार्ग के समान मार्ग वाले (भिषजा) वैद्यक-शास्त्र के वेत्ता (अश्विनौ) दो विद्वान् (दधतः) धारण करें ॥ १६ । ८२ ॥

[सरस्वती'''पेशोऽस्थि मज्जानमन्तरं—भिषजाऽश्विना दधतो=दध्याताम्]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा वैद्यकशास्त्रविदः पतयः शरीरारोग्यादिकं विधाय स्त्रियः सततं सुखयेयुस्तथैव विदुष्यः स्त्रियः स्वपतीन् रोगरहितान् कुर्युः ॥ १९ । ८२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे वैद्यक-शास्त्र के वेत्ता पति लोग शरीर-आरोग्य आदि को सिद्ध करके स्त्रियों को सदा सुखी रखें वैसे ही विदुषी स्त्रियाँ अपने पति लोगों को रोग-रहित करें ॥ १९ । ८२ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=विदुषी स्त्री । दधतः=सुखयेताम्/रोगरहितं कुर्याताम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् वैद्य का कर्त्तव्य**—भिषजा, अश्विना=वैद्यक शास्त्र के वेत्ता वैद्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे शरीरस्थ प्राण के मार्गों को अच्छी प्रकार जानकर रोगों की निवृत्ति के लिए ओषधिरसों से त्वचा, अस्थि आदि शरीरावयवों को धारण करने योग्य बनावें । ऐसे ही प्रशस्त ज्ञानवाली स्त्रियाँ भी करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पदों के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि पृथिवीस्थ कूपों के समान शरीरस्थ रोम-कूपों को स्वस्थ रक्खें ॥ १९ । ८२ ॥

शङ्खः । **सरस्वती**=**विदुषी** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

विद्वद्वदितरैराचरणीयमित्याह ॥

विद्वानों के समान अन्यों को आचरण करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(**सरस्वती**) प्रशस्तं सरो=विज्ञानं विद्यते यस्याः सा (**मनसा**) विज्ञानेन (**पेशलम्**) उत्तमाङ्गवत् (**वसु**) द्रव्यम् (**नासत्याभ्याम्**) न विद्यते असत्यं ययोस्ताभ्यां मातापितृभ्याम् (**वयति**) विस्तृणाति (**दर्शतम्**) दर्शनीयम् (**वपुः**) शरीरमुदकं वा । वपुरित्युदकना० ॥ निघं० १ । १२ ॥ (**रसम्**) आनन्दम् (**परिस्रुता**) परितः=सर्वतः स्रुतम् । अत्र सुपां सुलुगित्याकारादेशः (**न**) इव (**रोहितम्**) प्रादुर्भूतम् (**नग्नहुः**) नग्नं=शुद्धं जुहोति=गृह्णाति सः (**धीरः**) ध्यानशीलः (**तसरम्**) तस्यत्युपक्षयति दुःखानि येन तम् (**न**) इव (**वेम**) प्रजनम् ॥ १९ । ८३ ॥

प्रमाणार्थ—(**वपुः**) शरीरमुदकं वा । 'वपु' यह पद निघं० (१ । १२) में उदक (**जल**) नामों में पठित है । (**परिस्रुता**) यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) के इस सूत्र से आकार-आदेश है ॥

अन्वयः—सरस्वती मनसा वेम न यत् पेशलं दर्शतं वपुस्तसरं रोहितं परिस्रुता रसं न वसु वयति नासत्याभ्यां नग्नहुर्धीरश्चाऽस्ति तौ द्वौ वयं प्राप्नुयाम ॥ १९ । ८३ ॥

सपदार्थान्वयः—**सरस्वती** प्रशस्तं सरो=विज्ञानं विद्यते यस्याः सा **मनसा** विज्ञानेन **वेम** प्रजनं **न** इव **यत् पेशलम्** उत्तमाङ्गवत् **दर्शतं** दर्शनीयं **वपुः** शरीरमुदकं वा **तसरं** तस्यत्युपक्षयति दुःखानि येन तं **रोहितं** प्रादुर्भूतं **परिस्रुता** परितः=

भाषार्थ—(सरस्वती) प्रशस्त सर=विज्ञान वाली स्त्री—(मनसा) विज्ञान से (वेम) नवजात के (न) समान जिस (पेशलम्) उत्तम अङ्गों वाले (दर्शतम्) दर्शनीय, (वपुः) शरीर वा जल को तथा—(तसरम्) दुःखनाशक, (रोहितम्)

सर्वतः स्रुतं **रसम्** आनन्दं **न** इव **वसु** द्रव्यं **वयति** विस्तृणाति, **नासत्याभ्यां** न विद्यते असत्यं ययोस्ताभ्यां मातापितृभ्यां **नग्नहुः** नग्नं=शुद्धं जुहोति=गृह्णाति सः **धीरः** ध्यानशीलः **चास्ति, तौ द्वौ वयं प्राप्नुयाम्** ॥ १९ । ८३ ॥

उन्नत, (परिस्रुता) सब ओर से स्रवित (रसम्) आनन्द के समान (वसु) द्रव्य को (वयति) यज्ञ से विस्तृत करती है, और—(नासत्याभ्याम्) असत्य से रहित माता-पिता के साथ (नग्नहुः) शुद्ध द्रव्य को ग्रहण करने वाला (धीरः) धीर पुरुष है, उन दोनों को हम प्राप्त करें ॥ १९ । ८३ ॥

[सरस्वती…रसं न द्रव्यं वयति]

भावार्थः—यथा विद्वांसावध्यापकोपदेशकौ सारं सारं वस्तु गृह्णन्ति तथैव सर्वैः स्त्रीपुरुषैर्ग्राह्यम् ॥ १९ । ८३ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् अध्यापक और उपदेशक सार-सार वस्तु को ग्रहण करते हैं वैसे ही सब स्त्री-पुरुष ग्रहण करें ॥ १९ । ८३ ॥

भाष्यसार—मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करें—जैसे प्रशस्तविज्ञान वाली स्त्री और धीरः=विद्वान् पुरुष तसरम्=दुःखनाशक, उन्नति करने वाले, शुद्ध एवं सारभूत द्रव्यों को ग्रहण करते हैं, वैसे ही अन्य मनुष्य उनका अनुकरण करें ॥ १९ । ८३ ॥ ●

शङ्खः । **सोमः**=शुद्ध वीर्यम् । निचृत् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

स्वकुलं प्रशस्तं कर्त्तव्यमित्याह ॥

अपने कुल को श्रेष्ठ करना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

पय॑सा शु॒क्रम॒मृत॑ञ् ज॒नित्र॒ꣳ सुर॑या॒ मूत्रा॑ज्जनयन्त॒ रेतः॑ ।
अपाम॑तिं दु॒र्म॒तिं बाध॑माना॒ ऽ ऊव॑ध्यं॒ वात॑ꣳ स॒ब्वं॒ तदा॒रात् ॥ ८४ ॥

पदार्थः—(**पयसा**) जलेन दुग्धेन वा (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**अमृतम्**) अल्पमृत्युरोगनिवारकम् (**जनित्रम्**) अपत्यजन्मनिमित्तम् (**सुरया**) सोमलतादिरसेन (**मूत्रात्**) मूत्राधारेन्द्रियात् (**जनयन्त**) उत्पादयेयुः । अत्र लुङ्यडभावः (**रेतः**) वीर्यम् (**अप**) (**अमतिम्**) नष्टा मतिरमतिस्ताम् (**दुर्मतिम्**) दुष्टा चासौ मतिश्च ताम् (**बाधमानाः**) निवर्त्तयन्तः (**ऊवध्यम्**) ऊरू वध्ये येन तत् । **अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति रुलोपः ।** (**वातम्**) प्राप्तम् (**सब्वम्**) समवेतम् । **अत्र सप समवाये धातोरौणादिको वः प्रत्ययः** (**तत्**) (**आरात्**) निकटात् ॥ ८४ ॥

प्रमाणार्थ—(**जनयन्त**) यहाँ लुङ्-लकार में अट्-आगम का अभाव है । (**ऊवध्यम्**) ऊरू वध्ये येन तत् । यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपो वा' इससे रु-लोप है । (**सब्वम्**) यहाँ 'सप समवाये' इस धातु से औणादिक 'व' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—ये विद्वांसोऽमतिं दुर्मतिमपबाधमानाः सन्तो यदूवध्यं वातं सब्वं पयसा सुरयोत्पन्नं मूत्रात् जनित्रममृतं शुक्रं रेतोऽस्ति तदाराज्जनयन्त ते प्रजावन्तो भवन्ति ॥ ८४ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये विद्वांसोऽमतिं** नष्टा मतिरमतिस्तां **दुर्मतिं** दुष्टा चासौ मतिश्च ताम् **अपबाधमानाः** निवर्त्तयन्तः **सन्तो यदूवध्यम्** ऊरू वध्ये येन तत् **वातं** प्राप्तं **सब्वं** समवेतं **पयसा**

भाषार्थ—जो विद्वान् लोग—(अमतिम्) नष्ट हुई मति तथा (दुर्मतिम्) दुष्ट हुई मति को (अप बाधमानाः) हटाते हुए—जो (ऊवध्यम्) ऊरूओं का वध करने वाला, (वातम्) प्राप्त,

जलेन दुग्धेन वा **सुरया** सोमलतादिरसेन **उत्पन्नं मूत्रात्** मूत्राधारेन्द्रियात् **जनित्रम्** अपत्यजन्म-निमित्तम् **अमृतम्** अल्पमृत्युरोगनिवारकं **शुक्रं** शुद्धं **रेतः** वीर्यम् **अस्ति तदारात्** निकटात् **जनयन्त** उत्पादयेयुः, **ते प्रजावन्तो भवन्ति** ॥ १९ । ८४ ॥

(सव्वम्) संयुक्त, (पयसा) जल वा दूध से तथा (सुरया) सोमलता आदि के रस से उत्पन्न, (मूत्रात्) मूलाधार इन्द्रिय से (जन्म) सन्तानोत्पत्ति का निमित्त, (अमृतम्) अल्पायु में मृत्यु-रोग का निवारक, (शुक्रम्) शुद्ध, (रेतः) वीर्य है—उसे (आरात्) निकट से (जनयन्त) बढ़ाते हैं वे प्रजावान् होते हैं ॥ १९ । ८४ ॥

[**ये विद्वांसोऽमतिं दुर्मतिमप बाधमानाः···जनित्रं···रेतो···जनयन्तः, ते प्रजावन्तो भवन्ति**]

भावार्थः—ये दुर्गुणान् दुष्टसङ्गाँस्त्यक्त्वा व्यभिचाराद् दूरे निवसन्तो, वीर्यं वर्द्धयित्वा सन्तानानुत्पादयन्ति ते स्वकुलं प्रशस्तं कुर्वन्ति ॥१९।८४॥

भावार्थ—जो मनुष्य दुर्गुणों एवं दुष्ट-संगों को छोड़कर, व्यभिचार से दूर रहकर, वीर्य को बढ़ाकर सन्तानों को उत्पन्न करते हैं वे अपने कुल को प्रशस्त बनाते हैं ॥ १९ । ८४ ॥

भा० पदार्थः—दुर्मतिम्=दुर्गुणं, दुष्टसङ्गम् । अपबाधमानाः=त्यक्त्वा ।

भाष्यसार—**कुलों की प्रशस्ति का कारण शुद्ध वीर्य है**—अपने कुल को प्रशस्त बनाने के लिए यह आवश्यक है कि सब मनुष्य व्यभिचारादि दोषों से दूर रहकर अमृतम्=अल्पायु में मृत्यु के निवारक, बुद्धि को बढ़ाने वाले, शरीरादि के रक्षक, सन्तानोत्पत्ति के कारण और ओषधियों के सार-भूत वीर्य को सदा बढ़ावें ॥ १९ । ८४ ॥ ●

शङ्खः । **सविता**=**प्रेरकः (सद्वैद्यः)** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

मनुष्यै रोगात् पृथक् भवितव्यमित्याह ॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् रहना चाहिए, इस विषय का उपदेश किया है ॥

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान ।
यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

पदार्थः—**(इन्द्रः)** रोगविच्छेदकः **(सुत्रामा)** यः सुष्ठु त्रायते रोगाच्छरीरं सः **(हृदयेन)** स्वात्मना **(सत्यम्)** यथार्थम् **(पुरोडाशेन)** सुसंस्कृतेनान्नेन **(सविता)** प्रेरकः **(जजान)** जनयति । **अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदम् ।** **(यकृत्)** हृदयाद् दक्षिणे स्थितं मांसपिण्डम् **(क्लोमानम्)** कण्ठनाडिकाम् **(वरुणः)** श्रेष्ठः **(भिषज्यन्)** चिकित्सां कुर्वन् **(मतस्ने)** हृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी **(वायव्यैः)** वायुषु साधुभिर्मार्गैः **(न) (मिनाति)** हिनस्ति **(पित्तम्)** ॥ ८५ ॥

प्रमाणार्थ—**(जजान)** यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सुत्रामा सवितेन्द्रो वरुणो विद्वान् भिषज्यन् सन् हृदयेन सत्यं जजान पुरोडाशेन वायव्यैश्च यकृत् क्लोमानं मतस्ने पित्तं च न मिनाति तथैतत्सर्वं यूयं मा हिंस्त ॥ ८५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा सुत्रामा** यः सुष्ठु त्रायते रोगाच्छरीरं सः **सविता प्रेरकः इन्द्रः** रोगविच्छेदकः **वरुणः** श्रेष्ठः **विद्वान् भिषज्यन्** चिकित्सां कुर्वन् **सन् हृदयेन** स्वात्मना

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(सुत्रामा) रोग से शरीर की उत्तम रीति से रक्षा करने वाला, (सविता) प्रेरक, (इन्द्रः) रोगों का विच्छेदक (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् (भिषज्यन्) चिकित्सा करके

सत्यं यथार्थं **जजान** जनयति, **पुरोडाशेन** सुसंस्कृतेनान्नेन **वायव्यैः** वायुषु साधुभिर्मार्गैः **च यकृत्** हृदयाद् दक्षिणे स्थितं मांसपिण्डं **क्लोमानं** कण्ठनाडिकां **मतस्ने** हृदयोभयपार्श्वस्थे अस्थिनी **पित्तं च न मिनाति** हिनस्ति **तथैतत्सर्वं यूयं मा हिंस्त** ॥८५॥

(हृदयेन) अपने आत्मा से (सत्यम्) यथार्थ=ठीक (जजान) कर देता है और—(पुरोडाशेन) सुगन्धित अन्न से तथा (वायव्यैः) प्राणों में श्रेष्ठ-मार्गों से (यकृत्) हृदय से दक्षिण में स्थित मांस-पिण्ड को (क्लोमानम्) कण्ठ-नाडिका को (मतस्ने) हृदय के दोनों ओर की हड्डियों को और (पित्तम्) पित्त को (न मिनाति) नष्ट नहीं करता, वैसे इन सबको तुम नष्ट मत करो ॥ १९ । ८५ ॥

[···सविता···भिषज्यन् सन् हृदयेन सत्यं जजान, पुरोडाशेन वायव्यैश्च ··· पित्तं च न मिनाति]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ सद्वैद्याः स्वयमरोगा भूत्वाऽन्येषां शारीरं रोगं विज्ञायारोगान् सततं कुर्युः ॥ १९ । ८५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ श्रेष्ठ वैद्य लोग स्वयं नीरोग होकर अन्यों के शरीरस्थ रोग को जानकर उन्हें सदा नीरोग करें ॥ १९ । ८५ ॥

भा० पदार्थः—सविता=सद्वैद्यः ।

भाष्यसार—**१. सद्वैद्य कैसा हो ?**—सुत्रामा=रोगों से रक्षा करने वाला सद्वैद्य इन्द्र=रोगों का समूल विनाश करने वाला हो । चिकित्सा मन लगा कर करे, लोभवश छलादि का आश्रय न करे । संस्कृत अन्न से शरीरावयवों की रक्षा करे । ऐसी कोई औषध न देवे, जिससे हृदयादि मर्म-स्थलों पर आघात पहुँचे ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पद लुप्त हैं अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। सद्वैद्यों की तरह दूसरे मनुष्य भी शरीरादि को स्वस्थ रखकर सुखी रहें ॥ १९ । ८५ ॥ ●

शङ्खः । **सविता**=**प्रेरकः** (सद्वैद्यः) । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

मनुष्यों को रोग से पृथक् रहना चाहिए, यह फिर उपदेश किया है ॥

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः ।
श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

पदार्थः—(**आन्त्राणि**) उदरस्था अन्नपाकाधारा नाडीः (**स्थालीः**) यासु पच्यन्तेऽन्नानि [ताः] (**मधु**) मधुरगुणान्वितमन्नम् (**पिन्वमानाः**) सेवमानाः प्रीतिहेतवः । **पिवि सेवने सेचने च** । (**गुदाः**) गुह्येन्द्रियाणि (**पात्राणि**) यैः पिबन्ति तानि (**सुदुघा**) सुष्ठु सुखेन दुह्यत इति । दुहः **कप् घश्चेति कर्मणि कप्** । (**न**) इव (**धेनुः**) गौः (**श्येनस्य**) (**पत्रम्**) पक्षः (**न**) इव (**प्लीहा**) (**शचीभिः**) प्रज्ञाकर्मभिः (**आसन्दी**) समन्तात् रसप्रापिका (**नाभिः**) शरीरमध्यस्था (**उदरम्**) (**न**) इव (**माता**) ॥ १९ । ८६ ॥

प्रमाणार्थ—(**पिन्वमानाः**) यह 'पिवि सेवने सेचने च' सेवन और सेचन अर्थ वाली धातु का रूप है । (**सुदुघा**) यहाँ 'दुहः कप् घश्च' (३ । २ । ७०) इस सूत्र से कर्म में 'कप्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—युक्तिमता पुरुषेण शचीभिः स्थालीरग्नेरुपरि निधायौषधिपाकान्विधाय तत्र मधु

प्रक्षिप्य भुक्त्वाऽन्त्राणि पिन्वमाना गुदाः पात्राणि भोजनार्थानि सुदुघा धेनुर्न प्लीहा श्येनस्य पत्रं न माता नासन्दी नाभिरुदरं पुष्येत् ॥ ८६ ॥

सपदार्थान्वयः—युक्तिमता पुरुषेण **शचीभिः** प्रज्ञाकर्मभिः **स्थालीः** यासु पचन्तेऽन्नानि [ताः] अग्नेरुपरि निधायौषधिपाकान्विधाय तत्र **मधु** मधुरगुणान्वितमन्नं **प्रक्षिप्य, भुक्त्वाऽन्त्राणि** उदरस्था अन्नपाकाधारा नाडीः **पिन्वमानाः** सेवमानाः प्रीतिहेतवः **गुदाः** गुह्येन्द्रियाणि, **पात्राणि**=**भोजनार्थानि** यैः पिबन्ति तानि **सुदुघा** सुष्ठु सुखेन दुह्यत इति **धेनुः** गौः **न** इव, **प्लीहा श्येनस्य पत्रं** पक्षः **न** इव, **माता न** इव **आसन्दी** समन्तात् रसप्रापिका **नाभिः** शरीरमध्यस्था **उदरं पुष्येत्** ॥८६॥

भाषार्थ—युक्तिमान् पुरुष (शचीभिः) प्रज्ञा और कर्मों से (स्थालीः) अन्न पकाने के पात्रों को अग्नि के ऊपर रख कर ओषधियों का पाक बना कर उनमें (मधु) मधुर गुण से युक्त अन्न डालकर, उनको खाकर, (आन्त्राणि) उदरस्थ अन्न के पाक का आधारभूत नाड़ियों को, (पिन्वमानाः) सेवन एवं प्रीति का हेतु (गुदाः) गुप्त-इन्द्रियों को, (पात्राणि) भोजन के पात्रों को (सुदुघा) सुख से दूध देने वाली (धेनुः) गौ के (न) समान, (प्लीहा) प्लीहा=तिल्ली को (श्येनस्य) बाज के (पत्रम्) पंख के (न) समान, (माता) माता के (न) समान (आसन्दी) सब ओर से रस-प्रापक (नाभिः) नाभि तथा (उदरम्) उदर=पेट को पुष्ट करे ॥ ८६ ॥

[युक्तिमता पुरुषेण'''स्थालीरग्नेरुपरि निधायौषधिपाकान् विधाय तत्र मधु प्रक्षिप्य, भुक्त्वा''''''उदरं पुष्येत्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । ये मनुष्या उत्तमैः सुसंस्कृतैरन्नै रसैः शरीरमरोगीकृत्य प्रयतन्ते तेऽभीष्टं सुखं लभन्ते ॥ १९ । ८६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ जो मनुष्य उतम, सुगन्धित अन्नों एवं रसों से शरीर को नीरोग करके पुरुषार्थ करते हैं वे अभीष्ट सुख को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । ८६ ॥

भाष्यसार—**१. सद्वैद्यों का कर्त्तव्य**—सविता=सब का प्रेरक वैद्य सदा ऐसा प्रयत्न करे कि अपनी कार्य-कुशलता से विभिन्न रोग-निवारक ओषधियों को स्थाली आदि पात्रों में अग्नि पर पकाकर मधु मिलाकर औषध तैयार करे । और शरीरस्थ गुदादि इन्द्रियों, उदरस्थ तिल्ली आदि, उदरस्थ नाड़ियों तथा नाभि आदि के रोगों की चिकित्सा किया करे ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि श्येन (बाज) के आकार वाली तिल्ली और माता-पिता के समान रस प्रापक नाभि के रोगों को दूर करे ॥ १९ । ८६ ॥ ●

शङ्खः । **पितरः**=पालकाः स्त्रीपुरुषाः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

दम्पती कीदृशावित्याह ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों, इस विषय का उपदेश किया है ॥

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भोऽअन्तः ।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधारऽउत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥ ८७ ॥

पदार्थः—(कुम्भः) कलश इव वीर्यादिधातुभिः पूर्णः (वनिष्ठुः) सम्भाजो । अत्र वन सम्भक्तावित्यस्मादौणादिक इष्ठुप् प्रत्ययः । (जनिता) उत्पादकः (शचीभिः) कर्मभिः (यस्मिन्) (अग्रे) पुरा (योन्याम्)

गर्भाधारे (**गर्भः**) (**अन्तः**) अभ्यन्तरे (**प्लाशिः**) यः प्रकृष्टतयाऽश्नुते सः (**व्यक्तः**) विविधाभिः पुष्टिभिः प्रसिद्धः (**शतधारः**) शतशो धारा=वाचो यस्य सः (**उत्सः**) उन्दन्ति यस्मात् स कूप इव (**दुहे**) प्रपूर्तिकरे व्यवहारे (**न**) इव (**कुम्भी**) धान्याधारा (**स्वधाम्**) अन्नम् (**पितृभ्यः**) पालकेभ्यः ॥ १९ । ८७ ॥

प्रमाणार्थ—(**वनिष्ठुः**) यहाँ 'वन सम्भक्तौ' इस धातु से औणादिक 'इष्ठुप्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—यः कुम्भो वनिष्ठर्जनिता प्लाशिर्व्यक्तः शचीभिः शतधार उत्सो दुहे न पुरुषो या च कुम्भीव स्त्री तौ पितृभ्यः स्वधां प्रदद्यातां यस्मिन्नग्रे योन्यामन्तर्गर्भो धीयेत तं सततं रक्षेताम् ॥ १९ । ८७ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः कुम्भः** कलश इव वीर्यादिधातुभिः पूर्णः **वनिष्ठुः** सम्भाजी **जनिता** उत्पादकः **प्लाशिः** यः प्रकृष्टतयाऽश्नुते सः **व्यक्तः** विविधाभिः पुष्टिभिः प्रसिद्धः **शचीभिः** कर्मभिः **शतधारः** शतशो धारा=वाचो यस्य सः **उत्सः** उन्दन्ति यस्मात् स कूप इव **दुहे** प्रपूर्तिकरे व्यवहारे **न** इव **पुरुषो या च कुम्भी** धान्याधारा **इव स्त्री तौ पितृभ्यः** पालकेभ्यः **स्वधाम्** अन्नं **प्रदद्यातां, यस्मिन्नग्रे** पुरा **योन्यां** गर्भाधारे **अन्तः** अभ्यन्तरे **गर्भो धीयेत, तं सततं रक्षेताम्** ॥ १९ । ८७ ॥

भाषार्थ—जो (कुम्भः) कलश के समान वीर्य आदि धातुओं से भरा हुआ, (वनिष्ठुः) सम्भाग करने वाला (जनिता) उत्पादक, (प्लाशिः) उत्तम रीति से प्राप्त होने वाला, (व्यक्तः) विविध पुष्टियों से प्रसिद्ध, (शचीभिः) शुभ कर्मों के कारण (शतधारः) सैकड़ों वाणियों से युक्त, (दुहे) पूर्ति करने वाले व्यवहार में (उत्सः) कूए के (न) समान पुरुष है—और जो (कुम्भी) धान्य रखने के पात्र के समान स्त्री है—वे दोनों (पितृभ्यः) पालक पितर लोगों को (स्वधाम्) अन्न प्रदान करें, जिस व्यवहार में (अग्रे) पहले (योन्याम्) गर्भाधार योनि के (अन्तः) अन्दर गर्भ धारण किया जाता है उसकी सदा रक्षा करें ॥ १९ । ८७ ॥

[यः कुम्भः···प्लाशिः···पुरुषः, या च कुम्भीव स्त्री तौ पितृभ्यः स्वधां प्रदद्याताम्]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । स्त्रीपुरुषौ वीर्यवन्तौ पुरुषार्थिनौ भूत्वा, अन्नादिभिर्विद्वांसं सन्तोष्य,

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । स्त्री-पुरुष—वीर्यवान् तथा पुरुषार्थी होकर, अन्न आदि से विद्वानों को सन्तुष्ट करके,

[योन्यामन्तर्गर्भो धीयेत तं सततं रक्षेताम्]

धर्मेण सन्तानोत्पत्तिं कुर्याताम् ॥ १९ । ८७ ॥

धर्म से सन्तानोत्पत्ति करें ॥ १९ । ८७ ॥

भा० पदार्थः—कुम्भः=वीर्यवान् पुरुषः । प्लाशिः=पुरुषार्थी ! पितृभ्यः=विद्वद्भ्यः । स्वधाम्=अन्नादिकम् ॥

भाष्यसार—१. **पालक स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य**—गृहस्थ प्रवेशार्थी स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे ब्रह्मचर्य व्रतादि के पालन से कुम्भ की तरह वीर्यादि धातुओं से पूर्ण हों, सम्यक् विभाग करने वाले हों, शुभ कर्मों के कारण सैकड़ों प्रकार से उपदेश देने वाले हों, कूप की तरह सद्व्यवहारों, सब कामनाओं को पूरा करने वाले हों और विद्वानों का अन्नादि पदार्थों से पितृभ्यः=विद्वानों तथा माता-पिता का सत्कार करने वाले हों ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। गृहस्थी स्त्री-पुरुष कुम्भ, कूप और धान्यागार के समान हों, यह उपमा है॥ १९। ८७॥

शङ्खः। **सरस्वती**=स्त्री। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

स्त्री पुरुष कैसे हों, इस विषय का फिर उपदेश किया है॥

मुखꣳसदस्य शिर ऽ इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती।
चय्यं न पायुर्भिषगस्य बालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी॥ ८८॥

पदार्थः—(**मुखम्**) (**सत्**) (**अस्य**) पुरुषस्य (**शिरः**) (**इत्**) एव (**सतेन**) उत्तमावयवैर्विभक्तेन शिरसा। सत् इत्युत्तमना०॥ निघं० ३। २९॥ (**जिह्वा**) जुहोति=गृह्णाति यया सा (**पवित्रम्**) शुद्धम् (**अश्विना**) गृहाश्रमव्यवहारव्यापिनौ (**आसन्**) आस्ये (**सरस्वती**) वाणीव ज्ञानवती स्त्री (**चय्यम्**) चयेषु=सान्त्वनेषु भवम्। चय सान्त्वने धातोरच् ततो यत्। (**न**) इव (**पायुः**) रक्षकः (**भिषक्**) वैद्यः (**अस्य**) (**बालः**) बालकः (**वस्तिः**) वासहेतुः (**न**) इव (**शेपः**) उपस्थेन्द्रियम् (**हरसा**) हरति येन तेन बलेन (**तरस्वी**) प्रशस्तं तरो विद्यते यस्य सः॥ ८८॥

प्रमाणार्थ—(**सतेन**) सत् यह पद निघं० (३। २९) में उत्तम-नामों में पठित है। (**चय्यम्**) 'चय सान्त्वने' इस धातु से 'अच्' प्रत्यय और फिर 'यत्' प्रत्यय है॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथा जिह्वा सरस्वती स्त्र्यस्य पत्युः सतेन शिरसा सह शिरः कुर्यादासन् पवित्रं मुखं कुर्यादेवमश्विना द्वाविद्वर्त्तेतां यदस्य पायुर्भिषग् बालो वस्तिः शेपो हरसा तरस्वी भवति स चय्यन्न सद् भवेत्तत्सर्वं यथावत्कुर्यात्॥ ८८॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यथा **जिह्वा** जुहोति=गृह्णाति यया सा **सरस्वती** वाणीव ज्ञानवती स्त्री **अस्य** पुरुषस्य **पत्युः सतेन**=**शिरसा** उत्तमावयवैर्विभक्तेन शिरसा **सह शिरः कुर्याद्**, **आसन्** आस्ये **पवित्रं** शुद्धं **मुखं कुर्याद्**, **एवमश्विना** गृहाश्रमव्यवहारव्यापिनौ **द्वाविद्** एव **वर्त्तेताम्**।

यदस्य पुरुषस्य **पायुः** रक्षकः **भिषग्** वैद्यः **बालः** बालकः **वस्तिः** वासहेतुः **शेपः** उपस्थेन्द्रियं **हरसा** हरति येन तेन बलेन **तरस्वी** प्रशस्तं तरो विद्यते यस्य सः **भवति, स चय्यं** चयेषु=सान्त्वनेषु भवं **न** इव **सद् भवेत्तत्सर्वं यथावत्कुर्यात्**॥ ८८॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—(जिह्वा) ग्रहण करने वाली; (सरस्वती) वाणी के समान ज्ञानवती स्त्री (अस्य) इस (पत्युः) पति के (सतेन) उत्तम अवयवों से विभक्त शिर के साथ (शिरः) शिर को रक्खे, (आस्ये) मुख में (पवित्रम्) शुद्ध मुख को रखे, इस प्रकार (अश्विना) गृहाश्रम के व्यवहार में व्यापक दोनों (इत्) ही रहें।

जो (अस्य) इस पुरुष का (पायुः) रक्षक, (भिषक्) वैद्य, (बालः) बालक, (वस्तिः) निवास और (शेपः) उपस्थ इन्द्रिय (हरसा) बल से (तरस्वी) प्रशस्त तर=वेगवाला होता है, वह (चय्यम्) सान्त्वनाओं में विद्यमान सुख के (न) समान (सत्) श्रेष्ठ हो, उन सबको पुरुष यथावत् सिद्ध करे॥८८॥

[यथा...सरस्वती=स्त्री अस्य पत्युः सतेन=शिरसा सह शिरः कुर्याद् आसन्—मुखं कुर्यात्, एवमश्विनौ द्वाविद् वर्तेताम्]

भावार्थः—स्त्रीपुरुषौ गर्भाधानसमये

भावार्थ—स्त्री-पुरुष गर्भाधान के समय में

परस्पराङ्गव्यापिनौ भूत्वा मुखेन मुखं, चक्षुषा चक्षुः, मनसा मनः, शरीरेण शरीरं चानुसन्धाय गर्भं दध्याताम् ॥

परस्पर अङ्गों में व्यापक होकर, मुख से मुख, आँख से आँख, मन से मन और शरीर से शरीर को जोड़ कर गर्भाधान करें।

[हेतुमाह—]

यतः कुरूपं वक्राङ्गं वाऽपत्यं न स्यात् ॥ ८८ ॥

जिससे कुरूप वा कुटिलाङ्ग सन्तान उत्पन्न न हो ॥ १९ । ८८ ॥

भाष्यसार—**गृहस्थ-धर्म**—अश्विना-गृहाश्रम में रहते हुए स्त्री-पुरुषों को योग्य है कि वे उत्तम तथा स्वस्थ सन्तान के लिए आवश्यक नियमों का पालन करें और सन्तानोत्पत्ति से पूर्व एक मन वाले, समान प्रीति वाले और समान शरीर-वाले रहें। अन्यथा सन्तान कुरूप पैदा होती है ॥ १९ । ८८ ॥ ●

शङ्खः । **अश्विनौ**=**स्त्रीपुरुषौ**। भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री पुरुष कैसे हों, यह फिर उपदेश किया है ॥

अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन।
पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते ॥ ८९ ॥

पदार्थः—(**अश्विभ्याम्**) बहुभोजिभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्याम् (**चक्षुः**) नेत्रम् (**अमृतम्**) अमृतात्मकम् (**ग्रहाभ्याम्**) यौ गृह्णीतस्ताभ्याम् (**छागेन**) अजादिदुग्धेन (**तेजः**) प्रकाशयुक्तम् (**हविषा**) आदातुमर्हेण (**शृतेन**) परिपक्वेन (**पक्ष्माणि**) परिगृहीतान्यन्यानि (**गोधूमैः**) (**कुवलैः**) सुशब्दैः (**उतानि**) संततानि वस्त्राणि (**पेशः**) रूपम् (**न**) इव (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**असितम्**) कृष्णम् (**वसाते**) वसेताम् ॥ ८९ ॥

अन्वयः—यथा ग्रहाभ्यामश्विभ्यां सह कौचिद्विद्वांसौ स्त्रीपुरुषावुतानि पक्ष्माणि वसाते यथा वा भवन्तोऽपि छागेनाऽजादिदुग्धेन शृतेन हविषा सह तेजोऽमृतं चक्षुः कुवलैर्गोधूमैः शुक्रमसितं पेशो न स्वीक्रियेरंस्तथाऽन्ये गृहस्था अपि कुर्य्युः ॥ ८९ ॥

सपदार्थान्वयः—**यथा ग्रहाभ्यां** यौ गृह्णीतस्ताभ्याम् **अश्विभ्यां** बहुभोजिभ्यां स्त्रीपुरुषाभ्यां **सह कौचिद् विद्वांसौ स्त्रीपुरुषावुतानि** सन्ततानि वस्त्राणि **पक्ष्माणि** परिगृहीतान्यन्यानि **वसाते** वसेताम्, **यथा वा भवन्तोऽपि छागेन**=**अजादिदुग्धेन शृतेन** परिपक्वेन **हविषा** आदातुमर्हेण **सह तेजः** प्रकाशयुक्तम् **अमृतम्** अमृतात्मकं **चक्षुः** नेत्रं **कुवलैः** सुशब्दैः **गोधूमैः शुक्रं** शुद्धम् **असितं** कृष्णं **पेशः** रूपं **न** इव **स्वीक्रियेरंस्तथाऽन्ये गृहस्था अपि कुर्य्युः** ॥ १९ । ८९ ॥

भाषार्थ—जैसे—(ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने वाले (अश्विभ्याम्) बहुभोजी स्त्री-पुरुषों के साथ कोई दो विद्वान् स्त्री-पुरुष (उतानि) बुने हुए वस्त्रों एवं (पक्ष्माणि) ग्रहण किये हुए अन्य लोमश वस्त्रों को (वसाते) धारण करते हैं, अथवा जैसे—आप भी (छागेन) बकरी आदि के दूध से (शृतेन) पकी हुई (हविषा) हवि के साथ (तेजः) प्रकाश युक्त, (अमृतम्) अमृत रूप (चक्षुः) नेत्र को, (कुवलैः) अच्छे शब्दों वाले (गोधूमैः) गेहुओं से (शुक्रम्) शुद्ध, (असितम्) कृष्ण (पेशः) रूप को (न) जैसे स्वीकार करते हैं, वैसे अन्य गृहस्थ भी स्वीकार करें ॥ १९ । ८९ ॥

[यथा ग्रहाभ्यामश्विभ्यां सह कौचिद् विद्वांसौ स्त्रीपुरुषावुतानि```वसाते, यथा वा भवन्तो```
शुक्रमसितं पेशो न स्वीक्रियेरंस्तथा ऽन्येऽपि गृहस्था अपि कुर्युः]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा कृतक्रियौ स्त्रीपुरुषौ प्रियदर्शनौ, प्रियभोजिनौ, गृहीतपूर्णसामग्रीकौ भवतस्तथान्ये गृहस्था अपि भवेयुः ॥ १९ । ८९ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे क्रिया किए हुए स्त्री-पुरुष—प्रिय दर्शन वाले, प्रियभोजन करने वाले, पूर्ण सामग्री को ग्रहण करने वाले होते हैं, वैसे अन्य गृहस्थ लोग भी होवें ॥ १९ । ८९ ॥

भा० पदार्थः—ग्रहाभ्याम्=गृहीतपूर्णसामग्रीकाभ्याम् । अश्विभ्याम्=प्रियभोजिभ्याम् ॥

भाष्यसार—१. **गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को कर्त्तव्य**—गृहस्थी स्त्री-पुरुष विद्वानों की तरह उतानि=बुने हुए सूती, रेशमी तथा ऊनी वस्त्रों को धारण करें। इसी प्रकार बकरी आदि पशुओं के दूध में पकायी गई हवि और पवित्र तथा संस्कृत गेहूँ आदि अन्नों को भोगने वाले हों।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ १९ । ८९ ॥

शङ्खः । **सरस्वती=विदुषी माता** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथ योगिकृत्यमाह ॥

अब योगी के कर्त्तव्य का उपदेश किया जाता है ॥

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽ अमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान ॥ ९० ॥

पदार्थः—(**अविः**) योऽवति=रक्षति सः (**न**) इव (**मेषः**) यो मिषति=स्पर्द्धते सः (**नसि**) नासिकायाम् (**वीर्याय**) योगबलाय (**प्राणस्य**) (**पन्थाः**) मार्गः (**अमृतः**) मृत्युधर्मरहितः (**ग्रहाभ्याम्**) यौ गृह्णीतस्ताभ्याम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री (**उपवाकैः**) उपयन्ति यैस्तैः (**व्यानम्**) विविधमनन्ति येन तम् (**नस्यानि**) नासिकायै हितानि (**बर्हिः**) वर्द्धनम् (**बदरैः**) बदरीफलैः (**जजान**) जनयति ॥ ९० ॥

अन्वयः—यथा ग्रहाभ्यां सह सरस्वती बदरैरुपवाकैर्जजान तथा वीर्याय नसि प्राणस्याऽमृतः पन्था अविर्न मेषो व्यानं नस्यानि बर्हिश्च उपयुज्यते ॥ ९० ॥

सपदार्थान्वयः—यथा **ग्रहाभ्यां** यौ गृह्णीतस्ताभ्यां **सह सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानयुक्ता स्त्री **बदरैः** बदरीफलैः **उपवाकैः** उपयन्ति यैस्तैः **जजान** जनयति, **तथा वीर्याय** योगबलाय **नसि** नासिकायां **प्राणस्याऽमृतः** मृत्युधर्मरहितः **पन्थाः** मार्गः **अविः** योऽवति=रक्षति सः **न** इव **मेषः** यो मिषति=स्पर्द्धते सः **व्यानं** विविधमनन्ति येन तं **नस्यानि** नासिकायै हितानि **बर्हिः** वर्द्धनं **च उपयुज्यते** ॥ १९ । ९० ॥

भाषार्थ—जैसे—(ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने वाले दो पुरुषों के साथ (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त स्त्री—(बदरैः) बेरी के फलों से एवं (उपवाकैः) समीपता उत्पन्न करने वाले कर्मों से (जजान) सन्तानोत्पत्ति करती है, वैसे—(वीर्याय) योग-बल के लिए (नसि) नासिका में (प्राणस्य) प्राण का (अमृतः) मृत्यु-धर्म से रहित (पन्थाः) मार्ग, (अविः) रक्षक के (न) समान, (मेषः) स्पर्द्धा करने वाला, (व्यानम्) विविध प्राण का हेतु व्यान,

(नस्यानि) नासिका के लिए हितकारी द्रव्य और (बर्हिः) वृद्धि का उपयोग किया जाता है ॥ ९० ॥

[वीर्याय नसि प्राणस्याऽमृतः पन्था अविर्न मेषो व्यानं—नस्यानि बर्हिश्चोपयुज्यते]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ यथा धार्मिको न्यायाधीशः प्रजा रक्षति तथैव प्राणायामादिभिः संसाधिताः प्राणा योगिनं सर्वेभ्यो दुःखेभ्यस्त्रायन्ते ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे—धार्मिक न्यायाधीश प्रजा की रक्षा करता है वैसे ही प्राणायाम आदि से सिद्ध किए हुए प्राण योगी को सब दुःखों से बचाते हैं ।

[सरस्वती—जजान]

यथा विदुषी माता विद्यासुशिक्षाभ्यां स्वसन्तानान् वर्द्धयति तथाऽनुष्ठितानि योगकर्माणि योगिनो वर्द्धयन्ति ॥ १९ । ९० ॥

जैसे—विदुषी माता विद्या और सुशिक्षा से अपने सन्तानों को बढ़ाती है वैसे विधिवत् अनुष्ठान किए हुए योग-कर्म योगियों को बढ़ाते हैं ॥ ९० ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=विदुषी माता ॥

भाष्यसार—१. **योगी का कर्त्तव्य**—जैसे सरस्वती=विदुषी माता उपवाकैः=विद्या और सुशिक्षा से अपनी सन्तान को सुशिक्षित करती है, वैसे ही वीर्याय=योग-बल को प्राप्त करने के लिए योगी-जन नासिका में प्राण का निरोध करके अमृतः=मृत्यु-रहित धर्म वाले मार्ग को प्रशस्त करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । योगी माता की तरह (हठ से नहीं) प्राणों को सुशिक्षित करें ॥ १९ । ९० ॥

शङ्खः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यम्** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳬ श्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम् ।
यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ९१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्य्यस्य (**रूपम्**) स्वरूपम् (**ऋषभः**) विज्ञानवान् (**बलाय**) योगसामर्थ्याय (**कर्णाभ्याम्**) कुर्वन्ति श्रवणं याभ्याम् (**श्रोत्रम्**) शब्दविषयम् (**अमृतम्**) अमृतात्मकमुदकम् (**ग्रहाभ्याम्**) याभ्यां गृह्णीतस्ताभ्याम् (**यवाः**) धान्यविशेषाः (**न**) इव (**बर्हिः**) वर्द्धनम् (**भ्रुवि**) नेत्रललाटयोर्मध्ये (**केसराणि**) विज्ञानानि । अत्र कि ज्ञाने इत्यस्मादौणादिकः सरन् प्रत्ययः । (**कर्कन्धु**) येन कर्म दधाति (**जज्ञे**) जायते (**मधु**) विज्ञानम् (**सारघम्**) यदारध्यते=स्वाद्यते तदारघं, समानं च तदारघं च तत् (**मुखात्**) ॥ १९ । ९१ ॥

प्रमाणार्थ—(**केसराणि**) विज्ञानानि । यहाँ 'कि ज्ञाने' इस धातु से औणादिक 'सरन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—यथा ग्रहाभ्यां सहर्षभो बलाय यवा न कर्णाभ्यां श्रोत्रममृतं कर्कन्धु सारघं मधु बर्हिर्भ्रुवि केसराणि मुखात् जनयति तथैतत् सर्वमिन्द्रस्य रूपं जज्ञे ॥ १९ । ९१ ॥

सपदार्थान्वयः—यथा **ग्रहाभ्यां** याभ्यां गृह्णीतस्ताभ्यां **सहर्षभः** विज्ञानवान् **बलाय** योगसामर्थ्याय **यवाः** धान्यविशेषाः **न** इव **कर्णाभ्यां कुर्वन्ति** श्रवणं याभ्यां **श्रोत्रं** शब्दविषयम्, **अमृतम्** अमृतात्मकमुदकं, **कर्कन्धु** येन कर्म दधाति, **सारघं** यदारध्यते=स्वाद्यते तदारघं, समानं च तदारघं च च तत्, **मधु** विज्ञानं **बर्हिः** वर्द्धनं, **भ्रुवि** नेत्रललाटयोर्मध्ये **केसराणि** विज्ञानानि **मुखात् जनयति** **तथैतत् सर्वमिन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **रूपं** स्वरूपं **जज्ञे** जायते ॥ १९ । ९१ ॥

भाषार्थ—जैसे—(ग्रहाभ्याम्) ग्रहण करने वाले हाथों के साथ (ऋषभः) विज्ञानवान् योगी—(बलाय) योग-सामर्थ्य के लिए (यवाः) धान्य विशेष जौ के (न) समान (कर्णाभ्याम्) श्रवण के साधन कानों से (श्रोत्रम्) शब्द-विषय, (अमृतम्) अमृत रूप जल, (कर्कन्धु) कर्म को धारण करने वाली इन्द्रियाँ, (सारघम्) समान रूप से आस्वादन के योग्य पदार्थ, (मधु) विज्ञान, (बर्हिः) वृद्धि, (भ्रुवि) नेत्र और ललाट के मध्य में (केसराणि) विज्ञानों को (मुखात्) मुख से प्रकट करता है, वैसे यह सब (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य रूप सिद्धियों का (रूपम्) स्वरूप (जज्ञे) प्रकट होता है ॥ १९ । ९१ ॥

[यथा...ऋषभो बलाय यवा न कर्णाभ्यां श्रोत्रं॰...भ्रुवि केसराणि मुखाज्जनयति तथैतत् सर्वमिन्द्रस्य रूपं जज्ञे]

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ ॥ यथा निवृत्तिमार्गे परमयोगी योगबलेन सर्वाः सिद्धीः प्राप्नोति, तथैवान्यैर्गृहस्थैरपि प्रवृत्तिमार्गे सर्वमैश्वर्यं प्राप्तव्यमिति ॥ १९ । ९१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमा अलङ्कार है ॥ जैसे—निवृत्तिमार्ग में परम योगी योग-बल से सब सिद्धियों को प्राप्त करता है, वैसे ही अन्य गृहस्थ भी प्रवृत्ति मार्ग में सब ऐश्वर्य को प्राप्त करें ॥ १९ । ९१ ॥

भा० पदार्थः—ऋषभः=परमयोगी ॥

भाष्यसार—१. **योग से परमैश्वर्य की प्राप्ति**—ऋषभः=विज्ञानवान् योगी योग-सामर्थ्य से इन्द्रियों को वश में करके दोनों नेत्र और ललाट के मध्य-स्थान पर ध्यान लगाकर अनाहत-नाद का श्रवण करते हैं। उस समय उसकी इन्द्रियों का सामर्थ्य बढ़ जाता है और वह परमैश्वर्य (अणिमादि सिद्धियों) को प्राप्त कर लेता है ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा और उपमा अलङ्कार हैं। योगी की तरह गृहस्थी भी ऐश्वर्य प्राप्त करें, यह वाचकलुप्तोपमा है। और 'यवों' के समान कर्णों से' यह उपमा अलङ्कार है ॥ १९ । ९१ ॥ ●

शङ्खः । **आत्मा**=परमात्मा । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी से कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

आ॒त्मन्नु॒पस्थे॒ न वृक॑स्य॒ लोम॒ मु॒खे॒ श्मश्रू॑णि॒ न व्या॑घ्रलो॒म ।
केशा॒ न शी॒र्षन्यश॑से श्रि॒यै शिखा॑ सिं॒हस्य॒ लोम॒ त्विषि॑रिन्द्रि॒याणि॑ ॥ ९२ ॥

पदार्थः—(**आत्मन्**) आत्मनि (**उपस्थे**) उपतिष्ठन्ति यस्मिंस्तस्मिन् (**न**) इव (**वृकस्य**) यो वृश्चति=छिनत्ति तस्य (**लोम**) (**मुखे**) (**श्मश्रूणि**) (**न**) इव (**व्याघ्रलोम**) व्याघ्रस्य लोम व्याघ्रलोम

(केशाः) (न) इव (शीर्षन्) शिरसि (यशसे) (श्रियै) (शिखा) (सिंहस्य) (लोम) (त्विषिः) दीप्तिः (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादीनि ॥ ९२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यस्यात्मन्नुपस्थे सति वृकस्य लोम न व्याघ्रलोम न मुखे श्मश्रूणि शीर्षन्केशा न शिखा सिंहस्य लोमेव त्विषिरिन्द्रियाणि सन्ति स यशसे श्रियै प्रभवति ॥ ९२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यस्यात्मन्** आत्मनि **उपस्थे** उपतिष्ठन्ति यस्मिंस्तस्मिन् **सति वृकस्य** यो वृश्चति=छिनत्ति तस्य **लोम न** इव, **व्याघ्रलोम** व्याघ्रस्य लोम व्याघ्रलोम **न** इव **मुखे श्मश्रूणि, शीर्षन्** शिरसि **केशाः न** इव **शिखा, सिंहस्य लोमेव त्विषिः** दीप्तिः, **इन्द्रियाणि** श्रोत्रादीनि **सन्ति, स यशसे श्रियै प्रभवति** ॥ १९ । ९२ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिस पुरुष के—(आत्मन्) परमात्मा के (उपस्थे) उपस्थित होने पर, (वृकस्य) छेदन करने वाले भेड़िया के (लोम) रोम के (न) समान, (व्याघ्रलोम) बाघ के रोम के (न) समान (मुखे) मुख पर (श्मश्रूणि) मूँछें, (शीर्षन्) शिर पर (केशाः) केशों के (न) समान (शिखा) दीर्घ शिखा, (सिंहस्य) शेर के (लोम) रोम के समान (त्विषिः) चमकीली (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ हैं; वह यश और श्री के लिए समर्थ होता है ॥ १९ । ९२ ॥

[यस्यात्मन्नुपस्थे...स यशसे...प्रभवति]

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । ये परमात्मानमुपतिष्ठन्ते ते यशस्विनो भवन्ति ।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । जो परमात्मा की उपासना करते हैं वे यशस्वी होते हैं ।

[यस्य...वृकस्य लोम न व्याघ्रलोम न मुखे श्मश्रूणि...सिंहस्य लोमेव त्विषिः]

ये योगमभ्यस्यन्ति ते वृकवद्, व्याघ्रवत्, सिंहवदेकान्तदेशं सेवित्वा पराक्रमिणो जायन्ते ।

जो योगाभ्यास करते हैं वे भेड़िया, बाघ और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रमी होते हैं ।

[यस्य...इन्द्रियाणि सन्ति स...श्रियै प्रभवति]

ये पूर्णब्रह्मचर्यं कुर्वन्ति ते क्षत्रियाः पूर्णोपमा भवन्ति ॥ १९ । ९२ ॥

जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं वे क्षत्रिय लोग सिंह आदि की पूर्ण उपमा वाले होते हैं ॥९२॥

भाष्यसार—१. **परमात्मा के उपस्थान से लाभ**—योगी मनुष्य की इन्द्रियाँ परमात्मा के उपस्थान करने से ऐसे परम तेज को धारण कर लेती हैं, जिससे योगी परमैश्वर्य को प्राप्त करके यशस्वी होते हैं । और परमात्मा के साथ एकान्त-वास करने से सिंहादि की तरह पराक्रमी हो जाते हैं ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि योगी जन परमात्मा के उपस्थान से सिंहादि की तरह पराक्रमी हो जाते हैं ॥ १९ । ९२ ॥

शङ्खः । **अश्विनौ**=सिद्धसाधकौ विद्वांसौ । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती ।
इन्द्रस्य रूपꣳ शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥ ९३ ॥

पदार्थः—(**अङ्गानि**) योगाङ्गानि (**आत्मन्**) आत्मनि (**भिषजा**) सद्वैद्यवदरोगौ (**तत्**) (**अश्विना**) सिद्धसाधकौ (**आत्मानम्**) (**अङ्गैः**) योगाङ्गैः (**सन्**) (**अधात्**) समादधाति (**सरस्वती**) योगिनी स्त्री (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**रूपम्**) (**शतमानम्**) शतमसंख्यं मानं यस्य तत् (**आयुः**) जीवनम् (**चन्द्रेण**) आनन्देन (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**अमृतम्**) (**दधानाः**) धरन्तः ॥ ९३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! भिषजाऽश्विना सिद्धसाधकौ विद्वांसौ यथा सरस्वत्यात्मन्स्थिरा सति योगाङ्गान्यनुष्ठायात्मानं समधात् तथैवाङ्गैर्यदिन्द्रस्य रूपमस्ति तत् संदध्याताम् । यथा योगं दधानाः शतमानमायुर्धरन्ति तथा चन्द्रेणाऽमृतं ज्योतिर्दध्यात् ॥ ९३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **भिषजा** सद्वैद्यवदरोगौ **अश्विना=सिद्धसाधकौ विद्वांसौ—यथा सरस्वती** योगिनी स्त्री **आत्मन्** आत्मनि **स्थिरा सती [अङ्गानि]=योगाङ्गान्यनुष्ठायात्मानं समधात्** समादधाति, **तथैवाङ्गैः** योगाङ्गैः **यदिन्द्रस्य** परमैश्वर्यस्य **रूपमस्ति, तत् संदध्याताम् ।**

यथा योगं दधानाः धरन्तः **शतमानं** शतमसंख्यं मानं यस्य तद् **आयुः** जीवनं **धरन्ति, तथा चन्द्रेण** आनन्देन **अमृतं ज्योतिः** प्रकाशं **दध्यात्** ॥ १९।९३ ॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! (भिषजा) श्रेष्ठ वैद्य के समान नीरोग, (अश्विना) सिद्ध और साधक दोनों विद्वान्—जैसे (सरस्वती) योगिनी स्त्री (आत्मन्) आत्मा में स्थिर होकर [अङ्गानि] योग के अङ्गों का अनुष्ठान करके आत्मा को (समधात्) समाहित करती है; वैसे ही, (अङ्गैः) योग के अङ्गों के द्वारा जो (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य का रूप है उसे धारण करें ।

जैसे योग को (दधानाः) धारण करते हुए योगी लोग (शतमानम्) सौ वर्ष से अधिक (आयुः) जीवन को धारण करते हैं वैसे (चन्द्रेण) (अमृतम्) अमृत रूप (ज्योतिः) प्रकाश को धारण करें ॥ १९।९३ ॥

[भिषजा]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा रोगिणः सद्वैद्यं प्राप्यौषधं पथ्यं च सेवित्वा नीरोगा भूत्वाऽऽनन्दन्ति—

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—रोगी श्रेष्ठ वैद्य को प्राप्त करके औषध और पथ्य का सेवन करके, नीरोग होकर आनन्दित रहते हैं—

[सरस्वत्यात्मन् स्थिरा सती अङ्गानि=योगाङ्गान्यनुष्ठायात्मानं समधात्]

तथा—योगजिज्ञासवो योगिन इममवाप्य योगाङ्गान्यनुष्ठाय, निष्क्लेशा भूत्वा, सततं सुखिनो भवन्ति ॥ १९ । ९३ ॥

वैसे—योग के जिज्ञासु योगी इस योग को प्राप्त करके, योगाङ्गों का अनुष्ठान कर, क्लेश-रहित होकर, सदा सुखी रहते हैं ॥ १९ । ९३ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=योगजिज्ञासुयोगिनी स्त्री ।

भाष्यसार—**१. योगी का कर्त्तव्य**—अश्विनौ=सिद्ध और साधक पुरुषों को योग्य है कि वे सौ वर्षों से अधिक आयु बढ़ाने के लिए और मोक्ष के आनन्द के लिए आत्मा में स्थिर होकर योग के अङ्गों का अनुष्ठान करें और परमैश्वर्य को प्राप्त करें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक इवादि पद लुप्त हैं, अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि श्रेष्ठ वैद्य जैसे औषध-सेवन से नीरोग रहते हैं वैसे ही योगाङ्गों के अनुष्ठान से योगी अमृत को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । ९३ ॥

शङ्खः । **सरस्वती**=**विदुषी पत्नी** । विराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं बिभर्त्ति ।
अपाᳬरसेन वरुणो न साम्नेन्द्रᳬश्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥ ९४ ॥

पदार्थः—(**सरस्वती**) विदुषी (**योन्याम्**) (**गर्भम्**) (**अन्तः**) आभ्यन्तरे (**अश्विभ्याम्**) अध्यापकोपदेशकाभ्याम् (**पत्नी**) (**सुकृतम्**) पुण्यात्मकम् (**बिभर्त्ति**) (**अपाम्**) जलानाम् (**रसेन**) (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**न**) इव (**साम्ना**) सन्धिना (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**श्रियै**) शोभायै (**जनयन्**) उत्पादयन् (**अप्सु**) प्राणेषु (**राजा**) प्रकाशमानः ॥ ९४ ॥

अन्वयः—हे योगिन् ! यथा सरस्वती पत्नी स्वपत्युर्योन्यामन्तस्सुकृतं गर्भं बिभर्त्ति यथा वा वरुणो राजाऽश्विभ्यामपां रसेनाप्सु साम्ना न सुखेनेन्द्रं श्रियै जनयन्विराजते तथा त्वं भवेः ॥ ९४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे योगिन् ! यथा सरस्वती** विदुषी **पत्नी स्वपत्युर्योन्यामन्तः** आभ्यन्तरे **सुकृतं** पुण्यात्मकं **गर्भं बिभर्त्ति, यथा वा वरुणः** श्रेष्ठः **राजा** प्रकाशमानः **अश्विभ्याम्** अध्यापकोपदेशकाभ्याम् **अपां** जलानां **रसेनाप्सु** प्राणेषु **साम्ना** सन्धिना **न** इव **सुखेनेन्द्रं** परमैश्वर्यं **श्रियै** शोभायै **जनयन्** उत्पादयन् **विराजते, तथा त्वं भवेः** ॥ ९४ ॥

भाषार्थ—हे योगी ! जैसे--(सरस्वती) विदुषी पत्नी अपने पति के--(योन्याम्) योनि के (अन्तः) अन्दर (सुकृतम्) पुण्य आत्मक (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्ति) धारण करती है, अथवा जैसे-(वरुणः) श्रेष्ठ (राजा) प्रकाशमान राजा (अश्विभ्याम्) अध्यापक और उपदेशकों के द्वारा (अपाम्) जलों के (रसेन) रस से (अप्सु) प्राणों में (साम्ना) सन्धि के (न) समान सुख से (इन्द्रियम्) परम ऐश्वर्य को (श्रियै) शोभा के लिए (जनयन्) उत्पन्न करके सुशोभित होता है; वैसा तू बन ॥ १९ । ९४ ॥

[**हे योगिन् ! यथा सरस्वती पत्नी स्वपत्युः ··· सुकृतं ··· बिभर्त्ति**]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यथा धर्मपत्नी पतिं शुश्रूषते,

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे धर्मपत्नी पति की शुश्रूषा करती है,

[**यथा वा···राजा···साम्ना···इन्द्रं जनयन् विराजते**]

यथा च राजा सामादिभी राज्यैश्वर्यमुन्नयति,

और--जैसे राजा साम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को उन्नत करता है,

[**तथा त्वं भवेः**]

तथैव विद्वान् योगोपदेशकं संसेव्य योगाङ्गै-र्योगसिद्धिमुन्नयेत् ॥ १९ । ९४ ॥

वैसे ही विद्वान् पुरुष योग-उपदेशक की सेवा करके योगाङ्गों के अनुष्ठान से योग-सिद्धि को उन्नत करे ॥ १९ । ९४ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=धर्मपत्नी । इन्द्रम्=राज्यैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—**१. योगी का कर्त्तव्य**--योग का जिज्ञासु योगी जनों के पास जाकर श्रद्धा से उसी प्रकार सेवा करे, जैसे विदुषी स्त्री अपने पति की और राजा विद्वानों की सेवा करके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। और जैसे स्त्री गर्भ की सुरक्षा करती है, तथा राजा सामादि उपायों से राज्य की रक्षा करता है, वैसे ही साधक योगाङ्गों का अनुष्ठान किया करे ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा वाचक इवादि पद लुप्त हैं, अतः वाचक-लुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि साधक विदुषी स्त्री और राजा की तरह श्रद्धा से योगोपदेशक की सेवा करें ॥ १९ । ९४ ॥

शङ्खः । **अश्विनौ=विद्याव्यापिनौ (योगिनौ)** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

योगी के कर्त्तव्य का फिर उपदेश किया है ॥

तेजः पशूनाꣳ हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु ।
अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोमऽइन्दुः ॥ ९५ ॥

पदार्थः—(**तेजः**) प्रकाशः (**पशूनाम्**) गवादीनां सकाशात् (**हविः**) दुग्धादिकम् (**इन्द्रियावत्**) प्रशस्तानि इन्द्रियाणि भवन्ति यस्मिन् (**परिस्रुता**) परितः स्रवन्ति=प्राप्नुवन्ति येन तत् (**पयसा**) दुग्धेन (**सारघम्**) सुस्वादयुक्तम् (**मधु**) मधुरादिगुणोपेतम् (**अश्विभ्याम्**) विद्याव्यापिभ्याम् (**दुग्धम्**) पयः (**भिषजा**) वैद्यकविद्याविदौ (**सरस्वत्या**) विदुष्या स्त्रिया (**सुतासुताभ्याम्**) निष्पादिताऽनिष्पादिताभ्याम् (**अमृतः**) मृत्युधर्मरहितः (**सोमः**) ऐश्वर्यम् (**इन्दुः**) सुस्नेहयुक्तः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! याभ्यां सुतासुताभ्यां भिषजाऽश्विभ्यां पशूनां परिस्रुता पयसा तेज इन्द्रियावत् सारघं मधु हविर्दुग्धं सरस्वत्यामृतः सोम इन्दुश्चोत्पाद्यते तौ योगसिद्धिं प्राप्नुतः ॥ ९५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **याभ्यां सुताऽसुताभ्यां** निष्पादिताऽनिष्पादिताभ्यां **भिषजा** वैद्यकविद्याविदौ **अश्विभ्यां** विद्याव्यापिभ्यां **पशूनां** गवादीनां सकाशात् **परिस्रुता** परितः स्रवन्ति=प्राप्नुवन्ति येन तत् **पयसा** दुग्धेन **तेजः** प्रकाशः **इन्द्रियावत्** प्रशस्तानि इन्द्रियाणि भवन्ति यस्मिन् **सारघं** सुस्वादयुक्तं **मधु** मधुरादिगुणोपेतं हविः दुग्धादिकं **दुग्धं** पयः **सरस्वत्या** विदुष्या स्त्रिया **अमृतः** मृत्युधर्मरहितः **सोमः** ऐश्वर्यम् **इन्दुः** सुस्नेहयुक्तः **चोत्पाद्यते, तौ योगसिद्धिं प्राप्नुतः** ॥ १९ । ९५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जिन (सुताऽसुताभ्याम्) सिद्ध और असिद्ध, (भिषजा) वैद्यक-विद्या के वेत्ता, (अश्विभ्याम्) विद्या में व्यापक दो विद्वान्—(पशूनाम्) गौ आदि पशुओं के (परिस्रुता) सब ओर प्राप्त होने वाले (पयसा) दूध से (तेजः) प्रकाश, (इन्द्रियावत्) इन्द्रियों को प्रशस्त करने वाला (सारघं) अति स्वादु (मधु) मधुरता आदि गुणों से युक्त (हविः) ग्रहण करने योग्य (दुग्धम्) दुग्ध आदि पदार्थ—(सरस्वत्या) विदुषी स्त्री (अमृतः) मृत्यु-धर्म से रहित (सोम) ऐश्वर्य (इन्दुः) अति स्नेह से युक्त उत्पन्न करती है—वे दोनों योग-सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥ १९ । ९५ ॥

[याभ्याम्...अश्विभ्यां पशूनां पयसा...सोम...उत्पाद्यते तौ योगसिद्धिं प्राप्नुतः]

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा

यथा गोपा गवादीन् पशून् संरक्ष्य दुग्धादिना सन्तुष्यन्ति, तथैव मन-आदीन्द्रियाणि दुष्टाचारात् पृथक् संरक्ष्य योगिभिरानन्दितव्यम् ॥ १९ । ९५ ॥

अलंकार है ॥ जैसे--गोपाल गौ आदि पशुओं का संरक्षण करके दुग्ध आदि से सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही मन आदि इन्द्रियों को दुष्ट आचरण से पृथक् रख कर योगी आनन्दित रहें ॥ १९ । ९५ ॥

भाष्यसार—**१. योग-सिद्धि का उपाय**—अश्विनौ=सिद्ध और साधक योगी पुरुषों को योग-सिद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि जैसे वैद्यक-शास्त्र के वेत्ता गायादि पशुओं की रक्षा से उनके दूध से सन्तुष्ट रहते हैं, वैसे ही अपनी इन्द्रियों को वश में करने से योग-मार्ग के जिज्ञासु अमृतः सोमः= मृत्युधर्म से रहित आनन्द को प्राप्त करते हैं ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा वाचक इवादि पदों के लुप्त होने से वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि योगी मनुष्य गोपालों की तरह इन्द्रियों की रक्षा करें ॥ १९ । ९५ ॥

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र सोमादिपदार्थगुणवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायार्थेन सह संगतिरस्तीति वेद्यम् ॥

यहाँ सोम आदि पदार्थों के गुण-वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे एकोनविंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

॥ ओ३म् ॥

* अथ विंशोऽध्यायारम्भः *

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ऽआ सु॑व॥ १॥

य०। ३। ३०॥

प्रजापतिः। **सभेशः**=सभापतिः। द्विपदा विराड् गायत्री। षड्जः॥

अस्यादितो राजधर्मविषयमाह॥

अब बीसवें अध्याय का आरम्भ है, इसके आदि में राजधर्मविषय का उपदेश करते हैं॥

क्ष॒त्रस्य॒ योनि॑रसि क्ष॒त्रस्य॒ नाभि॑रसि। मा त्वा॑ हिꣳसी॒न्मा मा॑ हिꣳसीः॥ १॥

पदार्थः—(**क्षत्रस्य**) राज्यस्य (**योनिः**) निमित्तम् (**असि**) (**क्षत्रस्य**) राजकुलस्य (**नाभिः**) नाभिरिव जीवनहेतुः (**असि**) (**मा**) निषेधे (**त्वा**) त्वां सभापतिम् (**हिꣳसीत्**) हिंस्यात् (**मा**) (**मा**) माम् (**हिंसीः**) हिंस्याः॥ २०। १॥

अन्वयः—हे सभेश! यतस्त्वं क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि तस्मात् त्वा कोऽपि मा हिंसीत् त्वं मा मा हिंसीः॥ २०। १॥

सपदार्थान्वयः—हे सभेश! यतस्त्वं क्षत्रस्य राज्यस्य **योनिः** निमित्तम् **असि, क्षत्रस्य** राजकुलस्य **नाभिः** नाभिरिव जीवनहेतुः **असि, तस्मात् त्वा** त्वां सभापतिं **कोऽपि मा न हिंसीत्** हिंस्यात्, **त्वं मा** मां **मा न हिंसीः** हिंस्याः॥२०।१॥

भावार्थः—स्वामी भृत्यजनाश्च परस्परमेवं प्रतिज्ञां कुर्यु—राजजनाः प्रजाजनान्, प्रजाजना राजजनांश्च सततं रक्षेयुः।

येन सर्वेषां सुखोन्नतिः स्यात्॥ २०। १॥

भाषार्थ—हे सभापते! जिससे तू—(क्षत्रस्य) राज्य का (योनिः) निमित्त (असि) है, (क्षत्रस्य) राजकुल का (नाभिः) नाभि के समान जीवन हेतु (असि) है, अतः (त्वा) तुझ सभापति की कोई भी (मा हिंसीत्) हिंसा न करे, तू (मा) मेरी (मा हिंसीः) हिंसा मत कर॥ २०। १॥

भावार्थ—स्वामी और भृत्य जन परस्पर इस प्रकार प्रतिज्ञा करें—राजपुरुष प्रजाजनों की और प्रजाजन राजपुरुषों की सदा रक्षा करें।

जिससे सब सुख की उन्नति हो॥ २०। १॥

अन्यत्र व्याख्यात—(क्षत्रस्य योनिरसि) हे राज्य के देने वाले परमेश्वर ! आप ही राज्य-सुख के परम कारण हैं, (क्षत्रस्य नाभिरसि) आप ही राज्य के जीवन-हेतु हैं तथा क्षत्रिय वर्ण के राज्य का कारण और जीवन सभा ही है (मा त्वा हिंसीन्मा मा हिंसीः) हे जगदीश्वर ! सब प्रजा आपको छोड़ के किसी दूसरे को अपना राजा कभी न माने और आप भी हम लोगों को कभी मत छोड़िए,किन्तु आप और हम लोग परस्पर सदा अनुकूल वर्तें ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति राज्य का निमित्त तथा राजकुल की नाभि है अर्थात् जीवन हेतु है। इसलिए कोई भी सभापति की हिंसा न करे। अपितु सभापति अर्थात् स्वामी और प्रजाजन परस्पर प्रतिज्ञा करके एक-दूसरे की सदा रक्षा करें। जिससे सबके सुख की वृद्धि हो ॥ २० । १ ॥

प्रजापतिः । **सभेशः**=**सभापतिः** । **भुरिगुष्णिक्** । ऋषभः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥ २ ॥

पदार्थः—(**नि**) नित्यम् (**ससाद**) सीद (**धृतव्रतः**) धृतं व्रतं=सत्यं येन (**वरुणः**) उत्तमस्वभावः (**पस्त्यासु**) न्यायगृहेषु (**आ**) समन्तात् (**साम्राज्याय**) भूगोले चक्रवर्त्तिराज्यकरणाय (**सुक्रतुः**) शोभनकर्मप्रज्ञः (**मृत्योः**) अल्पमृत्युना प्राणत्यागात् (**पाहि**) रक्ष (**विद्योत्**) दीप्यमानाग्न्यास्त्रादेः । **अत्र द्युतधातोर्विच्** । (**पाहि**) रक्ष ॥ २ ॥

प्रमाणार्थ—(**विद्योत्**) यहाँ 'द्युत्' धातु से 'विच्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे सभेश ! भवान् सुक्रतुर्धृतव्रतो वरुणः सन् साम्राज्याय पस्त्यास्वा निषसाद । अस्मान् वीरान्मृत्योः पाहि विद्योत्पाहि ॥ २ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभेश ! भवान् सुक्रतुः** शोभनकर्मप्रज्ञः **धृतव्रतः** धृतं व्रतं=सत्यं येन, **वरुणः** उत्तमस्वभावः **सन् साम्राज्याय** भूगोले चक्रवर्त्तिराज्यकरणाय **पस्त्यासु** न्यायगृहेषु **आ-नि-षसाद** समन्तान्नित्यं सीद; **अस्मान् वीरान्मृत्योः** अल्पमृत्युना प्राणत्यागात् **पाहि** रक्ष; **विद्योत्** दीप्यमानाग्न्यास्त्रादेः **पाहि** रक्ष ॥ २० । २ ॥

भाषार्थ—हे सभापते ! आप-(सुक्रतुः) उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाला, (धृतव्रतः) व्रत=सत्य को धारण करने वाला, और (वरुणः) उत्तम स्वभाव वाला होकर (साम्राज्याय) भूगोल पर चक्रवर्ती राज्य करने के लिए (पस्त्यासु) न्यायालयों में (आ-नि-षसाद) सब ओर नित्य बैठ; हम वीर पुरुषों की (मृत्योः) अल्पायु में प्राण-त्याग से (पाहि) रक्षा कर; (विद्योत्) दीप्यमान आग्नेय अस्त्र आदि से (पाहि) रक्षा कर ॥ २० । २ ॥

भावार्थः—यो धर्म्यगुणकर्मस्वभावो न्यायाधीशः सभेशो भवेत् स चक्रवर्त्तिराज्यं कर्त्तुं, प्रजाश्च रक्षितुं शक्नोति; नेतरः ॥ २० । २ ॥

भावार्थ—जो धर्मयुक्त गुण, कर्म, स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होता है वह चक्रवर्त्ती राज्य और प्रजा की रक्षा कर सकता है; अन्य नहीं ॥ २० । २ ॥

भा० पदार्थः—सुक्रतुः=धर्म्यगुणकर्मा । वरुणः=धर्म्यस्वभावः ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाला, सत्य को धारण करने वाला और उत्तम स्वभाव वाला हो । वह भूगोल पर चक्रवर्त्ती राज्य करने के लिए न्यायालयों में नित्य विराजमान रहे । आग्नेय अस्त्र आदि से वीरों की रक्षा करे । उक्त सभापति ही चक्रवर्ती राज्य एवं प्रजा की रक्षा कर सकता है; दूसरा नहीं ॥ २० । २ ॥

अश्विनौ । **सभेशः=सभापतिः** । अतिधृतिः । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
अ॒श्विनो॒र्भैष॑ज्येन॒ तेज॑से ब्रह्मवर्च॒साया॒भि षि॑ञ्चामि॒ सर॑स्वत्यै॒ भैष॑ज्येन वी॒र्या॑या॒-
न्नाद्या॑या॒भि षि॑ञ्चा॒मीन्द्र॒स्येन्द्रि॒येण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑से॒ऽभि षि॑ञ्चामि ॥ ३ ॥

पदार्थः—(**देवस्य**) सर्वतो दीप्यमानस्य (**त्वा**) त्वाम् (**सवितुः**) सकलैश्वर्याऽधिष्ठातुः (**प्रसवे**) उत्पादिते जगति (**अश्विनोः**) सकलविद्याव्याप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः (**बाहुभ्याम्**) (**पूष्णः**) पूर्णबलस्य (**हस्ताभ्याम्**) उत्साहपुरुषार्थाभ्याम् (**अश्विनोः**) वैद्यकविद्यां प्राप्तयोरध्यापनौषधिकारिणोः (**भैषज्येन**) भिषजां=वैद्यानां भावेन (**तेजसे**) प्रागल्भ्याय (**ब्रह्मवर्चसाय**) वेदाध्ययनाय (**अभि**) सर्वतः (**सिञ्चामि**) मार्जनेन स्वीकरोमि (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**भैषज्येन**) भिषजामोषधीनां भावेन (**वीर्याय**) पराक्रमाय (**अन्नाद्याय**) अत्तुं योग्यायान्नाद्याय (**अभि**) (सिञ्चामि) सर्वथा स्वीकरोमि (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यस्य (**इन्द्रियेण**) धनेन (**बलाय**) पुष्टत्वाय (**श्रियै**) सुशोभितायै राजलक्ष्म्यै (यशसे) सत्कीर्त्यै (**अभि**) (**सिञ्चामि**) ॥ ३ ॥

अन्वयः—हे शुभलक्षणान्वित पुरुष ! सवितुर्देवस्येश्वरस्य प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसाय त्वा राजप्रजाजनोऽहमभिषिञ्चामि भैषज्येन सरस्वत्यै वीर्यायान्नाद्यायाऽभिषिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभिषिञ्चामि ॥ ३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शुभलक्षणान्वित पुरुष ! **सवितुः** सकलैश्वर्याऽधिष्ठातुः **देवस्य**=**ईश्वरस्य** सर्वतो दीप्यमानस्य **प्रसवे** उत्पादिते जगति **अश्विनोः** सकलविद्याव्याप्तयोरध्यापकोपदेशकयोः **बाहुभ्यां पूष्णः** पूर्णबलस्य **हस्ताभ्याम्** उत्साहपुरुषार्थाभ्याम् **अश्विनोः** वैद्यकविद्यां प्राप्तयोरध्यापनौषधिकारिणोः **भैषज्येन** भिषजां=वैद्यानां भावेन **तेजसे** प्रागल्भ्याय **ब्रह्मवर्चसाय** वेदाध्ययनाय **त्वा** त्वां **राजप्रजाजनोऽहमभिषिञ्चामि** सर्वतः मार्जनेन स्वीकरोमि ।

भाषार्थ—हे शुभ लक्षणों से युक्त पुरुष ! (सवितुः) सकल ऐश्वर्य के अधिष्ठाता (देवस्य) सब ओर प्रकाशमान ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किए हुए जगत् में—(अश्विनोः) सकल विद्या में व्याप्त अध्यापक और उपदेशक की (बाहुभ्याम्) भुजाओं से, (पूष्णः) पूर्ण बलवान् पुरुष के (हस्ताभ्याम्) उत्साह और पुरुषार्थ से, (अश्विनोः) वैद्यक विद्या को प्राप्त अध्यापन और ओषधि करने वालों के (भैषज्येन) वैद्यक से, (तेजसे) तेज तथा (ब्रह्मवर्चसे) वेदाध्ययन के लिए (त्वा) तुझे—मैं राजपुरुष एवं प्रजाजन (अभिषिञ्चामि) सब ओर से अभिषेकपूर्वक सभापति स्वीकार करता हूँ ।

भैषज्येन भिषजामोषधीनां भावेन **सरस्वत्यै** सुशिक्षितायै वाचे **वीर्याय** पराक्रमाय **अन्नाद्याय** अत्तुं योग्यायान्नाद्याय **अभिषिञ्चामि** सर्वथा स्वीकरोमि ।

(भैषज्येन) ओषधियों से—(सरस्वत्यै) सुशिक्षित वाणी, (वीर्याय) पराक्रम, और (अन्नाद्याय) भक्ष्य अन्न आदि के लिए (अभिषिञ्चामि) सर्वथा सभापति स्वीकार करता हूँ ।

इन्द्रस्य परमैश्वर्यस्य **इन्द्रियेण** धनेन **बलाय** पुष्टत्वाय **श्रियै** सुशोभितायै राजलक्ष्म्यै **यशसे** सत्कीर्त्यै **अभिषिञ्चामि** सर्वथा स्वीकरोमि ॥ ३ ॥

(इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के (इन्द्रियेण) धन से—(बलाय) पुष्टि, (श्रियै) सुशोभित राजलक्ष्मी और (यशसे) सत्कीर्ति के लिए (अभिषिञ्चामि) सर्वथा सभापति स्वीकार करता हूँ ॥ २० । ३ ॥

भावार्थः—जनैरत्र जगति धर्म्यकर्मप्रकाशकरणाय शुभगुणकर्मस्वभावो जनो राज्यपालनायाऽधिकर्त्तव्यः ॥ २० । ३ ॥

भावार्थ—लोग—इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिए शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाले पुरुष को राज्यपालन के लिए अधिकारी बनावें ॥ २० । ३ ॥

भा० पदार्थः—प्रसवे=अत्र जगति । अभिषिञ्चामि=राज्यपालनायाऽधिकरोमि ।

अन्यत्र व्याख्यात—(देवस्य त्वा सवितुः) जो कोई राजा सभाध्यक्ष होने के योग्य हो उसका हम लोग अभिषेक करें और उससे कहें कि हे सभाध्यक्ष ! आप सब जगत् को प्रकाशित और उत्पन्न करने वाले परमेश्वर की (प्रसवे) सृष्टि में प्रजापालन के लिए (अश्विनोर्बाहुभ्याम्) सूर्य, चन्द्रमा के बल और वीर्य से (पूष्णो हस्ताभ्याम्) पुष्टि करने वाले प्राण को ग्रहण और दान की शक्ति रूप हाथों से आप को सभाध्यक्ष होने में स्वीकार करते हैं । (अश्विनोर्भैषज्येन) परमेश्वर कहता है कि पृथिवीस्थ और शुद्ध वायु इन ओषधियों से दिन-रात में सब रोगों से तुझको निवारण करके (तेजसे) सत्य न्याय के प्रकाश, (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्म के ज्ञान और विद्या की वृद्धि के लिए, तथा (इन्द्रस्येन्द्रियेण) परमेश्वर के परम ऐश्वर्य और आज्ञा के विज्ञान से, (बलाय) उत्तम सेना, (श्रियै) सर्वोत्तम लक्ष्मी और (यशसे) सर्वोत्तम कीर्त्ति की प्राप्ति के लिए मैं तुम लोगों को सभा करने की आज्ञा देता हूँ कि यह आज्ञा राजा और प्रजा के प्रबन्ध के अर्थ है, इससे सब मनुष्य लोग इसका यथावत् प्रचार करें ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राज-धर्म**—सकल ऐश्वर्य के अधिष्ठाता, सर्वत्र प्रकाशक ईश्वर ने इस जगत् को उत्पन्न किया है । इस जगत् में प्रजाजन शुभ लक्षणों से युक्त अर्थात् शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाले पुरुष को—तेज, वेदाध्ययन, सुशिक्षित वाणी, पराक्रम, अन्न आदि, पुष्टि, सुशोभित राजलक्ष्मी और सत्कीर्ति की प्राप्ति के लिए राज्यपालन का अधिकार दें ॥ २० । ३ ॥ ●

प्रजापतिः । **सभापतिः=स्पष्टम्** । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

कोऽसि कत॒मो॑ऽसि॒ कस्मै॑ त्वा॒ काय॑ त्वा । सुश्लो॑क॒ सुम॑ङ्गल॒ सत्य॑राजन् ॥ ४ ॥

पदार्थः—(**कः**) सुखस्वरूपः (**असि**) (**कतमः**) अतिशयेन सुखकारी (**असि**) (**कस्मै**) सुख-

स्वरूपाय परमेश्वराय (त्वा) त्वाम् (काय) को=ब्रह्म देवता यस्य वेदमन्त्रस्य तस्मै (त्वा) (सुश्लोक) शुभकीर्ते सत्यवाक् (सुमङ्गल) प्रशस्तमङ्गलाऽनुष्ठातः (सत्यराजन्) सत्यप्रकाशक ॥ २० । ४ ॥

अन्वयः—हे सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन्यस्त्वं कोऽसि कतमोऽसि तस्मात्कस्मै त्वा काय त्वाऽहमभिषिञ्चामि ॥ २० । ४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **सुश्लोक** शुभकीर्ते सत्यवाक् ! **सुमङ्गल** प्रशस्तमङ्गलाऽनुष्ठातः । **सत्यराजन्** सत्यप्रकाशक ! **यस्त्वं कः** सुखस्वरूपः **असि**, **कतमः** अतिशयेन सुखकारी **असि**, **तस्मात्कस्मै** सुखस्वरूपाय परमेश्वराय **त्वा** त्वां, **काय** को=ब्रह्म देवता यस्य वेदमन्त्रस्य तस्मै **त्वा** त्वाम् **अहमभिषिञ्चामि** ॥ २० । ४ ॥

भाषार्थ—हे (सुश्लोक) शुभ कीर्ति एवं सत्य वाणी वाले, (सुमंगल) प्रशस्त मंगलाचरण वाले, (सत्यराजन्) सत्य के प्रकाशक सभापते ! जो तू—(कः) सुखस्वरूप (असि) है, (कतमः) अत्यन्त सुखकारी (असि) है, इसलिए—(कस्मै) सुखस्वरूप परमेश्वर के लिए (त्वा) तुझको, (काय) क=ब्रह्म देवता वाले वेदमन्त्र के लिए (त्वा) तुझको (अभिषिञ्चामि) सभापति स्वीकार करता हूँ ॥ २० । ४ ॥

भावार्थः—अत्र पूर्वमन्त्रादभिषिञ्चामीत्यभिसम्बध्यते ।

यः सर्वेषां मनुष्याणां मध्येऽति प्रशंसनीयो भवेत् स सभेशत्वमर्हेत् ॥ २० । ४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'अभिषिञ्चामि' इस पद का सम्बन्ध है ।

जो सब मनुष्यों में अति प्रशंसनीय हो वह सभापति हो सकता है ॥ २० । ४ ॥

भा० पदार्थः—सुश्लोक=सर्वेषां मनुष्याणां मध्येऽतिप्रशंसनीय ॥

अन्यत्र व्याख्यात—हे महाराजेश्वर ! आप (कोऽसि कतमोऽसि) सुखस्वरूप, अत्यन्त आनन्दकारक हैं; हम लोगों को भी सब आनन्द से युक्त कीजिये, (सुश्लोक) हे सर्वोत्तम कीर्ति के देने वाले तथा (सुमङ्गल) शोभन मंगलरूप आनन्द के करने वाले जगदीश्वर ! (सत्य राजन्) सत्यस्वरूप और सत्य के प्रकाश करने वाले, हम लोगों के राजा तथा सब सुखों को देने वाले आप ही हैं, (कस्मै त्वा काय त्वा) उसी अत्यन्त सुख, श्रेष्ठ विचार और आनन्द के लिए हम लोगों ने आपका शरण लिया है क्योंकि इसी से हमको पूर्ण राज्य और सुख निस्सन्देह होगा ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति शुभ कीर्ति वाला, सत्यवादी, प्रशस्त मङ्गल आचरण करने वाला, और सत्य का प्रकाशक हो। वह स्वयं सुखस्वरूप और प्रजा के लिए अति सुखकारी हो। सुखस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति और ईश्वर-कृत वेदमन्त्रों के अध्ययन आदि के लिए अति प्रशंसनीय पुरुष को प्रजा-जन सभापति बनावें ॥ २० । ४ ॥ ●

प्रजापतिः । **सभापतिः=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ।
राजा मे प्राणो ऽ अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ५ ॥

पदार्थः—(**शिरः**) उत्तमाङ्गम् (**मे**) मम (**श्रीः**) श्रीः शोभा धनं च (**यशः**) सत्कीर्तिकथनम् (**मुखम्**) आस्यम् (**त्विषि**) न्यायप्रदीप्तिरिव (**केशाः**) (**च**) (**श्मश्रूणि**) मुखकेशाः (**राजा**) प्रकाशमानः (**मे**) (**प्राणः**) प्राणादिवायुः (**अमृतम्**) मरणधर्मरहितं चेतनं ब्रह्म (**सम्राट्**) सम्यक् प्रकाशमानम् (**चक्षुः**) नेत्रम् (**विराट्**) विविधशास्त्रश्रवणयुक्तम् (**श्रोत्रम्**) श्रवणेन्द्रियम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! राज्येऽभिषिक्तस्य मे मम श्रीः शिरो यशो मुखं त्विषिः केशाः श्मश्रूणि च राजा मे प्राणोऽमृतं सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रं चास्त्येवं यूयं जानीत ॥ ५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! राज्येऽभिषिक्तस्य मे**=**मम श्रीः** श्रीः शोभा धनं च **शिरः** उत्तमाङ्गं, **यशः** सत्कीर्तिकथनं **मुखम्** आस्यं, **त्विषिः** न्यायप्रदीप्तिरिव **केशाः श्मश्रूणि** मुखकेशाः **च राजा** प्रकाशमानः, **मे** मम **प्राणः** प्राणादिवायुः **अमृतं** मरणधर्मरहितं चेतनं ब्रह्म, **सम्राट्** सम्यक् प्रकाशमानं **चक्षुः** नेत्रं, **विराट्** विविधशास्त्रश्रवणयुक्तं **श्रोत्रं** श्रवणेन्द्रियं **चास्त्येवं यूयं जानीत** ॥५॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! राज्य में अभिषिक्त (मे) मुझ सभापति की—(श्रीः) श्री, शोभा और धन, (शिरः) उत्तम अङ्ग शिर, (यशः) सत्कीर्ति, (मुखम्) मुख (त्विषिः) न्याय-प्रकाश के समान (केशाः) केश च और (श्मश्रूणि) मूँछ (राजा) दीप्तिमान् हैं, और— (मे) मेरा (प्राणः) प्राण आदि वायु (अमृतम्) मरण-धर्म से रहित चेतन ब्रह्म, (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान (चक्षुः) नेत्र, और (विराट्) विविध शास्त्रों के श्रवण से युक्त (श्रोत्रम्) श्रवण-इन्द्रिय है; ऐसा तुम समझो ॥ २० । ५ ॥

भावार्थः—यो राज्येऽभिषिक्तस्स्यात् स शिर आद्यवयवान् शुभकर्मसु प्रेरयेत् ॥ २० । ५ ॥

भावार्थः—जो राज्य में अभिषिक्त सभापति हो वह अपने शिर आदि अवयवों को शुभकर्मों में लगावे ॥ २० । ५ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—सभाध्यक्ष सभासद और प्रजा को ऐसा निश्चय करना चाहिए कि (शिरो मे श्रीः) श्री मेरा शिरस्थानी (यशो मुखं) उत्तम कीर्ति मेरा मुखवत्, (त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि) सत्य गुणों का प्रकाश मेरे केश और डाढ़ी मूँछ के समान, तथा (राजा मे प्राणः) जो ईश्वर सबका आधार और जीवन-हेतु है वही प्राणप्रिय मेरा राजा (अमृत ७ सम्राट्) अमृतस्वरूप जो ब्रह्म मोक्ष सुख है वही मेरा चक्रवर्त्ती राजा, तथा (चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्) जो अनेक सत्य विद्याओं के प्रकाशयुक्त मेरा श्रोत्र है वही मेरी आंख है ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—राज्य में अभिषिक्त सभापति अपनी लक्ष्मी, शोभा, धन, शिर, सत्कीर्ति, मुख, न्याय-प्रकाश के समान चमकीले केश और मूँछ, प्राण और नेत्र आदि को शुभ कर्मों में लगावे। मरण धर्म से रहित चेतन ब्रह्म की इसमें सहायता प्राप्त करे ॥ २० । ५ ॥

प्रजापतिः । **सभापतिः**=**स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

जिह्वा मे भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामः ।
मोदाः प्रमोदा ऽ अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥

पदार्थः—(**जिह्वा**) जुहोति शब्दमन्नं वा यया सा जिह्वा (**मे**) (**भद्रम्**) कल्याणकरान्नभोजिनी (**वाक्**) वक्ति यया सा (**महः**) पूज्यवेदशास्त्रबोधयुक्ता (**मनः**) मननात्मकमन्तःकरणम् (**मन्युः**) दुष्टाचारोपरि क्रोधकृत् (**स्वराट्**) बुद्धिः (**भामः**) भाति येन सः (**मोदाः**) हर्षा=उत्साहाः (**प्रमोदाः**) प्रकृष्टाऽऽनन्दयोगाः (**अङ्गुलीः**) करचरणाऽवयवाः (**अङ्गानि**) शिरआदीनि (**मित्रम्**) सखा (**मे**) (**सहः**) सहनम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! मे जिह्वा भद्रं वाङ् महो मनो मन्युः स्वराड् भामो मोदाः प्रमोदा अङ्गुलीरङ्गानि मित्रं च सहो मे सहायो भवेत् ॥ ६ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! मे जिह्वा** जुहोति शब्दमन्नं वा यया सा जिह्वा **भद्रं** कल्याणकरान्नभोजिनी, **वाक्** वक्ति यया सा **महः** पूज्यवेदशास्त्रबोधयुक्ता, **मनः** मननात्मकमन्तःकरणं **मन्युः** दुष्टाचारोपरि क्रोधकृत्, **स्वराट्** बुद्धिः **भामः** भाति येन सः, **मोदाः** हर्षा=उत्साहाः, **प्रमोदाः** प्रकृष्टाऽऽनन्दयोगाः, **अङ्गुलीः** करचरणाऽवयवाः, **अङ्गानि** शिर आदीनि, **मित्रं** सखा **च सहः** सहनं **मे सहायो भवेत्** ॥ २० । ६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (**मे**) मेरी—(जिह्वा) शब्द को देने एवं अन्न को लेने वाली जिह्वा (भद्रम्) कल्याणकारी अन्न को खाने वाली (वाक्) वाणी (महः) पूज्य वेदशास्त्र के बोध से युक्त, (मनः) मनन आत्मक अन्तःकरण (मन्युः) दुष्ट आचार वालों पर क्रोधकारी, (स्वराट्) बुद्धि (भामः) ज्ञान-प्रकाश वाली, (मोदाः) हर्ष, उत्साह (प्रमोदाः) उत्तम आनन्द, (अंगुलीः) अंगुलियाँ, (अङ्गानि) शिर आदि अङ्ग, (मित्रम्) मित्र (च) और (सहः) सहनशक्ति—मेरी सहायक हो ॥ ६ ॥

भावार्थः—ये राजजना ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियधर्माचरणैः पथ्याहाराः, सत्यवाचः, दुष्टेषु क्रोधाविष्करा, आनन्दन्तो ऽन्यानानन्दयन्तः, पुरुषार्थिनः, सर्वसुहृदः, बलिष्ठा भवेयुस्ते सर्वदा सुखिनः स्युः ॥ २० । ६ ॥

भावार्थ—जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रिय और धर्माचरण से पथ्य आहार वाले, सत्यवादी, दुष्टों पर क्रोध प्रकट करने वाले, स्वयं आनन्दित तथा अन्यों को आनन्द देने वाले, पुरुषार्थी, सबके मित्र तथा बलिष्ठ होते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥ २० । ६ ॥

भा० पदार्थः—भद्रम्=पथ्याहारा । वाक्=सत्यवाक् । मन्युः=दुष्टेषु क्रोधाविष्करणम् । मोदः=आनन्दः । प्रमोदः=परानन्दः । अङ्गुलीः=पुरुषार्थी । मित्रम्=सर्वसुहृत् । सहः=बलम् ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति की जिह्वा कल्याणकारी भोजन करने वाली हो अर्थात् वह ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियता और धर्माचरण से पथ्य आहार करे । उसकी वाणी पूज्य वेद-शास्त्र के बोध से युक्त हो अर्थात् वह सत्यवादी हो । उसका मन दुष्टों पर क्रोध करने वाला हो । उसकी बुद्धि ज्ञान से प्रकाशित हो । उसके हर्ष, उत्साह, उत्कृष्ट आनन्द राजकार्य में सहायक हों । वह स्वयं आनन्दित और अन्यों को आनन्द देने वाला हो । अङ्गुली आदि अङ्गों से राजकार्य में सहायता लेने वाला अर्थात् पुरुषार्थी हो । वह सबका मित्र हो । सहन-शक्ति वाला अर्थात् बलिष्ठ हो । ऐसे सभापति राजा सदा सुखी रहते हैं ॥ २० । ६ ॥ ●

प्रजापतिः । **राजा=स्पष्टम्** । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्। आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

पदार्थः—(बाहू) भुजौ (मे) मम (बलम्) (इन्द्रियम्) धनम् (हस्तौ) करौ (मे) (कर्म) (वीर्यम्) पराक्रमः (आत्मा) स्वयम्भूर्जीवः (क्षत्रम्) क्षताद्रक्षकम् (उरः) हृदयम् (मम) ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! मे बलमिन्द्रियं बाहू मे कर्म वीर्य्यं हस्तौ ममात्मा उरो हृदयं च क्षत्रमस्तु ॥ ७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **मे** मम बलमिन्द्रियं धनं, **बाहू** भुजौ **मे** मम **कर्म वीर्य्यं** पराक्रमः, **हस्तौ** करौ **ममात्मा** स्वयम्भूर्जीवः, **उरः**= हृदयं **च क्षत्रं** क्षताद्रक्षकम् **अस्तु** ॥ २० । ७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! (मे) मेरा (बलम्) बल, (इन्द्रियम्) धन, (बाहू) भुजाएँ, (कर्म) कर्म, (वीर्यम्) पराक्रम, (हस्तौ) हाथ, (मम) मेरा (आत्मा) स्वयम्भू जीव और (उरः) हृदय (क्षत्रम्) क्षति से रक्षा करने वाला (अस्तु) हो ॥ २० । ७ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैरात्मान्तःकरणबाहुबलं विधाय सुखमुन्नेयम् ॥ २० । ७ ॥

भावार्थ—राजा लोग आत्मा, अन्तःकरण और बाहु-बल को सिद्ध करके सुख को बढ़ावें ॥ २० । ७ ॥

भा० पदार्थः—उरः=अन्तःकरणम्।

अन्यत्र व्याख्यात—(बाहू मे बलं) जो पूर्ण बल है वही मेरी भुजा, (इन्द्रियं हस्तौ) जो उत्तम कर्म और पराक्रम से युक्त इन्द्रिय और मन है वे मेरे हाथों के समान, (आत्मा क्षत्रमुरो मम) जो राजधर्म, शौर्य, धैर्य और हृदय का ज्ञान है यही सब मेरे आत्मा के समान है ॥ ऋग्वेदादि० राजाप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—राजा का बल, धन, बाहू, कर्म, पराक्रम, हाथ, आत्मा और हृदय ये सब प्रजा की रक्षा करने वाले होकर सुख को बढ़ावें ॥ २० । ७ ॥ ●

प्रजापतिः। **सभापतिः=स्पष्टम्**। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी। ऊरू ऽ अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥

पदार्थः—(पृष्ठीः) पृष्ठदेशः=पश्चाद्भागः। अत्र सुपां सुलुगिति सोः स्थाने सुः (मे) (राष्ट्रम्) राजमानं राज्यम् (उदरम्) (अंसौ) बाहूमूले (ग्रीवाः) कण्ठप्रदेशाः (च) (श्रोणी) कटिप्रदेशौ (ऊरू) सक्थिनी (अरत्नी) भुजमध्यप्रदेशौ (जानुनी) ऊरुजङ्घयोर्मध्यभागौ (विशः) प्रजाः (मे) (अङ्गानि) अवयवाः (सर्वतः) सर्वाभ्यो दिग्भ्यस्सर्वेभ्यो देशेभ्यो वा ॥ २० । ८ ॥

प्रमाणार्थ—(पृष्ठीः) 'यहाँ' सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से 'सु' के स्थान में सु-आदेश है ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! मे मम पृष्ठी राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाः श्रोणी ऊरू अरत्नी जानुनी सर्वतोऽन्यानि चाङ्गानि मे विशः सन्ति ॥ २० । ८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **मे**=मम **पृष्ठीः** पृष्ठदेशः=पश्चाद्भागः **राष्ट्रं** राजमानं राज्यम् **उदरमंसौ** बाहूमूले **ग्रीवाः** कण्ठप्रदेशाः **श्रोणी** कटिप्रदेशौ **ऊरू** सक्थिनी **अरत्नी** भुजमध्यप्रदेशौ **जानुनी** ऊरूजङ्घयोर्मध्यभागौ **सर्वतः** सर्वाभ्यो दिग्भ्यस्सर्वेभ्यो देशेभ्यो वा **अन्यानि चाङ्गानि** अवयवाः **मे विशः** प्रजाः **सन्ति** ॥ २० । ८ ॥

भावार्थः—यः स्वदेहाङ्गवत् प्रजाः जानीयात् स एव राजा सर्वदा वर्द्धते ॥ २० । ८ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (पृष्ठीः) पृष्ठ देश=पीठ, (राष्ट्रम्) प्रकाशमान राज्य (उदरम्) उदर=पेट, (अंसौ) बाहु-मूल=कंधे, (ग्रीवा) कण्ठ प्रदेश=गर्दन, (श्रोणी) कटि प्रदेश, (ऊरू) जंघा, (अरत्नी) भुजा का मध्य प्रदेश, (जानुनी) घुटने तथा (सर्वतः) सब ओर से अन्य (अङ्गानि) अङ्ग (मे) मेरी (विशः) प्रजा है ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो सभापति अपने देह के अङ्गों के समान प्रजा को समझता है वह राजा सदा बढ़ता है ॥ २० । ८ ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(पृष्ठीर्मे राष्ट्रं) जो उत्तम राज्य है सो मेरी पीठ के समतुल्य (उदरमांसौ) जो राज्य, सेना और कोश है वह मेरे हस्त का मूल और उदर के समान तथा (ग्रीवाश्च श्रोणी) जो प्रजा को सुख से भूषित और पुरुषार्थी करना है सो मेरे कण्ठ और श्रोणी अर्थात् नाभि के अधोभागस्थान के समतुल्य (ऊरू अरत्नी) जो प्रजा को व्यापार और गणित विद्या में निपुण करना है सो ही अरत्नी और ऊरू अङ्ग के समान, तथा (जानुनी) जो प्रजा और राजसभा का मेल रखना यह मेरी जानु के समान है (विशो मेऽङ्गानि सर्वतः) जो इस प्रकार से प्रजापालन में उत्तम कर्म करते हैं ये सब मेरे अंगों के समान हैं ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति राजा प्रजा को ही अपने पीठ, राज्य, उदर=पेट, कन्धे, ग्रीवा=गर्दन, कटि, जंघा, भुजा का मध्य प्रदेश, घुटने और अन्य सब अंग समझे। जो राजा ऐसा समझता है वही सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ २० । ८ ॥

प्रजापतिः । **सभेशः=स्पष्टम्** । निचृज्जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत् । आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ९ ॥

पदार्थः—(**नाभिः**) शरीरमध्यदेशः (**मे**) मम (**चित्तम्**) (**विज्ञानम्**) सम्यग् ज्ञानं विविधज्ञानं वा (**पायुः**) गुदेन्द्रियम् (**मे**) (**अपचितिः**) प्रजाजनकम् (**भसत्**) भगेन्द्रियम् (**आनन्दनन्दौ**) आनन्देन=संभोगजनितसुखेन नन्दतस्तौ (**आण्डौ**) अण्डाकारौ वृषणौ (**मे**) (**भगः**) ऐश्वर्यम् (**सौभाग्यम्**) उत्तमैश्वर्यस्य भावः (**पसः**) लिङ्गम् (**जङ्घाभ्याम्**) (**पद्भ्याम्**) (**धर्मः**) पक्षपातरहितो न्यायो धर्म इव (**अस्मि**) (**विशि**) प्रजायाम् (**राजा**) प्रकाशमानः (**प्रतिष्ठितः**) प्राप्तप्रतिष्ठः ॥ ९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! मे चित्तं नाभिर्विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसदाण्डावानन्दनन्दौ मे भगः पसः सौभाग्यं सौभाग्ययुक्तं स्यादेवमहं जङ्घाभ्यां पद्भ्यां सह विशि प्रतिष्ठितो धर्मो राजाऽस्मि यस्माद्यूयं मदनुकूला भवत ॥ ९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! मे** मम **चित्तं, नाभिः** शरीरमध्यदेशः, **विज्ञानं** सम्यग् ज्ञानं विविधज्ञानं वा, **पायुः** गुदेन्द्रियं, **मे** मम **अपचितिः** प्रजाजनकं **भसद्** भगेन्द्रियम्, **आण्डौ** अण्डाकारौ वृषणौ **आनन्दनन्दौ** आनन्देन=सम्भोगजनितसुखेन नन्दतस्तौ, **मे** मम **भगः** ऐश्वर्यं, **पसः** लिङ्गं, **सौभाग्यं=सौभाग्ययुक्तम्** उत्तमैश्वर्यस्य भावः **स्यादेवमहं जङ्घाभ्यां पद्भ्यां सह विशि** प्रजायां **प्रतिष्ठितः** प्राप्तप्रतिष्ठः **धर्मः** पक्षपातरहितो न्यायो धर्म इव **राजा** प्रकाशमानः **अस्मि, यस्माद्यूयं मदनकूला भवत** ॥ २० । ९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! (मे) मेरा (चित्तम्) चित्त, (नाभिः) शरीर का मध्य देश नाभि, (विज्ञानम्) सम्यक् ज्ञान वा विविध ज्ञान, (पायुः) गुदा-इन्द्रिय, (मे) मेरा (अपचितिः) प्रजा का जनक (भसद्) भग-इन्द्रिय, (आण्डौ) अण्डाकार वृषण (आनन्दनन्दौ) आनन्द=संभोग जन्य सुख से हर्षित होने वाले, (मे) मेरा (भगः) ऐश्वर्य, (पसः) लिङ्ग (सौभाग्यम्) सौभाग्य से युक्त हो; इस प्रकार मैं—(जङ्घाभ्याम्) जंघाओं तथा (पद्भ्याम्) पावों के साथ (विशि) प्रजा में (प्रतिष्ठितः) सम्मानित, (धर्मः) पक्षपात रहित न्यायरूप धर्म के तुल्य, (राजा) प्रकाशमान राजा (अस्मि) हूँ; इसलिए तुम मेरे अनुकूल रहो ॥ २० । ९ ॥

भावार्थः—यः सर्वैरङ्गैः शुभं कर्माऽऽचरेत्, स धर्मात्मा सन् प्रजायां सुप्रतिष्ठितो राजा स्यात् ॥ २० । ९ ॥

भावार्थ—जो पुरुष सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है वह धर्मात्मा होकर प्रजा में अति प्रतिष्ठित=सम्मानित राजा होता है ॥ २० । ९ ॥

भा० पदार्थः—धर्मः=धर्मात्मा ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—जिस व्यक्ति का चित्त, नाभि, विज्ञान, पायु=गुदा, भग, वृषण, ऐश्वर्य, लिङ्ग सौभाग्य युक्त होते हैं अर्थात् जो सब अङ्गों से शुभ कर्म करता है वह प्रजा में अति प्रतिष्ठित=सम्मानित होता है । वह पक्षपात रहित न्यायकारी अर्थात् धर्मात्मा होकर प्रजा में माननीय राजा हो सकता है ॥ २० । ९ ॥ ●

प्रजापतिः । **सभेशः=सभापतिः** । विराट् शक्वरी । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

प्रति॑ क्ष॒त्रे प्रति॑ तिष्ठामि रा॒ष्ट्रे प्रत्यश्वे॑षु॒ प्रति॑ तिष्ठामि॒ गोषु॑ । प्रत्यङ्गे॑षु॒ प्रति॑ तिष्ठाम्या॒त्मन् प्रति॑ प्रा॒णेषु॑ प्रति॒ तिष्ठामि पु॒ष्टे प्रति॒ द्यावा॑पृथि॒व्योः प्रति॑ तिष्ठामि य॒ज्ञे ॥ १० ॥

पदार्थः—(**प्रति**) प्रतिनिधौ (**क्षत्रे**) क्षताद्रक्षके क्षत्रियकुले (**प्रति**) (**तिष्ठामि**) (**राष्ट्रे**) प्रकाशमाने राज्ये (**प्रति**) (**अश्वेषु**) तुरङ्गादिषु (**प्रति**) (**तिष्ठामि**) (**गोषु**) गोषु पृथिव्यादिषु च (**प्रति**) (**अङ्गेषु**) राज्याऽवयवेषु (**प्रति**) (**तिष्ठामि**) (**आत्मन्**) आत्मनि (**प्रति**) (**प्राणेषु**) (**प्रति**) (**तिष्ठामि**) (**पुष्टे**) (**प्रति**) (**द्यावापृथिव्योः**) सूर्याचन्द्रवन्न्यायप्रकाशभूम्योः (**प्रति**) (**तिष्ठामि**) (**यज्ञे**) विद्वत्सेवासङ्गविद्यादानादिक्रियायाम् ॥ १० ॥

अन्वयः—विशि प्रतिष्ठितो राजाऽहं धर्म्येण क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रति तिष्ठाम्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु प्रतितिष्ठाम्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन् प्रति तिष्ठामि प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति तिष्ठामि द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे प्रति तिष्ठामि ॥ १० ॥

सपदार्थान्वयः—विशि प्रतिष्ठितो राजाऽहं **धर्म्येण क्षत्रे** क्षताद्रक्षके क्षत्रियकुले **प्रति-तिष्ठामि** (प्रतिनिधिभावेन तिष्ठामि) **राष्ट्रे** प्रकाशमाने राज्ये **प्रति+तिष्ठामि, अश्वेषु** तुरङ्गादिषु **प्रति+तिष्ठामि, गोषु** गोषु पृथिव्यादिषु च **प्रति+तिष्ठामि, अङ्गेषु** राज्यावयवेषु **प्रति+तिष्ठामि, आत्मन्** आत्मनि **प्रति+तिष्ठामि, प्राणेषु प्रति+तिष्ठामि, पुष्टे प्रति+तिष्ठामि, द्यावापृथिव्योः** सूर्याचन्द्रवन्न्यायप्रकाशभूम्योः **प्रति+तिष्ठामि, यज्ञे** विद्वत्सेवासङ्गविद्यादानादिक्रियायां **प्रति+तिष्ठामि** ॥ २० । १० ॥

भाषार्थ—प्रजा में प्रतिष्ठित मैं राजा—धर्मयुक्त व्यवहार से (क्षत्रे) क्षति से रक्षक क्षत्रिय-कुल में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (राष्ट्रे) प्रकाशमान राज्य में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूं, (अश्वेषु) घोड़ों में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (गोषु) गौ और पृथिवी आदि में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (अङ्गेषु) राज्य के अङ्गों में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (आत्मनि) आत्मा में प्रतिष्ठित होता हूँ, (प्राणेषु) प्राणों में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (पुष्टे) पुष्टि में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (द्यावापृथिव्योः) सूर्य और चन्द्र के समान न्याय-प्रकाश और भूमि में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ, (यज्ञे) विद्वानों की सेवा, सङ्ग, विद्या-दान आदि कर्म में (प्रति+तिष्ठामि) प्रतिष्ठित होता हूँ ॥ २० । १० ॥

भावार्थः—यो राजा प्रियाऽप्रिये विहाय न्यायधर्मेण प्रजाः प्रशास्य सर्वेषु राजकर्मसु चार-चक्षुर्भूत्वा मध्यस्थया वृत्त्या सर्वाः प्रजाः पालयित्वा सततं विद्यासुशिक्षावर्धको भवेत्, स एव सर्वपूज्यो भवेत् ॥ २० । १० ॥

भावार्थ—जो राजा प्रिय-अप्रिय को छोड़ कर, न्याय एवं धर्म से प्रजा का प्रशासन करके, सब राज-कर्मों में चार-चक्षु वाला होकर, मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजा का पालन करके, सदा विद्या और सुशिक्षा को बढ़ाने वाला होता है वही सब का पूज्य है ॥ २० । १० ॥

भा० पदार्थः—क्षत्रे=राजकर्मणि । गोषु=चारचक्षुष्षु । यज्ञे=विद्यासुशिक्षावर्धने । प्रति+तिष्ठामि=सर्वपूज्यो भवामि ॥

अन्यत्र व्याख्यात—(प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे) जो मनुष्य इस प्रकार के उत्तम पुरुषों की सभा से न्यायपूर्वक राज्य करते हैं उनके लिए परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्मात्मा होके न्याय से राज्य करो क्योंकि जो धर्मात्मा पुरुष हैं, मैं उनके क्षत्र धर्म और सब राज्य में प्रकाशित रहता हूँ और वे सदा मेरे समीप रहते हैं, (प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु०) उन की सेना के अश्व और गौ आदि पशुओं में भी मैं स्वसत्ता से प्रतिष्ठित रहता हूँ, (प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्) तथा सब सेना राजा के अङ्गों और उनके आत्माओं के बीच में भी सदा प्रतिष्ठित रहता हूँ, (प्रतिप्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे) उनके प्राण और पुष्ट व्यवहारों में भी सदा व्यापक रहता हूँ, (प्रतिद्यावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे) जितना सूर्यादि प्रकाशरूप और पृथिव्यादि अप्रकाश रूप जगत् तथा जो अश्वमेधादि यज्ञ हैं इन सबके बीच में भी मैं सर्वदा व्यापक होने से प्रतिष्ठित रहता हूँ । इस प्रकार से तुम लोग मुझको सब स्थानों में परिपूर्ण देखो ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—जो सभापति राजा प्रिय-अप्रिय का परित्याग करके न्याय अर्थात् धर्म से प्रजा का प्रशासन कर क्षत्रिय कुल, राज्य, घोड़े, गौ, पृथिवी, राज्य के विविध अङ्ग, आत्मा, पुष्टि और न्याय-प्रकाश में प्रतिष्ठित होकर अर्थात् सब राजकर्मों में चार-चक्षु बनकर मध्यस्थ तटस्थ

वृत्ति से सब प्रजा का पालन करता है तथा विद्वानों की सेवा, सङ्ग और विद्यादान आदि कर्मों में प्रतिष्ठित अर्थात् सदा विद्या और सुशिक्षा को बढ़ाता है वही सर्वपूज्य राजा होता है ॥ २० । १० ॥

प्रजापतिः । **उपदेशकाः**=स्पष्टम् । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथोपदेशकविषयमाह ॥

अब उपदेशक विषय का उपदेश किया जाता है ॥

त्रया देवा ऽ एकादश त्रयस्त्रिᳬशाः सुराधसः ।
बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा ॥ ११ ॥

पदार्थः--(**त्रयाः**) त्रयाणामवयवभूताः (**देवाः**) दिव्यगुणाः (**एकादश**) एतत्संख्याताः (**त्रयस्त्रिंशाः**) त्र्यधिकास्त्रिंशत् (**सुराधसः**) सुष्ठु राधसः=संसिद्धयो येभ्यस्ते (**बृहस्पतिपुरोहिताः**) बृहस्पतिः=सूर्य्यः पुरः=पूर्वो हितो=धृतो येषु ते (**देवस्य**) प्रकाशमानेश्वरस्य (**सवितुः**) सकलजगदुत्पादकस्य (**सवे**) परमैश्वर्ययुक्ते प्रेरितव्ये जगति (**देवाः**) विद्वांसः (**देवैः**) द्योतमानैः (**अवन्तु**) रक्षन्तु (**मा**) माम् ॥ ११ ॥

अन्वयः—ये त्रया देवा बृहस्पतिपुरोहिताः सुराधस एकादश त्रयस्त्रिंशाः सवितुर्देवस्य सवे वर्त्तन्ते तैर्देवैः सहितं मा देवा अवन्तु उन्नतं सम्पादयन्तु ॥ ११ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये त्रयाः** त्रयाणामवयवभूताः **देवाः** दिव्यगुणाः **बृहस्पतिपुरोहिताः** बृहस्पतिः=सूर्य्यः पुरः=पूर्वो हितो=धृतो येषु ते **सुराधसः** सुष्ठु राधसः=संसिद्धयो येभ्यस्ते **एकादश** एतत्संख्याताः **त्रयस्त्रिशाः** त्र्यधिकास्त्रिशत् **सवितुः** सकलजगदुत्पादकस्य **देवस्य** प्रकाशमानेश्वरस्य **सवे** परमैश्वर्ययुक्ते प्रेरितव्ये जगति **वर्तन्ते, तैर्देवैः** द्योतमानैः **सहितं मा** मां **देवाः** विद्वांसः **अवन्तु**=**उन्नतं सम्पादयन्तु** रक्षन्तु ॥ २० । ११ ॥

भाषार्थ—जो (त्रयाः) वसु, रुद्र, आदित्य तीन प्रकार के (देवाः) दिव्य गुणों वाले (बृहस्पति-पुरोहिताः) बृहस्पति=सूर्य जिनमें प्रमुख है, (सुराधसः) जो उत्तम सिद्धि के हेतु हैं, (एकादश) दस प्राण आदि और ग्यारहवां जीवात्मा, (त्रयस्त्रिशाः) तैंतीस देवता--(सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (देवस्य) प्रकाशमान ईश्वर के (सवे) परम ऐश्वर्य से युक्त तथा प्रेरितव्य जगत् में हैं, उन (देवैः) प्रकाशमान देवताओं सहित (मा) मुझे (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) उन्नत करें एवं मेरी रक्षा करें ॥ २० । ११ ॥

भावार्थः—ये पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशद्यु-चन्द्रनक्षत्राण्यष्टौ, प्राणादयो दश वायव एकादशो जीवात्मा, द्वादश मासा, विद्युद् यज्ञश्चैतेषां दिव्य-पृथिव्यादीनां पदार्थानां गुणकर्मस्वभावोपदेशेन सर्वान् मनुष्यानुत्कर्षयन्ति, ते सर्वोपकारका भवन्ति ॥ २० । ११ ॥

भावार्थ—जो विद्वान्–पृथिवी, जल, अग्नि वायु, आकाश, द्यौः, चन्द्र, और नक्षत्र आठ, प्राण आदि दस वायु एवं ग्यारहवाँ जीवात्मा, बारह मास, विद्युत् और यज्ञ—इन दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नत करते हैं, वे सबके उपकारक होते हैं ॥ २० । ११ ॥

भा० पदार्थः—त्रयस्त्रिशाः=पृथिवी-अप्-तेजः-वायु-आकाश-द्यु-चन्द्र-नक्षत्राणि (८) प्राणादयो दश वायवः (१०) जीवात्मा (११) द्वादश मासाः (१२) विद्युद्, यज्ञः (२) ३३ ॥

भाष्यसार—**उपदेशक**—सकल जगत् के उत्पादक, प्रकाशमान ईश्वर का यह जगत् परम ऐश्वर्य से युक्त है। वही इसको प्रेरित कर रहा है, चला रहा है। उसका यह प्रेरितव्य है। इस जगत् में तीन प्रकार के देवता हैं। वसु, रुद्र और आदित्य। ये दिव्य गुणों से युक्त, सूर्य की प्रमुखता वाले और उत्तम सिद्धि के हेतु हैं। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, द्यौ, चन्द्र और नक्षत्र ये आठ वसु कहलाते हैं। प्राण आदि दस और ग्यारहवां जीवात्मा ये रुद्र कहलाते हैं। बारह मास आदित्य कहलाते हैं। दो—विद्युत् और यज्ञ मिलकर तैंतीस देवता कहलाते हैं।

विद्वान् उपदेशक लोग इन दिव्य गुणों वाले पृथिवी आदि देवताओं के गुण, कर्म, स्वभाव का उपदेश करके सब मनुष्यों को उन्नत बनावें ॥ २० । ११ ॥ ●

प्रजापतिः । **विश्वेदेवाः**=विद्वांसः । प्रकृतिः । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूꣳषि । सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा ऽ आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

पदार्थः—(**प्रथमाः**) आदिमाः पृथिव्यादयोऽष्टौ वसवः (**द्वितीयैः**) एकादशप्राणाद्यै रुद्रैः (**द्वितीयाः**) रुद्राः (**तृतीयैः**) द्वादशमासैः (**तृतीयाः**) (**सत्येन**) कारणेन (**सत्यम्**) (**यज्ञेन**) शिल्पक्रियया (**यज्ञः**) (**यजुर्भिः**) (**यजूंषि**) (**सामभिः**) (**सामानि**) (**ऋग्भिः**) (**ऋचः**) (**पुरोनुवाक्याभिः**) अथर्ववेदप्रकरणैः (**पुरोनुवाक्याः**) (**याज्याभिः**) यज्ञसम्बन्धक्रियाभिः (**याज्याः**) (**वषट्कारैः**) उत्तमकर्मभिः (**वषट्काराः**) (**आहुतिभिः**) (**आहुतयः**) (**मे**) मम (**कामान्**) इच्छाः (**सम्**) सम्यगर्थे (**अर्धयन्तु**) (**भूः**) अस्यां भूमौ (**स्वाहा**) सत्यक्रियया ॥ २० । १२ ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! यथा प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयः स्वाहैते सर्वे भूर्मे कामान्त्समर्धयन्तु तथा मां भवन्तो बोधयन्तु ॥ २० । १२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यथा **प्रथमाः** आदिमाः पृथिव्यादयोऽष्टौ वसवः **द्वितीयैः** एकादशप्राणाद्यै रुद्रैः, **द्वितीयाः** रुद्राः **तृतीयैः** द्वादशमासैः, **तृतीयाः सत्येन** कारणेन, **सत्यं यज्ञेन** शिल्पक्रियया, **यज्ञो यजुर्भिर्यजूंषि सामभिः, सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः** अथर्ववेदप्रकरणैः, **पुरोनुवाक्या याज्याभिः** यज्ञसम्बन्धक्रियाभिः, **याज्या वषट्कारैः** उत्तमकर्मभिः, **वषट्कारा आहुतिभिराहुतयः स्वाहा** सत्यक्रियया **एते सर्वे भूः** अस्यां भूमौ **मे** मम **कामान्** इच्छाः **समर्धयन्तु, तथा मां भवन्तो बोधयन्तु** ॥ २० । १२ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे—(प्रथमाः) प्रथम पृथिवी आदि आठ वसु, (द्वितीयैः) दूसरे प्राण आदि ग्यारह रुद्रों से, (द्वितीयाः) दूसरे रुद्र (तृतीयैः) तीसरे बारह मासों से, (तृतीयाः) तीसरे बारह मास (सत्येन) कारण=प्रकृति से, (सत्यम्) कारण=प्रकृति (यज्ञेन) शिल्प-क्रिया से, (यज्ञः) शिल्प-क्रिया (यजुर्भिः) यजुर्मन्त्रों से, (यजूंषि) यजुर्मन्त्र (सामभिः) साम-मन्त्रों से, (सामानि) साम-मन्त्र (ऋग्भिः) ऋचाओं से, (ऋचः) ऋग्-मन्त्र (पुरोऽनुवाक्याभिः) अथर्ववेद के प्रकरणों से, (पुरोऽनुवाक्याः) अथर्ववेद के प्रकरण (याज्याभिः)

यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं से, (याज्याः) यज्ञ-क्रियाएँ (वषट्कारैः) उत्तम कर्मों से, (वषट्काराः) उत्तम कर्म (आहुतिभिः) आहुतियों से, (आहुतयः) आहुतियाँ (स्वाहा) सत्य आचरण से—ये सब (भूः) इस भूमि पर (मे) मेरी (कामान्) इच्छाओं को (समर्धयन्तु) सिद्ध करें, वैसे—मुझे आप समझाओ ॥ २० । १२ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकाः पूर्वं वेदानध्याप्य पृथिव्यादिपदार्थविद्याः संज्ञाप्य कारणकार्यसम्बन्धेन तद्गुणान् साक्षात् कारयित्वा हस्तक्रियया सर्वान् जनान् कुशलान् संपादयेयुः ॥ २० । १२ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग—पहले वेदों को पढ़कर, पृथिवी आदि पदार्थों की विद्याओं को बतलाकर, कारण-कार्य सम्बन्ध से उनके गुणों का साक्षात् कराकर, हस्तक्रिया से सब मनुष्यों को कुशल बनावें ॥ २० । १२ ॥

भा० पदार्थः—भूः=पृथिव्यादिपदार्थविद्या ॥

भाष्यसार—**उपदेशक**—अध्यापक और उपदेशक विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे पृथिवी आदि आठ वसु, प्राण आदि ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य, कारण=प्रकृति, यज्ञ, यजुर्वेद, सामवेद, ऋग्वेद, पुरोऽनुवाक्या=अथर्ववेद के प्रकरण, यज्ञ-क्रिया, उत्तम कर्म, आहुति और सत्याचरण—ये जिस विधि से मनुष्यों की कामनाओं को सिद्ध करें उस विधि का उपदेश करें। वे प्रथम उन्हें वेदों को पढ़ावें तत्पश्चात् पृथिवी आदि पदार्थों की विद्याओं को समझावें। कार्य-कारण सम्बन्ध से उनके गुणों का साक्षात् करावें। हस्त-क्रिया से सब मनुष्यों को कार्य-कुशल बनावें ॥ २० । १२ ॥

प्रजापतिः । **अध्यापकोपदेशकौ=स्पष्टम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ।

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ ऽ आन॑ति॒राग॑तिः ।
मा॒ꣳसं म॒ ऽ उप॑नति॒र्वस्वस्थि म॒ज्जा म॒ ऽ आन॑तिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—(**लोमानि**) रोमाणि (**प्रयतिः**) प्रयतन्ते यया सा (**मम**) (**त्वक्**) (**मे**) (**आनतिः**) आनमन्ति यया सा (**आगतिः**) आगमनम् (**मांसम्**) (**मे**) (**उपनतिः**) उपनमन्ति यया सा (**वसु**) द्रव्यम् (**अस्थि**) (**मज्जा**) (**मे**) (**आनतिः**) समन्तात् नमनम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकाः ! यथा मम लोमानि प्रयतिर्मे त्वगानतिर्मांसमागतिर्मे वसूपनतिर्मेऽस्थि मज्जा चानतिः स्यात् तथा यूयं प्रयतध्वम् ॥ १३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे अध्यापकोपदेशकाः ! **यथा मम लोमानि** रोमाणि **प्रयतिः** प्रयतन्ते यया सा **मे त्वगानतिः** आनमन्ति यया सा **मांसमागतिः** आगमनं **मे वसु** द्रव्यम् **उपनतिः**

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो जैसे—(मम) मेरे (लोमानि) रोम, (प्रयतिः) मेरा प्रयत्न, (मे) मेरी (त्वक्) त्वचा, (आनतिः) मेरी नम्रता, (मांसम्) मेरा मांस, (आगतिः) आग-

उपनमन्ति यया सा **मेऽस्थि मज्जा चानतिः** समन्तान्नमनं **स्यात् तथा यूयं प्रयतध्वम्** ॥२०।१३॥

मन, (मे) मेरा (वसु) धन, (उपनतिः) मेरा उपनमन, (मे) मेरी (अस्थि) हड्डी, (मज्जा) मज्जा, और (आनतिः) सब ओर सत्कार हो वैसा तुम प्रयत्न करो ॥ २० । १३ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकैरेवं प्रयतितव्यं यतः सुशिक्षया युक्ताः सर्वे पुरुषाः, सर्वाः कन्याश्च सुन्दराङ्गस्वभावा दृढबलाः, धार्मिका, विद्यायुक्ताः स्युरिति ॥ २० । १३ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग इस प्रकार प्रयत्न करें कि जिससे—सुशिक्षा से युक्त सब पुरुष और सब कन्याएँ सुन्दर अङ्ग और स्वभाव वाली, दृढ़ बल वाली धार्मिक तथा विद्या से युक्त हों ॥ २० । १३ ॥

भाष्यसार—**अध्यापक और उपदेशक**—विद्वान् अध्यापक और उपदेशक लोग ऐसा प्रयत्न करें जिससे सब पुरुष और कन्याएँ रोम, त्वचा, मांस, धन, अस्थि, मज्जा आदि से युक्त होकर सुन्दर अङ्ग वाले, दृढ़ बल से युक्त, धार्मिक तथा विद्या से युक्त हो, पुरुषार्थ, नम्रता, आगमन, उपनमन तथा सत्कार आदि गुणों को धारण करके सुशिक्षा से युक्त हों ॥ २० । १३ ॥

प्रजापतिः । **अग्निः**=**विद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः ॥ १४ ॥

पदार्थः—(**यत्**) ये (**देवाः**) अध्यापकोपदेशका विद्वांसः (**देवहेडनम्**) देवानां हेडनमनादरम् (**देवासः**) विद्वांसः (**चकृम**) कुर्याम । **अत्र संहितायामिति दीर्घः** । (**वयम्**) (**अग्निः**) अग्निरिव सर्वासु विद्यासु देदीप्यमानो विद्वान् (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) अपराधात् (**विश्वात्**) समग्रात् (**मुञ्चतु**) पृथक् करोतु (**अंहसः**) दुष्टाद् व्यसनात् ॥ १४ ॥

प्रमाणार्थ—(**चकृम**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) से संहिता में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यत् वयं देवा अन्ये देवासश्च परस्परं देवहेडनं चकृम तस्माद्विश्वादेनसोंहसश्चाग्निर्मा मुञ्चतु ॥ १४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यत्** ये **वयं देवाः** अध्यापकोपदेशका विद्वांसः **अन्ये देवासः** विद्वांसः **च परस्परं देवहेडनं** देवानां हेडनमनादरं **चकृम** कुर्याम, **तस्माद्विश्वात्** समग्राद् **एनसः** अपराधाद् **अंहसो** दुष्टाद् व्यसनात् **चाग्निः** अग्निरिव सर्वासु विद्यासु देदीप्यमानो विद्वान् **मा** मां **मुञ्चतु** पृथक्करोतु ॥ २० । १४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य—(यत्) जो (वयम्) हम (देवाः) अध्यापक और उपदेशक विद्वान्, और अन्य (देवासः) विद्वान् लोग परस्पर (देवहेडनम्) देवों=विद्वानों का अनादर (चकृम) करें, (तस्मात्) उस (विश्वस्मात्) समग्र (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (अग्निः) अग्नि के समान सब विद्याओं में प्रकाशमान विद्वान्—(मा) मुझे (मुञ्चतु) पृथक् करें ॥ १४ ॥

भावार्थः—यदि कदाचिदकस्माद् भ्रान्त्या

भावार्थ—यदि कभी अकस्मात् भ्रान्ति

कस्यापि विदुषोऽनादरं कश्चित् कुर्यात् तर्हि तदैव क्षमां कारयेत् ।

यथाऽग्निः सर्वेषु प्रविष्टः सन् सर्वान् स्वस्वरूपस्थान् करोति तथा विदुषा सत्योपदेशेनासत्याचाराद् वियोज्य सत्याचारे प्रवर्त्य सर्वे धार्मिकाः कार्याः ॥ २० । १४ ॥

से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसे तभी क्षमा करावे ।

जैसे—अग्नि सब में प्रविष्ट होकर सबको अपने स्वरूप में स्थित करता है वैसे—विद्वान् पुरुष सत्य के उपदेश से असत्य आचरण से वियुक्त करके, सत्य आचरण में प्रवृत्त कर सबको धार्मिक बनायें ॥ २० । १४ ॥

भा० पदार्थः—देवहेडनम्=विदुषोऽनादरम् ।

भाष्यसार—विद्वान्—अध्यापक और उपदेशक तथा अन्य सब विद्वान् परस्पर सत्कार करें । यदि कभी किसी का भ्रान्तिवश अनादर हो जावे तो उसे परस्पर मिलकर क्षमा करें करावें । जैसे अग्नि सब पदार्थों में प्रविष्ट है वैसे विद्वान् सब समाज में प्रविष्ट होकर सत्य-उपदेश के द्वारा अपराध, दुष्ट व्यसन अर्थात् असत्य आचरण से सब को पृथक् रखे और सब विद्याओं में प्रकाशमान उक्त विद्वान् सब मनुष्यों को सत्य आचरण में प्रवृत्त करके उन्हें धार्मिक बनायें ॥ २० । १४ ॥

प्रजापतिः । **वायुः**=**आप्तविद्वान्** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनांꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १५ ॥

पदार्थः—(**यदि**) (**दिवा**) दिवसे (**यदि**) (**नक्तम्**) रात्रौ (**एनांसि**) अपराधान् (**चकृम**) अत्र पूर्ववद् दीर्घः । (**वयम्**) (**वायुः**) वायुरिव वर्त्तमान आप्तः (**मा**) माम् (**तस्मात्**) (**एनसः**) (**विश्वात्**) (**मुञ्चतु**) (**अंहसः**) ॥ १५ ॥

प्रमाणार्थ—(**चकृम**) यहाँ 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) से पूर्ववत् संहिता में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यदि दिवा यदि नक्तमेनांसि वयं चकृम तस्माद्विश्वादेनसोऽहसश्च मा वायुर्मुञ्चतु ॥ १५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **यदि दिवा** दिवसे **यदि नक्तं** रात्रौ **एनांसि** अपराधान् **वयं चकृम, तस्माद् विश्वादेनसोऽहसश्च मा** मां **वायुः** वायुरिव वर्त्तमान आप्तः **मुञ्चतु** ॥ २० । १५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! (यदि) यदि (दिवा) दिन में, (यदि) यदि (नक्तम्) रात्रि में (एनांसि) अपराध (वयम्) हम (चकृम) करें तो (तस्मात्) उस (विश्वस्मात्) सब (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (मा) मुझे (वायुः) वायु के समान वर्ताव वाला आप्त विद्वान् (मुञ्चतु) पृथक् करे ॥ २० । १५ ॥

भावार्थः—यदहोरात्रे अज्ञानात् पापं

भावार्थ—दिन और रात्रि में अज्ञान से जो

कुर्युस्तस्मादपि पापात् सर्वान् शिष्यान् शिक्षकाः पृथक् कुर्वन्तु ॥ २० । १५ ॥

पाप करें उस पाप से भी सब शिष्यों को शिक्षक लोग पृथक् करें ॥ २० । १५ ॥

भा० पदार्थः—एनसः=पापात् । मा=मां (शिष्यम्) । वायुः=शिक्षकः । मुञ्चतु=पृथक् करोतु ॥

भाष्यसार—आप्त विद्वान्—यदि दिन में अथवा रात्रि में शिष्य लोग जो अपराध करें उन अपराध और दुष्ट व्यसन से वायु के समान पवित्र करने वाले आप्त, शिक्षक विद्वान् लोग शिष्यों को उपदेश के द्वारा पृथक् करें ॥ २० । १५ ॥

प्रजापतिः । **सूर्यः**=विद्वान् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽ एनांꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १६ ॥

पदार्थः—(यदि) (जाग्रत्) जागरणे (यदि) (स्वप्ने) निद्रायाम् (एनांसि) (चकृम) अत्रापि पूर्ववद् दीर्घः (वयम्) (सूर्यः) सवितृवद्वर्त्तमानः (मा) माम् (तस्मात्) (एनसः) (विश्वात्) (मुञ्चतु) (अंहसः) ॥ २० । १६ ॥

प्रमाणार्थ—(चकृम) यहाँ भी 'संहितायाम्' (६ । ३ । ११४) से पूर्ववत् संहिता में दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यदि जाग्रत् यदि स्वप्न एनांसि वयं चकृम तस्माद्विश्वादेनसोंऽहसश्च सूर्य इव भवान् मा मुञ्चतु ॥ २० । १६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यदि जाग्रत् जागरणे यदि स्वप्ने निद्रायाम् एनांसि वयं चकृम, तस्माद् विश्वादेनसोऽहसश्च सूर्यः सवितृवद्वर्त्तमानः इव भवान् मा मां मुञ्चतु ॥ २० । १६ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य—(यदि) यदि (जाग्रत्) जागते समय, (यदि) यदि (स्वप्ने) निद्रा में (एनांसि) अपराध (वयम्) हम (चकृम) करें तो (तस्मात्) उस (एनसः) अपराध और (अंहसः) दुष्ट व्यसन से (सूर्यः) सूर्य के समान वर्ताव वाले आप विद्वान्—(मा) मुझे (मुञ्चतु) पृथक् करें ॥ २० । १६ ॥

भावार्थः—यां काचिद् दुश्चेष्टां जनाः कुर्युर्विद्वांसस्तस्यास्तान् सर्वान् सद्यो निवारयेयुः ॥

भावार्थ—जिस किसी दुष्ट चेष्टा को लोग करें, विद्वान् पुरुष उससे उन सबको शीघ्र दूर हटावें ॥ २० । १६ ॥

भा० पदार्थः—एनांसि=दुष्टचेष्टाः । सूर्यः=विद्वान् । मुञ्चतु=निवारयतु ॥

भाष्यसार—विद्वान्—मनुष्य जागते वा सोते समय जो कोई दुष्ट-चेष्टा करें तो सूर्य के समान अन्धकार को दूर करने वाले विद्वान् लोग उपदेश के द्वारा उस अपराध अर्थात् दुष्ट चेष्टा एवं दुष्ट व्यसन से उन्हें शीघ्र दूर हटावें ॥ २० । १६ ॥

प्रजापतिः । **लिङ्गोक्ताः**=अध्यापकोपदेशकाः । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये ।
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ १७ ॥

पदार्थः—(यत्) (ग्रामे) (यत्) (अरण्ये) जङ्गले (यत्) (सभायाम्) (यत्) (इन्द्रिये) मनसि (यत्) (शूद्रे) (यत्) (अर्ये) स्वामिनि वैश्ये वा (यत्) (एनः) (चकृम) कुर्मो वा करिष्यामः (वयम्) (यत्) (एकस्य) (अधि) (धर्मणि) (तस्य) (अवयजनम्) दूरीकरणसाधनम् (असि) ॥ १७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! वयं यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये यच्छूद्रे यदर्य्ये यदेकस्याधिधर्म्मणि यदेनश्चकृम तस्य सर्वस्य त्वमवयजनमसि तस्मान्महाशयोऽसि ॥ १७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **वयं यद् ग्रामे यदरण्ये** जङ्गले **यत्सभायां यदिन्द्रिये** मनसि **यच्छूद्रे यदर्य्ये** स्वामिनि वैश्ये वा **यदेकस्याधिधर्म्मणि यदेनश्चकृम** कुर्मो वा करिष्यामः **तस्य सर्वस्य त्वमवयजनं** दूरीकरणसाधनम् **असि तस्मान्महाशयोऽसि** ॥ २० । १७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू—(वयम्) हम लोग (यत्) जो (ग्रामे) ग्राम में, (यत्) जो (अरण्ये) जंगल में, (यत्) जो (सभायाम्) सभा में, (यत्) जो (इन्द्रिये) मन में, (यत्) जो (शूद्रे) शूद्र में, (यत्) जो (अर्ये) स्वामी वा वैश्य में, (यत्) जो (एकस्य) एक व्यक्ति के (अधि) अधिकृत (धर्मणि) धर्म में (यत्) जो (एनः) पाप (चकृम) करते हैं वा करेंगे उस सब पाप को (अवयजनम्) दूर करने का साधन (असि) है, इसलिए महाशय है ॥ २० । १७ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः कदाचित् क्वापि पापाचरणं नैव कर्त्तव्यं, यदि कथंचित् क्रियेत तर्हि तत्सर्वं स्वकुटुम्बविद्वत्सन्निधौ राजसभायां च सत्यं वाच्यम् ।

येऽध्यापकोपदेशकाः स्वयं धार्मिका भूत्वाऽन्यान् सम्पादयन्ति तेभ्योऽधिकः को भूषकः परः ॥ १७ ॥

भावार्थ—मनुष्य कभी कहीं भी पाप-आचरण न करें, यदि किसी प्रकार हो भी जाए तो उसके विषय में अपने कुटुम्ब एवं विद्वानों के समीप और राजसभा में सत्य कहें ।

जो अध्यापक और उपदेशक लोग स्वयं धार्मिक होकर अन्यों को धार्मिक बनाते हैं उनसे अधिक मनुष्यों को भूषित करने वाला दूसरा कौन है ? ॥ २० । १७ ॥

भाष्यसार—मनुष्य—ग्राम, जंगल, सभा, मन इन्द्रिय में तथा शूद्र, अर्य अर्थात् स्वामी वा वैश्य, एक व्यक्ति के अपने स्वतन्त्र धर्म=कर्त्तव्य के प्रति जो पाप करते हैं, उस सब पाप को दूर करने का साधन अध्यापक और उपदेशक विद्वान् है, इसलिए वह महाशय कहलाता है । वह उपदेश के द्वारा उक्त पाप को दूर करता है । जो अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोग स्वयं धार्मिक होकर अन्यों को धार्मिक बनाते हैं उनसे बढ़कर मनुष्यों को भूषित करने वाला कोई नहीं । मनुष्य कभी और कहीं भी पापाचरण न करें । यदि कभी हो भी जावे तो सर्वत्र सत्य कहें ॥ २० । १७ ॥

प्रजापतिः । **वरुणः**=वरप्रापको विद्वान् । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यदापोऽअघ्न्या ऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ १८ ॥

पदार्थः—(**यत्**) याः (**आपः**) प्राणाः (**अघ्न्याः**) हन्तुमयोग्या गावः (**इति**) (**वरुण**) सर्वोत्कृष्ट (**इति**) अनेन प्रकारेण (**शपामहे**) उपालभामहे (**ततः**) तस्मादविद्यादिक्लेशादधर्माचरणाच्च (**वरुण**) वरप्रापक (**नः**) अस्मान् (**मुञ्च**) पृथक् कुरु (**अवभृथ**) विद्याव्रतस्नातक (**निचुम्पुण**) मन्दगामिन् । **अत्र चुप मन्दायां गतावित्यस्मादौणादिक उणन्प्रत्यय उमागमश्च** (**निचेरुः**) निश्चितानन्दप्रदः (**असि**) (**निचुम्पुणः**) निश्चितानन्दयुक्तः (**अव**) (**देवैः**) विद्वद्भिः (**देवकृतम्**) देवैराचरितम् (**एनः**) पापम् (**अयक्षि**) नाशयसि (**अव**) (**मर्त्यैः**) अविद्वद्भिर्मनुष्यैः (**मर्त्यकृतम्**) मर्त्यैराचरितम् (**पुरुराव्णः**) बहुदुःखप्रदात् (**देव**) दिव्यबोधप्रद (**रिषः**) हिंसनात् (**पाहि**) ॥ १८ ॥

प्रमाणार्थ—(**निचुम्पुण**) यहाँ 'चुप मन्दायां गतौ' इस धातु से औणादिक 'उणन्' प्रत्यय और 'उम्' का आगम है ॥

अन्वयः—हे वरुण देव ! यतस्त्वं यदापोऽघ्न्या इति वरुणेति वयं शपामहे ततो नो मुञ्च । हे अवभृथ निचुम्पुण ! त्वं निचेरुर्निचुम्पुणोऽसीति पुरुराव्णो रिषस्पाहि यद्देवकृतमेनोऽस्ति तद् देवैरवायक्षि यन्मर्त्यैः कृतमेनोऽस्ति तन्मर्त्यैः सहावायक्षि ॥ १८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **वरुण** वरप्रापक **देव** ! दिव्यबोधप्रद ! **यतस्त्वं यद्** याः **आपः** प्राणाः **अघ्न्याः** हन्तुमयोग्या गावः **इति वरुण** सर्वोत्कृष्ट **इति** अनेन प्रकारेण **वयं शपामहे** उपालभामहे, **ततः** तस्मादविद्यादिक्लेशादधर्माचरणाच्च **नः** अस्मान् **मुञ्च** पृथक् कुरु ।

हे **अवभृथ** विद्याव्रतस्नातक ! **निचुम्पुण** मन्दगामिन् ! **त्वं निचेरुः** निश्चितानन्दप्रदः **निचुम्पुणः** निश्चितानन्दयुक्तः **असीति पुरुराव्णः** बहुदुःखप्रदाद् **रिषः** हिंसनात् **पाहि** ।

यद्देवकृतं देवैराचरितम् **एनः** पापम् **अस्ति, तद्देवैः** विद्वद्भिः **अवायक्षि** नाशयसि, **यन्मर्त्यकृतं** मर्त्यैराचरितम् **एनः** पापम् **अस्ति, तन्मर्त्यैर्** अविद्वद्भिर्मनुष्यैः **सहावायक्षि** नाशयसि ॥ २० । १८ ॥

भाषार्थ—हे (वरुण) वरों के प्रापक, (देव) दिव्य बोध के दाता, विद्वान् तू—(याः) जो (आपः) प्राण हैं, (अघ्न्याः) हनन के अयोग्य गौवें हैं (इति) ऐसा, (वरुणः) सब से उत्कृष्ट है (इति) ऐसा हम (शपामहे) शपथपूर्वक कहते हैं, (ततः) उस अविद्या आदि क्लेश और अधर्माचरण से (नः) हमें (मुञ्च) पृथक् कर ।

हे (अवभृथ) विद्याव्रत स्नातक (निचुम्पुण) मन्दगामी तू—(निचेरुः) निश्चित आनन्ददाता, (निचुम्पुणः) निश्चित आनन्द से युक्त (असि) है, अतः (पुरुराव्णः) बहुत दुःखदायक (रिषः) हिंसा से (पाहि) रक्षा कर ।

जो (देवकृतम्) विद्वानों से किया (एनः) पाप है उसे (देवैः) विद्वानों से (अवायक्षि) नष्ट कराता है, जो (मर्त्यकृतम्) मनुष्यों से किया (एनः) पाप है उसे (मर्त्यैः) अविद्वान् मनुष्यों के साथ (अवायक्षि) नष्ट कराता है ॥ २० । १८ ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकैः शिष्या ईदृशाः सत्यवादिनः संपादनीया यदेतैः क्वापि शपथः कर्त्तव्यो न स्यात्,

यद्यन्मनुष्यैः श्रेष्ठं कर्माचरितं भवेत्, तत्तत्सर्वैराचरणीयं, यद्यत् पापात्मकं तत्तत् कदाचित् केनचित् नो अनुष्ठेयम् ॥ २० । १८ ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग शिष्यों को ऐसे सत्यवादी बनावें कि इन्हें कहीं भो शपथ न ग्रहण करनी पड़े।

मनुष्य जिस-जिस श्रेष्ठ कर्म का आचरण करें उस-उस का सब लोग आचरण करें, और जो-जो पाप रूप कर्म है उस-उस का कभी कोई अनुष्ठान न करे ॥ २० । १८ ॥

भा० पदार्थः—एनः=पापात्मकं कर्म।

भाष्यसार—विद्वान्—वरों का प्रापक, दिव्य बोध का दाता विद्वान्—ये प्राण हैं, ये हनन के अयोग्य गौवें हैं, ये सबसे उत्कृष्ट हैं इत्यादि शपथ-ग्रहण से अपने शिष्यों को पृथक् रखे। अध्यापक और उपदेशक लोग अपने शिष्यों को ऐसा सत्यवादी बनावें कि जिससे इन्हें कहीं भी शपथ-ग्रहण करनी न पड़े। विद्वान् लोग उपदेश के द्वारा अविद्या आदि क्लेश और अधर्माचरण से शिष्यों को दूर रखें।

मन्दगामी विद्याव्रत स्नातक निश्चित आनन्द का दाता तथा स्वयं निश्चित आनन्द से युक्त होता है। वह अति दुःखदायक हिंसा से सबकी रक्षा करे।

विद्वान् लोग उपदेश के द्वारा विद्वानों और साधारण मनुष्यों द्वारा किए गए पापों का वेदोपदेश से विनाश करें सब मनुष्य श्रेष्ठ कर्म का सदा आचरण करें और जो पापात्मक कर्म है उसका कभी अनुष्ठान न करें ॥ २० । १८ ॥

प्रजापतिः। **आपः**=**प्राणाः**। निचृदतिजगति। निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सं त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒तापः॑। सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽ आप॒ऽ ओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ १९ ॥

पदार्थः—(**समुद्रे**) अन्तरिक्षे (**ते**) तव (**हृदयम्**) आत्मबलं, जीवनहेतुस्थानम् (**अप्सु**) प्राणेषु (**अन्तः**) अन्तःकरणम् (**सम्**) सम्यगर्थे (**त्वा**) (**विशन्तु**) (**ओषधीः**) ओषध्यः (**उत**) (**आपः**) प्राणाः (**सुमित्रियाः**) सुमित्रा इव (**नः**) अस्मभ्यम् (**आपः**) प्राणा जलानि वा (**ओषधयः**) सोमयवाद्याः (**सन्तु**) (**दुर्मित्रियाः**) दुर्मित्राः=शत्रव इव (**तस्मै**) (**सन्तु**) (**यः**) (**अस्मान्**) (**द्वेष्टि**) (**यम्**) (**च**) (**वयम्**) (**द्विष्मः**) अप्रीतयामः ॥ २० । १९ ॥

अन्वयः—हे शिष्य ! ते हृदयं समुद्रे अप्स्वन्तरस्तु त्वौषधीः संविशन्तूतापः संविशन्तु यतो न आप ओषधयश्च सुमित्रियाः सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु ॥ २० । १९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे शिष्य ! **ते** तव **हृदयम्** आत्मबलं, जीवनहेतुस्थानं **समुद्रे** अन्तरिक्षे, **अप्सु** प्राणेषु **अन्तः** अन्तःकरणम् **अस्तु**, **त्वौषधीः**

भाषार्थ—हे शिष्य ! (ते) तेरा (हृदयम्) आत्म बल एवं जीवन का हेतु स्थान-हृदय (समुद्रे) अन्तरिक्ष में, (अप्सु) प्राणों में (अन्तः) अन्तःकरण

ओषधयः सं विशन्तु, उताप: प्राणाः **संविशन्तु यतो नः अस्मभ्यम् आपः** प्राणा जलानि वा **ओषधयः** सोमयवाद्याः **च सुमित्रियाः** सुमित्रा इव सन्तु, **योऽस्मान् द्वेष्टि, यं वयं द्विष्मः** अप्रीतयामः **तस्मै दुर्मित्रियाः** दुर्मित्राः=शत्रव इव सन्तु ॥२०।१९॥

हो, (त्वा) तुझ में (ओषधीः) ओषधियाँ (संविशन्तु) प्रवेश करें, (उत) और (आपः) प्राण (संविशन्तु) प्रवेश करें, जिससे (नः) हमारे लिए (आपः) प्राण वा जल और (ओषधयः) सोम, यव=जौ आदि ओषधियाँ (सुमित्रियाः) उत्तम मित्र के समान (सन्तु) हों; (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) अप्रीति रखता है, तथा (यम्) जिससे (वयम्) हम (द्विष्मः) अप्रीति करते हैं (तस्मै) उसके लिए (दुर्मित्रियाः) दुष्ट मित्र अर्थात् शत्रु के समान (सन्तु) हों ॥ २० । १९ ॥

भावार्थः—अध्यापकैरेवं चिकीर्षितव्यं—येन शिक्षणीया मनुष्याः सावकाशाः प्राणौषधीविद्यावेत्तारः सद्यः स्युः ।

ओषधय आपः=प्राणाश्च सम्यक् सेविता मित्रवद् विदुषः पालयेयुः ।

अविदुषश्च शत्रुवत् पीडयेयुः, तेषां सेवनं तेषां त्यागश्चावश्यं कर्त्तव्यः ॥ २० । १९ ॥

भावार्थ—अध्यापकों को ऐसा करना चाहिए कि—जिससे शिष्य लोग सावकाश, प्राण-विद्या और ओषधि-विद्या के वेत्ता शीघ्र हों।

ओषधियाँ और प्राण ठीक सेवन किए हुए मित्र के समान विद्वानों का पालन करें।

अविद्वानों को शत्रु के समान पीड़ा दें। उन विद्वानों की सेवा और उन विद्वानों का त्याग अवश्य करें ॥ २० । १९ ॥

भा० पदार्थः—सुमित्रियाः=मित्रवत् पालकाः । दुर्मित्रियाः=शत्रुवत्पीडकाः ।

भाष्यसार—१. **अध्यापक का उपदेश**—हे शिष्य ! तेरा हृदय अन्तरिक्ष के समान सावकाश है, विशाल है ! तेरे प्राणों में अन्तःकरण रहे । तुझे ओषधियाँ प्राप्त हों । तुझे प्राण प्राप्त हों । जिससे हमारे लिए भी प्राण वा जल और सोम आदि ओषधियाँ उत्तम मित्र के समान हितकारी हों । जो हमसे द्वेष करते हैं उन अविद्वानों के लिए वे शत्रु के समान पीड़ा देने वाली हों ।

२. **अध्यापक का कर्त्तव्य**—अध्यापक लोग शिष्यों को इस प्रकार उपदेश करें कि जिससे वे शीघ्र ही प्राण-विद्या और ओषधि-वेत्ता के वेत्ता हो जावें । ओषधि और प्राणों का ऐसा सेवन सिखलावें जिससे वे मित्र के समान विद्वानों का पालन और अविद्वानों का शत्रु के समान पीडन करें । शिष्य लोग विद्वानों की सेवा और अविद्वानों का त्याग अवश्य करें ॥ २० । १९ ॥ ●

प्रजापतिः । **आपः**=विद्वांसः । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

उपदेशक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

पदार्थः—(द्रुपदादिव) वृक्षात्फलादिवत् (मुमुचानः) पृथग्भूतः (स्विन्नः) स्वेदयुक्तः (स्नातः)

कृतस्नानः (**मलादिव**) यथा मलिनतायाः (**पूतम्**) (**पवित्रेणेव**) यथा शुद्धिकरेण (**आज्यम्**) घृतम् (**आपः**) प्राणा, जलानीव विद्वांसः (**शुन्धन्तु**) पवित्रयन्तु (**मा**) माम् (**एनसः**) दुष्टाचारात् ।। २० । २० ।।

अन्वयः—हे आपो भवन्तः ! द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पवित्रेणेव पूतमाज्यं भवति मैनसः शुन्धन्तु ।। २० । २० ।।

सपदार्थान्वयः—हे **आपः** ! प्राणा, जलानीव विद्वांसः ! **भवन्तो द्रुपदादिव** वृक्षात्फलादिवद् **मुमुचानः** पृथग्भूतः, **स्विन्नः** स्वेदयुक्तः **स्नातः** कृतस्नानः **मलादिव** यथा मलिनतायाः **पवित्रेणेव** यथा शुद्धिकरेण **पूतमाज्यं** घृतं **भवति, मा** मां **एनसः** दुष्टाचारात् **शुन्धन्तु** पवित्रयन्तु ।।२० । २०।।

भाषार्थ—हे (आपः) प्राण एवं जल के समान विद्वान् मनुष्यो ! आप—(द्रुपदादिव) वृक्ष से फल आदि के समान (मुमुचानः) पृथक् हुए, (स्विन्नः) स्वेद से युक्त पुरुष (स्नातः) स्नान करके (मलादिव) मलिनता से पृथक् हुए, पुरुष के समान तथा (पवित्रेणेव) जैसे शुद्धिकारक पदार्थ से (पूतम्) पवित्र (आज्यम्) घृत होता है उसके समान (मा) मुझे (एनसः) दुष्ट आचरण से (शुन्धन्तु) पवित्र करें ।।२० । २० ।।

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । अध्यापकोपदेशकैरित्थं सर्वे सुशिक्षिताः कार्या येन ते पवित्रात्मारोगशरीरधर्मयुक्तकर्माणः स्युः ।। २० । २० ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है । अध्यापक और उपदेशक लोग इस प्रकार सबको सुशिक्षित करें—जिससे वे पवित्रात्मा, नीरोग शरीर वाले तथा धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ।। २० । २० ।।

भाष्यसार—**विद्वान्**—विद्वान् अध्यापक तथा उपदेशक प्राणों के समान प्रिय और जल के समान शान्तिदायक होते हैं । वे अपने उपदेश से—जैसे वृक्ष से फल आदि पृथक् हो जाता है, जैसे स्वेद से युक्त पुरुष स्नान करके मलिनता से पृथक् हो जाता है, केसर, कस्तूरी आदि शुद्धिकारक सुगन्धित पदार्थ से घृत पवित्र हो जाता है वैसे मनुष्यों को दुष्ट आचरण से पृथक् करके उन्हें पवित्र करें । सब मनुष्यों को इस प्रकार से सुशिक्षित करें कि जिससे वे पवित्रात्मा, नीरोग शरीर वाले और धर्मयुक्त कर्म करने वाले हों ।। २० । २० ।। ●

प्रस्कण्वः । **सूर्यः=परमेश्वरः** । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ प्रकृतिविषये उपासनाविषयमाह ।।

अब प्रकृतिविषय में उपासना विषय का उपदेश किया जाता है ।।

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽ उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।। २१ ।।

पदार्थः—(**उत्**) (**वयम्**) (**तमसः**) अन्धकारात् (**परि**) सर्वतः (**स्वः**) सुखरूपम् (**पश्यन्तः**) (**उत्तरम्**) सर्वेभ्यः सूक्ष्मत्वादुत्तरम् (**देवम्**) दिव्यसुखप्रदम् (**देवत्रा**) दिव्यगुणेषु देवेषु (**सूर्य्यम्**) सवितारं चराचरात्मानं परमेश्वरं वा (**अगन्म**) प्राप्नुयाम (**ज्योतिः**) स्वप्रकाशस्वरूपम् (**उत्तमम्**) सर्वोत्कृष्टम् ।।२१।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वयं तमसः परं ज्योतिः सूर्यं परि पश्यन्तः सन्तो देवत्रा देवं स्वरुत्तरमुत्तमं ज्योतिः स्वप्रकाशं परमेश्वरमुदगन्म तथैव यूयमप्येनं प्राप्नुत ।। २१ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! **यथा वयं तमसः** अन्धकारात् **परं ज्योतिः** स्वप्रकाशस्वरूपं **सूर्यं** सवितारं चराचरातमानं परमेश्वरं वा **परि+पश्यन्तः सन्तो देवत्रा** दिव्यगुणेषु देवेषु **देवं** दिव्यसुखप्रदं **स्वः** सुखरूपम् **उत्तरं** सर्वेभ्यः सूक्ष्मत्वादुत्तरम् **उत्तमं** सर्वोत्कृष्टं **ज्योतिः=स्वप्रकाशं परमेश्वरं** स्वप्रकाशस्वरूपम् **उदगन्म** प्राप्नुयाम, **तथैव यूयमप्येनं प्राप्नुत** ॥ २० । २१ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—(वयम्) हम लोग (तमसः) अन्धकार से दूर (ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप (सूर्यम्) सूर्य वा चराचर के आत्मा परमेश्वर को (परि+पश्यन्तः) सब ओर देखते हुए—(देवत्रा) दिव्य गुणों वाले देवों में (देवम्) दिव्य सुख के दाता, (स्वः) सुख रूप, (उत्तरम्) सबसे सूक्ष्म होने से उत्तर, (उत्तमम्) सबसे उत्कृष्ट, (ज्योतिः) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (उदगन्म) प्राप्त करें; वैसे तुम भी इसे प्राप्त करो ॥ २० । २१ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यः सूर्यवत्स्वप्रकाशः सर्वात्मनां प्रकाशको महादेवो जगदीश्वरोऽस्ति, तमेव सर्वे मनुष्या उपासीरन् ॥ २० । २१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ जो सूर्य के समान स्वप्रकाश वाला, सब आत्माओं का प्रकाशक, महादेव, जगदीश्वर है, उसी की सब मनुष्य उपासना करें ॥ २० । २१ ॥

भा० पदार्थः—सूर्यम्=सूर्यवत्स्वप्रकाशं, सर्वात्मनां प्रकाशकम्। देवत्रा देवम्=महादेवम्।

भाष्यसार—**उपासना**—अन्धकार से दूर, स्वप्रकाशस्वरूप, चराचर के आत्मा एवं सब आत्माओं के प्रकाशक, महादेव, जगदीश्वर को सब ओर देखें अर्थात् सर्वत्र व्यापक समझें। वह दिव्यगुणों वाले देवों=विद्वानों में दिव्य सुखों का दाता, सुखस्वरूप, सब से सूक्ष्म, सबसे उत्कृष्ट, स्वप्रकाश वाला है, इस जगदीश्वर को हम प्राप्त करें। सब मनुष्य ईश्वर की ही उपासना करें ॥ २० । २१ ॥

प्रजापतिः। **अग्निः=विद्वान्**। पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमाह॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय का उपदेश किया है॥

अपो ऽ अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि।
पयस्वानग्न ऽ आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च॥ २२॥

पदार्थः—(**अपः**) जलानि (**अद्य**) अस्मिन्दिने (**अनु**) (**अचारिषम्**) चरेयम् (**रसेन**) मधुरादिना (**सम्**) (**असृक्ष्महि**) संसृजेम व्यत्ययेनात्मनेपदम् (**पयस्वान्**) प्रशस्तजलविद्यायुक्तः (**अग्ने**) अग्निरिव विद्वन् (**आ**) (**अगमम्**) प्राप्नुयाम् (**तम्**) (**मा**) माम् (**सम्**) (**सृज**) संयोजय (**वर्चसा**) साङ्गोपाङ्गवेदाध्ययनेन (**प्रजया**) सुसन्तानैः (**च**) (**धनेन**) (**च**)॥ २२॥

प्रमाणार्थ—(**असृक्ष्महि**) संसृजेम। यहाँ व्यत्यय से आत्मनेपद है॥

अन्वयः—हे अग्ने! यः पयस्वानहं त्वामागममद्य रसेन सहापोऽन्वचारिषं तं मा वर्चसा प्रजया च धनेन च संसृज यत इमेऽहं च सर्वे वयं सुखाय समसृक्ष्महि॥ २२॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने!** अग्निरिव विद्वन्! **यः पयस्वान्** प्रशस्तजलविद्यायुक्तः **अहं**

भाषार्थ—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् मनुष्य! जो (पयसा)

त्वामागमं प्राप्नुयाम्, **अद्य** अस्मिन्दिने **रसेन** मधुरादिना **सहायः** जलानि **अन्वचारिषं** चरेयम्, **तं मा** मां **वर्चसा** साङ्गोपाङ्गवेदाध्ययनेन **प्रजया** सुसन्तानैः **च धनेन च संसृज** सयोजय । **यत इमेऽहं च सर्वे वयं सुखाय समसृक्ष्महि** संसृजेम ॥ २० । २२ ॥

प्रशस्त जल-विद्या से युक्त मैं तुझे (आगमम्) प्राप्त करूँ, (अद्य) आज (रसेन) मधुर आदि रस के साथ (अपः) जलों का (अन्वचारिषम्) सेवन करूँ, सो (मा) मुझे (वर्चसा) अङ्ग-उपाङ्ग सहित वेद के अध्ययन, (प्रजया) उत्तम सन्तान (च) और (धनेन) धन से (संसृज) संयुक्त कर; जिससे ये और मैं अर्थात् हम सब सुख के लिए (समसृक्ष्महि) संयुक्त हों ॥ २० । २२ ॥

भावार्थः—यदि विद्वांसोऽध्यापनोपदेशाभ्यामन्यान् विदुषः कुर्युस्तर्हि ते प्रत्यहमधिकविद्याः स्युः ॥ २० । २२ ॥

भावार्थ—यदि विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश से अन्यों को विद्वान् बनावें तो वे प्रतिदिन अधिक विद्या वाले हों ॥ २० । २२ ॥

भा० पदार्थः—वर्चसा=अध्यापनेन, उपदेशेन ।

भाष्यसार—**अध्यापक और उपदेशक**—प्रशस्त जल-विद्या से युक्त शिष्य, अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान विद्वान् को प्राप्त करे । वह मधुर आदि गुणों से युक्त जलों को अध्यापक और उपदेशक विद्वान् को सेवन करावे तथा स्वयं भी सेवन करे । अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोग उसे अङ्ग और उपाङ्ग सहित वेद पढ़ावें तथा उत्तम सन्तान और धन से संयुक्त करें । अध्यापक, उपदेशक और शिष्य सब लोग सुख के लिए संयुक्त हों । विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश के द्वारा अन्यों को भी विद्वान् बनावें जिससे उनकी विद्या भी प्रतिदिन बढ़ती रहे ॥ २० । २२ ॥

प्रजापतिः । **समित्**=ईश्वरः । स्वराडतिशक्वरी । पञ्चमः ।

अथ प्रकृतविषये पुनरुपासनाविषयमाह ॥

अब प्रकरणगत विषय में फिर उपासना विषय का उपदेश किया जाता है ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् । वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥ २३ ॥

पदार्थः—(एधः) वर्द्धकः (**असि**) (**एधिषीमहि**) वर्द्धिषीमहि (**समित्**) अग्नेरिन्धनमिव मनुष्याणामात्मनां प्रकाशकः (**असि**) (**तेजः**) तीव्रप्रज्ञः (**असि**) (**तेजः**) ज्ञानप्रकाशम् (**मयि**) (**धेहि**) (**समाववर्त्त**) सम्यगवर्त्तत । **अत्र व्यत्ययेन परस्मैपदं शपः श्लुश्च** (**पृथिवी**) भूमिः (**सम्**) (**उषाः**) प्रभातः (**सम्**) (**उ**) इति वितर्के (**सूर्यः**) (**सम्**) (**उ**) (**विश्वम्**) (**इदम्**) (**जगत्**) (**वैश्वानरज्योतिः**) विश्वेषु नरेषु प्रकाशमानं वैश्वानरं वैश्वानरं च तज्ज्योतिश्च वैश्वानरज्योतिः (**भूयासम्**) (**विभून्**) व्यापकान् (**कामान्**) संकल्पितान् (**वि**) विविधतया (**अश्नवै**) प्राप्नुयाम् (**भूः**) सत्तात्मिकाम् (**स्वाहा**) सत्यया वाचा क्रियया च ॥ २३ ॥

प्रमाणार्थ—(**समाववर्त्त**) सम्यगवर्त्तत । यहाँ व्यत्यय से परस्मैपद और 'शप्' के स्थान में 'श्लु' है ॥

अन्वयः—हे जगदीश्वर ! त्वमेधोऽसि समिदसि तेजोऽसि तस्मात् तेजो मयि धेहि यो भवान् सर्वत्र समाववर्त्त येन भवता पृथिव्युषाश्च संसृष्टा सूर्यः संसृष्ट इदं विश्वं जगत् संसृष्टं तदु वैश्वानरज्योतिर्ब्रह्म

प्राप्य वयमेधिषीमहि यथाऽहं स्वाहाभूर्विभून् कामान् व्यश्नवै सुखी भूयासम् तथैव यूयमपि सिद्धकामाः सुखिनः स्यात ॥ २० । २३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे जगदीश्वर! **त्वमेधः** वर्द्धकः **असि, समिद्** अग्नेरिन्धनमिव मनुष्याणामात्मनां प्रकाशकः **असि, तेजः** तीव्रप्रज्ञः **असि, तेजः** ज्ञानप्रकाशं **मयि धेहि**।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर! तू—(एधः) बढ़ाने वाला (असि) है, (समित्) जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों की आत्माओं का प्रकाशक (असि) है, (तेजः) तीव्र प्रज्ञा वाला (असि) है, सो तू (तेजः) ज्ञान-प्रकाश को (मयि) मुझ में (धेहि) स्थापित कर।

यो भवान् सर्वत्र समावर्वात्ति सम्यगवर्त्तेत, **येन भवता पृथिवी** भूमिः **उषा** प्रभातः **च संसृष्टा, सूर्यः संसृष्टः, इदं विश्वं जगत् संसृष्टं, तदु** सवितर्कं **वैश्वानरज्योतिः**=**ब्रह्म** विश्वेषु नरेषु प्रकाशमानं वैश्वानरं, वैश्वानरं च तज्ज्योतिश्च वैश्वानरज्योतिः **प्राप्य वयमेधिषीमहि** वर्द्धिषीमहि।

आप सर्वत्र (समावर्वत्ति) सम्यक् वर्तमान हो, आपने (पृथिवी) भूमि और (उषाः) प्रभात को रचा है, (सूर्यः) सूर्य को रचा है, (इदम्) यह (विश्वम्) सब जगत् रचा है, सो (उ) विचारपूर्वक उस (वैश्वानर ज्योतिः) सब नरों में प्रकाशमान ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त करके हम (एधिषिमहि) बढ़ें।

यथाऽहं स्वाहा सत्यया वाचा क्रियया च **भूः** सत्तात्मिकां **विभून्** व्यापकान् **कामान्** संकल्पितान् **व्यश्नवै** त्रिविधतया प्राप्नुयां, **सुखी भूयासं तथैव यूयमपि सिद्धकामाः सुखिनः स्यात** ॥ २० । २३ ॥

जैसे मैं—(स्वाहा) सत्य वाणी और कर्म से (भूः) सत्तात्मक प्रकृति, (विभून्) आकाश आदि विभु पदार्थ तथा (कामान्) कामनाओं को (व्यश्नवै) विविध प्रकार से प्राप्त करूँ और सुखी रहूँ; वैसे ही तुम भी सिद्ध काम होकर सुखी रहो ॥ २० । २३ ॥

भावार्थः—हे मनुष्याः! यच्छुद्धं, सर्वत्र व्यापकं, सर्वप्रकाशकं, जगत्सृष्टृधर्तृप्रलयकृद् ब्रह्मोपास्य यूयमानन्दिता यथा भवत, तथैतल्लब्ध्वा वयमप्यानन्दिता भवेम।

भावार्थ—हे मनुष्यो! जिस शुद्ध, सर्वत्र व्यापक, सबके प्रकाशक, जगत् के स्रष्टा, धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता ब्रह्म की उपासना करके तुम जैसे आनन्दित होते हो, वैसे इसे प्राप्त करके हम भी आनन्दित हों।

आकाशकालदिशोऽपि विभून् जानीयाम ॥२३॥

आकाश, काल, और दिशा को भी विभु जानें ॥ २० । २३ ॥

भा० पदार्थः—समिद्=सर्वप्रकाशकम्। विभून्=आकाशकालदिशः ॥

भाष्यसार—**उपासना**—जगदीश्वर उपासक को बढ़ाने वाला, जैसे अग्नि का प्रकाशक इन्धन है वैसे मनुष्यों की आत्माओं का प्रकाशक और तीव्र प्रज्ञा वाला है। वह उपासक के हृदय में ज्ञान-प्रकाश को स्थापित करता है। ब्रह्म,—शुद्ध, सर्वत्र व्यापक और सबका प्रकाशक है। उसी ने पृथिवी, प्रभात और सूर्य को रचा है। सब जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता वही है। वह सब नरों में प्रकाशमान ज्योति है। इस ब्रह्म को प्राप्त करके उपासक वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

जैसे उपासक लोग सत्यवाणी और सत्य कर्म से सत्तात्मक प्रकृति, आकाश, काल और दिशा इन, विभु पदार्थों तथा कामनाओं को प्राप्त करते हैं वैसे ही सब लोग उपासना से सिद्धकाम होकर सुखी रहें ॥ २० । २३ ॥

अश्वतराश्विः । **अग्निः=ईश्वरः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

प्रकरणगत उपासना विषय का फिर उपदेश किया है ।।

अ॒भ्याद॑धामि स॒मिध॒मग्ने॑ व्रतपते॒ त्वयि॑ । व्र॒तं च॑ श्र॒द्धां चोपै॑मी॒न्धे त्वा॑ दीक्षि॒तोऽअ॒हम् ॥ २४ ॥

पदार्थः—(**अभि**) (**आ**) (**दधामि**) (**समिधम्**) समिधमिव ध्यानम् (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर (**व्रतपते**) सत्यभाषणादीनां व्रतानां कर्मणां वा पालक । **व्रतमिति कर्मना० ।। निघं० २ । १ ।।** (**त्वयि**) (**व्रतम्**) सत्यभाषणादिकं कर्म (**च**) (**श्रद्धाम्**) सत्यधारिकां क्रियाम् (**च**) (**उप**) (**एमि**) प्राप्नोमि (**इन्धे**) प्रकाशयामि (**त्वा**) त्वाम् (**दीक्षितः**) ब्रह्मचर्यादिदीक्षां प्राप्य जातविद्यः (**अहम्**) ।।२४।।

प्रमाणार्थ—(**व्रतपते**) सत्यभाषणादीनां व्रतानां कर्मणां वा पालक । 'व्रत' शब्द निघं० (२ । १) में कर्म-नामों में पठित है ।।

अन्वयः—हे व्रतपतेऽग्ने ! त्वयि स्थिरीभूयाहं समिधमिव ध्यानमभ्यादधामि यतो व्रतं च श्रद्धां चोपैमि दीक्षितः संस्त्वामिन्धे ।। २४ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **व्रतपते** सत्यभाषणादीनां व्रतानां कर्मणां वा पालक **अग्ने !** स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! **त्वयि स्थिरीभूयाहं** [**समिधम्**]=**समिधमिव ध्यानमभ्यादधामि; यतो व्रतं** सत्यभाषणादिकं कर्म **च श्रद्धां** सत्यधारिकां क्रियां **चोपैमि** प्राप्नोमि, **दीक्षितः** ब्रह्मचर्यादिदीक्षां प्राप्य जातविद्यः **सन्** [**त्वा**]—**त्वामिन्धे** प्रकाशयामि ।। २० । २४ ।।

भाषार्थ—हे (व्रतपते) सत्य भाषण आदि व्रतों वा कर्मों के पालक (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर ! तुझ में, स्थिर होकर मैं—[समिधम्] अग्नि में समिधा के समान ध्यान को (अभ्यादधामि) स्थापित करता हूँ। जिससे (व्रतम्) सत्यभाषण आदि कर्म (च) और (श्रद्धाम्) सत्य को धारण कराने वाली श्रद्धा को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ (दीक्षितः) ब्रह्मचर्य आदि की दीक्षा को प्राप्त करके विद्यावान् होकर [त्वा] तुझे (इन्धे) प्रकाशित करता हूँ ।। २० । २४ ।।

भावार्थः—ये मनुष्याः परमेश्वराज्ञप्तानि सत्यभाषणादीनि व्रतानि धरन्ति, तेऽतुलां श्रद्धां प्राप्य धर्मार्ऽर्थकाममोक्षसिद्धिं कर्तुं शक्नुवन्ति ।। २० । २४ ।।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर द्वारा आदिष्ट सत्यभाषण आदि व्रतों को धारण करते हैं वे अतुल श्रद्धा को प्राप्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध कर सकते हैं ।। २० । २४ ।।

भा० पदार्थः—व्रतम्=परमेश्वराज्ञप्तं सत्यभाषणादि ।

अन्यत्र व्याख्यात—(क) वानप्रस्थ को उचित है कि मैं अग्नि में होम कर व्रत=सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊँ । ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्सङ्ग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे, पश्चात् जब संन्यास ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे फिर संन्यास ग्रहण करे ।। सत्यार्थ० समु० ५ ।।

(ख) अर्थ—हे (व्रतपते) नियमपालकेश्वर ! (दीक्षितः) दीक्षा को प्राप्त होता हुआ (अहम्) मैं (त्वयि) तुझमें स्थिर होके (व्रतम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का धारण (च) और उसकी सामग्री (श्रद्धाम्) सत्य की धारणा को (च) और उसके उपायों को (उपैमि) प्राप्त होता हूँ, इसीलिए अग्नि में जैसे

(समिधम्) समिधा को (अभ्यादधामि) धारण करता हूँ वैसे विद्या और व्रत को धारण कर प्रज्वलित करता हूँ और वैसे ही (त्वा) तुझको अपने आत्मा में धारण करता और सदा (इन्धे) प्रकाशित करता हूँ ।। संस्कारविधि वानप्रस्थ० ।।

भाष्यसार—**उपासना**—सत्यभाषण आदि व्रतों वा कर्मों का पालक, जगदीश्वर स्वप्रकाशस्वरूप है । जैसे अग्नि में समिधा को स्थापित करते हैं वैसे उपासक जगदीश्वर में स्थिर होकर उसमें अपने ध्यान को स्थापित करें । परमेश्वर के द्वारा आज्ञा किए हुए सत्यभाषण आदि कर्मों को धारण करके, अतुल श्रद्धा को प्राप्त होकर, ब्रह्मचर्य आदि की दीक्षा को प्राप्त करके विद्यावान् बने तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करे ।। २० । २४ ।। ●

अश्वतराश्विः । **अग्निः=ईश्वरः** । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

प्रकरणगत उपासना विषय का फिर उपदेश किया है ।।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।। २५ ।।

पदार्थः—(**यत्र**) यस्मिन् ब्रह्मणि (**ब्रह्म**) ब्राह्मणकुलमर्थाद्विद्वत्कुलम् (**च**) (**क्षत्रम्**) क्षत्रिय-कुलमर्थाद्विद्याशौर्यादिगुणोपेतम् (**च**) वैश्यादिकुलानि (**सम्यञ्चौ**) सम्यगेकीभावेनाञ्चतस्तौ (**चरतः**) वर्त्तेते (**सह**) सार्द्धम् (**तम्**) (**लोकम्**) द्रष्टव्यम् (**पुण्यम्**) निष्पापं सुखस्वरूपम् (**प्र**) (**ज्ञेषम्**) जानीयाम् । जानातेर्लेटि सिपि रूपम् (**यत्र**) (**देवाः**) दिव्याः पृथिव्यादयो विद्वांसो वा (**सह**) (**अग्निना**) विद्युता ।। २५ ।।

प्रमाणार्थ—(ज्ञेषम्) यह 'ज्ञा' धातु का लेट् लकार में 'सिप्' विकरण में रूप है ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं यत्र ब्रह्म च क्षत्रं सह सम्यञ्चौ च चरतो यत्र देवा अग्निना सह वर्त्तन्ते तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषम् । तथा यूयमप्येतं विजानीत ।। २५ ।।

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथाऽहं यत्र** यस्मिन् ब्रह्मणि **ब्रह्म** ब्राह्मणकुलमर्थाद्विद्वत्कुलं **च क्षत्रं** क्षत्रियकुलमर्थाद्विद्याशौर्यादिगुणोपेतं **सह** सार्द्धं **सम्यञ्चौ** सम्यगेकीभावेनाञ्चतस्तौ **च** वैश्यादिकुलानि **चरतः** वर्तेते, **यत्र** यस्मिन् ब्रह्मणि **देवाः** दिव्याः पृथिव्यादयो विद्वांसो वा **अग्निना** विद्युता **सह** सार्द्धं **वर्त्तन्ते, तं लोकं** द्रष्टव्यं **पुण्यं** निष्पापं सुखस्वरूपं **प्रज्ञेषं** जानीयाम्, **तथा यूयमप्येतं विजानीत** ।। २० । २५ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—(यत्र) जिस ब्रह्म में (ब्रह्म) ब्राह्मणकुल अर्थात् विद्वानों का कुल (च) और (क्षत्रम्) क्षत्रिय-कुल अर्थात् विद्या और शौर्य आदि गुणों से युक्त कुल (सह) साथ (सम्यञ्चौ) एक होकर चलने वाले (च) और इसी प्रकार वैश्य कुल भी (चरतः) वर्तमान हैं; (यत्र) जिस ब्रह्म में (देवाः) दिव्य गुणों वाले पृथिवी आदि वा विद्वान् लोग (अग्निना) विद्युत् के (सह) साथ विद्यमान हैं; (तम्) उस (लोकम्) दर्शनीय, (पुण्यम्) निष्पाप, सुखस्वरूप ब्रह्म को (प्रज्ञेषम्) जानूँ, वैसे तुम भी इसे जानो ।। २५ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यद् ब्रह्मैकचेतनमात्रं, सर्वेषामधिकारि, निष्पापं, ज्ञानेन द्रष्टुं योग्यं, सर्वत्राभिव्याप्तं, सहचरितं

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जो ब्रह्म एक चेतन मात्र, सबका अधिकारी, निष्पाप, ज्ञान से देखने योग्य, सर्वत्र

वर्तते, तदेव सर्वैरुपास्यम् ॥ २० । २५ ॥

व्यापक और सबके साथ विद्यमान है, उसी की सब उपासना करें ॥ २० । २५ ॥

भा० पदार्थः--ब्रह्म=एकचेतनमात्रम् । क्षत्रम्=सर्वेषामधिकारि । लोकम्=ज्ञानेन द्रष्टुं योग्यम् । पुण्यम्=निष्पापम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च) जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण, विद्यासभा और राजसभा, विद्वान् शूरवीर क्षत्रिय लोग ये सब मिल के राजकामों को सिद्ध करते हैं वही देश धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है, (यत्र देवाः सहाग्निना) जिस देश में परमेश्वर की आज्ञा-पालन और अग्निहोत्रादि सत्क्रियाओं से वर्तमान विद्वान् होते हैं वही देश सब उपद्रवों से रहित हो के अखण्ड राज्य को नित्य भोगता है ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥

भाष्यसार—**उपासना**—१. ब्रह्म में ब्राह्मणकुल अर्थात् विद्वानों का कुल, क्षत्रियकुल अर्थात् शौर्य आदि गुणों से युक्त कुल और वैश्यकुल एक होकर विचरण करते हैं, जिस ब्रह्म में विद्युत् के साथ दिव्य गुणों वाले पृथिवी आदि तथा विद्वान् लोग भी विद्यमान हैं। उपासक लोग—उस एक, चेतन मात्र, ब्राह्मण आदि सबके अधिकारी, ज्ञान से देखने योग्य, पाप-रहित, सुखस्वरूप, सर्वत्र व्याप्त, सहचरित ब्रह्म की उपासना करें ।

अलंकार—२. मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष के समान अन्य लोग भी ब्रह्म को जानें ॥ २० । २५ ॥

अश्वतराश्विः । **अग्निः**=**ईश्वरः** । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रकरणगत उपासना विषय का फिर उपदेश किया है ॥

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह । तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ॥ २६ ॥

पदार्थः--(**यत्र**) यस्मिन्नीश्वरे (**इन्द्रः**) सर्वत्राऽभिव्याप्ता विद्युत् (**च**) (**वायुः**) धनञ्जयादिस्वरूपः पवनः (**च**) (**सम्यञ्चौ**) (**चरतः**) (**सह**) (**तम्**) (**लोकम्**) सर्वस्य द्रष्टारम् (**पुण्यम्**) पुण्यजन्यज्ञानेन ज्ञातुमर्हम् (**प्र**) (**ज्ञेषम्**) जानीयाम् (**यत्र**) यस्मिन् (**सेदिः**) नाश उत्पत्तिर्वा (**न**) निषेधे (**विद्यते**) ॥ २६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथाऽहं यत्रेन्द्रश्च वायुः सह सम्यञ्चौ चरतश्च यत्र सेदिर्न विद्यते तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषं तथैतं यूयं विजानीत ॥ २६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! **यथाऽहं यत्र** यस्मिन्नीश्वरे **इन्द्रः** सर्वत्राऽभिव्याप्ता विद्युत् **च वायुः** धनञ्जयादिस्वरूपः पवनः **सह सम्यञ्चौ चरतश्च**, **यत्र** यस्मिन् **सेदिः** नाश उत्पत्तिर्वा **न विद्यते**, **तं पुण्यं** पुण्यजन्यज्ञानेन ज्ञातुमर्हं **लोकं** सर्वस्य द्रष्टारं **प्रज्ञेषं** जानीयां **तथैतं यूयं विजानीत** ॥ २० । २६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे मैं—(यत्र) जिस ईश्वर में (इन्द्रः) सर्वत्र व्याप्त विद्युत् (च) और (वायुः) धनंजय आदि स्वरूप पवन (सह) साथ (सम्यञ्चौ) मिलकर (चरतः) विचरण करते हैं; (यत्र) जिस ब्रह्म में (सेदिः) नाश वा उत्पत्ति (न) नहीं (विद्यते) है; (तम्) उस (पुण्यम्) पुण्य से उत्पन्न ज्ञान से जानने योग्य, (लोकम्) सब के

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यदि कश्चिद् विद्वान् वायुविद्युदाकाशादीनामियत्तां जिज्ञासेत, तर्ह्यन्तं न प्राप्नोति, यत्र चैते व्याप्याः सन्ति, तस्य ब्रह्मणोऽन्तं ज्ञातुं कः शक्नुयात् ?॥

द्रष्टा ईश्वर को (प्रज्ञेषम्) जानूं; वैसे तुम इसे जानो ॥ २० । २६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ यदि कोई विद्वान् वायु, विद्युत् और आकाश आदि की इयत्ता=परिमाण को जानना चाहे तो अन्त नहीं पा सकता, और जिस ब्रह्म में ये व्याप्य हैं उस ब्रह्म का अन्त कौन जान सकता है ॥ २० । २६ ॥

भा० पदार्थः—सेदिः—अन्तम् ॥

भाष्यसार—१. **ईश्वर-उपासना**—जिस ब्रह्म में विद्युत् और वायु साथ मिलकर विचरण करते हैं अर्थात् ब्रह्म विद्युत् आदि में व्यापक है और विद्युत् आदि व्याप्य हैं। उस ब्रह्म की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता है। वह पुण्य-कर्मों से उत्पन्न ज्ञान से जाना जाता है, वह सब का द्रष्टा है। सब मनुष्य उपासना के द्वारा उस ब्रह्म को जानें। विद्वान् लोग वायु, विद्युत् और आकाश आदि की इयत्ता को नहीं जान सकते। वायु आदि ब्रह्म में व्याप्य हैं और ब्रह्म व्यापक है अर्थात् इनका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। जब वायु आदि के अन्त नहीं प्राप्त कर सकते तो सर्वव्यापक ब्रह्म के अन्त को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष के समान अन्य लोग भी ब्रह्म को जानें ॥ २० । २६ ॥

प्रजापतिः। **सोमः**=ऐश्वर्यम्। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रकरणगत उपासना विषय का फिर उपदेश किया है ॥

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ परुः॑। ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः ॥ २७ ॥

पदार्थः—(**अंशुना**) भागेन (**ते**) तव (**अंशुः**) भागः (**पृच्यताम्**) संबध्यताम् (**परुषा**) मर्मणा (**परुः**) मर्म (**गन्धः**) (**ते**) तव (**सोमम्**) ऐश्वर्यम् (**अवतु**) (**मदाय**) आनन्दाय (**रसः**) सारः (**अच्युतः**) नाशरहितः ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्! ते तवांऽशुनांऽशुः परुषा परुः पृच्यतां तेऽच्युतो गन्धो रसश्च मदाय सोममवतु ॥ २७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन्! ते=तवांऽशुना भागेन अंशुः भागः, परुषा मर्मणा परुः मर्म पृच्यतां सम्बध्यताम्।

ते तव अच्युतः नाशरहितः गन्धो, रसः सारः च मदाय आनन्दाय सोमम् ऐश्वर्यम् अवतु ॥ २७ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य! (ते) तेरे (अंशुना) भाग के साथ (अंशुः) भाग, (परुषा) मर्म के साथ (परुः) मर्म (पृच्यताम्) सम्बद्ध हो।

(ते) तेरा (अच्युतः) नाश रहित (गन्धः) गन्ध, और (रसः) सार (मदाय) आनन्द के लिए (सोमम्) ऐश्वर्य की (अवतु) रक्षा करे ॥ २० । २७ ॥

भावार्थः—यदा ध्यानावस्थितस्य मनुष्यस्य मनसा सहेन्द्रियाणि प्राणाश्च ब्रह्मणि स्थिरा भवन्ति, तदा स नित्यमानन्दति ॥ २० । २७ ॥

भावार्थ—जब ध्यान में अवस्थित मनुष्य के मन के साथ इन्द्रियाँ और प्राण ब्रह्म में स्थिर होते हैं तब वह नित्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥ २० । २७ ॥

भाष्यसार—**उपासना**—जब विद्वान् मनुष्य के शरीर के भाग मन के साथ इन्द्रिय भाग सम्बद्ध होता है, अर्थात् ब्रह्म में स्थिर होता है। मर्म अर्थात् सूक्ष्म मन के साथ मर्म अर्थात् सूक्ष्म प्राण सम्बद्ध होता है अर्थात् ब्रह्म में स्थिर होता है तब उसके गन्ध और रस आदि विषय वश में होकर, नित्य आनन्द-प्राप्ति के लिए उपासना से उत्पन्न ऐश्वर्य की रक्षा करते हैं ॥ २० । २७ ॥

प्रजापतिः । **इन्द्रः**=**विद्वान्** । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

अथ विद्वद्विषये शारीरिकविषयमाह ॥

अब विद्वानों के विषय में शरीरसम्बन्धी विषय का उपदेश किया जाता है ॥

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च । सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥२८॥

पदार्थः—(**सिञ्चन्ति**) (**परि**) सर्वतः (**सिञ्चन्ति**) (**उत्**) (**सिञ्चन्ति**) (**पुनन्ति**) पवित्रीभवन्ति (**च**) (**सुरायै**) सोमाय (**बभ्रूवै**) बलधारकाय (**मदे**) आनन्दाय (**किन्त्वः**) किमसौ (**वदति**) (**किन्त्वः**) किमन्यः ॥ २८ ॥

अन्वयः—ये बभ्र्वै सुरायै मदे महौषधिरसं सिञ्चन्ति परिसिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च ते शरीरात्मबलं प्राप्नुवन्ति यः किन्त्वः किन्त्वश्चेति वदति स किंचिदपि नाप्नोति ॥ २८ ॥

सपदार्थान्वयः—**ये बभ्र्वै** बलधारकाय **सुरायै** सोमाय **मदे** आनन्दाय **महौषधिरसं सिञ्चन्ति परि+सिञ्चन्ति** (सर्वतः सिञ्चन्ति) **उत्सिञ्चन्ति, पुनन्ति** पवित्रीभवन्ति **च, ते शरीरात्मबलं प्राप्नुवन्ति**।

यः किन्त्वः किमसौ **किन्त्वः** किमन्यः **चेति वदति, स किंचिदपि नाप्नोति** ॥ २० । २८ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य—(बभ्रूवै) बल के धारक (सुरायै) सोम एवं (मदे) आनन्द के लिए महौषधियों के रस को (सिंचन्ति) अन्न आदि में सींचते हैं, (परि+सिंचन्ति) सब ओर से सींचते हैं, (उत्सिचन्ति) उत्तम रीति से सींचते हैं। (च) और (पुनन्ति) अन्न आदि को पवित्र करते हैं; वे शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त करते हैं।

जो मूढ़ (किन्त्वः) वह क्या है ? (किन्त्वः) वह क्या है ? ऐसा (वदति) कहता है—वह कुछ भी प्राप्त नहीं करता ॥ २० । २८ ॥

भावार्थः—येऽन्नादीनि पवित्रीकृत्य=संस्कृत्योत्तमरसैः परिषिच्य युक्ताहारविहारेण भुञ्जते, ते बहुसुखं लभन्ते।

यो मूढतयैवं नाचरति स बल-बुद्धिहीनः सततं दुःखं भुङ्क्ते ॥ २० । २८ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य अन्न आदि को पवित्र करके अर्थात् संस्कार करके उत्तम रसों से सींचकर युक्त आहार-विहार पूर्वक सेवन करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं।

जो मूढ़ता से ऐसा नहीं करता वह बल और बुद्धि से हीन होकर सदा दुःख भोगता है ॥ २८ ॥

भाष्यसार—विद्वानों के लिए शारीरिक उपदेश—विद्वान् लोग बल को धारण करने वाले सोम और आनन्द की प्राप्ति के लिए अन्न आदि को संस्कृत=पवित्र करके उत्तम रसों से उसको सींचें। युक्त आहार-विहार पूर्वक उसका सेवन करके शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त करें।

जो मूढ़ मनुष्य महौषधि रस के विषय में यह कहता है कि—वह क्या है ? वह क्या है ? अर्थात् उसके गुणों में विश्वास नहीं रखता और उसको सेवन नहीं करता वह बल और बुद्धि से हीन होकर सदा दुःख भोगता है ॥ २० । २८ ॥

विश्वामित्रः । **इन्द्रः**=विद्वान् । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के लिए शारीरिक विषय का उपदेश किया है ॥

धा॒नाव॑न्तं कर॒म्भिण॑मपू॒पव॑न्तमु॒क्थिन॑म् । इन्द्र॑ प्रा॒तर्जु॑षस्व नः ॥ २९ ॥

पदार्थः—(**धानावन्तम्**) सुसंस्कृतैर्धान्यान्नैर्युक्तम् (**करम्भिणम्**) सुष्ठुक्रियया निष्पन्नम् (**अपूपवन्तम्**) सुष्ठु संपादितापूपसहितम् (**उक्थिनम्**) प्रशस्तोक्थवाक्यजन्यबोधनिष्पादितम् (**इन्द्र**) सुखेच्छो विद्यैश्वर्ययुक्त जन (**प्रातः**) प्रभाते (**जुषस्व**) सेवस्व (**नः**) अस्माकम् ॥ २९ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! त्वं नो धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनं भक्ष्याद्यन्वितं भोज्यमन्नरसादिकं प्रातर्जुषस्व ॥ २९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे इन्द्र सुखेच्छो विद्यैश्वर्ययुक्त जन ! **त्वं नः** अस्माकं **धानावन्तं** सुसंस्कृतैर्धान्यान्नैर्युक्तं, **करम्भिणं** सुष्ठुक्रियया निष्पन्नम्, **अपूपवन्तं** सुष्ठु सम्पादितापूपसहितम् **उक्थिनं** प्रशस्तोक्थवाक्यजन्यबोधनिष्पादितं **भक्ष्याद्यन्वितं भोज्यमन्नरसादिकं प्रातः** प्रभाते **जुषस्व** सेवस्व ॥ २० । २९ ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) सुख के इच्छुक, विद्या-ऐश्वर्य से युक्त मनुष्य ! तू—(नः) हमारे (धानावन्तम्) सुगन्धित धान्य-अन्नों से युक्त, (करम्भिणम्) श्रेष्ठ क्रिया से निष्पन्न, (अपूपवन्तम्) उत्तम रीति से सम्पादित अपूप=पूआ आदि सहित, (उक्थिनम्) प्रशस्त उक्थ-वचन से उत्पन्न बोध से निष्पादित=तैयार किए हुए भक्ष्य पदार्थों से युक्त भोज्य अन्न, रस आदि को (प्रातः) प्रातःकाल (जुषस्व) सेवन कर ॥ २० । २९ ॥

भावार्थः—ये विद्याध्यापनोपदेशैः सर्वेषामलङ्कर्त्तारो विश्वोद्धारका विद्वांसो जनाः सुसंस्कृतै रसादिभिर्युक्तान्यन्नादीनि यथासमयं भुञ्जते, ये च तान् विद्यासुशिक्षायुक्तां वाचं ग्राहयेयुस्ते धन्यवादार्हा जायन्ते ॥ २० । २९ ॥

भावार्थ—जो विद्या-अध्यापन और उपदेशों से सबको अलंकृत करने वाले, विश्व के उद्धारक विद्वान् लोग—सुगन्धित रस आदि से युक्त अन्न आदि का यथासमय सेवन करते हैं, और जो उन्हें विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी सिखलाते हैं वे धन्यवाद के योग्य होते हैं ॥ २० । २९ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्र=विद्याध्यापनोपदेशैः सर्वेषामलङ्कर्त्तः, विश्वोद्धारक, विद्वन् जन ! । धानावन्तम्=सुसंस्कृतै रसादिभिर्युक्तमन्नम् । उक्थिनम्=विद्यासुशिक्षायुक्तां वाचम् । प्रातः=यथासमयम् ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए शारीरिक उपदेश**—सुख का इच्छुक, विद्या-अध्यापन और उपदेश से सबको अलंकृत करने वाला विद्या-ऐश्वर्य से सम्पन्न, विश्व का उद्धारक विद्वान् मनुष्य—सुगन्धि अन्नों से युक्त, उत्तम रीति से तैयार किए हुए, अपूप=पूआ आदि सहित, प्रशस्त ज्ञान से तैयार किए हुए भोज्य पदार्थों का यथासमय सेवन करे। जिससे शरीर से सदा स्वस्थ रहे।

जो विद्वान् विद्या और सुशिक्षा से युक्त वाणी ग्रहण कराते हैं वे धन्यवाद के पात्र हैं ॥ २० । २९ ॥

नृमेधपुरुषमेधौ । **इन्द्रः**=**ईश्वरः** । बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के लिए शारीरिक विषय का फिर उपदेश किया है ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् । येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

पदार्थः—(**बृहत्**) महत् साम (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय (**गायत**) प्रशंसत (**मरुतः**) विद्वांसः (**वृत्रहन्तमम्**) यो वृत्रं=मेघं हन्ति तमतिशयितं सूर्यमिव (**येन**) (**ज्योतिः**) तेजः (**अजनयन्**) उत्पादयन्तु (**ऋतावृधः**) ये ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति ते (**देवम्**) दिव्यसुखप्रदम् (**देवाय**) दिव्यगुणाय (**जागृवि**) जागरूकम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—हे मरुतः ! ऋतावृधो भवन्तो येन देवायेन्द्राय देवं जागृवि ज्योतिरजनयँस्तद्वृत्रहन्तमं बृहत् तस्मै गायत ॥ ३० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मरुतः** विद्वांसः ! **ऋतावृधः** ये ऋतं=सत्यं वर्द्धयन्ति ते **भवन्तो येन देवाय** दिव्यगुणाय **इन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय **देवं** दिव्यसुखप्रदं **जागृवि** जागरूकं **ज्योतिः** तेजः **अजनयन्** उत्पादयन्तु, **तद् वृत्रहन्तमं** यो वृत्रं=मेघं हन्ति तमतिशयितं सूर्यमिव **बृहत्** महत् साम **तस्मै गायत** प्रशंसत ॥ २० । ३० ॥

भाषार्थ—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (ऋतावृधः) ऋत=सत्य को बढ़ाने वाले आप लोग (देवाय) दिव्य गुणों वाले (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त ईश्वर के लिए (देवम्) दिव्य सुखदायक, (जागृवि) जागरूक, (ज्योतिः) तेज को (अजनयन्) उत्पन्न करो; उस (वृत्रहन्तमम्) वृत्र=मेघ का हनन करने वाले सूर्य के समान (बृहद्) महान् साम का (तस्य) उस ईश्वर के लिए (गायत) गान करो, उसकी प्रशंसा=स्तुति करो ॥ २० । ३० ॥

भावार्थः—मनुष्यैः सदैव युक्ताहारविहारेण शरीरात्मरोगान् निवार्य पुरुषार्थमुन्नीय परमेश्वरप्रतिपादकं गानं कर्त्तव्यम् ॥ २० । ३० ॥

भावार्थ—मनुष्य सदा ही युक्त आहार-विहार से शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण करके, पुरुषार्थ को बढ़ाकर, परमेश्वर के प्रतिपादक गान को करें ॥ २० । ३० ॥

भा० पदार्थः—बृहत्=परमेश्वरप्रतिपादकं गानम् ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए शारीरिक उपदेश**—विद्वान् लोग सत्य को बढ़ाने वाले हों। वे दिव्य गुणों वाले, परम ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर की प्राप्ति के लिए दिव्य सुखदायक, जागरूक (चेतनामय) तेज को शरीर में उत्पन्न करें। युक्त आहार-विहार से शरीर और आत्मा के रोगों का

निवारण करके पुरुषार्थ को बढ़ावें। सूर्य के समान महान् साम का ईश्वर की स्तुति में गान करें ॥ २० । ३० ॥

प्रजापतिः । **इन्द्रः**=विद्वान् । गायत्री । षड्जः ॥

पुनः प्रकारान्तरेणोक्तविषयमाह ॥

प्रकारान्तर से उक्त विषय का फिर उपदेश किया है ॥

अध्वर्यो ऽ अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र ऽ आ नय । पुनीहीन्द्राय पातवे ॥ ३१ ॥

पदार्थः—(**अध्वर्यो**) यो अध्वरं=यज्ञं युनक्ति तत्संबुद्धौ (**अद्रिभिः**) मेघैः । अद्रिरिति मेघना० ॥ १ । १० ॥ (**सुतम्**) निष्पन्नम् (**सोमम्**) सोमवल्ल्याद्योषधिसारं रसम् (**पवित्रे**) शुद्धे व्यवहारे (**आ**) (**नय**) (**पुनीहि**) पवित्रय (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**पातवे**) पातुम् ॥ ३१ ॥

प्रमाणार्थ—(**अद्रिभिः**) मेघैः । 'अद्रि' पद निघं० (१ । १०) में मेघ-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे अध्वर्यो ! त्वमिन्द्राय पातवे अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आनय तेन त्वं पुनीहि ॥ ३१ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अध्वर्यो !** यो अध्वरं=यज्ञं युनक्ति तत्सम्बुद्धौ **त्वमिन्द्राय** परमैश्वर्याय **पातवे** पातुं **अद्रिभिः** मेघैः **सुतं** निष्पन्नं **सोमं** सोमवल्ल्याद्योषधिसारं रसं **पवित्रे** शुद्धे व्यवहारे **आनय, तेन त्वं पुनीहि** पवित्रय ॥ ३१ ॥

भाषार्थ—हे (अध्वर्यो) यज्ञ को युक्त करने वाले मनुष्य ! तू—(इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष के (पातवे) पीने के लिए—(अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) निष्पन्न=तैयार हुए (सोमम्) सोम-लता आदि ओषधियों के सार रूप रस को (पवित्रे) शुद्ध व्यवहार में (आ+नय) ला, उससे तू (पुनीहि) सबको पवित्र कर ॥ २० । ३१ ॥

भावार्थः—वैद्यराजैः शुद्धदेशोत्पन्नौषधिसारान् निर्मायैतद्दानेन सर्वेषां रोगनिवृत्तिः सततं कार्या ॥ २० । ३१ ॥

भावार्थ—वैद्यराज लोग—शुद्ध देश में उत्पन्न ओषधियों के सार भूत रसों का निर्माण करके इनके दान से सब मनुष्यों के रोगों की निवृत्ति सदा करें ॥ २० । ३१ ॥

भा० पदार्थः—अध्वर्यो=वैद्यराज ! । सोमम्=शुद्धदेशोत्पन्नौषधिसारम् । पुनीहि=रोगनिवृत्तिं सततं कुरु ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए प्रकारान्तर से शारीरिक उपदेश**—यज्ञ करने वाले वैद्यराज लोग—परम ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष के पान करने के लिए, मेघ=वर्षा से उत्पन्न सोमलता आदि ओषधियों के सारभूत रस को पवित्र व्यवहार में लावें। ये औषधियाँ यज्ञ-जन्य वर्षा के शुद्ध जल से तथा शुद्ध देश में उत्पन्न हुई हों। इन ओषधियों के सार को देकर सब शारीरिक रोगों की सदा निवृत्ति करें ॥ २० । ३१ ॥

कौण्डिन्यः । **परमात्मा**=स्पष्टम् । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका ऽ अधि श्रिताः ।
य ऽ ईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

पदार्थः—(यः) परमेश्वरः (**भूतानाम्**) पृथिव्यादितत्त्वानां तत्कार्याणां लोकानाम् (**अधिपतिः**) अधिष्ठाता (**यस्मिन्**) (**लोकाः**) संघाताः (**अधि**) (**श्रिताः**) (**यः**) (**ईशे**) ईष्टे। **अत्र लोपस्त आत्मनेपदेष्विति तलोपः** (**महतः**) आकाशादेः (**महान्**) (**तेन**) (**गृह्णामि**) (**त्वाम्**) (**अहम्**) (**मयि**) (**गृह्णामि**) (**त्वाम्**) (**अहम्**) ॥ ३२ ॥

प्रमाणार्थ—(ईशे) ईष्टे। यहाँ 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' (७।१।४१) से त-लोप है ॥

अन्वयः—हे सर्वहितेच्छो ? यो भूतानामधिपतिर्महतो महानस्ति य ईशे यस्मिन् सर्वे लोका अधिश्रितास्तेन त्वामहं गृह्णामि मयि त्वामहं गृह्णामि ॥ ३२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सर्वहितेच्छो ! यः** परमेश्वरः **भूतानां** पृथिव्यादितत्त्वानां तत्कार्याणां लोकानाम् **अधिपतिः** अधिष्ठाता **महतः** आकाशादेः **महानस्ति, य ईशे,** ईष्टे **यस्मिन् सर्वे लोकाः** सङ्घाताः **अधिश्रितास्तेन त्वामहं गृह्णामि, मयि त्वामहं गृह्णामि** ॥ २० । ३२ ॥

भाषार्थ—हे सब का हित चाहने वाले परमेश्वर ! (यः) जो आप (भूतानाम्) पृथिवी आदि के तत्त्व एवं उनके कार्य लोकों के (अधिपतिः) अधिष्ठाता हैं; (महतः) आकाश आदि महान् पदार्थों से भी (महान्) महान् हैं; (यः) जो (ईशे) सबके ईश्वर हैं; (यस्मिन्) जिसमें सब (लोकाः) तत्त्व संघात रूप लोक (अधिश्रिताः) अधिष्ठित= आश्रित हैं; (तेन) इसलिए (त्वा) तुझे (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ; (मयि) अपने हृदय में (त्वा) तुझको (अहम्) मैं (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ ॥ २० । ३२ ॥

भावार्थः—य उपासकोऽनन्तब्रह्मनिष्ठो ब्रह्मभिन्नमुपास्यं किञ्चिद् वस्तु न जानाति, स एवात्र विद्वान् मन्तव्यः ॥ २० । ३२ ॥

भावार्थ—जो उपासक मनुष्य—अनन्त ब्रह्म में निष्ठावान् होकर ब्रह्म से भिन्न किसी वस्तु को उपास्य नहीं समझता उसे ही इस जगत् में विद्वान् मानना चाहिए ॥ २० । ३२ ॥

भाष्यसार—विद्वान् किसे मानें—परमेश्वर सबका हित चाहने वाला है। वह पृथिवी आदि के तत्त्व और उनके कार्य रूप लोकों का अधिपति=अधिष्ठाता है, आकाश आदि महान् पदार्थों से भी महान् है, जो सबका ईश्वर है, सब लोक उसी के आधार पर स्थित हैं, इसलिए उपासक विद्वान् अनन्त ब्रह्म में निष्ठावान् होकर उसे ग्रहण करे, अपने हृदय में उसे स्वीकार करे अर्थात् ब्रह्म से भिन्न किसी अन्य वस्तु को उपास्य न समझें। ऐसे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष को ही इस जगत् में सब लोग विद्वान् मानें ॥ २० । ३२ ॥

काक्षीवत्सुकीर्त्तिः । **ओम्ः=विद्वान्** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेवाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णऽएष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३३ ॥

पदार्थः—(**उपयामगृहीतः**) उपयामैरुत्तमनियमैः संगृहीतः (**असि**) (**अश्विभ्याम्**) पूर्णविद्याऽध्यापकोपदेशकाभ्याम् (**त्वा**) त्वाम् (**सरस्वत्यै**) सुशिक्षितायै वाचे (**त्वा**) त्वाम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठुरक्षकाय । अत्र कृतो बहुलमित्यनेन करणे मनिन् (**एषः**) (**ते**) तव (**योनिः**) विद्यासम्बन्धः (**अश्विभ्याम्**) (**त्वा**) (**सरस्वत्यै**) प्रशस्तगुणायै विदुष्यै (**त्वा**) (**इन्द्राय**) परमोत्तमव्यवहाराय (**त्वा**) (**सुत्राम्णे**) सुष्ठु रक्षकाय ॥ ३३ ॥

प्रमाणार्थ—(**सुत्राम्णे**) यहाँ 'कृतो बहुलम्' इस नियम से करण-कारक में 'मनिन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वमश्विभ्यामुपयामगृहीतोऽसि यस्य त एषोऽश्विभ्यां सह योनिरस्ति तं त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे चाहं गृह्णामि सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे त्वा गृह्णामि ॥ ३३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यस्त्वमश्विभ्यां पूर्णविद्याऽध्यापकोपदेशकाभ्याम् **उपयामगृहीतः** उपयामैरुत्तमनियमैः संगृहीतः **असि, यस्य ते** तव **एषोऽश्विभ्यां** पूर्णविद्याऽध्यापकोपदेशकाभ्यां **सह योनिः** विद्यासम्बन्धः **अस्ति, तं त्वा** त्वां **सरस्वत्यै** सुशिक्षितायै वाचे, **त्वा** त्वाम् **इन्द्राय** परमैश्वर्याय, **त्वा** त्वाम् **सुत्राम्णे** सुष्ठुरक्षकाय **चाहं गृह्णामि** ।

सरस्वत्यै प्रशस्तगुणायै विदुष्यै **त्वा** त्वाम्, **इन्द्राय** परमोत्तमव्यवहाराय **त्वा** त्वां, **सुत्राम्णे** सुष्ठु रक्षकाय **त्वा** त्वां **गृह्णामि** ॥ २० । ३३ ॥

भावार्थः—यो विद्वद्भिः शिक्षितः, स्वयं सुप्रज्ञो, जितेन्द्रियो, विविधविद्यो, विद्वत्प्रियः स्यात्, स एव विद्याधर्मप्रवृत्तयेऽधिष्ठाता कर्त्तव्यो भवेत् ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! जो तू—(अश्विभ्याम्) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक के द्वारा (उपयामगृहीतः) उपयाम=उत्तम नियमों से ग्रहण किया गया (असि) है, जो (ते) तेरा (एषः) यह (अश्विभ्याम्) पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक के साथ (योनिः) विद्या-सम्बन्ध है, सो (त्वा) तुझे (सरस्वत्यै) सुशिक्षित वाणी के लिए, (त्वा) तुझे (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिए और (त्वा) तुझे (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक होने के लिए मैं अधिष्ठाता स्वीकार करता हूँ । और—

(सरस्वत्यै) प्रशस्त गुणों वाली विदुषी के लिए (त्वा) तुझे, (इन्द्राय) परम उत्तम व्यवहार के लिए (त्वा) तुझे, (सुत्राम्णे) उत्तम रक्षक होने के लिए (त्वा) तुझे मैं ग्रहण करता हूँ ॥

भावार्थ—जो विद्वानों से शिक्षित, स्वयं उत्तम प्रज्ञा वाला, जितेन्द्रिय, विविध विद्याओं का वेत्ता, विद्वानों का प्रिय पुरुष हो, उसे ही विद्या और धर्म की प्रवृत्ति=वृद्धि के लिए अधिष्ठाता बनावें ॥ २० । ३३ ॥

भा० पदार्थः—उपयामगृहीतः=शिक्षितः । सरस्वत्यै=विविधविद्यायै । इन्द्राय=जितेन्द्रियाय ।

भाष्यसार—**विद्वान् अधिष्ठाता**—जो पूर्ण विद्या वाले अध्यापक और उपदेशक के द्वारा ब्रह्मचर्य आदि उत्तम नियमों से शिष्य स्वीकार किया गया हो, और पूर्ण विद्या वाले अध्यापक के साथ जिसका विद्या सम्बन्ध हो, अर्थात् जो विद्वानों से शिक्षित, स्वयं उत्तम प्रज्ञा=बुद्धि वाला, जितेन्द्रिय,

विविध विद्याओं का ज्ञाता, और विद्वानों एवं परम उत्तम व्यवहार का प्रिय हो उसे—सुशिक्षित वाणी परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अर्थात् विद्या और धर्म की वृद्धि के लिए उत्तम रक्षक अर्थात् अधिष्ठाता स्वीकार करें। जो प्रशस्त गुण वाली विदुषी हो उसके लिए ऐसे विद्वान् पुरुष को ही वर स्वीकार करें ॥ २० । ३३ ॥

प्रजापतिः । **लिङ्गोक्ताः**=विद्वदादयः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

प्राणपा मेंऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे । वाचो म विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥

पदार्थः—(**प्राणपाः**) यः प्राणं पाति=रक्षति (**मे**) मम (**अपानपाः**) योऽपानं पाति (**चक्षुष्पाः**) यश्चक्षुः पाति (**श्रोत्रपाः**) यः श्रोत्रं पाति (**च**) (**मे**) मम (**वाचः**) (**मे**) (**विश्वभेषजः**) (**मनसः**) (**असि**) (**विलायकः**) येन विविधतया लीयते=श्लिष्यते ॥ २० । ३४ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् । यतस्त्वं मे प्राणपा अपानपा मे चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे वाचो विश्वभेषजो मनसो विज्ञानसाधकस्य विलायकोऽसि तस्मात् त्वं पितृवत् सत्कर्त्तव्योऽसि ॥ ३४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यतस्त्वं मे** मम **प्राणपाः** यः प्राणं पाति=रक्षति **अपानपाः** योऽपानं पाति **मे** मम **चक्षुष्पाः** यश्चक्षुः पाति **श्रोत्रपाः** यः श्रोत्रं पाति **च मे** मम **वाचो विश्वभेषजो मनसो**=**विज्ञानसाधकस्य विलायकः** येन विविधतया लीयते=श्लिष्यते **असि, तस्मात् त्वं पितृवत् सत्कर्त्तव्योऽसि** ॥ २० । ३४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जिससे तू—(मे) मेरे (प्राणपाः) प्राण का रक्षक है, (अपानपाः) अपान का रक्षक है, (मे) मेरे (चक्षुष्पाः) चक्षु का रक्षक है, (श्रोत्रपाः) श्रोत्र का रक्षक है, और (मे) मेरी (वाचः) वाणी का, (विश्वभेषजः) सब की ओषधि रूप, (मनसः) विज्ञान के साधक मन का (विलायकः) विविध रूप से अपनी विद्या में विलय करने वाला (असि) है, अतः तू माता-पिता के समान सत्कार के योग्य है ॥ २० । ३४ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः—ये बाल्याऽवस्थामारभ्य विद्यासुशिक्षाभ्यां जितेन्द्रियत्वं, विद्यासत्पुरुषसङ्गप्रियत्वं, धर्मात्मपरोपकारित्वं च ग्राहयन्ति ते मातृवत् मित्रवच्च विज्ञेयाः ॥ ३४ ॥

भावार्थ—मनुष्य—जो बाल्यावस्था से लेकर विद्या और सुशिक्षा के द्वारा जितेन्द्रियता; विद्या तथा सत्पुरुषों के संग से प्रेम, धर्मात्मा और परोपकारी होना सिखलाते हैं, उन्हें माता और मित्र के समान समझें ॥ २० । ३४ ॥

भाष्यसार—**विद्वान्**—जो विद्वान् पुरुष बाल्यावस्था से लेकर विद्या और सुशिक्षा के द्वारा शिष्य के प्राण, अपान और चक्षु की रक्षा करता है अर्थात् अपने शिष्य को जितेन्द्रिय बनाता है। शिष्य की वाणी तथा सब इन्द्रियों को वश में करने को ओषधि रूप विज्ञान के साधक मन को अपनी विद्या में विलीन करता है अर्थात् विद्या और सत्पुरुषों के सङ्ग से प्रेम सिखलाता है, धर्मात्मा और परोपकारी बनाता है, उस शिक्षक विद्वान् का माता-पिता के समान सत्कार करें। उसे माता-पिता और सच्चा मित्र समझें ॥ २० । ३४ ॥

प्रजापतिः । **लिङ्गोक्ताः**=विद्वदादयः । निचृदुपरिष्टाद्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

अश्विनंकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूतऽउपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

पदार्थः--(**अश्विनकृतस्य**) यौ सद्गुणमश्नुवाते तावश्विनौ तावेवाश्विनौ ताभ्यां कृतस्य । अत्राऽश्विन् शब्दात् स्वार्थेऽण् वृद्ध्यभावस्त्वार्षः (**ते**) तव (**सरस्वतिकृतस्य**) विदुष्या स्त्रिया कृतस्य अत्र स्वार्थेऽण् संज्ञाछन्दसोर्बहुलमिति पूर्वपदस्य ह्रस्वः (**इन्द्रेण**) विद्यैश्वर्य्येण राज्ञा (**सुत्राम्णा**) सुष्ठुतया रक्षकेण (**कृतस्य**) (**उपहूतः**) सत्कृत्याहूतः (**उपहूतस्य**) (**भक्षयामि**) ॥ २० । ३५ ॥

प्रमाणार्थ—(**अश्विनकृतस्य**) यहाँ 'अश्विन्' शब्द से स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय है और वृद्धि का अभाव आर्ष=वैदिक है। (**सरस्वतिकृतस्य**) यहाँ स्वार्थ में 'अण्' प्रत्यय और 'संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इससे बहुल करके पूर्वपद (**सरस्वती**) को ह्रस्व है ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नुपहूतोऽहं तेऽश्विनकृतस्य सरस्वतिकृतस्य सुत्राम्णेन्द्रेण कृतस्योपहूतस्यान्नादिकं भक्षयामि ॥ २० । ३५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! उपहूतः** सत्कृत्याहूतः **अहं ते** तव **अश्विनकृतस्य** यो सद्गुणमश्नुवाते तावश्विनौ, तावेवाश्विनौ ताभ्यां कृतस्य; **सरस्वतिकृतस्य** विदुष्या स्त्रिया कृतस्य, **सुत्राम्णा** सुष्ठुतया रक्षकेण **इन्द्रेण** विद्यैश्वर्य्येण राज्ञा **कृतस्योपहूतस्यान्नादिकं भक्षयामि** ॥ २० । ३५ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! (उपहूतः) सत्कारपूर्वक बुलाया हुआ मैं (ते) तेरे—(अश्विनकृतस्य) सद्गुणों को व्याप्त करने वाले विद्वानों से बनाए हुए, (सरस्वतिकृतस्य) विदुषी स्त्री से बनाए हुए, (सुत्राम्णा) उत्तम रक्षक (इन्द्रेण) विद्या-ऐश्वर्य वाले राजा से (कृतस्य) बनाए हुए, (उपहूतस्य) प्रस्तुत किए हुए अन्न आदि का (भक्षयामि) सेवन करता हूँ ॥ २० । ३५ ॥

भावार्थः — मनुष्यैर्विद्वदैश्वर्ययुक्तैर्जनैरनुष्ठितमनुष्ठेयम्, सुशिक्षितनिष्पादितमन्नमत्तव्यं, सत्कर्त्तुः सत्कारश्च कार्यः ॥ २० । ३५ ॥

भावार्थ--मनुष्यों को चाहिए कि वे विद्वान् और ऐश्वर्य से युक्त पुरुषों से किए हुए कर्म का अनुष्ठान करें, सुशिक्षित जनों से निष्पादित=तैयार किए हुए अन्न का सेवन करें और सत्कार करने वाले का सत्कार करें ॥ २० । ३५ ॥

भा० पदार्थः—अश्विनकृतस्य=विद्वदैश्वर्ययुक्तैर्जनैरनुष्ठितस्य । सरस्वतिकृतस्य=सुशिक्षितनिष्पादितस्य ॥

भाष्यसार—**विद्वान्**—विद्वान् मनुष्य विद्वानों को सत्कारपूर्वक बुलावें । और उन्हें श्रेष्ठ पुरुष, विदुषी स्त्री, उत्तम रक्षक तथा विद्या-ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा के द्वारा तैयार किए हुए अन्न=भोजन खिलावें ।

मनुष्यों को चाहिए कि विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुषों के द्वारा किए हुए कर्मों का अनुष्ठान करें । सत्कार करने वालों का सत्कार करें ॥ २० । ३५ ॥

आङ्गिरसः । इन्द्रः=सूर्यः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वान् विषयक फिर उपदेश किया है ॥

समिद्ध ऽ इन्द्र ऽ उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः ।
त्रिभिर्देवैस्त्रिंशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

पदार्थः—(**समिद्धः**) प्रदीप्तः (**इन्द्रः**) सूर्यः (**उषसाम्**) प्रभातानाम् (**अनीके**) सैन्ये (**पुरोरुचा**) प्राक् प्रसृतया दीप्त्या (**पूर्वकृत्**) पूर्वं करोतीति पूर्वकृत् (**वावृधानः**) वर्द्धमानः (**त्रिभिः**) (**देवैः**) (**त्रिंशता**) त्रयस्त्रिंशत्संख्याकैः पृथिव्यादिभिर्दिव्यैः पदार्थैः (**वज्रबाहुः**) वज्रो बाहौ यस्य सः (**जघान**) हन्ति (**वृत्रम्**) प्रकाशावरकं मेघम् (**वि**) विगतार्थे (**दुरः**) द्वाराणि (**ववार**) विवृणोति ॥ ३६ ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! पूर्वकृद्वावृधानो वज्रबाहुः सन्नुषसामनीके यथा पुरोरुचा समिद्ध इन्द्रस्त्रिभिरधिकैः त्रिंशता देवैः सह वर्त्तमानः सन् वृत्रं जघान दुरो विववार तथातिबलैर्योद्धृभिः सह शत्रून् हत्वा विद्याधर्मद्वाराणि प्रकाशितानि कुरु ॥ ३६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **पूर्वकृत्**, पूर्वं करोतीति पूर्वकृद् **वावृधानः** वर्द्धमानः **वज्रबाहुः** वज्रो बाहौ यस्य सः **सन्नुषसां** प्रभातानाम् **अनीके** सैन्ये **यथा पुरोरुचा** प्राक् प्रसृतया दीप्त्या **समिद्धः** प्रदीप्तः **इन्द्रः** सूर्यः **त्रिभिरधिकैः त्रिंशता** त्रयस्त्रिंशत्संख्याकैः पृथिव्यादिभिर्दिव्यैः पदार्थैः **देवैः सह वर्त्तमानः सन् वृत्रं** प्रकाशावरकं मेघं **जघान** हन्ति **दुरः** द्वाराणि **विववार** विगतत्वेन विवृणोति **तथातिबलैर्योद्धृभिः सह शत्रून् हत्वा विद्याधर्मद्वाराणि प्रकाशितानि कुरु** ॥ ३६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । विद्वांसः सूर्यवद् विद्याधर्मप्रकाशकाः स्युः, विद्वद्भिः सह शान्त्या प्रीत्या सत्याऽसत्ययोर्विवेकाय संवादान् कृत्वा सुनिश्चित्य सर्वान् निःसंशयान् जनान् कुर्युः ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! तू—(पूर्वकृत्) पूर्व दिशा को बनाने वाला, (वावृधानः) बढ़ता हुआ, (वज्रबाहुः) वज्र को बाहु=हाथ में धारण किए हुए (उषसाम्) प्रभातों की (अनीके) सेना में जैसे-(पुरोरुचा) प्रथम फैली हुई दीप्ति से (समिद्धः) प्रदीप्त (इन्द्रः) सूर्य—(त्रिभिः) तीन अधिक (त्रिंशता) तैंतीस अर्थात् तीस पृथिवी आदि (देवैः) देवताओं के साथ विद्यमान होकर, (वृत्रम्) प्रकाश के आच्छादक मेघ को (जघान) मारता है, (दुरः) द्वारों को (विववार) खोलता है; वैसे अति बलवान् योद्धाओं की सहायता से शत्रुओं को मार कर विद्या और धर्म के द्वारों को प्रकाशित कर ॥३६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ विद्वान् लोग सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाशक हों, विद्वानों के साथ शान्ति एवं प्रीति से सत्य-असत्य के विवेक के लिए संवाद कर, ठीक निश्चय करके सब लोगों को संशयरहित करें ॥ २० । ३६ ॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् के लिए उपदेश**—सूर्य पूर्व दिशा को बनाने वाला, बढ़ने वाला, वज्र रूप किरणों को बाहु=हाथ में रखने वाला है। प्रभातवेलाओं की सेना में जैसे प्रथम फैली हुई दीप्ति से प्रदीप्त हुआ सूर्य पृथिवी आदि ३३ तैंतीस देवताओं के साथ वर्तमान होकर, प्रकाश को आच्छादित करने वाले मेघ को मार डालता है, प्रकाश को आगे बढ़ने के लिए द्वार खोल देता है इसी प्रकार

विद्वान् लोग विद्या और धर्म के प्रकाशक हों। अति बलवान् योद्धाओं की सहायता से शत्रुओं को मार कर विद्या और धर्म के मार्गों को प्रकाशित करें शान्ति और प्रेम से, सत्य-असत्य का विवेचन करने के लिए विद्वानों के साथ संवाद करें तथा ठीक निश्चय करके सब मनुष्यों को संशय-रहित करें।

२. **अलङ्कार**—मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विद्वान् लोग सूर्य के समान वृत्र के घातक एवं विद्या और धर्म के प्रकाशक हों ॥ २० । ३६ ॥

आङ्गिरसः । **तनूनपात्**=शरीररक्षकः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथ प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह ॥

प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।
गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥ ३७ ॥

पदार्थः—(**नराशंसः**) यो नरैराशस्यते=स्तूयते सः (**प्रति**) व्याप्तौ (**शूरः**) सर्वतो निर्भयः (**मिमानः**) योऽनेकानुत्तमान् पदार्थान्मिमीते (**तनूनपात्**) यस्तनूं न पातयति (**प्रति**) (**यज्ञस्य**) सत्य-व्यवहारस्य (**धाम**) (**गोभिः**) धेनुवृषभैः (**वपावान्**) वपन्ति यया क्रियया सा वपा, सा प्रशस्ता विद्यते यस्य सः (**मधुना**) मधुरगुणेन रसेन (**समञ्जन्**) व्यक्तीकुर्वन् (**हिरण्यैः**) सुवर्णादिभिः (**चन्द्री**) चन्द्रं=बहुसुवर्णं विद्यते यस्य सः (**यजति**) (**प्रचेताः**) प्रकृष्टं चेतः=प्रज्ञा यस्य सः ॥ २० । ३७ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यो नराशंसो यज्ञस्य धाम प्रति मिमानः शूरस्तनूनपाद् गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन् हिरण्यैश्चन्द्री प्रचेताः प्रति यजति सोऽस्माभिराश्रयितव्यः ॥ २० । ३७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः ! यो **नराशंसः** यो नरैराशस्यते=स्तूयते सः **यज्ञस्य** सत्यव्यवहारस्य **धाम प्रति मिमानः** व्याप्त्या योऽनेकानुत्तमान् पदार्थान्मिमीते **शूरः** सर्वतो निर्भयः **तनूनपात्** यस्तनूं न पातयति **गोभिः** धेनुवृषभैः **वपावान्** वपन्ति यया क्रियया सा वपा, सा प्रशस्ता विद्यते यस्य सः **मधुना** मधुरगुणेन रसेन **समञ्जन्** व्यक्तीकुर्वन् **हिरण्यैः** सुवर्णादिभिः **चन्द्री** चन्द्रं=बहुसुवर्णं विद्यते यस्य सः **प्रचेताः** प्रकृष्टं चेतः=प्रज्ञा यस्य सः **प्रतियजति** (व्याप्त्या यजति) **सोऽस्माभिराश्रयितव्यः** ॥ २० । ३७ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो (नराशंसः) नरों से स्तुति करने योग्य, (यज्ञस्य) सत्य व्यवहार का (धाम) धाम=स्थान, (प्रति+मिमानः) व्यापक रूप से अनेक उत्तम पदार्थों का निर्माता, (शूरः) सब ओर से निर्भय, (तनूनपात्) शरीर का पात=नाश न करने वाला, (गोभिः) गाय और बैलों से (वपावान्) प्रशस्त वपा=कृषि करने वाला, (मधुना) मधुर रस (समञ्जन्) कृषि को उत्पन्न करता हुआ, (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि से (चन्द्री) चन्द्र=बहुत सुवर्ण वाला, (प्रचेताः) उत्तम बुद्धि वाला पुरुष (प्रति+यजति) प्रतिदिन यज्ञ करता है, उसका हम आश्रय=संग करें ॥ २० । ३७ ॥

भावार्थः—मनुष्यैः कश्चिन्निन्दितो, भीरुः, स्वशरीरनाशक, उद्यमहीनो, ऽलसो, मूढो, दरिद्रश्च नैव सङ्गन्तव्यः ॥ २० । ३७ ॥

भावार्थ—मनुष्य—किसी निन्दित, भीरु, अपने शरीर के नाशक, उद्यम=पुरुषार्थ से हीन, आलसी, मूढ और दरिद्र पुरुष का संग न करें ॥ २० । ३७ ॥

भा० पदार्थः—नराशंसः=न निन्दितः । शूरः=न भीरुः । तनूनपात्=न स्वशरीरनाशकः । वपावान्=न उद्यमहीनः, न अलसः । चन्द्री=न दरिद्रः । प्रचेताः=न मूढः ॥

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**—विद्वान् नरों से प्रशंसा के योग्य, सत्य=व्यवहार का धाम, उत्तम पदार्थों का निर्माता, निर्भय, अपने शरीर का रक्षक, गौ और बैलों से कृषि करने वाला, भूमि में मधुर रस सींच कर कृषि को उत्पन्न करने वाला, बहुत सुवर्ण वाला, बुद्धिमान् और प्रतिदिन यज्ञ करने वाला हो।

सब मनुष्य उक्त विद्वान् का ही आश्रय=संग करें जो निन्दित, भीरु, दुष्ट व्यसनों से अपने शरीर को नष्ट करने वाला, उद्यम से रहित, आलसी, मूढ़ और दरिद्र पुरुष है उसका संग न करें ॥ २० । ३७ ॥

आङ्गिरसः । **इन्द्रः=विद्वान्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

ईडितो देवैर्हरिवाँ२ऽ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

पदार्थः—(**ईडितः**) स्तुतः (**देवैः**) विद्वद्भिः (**हरिवान्**) प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य सः (**अभिष्टिः**) अभितः=सर्वत इष्टयो=यज्ञा यस्य सः । **अत्र छान्दसो वर्णलोपो वेति इकारलोपः** (**आजुह्वानः**) सर्वतो विद्वद्भिः कृताह्वानः (**हविषा**) सद्विद्यादानाऽऽदानेन (**शर्द्धमानः**) सहमानः (**पुरन्दरः**) यो रिपु-पुराणि दृणाति सः (**गोत्रभित्**) यो गोत्रं=मेघं भिनत्ति सः (**वज्रबाहुः**) वज्रहस्तः (**आ**) (**यातु**) आगच्छतु (**यज्ञम्**) (**उप**) (**नः**) (**जुषाणः**) प्रीतः सन् ॥ ३८ ॥

प्रमाणार्थ—(**अभिष्टिः**) यहाँ 'छान्दसो वर्णलोपो वा' इससे इकार का लोप छान्दस=वैदिक है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा हरिवान् वज्रबाहुः पुरन्दरः सेनेशो गोत्रभित्सूर्य्यो रसानिव स्वसेनां सेवते तथा देवैरीडितोऽभिष्टिराजुह्वानो हविषां शर्द्धमानो जुषाणो भवान्नो यज्ञमुपायातु ॥ ३८ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे विद्वन् ! यथा हरिवान्** प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य सः **वज्रबाहुः** वज्रहस्तः **पुरन्दरः=सेनेशो** यो रिपु-पुराणि दृणाति सः **गोत्रभित्=सूर्य्यो** यो गोत्रं=मेघं भिनत्ति सः **रसानिव स्वसेनां सेवते, तथा देवैः** विद्वद्भिः **ईडितः** स्तुतः, **अभिष्टिः** अभितः सर्वत इष्टयो=यज्ञा यस्य सः, **आजुह्वानः** सर्वतो विद्वद्भिः कृताह्वानः, **हविषा** सद्विद्यादानाऽऽदानेन **शर्द्धमानः** सहमानः, **जुषाणः** प्रीतः सन्, **भवान्नो यज्ञमुपायातु** आगच्छतु ॥ २० । ३८ ॥

भाषार्थ—विद्वान् मनुष्य ! जैसे—(हरिवान्) प्रशस्त हरि=घोड़ों वाला, (वज्रबाहुः) वज्र=शस्त्र को बाहु=हाथ में रखने वाला, (पुरन्दरः) शत्रुओं के पुर=नगरों का विदारण करने वाला सेनापति—(गोत्रभित्) गोत्र=मेघ का भेदन करने वाले सूर्य के रस-सेवन के समान अपनी सेना का सेवन करता है, वैसे (देवैः) विद्वानों से (ईडितः) प्रशंसित, (अभिष्टिः) सब ओर यज्ञ करने वाला, (आजुह्वानः) सब ओर विद्वानों से निमन्त्रित, (हविषा) सद्विद्या के आदान-प्रदान से

(शर्द्धमानः) सहनशील, (जुषाणः) प्रसन्न होकर आप (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ में (उप+आयातु) आइये ॥ २० । ३८ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यथा सेनापतिः सेनां, सूर्यो मेघं च वर्द्धयित्वा सर्वं जगद् रक्षति तथा धार्मिकैरध्यापकैरध्येतृभिः सहाऽध्यापनाध्ययने कृत्वा विद्यया सर्वप्राणिनो रक्षणीयाः ॥ २० । ३८ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे सेनापति सेना को और सूर्य मेघ=बादल को बढ़ाकर सब जगत् की रक्षा करता है वैसे धार्मिक अध्यापक लोग पढ़ने वाले छात्रों के साथ पठन-पाठन करके विद्या से सब प्राणियों की रक्षा करें ॥ २० । ३८ ॥

भा० पदार्थः—पुरन्दरः=सेनापतिः । सेवते=रक्षति । देवैः=धार्मिकैरध्यापकैः । हविषा=अध्यापनाध्ययने कृत्वा ॥

भाष्यसार—१. विद्वान् के लिए उपदेश—जैसे शत्रुओं का विदारण करने वाला सेनापति, प्रशस्त घोड़ों वाला और वज्र को हाथ में धारण करने वाला होकर अपनी सेना को बढ़ाता है, जैसे सूर्य रसों का सेवन करके मेघों को बढ़ाता है वैसे धार्मिक अध्यापक विद्वानों से प्रशंसित, सब ओर इष्टि=यज्ञ करने वाला, सब ओर विद्वानों से निमन्त्रित सद्-विद्या के आदान-प्रदान से सहनशील, प्रीतिमान् विद्वान् पढ़ने वालों के साथ पठन-पाठन से विद्या को बढ़ावे । विद्या के द्वारा सब प्राणियों की रक्षा करे । इस प्रकार के विद्वान् को लोग यज्ञ में बुलावें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि जैसे सेनापति सेना को बढ़ाता है, जैसे सूर्य मेघों को बढ़ाता है वैसे-वैसे विद्वान् पुरुष विद्या को बढ़ावे ॥ २० । ३८ ॥

आङ्गिरसः । **इन्द्रः**=विद्वान् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न ऽ इन्द्रः प्राचीनꣳ सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः ।
उरुप्रथाः प्रथमानꣳ स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३९ ॥

पदार्थः—(**जुषाणः**) सेवमानः (**बर्हिः**) अन्तरिक्षम् । बर्हिरित्यन्तरिक्षना० ॥ निघं० १ । ३ ॥ (**हरिवान्**) बहवो हरयो=हरणशीलाः किरणा विद्यन्ते यस्य सः (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्रः**) जलानां धर्त्ता (**प्राचीनम्**) प्राक्तनम् (**सीदत्**) सीदति (**प्रदिशा**) उपदिशा (**पृथिव्याः**) भूमेः (**उरुप्रथाः**) बहुविस्तारः (**प्रथमानम्**) (**स्योनम्**) सुखकारकं स्थानम् (**आदित्यैः**) मासैः (**अक्तम्**) प्रसिद्धम् (**वसुभिः**) पृथिव्यादिभिः (**सजोषाः**) सह वर्त्तमानः ॥ ३९ ॥

प्रमाणार्थ—(बर्हिः) अन्तरिक्षम् । 'बर्हिः' पद निघं० (१ । ३) में अन्तरिक्ष-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा बर्हिर्जुषाणो हरिवान् उरुप्रथा आदित्यैर्वसुभिः सजोषा इन्द्रः पृथिव्याः प्रदिशा प्रथमानमक्तं प्राचीनं स्योनं सीदत् तथा त्वं नोऽस्माकं मध्ये भव ॥ ३९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! यथा **बर्हिः** अन्तरिक्षं **जुषाणः** सेवमानः **हरिवान्** बहवो हरयो=हरणशीलाः किरणा विद्यन्ते यस्य सः **उरुप्रथाः** बहुविस्तारः **आदित्यैः** मासैः **वसुभिः** पृथिव्यादिभिः **सजोषाः** सह वर्त्तमानः **इन्द्रः** जलानां धर्त्ता **पृथिव्याः** भूमेः **प्रदिशा** उपदिशा **प्रथमानमक्तं** प्रसिद्धं **प्राचीनं** प्राक्तनं **स्योनं** सुखकारकं स्थानं **सीदत्** सीदति, **तथा त्वं नो**=ऽस्माकं **मध्ये भव** ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे—(बर्हिः) अन्तरिक्ष को (जुषाणः) सेवन करने वाला (हरिवान्) बहुत किरणों वाला, (उरुप्रथाः) बहुत विस्तार करने वाला, (आदित्यैः) बारह आदित्य=मास, (वसुभिः) पृथिवी आदि आठ वसुओं के (सजोषाः) साथ वर्तमान (इन्द्रः) जलों को धारण करने वाला सूर्य—(पृथिव्याः) भूमि की (प्रदिशा) दृष्टि से (प्रथमानम्) विस्तृत, (अक्तम्) प्रसिद्ध, (प्राचीनम्) प्राचीन तथा (स्योनम्) सुखकारक स्थान में (सीदत्) विद्यमान है; वैसे तू हमारे मध्य में हो ॥ २० । ३९ ॥

भावार्थः—मनुष्यैरहर्निशं प्रयत्नादादित्यवदविद्यान्धकारं निवार्य जगति महत् सुखं कार्यम् ।

यथा पृथिव्याः सकाशात् सूर्यो महान् वर्तते तथाऽविदुषां मध्ये विद्वानिति बोध्यम् ॥ २० । ३९ ॥

भावार्थ—मनुष्य दिन-रात प्रयत्न से सूर्य के समान अविद्या अन्धकार का निवारण करके जगत् में महान् सुख को उत्पन्न करें ।

जैसे पृथिवी से सूर्य महान् है वैसे अविद्वानों के मध्य में विद्वान् महान् है, ऐसा समझें ॥ ३९ ॥

भा० पदार्थः—स्योनम्=महत् सुखम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**—जैसे सूर्य अन्तरिक्ष का सेवन करने वाला, बहुत किरणों वाला, बहुत विस्तार वाला, बारह आदित्य (मास) और पृथिवी आदि आठ वसुओं के साथ विद्यमान है तथा अन्धकार को नष्ट करता है वैसे सब मनुष्य प्रयत्न से अविद्या-अन्धकार का निवारण करके जगत् में महान् सुख को उत्पन्न करें ।

जैसे सूर्य पृथिवी से विस्तृत, प्रसिद्ध, पुराना है तथा सुखकारक स्थान में विद्यमान है वैसे विद्वान् पुरुष भी अविद्वानों के मध्य में महान् रहें ॥ २० । ३९ ॥

आङ्गिरसः । **इन्द्रः=परमैश्वर्यवान् पुरुषः** । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनः प्रकारान्तरेणोपदेशविषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश विषय को कहा है ॥

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताᳬ सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥ ४० ॥

पदार्थः—(**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यवन्तम् (**दुरः**) द्वाराणि (**कवष्यः**) शब्दे साधवः (**धावमानाः**) शीघ्रं गच्छन्त्यः (**वृषाणम्**) अतिवीर्यवन्तम् (**यन्तु**) प्राप्नुवन्तु (**जनयः**) जनिकः (**सुपत्नीः**) शोभनाः (**द्वारः**) (**देवीः**) विद्यादिगुणैः प्रकाशमानाः (**अभितः**) (**वि**) (**श्रयन्ताम्**) (**सुवीराः**) शोभनाश्च वीराश्च ते (**वीरम्**) बलवन्तम् (**प्रथमानाः**) प्रख्याताः (**महोभिः**) सुपूजितैर्गुणैः ॥ २० । ४० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा कवष्यो वृषाणं वीरमिन्द्रन्धावमानाः दुरो यन्तु यथा प्रथमानाः सुवीरा महोभिर्द्वारो देवीः सुपत्नीरभितो विश्रयन्तां तथा यूयमप्याचरत ॥ २० । ४० ॥

सपदार्थान्वयः—हे मनुष्याः! यथा **कवष्यः** शब्दे साधवः **वृषाणं** अतिवीर्यवन्तं **वीरं** बलवन्तम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यवन्तं **धावमानाः** शीघ्रं गच्छन्त्यः **दुरः** द्वाराणि **यन्तु** प्राप्नुवन्तु।

यथा प्रथमानाः प्रख्याताः **सुवीराः** शोभनाश्च वीराश्च ते **महोभिः** सुपूजितैर्गुणैः **द्वारो देवीः** विद्यादिगुणैः प्रकाशमाना [**जनयः**] जनिकाः **सुपत्नीः** शोभनाः [पत्नीः] **अभितो विश्रयन्तां तथा यूयमप्याचरत** ॥ २० । ४० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(कवष्यः) बोलने में चतुर—(वृषाणम्) अति वीर्यवान्, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले, (वीरम्) बलवान वीर पुरुष के प्रति (धावमानाः) दौड़ती हुई स्त्रियाँ (दुरः) द्वार=घरों को (यन्तु) प्राप्त होती हैं।

जैसे (प्रथमानाः) प्रख्यात, (सुवीराः) सुन्दर वीर पुरुष—(महोभिः) सुपूजित गुणों से, (द्वारः) द्वार के तुल्य वर्तमान (देवीः) विद्या आदि गुणों से प्रकाशमान, [जनयः] सन्तान उत्पन्न करने वाली (सुपत्नीः) सुन्दर पतियों को (अभितः) सब ओर से (विश्रयन्ताम्) प्राप्त करते हैं; वैसे तुम भी प्राप्त करो ॥ २० । ४० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ॥ यत्र परस्परस्य प्रीत्या स्वयंवरं विवाहं कुर्वन्ति तत्र मनुष्याः सदा नन्दन्ति ॥ २० । ४० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जिस कुल वा देश में लोग परस्पर की प्रीति से स्वयंवर विवाह करते हैं वहाँ मनुष्य सदा आनन्द से रहते हैं ॥ २० । ४० ॥

भाष्यसार—**१. विवाह का उपदेश**—बोलने में चतुर स्त्रियाँ—अति वीर्यवान्, परम ऐश्वर्यवान् और बलवान् वीर पुरुष के प्रति आकृष्ट होती हैं और उनके द्वार=घरों को प्राप्त करती हैं। वैसे ही प्रसिद्ध, सुन्दर वीर पुरुष अपने उत्तम गुणों के कारण विद्या आदि शुभ गुणों से सुशोभित, द्वार=घर रूप, सन्तान उत्पन्न करने वाली सुन्दर पत्नियों को सब ओर से प्राप्त करते हैं। वैसे अन्य मनुष्य भी उनका अनुकरण करें। तात्पर्य यह है कि जिस कुल में परस्पर की प्रीति से लोग स्वयंवर विवाह करते हैं वहाँ सब मनुष्य सदा प्रसन्न रहते हैं ॥

२. अलङ्कार—मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त हैं। अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि मन्त्र में प्रतिपादित स्त्री और वीर पुरुषों के समान सब मनुष्य स्वयंवर विवाह करें ॥ २० । ४० ॥

आङ्गिरसः। **उषासानक्ता**=**उषा नक्तं च**। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से उपदेश-विषय को कहा है ॥

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम्।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

पदार्थः—(**उषासानक्ता**) उषाश्च नक्तं च ते (**बृहती**) वर्द्धमाने (**बृहन्तम्**) महान्तम् (**पयस्वती**) रात्र्यन्धकारयुक्ते (**सुदुघे**) सुष्ठुप्रपूरिके (**शूरम्**) निर्भयम् (**इन्द्रम्**) सूर्यम् (**तन्तुम्**) विस्तारकम् (**ततम्**) विस्तृतम् (**पेशसा**) रूपेण (**संवयन्ती**) प्रापयन्त्यौ। अत्र सर्वत्र बृहती इत्यादौ सुपां सुलुगिति पूर्वसवर्णदीर्घः (**देवानाम्**) पृथिव्यादीनाम् (**देवम्**) द्योतकम् (**यजतः**) संगच्छेते (**सुरुक्मे**) सुष्ठु दीप्यमाने ॥ ४१ ॥

प्रमाणार्थ—(संवयन्ती) प्रापयन्त्यौ। यहाँ सर्वत्र 'बृहती' इत्यादि में 'सुपां सुलुक्०' (७। १। ३९) से पूर्वसवर्ण दीर्घ है॥

अन्वयः—हे मनुष्याः! यथा पेशसा संवयन्ती पयस्वती सुदुघे बृहती सुरुक्मे उषासानक्ता ततं देवानां देवं बृहन्तमिन्द्रं सूर्यं यजतस्तथैव तन्तुं शूरं पुरुषं यूयं सङ्गच्छध्वम्॥ ४१॥

सपदार्थान्वयः--हे मनुष्याः! **यथा पेशसा** रूपेण **संवयन्ती** प्रापयन्त्यौ **पयस्वती** राज्यन्धकारयुक्ते **सुदुघे** सुष्ठुप्रपूरिके **बृहती** वर्द्धमाने **सुरुक्मे** सुष्ठुदीप्यमाने **उषासानक्ता** उषाश्च नक्तं च ते **ततं** विस्तृतं **देवानां** पृथिव्यादीनां **देवं** द्योतकं **बृहन्तं** महान्तम् **इन्द्रं**=**सूर्यं यजतः** सङ्गच्छेते, **तथैव तन्तुं** विस्तारकं **शूरं** निर्भयं **पुरुषं यूयं सङ्गच्छध्वम्**॥ २०। ४१॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे—(पेशसा) रूप से (संवयन्ती) प्राप्त होती हुई, (पयस्वती) रात्रि के अन्धकार से युक्त, (सुदुघे) अच्छे प्रकार पूरण करने वाली, (बृहती) बढ़ने वाली, (सुरुक्मे) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (उषासानक्ता) उषा और रात्रि—(ततम्) विस्तृत, (देवानाम्) पृथिवी आदि के (देवम्) प्रकाशक, (बृहन्तम्)म हान् (इन्द्रम्) सूर्य का (यजतः) संग करती हैं; वैसे ही-(तन्तुम्) विस्तार करने वाले (शूरम्) निर्भय पुरुष का तुम संग करो॥ २०। ४१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सर्वे लोका अखिलेभ्यो बृहत्तमं सूर्यलोकमाश्रयन्ति, तथैव सर्वे श्रेष्ठतमं पुरुषमाश्रयन्तु॥ ४१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है॥ जैसे सब लोक सबसे महान् सूर्य लोक का आश्रय करते हैं वैसे ही सब लोग अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष का आश्रय करें॥ २०। ४१॥

भा० पदार्थः—बृहन्तम्=बृहत्तमम्। इन्द्रम्=सूर्यलोकम्। शूरम्=श्रेष्ठतमं पुरुषम्॥

भाष्यसार—**१. उषा और रात्रि**—उषा और रात्रि रूप से प्राप्त होने वाली, रात्रि के अन्धकार से युक्त, सुख से पूरण करने वाली, बढ़ने वाली और प्रकाशमान हैं। जैसे वे विस्तृत, पृथिवी आदि के प्रकाशक, महान् इन्द्र=सूर्य का संग करती हैं वैसे ही राज्य का विस्तार करने वाले शूर (निर्भय) पुरुष का सब व्यक्ति संग करें।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि जैसे उषा और रात्रि सूर्य का संग करती हैं वैसे सब मनुष्य शूर पुरुष का संग करें॥ २०। ४१॥ ●

आङ्गिरसः। **दैव्याध्यापकोपदेशकौ**=स्पष्टम्। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

पुनस्तमेव विषयमाह॥

प्रकारान्तर से फिर उपदेश विषय को कहा है॥

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा।
मूर्द्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः॥ ४२॥

पदार्थः--(**दैव्या**) देवेषु भवौ (**मिमाना**) निर्मातारौ (**मनुषः**) मनुष्यान् (**पुरुत्रा**) बहून् (होतारौ) दातारौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**प्रथमा**) आदिमौ विद्वांसौ (**सुवाचा**) सुशिक्षिता वाग्ययोस्तौ

(**मूर्द्धन्**) मूर्द्धनि (**यज्ञस्य**) संगन्तव्यस्य (**मधुना**) मधुरेण (**दधाना**) धरन्तौ (**प्राचीनम्**) पुरातनम् (**ज्योतिः**) प्रकाशम् (**हविषा**) होतव्येन द्रव्येण (**वृधातः**) वर्द्धताम् । **अत्र लेटि विकरणव्यत्ययेन शः परस्मैपदं च ॥ ४२ ॥**

प्रमाणार्थ—(वृधातः) यहाँ लेट्-लकार में विकरण-व्यत्यय से श-विकरण और परस्मैपद है ॥

अन्वयः—यौ दैव्या मिमाना होतारौ सुवाचा यज्ञस्य मूर्द्धन् प्रथमा वर्त्तमानौ पुरुत्रा मनुषो दधाना मधुना हविषा प्राचीनं ज्योतिरिन्द्रं वृधातस्तौ सर्वैर्मनुष्यैः सत्कर्त्तव्यौ ॥ ४२ ॥

सपदार्थान्वयः—**यौ दैव्या** देवेषु भवौ, **मिमाना** निर्मातारौ, **होतारौ** दातारौ, **सुवाचा** सुशिक्षिता वाग्ययोस्तौ, **यज्ञस्य** सङ्गन्तव्यस्य **मूर्द्धन्** मूर्द्धनि **प्रथमा** आदिमौ विद्वांसौ, **वर्त्तमानौ**, **पुरुत्रा** बहून् **मनुषः** मनुष्यान् **दधाना** धरन्तौ, **मधुना** मधुरेण **हविषा** होतव्येन द्रव्येण **प्राचीनं** पुरातनं **ज्योतिः** प्रकाशम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यं **वृधातः** वर्द्धेतां, **तौ सर्वैर्मनुष्यैः सत्कर्तव्यौ** ॥ २० । ४२ ॥

भाषार्थ—जो (दैव्या) विद्वानों में विद्यमान, (मिमाना) निर्माण करने वाले, (होतारौ) दान करने वाले, (सुवाचा) सुशिक्षित वाणी से युक्त, (यज्ञस्य) संग करने योग्य यज्ञ के (मूर्द्धन्) ऊपर (प्रथमा) प्रथम वर्त्तमान, (पुरुत्रा) बहुत (मनुषः) मनुष्यों को (दधाना) धारण-पोषण करने वाले, (मधुना) मधुर (हविषा) होम योग्य द्रव्य से (प्राचीनम्) प्राचीन (ज्योतिः) प्रकाश एवं (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य को (वृधातः) बढ़ाते हैं, उनका सब मनुष्य सत्कार करें ॥ २० । ४२ ॥

भावार्थः—ये विद्वांसोऽध्यापनोपदेशाभ्यां सर्वान् मनुष्यानुन्नयन्ति तेऽखिलजनसुभूषकाः सन्ति ॥ २० । ४२ ॥

भावार्थ—जो विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नत करते हैं वे सब मनुष्यों को सुभूषित करने वाले हैं ॥ २० । ४२ ॥

भा० पदार्थः—पुरुत्रा=सर्वान् ।

भाष्यसार—**अध्यापक और उपदेशक**—विद्वानों में रहने वाले, समाज का निर्माण करने वाले, विद्या का दान करने वाले, सुशिक्षित वाणी से युक्त, संग करने योग्य यज्ञ आदि शुभ कर्मों के शिर पर प्रथम से वर्तमान, बहुत मनुष्यों का धारण-पोषण करने वाले, मधुर गुण से युक्त होम के योग्य द्रव्य से प्राचीन ज्योति (सूर्य) को तथा परम ऐश्वर्य को अध्यापक और उपदेशक लोग बढ़ाते हैं । सब मनुष्य उनका सत्कार करें क्योंकि वे अध्यापन और उपदेश से सब मनुष्यों को उन्नत करके उनको सुभूषित करते हैं ॥ २० । ४२ ॥

आङ्गिरसः । **तिस्रो देव्यः**=**स्पष्टम्** । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

प्रकारान्तर से फिर उपदेश विषय को कहा है ॥

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमानाऽइन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः ।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ॥ ४३ ॥

पदार्थः—(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याकाः (**देवीः**) देदीप्यमानाः (**हविषा**) दानादानेन प्राणेन वा (**वर्द्धमानाः**) (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**जुषाणाः**) सेवमानाः (**जनयः**) जनित्र्यः (**न**) इव (**पत्नीः**) स्त्रियः (**अच्छिन्नम्**) छेदभेदरहितम् (**तन्तुम्**) विस्तीर्णम् (**पयसा**) शब्दार्थसंबन्धरसेन (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानवती (**इडा**) शुभैर्गुणैः स्तोतुं योग्या (**देवी**) देदीप्यमाना (**भारती**) धारणपोषणकर्त्री (**विश्वतूर्त्तिः**) विश्वस्मिँस्त्वरमाणा ॥ २० । ४३ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! या विश्वतूर्त्तिर्देवी सरस्वतीडा भारती च तिस्रो देवीर्देव्यः पयसा हविषा वर्द्धमाना जनयः पत्नीर्नेवाऽच्छिन्नं तन्तुमिन्द्रं जुषाणाः सन्ति ता यूयं सेवध्वम् ॥ २० । ४३ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! या विश्वतूर्त्तिः** विश्वस्मिँस्त्वरमाणा **देवीः** देदीप्यमानाः **सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानवती **इडा** शुभैर्गुणैः स्तोतुं योग्या **भारती** धारणपोषणकर्त्री **च तिस्रः** त्रित्वसंख्याकाः **देवीः**=**देव्यः** देदीप्यमानाः **पयसा** शब्दार्थसम्बन्धरसेन **हविषा** दानादानेन प्राणेन वा **वर्द्धमाना जनयः** जनित्र्यः **पत्नीः** स्त्रियः **न**=**इवाऽच्छिन्नं** छेदभेदरहितं **तन्तुं** विस्तीर्णम् **इन्द्रं** विद्युतं **जुषाणाः** सेवमानाः **सन्ति, ता यूयं सेवध्वम्** ॥ २० । ४३ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो—(विश्वतूर्त्तिः) विश्व में शीघ्रता उत्पन्न करने वाली, (देवीः) प्रकाशमान, (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान वाली, सरस्वती, (इडा) शुभ गुणों के कारण स्तुति के योग्य इडा, (च) और (भारती) धारण-पोषण करने वाली भारती, ये—(तिस्रः) तीन (देव्यः) प्रकाशमान देवियाँ (पयसा) शब्द, अर्थ और सम्बन्ध रूप रस से; (हविषा) आदान-प्रदान वा प्राण से (वर्द्धमानाः) बढ़ने वाली (जनयः) सन्तान उत्पन्न करने वाली (पत्नीः) स्त्रियों के (न) समान, (अच्छिन्नम्) छेदन-भेदन रहित, (तन्तुम्) विस्तीर्ण, (इन्द्रम्) विद्युत् का (जुषाणाः) सेवन कर रही हैं, उन्हें तुम सेवन करो ॥ २० । ४३ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः ॥ या विद्वत्संयुक्ता वाङ्नाडीधारणशक्तयस्त्रिविधाः सर्वाभिव्याप्ताः सर्वदा प्रसूता व्यवहारहेतवः सन्ति, ता मनुष्यैर्व्यवहारेषु यथावत् संयोक्तव्याः ॥ २० । ४३ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो विद्वानों से संयुक्त वाणी, नाडी और धारणशक्ति रूप तीन प्रकार की देवियाँ सब में व्यापक, सर्वदा उत्पन्न, व्यवहार की हेतु हैं उन्हें मनुष्य व्यवहारों में यथावत् संयुक्त करें ॥ ४३ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=वाक् । इडा=नाडी । भारती=धारणशक्तिः । जनयः=सर्वदा प्रसूताः ॥

भाष्यसार—**१. तीन देवियाँ**—प्रशस्त विज्ञान से युक्त सरस्वती, शुभ गुणों से स्तुति के योग्य इडा नाडी, धारण-पोषण करने वाली शक्ति रूप भारती ये तीन देवियाँ विद्वानों से संयुक्त हैं, विश्व में गति देने वाली हैं, सब में व्याप्त हैं । ये शब्द, अर्थ, सम्बन्ध रूप रस से तथा आदान-प्रदान से सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्रियों के समान बढ़ती हैं । विद्युत् का सेवन करती हैं । सर्वदा उत्पन्न हैं । व्यवहार की हेतु हैं । मनुष्यों को चाहिए कि वे इन्हें व्यवहारों में संयुक्त करें, लगावें ॥

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'न' शब्द है अतः उपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि जैसे सन्तान को उत्पन्न करने वाली स्त्रियाँ बढ़ती हैं वैसे आदान-प्रदान से उक्त सरस्वती आदि तीनों देवियाँ बढ़ती हैं ॥ २० । ४३ ॥

आङ्गिरसः । **त्वष्टा**=विद्वान् । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि ।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥

पदार्थः—(**त्वष्टा**) विद्युदिव वर्त्तमानो विद्वान् (**दधत्**) दधन् (**शुष्मम्**) बलम् (**इन्द्राय**) परमैश्वर्याय (**वृष्णे**) परशक्तिबन्धकाय (**अपाकः**) अप्रशस्यः । **पाक इति प्रशस्यना० ॥ निघं० ३ । ८ ॥** (**अचिष्टुः**) गमनकर्त्ता (**यशसे**) कीर्त्यै (**पुरूणि**) बहूनि (**वृषा**) सेक्ता (**यजन्**) संगच्छमानः (**वृषणम्**) मेघम् (**भूरिरेताः**) बहुवीर्यः (**मूर्द्धन्**) मूर्द्धनि (**यज्ञस्य**) संगतस्य जगतः (**सम्**) (**अनक्तु**) कामयताम् (**देवान्**) विदुषः ॥ ४४ ॥

प्रमाणार्थ—(**अपाकः**) अप्रशस्यः । 'पाक' पद निघं० (३ । ८) में प्रशस्य-नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! यथा त्वष्टा वृषेन्द्राय वृष्ण शुष्ममपाकोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि दधद् भूरिरेता वृषणं यजन् यज्ञस्य मूर्द्धन् देवान् समनक्तु तथा त्वमपि कुरु ॥ ४४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **विद्वन्** ! **यथा त्वष्टा** विद्युदिव वर्त्तमानो विद्वान् **वृषा** सेक्ता **इन्द्राय** परमैश्वर्याय **वृष्णे** परशक्तिबन्धकाय **शुष्मं** बलम्, **अपाकः** अप्रशस्यः **अचिष्टुः** गमनकर्त्ता **यशसे** कीर्त्यै **पुरूणि** बहूनि **दधत्** दधन्, **भूरिरेताः** बहुवीर्यः **वृषणं** मेघं **यजन्** सङ्गच्छमानः, **यज्ञस्य** सङ्गतस्य जगतः **मूर्द्धन्** मूर्द्धनि **देवान्** विदुषः **समनक्तु** कामयताम् **तथा त्वमपि कुरु** ॥ २० । ४४ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्य ! जैसे—(त्वष्टा) विद्युत् के समान वर्तमान, (वृषा) सेचन करने वाला होकर (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य वाले (वृष्णे) पर-शक्ति को रोकने वाले के लिए (शुष्मम्) बल को, (अपाकः) अप्रशंसनीय, (अचिष्टुः) गति करने वाला पुरुष (यशसे) कीर्ति के लिए (पुरूणि) बहुत पदार्थों को (दधत्) धारण करता हुआ, (भूरिरेताः) बहुत वीर्य वाला पुरुष (वृषणम्) मेघ का (यजन्) संग करता हुआ, (यज्ञस्य) संगत जगत् के (मूर्द्धन्) मूर्द्धन्य (देवान्) विद्वानों की (समनक्तु) कामना करता है; वैसे तू भी कामना कर ॥ २० । ४४ ॥

भावार्थः—यावन्मनुष्यः शुद्धान्तःकरणो न भवेत्, तावद् विद्वत्सङ्गसत्यशास्त्रप्राणायामाभ्यासं च कुर्याद्, यतः शीघ्रं शुद्धान्तःकरणः स्यादिति ॥४४॥

भावार्थ—जब तक मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाला न हो तब तक विद्वानों का संग, सत्य शास्त्र और प्राणायाम का अभ्यास किया करे, जिससे शीघ्र शुद्ध अन्तःकरण वाला होवे ॥ २० । ४४ ॥

भा० पदार्थः—देवान्=विद्वत्सङ्गसत्यशास्त्रप्राणायामाभ्यासान् ।

भाष्यसार—विद्वान् के लिए उपदेश—विद्युत् के समान विद्या से प्रकाशमान, विद्वान्, सबको ज्ञान से सींचने वाला हो। वह परम ऐश्वर्य वाला तथा शत्रुओं की शक्ति को रोकने वाला बनने के लिए बल को धारण करे । जो अप्रशंसनीय तथा गतिशील विद्वान् है वह यश के लिए बहुत पदार्थों को

धारण करे। वीर्यवान् पुरुष मेघ का संग करे। जब तक मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाला न हो तब तक सब जगत् के मूर्द्धन्य विद्वानों की कामना करे, उनका नित्य संग करे। वेदादि सत्य शास्त्रों और प्राणायाम का अभ्यास करे जिससे शीघ्र शुद्ध अन्तःकरण वाला हो ॥ २० । ४४ ॥

आङ्गिरसः । **वनस्पतिः**=वनस्य पालकः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्यां समञ्जञ्छमिता न देवः ।

इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥ ४५ ॥

पदार्थः—(**वनस्पतिः**) वनस्य=वृक्षसमूहस्य पतिः=पालकः (**अवसृष्टः**) आज्ञप्तः पुरुषः (**न**) इव (**पाशैः**) दृढबन्धनैः (**त्मन्या**) आत्मना । **अत्र सुपां सुलुगिति टास्थाने यादेशः** (**समञ्जन्**) संपृचानः (**शमिता**) यज्ञः (**न**) इव (**देवः**) दिव्यसुखदाता (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यस्य (**हव्यैः**) अत्तुमर्हैः (**जठरम्**) उदरमिव कोशम् (**पृणानः**) पूर्णं कुर्वन् (**स्वदाति**) आस्वदेत । **अत्र लेटि व्यत्ययेन परस्मैपदम्** (**यज्ञम्**) अनुष्ठेयम् (**मधुना**) क्षौद्रेण (**घृतेन**) आज्येन ॥ ४५ ॥

प्रमाणार्थ—(**त्मन्या**) आत्मना । यहाँ 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) । (**स्वदाति**) यहाँ लेट्-लकार में व्यत्यय से परस्मैपद है ॥

अन्वयः—यः पाशैर्वनस्पतिरवसृष्टो न त्मन्या समञ्जन् देवः शमिता नेन्द्रस्य जठरं पृणानो हव्यैर्मधुना घृतेन च सह यज्ञं कुर्वन् स्वदाति स रोगहीनः स्यात् ॥ ४५ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः पाशैः** दृढबन्धनैः **वनस्पतिः** वनस्य=वृक्षसमूहस्य पतिः=पालकः **अवसृष्टः** आज्ञप्तः पुरुषः **न** इव, **त्मन्या** आत्मना **समञ्जन्** सम्पृचानः **देवः** दिव्यसुखदाता **शमिता** यज्ञः **न** इव, **इन्द्रस्य** ऐश्वर्यस्य **जठरम्** उदरमिव कोशं **पृणानः** पूर्णं कुर्वन् **हव्यैः** अत्तुमर्हैः **मधुना** क्षौद्रेण **घृतेन** आज्येन **च सह यज्ञम्** अनुष्ठेयं **कुर्वन् स्वदाति** आस्वदेत **स रोगहीनः स्यात्** ॥ २० । ४५ ॥

भाषार्थ—जो (पाशैः) दृढ बन्धनों से—(वनस्य) वन के पालक, पुरुष, (अवसृष्टः) बाँधने की आज्ञा दिए हुए चोर के (न) समान, (त्मन्या) आत्मा से (समञ्जन्) संयुक्त (देवः) दिव्य सुखों का दाता (शमिता) यज्ञ के (न) समान; (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के (जठरम्) कोश=खजाने को (पृणानः) पूर्ण करता हुआ, (हव्यैः) खाने योग्य पदार्थों, (मधुना) मधु, और (घृतेन) घृत के साथ (यज्ञम्) यज्ञ करता हुआ (स्वदाति) उत्तम पदार्थों का आस्वादन करता है वह रोग-रहित होता है ॥४५॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा वनस्पतिर्वर्द्धमानः सन् फलानि ददाति, यथा पाशैर्बद्धश्चोरः पापान्निवर्त्तते,

यथा वा यज्ञः सर्वं जगद् रक्षति, तथा—

यज्ञसेवी युक्ताऽऽहारविहारी जनो जगदुपकारको भवति ॥ २० । ४५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे—बढ़ता हुआ वनस्पति फलों को देता है, जैसे बन्धनों से बंधा हुआ चोर पाप से निवृत्त होता है ।

अथवा—जैसे यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे—

यज्ञ करने वाला युक्त आहार-विहार वाला पुरुष जगत् का उपकारक होता है ॥ २० । ४५ ॥

भा० पदार्थः—अवसृष्टः=चोरः । पृणानः=रक्षन् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—जैसे बढ़ता हुआ वनस्पति फलों को देता है, दृढ बन्धनों से बाँधने की आज्ञा दिया हुआ चोर बन्धन से पाप निवृत्त हो जाता है, आत्मा से सम्बद्ध, दिव्य सुखों का दाता यज्ञ सब जगत् की रक्षा करता है, वैसे ऐश्वर्य के कोष को पूर्ण करने वाला पुरुष भोज्य पदार्थों से मधु और घृत से यज्ञ का अनुष्ठान करता हुआ, युक्त आहार-विहार वाला होकर जगत् का उपकारक होता है।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि यज्ञ करने वाला पुरुष वनस्पति आदि के समान जगत् का उपकारक हो ॥ २० । ४५ ॥

आङ्गिरसः । **स्वाहाकृतयः**=सत्यया क्रिययार्द्रचित्ताः जनाः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर ऽ इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् ।
घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा ऽ अमृता मादयन्ताम् ॥ ४६ ॥

पदार्थः—(**स्तोकानाम्**) अल्पानाम् (**इन्दुम्**) आर्द्रस्वभाविनं जनम् (**प्रति**) (**शूरः**) शत्रूणां हिंसकः (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**वृषायमाणः**) बलिष्ठः सन् (**वृषभः**) उत्तमः (**तुराषाट्**) तुरान्=हिंसकान् सहते (**घृतप्रुषा**) प्रकाशसेविना (**मनसा**) विज्ञानेन (**मोदमानाः**) आनन्दिताः सन्तः (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**देवाः**) विद्वांसः (**अमृताः**) आत्मना=स्वस्वरूपेण मृत्युरहिताः (**मादयन्ताम्**) तृप्ताः भूत्वाऽस्मानानन्दयन्तु ॥ ४६ ॥

अन्वयः—यथा वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् शूर इन्द्रस्तोकानामिन्दुं प्रत्याऽऽनन्दति तथा घृतप्रुषा मनसा स्वाहा च मोदमाना अमृता देवा मादयन्ताम् ॥ ४६ ॥

सपदार्थान्वयः—यथा **वृषायमाणः** बलिष्ठः सन् **वृषभः** उत्तमः **तुराषाट्** तुरान्=हिंसकान् सहते **शूरः** शत्रूणां हिंसकः **इन्द्रः** ऐश्वर्यवान् **स्तोकानाम्** अल्पानाम् **इन्दुम्** आर्द्रस्वभाविनं जनं **प्रत्याऽऽनन्दति, तथा घृतप्रुषा** प्रकाशसेविना **मनसा** विज्ञानेन **स्वाहा** सत्यया क्रियया **च मोदमानाः** आनन्दिताः=सन्तः **अमृताः** आत्मना=स्वस्वरूपेण मृत्युरहिताः **देवाः** विद्वांसः **मादयन्तां** तृप्ताः भूत्वाऽस्मानानन्दयन्तु ॥ २० । ४६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ये जना अल्पगुणमपि जनं दृष्ट्वार्द्रचित्ता भवन्ति, ते सर्वतः सर्वान् सुखयन्ति ॥ २० । ४६ ॥

भाषार्थ—जैसे (वृषायमाणः) बलिष्ठ होकर, (वृषभः) उत्तम, (तुराषाट्) तुर=हिंसकों का मर्षण करने वाला, (शूरः) शत्रुओं का हिंसक, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (स्तोकानाम्) थोड़े लोगों में से (इन्दुम्) कोमल स्वभाव वाले मनुष्य के (प्रत्याऽऽनन्दति) प्रति आनन्दित होता है, वैसे (घृतप्रुषा) प्रकाश का सेवन करने वाले (मनसा) विज्ञान और (स्वाहा) सत्य आचरण से (मोदमानाः) आनन्दित होकर (अमृताः) अपने स्वरूप [आत्मा] से मृत्यु रहित (देवाः) विद्वान् लोग (मादयन्ताम्) तृप्त होकर हमें आनन्दित करें ॥ २० । ४६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ जो लोग अल्प गुण वाले पुरुष को भी देखकर आर्द्रचित्त=दयालु होते हैं वे सब ओर से सबको सुखी करते हैं ॥ २० । ४६ ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् के लिए उपदेश**—जैसे बलिष्ठ, उत्तम, हिंसकों का मर्षण करने वाला, शत्रुओं का हिंसक, ऐश्वर्यवान् पुरुष अल्प गुण वाले मनुष्य को देख कर आर्द्रचित्त होता है वैसे प्रकाश का सेवन करने वाले विज्ञान और सत्य आचरण से स्वयं आनन्दित होकर आत्मा की दृष्टि से मृत्युरहित विद्वान् लोग सबको आनन्दित करें ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे ऐश्वर्यवान् पुरुष अल्प गुण वाले मनुष्य के प्रति आर्द्रचित्त होता है वैसे विद्वान् लोग स्वयं आनन्दित होकर सबको आनन्दित करें ॥ २० । ४६ ॥ ●

वामदेवः । **इन्द्रः**=**राजा** । भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राजधर्मविषय का उपदेश किया जाता है ॥

आ यात्विन्द्रोऽवस॒ऽ उप॑ न इ॒ह स्तु॒तः स॑ध॒माद॑स्तु॒ शूरः॑ ।
वा॒वृ॒धा॒नस्तवि॑षी॒र्यस्य॑ पू॒र्वीर्द्यौर्न क्ष॒त्रम॒भिभू॑ति॒ पुष्या॑त् ॥ ४७ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**यातु**) आगच्छतु (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यधारकः (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**उप**) (**नः**) अस्मान् (**इह**) अस्मिन् काले (**स्तुतः**) प्रशंसितः (**सधमात्**) समानस्थानात् (**अस्तु**) (**शूरः**) (**वावृधानः**) अत्यन्तं वर्द्धयमानो जनः (**तविषीः**) सेनाः (**यस्य**) (**पूर्वीः**) पूर्वैर्विद्वद्भिः सुशिक्षयोत्तमाः कृताः (**द्यौः**) सूर्यप्रकाशः (**न**) इव (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**अभिभूति**) शत्रूणामभिभवकर्तृ (**पुष्यात्**) पुष्टङ्कुर्यात् ॥

अन्वयः—य इन्द्र इह स्तुतः शूरः पूर्वीस्तविषीर्वावृधानो यस्याभिभूति क्षत्रं द्यौर्न वर्त्तते यो नः पुष्यात् सोऽस्माकमवस उपायातु सधमादस्तु ॥ ४७ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः इन्द्रः** परमैश्वर्यधारकः **इह** अस्मिन् काले **स्तुतः** प्रशंसितः **शूरः पूर्वीः** पूर्वैर्विद्वद्भिः सुशिक्षयोत्तमाः कृताः **तविषीः** सेनाः **वावृधानः** अत्यन्तं वर्द्धयमानो जनः **यस्याभिभूति** शत्रूणामभिभवकर्तृ **क्षत्रं** राज्यं **द्यौः** सूर्यप्रकाशः **न** इव **वर्त्तते, यो नः** अस्मान् **पुष्यात्** पुष्टङ्कुर्यात्, **सोऽस्माकमवसे** रक्षणाद्याय **उप-आयातु** आगच्छतु, **सधमात्** समानस्थानाद् **अस्तु** ॥ २० । ४७ ॥

भाषार्थ—जो (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य को धारण करने वाला (इह) इस समय (स्तुतः) प्रशंसित, (शूरः) शूर पुरुष (पूर्वीः) पूर्व विद्वानों के द्वारा सुशिक्षा से उत्तम की हुई (तविषीः) सेनाओं को (वावृधानः) बढ़ाता है, (यस्य) जिस का (अभिभूति) शत्रुओं का अभिभव करने वाला (क्षत्रम्) राज्य (द्यौः) सूर्य-प्रकाश के (न) समान है, जो (नः) हम को (पुष्यात्) पुष्ट करता है, वह हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (उप+आ+यातु) समीप आवे, और (सधमात्) समान स्थान से रक्षक (अस्तु) हो ॥ २० ॥ ४७ ॥

भावार्थः—ये मनुष्याः सूर्यवत् न्यायविद्योभयप्रकाशकाः,

सत्कृतहृष्टपुष्टसेनाः,

प्रजापोषकाः,

भावार्थ—जो मनुष्य न्याय और विद्या दोनों के प्रकाशक,

सत्कृत और हृष्ट-पुष्ट सेना वाले,

प्रजा के पोषक,

दुष्टविनाशकाः स्युस्ते राज्याधिकारिणः सन्तु ॥ २० । ४७ ॥

दुष्टों के विनाशक हों वे राज्य के अधिकारी हों ॥ २० । ४७ ॥

भा० पदार्थः—द्यौः [न]=सूर्यवत् न्यायविद्योभयप्रकाशकः । पूर्वीः=सत्कृताः । तविषीः=हृष्टपुष्टसेनाः । अभिभूति=दुष्टविनाशकम् ।

भाष्यसार—**राजधर्म**—परम ऐश्वर्य को धारण करने वाला, वर्तमान काल में प्रशंसा को प्राप्त, शूर वीर पुरुष—पहले विद्वानों के द्वारा सुशिक्षा से उत्तम बनाई हुई सेनाओं को बढ़ावे । जैसे सूर्य का प्रकाश अन्धकार को अभिभूत कर लेता है वैसे शूर वीर राज्य के शत्रुओं को अभिभूत करने वाला=दबाने वाला हो, वह राजा सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाशक हो, वह प्रजा का पोषक व दुष्टों का विनाशक हो, रक्षा आदि के लिए प्रजा के समीप जावे, समान स्थान से प्रजा का रक्षक हो । प्रजा उक्त गुणों से युक्त पुरुष को राज्याधिकारी बनावें ॥ २० । ४७ ॥

वामदेवः । **इन्द्रः=राजा** । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

आ न॒ऽ इन्द्रो॑ दू॒रादा न॑ऽ आ॒साद॑भिष्टि॒कृद॑व॑से यासदु॒ग्रः ।
ओजि॑ष्ठेभि॒र्नृप॑ति॒र्वज्र॑बाहुः स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ तु॒र्वणिः॑ पृत॒न्यून् ॥ ४८ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्रः**) शत्रुविदारकः (**दूरात्**) विप्रकृष्टाद्देशात् (**आ**) (**नः**) (**आसात्**) समीपात् (**अभिष्टिकृत्**) योऽभिष्टि=सर्वत इष्टं सुखं करोति सः (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**यासत्**) यायात् (**उग्रः**) दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् (**ओजिष्ठेभिः**) बलिष्ठैर्योद्धृभिः (**नृपतिः**) नृणां पालकः (**वज्रबाहुः**) वज्रमिव दृढौ बाहू यस्य (**सङ्गे**) सह (**समत्सु**) संग्रामेषु (**तुर्वणिः**) शीघ्रशत्रुहन्ता (**पृतन्यून्**) आत्मनः पृतनाः=सेना इच्छून् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—योऽभिष्टिकृद्वज्रबाहुर्नृपतिरोजिष्ठेभिरुग्रस्तुर्वणिरिन्द्रो नोऽवसे समत्सु संगे दूरादासादायासन्नोऽस्मान् पृतन्यून्सततमारक्षेन्मानयेच्च सोऽस्माभिरपि सदा माननीयः ॥ ४८ ॥

सपदार्थान्वयः — योऽभिष्टिकृत् योऽभिष्टि=सर्वत इष्टं सुखं करोति सः **वज्रबाहुः** वज्रमिव दृढौ बाहू यस्य **नृपतिः** नृणां पालकः **ओजिष्ठेभिः** बलिष्ठैर्योद्धृभिः **उग्रः** दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् **तुर्वणिः** शीघ्रशत्रुहन्ता **इन्द्रः** शत्रुविदारकः **नः** अस्माकम् **अवसे** रक्षणाद्याय **समत्सु** सङ्ग्रामेषु **सङ्गे** सह **दूराद्** विप्रकृष्टाद्देशाद् **आसात्** समीपाद् **आ+यासद्** आ+यायात्, **नः=अस्मान् पृतन्यून्** आत्मनः पृतनाः=सेना इच्छून् **सततमारक्षेन्मानयेच्च सोऽस्माभिरपि सदा माननीयः** ॥४८॥

भाषार्थ—जो (अभिष्टिकृत्) सब ओर से इष्ट सुख उत्पन्न करने वाला, (वज्रबाहुः) वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाला, (नृपतिः) नरों का पालक, (ओजिष्ठेभिः) बलिष्ठ योद्धाओं के कारण (उग्रः) दुष्टों पर क्रोध करने वाला, (तुर्वणिः) शीघ्र शत्रुओं का हनन करने वाला (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारक राजा—(नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (समत्सु) संग्रामों में (सङ्गे) साथ (दूरात्) दूर देश से एवं (आसात्) समीप देश से (आ+यासत्) आवे, वह (नः) हम (पृतन्यून्) अपनी सेना के इच्छुक शूर वीरों की सदा रक्षा और मान करे, उसका हम भी सदा मान करें ॥ ४८ ॥

भावार्थः--त एव राज्यं कर्त्तुमर्हन्ति ये दूरस्थाः समीपस्थाः सर्वाः प्रजा अवेक्षणदूतप्रचाराभ्यां रक्षन्ति । शूरवीराणां सत्कारं च सततं कुर्वन्ति ॥ २० । ४८ ॥

भावार्थ—वे ही राज्य कर सकते हैं जो जो दूरस्थ वा समीपस्थ सब प्रजा की अवेक्षण=निरीक्षण तथा दूत-प्रेषण से रक्षा करते हैं, और शूर वीरों का सदा सत्कार करते हैं ॥ २० । ४८ ॥

भा० पदार्थः—पृतन्यून्=शूरवीरान् ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—जो राजा सब ओर से इष्ट=प्रिय सुख उत्पन्न करने वाला, वज्र के समान दृढ़ बाहुओं वाला, नरों का पालक, बलिष्ठ योद्धाओं के कारण दुष्टों पर क्रोध करने वाला, शत्रुओं का शीघ्र हनन करने वाला और शत्रुओं का विदारक है, वह प्रजा की रक्षादि के लिए संग्रामों में दूर वा समीप देश से आवे । समीपस्थ वा दूरस्थ सब प्रजा की स्वयं अवेक्षण=निरीक्षण तथा दूत-प्रचार=दूत-प्रेषण से रक्षा करे। अपनी सेना की इच्छा करने वाले शूरवीरों की सदा रक्षा और सत्कार करे । प्रजा भी ऐसे राजा का सदा मान करे ॥ २० । ४८ ॥

वामदेवः । **इन्द्रः=सेनाधीशः** । पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

आ न॒ इन्द्रो॒ हरि॑भिर्या॒त्वच्छ॑र्वा॒ची॒नोऽव॑से॒ राध॑से च ।
तिष्ठा॑ति व॒ज्री म॒घवा॑ विर॒प्शीमं य॒ज्ञमनु॑ नो॒ वाज॑सातौ ॥ ४९ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**नः**) अस्माकम् (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यप्रदः सेनाधीशः (**हरिभिः**) सुशिक्षितैरश्वैः (**यातु**) प्राप्नोतु (**अच्छ**) सुष्ठुरीत्या (**अर्वाचीनः**) विद्यादिबलेनाभिगन्ता (**अवसे**) रक्षणाद्याय (**राधसे**) धनाय (**च**) (**तिष्ठाति**) तिष्ठेत् (**वज्री**) प्रशस्तशस्त्रविद्याशिक्षितः (**मघवा**) परमपूजितधनयुक्तः (**विरप्शी**) महान् (**इमम्**) (**यज्ञम्**) सत्यं न्यायाख्यम् (**अनु**) आनुकूल्ये (**नः**) अस्माकम् (**वाजसातौ**) संग्रामे ॥ ४९ ॥

अन्वयः—यो मघवा विरप्श्यर्वाचीनो वज्रीन्द्रो हरिभिर्नोऽवसे राधसे च वाजसातौ तिष्ठाति स न इमं यज्ञमच्छान्वायातु ॥ ४९ ॥

सपदार्थान्वयः—**यो मघवा** परमपूजितधनयुक्तः **विरप्शी** महान् **अर्वाचीनः** विद्यादिबलेनाभिगन्ता **वज्री** प्रशस्तशस्त्रविद्याशिक्षितः **इन्द्रः** ऐश्वर्यप्रदः सेनाधीशः **हरिभिः** सुशिक्षितैरश्वैः **नः** अस्माकम् **अवसे** रक्षणाद्याय **राधसे** धनाय **च** **वाजसातौ** संग्रामे **तिष्ठाति** तिष्ठेत्, **स नः** अस्माकम् **इमं यज्ञं** सत्यं न्यायाख्यम् **अच्छ** सुष्ठुरीत्या **अनु-आ-यातु** अनुकूलं प्राप्नोतु ॥ २० । ४९ ॥

भाषार्थ--जो (मघवा) परम पूजित धन से युक्त, (विरप्शी) महान् बलवान्, (अर्वाचीनः) विद्या आदि के बल से सब ओर गति करने वाला, (वज्री) प्रशस्त शस्त्र-विद्या में शिक्षित (इन्द्रः) ऐश्वर्य का दाता सेनापति है—वह (हरिभिः) सुशिक्षित घोड़ों से (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिए (च) और (राधसे) धन के लिए (वाजसातौ) संग्राम में (तिष्ठाति) स्थिर होवे, वह (नः) हमारे इस (यज्ञम्) सत्य न्याय नामक यज्ञ को (अच्छे) अच्छी रीति से (अनु-आ-यातु) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त करे ॥ २० । ४९ ॥

भावार्थः—ये युद्धविद्याकुशला, महाबलिष्ठाः, प्रजाधनवर्धकास्सुशिक्षिताऽश्वहस्त्यादियुक्ता मंगलकारिणः स्युस्ते हि राजपुरुषास्सन्तु ॥ २० । ४९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य युद्ध-विद्या में कुशल, बड़े बलवान्, प्रजा के धन को बढ़ाने वाले, सुशिक्षित घोड़े, हाथी आदि से युक्त और मंगलकारी हैं वे ही राजपुरुष होवें ॥ २० । ४९ ॥

भा० पदार्थः—वज्री=युद्धविद्याकुशलः । विरप्शी=महाबलिष्ठः । मघवा=प्रजाधनवर्धकः । हरिभिः=सुशिक्षिताश्वहस्त्यादिभिः ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—परम पूजित धन से युक्त, महान् बलवान्, विद्या आदि के बल से सर्वत्र गति करने वाला, प्रशस्त शस्त्र-विद्या में सुशिक्षित, प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला अर्थात् प्रजा के धन का वर्द्धक सेनाधीश (सेनापति) हो। वह सुशिक्षित घोड़े, हाथी आदि से युक्त होकर प्रजा की रक्षा तथा धन की वृद्धि के लिए संग्राम में स्थित होवे। प्रजा का सदा मंगलकारी हो। उत्तम रीति से प्रजा का सत्य न्याय करे ॥ २० । ४९ ॥

गर्गः । **इन्द्रः=राजा** । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म का फिर उपदेश किया है ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ५० ॥

पदार्थः—(**त्रातारम्**) रक्षितारम् (**इन्द्रम्**) दुष्टविदारकम् (**अवितारम्**) प्रीणयितारम् (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यप्रदम् (**हवे हवे**) युद्धे युद्धे (**सुहवम्**) सुष्ठ्वाह्वानम् (**शूरम्**) शत्रुहिंसकम् (**इन्द्रम्**) राज्यधारकम् (**ह्वयामि**) आह्वयामि (**शक्रम्**) आशुकर्त्तारम् (**पुरुहूतम्**) पुरुभिर्विद्वद्भिराहूतम् (**इन्द्रम्**) शत्रुदलविदारकम् (**स्वस्ति**) सुखम् (**नः**) अस्मभ्यम् (**मघवा**) परमपूज्यः (**धातु**) दधातु (**इन्द्रः**) प्रशस्तसेनाधारकः ॥ ५० ॥

अन्वयः—हे सभाध्यक्ष ! यं हवे हवे त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं सुहवं शूरमिन्द्रं शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं त्वां ह्वयामि स मघवेन्द्रस्त्वं नः स्वस्ति धातु ॥ ५० ॥

सपदार्थान्वयः—**हे सभाध्यक्ष ! यं हवे हवे** युद्धे युद्धे **त्रातारं** रक्षितारम् **इन्द्रं** दुष्टविदारकम्, **अवितारं** प्रीणयितारम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यप्रदं, **सुहवं** सुष्ठ्वाह्वानं **शूरं** शत्रुहिंसकम् **इन्द्रं** राज्यधारकं **शक्रम्** आशुकर्त्तारं **पुरुहूतं** पुरुभिर्विद्वद्भिराहूतम् **इन्द्रं** शत्रुदलविदारकं **त्वां ह्वयामि** आह्वयामि **स मघवा** परमपूज्यः **इन्द्रः** प्रशस्तसेनाधारकः **त्वं नः** अस्मभ्यं **स्वस्ति** सुखं **धातु** दधातु ॥ २० । ५० ॥

भाषार्थ—हे सभाध्यक्ष ! राजन् ! मैं-(हवे हवे) प्रत्येक युद्ध में (त्रातारम्) रक्षक, (इन्द्रम्) दुष्टों के विदारक, (अवितारम्) तृप्त करने वाले, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य के दाता, (सुहवम्) अच्छे प्रकार आह्वान करने वाले, (शूरम्) शत्रुओं के हिंसक, (इन्द्रम्) राज्य के धारक, (शुक्रम्) आशुकारी, (पुरुहूतम्) बहुत विद्वानों से निमन्त्रित, (इन्द्रम्) शत्रुदल के विदारक तुझको (ह्वयामि) पुकारता हूँ, सो (मघवा) परम पूज्य (इन्द्रः) प्रशस्त सेना का धारक तू (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) सुख को (धातु) धारण कर ॥ २० । ५० ॥

भावार्थः—मनुष्यास्तमेव सर्वदा सत्कुर्युर्यो विद्यान्यायधर्मसेवकः सुशीलो जितेन्द्रियः सन् सर्वेषां सुखवर्द्धनाय प्रयतेत ॥ २० । ५० ॥

भावार्थ—मनुष्य उसका ही सदा सत्कार करें जो विद्या, न्याय और धर्म का सेवक, सुशील, और जितेन्द्रिय होकर सबकी सुख-वृद्धि के लिए प्रयत्न करे ॥ २० । ५० ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रम्=विद्यान्यायधर्मसेवकं सुशीलं जितेन्द्रियम् ।

अन्यत्र व्याख्यात—(त्रातारमिन्द्रम्) जिन मनुष्यों को ऐसा निश्चय है कि केवल परमैश्वर्यवान् परमात्मा ही हमारा रक्षक है, (अविता) जो ज्ञान और आनन्द का देने वाला है, (सुहवं शूरमिन्द्रं हवे हवे) वही इन्द्र परमात्मा प्रति-युद्ध में जो उत्तम युद्ध कराने वाला शूरवीर और हमारा राजा है (ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं) जो अनन्त पराक्रम युक्त ईश्वर है जिसका सब विद्वान् वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादन और इष्ट करते हैं, वही हमारा सब प्रकार से राजा है, (स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः) जो इन्द्र परमेश्वर मघवा अर्थात् परम विद्या रूप धनी है और हमारे लिए विजय आदि सब सुखों का देने वाला है, जिन मनुष्यों को ऐसा निश्चय है उनका पराजय कभी नहीं होता ॥ ऋग्वेदादि० राजप्रजाधर्म० ॥ २० । ५० ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—जो प्रत्येक युद्ध में रक्षा करने वाला, दुष्टों का विदारक, तृप्तिकारक, परम ऐश्वर्य का दाता, उत्तम रीति से आह्वान करने वाला, शत्रुओं का हिंसक, राज्य का धारक आशुकारी, बहुत विद्वानों से निमन्त्रित, शत्रुदल का विदारक सभाध्यक्ष राजा हो उसका प्रजा सदा सत्कार करे। वह विद्या, न्याय और धर्म का सेवक, सुशील तथा जितेन्द्रिय होने से परम पूज्य तथा सेना का धारक होकर सबके सुख को बढ़ाने का प्रयत्न करे ॥ २० । ५० ॥

गर्गः । **इन्द्रः=राजा** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुना राजविषयमाह ॥

राजा के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो ऽ अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवर्द्धकः (**सुत्रामा**) सुष्ठु रक्षकः (**स्ववान्**) बहवः स्वे=स्वकीया उत्तमा जना विद्यन्ते यस्य सः (**अवोभिः**) न्यायपुरस्सरै रक्षणादिभिः (**सुमृडीकः**) सुखकरः (**भवतु**) (**विश्ववेदाः**) समग्रधनः (**बाधताम्**) (**द्वेषः**) शत्रून् (**अभयम्**) (**कृणोतु**) (**सुवीर्यस्य**) सुष्ठुपराक्रमस्य (**पतयः**) पालकाः (**स्याम**) भवेम ॥ ५१ ॥

अन्वयः—यः सुत्रामा स्ववान् विश्ववेदाः सुमृडीको भवतु । इन्द्रोऽवोभिः प्रजा रक्षेत् स द्वेषो बाधतामभयं कृणोतु स्वयमपि तादृश एव भवतु यतो वयं सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

सपदार्थान्वयः—**यः सुत्रामा** सुष्ठुरक्षकः, **स्ववान्** बहवः स्वे=स्वकीया उत्तमा जना विद्यन्ते यस्य सः, **विश्ववेदाः** समग्रधनः, **सुमृडीकः** सुखकरः **भवतु**, **इन्द्रः** ऐश्वर्यवर्द्धकः **अवोभिः**

भाषार्थ—जो—(सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, (स्ववान्) अपने बहुत से उत्तम पुरुषों वाला, (विश्ववेदाः) समस्त धन वाला, (सुमृडीकः) अत्यन्त सुखकारी (भवतु) हो; वह

न्यायपुरस्सरैं रक्षणादिभिः **प्रजा रक्षेत्, स द्वेषः** शत्रून् **बाधताम्, अभयं कृणोतु, स्वयमपि तादृश एव भवतु, यतो वयं सुवीर्यस्य** सुष्ठुपराक्रमस्य **पतयः** पालकाः **स्याम** भवेम ॥ २० । ५१ ॥

(इन्द्रः) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला, राजा (अवोभिः) न्यायपूर्वक रक्षा आदि से प्रजा की रक्षा करे; वह (द्वेषः) शत्रुओं को (बाधताम्) हटावे, प्रजा को (अभयम्) निर्भय (कृणोतु) करे, स्वयं भी वैसा ही निर्भय (भवतु) हो; जिससे हम—(सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम के (पतयः) पालक (स्याम) हों ॥ २० । ५१ ॥

भावार्थः-यदि राजपुरुषा विद्याविनयाभ्यां युक्ता भूत्वा प्रजारक्षका नाभविष्यँस्तर्हि सुखवृद्धिरपि नाभविष्यत् ॥ २० । ५१ ॥

भावार्थ—यदि राजपुरुष विद्या और विनय से युक्त होकर प्रजा के रक्षक न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे ॥ २० । ५१ ॥

भा० पदार्थः—विश्ववेदाः=विद्याविनयाभ्यां युक्तः । सुमृडीकः=सुखवर्द्धकः ॥

भाष्यसार—**राजा के लिए उपदेश**—राजा, अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, अपने बहुत से श्रेष्ठ पुरुषों वाला, समग्र धन वाला, अत्यन्त सुख देने वाला तथा ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला हो। वह विद्या और विनय से युक्त होकर प्रजा की रक्षा करे जिससे सुख की वृद्धि हो। वह शत्रुओं को दूर हटावे। प्रजा को निर्भय करे। स्वयं भी निर्भय रहे। जिससे प्रजा उत्तम पराक्रम की पालक बने ॥ २० । ५१ ॥ ●

गर्गः । **इन्द्रः=राजा (सभापतिः)** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

तस्यं वयᳬ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ२ऽइन्द्रोऽअस्मेऽ आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ ५२ ॥

पदार्थः—(**तस्य**) पूर्वोक्तस्य सभेशस्य राज्ञः (**वयम्**) राजप्रजाः (**सुमतौ**) सुष्ठुसंमतौ (**यज्ञियस्य**) यज्ञमनुष्ठातुमर्हस्य (**अपि**) (**भद्रे**) कल्याणकरे (**सौमनसे**) शोभने मनसि भवे व्यवहारे (**स्याम**) (**सः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठुत्रामा (**स्ववान्**) प्रशस्तं स्वं विद्यते यस्य सः (**इन्द्रः**) पितृवद्वर्तमानः सभेशः (**अस्मे**) अस्माकम् (**आरात्**) दूरात्समीपाद्वा (**चित्**) अपि (**द्वेषः**) शत्रून् (**सनुतः**) सदा (**युयोतु**) दूरीकरोतु ॥ ५२ ॥

अन्वयः—यस्सुत्रामा स्ववानिन्द्रः सभेशोऽस्मे द्वेष आराच्चित्सनुतर्युयोतु तस्य यज्ञियस्य सुमतौ भद्रे सौमनसेऽप्यनुकूलाः स्याम सोऽस्माकं राजा वयं तस्य प्रजाश्च ॥ ५२ ॥

सपदार्थान्वयः—यस्सुत्रामा सुष्ठुत्रामा **स्ववान्** प्रशस्तं स्वं विद्यते यस्य सः, **इन्द्रः**=**सभेशः** पितृवद्वर्तमानः सभेशः **अस्मे** अस्माकं **द्वेषः** शत्रून् **आराद्** दूरात्समीपाद्वा **चिद्** अपि **सनुतः** सदा **युयोतु** दूरी करोतु ।

भाषार्थ—जो (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, (स्ववान्) प्रशस्त स्व=कुल और धन वाला, (इन्द्रः) पिता के समान वर्तमान सभापति राजा—(अस्मे) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (आरात्) दूर वा समीप देश से (चिद्) भी (सनुतः) सदा (युयोतु) दूर करे ।

तस्य पूर्वोक्तस्य सभेशस्य राज्ञः **यज्ञियस्य** यज्ञमनुष्ठातुमर्हस्य **सुमतौ** सुष्ठुसम्मतौ **भद्रे** कल्याणकरे **सौमनसे** शोभने मनसि भवे व्यवहारे **अप्यनुकूलाः स्याम** । सोऽस्माकं **राजा वयं** राजप्रजाः **तस्य प्रजाश्च** ॥ २० । ५२ ॥

(तस्य) उस पूर्वोक्त (यज्ञियस्य) यज्ञ करने वाले सभापति राजा की (सुमतौ) श्रेष्ठ मति, (भद्रे) कल्याणकारी, (सौमनसे) श्रेष्ठ मन में विद्यमान व्यवहार में भी हम अनुकूल (स्याम) रहें । वह हमारा राजा है और (वयम्) हम उस राजा की प्रजा हैं ॥ २० । ५२ ॥

भावार्थः—मनुष्यैस्तस्यैव सम्मतौ स्थातव्यं यः पक्षपातहीनो धार्मिकः, न्यायेन प्रजापालनतत्परः स्यात् ॥ २० । ५२ ॥

भावार्थ—सब मनुष्य उसकी ही सम्मति में रहें जो पक्षपात से रहित, धार्मिक और न्याय से प्रजापालन में तत्पर रहे ॥ २० । ५२ ॥

भा० पदार्थः—सुत्रामा=न्यायेन प्रजापालनतत्परः । इन्द्रः=पक्षपातहीनः ॥

भाष्यसार—**राजा के लिए उपदेश**—सभापति राजा अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, प्रशस्त कुल और धन वाला, पिता के समान वर्तमान=व्यवहार करने वाला हो । वह प्रजा के शत्रुओं को दूर वा समीप देश से सदा पृथक् करे । प्रजा यज्ञ आदि धार्मिक कर्मों का अनुष्ठान करने वाले राजा की सम्मति में रहे । उसके कल्याणकारी तथा सौमनस से परिपूर्ण व्यवहार में भी अनुकूल रहे । तात्पर्य यह है कि प्रजा उसी की सम्मति में रहे जो राजा पक्षपात-रहित, धार्मिक और प्रजापालन में तत्पर हो ॥ २० । ५२ ॥ ●

विश्वामित्रः । **इन्द्रः=राजा** । निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ२ऽ इहि ॥ ५३ ॥

पदार्थः—(**आ**) (**मन्द्रैः**) प्रशंसितैः (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवर्द्धक (**हरिभिः**) अश्वैः (**याहि**) (**मयूररोमभिः**) मयूरस्य रोमाणीव रोमा येषां ते (**मा**) (**त्वा**) त्वाम् (**के, चित्**) (**नि**) विनिग्रहार्थे (**यमन्**) यच्छेयुः (**विम्**) पक्षिणम् (**न**) इव (**पाशिनः**) बहुपाशयुक्ता व्याधाः (**अतिधन्वेव**) महेष्वास इव (**तान्**) (**इहि**) ॥ ५३ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र सेनेश ! त्वं मन्द्रैर्मयूररोमभिर्हरिभिस्तान् शत्रून् विजेतुं याहि, तत्र (**त्वा**) त्वां पाशिनो विन्न केचिन्मा नियमंस्त्वमतिधन्वेवैहि ॥ ५३ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**=सेनेश ! परमैश्वर्यवर्द्धक ! **त्वं मन्द्रैः** प्रशंसितैः **मयूररोमभिः** मयूरस्य रोमाणीव रोमा येषां ते [तैः] **हरिभिः** अश्वैः **तान्**=**शत्रून् विजेतुं याहि** ।

तत्र [त्वा]=**त्वां पाशिनः** बहुपाशयुक्ता व्याधाः **विं** पक्षिणं **न** इव **केचिन्मा नियमन्** विनि-

भाषार्थ—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले सभापति राजन् ! तू=(मन्द्रैः) प्रशंसित (मयूररोमभिः) मयूर के रोम के समान कोमल रोम वाले (हरिभिः) घोड़ों से (तान्) उन शत्रुओं को जीतने के लिए (याहि) प्रस्थान कर ।

वहाँ [त्वा] तुझे—(पाशिनः) पाश=जाल रखने वाले शिकारी (विं, न) जैसे पक्षी को बांध

ग्रहं यच्छेयुः **त्वमतिधन्वेव** महेष्वास इव **आ-इहि** ॥ २० । ५३ ॥

लेते हैं वैसे कोई भी (मा, नियमन्) गिरफ्तार न करें, तू—(अतिधन्वेव) बड़े धनुर्धारी के समान (आ) विजय के लिए सब ओर जा ॥ ५३ ॥

भावार्थः — अत्रोपमावाचकलुप्तोपमालङ्कारौ । यदा शूराः शत्रुविजयाय गच्छेयुस्तदा सर्वतो बलं समीक्ष्याऽलं सामग्र्या शत्रुभिस्सह युद्ध्वा स्वविजयं कुर्युः ।

यथा शत्रवो वशं न कुर्युस्तथाऽनुतिष्ठन्तु ॥५३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार हैं ॥ जब शूर लोग शत्रुविजय के लिए जावें तब सब ओर से बल को देखकर, पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें।

जैसे शत्रु वश में न कर सकें वैसा आचरण करें ॥ २० । ५३ ॥

भाष्यसार—**१. राजा के लिए उपदेश**—परम ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला सभापति राजा—प्रशंसित, मयूर के रोम के समान कोमल रोम वाले घोड़ों से शत्रुओं को जीतने के लिए प्रस्थान करे। जैसे शिकारी पक्षियों को जाल में बांध लेते हैं वैसे उसे शत्रु गिरफ्तार न कर सकें ऐसा प्रयत्न करे। तात्पर्य यह है कि जब शूरवीर लोग शत्रु-विजय के लिए जावें तब अपने बल को सब ओर से देख लेवें। पूर्ण युद्ध सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें। जिस प्रकार से शत्रु वश में न कर सकें वैसा उपाय करे।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'न' और 'इव' शब्द हैं। अतः उपमा अलंकार है। उपमा यह है कि जैसे शिकारी पक्षियों को जाल में बांध लेते हैं वैसे शत्रु सेनापति को न बांध सकें। 'मयूररोमभिः' पद में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि मयूर के रोम के समान कोमल रोम वाले घोड़े हों ॥ २० । ५३ ॥

वसिष्ठः । **इन्द्रः=राजा** । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजा के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो ऽ अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५४ ॥

पदार्थः—(एव) निश्चये (इत्) अपि (इन्द्रम्) शत्रुविदारकम् (**वृषणम्**) बलिष्ठम् (**वज्रबाहुम्**) वज्रवद्भुजम् (**वसिष्ठासः**) अतिशयेन वसवः (**अभि**) सर्वतः (**अर्चन्ति**) सत्कुर्वन्ति (**अर्कैः**) पूजितैः कर्मभिः (**सः**) (**नः**) अस्मान् (**स्तुतः**) प्रशंसितः (**वीरवत्**) वीरैर्युक्तम् (**धातु**) दधातु (**गोमत्**) प्रशंसिता गावो=गवादयः पशवो यस्मिन् (**यूयम्**) (**पात**) (**स्वस्तिभिः**) कल्याणकरैः कर्मभिः (**सदा**) सर्वस्मिन् काले (**नः**) अस्मान् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—हे वसिष्ठासः ! ये वृषणं वज्रबाहुमिन्द्रमर्कैर्विद्वांसोऽभ्यर्चन्ति तमेव यूयमिदर्चत स स्तुतो नो गोमत् वीरवद्राज्यं धातु यूयं स्वस्तिभिर्नः सदा पात ॥ ५४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वसिष्ठासः ! अतिशयेन वसवः ! **ये वृषणं** बलिष्ठं **वज्रबाहुं**

भाषार्थ—हे (वसिष्ठासः) अत्यन्त वास करने वाले प्रजा जनो ! जो विद्वान् लोग—(वृष-

वज्रवद्भुजम् **इन्द्रं** शत्रुविदारकम् **अर्कैः** पूजितैः कर्मभिः **विद्वांसोऽभ्यर्चन्ति** सर्वतः सत्कुर्वन्ति, **तमेव** निश्चयेन **यूयमिद्** अपि **अर्चत**।

स स्तुतः प्रशंसितः **नः** अस्मान् **गोमत्** प्रशंसिता गावो=गवादयः पशवो यस्मिन् **वीरवत्** वीरैर्युक्तं **राज्यं धातु** दधातु।

यूयं स्वस्तिभिः कल्याणकरैः कर्मभिः **नः** अस्मान् **सदा** सर्वस्मिन्काले **पात** ॥ २० । ५४॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा राजपुरुषाः प्रजा रक्षेयुस्तथैतान् प्रजाजना अपि रक्षन्तु ॥ २० । ५४ ॥

गाम्) बलिष्ठ, (वज्रबाहुम्) वज्र के समान दृढ़ भुजाओं वाले, (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारक राजा का (अर्कैः) पूजित कर्मों से (अभ्यर्चन्ति) सब ओर से सत्कार करते हैं, उसका (एव) निश्चय से तुम (इत्) भी सत्कार करो।

(सः) वह (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त राजा (नः) हमारे (गोमत्) प्रशंसित गौ आदि पशुओं तथा (वीरवत्) वीरों से युक्त राज्य को (धातु) धारण करे।

(यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक कर्मों से (नः) हमारी (सदा) सब काल में (पात) रक्षा करो ॥ २० । ५४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ जैसे—राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे—प्रजाजन भी उनकी रक्षा करें ॥ २० । ५४ ॥

भाष्यसार—१. **राजा के लिए उपदेश**—जगत् में अत्यन्त वास करने वाले प्रजा-जनों को उचित है कि वे—विद्वान् लोग जिस बलिष्ठ, वज्र के समान भुजाओं वाले, शत्रुओं के विदारक राजा की पूजित कर्मों से सत्कार करते हैं। उसका सत्कार करें। प्रशंसा को प्राप्त हुआ राजा उत्तम गौ आदि पशु और वीरों से युक्त राज्य को धारण करे। प्रजा जन भी कल्याणकारी कर्मों से राजा की सदा रक्षा करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि राजा के समान प्रजा और प्रजा के समान राजा परस्पर रक्षा करें ॥२० । ५४॥

विदर्भिः। **अश्विसरस्वतीन्द्राः=स्त्रीपुरुषौ, वाक्, राजा**। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

अथ स्त्रीपुरुषयोर्विषयमाह ॥

अब स्त्री पुरुषों के विषय में उपदेश किया जाता है ॥

समिद्धो ऽ अग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

पदार्थः—(**समिद्धः**) सम्यक् प्रदीप्तः (**अग्निः**) पावकः (**अश्विना**) शुभगुणेषु, व्याप्तौ (**तप्तः**) (**घर्मः**) यज्ञ इव संगतियुक्तः (**विराट्**) विविधतया राजते (**सुतः**) प्रेरितः (**दुहे**) (**धेनुः**) दुग्धदात्री गौरिव (**सरस्वती**) शास्त्रविज्ञानयुक्ता वाक् (**सोमम्**) ऐश्वर्यम् (**शुक्रम्**) शुद्धम् (**इह**) अस्मिन् संसारे (**इन्द्रियम्**) धनम् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—यथेह धेनुस्सरस्वती शुक्रं सोममिन्द्रियं च दोग्धि तथैतमहं दुहे अश्विना तप्तो विराट् सुतः समिद्धो घर्मोऽग्निर्यथा विश्वं पाति तथाहमेतत्सर्वं रक्षेयम् ॥ ५५ ॥

सपदार्थान्वयः—यथेह अस्मिन् संसारे **धेनुः** दुग्धदात्री गौरिव **सरस्वती** शास्त्रविज्ञानयुक्ता वाक् **शुक्रं** शुद्धं **सोमम्** ऐश्वर्यम् **इन्द्रियं** धनं **च** **दोग्धि, तथैतामहं दुहे ।**

भाषार्थ—जैसे (इह) इस संसार में (धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (सरस्वती) शास्त्र-विज्ञान से युक्त वाणी (शुक्रम्) शुद्ध ऐश्वर्य और (इन्द्रियम्) धेन को दुहती है; वैसे इसका मैं दोहन करूँ । और—

अश्विना शुभगुणेषु व्याप्तौ **तप्तो विराट्** विविधतया राजते **सुतः** प्रेरितः **समिद्धः** सम्यक् प्रदीप्तः **घर्मः** यज्ञ इव सङ्गतियुक्तः **अग्निः** पावकः **यथा विश्वं पाति; तथाहमेतत्सर्वं रक्षेयम्** ।। २०।५५ ।।

(अश्विनौ) शुभ गुणों में व्याप्त स्त्री-पुरुष, (तप्तः) ताप से युक्त, (विराट्) विविध प्रकार के प्रकाश वाला, (सुतः) प्रेरित किया हुआ, (समिद्धः) अच्छे प्रकार से प्रदीप्त, (घर्मः) यज्ञ के समान संगति से युक्त, (अग्निः) सूर्य जैसे विश्व की रक्षा करता है, वैसे मैं इन सबकी रक्षा करूँ ।।२० । ५५।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः ।। अस्मिन् संसारे तुल्यगुणकर्मस्वभावौ स्त्रीपुरुषौ सूर्यवत् सत्कीर्तिप्रकाशमानौ पुरुषार्थिनौ भूत्वा ।

धर्मेणैश्वर्यं सतत संचिनुताम् ।। २० । ५५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। इस संसार में तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष सूर्य के समान सत्कीर्ति से प्रकाशमान और पुरुषार्थी होकर ।।

धर्मपूर्वक ऐश्वर्य को सदा संचित करें ।। ५५ ।।

भा० पदार्थः—अश्विनौ=तुल्यगुणकर्मस्वभावौ स्त्रीपुरुषौ । तप्तः=पुरुषार्थी । विराट्=सत्कीर्तिप्रकाशमानः । अग्निः=सूर्यवत् ।।

भाष्यसार—**१. स्त्री-पुरुष के लिए उपदेश**—इस संसार में दूध देने वाली गौ के समान सरस्वती अर्थात् शास्त्र-विज्ञान से युक्त वाणी शुद्ध ऐश्वर्य और धन का जिस विधि से दोहन करती है उस विधि से स्त्री-पुरुष ऐश्वर्य का दोहन करें ।

विविध प्रकाश वाला, परमात्मा से प्रेरित=संचालित, अच्छे प्रकार प्रदीप्त, यज्ञ के समान संग करने योग्य सूर्य विश्व की रक्षा करता है । उक्त सूर्य के समान तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले स्त्री-पुरुष सत्कीर्ति से प्रकाशमान और पुरुषार्थी होकर धर्मपूर्वक ऐश्वर्य का सदा संचय करें ।।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है, अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि स्त्री-पुरुष सरस्वती के समान ऐश्वर्य का दोहन करें । सूर्य के समान सत्कीर्ति से प्रकाशमान हों ।। २० । ५५ ।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**स्त्रीपुरुषौ, राजा च ।**

विराडनुष्टुप् । गान्धारः ।।

अथ प्रकृतविषये वैद्यविद्यासंचरणमाह ।।

अब इस प्रकृत विषय में वैद्यविद्या के संचार का उपदेश किया जाता है ।।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती । मध्वा रजांꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

पदार्थः—(**तनूपा**) यौ तनुं पातस्तौ (**भिषजा**) वैद्यकविद्यावेत्तारौ (**सुते**) उत्पन्ने जगति (**अश्विना**) व्याप्तशुभगुणकर्मस्वभावौ (**उभा**) उभौ (**सरस्वती**) सरो=बहु विज्ञानं विद्यते ययोस्तौ

(**मध्वा**) मधुरेण द्रव्येण (**रजांसि**) लोकान् (**इन्द्रियम्**) धनम् (**इन्द्राय**) राज्ञे (**पथिभिः**) मार्गैः (**वहान्**) वहन्तु=प्राप्नुवन्तु ॥ ५६ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा भिषजा तनूपोभाश्विना विद्यासुशिक्षितौ स्त्रीपुरुषौ सरस्वती च मध्वा सुतेऽस्मिन् जगति स्थित्वा पथिभिरिन्द्राय रजांसीन्द्रियं च दध्यातां तथैतद्वहान् ॥ ५६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा भिषजा** वैद्यकविद्यावेत्तारौ, **तनूपा** यौ तनुं पातस्तौ, **उभा** उभौ, **अश्विना=विद्यासुशिक्षितौ स्त्रीपुरुषौ** व्याप्तशुभगुणकर्मस्वभावौ, **सरस्वती** सरो=बहु विज्ञानं विद्यते ययोस्तौ, **च मध्वा** मधुरेण द्रव्येण **सुते=अस्मिन् जगति** उत्पन्ने जगति, **स्थित्वा पथिभिः** मार्गैः **इन्द्राय** राज्ञे **रजांसि** लोकान् **इन्द्रियं** धनं **च दध्यातां, तथैतद् वहान्** वहन्तु= प्राप्नुवन्तु ॥ २० । ५६ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(भिषजा) वैद्यक विद्या के ज्ञाता, (तनूपा) शरीर की रक्षा करने वाले, (उभा) दोनों, (अश्विना) शुभ, गुण, कर्म स्वभाव में व्याप्त, विद्या और सुशिक्षा से युक्त स्त्री-पुरुष और (सरस्वती) जो बहुत विज्ञान से युक्त हैं वे—(मध्वा) मधुर पदार्थों से युक्त, (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में स्थित होकर (पथिभिः) धर्म-मार्गों से (इन्द्राय) राजा के लिए (रजांसि) लोकों और (इन्द्रियम्) धन को धारण करें, वैसे इसे आप (वहान्) प्राप्त करें ॥ २० । ५६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । यदि स्त्रीपुरुषा वैद्यक-विद्यां न जानीयुस्तर्हि रोगान्निवृत्तिं स्वास्थ्यसंपादनं च कर्त्तुं, धर्मे व्यवहारे निरन्तरं चरितुं च न शक्नुयुः ॥ २० । ५६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ यदि स्त्री-पुरुष वैद्यक-विद्या को न जानें तो रोगों से निवृत्ति, स्वास्थ्य की सिद्धि नहीं कर सकते और धर्म व्यवहार में निरन्तर नहीं चल सकते ॥ २० । ५६ ॥

भाष्यसार—१. वैद्यक-विद्या का उपदेश—स्त्री और पुरुष दोनों वैद्यक-विद्या के ज्ञाता, शरीर के रक्षक, शुभ गुण, कर्म, स्वभाव में व्याप्त, विद्या और सुशिक्षा से भूषित, और बहुत विज्ञान से युक्त हों। ईश्वर से उत्पन्न किया यह जगत् मधुर द्रव्यों से युक्त है। स्त्री-पुरुष इस जगत् में स्थित होकर राजा के लिए लोकों और धन को धारण करें। (यदि स्त्री पुरुष वैद्यक-विद्या को न जानें तो रोग-निवृत्ति और स्वास्थ्य-सिद्धि नहीं कर सकते तथा धर्म-व्यवहार में निरन्तर विचरण नहीं कर सकते।)

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि शब्द लुप्त हैं। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि वैद्यक-विद्या के ज्ञाता स्त्री-पुरुषों के समान सब मनुष्य धन को प्राप्त करें ॥ २० । ५६ ॥ ●

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः=वैद्य, वाणी, दुःखविदारणम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ प्राधान्येन भिषजां व्यवहारमाह ॥

अब प्रधानता से वैद्यों के व्यवहार को कहते हैं ॥

इन्द्रा॒येन्दु॒ꣳ सर॑स्वती नरा॒शꣳसे॑न न॒ग्नहु॑म् । अधा॑तामश्विना॒ मधु॑ भेष॒जं भि॒षजा॑ सु॒ते ॥ ५७ ॥

पदार्थः—(**इन्द्राय**) दुःखविदारणाय (**इन्दुम्**) परमैश्वर्यम् (**सरस्वती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता वाणी (**नराशंसेन**) नरैः स्तुतेन (**नग्नहुम्**) यो नन्दयति स नग्नस्तमाददातीति (**अधाताम्**) दध्याताम्

(अश्विना) वैद्यकविद्याव्यापिनौ **(मधु)** ज्ञानवर्द्धकं मधुरादिगुणयुक्तम् **(भेषजम्)** औषधम् **(भिषजा)** सद्वैद्यौ **(सुते)** उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति ।। ५७ ।।

अन्वयः—अश्विना भिषजेन्द्राय सुते मधु भेषजमधाताम् । नराशंसेन सरस्वती नग्नहुमिन्दुमादधातु ।। ५७ ।।

सपदार्थान्वयः—**अश्विना** वैद्यकविद्याव्यापिनौ **भिषजा** सद्वैद्यौ **इन्द्राय** दुःखविदारणाय **सुते** उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति **मधु** ज्ञानवर्द्धकं मधुरादिगुणयुक्तं **भेषजम्** औषधम् **अधातां** दध्याताम् ।

नराशंसेन नरैः स्तुतेन **सरस्वती** प्रशस्तविद्यायुक्ता वाणी **नग्नहुं** यो नन्दयति स नग्नस्तमाददातीति [तम्] **इन्दुं** परमैश्वर्यम् **आदधातु** ।। २० । ५७ ।।

भावार्थः—वैद्या द्विधा—एके ज्वरादिशरीररोगाऽपहारकाश्चिकित्सकाः, अपरे—मानसाविद्यादिरोगविनाशका अध्यापकोपदेशकास्सन्ति । यत्रैते वर्तन्ते तत्र रोगाणां विनाशात् सर्वे प्राणिन आधिव्याधिमुक्ता भूत्वा सुखिनो भवन्ति ।।२०।५७।।

भाषार्थ—(अश्विना) वैद्यक-विद्या में व्यापक, (भिषजा) दो श्रेष्ठ वैद्य—(इन्द्राय) दुःख को दूर करने के लिए (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में—(मधु) ज्ञान-वर्द्धक मधुर आदि गुणों से युक्त (भेषजम्) औषध को (अधाताम्) धारण करें ।

(नराशंसेन) नरों से स्तुति को प्राप्त होने से (सरस्वती) प्रशस्त विद्या से युक्त वाणी—(नग्नहुम्) आनन्द को देने वाले (इन्दुम्) परम ऐश्वर्य को (आदधातु) धारण करे ।। २० । ५७ ।।

भावार्थ--वैद्य दो प्रकार के हैं—एक जो ज्वर आदि शरीर के रोगों को हरण करने वाले चिकित्सक हैं; दूसरे जो मन के अविद्या आदि रोगों के विनाशक अध्यापक और उपदेशक हैं । जहाँ ये विद्यमान हैं वहाँ रोगों के विनाश से सब प्राणी आधि और व्याधि से मुक्त होकर सुखी होते हैं ।। २० । ५७ ।।

भा० पदार्थः—भिषजा=(सद्वैद्यौ) वैद्या द्विविधा—एके ज्वरादिशरीररोगाऽपहारकाश्चिकित्सकाः, अपरे—मानसाविद्यादिरोगविनाशका अध्यापकोपदेशकाः ।।

भाष्यसार—वैद्यों का व्यवहार—वैद्यक-विद्या में निपुण श्रेष्ठ वैद्य—दुःख को दूर करने के लिए, ईश्वर से उत्पन्न किए इस जगत् में, ज्ञान-वर्द्धक तथा मधुर गुणों से युक्त ओषध को धारण करें, अर्थात् चिकित्सक लोग ज्वर आदि शरीर के रोगों को ओषध से नष्ट करें ।

नरों से स्तुति को प्राप्त होने के कारण, प्रशस्त विद्या से युक्त वाणी आनन्ददायक ऐश्वर्य को धारण करे, अर्थात् अध्यापक और उपदेशक लोग अविद्या आदि मानस रोगों का विनाश करें ।

जिस देश में चिकित्सक तथा अध्यापक-उपदेशक ये दो प्रकार के वैद्य होते हैं वहाँ रोगों के विनाश से सब प्राणी व्याधि (शारीरिक रोग) तथा आधि (मानसिक रोग) से मुक्त होकर सुखी रहते हैं ।। २० । ५७ ।। ●

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**वैद्यः, पतिव्रता, पतिः** ।।
निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

वैद्यों के व्यवहार का फिर उपदेश किया है ।।

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरश्विनाविषꣳसमूर्जꣳ सꣳरयिं दधुः ॥ ५८ ॥

पदार्थः—(**आजुह्वाना**) समन्तात् शब्दायमाना (**सरस्वती**) प्रशस्तज्ञानवती स्त्री (**इन्द्राय**) परमैश्वर्ययुक्ताय पत्ये (**इन्द्रियाणि**) श्रोत्रादीनि, ऐश्वर्यजनकानि सुवर्णादीनि वा (**वीर्यम्**) शरीरबलकरं घृतादि (**इडाभिः**) प्रशंसिताभिरोषधीभिः (**अश्विनौ**) सूर्य्याचन्द्रमसाविव वैद्यकविद्याकार्ये प्रकाशमानौ (**इषम्**) अन्नादिकम् (**सम्**) (**ऊर्ज्जम्**) पराक्रमम् (**सम्**) (**रयिम्**) धर्मश्रियम् (**दधुः**) दध्युः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यं चाश्विनाविडाभिरोषधिभिरिषं समूर्जं रयिं च संदधुः ॥ ५८ ॥

सपदार्थान्वयः—**आजुह्वाना** समन्तात् शब्दायमाना **सरस्वती** प्रशस्तज्ञानवती स्त्री **इन्द्राय** परमैश्वर्ययुक्ताय पत्ये **इन्द्रियाणि** श्रोत्रादीनि, ऐश्वर्यजनकानि सुवर्णादीनि वा **वीर्यं** शरीरबलकरं घृतादि **चाश्विनौ** सूर्य्याचन्द्रमसाविव वैद्यकविद्याकार्ये प्रकाशमानौ **इडाभिः=ओषधीभिः** प्रशंसिताभिरोषधीभिः **इषम्** अन्नादिकं **समूर्जं** पराक्रमं **रयिं** धर्मश्रियं **च संदधुः** दध्युः ॥२०।५८॥

भाषार्थ—(आजुह्वाना) सब ओर स्तुति को प्राप्त, (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञान से युक्त स्त्री-(इन्द्राय) परम ऐश्वर्य से युक्त पति के लिए (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रियों वा ऐश्वर्य के उत्पादक सुवर्ण आदि और (वीर्यम्) शरीर के लिए बलकारी घृत आदि पदार्थों को धारण करे। और—(अश्विनौ) वैद्यक विद्या के कार्य में सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान दो वैद्य—(इडाभिः) प्रशंसित ओषधियों से (इषम्) अन्न आदि पदार्थ; (समूर्जम्) उत्तम पराक्रम, और (रयिम्) धर्म से अर्जित धन को (संदध्युः) धारण करें ॥ २० । ५८॥

भावार्थः—त एव विद्यावन्तः सन्ति ये मनुष्याणां रोगान् नाशयित्वा शरीरात्मबलमुन्नयन्ति ।

सैव पतिव्रता स्त्री ज्ञेया या पत्युः सुखाय धनघृतादि वस्तु स्थापयति ॥ २० । ५८ ॥

भावार्थ—वे ही पुरुष विद्यावान् हैं जो मनुष्यों के रोगों को नष्ट करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं।

उसे ही पतिव्रता स्त्री समझें जो पति के सुख के लिए धन और घृत आदि वस्तुओं को सुरक्षित रखती है ॥ २० । ५८ ॥

भा० पदार्थः—अश्विनौ=विद्यावन्तौ । समूर्जम्=शरीरात्मबलम् । सरस्वती=पतिव्रता स्त्री । इन्द्राय=पत्युः सुखाय ॥

भाष्यसार—**१. वैद्यों का व्यवहार**—वैद्यक विद्या के कार्यों में सूर्य और चन्द्रमा के समान प्रकाशमान वैद्य लोग—प्रशंसनीय ओषधियों से अन्न आदि पदार्थ, उत्तम पराक्रम और धर्मपूर्वक अर्जित धन को धारण करें अर्थात् वे ही मनुष्य विद्या से युक्त हैं जो मनुष्यों के रोगों को नष्ट करके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते हैं।

२. पतिव्रता स्त्री—सब ओर स्तुति को प्राप्त, प्रशस्त ज्ञान से भूषित स्त्री—परम ऐश्वर्य से युक्त पति के लिए श्रोत्र आदि इन्द्रियों, ऐश्वर्य के उत्पादक सुवर्ण आदि तथा शरीर के लिए बलकारी घृत आदि पदार्थों को धारण करती है, अर्थात् वही स्त्री पतिव्रता है जो पति के सुख के लिए सुवर्ण आदि धन और घृत आदि पदार्थ सुरक्षित रखती है ॥ २० । ५८ ॥

विर्दभिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=वैद्यः, गृहिणी, परमैश्वर्यसुखम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

वैद्यों के व्यवहार का फिर उपदेश किया है ॥

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता । सरस्वती तमा भरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) सद्गुणकर्मस्वभावव्यापिनौ (**नमुचेः**) यो न मुञ्चति तस्यासाध्यस्यापि रोगस्य (**सुतम्**) सम्यक् निष्पादितम् (**सोमम्**) सोमाद्योषधिगणम् (**शुक्रम्**) वीर्यकरम् (**परिस्रुता**) परितः=सर्वतो गच्छन्तावव्याहतगती । स्रु गतौ धातोः क्विप् तुक् द्विवचनस्य सुपामित्यात्वम् । (**सरस्वती**) प्रशंसिता गृहिणी तथा पुरुषः (**तम्**) (**आ**) (**अभरत्**) बिभर्त्ति (**बर्हिषा**) सुखवर्द्धकेन कर्मणा (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यसुखाय (**पातवे**) पातुम् । अत्र पा धातोस्तुमर्थे तवेन् प्रत्ययः ॥ ५९ ॥

प्रमाणार्थ—(**परिस्रुता**) यहाँ 'स्रु गतौ' धातु से 'क्विप्' प्रत्यय, तुक्—आगम और 'सुपां सुलुक्०' (७ । १ । ३९) से द्विवचन को आत्व है ॥ (**पातवे**) यहाँ 'पा' धातु से तुमुन्—प्रत्यय के अर्थ में 'तवेन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—यौ परिस्रुताऽश्विना सरस्वती बर्हिषेन्द्राय नमुचेर्निवारणाय च शुक्रं सुतं सोमं पातवे तमाभरत् समन्ताद्भरतः सदा तावेव सुखिनौ भवतः ॥ ५९ ॥

सपदार्थान्वयः—यौ परिस्रुता परितः=सर्वतो गच्छन्तावव्याहतगती, **अश्विना** सद्गुणकर्मस्वभावव्यापिनौ **सरस्वती** प्रशंसिता गृहिणी तथा पुरुषः, **बर्हिषा** सुखवर्द्धकेन कर्मणा **इन्द्राय** परमैश्वर्यसुखाय **नमुचेः** यो न मुञ्चति तस्यासाध्यस्यपि रोगस्य **निवारणाय च**, **शुक्रं** वीर्यकरं **सुतं** सम्यक् निष्पादितं **सोमं** सोमाद्योषधिगणं **पातवे** पातुं **तमाभरत्**=**समन्ताद् भरतः** बिभर्त्ति; **सदा तावेव सुखिनौ भवतः** ॥ २० । ५९ ॥

भाषार्थ—जो (परिस्रुता) सब ओर जाने वाले अर्थात् अव्याहत गति वाले (अश्विना) शुभ गुण, कर्म, स्वभाव में व्यापक, (सरस्वती) प्रशंसित स्त्री तथा पुरुष—(बर्हिषा) सुख-वर्द्धक कर्म से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के सुख के लिए और (नमुचेः) न छोड़ने वाले असाध्य रोग के निवारण के लिए—(शुक्रम्) वीर्य-वर्द्धक, (सुतम्) अच्छे प्रकार सिद्ध किए हुए (सोमम्) सोम आदि ओषधियों के (पातवे) पान के लिए उन्हें (आभरत्) सब ओर से धारण करते हैं; सदा वे ही सुखी होते हैं ॥ २० । ५९ ॥

भावार्थः—ये साङ्गोपाङ्गान् वेदान् पठित्वा हस्तक्रियां विजानन्ति, तेऽसाध्यानपि रोगान् निवर्त्तयन्ति ॥ २० । ५९ ॥

भावार्थ—जो अङ्ग और उपाङ्ग सहित वेदों को पढ़कर हस्त-क्रिया को जानते हैं वे असाध्य रोगों का भी निवारण करते हैं ॥२०।५९॥

भा० पदार्थः—अश्विनौ=पठितसाङ्गोपाङ्गवेदौ । बर्हिषा=हस्तक्रियया ॥

भाष्यसार—वैद्यों का व्यवहार—सब ओर अव्याहत गति वाले, शुभ, गुण, कर्म, स्वभाव में व्यापक वैद्य स्त्री-पुरुष—सुखवर्द्धक कर्म से, परम ऐश्वर्य से उत्पन्न सुख की प्राप्ति के लिए, और असाध्य रोगों के निवारण के लिए सोम आदि ओषधियों का पान करें । ये ओषधियाँ वीर्य को बढ़ाने वाली हों तथा उत्तम रीति से सिद्ध की हों ।

जो वैद्य लोग शिक्षा आदि अंग तथा आयुर्वेद आदि उपांग सहित वेदों को पढ़कर हस्त-क्रिया (शल्य चिकित्सा आदि) को जानते हैं वे असाध्य रोगों का निवारण करते हैं ॥ २० । ५९ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=सूर्याचन्द्रमसौ, विदुषी, विद्युत् ।

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में उपदेश किया जाता है ॥

क॒व॒ष्यो॒ न व्यच॑स्वतीर॒श्विभ्या॒ं न दुरो॒ दिश॑ः । इन्द्रो॒ न रोद॑सीऽउ॒भे दु॒हे कामा॒न्त्सर॑स्वती ॥ ६० ॥

पदार्थः—(**कवष्यः**) प्रशस्ताः । **अत्र कु शब्दे धातोर्बाहुलकादौणादिकोऽषट् प्रत्ययः** (**न**) इव (**व्यचस्वतीः**) व्याप्तिमत्यः (**अश्विभ्याम्**) सूर्याचन्द्रमोभ्याम् (**न**) इव (**दुरः**) द्वाराणि (**दिशः**) (**इन्द्रः**) विद्युत् (**न**) इव (**रोदसी**) द्यावापृथिव्यौ (**उभे**) (**दुहे**) पिपर्मि (**कामान्**) (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञान-युवता ॥ ६० ॥

प्रमाणार्थ—(**कवष्यः**) यहाँ 'कु शब्दे' इस धातु से बहुल करके औणादिक '**अषट्**' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—सरस्वत्यहमिन्द्र अश्विभ्यां व्यचस्वतीः कवष्यो दिशो न दुरो न उभे रोदसी न वा कामान् दुहे ॥ ६० ॥

सपदार्थान्वयः—**सरस्वती** प्रशस्त-विज्ञानयुक्ता **अहमिन्द्रः** विद्युत्, **अश्विभ्यां** सूर्या-चन्द्रमोभ्यां, **व्यचस्वतीः** व्याप्तिमत्यः **कवष्यः** प्रशस्ता **दिशो न** इव, **दुरः** द्वाराणि **न** इव, **उभे रोदसी** द्यावापृथिव्यौ **न** इव **वा, कामान् दुहे** पिपर्मि ॥२०॥

भाषार्थ—(सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त मैं विदुषी (इन्द्रः) विद्युत्, (अश्विभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा (व्यचस्वतीः) व्याप्ति वाली (कवष्यः) प्रशस्त (दिशः) दिशाओं के (न) समान; (दुरः) द्वारों के (न) समान, (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के (न) समान (कामान्) इच्छाओं को (दुहे) पूर्ण करती हूँ ॥६०॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथेन्द्रः सूर्याचन्द्रमोभ्यां दिशां द्वाराणां चान्धकारं विनाशयति,

यथा वा भूमिप्रकाशौ धरति, तथा—

विदुषी पुरुषार्थेनेच्छाः प्रपूरयेत् ॥ २० । ६० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है॥ जैसे—इन्द्र=विद्युत् सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा दिशाओं और द्वारों के अन्धकार को नष्ट करती है,

अथवा—जैसे भूमि और प्रकाश को धारण करती हैं, वैसे—

विदुषी स्त्री पुरुषार्थ से इच्छाओं को पूरण करे ॥ २० । ६० ॥

भा० पदार्थः—रोदसी=भूमिप्रकाशौ । सरस्वती=विदुषी । कामान्=इच्छाः । दुहे=प्रपूरयामि ॥

भाष्यसार—**१. विदुषी के लिए उपदेश**—जैसे इन्द्र अर्थात् विद्युत् सूर्य और चन्द्रमा के द्वारा—व्याप्तिमान्, प्रशस्त दिशाओं और, द्वार=घरों के अन्धकार को नष्ट करता है अथवा भूमि और प्रकाश को धारण कर रहा है वैसे सरस्वती अर्थात् प्रशस्त विज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री पुरुषार्थ से अविद्या अन्धकार को नष्ट करे, कामनाओं को पूरण करे ॥

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'न' पद है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विदुषी स्त्री विद्युत् के समान अविद्या अन्धकार को नष्ट करे। नाना इच्छाओं को पूरण करे ॥ २० । ६० ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=सूर्याचन्द्रमसौ, वाक्, विद्युत् ॥

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

उ॒षासा॒नक्त॑म॒श्विना॒ दिवेन्द्र॑ᳫं सा॒यमि॑न्द्रि॒यैः । सं॒जा॒ना॒ने सु॒पेश॑सा॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या ॥ ६१ ॥

पदार्थः—(**उषासा**) प्रभाते । अत्रान्येषामपीत्युपधादीर्घः (**नक्तम्**) रात्रौ (**अश्विना**) सूर्याचन्द्रमसौ (**दिवा**) दिने (**इन्द्रम्**) विद्युतम् (**सायम्**) संध्यासमये (**इन्द्रियैः**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गैः (**संजानाने**) (**सुपेशसा**) सुरूपौ (**सम्**) (**अञ्जाते**) प्रसिध्यतः (**सरस्वत्या**) प्रशस्तसुशिक्षितया वाचा ॥६१॥

प्रमाणार्थ—(**उषासा**) यहाँ 'अन्येषामपि दृश्यते' (६ । ३ । १३७) से उपधा-दीर्घ है ॥

अन्वयः—हे विद्वांसः ! यथा सुपेशसाऽश्विना सरस्वत्योषासा नक्तं सायं च दिवेन्द्रियैरिन्द्रं च संजानाने समञ्जाते तथा यूयमपि प्रसिध्यत ॥ ६१ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वांसः ! यथा सुपेशसा सुरूपौ **अश्विना** सूर्याचन्द्रमसौ **सरस्वत्या** प्रशस्तसुशिक्षितया वाचा **उषासा** प्रभाते **नक्तं** रात्रौ **सायं** संध्यासमये **च दिवा** दिने **इन्द्रियैः** इन्द्रस्य जीवस्य लिङ्गैः **इन्द्रं** विद्युतं **च संजानाने समञ्जाते** प्रसिध्यतः **तथा यूयमपि प्रसिध्यत** ॥ २० । ६१ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो ! जैसे—(सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य दो विद्वान्—(सरस्वत्या) प्रशस्त सुशिक्षा से युक्त वाणी से (उषासा) प्रभात (नक्तम्) रात्रि (सायम्) सन्ध्या समय और (दिवा) दिन में (इन्द्रियैः) इन्द्र=जीव के लिङ्ग इन्द्रियों से (इन्द्रम्) विद्युत् को (संजानाने) जानते हुए (समञ्जाते) प्रसिद्ध करते हैं; वैसे तुम भी प्रसिद्ध करो ॥२०।६१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथोषा रात्रिं, सायं च दिनं निवर्त्तयति, तथा विद्वद्भिरविद्याकुशिक्षे निवार्य, सर्वे विद्यासुशिक्षा-युक्ताः संपादनीयाः ॥ २० । ६१ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। जैसे उषा रात्रि का और सायंकाल दिन का निवारण करता है वैसे विद्वान् लोग अविद्या और कुशिक्षा को हटाकर सबको विद्या और शिक्षा से युक्त करें ॥ २० । ६१ ॥

भा० पदार्थः—नक्तम्=अविद्या । सायं=कुशिक्षा । दिवा=विद्यासुशिक्षे ।

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—सुन्दर रूप वाले, सूर्य और चन्द्रमा के समान विद्या से प्रकाशमान दो विद्वान् प्रशस्त सुशिक्षा से युक्त वाणी से—जैसे उषा रात्रि को और सन्ध्या दिन को निवृत्त करती है वैसे अविद्या और कुशिक्षा को हटाकर इन्द्रियों के द्वारा विद्या-प्रकाश को ग्रहण करते हुए उसे प्रसिद्ध करें अर्थात्सब को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि अश्विनौ विद्वानों के तुल्य अन्य विद्वान् भी विद्या-प्रकाश को प्रसिद्ध

करें। तथा जैसे उषा रात्रि का और सन्ध्या दिन का निवारण करती है वैसे अविद्या का निवारण करें ॥ २० । ६१ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकोपदेशकौ, मातापितरौ, सोमरसम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ विद्वद्विषये सामयिकं रक्षादिविषयं भैषज्यादिविषयमाह ॥

अब विद्वद्विषय में सामयिक रक्षा विषय और भैषज्यादि विषय का उपदेश किया जाता है ॥

पातं नोऽअश्विना दिवा पाहि नक्तꣳ सरस्वति। दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रꣳ सचा सुते ॥६२॥

पदार्थः—(पातम्) रक्षतम् (नः) अस्मान् (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**दिवा**) दिवसे (पाहि) रक्ष (नक्तम्) रात्रौ (**सरस्वति**) बहुविद्यायुक्त मातः (**दैव्या**) दिव्यगुणसम्पन्नौ (**होतारा**) सर्वस्य सुखदातारौ (**भिषजा**) वैद्यौ (**पातम्**) रक्षतम् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यप्रदं सोमरसम् (**सचा**) समवेतौ (**सुते**) उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे दैव्याऽश्विना युवां दिवा नक्तं नः पातम् । हे सरस्वति नः पाहि । हे होतारा सचा भिषजा सुत इन्द्रं पातम् ॥ ६२। ।

सपदार्थान्वयः—हे **दैव्या** दिव्यगुणसम्पन्नौ **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ ! **युवां दिवा** दिवसे **नक्तं** रात्रौ **नः** अस्मान् **पातं** रक्षतम् ।

हे **सरस्वति** बहुविद्यायुक्त मातः ! **नः** अस्मान् **पाहि** रक्ष ।

हे **होतारा** सर्वस्य सुखदातारौ **सचा** समवेतौ **भिषजा** वैद्यौ ! **सुते** उत्पन्नेऽस्मिञ्जगति **इन्द्रम्** ऐश्वर्यप्रदं सोमरसं **पातं** रक्षतम् ॥ २० । ६२ ॥

भाषार्थ—हे (दैव्या) दिव्य गुणों से सम्पन्न (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोगो ! तुम दोनों—(दिवा) दिन (नक्तम्) रात (नः) हमारी (पातम्) रक्षा करो ।

हे (सरस्वति) बहुत विद्या से युक्त माता ! तू (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कर ।

हे (होतारा) सबको सुख देने वाले (सचा) मिलकर कार्य करने वाले (भिषजा) दो वैद्यो ! तुम—(सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (इन्द्रम्) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले सोमरस की (पातम्) रक्षा करो ॥ २० । ६२ ॥

भावार्थः—यथा सद्वैद्या रोगनिवारकाण्यौषधानि जानन्ति, तथा—

अध्यापकोपदेशकौ, मातापितरौ चाऽविद्यारोगनिवारकानुपायाञ्जानन्तु ॥ २० । ६२ ॥

भावार्थ—जैसे श्रेष्ठ वैद्य रोग-निवारक औषध जानते हैं, वैसे—

अध्यापक और उपदेशक लोग और माता-पिता अविद्या के निवारक उपायों को जानें ॥ २० । ६२॥

भा० पदार्थः—भिषजा=सद्वैद्यौ । इन्द्रम्=रोगनिवारकमौषधम् । सरस्वति=मातः ! पितः ! ।

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—दिव्य गुणों से सम्पन्न अध्यापक और उपदेशक तथा बहुत विद्या से युक्त माता और पिता दिन-रात शिष्यों तथा सन्तानों की रक्षा करें अर्थात् अविद्या को दूर करने वाले उपायों को खोजें ।

सब को सुख देने वाले, मिलकर कार्य करने वाले, दो वैद्य—ईश्वर से उत्पन्न किए इस जगत् में ऐश्वर्य प्रदान करने वाले सोमरस की रक्षा करें अर्थात् रोग-निवारक औषधों को जानें ।।२०।६२।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः=वैद्यः, वाणी, ऐश्वर्यम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनर्भैषज्यादिविषयमाह ।।

फिर भैषज्यादि विषय का उपदेश किया है ।।

तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्यश्विना भारतीडा । तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ॥ ६३ ॥

पदार्थः—(**तिस्रः**) त्रित्वसंख्याविशिष्टाः (**त्रेधा**) त्रिभिः प्रकारैः (**सरस्वती**) सुशिक्षिता वाणी (**अश्विना**) सद्वैद्यौ (**भारती**) धारिका माता (**इडा**) स्तोतुं योग्योपदेशिका (**तीव्रम्**) तीव्रगुणस्वभावम् (**परिस्रुता**) परितः=सर्वतः स्रवन्ति येन तेन (**सोमम्**) ओषधिरसं प्रेरणाख्यं व्यवहारं वा (**इन्द्राय**) ऐश्वर्य्याय (**सुषुवुः**) निष्पादयन्तु (**मदम्**) हर्षकम् ।। ६३ ।।

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सरस्वती भारतीडा च तिस्रोऽश्विना चेन्द्राय परिस्रुता तीव्रं मदं सोमं त्रेधा सुषुवुस्तथा यूयमप्येनं सुषुनोत ।। ६३ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा सरस्वती** सुशिक्षिता वाणी **भारती** धारिका माता **इडा** स्तोतुं योग्योपदेशिका **च तिस्रः** त्रित्वसंख्या-विशिष्टाः, **अश्विना** सद्वैद्यौ **चेन्द्राय** ऐश्वर्याय **परिस्रुता** परितः=सर्वतः स्रवन्ति येन तेन **तीव्रं** तीव्र-गुणस्वभावं **मदं** हर्षकं **सोमम्** ओषधिरसं प्रेरणाख्यं व्यवहारं वा **त्रेधा** त्रिभिः प्रकारैः **सुषुवुः** निष्पादयन्तु **तथा यूयमप्येनं** सुषुनोत ।। २० । ६३ ।।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(सरस्वती) सुशिक्षित वाणी, (भारती) धारण करने वाली माता (इडा) स्तुति के योग्य उपदेशिका (तिस्रः) ये तीनों; और (अश्विनौ) दो श्रेष्ठ वैद्य (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (परिस्रुता) सब ओर से झारने वाले यन्त्र से (तीव्रम्) तीव्र गुण और स्वभाव वाले, (मदम्) हर्षकारक (सोमम्) ओषधियों के रस वा प्रेरणा नामक व्यवहार को (त्रेधा) तीन प्रकार से (सुषुवुः) सिद्ध करते हैं; वैसे तुम भी इसे सिद्ध करो ।। २० । ६३ ।।

भावार्थः—मनुष्यैः सोमाद्योषधिरसं निर्माय पीत्वा, ऽऽरोग्यं कृत्वा वाचं धियं वक्तृत्वं चोन्नेयम् ।। २० । ६३ ।।

भावार्थ—मनुष्य सोमलता आदि ओषधियों के रस का निर्माण करके, उसे पीकर वाणी और बुद्धि को नीरोग करके वक्तृत्व-शक्ति को बढ़ावें ।। २० । ६३ ।।

भा० पदार्थः—सरस्वती=वाक् । भारती=धीः । इडा=वक्तृत्वम् । सोमम्=सोमाद्योषधिरसम् ।।

भाष्यसार—औषध आदि का उपदेश—सुशिक्षित वाणी से युक्त विदुषी स्त्री, धारण करने वाली माता, स्तुति के योग्य उपदेशिका ये तीनों तथा दो श्रेष्ठ वैद्य लोग—ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए यन्त्र-विशेष से तीव्र गुण-स्वभाव वाले, हर्ष-कारक सोम को सिद्ध करें अथवा प्रेरणा नामक व्यवहार को सिद्ध करें । तीन प्रकार अर्थात् सोम आदि ओषधियों के रस का निर्माण, पान, वाणी और बुद्धि की आरोग्य-सिद्धि करके मनुष्य वक्तृत्व-शक्ति को बढ़ावें ।। २० । ६३ ।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=विद्याशिक्षकः, माता, परमैश्वर्यम् ।
अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

भैषज्य आदि विषय का फिर उपदेश किया है ।।

अ॒श्विना॑ भेष॒जं मधु॑ भेष॒जं नः॒ सर॑स्वती । इन्द्रे॒ त्वष्टा॒ यशः॒ श्रियँ॑ रू॒पꣳरू॑पमधुः सु॒ते ॥ ६४ ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) विद्याशिक्षकौ (**भेषजम्**) औषधम् (**मधु**) मधुरादिगुणोपेतम् (**भेषजम्**) (**नः**) अस्मभ्यम् (**सरस्वती**) विदुषी शिक्षिता माता (**इन्द्रे**) परमैश्वर्ये (**त्वष्टा**) तनूकर्त्ता (**यशः**) (**श्रियम्**) लक्ष्मीम् (**रूपं रूपम्**) **अत्र वीप्सायां द्वित्वम्** (**अधुः**) दध्यासुः (**सुते**) निष्पादिते ।। ६४ ।।

प्रमाणार्थ—(**रूपं रूपम्**) यहाँ वीप्सा (**व्याप्ति**) अर्थ में द्वित्व है ।।

अन्वयः—नोऽश्विना सरस्वती त्वष्टा च विद्वांसः सुत इन्द्रे भेषजं मधु भेषजं यशः श्रियं रूपं रूपं चाऽधुः ।। ६४ ।।

सपदार्थान्वयः—**नः** अस्मभ्यम् **अश्विना** विद्याशिक्षकौ **सरस्वती** विदुषी शिक्षिता माता **त्वष्टा** तनूकर्त्ता **च विद्वांसः सुते** निष्पादिते **इन्द्रे** परमैश्वर्ये **भेषजम्** औषधं **मधु** मधुरादिगुणोपेतं **भेषजम्** औषधं **यशः श्रियं** लक्ष्मीं **रूपं रूपं चाऽधुः** दध्यासुः ।। २० । ६४ ।।

भाषार्थ—(नः) हमारे लिए—(अश्विना) विद्या के शिक्षक, (सरस्वती) विदुषी शिक्षित माता और (त्वष्टा) बुद्धि को सूक्ष्म करने वाला ये विद्वान् लोग—(इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के (सुते) सिद्ध होने पर (भेषजम्) औषध, (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (भेषजम्) औषध को, (यशः) यश, (श्रियम्) लक्ष्मी और (रूपं रूपम्) प्रत्येक रूप को (अधुः) धारण करें ।। २० । ६४ ।।

भावार्थः—यदा मनुष्या ऐश्वर्यं प्राप्नुयुस्तदैतान्युत्तमान्यौषधानि, यशः, सुशोभां च निष्पादयितुं शक्नुयुः ।। २० । ६४ ।।

भावार्थ—जब मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं तभी इन उत्तम औषधियों, यश और सुशोभा को सिद्ध कर सकते हैं ।। २० । ६४ ।।

भा० पदार्थः—भेषजम्=उत्तमौषधम् । रूपं रूपम्=सुशोभाम् ।

भाष्यसार—**औषध आदि का उपदेश**—विद्या के शिक्षक अध्यापक और उपदेशक दोनों, विदुषी शिक्षित माता, बुद्धि को सूक्ष्म करने वाला पुरुष, ये सब विद्वान्—प्रथम परम ऐश्वर्य को सिद्ध करें । तत्पश्चात् मधुर आदि गुणों से युक्त उत्तम औषधों, यश, लक्ष्मी और रूप को सिद्ध कर सकते हैं ।। २० । ६४ ।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=वैद्यः, वाणी, ऐश्वर्यम् । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

भैषज्य आदि विषय का फिर उपदेश किया है ।।

ऋ॒तु॒थेन्द्रो॒ वन॒स्पतिः॑ शशमा॒नः प॑रि॒स्रुता॑ । की॒लाल॑म॒श्विभ्यां॒ मधु॑ दु॒हे धे॒नुः सर॑स्वती ॥ ६५ ॥

पदार्थः—(**ऋतुथा**) ऋतुप्रकारैः । **अत्र वा च्छन्दसीति ऋतुशब्दादपि थाल्** (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य्यकरः (**वनस्पतिः**) वटादिः (**शशमानः**) (**परिस्रुता**) परितः=सर्वतः स्रवति तेन (**कीलालम्**) अन्नम्

(अश्विभ्याम्) वैद्याभ्याम् (मधु) मिष्टादिकं रसम् (दुहे) पूर्णं कुर्याम् (धेनुः) दुग्धदात्री गौरिव (सरस्वती) प्रशस्तशिक्षायुक्ता वाणी ।। ६५ ।।

प्रमाणार्थ—(ऋतुथा) यहाँ 'वा च्छन्दसि' इस नियम से ऋतु शब्द से भी 'थाल्' प्रत्यय है ।।

अन्वयः—यथा धेनुः सरस्वती परिस्रुता सहर्तुथा शशमान इन्द्रो वनस्पतिर्मधु कीलालमश्विभ्यां च कामान् दोग्धि तथाऽहं दुहे ।। ६५ ।।

सपदार्थान्वयः—**यथा धेनुः** दुग्धदात्री गौरिव **सरस्वती** प्रशस्तशिक्षायुक्ता वाणी **परिस्रुता** परितः=सर्वतः स्रवति तेन **सहर्तुथा** ऋतुप्रकारैः **शशमान इन्द्र** ऐश्वर्यकरः **वनस्पतिः** वटादिः **मधु** मिष्टादिकं रसं **कीलालम्** अन्नम् **अश्विभ्यां** वैद्याभ्यां **च कामान् दोग्धि, तथाऽहं दुहे** पूर्णं कुर्याम् ।। ६५ ।।

भाषार्थ—जैसे—(धेनुः) दूध देने वाली गौ के समान (सरस्वती) प्रशस्त शिक्षा से युक्त वाणी (परिस्रुता) सब ओर गति करने से (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (शशमानः) बढ़ता हुआ, (इन्द्रः) ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला (वनस्पतिः) वट आदि वृक्ष, (मधु) मिष्ट आदि रस और (कीलालम्) अन्न (अश्विभ्याम्) वैद्यों के द्वारा कामनाओं को पूर्ण करता है, वैसे मैं कामनाओं को (दुहे) पूर्ण करूँ ।। २० । ६५ ।।

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। यथा सद्वैद्याः शुद्धेभ्यो वनस्पतिभ्यः सारग्रहणाय प्रयतन्ते, तथा सर्वैः प्रयतितव्यम् ।। २० । ६५ ।।

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। जैसे श्रेष्ठ वैद्य लोग शुद्ध वनस्पतियों से सार को ग्रहण करने का प्रयत्न करते हैं, वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिए ।। २० । ६५ ।।

भा० पदार्थः—मधु=सारम् । अश्विभ्याम्=सद्वैद्याभ्याम् ।।

भाष्यसार—**१. औषध आदि उपदेश**—दूध देने वाली गौ के समान, प्रशस्त शिक्षा से युक्त वाणी परिस्रवण=सब ओर गति करने से अर्थात् उपदेश आदि से कामनाओं को पूरण करती है। ऋतु के अनुसार बढ़ाने वाला वट आदि वनस्पति, मिष्ट आदि रस और अन्न वैद्यों के द्वारा प्रयुक्त हुआ कामनाओं को पूरण करता है। इस विधि से सब मनुष्य कामनाओं को पूरण करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि वाणी, वनस्पति आदि के समान मनुष्य कामनाओं को पूरण करें, तथा वैद्यों के समान सब मनुष्य वनस्पतियों से सार-ग्रहण करने का प्रयत्न करें ।। २० । ६५ ।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः=वैद्यः, वाक्, परमैश्वर्यम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

भैषज्य आदि विषय का फिर उपदेश किया है ।।

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता । समधातꣳ सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ।। ६६ ।।

पदार्थः—(**गोभिः**) धेनुभिः (**न**) इव (**सोमम्**) ओषधिरसम् (**अश्विना**) सुशिक्षितौ वैद्यौ (**मासरेण**) प्रमितेन मण्डेन । अत्र माङ् धातोरौणादिकः सरन् प्रत्ययः (**परिस्रुता**) सर्वतो मधुरादिरसयुक्तेन

(**सम्**) (**अधातम्**) (**सरस्वत्या**) सुशिक्षाज्ञानयुक्तया वाचा (**स्वाहा**) सत्यया क्रियया (**इन्द्रे**) सति परमैश्वर्ये (**सुतम्**) निष्पादितम् (**मधु**) मधुरादिगुणयुक्तम् ॥ ६६ ॥

प्रमाणार्थ—(**मासरेण**) यहाँ 'माङ्' धातु से औणादिक 'सरन्' प्रत्यय है ॥

अन्वयः—हे अश्विना ! परिस्रुता मासरेण सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे गोभिर्दुग्धादि न सुतं मधु सोमं युवां समधातम् ॥ ६६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अश्विना** ! सुशिक्षितौ वैद्यौ **परिस्रुता** सर्वतो मधुरादिरसयुक्तेन **मासरेण** प्रमितेन मण्डेन **सरस्वत्या** सुशिक्षाज्ञान-युक्तया वाचा **स्वाहा** सत्यया क्रियया **इन्द्रे** सति परमैश्वर्ये **गोभिः** धेनुभिः **दुग्धादि न** इव **सुतं** निष्पादितं **मधु** मधुरादिगुणयुक्तं **सोमम्** ओषधिरसं **युवां समधातम्** ॥ २० । ६६ ॥

भाषार्थ—हे (अश्विना) सुशिक्षित वैद्यो ! तुम दोनों—(परिस्रुता) सब ओर से मधुर आदि रसों से युक्त (मासरेण) परिमित मांड से, (सरस्वत्या) सुशिक्षा और ज्ञान से युक्त वाणी से, (स्वाहा) सत्य-क्रिया से (इन्द्रे) परम ऐश्वर्य के होने पर (गोभिः) गौओं से दुहे हुए दूध आदि के (न) समान (सुतम्) तैयार किए हुए (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त (सोमम्) ओषधिरस को (समधातम्) धारण करो ॥ २० । ६६ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । वैद्याः श्रेष्ठया हस्त-क्रियया सर्वौषधिरसं संगृह्णीयुः ॥ २० । ६६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है । वैद्य लोग श्रेष्ठ हस्त-क्रिया से सब ओषधियों के रस का संग्रह करें ॥ २० । ६६ ॥

भा० पदार्थः—स्वाहा=श्रेष्ठया हस्त-क्रियया । सोमम्=सर्वौषधिरसम् । समधातम्= संगृह्णीतम् ॥

भाष्यसार—१. **औषध विषयक उपदेश**—सुशिक्षित वैद्य लोग मधुर आदि रस से युक्त मण्ड से, सुशिक्षा एवं ज्ञान से युक्त वाणी से, सत्य हस्त-क्रिया से परम ऐश्वर्य को सिद्ध करें। परम ऐश्वर्य के होने पर जैसे गौओं से दूध दुहा जाता है वैसे तैयार किए हुए मधुर सोम को धारण करें। वैद्य लोग श्रेष्ठ हस्त-क्रिया से सब ओषधियों के रस का संग्रह करें।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'न' शब्द है। अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि सोम गौओं के दूध आदि के समान है ॥ २० । ६६ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**वैद्यः, वाक्, ऐश्वर्यम्** ।

भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

भैषज्य आदि विषय का फिर उपदेश किया है ॥

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती । आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) सुवैद्यौ (**हविः**) आदातुमर्हम् (**इन्द्रियम्**) मन आदि (**नमुचेः**) अविनश्वरात्कारणादुत्पन्नात्कार्यात् (**धिया**) प्रज्ञया (**सरस्वती**) (**आ**) (**शुक्रम्**) वीर्यम् (**आसुरात्**) मेघात् (**वसु**) (**मघम्**) पूज्यम् (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**जभ्रिरे**) धरेयुः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—अश्विना सरस्वती च धिया नमुचेर्हविरिन्द्रियमासुराच्छुक्रं मघं वस्विन्द्रायाजभ्रिरे ।। ६७ ।।

सपदार्थान्वयः—**अश्विना** सुवैद्यौ **सरस्वती च धिया** प्रज्ञया **नमुचेः** अविनश्वरात्-कारणादुत्पन्नात्कार्यात् **हविः** आदातुमर्हम् **इन्द्रियं** मन आदि; **आसुरात्** मेघात् **शुक्रं** वीर्यं **मघं** पूज्यं **वसु इन्द्राय** ऐश्वर्याय **आ+जभ्रिरे** धरेयुः ।।२०।६७।।

भाषार्थ—(अश्विना) उत्तम वैद्य और (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त स्त्री—(धिया) बुद्धि से (नमुचेः) अविनश्वर कारण=प्रकृति से उत्पन्न कार्य से (हविः) ग्रहण करने योग्य (इन्द्रियम्) मन आदि को, (आसुरात्) मेघ से (शुक्रम्) वीर्य, (मघम्) पूज्य (वसु) धन को (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (आ+जभ्रिरे) धारण करें ।। २० । ६७ ।।

भावार्थः — स्त्रीपुरुषैरैश्वर्यसुखप्राप्तय औषधानि संसेव्यानि ।। २० । ६७ ।।

भावार्थ—स्त्री और पुरुष ऐश्वर्य से सुख की प्राप्ति के लिए औषधों का सेवन करें ।।२०।६७।।

भा० पदार्थः—इन्द्राय=ऐश्वर्यसुखप्राप्रये ।।

भाष्यसार—**औषध विषयक उपदेश**—श्रेष्ठ वैद्य लोग और विदुषी स्त्रियाँ बुद्धि के द्वारा अविनाशी कारण=प्रकृति से उत्पन्न कार्य से, ग्रहण करने योग्य मन आदि इन्द्रियों को, मेघस्थ जल से वीर्य और श्रेष्ठ धन को ऐश्वर्य जन्य सुख की प्राप्ति के लिए धारण करें। उक्त सुख की प्राप्ति के लिए स्त्री और पुरुष औषधों का सेवन करें ।। २० । ६७ ।। ●

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकोपदेशकौ, विदुषी, ऐश्वर्यम् ।**

अनुष्टुप् । गान्धारः ।।

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

भैषज्य आदि विषय का फिर उपदेश किया है ।।

यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् । स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ।। ६८ ।।

पदार्थः—(यम्) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**सरस्वती**) विदुषी स्त्री (**हविषा**) सुसंस्कृत-होमसामग्रचा (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यम् (**अवर्द्धयन्**) वर्द्धयन्तु (**सः**) (**बिभेद**) भिन्द्यात् (**बलम्**) (**मघम्**) परम-पूज्यम् (**नमुचौ**) अविनाशिकारणे (**आसुरे**) असुरे=मेघे भवे (**सचा**) संयुक्तौ ।। ६८ ।।

अन्वयः—सचाऽश्विना सरस्वती च नमुचावासुरे हविषा यमिन्द्रमवर्द्धयन् स मघं बलं बिभेद ।। ६८ ।।

सपदार्थान्वयः—सचा संयुक्तौ **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **सरस्वती** विदुषी स्त्री **च नमुचौ** अविनाशिकारणे **आसुरे** असुरे=मेघे भवे **हविषा** सुसंस्कृतहोमसामग्रचा **यमिन्द्रम्** ऐश्वर्यम् **अवर्द्धयन्** वर्धयन्तु, **स मघं** परमपूज्यं **बलं बिभेद** भिन्द्यात् ।। २० । ६८ ।।

भाषार्थ—(सचा) संयुक्त (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा (सरस्वती) विदुषी स्त्री—(नमुचौ) अविनाशी कारण वाले, (आसुरे) मेघ में विद्यमान जल में (हविषा) सुगन्धित होम-सामग्री से (यम्) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को बढ़ावें (सः) वह (मघम्) परम पूज्य (बलम्) बल का (बिभेद) भेदन करे ।। २० । ६८ ।।

भावार्थः—यद्योषधिरसं क्रियागुणैरुत्तमं कुर्युस्तर्हि स रोगहन्ता स्यात् ॥ २० । ६८ ॥

भावार्थ—यदि मनुष्य ओषधियों के रस को यज्ञादि क्रिया के गुणों से उत्तम बनावें तो वह रस रोगनाशक होता है ॥ २० । ६८ ॥

भा० पदार्थः—हविषा=क्रियागुणैः ।

भाष्यसार—औषध विषयक उपदेश—विद्या से संयुक्त अध्यापक और उपदेशक लोग तथा विदुषी स्त्री मेघस्थ जल में यज्ञ के द्वारा सुगन्धित होम-सामग्री का आधान करके ऐश्वर्य को बढ़ावें । वह ऐश्वर्य परम पूज्य बल को विभिन्न प्रकार का बनावे अर्थात् विकसित करे । जो ओषधि-रस यज्ञादि क्रिया के द्वारा गुणों के आधान से उत्तम हो जाता है वह रोगनाशक होता है ॥ २० । ६८ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः=वैद्याध्यापकोपदेशकौ, विदुषी, सोमः ।**
निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

अथ विद्वद्विषयमाह ॥

अब विद्वानों के विषय में उपदेश किया जाता है ॥

तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधानाऽअभ्यनूषत हविषा यज्ञऽइन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

पदार्थः—(**तम्**) (**इन्द्रम्**) बलादिगुणधारकं सोमम् (**पशवः**) गवादयः (**सचा**) विद्यासमवेतौ (**अश्विना**) वैद्यकविद्यानिपुणावध्यापकोपदेशकौ (**उभा**) द्वौ (**सरस्वती**) सत्यविज्ञानयुक्ता (**दधानाः**) धरन्तः (**अभि**) सर्वतः (**अनूषत**) प्रशंसत (**हविषा**) सामग्रचा (**यज्ञे**) (**इन्द्रियैः**) धनैः ॥ ६९ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! सचाश्विनोभा इन्द्रियैर्यमिन्द्रं दध्यातां तं सरस्वती दध्यात् यं च पशवो दध्युस्तं हविषा दधानाः सन्तो यज्ञेऽभ्यनूषत ॥ ६९ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! सचा** विद्यासमवेतौ **अश्विना** वैद्यकविद्यानिपुणावध्यापकोपदेशकौ **उभा** द्वौ **इन्द्रियैः** धनैः **यमिन्द्रं** बलादिगुणधारकं सोमं **दध्यातां तं सरस्वती** सत्यविज्ञानयुक्ता **दध्यात्, यं च पशवः** गवादयः **दध्युस्तं हविषा** सामग्रचा **दधानाः** धरन्तः **सन्तो यज्ञेऽभ्यनूषत** सर्वतः प्रशंसत ॥ २० । ६९ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! तुम (सचा) विद्या से संयुक्त (अश्विना) वैद्यक-विद्या में निपुण अध्यापक और उपदेशक (उभा) दोनों—(इन्द्रियैः) धनों से जिस (इन्द्रम्) बल आदि गुणों को धारण करने वाले सोम को धारण करें, उसे (सरस्वती) सत्य विज्ञान से युक्त विदुषी धारण करे, और जिसे (पशवः) गौ आदि पशु धारण करें, उस सोम को (हविषा) उत्तम सामग्री से (दधानाः) धारण करते हुए (यज्ञे) यज्ञ में (अभ्यनूषत) सब ओर प्रशंसा करो ॥ २० । ६९ ॥

भावार्थः—ये धर्माचरणाद् धनेन धनं वर्द्धयन्ति, ते प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ॥ २० । ६९ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य धर्माचरण पूर्वक धन से धन को बढ़ाते हैं, वे प्रशंसा को प्राप्त करते हैं ॥ २० । ६९ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रियैः=धनेन । इन्द्रम्=धनम् । दध्याताम्=वर्द्धयताम् । अभ्यनूषत=प्रशंसां प्राप्नुत ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—विद्या से युक्त, वैद्यक-विद्या में निपुण अध्यापक और उपदेशक दोनों—धन से सोम को धारण करें, सत्य विज्ञान से युक्त विदुषी भी सोम को धारण करें, गौ आदि पशु भी सोम को धारण करें। सब मनुष्य उत्तम सामग्री से सोम को धारण करते हुए उसकी सर्वत्र प्रशंसा करें। धर्माचरणपूर्वक धन से धन को बढ़ावें जिससे प्रशंसा को प्राप्त हों ॥ २० । ६९ ॥

विदर्भिः । **इन्द्रसवितृवरुणाः**=ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्यमिच्छुकः, श्रेष्ठः (पुरोहितः) । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

य ऽ इन्द्रे ऽ इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७० ॥

पदार्थः—(ये) (इन्द्रे) ऐश्वर्ये (**इन्द्रियम्**) धनम् (**दधुः**) (**सविता**) ऐश्वर्यमिच्छुकः (**वरुणः**) श्रेष्ठः (**भगः**) भजनीयः (**सः**) (**सुत्रामा**) सुष्ठुरक्षकः (**हविष्पतिः**) हविषां पालकः (**यजमानाय**) यज्ञाऽनुष्ठात्रे (**सश्चत**) भजतु । **षच सेवने लोडर्थे लङ् सुगागमोऽडभावश्च छान्दसः ॥ ७० ॥**

प्रमाणार्थ—(**सश्चत**) यहाँ 'षच सेवने' इस धातु से लोट्-अर्थ में लङ् लकार, सुक् का आगम और अट्-आगम का अभाव है ॥

अन्वयः—हे विद्वन् ! य इन्द्र इन्द्रियं दधुस्ते सुखिनः स्युरतो यो भगो वरुणः सविता सुत्रामा हविष्पतिर्जनो यजमानायेन्द्रियं सश्चत सेवते स प्रतिष्ठां प्राप्नुयात् ॥ ७० ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् ! **य इन्द्रे** ऐश्वर्ये **इन्द्रियं** धनं **दधुस्ते सुखिनः स्युः अतो यो भगः** भजनीयः **वरुणः** श्रेष्ठः **सविता** ऐश्वर्यमिच्छुकः **सुत्रामा** सुष्ठुरक्षकः **हविष्पतिः**=हविषां पालकः **जनो यजमानाय** यज्ञाऽनुष्ठात्रे **इन्द्रियं** धनं **सश्चत**=सेवते भजतु, **स प्रतिष्ठां प्राप्नुयात्** ॥ २० । ७० ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (यः) जो (इन्द्रे) ऐश्वर्य होने पर (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करते हैं वे सुखी होते हैं, अतः जो (भगः) सेवा करने योग्य, (वरुणः) श्रेष्ठ, (सविता) ऐश्वर्य का इच्छुक (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला (हविष्पतिः) होम का पालक पुरोहित—(यजमानाय) यजमान के लिए (इन्द्रियम्) धन की (सश्चत) सेवा करता है वह प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥ २० । ७० ॥

भावार्थः—यथा पुरोहितो यजमानस्यैश्वर्यं वर्द्धयति तथा यजमानोऽपि पुरोहितस्य धनं वर्द्धयेत् ॥ २० । ७० ॥

भावार्थ—जैसे पुरोहित यजमान के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे ॥ २० । ७० ॥

भा० पदार्थः—हविष्पतिः=पुरोहितः ।

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—विद्वान् लोग ऐश्वर्य की सिद्धि से धन को धारण करके सुखी रहें।

सेवा करने योग्य, श्रेष्ठ, ऐश्वर्य का इच्छुक अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, होम का पालक पुरोहित—यजमान के लिए धन को बढ़ावे। यजमान भी पुरोहित के धन को बढ़ावे। इस प्रकार पारस्परिक व्यवहार से दोनों प्रतिष्ठा को प्राप्त करें ॥ २० । ७० ॥

विदर्भिः । **इन्द्रसवितृवरुणाः**=ऐश्वर्यम्, **प्रेरकः, उत्तमः (जनः)** ।

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

पदार्थः—(**सविता**) प्रेरकः (**वरुणः**) उत्तमः (**दधत्**) धारणं कुर्वन् (**यजमानाय**) संगच्छमानाय (**दाशुषे**) दात्रे (**आ**) (**अदत्त**) आदद्यात् (**नमुचेः**) धर्ममत्यजतः (**वसु**) द्रव्यम् (**सुत्रामा**) सुष्ठुरक्षकः (**बलम्**) (**इन्द्रियम्**) सुशिक्षितं मनः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—वरुणस्सविता सुत्रामा दाशुषे यजमानाय वसु दधत् सन् नमुचेर्बलमिन्द्रियमादत्त ॥ ७१ ॥

सपदार्थान्वयः—**वरुणः** उत्तमः **सविता** प्रेरकः **सुत्रामा** सुष्ठुरक्षकः **दाशुषे** दात्रे **यजमानाय** सङ्गच्छमानाय **वसु** द्रव्यं **दधत्** धारणं कुर्वन् **सन् नमुचेः** धर्ममत्यजतः **बलमिन्द्रियं** सुशिक्षितं मनः **आ+अदत्त** आदद्यात् ॥ २० । ७१ ॥

भाषार्थ—(वरुणः) उत्तम, (सविता) प्रेरणा करने वाला, (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला पुरुष—(दाशुषे) दाता, (यजमानाय) संग करने वाले पुरुष के लिए (वसु) द्रव्य को (दधत्) धारण करता हुआ (नमुचेः) धर्म को न छोड़ने वाले धार्मिक पुरुष के (बलम्) बल और (इन्द्रियम्) सुशिक्षित मन को (आ+अदत्त) ग्रहण करे ॥७१॥

भावार्थः—दातारं संसेव्य ततः पदार्थान् प्राप्य यः सर्वस्य बलं वर्द्धयति स बलवाञ्जायते ॥

भावार्थ—जो दाता पुरुष की सेवा करने के पश्चात् पदार्थों को प्राप्त करके सबके बल को बढ़ाता है, वह बलवान् हो जाता है ॥ २० । ७१ ॥

भा० पदार्थः—वसु=पदार्थम् । दधत्=प्राप्य ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—उत्तम, शुभ कर्मों में प्रेरणा करने वाला, अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला विद्वान्—दाता, संग करने वाले पुरुष के लिए विद्या आदि द्रव्यों को धारण करे । दाता पुरुष की सेवा करके पदार्थों को प्राप्त करे । धर्म का त्याग न करने वाले धार्मिक पुरुषों के बल को बढ़ावे । जो सबके बल को बढ़ाता है वह बलवान् हो जाता है । धार्मिक जनों के सुशिक्षित मन को ग्रहण करे ॥ २० । ७१ ॥

विदर्भिः । **इन्द्रसवितृवरुणाः**=**ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्योत्पादकः, उत्तमपुरुषः ॥**

अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

पदार्थः—(**वरुणः**) उत्तमपुरुषः (**क्षत्रम्**) राज्यम् (**इन्द्रियम्**) मन-आदिकम् (**भगेन**)

ऐश्वर्येण (**सविता**) ऐश्वर्योत्पादकः (**श्रियम्**) राज्यलक्ष्मीम् (**सुत्रामा**) सुष्ठुत्राता (**यशसा**) कीर्त्या (**बलम्**) (**दधानाः**) (**यज्ञम्**) (**आशत**) व्याप्नुत ॥ ७२ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा वरुणः सविता सुत्रामा सूद्योगी सभेशो भगेन सह वर्त्तमानं क्षत्रमिन्द्रियं श्रियं यज्ञं च प्राप्नोति तथा यशसा बलं दधानाः सन्तो यूयमाशत ॥ ७२ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा वरुणः** उत्तमपुरुषः **सविता** ऐश्वर्योत्पादकः **सुत्रामा**=**सूद्योगी सभेशः** सुष्ठुत्राता, **भगेन** ऐश्वर्येण **सह वर्त्तमानं क्षत्रं** राज्यम् **इन्द्रियं** मन-आदिकं **श्रियं** राज्यलक्ष्मीं **यज्ञं च प्राप्नोति तथा यशसा** कीर्त्या **बलं दधानाः सन्तो यूयमाशत** व्याप्नुत ॥२०।७२॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(वरुणः) उत्तम, (सविता) ऐश्वर्य का उत्पादक, (सुत्रामा) अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला एवं अति पुरुषार्थी सभापति—(भगेन) ऐश्वर्य के साथ वर्तमान (क्षत्रम्) राज्य, (इन्द्रियम्) मन आदि (इन्द्रियों) (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी और (यज्ञम्) यज्ञ को प्राप्त करता है; वैसे (यशसा) कीर्ति से (बलम्) बल को (दधानाः) धारण करते हुए तुम (आशत) राज्य आदि को प्राप्त करो ॥ २० । ७२ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । ऐश्वर्येण विना राज्यं, राज्येन विना श्रीः, श्रिया विनोपभोगाश्च न प्राप्यन्ते, तस्मान्नित्यं पुरुषार्थेन वर्त्तितव्यम् ॥ २० । ७२ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। ऐश्वर्य के विना राज्य, राज्य के विना श्री, श्री के विना उपभोग प्राप्त नहीं होते, अतः प्रतिदिन पुरुषार्थ करें ॥ २० । ७२ ॥

भा० पदार्थः—यज्ञम्=उपभागम् ।

भाष्यसार—१. **विद्वानों के लिए उपदेश**—उत्तम, ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाला, अच्छे प्रकार रक्षा करने वाला, अत्यन्त पुरुषार्थी विद्वान्—ऐश्वर्य से राज्य, मन आदि इन्द्रियों, राज्यलक्ष्मी और यज्ञ को प्राप्त करता है । ऐश्वर्य के विना राज्य, राज्य के विना श्री, श्री के विना उपभोगों को कोई प्राप्त नहीं कर सकता । अतः सदा पुरुषार्थ करें । विद्वान् पुरुष के समान यश से बल को धारण करके सब मनुष्य ऐश्वर्य से राज्य आदि को प्राप्त करें ।

२. **अलङ्कार**—इस मन्त्र में उपमा वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है । उपमा यह है कि विद्वान् पुरुष के समान सब मनुष्य ऐश्वर्य से राज्य आदि को प्राप्त करें ॥ २० । ७२ ॥ ●

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकोपदेशकौ, विदुषी, ऐश्वर्ययुक्तः ।**
निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**गोभिः**) सुशिक्षिताभिर्वाणीभिः पृथिवीधेनुभिर्वा (**इन्द्रियम्**) धनम् (**अश्वेभिः**) सुशिक्षितैस्तुरङ्गादिभिः (**वीर्यम्**) पराक्रमम् (**बलम्**) (**हविषा**) उपादत्तेन

पुरुषार्थेन (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्ययुक्तम् (**सरस्वती**) सुशिक्षिता विदुषी स्त्री (**यजमानम्**) सत्यानुष्ठानस्य **यज्ञस्य** कर्त्तारम् (**अवर्द्धयन्**) ॥ ७३ ॥

अन्वयः—अश्विना सरस्वती च गोभिरश्वेभिर्हविषेन्द्रियं वीर्यं बलमिन्द्रं यजमानमवर्द्धयन् ॥

सपदार्थान्वयः—**अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **सरस्वती** सुशिक्षिता विदुषी स्त्री **च** **गोभिः** सुशिक्षिताभिर्वाणीभिः पृथिवीधेनुभिर्वा **अश्वेभिः** सुशिक्षितैस्तुरङ्गादिभिः **हविषा** उपादत्तेन पुरुषार्थेन **इन्द्रियं** धनं **वीर्यं** पराक्रमं **बलमिन्द्रम्** ऐश्वर्ययुक्तं **यजमानं** सत्यानुष्ठानस्य यज्ञस्य कर्त्तारम् **अवर्द्धयन्** ॥ २० । ७३ ॥

भाषार्थ—(अश्विना) अध्यापक और उपदेशक और (सरस्वती) सुशिक्षित विदुषी स्त्री—(गोभिः) सुशिक्षित वाणी वा पृथिवी और गौओं से, (अश्वेभिः) सुशिक्षित घोड़ों से, (हविषा) स्वीकृत पुरुषार्थ से—(इन्द्रियम्) धन, (वीर्यम्) पराक्रम, (बलम्) बल, (इन्द्रम्) ऐश्वर्य से युक्त (यजमानम्) सत्याचरण रूप यज्ञ के करने वाले पुरुष को (अवर्द्धयन्) बढ़ावें ॥ २० । ७३ ॥

भावार्थः—ये येषां समीपे निवसेयुस्तेषां योग्यताऽस्ति—ते तान् सर्वैः शुभगुणकर्मभिरैश्वर्यादिना च समुन्नयेयुः ॥ २० । ७३ ॥

भावार्थ—जो जिनके समीप रहें उनको योग्य है कि वे उन्हें सब शुभ गुण कर्मों से और ऐश्वर्य आदि से समुन्नत करें ॥ २० । ७३ ॥

भा० पदार्थः—अवर्द्धयन्=समुन्नयेयुः ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—अध्यापक, उपदेशक और विदुषी स्त्री को उचित है कि वे जिनके पास रहें उन्हें सुशिक्षित वाणी वा पृथिवी और गौओं से, सुशिक्षित घोड़ों से, स्वीकार किए हुए पुरुषार्थ से अर्थात् शुभ गुण कर्मों से उन्नत करें। उनके धन, पराक्रम बल और ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥ २० । ७३ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकोपदेशकौ, विदुषी, विद्वान् ।**

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

पदार्थः—(**ता**) तौ (**नासत्या**) असत्याचरणरहितौ (**सुपेशसा**) सुरूपौ (**हिरण्यवर्त्तनी**) यौ हिरण्यं=सुवर्णं वर्तयतस्तौ (**नरा**) सर्वगुणानां नेतारौ (**सरस्वती**) विज्ञानवती (**हविष्मती**) प्रशस्तानि हवींष्यादातुमर्हाणि विद्यन्ते यस्याः सा (**इन्द्र**) ऐश्वर्य्यवन् (**कर्मसु**) (**नः**) अस्मान् (**अवत**) ॥ ७४ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! विद्वांस्ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नराऽध्यापकोपदेशकौ हविष्मती सरस्वती स्त्री त्वं च कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र**=**विद्वन् !** ऐश्वर्यवन् ! तौ **नासत्या** असत्याचरणरहितौ **सुपेशसा** सुरूपौ **हिरण्यवर्त्तनी** यौ हिरण्यं=सुवर्णं वर्तयतस्तौ **नरा**=**अध्यापकोपदेशकौ** सर्वगुणानां

भाषार्थ—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् ! (ता) वे दोनों (नासत्या) असत्य आचरण से रहित, (सुपेशसा) सुन्दर रूप वाले, (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण का वर्त्ताव करने वाले, (नरा) सब

नेतारौ **हविष्मती** प्रशस्तानि हवींष्यादातुमर्हाणि विद्यन्ते यस्याः सा **सरस्वती**=**स्त्री** विज्ञानवती, **त्वं च कर्मसु नः** अस्मान् **अवत** ॥ २० । ७४ ॥

गुणों के नेता अध्यापक और उपदेशक तथा (हविष्मती) ग्रहण करने योग्य प्रशस्त पदार्थों वाली (सरस्वती) विज्ञानवती विदुषी स्त्री और तुम (कर्मसु) शुभ कर्मों में (नः) हमारी (अवत) रक्षा करो ॥ २ । ७४ ॥

भावार्थः—यथा विद्वांसोऽध्यापनोपदेशैः सर्वान् दुष्टकर्मभ्यो निवर्त्य श्रेष्ठेषु कर्मसु प्रवर्त्य रक्षन्ति, तथैवैते सर्वैं रक्षणीयाः ॥ २० । ७४ ॥

भावार्थ—जैसे विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेशों से सब मनुष्यों को दुष्ट कर्मों से हटाकर श्रेष्ठ कर्मों में लगाकर रक्षा करते हैं, वैसे उनकी भी सब रक्षा करें ॥ २० । ७४ ॥

भा० पदार्थः—कर्मसु=श्रेष्ठेषु कर्मसु ॥

भाष्यसार—विद्वानों के लिए उपदेश—असत्य आचरण से रहित, सुन्दर रूप वाले, सुवर्ण का वर्त्ताव करने वाले, सब गुणों के नेता अध्यापक और उपदेशक; विदुषी स्त्री और ऐश्वर्यवान् विद्वान् पुरुष—ये सब मनुष्यों की शुभ कर्मों में रक्षा करें अर्थात् अध्यापन और उपदेशों से सबको दुष्ट कर्मों से हटावें, श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त करें। सब मनुष्य भी उक्त विद्वानों की सदा रक्षा करें ॥२०।७४॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**वैद्यः, विदुषी, ऐश्वर्यम्** । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

पदार्थः—(**ता**) तौ (**भिषजा**) शरीरात्मरोगनिवारकौ (**सुकर्मणा**) सुष्ठुधर्म्यया क्रियया (**सा**) (**सुदुघा**) कामान् या सुष्ठु दोग्धि=प्रपूर्त्ति सा (**सरस्वती**) पूर्णविद्यायुक्ता (**सः**) (**वृत्रहा**) यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्यः (**शतक्रतुः**) अतुलप्रज्ञः (**इन्द्राय**) ऐश्वर्याय (**दधुः**) दध्यासुः (**इन्द्रियम्**) धनम् ॥ ७५ ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती स वृत्रहेव शतक्रतुश्चेन्द्रायेन्द्रियं दधुस्तथा यूयमप्याचरत ॥ ७५ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मनुष्याः ! यथा ता** तौ **भिषजा** शरीरात्मरोगनिवारकौ, **सुकर्मणा** सुष्ठुधर्म्यया क्रियया, **सा सुदुघा** कामान् या सुष्ठु दोग्धि=प्रपूर्त्ति सा **सरस्वती** पूर्णविद्यायुक्ता, **स वृत्रहा** यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्यः **इव शतक्रतुः** अतुलप्रज्ञः **चेन्द्राय** ऐश्वर्याय **इन्द्रियं** धनं **दधुः** दध्यासुः **तथा यूयमप्याचरत** ॥ २० । ७५ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(तौ) वे दोनों (भिषजा) शरीर और आत्मा के रोगों का निवारण करने वाले वैद्य और अध्यापक-उपदेशक लोग (सुकर्मणा) उत्तम धर्मयुक्त आचरण से—(सुदुघा) कामनाओं को अच्छे प्रकार पूरण करने वाली (सरस्वती) पूर्ण विद्या से युक्त विदुषी और (सः) वह (वृत्रहा) मेघ का हनन करने वाले सूर्य के समान (शतक्रतुः) अतुल बुद्धिमान् विद्वान् ये सब—(इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (इन्द्रियम्) धन को (दधुः) धारण करें, वैसे तुम भी करो ॥ २०।७५ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। अस्मिञ्जगति यथा विद्वांसः श्रेष्ठाचारिवत् प्रयत्य विद्याधने समुन्नयन्ति तथा सर्वे मनुष्याः कुर्य्युः ॥ २० । ७५ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है ।। इस जगत् में जैसे विद्वान् पुरुष श्रेष्ठाचारी मनुष्य के समान प्रयत्न करके विद्या और धन को बढ़ाते हैं वैसे सब मनुष्य बढ़ावें ।। २० । ७५ ।।

भाष्यसार—**१. विद्वानों के लिए उपदेश**—शरीर के रोगों का निवारण करने वाले वैद्य और आत्मा के रोगों का निवारण करने वाले अध्यापक और उपदेशक लोग, धर्मयुक्त आचरण से कामनाओं को पूरण करने वाली पूर्ण विद्या से युक्त विदुषी मेघ को हनन करने वाले सूर्य के समान अविद्या, अन्धकार को नष्ट करने वाला अतुल बुद्धिमान् विद्वान् पुरुष, ये सब—विद्या-ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए धन को धारण करें ।

२. अलङ्कार—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है । अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । उपमा यह है कि विद्वानों के समान सब मनुष्य विद्या और धन को बढ़ावें ।। २० । ७५ ।।

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**रक्षकः, प्रजा, परमैश्वर्यम् ।**

विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय में उपदेश किया है ।।

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (**सुरामम्**) सुष्ठु रम्यम् (**अश्विना**) रक्षादिकर्मव्यापिनौ (**नमुचौ**) प्रवाहेण नित्यस्वरूपे (**आसुरे**) असुरो=मेघ एव तस्मिन् (**सचा**) समवेतौ (**विपिपानाः**) विविधरक्षादिकर्त्तारः । अत्र व्यत्ययेन लुग्विषये श्लुरात्मनेपदं च बहुलं छन्दसीतीत्वम् (**सरस्वति**) या प्रशस्तविज्ञानयुक्ता प्रजा तत्सम्बुद्धौ (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यम् (**कर्मसु**) (**आवत**) पालयत ।। ७६ ।।

प्रमाणार्थ—(**विपिपानाः**) यहाँ व्यत्यय से 'लुक्' विषय में 'श्लु' है और आत्मनेपद है, 'बहुलं छन्दसि' से ईत्व है ॥ २० । ७६ ॥

अन्वयः—हे अश्विना ! सचा युवं हे सरस्वति त्वं च यथा नमुचावासुरे कर्मसु सुराममिन्द्रमावत विपिपाना अप्याचरत ।। ७६ ।।

सपदार्थान्वयः—हे **अश्विना** रक्षादिकर्मव्यापिनौ **सचा** ! समवेतौ ! **युवं** युवां, **हे सरस्वति** ! या प्रशस्तविज्ञानयुक्ता प्रजा तत्सम्बुद्धौ ! **त्वं च, यथा नमुचौ** प्रवाहेण नित्यस्वरूपे **आसुरे** असुरो=मेघ एव तस्मिन् **कर्मसु सुरामं** सुष्ठु रम्यम् **इन्द्रं** परमैश्वर्यम् **आवत** पालयत, **तथा विपिपानाः** विविधरक्षादिकर्त्तारः **अप्याचरत** ॥७६॥

भाषार्थ—हे (अश्विना) रक्षा आदि कर्मों में व्यापक, (सचा) रक्षा आदि से संयुक्त सभा और सेना के अध्यक्ष ! (युवम्) तुम दोनों और हे (सरस्वति) प्रशस्त विज्ञान से युक्त प्रजा ! तुम—जैसे (नमुचौ) प्रवाह से नित्य स्वरूप वाले (आसुरे) मेघ में तथा (कर्मसु) कर्मों में विद्यमान—(सुरामम्) अति सुन्दर (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य की (आवत) रक्षा करो; वैसे (विपिपानाः) विविध रक्षा आदि करने वाले अन्य पुरुष भी आचरण करें ॥ २० । ७६ ॥

भावार्थः—ये पुरुषार्थेन महदैश्वर्यं प्राप्य धनं सुरक्ष्याऽऽनन्दं भुञ्जते ते सदैव वर्द्धन्ते ॥ ७६ ॥

भावार्थ—जो मनुष्य पुरुषार्थ से महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करके, धन को सुरक्षित कर आनन्द भोगते हैं वे सदा बढ़ते हैं ॥ २० । ७६ ॥

भा० पदार्थः—इन्द्रम्=महदैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—रक्षा आदि कर्मों में व्यापक, रक्षादि से संयुक्त विद्वान् सभापति और सेनाध्यक्ष तथा प्रशस्त विज्ञान से युक्त विदुषी प्रजा को उचित है कि वह प्रवाह से नित्य मेघ में तथा कर्मों में विद्यमान अति रमणीय परम ऐश्वर्य की यज्ञादि के अनुष्ठान से रक्षा करें। विविध रक्षा आदि करने वाले अन्य राजपुरुष भी इनका अनुकरण करें, क्योंकि जो मनुष्य पुरुषार्थ से महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करके धन को सुरक्षित रखकर आनन्द भोगते हैं वे सदा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ २० । ७६ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकोपदेशकौ, विदुषी, ऐश्वर्यम् ।**

विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनः प्रकारान्तरेण विद्वद्विषयमाह ॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय में उपदेश किया है ॥

पु॒त्रमि॑व पि॒तरा॑व॒श्विनो॒भेन्द्रा॒वथुः॒ काव्यै॑र्दं॒सना॑भिः ।
यत्सु॒रामं॒ व्यपि॑बः॒ शची॑भिः॒ सर॑स्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ७७ ॥

पदार्थः—(**पुत्रमिव**) (**पितरौ**) (**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**उभा**) (**इन्द्र**) विद्यैश्वर्ययुक्त विद्वन् (**आवथुः**) रक्षताम् । **पुरुषव्यत्ययः** (**काव्यैः**) कविभिर्निर्मितैः (**दंसनाभिः**) कर्मभिः (**यत्**) (**सुरामम्**) सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तत् (**वि**) (**अपिबः**) पिबेः (**शचीभिः**) प्रज्ञाभिः (**सरस्वती**) सुशिक्षिता स्त्री (**त्वा**) त्वाम् (**मघवन्**) पूजितधनयुक्त (**अभिष्णक्**) उपसेवेत । **अत्र भिष्णज् उपसेवायामित्यस्य कण्ड्वादेर्लङि यको व्यत्ययेन लुक् ॥ ७७ ॥**

प्रमाणार्थ—(**आवथुः**) रक्षताम् । यहाँ पुरुषव्यत्यय है। (**अभिष्णक्**) उपसेवेत । यहाँ 'भिष्णज् उपसेवायाम्' इस कण्ड्वादि धातु से लङ् लकार में व्यत्यय से 'यक्' का लुक् है ॥

अन्वयः—हे मघवन्निन्द्र ! त्वं शचीभिर्यत् सुरामं व्यपिबस्तत् सरस्वती त्वाभिष्णगुभाश्विना काव्यैर्दंसनाभिः पितरौ पुत्रमिव त्वामाऽवथुः ॥ ७७ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे मघवन्** पूजित-धनयुक्त ! **इन्द्र** विद्यैश्वर्ययुक्त विद्वन् ! **त्वं शचीभिः** प्रज्ञाभिः **यत् सुरामं** सुष्ठु रमन्ते यस्मिन् तद् **व्यपिबः** पिबेः **तत् सरस्वती** सुशिक्षिता स्त्री **त्वा** त्वाम् **अभिष्णग्** उपसेवेत ।

उभाश्विना अध्यापकोपदेशकौ **काव्यैः** कविभि-र्निर्मितैः **दंसनाभिः** कर्मभिः **पितरौ पुत्रमिव त्वामा-वथुः** रक्षताम् ॥ २० । ७७ ॥

भाषार्थ—हे (मघवन्) पूजित धन से युक्त, (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् ! तू—(शचीभिः) प्रज्ञा=बुद्धि से (यत्) जिस (सुरामम्) अति रमणीय ओषधि-रस को (व्यपिबः) पीता है सो (सरस्वती) सुशिक्षित विदुषी स्त्री (त्वा) तेरी (अभिष्णक्) सेवा करे।

(उभा) दोनों (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक—(काव्यैः) कवियों से किए हुए (दंसनाभिः) कर्मों से—(पितरौ) माता-पिता

(पुत्रमिव) जैसे पुत्र की रक्षा करते हैं वैसे तेरी (आवथुः) रक्षा करें ॥ २० । ७७ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । यथा माता-पितरौ स्वसन्तानान् रक्षित्वा नित्यमुन्नयेतां, तथा—

अध्यापकोपदेशकाः शिष्यान् सुरक्ष्य विद्यया वर्द्धयेयुः ॥ २० । ७७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलंकार है ॥ जैसे माता-पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके उन्हें नित्य उन्नत करते हैं वैसे—

अध्यापक और उपदेशक लोग शिष्यों की सुरक्षा करके उन्हें विद्या से बढ़ावें ॥ २० । ७७ ॥

भा० पदार्थः—पितरौ=मातापितरौ । पुत्रम्=स्वसन्तानम् ।

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—पूजित धन तथा विद्या रूप ऐश्वर्य से युक्त विद्वान् को उचित है कि वह प्रज्ञा=बुद्धि से अति रमणीय ओषधि-रस का पान करे । सुशिक्षित विदुषी स्त्री उक्त विद्वान् की उपसेवा करे । जैसे माता-पिता अपने सन्तानों की रक्षा करके उन्हें नित्य उन्नत करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक लोग अपने शिष्यों की सुरक्षा करके कविकृत कर्मों से अर्थात् विद्या से उन्हें बढ़ावें, उन्नत करें ॥ २० । ७७ ॥

विदर्भिः । **अग्निः=विद्वान्** । जगती । निषादः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

यस्मि॒न्नश्वा॑स ऽ ऋष॒भास॑ ऽ उ॒क्षणो॑ व॒शा मे॒षा ऽ अ॑वसृ॒ष्टास॒ ऽ आहु॑ताः ।
की॒ला॒ल॒पे सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ हृ॒दा म॒तिं ज॑नय॒ चारु॑म॒ग्नये॑ ॥ ७८ ॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) व्यवहारे (**अश्वासः**) वाजिनः (**ऋषभासः**) वृषभाः (**उक्षणः**) सेक्तारः (**वशाः**) बन्ध्या गावः (**मेषाः**) अवयः (**अवसृष्टासः**) सुशिक्षिताः (**आहुताः**) समन्ताद्गृहीताः (**कीलालपे**) यः कीलालमन्नरसं पिबति तस्मै (**सोमपृष्ठाय**) सोमः पृष्ठो येन तस्मै (**वेधसे**) मेधाविने (**हृदा**) अन्तःकरणेन (**मतिम्**) बुद्धिम् (**जनय**) (**चारुम्**) श्रेष्ठाम् (**अग्नये**) अग्निवत्प्रकाशमानाय जनाय ॥ ७८ ॥

अन्वयः—हे विद्वन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुतास्सन्तो यस्मिन् कार्यकराः स्युस्तस्मिँस्त्वं हृदा सोमपृष्ठाय कीलालपे वेधसेऽग्नये चारु मतिं जनय ॥ ७८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे विद्वन् **अश्वासः** वाजिनः **ऋषभासः** वृषभाः **उक्षणः** सेक्तारः **वशाः** बन्ध्या गावः **मेषाः** अवयः **अवसृष्टासः** सुशिक्षिताः **आहुताः** समन्ताद्गृहीताः **सन्तो यस्मिन्** व्यवहारे **कार्यकराः स्युस्तस्मिँस्त्वं हृदा** अन्तःकरणेन **सोमपृष्ठाय** सोमः पृष्ठो येन तस्मै **कीलालपे** यः कीलालमन्नरसं पिबति तस्मै **वेधसे** मेधाविने **अग्नये** अग्निवत्प्रकाशमानाय जनाय **चारु** श्रेष्ठां **मतिं** बुद्धिं **जनय** ॥ २० । ७८ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् ! (अश्वासः) घोड़े, (ऋषभासः) बैल, (उक्षणः) वीर्य-सेचन करने वाले साँड, (वशाः) बन्ध्या गौवें, (मेषाः) भेड़ें, ये (अवसृष्टासः) सुशिक्षित एवं (आहुताः) सब ओर से गृहीत होकर (यस्मिन्) जिस व्यवहार में कार्य-साधक हों उस में तू—(हृदाः) अन्तःकरण से (सोम-पृष्ठाय) सोम को पूछने वाले, (कीलालपे) कीलाल=अन्नरस का पान करने वाले (वेधसे) मेधावी (अग्नये) अग्नि के समान विद्या से प्रकाश-मान पुरुष के लिए (चारुम्) श्रेष्ठ (मतिम्) बुद्धि को (जनय) उत्पन्न कर ॥ २० । ७८ ॥

भावार्थः—पशवोऽपि सुशिक्षितास्सन्त उत्तमानि कार्याणि कुर्वन्ति, किं पुनर्विद्याशिक्षायुक्ता जनाः सर्वाण्युत्तमानि कार्याणि साद्धं न शक्नुवन्ति ?॥ २० । ७८ ॥

भावार्थ—पशु भी सुशिक्षित होकर उत्तम कार्य करते हैं, फिर क्या विद्या और शिक्षा से युक्त मनुष्य उत्तम कार्यों को सिद्ध नहीं कर सकते ? ॥ २० । ७८ ॥

भा० पदार्थः—अग्नये=विद्याशिक्षायुक्ताय जनाय।

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**—विद्वानों को चाहिए कि वे घोड़े, बैल, सांड, बन्ध्या गाय और भेड़ आदि पशुओं को सुशिक्षित करके व्यवहार में उन्हें कार्यसाधक बनावें, और अन्तःकरण से—सोम के जिज्ञासु, अन्न-रस का पान करने वाले, मेधावी, अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान पुरुष के लिए श्रेष्ठ बुद्धि को उत्पन्न करें। जब सुशिक्षित पशु भी उत्तम कार्य करते हैं तो क्या विद्या और सुशिक्षा से युक्त पुरुष सब उत्तम कार्यों को सिद्ध नहीं कर सकते अर्थात् अवश्य कर सकते हैं ॥ २० । ७८ ॥

विदर्भिः । **अग्निः**=विद्वान् । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

अहा॑व्यग्ने ह॒विरा॒स्ये॑ ते स्रु॒चीव घृ॒तं च॒म्वी॒व सोम॑: ।

वा॒ज॒सनि॑ꣳ र॒यिम॒स्मे सु॒वीरं॑ प्रश॒स्तं धे॑हि य॒शसं॑ बृ॒हन्त॑म् ॥ ७९ ॥

पदार्थः—(**अहावि**) हूयते (**अग्ने**) विद्वन् (**हविः**) होतुमर्हम् (**आस्ये**) मुखे (**ते**) तव (**स्रुचीव**) यथा स्रुङ्मुखे (**घृतम्**) आज्यम् (**चम्वीव**) यथा चम्वौ=यज्ञपात्रे (**सोमः**) ऐश्वर्यसम्पन्नः (**वाजसनिम्**) वाजस्य सनिर्विभागो यस्य तस्मिन् (**रयिम्**) राज्यश्रियम् (**अस्मे**) अस्मासु (**सुवीरम्**) शोभना वीरा यस्मात्तम् (**प्रशस्तम्**) उत्कृष्टम् (**धेहि**) (**यशसम्**) कीर्तिकरम् (**बृहन्तम्**) महान्तम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—हे अग्ने विद्वन् ! येन त्वया सोमो हविस्त आस्ये घृतं स्रुचीव चम्वीव हविरहावि स त्वमस्मे प्रशस्तं सुवीरं वाजसनिं यशसं बृहन्तं रयिं धेहि ॥ ७९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **अग्ने**=विद्वन् ! **येन त्वया सोमः** ऐश्वर्यसम्पन्नः **हविः** होतुमर्हं **ते** तव **आस्ये** मुखे **घृतम्** आज्यं **स्रुचीव** यथा स्रुङ्मुखे **चम्वीव** यथा चम्वौ=यज्ञपात्रे **हविः** होतुमर्हम् **अहावि** हूयते, **स त्वमस्मे** अस्मासु **प्रशस्तम्** उत्कृष्टं **सुवीरं** शोभना वीरा यस्मात्तं **वाजसनिं** वाजस्य सनिर्विभागो यस्य तस्मिन् **यशसं** कीर्तिकरं **बृहन्तं** महान्तं **रयिं** राज्यश्रियं **धेहि** ॥ २० । ७९ ॥

भाषार्थ—हे (अग्ने) विद्वान् ! जो तू—(सोमः) ऐश्वर्य से सम्पन्न सोम तथा (हविः) भक्ष्य पदार्थ को (ते) अपने (आस्ये) मुख में—(घृतम्, स्रुचीव) जैसे घृत स्रुवा के मुख में और (चम्वीव) यज्ञपात्र में (हविः) होम के योग्य पदार्थ के समान (अहावि) ग्रहण करता है, सो तू—(अस्मे) हम में (प्रशस्तम्) उत्कृष्ट, (सुवीरम्) श्रेष्ठ वीरों की हेतु, (वाजसनिम्) अन्न आदि की विभाजक, (यशसम्) कीर्ति करने वाली (बृहन्तम्) महान् (रयिम्) राज्य लक्ष्मी को (धेहि) स्थापित कर ॥ २० । ७९ ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । गृहस्थैस्तेषामेव भोजनादिना सत्कारः कर्त्तव्यो ये—

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा अलङ्कार है ॥ गृहस्थ लोग उनका ही भोजन आदि से सत्कार करें जो—

अध्यापनोपदेशसुकर्मानुष्ठानैर्जगति बलवीर्यकीर्त्ति-धनविज्ञानानि वर्द्धयेयुः ॥ २० । ७९ ॥

अध्यापन, उपदेश और उत्तम कर्मों के अनुष्ठान से जगत् में बल, वीर्य, कीर्ति, धन और विज्ञान को बढ़ावें ॥ २० । ७९ ॥

भा० पदार्थः—सुवीरम्=बलवीर्यम् । यशसम्=कीर्तिम् । रयिम्=धनम् ॥

भाष्यसार—१. **विद्वान् के लिए उपदेश**—जैसे स्रुवा के मुख में घृत डाला जाता है, अथवा यज्ञपात्र में होम के योग्य पदार्थ रखा जाता है, वैसे विद्वान् के मुख में ऐश्वर्य से सम्पन्न हवि= भोज्य पदार्थ डालें अर्थात् गृहस्थ लोग विद्वान् का भोजन आदि से सत्कार करें। विद्वान् पुरुष को उचित है कि वह उत्कृष्ट, श्रेष्ठ वीरों की हेतु, अन्न आदि की विभाजक (वितरक) कीर्ति को बढ़ाने वाली, महान् राज्यलक्ष्मी को प्रजा में स्थापित करें। गृहस्थ लोग उन्हीं विद्वानों का सत्कार करें जो जगत् में अध्यापन (पढ़ाना), उपदेश और श्रेष्ठ कर्मों के आचरण से बल, वीर्य, कीर्ति, धन और विज्ञान को बढ़ावें ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में 'इव' पद उपमावाचक है अतः उपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि स्रुवा-के मुख में घृत के समान अथवा यज्ञपात्र में होमद्रव्य के समान विद्वान् के मुख में हवि=उत्तम भोज्य पदार्थ को प्रदान करें ॥ २० । ७९ ॥

विदर्भिः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=**अध्यापकौपदेशकौ, विदुषी, सभेशः ।**

विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**तेजसा**) प्रकाशेन (**चक्षुः**) प्रत्यक्षं चक्षुः (**प्राणेन**) जीवनेन (**सरस्वती**) विद्यावती (**वीर्यम्**) पराक्रमम् (**वाचा**) वाण्या (**इन्द्रः**) सभेशः (**बलेन**) (**इन्द्राय**) जीवाय (**दधुः**) धरेयुः (**इन्द्रियम्**) इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गम् ॥ ८० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सरस्वत्यश्विनेन्द्रश्चेन्द्राय प्राणेन वीर्यं तेजसा चक्षुर्वाचा बलेनेन्द्रियं दधुस्तथा धरन्तु ॥ ८० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः ! यथा सरस्वती** विद्यावती **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **इन्द्रः** सभेशः **च इन्द्राय** जीवाय **प्राणेन** जीवनेन **वीर्यं** पराक्रमं, **तेजसा** प्रकाशेन **चक्षुः** प्रत्यक्षं चक्षुः, **वाचा** वाण्या **बलेनेन्द्रियं** इन्द्रस्य=जीवस्य लिङ्गं **दधुः** धरेयुः **तथा धरन्तु** ॥ २० । ८० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(सरस्वती) विद्यावती स्त्री, (अश्विना) अध्यापक, उपदेशक और (इन्द्रः) सभापति ये सब—(इन्द्राय) जीव के लिए (प्राणेन) प्राण से (वीर्यम्) पराक्रम को, (तेजसा) प्रकाश से (चक्षुः) चक्षु=नेत्र को, (वाचा) वाणी से एवं (बलेन) बल से (इन्द्रियम्) इन्द्रियों को (दधुः) धारण करते हैं, वैसे आप धारण करें ॥ २० । ८० ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्या यथा यथा विद्वत्संगेन विद्यां वर्द्धयेयुस्तथा तथा विज्ञानरुचयः स्युः ॥ २० । ८० ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। मनुष्य जैसे-जैसे विद्वानों के संग से विद्या को बढ़ाते हैं वैसे-वैसे विज्ञान में रुचि रखने वाले बनते हैं ॥ २० । ८० ॥

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**—विद्यावती विदुषी स्त्री, अध्यापक-उपदेशक और सभापति विद्वान् को उचित है कि वह जीव के लिए प्राण से वीर्य को धारण करे, प्रकाश से चक्षु को धारण करे, वाणी और बल से इन्द्रियों को धारण करे। अन्य मनुष्य भी इन विद्वानों के समान वीर्य आदि को धारण करें। मनुष्य जैसे-जैसे इन विद्वानों के संग से विद्या को बढ़ाते हैं वैसे-वैसे विज्ञान में उनकी अधिक रुचि उत्पन्न होती है॥ २०। ८०॥

गृत्समदः। **अश्विनौ**=**विद्यावृद्धौ विद्वांसौ**। विराड् गायत्री। षड्जः॥

अथ विद्वद्विषये पश्वादिभिः पालनाविषयमाह॥

अब विद्वानों के विषय में पशु आदिकों से पालना विषय का उपदेश किया जाता है॥

गोम॑दू षु णा॑स॒त्याऽश्वा॑वद्यातमश्विना। व॒र्त्ती रु॑द्रा नृ॒पाय्य॑म्॥ ८१॥

पदार्थः—(**गोमत्**) गावो विद्यन्ते यस्मिंस्तत् (**उ**) वितर्के (**सु**) (**नासत्या**) सत्यव्यवहार-युक्तौ (**अश्वावत्**) प्रशस्ततुरङ्गयुक्तम्। **अत्र सोमाश्वेन्द्रिय०। इति दीर्घः** (**यातम्**) प्राप्नुतम् (**अश्विना**) विद्यावृद्धौ (**वर्त्तिः**) वर्त्तमानं मार्गम् (**रुद्रा**) दुष्टानां रोदयितारौ (**नृपाय्यम्**) नृणां पाय्यं=मानम्॥ ८१॥

प्रमाणार्थ—(**अश्वावत्**) यहाँ 'सोमाश्वेन्द्रिय०' इससे दीर्घ है॥

अन्वयः—हे नासत्या रुद्राश्विना यथा युवां गोमद्वर्त्तिरुद्रा अश्वावन्नृपाय्यं सुयातं तथा वयमपि प्राप्नुयाम॥ ८१॥

सपदार्थान्वयः—हे **नासत्या** सत्य-व्यवहारयुक्तौ **रुद्रा** दुष्टानां रोदयितारौ **अश्विना** विद्यावृद्धौ! **यथा युवां गोमद्** गावो विद्यन्ते यस्मिंस्तत् **वर्तिः** वर्त्तमानं मार्गम् **उ** सवितर्के **अश्वावत्** प्रशस्ततुरङ्गयुक्तं **नृपाय्यं** नृणां पाय्यं=मानं **सुयातं** प्राप्नुतं, **तथा वयमपि प्राप्नुयाम**॥८१॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। गोऽश्वहस्तिप्रभृतिभिः पालितैः पशुभिः स्वकीय-मन्यदीयं च पालनं मनुष्यैः कार्यम्॥ २०। ८१॥

भाषार्थ—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले (अश्विना) विद्या वृद्ध अध्यापक और उपदेशक लोगो! जैसे तुम दोनों—(गोमत्) गौओं के (वर्तिः) मार्ग (उ) और (अश्वावत्) प्रशस्त घोड़ों के (नृपाय्यम्) नर-परिमाण को (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हो, वैसे हम भी प्राप्त करें॥ २०। ८१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है॥ गौ, घोड़े और हाथी आदि पाले हुए पशुओं से मनुष्य अपना और दूसरों का पालन करें॥ २०। ८१॥

भाष्यसार—**१. विद्वान् पशु आदि से पालन करें**—सत्य व्यवहार से युक्त, दुष्टों को रुलाने वाले, विद्या-वृद्ध अध्यापक और उपदेशक विद्वान् लोग—गौओं के मार्ग को प्राप्त करें अर्थात् गौओं का पालन करें, प्रशस्त घोड़ों की शक्ति के आधार पर नरों के परिमाणों का निर्धारण करें। तात्पर्य यह है कि गौ, घोड़े और हाथी आदि पशुओं के पालन से अपना तथा दूसरों का भी पालन करें।

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि विद्वानों के समान अन्य मनुष्य भी गौ आदि पशुओं का पालन करें॥ २०। ८१॥

गृत्समदः । **अश्विनौ**=सभासेनेशौ । विराड्गायत्री । षड्जः ॥

अथ राजधर्मविषयमाह ॥

अब राजधर्म विषय का उपदेश किया है ॥

न यत्परो नान्तरऽ आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥

पदार्थः—(न) (यत्) यस्मात् (परः) (न) (अन्तरः) मध्यस्थः (आदधर्षत्) आदधर्षीत् समन्ताद् धृष्णुयात् (वृषण्वसू) यौ वृष्णौ वासयतस्तौ (दुःशंसः) दुःखेन शासितुं योग्यः (मर्त्यः) मनुष्यः (रिपुः) शत्रुः ॥ ८२ ॥

अन्वयः—हे वृषण्वसू सभासेनेशौ युवां यत् यस्माद्दुःशंसः परो मर्त्यो रिपुर्न स्यात् नान्तरश्च योऽस्मानादधर्षत् तं प्रयत्नतो वशं नयतम् ॥ ८२ ॥

सपदार्थान्वयः—हे वृषण्वसू सभासेनेशौ यौ वृष्णौ वासयतस्तौ ! **युवां यत्**=**यस्माद्दुःशंसः** दुःखेन शासितुं योग्यः **परो मर्त्यः** मनुष्यः **रिपुः** शत्रुः **न स्यात्, नान्तरः** मध्यस्थः **च योऽस्मानादधर्षत्** आदधर्षीत्समन्ताद् धृष्णुयात्, **तं प्रयत्नतो वशं नयतम्** ॥ २० । ८२ ॥

भाषार्थ—हे (वृषण्वसू) बलवानों के वास हेतु सभापति और सेनापति ! तुम दोनों—(यत्) जिससे (दुःशंसः) दुःख से शासन योग्य (परः) प्रबल (मर्त्यः) मनुष्य (रिपुः) शत्रु (न) न हो, और (न) न (अन्तरः) मध्यस्थ हो, जो हमें (आदधर्षत्) सब ओर से धर्षित करे उसे प्रयत्न से वश में लाओ ॥ २० । ८२ ॥

भावार्थः—राजपुरुषैर्यः प्रबलो दुष्टतमः शत्रुर्भवेत् स प्रयत्नेन विजेतव्यः ॥ २० । ८२ ॥

भावार्थ—राजपुरुष—जो प्रबल, और अत्यन्त दुष्ट शत्रु हो उसे प्रयत्न से जीतें, अपने वश में करें ॥ २० । ८२ ॥

भा० पदार्थः—दुःशंसः=दुष्टतमः ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—बलवान् पुरुषों को बसाने वाले सभापति और सेनापति राजपुरुष ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे कोई मनुष्य दुःख से शासन करने योग्य, प्रबल शत्रु न हो, और न वह मध्यस्थ बने जो श्रेष्ठ पुरुषों का घर्षण करें, धमकावें । राजपुरुष ऐसे प्रबल, दुष्टतम शत्रु को प्रयत्न से जीतें ॥ २० । ८२ ॥

गृत्समदः । **अश्विनौ**=सभासेनेशौ । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

राजधर्म विषय का फिर उपदेश किया है ॥

ता नऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥

पदार्थः—(ता) तौ (नः) अस्मान् (आ) (वोढम्) वहतम् (अश्विना) सभासेनेशौ (रयिम्) धनम् (पिशङ्गसंदृशम्) यः पिशङ्गवत्सुवर्णवत्सम्यग् दृश्यते सः धिष्ण्या=धिषणया धिया (वरिवोविदम्) येन वरिवः=परिचरणं विन्दन्ति तम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—हेऽश्विना धिष्ण्या ता युवां नो वरिवोविदं पिशङ्गसंदृशं रयिमावोढम् ॥ ८३ ॥

सपदार्थान्वयः—हेऽश्विना सभा-सेनेशौ ! **धिष्ण्या** धिषणया=धिया **ता** तौ **युवां नः** अस्मान् **वरिवोविदं** येन वरिवः=परिचरणं विन्दन्ति तं **पिशङ्गसंदृशं** यः पिशङ्गवत्सुवर्णवत् सम्यग् दृश्यते सः **रयिं** धनम् **आवोढं** वहतम् ॥८३॥

भाषार्थ—हे (अश्विना) सभापति और सेनापति ! (धिष्ण्या) बुद्धि से (तौ) वे तुम दोनों—(नः) हमें (वरिवोविदम्) सेवा-प्राप्ति के हेतु (पिशङ्गसंदृशम्) पिशङ्ग=सुवर्ण के सदृश (रयिम्) धन को (अवोढम्) प्राप्त कराओ ॥८३॥

भावार्थः—सभासेनेशौ राज्यसुखाय सर्वमैश्वर्यं सम्पादनीयं, येन सत्यधर्माचरणं वर्द्धेत ॥ २० । ८३ ॥

भावार्थ—सभापति और सेनापति राज्य-सुख के लिए सब ऐश्वर्य को सिद्ध करें जिससे सत्य धर्माचरण बढ़े ॥ २० । ८३ ॥

भा० पदार्थः—रयिम्=सर्वमैश्वर्यम् ॥

भाष्यसार—**राजधर्म**—सभापति और सेनापति राजपुरुष प्रजा को सेवा-प्राप्ति के हेतु, सुवर्ण के सदृश धन को प्राप्त करावें । राज्य-सुख के लिए सब ऐश्वर्य को सिद्ध करें जिससे प्रजा में सत्य धर्माचरण की वृद्धि हो ॥ २० । ८३ ॥

मधुच्छन्दाः । **सरस्वती**=**सुसंस्कृता वाक्** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनरध्यापकोपदेशकविषयमाह ॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय का उपदेश किया है ॥

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥

पदार्थः—(**पावका**) पवित्रकारिका (**नः**) अस्माकम् (**सरस्वती**) सुसंस्कृता वाक् (**वाजेभिः**) विज्ञानादिभिर्गुणैः (**वाजिनीवती**) प्रशस्तविद्यायुक्ता (**यज्ञम्**) (**वष्टु**) (**धियावसुः**) धिया वसुर्धनं यस्याः । **तृतीयाया अलुक्** ॥ ८४ ॥

प्रमाणार्थ—यहाँ पर तृतीया विभक्ति का अलुक् (श्रवण) है ।

अन्वयः—हे अध्यापकोपदेशकौ ! यथा वाजेभिर्वाजिनीवती पावका धियावसुः सरस्वती नो यज्ञं वष्टु तथा युवामस्मान् शिक्षेताम् ॥ ८४ ॥

सपदार्थान्वयः—**हे अध्यापकोपदेशकौ ! यथा वाजेभिः** विज्ञानादिभिर्गुणैः **वाजिनीवती** प्रशस्तविद्यायुक्ता **पावका** पवित्रकारिका **धियावसुः** धिया वसुर्धनं यस्याः **सरस्वती** सुसंस्कृता वाक् **नः** अस्माकं **यज्ञं वष्टु तथा युवामस्मान् शिक्षेताम्** ॥ २० । ८४ ॥

भाषार्थ—हे अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जैसे—(वाजेभिः) विज्ञान आदि गुणों से (वाजिनीवती) प्रशस्त विद्या से युक्त, (पावका) पवित्र करने वाली (धियावसुः) बुद्धिपूर्वक प्रयोग से धन की हेतु (सरस्वती) अति शुद्ध वाणी (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (वष्टु) सुशोभित करती है, वैसे तुम दोनों हमें शिक्षा करो ॥ २० । ८४ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः । मनुष्यैर्धार्मिकाणामध्यापकोपदेशकानां सकाशात् विद्या सुशिक्षे संगृह्य विज्ञानवृद्धिर्नित्यं कार्या ॥ २० । ८४ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है । मनुष्य—धार्मिक अध्यापक और उपदेशकों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके नित्य विज्ञान की वृद्धि करें ॥ २० । ८४ ॥

भाष्यसार—१. **अध्यापक और उपदेशक**—जैसे विज्ञान आदि गुणों के कारण प्रशस्त विद्या से युक्त, पवित्र करने वाली, बुद्धिपूर्वक प्रयोग में लाने से धन की हेतु अति शुद्ध वाणी विद्वानों के यज्ञ को सुशोभित करती है, वैसे अध्यापक और उपदेशक लोग अपने शिष्यों को विद्या और शिक्षा प्रदान करके उन्हें सुशोभित करें। शिष्य लोग भी धार्मिक अध्यापक और उपदेशक लोगों से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके नित्य विज्ञान की वृद्धि करें ॥

२. **अलंकार**—इस मन्त्र में उपमावाचक 'इव' आदि पद लुप्त है अतः वाचकलुप्तोपमा अलङ्कार है। उपमा यह है कि विज्ञान आदि गुणों से सुशोभित वाणी के समान, अध्यापक और उपदेशक लोग मनुष्यों को शिक्षा देकर सुशोभित करें ॥ २० । ८४ ॥

मधुच्छन्दाः । **सरस्वती**=विदुषी । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

अथ स्त्रीशिक्षाविषयमाह ॥

अब स्त्रियों की शिक्षा विषय का उपदेश किया जाता है ॥

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥

पदार्थः—(**चोदयित्री**) प्रेरयित्री (**सूनृतानाम्**) सुशिक्षितानां वाणीनाम् (**चेतन्ती**) संज्ञापयन्ती (**सुमतीनाम्**) शोभनानां बुद्धीनाम् (**यज्ञम्**) (**दधे**) धरामि (**सरस्वती**) प्रशस्तविज्ञानयुक्ता ॥ ८५ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियो यथा सूनृतानां चोदयित्री सुमतीनां चेतन्ती सरस्वती सत्यहं यज्ञं दधे तथायं युष्माभिरप्यनुष्ठेयः ॥ ८५ ॥

सपदार्थान्वयः—हे स्त्रियः ! यथा **सूनृतानां** सुशिक्षितानां वाणीनां **चोदयित्री** प्रेरयित्री **सुमतीनां** शोभनानां बुद्धीनां **चेतन्ती** संज्ञापयन्ती **सरस्वती** प्रशस्तविज्ञानयुक्ता **सत्यहं यज्ञं दधे** धरामि, **तथायं युष्माभिरप्यनुष्ठेयः** ॥ २० । ८५ ॥

भावार्थः—या स्त्रीणां मध्ये विदुषी स्त्री स्यात् सा सर्वाः स्त्रियः सदा सुशिक्षेत, यतः स्त्रीणां मध्ये विद्यावृद्धिस्स्यात् ॥ २० । ८५ ॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे—(सूनृतानाम्) सुशिक्षित वाणियों का (चोदयित्री) उपदेश करने वाली, (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों को (चेतन्ती) बतलाने वाली (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान से युक्त मैं विदुषी—(यज्ञम्) यज्ञ को (दधे) धारण करती हूँ, वैसे इसका तुम भी अनुष्ठान करो ॥ २० । ८५ ॥

भावार्थ—जो स्त्रियों के मध्य में विदुषी स्त्री हो वह सब स्त्रियों को सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो ॥ २० । ८५ ॥

भा० पदार्थः—सरस्वती=स्त्रीणां मध्ये विदुषी स्त्री ॥

भाष्यसार—**स्त्री-शिक्षा**—सरस्वती अर्थात् प्रशस्त विज्ञान से युक्त विदुषी स्त्री स्त्रियों के मध्य में बैठकर सब स्त्रियों को उत्तम शिक्षा करे, उनकी वाणियों को सुशिक्षित करे, उनकी बुद्धियों को उत्तम बनावे, जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो। विदुषी स्त्री यज्ञ करे। अन्य स्त्रियाँ भी उसका अनुकरण करें ॥ २० । ८५ ॥

मधुच्छन्दाः । **सरस्वती**=**वाणी** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

स्त्री शिक्षा विषय का फिर उपदेश किया है ॥

म॒हो ऽ अर्णः॒ सर॑स्वती॒ प्र चे॑तयति के॒तुना॑। धियो॒ विश्वा॒ वि रा॑जति ॥ ८६ ॥

पदार्थः—(**महः**) महत् (**अर्णः**) अन्तरिक्षस्थं शब्दसमुद्रम् (**सरस्वती**) वाणी (**प्र, चेतयति**) प्रज्ञापयति (**केतुना**) प्रज्ञानेन (**धियः**) बुद्धयः (**विश्वाः**) सर्वाः (**वि**) (**राजति**) प्रकाशयति ॥ ८६ ॥

अन्वयः—हे स्त्रियो यथा सरस्वती केतुना महो अर्णः प्रचेतयति विश्वा धियो विराजति तथा विद्यासु यूयं प्रवृत्ता भवत ॥ ८६ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **स्त्रिय ! यथा सरस्वती** वाणी **केतुना** प्रज्ञानेन **महः** महत् **अर्णः** अन्तरिक्षस्थं शब्दसमुद्रं **प्रचेतयति** प्रज्ञापयति, **विश्वाः** सर्वाः **धियः** बुद्धयः **विराजति** प्रकाशयति, **तथा विद्यासु यूयं प्रवृत्ता भवत** ॥ २० । ८६ ॥

भाषार्थ—हे स्त्रियो ! जैसे—(सरस्वती) वाणी (केतुना) प्रकृष्ट ज्ञान से (महः) महान् (अर्णः) अन्तरिक्ष में स्थित शब्द-समुद्र को (प्रचेतयति) प्रकट करती है, (विश्वाः) सब (धियः) बुद्धियों को (विराजति) प्रकाशित करती है, वैसे विद्याओं में तुम प्रवृत्त रहो ॥ २० । ८६ ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलुप्तोपमालङ्कारः। कन्याभिर्ब्रह्मचर्येण विद्यासुशिक्षे पूर्णे संगृह्य बुद्धयो वर्द्धयितव्याः ॥ २० । ८६ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा अलंकार है ॥ कन्याएँ ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके बुद्धियों को बढ़ावें ॥ २० । ८६ ॥

भाष्यसार—**१. स्त्री-शिक्षा**—जैसे सरस्वती अर्थात् वाणी प्रकृष्ट ज्ञान से आकाश में स्थित शब्द-समुद्र को प्रकट करती है, सब बुद्धियों को प्रकाशित करती है वैसे सब स्त्रियाँ विद्याओं में प्रवृत्त होवें। तात्पर्य यह है कि कन्याएँ ब्रह्मचर्यपूर्वक पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके बुद्धि को बढ़ावें ॥

२. अलंकार—इस मन्त्र में उपमा-वाचक 'इव' आदि पद लुप्त है। अतः वाचकलुप्तोपमा अलंकार है। उपमा यह है कि कन्याएँ सरस्वती के समान पूर्ण विद्या और सुशिक्षा से युक्त होवें ॥ २० । ८६ ॥ ●

मधुच्छन्दाः। **इन्द्रः**=सभेशः। निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

अथ सामान्योपदेशविषयमाह ॥

अब सामान्य उपदेश विषय का वर्णन किया है ॥

इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता ऽ इ॒मे त्वा॒यवः॑। अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥ ८७ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) सभेश (**आ**) (**याहि**) आगच्छ (**चित्रभानो**) चित्रा भानवो=विद्याप्रकाशा यस्य तत् संबुद्धौ (**सुताः**) निष्पादिताः (**इमे**) (**त्वायवः**) ये त्वां युवन्ति=मिलन्ति ते (**अण्वीभिः**) अङ्गुलीभिः (**तना**) विस्तृतगुणेन (**पूतासः**) पवित्राः ॥ ८७ ॥

अन्वयः—हे चित्रभानो इन्द्र ! त्वं य इमे अण्वीभिस्सुतास्तना पूतासस्त्वायवः पदार्थाः सन्ति तानायाहि ॥ ८७ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **चित्रभानो** चित्रा भानवो=विद्याप्रकाशा यस्य तत् सम्बुद्धौ **इन्द्र** सभेश ! **त्वं य इमे अण्वीभिः** अङ्गुलीभिः **सुताः** निष्पादिताः **तना** विस्तृतगुणेन **पूतासः** पवित्राः **त्वायवः** ये त्वां युवन्ति=मिलन्ति ते **पदार्थाः सन्ति, तान् आयाहि** आगच्छ ॥ २० । ८७ ॥

भावार्थः—मनुष्याः सत्क्रियया पदार्थान् संशोध्य भुञ्जताम् ॥ २० । ८७ ॥

भाषार्थ—हे (चित्रभानो) विचित्र भानु=विद्याप्रकाश वाले (इन्द्र) सभापति ! तू—जो (इमे) ये (अण्वीभिः) अंगुलियों से (सुताः) तैयार किए हुए, (तना) विस्तृत गुण से (पूतासः) पवित्र, (त्वायवः) तुझे मिलने वाले पदार्थ हैं; उन्हें (आयाहि) प्राप्त कर; उनका सेवन कर ॥ ८७ ॥

भावार्थ—मनुष्य श्रेष्ठ क्रिया से पदार्थों को शुद्ध करके खावें ॥ २० । ८७ ॥

भाष्यसार—**सभापति के लिए उपदेश**—विचित्र विद्याप्रकाश से युक्त सभापति—जो अंगुलियों से तैयार किए हुए तथा फैलाकर पवित्र किए हुए पदार्थ हैं उनका सेवन कर अर्थात् पदार्थों को शुद्ध करके खावे ॥ २० । ८७ ॥

मधुच्छन्दाः । **इन्द्रः=विद्वान्** । गायत्री । षड्जः ॥

पुनर्विद्वद्विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) विद्यैश्वर्ययुक्त (**आ**) (**याहि**) (**धिया**) प्रज्ञया (**इषितः**) प्रेरितः (**विप्रजूतः**) विप्रैर्मेधाविभिर्जूतः=शिक्षितः (**सुतावतः**) निष्पादितवतः (**उप**) (**ब्रह्माणि**) अन्नानि धनानि वा (**वाघतः**) यश्शिक्षया=वाचा हन्ति=जानाति सः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—हे इन्द्र ! इषितो विप्रजूतो वाघतस्त्वं धिया सुतावतो ब्रह्माण्युपायाहि ॥ ८८ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **इन्द्र** विद्यैश्वर्ययुक्त ! **इषितः** प्रेरितः **विप्रजूतः** विप्रैर्मेधाविभिर्जूतः=शिक्षितः **वाघतः** यश्शिक्षया=वाचा हन्ति=जानाति सः, **त्वं धिया** प्रज्ञया **सुतावतः** निष्पादितवतः **ब्रह्माणि** अन्नानि धनानि वा **उप-आ-याहि** ॥ २० । ८८ ॥

भावार्थः—विद्वांसो जिज्ञासून् जनान् संगत्यैतेषु विद्याकोशं स्थापयन्तु ॥ २० । ८८ ॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न (इषितः) प्रेरणा से युक्त, (विप्रजूतः) मेधावी लोगों से शिक्षित, (वाघतः) वाणी से जानने वाला तू—(धिया) बुद्धि से (सुतावतः) पदार्थों को तैयार करने वाले पुरुष के (ब्रह्माणि) अन्नों वा धनों को (उप-आ-याहि) ग्रहण कर ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्य—जिज्ञासु लोगों का संग करके इनमें विद्याकोश को स्थापित करें ॥ २० । ८८ ॥

भा० पदार्थः—ब्रह्माणि=विद्याकोशम् ।

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**—विद्या रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न, प्रेरणा से युक्त, मेधावी लोगों से शिक्षित, वाणी से सब अभिप्राय को शीघ्र समझ लेने वाला विद्वान्—बुद्धिपूर्वक पदार्थों को तैयार करने वाले जिज्ञासु जनों के अन्न वा धन को ग्रहण करें और उनमें विद्या-कोश को स्थापित करें ॥ २० । ८८ ॥

मधुच्छन्दाः । **इन्द्रः**=विद्वान् । गायत्री । षड्जः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान ऽ उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) विद्यैश्वर्यवर्द्धक (**आ**) (**याहि**) (**तूतुजानः**) क्षिप्रकारी । तूतुजान इति क्षिप्रकारिना० ॥ निघं० २ । १५ ॥ (**उप**) (**ब्रह्माणि**) धर्म्येण प्राप्तव्यानि (**हरिवः**) प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ (**सुते**) निष्पन्ने व्यवहारे (**दधिष्व**) धर (**नः**) अस्मान् (**चनः**) भोग्यमन्नम् ॥८९॥

प्रमाणार्थ—(**तूतुजानः**) क्षिप्रकारी । 'तूतुजानः' यह पद निघं० २ । १५ में क्षिप्रकारी नामों में पठित है ॥

अन्वयः—हे हरिव इन्द्र ! त्वमुपायाहि तूतुजानो नः सुते ब्रह्माणि चनश्च दधिष्व ॥ ८९ ॥

सपदार्थान्वयः—हे **हरिवः** प्रशस्ता हरयोऽश्वा विद्यन्ते यस्य तत्सम्बुद्धौ **इन्द्र** विद्यैश्वर्य-वर्द्धक ! **त्वमुपायाहि तूतुजानः** क्षिप्रकारी **नः** अस्मान् **सुते** निष्पन्ने व्यवहारे **ब्रह्माणि** धर्म्येण प्राप्तव्यानि **चनः** भोग्यमन्नं **च दधिष्व** धर ॥ २० । ८९ ॥

भाषार्थ—हे (हरिवः) प्रशस्त हरि=घोड़ों वाले (इन्द्र) विद्या रूप ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले विद्वान् ! तू—(उप+आयाहि) हमारे समीप आ, और—(तूतुजानः) शीघ्रकारी होकर (नः) हमें (सुते) सिद्ध व्यवहार में स्थापित करने के लिए (ब्रह्माणि) धर्मयुक्त कर्म से प्राप्त पदार्थों तथा (चनः) भोग्य अन्न को (दधिष्व) धारण कर ॥ २० । ८९ ॥

भावार्थः—विद्याधर्मवृद्धये केनाप्यालस्यं न कार्यम् ॥ २० । ८९ ॥

भावार्थ—विद्या और धर्म की वृद्धि के लिए कोई भी आलस्य न करे ॥ २० । ८९ ॥

भाष्यसार—**विद्वान् के लिए उपदेश**--प्रशस्त घोड़ों वाले, विद्या रूप ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले, विद्वान् को जिज्ञासु लोग अपने समीप बुलावें । विद्वान् क्षिप्रकारी=पुरुषार्थी हो, आलसी न हो । जिज्ञासु लोगों को विद्या आदि व्यवहार में स्थापित करे तथा धर्मपूर्वक प्राप्त करने योग्य पदार्थों और भोग्य अन्न को ग्रहण करे। विद्या और धर्म की वृद्धि के लिए कोई भी मनुष्य आलस्य न करे ॥ २० । ८९ ॥

मधुच्छन्दाः । **अश्विसरस्वतीन्द्राः**=अध्यापकोपदेशकौ, वाक्, ऐश्वर्यवान् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

विद्वानों के विषय में फिर उपदेश किया है ॥

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा । इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬं सोम्यं मधु ॥ ९० ॥

पदार्थः—(**अश्विना**) अध्यापकोपदेशकौ (**पिबता**) (**मधुम्**) मधुरादिगुणयुक्तमन्नम् (**सरस्वत्या**) सुसंस्कृतया वाचा (**सजोषसा**) समानं जोषः=सेवनं ययोस्तौ (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् (**सुत्रामा**)

सुष्ठु रक्षकः (**वृत्रहा**) यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्य्यस्तद्वद्वर्त्तमानः (**जुषन्ताम्**) सेवन्ताम् (**सोम्यम्**) सोमे=सोमलताद्यषधिगणे भवम् (**मधु**) मधुरविज्ञानम् ॥ ९० ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः ! यथा सजोषसाऽश्विना सरस्वत्या मधु पिबतां यथा चेन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा च सोम्यं मधु जुषन्तां तथा युष्माभिरप्यनुष्ठेयम् ॥ ९० ॥

सपदार्थान्वयः—हे **मनुष्याः** ! **यथा सजोषसा** समानं जोषः=सेवनं ययोस्तौ **अश्विना** अध्यापकोपदेशकौ **सरस्वत्या** सुसंस्कृतया वाचा **मधु** मधुरादिगुणयुक्तमन्नं **पिबताम्** ।

यथा चेन्द्रः ऐश्वर्यवान् **सुत्रामा** सुष्ठु रक्षकः **वृत्रहा** यो वृत्रं=मेघं हन्ति स सूर्य्यस्तद्वद्वर्त्तमानः **च सोम्यं** सोमे=सोमलताद्योषधिगणे भवं **मधु** मधुरविज्ञानं **जुषन्तां** सेवन्तां **तथा युष्माभिरप्यनुष्ठेयम्** ॥ २० । ९० ॥

भावार्थः—अध्यापकोपदेशकाः स्वात्मवत् सर्वेषां विद्यासुखं वर्द्धितुमिच्छेयुर्यतः सर्वे सुखिनः स्युः ॥ २० । ९० ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे—(सजोषसा) समान रूप से सेवा करने वाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक लोग—(सरस्वत्या) अति शुद्ध वाणी से (मधु) मधुर आदि गुणों से युक्त अन्न का (पिबताम्) पान करें ।

और—जैसे (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष, (सुत्रामा) श्रेष्ठ रक्षक राजा और (वृत्रहा) मेघ-हन्ता सूर्य के समान वर्ताव वाला विद्वान् (सोम्यम्) सोमलता आदि ओषधियों के (मधु) मधुर विज्ञान का (जुषन्ताम्) सेवन करते हैं, वैसे तुम भी करो ॥

भावार्थ—अध्यापक और उपदेशक लोग—अपनी आत्मा के समान सबके विद्या-सुख को बढ़ाने की इच्छा करें जिससे सब सुखी रहें ॥ २० । ९० ॥

भाष्यसार—**विद्वानों के लिए उपदेश**—समान रूप से सेवा करने वाले अध्यापक और उपदेशक लोग—शुद्ध वाणी से मधुर गुण से युक्त अन्न आदि का पान करें । और जैसे—ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष, उत्तम रीति से रक्षा करने वाला राजा और मेघों का हनन करने वाले सूर्य के तुल्य अविद्या अन्धकार को नष्ट करने वाला विद्वान् सोमलता आदि ओषधियों के मधुर विज्ञान का सेवन करता है वैसे सब मनुष्य सेवन करें ॥ २० । ९० ॥ ●

[पूर्वापराध्यायार्थसंगतिमाह—]

अत्र राजप्रजाधर्माङ्गाङ्गिगृहाश्रमव्यवहारब्रह्म-क्षत्रसत्यव्रतदेवगुणप्रजारक्षकाऽभयपरस्परसम्मतिस्त्री गुणधनादिवृद्धयादिवर्णनादेतदर्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्तीति बोध्यम् ॥

इस अध्याय में—राजा और प्रजा का धर्म (१–४), अङ्ग-अङ्गी (५–११), गृहाश्रम का व्यवहार (२२) ब्रह्म, क्षत्र (२५) सत्य व्रत (२४) देव–गुण (११, १२), प्रजारक्षक (५०–५२) अभय (५१), परस्पर सम्मति (५२) स्त्री के गुण (८५) धनादि की वृद्धि (८६) के वर्णन से इस अध्याय के अर्थ की पूर्व अध्याय में प्रतिपादित अर्थ के साथ संगति है, ऐसा समझें ॥ २० । ९० ॥

इति श्रीयुतपण्डितसुदर्शनदेवाचार्यविरचिते दयानन्द-यजुर्वेदभाष्य-भास्करे
विंशोऽध्यायः सम्पूर्णः ।

वेद है कल्याणी वाणी, सर्वज्ञ भगवान् की।
जिसके अर्थज्ञान में है, पहुँच अनूचान की॥
शुद्ध अन्तःकरण जिसका तपस्वी होवे महान्।
पक्षपात करे नहीं, विद्वानों में पावे मान॥
ऋषि पद पाया जिसने, करके पूरा ब्रह्म ज्ञान।
विद्या बुद्धि शुद्ध जिसकी, उसको अनूचान जान॥
बन के अनूचान समझा, वेद दयानन्द ने।
सत्य का प्रकाश किया, पड़े थे सब अन्ध में॥
विश्व भर को आर्य करना वेद का आदेश है।
पढ़ो वेद, जानो ब्रह्म, "दयानन्द-सन्देश" है॥